विशाल-भारत

सचित्र मासिक पत्र

सम्पादक—बनारसीदास चतुर्वेदी

सञ्चालक–रामानन्द चट्टोपाध्याय

वर्ष ३, भाग ५

[जनवरी–जून १९३०]

"विशाल-भारत" कार्यालय

१२०।२, अपर सरकूलर रोड

कलकत्ता

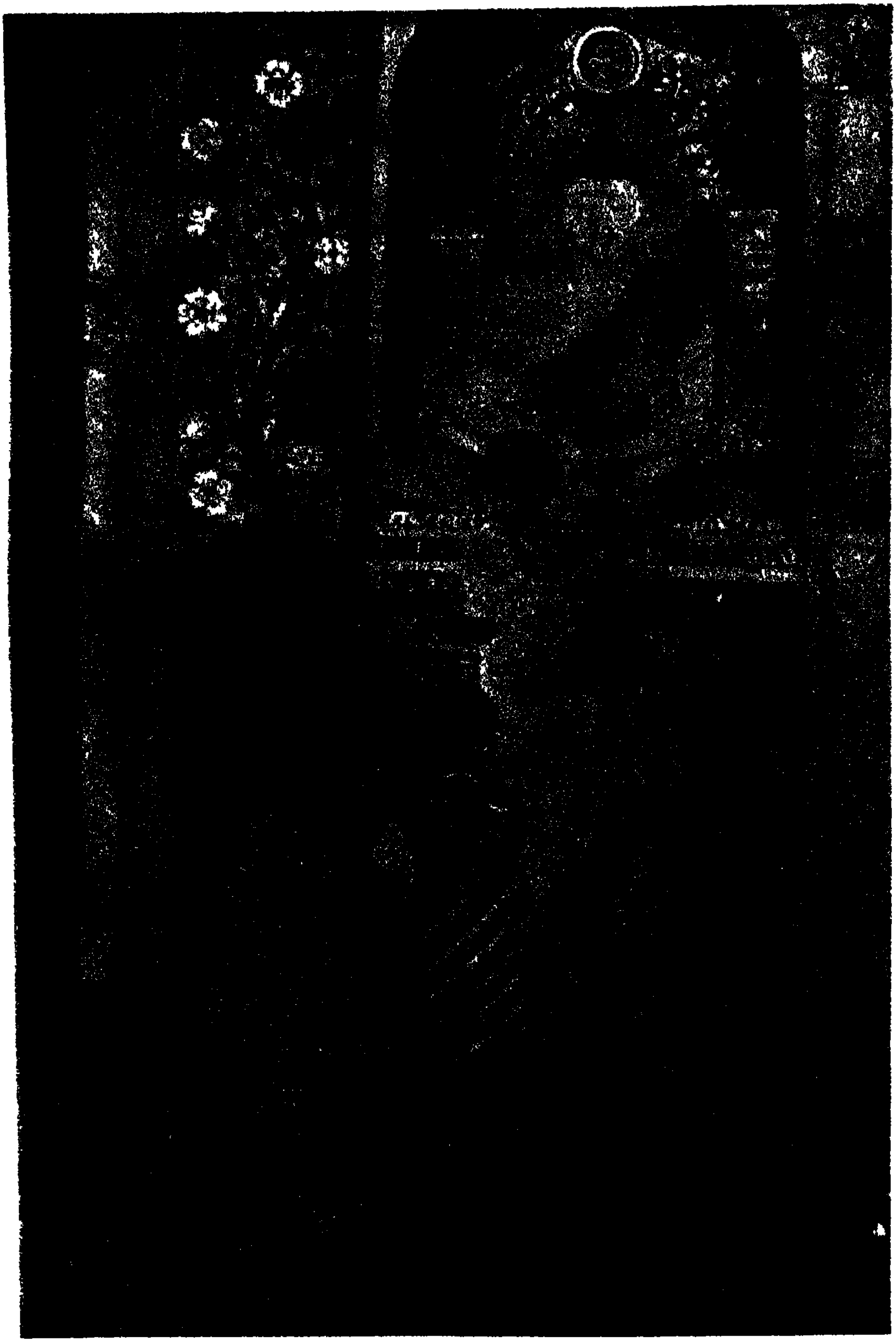
वार्षिक मूल्य ६)
छःमाही मूल्य ३।)

विदेशके लिए ७॥)
एक प्रतिका ॥=)

विशाल भार

विषय-सूची

(जनवरी—जून १९३)

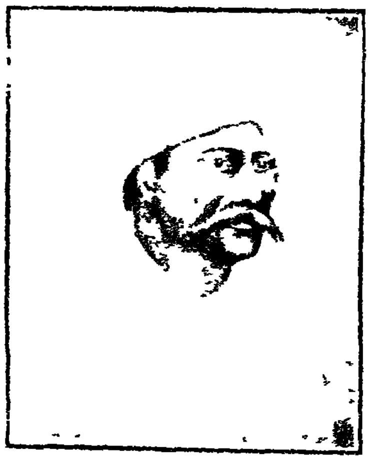


समर्पण













"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ३ खण्ड १ } जनवरी, १९३०—माघ, १९८६ { अङ्क १ पूर्णाङ्क २५

प्राचीन विशाल भारतके निर्माता भगवान गौतम बुद्ध

[लेखक :—प्रो० फणीन्द्रनाथ वसु, एम० ए०]

"चरथ भिक्खवे चारिक बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं देसेथ भिक्खवे धम्मं आदि कल्याण मज्झे कल्याणं परियोसान कल्याण सात्थं सव्यञ्जन केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।"

अर्थात्—"हे भिक्षुओ, जाओ और बहुजनोंके हितके लिए, बहुजनोंके सुखके लिए, संसारपर कृपा करनेके लिए, मनुष्यों और देवताओंके हित, सुख और भलाईके लिए सब ओर घूमो। हे भिक्षुओ जाओ, और आदि, मध्य एवं अन्तमें कल्याण करनेवाले धर्मका प्रचार करो। तुम पवित्र, परिपूर्ण और विशुद्ध जीवनका प्रकाश करो।"

इन शब्दोंमें भगवान गौतम बुद्धने अपने शिष्योंको विदेशोंमें जाकर बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिए उपदेश दिया था। इसीके फल-स्वरूप प्राचीन विशाल भारतकी नींव पड़ी, क्योंकि भिक्षुओंने भगवान बुद्धके उच्च आदर्शोंसे प्रेरित होकर भारतकी प्राकृतिक सीमाओंको पार करके भारतके बाहर अनेक देशोंमें उनके सन्देशको पहुँचाया। उन्हें विदेशोंमें जाकर बौद्धधर्मका प्रचार करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। फिर भी उन्होंने उसका प्रचार न केवल चीन, तिब्बत, कोरिया और जापानमें ही किया; बल्कि उसे चीनी-तुर्किस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, ब्रह्मा, श्याम, कम्बोडिया, जावा आदिमें भी पहुँचाया।

भगवान बुद्धने अपने साठ शिष्योंको उपर्युक्त सन्देश देकर भिन्न-भिन्न दिशाओंको भेजा। भगवान गौतम बुद्धकी जीवन-कथासे प्रत्येक पुरुष—स्कूलके लड़के तक—परिचित हैं। गौतमने अपनी आयुके पैंतीसवें वर्षमें, वैशाखकी पूर्णिमाके

दिन, बोधिसत्वको प्राप्त किया था। तब उन्होंने अपने धर्मके प्रचारकी बात सोची, मगर वे उपदेश दें, तो किसको दें? सर्व प्रथम उन्होंने अपने हिन्दू-गुरुको, जिन्होंने उन्हें हिन्दू-धर्मकी शिक्षा दी थी, अपने नये धर्म सिखलानेका विचार किया। परन्तु उस समय तक वे मर चुके थे। तब उन्हें उन छै साधुओंका स्मरण आया, जिन्होंने उनको तपस्यामें सहायता दी थी। वे साधु उस समय सारनाथमें (आधुनिक काशीके समीप) थे। इसलिए भगवान बुद्ध तुरन्त ही सारनाथ गये और उन छहों साधुओंको अपने नवीन धर्ममें दीक्षित किया, और सर्वप्रथम उन्हें अपना उपदेश सुनाया। यह घटना बौद्धधर्मके इतिहासमें 'धम्मचक्कपवत्तन' संस्कारके नामसे प्रसिद्ध है। इसी समयसे भगवान बुद्धने ब्राह्मण-अब्राह्मण, ग़रीब-अमीर, राजा-प्रजा—सबमें अपने धर्मका प्रचार शुरू कर दिया। उन्होंने अपने धर्मको किसी विशेष जाति या सम्प्रदायके लिए सुरक्षित नहीं रखा, बल्कि बिना किसी प्रकारके भेद-भावके उसका द्वार सर्वसाधारणके लिए खोल दिया। इस विषयमें उन्होंने हिन्दू धर्मका प्रतिवाद किया। वे लोगोंको प्रेम और अहिंसाका सन्देश देते थे। उन्होंने निर्वाण प्राप्त करनेके अष्ट मार्गोंको प्रदर्शित किया था।

भगवान बुद्धने सर्वसाधारणके हृदयोंको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया था। इसके लिए वे दार्शनिक सिद्धान्तोंको आख्यानों और उपमाओंके द्वारा लोकप्रिय ढंगसे समझाया करते थे। परन्तु विशाल भारतकी नींव उस समय पड़ी, जब उन्होंने अपने साठ शिष्योंसे कहा—"अब तुम लोग जाओ, इस सर्वोत्तम धर्मका प्रचार करो और उसके प्रत्येक पहलूको समझाओ।"

विशाल भारतकी बुनियाद भारतवर्षके इतिहासका एक मनोरंजक अध्याय है। इसे हम एशियाके भिन्न-भिन्न देशोंमें बौद्धधर्मके प्रचारकी कथा भी कह सकते हैं। जैसे-जैसे बौद्धधर्म भिन्न-भिन्न देशोंमें फैलता गया, वैसे-वैसे प्राचीन कालके विशाल भारतकी नींवका मार्ग परिष्कृत होता गया। मैं यहाँपर बौद्धधर्मके प्रचारके साथ-साथ इस बातको प्रदर्शित करनेकी कोशिश करूँगा कि भगवान बुद्ध ही प्राचीन विशाल भारतके निर्माता थे। मुझे आधुनिक विशाल भारतका अच्छा ज्ञान नहीं है, परन्तु मैं पिछले दस वर्षोंसे प्राचीन विशाल भारतके सभी अंगोंका अध्ययन कर रहा हूँ। इसलिए मैं उस सांस्कृतिक साम्राज्यके विषयमें, जिसका शताब्दियों पूर्व भारतके सपूतोंने निर्माण किया था, कुछ कहनेकी धृष्टता करूँगा।

भगवान बुद्ध बड़े सफल प्रचारक थे। जब उन्होंने अपने साठ शिष्योंको बाहर जाकर 'सद्धम्म' प्रचार करनेकी आज्ञा दी, तब वे स्वयं भी बेकार नहीं रहे थे। उन्होंने कहा था—"मैं भी उरुवेला जाकर धर्मका उपदेश दूँगा।" अतः वे उरुवेला—गयाजीकी पहाड़ियोंपर—गये और वहाँके पन्द्रह सौ साधुओंको अपने उच्च धर्मका उपदेश दिया। वे उनके उपदेशसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि सब के-सब उनके शिष्य हो गये।

उन्होंने उच्च विचारोंके भिक्षुओंके एक दलको प्रेरित करके समस्त भारतवर्षमें तथा भारतके बाहरके देशोंमें बौद्धधर्मके प्रचारके लिए भेजा। प्रेम और अहिंसाके प्रचारक इन बौद्ध साधुओंकी लगन और उत्साह आजकलके भिन्न-भिन्न समाजोंके प्रचारकोंके लिए—जो उपनिवेशोंमें प्रचारके लिए जाते हैं—अनुकरणीय है। वे बौद्ध साधु जिस किसी भी देशको गये, उन्होंने वहाँके लोगोंको अपने धर्मके पक्षमें कर लिया, और धीरे-धीरे उन स्थानोंको विशाल भारतका अंग बना दिया। इस प्रकार बौद्धधर्मके प्रचारका इतिहास विशाल भारतके इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण अंश है, और प्रत्येक भारतवासीको—जो अपने औपनिवेशिक भाइयोंकी भलाई चाहता हो—उसका अध्ययन करना चाहिए। उसके अध्ययनसे हमारी औपनिवेशिक समस्याओंके समाधानके कुछ नये मार्ग ज्ञात हो सकते हैं।

भगवान बुद्धके शिष्य उनके योग्य उत्तराधिकारी हुए। अभाग्यवश, उनके संघके कुछ सदस्य ऐसे भी थे, जो बुद्धके बनाये हुए कड़े नियमोंसे सन्तुष्ट नहीं थे। जब तक भगवान

बुद्ध जीवित रहे, तब तक वे कोई आपत्ति नहीं उठा सके, परन्तु उनके मरनेके बाद ही, उनके एक शिष्यने कहा—"अब तो बुद्ध मर गये, अब हम लोग जो चाहें कर सकते हैं।"

परन्तु यह उसकी भ्रान्ति थी, क्योंकि भगवान बुद्धके प्रिय शिष्य आनन्द इत्यादि मौजूद थे, जिन्होंने बुद्धके संघमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी नहीं होने दी। इसके विरुद्ध उन्होंने संघको और भी दृढ़ करनेके लिए वैशालीमें एक सभा बुलाई, जिसमें बुद्धके समस्त शिष्य एकत्रित हुए और उनके समस्त वाक्य सुप्रसिद्ध 'त्रिपिटक' में एकत्रित किये गये।

असलमें बौद्ध-प्रचारकोंने विशाल भारतकी स्थापना सम्राट् अशोकके समयमें—जो अपने शिलालेखोंमें 'देवानां पिय पियदसि'के नामसे प्रसिद्ध है—की थी। अशोकने विशाल भारतकी स्थापनामें बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। परन्तु उसका उद्देश्य साम्राज्यवादी साम्राज्य स्थापित करनेका नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित करनेका था। अशोक ही के समयमें बौद्ध साधु भारतसे बाहर गये, और भारतकी सीमाओंके बाहर कई देशोंमें बौद्धधर्मका प्रचार हुआ। अशोकने पाटलीपुत्रमें बौद्धोंकी तीसरी सभा बुलाई थी, जिसमें मुग्गालीपुत्त तिस्सके सभापतित्वमें एक हज़ार विद्वान एकत्रित हुए थे। उसमें संघके नियमों और सिद्धान्तोंमें संशोधन किया गया था। इस स्मरणीय सभाके बाद बौद्ध-प्रचारक भिन्न-भिन्न दिशाओंको भेजे गये। एक दल हिमालय प्रदेशकी ओर गया, दूसरा पश्चिमी भारतकी ओर, तीसरा सुवर्ण-भूमिकी ओर और चौथा लंकाकी ओर। लंकाके दोनों इतिहासों—'दीपवंश' और 'महावंश'में इन प्रचारकोंका वर्णन है, और उन देशोंके नाम भी दिये गये हैं, जिनमें वे 'सद्धम्म' के प्रचारक भेजे गये थे। उनमें लिखा है :—

"मज्झन्तिक	काश्मीर और गांधार	को गये
महादेव	महिषा (गोदावरीके दक्षिण)	को गये
रक्खित	बनवासी (जंगल)	को गये
योनक धम्मरक्खित	अपरन्तक (पश्चिमी पंजाब)	को गये
महाधम्म रक्खित	मरहट्टा (बम्बई-प्रान्त)	को गये
महारक्खित	योनलोक (बैक्ट्रिया)	को गये
मज्झिम	हिमवन्त (मध्य-हिमालय)	को गये
सोन और उत्तर	सुवर्ण-भूमि (ब्रह्मा और मलाया अंतरीप)	को गये
महिन्द तथा अन्य लोग	लंकाको	गये।"

अशोकके शिलालेखोंमें भी उस समयके इस धर्म-प्रचारका वर्णन मिला है। अपने एक शिलालेखमें अशोक कहते हैं—"और यह कहा जाता है कि दान एक प्रशंसनीय वस्तु है, परन्तु धम्मके दानके समान कोई भी दान या कृपा नहीं हो सकती।" इस प्रकार अशोक समस्त संसारके लोगोंको धर्मका दान देना चाहते थे। उन्होंने साम्राज्यकी समस्त रक्षित रियासतोंमें, सीमान्त प्रदेशकी जातियोंमें, देशके भीतरके समस्त जंगली भागोंमें, दक्षिण-भारतके स्वतंत्र राज्योंमें, लंकामें और सीरिया, मिश्र, सिरीन, मैसिडोनिया और इपीरसकी रियासतोंमें—जो क्रमसे एंटिओकस थियोस, टोलमी, फिलाडेलफस, मेगस, एंटिगोनस, गोनाटस और एलेक्जेन्डर द्वारा शासित की जाती थीं—बौद्धधर्मके प्रचारक भेजे थे।

इस प्रकार अशोकने विशाल भारतका बीज वपन किया, जो बहुत शीघ्र तीन महादेशों—एशिया, यूरोप और अफ्रिका—में स्थापित हो गया। वे सबसे बड़े बौद्ध सम्राट् थे, जिन्होंने अपने धर्म-प्रचारके उत्साहसे भगवान बुद्धका सन्देश भिन्न-भिन्न स्थानोंको पहुँचाया था। यहाँ तक कि लंकाके शासक 'तिस्स' की—जिसने अशोककी नकल करके 'देवाना पिय' की उपाधि धारण की थी—प्रार्थनापर उन्होंने अपने पुत्र महिन्दको लंका भेज दिया था। महिन्द बड़ा उत्साही प्रचारक था; वह बहुतसे भिक्षुओं, बौद्धधर्मकी पुस्तकों और उनके भाष्योंके साथ लंका गया था। राजा 'तिस्स' ने बड़े आदरसे उसका स्वागत किया और उसके कहनेसे अनुराधापुरमें 'थूपाराम् दागब' का निर्माण किया।

महिन्दने लंकामें बहुतसे सिंहलियोंको दीक्षित किया, और वहाँ बौद्धधर्मकी स्थापना की। सिंहली राजवंशकी कई महिलाओंने भिक्षुणी बननेका विचार प्रकट किया। इसपर महिन्दने अपनी बहन संघमित्राको भारतसे बुलाया। संघकी पुकारपर संघमित्रा लंका गई, और वहाँकी स्त्रियोंमें उसने बौद्धधर्मका प्रचार किया।

लंका जाते समय संघमित्रा अपने साथ गयाके सुप्रसिद्ध बोधि वृक्षकी एक शाखा भी ले गई थी, जिसे उसने अनुराधापुरमें रोपित किया था। बौद्धधर्मकी भांति यह बोधि-वृक्ष आज भी लंकामें वर्तमान है।

अशोकके प्रचार-सम्बन्धी कार्य विशाल भारतकी स्थापनाके लिए उत्तरदायी हैं, लेकिन कनिष्कके समयमें उसे और भी प्रेरणा मिली। जब कनिष्क पश्चिमी भारतका सम्राट था, तब चीनमें बौद्धधर्मका प्रचार हुआ। उस समय चीनके महान् साम्राज्यके तत्कालीन शासक सम्राट् मिगटीकी प्रार्थनापर तक्षशिलाका एक बौद्ध भिक्षु कश्यप मातंग चीनमें 'सद्धम्म'-प्रचारके लिए गया था। चीनमें बौद्धधर्मके प्रचारका वृत्तान्त चीनी पुस्तकोंमें इस प्रकार है :—

''हेन-वंशीय सम्राट् मिग-टीके शासनके चौथे वर्षमें सम्राट्ने एक स्वप्न देखा। जिसमें उसने देखा कि एक पवित्र पुरुष, जिसका शरीर सोनेका बना था और जो ६ चंग (१४१ इंच) ऊँचा था तथा जिसके मस्तकके चारों ओर सूर्यके सदृश प्रकाश था, उड़ता हुआ आया, और उसके महलमें प्रविष्ट हुआ।

''इस स्वप्नसे प्रभावित होकर सम्राट्ने अपने मंत्रीसे पूछा कि उस स्वप्नका क्या अर्थ था? इसपर फाउ-ईने--जो ज्योतिष गणना-विभागसे सम्बन्ध रखता था—जवाब दिया—'आपने सुना होगा कि भारतवर्षमें एक ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ है, जिसने सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है, और जो फो (बुद्ध) कहलाता है। यही महात्मा होंगे, जो आकाशमें अपने अपने दिव्य प्रकाश-सहित उड़ते होंगे। यही आपके स्वप्नके कारण हैं।' सम्राट्ने यह सुनकर तुरन्त ही सब सैनिक अधिकारी साई-इन राज्याधिकारी वांग-सुंग और सिन किंगको अन्य पन्द्रह व्यक्तियोंके साथ भेजा, और आज्ञा दी कि वे ताई-यू चीके देश और मध्य-भारतमें जाकर बुद्धिमत्तासे बौद्धधर्मका पता लगावें।

'ग्यारह वर्ष बाद ये लोग बुद्ध भगवानकी प्रतिमा—जो राजा यू-चान (औदायन) ने बनवा दी थी—और ४२ विभागोंके ग्रंथ लेकर भारतसे लौटे। ये लोग अपने साथ निमंत्रित करके शमनस मा-तंग (कश्यप मातंग) और चौ फा-लनर (धर्मरक्षा) लेकर बारहवें मासके तीसवें दिन लो-यांगमें आकर पहुँचे।

''तब सम्राट्ने मा-तंगसे इस प्रकार प्रश्न किया—'धर्मके राजा (धर्मदेव बुद्ध) ने कब जन्म लिया था, और उन्होंने इस देशमें भी अवतार क्यों नहीं लिया?' इसपर भिक्षुने उत्तर दिया कि कापि-लोका देश महान् देवभूमि है, इसलिए तीनों कालोंके बुद्धोंने वहीं जन्म लिया है। देव और नागोंकी भी यही इच्छा रहती है कि उसी देशमें पैदा होकर बौद्धधर्मका पालन करें, जिससे उन्हें निर्वाण प्राप्त हो सके। उनके सिद्धान्तोंका प्रकाश दूसरे भागोंमें भी पहुँचता है। इससे पांच सौ वर्ष तक नहीं, एक हज़ार वर्ष तक यदि उनमें बौद्धधर्मके प्रचारके लिए कोई संत न भी हो, तो निर्वाण प्राप्त कर सकेंगे।

''सम्राट्ने इस बातपर विश्वास करके और इसे पसन्द करके शहरके पश्चिमी फाटकके बाहर तुरन्त ही एक मन्दिर बनानेकी आज्ञा दी। इस मन्दिरका नाम 'श्वेतअश्वका मंदिर' रखा। उसमें भक्ति-पूर्वक बुद्धदेवकी प्रतिमा स्थापित की।''

इस प्रकार चीनमें बौद्धधर्मके प्रचारसे विशाल भारतकी स्थापना हुई। वहां बुद्धका सन्देश पहुँचानेवाले कश्यप मातंग थे। उनके बाद और भी अनेकों बौद्ध संन्यासियोंने पहाड़, रेगिस्तान और समुद्र पार करनेकी तमाम तकलीफें और दुःख उठाकर मातंगका अनुगमन किया। एक हज़ार वर्ष तक चीनमें बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिए भारतसे बौद्ध भिक्षुओंका तांता बँधा रहा। इन भिक्षुओंने चीनको

बौद्धधर्म-सम्बन्धी समस्त संस्कृत-साहित्य, भारतीय मूर्ति-निर्माण-कला, भारतीय चित्र-कला और भारतीय सभ्यता--यानी भारतीय संस्कृतिके सम्पूर्ण अवयव प्रदान किये।

चीनियोंको बौद्धधर्म सिखानेमें इन बौद्ध-भिक्षुओंको एक ऐसी विदेशी भाषा की—जो संसारकी सबसे मुश्किल भाषा समझी जाती है—कठिनाईका सामना करना पड़ा। फिर भी उन्होंने चीनी भाषाका ज्ञान प्राप्त किया, उसी भाषामें अपने धर्मका प्रचार किया और अनेकों बौद्ध ग्रन्थोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया। उनके किये हुए अनुवाद अब तक बड़े मूल्यवान समझे जाते हैं। कुमारजीवके अनुवाद तो महान् चीनी भिक्षु हुएन संगके अनुवादोंसे भी उत्तम समझे जाते हैं।

यह कुमारजीव चीनमें विशाल भारतका एक बहुत महान व्यक्ति था। प्रो० सिलवन लेवीने उसका वृत्तान्त लिखते हुए लिखा है—"जिन समस्त व्यक्तियोंने चीनमें भारतीय बौद्ध-धर्मका प्रचार किया, उनमें शायद कुमारजीव ही सबसे महान् अनुवादक था।" कुमारजीवने विशाल भारतके निर्माणमें जो बड़ा भाग लिया है, उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। उसके पिता एक भारतीय थे, जो कौच्छके राजाके राजगुरु थे, और ईसाकी चौथी शताब्दीमें मध्य एशियामें विस्तृत विशाल भारतमें रहते थे। कुमारजीव खोतानके समीप कौच्छसे बन्दीके रूपमें चीन ले जाया गया था, जहाँ उसने बड़ा भारी कार्य किया। वह संस्कृतका बड़ा भारी विद्वान था। और उसने बहुत थोड़े समयमें चीनी भाषापर भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। चीनी सम्राट्के निमंत्रणपर उसने अनुवादका कार्य आरम्भ किया। बारह वर्षके अन्दर उसने कमसे कम सौ बौद्ध संस्कृत-ग्रन्थोंको चीनी भाषामें अनुवादित किया।

बौद्धधर्म चीन ही में परिमित न रहा। सन् ३७२ में एक बौद्ध-भिक्षु चीनको पार करके कोरिया पहुँचा। वहाँ उसने सद्धर्म्मका प्रचार किया। थोड़े ही दिनोंमें, उसने वहाँके राजाको भगवान बुद्धके धर्ममें दीक्षित किया। कोरियाके अधिवासियोंने शीघ्र ही अपने राजाका अनुकरण करके बौद्धधर्मको स्वीकार कर लिया। पुनः सन् ५५२ में एक दूसरा बौद्ध भिक्षु कोरियासे जापान गया, और उसने उस द्वीप-समूहको बुद्धदेवका सन्देश सुनाया। मंगोलिया और फारमोसा-द्वीपमें भी चीनसे बौद्धधर्म पहुँच गया।

पश्चिमी भारतवर्षसे बढ़कर बौद्धधर्म काबुल, खोतान, कौच्छ और चीनी तुर्किस्तानमें भी पहुँचा। हालमें आरेल स्टीनने जो खुदाई की है, उससे प्रकट होता है कि किसी समय ये चीनी-तुर्किस्तान, खोतान और समीपस्थ स्थान बौद्धधर्मके दृढ़ दुर्ग थे, परन्तु तिब्बतमें बौद्धधर्म ईसाकी छठवीं शताब्दी तक नहीं पहुँचा। तिब्बतके राजा स्रोंग-सन-गम्पोने ही बंगालके बौद्ध-भिक्षुओंको तिब्बतमें बौद्धधर्मका उपदेश देनेके लिए बुलाया था। बादमें, नालन्द और विक्रमशिलाके विश्वविद्यालयोंने तिब्बतको बहुतसे उपदेशक दिये। महोपदेशक श्रीज्ञान दीपंकर, जिन्होंने लामा-धर्मकी नींव डाली थी, विक्रमशिलासे ही गये थे।

एक ओर यदि चीन और मध्य एशियाकी ओर बौद्धधर्मका प्रवाह जारी था, तो दूसरी ओर भारतके औपनिवेशिकोंका एक स्रोत दक्षिणकी ओर प्रवाहित था। इस स्रोतका फल यह हुआ कि ब्रह्मा, श्याम, चम्पा, कम्बोडिया, जावा, बाली और बोर्नियोमें विशाल भारतकी स्थापना हो गई। दक्षिण-एशियाके देशोंमें बौद्धधर्मका प्रचार भी अशोकके समयमें हुआ था, जब उसने सोन और उत्तरको स्वर्ण-भूमिमें धर्म प्रचारके लिए भेजा था। ब्रह्मामें बौद्धधर्म बंगालसे पहुँचा। चम्पा और कम्बोडियामें भी बौद्धधर्म पहुँच गया। कम्बोडियासे वह श्याममें पहुँचा, जहाँ आज भी वह राजधर्म है। कम्बोडियाके राजा भी बौद्ध हैं। जावामें बोरोबुदरका शानदार मन्दिर जावाके राजाके धर्म-प्रेमका फल है।

प्राचीन विशाल भारतका यह एक संक्षिप्त दिग्दर्शन है। यह विशाल भारत एशियाके भिन्न-भिन्न देशोंमें दूर तक फैला हुआ था। इस महान् विशाल भारतकी प्रेरणा महात्मा गौतम बुद्धसे उत्पन्न हुई थी। यह प्राचीन भारतीय उपनिवेश भारतके सांस्कृतिक साम्राज्यके अंग और अंश थे। भारतवर्षने कभी भी साम्राज्यवादकी (जिस अर्थमें आजकल साम्राज्यवाद

शब्द व्यवहार होता है, उस अर्थमें) आकांक्षा नहीं की। उसने अपने साम्राज्यकी सीमा बढ़ानेके लिए कभी कोई सेना भारतके बाहर नहीं भेजी। खून-खराबीके साज सामानसे सुसज्जित सैनिक भेजनेके स्थानमें भारतवर्षने शान्तिपूर्ण बौद्ध-भिक्षुओंको प्रेम और शान्तिके सन्देशके साथ बाहर भेजा। इन भिक्षुओंने सम्पूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशियामें भारतीय सभ्यता और संस्कृतिका प्रचार किया।

आजकल जो मिशनरी लोग प्रचारके लिए उपनिवेशोंमें जाते हैं, उन्हें बुद्धदेवके शिष्योंसे शिक्षा लेनी चाहिए, और बौद्ध-भिक्षुओंके आदर्शोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

दो हजार वर्ष बाद आज भी भगवान गौतम बुद्धका वह उपदेश आकाशमें गूँज रहा है—"हे भिक्षुओ, जाओ, और अपने कल्याणकारी धर्मका प्रचार करनेके लिये संसारकी यात्रा करो।" क्या भगवान् बुद्धकी जन्मभूमिमें, सम्राट अशोककी मातृभूमिमें ऐसे व्यक्ति अब भी विद्यमान हैं जिनके कान इस उपदेशको सुनें, हृदय इसे धारण करे और जो अपने त्याग तप और आत्मबलसे एक बार फिर भारतीय संस्कृतिका सन्देश लेकर देशदेशान्तरोंको जावें? प्राचीन विशाल भारतके निर्माता गौतम बुद्धकी आत्मा आज भी स्वर्गमें इस प्रश्नके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रही है।

वर्तमान विशाल भारतके निर्माता

भारत कभी विशाल था। वह भारतकी भौगोलिक सीमाओंमें बद्ध नहीं था। वट-वृक्षकी तरह वह अपनी शाखा-प्रशाखाओंको दूर दूर देशों तक फैलाये हुए था। आज भारत साम्राज्यवादियोंके अत्याचारपूर्ण शासनके अधीन है, पर कभी उसका निजका साम्राज्य था, और वह था संस्कृतिका साम्राज्य। चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, श्याम और सिंहलद्वीप इत्यादिके इतिहासमें भारतीय संस्कृतिका जबरदस्त प्रभाव था। कालकी गतिसे और हम लोगोंकी मूर्खतासे वह साम्राज्य नष्ट हो गया। हम लोगोंने समुद्र-यात्राको पाप समझ लिया। इस प्रकार अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित भारतीय संस्कृतिके साम्राज्यकी जड़पर कुठाराघात किया। अपने प्राचीन उपनिवेशोंसे इसी कारण हमारा सम्बन्ध टूट गया। आठवीं शताब्दीसे लेकर अठारहवीं शताब्दी तकका समय विशाल भारत के इतिहासमें पतनका काल कहा जा सकता है। इस बीचमें हमारे घरकी ही स्वाधीनता नष्ट नहीं हुई, वरन् विदेशोंमें विस्तृत हमारे सांस्कृतिक साम्राज्यका भी नाश हो गया। जिस देशके अनुपम कलाकारोंने बोरोबूदर जैसा भव्य मन्दिर यवद्वीपमें निर्माण कर दिखलाया था, उसकी सन्तान अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें शर्तबन्दीकी गुलामीमें विदेशोंको भेजी जाने लगी! हम लोगोंने देशमें अपने भाइयोंको शूद्र और चाण्डालकी श्रेणीमें डालकर उन्हें अछूत बना दिया, और परिणाम-स्वरूप हमलोग स्वयं संसारमें अछूत समझे जाने लगे! औपनिवेशिक वर्णभेद—गोरे-कालेका सवाल—भारतीय वर्ण भेदका प्रतिबिम्ब और परिणाम है।

८० वर्षोंमें लाखों ही मज़दूर विदेशोंको भेजे गये। उनपर जो अत्याचार हुए, जो-जो कठिनाइयां उन्हें सहनी पड़ीं और जिन भयंकर परिस्थितियोंमें उनको काम करना पड़ा, उनकी कथा बड़ी हृदयद्रावक है; पर उसे यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। शर्तबन्दीकी गुलामी सन् १९१६ में बन्द हो गई, और सन् १९२२में अन्तिम शर्तबँधा मज़दूर मुक्त हो गया, यद्यपि अब भी उसके पापोंसे पिण्ड नहीं छूटा।*

समयने पलटा खाया। जो बुराई थी, उसमेंसे भी एक भलाई उत्पन्न हुई। कीचड़मेंसे कमल उत्पन्न हुआ। शर्तबन्दीकी कुली-प्रथाके आधारपर भावी विशाल भारतका निर्माण होने लगा। निशाका वह अन्धकार सदाके लिए दूर

* गत १९ जनवरीको जो कुली जहाज 'सतलज' ब्रिटिश-गायना, जमैका और सुरीनाम इत्यादिसे लौटा था, उसमें ९७५ आदमी जानवरोंकी तरह भरे हुए थे। उस जहाजपर ४४ आदमी मार्गमें ही मर गये! समुद्र-यात्रामें ही उनकी संसार-यात्रा समाप्त हो गई।

हो रहा है। विशाल भारतके सूर्यकी किरणोंका प्रकाश फैल रहा है। जिन महानुभावोंको विशाल भारतके इस नवीन युगका प्रवर्तन करनेका श्रेय मिलना चाहिए, उनकी सम्पूर्ण संख्या गिनानेके लिए न तो यहाँ स्थान ही है, और न अवसर ही। यहाँ इतना कहना ही पर्य्याप्त होगा कि महात्मा गान्धी, दीनबन्धु ऐण्डूज़ और कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ विशाल भारतके निर्माताओंमें मुख्य हैं। पौराणिक भाषामें यही त्रिमूर्ति विशाल भारतके ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहे जा सकते हैं। यह गान्धीजी उसकी आत्मा हैं और ऐण्डूज़ उसके हृदय तो कविवर उसके मस्तिष्क हैं : तीनोंने अपने समयका एक उत्तम भाग विशाल भारतके निर्माणमें व्यय किया है। महात्माजीने अपने जीवनके २१ वर्ष दक्षिण-अफ्रिकामें बिताये थे। दीनबन्धुके जीवनके पिछले १८ वर्ष अफ्रिका और फिजी, मलाया और सीलोन, कनाडा और ब्रिटिश-गायना इत्यादि देशदेशान्तरोंके प्रवासी भाइयोंकी दशा सुधारनेमें व्यतीत हुए हैं और रवीन्द्रनाथ पैंसठ वर्षकी वृद्धावस्थामें भारतके प्राचीन उपनिवेश जावा, सुमात्रा और बालीकी यात्रा करने गये थे। यह बात 'विशाल भारत'के पाठकोंको शायद ज्ञात न होगी कि डाक्टर कालिदास नागकी 'वृहत्तर भारतीय परिषद्' कविवरके ही प्रोत्साहनका परिणाम है। उनकी विश्वभारती विद्यालयका उद्देश्य ही सांस्कृतिक विशाल भारतका निर्माण है। यदि महात्मा गान्धीजीने प्रवासी भारतीयोंको आत्मिक बल प्रदान किया है, दीनबन्धु ऐण्डूज़ने शर्तबन्दी गुलामीको दूर कराके उनकी माताओं और बहनोंके निराशामय शुष्क जीवनमें गृहस्थ-धर्मकी पवित्रता तथा प्रेमका संचार किया है, तो कवीन्द्र रवीन्द्रके उच्च विचारोंकी ध्वनिने भारतकी सीमाओं और सात समुद्रोंको पार करके उन द्वीपोंके किनारेपर टक्कर ली है और प्रवासी भारतीयोंका मस्तिष्क ऊँचा किया है।

पर हम इन महापुरुषोंके जीवनको प्रवासी भारतीयोंके लिए जितना महत्त्वपूर्ण समझते हैं, उतना ही महत्त्वपूर्ण जीवन उन स्त्रियों तथा पुरुषोंका था, जिन्होंने विशाल भारतके निर्माण-रूपी यज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। कुमारी



दीनबन्धु, महात्मा और कवीन्द्र

वालियामाका नाम हमारे कितने पाठक जानते हैं! उसके विषयमें महात्मा गान्धीजीने लिखा है—"वालियामा अपना नाम अमर कर गई। वालियामाकी सेवाका नाश नहीं हो सकता। आज भी उसकी वह मूर्ति कितने ही हृदयोंमें विराज रही है। जहाँ तक भारतवर्षका नाम रहेगा, तहाँ तक दक्षिण-अफ्रिकाके इतिहासमें वालियामाका नाम भी अमर रहेगा।"

वालियामाका नाम तो शायद थोड़े-बहुत लोगोंको मालूम भी होगा, पर उसकी कितनी ही बहनोंका नाम संसार कभी नहीं जानेगा।*

* "इन बहनोंका बलिदान विशुद्ध था। वे बेचारी क़ानूनकी बारीकियोंको नहीं जानती थीं। उनमेंसे कितनी ही को देशका ख़याल तक नहीं था। उनका देश-प्रेम तो केवल श्रद्धा ही पर निर्भर था। उनमेंसे कितनी ही निरक्षर थीं, अर्थात् समाचारपत्र तक नहीं पढ़ सकती थीं, पर वे जानती थीं कि क़ौमके मान-वस्त्रका हरण हो रहा है। उनका जेल जाना उनका आर्त्तनाद था—शुद्ध यज्ञ था।"

—महात्मा गान्धी।



बोरोबुदर मन्दिर, जावा (यवद्वीप)

प्रत्येक उपनिवेशकी ऐसी पचासों भारतीय माताओं तथा बहनोंके चरित लिखे जा सकते हैं, जिन्होंने दुराचारोंकी घोर अन्धकारमय रात्रिमें अपने सतीत्वके दीपकको प्रज्ज्वलित रखा। यदि आज विशाल भारतके भविष्यके उज्ज्वल होनेकी आशा हो रही है, तो यह उन माताओं तथा बहनोंके सतीत्वके प्रतापसे ही।

विशाल भारतका इतिहास अभी लिखा ही नहीं गया, और जब लिखा जावेगा, तो इतिहासकारको यह बात लिखनी पड़ेगी कि यद्यपि विशाल भारतके भवनके निर्माणके लिए महात्मा, दीनबन्धु, कवीन्द्र, गोखले, शास्त्री, पियर्सन, डोक आदि अनेक महानुभावोंने प्रयत्न किया, पर उसकी नींव उन असंख्य स्त्री-पुरुषोंके जीवनके आधारपर रखी गई थी, जिनका नाम संसार भूल गया और भूल जावेगा। लोग तारीफ़ करते हैं सेनापतिकी—जनरलकी, और भूल जाते हैं मामूली सिपाहियोंको! पर बिना उन सिपाहियोंकी सहायताके जनरल बेचारे क्या कर सकते हैं? जन-सत्ताके इस युगमें साधारण सैनिकोंको विस्मृत करना भयंकर भूल होगी, इसलिए यदि हम एक बार प्रणाम करते हैं इस त्रिमूर्तिको (महात्मा, दीनबन्धु और कवीन्द्रको), तो हमारा सहस्र बार प्रणाम है उन Unknown warriors (अज्ञात सिपाहियों) को, जो विशाल भारतके संग्राममें हताहत हुए। दरअसल वे ही विशाल भारतके निर्माता हैं।

शास्त्रीजीके साथ अफ्रिकामें

[लेखक :—श्री पी० कोदण्डराव, एम० ए०, मेम्बर भारत-सेवक-समिति]

"We leave Capetown pleased with our labours and if Indian in South Africa will play the game, the future is full of hope."

अर्थात् "हम लोग दक्षिण-अफ्रिकामें किये हुए अपने परिश्रमसे प्रसन्न होकर लौट रहे हैं, और अगर दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीय अपने कर्तव्यका पालन करेंगे, तो उनका भविष्य आशापूर्ण समझना चाहिए।"

राइट आनरेबुल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीने ये शब्द केप-टाउनमें कहे थे। गोलमेज-कान्फ्रेन्स हो चुकी थी और भारतीय प्रतिनिधि स्वदेशको वापस लौटनेवाले थे। उनकी विदाईकी मीटिंग थी। गोलमेज-कान्फ्रेंसकी सारी बातें गुप्त रखी गई थीं। सर मुहम्मद हबीबुल्लाने अपने भाषणमें केवल धन्यवाद ही दिये थे और गोलमेज-कान्फ्रेंसका ज़िक्र भी नहीं किया था। मीटिंग करीब-करीब खतम हो चुकी थी और शास्त्रीजी मि० कैम्बेल (यूनियन गवर्मेन्टके रक्षा-विभाग) के मंत्रीके साथ दरवाजेके बाहर ही निकलनेवाले थे कि निराश भारतीय जनताकी ओरसे बार-बार कहा गया, "शास्त्रीजी कुछ बोलें, हम लोग शास्त्रीजीका भाषण सुननेके लिए चिन्तित हैं।"

शास्त्रीजी मुड़े, और झट ही उन्होंने बिना विचार किये उपर्युक्त शब्द कहे। ये शब्द सुनकर भारतीय जनताको अत्यन्त आनन्द हुआ, और उन्होंने खूब हर्षध्वनि की। थोड़ी देर बाद ही रूटरने भारत, इंग्लैण्ड और दक्षिण-अफ्रिकामें तार खटका दिये, और इन स्थानोंमें गोलमेज-कान्फ्रेन्सके परिणामके विषयमें जो चिन्ता-जनक स्थिति थी, वह एकदम दूर हो गई। चारों ओरसे बधाईके तार आने लगे। दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीयोंको वैसी ही खुशी हुई, जैसी उस आदमीको होती होगी, जिसे पहले फाँसीका हुक्म हो चुका हो और जो फिर मुक्त कर दिया जावे। गोलमेज-कान्फ्रेन्सके सदस्य इस बातके लिए वचनबद्ध थे कि वे एक भी शब्द गोलमेज-कान्फ्रेन्सके परिणामके विषयमें न कहें। शास्त्रीजीने यह प्रतिज्ञा तोड़ दी! कुछ लोगोंको यह आशंका थी कि शास्त्रीजीके इस बेसमझीके कार्यसे यूनियन-सरकारकी पोजीशन खराब हो जायगी और खुद समझौता ही खतरेमें पड़ जायगा, पर यह आशंका निराधार सिद्ध हुई। बजाय इसके शास्त्रीजीका यह भाषण समयोचित और न्याययुक्त समझा गया। लोग कहने लगे कि ऐसे भाषणकी ज़रूरत थी, पर जो शब्द शास्त्रीजीने कहे थे, वे ऐसे नपे-तुले थे कि उनमें घटा-बढ़ी नहीं की जा सकती थी। एक प्रत्युत्पन्नमति राजनीतिज्ञको ही ये शब्द समयपर तुरन्त सूझ सकते थे। शास्त्रीजी यूनियनकी भारतीय और यूरोपियन जनताके प्रेम-पात्र बन गये।

भारतमें इस समझौतेका क्या प्रभाव पड़ेगा, भारतीय जनता इसके विषयमें क्या राय देगी, यह महात्मा गान्धीकी सम्मतिपर निर्भर था, इसलिए शास्त्रीजीको हिन्दुस्तान लौटनेपर गान्धीजीसे मिलनेके लिए मध्य-प्रदेशकी यात्रा करनी पड़ी। शास्त्रीजीने सारी स्थिति महात्माजीको समझाई। महात्माजीने समझौतेको पसन्द किया और उसके पक्षमें सम्मति दी। २१ फरवरी सन् १९२७ को समझौतेके साथ-ही-साथ महात्माजीकी भी सम्मति प्रकाशित हुई।

समझौतेके विषयमें यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि समाचारपत्रोंके पाठक उससे परिचित ही होंगे।

शास्त्रीजीका दक्षिण-अफ्रिका-प्रवास

भारत-सेवक-समितिके सदस्य—सदस्य ही नहीं, सभापति—के लिए गोलमेज-कान्फ्रेन्सका मेम्बर बनना एक बात थी, और सरकारी नौकर बनना दूसरी बात।

शास्त्रीजीका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। दक्षिण-अफ्रिकामें एजेण्टका कर्त्तव्य भी कोई सरल काम नहीं था। स्वस्थसे स्वस्थ आदमीके लिए वह कठिन सिद्ध होता, पर गान्धीजीने इस बातपर काफ़ी ज़ोर दिया कि दक्षिण-अफ्रिकामें भारतके प्रथम एजेण्ट शास्त्रीजीको होने चाहिए। भारत तथा दक्षिण-अफ्रिकाके पत्रोंने गान्धीजीके इस कथनका समर्थन किया, और शास्त्रीजीको इन सबकी सम्मिलित इच्छाके सम्मुख सिर नवाना पड़ा।

जब शास्त्रीजी दक्षिण-अफ्रिकामें पहुँचे, तो उस समय भारतीयोंके लिए वहाँकी परिस्थिति उत्साहप्रद नहीं थी। यद्यपि समझौता यूनियन-सरकारके पार्लामेन्टमें पास हो चुका था, और उस समझौतेमें भारतीयोंको भारत लौटनेके लिए जो बातें रखी गई थीं, उनके अनुसार यूनियन-सरकारने तुरन्त ही क़ानून भी बना दिया था; पर समझौतेमें भारतीयोंके 'उद्धार'का जो अंश था, उसके लिए कुछ भी कार्रवाई नहीं की गई थी। दक्षिण-अफ्रिकामें जितने भारतीय रहते हैं, उनमें चार हिस्से नेटालमें रहते हैं और पाँचवां हिस्सा अन्य प्रान्तोंमें मिलाकर। इसलिए भारतीयोंके 'उद्धार'का बोझ नेटाल-सरकारपर ही आकर पड़ता। इसके लिए नेटालकी प्रान्तीय सरकार और दरबनकी कारपोरेशनकी सहानुभूति तथा सहायताकी आवश्यकता थी। इस सहानुभूति और सहायताका उस समय अभाव था। नेटालकी प्रान्तीय कौन्सिलने बहुमतसे समझौतेके विरुद्ध प्रस्ताव पास कर दिया था! तीन सदस्य उसके पक्षमें थे और सत्रह विपक्षमें! यूनियन-सरकार चुप थी, और उसने नेटाल-सरकारपर दबाव डालना राजनैतिक दृष्टिसे अनुचित समझ रखा था।

कुछ गोरे लोगोंके हृदयमें शास्त्रीजीकी नियुक्तिके कारण अनेक आशंकाएँ उत्पन्न हो गई थीं। वे सोचते थे कि सिविल सर्विसके किसी मामूली आदमीके बजाय भारत-सरकारने ऐसे महान् पुरुषको एजेण्ट बनाकर क्यों भेजा है? ज़रूर इसमें कोई-न-कोई रहस्य है! और महात्मा गान्धीजीने शास्त्रीजीका समर्थन किया है, यह बात और भी चिन्ता-जनक है! शास्त्री ज़रूर किसी-न-किसी भीतरी उद्देश्यसे यहाँ आया है, और वह उद्देश्य अभी गुप्त रखा गया है!

दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीय उस समय आपसमें लड़ रहे थे। उनमें दो दल हो गये थे। ट्रान्सवालकी ब्रिटिश इंडियन ऐसोसियेशनने समझौतेको अस्वीकृत कर दिया था। मि० ऐण्ड्रूज़ने दोनों दलोंके मिलानेकी बहुत कोशिश की, पर वे सफल न हुए।

अब शास्त्रीजीका हाल सुनिये। एशियाटिक विभागके कमिश्नरके बहुत ज़ोर मारनेपर प्रिटोरियाके ग्राण्ड होटलने शास्त्रीजीको स्थान दिया था पर कमिश्नर साहबके बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी जोहान्सबर्ग, दरबन या पीटरमैरिट्सबर्गका कोई होटल शास्त्रीजीको ठहरानेके लिए राज़ी न था!

नेटालको अपने पक्षमें लाना

पहले शास्त्रीजीने यूनियन-सरकारकी राजधानी प्रिटोरियामें सारी स्थितिकी जाँच-पड़ताल की और जुलाई १९२७ के मध्यमें नेटालमें प्रवेश किया। भारतीय कांग्रेसने उनके स्वागतके लिए टाउन-हालमें प्रबन्ध किया था और उसके लिये खूब तय्यारियां की थीं। इस मीटिंगमें बहुतसे यूरोपियन लोग भी आये थे। इस सभामें शास्त्रीजीने अपनी नीतिके विषयमें जो भाषण दिया, वह वास्तवमें बड़ा महत्वपूर्ण था। उन्होंने इस मीटिंगमें यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी कि मेरी निजी सम्मति चाहे कुछ भी हो, पर जहाँ तक केप-टाउनके समझौतेका सम्बन्ध है, वहाँ तक मैं उसके भीतर ही रहूँगा और कभी भी ऐसी चीज़की माँग पेश न करूँगा, जो समझौतेके बाहर की हो। जो अंग्रेज़ लोग उस मीटिंगमें उपस्थित थे, उनसे और नेटालके गोरोंसे भी शास्त्रीजीने बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें अपील की कि आप लोग ब्रिटेनके झंडे यूनियन जैककी इज्ज़तका खयाल कीजिये। यूनियन जैक न्याय, दलित जातियोंके लिए स्वाधीनता और उदारताका चिन्ह है, और यदि एक ओर आप इसके गौरव और शक्तिका अभिमान करते हैं, तो दूसरी ओर इसके कारण आपपर कुछ जिम्मेवारी भी आकर पड़ती है। हिन्दुस्तानियोंको

उपदेश देते हुए शास्त्रीजीने यही बात कही कि आप लोग इस समझौतेका पूरा-पूरा लाभ उठाइये और शिक्षाके लिए जो प्रबन्ध किया जावे, उसका पूर्ण उपयोग कीजिये। शास्त्रीजीके इस व्याख्यानने बिजली जैसा असर पैदा किया! नेटालके गोरे लोगोंने यह बात समझ ली कि शास्त्रीजीने जो कुछ कहा है ईमानदारीसे कहा है, और वे शास्त्रीजीपर विश्वास करने लगे।

कुछ दिनों बाद शास्त्रीजी नेटालके शासक सर जार्ज ग्लेडमैनसे मिले और फिर उनकी सहायतासे कार्यकारिणी समिति तथा कौन्सिलके सदस्योंके सम्मुख केप-टाउनके समझौतेपर बातचीत करनेका अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् शास्त्रीजीने नेटालके खास-खास नगरोंकी, जहाँ भारतीय बसे हुए हैं यात्रा की और हिन्दुस्तानियों तथा यूरोपियनोंकी मीटिंगमें बहुतसे भाषण दिये। अनेक यूरोपियनोंने अभी तक भारतीय हितोंकी विरोधी बातें ही सुनी थी। उन्हें शास्त्रीजीके व्याख्यानोंसे पहले ही पहल यह बात ज्ञात हुई कि भारतीयोंके पक्षमें भी अनेक न्यायसंगत बातें कही जा सकती हैं। ये गोरे लोग यह समझे हुए थे कि केप-टाउनका समझौता बिलकुल इकतर्फा है और यूनियन-सरकारने दबकर इसे मंजूर कर लिया है। दो महीने तक शास्त्रीजी इसी प्रकार यात्रा करते रहे और भाषण देते रहे। उनका यह प्रयत्न निष्फल नहीं गया। २२ सितम्बरको शास्त्रीजीका जन्म-दिवस था और उसी दिन नेटालकी सरकारने अपना यह निश्चय प्रकाशित किया कि समझौतेके अनुसार भारतीयोंकी शिक्षाकी जाँच करनेके लिये सरकार एक जाँच-कमीशन नियुक्त करेगी। भला जन्म-दिवसके अवसरपर शास्त्रीजीको इससे बढ़िया क्या भेंट दी जा सकती थी? अपने एक भाषणमें शास्त्रीजीने यह आशा प्रकट की थी कि नेटाल यद्यपि अभी समझौतेका विरोधी है, उसे असह्य समझता है, थोड़े दिन बाद वह उसे सह्य समझेगा और फिर अन्तमें उसका समर्थक बन जायगा! शास्त्रीजीकी यह आशा फलवती हुई।

नेटालके गोरे शासकोंको समझौतेके पक्षमें लानेका कार्य शास्त्रीजीको करना पड़ा, वैसे यह कर्तव्य तो यूनियन-सरकारका था। जब यूनियन सरकार इस समझौतेको स्वीकार कर चुकी थी तो फिर उसका फर्ज था कि वह अपनी एक प्रान्तीय सरकारको उसका समर्थन करनेके लिये तय्यार करती। पर मामला बड़ा पेचीदा था। गोरे लोगोंके हृदयमें भारतीयोंके विरोधी भाव इतनी गहराई तक घर कर गये थे और वर्तमान सरकारने समझौतेमें जो अपनी नीति निर्धारित की थी, वह इन गोरोंके विचारोंके इतनी प्रतिकूल थी कि किसी भी जिम्मेदार मंत्रीकी यह हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह भारतीयोंके 'उद्धार'का समर्थन जनताके सम्मुख करे! इसलिए जो काम यूनियन-सरकारको करना चाहिए था, उसे शास्त्रीजीने किया!

ट्रान्सवालमें

ट्रान्सवालके गोरोंको समझौतेके पक्षमें लाना और भी कठिन था। नेटालमें जो बहुसंख्यक अंग्रेज लोग रहते हैं, उनके सामने ब्रिटिश साम्राज्यके गौरवका बखान करनेसे उनके हृदयपर कुछ प्रभाव पड़ भी सकता है, पर ट्रान्सवालमें डच लोगोंकी प्रधानता है। यदि उन्होंने केपटाउनके समझौतेका घोर विरोध नहीं किया और उसे सहन कर लिया है, तो उसका कारण यही है कि यह समझौता उन्हींके जातीय नेताओंने किया था। यद्यपि अभी तक ट्रान्सवालके गोरे समझौतेपर सीधा आक्रमण नहीं कर सके, पर हिन्दुस्तानियोंसे छेड़-छाड़ उन्होंने जारी रखी है। वहाँके गोरे लोगोंके विरोधको भयंकर रूप धारण करनेसे रोकनेके कई लिए बार शास्त्रीजीको ट्रान्सवालकी यात्रा करनी पड़ी थी और यह यात्रा अनेक अंशोंमें सफल भी हुई।

समझौता और राजनैतिक दलबन्दी

यद्यपि शास्त्रीजीने केपटाउनके समझौतेकी अच्छी तरह व्याख्या करके उसके विषयमें जो भ्रमात्मक धारणायें थीं, उन्हें बहुत अंशोंमें दूर कर दिया था, फिर भी समझौता खतरेसे बरी नहीं था। समझौतेका प्रश्न दलबन्दीके दल दलमें

घसीटा जा सकता था। दक्षिण-अफ्रिकामें दो मुख्य पार्टी हैं, एक तो जनरल स्मट्सकी, दूसरे जनरल हर्टज़ोग की।



माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री

केपटाउनका समझौता जनरल हर्टज़ोगकी पार्टीने, जिसके हाथमें शासन-सूत्र था और अब भी है, किया था। यद्यपि उस समय, जब कि समझौता यूनियनकी पार्लमेन्टमें पास हुआ था, जनरल स्मट्स बिल्कुल चुपचाप बैठे हुए थे, पर उनकी साउथ-अफ्रिकन पार्टीने समझौतेपर स्वीकृतिकी मुहर नहीं लगाई थी, बल्कि उसके कितने ही सदस्य समझौतेके घोर विरोधी थे। एक बात और भी थी। जनरल हर्टज़ोगकी पार्टीने समझौता करके भारतीयोंके सम्बन्धमें अपनी पुरानी नीतिको बिल्कुल पलट दिया था और चुनावके अवसरपर इस विषयमें जो प्रतिज्ञाएँ की थीं उनको भी तोड़ दिया था; इसलिए जनरल हर्टज़ोगकी पार्टीके विरोधियोंके सामने यह ज़बरदस्त प्रलोभन था कि वे इस मामलेको जनताके सम्मुख लाकर समझौतेकी छीछालेदर करते और इस प्रकार उससे राजनैतिक फ़ायदा उठाते। अगर ऐसा होता तो फिर समझौता खटाईमें पड़ जाता! यही नहीं, भारतीयोंके विरुद्ध जो आन्दोलन जैसे-तैसे शान्त हुआ था वह फिर उठ खड़ा होता! मि० शास्त्रीने इस आपत्तिको दूर करनेके लिये एक तरकीब सोची, वह यह कि किसी तरह दोनों दलोंके खास-खास सदस्योंके द्वारा इस समझौतेका समर्थन कराना चाहिये। समझौतेको लगभग एक वर्ष हो चुका था। उन्होंने समझौतेकी वर्षगाँठके उत्सवपर मंत्रिमंडलके सदस्योंको तथा विरोधी दलके मेम्बरोंको निमंत्रित किया। जनरल स्मट्स तो उसमें नहीं पधारे, पर उनके मुख्य सहयोगी मि० पैट्रिक डनकन आये। जनरल हर्टज़ोगने और मि० पैट्रिक डनकनने समझौतेका ज़ोरोंसे समर्थन किया। दक्षिण अफ्रिकाके अंग्रेज़ी पत्रोंने इस समर्थनके स्वरमें स्वर मिलाया। चारों ओर समाचारपत्रोंमें समझौतेकी प्रशंसा ही प्रशंसा दीखने लगी। वास्तवमें वह दृश्य बड़ा ही उत्साहप्रद था।

समझौतेकी वर्ष-गाँठके उत्सवपर जनरल स्मट्सकी अनुपस्थिति वास्तवमें इस बातकी सूचक थी कि समझौता अभी खतरेसे निकल नहीं पाया था। अक्टूबर सन् १९२८ में जनरल स्मटसने अपने एक भाषणमें इस समझौतेपर आक्रमण किया, और कहा कि नेशनलिस्ट सरकार मि० शास्त्रीकी कूट-नीतिकी शिकार बन गई! दूसरे ही दिन 'केप-टाइम्स' नामक पत्रने, जो जनरल स्मट्सकी पार्टीका समर्थक है, जनरल साहबकी इस स्पीचका घोर विरोध किया और कहा कि यदि नेशनलिस्ट सरकारने कोई अच्छा काम किया है, तो वह समझौता ही है। इस प्रकार कितने ही अवसरोंपर अंग्रेज़ी पत्रों तथा पार्लमेण्टके मेम्बरों और नेताओंने समझौतेका समर्थन किया। जब शास्त्रीजी भारतको लौटने लगे, तो उस समय नेटालकी साउथ अफ्रिकन पार्टीके प्रधान सर चार्ल्स स्मिथने अपने भाषणमें कहा कि साउथ अफ्रिकाकी कोई भी राजनैतिक पार्टी केप-टाउनके

समझौतेको रद्द नहीं कर सकती—रद्द करनेकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

हृदयका परिवर्तन

दक्षिण-अफ्रिकाके यूरोपियन लोगोंने अपने मनमें हिन्दुस्तानियोंके विषयमें बड़ी खराब धारणा कर ली थी। भारतीय कुलियों तथा छोटे-मोटे व्यापारियों तक ही उसका ज्ञान परिमित था और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृतिके विषयमें वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। शास्त्रीजीने स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों और गिर्जाघरोंमें भारतीय संस्कृतिके विषयमें व्याख्यान दिये। भारतीय दर्शनशास्त्र तथा साहित्य इत्यादिपर उनके धाराप्रवाह भाषण सुनकर यूरोपियनोंके विचारोंमें बहुत-कुछ परिवर्तन हो गया। जो कुछ शास्त्रीजी कहते थे, वह बहुत सावधानीसे जँचे-तुले शब्दोंमें और अत्यन्त शिष्ट भाषामें कहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण-अफ्रिकाके सुशिक्षित समुदायपर उनकी विद्वत्ताकी धाक बैठ गई। स्वयं उनके व्यक्तित्वने उनपर और भी गहरा प्रभाव डाला। जो दरवाज़े उनके लिये बन्द थे, वे खुल गये और जो लोग उन्हें देखकर अपने घरका द्वार बन्द कर लेते थे, वे ही अपने घरोंमें उनका प्रवेश करानेके लिये उत्सुक थे! जोहान्सबर्गके बिशप साहबने शास्त्रीजीको अपना अतिथि बनाया और दक्षिण-अफ्रिकाके सर्वोत्तम होटल शास्त्रीजीके आतिथ्यके लिये अब आपसमें स्पर्धा करने लगे!

जब यह खबर लगी कि शास्त्रीजी एक वर्षसे अधिक दक्षिण-अफ्रिकामें नहीं ठहरेंगे, तो यूरोपियन पत्रोंने स्वरमें स्वर मिलाकर यही प्रार्थना की कि शास्त्रीजी भारतको लौटनेका विचार अभी स्थगित कर दें। जब ट्रान्सवालके नगर क्लार्क्स डार्पके डिप्टी मेयरने शास्त्रीजीकी मीटिंग भंग करनेका प्रयत्न किया, तो उस समय स्वयं यूरोपियन पत्रोंने डिप्टी मेयरके इस कार्यकी घोर निन्दा की और शास्त्रीजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। केपटाउनकी जनताने चन्दा करके शास्त्रीजीकी एक मूर्ति स्थापित करनेका निश्चय किया और एक यूरोपियन शिल्पीको यह कार्य सौंपा गया।

यह थी शास्त्रीजीके व्यक्तित्वकी विजय। नेटालके लार्ड बिशपने अपने एक भाषणमें कहा था—"हम अंग्रेज़ लोग अब उस जातिसे घृणा नहीं करते, जिस जातिने शास्त्रीजी जैसे व्यक्तिको उत्पन्न किया है, जिनसे मिलनेका सौभाग्य हमें आज प्राप्त हुआ।"* "फिर उन्होंने कहा—'हम लोगोंका कर्तव्य है कि हम शास्त्रीका पक्ष ग्रहण करें और जो कुछ भी मदद उनकी कर सकते हैं करें तथा जो कुछ भी उत्साह उन्हें दे सकते हैं, दें।"

जब दक्षिण-अफ्रिकन इण्डियन कांग्रेसका जल्सा किम्बरले और दरबनमें हुआ तो यूरोपियन प्रेसके प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित हुए और कांग्रेसका विवरण विस्तारपूर्वक पत्रोंमें छापा गया। सरकारके कितने ही विभागोंके अफ़सरोंको भी निमंत्रण दिया गया था और उन्होंने भी अपने-अपने प्रतिनिधि कांग्रेसमें भेजे थे। आवश्यकता पड़नेपर उन लोगोंने सवालोंके जवाब दिये और अपने विभागके लिए आवश्यक नोट लिये। यूरोपियनोंने जो मीटिंग शास्त्रीके स्वागतार्थ बुलाई थीं, उनमें भारतीयोंको भी आनेकी इजाज़त दी गई। यह बात पहले कभी नहीं होती थी। जब जोहान्सबर्गकी इंडो यूरोपियन कौन्सिलने शास्त्रीजीको भोज दिया तो बीससे अधिक भारतीय कार्लटन होटलमें इस भोजमें सम्मिलित हुए। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि इस होटलने पहले माननीय शास्त्रीजी तकको अपने यहाँ ठहरानेसे इनकार कर दिया था! शास्त्रीजीके अनुरोध करनेपर दरबनकी ओरियन्ट क्लब अपने साप्ताहिक भोजोंमें यूरोपियन

* "We English people, cannot—can we? afford to despise any longer a people out of whom has came one whom many of us have had the privilege of meetiny, the present Agent in South Africa of the Indian Government."

लोगोंको बराबर बुलाया करती थी और वे लोग बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक उनमें सम्मिलित हुआ करते थे। केपटाउन तथा नेटालके यूरोपियन होटलोंमें शास्त्रीजी भारतीयोंको प्राय: भोज दिया करते थे। अब दक्षिण-अफ्रिकाके गोरे 'कुली' और 'भारतीय' इन दोनोंके समानार्थवाची नहीं समझते। गोरे समचारपत्रोंको अब भारतीयोंपर चलते-फिरते कटाक्ष करनेमें मज़ा नहीं आता। विचारशील आदमियोंके एक बड़े समुदायके हृदयोंमें भारतीयोंके प्रति जो भाव थे उनमें परिवर्तन हो गया है। इस बातको सभी लोग प्रसन्नतासे बड़े ध्यानपूर्वक स्वीकार करते थे।

शास्त्रीजीने दक्षिण-अफ्रिकामें जो कार्य किया, उसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यही हृदय-परिवर्तनका है। यह भाव स्थायी रूप धारण करेगा अथवा नहीं, यह बात दक्षिण-अफ्रिका तथा भारतके सांस्कृतिक संसर्ग जारी रखनेपर निर्भर है और इस बातपर निर्भर है कि यूरोपियनोंको उच्च भारतीय संस्कृतिवालोंके सत्संगके अवसर प्राप्त हों। भारतको लौटनेके बाद शास्त्रीजीने कितने ही उच्चकोटिके विद्वानों तथा विदुषियोंसे प्रार्थना की है कि वे दक्षिण-अफ्रिकाकी यात्रा करें जहाँ कि उनके स्वागत होनेकी पूर्ण आशा है।

शास्त्रीजीने दक्षिण-अफ्रिकामें क्या-क्या कार्य किये, इसका विवरण दूसरे लेखमें दिया जायगा।

प्रवासियोंके सम्बन्धमें मेरे संस्मरण

[लेखक :—दीवान बहादुर पी० केशव पिल्ले, सी० आई० ई०, एम० एल० सी०]

सन् १८७६-७७ के भीषण अकालमें—जब मैं केवल सोलह वर्षका बालक था—मुझे पहले-पहल यह मालूम हुआ कि हमारे देशवासी अन्य देशोंमें बसनेके लिए जाते या ले जाये जाते हैं। उसी समय मैंने आरकाटियों और एजेन्टोंको देखा, जो हृष्ट-पुष्ट मज़बूत मर्द-औरतोंको भरती करके नेटाल और मारीशस भेजते थे। मुझे भी उन्होंने ५०) रुपया मासिककी क्लर्कीका लालच दिया था, परन्तु मैं अपनी वृद्धा माताके विचारसे उनके जालमें न फँस सका। तभीसे मैं प्रवासियोंकी बातोंमें दिलचस्पी रखता हूँ। मैं अक्सर सुनता था कि भोलेभाले नवयुवक पुरुष-स्त्रियोंको आरकाटी लोगोंने किस तरह बहकाकर लंका, मलाया, नेटाल और मारीशस आदिको चालान कर दिया है।

भारतीय नेशनल कांग्रेसके सम्मुख प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न सबसे पहले मद्रास कांग्रेसमें उठा था। उस समय मि० एल्फ्रेड वेब—कांग्रेसके सभापति—ने गूटी-पीपुल्स-ऐसोसिएशनके, जिसका मैं मंत्री था, कहनेपर, नेटालमें भारतीयोंके म्यूनिसिपल अधिकार छिन जानेपर प्रतिवाद किया था। तबसे प्रवासियोंके प्रश्नपर बराबर लोगोंका ध्यान बढ़ता गया, और गान्धीजीके दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्रामके समयसे तो वह बड़ा महत्त्वपूर्ण हो गया है। जबसे मैं मद्रास-कौन्सिलमें गया, तबसे मैं अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार बराबर प्रवासी भाइयोंकी सेवा करता रहा।

औपनिवेशिक सरकारोंने कुलियोंको बहकाकर इकट्ठा रखनेके लिए जो डिपो खोल रखे थे, उनमें भारतीय पुलिस तकको बिना इजाज़त जानेकी मुमानियत थी। मैंने इसे दूर करनेकी कौन्सिलमें बड़ी कोशिश की, परन्तु वह बेकार हुई।

भारतके गोरे प्लैन्टरोंके फ़ायदेके लिए जो क़ानून बना था, उसमें काम छोड़कर चले जानेवाले मज़दूरोंके लिए सज़ाका विधान था। मैंने उसके विरुद्ध भी बहुत आन्दोलन किया।

इसी बीचमें मैं लंकाकी भारतीय कान्फ्रेन्सका सभापति

बनकर लंका गया। वहाँ मुझे भारतीय मज़दूरोंकी दुर्दशा प्रत्यक्ष देखनेका अवसर मिला। वहाँ उनकी हालत देखकर



दीवान बहादुर पी० केशव पिल्ले

मुझे बड़ा दु:ख हुआ। मैंने मद्रास-कौन्सिलमें उनके सम्बन्धमें बीसियों प्रश्न किये। देशमें भी इस विषयपर ज़ोरदार आन्दोलन हुआ, जिसका फल यह हुआ कि अब लंका, मलाया आदिमें सरकारने एजेन्ट और प्रवासियोंके रक्षक (Protectors of Emigrants) नियत कर दिये हैं। फिर गान्धीजी तथा स्वर्गीय गोखले और मि० ऐण्डरूजके ज़ोरदार आन्दोलनसे शर्तबन्दी कुली-प्रथा उठा दी गई।

कुली-प्रथाकी बन्दीसे ब्रिटिश-गायना और फिजीके प्लेन्टरोंका बहुत नुकसान हुआ। प्रवासियोंको बुलानेके लिए वहाँसे डेपूटेशन आये और उन्होंने प्रवासियोंके लिए बड़ी अच्छी शर्तें पेश कीं। इसपर भारत-सरकारने ब्रिटिश-गायना और फिजीको डेपूटेशन भेजनेका विचार किया। ब्रिटिश-गायनाके डेपूटेशनमें जानेके लिए मद्रास-सरकारके ला-मेम्बरने मुझसे कहा। मैं जानेके लिए राज़ी हो गया। उस समय तक मेरे लिए ब्रिटिश-गायना, जमैका, ट्रिनीडाड आदि केवल भौगोलिक नाम थे। मुझे केवल यह ज्ञान था कि इन स्थानोंमें भारतीय कुली बनाकर भेजे गये थे। मैं ६१ वर्षका वृद्ध पुरुष था, इसलिए मैं अपने साथ अपने पुत्र श्री गोविन्दराजको भी ले गया था। मैं ही इस डेपूटेशनका सभापति नियुक्त हुआ था।

डेपूटेशन यहाँसे रवाना होकर फ्रान्स होता हुआ इंग्लैंड पहुँचा। जाड़ेके दिन थे। इंग्लैंडमें बड़ी सर्दी पड़ती थी। वहाँ पहुँचकर मैं बीमार पड़ गया और तीन सप्ताह तक बीमार रहा। अच्छा होनेपर मैंने तत्कालीन भारत मंत्री मि० मांटेग्यूसे भेंट की। उन्होंने कहा कि डेपूटेशनको निष्पक्ष होकर अपनी खरी-खरी राय देनी चाहिए। यहाँ मुझे श्रीयुत पोलकसे भी बड़ी सहायता मिली।

इंग्लैण्डमें डेपूटेशनके अन्य सदस्य श्री वेंकटेशनारायण तिवारी और मि० जी० एफ० कीटिंग मिले। उन्होंने मेरी कमज़ोर दशा देखकर भारत लौट जानेकी सलाह दी, लेकिन मैं राज़ी नहीं हुआ और १६ जनवरी सन् १९२२ को हम सब ब्रिटिश-गायनाके लिए रवाना हुए।

तूफ़ानी समुद्र होनेके कारण जहाज़पर हम सबको बड़ा कष्ट हुआ। अन्तमें ६ फरवरीको बारबेडोज़ द्वीप पहुँचनेपर कुछ जान-में-जान आई। एक दिन यहाँ रहकर हम लोग आठवीं फरवरीको ग्रेनाडा पहुँचे। वहाँसे रात-भर समुद्र-यात्रा करके ट्रिनीडाडके बन्दरगाहमें पहुँच गये। वहाँ रेवरेण्ड सी० डी० लाला, एम० एल० सी० ने हम लोगोंका स्वागत किया। हम लोग जहाज़पर बड़े-बड़े तंग आ गये थे, परन्तु रेवरेण्ड सी० डी० लालाके मकानपर उनकी धर्म-पत्नी, लड़कियों और पिताने हमारा जो स्वागत किया, उससे हमें बड़ी शक्ति मिली। लाला महाशयके पिता उस समय १०४ वर्षके थे। वे श्रीकृष्ण और भागवत पुराणपर हिन्दीमें खूब बातें किया करते थे। यहाँ हम लोगोंको हफ़्तोंके बाद श्रीमती लालाने बड़े प्रेमसे भारतीय भोजन कराया। यहाँसे दूसरे दिन हम लोग फिर चले, और १२ फरवरीको ब्रिटिश-गायनाकी राजधानी जार्जटाउनमें पहुँच गये। यहाँ हमारे देश-वासियोंने बड़े उत्साह और प्रेमसे हमारा स्वागत किया। एक दिन टाउन-हालमें हम लोगोंका सार्वजनिक स्वागत हुआ, जिसमें यहाँके गवर्नर, उच्च अधिकारी और उपनिवेश-भरके भारतीयोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे।

गायनाके तत्कालीन गवर्नर सर विलफ्रेड कालेट बड़े नम्र सज्जन थे, परन्तु साथ ही वे पक्के बनिये भी थे। हम लोगोंके गायना पहुँचनेके दूसरे ही दिन उन्होंने हम लोगोंको

चाय पीनेका निमन्त्रण दिया। जब हम लोग गवर्मेन्ट-हाउसकी सीढ़ियोंपर पहुँचे, तो उन्होंने स्वयं आकर हमारा स्वागत किया तथा कमरेमें ले जाकर हमें बिठलाया। उस समय उनका कोई शरीर-रक्षक भी उपस्थित नहीं था। उन्होंने स्वयं चाय उँडेलकर हम लोगोंको दी और अपनी नम्रतासे सबको बहुत प्रसन्न किया।

कुछ दिन बाद हम लोग कौन्सिल हालमें एकत्रित हुए और हमारे डेपूटेशनके विषयपर वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ। इस अवसरपर गवर्नर महोदय सभापति थे। उन्होंने प्रवासियोंके विषयकी योजना उपस्थित की। मगर यह योजना उस योजनासे एकदम भिन्न थी, जो आनरेबुल मि० लक्खू और नूननके डेपूटेशनने—जो भारत गया था—पेश की थी। पूछनेपर गवर्नरने कहा कि मि० लक्खूकी योजना गायना-सरकारसे स्वीकृत नहीं थी।

तब हम लोगोंने अपनी जाँच आरम्भ की। हम लोगोंने मज़दूरोंके वास-स्थान देखे, भारतीयोंके प्रतिनिधियोंसे बातचीत की, शकरकी स्टेटोंपर घूमे तथा सरकारी और ग़ैर-सरकारी लोगोंकी गवाहियाँ लीं। इन सब बातोंमें हमें यहाँकी सरकारसे पूरी सहायता मिली।

७ अप्रैलको हम लोग फिर जहाज़पर चले और ट्रिनीडाड आये। यहाँ भी हमारे देशवासियोंने पोर्ट आफ् स्पेनके कौन्सिल-भवनमें हमारा सार्वजनिक स्वागत किया। यहाँके गवर्नर उसके सभापति थे। हम लोगोंको अभिनन्दनपत्र भी दिया गया, जिसका मैंने उत्तर दिया।

अब हम लोगोंने जाँच शुरू की। मि० कीटिंगने द्वीपके एक ओर जाँच आरम्भ की और मैंने तथा श्री तिवारीजीने द्वीपके दूसरी ओर, अपने देश-भाइयों और प्रोटेक्टर आफ इमीग्रांटकी सहायतासे जाँच-पड़ताल शुरू की। यहाँसे हम लोग १७ अप्रिलको रवाना हुए। मि० कीटिंग सीधे लन्दन चले गये और हम लोग न्यूयार्क होकर लन्दन गये।

लन्दनमें हम लोग फिर एकट्ठे हुए और आपसमें वाद-विवाद करके हम लोगोंने अपनी रिपोर्टें तय्यार कीं। मि० कीटिंगके कुछ विचार हम लोगोंके विचारोंसे एकदम भिन्न थे। अत: उन्होंने अपनी रिपोर्ट अलग दी, और मैंने और पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारीने अपनी सम्मिलित रिपोर्ट अलग लिखी। इन दोनों रिपोर्टोंको भारत-सरकारने दो भागोंमें प्रकाशित किया है।

ब्रिटिश-गायनामें कई भारतीय—जैसे मि० जे० ए० लक्खू, डाक्टर व्हारटन, मि० वीर स्वामी, और मि० श्रीराम आदि—बैरिस्टर, डाक्टर और मैजिस्ट्रेट आदिके उच्च पदोंपर हैं। इन लोगोंने अनेकों कठिनाइयोंको अतिक्रम करके समाजमें उच्च स्थान प्राप्त किये हैं। बहुतसे हिन्दू, मुसलमान भी, जो यहाँ प्रवासी बनकर आये थे, आज अपनी मेहनतसे धनी और सम्पत्तिशाली बन गये हैं। यहाँ ६६,००० हिन्दू, १८००० मुसलमान, ११००० भारतीय ईसाई और २४४ पारसी हैं। यहाँ हिन्दुओंके मन्दिर और मुसलमानोंकी मस्जिदें हैं। यहाँ युक्तप्रान्त-वासियों और मदरासियोंमें आपसमें शादी-विवाह हो जाते हैं। यहाँ जात-पाँतका विशेष बन्धन नहीं है और न खानपान हीका कोई विचार है।

ट्रिनीडाडमें हम लोग बड़े आनन्दसे रहे। रेवेरेण्ड लालाजीने हमें घुमाया तथा हमें भारतीय मज़दूरों और किसानोंसे मिलनेकी सुविधा दी। हमने मि० सोभियनके घरकी, जो एक सफल कोकोआ बनानेवाले भारतीय हैं, यात्रा भी की। मि० सिनाननने, जो एक बड़े भारतीय व्यापारी हैं, हम लोगोंको एक गार्डन-पार्टी दी, जिसमें हमें यहाँके शिक्षित भारतीयोंसे मिलनेका अवसर मिला। वहाँके कालेजमें यहाँके मेयरकी अध्यक्षतामें भी एक सभा हुई, जिसमें श्रीयुत तिवारीजीने भारतीय संस्कृतिपर और मैंने अशोक और हरिश्चन्द्र पर व्याख्यान दिये। यहाँसे चलते समयका दृश्य भी बड़ा करुणाजनक था और हमारे मित्र रेवेरेण्ड लालाके तो आँसू झरने लगे थे।

सन् १९२७ में मि० सोभियनका एक पत्र मुझे मिला था, उसमें उन्होंने लिखा था—"कल मैंने आपको पोर्ट आफ स्पेन गैज़ेटकी एक कापी भेजी है। उसमें एक तारसे मालूम होता है कि शायद कुंवर महाराज सिंह दक्षिण अफ्रिकामें भारतके एजेन्ट या कौन्सिल नियत होंगे। आप नेता लोग इस बातकी कोशिश क्यों नहीं करते कि प्रत्येक देशमें जहाँ भारतीय बसे हों एक-एक कौंसिल नियत किया जाय?"

हम लोगोंने हम यही शिफारिश की थी कि प्रत्येक उपनिवेशमें भारत-सरकारका एक प्रतिनिधि रहना चाहिए। भारतसे गये हुए प्रवासियोंकी सन्तानें अधिक साहसी और उदार होती हैं, अत: उनके संसर्ग और सहयोगसे मातृभूमिका भी हित होगा।

दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए भारतीय

स्वतन्त्र जाँचका परिणाम

[लेखक :— स्वामी भवानीदयाल संन्यासी]

दक्षिण-अफ्रिकासे विदा होते समय वहाँकी जनताने मुझे एक काम सौंपा था। वह काम था सरकारी खर्चसे हिन्दुस्तान वापस आनेवाले भाइयोंकी दशाकी जाँच करके उसकी सच्ची और निष्पक्ष रिपोर्ट प्रकाशित करना। मैंने उनकी आज्ञाका पालन किया, हिन्दुस्तानमें हजारों मीलकी यात्रा करके और सैकड़ों ही लौटे हुए प्रवासी भाइयोंसे मिलकर उनकी दशा अपने आँखोंसे देखी। जिस परिणामपर मैं पहुँचा, उसे यहाँ प्रकाशित करता हूँ, पर आरम्भमें ही यह लिख देना मेरा कर्तव्य है कि मेरी यह जाँच पूर्णतया स्वतन्त्र थी और इसकी जिम्मेवारी मुझहीपर है। पूरी और पक्की रिपोर्ट प्रकाशित करनेके प्रथम कच्ची रिपोर्टका सारांश यहाँ दिया जाता है। पक्की रिपोर्टके लिये मुझे उन लोगोंकी सम्मतिकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जिसका इस प्रश्नसे घनिष्ठ सम्बन्ध है और जो इस विषयपर अधिकार-पूर्वक बोल सकते हैं। प्रश्न गम्भीर है, और उसके ठीक तरहसे हल होने अथवा न होनेका परिणाम दक्षिण-अफ्रिकाके केप-टाउनवाले समझौतेपर पड़ेगा, इसलिए जो कुछ इस विषयमें निश्चय किया जाय, वह बहुत सावधानीसे किया जाना चाहिए। इसीलिए पक्की रिपोर्ट प्रकाशित करनेके पहले कुछ प्रस्ताव जनता तथा सरकारके सम्मुख रखना उचित समझा है। परिणाम यह है :—

(१) जो मजदूर दक्षिण-अफ्रिका तथा अन्य दूरस्थ उपनिवेशोंसे लौटकर यहाँ आते हैं, उनके लिए हिन्दुस्तानमें बस जाना अत्यन्त कठिन है। मुझे अपनी इस तीन महीनेकी जाँचमें एक भी आदमी ऐसा न मिला, जो फिर उस उपनिवेशको, जिससे वह लौटा है, जानेको तय्यार न हो जाय, यदि उसे साधन मिल जावें। जो आदमी हिन्दुस्तानमें ही पैदा हुए थे, उनमें शायद दस-पन्द्रह फी-सदी ऐसे आदमी निकल भी आवें, पर उपनिवेशोंमें पैदा हुए (Colonial born) लड़कोंमें दो-चार फी-सदी भी लड़के ऐसे नहीं होंगे, जो हिन्दुस्तानमें रहना पसन्द करते हों।

(२) जो लोग दक्षिण अफ्रिकासे यहाँ लौटकर आ रहे हैं, वे प्रायः अशिक्षित, अर्द्ध-शिक्षित हैं, और वे उस जीवनकी कल्पना भी नहीं कर सकते, जो उन्हें यहाँ आकर व्यतीत करना पड़ेगा। उनमेंसे अधिकांशके लिए तो यह देश विदेश ही है।* इसलिये यह कहना कि वे लोग जान-बूझकर अपनी राज़ीसे स्वदेशको लौट रहे हैं, अर्द्ध-सत्य ही है। जो सहस्रों स्त्री-पुरुष दक्षिण-अफ्रिकासे यहाँ लौटकर आये हैं, उनमेंसे यदि सौ आदमियोंको भी दक्षिण-अफ्रिका वापस जानेके साधन मिल जावे और वे वहाँ अपने अनुभव लौटने वालोंको सुना सकें, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि दस फी-सदी आदमी भी हिन्दुस्तानको न लौटें।

(३) जो लोग यहाँ लौटकर आ रहे हैं, उनमेंसे कितनों ही को मलाया और सीलोनको फिर जाना पड़ता है। स्वयं भारत-सरकार द्वारा नियुक्त स्पेशल आफिसर रायसाहब कुन्हीं रमन नेयरका यह अनुमान है कि तीस फी-सदी आदमी ऐसे होते हैं, जो फिर मलाया और सीलोनको चल देते हैं।

"30 per-cent are at first unwilling to take up any work other than what they were

* "There is no doubt that if these repatriates are to be received they must be specially cared for. India to most of them is like foreign land. (Mahatma Gandhi in the YOUNG INDIA 2nd May 1927).

अर्थात्—यदि इन लौटे हुए आदमियोंका स्वागत करना है, तो फिर उनकी खास तौरपर हिफाजत करनी चाहिए, क्योंकि हिन्दुस्तान उनमेंसे बहुतोंके लिए विदेश ही है। ('यंग इण्डिया'में महात्मा गान्धीका वचन)।

doing. Even if they take up any job they leave it soon as the wages are low. When they have exhausted all their resources they emigrate to Cylon and Malaya."

अर्थात्—"तीस फ़ी-सदी तो पहले कोई ऐसा काम लेनेको राज़ी नहीं होते, जिसे वे उपनिवेशमें न करते रहे हों। अगर कोई काम मिल भी जावे, तो उसे शीघ्र ही छोड़ देते हैं, क्योंकि वेतन कम मिलता है। जब उनके पास कुछ भी नहीं रहता, तो फिर वे मलाया या सीलोनको चल देते हैं।"

मुझे इस बातकी आशंका है कि राव साहब कुन्ही रमन नेयरके अनुमानसे कहीं अधिक दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए आदमी मलाया और सीलोनको जा रहे हैं। जब तक भारत-सरकार इस बातकी जाँच न करावे, तब तक ठीक-ठीक संख्याका पता नहीं लग सकता।*

(४) दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए आदमियोंमें कितने फ़ी-सदी आदमी भारतवर्षके सामाजिक जीवनमें स्थान पा जाते हैं, इसके जाननेके लिये हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं है। रावसाहब कुन्हींरमन नेयर निस्सन्देह बड़े परिश्रमी और सहृदय व्यक्ति हैं, पर उनके लिए भी यह निश्चित रूपसे पता लगाना कि किस गाँवमें कौन कुटुम्ब बस गया है, अत्यन्त कठिन है। वे अकेले इसका पता लगा भी नहीं सकते, इसके लिए जाँच-कमीशनकी आवश्यकता है।

यह तो हुई दक्षिण भारतकी बात। अभी उत्तर-भारतमें लौटे हुए भारतीयोंकी दशाकी ओर ध्यान ही नहीं दिया गया! मैं स्वयं उत्तर-भारतका निवासी हूँ। यहां मैंने सैकड़ों ही आदमियोंसे बातचीत की है, पर मज़दूरोंमें ऐसे आदमी मुझे दस फ़ी-सदी भी नहीं मिले जो उपनिवेशोंसे लौटनेके बाद यहाँके सामाजिक जीवनमें प्रवेश कर सके हों। गुजराती व्यापारियोंकी बात मैं नहीं कहता, क्योंकि उन्होंने तो अपना सम्बन्ध भारतसे बनाये रखा था। इन सब बातोंपर ख़याल करते हुए मेरी समझमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत-सरकार एक जाँच-कमीशन नियुक्त करे, जिसमें सरकारी और गैरसरकारी सदस्य हों। यह कमीशन इस बातकी जाँच करे कि दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए कितने फ़ी-सदी आदमी उत्तर तथा दक्षिण भारतमें शान्तिपूर्वक बस जाते हैं। नई आयोजनाको काममें लाते हुए दो वर्षसे अधिक हो गये, इसलिए यह जाँच अब भली प्रकार हो भी सकती है।

(६) जब तक यह जाँच न हो जावे, तब तक एक भी आदमीको दक्षिण-अफ्रिकासे नई आयोजनाके अनुसार लौटाना अनुचित होगा, इसलिए तब तकके लिए आयोजनाका प्रयोग स्थगित कर दिया जावे।

हज़ारों मीलकी यात्रा करके और सैकड़ों ही आदमियोंसे मिलकर मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि बीस पौण्डके प्रलोभनमें आकर कितने ही दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी भाई हिन्दुस्तानको लौट आते हैं, और इस तरह वे अपने जीवनको तो ख़राब करते ही हैं, पर साथ ही अपने बच्चोंके जीवनको भी सदाके लिए बरबाद कर देते हैं। अपने इस कथनकी पुष्टिके लिये मैंने प्रमाण और बयान इकट्ठे किये हैं। मैं उन्हें किसी भी जाँच-कमीशनके सम्मुख उपस्थित कर सकता हूँ।

(७) दक्षिण-अफ्रिकाके सैकड़ों ही आदमी, जिन्होंने मेरे भारतको रवाना होते समय मुझे जाँचका काम सौंपा था, बड़े अधैर्यके साथ मेरी रिपोर्टकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पर मैं यह उचित समझता हूँ कि भारत-सरकारको दो महीनेका अवसर दिया जावे कि वह एक जांच-कमीशन नियुक्त करे। इसीलिये मैं अपनी रिपोर्टकी, जो लिखी हुई क़रीब क़रीब तय्यार है, छपाई अप्रैलके आरम्भ तक नहीं करूँगा।

मुझे विश्वास है कि इस बीचमें भारत-सरकार इस प्रश्नकी गम्भीरताका अनुभव करके जांच कमीशन नियुक्त कर देगी।

अपने दक्षिण-अफ्रिका प्रवासी भाइयोंसे मैं यही प्रार्थना करूँगा कि वे दो-तीन महीनेके लिए और धैर्य धारण करें। यदि दो महीनेमें भारत-सरकारने कोई कार्रवाई न की, तो मैं अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दूँगा, और तब आप लोगोंसे मेरी प्रार्थना होगी कि आप लोग उस रिपोर्टके बतलाये हुए उपायोंको काममें लावें।

* यदि दक्षिण-अफ्रिकासे लौटकर मलाया और सिलोनको ही जाना पड़े, जहां दक्षिण-अफ्रिकाकी बनिस्बत कहीं कम वेतन मिलता है, तो फिर वहांसे आनेकी क्या आवश्यकता है?

डच गायनाके भारतीय

[लेखक :—श्री मेहता जैमिनि]

जब मैं ब्रिटिश-गायनामें था, तब डच-गायनाकी राजधानी सुरीनामके भारतीयोंने मुझे वहाँकी दशा देखनेके लिए बुलाया था। ये भारतीय इस सुदूर निर्जन देशमें अपनी मातृभूमिसे विस्मृत हो कर रहते हैं। उनके निमन्त्रणपर मैं वहाँ १४ जून सन् १९२८ को पहुँचा और इस उपनिवेशमें दो मास तक रहा। मैंने अपने इस प्रवास-कालमें तेईस ग्रामोंकी यात्रा की, और भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर—जैसे वैदिक संस्कृति, भारतीय दर्शन, भारतीय सभ्यता, एकता, शिक्षा, प्रेम, शराबकी बुराइयाँ, सच्चा धर्म आदि—सैंतालीस व्याख्यान दिये। प्रत्येक स्थानमें सफलता-पूर्वक सभाएँ हुईं और लोगोंने प्रेम-पूर्वक मेरा स्वागत किया। यहाँके सरकारी स्कूलोंके हेड मास्टरोंने और बहुतसे कोठियोंके मालिकोंने भी मेरे प्रति सद्भाव प्रदर्शित किये, जिनके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैं यहाँके डच गर्वनर तथा उनकी धर्मपत्नी लेडी रटजर्सका बड़ा कृतज्ञ हूँ, क्योंकि उन्होंने मुझे न केवल पारस्परिक विचार परिवर्तनका ही अवसर दिय, बल्कि मेरी सभाओंमें पधारनेकी भी कृपा की। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने मुझे समस्त डच-गायनामें घूमनेके लिए जहाज़ और रेलवेका फस्ट क्लासका पास भी दे दिया था।

यहाँके भारतीयोंकी आर्थिक दशाके सम्बन्धमें मुझे मालूम हुआ कि कुछ कोठियोंके भारतीय तो अवश्य ही अच्छी दशामें हैं, परन्तु बहुतसे स्थानोंके भारतीयोंकी दशा सन्तोष-जनक नहीं है, और सरकार तथा स्टेटोंके मालिकोंको उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता है। गत महायुद्धके बादसे सभी देशोंमें आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं। बाज़ारोंका कारबार मंदा हो गया। डच-गायनाके भारतीयोंपर भी, जो अधिकांशमें धान और कोकोकी खेती करनेवाले हैं, इसका प्रभाव पड़ा है। वे अपना तथा मज़दूरोंका खर्च चलानेमें असमर्थ हैं, इसलिए वे सरकारकी सहानुभूतिके पात्र हैं।

कुछ गरीब भारतीयोंने मुझसे इस बातकी शिकायत की कि उन्हें सरकारी अस्पतालोंमें डाक्टरी सहायता मुफ्तमें नहीं मिलती। उनकी यह शिकायत न्यायोचित है, क्योंकि सभी जगह गरीब लोग सरकारसे डाक्टरी सहायता मुफ्त पाया करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि डच-सरकार उनकी इस शिकायतपर ध्यान देगी।

यहाँकी सरकार पिछले तीस वर्षोंसे भारतीयोंको उनकी भाषामें शिक्षा दे रही है। इसलिये वे अपनी संस्कृति और अपनी भारतीयता अपने धर्म और अपने रीत-रवाजोंको जीवित बनाये हैं। अब सरकार स्कूलोंसे हिन्दुस्तानी भाषाको उठा देना चाहती है और पुराने-पुराने हिन्दुस्तानी शिक्षकोंको बरखास्त कर देना चाहती है। अभी तक डच-सरकार भारतीयोंके प्रति उदारता दिखलाती रही है, मगर यदि बालकोंको उनकी मातृभाषा न पढ़ाई जायगी और वे अपनी प्राचीन गाथाएँ और संस्कृति भूल जायँगे, तो वे उतने लाभदायक और राजभक्त न रहेंगे, इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि डच-सरकार इस बातपर पुनः विचार करेगी।

डच-सरकारने भारतीयोंकी इन शिकायतोंको जो अब तक दूर नहीं किया है, उसका मुख्य कारण यह है कि यह उपनिवेश अब तक स्वावलम्बी नहीं है। सरकारको प्रति वर्ष ३० लाख गिल्डर (डच सिक्का) की हानि होती है, इसीलिए सरकार खर्चमें कमी कर रही है। परन्तु हिन्दी-टीचरोंको डिसमिस करनेके बजाय दो अन्य उपायोंसे भी यह कमी दूर की जा सकती है। एक तो यह कि शराब, तम्बाकू आदि चीज़ोंपर टैक्स लगाकर, और दूसरे उपनिवेशकी उत्पादक शक्ति और द्रव्य साधनोंका

यथोचित उपयोग करके। यहाँपर सोनेकी खानें, बलाटा (रबर) आदि चीजें बहुतायतसे मिलती हैं। यदि सरकार विशेषज्ञोंका एक कमीशन बिठाकर उनकी जाँच करावे और उनका समुचित उपयोग करनेका प्रबन्ध करे तो सरकारकी भी कमी पूरी हो जाय और सैकड़ों प्रजा-जनकी भी रोटी चलने लगे।

सभी जगह भारतीय अपनी मेहनत, कड़े परिश्रम, मालिकोंके प्रति स्वामिभक्ति और सरकारके प्रति राजभक्तिके लिए प्रसिद्ध हैं। कई एक मिशनरी पादरियोंने उनके इन गुणोंकी प्रशंसा की है। मुझसे ट्रिनीडाडके गवर्नरने कहा था कि बिना भारतीयोंकी सहायताके न तो ट्रिनीडाड बस ही सकता था और न उपजाऊ ही हो सकता था। ब्रिटिश-गायना सरकार अपने यहाँ और भी भारतीय प्रवासियोंको लाकर बसाना चाहती है, और इसके लिए उन्हें सब प्रकारकी सुविधा दे रही है। आगामी वर्षमें सम्भवतः चार भारतीय नेताओंका कमीशन ब्रिटिश-गायनाकी सरकारसे इस विषयमें बात चीत करनेके लिए आनेवाला है। डच-सरकार भी इस सुअवसरसे लाभ उठा सकती है और लाभदायक उद्योगोंमें भारतीयोंकी सेवाएँ और मेहनतका उपयोग करके उपनिवेशको स्वावलम्बी बना सकती है।

कुछ भारतीयोंने मुझसे जहाजके सम्बन्धमें शिकायत की। जाँच करनेपर मुझे मालूम हुआ कि उनकी यह शिकायत अनुचित है। सरकारने उनसे यह शर्त की थी कि उनकी शर्तबन्दीकी मियाद समाप्त होनेपर या तो उन्हें भारतवर्ष वापस जानेका मुफ्ती जहाज मिल जायगा, या यदि वे डच-गायना ही में रहना चाहेंगे, तो उन्हें एक सौ गिल्डर मिल जायँगे। अधिकांश कुलियोंने बिना किसी प्रकारके डर या दबावके एक सौ गिल्डर लेना स्वीकार कर लिया। इसलिए वे बिना किरायेके भारत लौटनेके अधिकारी नहीं रहे। इस हालतमें उनकी शिकायत बेजा है। जहाजी कम्पनियोंने किरायेमें जो वृद्धि की है, उसके लिए सरकार उत्तरदायी नहीं है। फिर भी डच-गायनामें दो हज़ार व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें बिना किरायेके भारत लौटनेका अधिकार है। सरकारको चाहिए कि जो लोग सचमुचमें भारत लौटना चाहते हों, उनके लिए सुविधा कर दे।*

यद्यपि भारतीय बड़े उदार और अतिथि-सेवी हैं। और उन्हें अपनी मातृभूमि भारतसे बहुत प्रेम भी है, परन्तु शिक्षाकी कमीके कारण उनमें बहुतसे दोष भी हैं। आशा है कि शिक्षाके प्रचारसे ये दोष दूर हो जायँगे।

अन्तमें मैं भारतोदय सभा और गोस्वामी रामप्रसादजीको धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने मुझे सब प्रकारकी सहायता दी।

* भारतवर्षमें उपनिवेशोंसे लौटे हुए प्रवासियोंकी हालत बहुत ही खराब है। निकट भविष्यमें भी उसके सुधरनेकी कोई आशा नहीं। इसलिए डच-गायनाके भारतीयोंको भारत लौटनेका विचार एकदम छोड़ देना चाहिए। यदि वे यहां आयँगे तो बड़ी मुसीबतमें पड़ जायँगे। उनके लिए यही अच्छा है कि वे एक सौ गिल्डर लेकर वहीं स्थायीरूपसे बस जायँ।—सम्पादक

ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीय

—— :o:——

[अन्य उपनिवेशोंके प्रवासी भाइयोंके साथ-साथ ट्रिनीडाडके प्रवासी भाइयोंको भी निमन्त्रण दिया गया था कि प्रवासी अङ्कके लिये कुछ लिख भेजें, पर खेद है कि उन्होंने कोई भी लेख नहीं भेजा। अतएव निम्न लिखित लेख दिसम्बरके इंडियन रिव्यूमें प्रकाशित मि० ऐण्डूजके Indian Conditon in Trinidad शीर्षक लेखके आधारपर लिखना पड़ा—सम्पादक]

ट्रिनीडाडमें प्रवासी भारतीयोंकी संख्या लगभग उतनी ही है जितनी ब्रिटिश-गायनामें। हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका अनुपात भी वही है। यह बात निम्न-लिखित अङ्कोंसे प्रकट होती है।

प्रवासी भारतीयोंकी	ट्रिनीडाड	ब्रिटिश-गायना
पूर्णसंख्या	१२१,०००	१२४,०००
मुसलमान	१८,०००	१८,०००
ईसाई	१३,०००	१०,०००
मद्रासी	२,०००	४,०००

इनके सिवाय जमैकामें २००००, ग्रेनेडामें २०००, सेन्ट लूसियामें २०००, पनामा केनल प्रदेशमें २००० और डच गायनामें ३४ हजार प्रवासी भारतीय रहते हैं। डच-गायना-प्रवासी भारतीय मुख्यतया हिन्दी भाषा-भाषी हैं और उनमें ९ हजार मुसलमान हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण पश्चिमी द्वीप समूहमें लगभग ३ लाख भारतीय हैं। इनमें मोटे तौरपर ४० हज़ार मुसलमान, १० हज़ार ईसाई और २३ हज़ार हिन्दू हैं।

ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीयोंकी संख्या (१२१,०००) वहांकी सम्पूर्ण जनसंख्याकी तिहाई है। ट्रिनीडाड एक छोटासा द्वीप है और उसकी समृद्धिके दो कारण हैं; एक तो वहांकी ज़मीन उपजाऊ है, और दूसरे वहां बहुमूल्य खनिज पदार्थ पाये जाते हैं।

जब हम ट्रिनीडाडकी अन्य जातियोंके साथ भारतीयोंकी शिक्षा सम्पत्ति और पोज़ीशनका मुक़ाबला करते हैं, तो हम उन्हें औसत दर्जेसे कुछ ऊँचा ही पाते हैं; बल्कि यों कहना चाहिए कि शिक्षा-क्षेत्रमें तो वे अन्य जातियोंकी अपेक्षा कुछ आगे बढ़े हुए दीख पड़ते हैं, और उनकी यह बढ़ती दिनों दिन स्पष्ट होती जाती है। यह बात न भूलनी चाहिए कि ट्रिनीडाड प्रवासी भारतीय अथवा उनके पूर्वज हिन्दुस्तानसे शर्तबन्दीकी गुलामीमें लाये गये थे और इस गुलामीका पूर्ण अन्त सन् १९२३ में हुआ, जब कि शर्तबंधे मज़दूर अपनी शर्तबन्दीसे मुक्त हुए। यह देखते हुए ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीयोंकी उन्नति सचमुच आश्चर्य जनक है।

ब्रिटिश-गायना और डच-गायना प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति देखनेके बाद मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ट्रिनीडाडकी सरकारने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाके लिए अपने उपनिवेशकी जनताको पर्याप्त साधन प्रदान किये हैं। यहाँपर शिक्षकोंको जो वेतन मिलता है, वह भी ब्रिटिश-गायनाके शिक्षकोंकी अपेक्षा कहीं ज्यादा है। शिक्षकोंको ट्रेनिंग देनेके लिए भी साधन और सुभीते हैं, इसलिए अच्छे शिक्षक मिल सकते और तय्यार किये जा सकते हैं। इस उन्नतिशील द्वीपमें प्रवासी भारतीयोंकी शिक्षाका प्रबन्ध काफ़ी अच्छा है, और वे भी उन साधनोंका, जो उनके लिए उपस्थित हैं, उचित उपयोग करते हैं। मैंने एक साधारण भारतीय विद्यार्थीके विषयमें सुना कि उसकी कालेजकी शिक्षाका सम्पूर्ण व्यय सरकारने अपने ऊपर ले लिया है। ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीयोंके नेताओंके लिए सचमुच यह बात बड़े गौरवकी है कि वे उपयुक्त अवसरोंसे लाभ उठा रहे हैं। निस्सन्देह भारतीयोंमें एक ऐसी बौद्धिक शक्ति है, जो अदम्य है—दबाई नहीं जा सकती और जो विकासका अवसर पाते ही बड़ी तेज़ीके साथ बढ़ने लगती है।

आज ट्रिनीडाडमें प्रवासी भारतीय प्रत्येक पेशेमें अच्छे पदोंपर विद्यमान हैं और सरकारी कौन्सिलोंमें भी ईमानदारीके साथ अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। ऐसे धनवान आदमी भी उनमें पाये जाते हैं, जिन्होंने या तो ज़मींदारीसे अथवा व्यापारसे काफ़ी रुपया कमाया है। कुछ भारतीय ऐसे सौभाग्यशाली भी हैं, जिनकी ज़मीनमें तेलकी खानें निकलीं, और जिसके कारण वे काफ़ी धनवान बन गये।

ट्रिनीडाडके पुराने सरकारी कागज़ात देखते हुए एक बात मुझे बड़े मार्केकी मालूम हुई, वह यह कि शर्तबन्दी गुलामीके दुराचारों और पापोंसे छुटकारा पानेमें ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीय बहुत जल्दी सफल हुए। यद्यपि जैसे अन्य उपनिवेशोंको तीन औरतों पीछे दस आदमी भेजे गये थे, वैसे ही ट्रिनीडाडको भी भेजे गये थे और शर्तबन्दीकी तमाम बुराइयाँ ट्रिनीडाडमें भी रहीं, पर ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीय-समाजमें ये बुराइयाँ उतनी गहराई तक घर नहीं कर पाईं। उदाहरणार्थ पुरानी रिपोर्टोंमें आत्मघात और भयंकर आघातके जो अंक ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीय शर्तबंधे मज़दूरोंके विषयमें पाये जाते हैं, वे फिजी इत्यादि उपनिवेशोंके देखे बहुत कम हैं।

ट्रिनीडाडमें ये बुराइयाँ ज्यादा गहराई तक प्रविष्ट नहीं हो सकीं, और उनसे वहाँके प्रवासी भारतीयोंको जल्दी ही मुक्ति

मिल गई इसके कारणोंपर विचार करते हुए हमें तीन बातें खास तौरपर ज्ञात हुई।

(१) प्रारम्भमें ही ट्रिनीडाड-प्रवासी एक बातमें बड़े सौभाग्यशाली सिद्ध हुए। कनाडासे कुछ ईसाई मिशनरी जिनके आदर्श उच्च थे और हृदय करुणायुक्त, इस द्वीपमें आये और यहाँ उन्होंने प्रवासी भारतीयोंकी दयनीय दशा देखी। डाक्टर मार्टन और डाक्टर ग्रान्ट ऐसे ही मिशनरी थे। उन्होंने सोचा कि इस दुर्दशासे प्रवासी भारतीयोंका उद्धार करनेका केवल एक उपाय है, वह है उनमें शिक्षा-प्रचार। आज ६० वर्षसे केनेडियन मिशन ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीयोंमें काम कर रही है। भारतीयोंको ईसाई बनानेमें उन्होंने कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं की है, और यह उन्हींके उद्योगका शुभ परिणाम है कि आज ट्रिनीडाड प्रवासी भारतीय अवनतिके गड्ढेसे निकलकर उन्नतिके पथपर अग्रसर हो रहे हैं। यह मैं नहीं कहता कि उनसे कोई ग़लती हुई ही नहीं। ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीयोंको अपने उद्धारमें सबसे अधिक सहायता शिक्षा-प्रचारसे मिली है, जिसका श्रेय अधिकांशमें केनेडियन मिशनरियोंको है।

दूसरी बात यह है कि द्वीप छोटा और समृद्धिशाली होनेके कारण उन कोठियोंकी, जहाँ भारतीय काम करते थे, देख-भाल आसानीसे हो सकती थी। दूसरे द्वीपोंमें कोठियाँ बड़ी दूर दूर और जंगलोंमें थीं, ट्रिनीडाडमें पास-पास; इस कारण ट्रिनीडाडमें कुली-प्रथाकी भयकर बुराइयाँ जल्दी ही जनताकी आँखोंके सामने आ गईं, और उनके दूर करनेका इन्तज़ाम भी जल्दी ही कर दिया गया।

तीसरी बात यह है कि ट्रिनीडाडकी कोठियोंके मैनेजर अन्य उपनिवेशोंकी कोठियोंके मैनेजरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक भले आदमी थे। उनका चरित्र हर तरहसे आदर्श था, और उनमें कोई त्रुटि ही नहीं थी, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, पर फिजी इत्यादिके देखे ट्रिनीडाडकी कोठियोंके मैनेजर सचमुच भलेमानस कहे जा सकते हैं।

अब आजकल ट्रिनीडाडकी हालत यह है कि द्वीप छोटा होनेके कारण और यहाँकी जनसंख्यामें वृद्धि होनेके कारण भी मातृभूमिसे ट्रिनीडाडको भारतीयोंके प्रवास करनेकी न तो आवश्यकता ही है और न उपयोगिता ही। खुद ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीयोंकी संख्या बढ़ रही है—उनकी मृत्यु-संख्याके औसतसे जन्म-संख्याका औसत काफी अधिक है—और द्वीपकी आब-हवा भी उनके माफिक आ गई है। ब्रिटिश-गायना और डच-गायनाके भारतीयोंमें आगे चारों ओरकी परिस्थितिके प्रति जो असन्तोष पाया जाता है, उस असन्तोषकी मात्रा ट्रिनीडाडमें बहुत ही कम है। भूमि उपजाऊ तथा खनिज पदार्थोंसे युक्त होनेके कारण द्वीप समृद्धिशाली है। इस प्रकार तमाम कठिनाइयोंको पारकर आज ट्रिनीडाड प्रवासी भारतीय पनप रहे हैं। अगर और कोई जाति होती, तो अब तक कभीकी मर मिट गई होती, पर भारतीयोंमें अद्भुत जीवन-शक्ति है। शर्तबन्दीके पापों तथा दुराचारोंके बोझ सिरसे फेंककर वे फिर उन्नतिके पथपर अग्रसर हो रहे हैं। यह मैं मानता हूँ कि उनके मार्गमें अब भी बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हैं, अब भी उन्हे अनेक बाधाओंका मुक़ाबला करना है, पर जिस परमात्माने शर्तबन्दी ग़ुलामीसे उनका उद्धार किया, वही उनकी तमाम मुश्किलोंको आसान करेगा; और ट्रिनीडाड-प्रवासी भारतीय ऐसी उन्नति करेंगे, जो केवल पश्चिमी द्वीप-समूहोंके लिये ही नहीं, बल्कि हमारी मातृभूमि भारतके लिये भी गौरवका कारण हो भी।

फिजी क्या चाहता है ?

[लेखक :—श्री आई० हेमिल्टन बीटी, एम० ए० (आक्सन)]

फिजीके भारतीय अपनी मातृभूमि भारतसे सात हज़ार मील दूर रहकर भी उसे प्रेम और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। वे अपने हृदयमें यह भी अनुभव करते हैं कि उनकी भावी आशाएँ तभी पूरी हो सकेंगी, जब भारतवर्ष उनकी सहायता करेगा। यहाँ इस सुदूर विदेशमें भी भारतीय फूलते-फलते हैं। यदि आप उनकी आर्थिक अवस्थाका विचार न भी करें, तो भी स्वास्थ्य-सम्बन्धी आँकड़ेकी औसत आयु, बच्चोंकी पैदाइश आदिसे उनके फूलने-फलनेका काफ़ी सबूत मिल जायगा। वे भारतमें रहनेवाले अपने बाप-दादोंसे (अपनी-अपनी श्रेणीके अनुसार) अधिक समृद्धिवान हैं। वे भारतवर्षके बहुतसे झंझटोंसे—जैसे साम्प्रदायिक झगड़ों आदि—मुक्त हैं, परन्तु यही सब बातें पर्याप्त नहीं हैं।

वे यूरोपियनोंके बीचमें रहते हैं, इसलिए उन्होंने पश्चिमी सभ्यताकी बहुतसी सुविधाओंको अपना लिया है। वे यह जानते हैं कि इन बातोंमें वे यूरोपियनोंका पूरा-पूरा मुक़ाबला नहीं कर सकते, क्योंकि यूरोपियनोंका उन बातोंपर जन्मसिद्ध अधिकार है। हाँ, उन्हें इस बातका कुछ धुंधला ज्ञान ज़रूर है कि भारतवर्षकी संस्कृति अपनी आध्यात्मिक उच्चताके लिए संसारमें प्रसिद्ध रही है, और युगयुगान्तरसे भारतवर्ष संसारका आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक रहा है। अतः प्रवासी भारतीय यूरोपियन बातोंमें यूरोपियनोंके नीचे रहना स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु आध्यात्मिक बातोंमें सदैव उनसे ऊँचे ही रहना चाहते हैं। फिजी-निवासी यह जानते हैं कि वे इस आध्यात्मिक उच्चताको भारतवर्षकी सहायताके बिना प्राप्त नहीं कर सकते। भूतकालकी कुछ परिस्थितियोंके प्रभावसे फिजीके भारतीय अपने देशकी संस्कृतिसे बुरी तरहसे अनभिज्ञ हो गये हैं। इन परिस्थितियोंमें कुछका अन्त हो चुका है और कुछ धीरे-धीरे मिट रही हैं। फिजीके भारतीयोंको इस समय अपने देशकी संस्कृतिके ज्ञानकी बड़ी आवश्यकता है। वे इस ज्ञानकी भिक्षाके लिए भारतके भिखारी हैं। गुरुके बिना भला कौन उन्नति कर सकता है? फिजीको इस समय गुरुओंकी आवश्यकता है।

भारतवर्षने फिजीके भारतीयोंकी जो कुछ सहायता की है, उसके लिए फिजी-वाले भारतके कृतज्ञ हैं, मगर खेद है कि इस विषयमें उन्हें जो कुछ सहायता मिली है, वह भारत-सरकारसे मिली है, न कि भारतीय जनतासे। भारत-सरकारने उनके हितोंकी रक्षाके लिए लड़ाई लड़ी है, वह अब तक भी लड़ रही है। परन्तु भारतकी जनताने कभी उनके लिए चिन्ता नहीं की। इसका फल यह हुआ कि उन्हें अब तक अपनी मातृभूमिसे जो कुछ भी सहायता मिली है, वह राजनैतिक और सांसारिक है; परन्तु उन्हें इस समय विशेष आवश्यकता है आध्यात्मिक सहायताकी। फिजी-वालोंको पढ़े-लिखे शिक्षित आदमियोंकी बड़ी आवश्यकता है। भारतवर्ष जिन-जिन शिक्षित व्यक्तियोंको फिजी भेजता है, फिजीवाले उन्हें सहर्ष स्वीकार करते हैं। मगर इस समय राजनैतिक और विद्वान नेताओंकी अपेक्षा उन्हें आध्यात्मिक गुरुओं और पंडितोंकी अधिक आवश्यकता है।

हम अकसर सुना करते हैं कि पहले भारतको स्वराज्य मिलना चाहिए। जब तक भारतको स्वराज्य नहीं मिल जाता, तब तक वह फिजी आदिके लिए क्यों चिन्ता करे? दूसरी बात यह सुनाई देती है कि यदि विशाल भारतके लिए भारतवासी कुछ करें भी, तो फिजी ही के लिए वे क्यों करें? किसी और उपनिवेशके लिए—जहाँ भारतीय अधिक संख्यामें हों और जहाँ भारतसे आमद-रफ्त सुगमतासे हो सकती हो—क्यों न कुछ किया जाय? हमारा कथन है कि फिजीमें

एक खास विशेषता है, इसलिये उसकी ओर ध्यान देना उचित है। आइये, ज़रा फिजीकी इस विशेषतापर कुछ विचार करें।

हमारी समझमें फिजीकी दूरी और उसके छोटेपनके कारण उसे वात्सल्य भाव कुछ अधिक अंशमें मिलना चाहिए। यह बात निर्विवाद है कि भारतवर्षके तमाम झगड़े और दु:ख भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायोंके पारस्परिक वैमनस्य और झगड़ोंके कारण है। यदि भारतवर्षके ये तमाम झगड़े मिट जायँ, तो उसकी मुक्तिमें क्षण-मात्र भी विलम्ब न हो।

जब एक दलके एक करोड़ आदमी दूसरे दलके एक करोड़ आदमियोंसे मतभेद रखते हों, तो उनके मतभेदके निपटारेके केवल दो ही मार्ग हैं; एक युद्ध, दूसरा समझौता। समझौतेके लिए दो करोड़ आदमी मिलकर कोई समझौता नहीं कर सकते। इसके लिए आवश्यक है कि दोनों दल अपने-अपने प्रतिनिधि नियत कर दें, जो आपसमें सलाह-मशवरा करके समझौतेका मार्ग निकालें। समझौता तभी हो सकता है, जब दोनों दलवाले थोड़ा-थोड़ा लचें। ऐसी दशामें अकसर ऐसा देखा गया है कि चूँकि प्रतिनिधि लोग करोड़ों आदमियोंकी असली स्थिति ठीक तौरसे समझ नहीं सकते, इसलिए दोनों दलोंके बहुतसे कट्टर लोग समझने लगते हैं कि उनके प्रतिनिधियोंने उनके साथ विश्वासघात किया। अत: इससे यह नतीजा निकलता है कि इस प्रकारके मतभेदोंमें दोनों ओर जितने कम आदमी हों, उतनी ही सुगमतासे समझौता हो सकेगा।

फिजी भारतका सबसे छोटा उपनिवेश है, इसलिए हमारी समझमें संसारकी बड़ी-बड़ी समस्याओंको हल करनेके लिए सबसे उपयुक्त स्थान है। साम्प्रदायिक झगड़ों ही को ले लीजिए। संसारमें हिन्दू, मुसलमान सिख, ईसाई आदि जैसे मेल और प्रेमसे फिजीमें रहते हैं, वैसे और कहीं नहीं मिलेंगे। वे लोग बहुतसी बातोंमें एकमत हैं। जिन बातोंमें उनमें मतभेद है, उनमें भी वे आपसमें लड़नेके बजाय सहिष्णुतासे काम लेना अच्छा समझते हैं। वे एक दूसरेके मतका आदर करते हैं।

जो लोग साम्प्रदायिक कलहको शान्त करना चाहते हैं, हम उनका ध्यान फिजीकी ओर आकर्षित करते हैं। उन्हें यहाँ ऐसी सुन्दर परिस्थित मिलेगी, जैसी और कहीं नहीं मिल सकती। यदि एक स्थानमें इस कलहका निपटारा हो जाय, तो वह अन्य स्थानोंके लिए आदर्शका काम देगा, लेकिन यहाँके निपटारेको भारत और अफ्रिकाके बहुतसे नेता माननेको तय्यार नहीं होंगे। वे कहेंगे, "यह निपटारा बेपढ़े-लिखे लोगोंका है, दक्ष लोगोंका नहीं, इसलिए हम इसे माननेको तय्यार नहीं हैं।" उनका कथन सच है, लेकिन मैं कहता हूँ कि विद्वान और बुद्धिमान लोग यहाँ आवें। यहाँ उनकी विद्वत्ताका सबसे अधिक प्रभाव पड़ेगा। फिर वे यहाँके निपटारेपर अपनी मुहर लगाकर भारतमें जाकर कह सकते हैं कि यह निपटारा सब समाजोंकी रज़ामन्दीसे हुआ है, अत: भारतवासी भी उन्हीं उपायोंको काममें लायें।

फिर यही बात संसारके सबसे बड़े प्रश्न अन्तर्जातीय विवादपर लागू हो सकती है। संसारकी चारों मुख्य जातियाँ—यूरोपियन, अफ्रिकन, एशियाई और चीन—फिजीमें पाई जाती हैं। फिजीके आदिम-निवासी यद्यपि अफ्रिकन नहीं हैं, फिर भी उनकी मनोवृत्ति बिलकुल उसी प्रकारकी है। भारतमें केवल दो ही जातियाँ हैं, इसलिए यदि भारतमें अन्तर्जातीय प्रश्न हल भी हो जाय, तो उसका समाधान और जगहोंके लिए बेकार है। फिर फिजीमें इन जातियोंकी संख्यामें भी अधिक वैषम्य नहीं है, इसलिए इस प्रश्नको हल करनेके लिए भी फिजी आदर्श-स्थान है।

अन्तमें मैं फिर यही कहना चाहता हूँ कि फिजीको आध्यात्मिक नेताओंकी आवश्यकता है। संसारकी समस्याओंको सन्तोषप्रद-रूपसे हल करनेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक जातिको इस बातका अनुभव हो कि उसने उसमें अपना हिस्सा दिया है और दूसरोंसे ग्रहण किया है। मानव-समाजके कार्योंमें युगयुगान्तरसे भारतवर्ष आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयोंमें अग्रगामी रहा है, इसलिए इस अवसरपर भी उसे इसी रूपमें अपना हिस्सा अदा करना चाहिए। हमें यूरोपसे मशीनका काम जाननेवाले मिल सकते हैं, और राजनीतिज्ञ सभी कहींसे मिल सकते हैं, परन्तु हमें भारतवर्षसे पंडितों और गुरुओंकी ज़रूरत है।

लंकामें भारतीय*

[लेखक :—श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह]

(विशेषत: 'विशाल-भारत' के लिए लिखित)

लंकामें भारतवासी जिस दशामें रहते हैं और जो कष्ट सहते हैं, उसपर पहली नज़र डालते ही मुझे बड़ा खेद हुआ। कोलम्बोमें भी, जो राजधानी है, मुझे ऐसे ही भयकर दृश्य देखनेको मिले थे, जब सन् १९२१ के अन्तमें मैं वहाँ के सप्ताह तक ठहरा था। मैंने देखा है कि भारतीय जो दुर्बलताकी अन्तिम दशामें हैं, राहगीरोंसे पैसा पानेके लिए किस दयनीय रूपसे रिरियाते हैं। शुरूमें इन पुरुष-स्त्रियोंको यहाँकी चाय और रबरकी खेतियोंपर काम करनेके लिए लालचसे बहकाकर दक्षिण-भारतसे यहां लाया गया था।

जाँच करनेपर मुझे मालूम हुआ कि हमारे मज़दूर जिस समय यहाँकी कोठियोंपर काम आरम्भ करते हैं, कर्ज़दार रहते हैं। फिर साधारण तौरपर ऐसी चाल चली जाती है कि वे सदा कर्ज़दार ही बने रहते हैं। एक क़ानूनने उन्हें कगानियोंकी (आरकाटियों या कुली-सरदारोंकी) और अप्रत्यक्षरूपसे प्लेन्टरोंकी जागीर बना रखा है, जब तक वे टुड्ड (कर्ज़के तमस्सुक) से छुटकारा न पा जायं। उनके मालिकोंके शिकायतपर उनपर कोड़े पड़ सकते हैं, और वे जेलखानोंमें भी डाले जा सकते हैं। उनमेंसे कुछ लोग खेतियोंपर ऐसा जीवन बितानेकी बनिस्बत कोलम्बोकी सड़कोंपर भीख मांगना पसन्द करते हैं, यह देखकर मुझे कुछ भी विस्मय नहीं हुआ।

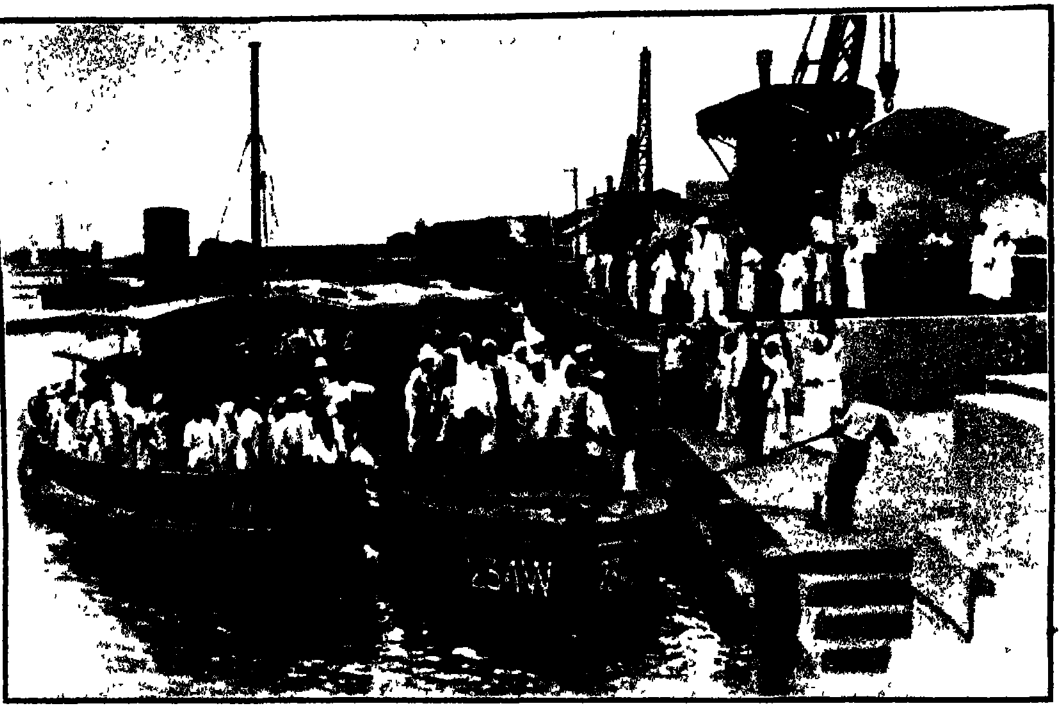
मैंने अपने पत्रकार-जीवनके आरम्भसे ही, जिसे अब लगभग तीस वर्ष हो चुके हैं, खरी बात कहनेका नियम-सा बना लिया है, अत: मैंने यहांकी इस भयानक दशाको भी साफ-साफ लिखा। इसीलिए भारतीय मज़दूरोंसे काम लेनेवाले प्लेन्टरोंने अपनेको अपराधी अनुभव करके मुझपर हमला किया था।

मि० ग्रायम सिनक्लेयरने, जो लंकाकी व्यवस्थापिका-सभामें प्लेन्टरोंके प्रतिनिधि थे, बहुत करुण स्वरमें अपने साथियोंसे कहा कि मेरा वक्तव्य भारतवर्षमें बड़ी हानि पहुँचायेगा, मगर उसी सभामें उन्हें एक प्रतिद्वन्द्वी भी मिल गये। वे थे सभाके एक सिंहली सदस्य मिस्टर ई० डब्ल्यू० पेरेरा। उन्होंने स्वयं अपने अनुभवकी एक घटना बतलाते हुए कहा—"जब मैं मुफस्सिलकी एक अदालतमें रिक्शेपर जा रहा था, तो मैंने एक कुलीको सड़कके किनारे पड़ा देखा। जब मैं लौटकर आया, तो देखा कि वह कुली मुर्दा है। उस समय कुलियोंके सड़कपर मरनेकी कई घटनाएँ हो चुकी थीं, और एक समाचारपत्रने भी, जो प्लेन्टरोंका समर्थक है, सरकारका ध्यान इस कलंककी ओर आकर्षित किया था।"

जब मैं लंकासे सन् १९२१ के दिसम्बरमें रवाना हुआ, उस समय मुझे यह विश्वास हो गया था कि मैंने भारतीय समस्याके एक किनारेको केवल छुआ-भर है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि इस बातकी कोशिश हो रही है कि मैं उसकी तह तक न पहुँच सकूँ। मुझे निश्चय था कि जिन प्रथाओंमें हम लोगोंको संसारसे पृथक् रहकर जीवन बिताना पड़ता है, उनमें बड़ी ज्यादतियाँ होती हैं, अत: मैंने यह निश्चय कर लिया कि जहां तक जल्द हो सके, लंकाको लौट आऊँ। इसका मौक़ा मुझे सन् १९२६ में मिला। मुझे कोलम्बोके एक दैनिक पत्रके सम्पादन करनेका निमन्त्रण मिला, परन्तु सन् १९२७की बसन्त ऋतुमें वहां पहुँचनेपर मुझे कुछ ऐसी बातें ज्ञात हुईं, जिनसे मैंने उस निमन्त्रणको अस्वीकार करके स्वाधीन रहना ही निश्चित किया।

---

* लेखककी लिखित आज्ञाके बिना कोई इसे उद्धृत न करे और न इसका अनुवाद न करे।



कोलम्बोके बन्दरगाहमें भारतीय प्रवासी उतरनेके पहले डाक्टरीके लिए ले जाये जा रहे हैं
(लेखक द्वारा कापीराइट)

सन् १९२१में ही लकाके भारतीयोंकी दशासे मैं परेशान हो गया था। अब तीस महीनेकी खोज-पूर्ण जाँचके बाद मैंने उनकी दशा कैसी पाई, इसके लिए क्या कहूँ? मैं केवल पाठकोंके सामने अपने मननका फल और उसका निष्कर्ष रखकर ही सन्तोष करूँगा।

(२)

प्रामाणिक अनुमानके अनुसार लकामें करीब ६,००,००० भारतीय हैं। वे हिन्दुस्तानके सभी भागोंसे आये हैं। सचमुचमें भारतका कोई भी ऐसा सूबा नहीं है, जहाँके लोग यहाँ न हों। यहाँ बलोची, सिख, सीमा-प्रान्तके मुसलमान, पुरबिये, बंगाली, सिन्धी, बोहरे, पारसी, मलयाली, कनाड़ी, तामिल और तेलगू—अर्थात भारतके उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, सभी तरफके लोग हैं।

धर्मोंमें भी कई धर्म—हिन्दू, जैन, पारसी, मुसलमान और ईसाई आदि हैं, परन्तु हिन्दुओंकी सख्या सबसे अधिक है। उनके बाद शायद ईसाइयोंका नम्बर होगा, जो दलित जातियोंसे ईसाई बने हैं।

लकामें भारतीयोंकी बहुत थोड़ी संख्या सरकारी नौकरियोंमें हैं, सो भी अधिकतर अध्यापकी पर। उससे कुछ बड़ी संख्या खुदरा और थोकके व्यापारमें, और बैंकके काम या बीमा-कम्पनियोंके एजेन्टोंके समान कामोंमें लगी है। परन्तु शायद दसमेंसे नौ आदमी शहरों और देहातोंमें मजदूरी करते हैं।

(३)

सरकारी नौकरीमें और रोजगार तथा अन्य पेशोंमें लगे हुए भारतीय जिस दशामें लंकामें रहते हैं, वह केवल थोड़ेसे शब्दोंमें बतलाई जा सकती है।

सीलोन-सिविल-सर्विसमें* जो दो चार भारतीय हैं, उनमें

* आजकल भारतीयोंका सीलोन-सिविल-सर्विसमें भरती करना बन्दकर दिया गया है, यद्यपि सीलोनी लोग भारतीय सिविल-सर्विसमें भरती हो सकते हैं!



लंकामें सड़क बनानेवाले भारतीय मज़दूर
(कापीराइट)

केवल एक एक्ज़क्यूटिव-विभागमें है, बाकी दो न्याय-विभागमें पटक दिये गये हैं।

मैं लंकामें किसी ऐसे भारतीयको नहीं जानता, जिसने किसी पेशेमें ऊँचा स्थान प्राप्त किया हो। भारतीय वकील दो चार ही है, वह भी जूनियर। यही बात भारतीय डाक्टरों और इंजीनियरोंके सम्बन्धमें कही जा सकती है। यद्यपि हालमें दो भारतीय डाक्टरोंको सरकारने उत्तरदायित्व-पूर्ण पद दिये हैं—डा० टी० एस० नायर कोलम्बोके पोर्ट-सर्जन नियत हुए हैं, और डा० ए० टी० कुरियान हुकवर्म-निवारक दलके प्रधान नियत हुए हैं।

इस वक्तव्यमें मैं अपने देशवाशियोंके खिलाफ, जो सरकारी नौकरियों या अन्य पेशोंमें लगे हैं, एक शब्द भी नहीं कहना चाहता। मुझे ज्ञात हुआ है कि उनमें बहुतसे बड़े योग्य और ईमानदार हैं, लेकिन इस द्वीपके अंग्रेज़ और सिंहली उनसे बड़ी ईर्षा रखते हैं। सचमुचमें मुझे आश्चर्य तो इस बातपर है कि इतनेपर भी वे इतने अधिक सफल हुए हैं, न कि इस बातपर कि वे और अधिक सफल क्यों नहीं हुए!

आर्थिक दृष्टिसे लंकाके भारतीय व्यापारियोंमें कुछ लोग इन ऊँचे पेशोंवालोंकी बनिस्बत अच्छे हैं। यह बात मद्रास-प्रान्तके कुछ थोड़ेसे चेट्टियोंके सम्बन्धमें ख़ास तौरपर कही जा सकती है। ये चेट्टी लोग रुपया उधार देने या गल्ला अथवा और चीज़ोंके बेचनेका काम करते हैं। इन लोगोंने काफी धन पैदा किया है, और बड़ी-बड़ी जायदादें खरीदी हैं; परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है, और साधारणत: उनमें उत्साह और साहसकी कमी है।

द्वीपमें सबसे अधिक संख्या सिंहली लोगोंकी है। उन्हें प्रसन्न करनेकी आवश्यकताने हमारे देशवासियोंको खुशामदी बना दिया है। फिर भी वे ईर्षाकी वस्तु हैं। विशेषकर चेट्टी लोगोंका ज़िक्र तो अकसर बेअदबीके साथ किया जाता है।

(४)

भारतीय मज़दूरोंके सम्बन्धमें पहले ही यह बतला देना ज़रूरी है कि वे दो दलोंमें बँटे हैं। एक तो वे, जो छोटे-बड़े शहरोंमें काम करते हैं; दूसरे वे, जो देहातमें मज़दूरी करते हैं। इन दोनोंकी हालतोंमें बड़ा फ़रक है इसलिए हरएक दलपर अलग-अलग विचार करना उचित है।

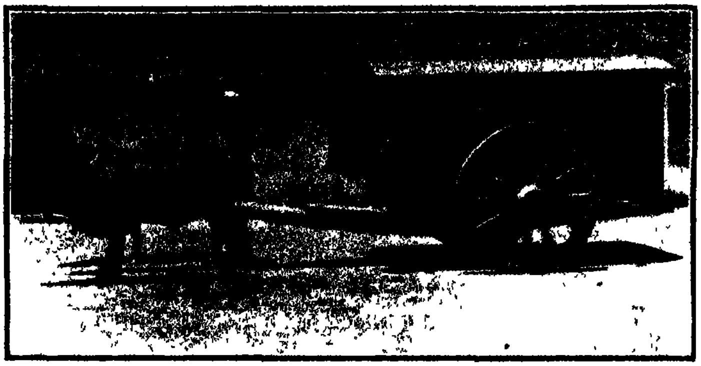
शहरमें काम करनेवाले मज़दूर सबसे अधिक संख्यामें कोलम्बोमें हैं। उनमेंसे सैकड़ों बन्दरमें काम करते हैं। वहाँ वे मुसाफ़िरोंका असबाब और जहाज़ोंका माल चढ़ाते-उतारते हैं, और उनपर कोयला तथा पीनेका पानी लादते हैं। कई हज़ार भारतीय मज़दूर, सरकारी फैक्टरी, प्राइवेट इंजीनियरिंगके कारखानों और वर्क-शापों तथा मोटरके कारखानोंमें काम करते हैं। हज़ारों लोग होटलों और क्लबोंमें खानसामा और खिदमतगार, घरेलू नौकर, चौकीदार और मोटर तथा लारियोंके ड्राइवर हैं।

लंकाकी लेबर-यूनियन हमारे भाइयोंको बिना किसी भेद-भावके भरती कर लेती है। फल यह है कि भारतीय मेम्बर वैसे कर्त्तव्यपरायण (Loyal) हैं, जैसे सिंहली या लंकाके तामिल मेम्बर। बहुत दिन नहीं हुए, 'सीलोन-लेबर

यूनियन'के सभापति मि० ए० ई० गुनेसिंघेने मुझसे कहा था कि सच बात तो यह है कि हड़तालमें भारतीयको यदि मौक़ा दिया जाय, तो वे त्याग करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं।

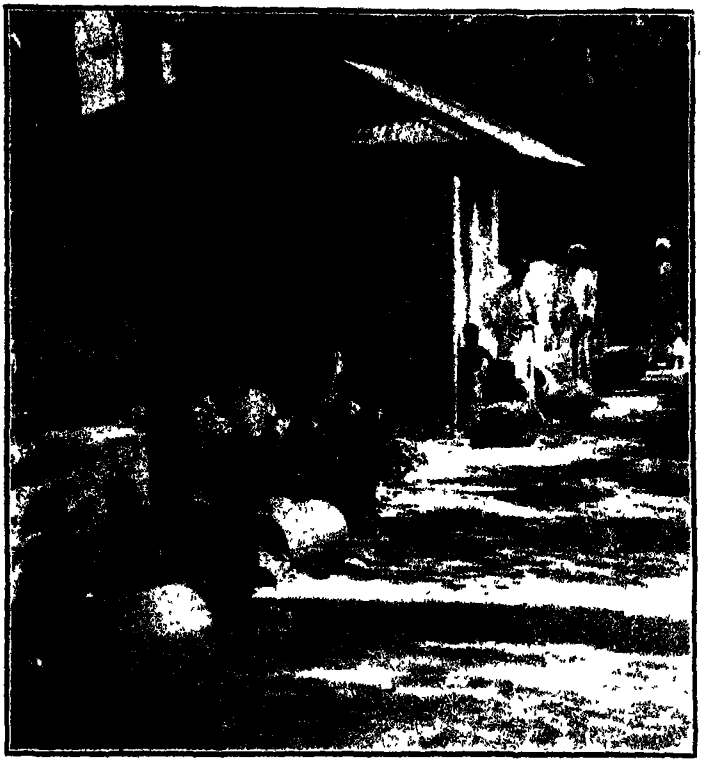
इसके ख़िलाफ़ कुछ सिंहली नेता लोग भारतीय मज़दूरोंको सरकारी या म्यूनिसिपलिटीके कामोंमें लगानेका विरोध करते हैं, और साधारण जनता इन्हीं लोगोंकी सलाह लेती है। लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें भी भारतीयोंको काम देनेके कारण अधिकारियोंकी निन्दा की गई है। एक बौद्ध सिंहली मि० डी० बी० जयतिलकने—जो लंकाके नेशनल कांग्रेसके सभापति रह चुके हैं—२२ जुलाई सन् १९२५ में कौन्सिलमें कहा था—"जाँच करनेपर मुझे मालूम हुआ कि तीन हज़ारसे कुछ कम मज़दूर रेलके वर्कशापमें काम करते हैं। उनमें एक हज़ार विदेशी हैं। (विदेशियोंसे उनका मतलब भारतीयोंसे है) इन लोगोंको काम देकर—जो काम सिंहली कर सकते हैं—सरकार सिंहलियोंकी रोटी छीन रही है। मैं सरकारको ज़ोर देकर यह बात बता देना चाहता हूँ कि अगर सरकार इस सम्बन्धमें अच्छा उदाहरण उपस्थित करे, तो इसमें कोई शक नहीं कि और प्राइवेट लोग भी उसका अनुकरण करेंगे।" दूसरे शब्दोंमें उनका मतलब यह था कि न केवल सरकार ही इन भारतीय मज़दूरोंको अपने कल-कारख़ानोंसे निकाल बाहर करे, बल्कि साधारण लोगोंको भी भारतीयोंको धता बताना चाहिए।

मि० जयतिलक बड़े चालाक आदमी हैं। वे जानते थे कि वे बड़े कमज़ोर ज़मीनपर दौड़ रहे हैं, इसीलिए उन्होंने बीचमें यह भी कहा कि मैं इस बातकी आवाज नहीं उठाना चाहता कि 'लंका केवल लंकावालोंके लिए हो', क्योंकि लंकामें प्राचीन राजाओंके कालसे ही लोगोंको यहाँ आने-जानेकी पूरी स्वतन्त्रता रही है। इसके प्रमाणमें उन्होंने एक *शिलालेखका भी हवाला दिया।*



लंकाके लोकल बोर्डकी नौकरीमें भारतीय मेहतर
(कापी राइट)

दूसरे दिन, कौन्सिलके एक हिन्दू-सदस्य आनरेबुल मि० एस० राजरतनमने, जो जाफनाके प्रतिनिधि हैं, साहस-पूर्वक और खुल्लमखुल्ला कहा था—"मि० जयतिलकने जिस परम्पराका हवाला दिया है, उससे उनका रुख़ एकदम प्रतिकूल है। लंकाकी नेशनल कांग्रेसने, जिसके मि० जयतिलक सभापति रह चुके हैं, यह माँग उपस्थित की थी कि ब्रिटिश-साम्राज्यके सभी भागोंमें—कैनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण-अफ्रिका आदिमें—भारतीयोंको समान अधिकार मिलें; मगर जब लंकाका सवाल आता है, तब नेशनल कांग्रेसके भूतपूर्व सभापति ऐसा अनुदार और प्रतिकूल रुख़ क्यों अख़्तियार करते हैं? हम लोग भारतको अपनी मातृभूमि समझते हैं, क्योंकि हमें अपने खाद्य पदार्थोंके लिए भारतपर निर्भर करना पड़ता है। फिर भी लंकावालोंने अन्यायसे अपनी सिविल-सर्विसका दरवाज़ा भारतीयोंके लिए बन्द कर दिया है। अब वे उन्हें कारख़ानोंमें भी नहीं रखना चाहते हैं! मालूम होता है कि वे यह कह रहे हैं कि 'हिन्दुस्तानी मेहतरका काम करें या स्टेटों (कोठियों) पर मज़दूरी करें—इससे अधिक वे कुछ नहीं पा सकते।' मैं कौन्सिलको बता देना चाहता हूँ कि एक ऐसा ज़माना आ सकता है, जब भारतीयोंके आन्दोलनसे भारत सरकारको यह कहना पड़ेगा—'लंकावालो, सलाम! आगेसे तुम्हारा भोजन बन्द और तुम्हारे लिए मज़दूर बन्द।' क्या आप ऐसी अवस्थाके लिए सचमुच तय्यार हैं?"



चाय-स्टेटपर भारतीय-मज़दूर चायकी पत्तियाँ छाँट रहे हैं (कापीराइट)

(५)

लंकाके देहातोंमें जो भारतीय मज़दूर हैं, वे दो हिस्सोंमें बँट सकते हैं। उनमेंसे एक छोटी संख्या, इमारतें, सड़कें और पुल इत्यादि बनाने और मरम्मत करनेका काम करती है। बाक़ी लोग चाय, रबर, इलायची और नारियलकी खेतियोंपर काम करते हैं।

लंकामें सड़क बनानेवाले भारतीय मज़दूर मामूली तौरपर ठेकेका काम करते हैं, यानी इतने पत्थर तोड़नेपर उन्हें इतने रुपये मिलेंगे, इस तरीक़ेसे सारा परिवार काममें जुटा रहता है। छोटे छोटे बच्चे, जिन्हें स्कूलमें होना चाहिए था, खानोंसे पत्थर ढोते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे पत्थरोंको ढोकर वहाँ तक पहुँचाते हैं, जहाँ उनके माँ-बाप उन्हें तोड़ते या कुछ और करते हैं।

मि० राजरत्नमका कथन बिलकुल सच है। सिंहली लोगोंमें भारतीयोंके सबसे कट्टर विरोधी तक इस बातके लिए चिन्तित रहते हैं कि भारतीय मेहतर काफ़ी संख्यामें मिलते रहें। कोलम्बो, कैंडी तथा अन्य शहरोंमें सफ़ाईका काम भारतीय ही करते हैं। जब ज़रूरत होती है, तो इन मेहतरोंको भरती करनेके लिए भारतमें एजेन्ट भेजे जाते हैं, जिससे सिंहलियोंको यह काम न करना पड़े; क्योंकि वे उसे गन्दा काम समझते हैं।

जैसा कि मैं 'माडर्न-रिव्यू' तथा अन्य भारतीय पत्रोंमें लिख चुका हूँ, इसका फल यह होता है कि सिंहलियोंकी नज़रमें भारतीय बहुत गिर गये हैं। किसी ज़मानेमें भारतसे लंकाको धर्म-प्रचारक, अध्यापक, राजा और प्रवासी लोग जाते थे, आजकल वहाँ भारतसे पाखाना साफ़ करनेवाले मेहतर जाते हैं!

मुझे मालूम हुआ है कि छोटे बच्चोंको मज़दूरीमें लगानेके क़ानूनमें एक खास दफा बढ़ा दी गई है, जिससे माँ-बाप इन छोटे बच्चोंको बिना क़ानूनके डरके काममें लगा सकें। अत: छोटे बच्चोंसे काम लेनेमें कोई क़ानूनी पख नहीं लगा लगा सकता : लेकिन जिस नीतिसे दफा बनाई गई है, वह अदूरदर्शिता-पूर्ण और नैतिकता-हीन है।

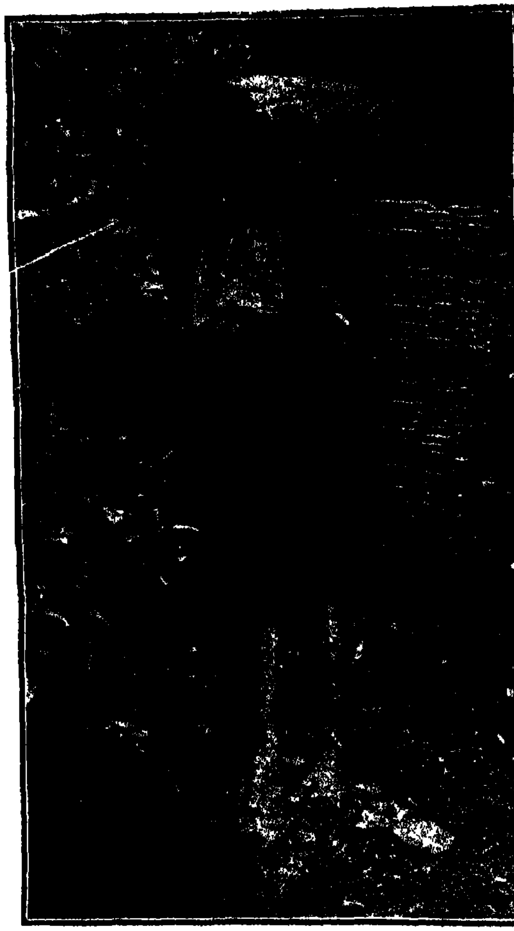
इन मज़दूरोंके बच्चे बिना किसी तरहकी शिक्षाके बड़े होते हैं, अत: वे किसी भी तरहके ऊँचे कामके लायक नहीं होते, चाहे वे लंकामें रहें या भारतको लौट जायँ, जैसा कि वे अक्सर करते हैं। वे केवल उन अयोग्य भारतीय मज़दूरोंकी संख्या बढ़ाते हैं, जो मुश्किलसे अपना कष्टमय जीवन बिताते हैं।

अपने बच्चोंके भविष्यको बिगाड़कर भी इन सड़क बनानेवाले मज़दूरोंकी आमदनी अधिक नहीं होती। मुझे मालूम

हुआ है कि एक पुरुष दिन-भरमें बारह आनेसे एक रुपया तक और एक स्त्री आठ आनेसे बारह आने तक कमा सकती है। बच्चोंकी आमदनी दो आनेसे चार आने प्रतिदिन तक पड़ेगी। इस मज़दूरीको खयाल करते समय इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिए कि लंकाका रहन-सहन भारतकी बनिस्बत बहुत महंगा है। वहां एक रुपयासे उतना काम नहीं चल सकता, जितना भारतमें।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इन सड़कवालोंको पूरे साल-भर खुले ही में रहना पड़ता है। वे अधिकतर मद्रास प्रान्तसे आये हैं, जिसका बड़ा भाग बहुत गरम है और जहाँ पानी कम बरसता है। इसके विरुद्ध, लंकाके जिन हिस्सोंमें उन्हें काम करना पड़ता है, वे बहुत तर और कहीं-कहीं ठंढे भी हैं। ग़रीबीके कारण वे लोग काफ़ी परिमाणमें पुष्टिकर भोजन नहीं पा सकते। उनमें दो-चार ही इस क़ाबिल होते हैं कि वे कामके वक्तके लिए अलग कपड़े रख सकें। अक्सर एक आदमीके पास सिर्फ़ एक कम्बल होता है, जिसे वह दिनमें बरसातीकी जगह इस्तेमाल करता है और रातमें बिछाता है, चाहे वह गीला हो या सूखा। अतः कोई यह ताज्जुबकी बात नहीं कि वे बड़ी तादादमें सीनेकी बीमारियों, खासकर निमोनियाके शिकार होते हैं।

कहीं कहीं इन सड़क बनानेवालोंको मलेरिया-पूर्ण जगहमें रहना पड़ता है। जंगलसे गुज़रनेवाली सड़कें ज़्यादातर इन्हीं लोगोंकी बनाई हुई हैं। यदि बनाई हुई नहीं हैं, तो कम-से-कम उनको ठीक दशामें रखनेका भार इन्हीं भारतीय मज़दूरोंपर है। ये लोग उन्हीं स्थानोंपर झोपड़ोंमें रहते हैं। इन झोपड़ोंका बाहरी हिस्सा बदसूरत होता है और भीतरी हिस्सा तकलीफ़देह और आदमियोंसे भरा हुआ। बीच बीचमें मलेरियाका हमला उन्हें बेकार करता है और थोड़े दिनों बाद एकदम कमज़ोर बना देता है। जब वे एकदम बेकार हो जाते हैं, तो वे भारतवर्षके अपने गाँवोंको लौट जाते हैं, जहाँ वे अपने रिश्तेदारोंपर भार होकर रहते हैं और देशको ऊपर नहीं उठने देते।



चायकी पत्तियाँ चुननेवाला एक छोटा भारतीय बालक
(यह चाय-स्टेट चार हजार फीटकी ऊँचाईपर है और यहाँ वर्षमें दो सौ इन्च पानी बरसता है।) (कापीराइट)

लंकाकी सरकार सड़क तथा पब्लिक इमारतें बनानेके लिए इन भारतीय मज़दूरोंपर इतनी अधिक निर्भर रहती है कि वह हर साल नये मज़दूरोंको बुलानेके फंडके लिए लेजिस्लेटिव कौन्सिलसे एक लाख रुपया मंज़ूर कराती है। आर्थिक कठिनाईके कारण इस वर्ष लोगोंने इस रक़मको आधा करना चाहा था मगर सरकारने उन्हें धमकाकर उसे ज्यों-का-त्यों पास कराया।

जिस फण्डके लिए यह रक़म दी जाती है, वह एक खास क़ानूनके अनुसार स्थापित किया गया था। इस क़ानूनको



कोठीके छोटे-छोटे भारतीय-मजदूर जो छः हजार फीटकी ऊंचाईपर काम करते हैं। (कापी-राइट)

प्लैन्टरोंने लेजिस्लेटिव कौन्सिलसे पास कराया था, जिससे उन्हें अपनी चाय, रबर, इलायची और नारियलकी खेतियोंके लिए काफ़ी मज़दूर मिलते रहें। इस फण्डमें अब लगभग डेढ़ करोड़ रुपया होगा। कुछ वर्षोंसे लंकाकी सरकार इस फण्डका बन्दोबस्त करती है, मगर जिन ज़रियोंसे यह रुपया खर्च होता है, वे अभी तक पूरे तौरपर सरकारके हाथमें नहीं हैं।

हमारे लगभग सात लाख देशवासी लंकाकी कोठियोंपर रहते हैं। इनमें छोटे बच्चों और अपाहिज बूढ़ोंको छोड़कर बाक़ी सब सूर्योदयसे सूर्यास्त तक, कोठियोंके मालिकोंके वास्ते गहरा मुनाफ़ा पैदा करनेके लिए मेहनत किया करते हैं।

इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि किसी भी कारणसे हिन्दुस्तानसे लंकामें मज़दूर भेजना बन्द हो जाय, तो इन कोठियोंमेंसे अधिकांश ऊसर हो जायें। लंकाकी आबादी बहुत कम है, और सिंहली लोग लगातार नियम-पूर्वक बड़ी मेहनत करनेके बहुत शौक़ीन भी नहीं हैं, अतः भारतीयोंकी सिर्फ़ ज़रूरत ही नहीं, बल्कि बहुत बड़ी संख्यामें ज़रूरत है।

(७)

भारतीय मज़दूरोंकी ज़रूरत इतनी अधिक है कि प्लैन्टर लोग, ऊपर कहे हुए फंडके अलावा अपने निजी एजेन्ट (कंगानी) रखते हैं। ये एजेन्ट मज़दूरोंको भरती करनेका काम करते हैं। ये लोग लंकाकी कोठियोंसे दक्षिण भारतके गाँवोंमें जाते हैं। मालूम हुआ है कि इनको एक मज़दूर भरती करनेके बदलेमें दस रुपयेसे बीस रुपये तक मिलते हैं। इसके अलावा इन्हें 'पेन्स मनी' भी मिलता है, अर्थात् उनके लाये हुए मजदूर जितने दिन तक खेतीपर काम करते हैं, उतने दिन तक उन्हें प्रतिदिन प्रति मज़दूर कुछ पैसे मिला करते हैं।

इस प्रकार भारतीय मजदूर दो अस्वाभाविक तरीक़ोंसे यहाँ लाये जाते हैं—

(१) दक्षिण-भारतके कई केन्द्रोंमें खर्चीले अड्डे क़ायम कर रखे गये हैं, जो लगातार प्रचार (प्रोपेगेंडा) करके ग़रीब भारतीयोंका मन लंकाकी खेतियोंकी ओर फिराया करते हैं। (२) लेकिन केवल यह उपाय काफ़ी नहीं होता। इसकी सहायताके लिए व्यक्तिगत कोशिशकी ज़रूरत होती है, जो लंकासे भेजे हुए एजेन्ट लोग करते हैं।

यह भी बतला देना चाहिए कि इन एजेन्टोंके धावोंकी संख्या साल भरमें हज़ारों तक पहुँचती है।

ये एजेन्ट लंकाके जीवनका हाल बड़े सुनहरे रंगोंमें दिखाते हैं। उन्हें सब्जबाग दिखलाते और उनमेंसे कुछ लोग धोखेबाजीसे कभी नहीं चूकते। हरसालमें बहुतोंपर उनकी धोखेबाजी प्रकट हो जानेपर मुक़दमा चलता है, और वे जेलकी हवा खाते हैं, मगर हज़ारों मामलोंमें यह धोखेबाज़ी प्रकट नहीं हो पाती। इस प्रथामें बड़ी ज्यादतियां होती हैं। कुछ भी हो, यह भारतके राष्ट्रीय सम्मानके एक दम विरुद्ध है। यह तो एक तरहसे मानवी-जानवरोंकी चालानी हुई ! केवल जो जाति बहुत पतित हो गई है, वही इसे सहन कर सकती है।

(८)

इन एजेन्टोंके भरती किये हुए मज़दूर मद्रास-सूबेके ही



लंकाकी एक चायकी खेतीकी 'लाइन'—मजदूरोंके रहनेका स्थान। (कापीराइट)

कुछ सुधार किया गया है, लेकिन मैं आगे दिखलाऊँगा कि स्थिति अब भी बहुत असन्तोष-जनक है। मज़दूरी सम्बन्धी अपराधोंके लिए कोड़ोंकी और जेलकी सज़ा उठा दी गई है। क़ानूनके अनुसार मज़दूरोंकी मज़दूरीसे उनको कर्ज़ दिया हुआ रुपया काटा नहीं जा सकता। कम-से-कम मज़दूरीकी दर—यद्यपि वह बहुत ही अपर्याप्त है—निश्चित कर दी गई है।

मन्डापन नामी स्थानमें रोक कर रखे जाते हैं। वहाँ उनके रोक रखनेके लिए एक कैम्प क़ायम कर रखा गया है। यह कैम्प न तो भारत-सरकारका है और न प्रान्तीय सरकारका, और न उसके अफसर ही भारतसे वेतन पाते हैं। उसकी ज़मीनका पट्टा ले रखा गया है, और उसपरकी इमारतोंकी मालिक लंकाकी सरकार है, और लंकाकी सरकार ही—जो भारत-मंत्रीके भी अधिकारसे बाहर है—उस कैम्पको चलाती है।

इस कैम्पमें भारतीय मज़दूरोंको एक हफ्ते तक ज़रूर ही ठहरना पड़ता है। वहाँ उनकी डाक्टरी-परीक्षा ही नहीं होती, बल्कि उनका बड़ा बेढब डाक्टरी-इलाज होता है, जिससे उन्हें गठिया, हैज़ा, चेचक इत्यादि फैलनेवाली बीमारियाँ न हो सकें।

जब कैम्प-अधिकारियोंको विश्वास हो जाता है कि अब ये मज़दूर लंकामें किसी तरहकी बीमारीकी छूत नहीं ले जा सकेंगे, तब वे उन्हें लंकाको भेजते हैं। जिन जहाज़ोंपर वे तलाइमनार (लंकाका बन्दर) ले जाये जाते हैं, और जिन तीसरे दर्जेकी गाड़ियोंमें कोठियोंपर भेजे जाते हैं, उनमें बड़ी भीड़ रहती है। मैंने इन यात्राओंमें पानी तथा अन्य सुविधाओंकी कमीकी भी शिकायतें सुनी हैं।

(९)

न्यायकी दृष्टिसे मैं यह भी स्वीकार करूँगा कि पिछले कुछ वर्षोंमें लंकाके खेतियोंपर रहनेवाले भारतीयोंकी दशामें

मज़दूरोंके रहनेकी 'लाइन' (झोंपड़े) और उसके आसपास भी सुधार किया गया है। अक्सर पम्पके पानीका भी बन्दोबस्त किया गया है। एक नये क़ानूनके अनुसार दस वर्षसे कम उम्रके बच्चोंसे मज़दूरी कराना बन्द कर दिया गया है। कुछ कोठियोंपर स्कूल भी खोले गये हैं। भारत-सरकारने भी एक नवयुवक भारतीय सिविलियनकी अध्यक्षतामें लंकामें एक दफ्तर खोल रखा है, जो इन भारतीयोंकी दशापर निगाह रखता है।

मैं इन सुधारोंके महत्त्वको कम नहीं करना चाहता, मगर मैं यह ज़रूर कहूँगा कि अपनी लम्बी और परिश्रम-पूर्ण जाँच-पड़तालके बाद मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि भारतीय मज़दूर इन कोठियोंपर जिस दशामें रहते हैं वह सन्तोषप्रद होनेसे बहुत दूर है, आप उसे चाहे जिस दृष्टिसे देखें। यह बात खास तौरपर उन कोठियोंके लिए लागू है, जिनके मालिक और सचालक सिंहली या (मुझे दुःख है कि) भारतीय हैं।

(१०)

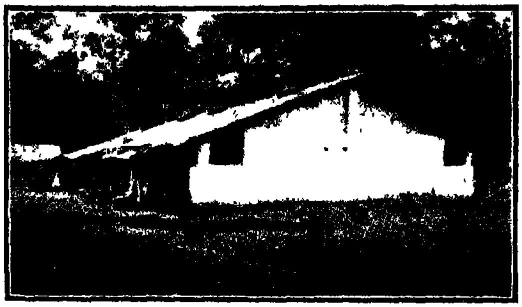
मैं पहले आर्थिक विषयपर विचार करता हूँ। कम-से-कम मज़दूरी आठ आने प्रतिदिन पड़ती है। यह केवल नक़द मज़दूरी है, किराया इसमें शामिल नहीं है, क्योंकि मज़दूर लोग मालिकोंकी दी हुई 'लाइन'में मुफ्त रहते हैं। उन्हें कुछ और भी आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त हैं—जैसे, वे चावल कोठीवालों ही से खरीदते हैं। इसे बेचनेमें यद्यपि कोठीके

मालिकोंको कोई नुकसान या कम-से-कम ज्यादा नुकसान तो नहीं होता, मगर मज़दूरोंको मामूली दूकानोंकी बनिस्बत सस्ता मिलता है। दस वर्षसे कम उनके बच्चोंको दोपहरको भात और ज़रा-ज़रासी कढ़ी मुफ्त मिलती है। कुछ कोठियोंने यह भी सम्भव कर दिया है कि मज़दूर लोग स्वयं अपनी तरकारी बो सकें और बकरी पाल सकें। उन्हें जलानेके लिए सूखी हुई लकड़ियाँ बटोरनेकी भी इजाज़त है। डाक्टरी सहायता (जैसी वहां है) उन्हें मुफ्त मिलती है। बच्चा उत्पन्न होने और किसीकी मृत्यु होनेपर मज़दूरोंको उनके खर्चका भार कुछ कम करनेके लिए एक छोटीसी रक़म मिलती है।

इन सब सुविधाओंको भी ध्यानमें रखते हुए नक़द मज़दूरी इतनी नहीं होती, जिससे मज़दूरका खर्च निपट सके। एक परिवार कड़ी मेहनत और कंजूसी करके भी कुछ बचा नहीं सकता। उनमेंसे अधिकांश सदा कर्ज़दार ही बने रहते हैं। उनकी मज़दूरीका ज्यादा भाग मज़दूरी मिलते ही कंगानीके पंजेमें पहुँच जाता है, जो भारतसे उन्हें यहां लाया है, या दूकानदारके घर जा पहुँचता है। ये कर्ज़ देनेवाले लोग गृद्धोंकी तरह मज़दूरोंपर मँडराया करते हैं, और जैसे ही मालिक लोग उन्हें मज़दूरीके दस-पाँच रुपये देते हैं, वैसे ही ये उनपर टूट पड़ते हैं।

प्लैन्टर लोग इन बातोंसे इनकार नहीं कर सकते, मगर वे यह बतानेकी चेष्टा करते हैं कि ये मज़दूर फिज़ूल खर्च हैं। वे उन मनी-आर्डरोंका भी ज़िक्र करते हैं, जो बराबर हिन्दुस्तानको भेजे जाते हैं।

मुझे निश्चय है कि इन मनी-आर्डरोंको मामूली मज़दूर नहीं भेजते, बल्कि मुख्यतया कंगानी, ओवरसियर, खजांची और क्लार्क आदि भेजा करते हैं। फिर यह भी ध्यानमें रखना ज़रूरी है कि लंकाकी खेतियोंपर काम करनेवाले मज़दूरोंकी संख्या लाखोंपर पहुँचती है। अतः यदि हर साल हर आदमी दो-चार रुपये भी भेजे, तो उसका टोटल तो बहुत बड़ा दिखाई देगा। यह किसी तरह भी, भारतीय मज़दूरोंकी खुशहालीका सबूत



अधिकांश भारतीय-मजदूरोंके रहनेके गृह
'मधुर गृह' का नमूना। (कापीराइट)

नहीं समझा जा सकता। मेरा विश्वास है कि मज़दूर बड़ी कठिनाईमें रहते हैं। अगर वे कुछ बचाते भी हैं, तो भयंकर शारीरिक मेहनत करके और अपने बच्चोंका भविष्य बरबाद करके।

भारतीय मज़दूर जो खाना खाते हैं, उसमें 'स्टार्च'के अलावा और कोई चीज़ बहुत थोड़ी होती है। उनके पास घीके दाम नहीं होते, और उन्हें तेल भी मुश्किलसे मिलता है। यदि उनके पास एकआध बकरी भी हुई, तो उसका दूध इतना कम होता है, जिससे बच्चों ही की ज़रूरत पूरी नहीं होती, अथवा कभी-कभी वह अपनी आमदनीको बढ़ानेके लिए उसे भी कुछ पैसोंपर बेंच देता है। उनका भोजन परिमाणमें अपर्याप्त और सारहीन होता है।

लंकाकी स्टेटोंमें रहनेवाले हमारे भाई जो कपड़े पहनते हैं, वे तन्दुरुस्ती और आरामकी दृष्टिसे बहुत कम होते हैं। वे नंगे-पैर रहते हैं ; उनकी टाँगें घुटने तक, और कभी-कभी जाँघों तक खुली रहती हैं। द्वीपके जो हिस्से ठंढे हैं और जहां पानी भी बहुत बरसता है, वहां भी उन्हें सिर्फ़ एक कम्बलपर ही गुज़र करनी पड़ती है। उसी कम्बलसे वे सर्दी मिटाते हैं और वही पानी बरसतेमें उनको बरसातीका काम भी देता है। उनके पास दूसरा कम्बल शायद ही कभी होता हो। अतः रातमें वे उसी भीगे हुए कम्बलको ओढ़ते हैं, इस विषयमें कोठियोंके मज़दूरोंकी हालत वैसी ही खराब है, जैसी पी० डब्ल्यू० डी० के मज़दूरोंकी।

इस प्रकारसे कम भोजन खाकर और नंगे रहकर ये भारतीय मज़दूर बहुत जल्द निमोनिया तथा अन्य सब प्रकारकी बीमारियोंके शिकार हो जाते हैं। यहां तक कि लंका-सरकार द्वारा प्रकाशित डाक्टरी रिपोर्ट भी इस बातपर पर्दा नहीं डाल सकती।

इन दशाओंसे मज़दूर लोग जल्द ही बुड्ढे हो जाते हैं, और उनकी ज़िन्दगी कम हो जाती है। जब वे लंकाके कामके लायक़ नहीं रह जाते, तब वे पब्लिक या निजी पैसेसे भारतवर्षको वापस भेज दिये जाते हैं। इन लोगोंके शेष जीवनका भार भारतपर पड़ता है। तन्दुरुस्तीके बीमे, बुढ़ापेकी पेन्शन अथवा प्रॉविडेन्ट-फंडकी कोई व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार भारतवर्षको एक ही प्रकारसे नहीं, बल्कि कई प्रकारसे नुकसान पहुँचता है।

कोई भी व्यक्ति, जिसने लंकाके स्टेटोंमें भारतीय मज़दूरोंकी दशाका अध्ययन किया है, किसी अन्य निर्णयपर नहीं पहुँच सकता, सिवा उस निर्णयके, जिसपर मैं पहुँचा हूँ। यहां तक कि भारत-सरकारके एजेन्ट मि० एम० एम० एम० हैदरीने, जो स्वयं भी पुराने विचारोंके हैं और जिन्हें अपने पदके कारण भी कुछ कहनेमें सावधानी रखनी पड़ती है, अपनी सन् १६२८ की रिपोर्टमें लिखा है—"यदि कोई यह प्रश्न करे कि इन मज़दूरोंको, वे चाहे जितने ही ग़रीब क्यों न हों, दूसरे देशमें जाकर वर्षों तक मेहनत करनेका क्या स्थायी लाभ होता है? तो इस प्रश्नका कोई साफ़ जवाब नहीं मिलता।"

(११)

मैं यह ऊपर बतला चुका हूँ कि लंकाके भारतीय मज़दूर खुशखुर्रम नहीं हैं। यदि वे खुशखुर्रम होते, तो भी वे दूसरोंके गुलामोंके ही समान होते। दो वर्ष पहले जब मैं इन बातोंका ज़िक्र करता था, तब लंकाके राजनैतिक नेता मुझे यही सलाह देते थे कि मैं चुप रहूँ। वे लोग डरते थे, क्योंकि वे जानते हैं कि लंकामें प्लैन्टर लोग सर्वशक्तिमान हैं, मगर जब राज्य-संगठनकी नई योजना प्रकाशित हुई, जिससे बहुतसे हिन्दुस्तानियोंको भी वोटका अधिकार प्राप्त होनेकी सम्भावना हुई, तो उनका रुख बदल गया। कुछ सिंहली बौद्धोंको भय होने लगा कि सिंहली तामिल, भारतीय तामिलों तथा अन्य अल्पसंख्यक जातियोंसे मिलकर लंकामें उनके प्रधानत्वको धक्का न पहुँचायें। वे लोग भारतीयोंकी अर्ध-गुलामीकी दशाका खुल्लमखुल्ला वर्णन करने लगे, और कहने लगे कि ऐसे पराधीन लोगोंको वोटका अधिकार देनेसे लंकाका भविष्य खतरेमें पड़ जायगा।

भारतीय लंकाके स्टेटोंमें औद्योगिक गुलाम-मात्र हैं, इस बातकी गूँज लंकाकी व्यवस्थापिका-सभा तकमें पहुँच गई। आनरेबुल मि० एम० एफ० मोलामूरेने, जो एक सिंहली बौद्ध हैं और कुछ दिन पूर्व लंका सरकारकी कार्यकारिणी-समितिमें अस्थायी पदपर थे, सभामें भारतीयोंको वोटके लिए अयोग्य बताते हुए अपने कथनके समर्थनमें एक चिट्ठी उद्धृत की थी। यह चिट्ठी कोलम्बोके एक समाचारपत्रमें प्रकाशित हुई थी। उसमें कहा गया था—

(१) लंकाकी खेतियोंपर काम करनेवाले भारतीय मज़दूर अन्य मज़दूरोंकी भांति 'स्वतन्त्र मनुष्य' नहीं हैं।

(२) वे दूसरोंके दबावमें रहते हैं। 'कोई खेतिओंपर जाकर मजदूर-समिति नहीं बना सकता' और न 'हड़तालका अस्त्र' व्यवहार कर सकता है।

(३) वे स्वयं अपनी मर्ज़ीसे यहाँ नहीं आये, बल्कि उन्हें लालचसे भरती करके लाया गया है।

(४) उनकी नाप हुई थी।

(५) उनके अंगूठेके निशान लिये गये हैं, उनके गाँव तथा मा-बापका नाम-धाम दर्ज किया गया है, और वे कन्ट्रोलर-आफ़ इंडियन इमीग्रान्ट लेबरकी देख-रेखमें यहाँ लाये गये हैं, जैसे क़ैदी लोग पुलिसकी निगरानीमें लाये जाते हैं।

(६) एक बार जब वे अपने नये वास-स्थानमें दाखिल हो गये, तब वह उनके लिए "मधुर गृह' होनेके बजाय 'जेलखाना' ही होता है।" वहाँ अन्य किसीका जाना



ये नौ प्राणी दो भिन्न-भिन्न कुटुम्बोंके हैं, जिनका एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं। ये एक धनी सिंहलीकी खेतीपर 'लाइन' के एक ही छोटेसे कमरेमें एक मुर्गी और चार चिगनोंके साथ रहते थे। जिस समय यह तस्वीर ली गई है उस समय उन्हें इस प्रकारसे रहते हुए तीन सप्ताह हो चुके थे।

यदि इन सिंहली बौद्ध महाशयने व्यवस्थापिका-परिषदमें इन बातोंको भारतीय कुलियोंकी दुर्दशा मिटानेकी इच्छासे पढ़ा होता, तो मैं सबसे पहले उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता, मगर उन्होंने इन्हें भारतीय कुलियोंको मताधिकारसे वंचित रखनेके लिए लिखा था। दूसरे शब्दोंमें, उनकी मंशा यह थी कि ये भारतीय कुली अपनी वर्तमान गुलामीमें बने ही न रहें, बल्कि उन्हें वह अस्त्र भी प्राप्त न हो सके, जिससे वे भविष्यमें भी इस गुलामीसे छुटकारा पानेके योग्य हो सकें।

केवल इन्हीं बौद्ध सिंहली मेम्बरने यह कोशिश नहीं की, और भी कई लोगोंने भारतीयोंकी अर्ध-गुलाम दशापर ज़ोर देकर द्वीपके और सब भारतीयोंको भी वोटके-अधिकारसे वञ्चित रखनेको उचित बताया।

मना है। वहाँ कोई बाहरी पुरुष खेतीके सुपरिन्टेन्डेन्टकी आज्ञाके बिना नहीं घुस सकता। वे मज़दूर 'खेतीके क़ानूनके अन्दर' हैं, और 'नियन्त्रणमें' रहते हैं।

(७) कोयलेके मज़दूर, खानोंके मज़दूर, म्युनिसिपेलिटीके कुली और पी० डब्ल्यू० डी० के मज़दूर यद्यपि नियन्त्रणमें नहीं रहते, मगर फिर भी उनकी तनख्वाह और दशा कोठियोंके भारतीय मज़दूरोंसे कहीं अच्छी है।

(८) कोठियोंके भारतीय कुलियोंमें किसीकी भी सन्तान शिक्षा द्वारा (खेतीके स्कूलोंकी शिक्षा द्वारा) अपनी स्थितिको उन्नति नहीं कर सकी है।

(६) खेतीके मज़दूर एक 'अलग क़ानूनमें आते हैं' और अब तक सब व्यावहारिक बातोंमें अर्ध-गुलामीकी ही दशामें हैं, अतः वे अपने वोटके अधिकारको बुद्धिमत्तासे व्यवहार नहीं कर सकते।

(१०) उनपर जो नियन्त्रण रखा जाता है, वह उनके उनके मालिकोंके फायदेके लिए है, न कि उनके फायदेके लिए।

जिस समय ये बातें हो रहीं थीं, उस समय भारत-सरकारका एजेन्ट भी व्यवस्थापिका-सभामें बैठा था। उसने भी इन बातोंसे कोई इन्कार नहीं किया। यदि उसने भारत-सरकारको इसके लिए लिखा भी हो, तो भारत-सरकारने न तो अब तक इन बातोंकी असत्यतापर कुछ प्रतिवाद प्रकाशित किया है, और न उसने—यदि ये बातें सत्य हैं, तो—इन लाखों अर्ध-गुलाम भारतीयोंको गुलामीसे छुड़ानेके ही लिए कुछ किया है।

अब तक लंका-सरकारने भी न तो इन बातोंको झूठा ही बताया है, और न भारतीयोंकी औद्योगिक गुलामी मिटानेके लिए ही कुछ किया है। उनकी यह चुप्पी अर्थपूर्ण है।

(१२)

इस बीचमें कोलोनियल आफिसने वोट देनेके अधिकारके नियम स्वीकृत कर दिये हैं। नियम जान-बूझकर ऐसे बनाये गये हैं, जिनसे भारतीयोंको बड़ी संख्यामें वोट-अधिकार न मिलने

पावे। केवल कुछ धनी भारतीयोंको छोड़कर शेष भारतीयोंको वोट देनेका अधिकार यदि मिलेगा भी, तो उन्हें अपनी वह भारतीय नागरिकताको तिलांजलि देनेपर ही मिलेगा। परन्तु इसके विरुद्ध कोई भी अंग्रेज़ अपनी नागरिकता खोये बिना ही वोट देनेका अधिकार प्राप्त कर सकता है। इतना होते हुए भी नियम ऐसे बनाये गये हैं कि यदि भारतीय इतना त्याग करनेको तय्यार भी हों, तो वे प्रायः वोट प्राप्त न कर सकें।

लंकाके गवर्नरने अपने जीवनका बड़ा भाग दक्षिण-अफ्रिकामें बिताया है, अतः उनके भारत-विरोधी बातोंके समर्थनपर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। वे यह दिखलानेकी कोशिश कर रहे हैं कि लंकामें भारतीयोंका कोई विरोधी नहीं है! शायद उन्होंने अभी तक लंकाका इतिहास नहीं देखा, जिसमें तामिल और सिंहली सदियोंसे लड़-भिड़ रहे हैं। बौद्ध लोग खास तौरपर तामिलों ही से शत्रुता रखते हैं, क्योंकि पुराने समयमें तामिल आक्रमणकारियोंने बौद्धोंके मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। लंकामें तामिल लोग इतनी घृणाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं कि किसी सिंहलीकी सबसे बड़ी गाली देना उन्हें 'तामिल' पुकारना है।

बहुतसे सिंहली राजनीतज्ञोंमें केवल यह घृणा ही नहीं पाई जाती, बल्कि चूँकि वे बहुतसे भारतीय मज़दूरोंको नौकर रखते हैं, अतः वे डरते भी हैं कि यदि भारतीयोंको भी समान राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो जायँगे, तो फिर वे समस्त संसारसे अलग रहकर इन खेतियोंपर गुलामीका जीवन न व्यतीत करेंगे, और ज़्यादा मज़दूरी तथा सुविधाएँ माँगने लगेंगे। लंकाके ये राजनीतज्ञ स्वार्थपरतासे भरे हैं।

यदि कुछ अनहोनी बात—जिसका मुझे पता नहीं है—न हो, तो ये नियम शीघ्र ही कानूनमें परिणत हो जायँगे, और इस द्वीपके भारतीयोंका अधिकांश भाग राजनैतिक गुलामीमें ढकेल दिया जायगा, जब कि द्वीपके और सब अधिवासियोंको अंग्रेज़ों समेत—वोटका अधिकार मिल जायगा। लंकामें रहनेवाले हमारे भाइयोंमें प्रायः नौ आदमियोंमें सात आदमी अभी भी औद्योगिक गुलाम कहे जाते हैं।

यदि भारतवर्ष इस स्थितिसे अपना अपमान समझता है, तो उसे इसका क्रियात्मक प्रमाण देना चाहिये। इस मामलेमें भारतवर्षकी चुप्पीके कारण, उसकी अज्ञानता या उदासीनता—अथवा ये दोनों ही बात हैं। यह चुप्पी शक्तिकी कमीसे नहीं है। लंका अपने खाद्य-पदार्थों और मज़दूरोंके लिए इतनी बुरी तरह भारतवर्षपर निर्भर है कि यदि इस मामलेमें हमारी सरकार ज़रा भी दृढ़ता दिखलावे, तो लंकाके भारतीयोंकी औद्योगिक और राजनैतिक गुलामियां तुरन्त ही ख़तम हो जायँ।

न्यूज़ीलैण्डका जीवन

[लेखक :—डा० बलवन्त सिंह शेर, एम० डी०, डी० पी-एच० सी० टी० एम०]

न्यूज़ीलैण्ड एक स्वराज्य-प्राप्त अंग्रेज़ी उपनिवेश है। उसका क्षेत्रफल १०२२४० वर्गमील और जन-संख्या तेरह लाखसे ऊपर है। वह कलकत्तेसे सात हज़ार मीलसे कुछ अधिक दूर होगा। कलकत्तेसे वहां तक यात्रा करनेमें चालीस दिन लगते हैं।

न्यूज़ीलैण्डमें गोरोंकी आबादी कोई बारह लाख पचहत्तर हज़ार, वहांके आदिनिवासी अर्थात् माओरियोंकी संख्या लगभग ५४०००, चीनियोंकी संख्या तीन हज़ार और भारतवासियोंकी संख्या लगभग पाँच सौ है। न्यूज़ीलैण्डके सबसे बड़े शहर आकलैण्डकी आबादी डेढ़ लाखसे कुछ अधिक है।

साधारणतया वहांका रहन-सहन यूरोपीय ढंगका है। हाँ, देहाती माओरियोंके रहन-सहनमें ज़रूर अन्तर है। मज़ेकी बात तो यह है कि माओरी, जो डील-डौलमें बड़े हृष्ट-पुष्ट हैं, आरम्भमें कोई ४५०० वर्ष पहले पंजाबसे यहाँ आये थे। वे वास्तवमें आर्य तथा गोंडाल, कनाका, कोल, कोलोरियन, भूमि और नागा जैसी भारतके आदिम निवासियोंके मिश्रित

रज-वीर्यसे उत्पन्न हुए हैं। ज्यों-ज्यों ये लोग पूर्वकी ओर बढ़ते आये, त्यों-त्यों उनमें मंगोलियन रक्तका मिश्रण होता गया, और मलाया, सुमात्रा, जावा आदिको पार करनेपर कोई अठारह सौ वर्ष पहले ये दो भिन्न-भिन्न शाखाओंमें विभक्त हो गये। इनमें एक शाखा, जो बोर्नियोसे प्रशान्त महासागरके उत्तरीय द्वीपोंकी ओर बढ़ी 'कनाका'के नामसे विख्यात हुई, और दूसरी जो सेलीबीस और बालीके द्वीपोंसे गुजरती हुई अन्तमें न्यूज़ीलेण्ड आकर बस गई, 'टंगटा'के नामसे प्रसिद्ध हुई।

कुछ लड़ाइयाँ लड़कर अंग्रेज़ोंने सन् १८४० में न्यूज़ीलेण्डपर कब्ज़ा कर लिया, और उसके बारह वर्ष बाद इस उपनिवेशका नाम न्यूज़ीलेण्डका उपनिवेश रख दिया गया।

भारतवासी, उल्लेख-योग्य संख्यामें, सन् १९१३ से न्यूज़ीलैण्ड आये। पहले उनका अपूर्व स्वागत किया गया, मगर इस समय तो बात ही और है। इस समय प्रवासी भारतीय दुनियाँ-भरमें सबसे अधिक अभागे हैं—विशेषकर इस बातमें कि आदिमें वे प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथाके शिकार थे, अतः बाहरी दुनियाँको सम्भवतः यह धारणा हो गई है कि भारतीय कुलियोंकी जातिके हैं। मालूम होता है कि कोई यह जानता ही नहीं है कि भारत-भूमि सभ्यता और ज्ञानकी जननी है, और भारतीयोंने समस्त सभ्य-संसारमें अपने उपनिवेश बसाये थे। जब मैं पहले-पहले यहाँ (आकलैण्ड) आया था, तब मुझसे ऐसे प्रश्न किये जाते थे, जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता था। कोई कहता—"आपने अंग्रेज़ी कहाँ सीखी?" कोई पूछता—"भारतवर्षमें डाक्टर भी हैं?" कोई प्रश्न करता—"भारतवर्षमें कालेज और विश्वविद्यालय हैं?" आदि-आदि। ये प्रश्न इस बातको सिद्ध करते हैं कि बाहरके आदमी वास्तविक भारतके प्रताप और प्राचीन संस्कृतिके सम्बन्धमें कितना कम जानते हैं। उनका यह अज्ञान किसकी ग़लतीसे है? क्या भारतवर्ष अपने सुन्दर नामपर कलंक-कालिमा पोतनेके लिए केवल कुलियोंको ही बाहर भेज सकता है? भारत-माता अपनी कीर्तिको उज्ज्वल करने तथा सांसारिक पश्चिमको आध्यात्मिक उत्थानकी शिक्षा



डा० बलवन्तसिंह शेर

देनेके लिए अपने कुछ अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियोंको बाहर क्यों नहीं भेजती? पुराने ज़मानेमें जो घातक भूल हो गई थी, उसका निराकरण इससे बहुत पहले ही हो जाना चाहिये था। पहले हीसे एक ऐसी संस्था होनी चाहिए थी, जो प्रवासके लिए आदमी चुन-चुनकर भेजती। भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके ख्यालसे किसी भारतीयको तब तक किसी देशमें न जाना चाहिए, जब तक वह उस देशकी भाषा तथा रीति-रिवाजोंको अच्छी तरह जान न ले। उन्हें उपनिवेश-वासियोंकी भाँति दूसरी जगह बसनेके लिए जाना चाहिए, न कि उड़ते हुए पक्षियोंकी भाँति। भारतीयोंको जिन लोगोंके बीचमें रहना है, उनके सामाजिक नियमोंका पालन करना चाहिए। उन्हें उनके भाईबन्द बनकर रहना चाहिए। इस

प्रकार विदेशी बनकर न रहना चाहिए, जिससे उनके दिलोंमें—जो पहले ही से सहानुभूति-पूर्ण नहीं होते—काँटेकी तरह खटके। यहां जो भारतीय हैं, उनका अन्तिम उद्देश्य कुछ रुपया कमा लेना और इस रुपयेका कुछ भाग शराब पीने और घुड़दौड़ खेलनेमें बरबाद करनेके बाद, बाक़ीको लेकर हिन्दुस्तानको—जहां वे अपनी स्त्री-बच्चोंको छोड़ आये हैं—लौट जाना है।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि न्यूज़ीलैण्डमें ऐसे भी भारतीय हैं, जो बरसोंसे सभ्य-संसारके साथ रह रहे हैं, फिर भी किसी प्रतिष्ठित भारतीय महिलाको देखकर न अपनी टोपी उठाते हैं और न किसी दूसरे ढंगसे ही उसके प्रति उचित सम्मान प्रकट करते हैं। हमारे साथियोंकी यह विशेषता है कि उनमें इस प्रकारकी छोटी-छोटी शिष्टाचार सम्बन्धी बातें नहीं पाई जातीं। जनता इन बातोंकी ओर बहुत ध्यान देती है।

अकसर पगड़ी बाँधे हुए भारतीयोंकी टोलियाँ बड़े-बड़े शहरोंकी सड़कोंपर घूमती हुई पाई जाती हैं। उनके खाससे शराबकी बदबू निकला करती है। लोग उनकी बेढंगेपनको घूर-घूरकर देखा करते हैं। इससे उनके प्रति और घृणा पैदा होती है। कभी-कभी उनकी पगड़ियां, जिन्हें वे साफ समझते हैं, इतनी गन्दी होती हैं, जिसका ठिकाना नहीं। मैंने ऐसे आदमी भी देखे हैं, जो शराबके नशेमें मतवाले होकर भीड़-भीड़वाली सड़कोंपर किसी मकानके बरामदेके खम्भोंके सहारे लुढ़के पड़े रहते हैं। अथवा आम सड़कपर लापरवाहीके साथ सरमें साफा लपेटते हुए चले जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि गोरे शराब नहीं पीते। वे हमारी अपेक्षा हज़ार गुना खराब बर्ताव क्यों न करते हों, परन्तु उसपर ध्यान नहीं जाता, क्योंकि वे सब एक ही तरहके होते हैं। परन्तु सरपर सफेद पगड़ी बाँधे हुए एक लम्बे क़दका भारतीय अलगसे साफ दिखलाई पड़ता है, और उसके इस प्रकारके बेढंगे आचरणसे तमाम जातिपर कलंक लगता है। दूसरे देशोंमें बसे हुए भारतके छोटेसे उपनिवेशपर अपने देशकी मान मर्यादाकी रक्षाका बड़ा भारी उत्तरदायित्व रहता है। व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि हरएककी ज़बानसे उनकी तारीफ सुनाई पड़े।



श्रीमती सतवन्त कुँवर, धर्मपत्नी डा० बलवन्तसिंह शेर

चीनी लोगोंके अपने निजके बगीचे हैं, और शाक-भाजीके व्यापारमें उनका एकाधिपत्य है। वे सब संगठित हैं, और हर तरहसे फूलते-फलते हैं। चूंकि वे एक आदरणीय ढंगसे व्यापार करते हैं, इसलिए लोग उनको अधिक सम्मानकी दृष्टिसे देखते भी हैं। लोगोंपर उनका काफी प्रभाव है। दूसरी ओर, भारतीयोंमें कुछ लोगोंको छोड़कर जो नाईका काम करते हैं अथवा शाक-भाजी बेचते हैं, बाकी सब कहीं नालियां खोदा करते हैं, अथवा कहीं कुछ-न-कुछ मज़दूरी किया करते हैं। वे गंदी कोठरियोंमें भूसकी भाँति भरे रहते हैं, क्योंकि वे अच्छे मकान नहीं ले सकते। जन-साधारणकी नज़रोंपर इसका क्या असर पड़ता है, यह स्वतः ही जाना जा सकता है।

वर्तमान क़ानून द्वारा एक प्रकारसे अब भारतीयोंका आना बिलकुल रोक ही दिया गया है। साथ-ही-साथ अधिकारीगण भीतर-ही-भीतर इस बातकी भी चेष्टामें हैं कि जो भारतीय यहाँपर हैं, वे भी धीरे-धीरे खतम हो जायँ।

भारतीय एक दूसरेपर बहुत कम विश्वास करते हैं। इतना विश्वास तो कर ही नहीं सकते कि सब सहयोग करके



श्री जे० के० नैटाली भूतपूर्व प्रेसिडेण्ट न्यूज़ीलैण्ड इण्डियन एसोसियेशन



श्री जे० के० नैटालीकी लड़की

अच्छे पैमानेपर कोई दूकान या स्टोर वग़ैरह खोलें। इस समय यह बहुत ज़रूरी है कि कुछ पढ़े-लिखे भारतीय और बड़े-बड़े व्यापारी देशसे बाहर आवें और अच्छा प्रभाव डालें। माननीय श्रीनिवास शास्त्री, डा० एस० के० दत्त, श्री० जिनराज दास, महाराज राणा भालावाड़, तथा कुछ अन्य लोगोंने यात्राएँ करके तथा भाषण देकर इन देशोंमें भारतीयोंकी हैसियत बढ़ानेमें बड़ी सहायता दी है, परन्तु अभी इस प्रकारके और आदमियोंकी ज़रूरत है।

मुझे अपने कुछ भाइयोंकी धृष्टतापर अकसर हँसी आती है। वे लोग अपने काम-काजमें यूरोपियन लोगोंको तरजीह देते हैं, और स्वयं अपने भाइयोंको नीची नज़रसे देखते हैं, चाहे उस खास काममें वे लोग यूरोपियनोंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त क्यों न हों। मैं समझता हूँ कि ऐसा इसीलिए होता है कि औसत दर्जेके प्रवासी हिन्दुस्तानीकी मानसिक प्रवृत्ति कुछ निम्न-श्रेणीकी है। उसे एकदम अपरिपक्व दशामें, जब सद्व्यवहार और उचित-अनुचितका ज्ञान नहीं होता, तभी अन्य देशोंको चला जाने दिया गया है। हर शख्स अपनेको दूसरेसे बड़ा समझता है और वह दूसरेकी भली सलाहको सुनना ही नहीं चाहता, क्योंकि वह किसी शख्सको सलाह देनेके योग्य समझता ही नहीं। इसका अर्थ यह है कि वे सामाजिक भ्रातृ-भावके बन्धनमें—जिससे भारत-

मालाका नाम हो—बाँधे ही नहीं जा सकते, इसीलिए गोरोंको इन बाराबाट लोगोंसे घृणा करनेका मौका मिलता है।

पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि माओरी लोग तक भारतीयोंसे घृणा करते हैं। वे अपनेको भारतीयोंसे उच्च समझते हैं! इसका कारण क्या है? सीधा, सादा और सरल कारण यह है कि भारतीय लोग जात-पांत, सम्प्रदाय और रीति-रिवाजोंके झगड़ोंसे बेइन्तहा विभाजित हैं। वे इन झगड़ोंको धर्मके नामसे पुकारते हैं, और दुनियाँ भी यही जानती है। भारतीय इन विदेशोंमें भी अपनी रूढ़ियाँ लिए जाते हैं। वे नवीन परिस्थितियोंके अनुकूल नहीं बनते। वे उपनिवेशमें आकर स्थायीरूपसे नहीं बसते। अधिकतर वे अपने जीवनके पुराने ढर्रे और पुराने ढंगके कपड़े-लत्तोंसे चिपके रहते हैं। वे अपने नये देशकी रीति-रिवाजकी नक़ल करनेकी भी चेष्टा नहीं करते। भारतीय नेशनल कांग्रेस या अन्य कोई राष्ट्रीय संस्था प्रवासी भारतीयोंकी श्रेणी (Class) के विषयमें कोई नियंत्रण क्यों नहीं करती? दो-चार ही बन्दरगाह ऐसे हैं, जहाँसे दूसरे देशोंमें बसनेके लिए जानेवाले भारतीय जाते हैं। इन बन्दरगाहोंमें जानेवाले लोगोंके चुनावकी प्रथा जारी करनी चाहिए। उन सब लोगोंको जो हिन्दुस्तानके बाहर जा रहे हों, खाने, पहनने और साधारण व्यवहारकी कुछ खास हिदायतें कर देनी चाहिए, और वे लोग जिस देशको जाते हों, उन्हें उस देशकी भाषा सीखनेके लिए बाध्य करना चाहिए। समस्त बाहरी संसारमें भारतवर्षका नाम रखनेके लिए यह एक राष्ट्रीय कर्तव्य है। आजकलके ज़मानेमें लोग कालरकी निर्मलता, सूटकी सफाई और बूटकी चमकदार पालिशको पहले देखते हैं, फिर कहीं अदब-क़ायदेको। यद्यपि आजकल भारतवर्ष तमाम दुनियाँको 'कुली' देनेके लिए बदनाम हो रहा है, फिर भी वह संसारकी सबसे प्राचीन सभ्यताका आदि स्थान होनेका अभिमान करता है। अगर आप अपनी अन्य बातोंसे कुली-जातिके न जान पड़ें, तो केवल चेहरेके रंगसे कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

क़ानूनन यहांके रहनेवाले समस्त भारतीयोंको वोट देनेका अधिकार तथा समताके अन्य सब अधिकार भी प्राप्त हैं। यहांके समझदार लोग उनके साथ काफ़ी अच्छा व्यवहार भी करते हैं, बशर्ते कि वे लोग स्वयं यह साबित कर दें कि वे उस प्रकारके व्यवहारके पात्र हैं।

सामूहिक रीतिसे न्यूज़ीलैण्डवाले भले आदमी हैं। यदि आप उन्हें यह दिखला सकें कि भारतवासी विद्या, बुद्धि, सलीक़े, रहन-सहन और शारीरिक चुस्तीमें उनके बराबर हैं, वे ईमानदारीसे न्यूज़ीलैण्डमें प्रवासियोंकी भांति बसना चाहते हैं और वहाँके नियमों एवं तरीक़ोंको पालन करनेके लिए तत्पर हैं, तो मुझे विश्वास है कि चाहे कितनी ही अधिक संख्यामें भारतवासी वहाँ जायें, उनके विरुद्ध कोई आवाज़ नहीं उठायेगा। अपने देशवासियोंके विरुद्ध यहांपर जो धारणा है, उसको दूर करनेके लिए मुझे काफ़ी लड़ाई लड़नी है, परन्तु अन्तमें मुझे यह अनुभव हुआ है कि अपने कुछ देशवासियोंके व्यवहारकी अपेक्षा यहांके गोरे निवासियोंके हाथों मुझे अधिक अच्छा बरताव मिला है। यह अवस्था नितान्त शोक-जनक है, परन्तु इससे इस बातका अन्दाज़ लग जायगा कि बाहर जानेवाले भारतीयोंमें कैसी त्रुटियां हैं, और किस प्रकार सावधानीके साथ चुन-चुनकर अपने यहांके आदमी उपनिवेशोंमें भेजने चाहिए।

मौजूदा हालतमें न्यूज़ीलैण्डका दरवाज़ा भारतीय प्रवासियोंके लिए खुलनेकी सम्भावना बहुत कम है। केवल यही एक बात सम्भव है कि भारत-सरकार और न्यूज़ीलैण्ड-सरकारमें आपसमें यह समझौता हो जाय कि भारतवर्षसे केवल उच्च श्रेणीके और सुसंस्कृत लोग ही, जो स्थायीरूपसे वहाँ बसना चाहें, न्यूज़ीलैण्ड जा सकेंगे और उनसे यह आशा की जायगी कि वे वाञ्छनीय नागरिक बनें।

यह मेरी व्यक्तिगत राय है। यह तो देशभक्तों और राजनीतिज्ञोंका, जो इस मामलेको मेरी अपेक्षा कहीं अच्छी तरह समझ सकते हैं, काम है कि वे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नको हल करें। मेरा विश्वास है कि प्राच्य और पाश्चात्यके सहानुभूति-पूर्ण सम्मिश्रणसे दोनोंकी भलाई है।

दक्षिण-अफ्रिकन भारतीय

[लेखक :---श्री ए० क्रिस्टोफर, प्रेसिडेन्ट, दक्षिण-अफ्रिकन इंडियन कांग्रेस]

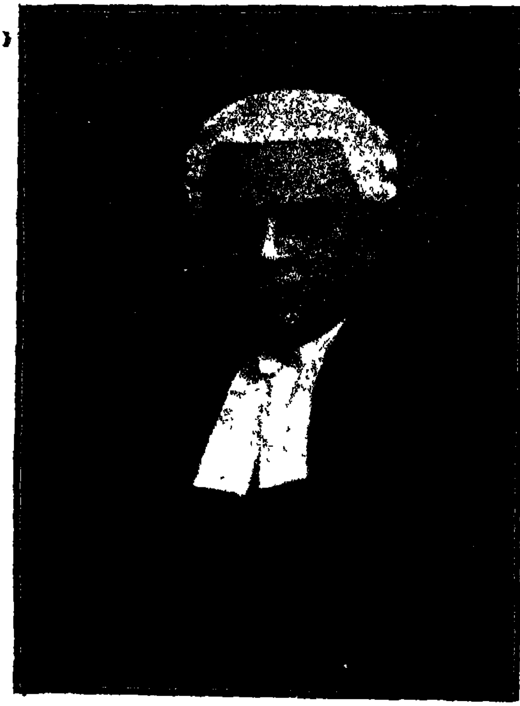
मुझसे मेरे मित्र संन्यासी स्वामी भवानीदयालने कहा कि मैं 'विशाल-भारत' के प्रवासी-अंकके लिए कुछ लिखूं। इसके पूर्व कि मैं उनसे यह पूछ सकूँ कि क्या लिखू, वे चले गये। कुछ दिनों बाद वे फिर आये। मैं उनके आग्रहपर सोच-विचारमें बैठा था। मैंने उनसे कहा—"ज़रा खुलासा करके बतलाइये कि क्या लिखूँ? आपके 'कुछ लिखो' का क्या अर्थ है?" उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—"मेरे 'कुछ' का अर्थ है थोड़ा-थोड़ा सब कुछ।" मुझे भय है कि सब कुछका थोड़ा-थोड़ा कुछ नहींके बराबर होगा, क्योंकि इस देशके भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इतनी बातें हैं कि किसी मैगज़ीनके एक छोटे लेखमें उन सबपर प्रकाश डालना असम्भव है।

मिस्टर गान्धीके इस देशमें आनेके कई वर्ष पूर्वसे इस देशके भारतवासी विशेष क़ानूनोंके शिकार थे। सत्याग्रह-संग्रामके तूफ़ानी दिन हम लोगोंकी यादमें अब तक ताज़े बने हैं; क्योंकि अब तक कभी-कभी बात चीतमें इसबातका ज़िक्र आ जाता है कि सत्याग्रह हम लोगोंका आख़िरी हथियार है, परन्तु मुझे आशा है कि दक्षिण-अफ्रिकामें अपना आत्म-सम्मान क़ायम रखनेके लिए हमें फिर कभी आत्म-शक्तिको इस्तेमाल करनेकी ज़रूरत न पड़ेगी। राष्ट्रीय सरकारने हम लोगोंके प्रश्नको हल करनेकी पूरी चेष्टा की है। कुछ अंशोंमें उसका फल भी अच्छा हुआ है, और कुछ अंशोंमें हम लोगोंके खिलाफ़। फिर भी हम लोग अभी तक जंजालसे बाहर नहीं हो पाये हैं।

भारत-सरकार और दक्षिण-अफ्रिकाकी यूनियन सरकारमें केपटाउनका समझौता उस समय हुआ था, जिस समय हम लोगोंके हृदय बेइन्तिहा विचलित थे। न तो दक्षिण अफ्रिकन भारतीयोंका उसमें कुछ हाथ ही था, और न उन्हें उसमें कुछ कहनेका मौक़ा ही दिया गया, गोकि यह बात सच है कि दक्षिण अफ्रिकन इंडियन कांग्रेसको दक्षिण अफ्रिकाके भारतीयोंकी प्रतिनिधि संस्था समझकर इस समझौतेकी खबर दे दी गई थी, मगर समझौतेके नतीजोंके बारेमें उनसे कोई राय नहीं ली गई थी। फिर भी दक्षिण अफ्रिकन इंडियन कांग्रेसने इस समझौतेको स्वीकार कर लिया था। उसने यह सोचा था कि समय पाकर और एक दूसरेकी बातोंको समझकर इस समझौतेकी अवांछनीय त्रुटियाँ दूर कर दी जायँगी। उदाहरणके लिए—भारतीयोंका स्वदेशको वापस आना। हम भारत-सरकारसे आशा करते हैं कि वह स्वदेशको लौटे हुए भारतीयोंके प्रति अपने कर्तव्यको पूरा करेगी। हम चाहते हैं कि यहाँसे लौटे हुए प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चेको भारतवर्षमें अच्छा चान्स मिले। चूँकि इन लौटनेवालोंके भारत लौटानेमें भारत-सरकारका भी हाथ है, इसलिए भारत सरकारका यह फ़र्ज़ है कि वह देखे कि इन लौटनेवालोंको उपयुक्त अवसर मिलता है। भारतीयोंको भारत लौटानेकी समस्याके और भी कई पहलू हैं, मगर यहाँपर इतना स्थान नहीं है कि उनका ज़िक्र किया जा सके।

केपटाउनके समझौतेको कार्यमें परिणत करनेके लिए भारत-सरकारने यूनियन सरकारकी मज़ूरीसे दक्षिण-अफ्रिकामें अपना एक एजेन्ट नियत किया। मेरी स्वयं व्यक्तिगत राय कभी नहीं थी कि दक्षिण-अफ्रिकामें हमारे अस्तित्वके लिए किसी एजेन्टकी ज़रूरत है। इस सम्बन्धमें बहुतसी बातें विचारणीय हैं। मैं उनमेंसे केवल एक या दोका ही ज़िक्र करूँगा। सबसे मुख्य बात है एजेन्टका व्यक्तित्व। उसे बहुकला-पूर्ण होना चाहिए। वह ऐसा हो, जिसे यूरोपियन और भारतीय—दोनों ही महान् व्यक्ति समझें। इस पदके लिए मि० शास्त्री आदर्श पुरुष थे। जो लोग उनके मतसे सहमत नहीं हैं, वे भी यह आसानीसे स्वीकार कर लेते हैं कि मिस्टर शास्त्रीने दक्षिण-अफ्रिकाके लोगोंके हृदयमें एक

परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। वे स्वयं जन्मसे ही महान् हैं, और वे दक्षिण-अफ्रिकामें जिन लोगोंसे मिले, उन्होंने उन लोगोंके हृदयोंमें महत्ता उत्पन्न कर दी। उन्होंने अपने उत्तराधिकारियोंके लिए महत्ताका एक स्टैन्डर्ड स्थापित कर दिया है। फल यह हुआ कि समस्त दक्षिण-अफ्रिका समझने लगा है कि भारत-सरकारके सभी एजेन्ट ऐसे ही महान् होंगे। यदि उनके उत्तराधिकारी उनकी महत्ताके स्टैन्डर्डको क़ायम न रख सके, तो भारतीय यूरोपियनोंकी निगाहमें गिर जायँगे, और हमारी उन्नतिका विरोधी दल, जो अभी शान्त है, फिर जागृत हो जायगा। हम लोगोंमेंसे बहुतोंको उनके चले जानेका खेद है, क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि अगर वे और अधिक समय तक यहाँ रहते, तो भारतीयों और यूरोपियनोंके बीचके सद्भाव—जिन्हें उन्होंने ऐसी उदारतासे स्थापित किया है—और भी गहरे हो जाते। जब वे दक्षिण अफ्रिकामें थे, तब उन्होंने भी इस बातका अनुभव किया था कि यदि वे हम लोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोंपर दक्षिण अफ्रिकन इंडियन कांग्रेसके बिना ही यूनियन सरकारसे परामर्श करने लग जायँगे, तो भारतीयोंका यूनियन सरकारसे सीधी बात-चीतका सम्बन्ध ही टूट जायगा। एजेन्टसे आशा की जाती है कि वह न केवल हम लोगोंको अपनी दशा सुधारने ही में मदद करे, बल्कि हमें दक्षिण-अफ्रिकाके राजनैतिक क्षेत्रमें सम्मिलित होनेमें भी सहायता पहुँचाये। अगर एजेन्टने हमारी प्रार्थनाके बिना ही यूनियन सरकारसे किसी मामलेपर लिखा-पढ़ी कर ली, तो भला-भला खैर सला, क्योंकि तब यूनियन सरकार हम लोगोंको बिना कुछ जताये केवल एजेन्टसे कार्रवाई किया करेगी। कौन जानता है कि एजेन्ट हमें कहाँ ले जाके पटके। तब हम लोगोंको अन्तमें सत्याग्रह छेड़ना होगा, या अन्य किसी उपायसे भारतवर्ष और दक्षिण अफ्रिकाके लोकमतको अपने पक्षमें करके मामलोंको ठीक करना होगा। जब तक हमारी अपनी दशा सुधारनेकी चेष्टाओंमें एजेन्ट हमारा समर्थन करता रहेगा, तब तक हमारा और यूनियन सरकारका सीधा सम्बन्ध बना रहेगा। एजेन्ट हमें लाभदायक बातें सुना सकता है, लेकिन वह तो यहाँ केवल थोड़े ही समयके लिए आता है और फिर चला जाता



मि० क्रिस्टोफर

है। जब वह यहाँ आता है, तो उसे हमारी कठिनाइयोंका कुछ भी पता नहीं होता, परन्तु धीरे-धीरे जब उसे हमारी कठिनाइयोंका कुछ पता लगता है, तब तक उसके चले जानेका समय हो जाता है। एजेन्सीके सेक्रेटरीकी भी यही दशा है। अगर हम यूनियन सरकारसे अपनी सीधी लिखा-पढ़ी और सीधा सम्पर्क न रखे, तो हम एजेन्टोंके प्रयोगों ही के शिकार बने रहेंगे। बहुतसे लोग ऐसे हैं जो एजेन्टके पदको सन्देहकी नज़रसे देखते हैं, मगर हम जानते हैं कि एजेन्ट हमारी सहायता करेगा, और सामाजिक मामलोंमें मि० शास्त्रीका उत्तराधिकारी उन्हींके समान लाभदायक भाग लेगा।

केपटाउनके समझौतेमें यह बात स्वत: सिद्ध मान ली गई है कि भारतीय पाश्चात्य सभ्यताके स्टैन्डर्डको

स्वीकार कर लेंगे, लेकिन इसका पूरा होना भारतीयोंकी शिक्षा और उनकी आर्थिक उन्नतिपर निर्भर है। भारतीयोंकी शिक्षाकी जाँचके लिए एक कमेटी बनी थी, उसमें मि० शास्त्री, भारतसे आये हुए दो विशेषज्ञों और नेटाल-इण्डियन कांग्रेसने सहयोग प्रदान किया था। उसका फल यह हुआ कि बहुतसे भारतीय बच्चोंको प्राइमरी शिक्षा मिलने लगी, और आशा की जाती है कि भारतीय टीचरोंकी भी वेतन-वृद्धि होगी, मगर शिक्षा-विभागसे जो रेग्यूलेशन निकले हैं, उनसे टीचरोंके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हो गई है कि कहीं उनमें बेकारी न बढ़ जाय। सरकारने प्रत्येक स्कूल जानेवाले बच्चेपर ५ पौंड ५ शिलिंग सहायता देना स्वीकार किया था, मगर इस रक़मका कुछ भाग नेटालकी प्रान्तीय सरकारने दूसरी मदोंमें ट्रान्सफर कर दिया था, जिसपर मि० शास्त्रीके सामने ही भारतीयोंने प्रतिवाद किया था। इस सहायताका पूरा अंश बच्चोंकी शिक्षा सुधारनेमें ही खर्च न होगा, बल्कि उसका कुछ भाग शास्त्री-कालेजके खर्चेके लिए भी जायगा। इसका फल यह होगा कि शिक्षा-जाँच-कमेटीके बैठनेके पूर्व बच्चोंकी जो दशा थी, वही अब भी बनी रहेगी। उस धनसे, जिससे वे लाभ उठाते, कुछ थोड़ेसे लोग उच्च शिक्षा पा जायँगे। 'शास्त्री-कालेज' बन रहा है। उसमें मैट्रिकुलेशन स्टैन्डर्ड तककी शिक्षा दी जायगी। उसमें शिक्षकोंको शिक्षा मिलेगी। भारतीय उम्मेदवार उस परीक्षामें बैठ सकेंगे, जो खासकर उन्हींके लिए नियत की गई है। इस परीक्षाके दो ग्रेड हैं; पहला ग्रेड पास करनेवालेको 'इण्डियन जूनियर टीचर्स' सर्टिफिकेट, और दूसरा ग्रेड पास करनेवालेको 'इण्डियन सीनियर टीचर्स' सर्टिफिकेट, जो मैट्रिकुलेशन स्टैन्डर्डसे बहुत-कुछ नीचा है, मिलेगा। अभी तक इस बातका कुछ पता नहीं है कि 'शास्त्री-कालेज'के परीक्षार्थी किस सर्टिफिकेटके लिए परीक्षा देंगे, लेकिन हम लोगोंको तब तक सन्तोष नहीं होगा, जब तक हमारे परीक्षार्थी उन तमाम परीक्षाओंमें न बैठ सकेंगे, जो यूरोपियन टीचरोंके लिए खुली हैं।

कालेज, जो भारतीयोंके पैसेसे बनाया जा रहा है, जब तय्यार हो जायगा, तब प्रान्तीय सरकारके सुपुर्द कर दिया जायगा। इस प्रश्नपर बड़ी बहस हो रही है कि क्या हम लोग, यूनियन सरकार जो कुछ भी हमें सहायता देगी, उसके सहारे इस कालेजका काम स्वयं नहीं चला सकते हैं? मैं उन लोगोंके साथ हूँ, जिनका यह खयाल है कि कालेजकी कौन्सिल, जिसमें भारतीयोंके तथा सरकारके प्रतिनिधि हों, इसको आसानीसे चला सकती है, और धीरे-धीरे इसमें मामूली शिक्षाके साथ-साथ औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी शिक्षाकी भी सुविधा कर सकती है। इस कालेजकी उन्नतिमें हमें प्रत्यक्ष अधिकार प्राप्त होना चाहिए। एक बार जहाँ यह सरकारके, चाहे वह कितनी ही सहानुभूति-पूर्ण क्यों न हो, सुपुर्द कर दिया, वहाँ गया। क्योंकि हम लोगोंको वोट देनेका अधिकार है नहीं, तब हम सिर्फ़ यह आशा कर सकते हैं कि सरकार हमारा भला करेगी, मगर इस आशामें न तो शक्ति है, और न हमारा प्रत्यक्ष हाथ ही।

मिस्टर किचलू और मिस गोर्डनने ट्रान्सवालमें भारतीय शिक्षाकी दशाकी जाँच की थी, परन्तु उनकी रिपोर्ट अभी प्रकाशित नहीं हुई। जब वे लोग यहाँ थे, तब कहा जाता था कि रिपोर्टमें उन्होंने शिक्षा-विभागके अधिकारियोंके सामने भारतीय शिक्षाकी असन्तोष-जनक अवस्था प्रकट की थी।

दक्षिण-अफ्रिकाके अन्य सब स्थानोंके भारतीयोंकी अपेक्षा केपके भारतीयोंको शिक्षाकी अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं।

भारतीय बच्चोंको औद्योगिक या कृषि-सम्बन्धी शिक्षा नहीं मिलती। यहाँके भारतीय कृषक अधिकतर छोटी-छोटी खेतियाँ करनेवाले या तरकारी पैदा करनेवाले हैं। वे लोग अपने खेतोंको जोत जातकर वही उत्पन्न करते हैं, जो उनके पहले उनके बाप-दादे करते आये हैं। वे लोग बड़े तड़केसे लेकर रातमें देर तक मेहनत करके अपने पसीनेकी गाढ़ी कमाई पैदा करते हैं, परन्तु उसका फायदा उठाते हैं उस मालके बेंचनेवाले दुकानदार। यदि वे एक गुना लाभ उठाते

है, यह सुकाबार कई गुना ! किसानोंकी शिक्षाकी बड़ी सख्त ज़रूरत है, जिससे वे अच्छी तादादमें माल पैदा कर सकें और फायदेसे बेच सकें। जब श्रीमती सरोजिनी नायडू दक्षिण-अफ्रिकामें आई थीं, तब कांग्रेसने यहाँ एक कृषि-प्रदर्शनीका श्रीगणेश किया था। भूमिपर निर्भर करनेवाले वर्गोंके लिए बहुत-कुछ कार्य करना बाक़ी पड़ा है।

मिस्टर शास्त्रीने यहाँसे विदा होते समय जो कार्य किये थे, उनमें एक भारतीय मज़दूरोंकी कान्फ्रेन्स करना भी था। जीवनमें पहली ही बार अब भारतीय मज़दूर अपनी दशा सुधारनेके लिए सगठित हो रहे हैं। यह भारतीय किसान और मज़दूर—दोनों ही वही हैं, जिन्होंने सन् १८६० के लगभग इस अज्ञात देशमें आनेके लिए पालके जहाज़ोंपर समुद्रका सामना किया था। नेटाल-मज़दूर-कांग्रेस भी बनाई गई है, मि० काज़ी और पी० आर० पाथर उसके मन्त्री हैं।

मि० शास्त्रीकी सहायतासे कुछ उद्योग धन्धोंकी, जिनमें भारतीय लोग बड़ी संख्यामें काम करते हैं, रजिस्ट्री इस देशके ट्रेड-यूनियनके क़ानूनके अनुसार हो चुकी है। इनका संगठन ऐसा है, जिसमें किसी जातिके लिए रुकावट नहीं है। पुरानी ट्रेड यूनियन भी, जो केवल यूरोपियन नस्लके लोगोंके लिए थीं, अब धीरे-धीरे इनकी ओर झुकती जाती हैं, मगर भारतीय और यूरोपियन ट्रेड-यूनियनका क्या सम्बन्ध रहेगा, इस बातका निश्चय-पूर्वक निर्णय करनेमें अभी कुछ समय लगेगा। वर्तमान समयमें यह सम्बन्ध आशापूर्ण है। बहुतसे भारतीय, जिन्होंने छठी या सातवीं कक्षा नहीं पास की है, apperentice नहीं हो सकते। एक औद्योगिक कौन्सिलमें एक भारतीय प्रतिनिधि भी है। औद्योगिक क़ानूनके अनुसार मजदूरी मुक़र्रर करनेमें जात-पांतका विचार किये बिना ही कम-से-कम एक मज़दूरी नियत कर दी गई है। जातियोंके समझौतेके अनुसार ही मज़दूरी नियत की गई है।

यूरोपियन लोगोंकी एक ट्रेड यूनियन कांग्रेस है। इस कांग्रेसने भारतीय प्रतिनिधियोंसे जोहान्सबर्गमें भेंट की थी। इस अवसरपर मिस्टर शास्त्री भी वहां उपस्थित थे। यह भेंट बड़ी लाभदायक थी, मगर फिर भी यदि भारतीय मज़दूरोंको संगठित करके इस योग्य बनाना है कि वे देशके क़ानूनोंमें अपनी आवाज़ उठा सकें और अपनी दशा सुधार सकें, तो अभी बहुत-कुछ काम करना पड़ेगा। यहाँके भारतीय मज़दूर इस बातके लिए कृतज्ञ हैं कि जेनेवामें भारतीय मज़दूर प्रतिनिधियोंने इस बातका सवाल उठाया कि उन देशोंके 'नन यूरोपियन' मज़दूरोंको भी प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार मिले, जहाँसे यूरोपियन मज़दूरोंके प्रतिनिधि आते हैं। आशा की जाती है कि उन्होंने अपने सहयोगी मज़दूरोंके लिए जो लगन दिखलाई है, वह क़ायम रहेगी।

मिस्टर शास्त्रीके प्रोत्साहनसे एक चाइल्ड-वेलफेयर और सोशल सर्विस-कमेटीकी स्थापना हुई है, जो अच्छा काम कर रही है।

ट्रान्सवालमें भारतीय ज़मीनके मालिक नहीं हो सकते, और न उसके दूर्द हिस्सोंमें ज़मीनपर कब्ज़ा ही रख सकते हैं। वहाँ भारतीयोंको घर बनाकर बसनेका कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। इसी असुविधासे लैसन्स-सम्बन्धी झगड़े भी उत्पन्न होते हैं, जो अब तक वहाँ हमारे देशवासियोंकी राहमें अड़ंगा लगाये हुए हैं। अब राष्ट्रीय सरकारको पुनः शक्ति प्राप्त हुई है, अतः हमारे देश भाई उसकी ओर टकटकी लगाये हैं कि वह इस लैसेन्सके झगड़ोंका अन्त कर दे, परन्तु यह तभी हो सकता है, जब ज़मीनका सवाल तै हो जाय। वहाँ भूमि खरीदने और उसपर क़ाबिज़ होनेका अधिकार मिलनेसे ही उन्हें शान्ति मिलेगी।

भारतीयोंके लिए विशेष और भेद-जनक क़ानूनोंने ही दक्षिण-अफ्रिकामें बहुत कष्ट और विपत्तियां उपजाई हैं। जब तक भारतीयोंको नेटाल और ट्रान्सवालमें वोटका अधिकार प्राप्त नहीं होता, तब तक वे इस प्रकारके क़ानूनोंके शिकार बनते रहेंगे। वोट-अधिकारका सवाल जल्द या देरमें उठाया ही जायगा। यह हम लोगोंके लिए बड़े महत्त्वका है। भारतीयोंके विरुद्ध जो बहुतसे क़ानून और आर्डिनेन्स बने थे

और हालमें बने हैं, उनमेंसे बहुतसे अभी तक क़ानूनकी किताबमें मौजूद हैं। हम आशा करते हैं कि सरकार समयानुसार उन्हें रद कर देगी।

समयके इस शुभ लक्षणको देखकर प्रसन्नता होती है कि हमारी बालिकाएँ अधिकाधिक संख्यामें स्कूल जाने लगी हैं। उनमेंसे कोई कोई तो इतनी अग्रसर हो गई हैं कि उच्च शिक्षाके प्राप्त करनेके लिए विलायत तक पहुँच गई हैं। नवयुवतियाँ एक खासी संख्यामें शिक्षिकायें हैं। कुछ अन्य न केवल गृहस्थी ही के कामोंमें भाग लेती हैं, बल्कि उन सामाजिक कामोंमें भी दिलचस्पी रखती हैं जिनका सम्बन्ध हमारी समाजसे है। हर तरफ अंग्रेजी रंग-ढंग अख्तियार करनेकी प्रकृति ज़ोरों पर है। शिक्षा, चारों ओरकी अवस्था, खेल-कूद और यूरोपियनोंके साथ रोज़के मिलने-जुलनेमें यह प्रवृत्ति और ज़ोर पकड़ रही है, और इस बातमें कोई कलाम ही नहीं है कि समय पाकर भारतीय भी ऐसी अंग्रेज़ियत ग्रहण कर लेंगे, जैसी यहूदियोंने की है। उस समय केप टाउनके समझौतेका यह सिद्धान्त कि भारतीय लोग अंग्रेज़ियत कबूल कर लें, अपने आप ही हल हो जायगा। हम आशा करते हैं कि तब भारतीय पालिटिक्समें भी शीर शक्कर हो जायंगे।

ब्रिटिश-गायनाकी आर्थिक दशा

[लेखक :—श्री विक्टर सी० रामशरण, बी० ए०]

दक्षिण अमेरिकाकी मुख्य भूमिपर केवल ब्रिटिश-गायनाका देश ही अंग्रेज़ोंके अधिकारमें है। इस देशका क्षेत्रफल ६०,६०० वर्गमील है। अपेक्षाकृत यह देश बहुत कम आबाद है, क्योंकि जहाँ लंकामें केवल २५,३३२ वर्गमीलमें ५०,००,००० प्राणी बसते हैं, वहाँ ब्रिटिश-गायनाके इतने बड़े क्षेत्रफलमें केवल ३,००,००० से कुछ अधिक आदमी रहते हैं, जिनका औसत प्रति वर्गमीलमें चार आदमीसे भी कुछ कम है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि इस उपनिवेशमें अधिक आबादीकी ज़रूरत है, मगर अभी तक समय ऐसा नहीं है कि विदेशोंसे मज़दूर बुलाये जायँ। वर्तमान समयमें उपनिवेश-भरमें एक भयंकर आर्थिक ह्रास फैला है, जिसके फल स्वरूप सहस्रों आदमी बेकार हो गये हैं। प्रवासियोंको बसनेके लिए यहां बुलानेकी कोई स्कीम तब तक मंजूर न होनी चाहिए, जब तक इन आदमियोंको, जो बिना अपने दोषके बेकार हो रहे हैं, काम न मिल जाय। लोगोंके स्वास्थ्य और सफ़ाईपर भी सरकारको सहानुभूति-पूर्वक ध्यान देना चाहिए।

दस वर्ष पहले औपनिवेशिक मन्त्री मि० सेसिल क्लेमेंटीने (जो आजकल सर सेसिल क्लेमेंटी हैं और हांगकांगके गवर्नर हैं) जन-संख्याकी वृद्धिपर बोलते हुए कहा था—"प्रवासियोंको जीवित और स्वस्थ रखनेका आवश्यक इन्तजाम किये बिना बड़ी संख्यामें ब्रिटिश-गायनामें प्रवासियोंको बुलाना मूर्खता ही नहीं, बल्कि नैतिक पाप होगा।"

ब्रिटिश-गायनामें मुख्य रोज़गार शक्करका है। सन् १८३६ से १६२५ तकका उसका आर्थिक इतिहास संक्षेपमें नीचेके नक़्शे द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

यह जन-संख्याकी वृद्धि स्वाभाविक वृद्धि नहीं थी। यह भिन्न भिन्न प्लैन्टेशनोंके लिए विदेशोंसे मज़दूरोंको सहायता देकर बुलानेके कारण हुई थी। इस समयमें गन्नेकी खेतीका रक़बा बराबर घटता रहा। शक्करके निर्यातमें जो वृद्धि हुई थी, वह चालीस वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी, और तबसे उसकी उपज घटती-सी मालूम होती है। सम्पूर्ण निर्यातमें अपेक्षाकृत शक्करके अनुपातकी कमीका कारण यह है कि उपनिवेशमें एकाएक हीरे निकलने लगे, परन्तु उपनिवेशकी

सन्	आबादी	शक्करका निर्यात टनोंमें	निर्यात शक्कर और उसकी चीज़ोंका मूल्य पौंडोंमें	सम्पूर्ण निर्यात पदार्थोंका मूल्य पौंडोंमें	सम्पूर्ण निर्यात पदार्थोंमें शक्करका प्रतिशत परिमाण
१८३६	९८,०००	५६,०००	१८,५७,७८६	२१,३५,३७६	८४
१९२५	३,०४,०००	९७,०००	१५,५१,७८५	२६ ६७,०९६	५३

आर्थिक स्थितिमें उनका स्थायी स्थान नहीं समझा जा सकता।

देशकी मुख्य उपज, शक्कर, चावल, सोना, हीरा, बलाटा, लकड़ी और लकड़ीकी चीज़ें हैं।

ज़रा इन रोज़गारोंपर अलग-अलग विचार कीजिए :—

शक्कर—गवर्नरने लेजिस्लेटिव कौन्सिलको सन् १९२८में वार्षिक सन्देश भेजते हुए ५५ वें पैरामें लिखा है—"मुझे बड़ा दुःख है कि शक्करका काम, जिसपर इस देशकी आमदनी मुख्यतः निर्भर है, आजकल बड़ी खराब दशामें है। जिन दशाओंमें इसका रोज़गार चलता है, उनका मेरा अनुभव इतना कम है कि मैं इस समय यह नहीं बतला सकता कि सरकार किस प्रकार शक्करकी उपज बढ़ानेका प्रोत्साहन देगी। आजकल समूचे वेस्ट-इंडीज़ ही में शक्करका रोज़गार बड़ी कठिनाईमें है, परन्तु मुझे विश्वास है कि जो लोग शक्करकी कोठियोंके लिए उत्तरदायी हैं, वे यहां भी उन तरीक़ोंको काममें लायेंगे, जो अन्य देशोंमें सफल हुए हैं, और वे इस प्रकार वर्तमान कठिनाईसे बिना स्थायी हानिके निकल सकेंगे।"

इस रोज़गारकी कठिनाइयोंके अनेक भिन्न-भिन्न कारण हैं— (क) महायुद्धके बाद शक्करके दामोंमें कमी, (ख) 'रम' नामक शराबकी खपतमें कमी होना, जो शक्करसे बननेवाली प्रधान उपवस्तु है, (ग) महायुद्धमें जो मुनाफ़े हुए थे, उनका अधिकांश स्टेटोंपर चढ़े हुए कर्ज़ोंको चुकाने और पुरानी मशीनके स्थानमें नई मशीनोंको बिठलानेमें खर्च हो गया, यह नई मशीन युद्धके समय बड़े ऊँचे दामोंमें खरीदी गई थीं और (घ) विलायती बाज़ारमें अनुचित प्रतियोगिता।

चावल—उपनिवेश-भरमें चावल बहुतायतसे पैदा किया जाता है। सन् १९२६ में सन् १९२५ की अपेक्षा १७,२०८ एकड़ अधिक भूमिमें धान बोया गया था। सन् १९२६ की फ़सलमें धानकी उपज ९ करोड़ ६० लाख पौंड थी, जब कि सन् १९२५ में केवल ५ करोड़ १० लाख पौंड ही पैदा हुआ था। यदि सरकार सिंचाई और पानीके निकालनेका उचित बन्दोबस्त करे, तो निश्चय ही और बहुत बड़ा रकबा धान उपजानेके काममें आ सकता है, मगर उसकी खपतके लिए नये बाज़ारकी भी आवश्यकता है।

सोना—सोनेकी उपजमें कुछ और भी कमी हो गई है। ३१ अगस्त सन् १९२८ को समाप्त होनेवाले वर्षमें सोनेकी उपज ६,१८७ औन्स थी, जब कि इससे पूर्व वर्षमें ७,२२६ औन्स सोना निकाला गया था। उपजकी कमीका कारण यह नहीं है कि खानें निस्सार हो गई हैं, बल्कि यह है कि सोना निकालनेवाले मज़दूर आकर्षित होकर हीरेकी खानोंमें चले गये हैं।

हीरा—हीरेकी उपजमें भी कुछ कमी दृष्टिगोचर होती है। ३१ अगस्त सन् १९२८ को समाप्त होनेवाले वर्षमें हीरेकी उपज उससे पहले वर्षकी अपेक्षा ४१,३९० कैरट कम हुई। यानी २२ प्रति सैकड़ा कमी हुई।

बलाटा (रबर)—"बलाटाके रोज़गारके बिगड़ जाने



ब्रिटिश-गायनाके प्रवासी भारतीय

और सोने और हीरेकी उपजमें कमी होनेसे लोगोंमें खर्च करनेकी सामर्थ्य कम हो गई है और बेकार लोगोंकी संख्या बहुत बढ़ गई है। बलाटाका भविष्य इस समय बहुत ही अनिश्चित है, परन्तु कुछ आशा है कि 'केबिल' और वायरलेस कम्पनियोंके एकमें सम्मिलित हो जानेसे वह अनुकूलताकी ओर झुके। सोने और हीरेकी खानोंके सम्बन्धमें यह तो निश्चत है कि वे भूमिमें बहुत काफ़ी परिमाणमें मौजूद हैं, परन्तु उनके रोज़गारके पनपनेकी आशा आगामी वर्षमें नहीं दिखाई देती।" (गवर्नरका लेजिस्लेटिव कौन्सिलको वार्षिक सन्देश, सन् १६२८, पैरा ५७)।

लकड़ी और लकड़ीका सामान—देशमें ७८,००० वर्गमीलके लगभग या कुल क्षेत्रफलके ८७ प्रति-सैकड़ा भागमें जंगल ही जंगल है। सन् १६२८ में इमारती और जलानेकी—दोनों प्रकारकी लकड़ीका कुल निर्यात १,६०,४४२ घन-फीट था, मूल्य १,४३,०८६ डालर हुआ, परन्तु इसके विरुद्ध सन् १६२७ में २,७७,०३७ घन-फीट लकड़ी बाहर गई थी, जिसका मूल्य १,६६,३६३ डालर था। इस प्रकार इस वर्ष लकड़ीके निर्यातमें ८६,५६५ घन-फीटकी कमी हुई।

हालमें मिट्टी-तेल भी मिला था, और बड़ी आशा थी कि इसका रोज़गार बढ़ाया जायगा, जिससे थोड़ी बहुत बेकारी घटेगी; परन्तु इस रोज़गारको चलानेके लिए सरकारने क्या किया? कुछ भी नहीं! यह प्रकट है कि अंग्रेज़ पूँजीपति इस ओर आकर्षित नहीं होते, और सरकारकी सदाकी संकीर्ण नीतिने विदेशी पूँजीका प्रवेश-निषेध कर रखा है।

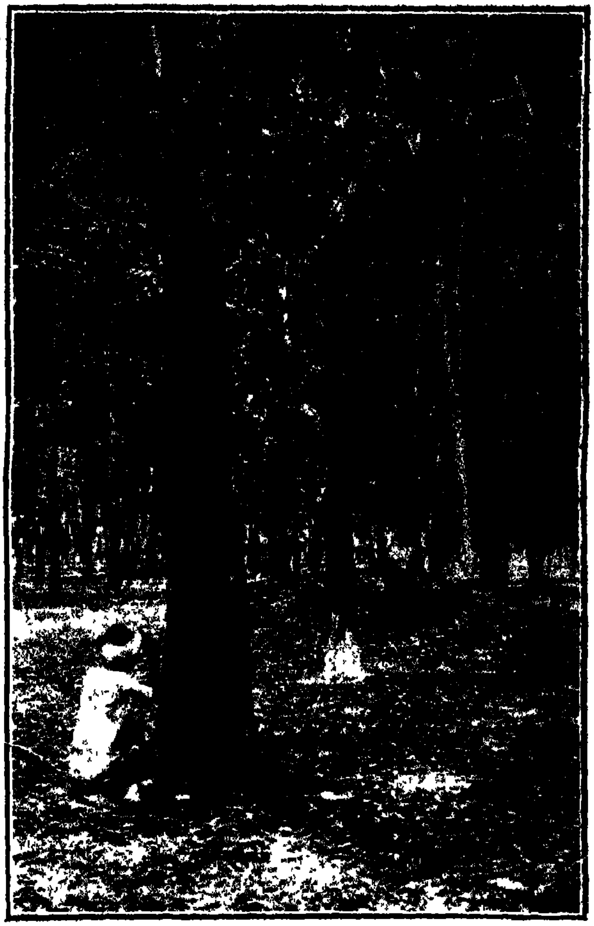
सर गोर्डन गगिसबर्गके गवर्नर नियत होकर आनेपर उपनिवेशने उनका उत्साह-पूर्वक स्वागत किया था, क्योंकि सब समझते थे कि गोल्डकोस्टमें उन्होंने जैसा अच्छा काम किया है, वैसा ही यहाँ भी करेंगे। नये गवर्नर साहबने मौजूदा खेद-जनक दशाको सुधारनेके लिए बहुतसी स्कीमें निकाली हैं, मगर अब तक उनमेंसे कोई भी फलदायी नहीं हुई, लेकिन अभी इतनी जल्दी उनपर निर्णय करना ठीक नहीं है। गवर्नर साहब केवल दस महीने रहकर स्वास्थ्य खराब होनेके कारण लम्बी छुट्टीपर चले गये हैं। यह बात अनिश्चित है कि यदि वे न लौटे, तो उनकी निर्धारित नीति जारी रखी जायगी या नहीं। वर्तमान आर्थिक दुरवस्थाके कारण, इतनी स्वाभाविक उर्वराशक्ति होते हुए भी ब्रिटिश गायना इस समय बड़ी संख्यामें भारतीय प्रवासियोंका स्वागत करनेके लिए तय्यार नहीं है, चाहे वे मज़दूर हों या पढ़े लिखे। जब तक इस दशामें पर्याप्त अनुकूल परिवर्तन न हो जाय तब तक भारतीय भाइयोंको मातृभूमिसे आकर इस उपनिवेशमें बसनेके लिए, प्रोत्साहन देना भयंकर भूल होगी।

मलायामें भारतीय प्रश्न

[लेखक :—एक भारतीय]

हिन्दुस्तान तथा अन्य स्थानोंके पत्र-सम्पादकोंने अनेकों बार मुझसे मलाया-प्रायद्वीपमें हिन्दुस्तानियोंकी मौजूदा हालतके बारेमें लिखनेके लिए कहा। इसका कारण यह है कि इन दोनों देशोंमें समाचारोंके सरलतासे आने-जाने का सिलसिला नहीं है, गोकि मलाया भारतके किसी भी पूर्वी बन्दरगाहसे मुश्किलसे एक हफ़्तेके रास्तेपर है। कलकत्तेसे जहाज़पर चढ़कर आप चौथे दिन सुबह मलायाके पहले बन्दरगाहमें पहुँच जायँगे। मद्राससे चलनेवाले यात्रीको भी इतना ही समय लगेगा।

मैं समझता हूँ कि भारतीय जनता अब उन भारतीयोंके प्रश्नकी अवहेलना नहीं कर सकती, लोग जो किसी भी देशमें रोज़गार, नौकरी या पढ़ाई इत्यादिके लिए गये हैं, क्योंकि वे जहाँ कहीं भी होंगे, 'इंडियन' ही के नामसे प्रसिद्ध होंगे। अभी कुछ समय पहले तक भारतीयोंने अपने प्रवासी भाइयोंकी



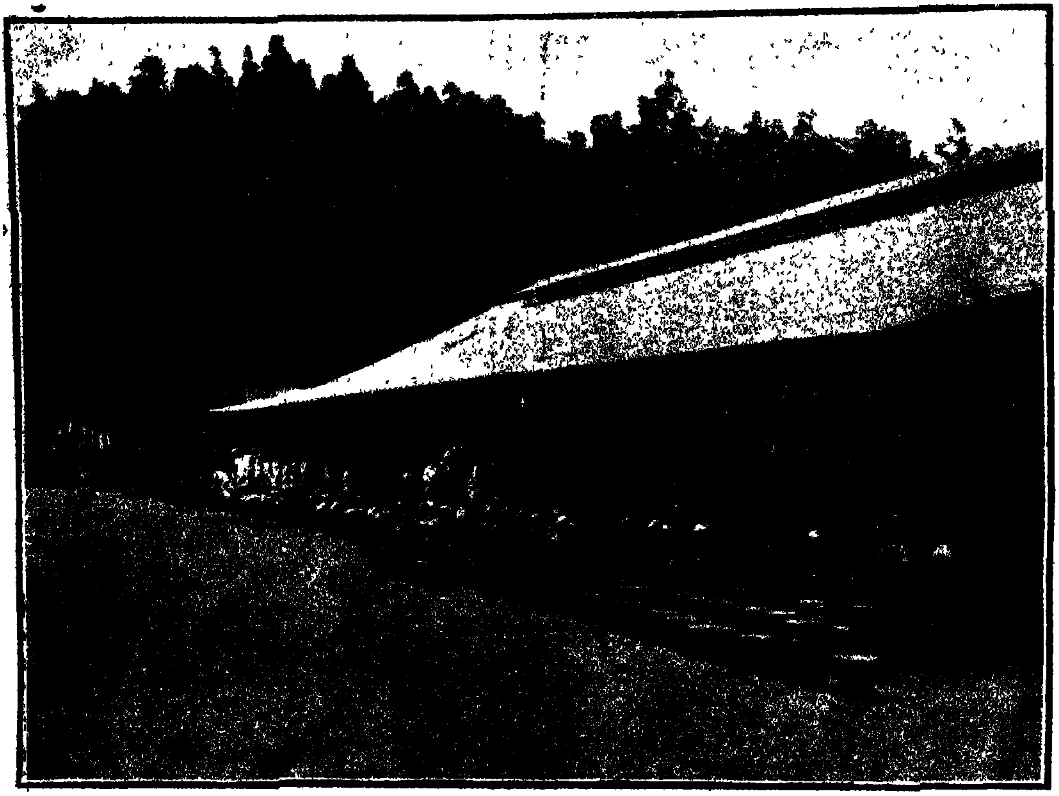
मलायाका एक भारतीय मजदूर रबरके पेड़से दूध निकाल रहा है

दशाकी खोज-खबर रखना एकदम बन्द कर रखा था, मगर अब वह ज़माना बदल गया है। भारतवर्षके कुछ समाचारपत्र उपनिवेशों तथा पूर्व-पश्चिमके अन्य देशोंमें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंकी खबरें प्रकाशित करने लगे हैं। मुझे इस शुभ परिवर्तनसे प्रसन्नता है, लेकिन फिर भी मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानके हमारे भाई मलायामें बसे हुए अपने भाइयोंकी दशापर विशेष ध्यान दें। नीचेकी पंक्तियोंमें मैंने यहाँकी भारतीय समस्याका संक्षिप्त वर्णन देनेकी कोशिश की है।

बचपनमें मैं मलायाके सम्बन्धमें केवल इतना ही जनता था कि हजारों हिन्दुस्तानी वहाँ जाते हैं और मुट्ठियोंमें सोना भरे हुए लौट आते हैं, पर इस सुन्दर देशकी बहुतसी बातें जानने योग्य हैं। अन्तमें मैं यहाँकी हालतको स्वयं अपनी आँखोंसे देखनेके लिए चल पड़ा। मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि यहाँ ज़िन्दगीके हर पेशेमें अपने देशवासियोंकी शक्लें इतनी बहुतायतसे देख पड़ती हैं कि यह मालूम ही नहीं होता कि हम अपने स्वदेशमें हैं या किसी ग़ैर मुल्कमें। मलायामें हिन्दुस्तानियोंकी कितनी बड़ी आबादी है—तामिल, तेलगू, सिख, बंगाली, मराठी और पठान, जो अधिकतर टैक्सी-ड्राइवर और चौकीदार हैं, सभी देख पड़ते हैं। भला, हिन्दुस्तानमें रहनेवाला साधारण भारतीय मलायामें अपने भाइयोंकी दशाके सम्बन्धमें क्या जानता है ?

क़रीब-क़रीब सात लाख भारतीय मलायामें बसे हुए हैं। वे लोग रोज़गार, कारीगरी ऊंचे पेशों और जीवनके प्राय: सभी मार्गोंमें नज़र आते हैं, परन्तु आबादीका अधिकांश भाग खेतोंमें काम करनेवाले मज़दूरोंका है। ये लोग रबरकी कोठियों और सरकारके अन्यान्य मोहकमोंमें मज़दूरी करते हैं। भारतीयोंकी एक छोटी संख्या खानोंमें भी काम करती है। स्टेटोंमें काम करनेवाले मज़दूर मद्रास-सूबेसे आये हुए तामिल, तेलगू और मलयाली हैं। मलाया सरकार और भारत सरकारमें एक एग्रीमेन्ट हुआ है, उसीके अनुसार वे मज़दूर यहाँ रबरके स्टेटोंमें काम करनेके लिए लाये जाते हैं, क्योंकि इस देशमें बहुत पुराने समयसे मज़दूरोंकी कमी है। एक शब्दमें आप यह कह सकते हैं कि मज़दूरोंके खयालसे मलाया एकदम हिन्दुस्तानपर निर्भर है। रबरकी खेतीका पता लगनेपर जैसे-जैसे समय बीतता गया, मलाया-सरकार मज़दूरोंकी माँग बढ़ाती गई।

रबरके बगीचोंमें औरोंकी अपेक्षा (जैसे, चीनी मज़दूर जो किसी-किसी बगीचेमें हैं) भारतीय मज़दूर ज़्यादह पसन्द किये जाते हैं। मज़दूरोंको रबरका दूध इकट्ठा करनेमें पांच



मलायाकी एक रबरकी कोठीके भारतीय मजदूर अपने क्वार्टरके सामने बैठे हैं। उनका एकत्रित किया हुआ रबरके पेड़का दूध बाल्टियोंमें भरा हुआ उनके सामने रखा है।

घंटे प्रतिदिन काम करना पड़ता है, और उन्हें मज़दूरी उनके कामके हिसाबसे दी जाती है। एक तन्दुरुस्त मज़दूर अधिक-से-अधिक पचास सेन्ट प्रतिदिन कमाता है, जो बारह आनेके लगभग होते हैं। तन्दुरुस्त स्त्री चालीस सेन्ट और बच्चे अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार कमाते हैं, मगर मामूली मज़दूरोंकी कमाई सचमुच बड़ी असन्तोष-जनक है। मर्दकी औसत आमदनी तीस-चालीस सेन्टके भीतर होती है, और स्त्रीकी आमदनीका औसत बीससे तीस सेन्ट रोज़ानासे अधिक नहीं होता। मलाया ऐसे देशमें, जहाँ जीवन-निर्वाहका खर्च भारतवर्षसे प्राय: दूना है, यह मज़दूरी बेशक बहुत कम है। भारत-सरकार भी मज़दूरीकी मौजूदा हालतसे सन्तुष्ट नहीं थी, और उसने कम-से-कम मज़दूरी निर्धारित करनेका एक नियम बनानेको कहा था। इस कम-से कम मज़दूरी (Minimum wages) की दर साधारण तौरसे मर्दको पचास सेन्ट और औरतको चालीस सेन्ट प्रतिदिन रखी गई थी। बग़ीचोंके मालिक यह मज़दूरी देनेके लिए राज़ी नहीं थे, और भारतीय एजेन्ट इसको निर्धारित ही कराना चाहते थे। इसपर दोनोंमें बड़ी लड़ाई हुई। इस लड़ाईका नतीजा यह हुआ कि गत वर्ष यह 'मिनिमम वेज' निश्चित हो गई।

क़रीब-क़रीब सभी बग़ीचोंमें मज़दूरोंके रहनेके लिए क्वार्टर बने हुए हैं, जिनमें सफाई आदिका अच्छा प्रबन्ध है। हरएक बग़ीचेमें एक छोटा अस्पताल सलग्न है। यह अस्पताल एक 'ड्रेसर' के चार्जमें रहता है, जो मज़दूरोंकी स्वास्थ्य सम्बन्धी बातोंका बड़ा ध्यान रखता है।

कन्ट्रोलर आफ्-लेबर आनरेबुल मि० गिलमैन भारतीय मज़दूरोंसे बड़ी सहानुभूति रखते हैं, और उनके बड़े



मि० गिलमैन, एम० सी० एम०, मलायाके कन्ट्रोलर-आफ-लेबर



मलायाकी प्रमुख भारतीय संस्था 'सेलमगर इंडियन एसोसियेशनके सभापति मिस्टर आर० डी० रामास्वामी, जे० पी०

शुभ चिन्तक हैं। उनकी सेवाएँ प्रशंसनीय हैं। उन्होंने सदा अपनी शक्ति-भर भारतीय मज़दूरोंकी सेवा की है।

बगीचोंके मज़दूरोंके अलावा भारतीय आबादीका एक काफ़ी हिस्सा भिन्न-भिन्न पदोंपर सरकारी नौकरी करता है। यूरोपियन व्यापारियोंके आफिसों और रेलवेके कर्मचारियोंमें भी बहुतसे भारतीय मिलेंगे। सिख ज़्यादहतर पुलिसमें और फ़ौजी मोहकमेमें हैं, परन्तु उनमेंसे बहुतसे आजकल क्लार्की या अन्य सम्माननीय पेशोंमें भी दिखाई देते हैं। क़ानूनी पेशेमें भी मलायामें कुछ ऊंचे दर्जेके भारतीय बेरिस्टर मौजूद हैं। कुछ भारतीय डाक्टर भी हैं, जो या तो अपनी स्वतंत्र प्रेक्टिस करते हैं, या सरकारी नौकरी करते हैं।

यहाँ रोज़गार और कारीगरीके मैदानमें, गोकि भारतीयोंका काम इतना विस्तृत नहीं है जितना चीनियोंका, लेकिन फिर भी ठोस व्यापारमें उन्होंने काफ़ी रक़म लगा रखी है। चेट्टी जाति—जो दक्षिण-भारतकी रुपया उधार देनेवाली महाजन जाति है—के पास हज़ारों एकड़ रबरके बगीचे तथा शहरों और ग्रामोंमें और बड़ी-बड़ी जमीन जायदाद हैं। इस देशमें भारतीय व्यापारी बहुत पुराने समयसे आयात-निर्यातका काम करते हैं। इतना होते हुए भी मलायामें भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति बड़ी असन्तोष जनक है। इसका कारण यह है कि यहाँ न तो कोई भारतीय चेम्बर-आफ्-कामर्स ही है, और न कोई भारतीय बैंक ही है। और व्यापारिक उन्नतिके लिए ये दोनों चीज़ें अनिवार्य हैं।

राजनैतिक अधिकारोंकी दृष्टिसे भारतीयोंकी स्थिति खराब नहीं है। इस देशमें बसनेवाली अन्य एशियाई जातियोंको जो सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त हैं, भारतीयोंको

भी वे सब प्राप्त हैं। इस देशके नागरिक जीवनके उत्तरदायित्वका काफ़ी भार भारतीयोंके कन्धोंपर है। सभी सार्वजनिक संस्थाओंमें—जैसे, सेनिटरी बोर्ड, इमीग्रेशन-कमेटी, म्यूनिसिपैलिटी या और भी इसी प्रकारकी संस्थाओंमें—उनके प्रतिनिधि हैं। स्ट्रेट-सेटलमेन्टकी व्यवस्थापिका-सभाने सन् १९२४ में भारतीय प्रतिनिधिको स्थान दिया था। उस समय स्वर्गीय पी० के० नम्बयर प्रतिनिधि नियत हुए थे। आज इस स्थानपर एक दूसरे लब्धप्रतिष्ठ भारतीय आनरेबुल मि० अब्दुलकादिर नियुक्त हैं। फेडरल कौन्सिलमें भारतीयोंके प्रतिनिधि भेजनेके अधिकारकी बहुत दिनोंसे अवहेलना की जा रही थी, परन्तु सुचतुर राजनीतिज्ञ सर सूक्लिफर्डने (जो आजकल हाई कमिश्नर हैं) इस वर्षके आरम्भमें आनरेबुल मि० वीरस्वामीको उक्त कौन्सिलमें मनोनीत करके इस कमीको दूर कर दिया।

मलाया पेनेनसुलमें यूरोपियन और एशियाई जातियोंका सम्बन्ध आम तौरसे अच्छा है, मगर यह देखकर खेद होता है कि कभी-कभी मजदूरोंके साथ अन्याय होता है।

मलायामें भारत सरकारका एक प्रतिनिधि रहता है, जो भारतीय एजेन्टके नामसे प्रसिद्ध है। यह एजेन्ट वैसे तो सभी भारतीयोंके स्वार्थोंकी, परन्तु विशेषकर भारतीय मज़दूरोंके स्वार्थोंकी निगरानी करता है। मुझे मालूम नहीं कि उसे और क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु दूरसे देखकर मैं यही समझता हूँ कि उसके अधिकार बहुत संकुचित हैं। चूँकि इमीग्रेशनकी समस्या बड़ी गम्भीर समस्या है, इसलिए मैं समझता हूँ कि एजेन्टको राजदूतके समान अधिकार होने चाहिए। इस बातको मैं मानता हूँ कि किसी भी सरकारके यहाँ यह नियम नहीं है कि वह किसी ऐसे देशको अपना दूत भेजे, जो उसी शक्तिके अधीन हो, जिसके अधीन वह स्वयं है। फिर भी मैं चाहता हूँ कि भारत-सरकार अपने मलाया-एजेन्टके साथ अधिक सहानुभूति दिखलाये। मलाया-सरकारकी निगाहोंमें भारतीय एजेन्टका स्थान अधिक आदरणीय होना चाहिए, और



मलायाके दो भारतीय बच्चे

उसे वास्तविक अधिकार होना चाहिए, जिन्हें वह आवश्यकता होनेपर उपयोगमें ला सके। अन्तमें यह कहते दुःख होता है कि एजेन्टको जो वेतन दिया जाता है, वह मलायाके प्रथम श्रेणीके सिविल सर्वेन्टके वेतनसे भी कम है! यह कुछ छोटी त्रुटि नहीं है।

मलायाके अस्पतालोंमें थर्ड क्लास भारतीय रोगियोंको बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती हैं। मैं यह बात डाक्टरी विभागकी या सरकारकी, जिसने इन रोगोंके मारे हुए बेचारोंके इलाजके नियम बनाये हैं, शिकायत करनेकी ग़रज़से नहीं कहता। सच्ची बात यह है कि ग़रीब भारतीयोंके दुःखोंका समस्त उत्तरदायित्व अस्पतालोंके छोटे कर्मचारियोंपर है। वे लोग भारतीय नहीं हैं, बल्कि अन्य एशियाई जातियोंके हैं। उदाहरणके लिए, जाफना तामिलोंको ही लीजिए। डाक्टरी विभागमें मरहम-पट्टीका सब काम केवल इन्हीं लोगोंके हाथमें है। वे समझते हैं कि भारतीय केवल मज़दूर होते हैं। इन लोगोंका समस्त असद्व्यवहार केवल इसी भ्रमपूर्ण धारणाके कारण है। अस्पतालोंका चीनी स्टाफ भी भारतीयोंके साथ बहुत असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है।

मैं यह बात अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कहता हूँ। इन बातोंके देखते हुए मैं ज़ोरदार प्रार्थना करता हूँ कि भारतीय मज़दूरोंकी



माननीय मि० अब्दुल कादिर

चिकित्साके लिए और लेबर-डिपार्टमेन्टकी देखरेखमें भारतीयोंका एक अलग अस्पताल खोला जाय।

मलायाके भारतीय एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक या दैनिक पत्रकी, जो उनके विचारोंको अच्छी तरह प्रकट कर सके, कमीको अनुभव कर रहे हैं। सचमुच मुझे यह देखकर शर्म आती है कि मलायामें, जहां भारतीय इतनी बड़ी संख्यामें जाकर बसे हैं, उनका अपना एक भी प्रतिनिधि समाचारपत्र नहीं है। क़रीब चार वर्ष हुए, सिंगापुरके इंडियन एसोसिएशनने एक मासिक पत्र 'इंडियन' के नामसे निकाला था। यही भारतीयोंका मुखपत्र है, परन्तु एक अच्छे दैनिककी अपेक्षा इस छोटेसे मासिक पत्रका क्षेत्र बहुत संकुचित है। देशी भाषाओंके पत्र छोटे-मोटे रूपमें ज़रूर निकलते हैं, परन्तु विरोधी शक्तियोंको देखते हुए यह ज़रूरी है कि भारतीय अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए बहुत जल्द एक अपना निजी अंग्रेज़ी पत्र निकालें।

अब इस लेखको समाप्त करनेके पहले मैं मलाया प्रायद्वीपकी भारतीय आबादीकी कुछ आम बातें बताऊँगा। बहुत भारतीय खानदान ऐसे हैं, जिन्होंने मलायाको अपने देशके रूपमें ग्रहण कर लिया है, और उनको वहाँ बसे हुए भी कई पुश्तें बीत गई हैं। मलायामें उत्पन्न हुए भारतीयोंके तरीक़े एकदम निराले हैं। वे बिलकुल वैसे हैं जैसे अन्य जातियोंके लोग, जो मलायामें उत्पन्न हुए हैं; परन्तु इससे क्या? भारतीय चाहे वह मलायामें उत्पन्न हुआ हो या भारतमें, शुरूसे आख़िर तक भारतीय ही रहेगा। प्रसन्नताकी बात है कि मलायाके भारतीय जीवनमें उपर्युक्त विचारकी प्रधानता रही है। मलायाके भारतीयोंमें धार्मिक विवादोंका ज़रा भी प्रमुख भाग नहीं रहा है।

मलायामें शराबपर, लंकाकी भांति, कोई रोक-टोक नहीं है। सभी देशोंसे सब प्रकारकी शराब मलाया आकर हिन्दुस्तानसे सस्ती बिकती है। शराबखोरीकी लतने भारतीयोंको बुरी तरह घेर रखा है। आपको बहुत कम भारतीय ऐसे मिलेंगे, जो इस आदतसे बरी हैं। यहाँ तक कि थोड़ी मज़दूरी पानेवाला मज़दूर भी अपनी ताड़ीका ध्यान रखता है। कोई नशा-निवारक प्रचार भी तब तक काम नहीं दे सकता, जब तक पुसीफुट जानसनके समान कोई शक्तिशाली आदमी यहां ज़ोरदार आन्दोलन नहीं करता। मगर चीनी, जापानी या जाकानी पियक्कड़ोंकी प्रति-शत संख्या देखते हुए भारतीयोंकी प्रति-शत संख्या फिर भी कम है।

मेरी फिजी-यात्रा

[लेखक :--श्री गोपेन्द्रनारायण पथिक]

बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि मैं विदेशोंमें जाकर तथा अन्य जातियोंके लोगोंसे मिल-जुलकर उनकी सभ्यताका ज्ञान प्राप्त करूं, पर इस इच्छाके पूरी होनेकी कोई सम्भावना न थी। सन् १६१६ में एक बार मैं विदेशके लिए सजकर बम्बई तक गया था, पर दुर्भाग्यवश कोई ऐसा अवसर नहीं मिला। निराश होकर मुझे घर वापस आना पड़ा, और मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि कम-से कम इस जीवनमें तो सफलता मिलना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है; पर ईश्वरकी महिमा अपरमपार है। उसके रहस्यको समझना हम लोगोंकी बुद्धिसे बाहर है।

१४ दिसम्बर सन् १६२०को मैं गुरुकुल वृन्दावन गया; वहाँ जाकर विद्यालयमें कार्य करना आरम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों असहयोग-आन्दोलन खूब ज़ोरोंसे छिड़ा था। अब मैंने विचार किया कि अब तो देशमें ही बहुत-कुछ कार्य करनेके लिए पड़ा है, ऐसी अवस्थामें विदेश जाकर अपना समय खोना ठीक नहीं है। इस बीचमें श्रीयुत पं० भवानीदयालजी गुरुकुल-भूमिमें पधारे। एक दिन आपसे प्रवासी भाइयोंके सम्बन्धमें बातचीत छिड़ गई। इतनेमें पण्डितजीने मुझसे कहा—"यदि आप फिजी जाना चाहें, तो मैं कोशिश करूँ।" मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि अवश्य आपकी आज्ञा पालन करूँगा। यदि आप मुझे फिजी जानेका मौक़ा देंगे, तो मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा। भवानीदयालजीने फिजीकी प्रतिनिधि-सभाके प्रधानके पास इस सम्बन्धमें एक पत्र लिखा। उक्त सभाने उनका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। लगभग डेढ़ साल तक मुझसे पत्र-व्यवहार होता रहा। अन्तमें फिजीकी आर्य-प्रतिनिधि-सभाने हज़ार रुपयेके लगभग मेरे मार्ग-व्ययके लिए भेज दिये।

३० मई १६२५ को मैं मथुरा नगरसे अपनी लम्बी यात्राके लिए तैयार हो गया। मेरा विचार था कि पण्डित तोतारामजीसे मिलता हुआ जाऊं, पर मिल नहीं सका। लगभग ३ जूनको बम्बई पहुँचा। रात्रिके ११ बजे थे, पानी उस समय खूब ज़ोरोंसे पड़ रहा था। एक गाड़ी करके आर्य-समाज-मन्दिरकी ओर चल पड़ा। गाड़ीवाला मन्दिरका पता नहीं जानता था, इसलिए उस बेचारेको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अन्तमें क़रीब एक बजे रात्रिके मन्दिरपर पहुँचा। असबाब वग़ैरह रखकर तथा कपड़े आदि बदलकर मैंने कुछ पेड़े, जो मथुरासे ले गया था, खाये। मन्दिरके चपरासीने मुझे सोनेके लिए स्थान बतला दिया। मैं बिस्तरा लगाकर सो गया।

दूसरे दिन प्रात: लगभग पाँच बजे उठा। नित्य-कर्मसे निटपकर कुछ जलपान किया। फिर मैं अपनी यात्राके सम्बन्धमें जहाज़की तलाशमें जहाज़ी कम्पनियोंके दफ़्तरोंमें गया। मैं यहाँ इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि यात्रा करनेके पूर्व ही जहाज़का ठीक कर लेना चाहिए। मैंने कई मास तक बराबर जहाज़ी कम्पनियोंसे बातचीत की, पर दु:ख है कि मुझे उस समय तक कोई जहाज़ नहीं मिला। आख़िरकार मैंने सोचा, जो कुछ हो, अब बम्बई अथवा कोलम्बो चलना चाहिए, वहां कोई-न-कोई जहाज़ मिल ही जायगा।

पी० एन० ओ० कम्पनीसे उत्तर मिला कि हालमें कोई जहाज़ फ़िजी नहीं जायगा। मैं यह सुनकर बहुत दु:खी हुआ। फिर भी यही सोचा कि अब वापस जाना ठीक नहीं है, क्योंकि घरसे बाहर निकलना एक भारतीयके लिए क्वांरी कन्याका विवाह है। मैं दफ्तरसे आकर आर्यसमाज-मन्दिर आया। यहां मैं विचार करने लगा कि अब आगेका क्या प्रोग्राम होना चाहिए। कभी तबियत होती थी, चलो वापस चलें, परदेशमें कष्ट-ही-कष्ट होते हैं, पर इसी बीचमें भीतरसे कोई कहता था कि क्या बुज़दिलीसे काम ले रहे हो। इसी



श्री गोपेन्द्रनारायण 'पथिक'

संकल्प-विकल्पमें दो-तीन घंटे बीत गये। अन्तको यह निश्चय किया कि कोलम्बोसे पी० एन० ओ० से तार द्वारा पूछना चाहिए कि आया कोई जहाज़ फिजीके लिए हालमें जा रहा है? दूसरे दिन कोलम्बोको इस सम्बन्धका तार दिया, पर वहांसे उत्तर नकारमें मिला। अब तो मैं बिलकुल निराश हो गया। इधर बम्बईके लोग कहने लगे कि वर्षाका समय है, यदि तूफ़ान आया अथवा इसी प्रकारकी कुछ आपत्ति आई, तो ठीक नहीं, लेकिन मैंने कुछ खयाल न करके भविष्य ईश्वरपर छोड़कर कोलम्बो चलना निश्चय किया। लगभग ९ जूनके मद्रास आया, और वहांसे चलकर १२ जूनको प्रात:काल आठ बजे कोलम्बो पहुँचा। यहां मैं एक प्रिन्स-वेल्स नामक होटलमें ठहरा। इस होटलका दैनिक खर्च ५) रुपया था। भोजन तथा कुछ विश्राम करके दो बजेके क़रीब 'टामस कुक एण्ड सन्स'के यहां जहाज़के सम्बन्धमें पूछने गया, मालूम हुआ कि कल ही (१३ जूनको) चार बजे छिवान्हा नामक जहाज़ सिडनी जायगा। यह सुनकर मुझे कुछ ढाढ़स बँधा, पर जब टामस कुकके मैनेजरने पी० एन० ओ० कम्पनीसे मालूम किया कि एक भारतीय फिजी द्वीप आस्ट्रेलिया होकर जाना चाहते हैं, क्या आप एक स्थान दे सकेंगे? उसपर कम्पनीके मैनेजरने बहुतसे प्रश्नोत्तरके पश्चात् निर्णय किया कि हम टिकट नहीं काट सकते, क्योंकि अंग्रेज़ लोग एक हिन्दुस्तानीके साथ बैठनेमें ऐतराज़ करते हैं, पर कुक कम्पनीके दफ्तरमें एक भारतीय सज्जन थे, इसलिए उन्होंने जोड़-तोड़ लगाकर मुझे टिकट दिलवा दिया।

शामके समय होटलमें आया। खाना खाकर मैं सो रहा, क्योंकि पिछली कई रात्रियोंमें ठीक तरहसे सोनेका अवसर यात्राके कारण न मिला था। प्रात: उठकर बाज़ार गया। वहांसे सफ़रके लिए फलादि खरीदे। बाज़ारसे लौटकर अपना सारा सामान ठीक करके लगभग १२ बजे बन्दरके लिए चल दिया। यह जहाज़ किनारेसे दूर पानीमें लगा था, इसलिए एक डोंगीमें किनारेसे जहाज़ तक गया। जहाज़पर पहुँचते ही द्वारपाल मुझे कैप्टनके पास ले गया। उसने मेरे लिए कोठरीका प्रबन्ध कर दिया। इस कोठरीमें मैंने अपना सारा सामान रख लिया और जहाज़के छूटनेकी प्रतीक्षा करने लगा।

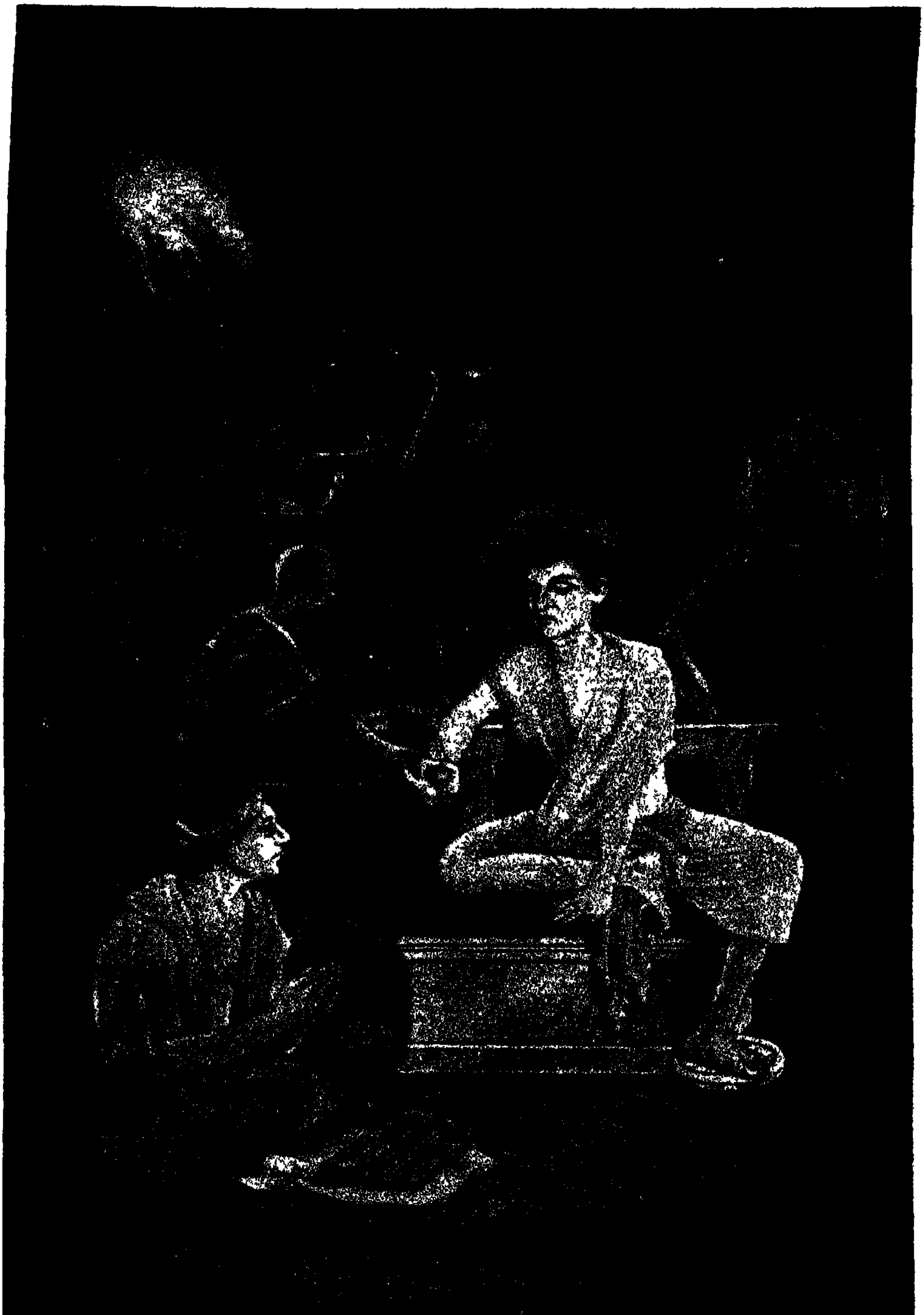
समुद्र-यात्राका मेरे लिए यह पहला ही मौक़ा था। मातृभूमिका स्वाभाविक प्रेम मेरे हृदयको विदीर्ण कर रहा था। कभी नेत्रोंके सामने गुरुकुल वृन्दावनके वायु-मंडल तथा वहांके वासियोंका चित्र खिंच जाता था, कभी अपने परिवारवालोंकी मधुर आवाज़ कानोंमें गूँजती थी और कभी अपने मित्रोंकी, जिनके बीचमें मैं कार्य किया करता था, तस्वीर सामने आ जाती थी। इस प्रकार, भाँति-भाँतिके चित्र सामने आते और चले जाते थे। इस तरह ६ बज गये। एकदम घड़घड़ाहटकी आवाज़ होने लगी। कुछ ही मिनटोंमें जहाज़ हिलता-डुलता मालूम पड़ा। मैंने आखिरी बार मातृभूमिके दर्शन किये, और ईश्वरसे प्रार्थना की—हे भगवन्! मैं आज इस समय अपने देशसे चार हज़ार मीलकी दूरीपर जा रहा हूँ।

जिस माताकी गोदमें २६ वर्ष बड़े आनन्दसे रहा, जिसका दूध तथा अन्न खाकर इतना बड़ा हुआ, उससे आज प्रथम बार वियोग हो रहा है। मातृभूमि भारतकी कुछ भी सेवा न कर सकनेका खेद था, पर साथ ही दु:खित हृदयको इस आशासे सान्त्वना दे रहा था कि भारतकी न सही, विशाल भारतकी ही कुछ सेवा करूँगा।

जहाज़ चल दिया। रात्रि आरामसे बीती। सवेरे लगभग पाँच बजे उठा और कमरेमें बैठ गया। बैठते ही सरमें चक्कर आने लगा और जी मिचलाने लगा। मैं लेट गया और स्टुआर्डसे कुछ संतरे मँगवाये। पड़े-पड़े मैं संतरे चूसता रहा। कुछ शान्ति हुई, पर ज्यों ही मैं उठनेका उद्योग करता था, त्यों ही जी मिचलाने लगता था। इस प्रकार पहला दिन बीता। कुछ फल आदि खाकर काम चलाया। तीन दिन तक यही हालत रही। तीन दिन बाद मैं डेकपर गया, वहाँ कई घन्टों तक हवामें बैठा रहा। तबीयत कुछ शान्त हुई। कुछ भोजन भी रुचिसे किया। इस समय समुद्र भी शान्त हो गया। इसके आगे मेरा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया। दिनमें कई बार भोजन करता था। मेरा अधिकतर समय पुस्तकें पढ़नेमें ही बीतता था। प्रात:काल साढ़े आठ बजे तक टहलता था, नौ बजेसे बारह बजे तक पुस्तक देखता था, एकसे तीन बजे तक विश्राम करता था। शामके समय अपने विचार डायरीमें लिखा करता था। इस प्रकार मेरा समय किसी-न-किसी प्रकार कट ही जाता था। इस बीचमें कुछ अंग्रेज़ मित्र भी हो गये, जिनसे विविध विषयोंपर बातचीत करने तथा उनके विचार मालूम करनेका मौका मिला।

इस प्रकार होते-होते हम लोग २३ जूनको आस्ट्रेलियाके बन्दर फ्रीमैन्टिल पहुँचे। लोग एक दिन पहले ही से खुशी मना रहे थे कि कल किनारेपर लगेंगे। लगभग सात बजे प्रात:काल हमारा जहाज़ किनारेपर लगा। हम लोगोंको सूचना दे दी गई थी कि जहाज़ लगते ही डाक्टरीके लिए एक कमरेमें इकट्ठा हो जाना चाहिए। आज वे लोग भी, जो देर तक सोते थे, शीघ्र अपने बिस्तरोंसे उठ-उठ कर डेकपर आ गये थे। जहाज़के किनारे लगनेके पूर्व ही डाक्टर तथा अन्य लोग एक नौकामें बैठकर आ गये। हम लोगोंकी डाक्टरी परीक्षा हुई, पासपोर्ट देखे गये। जब तक यह कार्रवाई हुई, तब तक जहाज़ किनारेपर बिलकुल बाँध दिया गया। मैं बाहर डेकपर टहलने लगा। यहांके मज़दूरोंको देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। ये लोग सब-के-सब साफ़ तथा सुन्दर वस्त्र पहने थे। इनके चेहरोंपर स्वतंत्रताके चिह्न स्पष्ट दीख पड़ते थे। पहले तो देखनेसे मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि ये लोग मजदूर होंगे, पर जब ये लोग आ-आकर काम करने लगे, तो मुझे मालूम हुआ कि ये मज़दूर हैं। इनमें कोई ऐसा मनुष्य न था जिसके हाथमें अख़बार न हो। ये लोग समयपर कार्य आरम्भ करते हैं और समयपर छोड़ देते हैं। इनकी मज़दूरी फी-घंटा लगभग २) ६० है। यदि रात्रिको काम पड़े, तो इससे दुगुनी हो जाती है। यही कारण है कि ये लोग इतने उन्नतिशील हैं। जब मैंने अपने देशके मज़दूरोंका इनसे मुक़ाबला किया, तो ज़मीन-आसमानका अन्तर मालूम पड़ा। मैंने गौरसे देखा कि यहाँ एक भंगी कंधेपर ब्रूम रखे हुए बड़ी शानसे चला जा रहा था, और जहाँ कहीं कुछ तिनके मालूम पड़ते थे, उन्हें साफ़ करता था। रास्तेमें मिलनेवाले लोग उससे हाथ मिलाकर प्रसन्न होते थे।

आज २३ जूनको दिन-भर जहाज़का सामान उतरता रहा। शामको लगभग ५ बजे जहाज़ खुला। फ्रीमैन्टिलसे सिडनी जहाज़ आस्ट्रेलियाके दक्षिण किनारे-किनारे जाता है, इसलिए उथला पानी होनेसे समुद्र अशान्त रहता है। यहाँ भी लोगोंको चक्कर आने लगते हैं। मुझे भी इन चक्करोंने नहीं छोड़ा। खाने-पीनेको कुछ नहीं खाया। आज कुछ बदली थी। पानी भी पड़ने लगा था। ठंढी हवा वेगसे चल रही थी। मैं विशेष गरम कपड़े देशसे ले नहीं गया था। मैंने ख़याल भी किया कि फ्रीमैन्टिलसे कपड़े ले लेंगे, पर यह सोचकर कि कहीं ख़र्चकी कमी न पड़ जावे, कपड़े नहीं ख़रीदे।



सिद्ध-नागार्जुन

[चित्रकार—श्री यतीन्द्रकुमार सेन]

२८ जूनको एडलेड नामक बन्दरपर हम लोग पहुँचे। यहां दो दिन रहनेका मौक़ा मिला। एडलेड-पोर्टसे नगर कोई बारह मीलकी दूरीपर है। दिनमें अनेक बार रेलगाड़ियाँ आती-जाती हैं। नगर बहुत ही साफ़-सुथरा है। यहांके मकानात भी बहुत ऊँचे-ऊँचे तथा एक फ़ैशनके बने हैं। गलियाँ बहुत चौड़ी तथा साफ़ हैं। कूड़ेका तो नामोनिशान तक नहीं। सैकड़ों मोटरें तथा ट्रामकी आमदरफ्त हर समय रहा करती है। दुकानदार लोग बहुत सीधे तथा नम्र हैं। एक मनुष्य सदा दुकानके दरवाज़ेपर स्वागतके लिए खड़ा रहता है। सौदा बहुत जल्दी पट जाता है। वस्तुओंपर उसका मूल्य लिखा रहता है, लोग उसका मूल्य पढ़कर दाम दुकानदारको दे देते हैं। यहाँ फल बहुत अच्छे होते हैं, और सस्ते भी मिलते हैं।

१ जुलाईको मैं मेलबोर्न पहुँचा। यहाँ मुझे मालूम हुआ था कि सिडनीसे २ जुलाईके दोपहरको ओरंगी जहाज़ फिजीको जायगा, इसलिए मैंने मुख्य स्टुअर्डसे कहकर ऐसा प्रबन्ध करवा लिया कि मैं मेलबोर्नसे रेल द्वारा सिडनी चला जाऊँ और वहां पहुँचकर ओरंगीमें सवार होजाऊँ, क्योंकि जहाज़से पहुँचनेमें देरी होगी। मैंने इस विचारसे अपना सारा असबाब जहाज़से उतरवा लिया और रेलपर भेजनेकी आज्ञा दे दी, पर शहरमें जाकर कुकके दफ्तरसे मालूम हुआ कि मुझे ओरंगी स्टीमर किसी सूरतसे भी न मिल सकेगा, इसलिए मैं फिर अपना असबाब लेकर जहाज़पर पहुँच गया। इस दिन पानी बहुत ज़ोरोंसे पड़ रहा था। सरदी बहुत थी। यह नगर भी बहुत सुन्दर है।

४ जुलाईको प्रात:काल नौ बजे सिडनी पहुँचा। ज्यों-ज्यों जहाज़ किनारे आता जाता था, त्यों-त्यों लोग प्रसन्न थे, पर मुझे तकलीफ़ होती जाती थी। मैं सोचता था कि किस प्रकार मैं इस अपरिचित नगरमें ग्यारह दिन तक निर्वाह करूँगा, क्योंकि १५ जुलाईको फिजी जानेवाला स्टीमर सिडनीसे छूटनेवाला था। आखिरकार जहाज़ किनारेपर लगा। मैं भी जहाज़से उतर पड़ा और मोटर किरायेपर करके एक होटलके लिए चल दिया। दैव योगसे मुझे एक महाशय, जिन्हें फिजीवालोंने मेरे लिए भेजा था, मिल गये। उन्होंने मुझे ले जाकर महाशय मंगूरामजीके यहां ठहराया। मंगूरामजीने बड़ी सज्जनताका व्यवहार किया। अपना एक मकान खाली करके सारा आवश्यक सामान मेरे लिए भेज दिया। उस घरमें गैस भी था, जिससे मैं नित्य भोजन बना लिया करता था। जब गैस खतम हो जाती थी, तब बक्समें, जो घरके एक कोनेमें लगा था, एक पैनी डाल दिया करता था। पैनी डालते ही फिर गैस आ जाती थी। एक दूधवालेका दूध कटता कर लिया था, जो प्रात: लगभग साढ़े छ: बजे दे जाया करता था। यहाँका दूध बहुत अच्छा होता है। मैं बड़े आरामसे ग्यारह दिन तक सिडनी नगरमें रहा।

१५ जुलाईको मैं सोनोमा नामक जहाज़से सूवा (फिजी) के लिए चल दिया। इस जहाज़में बहुत आराम रहा। खानेका बहुत अच्छा प्रबन्ध था। २० जुलाईको मैं सूवा आ गया। यहाँपर पहलेसे कुछ भारतीय नवयुवक मेरे स्वागतके लिए खड़े थे। ये लोग मुझे पं० राघवानन्दजीके मकानपर ले गये। सायंकाल पाँच बजेसे भारतीयोंकी एक बड़ी सभा हुई, जहाँ मेरा एक भाषण हुआ।

२१ ता० को प्रात: ६ बजे ऐन्डीकेवा नामक बोटसे लाटोकाके लिए चल दिया। २१ की शामको लैवूका नामक स्थानपर पहुँचा। यहांके भारतीयोंने भी सभाका प्रबन्ध कर लिया था, यहां भी मुझे बोलना पड़ा।

२३ ता० नौ बजे लाटोका आया।

इस प्रकार मेरी लगभग डेढ़ मासकी यात्रा समाप्त हुई।

क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे देशके नवयुवक विदेश-यात्रा करके अनुभव प्राप्त करें। विदेशोंमें लगभग २५ लाख भारतीय रहते हैं। ये संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें बँटे हुए हैं। इनमें शिक्षा तथा भारतीय संस्कृतिके प्रचारके लिए अनेक युवक जा सकते हैं। आवश्यकता है उत्साही और साहसी नवयुवकोंकी और साथ ही उन उदार तथा कल्पनाशील धनाढ्योंकी, जो उनकी सहायता कर उन्हें विदेश-यात्रा द्वारा ज्ञान प्राप्त करने तथा प्रवासी भारतीयोंकी सेवा करनेके अवसर प्रदान करें।

दक्षिण-अफ्रिकाकी भारतीय स्त्रियाँ और उनकी सन्तान

[लेखिका :---श्रीमती फातिमा गुल]

आजकलके सामयिक पत्रोंकी यह विशेषता है कि वे महिलाओंका पृष्ठ या कालम देना नहीं भूलते हैं, क्योंकि आजकलके सम्पादक लोग इस भूलके दुष्परिणामको बख़ूबी जानते हैं ! स्त्रियाँ अब समाचारोंकी साधन हो गई हैं। उनके समाचार अब आग्रहसे उद्धृत किये जाते हैं। इस युगमें भारतीय स्त्रियाँ भी, जिनके गुण और सौन्दर्यका स्त्री-जगतमें अभी तक उचित समादर नहीं हुआ है, शान्ति-पूर्वक अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण कर रही हैं। यह वह युग है, जिसमें प्रतिदिन स्त्रियोंको अधिक स्वतंत्रता मिल रही है। दक्षिण-अफ्रिकाकी भारतीय स्त्रियोंने एकान्त शान्तिसे अपने जीवनका अनुगमन किया है। स्त्रियोंको मताधिकार प्राप्त होनेके आन्दोलन तथा अन्य नियमोंके गोलमालने उनके छोटे स्वप्नको भंग नहीं किया।

दक्षिण-अफ्रिकामें भारतीय किस प्रकार पहुँचे, इसका इतिहास पिछले कुछ वर्षोंमें इतनी बार दोहराया जा चुका है कि उसे यहाँ लिखना एकदम बेकार है। अफ्रिकाकी अनुकूल दशाकी लालचमें आकर स्त्रियाँ अपने पतियोंके साथ एक लम्बी, मुश्किल और खतरनाक यात्रा करके इस देशमें पहुँचीं। यहाँ उनके लिए सभी चीज़ें नई थीं। वे एक ऐसी भूमिमें आईं, जहाँ परस्पर विरोधी बातोंकी भरमार है—हर चीज़ चरमसीमा की है। प्रकाश और परिश्रमकी इस भूमिने यदि उन्हें निराश भी किया, तो भी उन्होंने अपनी शान्ति बनाये रखी।

केपमें जो भारतीय स्त्रियाँ बसी हैं, वे वहाँ प्रायः भारतीय व्यापारियोंकी पत्नीके रूपमें आती हैं। उनका समस्त जीवन अपने ही में केन्द्रीभूत होता है। उन्हें एकाएक मलाया-निवासियों, रंगीन जातिवालों तथा यूरोपियनोंके बीचमें रहना पड़ता है। शुरूमें यह परिवर्तन बहुत ही भयंकर जान पड़ता है; परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वे अपनेको नई परिस्थितिके अनुकूल बना लेती हैं। वे डच या अंग्रेज़ी भाषा स्वभावतः ही सीख जाती हैं। अपने देशवासी अन्य बहनोंसे, जो इस देशमें आकर बसी हैं, उनकी मुलाक़ात बहुत दिनोंपर होती है, इसलिए धीरे-धीरे उन्हें मालूम हो जाता है कि उन बहनोंसे भेंट करनेके लिए बहुत दिन तक इन्तज़ार करनेकी बनिस्बत यह बेहतर है कि अपने पड़ोसियोंसे मेल-जोल कर रहें।

केपकी अधिकतर भारतीय स्त्रियाँ यूरोपियन ढंगकी पोशाक अख्तियार कर लेती हैं, और मलाया-युवतियोंकी भांति गुलूबन्द पहनती हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि वे अपनी भारतीयताकी पहचान मिटा देती हैं। बात इसके एकदम विपरीत है, क्योंकि जब तक उनकी मातृ-भाषाका प्रेम बना है, तब तक वे सदा भारतीय बनी रहेंगी। वे देखती हैं कि दक्षिण-अफ्रिकन युवक साड़ीको एक विचित्र पहनावा समझकर बड़े कौतूहलसे देखते हैं, अतः केवल इसलिए कि लोगोंका अनुचित ध्यान आकर्षित न हो, वे यूरोपियन ड्रेस पहनती हैं। उनमेंसे भी कुछ स्त्रियाँ, जो कट्टर विचारोंकी हैं, अब तक अपनी भारतीय पोशाक ही पहनती हैं।

यह ट्रान्सवाल था, जिसमें भारतीय महिलाओंके इतिहासका वह चिरस्मरणीय दृश्य अंकित हुआ था। इसी सूबेमें भारतीय महिलाओंके उस वीर दलने सत्याग्रह-संग्राममें पुरुषोंके कंधों-से-कंधा भिड़ाकर मोर्चा लिया था। वह एक स्मरणीय समय था। जो स्त्रियाँ यंत्रणाओंसे डरती थीं, उन्होंने खुले मनसे अपना रुपया-पैसा प्रदान किया था, परन्तु जो वीरताके साँचेमें ढली हुई थीं, उन्होंने उस संग्राममें असह्य यंत्रणाओं और विपत्तियोंको बरदाश्त किया था। ट्रान्सवालकी भारतीय स्त्रियोंकी ऐसी अजेय आत्मा थी। ट्रान्सवालकी भारतीय महिलाओंने सहस्रों कठिनाइयोंको वीरता-पूर्वक सहन किया है। इस प्रान्तकी भाषा प्रायः डच है। उन्होंने इस भाषाको सीखा है, और वे अक्सर इसे बड़ी तेज़ीसे बोल सकती हैं। उन्होंने

अपने घरोंकी सफ़ाई और सुप्रबन्धमें अपने यूरोपियन पड़ोसियोंके रंगढंग सीखनेकी चेष्टा की है।

परन्तु ट्रान्सवालकी भारतीय स्त्रियोंने अपने देशी व्यवहार, देशी पोशाक और अपने धर्मके प्रेमको जाग्रत रखा है। थोड़ेसे समयमें इन गहरे गड़े हुए संस्कारोंका टूटना भी असम्भव है। केपमें रहनेवाली भारतीय स्त्रियोंके साथ ऐसा व्यवहार होता है, जिससे वे अपनेको वहाँका नागरिक अनुभव करतीं हैं, इसके विरुद्ध ट्रान्सवालकी भारतीय महिलाओंके साथ ऐसा व्यवहार होता है, जिससे वे अपनेको विदेशी अनुभव करती हैं, इसलिए यदि वे अपनी मातृभूमिकी याद नहीं भूलना चाहतीं, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। दीवालोंपर टंगी हुई तस्वीरोंमें उन देवताओंकी मूर्तियाँ हैं, जिन्हें वे बचपनसे पूजती हैं, परन्तु इस अपरिचित नई भूमिके लिए भी वे अपना कर्तव्य पूरा करती हैं। यदि वे अपने बच्चोंको उनकी जन्मभूमि (ट्रान्सवाल) का प्रेम करना सिखलाती हैं, तो साथ ही अपनी मातृभूमि (भारत) की भक्ति करना भी सिखलाती हैं। जब उनके पास ईश्वरकी कृपासे काफ़ी धन हो जाता है, तो वे कभी कभी भारतकी यात्रा करके अपनी पुरानी स्मृतियोंको सजग कर आती हैं।

नेटालमें गर्म देशोंके समान सरसब्ज़ी देखकर यह मालूम होता है कि यह भारतवर्ष ही का कोई हिस्सा है, जो काटकर दक्षिण-अफ्रिकामें रख दिया गया है, अतः यदि नेटालमें भारतीय स्त्रियाँ नेटालको अधिक चाहती हैं, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वह उन्हें सुदूर भारतवर्षकी याद दिलाता है। सब बातोंको देखते हुए यहाँ भारतीय स्त्रियाँ अधिक आनन्दमें हैं। यहाँ उनके लिए भारतवर्षके जीवनका ही सिलसिला है। नेटालको लोग यूनियनका (दक्षिण-अफ्रिकाकी सम्मिलित रियासतोंका) बग़ीचा कहते हैं, सो ठीक ही है; परन्तु अंशतया यह भारतीय स्त्रियों और उनके पतियोंके ही परिश्रमका फल है, जिससे यह सूबा ऐसे सुन्दर बग़ीचेके रूपमें परिवर्तित हुआ है।

केपकी भारतीय महिलाएँ प्रायः वहाँके भारतीय व्यापारियोंकी स्त्रियोंके रूपमें ही वहाँ आई हैं। केपमें भारतीयोंकी आबादी थोड़ी है, परन्तु वे लोग आरम्भ ही से घर बनाकर बसनेवाले रहे हैं। यहाँ भारतीय नारियोंका घर ही उनकी कार्यशक्तियोंका केन्द्र है। अधिकतर वे अपने पतियोंके रोज़गारके स्थानसे दूर रहती हैं। उन्होंने अपना रहन-सहन अपने पड़ोसियोंके समान बना लिया है। इस बातमें वे अच्छी तरह सफल हुई हैं। अपनी नेटाल और ट्रान्सवालकी बहनोंकी अपेक्षा उनके सामाजिक मामलोंमें यूरोपियनपन अधिक है। इस प्रान्तकी भारतीय महिलाएँ अन्य जातिकी स्त्रियोंसे स्वतन्त्रता-पूर्वक मिलती-जुलती हैं। उन्हें घरके बाहरका जीवन अधिक पसन्द नहीं है, परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उन्हें अपने बच्चोंको बाहर खेलने कूदनेमें आपत्ति न होगी।

ट्रान्सवालमें सोना निकालनेका आश्चर्यजनक हाल सुनकर उसके लालचमें भारतीयोंके साथ उनकी स्त्रियाँ भी इस प्रकाशमय भूमिमें आईं। इस परस्पर विरोधी बातोंकी भूमिमें वे शीघ्र ही हिल-मिल गईं और धीरे-धीरे यहाँ बस गईं। यद्यपि अपनी केपकी बहनोंकी भाँति उन्होंने दक्षिण-अफ्रिकाकी बातोंको तुरन्त ही ग्रहण नहीं कर लिया, मगर फिर भी उनकी उन्नति क्रमशः होती रही। यहाँपर चूँकि वे चारों ओर अपने देशवाली भाई-बन्दोंसे घिरी रहती हैं, इसलिए वे सुखी हैं।

नेटालमें जो भारतीय स्त्रियाँ आकर बसी हैं, वे जीवनकी प्रायः सभी श्रेणियोंसे आई हैं। उनमेंसे यदि कुछ मज़दूर-श्रेणीकी हैं, तो कुछ व्यापारिक या कृषक-श्रेणीकी। इनमेंसे बहुतसी स्त्रियोंने तो अपने पतियोंके साथ चाय और गन्नेके खेतोंमें भी काम किया है। भारतीय स्त्रियोंसे अशिक्षित (Unskilled) मज़दूरोंकी भाँति काम लिया जाता था, परन्तु उनकी शक्तियाँ यहीं तक परिमित नहीं थीं। उन्होंने कोयलेकी खानोंमें काम किया, और म्यूनिसिपेलिटियों तकने उन्हें नौकर रखा। मज़दूरी करनेवाली भारतीय स्त्रियोंका जीवन सुखी नहीं था। यह मेहनत करनेवाली नारियां

शरीरसे कमज़ोर और पैसेसे दरिद्र थीं। इन्हें सन्तानोत्पत्तिके साथ साथ घर-गृहस्थीका परिश्रम और बाहर मेहनत-मज़दूरी करनी पड़ती थी। उनका समस्त जीवन एक अविश्रान्त परिश्रम ही दिखलाई पड़ता था। भला इन, शक्तिसे अधिक काम करनेवाली और चिन्ताओंसे परेशान भारतीय माताओंसे यह कब आशा की जा सकती है कि वे आजकलकी समस्याओंपर कुछ उन्नतिशील विचार रख सकें, परन्तु इन्हीं माताओंमेंसे बहुतोंने अपनी मेहनत, अपनी सहन-शक्ति और अपनी दूरदर्शितासे अपने बच्चोंको ऐसी सुन्दर शिक्षा दी है, जिससे न केवल उनका ही, बल्कि समस्त भारतीयोंका नाम हुआ है।

शीघ्र ही यहां शास्त्री-कालेज खुलेगा। इसमें भारतीय पुरुष स्त्रियोंको शिक्षक बननेकी तालीम दी जायगी। इससे नेटालके भारतीयोंके जीवन-इतिहासका एक नया अंश विकसित होगा। इस सूबेमें भारतीय शिक्षाका दीपक बहुत धीमे-धीमे टिमटिमा रहा है। इस कालेजसे वहां सम्पूर्ण प्रकाश फैल जायगा। अभी वहां दो-चार भारतीय शिक्षिकायें हैं। अच्छे साधन होनेसे भारतीय शिक्षिकाओंकी कमी धीरे-धीरे मिट जायगी।

बच्चोंके लालन-पालन और उनके सुधार आदिका काम (Child welfare) अभी आरम्भ ही हुआ है। इस क्षेत्रमें भारतीय स्त्रियाँ अपनी स्त्री-सुलभ सहानुभूतिसे, पीड़ित मानव-समाजके प्रेमसे और अपने समाज-सेवाके अनुभवसे अपनी जातिकी अनन्त सहायता कर सकती हैं। भारतीय कार्यकर्त्रियोंकी बड़ी सख्त ज़रूरत है, इसलिए कुछ कार्यकर्त्रियाँ तय्यार भी होंगी, परन्तु उनके मार्गमें सबसे बड़ी अड़चन यह है कि उनमें ऐसे कामोंकी ट्रेनिंगकी कमी है। जब ट्रेनिंग-स्कूल खुल जायँगे, तब भारतीय कार्यकर्त्रियों और भारतीय उदारताकी भी कमी न रहेगी।

आजकलके बच्चोंके विषयमें इतनी अधिक दिलचस्पी ली जा रही है कि जिसकी इन्तिहा नहीं। इस दुःख-भरी दुनियाँको देखनेके बहुत पहलेसे ही उनकी ज़रूरतें चुपचाप पूरी की जाती हैं। जन्म लेनेके बादसे जब तक वह स्कूल जाने योग्य नहीं हो जाता, उसकी लगातार सावधानी करनी पड़ती है। भारतीय बच्चे भी इस सावधानी और दिलचस्पीका अपना उचित भाग पाते हैं। वे भी अपनी माताओंकी भाँति इस विचित्र देशमें भाँति-भाँतिका जीवन व्यतीत करते हैं।

केप ही ऐसा स्थान है, जहांके भारतीय बच्चों और रंगीन बच्चोंकी शिक्षामें कोई अन्तर नहीं रखा गया है। केपके भारतीय बच्चे अन्य जातियोंके बच्चोंके संसर्गसे बहुत लाभ उठाते हैं। वे ज़ल्द ही फुर्तीले हो जाते हैं। स्कूलके कमरेमें जाति, धर्म, रंग आदिके गहरे गड़े हुए संस्कार दूर हो जाते हैं। बच्चे एक उन्नतिशील वातावरणमें पलते हैं। यह उदार विचार यूनियनके अन्य स्थानोंकी अपेक्षा केपमें ही अधिक दिखाई देते हैं।

ट्रान्सवालके भारतीय बालकोंकी शिक्षामें बड़ा अन्तर है। पिछले कुछ वर्षोंसे कुछ सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूल खुल गये हैं। आरम्भिक दर्जोंमें भारतीय बच्चोंकी शिक्षा उनकी किसी देशी भाषामें दी जाती है। स्कूलमें वे केवल भारतीय बच्चोंसे ही मिलते हैं, गोकि स्कूलके बाहर मलाया और रंगीन बच्चोंसे उनकी दोस्ती चलती रहती है।

यदि ट्रान्सवालके भारतीय बच्चोंकी दशा खराब है, तो नेटालके भारतीय बच्चोंकी दशा भी कुछ अच्छी नहीं है। वहां बहुतसे स्कूल हैं, मगर उनमें अधिकांश सरकारी सहायतासे चलते हैं। ये स्कूल प्रायः ईसाई पादरियोंके हाथमें हैं, जो भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारके अग्रणी हैं। मस्जिदोंमें कुछ मदरसे हैं, जिनमें धर्म और देशी भाषाकी शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त, कुछ वर्नाक्यूलर स्कूल अन्य लोगोंके हाथमें भी हैं। इनमें किसी-किसीमें अंग्रेज़ी शिक्षा भी दी जाती है, परन्तु यह सब मिलकर भी भारतीयोंकी इतनी बड़ी संख्याके लिए काफ़ी नहीं है। एक सेकेंडरी स्कूल भी है, जिसमें केवल भारतीय विद्यार्थी ही लिये जाते हैं। प्रान्तीय सरकारने भारतीयोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें एक जाँच भी कराई थी।

उसके लिए दो विशेषज्ञ भारतसे भी आये थे। इसका शुभ फल यह हुआ कि इस वर्ष भारतीयोंकी शिक्षाके सरकारने कुछ रकम अलग रख दी हैं। शिक्षा-प्राप्तिके साधनोंकी कमी होते हुए भी भारतीयोंने इस भूमिमें बड़ी वीरता-पूर्वक प्रतिद्वन्द्विता की है।

बहुतसी जातियोंकी इस भूमिमें—प्रकाश और परिश्रमके इस देशमें भारतीय नारियोंने अपना कर्तव्य बड़ी शान्तिपूर्वक निबाहा है। यद्यपि उनका कार्य-क्षेत्र घर है, परन्तु उन्होंने इस भूमिके आदर्शोंमें अपनेको रंग लिया है। उनपर इस देशकी प्रचंडताका असर पड़ा है। वे अपनेको दक्षिण अफ्रिकाके योग्य बनानेके लिए रूढ़ियों, प्रथाओं, कुसंस्कारों और अज्ञानकी दीवारोंको तोड़नेका सतत प्रयत्न कर रही हैं। वे जानती हैं कि उनके बच्चे दक्षिण-अफ्रिकाके नागरिकोंमें सम्मान-पूर्वक स्थान ग्रहण करेंगे। यह भारतीय स्त्रियाँ जानती हैं कि वे दक्षिण अफ्रिकामें सदाके लिए आ गई हैं, अब वे लौटकर भारतमें अपने पुरखोंके गांवोंको नहीं जा सकतीं; क्योंकि इस विचित्र देशके जीवनमें एक अजीब तरहकी प्राणोत्साहिनी शक्ति है, और इस शानदार नवीन भूमि दक्षिण-अफ्रिकाके खुले मैदानोंकी हवा उनके बच्चोंकी रंगोंमें अच्छी तरह भिद गई है।

अमेरिकामें वेदान्ती

[लेखक:—अध्यापक सुधीन्द्र बोस, एम० ए०, पी-एच० डी०, आयोवा]

(विशेषकर 'विशाल-भारत' के लिए)

(१)

आधुनिक भारतवर्ष अकसर अपने राजनैतिक आन्दोलनके धूम-धड़केमें उन पवित्र आत्माओंको भूल जाता है, जो अमेरिकामें वेदोंकी रोशनी फैला रही हैं। जिस किसीके आधी आँख भी है, वह भलीभांति देख सकता है कि इस पवित्र काममें जुटे हुए व्यक्तियोंका सन्देश केवल अमेरिका ही के लिए कल्याणकारी नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तानके लिए भी बहुत लाभदायक है। इन लोगोंने एक ओर तो अमेरिकाके सामने—जो ईसाई-मतके सैकड़ों सम्प्रदायोंमें बँटा हुआ है—एक विश्वव्यापी धर्मका आदर्श उपस्थित किया है, और दूसरी ओर इन्होंने नई दुनियाँ और हिन्दुस्तानके बीचमें सद्भाव और एक दूसरेके भावोंको समझनेका सम्बन्ध स्थापित करनेकी कोशिश की है। इन दोनों देशोंमें समुचित और नियमित सम्पर्क स्थापित करनेके अवसर बढ़ानेमें इन लोगोंकी सेवाएँ अनमोल हैं। कम-से-कम इन लोगोंने इन दोनों महान् राष्ट्रोंके बीचकी खाईको पूरनेका शानदार श्रीगणेश तो अवश्य ही किया है। जो लोग इन लोगोंकी सेवाओंको तुच्छ बतानेकी कोशिश करते हैं, वे लोग विचारशीलताके स्कूलमें 'क, ख, ग' से आगे नहीं बढ़ने पाये हैं।

जबसे सन् १८९३ में स्वामी विवेकानन्दने इस देशकी पहले-पहल यात्रा की थी, तबसे यहांके समझदार अमेरिकनोंमें वेदोंकी शिक्षाने एक आदरणीय स्थान ग्रहण कर लिया है। अमेरिकाकी सर्वप्रथम वेदान्त-सोसाइटीकी स्थापना स्वामी विवेकानन्दने न्यूयार्क नगरमें शिकागोकी 'विश्व-धर्म-परिषद्' के एक साल बाद सन् १८९४ में की थी। आजकल अमेरिकामें छै वेदान्त-केन्द्र हैं, जहाँ लगभग एक दर्जन स्वामी कार्य करते हैं। वे लोग सब रामकृष्ण-विवेकानन्द-संघके पदाधिकारी हैं। मानव-जातिके कल्याणके लिए इन निष्ठावान कार्यकर्ताओंके कामोंका विवरण (रिकर्ड) देखकर उन प्राचीन बौद्ध-भिक्षुओंकी याद आ जाती है, जिन्होंने भारतवर्षसे दूर-दूर देशोंमें जाकर भगवान् गौतम बुद्धके उपदेशोंका प्रचार किया था। उन लोगोंका कार्य व्यर्थ नहीं गया। उनका बीज जीवित है। ये स्वामीगण दूरदर्शी, सत्य-दृष्टा और कल्याणके स्वप्न देखनेवाले हैं।



न्यूयार्कके स्वामी बोधानन्द

(२)

ये भारतीय धर्मोपदेशकगण अमेरिकामें दूकानदारीके इरादेसे नहीं आये हैं। इस मामलेमें वे साधारण ढंगके ईसाई पादरियोंसे एकदम भिन्न हैं। ईसाई पादरी इस बातके बड़े उत्सुक होते हैं कि जहाँ कहीं उनकी बाइबिल पहुँचे, वहाँ उसके पीछे-पीछे उनका झंडा (राज) भी ज़रूर पहुँचे। नमूनेके लिए हेनरी मार्टन स्टेनलीका केस ही लीजिये। वे स्काटिश पादरी डेविड लिविंगस्टनको बचानेके लिए अफ्रिका गये थे। स्टेनली साहबने डार्क कन्टीनेन्ट (काला महाद्वीप—अफ्रिका) से लौटकर मैन्चेस्टरके चेम्बर-आफ-कमर्सके सामने एक स्पीच दी थी। इस स्पीचमें उन्होंने चेम्बरसे कांगोमें मिशनरियोंके प्रचारमें सहायता देनेके लिए कहा था। आपने कहा—"ईसाई धर्म कांगोके हब्शियोंको कम-से-कम रविवारके दिन साफ़ सूती कपड़ा पहननेकी शिक्षा देगा। हरएक हब्शीके लिए एक-एक पोशाक बनानेके अर्थ होंगे मैन्चेस्टरके बत्तीस करोड़ गज़ सूती कपड़ेकी खपत! (श्रोताओंकी हर्षध्वनि)। समय पाकर जब हब्शी लोग रविवारकी भाँति हररोज़ अपना नंगा शरीर ढकनेकी विशेषताको समझ जायँगे, तब इतना कपड़ा खपने लगेगा, जिसका दाम दो करोड़ साठ लाख पौंड (क़रीब ३,६०,००,००० रुपये) सालाना होगा।" अपनी इस स्पीचमें स्टेनलीने धार्मिक और व्यापारिक उद्देशोंका बड़ी उस्तादीसे संमिश्रण किया था—

"कांगो देशमें चार करोड़ आदमी हैं, और मैन्चेस्टरके जुलाहे उन्हें कपड़ा पहनानेके इन्तज़ारमें हैं। बर्मिंघमके लुहारोंकी भट्टियां धधक रही हैं, जो उनके लिए लोहेकी चीजें और मालाओंके दाने बनायेंगी, जिनसे उनकी काली छातियाँ सुशोभित होंगी। ईसाई पादरी इन बेचारे पथभ्रष्ट मूर्तिपूजकोंको ईसाई-मतके घेरेमें लाकर उनका उद्धार करनेके लिए उत्सुक हैं।"

भारतीय उपदेशकों द्वारा प्रचारित वैदिक धर्म, स्टेनली साहबके छींट-मार्का ईसाई-धर्मसे उतना ही दूर है, जितना उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुवसे। इसके अलावा, भारतीय उपदेशक लोग पढ़े-लिखे, परिमार्जित और सुसस्कृत व्यक्ति हैं। वे लोग बिना अपवादके, आदर्श-चरित्रवाले व्यक्ति हैं। वे ऊँचेसे ऊँचे आदर्शोंके अनुसार जीवन व्यतीत करनेकी सच्ची चेष्टा करते हैं। जब मैं इन लोगोंका ईसाई अबाँमर्दोसे मुक़ाबला करता हूँ, तो मैं उत्साहसे भर जाता हूँ। उदाहरणके लिए सर जान हाकिन्सको लीजिए। यह धर्मान्ध लुटेरा और डाकू अंग्रेज़ अपने आदमियोंको 'एक दूसरेसे प्रीति करने' और 'नित्यप्रति ईश-सेवा करने' का उपदेश देता था, परन्तु अफ्रिकाके निरीह हब्शियोंको ज़बर्दस्ती पकड़कर गुलाम बनाकर बेच देता था! आज दिन भी बाइबिलके ऐसे सत्यानाशी समर्थक मौजूद हैं, जो उपदेश कुछ देते हैं और करते कुछ हैं।



सैन फ्रान्सिसकोकी वेदान्त-सोसाइटीका हिन्दू-मन्दिर



सैन फ्रान्सिस्कोके स्वामी दयानन्द और स्वामी माधवानन्द तथा उनके कुछ शिष्य

(३)

अब मैं यहाँपर अमेरिकाके छहो वेदान्त-केन्द्रोंका कुछ ज़िक्र करूँगा।

१. न्यूयार्ककी वेदान्त-सोसाइटी स्वामी बोधानन्दकी देख-रेखमें है। वे न्यूयार्क शहरमें पन्द्रह वर्षसे अधिक समयसे हैं। स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द उनके साथ काम करते हैं।

२. बोस्टनका वेदान्त-केन्द्र स्वामी परमानन्दके चार्जमें है।

३. प्राविडेन्सके वेदान्त-केन्द्रको स्वामी अखिलानन्दके नेतृत्व प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त है।

४. लाक्रिसेन्टा केलीफोर्नियाके आनन्द-आश्रमके नेता भी स्वामी परमानन्द हैं।

५. सैन फ्रान्सिस्कोकी वेदान्त-सोसाइटीके आध्यात्मिक नेता स्वामी दयानन्द हैं। इसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्दके प्रचारका प्रत्यक्ष परिणाम है, जो उन्होंने सन् १९०० में सैन फ्रान्सिस्कोमें किया था। अमेरिकामें यह दूसरा सबसे पुराना वेदान्त-केन्द्र है। न्यूयार्ककी वेदान्त सोसाइटीकी भांति सैन फ्रान्सिस्कोका संगठन भी भारतसे आये हुए नये स्वामियोंको ट्रेनिंग देनेका स्थान है। इसे यूनाइटेड स्टेट्समें सर्वप्रथम हिन्दू-मन्दिर स्थापित करनेका भी श्रेय प्राप्त है।

६. अन्तमें आरेगनके पोर्टलैण्डकी वेदान्त-सोसाइटी है। इसके सभापति स्वामी प्रभावानन्द हैं। यद्यपि यह अन्तमें गिनाई गई है, परन्तु इससे इसे आप कम महत्त्वपूर्ण न समझ लीजियेगा।

(४)

अमेरिकामें वेदान्त-प्रचारसे सम्बन्ध रखनेवाले इन स्वामियोंके विषयमें पोथे-के-पोथे लिखे जा सकते हैं। परन्तु उनके कार्योंके विषयमें कुछ लिखनेके लिए न तो यह उपयुक्त समय ही है, और न उपयुक्त स्थान ही। वे मनुष्योंमें उच्च मनुष्य हैं। उन्हें मेरी प्रशंसाकी ज़रूरत नहीं है, किन्तु फिर भी मैं यहाँपर स्वामी परमानन्दका, जो इस देशमें बीस वर्षसे हैं, विशेष ज़िक्र किये बिना नहीं रह सकता। इस सुदीर्घ समयमें वे बराबर व्याख्यान देने, उपदेश देने और लेख आदि लिखनेमें लगे रहे हैं। यह खास तौरपर उन्हींकी कोशिशोंका फल है कि बोस्टनके वेदान्त-केन्द्र और ला-क्रिसेन्टाके आनन्द-आश्रमकी स्थापना हुई। उन्होंने ऐटलान्टिक महासागरके तटसे लेकर पैसेफिक महासागरके तट तक सैकड़ों व्याख्यान दिये हैं, और इसके लिए उन्होंने पचास बारसे अधिक इस महादेशको इस सिरेसे उस सिरे तक पार किया है।



सैन फ्रान्सिस्कोके हिन्दू-मन्दिरसे सम्बन्ध रखनेवाले 'शान्ति-आश्रम' में एक स्वामीजी बाहर बागमें व्याख्यान दे रहे हैं। पेड़पर 'ॐ' लिखा है।

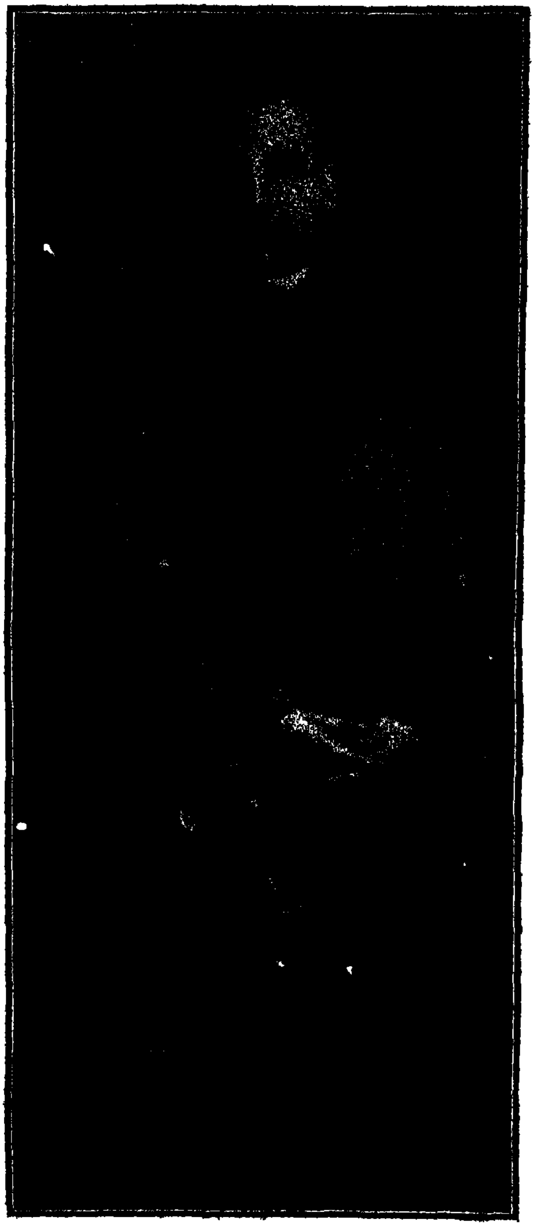
स्वामी परमानन्दने पाश्चात्य जनताके सम्मुख पूर्वीय धार्मिक विचारोंको उपस्थित करनेके काममें अपनेको उपयुक्त सिद्ध कर दिया है। अभी हालमें उन्होंने अपने कार्यक्रममें एक मनोरंजक वृद्धि की है।

उन्होंने लास एंजेल्स और ग्लेनडेलके भिन्न-भिन्न रेडियो स्टेशनोंसे आध-आध घंटे धार्मिक बातचीत की है। कुछ वर्ष पूर्व इंग्लैंडके स्ट्रेटफोर्ड-ऑन-एवान नामक स्थानमें शेक्सपियर उत्सवमें व्याख्यान देनेके लिए वे निमन्त्रित किये गये थे। इस लेक्चरपर विचार प्रकट करते हुए टी० पी० ओकलीने लिखा था—"जब स्वामी बोल रहे थे, तो मालूम होता था कि हम लोग पूर्वकी अन्तरात्माकी ओर खिंचे जा रहे हैं। यह अन्तरात्मा पाश्चात्यकी गरमागरम फ़िलासफ़ीकी अपेक्षा हमारे स्वभावोंके कितनी अनुकूल है।" मैं समझता हूँ कि अमेरिकाके अन्य स्वामियोंकी भी यही विशेषता है। उन लोगोंमें भाषाके व्यवहार करनेका वह गुण है, जिससे मनुष्य मात्र प्रभावित हो जाते हैं।

अन्य बहुतसे स्वामियोंकी भाँति स्वामी परमानन्दमें भी आध्यात्मिक विषयोंकी व्याख्या करनेका अद्भुत गुण है। उनका सबसे व्यापक प्रभाव शायद उनके लेखोंसे पड़ा है। उन्होंने सन् १९०७ में बहुत सामान्य रीतिसे लिखना आरम्भ किया था। उनकी पहली पुस्तक 'पाथ आफ-डिवोशन' (भक्तिमार्ग) थी, मगर बढ़ते-बढ़ते अब उनकी लिखी हुई पुस्तकोंकी संख्या छब्बीस तक पहुँच गई है। उनके बहुतसे ग्रंथोंके पाँच-पाँच, छै-छै संस्करण भी हो चुके हैं, और उनका अनुवाद भी जर्मन, फ्रेंच, स्वीडिश तथा हिन्दी, तामिल, गुजराती और अन्य भारतीय भाषाओंमें हो चुका है।

स्वामी परमानन्दके मनमें सन् १९१२ में यह विचार उत्पन्न हुआ कि एक वेदान्त मैगज़ीन होनी चाहिए। फल यह हुआ कि 'मैसेज-आफ-दी ईस्ट' (पूर्वीय सन्देश) नामक पत्रका जन्म हुआ, जिसका सोलहवाँ खंड अभी पूरा हो चुका है। इसमें केवल भारतीय आर्योंके धर्म और दर्शनपर ही प्रकाश नहीं डाला जाता, बल्कि यूरोप तथा एशियाके महान् विचारशील व्यक्तियोंके और संसार भरके धर्म-ग्रन्थोंके समान विचारोंका समावेश रहता है। इस मैगज़ीनका महत्त्व इस बातसे ज्ञात होता है कि अमेरिकाकी बहुतसी प्रमुख लायब्रेरियाँ और यूनिवर्सिटियाँ इसकी स्थायी फाइल रखती हैं।

आनन्द-आश्रममें स्वामी परमानन्दने एक 'टेम्पुल-आफ़-यूनिवर्सल स्पिरिट्स' नामक मंदिरकी स्थापना की है। इस मन्दिरमें संसारके सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध धर्मों—हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, जैन, पारसी, टाओइज़्म, शिन्टो, इस्लाम और यहूदी आदि—के उपदेश देनेके अलग-अलग स्थान बने हुए हैं। इनमेंसे अन्तिम स्थान 'एक ब्रह्म' के लिए समर्पित है। मन्दिरकी खिड़कियोंके शीशोंपर भी भिन्न-भिन्न तस्वीरें बनी हुई हैं। इनमें बौद्धोंका पैगोडा, कन्फ्यूशियस लोगोंका स्वर्गीय मन्दिर, ईसाइयोंका कैथेड्रल-आफ-चार्ट्स, निक्कोंके शिन्टो-मन्दिरका नमूना, जेरुसलेमकी उमरकी मस्जिद, मिश्रवालोंके इदफूका मन्दिर, ग्रीक लोगोंके पोसीडनका मन्दिर, एक कृष्ण-मन्दिर तथा मदुराके सुप्रसिद्ध मन्दिरके शानदार



पोर्टलैण्डके स्वामी प्रभावानन्द

शिखरका चित्र अंकित है। इस मन्दिरकी स्थापनासे स्वामी परमानन्दका अन्य धर्मोंके प्रति प्रेम और सहिष्णुता भलीभाँति प्रत्यक्ष हो जाती है। इन समस्त सुदीर्घ वर्षोंमें जबसे वे अमेरिकामें हैं, यह प्रेम और सहिष्णुता उनके कार्यकी खास विशेषता रही है।

(५)

यूनाइटेड-स्टेट्समें धर्मोंकी भरमार है, परन्तु वेदान्त-धर्मके नेताओंको किसी सम्प्रदाय-विशेषसे कोई सरोकार नहीं है। वे एक विश्वव्यापी धर्मका—सत्य, न्याय और प्रेम जिसके अंश हैं—प्रचार करते हैं। न्यूयार्कके स्वामी बोधानन्दका कथन है कि—"वेदान्त किसी भी धर्म या फ़िलासफ़ीका विरोधी नहीं है, बल्कि उसका समस्त धर्मोंसे सामंजस्य है। मनुष्य-मात्रके लिए जो मनुष्यता है, जीवित मात्रके लिए जो जीवन है, धर्मोंके लिए वही वेदान्त है। यह उनकी आन्तरिक एकता है, यह उनका सम्मिलित निचोड़ है, इसीलिए इसका किसीसे झगड़ा नहीं है। सम्पूर्ण वस्तुको अपने ही अंशसे कभी विरोध नहीं हो सकता। वेदान्तमें सभी धर्मोंके लिए स्थान है, बल्कि वह सभी धर्मोंको आलिंगन किये हुए है।"

स्वामी विवेकानन्दने अपने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि धर्मके अर्थ हैं तत्त्व-साक्षात्कार, अर्थात् धर्म न केवल आराधनाका ही मार्ग है, बल्कि युक्तिपूर्ण समाधान, भक्ति और आत्मदर्शनका भी पथ है। यह सिद्धान्त प्रोफ़ेसर विलियम जेम्सके व्यावहारिकताके सिद्धान्तका आध्यात्मिक भाग है। प्रोफ़ेसर जेम्सका सिद्धान्त है—'किसी चीज़के अच्छी होनेके लिए यह ज़रूरी है कि वह किसी-न किसी कामके योग्य हो।'

एक प्रकारसे स्वामी विवेकानन्दने वेदोंमें बहुत दिनोंसे छिपे हुए सत्योंको खोज निकाला है। हम लोगोंने इन सत्योंको भुला रखा था, जिसके कारण हिन्दूधर्मपर क्रिया-शून्यताका दोष लग गया है। आक्रमणशील जड़वादके लिए यह एक प्राचीन धर्मका नया प्रयोग है।

अमेरिकामें बहुत लोग ऐसे हैं, जो ईसाईधर्मके वर्तमान स्वरूप और उसके सिद्धान्तोंसे सन्तुष्ट नहीं हैं। उसका देवता प्राचीन संहिता (Old Testament) का खूनका प्यासा जीहोवा है, जो अपरिचितोंका विरोधी और प्रचंड रोष तथा प्रतापसे भरा हुआ है। नई रोशनीके अमेरिकन

लोग उससे विरक्त हो गये हैं। वे लोग जीवन और अस्तित्वका युक्तिपूर्ण समाधान चाहते हैं। फिर एक दूसरे प्रकारके अमेरिकन भी हैं, जो धर्ममें विश्वास रखते हैं; परन्तु वे केवल 'धर्म' शब्द ही में विश्वास रखते हैं, उसका व्यावहारिक स्वरूप नहीं जानते, लेकिन वे उसका व्यावहारिक स्वरूप जानना चाहते हैं। इनके अतिरिक्त एक और पृथक दल है। यह लोग वैज्ञानिक प्रकृतिके हैं। उन्हें वैज्ञानिक धर्मकी ज़रूरत है। ये तीन प्रकारके लोग अमेरिकाके किसी भी धर्मसे कोई सहायता नहीं पा सकते। उन्हें केवल वेदान्तकी शिक्षा ही में शरण मिलती है।



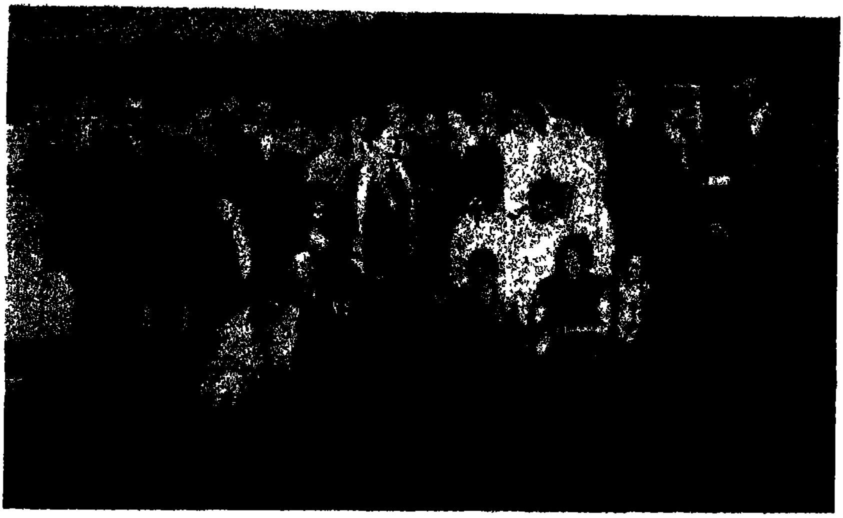
पोर्टलैण्ड वेदान्त-सोसाइटीके कुछ सदस्य

स्वामी विवेकानन्दने यह समझ लिया था कि यह ज़माना खास तौरपर कर्म और उद्योगका ज़माना है। उनमें वैज्ञानिकोंकी विश्लेषण-बुद्धि और महान् मानव प्रेमियोंकी सहानुभूति तथा शुभाकांक्षाका अद्भुत मेल हुआ था। उनका 'कर्मयोग' गीताकी शिक्षाकी सहायतासे पाश्चात्य देशोंके अधिकांश लोगोंकी समस्याको हल कर देता है।

प्राविडेन्स-वेदान्त-केन्द्रके स्वामी अखिलानन्द स्वामी विवेकानन्दके कर्मयोगकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं—"ईश्वरीय ज्ञानका धर्म केवल भक्ति-प्रवृत्तिवाले लोगोंके लिए ही नहीं है, बल्कि कर्मशील व्यक्तियोंके लिए भी है। कर्म ही आराधनामें बदल जाता है। सचमुचमें वे समस्त कर्म जो निःस्वार्थ भावसे और उनके फलकी चिन्ताके बिना किये जाते हैं, मनुष्योंको ईश्वरकी ओर ले जाते हैं। कोई भी व्यक्ति साधारण कामोंके बीचमें रहकर भी सच्चा और पवित्रात्मा हो सकता है। पाश्चात्य लोग केवल अपने जीवनके दृष्टिकोणको बदल दें और अपने, कर्मोंको पवित्र बनायं। आजकलकी मशीनसे बनी हुई सभ्यताकी बुराइयोंसे बचनेकी केवल-मात्र यही औषधि है। वेदान्त युक्तिपूर्ण धर्मके आधारपर विज्ञानसे मिलता है।

"हम लोग वेदान्तके इस सिद्धान्तपर कि जीवन एक है, ज़ोर देते हैं। लोग जितना ज्यादा इस विचारको समझेंगे, उनका प्रतिदिनका जीवन उतना ही अधिक मधुर बनेगा। जीवनके इस दृष्टिकोणसे लोग कम स्वार्थी बनेंगे। इसका फल यह होगा कि आजकलके निरे जड़वादका बुरा प्रभाव घटेगा।

"हम किसीसे यह नहीं कहते कि तुम विज्ञान-जनित सुविधाओंका लाभ मत उठाओ, वरन् हमारा कथन सिर्फ़ इतना है कि जीवनके दृष्टिकोणको बदल दो और अपने कर्मोंको पवित्र बनाओ, दूसरे शब्दोंमें हम उनसे यह कहते हैं कि सब कामोंको सेवा-भावसे करो। इसके अतिरिक्त, हम उन्हें धर्मकी प्रेक्टिसका कुछ पाठ भी देते हैं। हमारा विश्वास है कि वेदान्त—जैसा रामकृष्ण तथा विवेकानन्दने बताया है—धर्म और विज्ञानके झगड़ोंको मिटाकर उनमें साम्य स्थापित करेगा।"



पोर्टलैगडकी वेदान्त-सोसाइटीके सदस्यगण।
बीचमें सैन फ्रान्सिस्कोके स्वामी माधवानन्द भी हैं जो उस समय पोर्टलैगडमें आये हुए थे।

भारतीय धर्म-प्रचारक लोग अमेरिकन लोगोंके राजनैतिक और सामाजिक मामलोंमें कभी हस्तक्षेप नहीं करते। वे केवल धार्मिक क्षेत्रमें अपनेको सीमित रखते हैं, या यों कहिए कि उनका काम 'केवल वेदान्तका सन्देश सुनाना-मात्र है। वे लोग लेक्चरों, मुलाकातों, वाद-विवादके क्लासों, रेडियोकी बातचीत और बेतकल्लुफाना सामाजिक सम्मेलनोंके द्वारा अमेरिकन लोगोंके मनको खींचनेकी कोशिश करते हैं। इसके अलावा वे नियमितरूपसे रविवारके दिन प्रार्थना करते हैं। यह बतलानेकी जरूरत नहीं कि सब अमेरिकनोंमें धार्मिक दिलचस्पी नहीं है। केवल वही लोग, जिन्होंने आत्म-चिन्तन करना सीखा है और जो जीवनका युक्तिपूर्ण समाधान ढूँढ़ते हैं, वेदान्तकी ओर आकर्षित होते हैं।

स्वामियोंकी राय है कि वेदान्त एकदम व्यावहारिक है। यह इस बातपर ज़ोर देकर कि समस्त शक्ति और सम्पूर्णता प्रत्येक व्यक्तिके भीतर मौजूद है, उसमें आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है। सम्पूर्णता-प्राप्त मनुष्य और साधारण मनुष्यमें जो अन्तर है, वह गुण-सम्बन्धी नहीं है, बल्कि परिमाण-सम्बन्धी है। तत्त्व गुण दोनोंमें एक ही है। केवल उसके विकासकी मात्राका फर्क़ है।

(६)

कुछ पादरियोंको छोड़कर ईसाई पादरी लोग हिन्दुस्तानमें बुरे भाव, घृणा और घोर विरोध पैदा करते हैं। मेरी भारतवर्षकी पिछली यात्रामें बीसियों मनुष्योंने मुझसे यह बात कही थी। उन्होंने मुझसे बतलाया कि ये बिना बुलाये मेहमान राष्ट्रके आतिथ्यका दुरुपयोग करते हैं। नये ईसाई बने हुए लोग भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंके बड़े विरोधियोंमेंसे हैं। वे नौकरशाहीपर और उसके क़ानून बनाने तकमें प्रभाव डालते हैं। चाहे ये बातें उचित हों या अनुचित, मगर ये बातें ईसाई पादरियोंके प्रति फैली हुई अप्रीतिके महत्वपूर्ण कारणोंमें हैं।

स्वामियोंका कार्य किसी प्रकार सरल नहीं है। अधिकतर अमेरिकनोंका लालन-पालन सामूहिक भावुकतामें होता है, अत: वे युक्तिपूर्ण विचार बहुत कम करते हैं। वे लोग केवल अपनी जड़ आदतोंसे ही ऐसे तुच्छ सिद्धान्तोंको मान लेते हैं, जैसे "मनुष्य पाप और अधार्मिकतासे उत्पन्न हुआ है।" "संसार सात दिनमें बनाया गया था।" "ईसाई धर्म ही केवल सच्चा धर्म है।" "यही अन्तिम अवसर है, मृत्युके बाद हम लोग प्रलय काल तक क़ब्रमें पड़े रहेंगे, और प्रलयके दिन हम लोग सब सशरीर क़ब्रसे निकलेंगे फिर अनन्त कालके लिए स्वर्ग या नरकमें फेंक दिये जायँगे।" केवल वे लोग ही जिनके सिर्फ़ बाल हो नहीं पक चुके बल्कि

[illegible] भी परिपक्व हो चुके हैं, ऐसी धारणाओंसे मुँह [illegible]पूर्ण बातें सुन सकते हैं।

बहुतसे अमेरिकनोंको, जिन्हें पादरियोंके रंगे हुए उपदेशोंमें मज़ा आता है, वेदान्तका बुद्धिमतापूर्ण प्रचार अच्छा नहीं लगता। जहाँ तक मुझे मालूम है स्वामी लोग वेदान्तको अपने यथार्थ पवित्र और ज्वलन्त रूपमें बनाये हुए हैं। वे लोग रोग अच्छा करने या जादू-टोना करनेके नीच ढोंगसे इसे दूषित नहीं करते। इसके अतिरिक्त, वे लोगोंके धर्मका परिवर्तन भी नहीं करते।

पोर्टलैंडके स्वामी प्रभावानन्दने मुझसे कहा—"वेदान्त अभी तक अमेरिकाके जनसाधारणके मनको अच्छा नहीं लगा है। यह बढ़ता धीरे-धीरे है, परन्तु पक्के ढंगसे। वेदान्तका विश्वकी एकताका आदर्श और धर्मका समुचित युक्तिपूर्ण अर्थ अमेरिकाके विचारशील पुरुषोंको भाता है। वेदान्तका कार्य वर्तमान कुधारणाओंको दूर करके बुद्धिमान अमेरिकनोंके हृदयमें भारतवर्षके प्रति प्रीति उत्पन्न कर रहा है।



प्राविडन्सके स्वामी अखिलानन्द

(७)

सभी वेदान्तिक सोसाइटियाँ आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बिनी हैं। मेम्बरोंकी फीस, इच्छासे दिया हुआ चन्दा और पुस्तकोंकी बिक्री उनके आयके साधन हैं। पोर्टलैंड और प्राविडेन्सको छोड़कर अन्य स्थानोंकी सोसाइटियोंके पास अपने स्थायी भवन हैं। आधुनिक ढंगकी खासी इमारतें हैं।

उन लोगोंके कथनानुसार, जो इसके सम्पर्कमें हैं, वेदान्त-प्रचारके कार्यका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। वेदान्तिक सोसाइटियोंकी माँग शीघ्रतासे बढ़ रही है। वे लोग जिनका स्वामियोंका साथ होता है, भारत और उसकी फिलासफीके लिए बहुत सहानुभूति रखते हैं। यह बात न भूल जाना चाहिए कि स्वामियोंको बड़ी अड़चनोंका सामना करना पड़ता है। विदेशी रीति-रिवाज, विदेशी भाषा, ईसाई गिरजोंका विरोध और लोगोंकी पुस्तैनी जड़-प्रवृत्ति आदिको उन्हें अतिक्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जनसाधारण अमेरिकनोंकी रुचि मनोरंजन और भावुकताकी ओर अधिक है। जहाँ कहीं उन्हें यह चीज़ मिलती है, वे सैकड़ोंकी संख्यामें जा उपस्थित होते हैं। स्वामी लोग सब तरहकी सनसनी-पूर्ण बातोंसे दूर रहते हैं, फिर भी उनके यहाँ श्रोताओंका जमाव अच्छा हो जाता है।

सैन-फ्रान्सिस्कोके स्वामी दयानन्दका कथन है—"कुछ सच्चे लोग ऐसे हैं, जो समस्त प्रतिकूल परिस्थितियोंके होते हुए भी हमारी सोसाइटीके साथ बने हैं। बहनेवाले बहुत हैं, वे कुछ समयके लिए सोसाइटीमें आते हैं और फिर बहकर शहरसे दूर हो रहते हैं, मगर फिर भी हमारे विचारोंसे सहस्रों आदमियोंको लाभ पहुँचा है। वेदान्तकी शिक्षाकी माँग दिनोंदिन बढ़ रही है। हमारे विद्यार्थी कहते हैं कि वेदान्त जीवनकी शान्ति है। जहाँ कहीं

स्वामी जाते हैं, लोग उनसे नया केन्द्र स्थापित करनेको कहते हैं। यहाँ जितनी माँग है, हम लोग उतने स्वामी नहीं दे सकते, नहीं तो अब तक यूनाइटेड-स्टेट्स की प्रत्येक रियासतमें एक वेदान्त-केन्द्र स्थापित हो गया होता। अमेरिकामें वेदान्त-धर्मका भविष्य महान् है।"



वेदान्तकी अनुयायिनी कुछ अमेरिकन महिलाएँ

जान पड़ता है कि पूर्वी विचार, जो एशियामें तथा विशेषकर भारतवर्षमें विकसित हुए हैं, पाश्चात्य संसारका जड़वादसे उद्धार करनेके लिए आ रहे हैं। मिसेज़ एडम्स वेक अपनी पुस्तक 'स्टोरी-आफ्-ओरियन्टल फिलासफ़ी' में कहती हैं—"पूर्व महिमान्वित है, उच्च जातीय है, धार्मिक है, दुनयवीपनसे दूर है, अवकाशयुक्त है और अन्य समस्त धर्मों तथा फिलासफ़ियोंके प्रति सहिष्णु है। वह अपने विशाल धार्मिक मार्गपर केन्द्रीय सूर्यके चारों ओर घूम रहा है। इसके विरुद्ध पश्चिम उत्सुक, चंचल, दुनियाँदारीमें फँसा हुआ, अपने क्षणिक विस्तारके झंझटोंमें व्यस्त, दुराग्रही, अन्य लोगों और मतोंके प्रति अवज्ञापूर्ण, धनलोलुप (धनके लिए नहीं, वरन् उससे उत्पन्न सुविधाओंके लिए), और कम उम्र है। वह रुचि और आध्यात्मिक विकासमें पूर्वसे बहुत छोटा है। एक ही वृक्षकी इन दो महान् शाखाओंकी इन विरोधात्मक फिलासफ़ियोंमें आप बतलाइये कि सम्मिश्रणकी—एकताकी—कौनसी बात हो सकती है?" इस सवालका जवाब वेदान्ती लोग अमेरिकामें दे रहे हैं।

जर्मनी-प्रवासी भारतीय

[लेखक :—श्री ताराचन्द राय, हिन्दी-अध्यापक, बर्लिन-विश्वविद्यालय, जर्मनी]

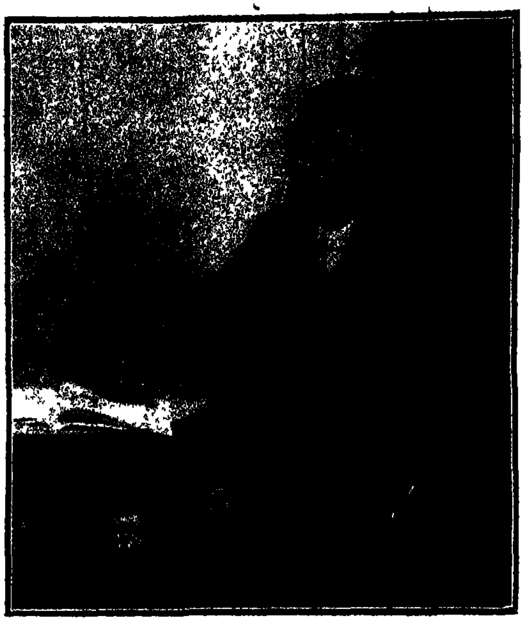
एक समय था कि भारतीय अपने देशसे बाहर नहीं जाते थे। एक ओर तो वे सारे जगतको म्लेच्छ-पूर्ण समझते थे, दूसरी ओर समुद्रके पार अन्य देशोंमें जाना महापाप ख़याल करते थे! यदि इसपर भी कोई विलायत जाता, तो वह बिरादरीसे निकाल दिया जाता था और उस बेचारेको लौटनेके बाद प्रायश्चित्त करना पड़ता था, परन्तु समय परिवर्तनशील है। आज ईश्वरकी कृपासे भारतवर्षमें कुछ और ही हवा चलने लगी है। जात-पाँतके कठोर बन्धन ढीले होते जाते हैं। भारतीयोंका दृष्टिकोण बदल रहा है। उनके विचारोंमें उदारता उत्पन्न हो रही है। वे अपने घरोंकी चहारदीवारीको तोड़कर इस विशाल और अद्भुत जगतको अपनी आँखोंसे देखनेके लिए बाहर निकल रहे हैं। कदाचित् दुनियाँमें कोई भी देश ऐसा न होगा, जहाँ आजकल भारतीय पढ़ते अथवा व्यापार न करते हों। आज यह कहना ग़लत नहीं है कि भारतीयोंपर सूर्य कभी अस्त नहीं होता।

जर्मनीके विश्वविद्यालयोंमें पढ़नेके लिए, व्यापार करने

या व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने अथवा सैर करनेके लिए भारतीय आते हैं। आजसे तीस वर्ष पहले बहुत ही थोड़े भारतीय इस ओरका रास्ता लेते थे। वे प्राय: इंग्लैण्ड या अमेरिका जाया करते थे। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि उनको जर्मनीका कुछ भी ज्ञान न था, दूसरे उनको इस देशकी भाषासे डर लगता था, परन्तु अब वह बात नहीं रही। १५ फरवरी १९२९ से यहां 'इण्डियन इन्फर्मेशन ब्यूरो' काम कर रहा है। जो कोई भारतीय भाई जर्मन शिक्षा अथवा व्यापारके विषयमें कुछ जानना चाहे, वह Mauer Str. 52, Berlin W.8 के पतेपर मिस्टर नम्बियरको पत्र लिखकर मालूम कर सकते हैं। ब्यूरोने पिछले कुछ महीनोंमें बहुतसे भारतीयोंकी सहायता की है। कई भारतीयोंको विद्यालयों अथवा कारखानोंमें दाखिल कराया है। कई भारतीयोंको बर्लिन तथा उसकी प्रसिद्ध संस्थाओं और भवनोंके दिखानेका प्रबन्ध किया है। ब्यूरोने एक छोटासा गज़ट भी प्रकाशित किया है, जिसमें 'जर्मनीमें शिक्षा' (Education in Germany) के विषयमें बहुत-कुछ उपयोगी बातें दर्ज हैं। आशा है कि महाशय नम्बियर अपने परिश्रम द्वारा ब्यूरोको भारतीयोंके लिए और भी अधिक हितकर बनायेंगे।

अब रहा भाषाका प्रश्न। जर्मन-भाषा कठिन तो है, परन्तु मेहनत और उत्साहके सामने उसकी कठिनता काफूर हो जाती है। छ: महीनेमें प्रत्येक भारतीय खासी जर्मन सीख लेता है।

महाशय वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय यहाँकी 'साम्राज्य-विरोधिनी परिषद्'के मन्त्री हैं। इस परिषद्के विरुद्ध बहुत-कुछ कहा जाता है, यह बात चट्टोपाध्यायजीसे छिपी नहीं है। इसी कारण मैंने एक दिन उनसे पूछा कि यह परिषद् किन नियमोंके अनुसार काम करती है? उन्होंने उत्तर दिया कि 'साम्राज्य-विरोधिनी परिषद्'में सब दल—साम्यवादीसे लेकर राष्ट्रीय तक—शामिल हैं। इसकी कार्यकारिणी-समितिके सदस्य निम्नलिखित सज्जन हैं—डा० ए० ठेंगडी



बर्लिनमें 'हिन्दुस्तान-हाउस'के संस्थापक श्री मुनि विजयजी

(प्रेसिडेण्ट), श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू, मुहम्मद हत्ता (इण्डोनेशिया), जेम्स फ़ोर्ड (हबशी, अमेरिका), डीरागो रिवेरा (मेक्सिको), औगुस्टो सान्डीनो (निकारागुआ), विजमैन, पोलिट, सकलतवाला (ब्रिटेन), विली म्यूनसनबर्ग (जर्मनी), डोमिलफ़ (बालकन), एडो फिम्मन (हॉलैण्ड), मेलनिशांस्की (रूस), हुआंग पिंग (चीन) और फुआद चिमाली (सीरिया)। पहले मि० जेम्स मैक्सटन भी इस समितिमें थे, परन्तु मैंने सुना है कि अब वे इसमें नहीं हैं। 'साम्राज्य-विरोधिनी परिषद्' संसारके अत्याचार-पीड़ित लोगोंको 'साम्राज्यवाद'के पंजेसे छुड़ानेका प्रयत्न करती है। वह औपनिवेशिक देशोंकी स्वाधीनता चाहती है, तथा मज़दूरों और किसानोंकी अवस्थाकी उन्नतिके लिए कोशिश करती है।

फ्रांकफुर्टमें जुलाई महीनेमें 'साम्राज्य-विरोधिनी परिषद्'का द्वितीय अधिवेशन हुआ था। उसमें प्रस्ताव पास करके यह महत्त्वपूर्ण बातें निश्चित की गई थीं :—(१) साम्राज्यवादका नाश करना और अत्याचार-पीड़ितोंको स्वाधीनता दिलाना, (२) साम्राज्यवादके विरुद्ध मज़दूरों तथा किसानोंको राष्ट्रीय

क्रान्तिमें शामिल करना, (३) मज़दूरोंकी अवस्था सुधारना, प्रेसकी आज़ादी और हड़तालका अधिकार, (४) औपनिवेशिक किसानोंको 'सामन्त प्रथा'से रिहाई दिलाना, (५) साम्राज्यवादियोंके आक्रमणसे रूस (सोवियट यूनियन)



श्री अब्दुल सोभान, जिन्होंने बर्लिनके 'हिन्दुस्तान-हाउस' के निर्माणमें बड़ा भाग लिया है



डाक्टर मनसूर और उनकी धर्मपत्नी

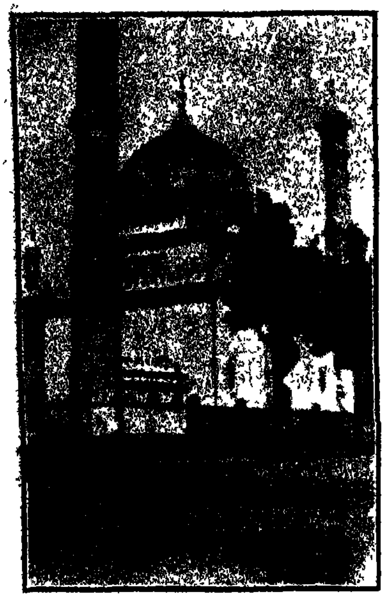
को बचानेके लिए सब प्रकारसे कोशिश करना, और (६) साम्राज्यवादियोंके विरुद्ध क्रान्तिकी समस्त शक्तियोंको एकत्रित करके साम्राज्यवाद-सम्बन्धी शासनका एकदम अन्त करना।

चट्टोपाध्यायजीने दृढ़तासे कहा कि हमारी परिषद् केवल साम्यवादी नहीं है। इसपर मैंने उनसे पूछा—"क्या आप साम्यवादी हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया—"हाँ, मैं साम्यवादी हूँ, परन्तु मैं अपने साम्यवादके कारण इस परिषद्का मंत्री नहीं नियत किया गया, बल्कि इस सबबसे कि मैं भारती हूँ।"

२३ अगस्त १९२९ को मुनि जिनविजयजी (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद) और मि० सोभानने बर्लिनमें 'हिन्दुस्तान-हाऊस' (Hindustan House, Berlin Charle Henbuag, Uhland str. 779) स्थापित किया है। आज तक बर्लिनमें भारतीयोंके वास्ते कोई ऐसा स्थान न था। २३ अगस्तको उसके प्रारम्भिक उत्सवके अवसरपर काशीके श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त उसके प्रेसिडेण्ट थे। उस समय मुनिजीने निम्न-लिखित व्याख्यान दिया था—

"माननीय मित्रो, आप लोगोंने हमारे आमन्त्रणको स्वीकार कर यहाँपर पधारनेका जो अनुग्रह किया है, उसके लिए हम आप लोगोंके अत्यन्त अनुगृहीत हैं। हम आपकी इस हार्दिक ममता और सहानुभूतिके लिए आपको सहस्रों धन्यवाद देते हैं। आपके मनमें इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक ही है कि हमारे इस आमंत्रणका क्या खास प्रयोजन है ? इस विषयपर मैं अपने सहकारी मित्रोंकी अनुमतिसे आपसे दो शब्द निवेदन करना चाहता हूँ। संसारके इस महत्त्वपूर्ण और विशाल नगरमें कोई आठ नौ महीने पहले मेरा आना हुआ था। मेरे उत्साही और सेवापरायण मित्र मि० अब्दुस सोभानके अनुग्रहसे मुझे यहांकी सब प्रकारकी बातें जानने और देखनेका अवसर मिला। मेरे बर्लिनके दूसरे परम मित्र प्रो० ताराचन्द रायने, जिनके विषयमें मैंने अपने देश हिन्दुस्तान ही में अनेकों गौरवपूर्ण बातें सुन रखी थीं,

हुआ मुझे उन्हें अपने बहुतसे परिचित और सुसंस्कृत जर्मन सज्जनोंको वहां साथ ले जाकर उनके साथ विचार-विनिमय



बर्लिनकी मस्जिद

करनेका अलभ्य लाभ कराया। इस अनुभवसे मुझे प्रतीत हुआ कि बर्लिन-निवासी भारत-हितैषी जर्मनोंको हिन्दुस्तानके विषयमें बड़ी भारी सहानुभूति है। वे हिन्दुस्तानके महत्त्व और सुस्वरूपको जानने और समझनेकी बड़ी उत्कंठा रखते हैं, और हिन्दुस्तानियोंसे बारम्बार मिलने तथा विशेष परिचय प्राप्त करनेकी बड़ी अभिलाषा रखते हैं। वे हमें अकसर अपने घर प्रेम-पूर्वक बुलाते हैं और हमारा आतिथ्य करते हैं। परन्तु हमारे पास कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां हम उन्हें निमंत्रण दे सकें और उनका अतिथि सत्कार कर सकें। दूसरी ओर मुझे यह भी मालूम हुआ कि बर्लिन जैसे महानगरमें सभी देशोंके प्रतिनिधि रूप, रेस्टोरां, काफे-हाउस और निजके लोकल स्थान हैं, जहाँ उन-उन देशोंके निवासी हर समय जाकर अपने स्वदेशके घरका अनुभव कर सकते हैं, लेकिन यहां हिन्दुस्तानके समान संसारके एक बड़े महादेशके निवासियोंके लिये वैसा कोई अपना हाउस (भवन) मेरे देखनेमें नहीं



बर्लिनकी मस्जिदके उपदेशक प्रो० अब्दुल्ला

आया। हिन्दुस्तान-एसोसियेशनके पास, जो बर्लिन-प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी हित-चिन्ताका कार्य करती है, अपना दफ्तर रखनेके लिए भी कोई निजकी जगह नहीं है! हमारे देश-बन्धुओंके पास कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां वे निःसंकोच भावसे उठें-बैठें, बातें करें और खायें-पियें। मुझे इस कमीका विशेष दुःख हुआ। इस विषयमें मेरे उत्साही मित्र सोभानने मुझे अनेक व्यावहारिक बातें बतलाईं। मुझे यह भी विश्वास हुआ कि यदि मैं अपनी यत्किंचित् सेवा उन्हें दे सकूँ, तो वे इस त्रुटिको दूर करनेके लिये कटिबद्ध हो जायेंगे। भाई सोभानकी सेवावृत्ति, कार्यदक्षता और व्यावहारिकता देखकर मैंने उन्हें अपनी सेवा देनेकी अर्पित करनेकी इच्छा प्रकट की और हम दोनोंने अपना संकल्प अपने परम मित्र श्री ताराचन्द्र रायको भी बतलाया। उन्होंने भी हमें यथाशक्ति सहायता करनेका वचन दिया। इसका परिणाम यह है कि

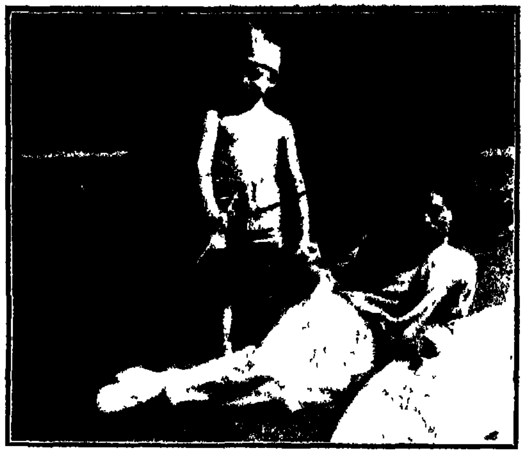
आज आप इस हाउसमें बैठे हुए हमें अपने अनुग्रहसे अनुगृहीत कर रहे हैं। यह हाउस मित्रोंके लिए सदा खुला



देशकी स्वतन्त्रतापर सब कुछ निछावर करनेवाले
श्री कर्तारामजी, बर्लिन

रहेगा। यहां हिन्दुस्तानी खान-पानका भी प्रबन्ध कर दिया जायगा। इसलिये हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि इस हाउसको आप अपना हाउस समझें और बिना संकोचके यहां आवें, खायें-पियें, अथवा मीटिंग करें और बर्लिन-प्रवासी हिन्दुस्तानियोंके लिए इसे एक सच्चा 'हिन्दुस्तान-हाउस' बनावें।"

२३ अगस्त १९२९से 'हिन्दुस्तान-हाउस' हिन्दुस्तानियोंका अपना घर बन गया है। जो कोई भी भारतीय यहाँ आया है, उसने इसकी प्रशंसा की है। लन्दन, पेरिस, वीयना, रोम, ब्रुसल्स और न्यूयार्कसे कई भारतीय यहां आये, और चलते समय कह गये है कि—बर्लिनमें 'हिन्दुस्तान-हाउस' जैसी संस्थाकी बड़ी आवश्यकता थी। श्री मुनिजी और मि० सोभानको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उन्होंने बर्लिनमें हमें भारतके आनन्द लूटनेका अवसर दिया है। जर्मन पत्रोंमें भी 'हिन्दुस्तान-हाउस'-सम्बन्धी प्रशंसापूर्ण समालोचनाएँ छपी हैं। प्रारम्भिक उत्सवपर इतने लोग आये थे कि उनके लिए 'हिन्दुस्तान-हाउस'में काफ़ी जगह न थी। इससे बढ़कर प्रेमका और क्या प्रमाण हो सकता है!



कर्तारामजीका पुत्र और स्वर्गीय मि० हाल्दार, जिनका देहान्त बर्लिनमें गत १० नवम्बर १९२९ को हो गया

मुनिजी 'हिन्दुस्तान-हाउस'में बैठकर भारतीय संस्कृतिका ख़ूब प्रचार करते हैं। आये दिन वहां जर्मन मित्रोंका जमघट लगा रहता है, जो भारतीय विषयोंपर विविध प्रकारके प्रश्न करते हैं। मुनिजी घण्टों उनसे वार्तालाप करते रहते हैं, और यदि रातके ग्यारह भी बज जायँ, तो भी खान-पानका खयाल नहीं करते। भारतवर्षकी सेवा करनेकी मस्तीमें वे और सब कुछ भूल जाते हैं। सब भारतीयोंका कर्तव्य है कि वे तन, मन, धनसे मुनिजीकी इस उच्च और प्रशंसनीय काममें सहायता करें।

बर्लिनमें कोई मन्दिर तो नहीं है, परन्तु एक मसजिद है। यहाँ प्रो० अब्दुल्ला मुसलमानी सभ्यता और धर्मपर उपदेश देते हैं। प्रो० अब्दुल्ला एक बड़े सुशिक्षित पुरुष हैं। उनमें किसी प्रकारका कट्टरपन नहीं है। आप यहांके विश्वविद्यालयमें विद्याभ्यास भी करते हैं, और साथ-ही-साथ अपने धर्मकी सेवा भी। हर महीने एक बार मसजिदमें सभा होती है, जिसमें व्याख्यान होते और प्रश्नोंके

... भी दिये जाते हैं। हिन्दुस्तानके मुसलमान ... उत्साही और परमार्थी हैं, और वे हर तरहसे प्रो० ...की सहायता करते हैं।

डा० मनसूर अरबी और फारसीके पण्डित हैं। आप महासमरसे पहले बर्लिन आये थे और आपने युद्धके दिनोंमें राजनैतिक काम भी किया था, इसलिए आप हिन्दुस्तान वापस नहीं आ सकते। आप जर्मन-भाषा खूब जानते हैं, और आजकल हॉलैण्डके एक कोशके लिए लेख लिखते हैं।

कर्तारामजी बर्लिन-प्रवासी भारतीयोंमें एक अमूल्य रत्न हैं। आप महायुद्धके समय अमेरिकासे यहां आये थे। जो कुछ आपने कमाया था, वह सब भारतवर्षकी आज़ादीके नामपर निछावर कर दिया। आजकल आप फोटोग्राफ़ीका काम करके अपनी पेट-पूजा करते हैं। ऐसे साफ़दिल, ऐसे देश-सेवा-परायण और ऐसे उच्च आचारके भारतीय परदेशमें बहुत कम मिलते हैं। आपने हिन्दुस्तानमें कोई तालीम नहीं पाई, इस कारण आप कोई और काम नहीं कर सकते, परन्तु आप बहुतसे तालीमयाफ्ता भारतीयोंसे बढ़-चढ़कर हैं। परदेशमें उसी व्यक्तिकी क़दर होती है और वही भारतका नाम रोशन करता है, जिसका आचरण पवित्र हो। कर्तारामजी एक ऐसे ही व्यक्ति हैं।

दक्षिण-अफ्रिकामें भारतीय व्यापारी

[लेखक :—श्री ए० आई० काज़ी]

दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नकी कोई भी आलोचना तब तक सम्पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक उसमें वहांके भारतीय व्यापारियोंका ज़िक्र न हो।

भारतीयोंको दबाने और उन्हें तंग करनेके लिए जितने क़ानून-क़ायदे बने हैं, वे खासकर भारतीय व्यापारियों ही के विरुद्ध हैं। जहाँपर और सब लोग सदा असफल हुए, वहाँ हिन्दुस्तानियोंने अपनी किफ़ायत आदिसे सफलता प्राप्त की है, इसीलिए उनके विरुद्ध सभीको गुस्सा चढ़ा हुआ है।

भारतीयोंके पहले दलके नेटालमें पहुंचनेके पाँच वर्ष बाद सन् १८६५ के लगभग भारतीय व्यापारियोंने मारीशससे आकर पहले-पहल डरबनमें क़दम रखा था। वे अधिकतर कठियावाड़ और गुजरात-प्रान्तोंके वासी थे, और ज़्यादातर मुसलमान थे। तामिल लोग भी आये, परन्तु वे सुनारी और ऐसे ही पेशों तक परिमित रह गये। उस समयकी यात्रा पालवाले जहाज़ोंसे होती थी। इन व्यापारियोंने पचीस-तीस वर्ष तक मारीशससे अपना सम्बन्ध स्थापित रखा। उस समय आनेवाले हिन्दुस्तानी व्यापारियोंमें कुछ लोग मारीशसमें स्थापित पुरानी और धनी फर्मोंके प्रतिनिधि भी थे। उस समयके यूरोपियन प्लैन्टरों और उस समयकी सरकारने इन व्यापारियोंका स्वागत किया। कुछ दिनों तक यह लोग केवल अपने देशी भाइयोंकी ही ज़रूरतें पूरी करनेमें लगे रहे। उस समय भारतीयोंकी संख्या बहुत बढ़ रही थी। वे लोग गन्नेके खेतों और प्लैन्टेशन्समें मज़दूरी करते थे। पुराने कागज़ातोंमें इस बातका प्रमाण मौजूद है कि नेटालके बहुतसे क़स्बे—जैसे, इस्पिगो, वेरुलम, अमसिन्टो, स्टेंगर, टोनगाट—आदिकी वृद्धि केवल भारतीय व्यापारियोंकी बदौलत हुई है। कुछ समय बीतनेपर हिन्दुस्तानियोंने अपना रोज़गार बढ़ाना शुरू किया। उन्होंने देशके भीतरी और दूर-दूरके हिस्सोंमें देहाती स्टोर खोलना शुरू किया। इन स्टोरोंमें वे यूरोपियन और हब्शियोंकी ज़रूरियातका सामान बेचा करते थे। नेटाल और ट्रान्सवालके बहुतसे बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी व्यापारी फर्मोंका अस्तित्व इन्हीं व्यापारियोंकी मेहनतका नतीजा है। जिस समय और सब लोग सोना निकालकर

और इस नये देशकी ज़मीनोंकी हज़ारों तरहकी फाटकेबाज़ी करके चटपट धनी होनेमें लगे थे, तब ये हिन्दुस्तानी लोग समाजकी सेवा करके, जो उनके हिस्सेमें पड़ी थी, अपना व्यापार स्थापित करने ही में सन्तुष्ट थे। उनके नम्र स्वभावमें रंग-रूपके लिए किसी प्रकारका द्वेष नहीं है। वे भी परतन्त्र जातिके हैं और वहाँके आदि-निवासी हब्शी भी परतंत्र जातिके हैं, इसलिए दोनोंमें सहानुभूति पूर्ण भाईचारा होना स्वाभाविक ही है, और इसीलिए वे हब्शियोंके प्रियपात्र हैं। इसके साथ-ही-साथ उनकी तेज़ व्यापारिक बुद्धि उनकी सफलताकी कुंजी है।

कुछ व्यापारी, जो दरबनमें आकर रहे थे, आजकल वर्षमें लाखों पौंडका रोज़गार करते हैं। इनमेंसे कुछ व्यापारियोंने कारखाने भी कर रखे हैं। वे लोग इस प्रकारके काम जैसे, साबुन बनाना, ईंट बनाना आदि ऐसे ही कार्य करते हैं; परन्तु इस ओर उन लोगोंकी कोशिश अभी शुरू ही हुई है। नेटाल ही में भारतीयोंकी समृद्धि ठोस नज़र आती है। इसी प्रान्तमें भारतीयोंकी सम्पूर्ण संख्याका ⅘ भाग बसा है, इसी सूबेमें उन्हें भू-सम्पत्ति खरीदने-बेचनेका अधिकार है; इसी सूबेमें उन्हें बहुतसे लाइसेन्स-प्राप्त हैं; और यहीं वे आधुनिक व्यापारिक संसारके नये तरीक़ोंको अख्तियार कर रहे हैं।

हिन्दुस्तानी व्यापारियोंके दक्षिण-अफ्रिकामें पहुँचनेके तीस वर्ष बाद उनके और उनके देशी भाइयोंके विरुद्ध पहली आवाज़ उठाई गई। उनके विरुद्ध पहला कानून ट्रान्सवालका 'रिपब्लिकन ला-आफ् १८८५' बना। उसके बाद ही 'आरेंज-फ्री-स्टेट' में—जो उस समय रिपब्लिक था, और अब एक प्रान्त है—भारतीयोंका हर्जाना देकर उनकी जायदादसे बेदखल करनेका क़ानून बना। इन सबकी पराकाष्ठा नेटालके सन १८९७ के 'लाइसेन्सिंगला'में हुई है। इस क़ानून और उसके संशोधनसे भारतीय व्यापारी आज तक जकड़े हुए हैं। इस क़ानूनने लाइसेन्स देनेवाले अफसरोंको बड़ी शक्ति दे रखी है, और शहरोंमें टाउन-कौन्सिलकी, जो उन अफसरोंको नौकर रखती है, देख-रेखमें यह शक्ति भारतीय व्यापारियोंके खिलाफ़ अकसर इस्तेमाल की जाती



मिस्टर ए० आई० काजी

है। इस टाउन-कौंसिलके मेम्बर लोग शहरके लोगोंमेंसे चुने जाते हैं, और वे बहुधा प्रतिद्वन्द्वी व्यापारी होते हैं।

उदाहरणके लिए नेटालके दरबन शहरको ले लीजिए, जो दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीयोंका केन्द्र है। इस शहरकी खास सड़कों, वेस्टस्ट्रीट और गार्डिनर-स्ट्रीटपर किसी समय एक सौसे अधिक भारतीय दूकानें थीं, परन्तु इस समय लाइसेन्स देनेवाले अफसरोंकी सहानुभूतिहीन करतूत और इस क़ानूनके लगातार कुव्यवहारसे सिर्फ़ छै स्टोर रह गये हैं। नेटालके अन्य शहरों और क़स्बोंमें भी यही किस्सा दोहराया जा रहा है। नेटालके देहातोंमें लाइसेन्स देनेका काम लाइसेन्स-बोर्डोंके हाथमें है। इन बोर्डोंका सभापति मेजिस्ट्रेट होता है। सन् १९२३ के आर्डिनेन्सके खिलाफ़ नेटाल इंडियन कांग्रेसने बड़े ज़ोरका आन्दोलन किया था। उसके

फल-स्वरूप लाइसेन्स-अफसरके स्थानमें ये बोर्ड बनाये गये हैं। इन बोर्डोंको वही शक्ति प्राप्त है, जो टाउन-कौन्सिलके अफसरोंको; परन्तु शहरोंके अफसरोंकी अपेक्षा इन बोर्डोंसे न्याय पानेकी कुछ अधिक सम्भावना है।

ट्रान्सवाल प्रान्तमें सन् १९२४ तक सन् १८८५ का भारतीय व्यापारियोंको लाइसेन्स देनेका क़ानून जोहान्सबर्ग और प्रेटोरिया ऐसे बड़े शहरोंमें बेकार रहा; क्योंकि एक तो क़ानूनमें ही कुछ खामी थी और दूसरे इन शहरोंमें और जातियोंके व्यापारियोंकी अपेक्षा भारतीय व्यापारियोंकी तादाद बहुत कम थी, मगर सन् १९२४ में 'डीलर्स आर्डिनेन्स' बनाया गया। इसके अनुसार लाइसेन्स देनेका अधिकार मालगुज़ारीके अफसरोंके हाथसे निकालकर टाउन-कौन्सिल और विलेज-बोर्डोंके हाथमें दे दिया गया।

इस दुष्ट क़ानूनसे भारतीयोंके सन् १८८५ के क़ानूनके अनुसार निश्चित स्थानोंके बाहर रोज़गार करनेके अधिकारमें खलल पड़ता है। इस क़ानूनका असर अब मालूम हो रहा है। पिछले साल ही संकटापन्न हालत पहुँच गई थी, परन्तु राइट-आनरेबुल मि० शास्त्रीने इस सूबेके अधिकारियोंपर अपने महान् प्रभावसे उसे अगले निर्वाचन तकके लिए किसी तरह स्थगित करा दिया था।

अब सर कूर्म रेड्डी और उनके आफिसकी राजनीतज्ञताको देखना है कि वे इस प्रश्नको, जिससे हिन्दुस्तानियोंके व्यापार करनेके अधिकारको चैलेंज किया जा रहा है, किसप्रकार हल करते हैं। अगर इसमें भारतीयोंके विरोधियोंको सफलता मिल गई, तब तो ट्रान्सवालके भारतीयोंपर दु:खका पहाड़ ही टूट पड़ेगा और उनके भाग्यका निबटारा हो जायगा।

केप प्रान्तमें यह प्रश्न इतना जटिल नहीं है, क्योंकि वहाँपर हिन्दुस्तानी लोग ग़रीब हैं, और उनके रोज़गारने अभी तक अपने शासक प्रतिद्वन्द्वियोंके रोज़गारमें बाधा भी नहीं पहुँचाई है। इसके अलावा केप प्रान्तमें भारतीयोंके विरुद्ध आन्दोलन भी धीरे-धीरे बढ़ता है, क्योंकि वहाँपर भारतीयोंको वोट देनेका तथा नागरिकोंके अन्य पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। दूसरी बात यह भी है कि वहाँ रंगीन जातियों और मलायाके लोगोंकी ज़ोरदार आबादी भी है।

इस लेखमें मैंने यह दिखलानेकी कोशिश की है कि बहुतसी कठिनाइयोंके होते हुए भी भारतीय व्यापारियोंने सफलता प्राप्त की है। अब मैं दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीयोंके जीवनकी एक महत्त्व-पूर्ण घटनाका उल्लेख करना चाहता हूँ। मैं यहाँपर राइट आनरेबुल मि० शास्त्री और 'सर्वेन्ट-आफ्-इंडिया-सोसाइटी' के श्री पी० के० राव के आगमन और उनके इस देशके प्रवासकी बात कहता हूँ। ऊपर जिन क़ानूनों और आर्डिनेन्सोंका ज़िक्र किया गया है, वे उसके मुक़ाबिलेमें कुछ भी नहीं हैं, जिसे 'राउन्डटेबुल-कान्फ्रेन्स' और 'केपटाउन-एग्रीमेंट'के पहले यहाँकी सरकार बनानेका इरादा रखती थी। उससे भारतीय व्यापारियोंका मटियामेट हो जाता, और अन्तमें यहां भारतीय मात्रका अस्तित्व न रहने पाता। जो लोग दक्षिण-अफ्रिकामें नहीं रहे हैं, उन्हें कभी विश्वास नहीं होगा कि मि० शास्त्री कितनी बड़ी बड़ी कठिनाइयोंको पार किया है। अगर संसारमें जादू है, तो मि० शास्त्रीने दक्षिण-अफ्रिकामें उसे कर दिखाया है।

भारतीय नेता और प्रवासी भारतीय

[लेखक :—श्री एच० एस० एल० पोलक]

यह बहुत स्वाभाविक है कि भारतके ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण घरेलू झगड़ोंमें व्यस्त रहनेके कारण भारतीय राजनैतिक नेताओंको प्रवासी भारतीयोंकी समस्याओंके लिए अपेक्षाकृत कम समय मिलता है। इन नेताओंकी शक्तिका अधिक भाग राष्ट्रीय आवश्यकताओंमें ही व्यय हो जाता है, अत: सुदूर समुद्रोंके पार बसे हुए इन भारतीयोंकी आवाज़ उनके कानों तक मुश्किलसे पहुँचती है।

मैंने प्रवासी भारतीयोंके प्रतिनिधियोंसे कई बार इस बातकी शिकायत सुनी है कि भारतमें उनके देशवासी अपने ही झगड़ोंमें इतने व्यस्त रहते हैं कि वे प्रवासियोंके लिए विशेष ध्यान नहीं दे सकते। यदि इन प्रवासियोंके प्रश्नोंकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया तथा उनकी समस्याओंका बुद्धिमत्तापूर्ण मनन करनेके लिए समय नहीं निकाला गया, तो किसी भी उपनिवेशके भारतीय प्रवासियोंपर आसानीसे विपत्तिका पहाड़ टूट सकता है और मातृभूमिका अपमान तथा बेइज्ज़ती हो सकती है।

प्रवासी भारतीयोंके मामलेमें हमें सदा ही सतर्क रहना चाहिए। यद्यपि इस सम्बन्धमें बहुत-कुछ आरम्भिक कार्य हो चुका है, उसकी पुख्ता बुनियाद रखनेका प्रोग्राम भी बन चुका है; मगर वह बुनियाद अब तक पक्की नहीं हुई है। जब तक वह बुनियाद सुरक्षित नहीं होती, तब तक उसपर कोई स्थायी इमारत खड़ा करना दुश्वार और अनिश्चित है। फिर भी एक बात बड़े मार्केकी है, वह यह कि प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न एक ऐसी समस्या है, जिसपर देश-भरमें किसी प्रकारका भी मतभेद नहीं है, और जिसपर जनता तथा गवर्मेन्टमें भी अधिक-से-अधिक समझौता और एकता है। मिस्टर शास्त्रीने भी भारत लौटनेपर इस आनन्दपूर्ण बातकी प्रशंसा की थी, और दक्षिण-अफ्रिकामें उनके उत्तराधिकारी भी इसी बातपर अपनी समस्त शक्तिको निर्भर समझते हैं। महात्मा गान्धी अन्य सब विषयोंमें गवर्मेन्टकी चाहे जितनी निन्दा करते हों, परन्तु मिस्टर शास्त्रीको उनके मुश्किल काममें सहायता देनेके लिए उन्होंने सहर्ष सरकारका समर्थन किया था। सचमुचमें यह बात क़यासके बाहर है कि यदि सरकार और जनतामें इस मामलेमें पूरी एकता न होती, तो मि० शास्त्री दक्षिण-अफ्रिकामें उतना कार्य कर सकते जितना उन्होंने किया है।

इससे दो नतीजे निकलते हैं; पहला तो यह है कि न केवल दक्षिण-अफ्रिकाके लिए ही, बल्कि उन समस्त देशोंके लिए भी, जहाँ प्रवासी भारतीय बसे हैं और उनकी समस्या पैदा हो गई है, सरकार और जनताकी इस एकताको क़ायम रखना और बढ़ाना चाहिए। ईस्ट-अफ्रिकाके सम्बन्धमें तो इस बातकी खास ज़रूरत है, क्योंकि भारत-सरकारको इस नाज़ुक मामलेमें कलोनियल आफिससे बातचीत करनेमें भारतीय नेताओंकी अधिक-से-अधिक सहायताकी आवश्यकता है। बिना इसके वहांके भारतीयोंको सन्तोषप्रद फल नहीं मिल सकता। मि० शास्त्रीने दक्षिण-अफ्रिकामें जो कुछ कर दिखाया है, उतना पूर्वी-अफ्रिकामें सरकारका कोई और प्रतिनिधि भी कर दिखावे, इस बातको सम्भव बना देना चाहिए। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता कि यह मामला ऐसा है, जो पूर्वी-अफ्रिकाके भारतीयोंके बल-बूतेपर छोड़ा जाना चाहिए। अभी कुछ दिनों तक पूर्वी-अफ्रिकामें जैसी परिस्थिति रहेगी, उसे देखते हुए इस बातमें सन्देह है कि जब तक भारतकी सरकार और जनता पूरी सहानुभूति न दिखलाये, तब तक वहांके भारतीय लोग उस नीतिका—जो दोनों सरकारें मिलकर निर्धारित करें—पूरा लाभ उठा सकेंगे या नहीं?

दूसरे नतीजेका—जिसका मैंने ज़िक्र किया है—उल्लेख मिस्टर शास्त्रीने भी किया है। भारतीय नेताओंका यह आशा करना स्वाभाविक ही है कि प्रवासी भारतीय मातृभूमिके राष्ट्रीय आन्दोलनसे सहानुभूति रखें। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि ये प्रवासी भारतीय आम तौरपर इस आन्दोलनसे सहानुभूति रखते हैं, मगर मुझे निश्चय है कि देशके घरेलू झगड़ोंमें अथवा भारतके किसी एक दलके तात्कालिक उद्देश्य या विशेष तरीक़ोंमें इन प्रवासियोंको घर घसीटना घातक भूल होगी। पहली बात तो यह है कि ये प्रवासी भाई मातृभूमिके इन विवादोंके सिद्धान्तों, विवरणों और कठिनाइयोंसे अनभिज्ञ हैं, अतः वे इस पक्षमें अथवा उस पक्षमें रहकर भी कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते। दूसरी बात यह है कि वे अपनी निजी स्थानीय कठिनाइयोंमें फँसे हुए हैं, इसलिए उनमें ये विवादग्रस्त बातें फैलानेसे उनकी कठिनाइयाँ और बढ़ जायँगी, उनमें भीतरी फूट पैदा हो जायगी, और फल यह होगा कि विरोधियोंका सामना करनेकी उनकी सम्मिलित शक्ति कमज़ोर हो जायगी। अन्तमें यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रवासी भारतीय ब्रिटिश-साम्राज्यके अभिन्न अंश बनकर ही कुछ पोज़ीशन प्राप्त करनेकी आशा कर सकते हैं, बिना उसके नहीं। जिस क्षण वे अपनेको साम्राज्यसे अलग घोषित कर देंगे, उस क्षण वे भारत-सरकारसे सहायता न पा सकेंगे, और वे अपने उन देशवासियोंकी सहायताके हक़दार भी न रहेंगे, जो भारतवर्षका तात्कालिक ध्येय पूर्ण-स्वतंत्रता न मानकर डोमिनियन स्वराज ही मानते हैं। इसके अलावा उन देशोंमें बसे हुए गोरोंकी एक अल्प, परन्तु दृढ़ संख्या ऐसी भी है, जिसकी वर्तमान सहानुभूतिपर भारतीय भरोसा करते हैं और जो थोड़ेसे बुद्धिमत्तापूर्ण प्रचार तथा चातुर्यसे भविष्यमें बढ़ाई जा सकती है। साम्राज्यसे बाहर जानेकी घोषणासे प्रवासी भारतीय इन गोरोंकी सहानुभूति भी खो बैठेंगे।

प्रवासी भारतीयोंकी समस्या समाधानके मार्गपर है। इस समय घटनाओंकी धारा भारतीयोंके अनुकूल है, अतः किसी भी दशामें उनमें बाधा न डालनी चाहिए। यदि उसमें हस्तक्षेप किया गया, तो यह निश्चत है कि विदेशोंमें भारतीय सम्मानको ऐसा धक्का पहुँचेगा, जो फिर सम्हाला न जा सकेगा। उससे मातृभूमिको कोई उल्लेखयोग्य फायदा भी नहीं होगा। प्रवासी भारतीय चाहे कुछ देरके लिए इस आकर्षणपूर्ण और सनसनी-जनक चिल्लाहटका आनन्द अनुभव कर लें, परन्तु वे ही उसके सबसे आसान शिकार होंगे।

बिखरे लाल

[लेखक—श्री सोहनलाल द्विवेदी]

छिन्न भिन्न हो गईं इस तरह मेरे माला की मणियाँ।
सिन्धु पार में जा कर बिखरीं उज्ज्वल मोतीकी लड़ियाँ।
मलिन हो रही आभा उनकी, ज्योति हो रही क्षण-क्षण क्षीण।
अरे किसी दिन हो न जायँ वे, धूलि-गर्भ में अन्त विलीन।
वे हैं मेरी अनुपम शोभा, वे मेरे सुन्दर शृंगार।
उन लालों की ओर लाल! देना अपने युग बाहु पसार।



मिस्टर एच० एस० एल० पोलक

दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीय

[लेखक :—श्री जे० डब्ल्यू० गॉडफ्रे, एडवोकेट, डरबन]

पाठकोंमें मेरे सम्बन्धमें कोई गलत धारणा उत्पन्न न हो जाय, इसलिए मैं पहलेसे ही बतला देना चाहता हूँ कि यद्यपि मेरा नाम एकदम यूरोपियन है, मगर मैं शुद्ध भारतीय हूँ। मेरे माता और पिता दोनों ही बिहारके उन्नतिशील प्रान्तके थे, इसलिए मैं, जैसा कि मेरे मित्र स्वामी भवानीदयालजी मुझे प्यारसे पुकारते हैं, 'बिहारी' हूँ। मेरा यूरोपियन नाम केवल दक्षिण-अफ्रिकाके वातावरणकी अनुकूलताके लिए ही है। प्रवासी भारतीयोंको जिन लोगोंके बीचमें रहना पड़ता है, उन लोगोंकी बहुतसी विशेष बातोंको वे अपना लेते हैं। नये देशमें वे जब अपने चारों ओर एकदम भिन्न परिस्थिति पाते हैं, तब उनमें भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। जो लोग मातृभूमिमें रहते हैं, वे इस बातका अन्दाजा नहीं लगा पाते कि प्रवासी भारतीय दूसरे देशोंमें जाकर कितने बदल जाते हैं। यदि वे अपनी मातृभाषाको तथा अपनी जाति और धर्मके सिद्धान्तोंकी कुछ बातोंको सुरक्षित भी रखें, तो जीवनके और बहुतसे अंशोंमें वे एकदम भिन्न मनुष्य हो जाते हैं। उनके जीवनका दृष्टिकोण, उनकी महत्वाकाक्षाएं तथा उनको पूर्ण करनेके साधन और उनकी ज़िन्दगीका पूरा नक्शा ही बदल जाता है। उनका आधार अधिक विस्तृत सिद्धान्तोंपर होता है, जो जात-पाँतके बन्धनों और राष्ट्रीय पक्षपातोंसे मुक्त हैं। वे जिस श्रेणीके लोगोंमें रहते हैं, उन लोगोंका रहन-सहन और उनके विचार आदि ग्रहण कर लेते हैं, और अधिकतर उस देशकी भाषा भी सीख जाते हैं। उदाहरणके लिए मारिशसको ले लीजिए। वहाँ आपको ऐसे व्यक्तियोंका मिलना साधारण बात है, जिनका रक्त यद्यपि शुद्ध भारतीय है, मगर उनके नाम फ्रेंच हैं, वे फ्रेंच तरीक़ेसे ही रहते हैं और फ्रेंच भाषा ही बोलते हैं। दक्षिण-अफ्रिकामें अंग्रेज़ी भाषा बोली जाती है और यहांका तमाम वातावरण ही यूरोपियन है, अतः यदि भारतवासियोंका जीवन और उनके विचार इन प्रभावोंसे प्रभावित हों, तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है।

मैं अपनी मातृभूमिके भाइयोंकी जानकारीके लिए यह लेख लिख रहा हूँ, इसलिये मैं यह माने लेता हूँ कि उन्हें दक्षिण-अफ्रिका प्रवासी भारतीयोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिए मैं एक छोटे पैराग्राफमें दक्षिण-अफ्रिकन भारतीयोंका एक संक्षिप्त इतिहास देता हूँ। आशा है, पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

आरम्भिक इतिहासके लिए केवल इतना बतला देना काफी है कि सन् १८६० में यहाँके गन्नेके प्लेन्टरोंने नेटालको नष्ट होनेसे बचानेके वास्ते मज़दूरोंके लिए प्रार्थना की। भारत-सरकारने उसपर मज़दूरोंको भर्ती करके भारतसे यहाँ भेजा। ये मज़दूर विशेषकर मद्रासके तामिल तथा तेलगू ज़िलोंसे और संयुक्त-प्रदेश, अवध और बिहारसे आये थे। भारतके ये पुत्र यद्यपि बेपढ़े-लिखे, गरीब और किसान-श्रेणीके थे, तथापि वे वीर थे। यहाँकी अच्छी आब-हवासे और शायद निश्चित घंटों तक काम करके तथा निश्चित घंटों तक आराम करके उन्होंने शीघ्र ही उन्नति कर ली, और वे इस देशकी मूल्यवान सम्पत्ति बन गये। अपनी शर्तबन्दीकी मियाद पूरी करके उनमेंसे लगभग प्राय: सभी श्रेणियोंके लोगोंने अपनी निजी छोटी-छोटी खेतियाँ करना पसन्द किया। जब इन किसानोंकी उत्पत्ति हुई, तो बम्बई, बड़ोदा और गुजरात प्रान्तसे, गुजराती भाषा बोलनेवाले व्यापारियोंका दल भी आ पहुँचा। वे लोग इन शर्तबन्दीसे बँधे हुए मज़दूरों तथा उससे छुटकारा पाये हुए स्वतंत्र भारतीयोंकी ज़रूरतें पूरी करनेके लिए आये थे, मगर वे बहुत जल्द इस देशकी विभूति बन गये, क्योंकि वे न केवल अपने देशवासियोंकी ज़रूरतें ही पूरी करते थे, बल्कि

अफ्रिकाके असली निवासी बंटू लोगों तथा ग़रीब यूरोपियनोंकी ज़रूरतका सामान भी रखते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे भारतके अन्यान्य प्रान्तोंसे भारतीय यात्री भी यहाँ आने लगे। सन् १८६६ तक आने-जानेमें किसी प्रकारकी रुकावट न थी। फल यह हुआ कि आज दक्षिण-अफ्रिकामें भारतके सभी प्रान्तोंके लोग मौजूद हैं। संख्याके देखते हम लोग यहाँ बहुत नहीं हैं। सब मिला कर केवल १,६१,००० भारतीय हैं, जो दक्षिण-अफ्रिकाकी यूनियनके सभी प्रान्तोंमें फैले हुए हैं, जब कि यूरोपियनोंकी संख्या २०,००,००० है और आदि निवासियोंकी ६०,००,०००।

सन् १८६० में जब भारतीय यहाँ आये थे, उस समय उनके विरुद्ध किसी प्रकारके भाव नहीं थे। उन्हें वही सब सुविधाएँ थीं, जो एक साधारण नागरिकको होती हैं। यहाँ तक कि उन्हें राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त थे।

उनके बच्चोंकी शिक्षाके लिए बहुत थोड़ा ध्यान दिया जाता था। सन् १८६५ तक जो कुछ शिक्षा उनके बच्चोंको मिली, उसका श्रेय ईसाई पादरियोंको है। यह शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षासे कुछ ही अधिक थी। उसके बादसे नेटालकी सरकारने कुछ अतिरिक्त स्कूल खोले, जिनमें उससे कुछ ऊँचे दर्जेकी शिक्षा दी जाने लगी।

ट्रान्सवाल और केप-कालोनीकी शिक्षा नेटालसे कुछ अच्छी है, मगर वह भी प्रशंसा-योग्य नहीं है। ऑरेंज-फ़्री-स्टेटके सूबेमें भारतीयोंकी संख्या नहींके बराबर है, वहाँ उनके लिए कोई स्कूल ही नहीं है।

भारतीय बच्चे ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे, और उनकी उन्नतिके चिह्न शीघ्र ही प्रकट होने लगे। स्कूलोंकी पढ़ाई अंग्रेज़ीमें होती थी, और दिन-रात यूरोपियन चीज़ोंके संसर्गमें रहनेके कारण बच्चोंके बाल-हृदयोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसीलिए आज हम देखते हैं कि नेटालके भारतीयोंकी वर्तमान पौध अच्छी तरह अंग्रेज़ी लिख-पढ़ और बोल लेती है। अंग्रेज़ी ही आजकल उनके आपसी पत्र-व्यवहार और



श्री जे० डब्ल्यू० गाडफ़्रे

बातचीतका साधन है। उनमेंसे सत्तर प्रति-सैकड़ेने अपनी मातृभाषा बिलकुल ही नहीं पढ़ी है, यद्यपि वे उसे टूटी-फूटी बोल लेते हैं। वे यूरोपियन तरीक़ेके बने और सजे हुए मकानोंमें रहते हैं, और उन्होंने यूरोपियन पोशाक और रहन-सहनके ढंगको भी अपना लिया है। बहुतसी हालतोंमें—ख़ासकर जो लोग ईसाई हैं—उन लोगोंने एकदम यूरोपियन नाम भी धारण कर लिए हैं। वे प्रायः सभी बातोंमें वैसे ही हो गये हैं, जैसे आपको भारतवर्षमें यूरेशियन (ऐंग्लो-इंडियन) मिलते हैं।

सन् १८६४ में जब मिस्टर गान्धी इस देशमें आये, तब हमारे समाजकी यही दशा थी। चूँकि वे बेरिस्टर थे, इसीलिए वे बिना किसी अड़चनके स्वाभाविक नेता बना लिये गये। उस समय हमारा समाज अनेक कठिनाइयोंमें पड़ा था। अब यह बात तो ऐतिहासिक बात हो गई है कि गान्धीजीने कैसी वीरता और सफलता-पूर्वक उनमेंसे अनेकों कठिनाइयोंको दूर किया है।

वे सन् १६१४ में चले गये, और तबसे समाज स्वयं अपनी लड़ाई चला रहा है। इस सुदूर दक्षिण-अफ्रिकामें वोट देनेके अधिकारसे वंचित इन १,६१,००० भारतीयोंने अपने मामलेको इस ढगसे चलाया है, जिसपर समस्त भारतको और यूरोपियन जगतके विचारशील लोगोंको ध्यान देना उचित है। आप पूछेंगे कि यह कैसे हुआ? उत्तर यह है कि उन्होंने दृढ़तासे सत्यका पालन किया है, और उन्हें सदा यह विश्वास रहा है कि कल्याणकारी दयामय भगवान अवश्य ही उनकी ओर झुकेंगे। यहाँ हमारे समाजमें भारतके समान पढ़े-लिखे, विद्वान और डिग्रीधारी व्यक्ति नहीं हैं। समयकी आवश्यकतासे और अपने उद्देशकी न्याय-पूर्णतासे हम स्वयं अपने नेता बननेको मजबूर हुए हैं। हमें आश्चर्यजनक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है, और भारतीय नेताओंसे हमारी अपीलें भी बिलकुल बेकार नहीं हुई हैं।

सन् १६२५ में यूनियन-सरकारने अपने 'एशियाई-विरोधी बिल'को प्रकाशित किया। यह बात अब तक हमारे दिलमें ताज़ी बनी है कि किस तरह पेडीसन-डेपूटेशन और उसके बाद हबीबुल्ला-डेपूटेशन आया, और किस प्रकारसे अफ्रिकन भारतीयोंका डेपूटेशन भारतवर्ष गया। अन्तमें किस प्रकार भारत और यूनियन-सरकारमें समझौता हुआ, जिससे भारतीय प्रश्न थोड़े दिनोंके लिए ठंडा हुआ। यह समझौता सन् १६२७ में शुरू हुआ और उसका भलीभाँति श्रीगणेश करनेके लिए यहाँपर राइट-आनरेबुल मिस्टर वी० एस० शास्त्री आये। इसमें सन्देह नहीं है कि उन्होंने बहुत-कुछ काम पूरा किया है, और इसमें भी सन्देह नहीं है कि अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। यहाँकी राजनैतिक स्थितिमें अब तक कोई विशेष उन्नति नहीं दिखाई पड़ती। इस स्थितिमें कुछ थोड़ा सुधार करनेके लिए दो-एक छोटी-मोटी कार्रवाइयाँ भी की गई हैं, मगर वे केवल दानके तौरपर की गई हैं। वे हमारे सम्मान, पौरुष और न्यायोचित अधिकारको स्वीकार करके नहीं की गईं।

हमारा आकाश अब भी अन्धकारमय और भयावना है। यह कहना असम्भव है कि उज्ज्वल प्रकाश कब तक निकलेगा। गोरोंमें हृदयका परिवर्तन न तो उतना सर्वव्यापी ही है और न उतना गहरा ही, जितना हम चाहते हैं। ऐसी बातें हो रही हैं, जिनसे हमें यह अनुभव करना पड़ रहा है कि हम प्रवासी भारतीय अपनी मातृभूमिसे पूर्णतया अलग नहीं हो सकते। हम लोग दक्षिण-अफ्रिकन होना चाहते हैं और यहींपर रहना और मरना चाहते हैं, मगर यह सब हमारे पूर्व-पुरुषोंके देशके सम्मानके अनुकूल होना चाहिए। हम लोगोंने दक्षिण-अफ्रिकाको अपना घर बनाया है, और हमारा इरादा भी यहीं रहनेका है, मगर हम न भारतवर्षको भूल सकते हैं, न भूलते हैं और न भूलनेकी ज़रूरत है। यह हमारी विशेष इच्छा और आशा है कि भारतवर्षमें भारतीय आदर्शों और विचारोंके नेतागण सदा यह स्मरण रखेंगे कि यद्यपि हमारे और उनके बीचमें समुद्रोंकी दूरी है, फिर भी हम प्रवासी भारतीय उन्हींके रक्त-मांस—उन्हींके अंश हैं।

प्रावासी भारतीयोंका दर्जा तभी बढ़ सकता है, जब भारतवर्षको डोमीनियन स्वराज्य प्राप्त हो जाय। हम लोग वैध उपायोंसे चाहे जितना लड़ें, मगर हम कुछ अधिक उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे आदि स्थानका—हमारी मातृभूमिका—दर्जा नीचा है। यह विचार कितना अपमान-जनक है कि दक्षिण अफ्रिकन भारतीय केवल इसीलिए राजनैतिक गुलाम हैं कि वे भारतीय हैं। केवल यही बात हमारे देशभक्त नेताओंमें विरक्ति पैदा करनेके लिए काफी होनी चाहिए। यहाँ दक्षिण-अफ्रिकामें हमने सभी न्यायोचित तरीक़ोंसे इस बातकी पूरी चेष्टा की है कि हमारा और साथ ही हमारी मातृभूमिका

सम्मान सुरक्षित रहे। राजनैतिक दृष्टिसे हमारे पास कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जिससे हम अन्याय-पूर्ण और जाति भेद करनेवाले क़ानूनोंका सामना कर सकें। जिन लोगोंके हाथमें शक्ति है, उनमेंसे अधिकांश व्यापार, खेती तथा अन्यान्य पेशोंमें भारतीयोंके प्रतिद्वन्द्वी हैं, अतः उनसे अपील करना व्यर्थ है। सुप्रीम कोर्टके बहुतसे फैसलोंसे तना-तनीमें कुछ कमी ज़रूर हुई है, परन्तु उससे रोगका पूरा या प्रभावोत्पादक इलाज नहीं हुआ है। फिर भी हम दक्षिण-अफ्रिकन भारतीय अच्छाईकी आशा करते हैं।

भारत और यूनियन-सरकारमें जो समझौता हुआ है, उसके एक पहलूका यह मतलब भी हो सकता है कि भारतीय धीरे-धीरे मलाया और रंगीन जातियोंमें समा जायँ। इस सम्मिश्रणसे और दक्षिण-अफ्रिकन भाषाके इस्तेमालसे धीरे-धीरे वर्तमान समयकी बहुतसी कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। यह अवस्था यद्यपि निकट-भविष्यमें भी आ सकती है, तो भी इस बातके दृढ़ चिह्नोंकी कमी नहीं है कि यह सम्मिश्रण अभीसे आरम्भ हो गया। हो सकता है कि व्यवस्थापक लोगोंकी बड़ी इच्छा हो कि ऐसा हो जाय, क्योंकि ऐसा होनेसे कुछ समयके बाद भारतीय समाज कोई पृथक समाज न रह जायगा, इसलिए तब उसके साथ रंगीन जातियोंके समान ही व्यवहार किया जायगा।

यहाँके भारतीय नेता इसके विरुद्ध लड़ेंगे, क्योंकि हम लोगोंका मत है कि हम लोग बिना अपनी भारतीयताको खोये हुए भी अच्छे दक्षिण-अफ्रिकन बन सकते हैं, जैसा कि अंग्रेज़ लोग भी अपनी अंग्रेज़ियतको छोड़े बिना ही अच्छे दक्षिण-अफ्रिकन हैं।

मैं समझता हूँ कि 'विशाल-भारत' का मैं उचितसे अधिक स्थान ले चुका, और यह भी अनुभव करता हूँ कि मैंने अभी तक केवल इस महान विषयके किनारेपर ही प्रवेश किया है। हमारे मनमें अनेकों प्रश्न ज़बर्दस्ती पैदा हो जाते हैं। हम सोचते हैं कि क्या आजकलका ब्रिटिश साम्राज्य स्वतन्त्रता-प्रिय, न्यायी और पक्षपातहीन है? क्या वह कमज़ोर जातियोंकी रक्षा करता है? क्या वह भारतीयोंको न्यायोचित व्यवहार देना चाहता है? क्या उसकी प्रतिज्ञाओंपर पूरा विश्वास किया जा सकता है? क्या आज यह कहना गौरवकी बात है कि हम ब्रिटिश प्रजा हैं? इन सवालों अथवा इसी प्रकारके सवालोंका जवाब सदा 'हाँ' में नहीं मिलता। इन सवालोंका जवाब बड़ा मनोरंजक होगा, मगर मुझे इस लेखको समाप्त करना आवश्यक है, इसलिए इसे समाप्त करते हुए मैं भारतवर्षके अपने भारतीय भाइयोंको यह विश्वास दिलाता हूँ कि हम लोग पहले दक्षिण-अफ्रिकाके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करेंगे, क्योंकि हम यहाँ रहते हैं और हमारे स्वार्थ यहाँ हैं; मगर हम कभी भी कोई ऐसी बात सहन न करेंगे, जिससे हमारी मातृभूमिके सम्मानमें रत्ती-भर भी हर्फ़ आवे। ईश्वरीय प्रकाश हमारा भी पथ-प्रदर्शक होगा।

दीन हैं हम किन्तु रखते मान हैं,
भव्य भारतवर्ष की सन्तान हैं।
न्यायसे अधिकार अपना चाहते,
कब किसी से माँगते हम दान हैं?

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारमें सांस्कृतिक प्रचारका मूल्य

[लेखक :—डा० तारकनाथ दास, एम० ए०, पी-एच० डी०]

लन्दनके 'टाइम्स' पत्र तथा फ्रान्सके प्रायः सभी पत्रोंने इस समाचारको बहुत महत्व दिया है कि जर्मनीके परराष्ट्र-सचिव, डा० स्ट्रेसमैनने २,१०,००,००० मार्क (१०५०००० पौंड) इस लिए माँगे हैं कि उनकी सहायतासे दूसरे दूसरे देशोंमें जर्मन-संस्कृतिके विषयमें प्रचार किया जायगा। संस्कृति-प्रचार सम्बन्धी योजनाका समर्थन करते हुए डा० स्ट्रेसमैनने कहा—"यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि आजकल परराष्ट्र सम्बन्धी व्यवहारमें लड़ाईके पहलेवाले समयकी अपेक्षा कहीं अधिक संस्कृति-प्रचारकी नीतिसे काम लेनेकी आवश्यकता है।" डा० स्ट्रेसमैनने यह भी कहा कि नये सदस्यकी हैसियतसे मैं इस बातके पक्षमें हूँ कि जर्मनीकी व्यवस्थापिका-परिषदको पूर्वमें—जैसे, टर्की आदि देशोंमें—संस्कृतिके प्रचारके लिए अधिक ध्यान देना चाहिए। जिसे किसी देशकी सभ्यता, भाषा और विज्ञान अच्छा मालूम होगा, वह अपनेको राजनीतिक दृष्टिसे उस देशके अधिक निकट समझेगा।

सभी राष्ट्र—विशेषकर ब्रिटेन और फ्रान्स—अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक क्षेत्रमें विशेष प्रभाव प्राप्त करनेके लिए तत्परताके साथ संस्कृतिके प्रचार करनेकी नीतिका अवलम्बन कर रहे हैं, परन्तु ये देश अपनी स्वाभाविक धूर्तताके कारण 'संस्कृति-प्रचार' के इस कामको छिपे तौरसे अथवा दूसरी संस्थाओं द्वारा किया या कराया करते हैं। जिन दूसरी संस्थाओं द्वारा यह काम कराया जाता है, उन्हें सरकार द्वारा अथवा दूरदर्शी राजनीतिज्ञों और व्यापारियों द्वारा आर्थिक और नैतिक सहायता प्राप्त हुआ करती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें अंग्रेजोंके हितकी उन्नति करनेके विचारसे किये जानेवाले संस्कृति-प्रचारके दूरदर्शी कार्यका ज्वलन्त उदाहरण 'रोड्स छात्रवृत्ति-योजना' के रूपमें सामने आता है। इस योजनाको चलानेका भार 'सेसिल रोड्स-ट्रस्ट' पर है। यदि कोई स्वर्गीय सेसिल रोड्सका जीवन-वृत्तान्त—विशेषकर उनका वसीयतनामा—पढ़े, तो उसे विश्वास हो जायगा कि हर साल एक सौ पढ़े-लिखे होशियार अमेरिकन विद्यार्थियोंको आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालयमें शिक्षा देनेके लिए बुलानेका अर्थ यह था कि अमेरिका और इंग्लैण्डका सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ और दृढ़ हो। इंग्लैण्ड और अमेरिकाकी घनिष्ठता स्थापित करनेकी योजनाका अन्तिम ध्येय है अमेरिकाकी शक्तिका उपयोग करके दूसरे देशोंपर प्रभुत्व स्थापित करनेके कार्य्यमें अंग्रेज़ी हितोंका साधन करना।

इस सम्बन्धमें यह बात निष्पक्ष भावसे स्वीकार करनी पड़ेगी कि सेसिल रोड्स संसारके सर्वश्रेष्ठ आदमियोंमेंसे एक थे। वे निश्चय ही बड़े दूरदर्शी अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ थे, और उनके सामने इस बातका रचनात्मक कार्यक्रम था कि अंग्रेज़ोंका राजनीतिक तथा संस्कृति-सम्बन्धी प्रभुत्व स्थापित हो। उन्होंने अपने बड़ी धनराशिका उपयोग अपने स्वार्थके लिए नहीं किया, परन्तु अंग्रेज़-जातिको उन्नत करनेके लिए किया। यहाँपर अर्ल ग्रे के एक व्याख्यानका कुछ अंश उद्धृत कर देना अप्रासंगिक न होगा। अर्ल ग्रे आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालयके वर्तमान चान्सलर हैं। ८ मईको रोड्स हाउसका उद्घाटन करते हुए उन्होंने जो भाषण दिया था, उसका विवरण ११ मईके 'टाइम्स' पत्रमें इस प्रकार दिया गया था :—

"चान्सलर लार्ड ग्रे ने विश्वविद्यालयकी ओरसे पुस्तकालयके दानके लिए धन्यवाद दिया। इसके बाद उन्होंने कहा कि इस पुस्तकालयमें पुराने इतिहास और वर्तमान उन्नतिके विषयकी पुस्तकोंका संग्रह है। इससे उन लोगोंको, जो ब्रिटिश कामनवेल्थ अथवा अमेरिकन प्रजातंत्रकी सेवा करनेका इरादा करते हैं, प्रेरणा तथा उत्साह मिलेगा और ज्ञान-वृद्धिके लिए मसाला भी मिलेगा। इस भवनके अन्दर

जो संग्रह है, उससे लोगोंके हृदयोंमें वह साहस और वह देशभक्ति उत्पन्न होगी, जिससे सेसिल रोड्सका हृदय परिपूर्ण था। मैं विश्वास करता हूँ कि जो लोग इस पुस्तकालयसे काम लेंगे, वे यह बात याद रखेंगे कि सेसिल रोड्सके जीवन तथा अध्यवसायके बिना पुस्तकालयका अस्तित्व सम्भव न होता।

"सेसिल रोड्समें कुछ खास गुण थे, जिन्हें मैं आशा करता हूँ, आप लोग सदा ध्यानमें रखेंगे। पहली बात तो यह थी कि उन्होंने जीवनका एक ऊँचा ध्येय बना रखा था। सांसारिक वैभव उनको अपने इस ध्येयसे विचलित नहीं कर सका। धनको उन्होंने किसी अन्य ऊँचे ध्येयका साधन मात्र समझा। उनकी दृष्टिमें वह विभव किसी एक आदमीकी श्री-वृद्धि करनेकी अपेक्षा मानव-समाजकी उन्नति करनेके लिए था। उनकी कल्पना-शक्ति बड़ी तीव्र थी, परन्तु वे सदा इस बातका अनुभव किया करते कि इस शक्तिको ऐसा संयत रखना चाहिए, जिससे वह कार्यान्वित हो सके। अपनी निजी सफलता, इज़्ज़त और कीर्तिकी वे वहीं तक परवाह करते थे, जहाँ तक वे उनके उच्च ध्येयको प्राप्त करनेमें सहायक होते। उनमें एक गुण यह भी था कि वे किसी विपत्तिका सामना कर सकते थे। उनको इस प्रकारकी विपत्तियोंका सामना मैटबेल-उपद्रवके समय करना पड़ा था। उस समय उनकी कीर्ति मलिन हो गई थी और उनका प्रभाव कम पड़ गया था, परन्तु उनका उत्साह कभी भंग नहीं हुआ, और अपने ध्येयको जिस दृढ़तासे पकड़ रखा था, उसे उन्होंने कभी ढीला नहीं किया। वे देश-भक्तिके भावसे भरे हुए थे, और अंग्रेज़-जातिके गुणों तथा उसके भाग्यपर पूरा विश्वास करते थे। उनकी राष्ट्रीयता संकीर्ण न थी। उनका विश्वास था कि यदि अंग्रेज़-जाति वह काम करना चाहे, जिसकी योग्यता उसमें है, तो उसे दूसरे राष्ट्रोंके साथ सहयोग करना पड़ेगा।

"सार्वजनिक कार्यों और घटनाओंमें कोई आदमी चाहे जितना फँसा हुआ क्यों न हो, उसे अपने प्रेमके लिए भी कुछ वस्तु रखनी चाहिए। रोड्सके लिए यह वस्तु आक्सफोर्ड कालेज तथा विश्वविद्यालय था, जिसके लिए उनके हृदयमें बड़ा प्रेम था, इसलिए यह उचित ही है कि आक्सफ़ोर्डमें उनकी स्मृतिका एक चिह्न हो। इस प्रकारकी सुन्दर इमारत बनवा देनेके लिए रोड्स ट्रस्टके ट्रस्टी धन्यवादके पात्र हैं।"

अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ इस सम्बन्धमें लापरवाह नहीं हैं कि दूसरे देशोंके साथ उनका संस्कृति-सम्बन्ध स्थापित हो। उदाहरणके लिए, फ्रान्स-स्थित 'ब्रिटिश इंस्टीट्यूट' ने ७५००० पौंडका कोष एकत्र किया है और अनेक छात्रवृत्तियाँ निर्धारित की हैं तथा एक अंग्रेज़ी पुस्तकालय भी स्थापित किया है। इटलीमें रोम, फ्लॉरन्स आदि स्थानोंमें अपने केन्द्र स्थापित करके अंग्रेजी संस्थाएं आश्चर्य-जनक काम कर रही हैं। दक्षिण-अमेरिका और स्पेनसे अंग्रेज़ी सभ्यताका अधिक निकट सम्बन्ध स्थापित करनेके विचारसे अंग्रेज़ी विश्वविद्यालयोंमें स्पेनिश भाषाके अध्यापकोंका विशेषरूपसे प्रबन्ध किया गया है।

मिश्रमें भी अंग्रेज़ी शिक्षालय अंग्रेज़ी हित-साधनके अभिप्रायसे अपना काम कर रहे हैं। हांगकांग-विश्वविद्यालय, शंघाईका जान्स विश्वविद्यालय और अंग्रेज़ी संस्थाओंने चीनी लोगोंपर अंग्रेज़ोंका प्रभाव जमानेके लिए बहुत काम किया है। बाक्सर-युद्धके हर्जानेके रूपमें जो रुपया चीनी सरकारपर बाकी है, उसमेंसे लाखों पौंड इसलिए खर्च करनेकी स्वीकृति अंग्रेज़ राजनीतिज्ञोंने दे दी है कि चीनी विद्यार्थी इंग्लैण्डके विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाये जायँ। अभी हाल ही में अंग्रेज़-जातिने मि० बाल्डविन और मि० रामसे मैकडानल्डके मारफत जापानियोंको एक अंग्रेज़ी पुस्तकालयका दान दिया है। इसका कारण भी यही है कि इन दोनों देशोंका सांस्कृतिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़े।

ऐसा देश जहाँ अंग्रेजोंको सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी ज़रूरत मालूम नहीं होती, केवल हिन्दुस्तान ही है, जिसे वे अपने स्वार्थके लिए—विशेषकर अपने व्यापारकी भलाईके लिए—पराधीन बनाये हुए हैं।

सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ानेके लिए अमेरिका भी अपने धनपति नागरिकों, अपने विद्वानों और अपनी सरकारकी सहायतासे आश्चर्य-जनक कार्य कर रहा है। राष्ट्रोंमें पारस्परिक सद्भाव स्थापित करनेकी चेष्टा करके उसने संसारके प्रायः सभी देशोंमें अपना प्रभाव डाला है। इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, इटली तथा अन्यान्य यूरोपीय देशोंमें अमेरिकाकी अनेक संस्थाएँ हैं, जो बड़ा महत्वपूर्ण काम कर रही हैं। यहांपर यह बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि निकट पूर्वकी जागृतिके लिए कुस्तुन्तुनियाके राबर्ट-कालेज तथा बेरूतके अमेरिकन विश्वविद्यालयने जितना काम किया है, उतना काम किसी अन्य संस्थाने नहीं किया।

व्यक्तिगत रूपसे भी शिकागोके माननीय चार्ल्स ई० क्रेन जैसे अमेरिकन सज्जन और संस्थाएँ निकट पूर्वमें और फारस आदि देशोंमें अमेरिकन संस्कृतिका प्रचार कर रही हैं। संस्कृतिकी दृष्टिसे भारतवर्षके लिए भी अमेरिकाने इंग्लैण्डकी अपेक्षा अधिक काम किया है, हालांकि इंग्लैण्ड सदियोंसे भारतवर्षसे अपार धनराशि चूस रहा है। चीनमें अमेरिकाका सांस्कृतिक काम बहुत बड़े पैमानेमें चल रहा है। यह अमेरिका ही था, जिसने सबसे पहले बाक्सर-युद्धके हर्जानेकी रक़मको—जो उसे चीनसे पानी थी—चीनी विद्यार्थियोंको अमेरिकामें शिक्षा देनेके लिए उपयोग करना शुरू किया था, और उसीने पेकिनके पास प्रसिद्ध चंगहुआ-कालेज (आज-कल जो वास्तवमें अमेरिकन ढंगका विश्वविद्यालय है) स्थापित किया था। सचमुच पिछली दो पीढ़ियोंसे हज़ारों ही चीनी विद्यार्थी अमेरिकन विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर पा रहे हैं। चीनके वर्तमान परराष्ट्र सचिव माननीय सी० टी० वैंग, आमदरफ्तके सचिव मि० सनफो (स्वर्गीय डा० सनयात सेनके पुत्र) इंग्लैण्ड-स्थित चीनी राजदूत डा० ज़े० और बीसियों चीनी राजनीतिज्ञ अमेरिकन शिक्षा पाये हुए हैं और अमेरिकाके पक्षपाती हैं।

डाक्टरी खोज सम्बन्धी कामोंके लिए राकफेलर फाउन्डेशनने जो पचीसों लाख डालर खर्च करके चीनमें प्रथम श्रेणीके अस्पताल और मेडिकल कालेज आदि स्थापित किये हैं, वे अमेरिकन संस्कृतिके प्रभाव फैलानेके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अफीम-निषेधक आन्दोलनने, जो अमेरिकाके डाक्टर पादरियों द्वारा किया जा रहा है तथा येल आदि अमेरिकन संस्थाओंने चीनमें जो काम किया है, और केण्टनके क्रिश्चियन कालेज आदि अन्यान्य शिक्षा-संस्थाओंके कार्य्यने संस्कृतिके क्षेत्रमें चीन और अमेरिका दोनोंकी बड़ी सेवा की है।

जापानमें अमेरिकन सभ्यताकी इतनी गहरी धाक बँधी हुई है कि अनेक राजनैतिक बातोंमें दोनों देशोंकी सरकारोंमें भयानक मतभेद होनेपर भी दोनों देशोंका सम्बन्ध मित्रवत् बना हुआ है। 'मेजी युग'के प्रारम्भिक दिनोंमें अमेरिकाने ही जापानी शिक्षा-संस्थाओंका सगठन करनेमें सहायता दी थी। हज़ारों जापानियोंने अमेरिकन विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा ग्रहण की है। आजकल जापानके प्रायः तमाम विश्वविद्यालयोंमें अमेरिकाका इतिहास तथा शासन-पद्धति पढ़ाई जाती है, और अमेरिकाके तमाम कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें जापानके इतिहास और वहांकी शासन-पद्धतिपर विशेषरूपसे ध्यान दिया जाता है।

कुछ समयके लिए दक्षिण-अमेरिकन देशोंके साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी ओर अमेरिकाने ध्यान नहीं दिया था, परन्तु अब उन देशोंसे भी वह सम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा होने लगी है, इससे उत्तर-अमेरिका और दक्षिण-अमेरिकामें घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जायगा, और यूरोपीय देशों द्वारा—विशेषत: अंग्रेज़ों द्वारा—जो प्रचार अमेरिकाके विरुद्ध इधर-उधर किया जा रहा है, उसका प्रभाव नष्ट होगा। इस नीतिके ग्रहण करनेका पहला प्रमाण यह है कि न्यूयार्कमें एक घोषणा की गई है कि एक अर्जन्टाइन-अमेरिकन संस्था इसलिए खोली जायगी कि वह ब्यूनेस आयर्समें सन् १९२७ से जो अर्जन्टाइन-अमेरिकन संस्था स्थापित है, उसके काममें सहायता पहुँचावे। इस प्रकारकी आयोजनाएँ तैयार हो रही हैं, जिससे पहलेकी अपेक्षा अधिक संख्यामें दक्षिण-अमेरिकाके विद्यार्थी अमेरिकन विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा ग्रहण करनेके लिए आयें। अमेरिकन

विश्वविद्यालय स्पेनिश भाषाके अध्ययनको प्रोत्साहन दे रहे हैं; साथ ही वे स्पेनिश अमेरिकन देशोंके इतिहास तथा आर्थिक स्थितिके अध्ययनकी ओर भी ध्यान दे रहे हैं। कार्नेगी फाउन्डेशन तथा ऐसी भी अन्य संस्थाओंकी सहायतासे अमेरिकन प्रोफेसर दक्षिण-अमेरिकाके देशोंमें भ्रमण कर रहे हैं, ताकि वहाँके खास-खास सुसंस्कृत नेताओंके सम्पर्कमें आकर ज्ञानोपार्जन करें।

पिछले वर्षोंमें फ्रान्सने दूसरे देशोंके साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए जो काम किया है, वह भी अपने ढंगका निराला है। संसारके प्रायः समस्त प्रसिद्ध शहरोंमें एक-न-एक ऐसी संस्था मौजूद है, जो वहाँपर फ्रेंच भाषाका प्रचार कर रही है, और इस प्रकार फ्रान्सका प्रभाव बढ़ा रही है। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा अन्यान्य देशोंमें फ्रेंच भाषाके अध्ययनको प्रोत्साहित करनेके विचारसे फ्रान्सके अधिकारी उन विद्यार्थियोंका विशेषरूपसे आदर करते हैं, जो फ्रेंच भाषाके विशेषज्ञ हो जाते हैं। पेरिसको संसार-भरकी सभ्यताका केन्द्र-स्थान बनानेके विचारसे फ्रांसीसी सरकारने भिन्न-भिन्न देशोंकी सरकारोंको, जो अपने यहाँके विद्यार्थियोंके लिए पेरिसमें वासस्थान बनाना चाहती थीं, मुफ्तमें ज़मीन दी है।

फेसिस्ट इटलीने अपने यहाँके इतिहास तथा संस्कृति सम्बन्धी विषयोंके अध्ययनके लिए विशेष पाठ्यक्रम निर्धारित किया है, ताकि विदेशी लोग इटालियन विश्वविद्यालयोंमें आकर सुविधा-पूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सकें। इस प्रकारका पाठ्यक्रम गर्मीकी छुट्टियोंमें पढ़ाया जाता है, जिससे यात्री भी—जिनकी इच्छा हो—लाभ उठा सकें। मुसोलनीके शासन-कालमें इटलीका यह विचार दृढ़ हो रहा है कि न्यूयार्कके कोलम्बिया-विश्वविद्यालयमें इटालियन विद्यापीठ स्थापित किया जाय, जो उत्तर-अमेरिकामें इटालियन सभ्यताके प्रचारका केन्द्र हो। दूसरे-दूसरे राष्ट्रोंने भी इटालीके इस उदाहरणका अनुकरण किया है। इटालियन प्रोफेसर संसारके अनेक देशोंमें—विशेषकर उन देशोंमें, जहाँ इटालियनोंकी संख्या अधिक है—ज्ञानोपार्जनके लिए भेजे जा रहे हैं। इटली सांस्कृतिक प्रचार करनेके लिये हिन्दुस्तानमें भी अपने अच्छेसे-अच्छे विद्वान भेज रहा है, और उसने विश्व-भारतीको इटालियन साहित्यका एक बड़ा अच्छा पुस्तकालय भी प्रदान किया है, हालाँ कि भारतवर्षने, बदलेमें, संस्कृति-सम्बन्धी पर्याप्त सहयोग नहीं दिया!

यह याद रखना चाहिए कि एशियाके समस्त देशोंमें जापान अपनी संस्कृतिका प्रचार करनेके लिए सबसे अधिक नियमित आन्दोलन कर रहा है। यद्यपि जापानने किसी समय चीनसे बहुत-कुछ सीखा था, फिर भी पिछले पचीस-तीस वर्षोंमें चीनके कोई पचास हज़ार विद्यार्थियोंने जापानी विद्यालयोंमें शिक्षा पाई है। शंघाईमें जापानियोंने एक ऐसा कालेज स्थापित किया है, जिसपर किसी भी देशको अभिमान हो सकता है। पश्चिमकी प्रायः समस्त राजधानियोंमें जापानकी सभाएँ अथवा संस्थाएँ मौजूद हैं। पेरिसमें जापानने अपने यहाँके विद्यार्थियोंको रहनेकी जगह देनेके विचारसे अपनी इमारत बनवा ली है। बर्लिनमें भी जापानियोंकी प्रेरणासे जापानी संस्था स्थापित हो गई है।

पिछले वर्षोंमें भारतीय संस्कृतिपर छाये हुए काले बादल बहुत-कुछ साफ़ हो गये हैं। इस जागृतिमें सौ वर्षसे अधिक लगे हैं। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, डाक्टर जे॰ सी॰ बोस, डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डा॰ ब्रजेन्द्रनाथ सील, प्रो॰ रमन, प्रो॰ शाह, महात्मा गान्धी, लाला लाजपत राय, माननीय श्रीनिवास शास्त्री, प्रो॰ विनयकुमार सरकार, प्रो॰ राधाकृष्ण, प्रो॰ दास गुप्ता आदिने इस जागृतिमें हाथ बटाया है। यह बात ज़रूर है कि भारतवर्षने पिछली कुछ शताब्दियोंमें अपनी संस्कृतिके प्रचारके लिए कुछ नहीं किया, हालाँ कि कुछ समय पहले उसकी सभ्यता यूरोप, अफ्रिका और एशियाके समस्त देश और शायद दक्षिण अमेरिका तक फैली हुई थी। भारतवर्षने अपने उन देशवासियोंकी उचित सहायता नहीं की, जो अधिकांशमें मज़दूर हैं और जिन्होंने हालमें जीविकोपार्जनके लिए दूसरे देशोंमें जानेका साहस

किया है। उन्होंने, अवकाशमें ही नहीं, विशाल भारतकी नींव डाली है। भारतवर्षकी राजनैतिक अथवा संस्कृति सम्बन्धी संस्थाओं द्वारा उन लाखों भारत-वासियोंकी सहायताके लिये जो बाहर पड़े हुए अनेक विपत्तियोंका सामना कर रहे हैं, कोई भी संगठित कार्य नहीं किया जा रहा है। भारतवर्ष अपने इन प्रवासी भारतवासियोंकी दशा सुधारनेके लिए शिक्षक, डाक्टर और व्यवसायी भी नहीं भेजता। डाक्टर नाग और उनके उत्साही तथा योग्य साथियों द्वारा स्थापित की हुई 'ग्रेटर इण्डिया सोसाइटी' प्राचीन कालके विशाल भारत सम्बन्धी ज्ञान बढ़ानेके लिये बहुत काम कर रही है। आशा है कि इस संस्थाके कार्योंसे वर्तमान विशाल भारतकी भित्ति, जो इस समय कमज़ोर है, मज़बूत हो जायगी, और भविष्यका विशाल भारत एक तेजस्वी विशाल भारत होगा।

सांस्कृतिक क्षेत्रमें संख्याकी अपेक्षा गुण अधिक मूल्यवान वस्तु है, इसलिए एक बोस, एक रमन, एक टैगोर, एक गान्धी लाखों भारतवासियोंकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं। इसी प्रकार भारतीय विद्यार्थी शिक्षित और विद्वान तथा व्यवसायी, जो दूसरे देशमें पड़े हुए हैं, मामूली प्रवासियोंकी अपेक्षा भारतीय संस्कृतिके अधिक परिचायक हैं, परन्तु सच पूछिये तो कहना पड़ेगा कि दूसरे देशोंमें भारतीय सभ्यताके परिचायकोंकी संख्या अत्यल्प है। भारतवर्षके अच्छे-से-अच्छे अध्यापक अपने घर बैठे रहने और कुछ पाठ्य पुस्तकें लिख लेनेमें ही सन्तोष कर लेते हैं। वे अपने प्रति तथा अपने देशके प्रति वास्तविक कर्तव्यका पालन नहीं करते, क्योंकि वे एकान्तमें बैठे रहते हैं और विदेशोंमें जाकर संसारके अन्यान्य सभ्य देशोंके साथ गहरा और घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा नहीं करते। भारतवर्षके विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा-योग्यता (Standard) इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका, जापान आदिके विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा-योग्यताकी अपेक्षा कहीं नीची है। कारण यह है कि भारतवर्षके शिक्षा-संचालक अधिकारियों एकान्तप्रिय हैं और वे बाहर जाके उन उपायोंपर ज़ोर नहीं देते, जिनसे ऐसी उन्नति हो कि भारतीय विश्वविद्यालय तमाम संसारके सांस्कृतिक केन्द्र बन जायँ।

भारतीय अध्यापकोंको विदेशोंमें जाना चाहिए, और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे वैदेशिक और भारतीय विश्वविद्यालयोंमें प्रोफेसरोंकी अदला-बदली हो सके। भारतके सुसंस्कृत आदमियोंको ऐसा कार्यक्रम हाथमें लेना चाहिए, जिसमें संसारके प्रत्येक अच्छे विश्वविद्यालयमें कम-से-कम एक भारतीय प्रोफेसर और बीसियों भारतीय विद्यार्थी अवश्य हो जायँ।

विदेशोंमें जानेवाले भारतीय विद्यार्थी संस्कृतिका सन्देश ले जानेवाले राष्ट्र-दूत होते हैं, और उन्हें राष्ट्रीय एजेन्टोंकी भाँति अपनी संस्कृतिका प्रचार करना चाहिए। यदि भारतीय विद्यार्थियोंमें इस प्रकारका संगठित उद्योग किया जाय, तो बहुत-कुछ काम भी हो सकता है। अमेरिकाकी हिन्दुस्तान-ऐसोसिएशनका कार्य इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है। अमेरिकामें जो भारतीय विद्यार्थी हैं, वे इंग्लैण्डके भारतीय विद्यार्थियोंकी अपेक्षा संख्यामें भी कम हैं और ग़रीब भी हैं, परन्तु उन्होंने अपने जीवन तथा शिक्षा-सम्बन्धी सफलताओंसे यह बात अच्छी तरह प्रदर्शित कर दी है कि भारतवर्षकी राष्ट्रीयता उचित सम्मानकी अधिकारी है। उन्होंने मिस मेयोके समान भारत-विरोधी आन्दोलनोंको दबानेके लिए भी अधिक काम किया है। भारतीय विद्यार्थियोंकी यह संस्था लगभग बीस वर्ष पहले कोई आधे दर्जन विद्यार्थियों द्वारा स्थापित की गई थी और आज यह इतनी बड़ी हो गई है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार करनेमें इससे अमूल्य सहायता मिली है। इस प्रकारकी भारतीय विद्यार्थियोंकी संस्थाएँ संसारके समस्त देशोंमें होनी चाहिए।

भारतके अधिकांश राजनीतिज्ञ सांस्कृतिक प्रचार-कार्यके महत्त्वको अच्छी तरह अनुभव नहीं करते, और इस प्रकार अपनी अदूरदर्शिता सिद्ध करते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों और कालेजोंको चाहिए कि वे भारतीय उपनिवेशोंसे आये हुए

नौजवान स्त्री-पुरुषोंको अच्छी-अच्छी छात्रवृत्तियाँ दें। विदेशोंके शिक्षा-केन्द्रोंमें अपने यहाँके अच्छे-अच्छे विद्वान और प्रोफेसर भेजें। अपने यहाँ दूसरे देशोंकी संस्कृति और इतिहासकी शिक्षाके लिए विशेषरूपसे प्रबन्ध करें, और इस बातके लिए पूरा प्रयत्न करें कि उत्तरदायी भारतीय विद्वानोंको प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विदेशी विश्वविद्यालयोंमें भारतीय सभ्यता और इतिहासकी शिक्षा देनेका अवसर मिले। सांस्कृतिक सहयोग निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धको दृढ़ बनानेके लिए राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्धोंकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है, इसलिए दूरदर्शी भारतीय नेताओं और विद्वानोंको चाहिए कि ऐसा उद्योग करें, जिससे दूसरे देशोंसे भारतवर्षका जो सम्बन्ध स्थापित हो, वह संस्कृतिके आधारपर हो। इस कामके लिए उन्हें विदेशोंमें पड़े हुए अपने देशवासियोंसे अच्छी तरहसे काम लेना चाहिए, और उनके अधिकारोंकी रक्षाका उपाय भी करना चाहिए, क्योंकि वे भारतवर्षकी बड़ी मूल्यवान विभूति हैं।

नेटाली भारतीयोंको मताधिकार

[लेखक :—श्री चार्ल्स डी० डोन, सम्पादक 'स्टार', जोहान्सबर्ग]

'विशाल-भारत' के प्रवासी-अंकके लिए सन्देश भेजते हुए मुझे बड़ा आनन्द होता है। यद्यपि मैं कभी भारतवर्ष नहीं गया हूँ, मगर मेरे कुटुम्बका सम्बन्ध भारतवर्षसे रहा है। मेरे पिता सन् १८६४से १८७३ तक कलकत्तेके 'फ्रक ट्रेनिंग कालेज'में रहे थे, और मेरे बड़े भाई तथा दो बहनें भारतमें ही पैदा हुई थीं।

दक्षिण-अफ्रिकाकी भारतीय समस्याके कुछ पहलू अभी तक कठिनाइयोंसे पूर्ण हैं, और कुछ प्रत्यक्ष कारणोंसे उनके पूरे रूपसे शीघ्र हल होनेकी भी कोई आशा भी नहीं है। वोट देनेके अधिकारका प्रश्न इन कठिनाइयोंमेंसे एक है।

सम्पूर्ण दक्षिण-अफ्रिकामें वहां आदिम निवासियोंकी एक बहुत बड़ी आबादी है। इसलिए वहांकी स्थिति अन्य उपनिवेशोंसे एकदम भिन्न है। नेटालमें यूरोपियनोंकी संख्या, समस्त जनसंख्याका बहुत ही छोटा भाग है, इसलिए अन्य स्थानोंकी अपेक्षा यहाँकी कठिनाई सबसे ज्यादा है। नेटालमें भारतीयोंको बुलानेकी जिम्मेदारी मुख्यतः नेटाली गोरोंपर ही है। भूतकालमें भारतीयोंने उपनिवेशकी वृद्धि करनेमें और अपने गोरे मालिकोंके लिए धन-सम्पत्ति पैदा करनेमें बहुत बड़ा भाग लिया था। इन दोनों बातोंको मानते हुए भी इस बातमें कोई अन्तर नहीं पड़ता कि यदि निर्बाधरूपसे सबको वोटके अधिकार दे दिये जायँ, तो उसका अन्तिम नतीजा यह होगा कि समस्त राजनैतिक शक्ति यूरोपियनोंके हाथसे निकलकर गैर-यूरोपियनोंके हाथमें पहुँच जायगी। यह सवाल भारतके या भारतीयोंके नीच होनेका नहीं है। यह सवाल नेटाली यूरोपियनोंकी राजनैतिक आत्म-रक्षाका है। यदि भारतके किसी प्रान्तमें या एशियाके किसी देशमें ऐसी ही दशा होती, और एक जातिके लोग समस्त राजनैतिक अधिकार प्राप्त करके उन लोगोंका आर्थिक मटियामेट करते, जिनसे उन्होंने राजनैतिक शक्ति छीनी थी, तो आप खयाल कर सकते हैं कि उस वक्त कैसी हाय-तोबा मचती।

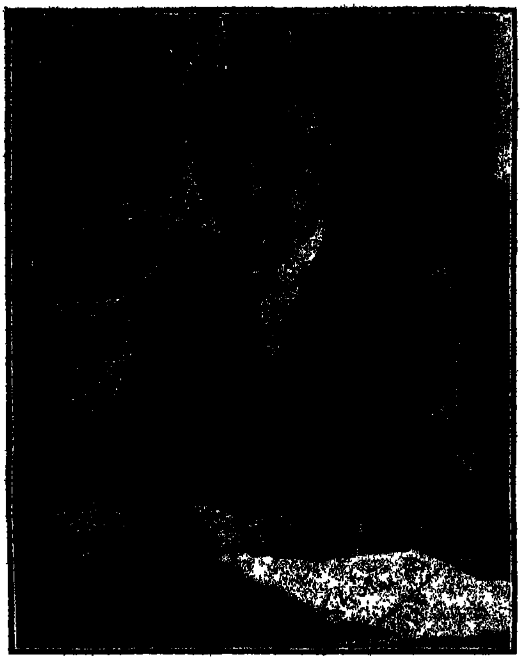
इस बातपर जोर देते हुए भी मैं यह खुल्लमखुल्ला स्वीकार करता हूँ कि नेटालकी दशा असन्तोष-जनक है। उन लोगोंके लिए जो शासनाधिकारसे वंचित हैं, जनतन्त्रके वेशमें छिपे हुए मुट्ठीतन्त्री शासन (स्वल्प संख्यक लोगों द्वारा परिचालित शासन, Oligarchy) से अधिक बुरी शासन-पद्धतिकी कल्पना नहीं की जा सकती। व्यावहारिक रूपमें इसका मतलब यह होता है कि जिनके हाथमें शक्ति होती है, वे अधिकतर उसे केवल अपने स्वार्थोंके लिए ही प्रयोग करते हैं।

मेरी निजी राय यह है कि खर्चकी परवाह न करके भारतीयोंको उनकी इच्छासे दूसरे स्थानोंको भेज दिया जाय, अथवा मनुष्यता-पूर्ण न्यायोचित दशाओंमें दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीयोंको अफ्रिकाके किसी अन्य भागमें या साम्राज्यके किसी अन्य भागमें तबदील कर दिया जाय, जहाँ उन्हें बिना किसी प्रकारकी रुकावटके अपनी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नतिका अवसर मिले। जो भारतीय बच रहें, उनकी वे राजनैतिक असुविधाएँ अधिक-से-अधिक अंशमें दूर कर दी जायँ, जो आज समस्त भारतीयोंपर बुरी तरह लदी हुई हैं। तब उनका म्यूनिसिपलिटी तथा प्रान्तीय और राष्ट्रीय मामलोंमें आवाज़ उठानेका हक़ सरलतासे स्वीकार कर लिया जायगा। रही आर्थिक प्रतियोगिता, सो वह भी स्टैन्डर्ड-मजदूरीकी व्यवस्थासे आसानीसे दूर हो जायगी। इस व्यवस्थाका यदि विरोध भी होगा, तो वह भारतीयोंके द्वारा नहीं होगा, बल्कि उनका दोहन करनेवाले उनके मालिकोंके ही द्वारा होगा।

दक्षिण-अफ्रिकाके गरम-दल और अनुन्नतिशील लोग समय-समयपर यह कहते रहते हैं कि भारतीयोंको एकदम ज़बर्दस्ती अफ्रिकासे बाहर भेज दिया जाय।

अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टता भी एक चीज़ है, और जो अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचारका दावा करते हैं, उनमें शिष्टता-सम्बन्धी व्यवहारोंके सर्वमान्य नियम भी हैं। निश्चय ही दक्षिण-अफ्रिकाको अपने क़ानून बनानेका पूर्ण अधिकार है, मगर यदि दक्षिण-अफ्रिकामें जन्मे हुए भारतीयोंको जिनमेंसे कुछकी दो-दो तीन-तीन पुश्तें वहाँ बीत चुकी हैं— ज़बर्दस्ती अफ्रिकासे दूसरे देशोंमें भेजा गया, तो हमारा दर्जा भी एशिया-माइनरके सम्मान-हीन राष्ट्रोंकी नैतिक और राजनैतिक नीचाईपर पहुँच जायगा। ऐसा उपाय एक तो व्यावहारिक नहीं है, और दूसरे आज तक किसी भी सभ्य देशने अपने यहाँ बसे हुए लोगोंके साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया है। उसपर भी यह उपाय बेईमानी तथा निर्दयता-पूर्ण अनुचित ज़ुल्म और अमानुषिक बलात्कारसे बहतर नहीं है।

यदि नेटालकी भारतीय आबादी वर्तमान संख्यामें बनी रही, अथवा इससे भी बढ़ गई, और यदि वे जीवनकी



मिस्टर चार्ल्स डी० डोन, सम्पादक 'स्टार', जोहान्सबर्ग

प्रतियोगितामें यूरोपियनोंके मुक़ाबले सफल हुए, तो यह सफलता भविष्यमें इस प्रश्नको और भी तीव्र बना देगी, लेकिन अगर भारतीय अधिकाधिक संख्यामें स्वेच्छा-पूर्वक दूसरे स्थानोंको चले आवें, तो नेटालकी समस्या भी उसी तरह निपटारेके योग्य हो जायगी, जैसी केप या ट्रान्सवालकी है।

भूतकालकी अदूरदर्शिता और स्वार्थपूर्ण नीतिने तथा हालकी रुकावटोंने बड़ी दिक़्क़तें उत्पन्न कर दी थीं, परन्तु हालके वार्तालापसे हम लोग पहलेकी बनिस्बत इन दिक़्क़तोंको हल करनेके बहुत समीप पहुँच गये हैं। मैं भारतीयोंके नेताओंसे हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि वे संयमसे काम लें, व्यावहारिक मन्तव्य ही प्रकट किया करें और सहज बुद्धि तथा समझौता करनेकी आदत डालें।

दक्षिण-अफ्रिकामें ऐसे लोगोंकी एक काफ़ी तादाद है, जो

दक्षिण-अफ़्रिकाके भारतीयोंके न्यायोचित अधिकारों और स्वार्थोंके लिए सहानुभूति शून्य नहीं है। मिस्टर शास्त्री और रेवरेण्ड सी० एफ० ऐण्ड्र्यूज़ जैसे आदमियोंने बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई है। सचमुचमें मिस्टर शास्त्रीने वह कर दिखाया है, जिसे मैं चार साल पहले असम्भव समझता था। उस समयका वातावरण इतना खराब था, जिससे अधिक खराब हो ही नहीं सकता, परन्तु रंगभिन्नताके विकटताका समझौता करनेके लिए आजका वातावरण जितना अनुकूल है, उतना पीछले पचीस वर्षोंमें कभी भी नहीं रहा है। यह सब मिस्टर शास्त्रीके 'प्रभाव' और यूनियनके प्रधान मंत्री जनरल हर्ट्ज़ोग तथा गृहमंत्री डाक्टर मालनके हृदयोंपर उन्होंने जो छाप डाली है, उसकी बदौलत है। ये दोनों कोई उपाय ढूँढ़ निकालने तथा समझौतेका स्थायी आधार पानेके लिए बहुत चिन्तित हैं। साथ ही मुझे पूरा विश्वास है कि भारतके वर्तमान एजेन्ट जनरल सर कूर्म रेड्डी भी इस पारस्परिक सहयोग और सद्भावको काममें लानेमें कोई बात उठा न रखेंगे।

अन्तमें मैं अपने एक लेखका निम्न-लिखित भाग उद्धृत करना चाहता हूँ, जिसे मैंने बीस वर्ष पहले लिखा था। इससे मेरा मत, जो आज भी वैसा ही दृढ़ बना है, प्रकट हो जायगा :—

"उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीय देशकी स्थायी आबादीके वैसे ही अंश हैं, जैसे यूरोपियन। उन्हें मेहनत और योग्यतामें अपने गोरे पड़ोसियोंसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इस कारणसे अथवा उनके चमड़ेके रंगके कारण ही उनमें न्याय-पूर्वक भेद-भाव नहीं किया जा सकता, वे नेटाल ही को अपना घर जानते हैं। उनके बाप-माँ या दादा-दादी नेटालमें लाये गये थे। वे इसलिए नहीं लाये गये थे कि वे यहाँ अपनी दशा सुधार सकें, बल्कि इसलिए लाये गये थे कि वे उपनिवेशको समृद्धिवान बनानेमें मदद दे सकें। कोई भी पक्षपात हीन व्यक्ति इस बातसे इनकार नहीं कर सकता कि औद्योगिक और आर्थिक दृष्टिसे वे बहुत अधिक लाभदायी हुए हैं। साथ ही यह भी सच है कि यह लाभ बड़े महँगे दामोंमें प्राप्त हुआ है। नेटाली गोरोंने अपनी साम्पत्तिक उन्नतिकी स्वाभाविक और प्रशंसनीय आकांक्षाओंमें तथा मज़दूरोंकी दिक़तको हल करनेकी जल्दीमें दक्षिण-अफ़्रिकाके राजनीतिज्ञोंपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व लाद दिया है। एक प्रान्तमें भारतीयोंकी बड़ी तथा स्थायी आबादीकी मौजूदगी यूनियनके लिए ज़रूर ही परेशानीका कारण है। हमारे यहां एक पेचीली और बुद्धिको चकराने वाली रंगकी समस्या पहले ही से मौजूद है। भारतीयोंका प्रश्न उसे और भी जटिल बनाता है, परन्तु चाहे जिस प्रकारकी दिक़तें हों, हमें स्वार्थपूर्ण कुटिलतासे काम लेनेके पहले उनका सामना सब्र, हिम्मत, बुद्धिमानी और न्याय करनेके दृढ़ निश्चयके साथ करना चाहिए।

ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी सामाजिक दशा

[लेखक :—रेवरेन्ड बी० एल० ई० सिगामोनी]

किसी आदमीके लिए, जो मुश्किलसे दो वर्ष ट्रान्सवाल प्रान्तमें रहा है, वहांके भारतीयोंकी सामाजिक दशापर कुछ लिखना आसान बात नहीं है, मगर फिर भी केवल दो वर्षोंके भीतर ही मैंने वहांके लोगोंकी दशाका अच्छी तरह निरीक्षण कर लिया है। यह इसीलिए सम्भव हो सका है कि मैंने सदा लोगोंके सम्पर्कमें रहनेकी कोशिश की है। चूँकि मैं मिशनके कार्यक्षेत्रमें अगवा हूँ, अत: मेरी यह सदा इच्छा रहती है कि मैं सीधे समाजके भीतर पैठ जाऊँ। इससे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि मुझे लोगोंमें मिलने जुलनेके अवसर मिला करते हैं, इसीलिए मैं इस स्थितिमें हूँ कि यहांके प्रवासी भारतीयोंकी सामाजिक अवस्थाका परदा उठाकर आपको उसका दिग्दर्शन करा सकूँ। पाठक

महाशय, आप इस दृश्यको देखकर भयभीत हो जायँगे, मगर आपको स्मरण रखना चाहिए कि यहांके भारतीयोंकी जैसी आर्थिक अवस्था है, वैसी आर्थिक अवस्थामें किसी भी अन्य जाति और किसी भी अन्य देशमें ऐसे ही दृश्य उत्पन्न हो सकते हैं। मैं केवल आपके सामने एक शाब्दिक चित्र उपस्थित करना चाहता हूँ, जिसमें आप स्वयं उसे देख सकें।

यदि आप ट्रान्सवाल आयें, तो जैसे ही आप नेटालकी सीमाको पार करेंगे, वैसे ही आपको बड़े विस्तृत मैदानोंमें यात्रा करनी पड़ेगी। जब आप दक्षिण-अफ्रिकाकी स्वर्णपुरी जोहान्सबर्गके समीप पहुँचेंगे, तो सुदूर क्षितिजपर आपको ज्वालामुखी पर्वतके समान कुछ पहाड़ियाँ दिखाई देंगी। यदि आप अजनबी हैं, और पूछें कि वे क्या हैं, तो जवाब मिलेगा कि वे केवल टीले हैं, वे पृथ्वीसे निकले हुए मिट्टीके ढेर हैं।

जोहान्सबर्ग नगरमें भारी-भारी इमारतें हैं और दिन प्रतिदिन नये ढंगकी और भी अनेकों इमारतें बनती जाती हैं। साधारणतः किसीको यह यक़ीन नहीं होता कि दक्षिण-अफ्रिकामें भी ऐसे शानदार शहर मौजूद हैं। जब आप उसे देखेंगे, तभी आपको यह विश्वास होगा। यहाँकी आबादीमें प्रायः सभी जातियोंके लोग हैं, मगर एक विशेष बात यह है कि सोना उत्पन्न करनेवाले शहरोंमें जो खतरे हुआ करते हैं, उनसे यह शहर बरी है। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह है कि यहांके डच-निवासी बड़े कट्टे औपनिवेशिक हैं, और वे लोग रविवारको एकदम धार्मिक ढंगसे मनाते हैं, दूसरे इंग्लैण्डसे आये हुए अंग्रेज़ लोग यह समझते हैं कि वे उच्च जातिके हैं, अतः कुछ व्यक्तियोंकी व्यक्तिगत कमज़ोरीको छोड़कर अंग्रेज़ लोग अपनी जातिकी शुद्धताकी रक्षाके लिए बहुत सावधान रहते हैं, और अपने सामाजिक घेरेको बहुत दृढ़ रखते हैं।

फिर यहांके आदि निवासी बंटू लोग हैं। इन बंटुओंके अलावा और भी अनेकों जातियोंके हब्शी हज़ारोंकी तादादमें यहाँकी खानोंमें काम करनेके लिए लाये जाते हैं। वे लोग एकदम असभ्य हैं, और अब तक जंगली अवस्थामें बने हैं। वे यहाँपर पाश्चात्य सभ्यताके समस्त दुर्गुणोंके संघर्षमें आ गये हैं। चूँकि उन्हें अपनी पत्नियोंको साथ लानेकी आज्ञा नहीं होती, इसलिए उनमें दूषित जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ खूब फैली हैं। यद्यपि क़ानूनके अनुसार समस्त काले आदमियोंको सब तरहकी शराब पीने और बेचनेकी मनाही है, फिर भी बहुत लोग नाजायज़ तरीक़ोंसे शराब बेचकर खूब धन पैदा करते हैं। पता लगनेके भयसे तथा गिरफ्तारीसे बचनेके लिए ये चालाक शराबवाले सैकड़ों भांतिके ढोंग निकाला करते हैं। सैकड़ों हब्शी लोग गोरों, हब्शियों, भारतीयों, सीरियनों और चीनियोंके छिपे शराबखानोंका रास्ता लेते हैं। हब्शियोंको शराब ज़रूर चाहिए, और वह उन्हें मिल भी जाती है।

इन सबके ठीक बीचमें भारतीय समाज फैला हुआ है। सोनेकी खानों (Reef) में भारतीय बोक्सबर्ग, जर्मिस्टोन, स्प्रिंग्स आदि स्थानोंमें रहते हैं। इन जगहोंमें उनके रहनेके स्थान पृथक् हैं। इन सबका वर्णन करना प्रायः असम्भव है। वे स्थान गोरोंके लिए, जो अपनी उच्चताकी डींग मारा करते हैं, बड़ी कलंककी बात हैं। मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसके लिए मेरी कड़ी आलोचना की जायगी, फिर भी यह ऐसा सत्य है, जिससे कोई इनकार नहीं कर सकता। यही दशा जोहान्सबर्गकी है। वहां भी भारतीय शहरसे बाहर अलग स्थानमें रहते हैं। केवल कुछ साहसी लोग ही ऐसे हैं, जो शहरमें रहते हैं।

क़ानूनके अनुसार भारतीयोंको शहरमें रहनेकी आज्ञा नहीं है। उनके रहनेके लिए शहरके बाहर कई मील दूरपर विशेष स्थान नियत कर दिये गये हैं। वे स्थान दक्षिण-अफ्रिकन गोरोंके लिए मूर्तिमान कलंक हैं। ट्रान्सवालके भारतीयोंको वोट देनेका अधिकार नहीं है। म्यूनिसिपल शासनमें उनकी कोई आवाज़ नहीं है। वे लोग गोरों ही के बराबर टैक्स और कर आदि देते हैं, फिर भी वे उन प्रारम्भिक अधिकारोंसे भी वंचित हैं, जो प्रत्येक मनुष्यको मिलने चाहिए।

उनके रहनेके स्थानोंमें सड़कोंका अस्तित्व नहीं है और न सफ़ाईका इन्तज़ाम ही है। ये लोग सुपरिन्टेन्डेन्टोंकी देख-रेखमें रखे जाते हैं। इन सुपरिन्टेन्डेन्टोंमें कुछ न्यायप्रिय और भले होते हैं, और कुछ ऐसे होते हैं, जो लोहेके डंडेसे शासन करना चाहते हैं। बस्तीसे अलग होनेके कारण इन स्थानोंका साधारण वातावरण बड़ा अवनतिकर है। यहाँ चुपके-चुपके शराब बिका करती है। ये स्थान बड़े गन्दे हैं। म्यूनिसिपलिटियोंने यहां गुसलखानोंका भी बन्दोबस्त नहीं किया है। उनकी इस दशामें जो कुछ थोड़ासा भी सुधार होती है, वह बड़े आन्दोलनके बाद होती है।

यहांके भारतीय समाजमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, थोड़ेसे पारसी, थोड़ेसे सिख और थोड़ेसे मुल्तानी हैं।

यहांके मुसलमानोंमें अधिकांश व्यापारी हैं। उनमेंसे कुछ लोग बड़े धनी हैं, मगर सामाजिक दृष्टिसे इन लोगोंने भारतीय समाजकी भलाईके लिए बहुत थोड़ा कार्य किया है। हिन्दुओंमें भी जो लोग बम्बई प्रान्तसे आये हैं, उनमेंसे अधिकांश फलोंके दूकानदार हैं। उनमें दो-चार जोहान्सबर्गमें थोकके व्यापारी भी हैं।

संख्यामें यही दोनों समाज—हिन्दू और मुसलमान—औरोंसे अधिक हैं। दक्षिण-अफ्रिकाके और समाजकी भाँति उनका भी वही उद्देश है—रुपया कमाना। मुसलमान नवयुवक, जो यहीं पैदा हुए हैं, भारतसे आये हुए मुसलमानोंसे एकदम भिन्न हैं। यही बात हिन्दुओंमें भी है। ये लोग सुधारक हैं। चूँकि इनके तथा इनके पूर्वपुरुषोंके सिद्धान्त एक दूसरेसे विरोधी हैं, अतः एक दिन इन्हें अपने पुरखोंसे सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा। इस बातको देखते हुए कि इस देशमें बहुतसे धनी आदमी भी हैं, भारतीय समाज सामूहिक रीतिसे वैसा नहीं है, जैसा उसे होना चाहिए। यहाँ कोई पब्लिक लाइब्रेरी नहीं है, और न ऐसे साधन ही हैं, जिनसे युवकोंको खेल-कूद (स्पोर्ट) आदिमें सम्मिलित होनेका समुचित मौक़ा मिले। लड़कोंकी तालीम देनेका केवल यही मंशा समझा जाता है कि वह रोज़गार चलानेके योग्य हो जायँ। इसके अतिरिक्त, पढ़े-लिखे आदमियोंके लिए—जब तक वे किसी पेशे, जैसे डाक्टरी, वकालत आदिको अख्तियार न कर लें, और कोई मार्ग भी नहीं है। इन सब बुराइयोंके लिए सरकारको दोष देना व्यर्थ है, क्योंकि यह सब बकवास है। मुझे विश्वास है कि अगर भारतीय अपनी सामाजिक बातोंमें एकदम स्वार्थी न होते, तो अपनेको इतना ऊँचा उठा सकते थे, जिससे अन्य जातिवालोंको उनके प्रति सम्मान होता। समाजमें दो-चार व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो सामाजिक दशाको सुधारना चाहते हैं, परन्तु वे बेचारे तूफ़ानी समुद्रमें कार्ककी भाँति हैं। असल बात तो यह है कि ट्रान्सवालमें हम लोगोंमें पढ़े-लिखे आदमी बहुत कम हैं और लोगोंका बड़ा भाग मनमें अपनेको नीचा समझता है। प्रत्येक बात इस दृष्टिकोणसे प्रभावित है। मि० गान्धीके उच्चादर्शसे यहांके भारतीयोंने गुलामीकी जंजीरोंको दूर करना सीखा था, परन्तु राइट आनरेबुल वी० एस० एस० शास्त्रीके आगमन और उनके आकर्षित करनेवाले व्यक्तित्वने तो कमाल ही कर दिखाया। उन्होंने भारतीयोंके लिए जो कुछ किया है, वह न तो कभी शब्दोंमें प्रकट ही किया जा सकता है, और न उसकी थाह ही लग सकती है। उन्होंने दक्षिण-अफ्रिकामें रहकर भारतीयोंको, उनके अनजाने सामाजिक सीढ़ीपर ऊपर उठा दिया है।

समाज-सुधारकोंके लिए यहाँ बहुत काम है। ट्रान्सवालके भारतीय समाजकी सहायता करनेका केवल मार्ग है उनकी स्त्रियोंको शिक्षित बनाना, क्योंकि उन्हींके हाथमें समाजका उद्धार है। मेरे ट्रान्सवालके कुछ भारतीय मित्र मेरी इस बातपर हँसेंगे, लेकिन यह उनकी भूल है कि वे स्त्रियोंकी शक्तिको कम समझते हैं। जब हमारी स्त्रियां सामाजिक सीढ़ीपर ऊँची उठेंगी, तो अपने साथ अपने बच्चोंको भी ऊपर उठा देंगी। बूढ़े लोगोंको इस बातका कुछ पता नहीं है कि संसारमें कितना परिवर्तन हो रहा है। उन्हें इस बातका पता नहीं है कि विज्ञान और उद्योग संसारके राष्ट्रोंको एकत्रित कर रहे हैं, इसलिए भारतीयोंको, जो जीवित रहना चाहते हैं, समयके साथ-साथ चलना पड़ेगा।

इन लोगोंमें समाज-सुधारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही नहीं है। वे युग-युगान्तरकी पुरानी रूढ़ियोंको नई उगती हुई पौधपर लादना चाहते हैं। यहाँके भारतीय चारों ओरसे पाश्चात्य बातोंसे ऐसे घिरे हैं कि वे बड़ी शीघ्रतासे पाश्चात्य ढंगके होते जा रहे हैं। यह आवश्यक भी है कि नई स्थितिके अनुसार नये तरीके अख्तियार किये जायँ। जो आज नवयुवक हैं, वे कल पुरुष हो जायँगे, इस देशमें बहुतसे लोग रंगीन जातिवालोंसे ब्याह शादी भी करने लगे हैं। बहुतसे भारतीय केवल डच-भाषामें ही बातचीत करते हैं, और यदि सौ वर्षके अन्दर ट्रान्सवालके समस्त भारतीय केवल डच ही बोलने लगें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

अब समाज-सुधारकी सहायताके लिए लोगोंकी शक्तियां एकत्रित होने लगी हैं। यद्यपि अभी यह एक नन्हासा पौधा मात्र है, लेकि ईश्वरकी सहायतासे आगामी वर्षों वह खूब बढ़ जायगा।

खेद है कि यहाँके भारतीय युवकोंके लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा है। जब मैंने यहाँ एक बौइ स्काउट-ट्रूप (Boy Scout Troop) जो यहाँके भारतीयोंमें अपने ढंगका पहला है—क़ायम किया, और उसे दक्षिण-अफ्रिकाकी स्काउट कौंसिलसे सम्मिलित करना चाहा, तो वहाँसे इनकार हो गया, क्योंकि हम लोगोंका रंग गोरा नहीं है! स्काउट कौंसिलके चीफ मि० रैलेने कहा कि चूँकि भारतीय लोग निम्न-श्रेणीके हैं, इसलिए वे इसमें सम्मिलित नहीं किये जा सकते। दक्षिण-अफ्रिकाके गोरे स्काउटोंके निरीक्षणताके लिए विलायतसे दो कमिश्नर आये थे। भारतीयोंका एक डेपूटेशन उनसे मिला था, लेकिन उन्होंने भी दक्षिण-अफ्रिकावालोंकी ही बातोंको दोहराया! संसारके स्काउटोंके प्रधान सर रार्बट बीडेन पावेलको भी लिखा गया, पर उन्होंने भी दक्षिण-अफ्रिकन कौंसिलके जातीय पक्षपातका ही समर्थन किया! इसके लिए भारतीय क्या कहते हैं? यद्यपि दक्षिण-अफ्रिकाके गोरे स्काउट-नेताओंने बड़ी नीचता दिखलाई, फिर भी भारतीय बालक बराबर कार्य कर रहे हैं। लड़कोंके लिए सामाजिक क्लब खोले जानेकी आशा है, जिससे वे शारीरिक और मानसिक लाभ उठा सकेंगे।

इस देशमें आपका सबसे बड़ा विरोधी है 'रंगका भयंकर पक्षपात!' यह पक्षपात आपको गिरजाघरमें भी मिलेगा। यद्यपि यहाँके बिशप बड़े देवता आदमी हैं, और वे इसके विरुद्ध लड़ भी रहे हैं, मगर गोरे ईसाई अब तक डरते हैं कि वे लोग बड़े चपलेमें पड़ जायँगे। खेल-कूदमें रोज़गारमें, यहाँ तक कि हर बातमें रंगका पक्षपात घुसा हुआ है। बहुतसे पब्लिक स्थानोंमें आप लिफ्टका व्यवहार नहीं कर सकते। पाठक आसानीसे कल्पना कर सकते हैं कि जब पग-पगपर भारतीय केवल अपने रंगके कारण नीच कहे जाते हैं, तब उनकी मनोवृत्तिपर उसका क्या असर पड़ेगा!

इससे भारतीयोंके हृदयमें विषादके भाव उत्पन्न होते हैं। उनकी शिकायतें इतनी बढ़ी हुई हैं कि उन्हें अपने भाइयोंको ऊपर उठानेकी इच्छा ही नहीं होती। फल यह होता है कि वे केवल एक ही आकांक्षामें दबे रहते हैं कि जैसे हो सके रुपया कमाकर धनी हो जायँ। वे जानते हैं कि धन कमानेसे उन्हें सुखसे रहनेके साधन प्राप्त हो जायंगे और वे अपने गोरे शासकोंसे स्वतन्त्र हो जायँगे। फिर उनका क़ानूनसे इतना कम सम्पर्क रह जायगा, जो उन्हें अखर न सके।

यह भूल न जाना चाहिए कि यूरोपियनोंमें भी बहुतसे भले आदमी हैं, जो जातीय वैमनस्यको मिटानेके लिए अपना समय और परिश्रम लगा रहे हैं। यहाँ मिस्टर और मिसेज़ जे० डी० रहनाल्ट जोन्सके सदृश प्रमुख व्यक्ति हैं। दक्षिण-अफ्रिकामें भला इन दोनोंके समान महान् व्यक्ति मिल सकते हैं? उनके विशाल हृदय काले आदमियोंके प्रति प्रेम और दयासे परिपूर्ण हैं। मिस्टर जोन्स ही के द्वारा इंडो-यूरोपियन कौंसिलका सूत्रपात हुआ है। इनके अतिरिक्त, जोहान्सबर्गके बिशप कारनी और वहींके डीन पामर इंडो यूरोपियन कौंसिलके सभापति प्रोफेसर वाट, 'स्टार' के सम्पादक मिस्टर डोन, 'रैंड डेली मेल' के सम्पादक मिस्टर मैकल्यूड तथा कुछ अन्य लोगोंके सदृश व्यक्ति भी हैं जो भारतीयोंकी सहायताके लिए जो कुछ भी वे कर सकते है, कर रहे हैं।

इस समय पीछे घसीटनेवाली शक्तियाँ तेज़ीपर हैं, मगर एक समय आवेगा, जब कि दक्षिण-अफ्रिकाके काले निवासियोंकी उन्नतिकी बाढ़के आगे वे न टिक सकेंगी। इस युद्धशालामें भारतीयोंको अपने बंद्य और रंगीन भाइयोंके साथ अपना उचित स्थान ग्रहण करना चाहिए, और उन्हींके साथ वे सच्चे गोरे लोग भी रहेंगे, जो मार्ग दिखाकर उन्हें उनके स्वत्वों और न्यायोचित व्यवहारकी मंज़िलपर पहुँचावें।

"लल्लू कब लौटैगो ?"

[लेखक :—बनारसीदास चतुर्वेदी]

"लल्लू कब लौटैगो ?" यह प्रश्न एक गरीब किसानने साढ़े चार वर्ष पहले पूँछा था। वह अब इस संसारमें नहीं है, पर उसका प्रश्न अभी भी मेरे कानोंमें गूँज रहा है।

फ़ीरोज़ाबाद (ज़िला आगरा) के निकट खेड़ा-गनेशपुर नामक एक छोटासा ग्राम है। वहाँ सोनपाल नामक लोधा रहा करता था। साग-तरकारी बेचकर वह अपनी गुज़र करता था। मैंने भी कई बार उससे साग-तरकारी खरीदी थी और यह समझता था कि जैसे अन्य साग-तरकारी बेचनेवाले हैं, वैसे यह भी है। उससे झगड़ा करके अधिक तरकारी लेनेमें मज़ा आता था। बुड्ढा था, और बुड्ढोंसे मधुर छेड़-छाड़ करके दो चार खरी-खोटी सुननेमें अद्भुत आनन्द मिलता है। मुझे पता नहीं था कि इस वृद्ध किसानके हृदयके भीतर दुःखकी एक ज्वाला जल रही है। यह बात एक दिन मालूम हुई।

शामके वक्त एक चौहरेजीने आकर कहा—"सोनपाल लोधेको तुम्हारे पास लाया हूँ। इसका कुछ काम कर दो।"

सोनपाल लोधेको मैंने बिठलाया। हाथ जोड़कर बैठ गया। लटा-दूबरा आदमी था। फटा हुआ साफा, जिसमें पाँच-सात जगह थजीरें साफ दीख रही थीं, पहने हुआ था। गलेकी हड्डी निकली हुई थी। आँखोंके नीचे गड्ढे थे। मैंने दिलमें सोचा कि इससे बातचीत करनी चाहिए—'इण्टरव्यू' लेनी चाहिए। महात्मा गान्धी, कविवर रवीन्द्रनाथ और मि० एण्ड्रूज़ जैसे महापुरुषोंसे बातचीत करनेका मौक़ा अनेक बार मिला है, पर इन लोगोंसे बात चीत करते समय कुछ कृत्रिमता आ ही जाती है। उनके महत्त्व तथा अपनी क्षुद्रताका खयाल करके बातचीतमें बड़े संयमसे काम लेना पड़ता है, और वह स्वाधीनता नहीं मिलती जो समान पदवालोंके साथ मिल सकती है। सोनपालको इस बातकी आशंका नहीं थी, जैसी कि प्रायः बड़े आदमियोंको हुआ करती है कि 'जनता' (पबलिक) पर मेरी बातचीतका क्या असर पड़ेगा। मेथीका साग कल किसी तरह दो पैसे सेरके बजाय तीन पैसे सेर बिक जाय, इस बातकी उसे अधिक फ़िक्र थी। उसे किसी संस्थाका संचालन नहीं करना था, और संस्था-संचालन बड़े-से बड़े मनुष्यकी सहृदयताको कम और व्यापार बुद्धिको अधिक कर देता है। सोनपाल लोधा इन सब महत्त्वों और उससे उत्पन्न चिन्ताओंसे मुक्त था। 'इण्टरव्यू' के लिए उपयुक्त आदमी था।

"महाराज, तुम तौ हमैं जानतौ, थानेके सामनें तरकारी बेचतें। हमारी दुकानसें भौत दफे तरकारी लाबे हौ, हमारौ एक काम करेउ। हमारौ लड़का काऊ टापूकौं चलौ गयौ ऐ। अब आठ बरससें बाकौ पता नाँइ। बाकौ पतौ लगाइ देउ।"

मैंने कहा—"तुम्हारी उमर क्या है ?"

सोनपालने कहा—"जि तो मोइ खबरि नाँइ। गदरकी सालको जनम है। सत्तर भई के पिचत्तर भई के साठ भई, जि मोइ पतौ नाँइ।"

मैं—"तुम्हारे लड़केका पता तो मैं शायद लगा सकूँगा, पर सब हाल सुनाओ।"

सोनपाल—"तौ पतौ लगि जाइगो ? लल्लू लौटि आवेगे ? कब लौटैगो ?"

'लल्लू कब लौटैगो ?' यह मैं नहीं बतला सकता। यह मेरे हाथकी बात नहीं। तुम सब हाल तो सुनाओ।"

मुझसे कुछ निराशायुक्त जवाब पाकर उसने एक लम्बी साँस ली। झुर्रीदार चेहरेपर बैठी हुई आँखोंके कोनेपर कुछ पानी झलक आया। उसने अपनी दुःखगाथा सुनानी शुरू की :—



सोनपाल लोधा
करुणाजनक आँखें यही सवाल पूछती हैं—"लल्लू कब लौटैगो ?"

"बाकौ नाम डालचन्द हो। दो-तीन बरस मदरसामें पढ़ो। जितौ मैं नाँइ जान्तु, कित्तौ पढ़ो। ग्यारह आनाकी किताब तक पढ़ी। तोरेके ढिंग बमरौली-कटारामें बाकी ससुरारि ही। बहूऐ लिवाइबे गयौ। उनने भेजी नांइ, सो हमारे भानजेके जाँ पीपरमंडी आगरेमें ठहर रह्यौ। फिर हाँलैं पतौ नाँइ लगौ। हमारौ भतीजौ जो बाके संग बमरौली कटारे तक गयो, सो बु तो लौटि आयौ, पर लल्लु नाँइ लौटो।"

मैंने कहा—"यह तो तुमपर बड़ी आफ़त पड़ी।"

सोनपाल बोला—"आँखन तैं धूँधुरे हो गये, बोझ चलत नाँइ, कैसें दिन कटैं, छोटौ लड़िका है एक, सो बु कमज़ोर है, बासैं काम होतु नाँइ—

'दुख, सम्पति औ आपदा, सब काऊ कों होइ।
जौं-जौं परि जाय आपदा, तौं लग सहैं सरीर॥'*

सिग सहनौ परतु है।"

मैंने कहा—"लड़केकी माको तो बड़ा दुःख हुआ होगा ?"

सोनपाल—"का कहैं। जब मरिबेके पहलैं बाइ सन्निपात भयौ, तौ बोली, मेरे 'डल्ला' कों बुलाइ देउ, डल्ला' कों जल्दी बुलाइ देउ। हमनें कही, बुलाइ दिंगे, सहर गयौ है, आवतु होइगौ। 'डल्ला' 'डल्ला' कहति कहति मरि गई, पर डालचन्द नहीं आयौ। बाकौ एक लड़िका है, और बाकी औरत ज़िन्दा है।"

इतना कहकर बूढ़ेने फिर एक गहरी साँस ली।

---

* सोनपालने यह दोहा जैसा कहा था, वैसा ही यहाँ उद्धृत कर दिया गया है। —लेखक

पूछनेपर पता लगा कि सोनपाल चार आने रोज़ तरकारी बेचकर कमा लेता था। उससे तीन आदमियोंकी गुज़र होती थी। छोटे लड़केका विवाह कर दिया था, पर वह जुआ खेलता था, कमाता कुछ नहीं था। बड़े लड़के डालचन्दकी एक चिट्ठी आठ वर्ष पहले ट्रिनीडाडसे आई थी, फिर कुछ पता नहीं चला।

मैंने कहा—"चिट्ठी भेजूँगा, लेकिन अब इतने वर्ष बाद पता लगना मुश्किल ही है।"

सारा हाल लिखकर ट्रिनीडाडके औपनिवेशिक मित्रोंको चिट्ठी भेजी गई। कई महीने बाद एक मित्र माननीय रेवरेण्ड सी० डी० लालाका उत्तर आया—

"So far I have been only able to read your ever welcome letter of 30th June last, which asks for particulars about one Dalchand, who came to this colony in the year 1916 as an indentured labourer. As per your request, I made enquiries for Dalchand at Exchange Estate, and found him in the best of health and quite happy in the estate of his choice. He visited me at my residence yesterday and handed me the enclosed letter in Hindi to be forwarded to his father through your good self."

अर्थात्—"आपकी ३० जूनकी चिट्ठी, जिसमें आपने डालचन्दके विषयमें—जो सन् १९१६ में शर्तबन्दीके कुलीकी हैसियतसे आया था—पूछा है, मिली। तदनुसार मैंने डालचन्दके विषयमें पूँछ-ताछ की और उसे पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न पाया। कल वह मेरे घरपर आया भी था, और उसने एक चिट्ठी हिन्दीमें लिखकर मुझे दी है, और कहा है कि मैं इसे आपके द्वारा उसके पिताके पास पहुँचा दूँ।"

डालचन्दकी चिट्ठीकी नक़ल यहाँ दी जाती है :—

"सिद्धश्री सर्वोपमा विराजमान सकल गुणनिधान श्री पत्री ओम्म लिखी चीनीडाट टापू कूवा कौट एकचेंचि स्टेटसे डालचन्दकी राम-राम सोंनपाल व फकीरचन्दको राम-राम पहुँचे। भाई गेंदालाल, मौजराम, वीरीराम व गोवर्धनको राम-राम पहुँचे। आगे यहांके समाचार भले हैं, आपुकी खैरियत श्री निरंकालजीसे नेक चाहते हैं। आगे हमारी और मौसीको पालागन पहुँचे, और हमारी भावीजीको राम-राम पहुँचे। आगे यहांके समाचार अच्छा, लेकिन आटा बहुत मेंहगा है। तुम लोगोंको आटाका या दूसरी चीनी ब्यान लिखूँ, तो तुम लोग बहुत ताज्जुब मानोगे। इसलिए कुछ ब्यान नहीं लिखि सकता हूँ। और हम लोग १० वर्षके बाद ११ वर्ष शुरू होगी, हम चले आयेंगे। १० वर्ष पूरा हो जायँगे, तो १०५ रु० किराया लगेगा, और १० वर्ष पूरा नहीं होगा, तो २१०) किराया लगेगा। आगरेवाले रामप्रसादको राम-राम भेजना और खरगसिंह शोभारामको राम-राम डालचन्दका पहुँचे। जितना गाँवके लोग सबको राम-राम। परमेश्वरकी महरवानी होगी, तो तुम लोगोंमें आन मिलेंगे, और नहीं मेहरवानी है, तो हम चीनीडाट टापूमें पड़े हैं, तुम हिन्दुस्तानमें पड़े रहो। जितना काम करे है, उतना खा लेते हैं। हमारे दो बेटोंका भी हाल लिखना। फक्त थोड़ा लिखा, बहुत समझना।

द० डालचन्द

आगे आपुकी चिट्ठी आई, हाल मालूम हुआ और चिट्ठीके देखते ही चिट्ठी भेज दो।"

मैंने यह चिट्ठी सोनपालको जाकर दे दी। उस वृद्ध किसानको आठ वर्ष बाद अपने खोये हुए पुत्रके हाथकी चिट्ठी पाकर जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। डालचन्दकी स्त्रीको, जो आठ वर्षसे अपने पतिकी बाट जोह रही थी और जिसने लोध-जातिकी होते हुए भी दूसरा विवाह नहीं किया था, इस समाचारसे जो हर्ष हुआ होगा उसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। अब सोनपालको एक धुन थी, और जब कभी मैं उससे मिलता, वह यही सवाल करता—"चौबेजी, हमारो लल्लू कब लौटैगो?" उस बेचारेने अपने लल्लूको यह खबर नहीं दी थी कि उसकी माँका देहान्त कई वर्ष पहले हो चुका था। वह सोचता था कि अगर लल्लूको यह बात मालूम हो गई कि माँ मर चुकी है, तो उसके दिलको बड़ा धक्का लगेगा, वह फिर नहीं लौटेगा। वह ख़याल करेगा कि माँ तो मर ही चुकी अब क्या करूँगा घर चलके। मुझे भी उसने माँकी मृत्युका ज़िक्र करनेसे मना कर दिया था।

डालचन्दको जो चिट्ठी जाती थीं, उनमें वह माँकी, जो उसकी याद करते-करते कभीकी स्वर्गवासी हो चुकी थी, आशीष लिखा दिया करता था।

उस बूढ़ेके हृदयमें नवीन आशाका संचार हो गया था। मेरा घर उसके गाँवके रास्तेमें ही पड़ता था, इसलिए अक्सर वह साग दे जाया करता था, और उसका मूल्य देने लगते तो आँखोंमें आँसू भर लाता, और कहता—"हमपै रक्खोई का है महाराज! जो हम तुमकों देइँ। तुमने हमारे लल्लूको पतौ लगाइ दयौ।" अक्सर हमारे पीछे घरपर आकर तीन-चार कुटुम्ब लायक तरकारी पटक जाता था। एक बार दूसरे सागोंके साथ बहुतसे कच्चे केले दे गया। हमने अपनी माँसे पूछा—"ये तो चार-पाँच आनेके होंगे, तुमने ले क्यों लिये ?" माँने कहा कि वह माना ही नहीं। पैसे भी नहीं लिये। यह कहकर कि 'तुम्हारे लल्लूने हमारे लल्लूकौ पतौ लगाइ दयौ है' उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। 'हम का देन लायक हैं' कहकर वह सब साग तरकारी पटक गया।

लल्लूके लौटनेकी आशामें कुछ दिन और जीता रहा। मैंने दिलमें सोचा था कि श्री शिवप्रसादजी गुप्तको सारा किस्सा लिख भेजूँ, और २१०) उनसे लेकर डालचन्दके किरायेके लिए भिजवा दूँ। मुझे पूर्ण विश्वास था कि मेरी प्रार्थनापर गुप्तजी यह कार्य अवश्य कर देते, पर मैंने कुछ आलस्यवश और कुछ संकोचवश ऐसा नहीं किया। सोचता रहा कि अब लिख दूँगा, अब लिख दूँगा। वृद्ध बेचारा प्रतीक्षा करता रहा।

साल-भर उसने प्रतीक्षा की। आखिर वह बीमार पड़ गया। उसका गाँव हमारे यहाँसे दो-तीन मीलपर ही है। हमारे पास उसकी बीमारीकी खबर भी आई। हमने सोचा कि नज़दीक तो हैं ही, किसी दिन मिल आवेंगे।

एक दिन अकस्मात् समाचार मिला कि सोनपाल इस संसारसे सदाके लिए चल बसा। जब उसके छोटे लड़केने आकर सब हाल सुनाया, तो मैंने पूछा कि मरते समय उसने डालचन्दकी याद की थी। वह बोला—"भौत याद करी। जेई कहतु रह्यो कि चौबेजीसे पूछियौ लल्लू कब लौटैगो ?"

माता भी यही कहते कहते मरी और पिता भी यह कहते-कहते मरा! हमारे दिलमें यही पछतावा रहा कि हमने समयपर उसके लड़केके लिए किरायेका इंतज़ाम क्यों नहीं करा दिया। डालचन्दके छोटे भाईकी आज्ञानुसार एक चिट्ठी ट्रिनीडाड भेजी गई, जिसमें उसके माता और पिता—दोनोंकी मृत्युका समाचार एक साथ ही गया! साथ ही उसके पिताके चित्रकी एक कापी भी थी, जो मैंने अपने लिए खिंचवाया था। डालचन्दको जो दुःख हुआ होगा, वह वही जानता है।

आज भी उस बूढ़ेके करुणोत्पादक शब्द—"लल्लू कब लौटैगो ?" कानोंमें गूँज रहे हैं।

लल्लू अभी तक नहीं लौटा!

सुना है, किसी गाँवमें अपने मायकेमें एक स्त्री रहती है। अपने पतिकी यादमें उसने चौदह वर्ष बिता दिये हैं, और ट्रिनीडाड यहांसे पन्द्रह हज़ार मील दूर है। बीचमें सात समुद्र हैं।

* *
*

जापानका औपनिवेशिक संगठन

[लेखक : — श्री एम० आउची]

उपनिवेशोंका प्रश्न जापानमें दिनों-दिन महत्ता प्राप्त कर रहा है। भविष्यमें तो उसके और भी महत्त्वपूर्ण होनेकी सम्भावना है, इसीलिए पिछले जून महीनेकी १० तारीखको वहांकी राष्ट्रीय सरकारने एक औपनिवेशिक विभाग स्थापित किया है। इस नये विभागकी स्थापनाकी स्वीकृति प्रधान राज-सभासे ले ली गई थी। राज-सभामें यद्यपि यह स्वीकृत हो गया था, तथापि वहांपर उसका विरोध भी काफी हुआ था। औपनिवेशिक सचिवकी मातहदमें इस नये विभागको बहुत आवश्यक प्रश्नों और समस्याओंकी छानबीन करनी है, उनमेंसे खास-खास ये हैं :—(१) औपनिवेशिक कौन्सिल स्थापित करना, (२) उपनिवेशोंमें उपयुक्त शिक्षा-प्रणालीकी व्यवस्था करना, (३) रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित करके उपनिवेशोंके आदिम निवासियोंके साथ घुलमिल जाना, (४) औपनिवेशिक वाणिज्य-व्यवसायका संचालन करना और उसकी उन्नति करना, (५) उपनिवेशोंके साथ रक्त-सम्बन्ध बढ़ाना, (६) उपनिवेशोंमें जापानसे आदमी भेजना, (७) मंचूरिया और मंगोलियाकी समस्याएँ, (८) काराफ्युटोमें जापानियोंकी आबादी बढ़ाना, और (९) दक्षिणी समुद्रके अधिकृत टापुओंसे आनेवाले मालको प्रोत्साहन देना।

इन प्रश्नोंको हल करनेमें सुविधा पहुँचानेके विचारसे प्रधान सचिवकी देख-रेखमें शीघ्र ही एक औपनिवेशिक संघ स्थापित किया जानेवाला है, ताकि उपर्युक्त प्रश्नोंकी जाँच-पड़तालके लिए जनता और सरकार दोनोंको प्रोत्साहन मिले। यह प्रस्तावित संघ उपनिवेशोंके सहयोगी संघोंके साथ मिलकर काम करेगा। उपनिवेशोंमें जहाँ-जहाँ जापानी गये हैं, वहाँ-वहाँ इनके अनेक संघ स्थापित हैं, कम-से-कम एक तो हर जगहपर है ही। इसके अतिरिक्त, जापान औपनिवेशिक संघ, जापान-रूस-संघ, प्राच्य संघ, दक्षिण-समुद्र-संघ, जापान-चीन-संघ, जापान-अमेरिकन संघ, जापान फ्रेंच संघ, जापान-आस्ट्रेलिया-संघ आदि अनेक संघ और भी हैं।

औपनिवेशिक संगठनका महत्त्व इसीलिए नहीं है कि जहाँ-जहाँ जापानी गये हैं, वहाँ-वहाँके राष्ट्रोंके साथ जापानका व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो जाय या दोनों राष्ट्रोंमें सद्भाव कायम हो, परन्तु इसलिए भी है कि जापानमें जगहकी कमी होनेके कारण आबादी बड़ी घनी हो गई है, और इस बातकी आवश्यकता है कि विदेशोंमें बसनेके लिए जापानी अधिक संख्यामें भेजे जावें। जापानमें जिस परिमाणमें जनसंख्याकी वृद्धि हो रही है, उसको देखते हुए जापानियोंके लिए यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि बढ़े हुए लोगोंके रहनेके लिए कहीं प्रबन्ध किया जाय। प्राय: दस लाख प्रति वर्षके हिसाबसे बढ़ती हुई जापानकी जनसंख्या थोड़े ही दिनमें इतनी अधिक हो जायगी कि शीघ्र ही ऐसा समय आ जायगा, जब खाना भी पूरा-पूरा न पहुँचाया जा सकेगा, इसलिए बुद्धिमत्ता यही कहती है कि पहले ही से इसका कुछ उपाय किया जाय। उपनिवेशोंका विचार करते हुए जापान सदा भोजनकी बात सोचा करता है। यदि जनसंख्यामें इसी अनुपातसे वृद्धि होती गई, तो अगले पैंतीस वर्षोंमें जापानकी आबादी लगभग दस करोड़ हो जायगी, और वर्तमान खाद्य-सामग्री इतने बड़े जनसमूहकी रक्षाके लिए बिलकुल अपर्याप्त होगी। यह अच्छे-से-अच्छे वैज्ञानिकोंका स्पष्ट अनुमान है। इस समय मृत्यु-संख्यासे जन्मसंख्या १३ फी-सदी प्रतिवर्ष अधिक है। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक उपायों द्वारा मृत्यु संख्या घटाई जा रही है, और माता-पिता इतनी सावधानी रखते हैं कि मरे हुए बालक पैदा नहीं होते। जापानकी जन्म-संख्याका औसत यूरोपके किसी भी देशकी जन्म-संख्यासे अधिक है। जापानमें जन्म-संख्या एक हजारमें ३३ है, जब कि दूसरे देशोंमेंसे हंगरीमें ३२, इंग्लैण्डमें २४, जर्मनीमें २७ और फ्रान्समें २१ है।

इसलिए औपनिवेशिक विभाग स्थापित करनेके अर्थ यह हैं कि बढ़े हुए जनसमुदायके बसाने लिए स्थान खोजा जाय और कल-कारखानोंके कामके लिए कच्चे मालके साधन जुटाये जायँ। इतने दिनों तक विदेशी राष्ट्रोंसे अलग एकान्तमें रहनेके कारण उपनिवेश बसाने और अपने आदमी उपनिवेशोंको भेजनेके सम्बन्धमें जापानके विचार बिलकुल विपरीत रहे हैं। जातिगत भेद-भावके विचारोंके कारण जापानी विदेशोंमें कहीं-कहीं जाकर बसने नहीं पाते। इसका जापानियोंपर यह असर पड़ता है कि उनमें प्रवासके प्रति उदासीनता आ जाती है, और इसी उदासीन व्यवहारपर दृढ़ रहनेकी भावना पैदा होने लगती है। जापान खासकी आबादीका विचार करते हुए बाहर पड़े हुए जापानियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। सन् १६२३ में बाहर पड़े हुए जापानियोंकी संख्या ५,८१,६५० थी। सन् १६२७ में वह केवल ६,७६,३५७ तक बढ़ पाई। कहना न होगा कि इनमेंसे बहुत कम जापानी इस विचारसे गये कि मातृभूमिकी जनसंख्या कम करके अपने देशके निवासियोंको सुविधा पहुँचा दें। नीचे दी हुई तालिकासे पता चलेगा कि प्रवासी जापानी किस प्रकार भिन्न-भिन्न देशोंमें बँटे हुए हैं :—

देश	पुरुष	स्त्री	जोड़
कनाडा	१२८६४	८२६१	२११५५
उत्तर-अमेरिका	८८१५२	५२५५६	१४०७०८
हवाई	७०५७४	५८८०४	१२६३७७
मैक्सीको	२६७६	१५५३	४५३०
पनामा और क्यूबा	७६४	१६४	६५८
ब्रेजिल	३६६६६	२८१६४	६५१६०
पेरू	१०२४१	४६६६	१५२०७
अरजेन्टाइन	२३५२	७०४	३०५६
दक्षिण-अमेरिका	१०१३	२१८	१२३१
फिलीपाइन व गुआम	६०६६	२१८६	११२८८
स्ट्रेट सटलमेन्ट	४५७७	३६१२	८१८६
डच-ईस्ट-इंडीज़	२६०३	१६११	४५१४
दक्षिण-एशिया	७५१८	४५८३	१२१०१
ओशेनिया	३२५१	३१६	३५७०
चीन	२७६३०	२३७६८	५१३६८
मंचूरिया	१०२७०५	६६०२५	१६८७३०
अति पूर्वीय रूसी राज्य	११८६	३११	१५००
यूरोप	२५७५	५६५	३१७०
अफ्रिका	५०	३५	८५
कुल जोड़	३८७७८६	२८८४६८	६७६२५७

ऊपर दी हुई तालिकामें कहींकी संख्या दो मरतबा नहीं दी गई। यह स्पष्ट है कि प्रवासी जापानियोंकी सबसे अधिक संख्या मंचूरियामें है, उससे कम उत्तर-अमेरिकामें और उससे कम हवाईमें।

उपनिवेशोंमें जनसंख्या बढ़ानेके साधन अनेक हैं। उपनिवेशकी उन्नतिकेलिए स्थापित की हुई कम्पनी, टट्टोरी, क्यूमोटो तथा टोयामा-इमिग्रेशन ऐसोसिएशन आदि संस्थाएँ मिलकर इस सम्बन्धमें काम कर रही हैं। इस साल चार नये संघ और स्थापित हुए हैं, और ये भी पहलेवालोंसे सम्बद्ध कर दिये गये हैं। दक्षिण-अमेरिकन उपनिवेश-कम्पनी और अमेजनकी व्यापार-उन्नतिकारिणी संस्था आदि भी अपना-अपना काम कर रही हैं। इनमेंसे अधिकांश संस्थाओंको सरकारकी ओरसे धन-जनकी सहायता मिल रही है। उपनिवेशोंमें जापानियोंकी संख्याबढ़ाने और वहाँ उनके बसानेका प्रबन्ध करानेके लिए पेशगी धन दिया जाता है। इसके लिए सन् १६२७ में १८,००,००० येन, दूसरी साल २३,३०,००० येन और पिछली साल ६२,७८,००० येनकी सहायता दी गई थी। इसमेंसे अधिकांश धन इसलिए दिया गया था कि उपनिवेश-वासी जापानी अपने रहनेके लिए ज़मीन खरीद सकें। सरकार फी-परिवारके हिसाबसे इमीग्रेशन-कम्पनियोंको ५०० येन देती है, और इसपर केवल ३ प्रतिशत ब्याज लेती है। फिर भी यह सुविधा दे रखी है कि पहले तीन वर्षोंके बाद किस्तें करके यह रकम पाँच वर्षमें अदा की जा सकती है। अधिकांश जापानी जो उपनिवेशोंमें बसनेके लिए जाते हैं, दक्षिण-अमेरिका जाते हैं। वयप्राप्त लोगोंको

फी-कस २०० येनकी सहायता भी दी जाती है। जापान-सरकारसे जो धन पहले ही से मिल गया है, उससे उपनिवेश-सम्बन्धी संस्थाओंने चाइल और ब्रेज़िलमें ज़मीन खरीद ली है तथा और भी ज़मीन खरीदनेकी बात सोच रही हैं।

यह नहीं कहा जा सकता कि उपनिवेशोंके सम्बन्धमें किये गये ये प्रयत्न वास्तवमें बहुत सफल हुए हैं। अनेक आदमी उपनिवेशोंको भेजे गये और अनेक वापस आये। पिछले सात वर्षोंमें बाहर भेजे गये व्यक्तियोंकी संख्या ६६८४३ और बाहरसे वापस आये हुए लोगोंकी संख्या ६६५६५ रही। हालांकि वापस आये हुए लोगोंमेंसे कुछ लोग केवल थोड़े दिनोंके लिए ही लौटे थे। यह निर्धारित किया गया है कि वास्तवमें उपनिवेशोंमें बस जानेवाले जापानियोंकी संख्या पिछले पाँच वर्षोंमें १३३६८ रही है। यह संख्या यद्यपि समस्त देशोंमें गये हुए जापानियोंका जोड़ मानी जाती है, तथापि इसके साथ २७८ जापानियोंका, जो दक्षिण-अमेरिकामें सदाके लिए बस गये हैं, सामंजस्य करना कठिन है। उदाहरणके लिए सन्१६२७की साल ले लीजिए। आंकड़ोंसे पता चलता है कि इस साल उत्तर-अमेरिकासे ७८८७, कनाडासे १६५७ और हवाईसे ४३३० जापानी वापस आये। इससे मालूम यह होता है कि जापानियोंमें विदेशोंमें जाकर बसनेकी अपेक्षा वापस लौट आनेका भाव अधिक है।

जो हो, पिछले पाँच वर्षोंके अंक हर हालतमें निश्चित रूपसे सन् १६१७ से १६२६ तकके अंकोंमें विपरीत हैं। उन दस वर्षोंमें जापानी लोगोंकी आकांक्षा थी कि अमेरिकामें जायँ, परन्तु सन् १६२४में अमेरिकाने अपने यहाँ प्रवेश करनेवाले जापानियोंकी संख्या निर्धारित कर दी, उससे सबकी आशाओंपर पानी फिर गया। उन दस वर्षोंमें जो आदमी बाहर गये, उनकी तालिका इस प्रकार है—अमेरिका ४००००, ब्रेज़िल ३३०००, हवाई २४०००, फिलीपाइन १२०००, रूस ६०००, सब मिलकर १५००००। उनमेंसे सबसे अधिक संख्यामें लोग उत्तर-अमेरिका गये, परन्तु अब हालत बदल गई है और बहुत कम लोग उत्तर-अमेरिका जाते हैं। सन् १६२८ में ब्रेज़िल ११२३१, पेरू ३१२, फिलीपाइन १२८४ और आस्ट्रेलिया १५१ सब मिलकर १२६८२ जापानी बाहर गये। इन अंकोंमें केवल उन्हीं लोगोंका शुमार है, जो उपनिवेश-सम्बन्धी संस्थाओंकी मारफत बाहर गये; परन्तु ऐसे भी अनेक लोग हैं, जो स्वतंत्ररूपसे गये हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि जापानियोंके लिए सबसे अधिक उपयुक्त उपनिवेश दक्षिण-अमेरिका—खासकर ब्रेज़िल है। विभिन्न उपनिवेशोंसे जो धन जापान भेजा गया है, उसके अंकोंमें कमी होती जाती है। सन् १६२७ में ६०००० येन भेजे गये थे, परन्तु सन् १६२३ में ७८००० आये थे।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि यदि सरकारी औपनिवेशिक विभाग जापानियोंको बाहर जानेमें जो कठिनाई पड़ती है, उसे दूर करने अथवा बढ़ती हुई आबादीकी भयंकरतासे देशको बचानेका प्रयत्न करेगा, तो उसे काफ़ी परिश्रम करना पड़ेगा। वर्तमान समयमें जापानी लोगोंकी रफ्तनी घड़ेके एक बूंदके समान है, क्योंकि जितने बाहर जाते हैं, उतने ही नये बच्चे पैदा हो जाते हैं। यदि दक्षिण-अमेरिका जापानके भेजे हुए सब आदमियोंको ले लेनेके लिए तैयार भी हो जाय,तो भी अभी जहाज़ोंका ऐसा माकूल इन्तज़ाम नहीं है कि सब आदमी वहां तक पहुँचाये जा सकें। इसके अतिरिक्त, जापानको सदैव यह ध्यान भी रखना है कि अन्यान्य देशोंमें ज़रूरतसे ज्याद: अपने आदमी भेजकर उन देशवासियोंकी धारणाएँ न बिगाड़ दे और उनकी दुर्भावनाका पात्र न बन जाय। फिर भी जब ब्रेज़िल जैसे क्षेत्रका विचार किया जाता है, तब अन्यान्य देशवासियोंकी संख्या जापानियोंकी संख्यासे कहीं अधिक पाई जाती है। जब कि वहांपर जापानियोंकी संख्या केवल ६५००० है, तब वहांपर इटालियनोंकी संख्या १३७८००० और जर्मनोंकी संख्या १२७००० है। और विदेशी लोगोंका हिसाब लगाया जाय, जो ब्रेज़िलके नागरिक बन गये हैं तो यह संख्या पाँच लाखके करीब और बढ़ जायगी। इसी प्रकार यदि १४००००००० येन जैसी विशाल धनराशिका विचार किया जाय, जो मंचूरियामें जापानियोंने लगाई है, तो वहांपर जापानी प्रवासियोंकी संख्या जितनी है, उससे अधिक होनी चाहिए, क्योंकि वहांपर केवल १६०००० ही जापानी हैं। यह देखना है कि नव संगठित औपनिवेशिक विभाग बढ़े हुए जनसमूहकी सहायता करनेमें कितना कामयाब होता है। इस प्रकारके सरकारी विभागके न होनेके कारण, जैसा कि आज बना है,जापानियोंके औपनिवेशिक हितोंको बहुत दिनोंसे धक्का पहुँच रहा है।

नेटालमें भारतीय शिक्षा

[लेखक :—श्री पी० आर० पत्तर, संयुक्त-मंत्री, नेटाल इंडियन कांग्रेस]

"हमारे पास इमारतें नहीं हैं, अध्यापक नहीं हैं, और जहाँ तक मैं जानता हूँ, इमारतके लिए फंड भी नहीं है ; परन्तु यह कथन कि यह प्रान्त या अन्य कोई प्रान्त अपनी आबादीके एक बड़े भागको जान-बूझकर अज्ञानमें रख सकता है, इतना हानिकर और अनुचित है कि उसके प्रतिवादकी कोई आवश्यकता ही नहीं।" उपर्युक्त वक्तव्य, भारतीय शिक्षा सम्बन्धी जाँच-कमेटीसे बैठनेके पूर्व मिस्टर ल्यू ब्रायनने जो रिपोर्ट दी थी, उसका एक विशेष अंश है। यहाँपर यह बतला देना उचित है कि मिस्टर ल्यू ब्रायन नेटालमें शिक्षाके सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं, और राइट आनरेबुल मिस्टर श्रीनिवास शास्त्रीने नेटालमें शिक्षाकी उन्नतिके लिए जो कुछ चेष्टा की है, उसमें मिस्टर ब्रायन ही शास्त्रीजीके प्रबल सहायक थे। नेटालके अधिकारी भारतीय शिक्षाकी जो उपेक्षा करते रहे हैं, उसे बतलानेके लिए मिस्टर ब्रायनने जितने कड़े शब्द व्यवहार किये हैं, उनसे और कड़े शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकते।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि नेटालमें गन्नेकी खेतीके लिए सन् १८६० में भारतीय मज़दूर पहले-पहल आये थे। इनके आनेकी संख्याका अन्दाज़ आप इस बातसे लगा सकते हैं कि सन् १८८६ में उनकी संख्या पाँच हज़ार थी। इन भारतीयोंकी संख्यामें वृद्धि होनेपर भी उनके बच्चोंकी शिक्षाके लिए कोई इन्तिज़ाम नहीं किया गया था। भारतीयोंके नेटालमें पदार्पण करनेके अठारह वर्ष बाद सन् १८७८ में सरकारने नेटालमें शिक्षाका प्रचार करनेके लिए, 'सन् १८७८ का बीसवाँ क़ानून' नामक क़ानून बनाया। इस क़ानूनका मुख्य उद्देश्य उपनिवेश भरमें स्कूल खोलना था, मगर शिक्षाको उन्नत बनानेके लिए बहुत कम ध्यान दिया गया। इस उपेक्षाका फल यह हुआ कि बहुतसी मिशनरी संस्थाएँ भारतीयोंकी सहायताके लिए आ गईं। इन संस्थाओंने बिना विलम्ब जहाँ कहीं आवश्यकता समझी, वहाँ स्कूल खोल दिये। उन में से कुछ स्कूलोंको सरकारी मदद भी मिलती थी, लेकिन मिशनरी संस्थाएँ अधिकतर पब्लिकके चन्देपर निर्भर रहती थीं। आज तक भी बहुतसे स्कूल ऐंग्लीशियन और वेसलियन मिशनोंके हाथमें हैं। इस शताब्दीके आरम्भमें उन्नतिकी ओर पहला क़दम बढ़ाया गया। उस समय भारतीय स्कूलोंके दो विभाग कर दिये गये ; एक वे जो सरकारके अधिकारमें थे, और दूसरे वे जो सरकारसे सहायता पाते थे। अत: मिशनरियोंके स्कूल दूसरी श्रेणीके अन्तर्गत हुए।



श्रीयुत पी० आर० पत्तर
नेटाल इंडियन कांग्रेसके संयुक्त-मंत्री

इस प्रसंगमें यह भी जानने योग्य है कि सन् १८९९ तक भारतीय बच्चे सभी पब्लिक स्कूलोंमें भर्ती किये जाते थे और यूरोपियन बच्चोंके साथ-साथ शिक्षा पाते थे। मालूम होता है कि यूरोपियन लोगोंके मनके भावोंके अनुसार सन् १८९९ में तत्कालीन शिक्षा-मंत्री स्वर्गीय सर हेनरी बेलने रंग-भेदका सवाल उठाया और उसके अनुसार स्कूलोंको विभाजित कर दिया। उच्च शिक्षाकी माँगको पूरी करनेके लिए डरबनमें हाइर ग्रेड इंडियन गवर्मेन्ट स्कूल खोला गया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस स्कूलकी शिक्षा और उसके शिक्षक यूरोपियन स्कूलोंकी बराबरीके थे। इस स्कूलके हेडमास्टर एक आयरिश सज्जन मि. एफ० बी० ई० कनोली थे। उनका एकमात्र ध्येय भारतीयोंको उत्तमसे उत्तम शिक्षा देना था। इस बातका श्रेय उन्हींको है कि आज दक्षिण-अफ्रिकन इंडियन कांग्रेस और नेटाल इंडियन कांग्रेसका कोई भी कार्यकर्ता ऐसा नहीं है, जिसने उनसे शिक्षा न पाई हो।

मगर यह बहुत दिनों तक न चला। सन् १९०८ में भारतीयोंकी उच्च शिक्षामें कमी कर दी गई, और चौदह वर्षसे अधिक आयुके भारतीय बालक हायर ग्रेड स्कूलसे निकाल बाहर किये गये। अधिकारियोंको अपनी इस दुष्टतापूर्ण कार्रवाईपर ही सन्तोष न हुआ, बल्कि उन्होंने मिस्टर कनोलीको भी एक यूरोपियन स्कूलमें बदल दिया। मालूम होता है शिक्षा-विभागने यह समझा कि वे भारतीयोंके लिए बहुत-कुछ कर रहे हैं। इस स्कूलकी शिक्षाकी उच्चताका अन्दाज़ इस बातसे लगाया जा सकता है कि उसमें दूसरे ही दर्जेसे लैटिन पढ़ाई जाती थी। उस सत्यानाशी साल (१९०८) के बादसे इस स्कूलकी पढ़ाईका स्टैन्डर्ड बराबर नीचा होता गया, और कुछ वर्ष पहलेसे अब उसमें केवल माध्यमिक शिक्षा दी जाने लगी है। शिक्षाका भार यूरोपियन ग्रेजुएटोंके हाथमें है। इस लेखके आरम्भमें मैंने जो शिकायत की है कि भारतीयोंकी शिक्षाकी बड़ी उपेक्षा की गई है, उसका यह एक उदाहरण है। जिस समय डरबनमें यह स्कूल खोला गया था, उसी समय उसी नामका और ठीक वैसा ही एक स्कूल यूरोपियन अध्यापकोंकी देख-रेखमें पीटरमारित्ज़बर्गमें भी खोला गया था।

गत वर्ष भारतीय शिक्षाकी जाँच-कमेटीके सामने कईएक मज़ेदार बातें प्रकट हुई थीं। नेटाल इंडियन कांग्रेसने जो वक्तव्य पेश किया था, उससे भारतीयोंको यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नेटालमें भारतीयोंकी १,४५,००० आबादीमें सिर्फ़ दस सरकारी स्कूल और ४३ सरकारी सहायता पानेवाले स्कूल हैं। इनमेंसे डरबनका हायर ग्रेड इंडियन स्कूलही—जो सन् १९१० से बर्लिसिल स्ट्रीट इंडियन स्कूल कहलाता है—प्रान्त-भरमें एक ऐसा था, जिसमें माध्यमिक शिक्षा दी जाती है। मारित्ज़बर्गके स्कूलमें लड़कोंको आठवें दर्जे तककी शिक्षा दी जाती है, केवल कुछ स्कूलोंको छोड़कर, जिनमें छठे दर्जे तक शिक्षा दी जाती है और सब स्कूलोंमें केवल चौथे दर्जे तक ही शिक्षा दी जाती है। भारतीयोंको यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि प्रान्त-भरमें ३२००० भारतीय लड़के स्कूल जाने योग्य उम्रके हैं, उसमेंसे केवल नौ हज़ार लड़के ही स्कूल जाते हैं, और दक्षिण-अफ्रिकाके २३,००० भावी नागरिक शिक्षा-हीन घूमते-फिरते हैं। फिर भी यह आशा की जाती थी कि लोग पाश्चात्य सभ्यताके स्टेन्डर्डके योग्य हों! नेटाली अधिकारियोंकी लापर्वाहीकी सबसे बड़ी बात यह थी कि यूनियन-सरकार भारतीयोंकी शिक्षाके लिए ५ पौंड ५ शिलिंगकी सहायता देती थी, उसमेंसे नेटाली अधिकारी केवल ढाई पौंड तो भारतीयोंकी शिक्षापर खर्च करते थे और शेष रंगीन बच्चोंकी शिक्षामें लगा देते थे! कमेटीके सामने जब यह बात पेश की गई, तब उसने यह दलील पेश की कि यह बात साफ़-साफ़ नहीं लिखी है कि यह पूरी सहायता भारतीयोंकी शिक्षाके लिए ही खर्च की जाय! इससे बढ़कर मूर्खताके उदाहरणकी कल्पना नहीं की जा सकती।

अब लड़कियोंकी शिक्षाको लीजिए। सम्पूर्ण प्रान्त भरमें

लड़कियोंके केवल तीन स्कूल हैं। उनमें जानेवाली लड़कियोंकी पूर्ण संख्या ४६८ है। यहांके यूरोपियन बार-बार यह कहा करते हैं कि भारतीय अपनी लड़कियोंको स्कूलोंमें भेजना नापसन्द करते हैं, लेकिन देखा गया है कि यूरोपियन माता-पिता भी अपनी लड़कियोंको सम्मिलित (लड़के और लड़कियोंके) स्कूलोंमें भेजनेमें हिचकते हैं। हाँ, यह बात भारतीय माता-पिताओंपर कुछ अधिक लागू है। लड़कियोंके स्कूलोंकी कमीके कारण ही स्कूल जानेवाली लड़कियोंकी संख्या इतनी थोड़ी है। प्रान्तके प्राय: हरएक वर्नाक्यूलर स्कूलमें लड़कियोंकी संख्या लड़कोंकी संख्यासे ज्यादा कम नहीं है, इसलिए भारतीय माता-पिताओंके विरुद्ध जो दोष लगाया जाता है, वह निराधार है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमारी लड़कियोंकी, जिनपर पाश्चात्य स्टैन्डर्डका ग्रहण करना बहुत-कुछ निर्भर करता है, बिलकुल उपेक्षा की जाती है!

भारतीय शिक्षकोंके लिए भी दो-चार शब्द कहना उचित है। भारतीय शिक्षकोंकी दो श्रेणियाँ हैं; एक सीनियर और दूसरे जूनियर। सीनियर सर्टिफिकेट आठवें दर्जेके बराबर होता है और जूनियर छठे दर्जेके बराबर। शिक्षकोंकी खासी संख्या बिना किसी ट्रेनिंगके है। भारतीय शिक्षकका पेशा उत्साह-वर्धक नहीं है, क्योंकि उसमें वेतन अच्छा नहीं मिलता। फल यह होता है कि हमारे समाजके अच्छे लोग इस ओर आकर्षित नहीं होते। शिक्षा-विभाग अक्सर यह कहा करता है कि भारतीय शिक्षकोंकी कमी है। शिक्षा-विभाग भारतीय शिक्षकोंके मिलनेकी आशा कैसे कर सकता है, जब कि नवयुवक अन्य पेशोंमें शिक्षकोंसे कहीं अधिक पैदा कर सकते हैं। बालकोंके भविष्यका बनाना बहुत-कुछ शिक्षकोंपर निर्भर है, इसलिए यह जरूरी है कि शिक्षकगण देशके अच्छे-से-अच्छे लोगोंमेंसे चुने जायँ।

यह तो हो गई शिक्षकोंकी बात। अब मैं स्कूलकी इमारतोंकी—जिनमें बच्चे पढ़ाये जाते हैं—दशापर विचार करूँगा। जो स्कूल सीधे सरकारके अधिकारमें हैं, उनकी इमारतें नियमके अनुसार ईंटकी बनी हुई हैं, मगर सहायता पानेवाले स्कूलोंके लिए यही बात नहीं कही जा सकती। उनकी दशा सोचनीय है। अगर मैं यह कहूँ कि उनमेंसे कुछकी अपेक्षा अस्तबलोंकी दशा अच्छी है, तो उसे आप सच मानियेगा। इन पंक्तियोंके लेखकको नेटालकी इंडियन कांग्रेसने खासकर इन स्कूलोंकी दशा निरीक्षण करनेके लिए नियत किया था; ताकि शिक्षा-जाँच-कमेटीके आगे उनकी सच्ची हालत पेश की जा सके, इसलिए मैं ऐसी स्थितिमें हूँ कि उनकी सच्ची हालत बयान कर सकूँ। वे इमारतें लकड़ी और टीनकी बनी हैं, और उनमें न तो दीवारोंपर कुछ है और न छतमें। कुछमें तो दीवारें गारे और खपच्चोंकी बनी हैं।

भारतमें जो लोग रहते हैं, वे इस बातकी कल्पना कर सकते हैं कि गर्मीमें टीन और लकड़ीकी इन इमारतोंकी दशा क्या होती होगी। और हमारे बच्चे इन इमारतोंमें पाँच घंटे रोज़ बिताते हैं। मिशनरी-अधिकारियोंने समय-समयपर अपने संकुचित भंडारसे इन इमारतोंके सुधारनेकी चेष्टा की है, मगर अधिकांशमें उनकी दशा वर्षोंसे वैसी ही है। प्रसन्नताकी बात है कि इस वर्षके बजटमें नेटालकी प्रान्तीय कौन्सिलने तीन हज़ार पौंड इमारतोंपर खर्च करनेके लिए अलग रखा है। आशा की जाती है कि इससे इमारतोंका सुधार होगा।

सन् १८६६ में यहाँके भारतीयोंको चैन नहीं मिला। वोट-अधिकार छिननेके बादसे उनपर एक दूसरेके बाद अनेकों अत्याचार हुए। उनके विरुद्ध इतने कड़े जुल्म होते रहे कि उन्हें सदा सतर्क रहना पड़ता है। केवल अपने अधिकारोंकी रक्षाको छोड़कर उनका ध्यान दूसरी ओर जा ही नहीं सका, इसलिए उन्होंने अपने बच्चोंकी शिक्षाकी उन्नतिके लिए भी कोई माँग नहीं पेश की। भारत-सरकारके योग्य एजेन्ट राइट आनरेबुल मि० श्रीनिवास शास्त्रीने नेटालका थोड़ा हाल जानकर ही यह समझ लिया कि वहाँकी शिक्षाकी समस्त प्रणाली ही गलत है। नेटालको शास्त्रीकी आवश्यकता

थी, क्योंकि भारतके इस महान शिक्षकने यह देख लिया कि उचित शिक्षाके बिना भारतीयोंके लिए कोई आशा नहीं है। भारतीय शिक्षा-जाँच-कमेटीके सामने उनकी गवाहीने बड़ा गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने भारतीय शिक्षकोंकी शिक्षाके लिए कालेज खोलनेकी जो चेष्टा की है, वह भारतमें भलीभाँति विदित है, इसलिए मुझे उसे दोहरानेकी ज़रूरत नहीं है। इस कालेजकी नींवँ मिस्टर शास्त्रीने डाली थी, और वह बनकर तैयार हो रहा है, आशा की जाती है कि शीघ्र ही उसमें विद्यार्थी भी भरती होने लगेंगे। कालेजमें शिक्षकोंकी शिक्षाका जो विभाग है, वह भारतीयोंके लिए वरदानके समान है, क्योंकि यह मानना पड़ता है कि मौजूदा भारतीय शिक्षक उच्चकोटिके नहीं हैं। ऐसी आशा है कि पाँच वर्षमें नेटाल ट्रेनिंग-प्राप्त शिक्षकोंकी आवश्यक संख्या उत्पन्न कर देगा। सीनियर सर्टिफिकेटकी पढ़ाई दसवें दर्जे तक होगी और एक वर्ष तक व्यावहारिक शिक्षा दी जायगी। जूनियर सर्टिफिकेटकी पढ़ाई आठवें दर्जे तक होगी और एक साल व्यावहारिक शिक्षा दी जायगी। हाई-स्कूलमें विद्यार्थी दसवें दर्जे या मैट्रिक तक पढ़ाये जायँगे। नेटालमें सुविधाओंकी कमीके कारण प्राय: तीस विद्यार्थी केप-प्रान्तमें फोर्ट हेयरके नेटिव ट्रेनिंग कालेजमें चले गये थे। चूँकि इन लड़कोंके माता-पिता दो पौंडसे चार पौंड प्रतिमास प्रति लड़केपर खर्च कर सकते थे, इसीलिए ये लड़के फोर्ट-हेयरजानेमें समर्थ हो सके; मगर ग़रीब लड़कोंकी काफ़ी संख्या फोर्ट-हेयर नहीं जा सकती; क्योंकि उनके माता-पिता उन्हें वहाँ भेजनेका खर्च नहीं बर्दाश्त कर सकते। अत: इसमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं कि यह हाई-स्कूल ख़ूब भर जायगा।

प्रसन्नताकी बात है, और इससे मि० शास्त्रीको भी आनन्द होगा कि इस वर्ष आरम्भिक शिक्षाके लिए बजटमें भारतीय शिक्षाकी रक़म दूनीसे अधिक कर दी गई है। नेटाल-प्रान्तीय कौन्सिलने इस वर्ष ५६००० पौंड इसके लिए रखा है, जब कि गत वर्ष केवल २१००० पौंड ही था। यह वृद्धि केवल मि० शास्त्री ही के कारण हुई है। अब हवा बदल रही है और मैं आशा करता हूँ कि भारतीय समाज इस स्वर्ण सुयोगको तत्परतासे ग्रहण करेगा। नेटालमें आपको सब कहीं भारतीय बच्चोंकी शिक्षाके लिए उतनी ही उत्सुकता मिलेगी, जितनी यूरोपियनोंमें है। नेटालके भारतीय मिस्टर शास्त्रीके बड़े कृतज्ञ हैं, क्योंकि प्रत्येक मीटिंगमें, जहाँ उन्होंने भाषण दिया है, भारतीय बच्चोंकी शिक्षा उनका मुख्य विषय रहा है। उनके भाषणोंसे लोगोंके हृदयोंमें प्रेरणा उत्पन्न हो गई है। मैं आशा करता हूँ कि इस लेखको कट्टर विचारके वे लोग भी पढ़ेंगे, जिन्होंने अपनी नाशकारी समालोचनामें मिस्टर शास्त्रीको भी नहीं छोड़ा। अगर वे यह सिद्ध भी कर दें, जिसमें मुझे बड़ा सन्देह है, कि दक्षिण-अफ्रिकामें मि० शास्त्रीका काम असफल हुआ है, तो भी मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मिस्टर शास्त्रीने भारतीयोंकी शिक्षाकी उन्नति करके यहाँके भारतीयोंके हृदयोंमें जो प्रेम उत्पन्न कर दिया है, वह इन समस्त कट्टर समालोचकोंकी समालोचनासे नहीं मिट सकता।

पिछले कुछ समयसे नेटाल-भरमें कुछ हिन्दू तथा मुस्लिम संस्थाएँ स्कूल तथा मदरसे चला रही हैं। ये स्कूल भी काफ़ी दिक़्क़तोंसे चल रहे हैं, क्योंकि वे पब्लिक चन्देसे चलते हैं, जो मासिक खर्चके लिए मुश्किलसे काफी होता है। जाँच-कमेटीकी रिपोर्टके बादसे इनमेंसे अधिकांश शिक्षा-विभागसे सहायता पाने लगे हैं।

इस वर्षकी रिपोर्टमें सुपरिन्टेन्डेंट मि० ब्रायन बतलाते हैं कि स्कूलोंमें दो हज़ार लड़कोंकी वृद्धि हुई है। इसका मतलब यह हुआ कि गत वर्षके नौ हज़ारके स्थानमें इस वर्ष ग्यारह हज़ार लड़के स्कूलोंमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यदि यह इस बातका चिह्न है कि माता-पिता अपने बच्चोंको शिक्षा देनेके लिए कितने उत्सुक हैं, तो इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि कुछ वर्षोंमें, जैसे ही सबको शिक्षा देनेका प्रबन्ध हो जायगा, वैसे ही स्कूल जाने लायक़ उम्रके समस्त बच्चे स्कूलोंमें पहुँच जायँगे।

मैं समझता हूँ कि मैं 'विशाल-भारत' का बहुत स्थान ले चुका, मगर चूँकि शिक्षाका विषय सभीको प्रिय होता है, इसलिए सम्पादक महोदय मेरी इस स्वतंत्रतामें आनाकानी न करेंगे। इस लेखमें मैंने पाठकोंको नेटालमें शिक्षाकी दशाकी सच्ची हालत बतलाई है, यदि इससे लोगोंका कुछ भी ज्ञान बढ़ा, तो मुझे प्रसन्नता होगी।

भविष्यका विशाल भारत

[लेखक :—डा० कालिदास नाग, एम० ए०, डी० लिट० (पेरिस)]

'विशाल-भारत के सम्पादक महोदय निःसन्देह प्रवासी भारतीयोंके बड़े मित्र हैं, और उनके हितोंकी रक्षाके लिए सदा सतर्क रहते हैं। प्रसन्नताकी बात है कि उन्होंने इन प्रवासी भारतीयोंकी समस्याका मनन करनेके लिए 'विशाल-भारत' का विशेषांक निकालनेका विचार किया है। उन्होंने मुझे भी इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें भाग लेनेको निमन्त्रित किया है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैं इस छोटेसे लेखमें अपने विचारोंको प्रकट करनेकी कोशिश करूँगा।

जब मैं विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ टाकुरके साथ सुदूर पूर्वकी ऐतिहासिक यात्रा करके लौटा था, तब पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजी ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने मेरा स्वागत प्रश्नोंसे किया था। बर्मामें, मलायामें, चीनमें, जापानमें—जहाँ कहीं भी हम लोगोंने पदार्पण किया, वहाँ मैंने देखा कि हमारे भारतीय भाई आधुनिक भारतके महान आध्यात्मिक दूत श्रीरवीन्द्रनाथके स्वागतके लिए उमड़े पड़ते थे। ऐसे समस्त अवसरोंपर विश्वकविने अपनी अवतारी दृष्टिसे लोगोंको भावी इतिहासके उस सुकालका दिग्दर्शन कराया, जब भारतवासी अपने भिखारीपन और गुलामीके चिथड़ोंको फेंककर एक बार पुनः अपनी मनुष्यता और उत्पादक-शक्तिसे संसारको प्लावित कर देंगे। जैसे अबसे दो हज़ार वर्ष पूर्व भारतके उपनिवेश बसानेवालोंने किया था। जिस समय जीवन-संग्राममें लड़नेवाले इन मुट्ठी-भर प्रवासी भाइयोंके बीचमें श्री रवीन्द्रनाथ भाषण देते थे, उस समय उनकी उस आशा-भरी वाणीको सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाना पड़ता था। यद्यपि गत एक शताब्दीमें बाहर जानेवाले भारतीय प्रवासियोंकी जो दशा रही है, उससे कविकी आशा-भरी बातोंका पग-पगपर खंडन होता है, फिर भी मैं समझता हूँ कि वर्तमान समयकी समस्त निराशापूर्ण और विषादपूर्ण बातोंकी अपेक्षा कविकी भविष्य-सम्बन्धी दृष्टिका ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है। सन् १९२४ में भारतवर्षको वापस आनेपर कविके उन्हीं पवित्र स्वप्नोंसे प्रेरित होकर मैंने धीरे-धीरे 'बृहत्तर भारत-परिषद्' का संगठन किया। इस परिषद्ने यद्यपि अब तक भूतपूर्व युगोंके भारतीय उपनिवेशोंके अध्ययनपर ही विशेष ध्यान दिया है, परन्तु वह वर्तमान और भविष्यके विशाल भारत के इसी प्रकारके अध्ययनके लिए भी पूर्णरूपसे सचेत है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक विशाल भारत के लिए महायाजक और शहीद महात्मा गान्धीके जीवनका बड़ा महत्त्व है। उस महत्त्वको हमारे बीसवीं शताब्दीके आरम्भिक कालके राष्ट्रीय इतिहासका कोई सजग पाठक कभी भूल नहीं सकता। सन् १९२३ में फ्रान्सके सर्वश्रेष्ठ लेखक मोशियो रोमां रोलांने अपनी युगान्तकारी पुस्तक 'महात्मा गान्धी'को लिखते समय मुझे सहायता देनेके लिए निमन्त्रित किया था। उस समय मुझे दलितोंके प्रेमी और अहिंसाके इस महान सैनिकके जीवन और कार्योंको भलीभांति अध्ययन करनेका मौक़ा मिला था। उस समय मैंने अपने इन २५ लाख देशवासियोंके, जो संसार-भरमें बिखरे हुए हैं, शोचनीय जीवन-संग्रामके महत्त्वका अनुभव किया था। उनका यह भीषण संग्राम हमारे देशवासियोंकी दृष्टिसे प्रायः सदा ही अदृश्य रहा है।

एक शताब्दीसे कुछ अधिक हुआ, जब शक्तिशाली विदेशी प्लान्टरोंको हमारा भारतवर्ष गुलामोंकी फसलके लिए बड़ा सस्ता क्षेत्र समझ पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि सन् १८३३ में क़ानूनके अनुसार दासताका अन्त कर दिया गया था, मगर हम जानते हैं कि प्रचलित प्रथाएँ और रूढ़ियाँ क़ानूनके एक अचानक धक्केसे ही नहीं उखड़ा करते। भारतवर्षके मज़दूरोंको गुलाम बनाना जारी रहा, केवल उन्हें एक नया तथा कुछ भद्रतापूर्ण नाम 'शर्तबंधे कुली' दे दिया गया। गत एक सौ वर्षके सम्पूर्ण कष्टदायक संघर्षमें हमें भारत-भूमिसे

मनुष्योंका व्यवसाय करनेवालोंके छल-कपट तथा अत्याचारोंका लज्जा-जनक इतिहास मिलता है। इन लोगोंने यदि कुछ सुविधाएँ अथवा अनुग्रह भी प्रदर्शित किया है, तो वह भी कुछ कम मनुष्यता-हीन नहीं है।

मारिशस-द्वीपने सन् १८१६ हीसे भारतीय कुलियोंका मँगाना शुरू कर दिया था। इन कुलियोंमें यद्यपि कुछ केवल अपनी प्रतिभा और उद्योगके सहारे उन्नति करके गुलामीकी दशासे लखपति हो गये, परन्तु फिर भी उनकी मातृ-भूमिमें रहनेवाले भाइयोंने उनके कार्यों और नामोंकी कभी परवाह ही नहीं की। यह एक ऐसी घटना थी, जिसका हमें शत-वार्षिक उत्सव मनाना चाहिए था, क्योंकि जिस समय भारतमें रहनेवाले भारतीय केवल मूर्खतापूर्ण मन्त्रोंको रटते और कालेपानीके पार जानेवाले अपने भाइयोंके वीरतापूर्ण दुस्साहसिक कार्योंको धर्मके नामपर कोसते थे, उस समय ये वीर भारतीय विदेशोंमें हृदय-हीन दोहनकारियोंसे भयंकर संघर्ष करके अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता, सामाजिक स्थिति और राजनैतिक उद्धारके लिए अपनी सम्पूर्ण दृढ़ इच्छा-शक्ति लगा रहे थे। आधुनिक और भावी विशाल भारतके निर्मातागण सचमुच शूर-वीर थे। एक दिन आयेगा, जब हमारे विश्वविद्यालयोंके ऐतिहासिक और आर्थिक विभागोंको भारतीय औपनिवेशिक इतिहासके इन अग्रणी वीरोंके कार्योंको अध्ययन करनेके लिए विशेष अध्यापक नियुक्त करने पड़ेंगे। विश्वविद्यालयों और शिक्षा-संस्थाओंकी बात तो दूर रही, हमारे पेशेवर राजनीतिज्ञोंने भी केवल अपने कर्तव्यसे छुट्टी पानेके लिए इस महत्त्वपूर्ण संघर्ष और वीरोचित कार्यका असावधानीसे यत्र-तत्र उल्लेख करनेके सिवा और कुछ नहीं किया।

हमारी इस अक्षन्तव्य राष्ट्रीय उपेक्षाका प्रायश्चित्त पहले-पहल महात्मा गान्धीने किया। उन्होंने हमारे पूर्व कालके महान् पुरखोंकी सच्ची सन्तानकी भाँति अपने भाइयोंके भाग्य-निर्णयके लिए एक नया ही सिद्धान्त निकाला। उन्होंने अपने संग्रामको राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थोंके संघर्षणसे कहीं ऊँचे धरातलपर ऊपर उठा दिया। यही कारण है कि पाश्चात्य महान ऋषि लियो टाल्सटायने गान्धीजीका शारीरिक नहीं तो आध्यात्मिक करावलम्बन किया। जबसे इस भारतीय नेताने औपनिवेशिक भारतीयोंके अधिकारोंका प्रतिपादन किया है, तबसे गत पचीस वर्षोंमें और भी कई लोगोंने इन सुदूर बस्तियोंकी यात्रा की है, और प्रत्येकने अपने-अपने ढंगसे वहांके भारतीयोंकी दशा सुधारनेकी कोशिश की है। यह बात भी सदा कृतज्ञता-पूर्वक याद रखनी चाहिए कि अनेक विदेशी सज्जनों—जैसे श्री डोक, श्री पोलक, श्री पियर्सन और सबसे बढ़कर श्री सी० एफ० ऐण्ड्रूज़ आदि—की सहानुभूति और त्याग सदा हमारे पक्षमें रहा है, और हम लोगोंने सदैव उससे, बिना किसी प्रकारकी दुविधाके, उत्साह और प्रेरणा ग्रहण की है।

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ भारतवर्षके सच्चे प्रेमी हैं। उन्होंने एक सच्चे क्रिश्चियनकी भाँति हमारे प्रवासी भाइयोंकी दशा सुधारनेके लिए अपना स्वास्थ्य, अपनी शक्ति और अपना सब-कुछ निछावर कर दिया है।

सन्निकट-वर्तमान संशय, अविश्वास, अन्धकार और निराशासे भरा हुआ ज्ञात होता है। हमें इस बातका भी डर है कि कहीं प्रत्यक्षके आवेशमें हम अपने अन्तिम ध्येयको न भूल जायँ। आर्थिक कठिनाइयोंको दूर करना और न्यायोचित अधिकारोंको प्राप्त करना बहुत जरूरी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि देशमें रहनेवाले भारतीय तथा विदेशमें रहनेवाले प्रवासी, दोनों मिलकर सम्मिलित उद्योग करेंगे, तो उपर्युक्त दोनों बातें पूरी हो जायँगी; परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि भावी विशाल भारतका नाम सार्थक करनेके लिए हमें नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नतिपर भी ध्यान देना पड़ेगा। प्राचीन विशाल भारत आध्यात्मिक और संस्कृति-सम्बन्धी उत्पत्तिका उद्गमस्थान था, इसीलिए वह मानव-जातिके लिए वरदान-स्वरूप था। हमारी परिषद् अपनी कई पुस्तकें प्रकाशित करके इस बातको इतनी अच्छी तरह सिद्ध कर चुकी है कि अब उसमें संशय ही नहीं

रह जाता। इसी प्रकार भावी विशाल भारतकी भी अपनी नींव राजनैतिक और आर्थिक कार्योंपर ही नहीं, बल्कि नैतिक, सांस्कृतिक और लोकहित-सम्बन्धी सुकृत्योंपर रखनी चाहिए।

अभाग्यवश हमारे इने-गिने सुसंस्कृत व्यक्ति भी इस अत्यन्त आवश्यक प्रश्नसे इतने अनभिज्ञ हैं कि हमें इस विषयमें मुश्किलसे कोई ऐसी किताब मिलेगी, जिसमें अप-टू-डेट आंकड़े और वृत्तान्त हों। राजनैतिक पुस्तिकाओंकी आँधी और पत्रकारोंके आन्दोलनोंके कारण यह मुख्य विषय सदाकी भाँति अंधकारमें रह जाता है। देशमें अधिकारी पुरुषोंका कोई ऐसा विशेष संगठन भी नहीं है, जो इस विषयका मसाला एकत्रित करे या समय-समयपर यात्राएँ करके मातृभूमि और इन उपनिवेशोंके सम्बन्धको घनिष्ट बनावे। बृहत्तर-भारत-परिषद् अपने प्रवासी भाइयोंकी सेवा करनेके लिए सदा आकांक्षित है (जैसा कि उसके उद्देश्योंके नौवें और दसवें नियममें वर्णित है); परन्तु परिषद्के पास जो कुछ थोड़ीसी पूँजी थी, वह प्राचीन विशाल भारतके विस्मृतप्राय इतिहासकी खोज ही में समाप्त हो गई। यद्यपि हमने अपनी यूनिवर्सिटीके युवक विद्यार्थियोंसे कई बार अपील की कि वे अर्वाचीन विशाल भारतके इतिहासकी नियम-पूर्वक खोज करें, परन्तु उन्हें इसके लिए प्राय: बहुत कम सुविधाएँ या प्रोत्साहन मिलता है। हमारे पब्लिक पुस्तकालय उपनिवेशोंके सम्बन्धके समाचारपत्रों या सामयिक पत्रोंकी नियमित फाइलें रखनेकी बिलकुल परवाह नहीं करते। यूनिवर्सिटियां तथा अन्य संस्थाएँ भी नवयुवकोंको इस बातका प्रोत्साहन नहीं देतीं कि वे इस विषयकी पुस्तकें प्रकाशित कर सकें। इसलिए हमें यह दु:खके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि यद्यपि इस क्षेत्रमें कभी-कभी दैवयोगसे कोई व्यक्ति कुछ जाज्वल्यमान कृत्य कर जाता है, फिर भी आधुनिक संसारके आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवनमें भारतके भागका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व तब तक सच्चे रूपसे प्रकट न होगा, जब तक हम लोग भारतमें रहनेवाले तथा विदेशोंमें बसनेवाले भारतीय, दोनों मिलकर सावधानीसे एक निश्चित नीति और मार्गका अनुसरण न करेंगे।

पहली बात तो यह है कि केवल बम्बईकी 'इम्पीरियल सिटिज़नशिप ऐसोसियेशन' और लन्दनके 'इंडियन ओवरसीज़ ऐसोसियेशन'को छोड़कर अर्वाचीन विशाल भारत-सम्बन्धी खबरें देनेवाली अन्य कोई सुसंगठित संस्थाएँ नहीं हैं, इसलिए हमें ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे प्रत्येक प्रान्तकी राजधानीमें एक-एक इस प्रकारकी संस्था (Bureau) हो। उसका काम यह हो कि वे अपने-अपने प्रान्तसे विदेशोंको जानेवाले लोगोंपर सजग दृष्टि रखें, और संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें बसे हुए अपने प्रान्तवालोंकी शिकायतोंको प्रकाशित करें।

दूसरी बात यह है कि नियमित और समुचित आर्थिक सहायता देकर एक सामयिक पत्र (चाहे मासिक या त्रैमासिक) तुरन्त ही निकालना चाहिए। उस पत्रमें मनोरंजक लेख, गल्पें, आंकड़े आदि प्रकाशित हुआ करें, जिससे प्रवासकी समस्या यथासम्भव एक जीवित समस्या बन जाय। कईएक उत्साही भारतीय विद्वान इस समस्याको मनन करनेके लिए अपना सम्पूर्ण समय और शक्ति लगानेके लिए तैयार हैं, यदि उन्हें केवल भरण-पोषण-मात्रका साधन मिल जाय। उनमेंसे एकने—जो बृहत्तर-भारत-परिषद्का उत्साही कार्यकर्ता है—साहस करके इस विषयकी पहली पुस्तक 'भारतीय-प्रवास—गुलामीकी एक शताब्दी'का परिदर्शन लिखी भी है।

तीसरी बात यह है कि इस प्रकारके ग्रन्थ या अन्य मूल्यवान पुस्तकें—जैसे डाक्टर रजनीकान्त दासकी 'पैसेफिक-तटके हिन्दुस्थानी मज़दूर'—आदिको बार बार प्रकाशित करना चाहिए और भारतकी समस्त मुख्य भाषाओंमें उनका अनुवाद प्रकाशित करना चाहिए, जिससे वे साधारण जनता तक पहुँच सकें।

चौथी बात यह है कि विशेष फंड एकत्रित करके हमें जनसाधारणको तस्वीरों, लैन्टर्न-लेक्चरों, सिनेमाके तमाशों

भारतीयोंके द्वारा इस विषयकी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे वे भी अपने प्रवासी भाइयोंके सुखों और दुःखोंका अनुमान कर सकें।

पाँचवीं बात यह है कि प्रत्येक प्रान्तीय महासभा या अखिल भारतवर्षीय महासभाके अवसरपर अर्वाचीन विशाल भारतकी एक विशेष कान्फ्रेन्सका संगठन होना चाहिए, जिसमें उपनिवेशोंके और यहांके प्रतिनिधि साथ-साथ बैठकर वाद-विवाद कर सकें और अपना मंतव्य प्रकट कर सकें।

छठी बात यह है कि इस प्रकारसे जनमतको शिक्षित करके भारत-सरकारके प्रवासी-विभाग और उसके एजेन्टों, लीग-आफ्-नेशन्स और इंटरनेशनल लेबर-आफिसमें जानेवाले भारतीय प्रतिनिधियोंपर उसका प्रभाव डालना चाहिए।

सातवीं बात यह है कि यहांके विश्वविद्यालयोंमें भारतीय प्रवासको भारतीय अर्थशास्त्रके पाठ्य-क्रमका एक अंग बना देना चाहिए।

आठवीं बात यह है कि प्रवासी भारतीयोंके जीवनके किसी पहलूका पूर्णरूपसे मनन करके उसपर खोज-सम्बन्धी लेख लिखनेके लिए विशेष पारितोषिक देनेकी व्यवस्था करनी चाहिए।

नौवीं बात यह है कि हमारे अर्थशास्त्र, इतिहास और समाज-शास्त्रके मेधावी विद्यार्थियों और सामाजिक कार्यकर्ताओंको रिसर्च-स्कालरशिप और यात्रा करनेके लिए पारितोषिक देना चाहिए, जिससे वे स्वयं उपनिवेशोंकी यात्रा करके वहांके कार्यकर्ताओंसे सहयोग कर सकें।

दसवीं बात यह है कि कभी-कभी, जब सुविधा हो, औपनिवेशिक कांग्रेसका संगठन करना चाहिए। समय-समयपर इस कांग्रेसका स्थान बदलता रहे, जिससे हमारे नेताओं और कार्यकर्ताओंको अपने प्रवासी भाई-बहनोंके विषयमें प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हो सके।

गुरुकुल वृन्दावन और प्रवासी विद्यार्थी

[लेखक :—श्री विश्वेश्वर]

गुरुकुल वृन्दावनका नाम 'विशाल-भारत' के पाठकोंको भलीभांति विदित ही है। पिछले दिसम्बरके अंकमें उसका साधारण विवरण भी उनके सामने प्रस्तुत किया जा चुका है। 'विशाल-भारत' और गुरुकुल—दोनोंका ही प्रवासी प्रश्नोंके साथ विशेष सम्बन्ध है। दोनों ही औपनिवेशिक समस्याओंको विशेष अभिरुचिके साथ अपनाते हैं, इसलिए 'प्रवासी-अंक'के प्रकाशनका समाचार पढ़कर गुरुकुल वृन्दावनका साधारण विवरण लिखते समय उसके इस मुख्य अंशको हमने 'प्रवासी-अंक' के लिए खास तौरपर छोड़ दिया था। आज उस विषयमें कुछ लिखा जाता है।

सुधार-सम्बन्धी अन्यान्य अनेक आन्दोलनोंकी भांति प्रवासी भारतीयोंमें भारतीय संस्कृति-प्रचारके प्रवर्तन और उसमें क्रियात्मक भाग लेनेका गौरव भी आर्यसमाजको प्राप्त हुआ है। इस सम्बन्धमें पिछले दिनों आर्यसमाजने बहुत-कुछ प्रयत्न किया है, और उसमें किसी अंश तक सफलता भी उसे प्राप्त हुई है। परन्तु जितनी सफलता मिली है, उसे देखते हुए जो कठिनाइयाँ उसके मार्गमें उपस्थित हुई हैं, वे बहुत ज्यादा हैं। यह सभी जानते है, आर्थिक दृष्टिसे आर्यसमाजकी गणना सम्पन्न समाजोंमें नहीं की जा सकती। उसपर भी उसने अपनी शक्तिसे कहीं अधिक सार्वजनिक कार्योंको अपने ऊपर उठा रखा है, इसलिए यह तो स्पष्ट है कि उसके हर विभागके कार्यकर्ताओंको आर्थिक कठिनाइयोंका सामना तो करना ही पड़ेगा। फिर इस प्रवासी-प्रचारके सम्बन्धमें प्रायः धन-सम्बन्धी कठिनाईके साथ जन-सम्बन्धी कठिनाई भी बहुत अंशमें बाधक हुई है। प्रवासी-प्रचारके लिए योग्य और आदर्श व्यक्तियोंकी, जो स्थायीरूपसे प्रवासी भारतीयोंके बीचमें रहकर कार्य कर सकें, परम आवश्यकता है। परन्तु पिछले दिनों ऐसे व्यक्तियोंके प्राप्त कर सकनेमें अत्यन्त

कठिनाई पड़ी है, इसीलिए गुरुकुलके मुख्याधिष्ठाताजीने, जो सार्वदेशिक सभाके उपप्रधान भी हैं, इस सम्बन्धमें एक योजना तैयार की। इस योजनाका आशय यह था कि विभिन्न उपनिवेशोंके विद्यार्थियोंको भारतवर्षमें ही शिक्षा दिलानेका प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकारके विद्यार्थी जब भारतीय भावनाओंसे दीक्षित हो, अपने-अपने उपनिवेशोंमें पहुँचेंगे, तो अधिक सुविधा और अधिक स्थिरताके साथ वहाँ कार्य कर सकेंगे। इस प्रकार आर्यसमाजके लिए योग्य और स्थायी औपनिवेशिक कार्यकर्ताओंके अभावकी त्रुटि बहुत-कुछ दूर हो सकेगी।

इस आयोजनाके अनुसार ही मुख्याधिष्ठाताजीने गुरुकुलके क्षेत्रको उपनिवेशों तक बढ़ा दिया। वर्तमान समयमें औपनिवेशिक शिक्षा-प्रचार भी गुरुकुलके कार्यक्षेत्रका एक प्रधान भाग बना हुआ है। गुरुकुल प्रवासी विद्यार्थियोंका केन्द्रस्थान है। इस समय १५ प्रवासी-विद्यार्थी तो गुरुकुलमें ही शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त, देहरादून, कानपुर, जालन्धर, देहली आदि भिन्न-भिन्न स्थानोंपर डी० ए० वी० हाई-स्कूल, कालेज और कन्या-महाविद्यालय आदिमें अनेक प्रवासी बालक और बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। भारतवर्षमें इनका अभिभावक गुरुकुल ही है। अवकाशके दिनोंमें, दुःख और बीमारीके अवसरपर, प्रसन्नता और शोकके समयमें प्रवासी भारतीय विद्यार्थियोंके लिए गुरुकुल उनकी मातृभूमि है। बाहर स्कूल और कालेजोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थी लम्बी छुट्टियोंमें जिस उत्साहसे अपने-अपने घरोंको जाते हैं, वही उत्साह, वही आनन्द उन प्रवासी विद्यार्थियोंको कुलभूमिके दर्शन करनेके लिए होता है।

प्रवासी विद्यार्थियोंके रूपमें गुरुकुलका सबसे पहला सम्बन्ध दक्षिण-अफ्रिकासे हुआ था। स्वामी भवानीदयाल संन्यासीकी गुरुकुलपर विशेष अनुकम्पा रही है, और उन्हींके प्रयत्नसे दक्षिण-अफ्रिकाके कतिपय प्रवासी विद्यार्थी गुरुकुलमें प्रविष्ट हुए थे। उसके बाद, गुरुकुलके सुयोग्य अध्यापक श्री गोपेन्द्रनारायण पथिकके प्रयत्नसे गुरुकुलका सम्बन्ध फिजीके प्रवासी विद्यार्थियोंके साथ स्थापित हुआ।

श्री गोपेन्द्रनारायण पथिक इटावा ज़िलेके अजीतमल नामक ग्रामके निवासी हैं। असहयोग-आन्दोलनके दिनों सरकारी विद्यालयसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर उन्होंने गुरुकुलको अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। पंडितजी उदार विचार तथा गम्भीर प्रकृतिके हैं और ठोस काम करनेवाले हैं। गुरुकुलके सेवा-कालमें ही उन्होंने अपनी कार्य-क्षमताका सिक्का गुरुकुलवासियों और अधिकारियोंके ऊपर जमा लिया था। नागपुर-सत्याग्रहके समय उसमें क्रियात्मक भाग लेनेके लिए पंडितजी उत्साहके साथ वहाँ गये थे, और उसी अवसरपर एक मासके लिए कृष्ण-जन्मस्थानका दर्शन भी किया था। उसके बाद, फिर यथापूर्व गुरुकुलकी सेवामें लग गये। सन् १९२६ (?) में जब गुरुकुलके वायुमण्डलमें प्रवासी-प्रचारकी चर्चा ज़ोरोंपर थी, पंडितजीने इस कार्यके लिए फिजी जानेका निश्चय कर लिया। पंडितजीके पूज्य पिताजी तथा अन्य घरवालोंकी ओरसे उनके इस विचारका घोर प्रतिवाद किया गया, परन्तु पंडितजीने उन प्रतिवादों और विघ्नोंकी लेशमात्र भी परवाह न की और अपने निश्चयपर दृढ़ रहे। अन्तमें पिताजीको अपने जानेकी ठीक सूचना दिये बिना ही वे गुरुकुल-भूमिसे फिजीके लिए विदा हो गये। देखनेवाले कहते कि वह दिन, जिस दिन कि पथिकजी गुरुकुलसे विदा हुए थे, गुरुकुलके इतिहासके स्मरणीय दिवसोंमें से है। उसके बाद, फिजी-द्वीप ही उनके जीवनका कार्यक्षेत्र है।

गुरुकुलके प्रति गोपेन्द्रजीका अगाध प्रेम और अनन्य विश्वास था। उनका यह विश्वास और प्रेम आज भी वैसा ही अक्षुण्ण बना हुआ है, और उसीके परिणाम-स्वरूप गुरुकुलके साथ फिजीके प्रवासी भारतीयोंका यह सम्बन्ध स्थापित हो सका है।

फिजीके कार्यक्षेत्रमें प्रवासी भारतीयोंकी शिक्षाका प्रश्न हल कर सकना अत्यन्त कठिन है। उसके लिए भारतीय सम्बन्धकी अपेक्षा थी। गोपेन्द्रजीने उस सम्बन्धको स्थापित किया, और इसमें सन्देह नहीं कि उससे प्रवासी विद्यार्थियोंको बहुत-कुछ लाभ हुआ है। हमारा अनुभव है कि गुरुकुलके



गुरुकुल वृन्दावनमें प्रवासी विद्यार्थी

अधिकारी प्रवासी विद्यार्थियोंकी देखरेखका विशेष ध्यान रखते हैं। भारतीय बालकोंको भी तो ७।८ वर्षकी छोटी अवस्थामें माता-पिताकी गोदसे लेकर वही पालन करते हैं। फिर यदि वे माता-पिताकी-सी सावधानीसे काम न लें, यदि माता-पिताके स्नेह और ध्यानकी पूर्ति न कर सकें, तो उनकी संस्थाका संचालन ही कैसे हो सके? इसलिए हमारे विचारमें प्रवासी विद्यार्थियोंके सम्बन्धियोंको अपने बालकोंके सुख दु:खके लिए विशेष चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। गुरुकुलके अधिकारी उन्हें अपने पुत्रके समान समझते हैं और बराबर उसी भावनासे कार्य करते हैं।

अभी पिछली दुर्घटनाके समयकी बात है। मैं भी गुरुकुलमें ही उपस्थित था। वृन्दावनमें और गुरुकुलके निकटवर्ती राजपुर नामक गाँवमें हैज़ेका प्रकोप हुआ। गुरुकुल-भूमिको उस संसर्गसे बचानेकी भरपूर कोशिश करनेपर भी उसमें सफलता न मिल सकी। दुर्भाग्यवश उसका आक्रमण उन दो प्रवासी विद्यार्थियोंपर हुआ, जो इस जनवरीमें ही फिजी वापस जानेवाले थे! उस समय गुरुकुल-वासियोंने जिस तत्परतासे उनकी सेवा-सुश्रूषाका प्रबन्ध किया, वह देखते ही बनता था। स्वयं अधिष्ठाताजी रोगीकी शय्याके पास निरन्तर उपस्थित रहे। वृन्दावन और मथुरा तक जितने योग्यसे योग्य डाक्टर और वैद्य मिल सके, सब बुलाये गये। हर प्रकारकी चेष्टा की गई, परन्तु भावीको कौन रोक सकता है? उस समय भी, जब कि हृदयको छेद डालनेवाली वह भयानक दुर्घटना हुई, इस रोगके स्पेशलिस्ट हेल्थ-आफ़िसर और पाँच अन्य सिद्धहस्त डाक्टर एवं वैद्य उपस्थित थे। उनके देखते-देखते इस भीषण रोगने केवल ७।८ घन्टेके भीतर वह भयानक काण्ड रच डाला, जिसे विधाताकी इच्छा नहीं तो और क्या कह सकते हैं। हमें यह विदित हुआ है कि इस घटनासे प्रवासी विद्यार्थियोंके संरक्षक कुछ चिन्तित हो उठे हैं। उनसे केवल हम यही कहना चाहते हैं कि इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ उन्होंने भी अपनी आँखों देखी होंगी। मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उन्हें नहीं रोक सकता है, क्योंकि वह तो भवितव्यताका प्रभाव है। हाँ, मानव-शक्तिके भीतर जो कुछ भी प्रयत्न सम्भव था, उसके कर लेनेके बाद भी, केवल

दैवी विधानके प्रभावसे ही यह दुर्घटना हुई थी, इसका हम उन्हें विश्वास दिलाना चाहते हैं।

इस समय गुरुकुलमें पढ़नेवाले प्रवासी विद्यार्थियोंकी संख्या १५ है, जिनमेंसे ब्रह्मचारी कमलाप्रसाद सप्तम श्रेणीमें है, और अपनी श्रेणीके सर्वोत्तम विद्यार्थियोंमेंसे है। ब्र० रामगोपाल छठी श्रेणीमें है, और अपनी श्रेणीमें द्वितीय रहता है। ब्र० कृष्ण, ब्र० सुरेन्द्र और ब्र० जयराम पंचम श्रेणीमें हैं, जिनमेंसे ब्र० कृष्ण बहुत तीव्रबुद्धि है। ब्र० गजराज, ब्र० रामपत और ब्र० सोहनलाल चतुर्थ श्रेणीमें हैं। ब्र० भास्करचन्द्र और वीरेन्द्र तृतीय कक्षामें; ब्र० सत्यपाल, ब्र० प्रेमशंकर, ब्र० विष्णुदेव तथा ब्र० पृथ्वीपाल द्वितीय कक्षामें और ब्र० पुष्पचन्द्र प्रथम श्रेणीमें है। इनके अतिरिक्त ११ विद्यार्थी देहरादूनमें, ५ कानपुरमें और एक सत्याग्रह-आश्रम साबरमतीमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। कन्याएँ जालन्धर और देहरादून कन्या-महाविद्यालयोंमें पढ़ रही हैं। इन सबका प्रबन्ध गुरुकुल द्वारा ही हो रहा है। बाहर पढ़नेवाले विद्यार्थियों में से श्री बी० डी० लक्ष्मण फिजी-सरकारसे छात्रवृत्ति पा रहे हैं और इस समय कालेज विभागमें पहुँच चुके हैं।

इस समय भारतमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले समस्त प्रवासी विद्यार्थियोंका एक नियमित संघ भी स्थापित हो चुका है, जिसका नाम 'औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघ' है। गुरुकुलके मुख्याधिष्ठाता म० श्रीरामजी इस संघके प्रधान हैं, और श्रीयुत बी० डी० लक्ष्मण संघके मंत्री हैं।

गत वर्ष श्री पथिकजी और श्री बद्री महराज फिजीसे भारत आये थे। उस अवसरपर बद्री महराजको कुछ दिनों गुरुकुल भूमिमें वास करनेका और उसकी व्यवस्था आदिके अध्ययन करनेका भलीभाँति अवसर मिला था। बद्री महराज कुलकी व्यवस्थासे काफी सन्तुष्ट प्रतीत होते थे। स्वयं उनके विद्यार्थी भी इस समय यहाँ शिक्षा पा रहे हैं।

फलतः गुरुकुल वृन्दावन औपनिवेशिक विद्यार्थियोंका भारतीय केन्द्र है। आगामी अप्रेलमें १६ से २१ तारीख तक होनेवाले गुरुकुलके रजतजयन्ती-महोत्सवके अवसरपर अन्यान्य अनेक सम्मेलनोंके साथ ही एक 'प्रवासी परिषद्' की आयोजना भी की गई है। इस परिषद्में इस क्षेत्रके अनुभवी कार्यकर्ता और आर्यसमाजके उत्तरदायी अधिकारी बैठकर प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर विचार करेंगे। कार्यकर्ताओंके मार्गमें अब तक उपस्थित होनेवाली बाधाओंके लिए उपाय सोचेंगे और भविष्यमें प्रवासी-प्रचारका कार्य किस प्रकार संचालित किया जाय, इस प्रश्नपर विचार करेंगे। परिषद्के सभापतिके आसनपर सम्भवतः स्वामी भवानीदयाल संन्यासी सुशोभित होंगे। प्रवासी प्रश्नोंमें विशेष अभिरुचि रखनेवाले अनुभवी महानुभाव इस सम्मेलनको सफल बनानेके लिए आवश्यक परामर्श मंत्री रजत-जयन्ती गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा)'के पतेपर भेज सकें, तो अच्छा हो। प्रवासी हित-चिन्तकोंको अधिकसे अधिक संख्यामें उपस्थित होकर इस सम्मेलनको सफल बनाना चाहिए।

टांगानिकामें एक वर्ष

[लेखक :—श्री यू० के० ओझा, भूतपूर्व सम्पादक 'टांगानिका ओपीनियन']

टांगानिकाको देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई। मुझे आशा थी कि वहांपर मुझे ऐसे भारतीयोंकी बस्ती मिलेगी, जिन्होंने भारतवर्षको छोड़नेके साथ-ही-साथ अपने मध्यकालीन सामाजिक बन्धनोंको भी छोड़ दिया होगा, जिनके सामाजिक जीवनका विकास अधिक स्वतन्त्रतापूर्ण होगा, जिनके राजनैतिक आदर्श अधिक उच्च होंगे और जिनके धार्मिक विचार अधिक प्रस्फुटित होंगे। 'हिन्दुस्थान' और 'प्रजामित्र'के श्रीयुत खोंटवालाने, जो मेरे मित्र हैं, मुझे इस आशाके विषय

सावधान कर दिया था, परन्तु दारुस्सलाममें क़दम रखनेके पहले तक मुझे इसकी कुछ-कुछ आशा बनी थी। वहाँ उतरकर भारतीय मुहल्लोंके बीचसे गुज़रनेमें मुझे कच्छ या काठियावाड़के शहरोंका दृश्य दिखाई पड़ा। टांगानिकाकी राजधानीके सुन्दर वृत्तान्त, जो मैंने पढ़ रखे थे, केवल यूरोपियन मुहल्लों और 'न्यूट्रल बेल्ट' तक ही परिमित हैं। भारतीय बाज़ारको देखकर मुझे एकदम राजकोट या गोंडालकी याद आ गई। यहाँके लोगोंके ऊपरी जीवन तथा तरीक़ोंमें, और जो लोग काठियावाड़में अपने गाँवोंसे बाहर कभी नहीं जाते उनके जीवन और तरीक़ोंमें, मुश्किलसे कुछ भेद होगा। कुछ अधिक जान-पहचान होनेपर मैंने देखा कि यहाँके भारतीय बड़े उदार और दयावान् हैं। उनमें भारतीय समवेदनाके भाव भरे हैं, जिससे वे बहुत काफ़ी मात्रामें प्रेमपूर्ण हैं, मगर मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पहले तीन-चार महीनों तक मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे मैं पानीसे बाहर निकाली हुई मछली हूँ। मुझे रह-रहकर सुनसान सेंटाक्रूज़के अपने घर और बम्बईके व्यस्त पत्रकार-जीवनकी याद आया करती थी, परन्तु यहाँके सरकारी और ग़ैर-सरकारी यूरोपियनोंने साधारणतः मेरे प्रति जो सद्भाव दिखलाया, उससे तथा मनुस्मृति और अथर्ववेदके गहरे मननसे, अन्तमें मैं इस देशके एकान्त जीवनका आदी हो गया।

फिर भी टांगानिका और दारुस्सलामकी प्राकृतिक और राजनैतिक अवस्था, दोनों ही मेरी कल्पनाको बहुत आकर्षित करती थीं। यद्यपि यूरोपीय महायुद्धके एक पीढ़ी पहलेसे ही वे जर्मनीके हाथमें थे, फिर भी वे भारतीय प्रभावकी याद दिलाते हैं। यहाँ मैं ऐसे भारतीयोंको जानता हूँ, जिन्होंने कभी भारतवर्षके दर्शन भी नहीं किये हैं। मैंने यहाँ ऐसे भारतीयोंको देखा है, जो इस देशके भीतरी भागोंमें वहाँके आदिम निवासियोंके बीचमें चुपचाप अस्पष्ट भावसे अपना व्यापार किया करते हैं। प्रत्येक छोटे-छोटे क़स्बेमें भारतीयोंकी बस्ती है और क़स्बेकी सम्पत्तिका एक काफ़ी अंश उनके हाथमें है। दारुस्सलामकी मुख्य सड़क आजकल 'एकाशिया एविन्यू' कहलाती है; परन्तु मेरे एक परम मित्रके पास एक जर्मन नक़्शा है, जिसमें इस सड़कका नाम 'बड़ा रास्ता' लिखा है। हिन्दीके पाठकोंको 'बड़ा रास्ता'का अर्थ बतलाना फ़िज़ूल है। मुझे बतलाया गया कि इस सड़कको एक भारतीय कारीगर अल्ला मिस्त्रीने बनाया था। मैं अपने बचपनमें अपने घरमें डलियां, चटाइयां और सुन्दर बिनी हुई सीतलपाटियां देखा करता था। अब मुझे यह मालूम हुआ कि वे चीज़ें यहाँसे भारतको जाया करती हैं और कच्छके जहाज़ हिन्द-महासागरकी कष्टपूर्ण यात्रा करके उन्हें यहांसे ले जाते हैं।

टांगानिकामें बहुत बड़े बड़े भूखण्ड खाली पड़े हैं। यह एक 'मैन्डेट'के अधीन है। हमारे भारतीयोंमें कल्पना-शक्ति और उद्यमकी बहुत बड़ी कमीका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उनकी आँखोंके सामने टांगानिकामें ब्रिटिश और जर्मन उपनिवेश बसते जाते हैं और वे चुपचाप बैठे देखते हैं। मैं इसे चुपचाप सहन नहीं कर सकता। इस सुअवसरका—जो किसी भी क्षण हमारे हाथसे निकल जा सकता है—उपयोग न करनेके लिए मैं भारत-सरकारको और भारतके पश्चिमीय किनारेके राजाओंको उत्तरदायी समझता हूँ। दारुस्सलामकी सफ़ेद सड़कोंपर घूमते हुए, हिन्द-महासागरका गम्भीर नाद सुनते हुए और अफ्रिकाके सुन्दर प्राकृतिक दृश्योंको निरीक्षण करते हुए मैं अकसर खेद और निराशाकी गहरी साँसें भरा करता हूँ। आज टांगानिका विशाल है, खाली है और सबके लिए खुला है। कल वह जनाकीर्ण हो सकता है और उसका द्वार बन्द हो सकता है।

मैं अपने उन वीर भारतीयोंके साथ, जो टांगानिका और दारुस्सलामके विकासके लिए अपना-अपना भाग पूरा कर रहे हैं, कोई अन्याय नहीं करना चाहता। 'मेसर्स करीमजी जीवनजी ऐण्ड कम्पनी' यहाँके प्रथम कोटिके व्यापारी हैं। वे बहुत बड़े ज़मींदार और सुसभ्य नागरिक हैं। शहरकी उत्तमोत्तम इमारतोंमेंसे कई उनकी हैं। आर्यसमाज-मन्दिर और इंडियन इस्ना अशेरी मस्जिद सचमुचमें शहरके



श्री यू० के० ओझा, उगांडा इंडियन एसोसियेशनकी सेन्ट्रल कौन्सिलके प्रधान श्री जस भाई पटेलके साथ खड़े हैं

आभूषण कहे जा सकते हैं। मेसर्स मुल्लू ब्रदर्स और मि० कासिम सुन्दरजी सामजीके भवन भी विशेषरूपसे आकर्षक हैं। इंडियन सेन्ट्रल स्कूलकी इमारत भी रोमन-सारासेनिक ढंगकी एक शानदार बिल्डिंग होगी। एक भारतीय सिनेमाटोग्राफर भी एक पहले दर्जेका सिनेमा-भवन खोलनेका विचार कर रहे हैं।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि यहाँके भारतीय अब अपने नीची छतके बदसूरत गन्दे मकानोंको तोड़कर आधुनिक ढंगके अच्छे मकान बनाने लगे हैं। शीघ्र ही एक भारतीय व्यापारी श्री गोविन्दजी जामी दारुस्सलामके सबसे ऊँचे गृहके स्वामी हो जायँगे। यहाँके दो सर्वोत्तम मकानोंके स्वामी भी जामनगरके एक व्यापारी और बढ़ई हैं।

मैं चाहता हूँ कि हमारे भाइयोंमें उत्साह उत्पन्न करनेके लिए हम लोगोंमें अधिक ओज, अधिक दृढ़ता और अधिक कल्पना-शक्ति हो। ऊपर जो कुछ कह आया हूँ, उसके होते हुए भी मैं अपने इस विचारको नहीं त्याग सका कि हमारे भाई बहुत थोड़े ही में सन्तुष्ट हो जाते हैं। उनका उद्देश्य किसी प्रकार मध्यश्रेणीकी स्थिति तक पहुँच जानेसे अधिक आगे नहीं बढ़ता। हमलोग चाहें, तो कहीं बढ़कर काम कर सकते हैं, मगर जहाँ हम लोग इतना करने योग्य हो जाते हैं कि हमारा काम अच्छा कहलाने लगे, बस, हम वहीं सन्तुष्ट हो जाते हैं। हम लोगोंके स्वभावकी यह प्रवृत्ति हमारी उन्नतिमें बाधा डालती है। चूँकि हम लोगोंपर हमारे निम्न होनेके और पिछड़े हुए होनेके ताने मारे जाते हैं, इसलिए हम लोगोंको दुबकी लेनेकी आदत पड़ गई है।

टांगानिकामें मैंने खेदके साथ इस बातको उपस्थित पाया। यहाँ बिना किसीका मन दुखाये यह कहना कि हमारा नेतृत्व और काम दोनोंमें बहुत-कुछ सुधार हो सकता है, असम्भव है। इस बातको स्वीकार करनेके लिए कोई भी तय्यार नहीं है कि ऐसा हो सकता है। समस्त पूर्वी अफ्रिकामें भी हमारे अनिष्टका कारण हमारा नवसिखुआपन और हमारी अहम्मन्यता है। ये दोनों बातें हमारे परिमित पूँजी और अल्प ज्ञानके कारण उत्पन्न हुई हैं।

भारतवर्षसे आनेवाला प्रत्येक स्टीमर बहुतसे प्रवासियोंको लाता है, परन्तु मुझे भय है कि हम लोग हिन्द-महासागरके इस तटपर विशाल भारतका विकास नहीं कर रहे बल्कि केवल पंजाब, काठियावाड़ और कच्छके ग्रामोंको यहाँपर आरोपित करते हैं। मुझे अब तक अपने भाइयोंमें वह आत्म-स्फूर्ति नहीं दिखाई दी, जो नवीन और स्वतंत्रतापूर्ण परिस्थितिमें उत्पन्न होती है; और न उनकी दृष्टिमें वह व्यापकता ही दिखाई दी, जो संसारकी भिन्न-भिन्न जातियोंके सम्मेलन या संघर्षसे पैदा होती है। यह बात केवल हमारे भाइयों ही में नहीं है, बल्कि इस भागके अंग्रेज़ोंमें भी यह दुःखपूर्ण दशा दिखाई देती है। केनियामें लार्ड डेलामेयरने जो करतूतें की हैं, टांगानिकामें भी उनका असर पड़ा है। प्रवासी जातियाँ एकदम पृथक विभागोंमें रहती हैं—न तो अंग्रेज़ और न भारतीय ही अपनी पैतृक बातोंमेंसे एक दूसरेको कुछ देना या लेना चाहते हैं। हरएक बड़े उग्र रूपसे केवल धनके पीछे पड़ा है। चूँकि बलवान पुरुष बड़े-से-बड़े ग्रास उड़ा लेता है, इसलिए कमज़ोर प्रतिद्वन्द्वी अपने लिए अधिकसे अधिक बचानेके लिए सब प्रकारके उपायका अवलम्बन करता है। यदि आप ऐसे मानव-समाजको देखना चाहते हैं जो उन समस्त विचारोंको—जिनसे मानव-जीवन पवित्र और जीवित रहने योग्य बनता है—तिलांजलि देकर केवल धनोपार्जन और अपनेको धनी बनानेकी चिन्तासे लदा है, तो आप केवल एकबार पूर्वी अफ्रिकाके देशोंकी यात्रा कीजिए।

परमात्माका आदेश

[लेखक :—दीनबन्धु श्री सी० एफ० ऐण्ड्रूज]

पिछले बीस वर्षमें एक प्रश्न निरन्तर मेरी आँखोंके सामने रहा है, और वह है प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न। यह प्रश्न बराबर मेरे दिमागमें चक्कर काटता रहा है, और इसे मैं भुलाने भी नहीं भूल सका। जो भारतीय अपनी मातृभूमिको छोड़कर दूर देशोंमें जा बसे हैं, उनकी सेवा करनेका व्रत मैंने कैसे ग्रहण किया, यह सवाल किया जा सकता है। जब मैं पहली ही बार अपनी मातृभूमि इंग्लैण्ड और अपनी माताको छोड़कर विदेश गया था, उस समय मुझे अपनी मातृभूमि और माताकी बड़ी याद आई थी, और घर लौट चलनेकी आकांक्षा बड़े प्रबल वेगसे मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई थी। इसी कारण उन

भारतीयोंके लिए, जिन्हें अपना घर-बार छोड़कर विदेश जाना पड़ा था, मेरे हृदयमें सहानुभूति उत्पन्न होना स्वाभाविक था और सरल भी। शायद इसी भावके कारण मेरी रुचि प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंकी ओर प्रवृत्त हुई, और अब तो यह मेरे जीवनका ही एक प्रश्न बन गया है।

लेकिन इसके बाद कुछ और भी हुआ। जाँच करनेपर मुझे पता लगा कि इन प्रवासी भारतीयोंके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया गया था, और उनमेंसे कितने ही तो धोखेबाज़ीके साथ ज़बर्दस्ती विदेश भेज दिये गये थे। इस विषयपर मैंने मि० गोखले और महात्मा गान्धीके व्याख्यान पढ़े थे, और उनको पढ़कर मेरा हृदय द्रवित हो गया था। इसके बाद, जो कुछ भी मसाला मुझे ब्रिटिश उपनिवेशोंमें शर्तबन्दीकी कुली-प्रथा और उसके अत्याचारोंके विषयमें मिला, मैं बराबर पढ़ता रहा। इसका प्रभाव मेरी कल्पना-शक्तिपर पड़ा, और इस विषयने मेरे मस्तिष्कपर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार सन् १९१३ में दक्षिण अफ्रिका जानेसे बहुत पहले ही प्रवासी भारतीयोंकी कठिनाइयाँ मेरे हृदय और मस्तिष्कपर जमकर बैठ गई थीं, और मैं दिन रात उन्हींकी बातोंको सोचा करता और उन्हींके स्वप्न देखा करता था।

इन्हीं दिनों एक बातने मेरे हृदयपर और भी प्रभाव डाला। मैं सोचने लगा कि देखो, पराधीनताके कारण भारतवर्षको कैसी कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। अपनी इच्छाके अनुसार भारतीय कोई कार्य नहीं कर पाते। विदेशी लोग उनके भाग्यकी बागडोर अपने हाथमें लिये हुए हैं, मनमानी करते हैं, चाहे वह भारतीयोंको पसन्द हो या नहीं, इस बातकी कुछ भी पर्वाह नहीं। ये बातें सोचकर मेरे मनको बड़ी पीड़ा होती थी। भारतवर्षकी यह पराधीनता मुझे बहुत खटकती थी। मुझे यह अत्यन्त अन्याय-युक्त प्रतीत होती थी। मेरी आत्मा पूर्णरूपसे इस पराधीनताके विरुद्ध बग़ावत करनेको उद्यत हो जाती थी, पर इसके साथ एक बात और भी थी, जो मेरे मनमें खटक रही थी। [मैं सोचता था कि मैं भी तो उसी अंग्रेज़-जातिका हूँ, जो भारतको गुलाम बनाये हुए है, और इस पापका कुछ हिस्सा मेरे सिर पर भी है; इसीलिए मेरे मनमें बार-बार यह विचार



(दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज़)

आता था कि इस पापका प्रायश्चित्त किस प्रकार करूँ। पहले तो बहुत दिनों तक कोई बात मेरी समझमें नहीं आई, फिर एक दिन मुझे यह सूझा कि एक काम मैं शायद कर सकूँ, यानी जो भारतीय विदेशोंमें बसे हुए हैं, उनकी सेवा। हिन्दुस्तानके स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेनेका अर्थ हो सकता था इस कार्यमें बाधा डालना, क्योंकि वह संग्राम तो भारतीय नेतृत्वमें भारतीयोंके द्वारा संचालित होना चाहिए; पर प्रवासी भारतीयोंकी सेवाका क्षेत्र ऐसा था, जिसमें प्रवेश

करना भारतीयोंके लिए कठिन था, क्योंकि रंग-भेदके क़ानूनोंके कारण कितने ही उपनिवेशोंका दरवाज़ा उनके लिए बन्द था। मैंने सोचा कि यह क्षेत्र ऐसा है जिसमें कार्य करनेसे कुछ अंशोंमें उस पापका प्रायश्चित्त भी हो जायगा, जिसका कुछ हिस्सा अंग्रेज़ होनेके कारण मेरे सिर भी है। साथ ही भारतीयोंके मार्गमें कोई बाधा भी नहीं पड़ेगी। इस विचारने मेरे भावी मार्गको निश्चित करनेमें बड़ी सहायता दी।

यद्यपि इस विचारने मेरे कार्यपथको स्पष्ट बनानेमें बड़ी मदद दी, पर बहुत दिनों तक तो यह बात मेरी समझमें नहीं आई कि इस कार्यका प्रारम्भ किस प्रकार किया जाय। मेरे पास निजका पैसा तो था नहीं; मेरा सम्बन्ध एक ईसाई मिशनसे था और उसीसे मुझे वेतन मिलता था। इससे पाठक मेरी कठिनाइयोंका अन्दाज़ लगा सकते हैं।

पर अन्तमें ईश्वरकी कृपासे एक ऐसा मार्ग निकल आया, जिसकी कुछ भी आशा नहीं थी। मैं मिस्टर गोखलेसे कई बार मिल चुका था और कितनी ही बार मैंने अपने इस प्रिय विषय 'प्रवासी भारतीयों'पर उनसे बातचीत भी की थी। जब सन् १९१२ में वे दक्षिण-अफ्रिका गये थे, उस समय मैं लन्दनमें था। जो कुछ कार्य उन्होंने दक्षिण-अफ्रिकामें किया था, उसे मैंने खूब ध्यान-पूर्वक पढ़ा भी था। जब सन् १९१३ में मैं शान्ति-निकेतनसे दिल्लीके लिए लौटा, उस समय मि० गोखले महात्मा गान्धीजीके सत्याग्रह-संग्रामकी सहायतार्थ आन्दोलन खड़ा करनेके उद्योगमें लगे हुए थे। उन दिनों उन्हें बुखार आ रहा था। मैंने उनसे मिलकर प्रार्थना की कि मुझे भी इस कार्यमें सेवा करनेका अवसर दीजिए। उन्होंने चन्दा इकट्ठा करनेका कार्य मेरे सुपुर्द कर दिया। उन्हीं दिनों, जब मैं यह कार्य कर रहा था, मैंने अपने दिलकी बातें मि० गोखलेके सामने खोलकर रख दीं, और उन्हें सुनकर मि० गोखलेका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने मुझसे कहा—"क्या तुम कुछ ऐसे खास-खास यूरोपियनोंका नाम बतला सकते हो, जो गान्धीजीके सत्याग्रह-संग्रामके प्रति सहानुभूति प्रकट कर सकें?" मैंने कलकत्तेके लार्ड बिशप वाक्टर लिफ्रोइका नाम लिया। मि० गोखलेने कहा—"अच्छा, तुम उनके पास जा कर इस कार्यमें उनकी सहायता दिलवाओ।"

मैं कलकत्ते आया। उस समय बिशप साहब बहुत बीमार थे, उनके आपरेशन हुआ था, पर ज्यों ही उन्होंने मेरे आनेकी बात सुनी, मुझे फौरन अपने पास बुला लिया। मैंने उन्हें सारी बातें कह सुनाईं। बिशप साहबने तुरन्त ही एक हज़ार रुपये सत्याग्रह-संग्रामकी सहायतार्थ दिये, और साथ ही महात्माजीके आन्दोलनके प्रति गम्भीर सहानुभूति प्रकट करनेवाला एक पत्र भी लिख दिया। कलकत्तेसे दिल्ली वापस आते हुए मैं एक दिनके लिए शान्ति-निकेतनमें ठहर गया। कविवर रवीन्द्रनाथ थोड़े दिन पहले विलायतसे वापस लौटे थे, उन्हें नोबुल-पुरस्कार हाल ही में मिला था, और इसलिए उनका सम्मान करनेके वास्ते बहुतसे प्रतिष्ठित व्यक्ति कलकत्तेसे बोलपुर गये थे। मैंने भी इस अवसरपर वहाँ जाना उचित समझा। जब मैं बोलपुरसे चलने लगा, तो उस समय तारवालेने एक तार मुझे दिया। खोलनेपर मालूम हुआ कि यह मि० गोखलेका था। उसमें उन्होंने मुझे दक्षिण-अफ्रिका जाकर सत्याग्रह-संग्राममें सम्मिलित होनेका आदेश दिया था। इस प्रकार परमात्माने मेरे हृदयकी अभिलाषा पूर्ण करनेका सुअवसर मुझे प्रदान किया। बड़े आश्चर्य-जनक ढंगसे मेरे जीवनका भावी कार्यपथ मेरे सामने स्पष्ट दीखने लगा। प्रवासी भारतीयोंकी सेवाके लिए, जो मेरे जीवनका एक उद्देश्य था, मार्ग खुल गया। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि इस मार्गके खोलनेमें परमात्माकी इच्छा ही काम कर रही थी, यह किसी आदमीका काम नहीं था।

तार लेकर मैं सीधा कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पास गया, और उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे दक्षिण-अफ्रिका जानेके लिए आज्ञा दीजिए और साथ ही आशीर्वाद भी दीजिए। इसके पहले मैं एक बात तय कर चुका था, वह यह कि मैं दिल्लीके मिशनका काम छोड़कर

शान्ति-निकेतनमें कविवरके आश्रममें रहूँगा। इसे भी मैं ईश्वरीय प्रेरणाका परिणाम समझता हूँ। इस प्रकार मेरे जीवनमें दो कार्य करीब-करीब एक साथ ही शुरू हुए ; एक तो कवीन्द्र रवीन्द्रके आश्रमका निवास, और दूसरे प्रवासी भारतीयोंका कार्य। मि० गोखलेकी आज्ञा शिरोधार्य मानकर महात्मा गान्धीजीके संग्रामकी सहायतार्थ दक्षिण-अफ्रिका जानेके लिए मैंने कवीन्द्रका आशीर्वाद माँगा। इस प्रकार मेरे जीवनकी दो धाराएँ—आश्रम-निवास और प्रवासी भारतीयोंकी सेवा—एक साथ ही शुरू हुईं।

इस अवसरपर मैं एक मनोरंजक बात और भी सुनाऊँगा, वह है मेरे स्वर्गीय मित्र पियर्सनके विषयमें। वे उन दिनों दिल्लीमें थे, और मेरी उनसे प्रायः दिल खोलकर बातचीत हुआ करती थी, इसलिए वे मेरे विचारोंसे पूर्णतया परिचित थे। वे उन दिनों रायबहादुर लाला सुल्तानसिंहके लड़के लाला रघुवीरसिंहको पढ़ाया करते थे। जिस दिन मैं दक्षिण अफ्रिकाके लिए रवाना होनेवाला था, उस दिन पियर्सनके चेहरेसे बहुत-कुछ घबराहट-सी प्रतीत होती थी। उस दिन न जाने वे दिनभर कहाँ चक्कर काटते रहे। शामके वक्त मेरे कुछ मित्र मिलनेके लिए आये। मैं अपना सामान बाँधनेमें लगा हुआ था। उन्होंने उसमें मदद दी। कोई-कोई मित्र छोटी-छोटी चीज़ें मुझे भेंट देनेके लिए लाये। रातको ११ बजे रेलगाड़ीसे सवार होकर मैं कलकत्ते जानेवाला था और वहाँसे कोलम्बो होते हुए दक्षिण-अफ्रिका जा रहा था। इसके करीब दो घंटे पहले यानी रातको नौ बजे पियर्सन मेरे पास आये, और बोले—"चार्ली,* देखो तो सही, मैं तुम्हारे लिए क्या ही बढ़िया भेंट लाया हूँ!"

मेरी समझमें उनकी बात नहीं आई, और मैंने पूछा—"बताओ तो सही, क्या भेंट लाये हो?"

पियर्सनने कहा—"मैं ही तुम्हारी भेंट हूँ। मैं तुम्हारे साथ दक्षिण-अफ्रिका चलूँगा।" इतना कहकर वे खूब खिलखिलाकर हँसे। मैं बड़े आश्चर्यसे उनका मुँह ताक रहा था। दो घंटेमें पियर्सन मेरे साथ कैसे चल सकेगा, यह बात मेरी समझमें न आई। पीछे मालूम हुआ कि आप उस दिन दिन-भर इसी चक्करमें घूमते रहे थे और मुझे इस बातकी कुछ भी खबर न दी थी! रायबहादुर लाला सुल्तानसिंहसे भी, जिनके लड़केको वे पढ़ाते थे, उन्होंने दक्षिण-अफ्रिका जानेकी इजाज़त ले ली थी। टामस-कुक ऐण्ड-सन्ससे अपने जहाज़के टिकटका इन्तज़ाम भी आपने कर लिया था। थोड़ेसे घंटोंमें अपना सारा सामान बाँधकर चलनेकी पूरी तय्यारी करके और सब मामला ठीक-ठाक कर मुझसे आकर कहा—"मैं ही आपकी भेंट हूँ!" भला, यात्राके लिए इससे बढ़िया भेंट मुझे क्या मिल सकती थी? पियर्सनने मुझे इस कार्यमें कितनी मदद दी, दक्षिण-अफ्रिकामें उन्होंने कितना कार्य किया और मेरे लिए दरअसल वे कितने उपयोगी सिद्ध हुए, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब साल डेढ़-साल बाद मुझे फिजी जानेकी ज़रूरत हुई, तो उस समय भी पियर्सन मेरे साथ चलनेको उद्यत हो गये। फिजीकी यात्रामें उन्होंने जो सहायता मुझे दी, वह वास्तवमें अमूल्य थी। सितम्बर सन् १९२२ में इटलीमें एक दुर्घटनासे उनका देहान्त हो गया! वे रेलमें यात्रा कर रहे थे। ग़लतीसे दरवाज़ा खुला रह गया। वे एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखनेके लिए दरवाज़ेपर झुके और झुकते ही चलती रेलमेंसे गिर पड़े! मरते समय उन्होंने अपनी मातृभूमिके समान प्रिय भारत-भूमिका भी स्मरण किया था। पाठकोंको शायद यह बात न मालूम होगी कि युद्धके दिनोंमें भारतीय स्वाधीनताके विषयमें एक पुस्तक लिखनेके कारण ब्रिटिश सरकारने उन्हें पकड़कर दो-अढ़ाई वर्षके लिए नजरबन्द कर दिया था।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि कुली-प्रथाके बन्द करानेमें उनका कितना हाथ था, और प्रवासी भारतीय उनके कितने ऋणी हैं। शान्ति-निकेतनमें हम लोग उनकी स्मृति जीवित बनाये हुए हैं। उनके नामपर एक अस्पताल वहाँ

* मिस्टर ऐण्ड्रूजका पूरा नाम चार्ल्स फ्रीयर ऐण्ड्रूज है, और महात्माजी तथा उनके घनिष्ठ मित्र उन्हें 'चार्ली' के नामसे पुकारते हैं। यह उनका प्रेमका नाम है। —सं०

खुला हुआ है, पर आवश्यकता इस बातकी है कि दक्षिण अफ्रीका और फिजीके प्रवासी भारतीय भी अपने-अपने यहाँ उनका कुछ स्मारक बनावें। अपने और स्वर्गीय पियर्सनके मित्र श्रीनिशिभूषण मित्रसे, जो फिजीमें बारह वर्ष रह चुके हैं, मेरी प्रार्थना है कि वे इस विषयमें कुछ विचार करें।

'विशाल-भारत' के प्रवासी-अंकके लिए मैंने संक्षेपमें दो-चार बातें लिख दी हैं।

'विशाल-भारत'के प्रवासी-अंकके पाठकोंको मैंने संक्षेपमें यह बतला दिया है कि किस प्रकार परमात्माकी प्रेरणासे मैं प्रवासी भारतीयोंकि सेवा-कार्यमें धीरे-धीरे अग्रसर हुआ। जबसे मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया था, तबसे अब तक मैं संसारके प्रत्येक महाद्वीपकी यात्रा कर चुका हूँ। संसारके जिन जिन भागोंमें भारतीय बसे हुए हैं उन-उन द्वीपों तथा उपनिवेशोंकी मैंने यात्रा की है, और वहाँके प्रवासी भारतीयोंके अतिथि होनेका सम्मान प्राप्त किया है। हाँ, केवल एक द्वीप ऐसा रह गया है जहाँ मैं नहीं जा सका हूँ, और वह है मारीशस। जहाँ कहीं भी मैं गया हूँ, प्रवासी भारतीयोंने बड़े प्रेम-पूर्वक मेरा स्वागत किया है, जिससे मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया है। अपने जीवनमें सबसे अधिक प्रसन्नता मुझे इस बातसे हुई है कि शर्तबन्दीकी गुलामीका अन्त हो गया और अब किसी भी रूपमें उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

पहले-पहल सन् १९१३ में महात्मा गान्धीके सत्याग्रह-संग्राममें भाग लेनेके लिए मुझे दक्षिण-अफ्रिका जाना पड़ा था, और अब सन् १९३० है। जब मैं इन पिछले सत्रह वर्षोंपर दृष्टि डालता हूँ, तो मेरी अन्तरात्मासे यही शब्द निकल पड़ते हैं—"परमात्मा, यह तेरी ही कृपा है, जिससे मैं इन लम्बी और कष्टप्रद यात्राओंको सफलता-पूर्वक समाप्त कर पाया हूँ और थोड़ीसी सेवा अपने दीनहीन प्रवासी भारतीयोंकी कर सका हूँ। अब मैं लगभग साठ वर्षका हो गया; पर अब भी मैं स्वस्थ बना हुआ हूँ और अपना कार्य जारी रखनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है। परमात्मन, यह भी तेरी ही कृपाका फल है।"

प्रोफेसर धर्मानन्द कौशांबी

[लेखक :—श्री सौगत सुगति कांति]

किसी समय भारतवर्ष संसारके शिक्षकोंकी जन्मभूमि रही है। उसने वेदव्यास, कणादि, गौतम, भगवान बुद्ध और अन्य सहस्रों धर्मयाजकों, प्रचारकों और शिक्षकोंको जन्म दिया है। किसी समय भारतीय शिक्षकोंने अनन्त कठिनाइयाँ झेलकर पारस, बाल्हीक, तिब्बत, चीन, श्याम, ब्रह्मा, जावा, सुमात्रा, लंका, बाली, जापान और मेक्सिको आदि तकमें अपनी सभ्यता, संस्कृति और धर्मका प्रचार किया था। एक समय बौद्धधर्म संसारका सबसे बड़ा धर्म था। आज भी यह संख्याके हिसाबसे पृथ्वीके धर्मोंमें दूसरे नम्बरपर है।

भारतके उस स्वर्ण-युगने पलटा खाया। हम लोग अनेकों कारणोंसे अपने महत्त्व, अपनी संस्कृति और अपने ज्ञानको खो बैठे। वह बौद्धधर्म—आज भी जिसके अनुयायियोंकी संख्या केवल ईसाइयोंको छोड़कर, संसारमें सबसे अधिक है—अपनी जन्मभूमि भारतवर्षसे ऐसा लोप हो गया कि देशमें कोई उसका नाम लेनेवाला भी न रहा। संसारको शिक्षा देनेवाले भारतवासी दूसरोंके द्वारपर ज्ञानके भिखारी बनकर घूमने लगे। हमें स्वयं अपने पूर्वजोंकी योग्यतापर सन्देह होने लगा।



प्रोफेसर धर्मानन्द कौशांबी

परन्तु इस गये-गुज़रे ज़मानेमें भी, अज्ञानके इस निबिड़ अन्धकारमें भी यह रत्नगर्भा भारत-वसुन्धरा कभी-कभी ऐसे नर-रत्नोंको पैदा कर देती है, जो अपने ज्ञान और कार्यसे हमारा तथा हमारी मातृभूमिका मस्तक ऊँचा कर देते हैं और अपनेको उन पूर्वजोंकी सच्ची सन्तान सिद्ध कर देते हैं, जिन्होंने संसारके कोने-कोनेमें ज्ञानकी ज्योति फैलानेमें अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया था। प्रोफेसर धर्मानन्द कोशांबी भी भारतवर्षके ऐसे ही सुपुत्रोंमें हैं। इस बीसवीं शताब्दीमें भारतवर्षमें बौद्धधर्मके पुनरुत्थानकी कुछ-कुछ चेष्टा होने लगी है। इस चेष्टाका मुख्य श्रेय केवल दो व्यक्तियोंको है; एक श्री अंगारिका धर्मपालको, और दूसरे श्री धर्मानन्द कौशांबीको। श्री धर्मानन्दजीने बौद्धधर्मके ज्ञानका प्रकाश केवल भारतवर्ष ही में फैलानेकी चेष्टा नहीं की, बल्कि यूरोप और अमेरिकामें भी उसका सन्देश पहुँचाया। आजकल भी वे सोवियट रूसमें बौद्ध-साहित्य और प्राचीन भारतीय संस्कृतिका प्रसार कर रहे हैं। उनका जीवन नवयुवकोंके लिए उत्साहवर्धक तथा पाठकोंके लिए मनोरंजक होगा, इसलिए यहाँ संक्षेपमें उनका कुछ वृत्तान्त दिया जाता है।

बालक धर्मानन्दका जन्म ६ अक्टूबर सन् १८७६ को गोआ प्रान्तके सांखवाल नामक स्थानमें एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। उनके पिताका नाम श्री दामोदर और माताका नाम श्रीमती आनन्दी बाई था। वे अपने सात भाई बहनोंमें सबसे छोटे हैं। उनके माता-पिता मध्यमश्रेणीके गृहस्थ थे। बालक धर्मानन्द जब छै मासके थे, तभी उसके दाहिने पैरमें एक फोड़ा निकला, जो आपरेशन करानेके बाद अच्छा तो हुआ, परन्तु उससे पैरमें कुछ कमज़ोरी आ गई, जो आज तक वैसी ही बनी है।

बचपनमें धर्मानन्द प्रायः बीमार रहते थे। उनके गाँवमें शिक्षाका भी कोई अच्छा प्रबन्ध न था, इसलिए उनकी शिक्षा नियमित रूपसे न हो सकी। फिर भी जो कुछ थोड़ी-बहुत शिक्षा देहातमें उपलब्ध थी, उसे मेधावी धर्मानन्द बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेते थे। उनकी इच्छा संस्कृत पढ़नेकी थी, परन्तु गाँवमें संस्कृत-शिक्षाका अभाव होनेसे कुछ दिन तक उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। उनके पिता वृद्ध थे, इसलिए उन्हें घरपर ही रहना पड़ा। वे घरपर ही रहकर अपना कर्तव्य पालन करते थे, परन्तु साथ-ही-साथ समय मिलनेपर विविध ग्रन्थोंका अध्ययन भी जारी रखते थे।

कभी-कभी देखा जाता है कि मनुष्यके बाल्यावस्थाकी साधारण घटना उसके सम्पूर्ण जीवन-स्रोत ही को बदल देती है। बालक धर्मानन्दके जीवनमें भी एक ऐसी ही घटना घटी। एक दिन उन्होंने 'बाल-बोध' नामक मराठी मासिक पत्रमें भगवान बुद्धका चरित्र पढ़ा। इस चरित्रने उनके मनपर बड़ा स्थायी प्रभाव डाला। उन्होंने उस लेखको पचीसों बार पढ़ा, और महीनों तक उसे पढ़ते रहे। उसी समयसे उनका मन भगवान बुद्धकी शिक्षाओं और आदर्शोंकी ओर झुक गया। बुद्ध भगवानके महान त्यागने उन्हें बहुत आकर्षित किया। संसारके उस महान शिक्षकके प्रति उनके कोमल बाल-हृदयमें उस समय भक्ति और श्रद्धाका जो बीज आरोपित हो गया था, आज वह फल-फूल और पल्लवोंसे भरपूर दिखाई देता है।

धर्मानन्दके हृदयमें बौद्धधर्मके ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा दिन-प्रतिदिन प्रबल होने लगी, परन्तु उस देहातमें उसके पूरा होनेका कोई साधन न था। उस समय उनके पिताकी मृत्यु हो चुकी थी, इसलिए उन्होंने गृह-त्यागका निश्चय किया। प्रचलित प्रथाके अनुसार उनका विवाह बचपन ही में हो गया था, और उस समय उनके एक कन्या भी थी। उन्हें अपने इस बाल्य विवाहपर बड़ा पश्चात्ताप था। खैर, अन्तमें यह ज्ञानका भिखारी भी भगवान बुद्धकी भाँति एक दिन घरसे केवल दो रुपये लेकर ज्ञानकी खोजमें निकल पड़ा।

घर छोड़ते समय उनकी केवल दो ही इच्छाएँ थीं; एक बौद्धधर्मका ज्ञान प्राप्त करना, और दूसरी संस्कृतका अध्ययन। घर छोड़कर पहले वे पूना गये और वहाँ सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर भंडारकरसे मिले। भंडारकर महोदयने उनके रहनेके लिए प्रार्थनासमाजमें प्रबन्ध कर दिया, और वहाँपर उनका विद्याभ्यास प्रारम्भ हुआ; परन्तु यह अधिक दिन न चला

सका, क्योंकि बौद्धधर्मके प्रति उनका झुकाव देखकर उनके शिष्य और हितैषी उनसे अप्रसन्न रहने लगे। अन्तमें उन्हें पूना छोड़ना पड़ा।

पूनासे वे अपने एक मित्र डा० वागल्याके पास ग्वालियर चले गये। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद उन्होंने काशी जाकर विद्याभ्यास करनेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु उनके मित्रने उन्हें वहीं रहकर नौकरी करनेकी सलाह दी। लेकिन कौशांबीने अपना निश्चय नहीं छोड़ा। पूना छोड़नेके साथ-ही-साथ उन्होंने चोटी और यज्ञोपवीतको त्यागकर भगवा वस्त्र ग्रहण कर लिया था, लेकिन काशी पहुँचनेपर मालूम हुआ कि वहाँ केवल शिखा सूत्रधारी ब्राह्मण ही शिक्षा पा सकते हैं, इसलिये उन्हें वहाँ पुनः शिखा-सूत्रको ग्रहण करना पड़ा। अनेक कठिनाइयोंके बाद, काशीके बालाजीके अन्न-क्षेत्रमें उनके भोजनका और श्री गंगाधर शास्त्रीके यहाँ विद्याभ्यासका प्रबन्ध हुआ। काशीमें विद्यार्थी धर्मानन्दको बड़ी-से-बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ीं। वस्त्रके लिए उन्हें दो-तीन रुपयेकी बड़ी आवश्यकता थी; जब कहींसे उसका प्रबन्ध न हो सका, तो उन्होंने अमरकोषकी एक प्रति सवा रुपयेमें बेंचकर अपने शरीरको ढका। क्षेत्रमें भोजनके उपरान्त एक पैसा दक्षिणा भी मिलती थी। धर्मानन्द उस पैसेसे रातमें दिएके लिए तेल मोल लेते थे। वस्त्रकी कमीके कारण उन्होंने दिया जलाना बन्द कर दिया और उस पैसेको वस्त्र खरीदनेके लिए एकत्रित करने लगे। रातके अन्धकारमें बैठकर वे अष्टाध्यायीकी पुनरावृत्ति करते थे। इस प्रकार कठिनाइयोंको झेलकर भी धर्मानन्द विद्योपार्जन करते रहे।

काशीमें रहते समय धर्मानन्दने दुर्गानाथ नामक एक नैपाली विद्यार्थीसे परिचय प्राप्त किया। उन्होंने उससे इस आशासे घनिष्ठता बढ़ाई कि शायद उसके द्वारा वे कभी नेपाल पहुँच सकें, क्योंकि वे जानते थे कि भारतवर्षमें नेपाल ही ऐसा स्थान है, जहाँ बौद्धधर्मका अस्तित्व अब तक मौजूद है। उनकी वह आशा सफल भी हुई, और सन् १९०२ के फरवरी मासमें उन्होंने अपने उस मित्रके साथ नेपालकी यात्रा की। नेपाल जानेकी उनकी उत्कंठा केवल बौद्धधर्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ही थी। अनेकों कष्ट सहकर और बड़ी आशासे वे नेपाल पहुँचे, परन्तु वहाँ पहुँचकर उनकी समस्त आशाओंपर पानी फिर गया। वहाँ उन्होंने देखा कि वहाँके ब्राह्मणों और बौद्धोंमें इतना वैमनस्य था कि लोगोंकी धारणा थी कि ब्राह्मणको बौद्ध-स्तूपके देखने-मात्रसे स्नान करना चाहिए। उन्हें यह विषम वैमनस्य देखकर बड़ा दुःख हुआ। वे बौद्ध-स्तूपको देखनेके लिए उत्कंठित थे, परन्तु उनका ब्राह्मण मित्र इसका बड़ा विरोधी था। अन्तमें वे एक दिन बिना किसीसे कुछ कहे ही, अकेले ही बौद्ध-स्तूपके दर्शनके लिए चल दिये। वहाँ उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उन्हें और भी खेद हुआ। उन्होंने देखा कि उस पवित्र मन्दिरमें कुछ तिब्बतीय साधु रमल फेंक कर लोगोंकी भाग्य-गणना करके अपनी दूकानदारी चला रहे हैं। मन्दिरके पास ही बिक्रीके लिए कटे बकरे रक्खे थे। यह सब देखकर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। बहुत तलाश करनेपर भी उन्हें नेपालमें कोई विद्वान बौद्ध-साधु न मिल सका। अब नेपालमें रहना व्यर्थ था, इसलिए वे फिर भारतवर्ष वापस आये और सीधे बुद्ध-गया जाकर पवित्र बोधिद्रुम और भगवान बुद्धकी मूर्त्तिका दर्शन करके अपना चित्त स्थिर किया।

उस समय बुद्ध-गयामें एक सिंहली बौद्ध-भिक्षु रहते थे। उन्होंने धर्मानन्दको सलाह दी कि बौद्धधर्मके अध्ययनके लिए लंका जाना उचित है। धर्मानन्द बौद्धधर्मके ज्ञानके पिपासु थे, वे तुरन्त ही लंका जानेके लिए प्रस्तुत हो गये परन्तु लंका तक पहुँचनेका उनके पास कोई साधन नहीं था। उस बौद्ध-भिक्षुने उन्हें बताया कि कलकत्ते जाकर वहाँकी महाबोधि-सभासे सहायता प्राप्त हो सकती है, परन्तु उनके पास कलकत्ते पहुँचनेका भी साधन नहीं था। बुद्ध-गयाके महन्तसे उन्होंने प्रार्थना की, परन्तु एक रुपयासे अधिक सहायता प्राप्त न हो सकी। उन्होंने उस बौद्ध-भिक्षुसे कुछ सहायताकी आशा की, मगर उसने यह कहकर साफ़ इनकार कर दिया—"तुम ब्राह्मण लोग बड़े ठग हो। एक ब्राह्मण लंका जानेका बहाना करके

मुझसे आठ रुपया ठग ले गया है, इसलिए अब मैं किसीको एक कौड़ी भी न दूँगा।' ख़ैर, अनेकों कष्ट सहनेके बाद, वे कलकत्ते पहुँचे, और वहाँ बोधि-सभाका पता लगाकर उससे सहायताकी प्रार्थना की। सभाके कार्यकर्ताओंने चन्दा करके उनके लंका पहुँचनेकी व्यवस्था कर दी। इस प्रकार वे लंका पहुँच गये।

कलकत्तेकी महाबोधि-सभाके जन्मदाता अंगारिका धर्मपाल उस समय लंकामें थे। उन्होंने धर्मानन्दको लंकाके सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्यालय 'विद्योदय' के प्रधान भिक्षु अध्यापक श्री सुमंगलके पास भेज दिया। श्री सुमंगल उस समयके एक प्रसिद्ध पंडित थे और उनकी कीर्ति यूरोप तक फैली हुई थी। उन्होंने धर्मानन्दसे संस्कृतमें वार्तालाप किया, और थोड़ी ही बातचीतसे सन्तुष्ट होकर विद्यालयमें उनके रहनेका प्रबन्ध कर दिया। लंकाके भोजनसे अपरिचित होनेके कारण थोड़े दिनों तक उन्हें कुछ कष्ट भी उठाना पड़ा।

वे संस्कृत-भाषा अच्छी तरह जानते थे। बहुतसे सिंहली भिक्षुओंने उनकी संस्कृतकी प्रशंसा भी की थी। यदि वे चाहते, तो लंकामें संस्कृतके अध्यापक बनकर अपना जीवन व्यतीत करते, परन्तु उन्हें तो दूसरी ही लगन थी। उनकी एकमात्र इच्छा बौद्धधर्मका ज्ञान प्राप्त करके भारतमें उसके पुनरुद्धारकी चेष्टा करना थी, और इसीलिए उन्होंने पत्नी, पुत्र, मित्र, देश आदि सब कुछ त्याग दिया था। अब उन्होंने गृहस्थाश्रम त्यागकर विधिवत् दीक्षा लेनेका निश्चय किया, और एक दिन महास्थविर श्री सुमंगलसे दीक्षा लेकर उन्होंने ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवेश किया।

ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवेश कर उन्होंने नियमितरूपसे विद्याभ्यास आरम्भ किया। उन्होंने केवल आठ ही दिनमें सिंहली वर्णमालाका अभ्यास कर लिया, और केवल दो मासमें 'कच्चायन' व्याकरणको समाप्त कर दिया। लोग उनकी प्रखर बुद्धि और मेधा-शक्तिको देखकर चकित थे। इसके कई वर्ष बाद, जब इन पंक्तियोंका लेखक लंकामें विद्याभ्यासके लिए गया था, तब उसने वहाँवालोंको भी धर्मानन्दकी प्रशंसा करते सुना था।

केवल एक वर्षके भीतर ही उन्होंने पाली भाषाका ऐसा शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया कि वे धर्मग्रन्थोंको स्वयं पढ़कर भलीभाँति समझने लगे। इसके बाद आपने अंग्रेज़ी भाषाका भी अभ्यास आरम्भ कर दिया। सिंहल-द्वीपका भोजन उनकी रुचिके अनुसार न था, इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, और इसी कारण उन्हें जल्द ही वापस लौटना पड़ा।

बड़ी अनिच्छापूर्वक धर्मानन्द सन् १९०३के मार्च मासमें मद्रास आये। उस समय वे भिक्षु थे, अतः केवल तीन पीत वस्त्रोंके सिवा उनके पास और कुछ न था। उन्हें कलकत्ते आनेका भाड़ा न मिल सकनेके कारण कुछ मास तक मद्रासमें रहना पड़ा। अन्तमें आप एक जर्मन युवकके साथ ब्रह्मा गये। ब्रह्मामें धर्मानन्द और उस जर्मन युवकने एक प्रसिद्ध मठमें भिक्षुकी दीक्षा ली। ब्रह्मामें चार मास रहनेके बाद धर्मानन्द भारत लौट आये। वह जर्मन भिक्षु अब तक भिक्षुके रूपमें सिंहल-द्वीपमें वास करता है। भारतमें धर्मानन्दका विचार किसी निर्जन तीर्थस्थानमें रहकर योगाभ्यासका था। उन्होंने भिक्षापर निर्वाह करके अनेकों तीर्थ स्थानोंका दर्शन किया, और अन्तमें 'कुशीनारा' में कुछ दिन रहकर कलकत्ते पहुँचे। वहाँसे फिर वे ब्रह्मा गये। वहाँ वे इस विचारसे गये थे कि किसी समशीतोष्ण पहाड़पर जाकर ध्यान करेंगे। दो वर्ष ब्रह्मामें रहनेके बाद, वे फिर कलकत्ते लौट आये, और धर्मांकुर-मठमें ठहरे। इस बीचमें उन्होंने बौद्ध-तत्त्वज्ञानका अच्छा परिचय प्राप्त कर लिया था। कलकत्तेसे आपका विचार नागपुर जानेका था, परन्तु श्री हरिनाथ दे ने आपको यहीं रोक लिया। कुछ समय बाद, वे महाशय विलायत चले गये, तब धर्मानन्दने भी महायान बौद्धधर्मका अध्ययन करनेके लिए शिकमकी राह ली। भिक्षुवेशमें शिकम जानेमें असुविधा देखकर उन्होंने पुनः गृहस्थी बाना धारण किया।

सन् १९०६ में दे महाशयके वापस आनेपर वे फिर कलकत्ते लौट आये। अभी तक तो उन्होंने केवल ज्ञानका संग्रह किया था, लेकिन अब उनकी इच्छा उसे बाँटनेकी हुई। अतः उन्होंने

कलकत्तेके नेशनल कालेजमें पाली अध्यापकका पद स्वीकार कर लिया। अब जब उन्होंने केवल ज्ञानके प्रचारका ही व्रत ले लिया, तो अपनी निर्दोष पत्नीको सदाके लिए छोड़े रहना उन्हें उचित प्रतीत न हुआ, इसलिए उन्होंने उन्हें भी बुला लिया। इसके बाद वे कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें भी १०० रु० मासिकपर लेक्चरर नियत हो गये। इस समय महाराज गायकवाड़से उनकी भेंट हुई। महाराजने उनसे महाराष्ट्रमें रहकर बौद्ध साहित्यका प्रचार करनेका आग्रह किया, और इसके लिए ५०) मासिक देना भी स्वीकार किया। कलकत्ता-यूनिवर्सिटीके स्वनामधन्य वायस-चान्सलर सर आशुतोष मुकर्जी तथा दे महाशयसे परामर्श करनेके बाद धर्मानन्दने गायकवाड़-नरेशकी बात स्वीकार कर ली। इस बीचमें कलकत्ता-विश्वविद्यालयने उनका वेतन बढ़ाकर २५० रु० दिया, और सर आशुतोषने उनसे तीन वर्ष तक और ठहरनेका अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने वचनबद्ध होनेके कारण रुपयेकी परवाह न करके मुकर्जी महाशयके अनुरोधको अस्वीकार कर दिया, और वे बम्बई चले गये। धर्मानन्दने बम्बईमें रहकर बौद्ध साहित्यकी काफी सेवा की। उन्होंने बम्बई-यूनिवर्सिटीमें पाली-भाषाको दाखिल कराया, और महाराज गायकवाड़की मददसे बौद्धधर्मपर कई पुस्तकें भी प्रकाशित कराईं।

धर्मानन्दका बम्बई आना बड़ा हितकर हुआ। वहाँपर उनकी अमेरिकाकी सुप्रसिद्ध हारवर्ड-यूनिवर्सिटीके संस्कृत-प्रोफेसर श्री जे० एच० वुडसे भेंट हुई। शीघ्र ही यह भेंट मैत्रीमें परिणत हो गई, और इससे धर्मानन्दके जीवनका एक नया ही पृष्ठ खुल गया। सन् १९१० में डाक्टर वुडने उन्हें लिखा कि हारवर्डके डाक्टर वारनने 'विशुद्धि मार्ग' ग्रंथको छपानेका कार्य आरम्भ किया है, उसमें आपकी सहायताकी आवश्यकता है, इसलिए आप तुरन्त अमेरिका चले आवें। साथ ही उन्होंने १८००) रु० मार्ग-व्ययके लिए भी भेजा। धर्मानन्दने गायकवाड़-महाराजकी मंजूरी मँगाकर हारवर्डको प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने 'विशुद्धि मार्ग' का सम्पादन-कार्य पूरा किया, और सन् १९११ के आरम्भमें स्वदेशको वापस आये। अपने अमेरिकन प्रवासमें धर्मानन्दने अनेकों नई बातें सीखीं। उन्हें वहाँपर यह भी शिक्षा मिली कि ग्रंथको किस प्रकार छपाना चाहिए।

स्वदेश आकर उन्होंने पूनामें रहना आरम्भ किया, और वहाँके प्रसिद्ध फर्ग्यूसन-कालेजमें पालीके अध्यापकका काम करने लगे। प्रोफेसर भागवत, राजवाडे इत्यादि सुप्रसिद्ध विद्वान् उनके शिष्यों में से थे।

सन् १९२० में उन्हें फिर अमेरिका जाना पड़ा। वहाँ जाते समय वे पुनः लंका आये थे। इस बार वे अपनी कन्या और पुत्रको भी शिक्षाके लिए अमेरिका ले गये। वहाँसे लौटकर वे महात्माजीकी प्रसिद्ध गुजरात-विद्यापीठमें रहे थे।

सन् १९२६ में वे अपनी पत्नीको तीर्थाटन करानेके लिए गयाजी आये थे। उस समय मुझे भी उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी इच्छा बौद्धधर्मपर एक विस्तृत ग्रन्थ लिखनेकी है। वे इसके लिए कुछ समय तक किसी निर्जन स्थानमें रहना चाहते थे, परन्तु इसी समय आपको सोवियट रूस जाना पड़ा, इसलिए उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। आजकल भारतका यह तेजस्वी विद्वान् सुदूर बोल्शेविक रूसके विश्वविद्यालयमें भारतकी प्राचीन संस्कृति, भारतकी प्राचीन सभ्यता तथा भारतके प्राचीन बौद्धधर्मका प्रकाश फैला रहा है।

* * *

दीनबन्धु सी० एफ० एंड्रूज़

[लेखक :—श्री विधुशेखर भट्टाचार्य शास्त्री, शान्तिनिकेतन बोलपुर]

सम्पदं स्वयमुपागतां पुरो, मन्यसे ननु तृणाय लीलया ।
स्वेच्छयोरसि पुनर्विपत्ततिं मालिकामिव नवां बिभर्ष्यहो ॥१॥

सम्पत्तिके स्वयं सामने उपस्थित होनेपर भी तुम उसे अनायास तृणके समान मानते हो, और विपत्तियोंको नवीन मालाके समान अपनी इच्छासे हृदयपर धारण करते हो ।

त्यज्यसे यदि जनैर्निजैरपि छिद्यसे कुवचनैश्च मर्मसु ।
पीड्यसेऽथ सततं यथा तथा सत्यमल्पमपि नोत्सृजस्यहो ॥२॥

चाहे तुम्हारे अपने ही आदमी तुम्हारा त्याग क्यों न करें, चाहे तुम्हारा मर्मस्थान कुवचनोंसे क्यों न छेद दिया जाय, तुम्हें दिन-रात चाहे जैसी पीड़ा क्यों न पहुँचाई जाय, तुम कदापि थोड़ेसे भी सत्यका त्याग नहीं करते ।

नात्मने किमपि नाम काम्यते दीनदैन्यदलने धृतं व्रतम् ।
दुष्करं जनहिताय कुर्वता खिद्यते न कलयापि च त्वया ॥३॥

तुम अपने लिए कुछ भी नहीं चाहते । दीनोंकी दीनताको दलन करनेके लिए तुमने व्रत धारण किया है । जनताके हितके लिए दुष्कर कार्य करते हुए भी तुम ज़रा भी खिन्न नहीं होते ।

साधुना जयसि तम साधु यत् प्रीयसे द्विषति चापि सन्ततम् ।
कुप्यतेऽपि नहि कुप्यसि भ्रमेऽप्येवमेव चरितं तवाद्भुतम् ॥४॥

जो भला नहीं है, उसे तुम भलाईसे जय करते हो । जो तुमसे द्वेष करता है, तुम उसपर सदैव प्रेम करते हो । जो तुमपर क्रोध करता है; उसपर भी तुम भूलकर भी क्रोध नहीं करते । तुम्हारा चरित्र अद्भुत है ।

एकतः सुचिरवासतः स्वयं दृष्टमत्र' तव यत्स्वचक्षुषा ।
चिन्तयस्तदखिलं निरन्तरं चित्तमस्य मम विस्मितं परम् ॥५॥

एक ही स्थानमें दीर्घकाल तक वास करते हुए मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे तुम्हारा जो कुछ चरित देखा, उस सबका निरंतर चिन्तन करते हुए मेरा चित्त अतीव चमत्कृत हो रहा है ।

वाच्यमन्यदिह किं, विचारयन् वेद्म्यहं मनसि सुस्फुटं खलु ।
ब्राह्मणोत्तमतया त्वमेव मे नेत्रवर्त्मनि समागतोऽधुना ॥६॥

और अधिक क्या कहूँ ? मैं अपने मनमें विचार करके स्पष्टतया जानता हूँ कि तुम्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें इस युगमें मेरे नयन-पथमें आये हो ।

तां त्वदीयघनबाहुवेष्टनाश्लेषणोद्भवसुखावगाढताम् ।
विस्मरेन्ननु कथं मनो मम त्वां नमामि शिरसा सुहृद्वर ।७॥

हे मेरे प्यारे मित्रवर्य, तुम्हारी दोनों भुजाओंके सघन घेरेमें निविड़ आलिंगनसे उत्पन्न होनेवाले सुखमें मेरे गम्भीर रूपसे डूब जानेको मेरा मन कैसे भूल जाय ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

प्रवासी भारतीय

[लेखक :—श्री बी० वैंकटपति राजू, एडवोकेट सी-आई-ई]

भारतवासी समस्त संसारमें फैले हुए हैं । वे जहाँ कहीं हैं, वहाँ ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे वे उन सम्पूर्ण अधिकारों और हक़ोंके अधिकारी हैं, जो विलायतमें उत्पन्न हुए ब्रिटिश प्रजाजनको प्राप्त हैं । सन् १८१८ के पार्लामेन्टरी ऐक्टके अनुसार ब्रिटिश प्रजाको ये अधिकार मिले हैं, किन्तु कहने और करनेमें बड़ा अन्तर है । यदि भारतवर्ष स्वतंत्र हो, तो वह अन्य देशके नागरिकोंके अधिकार छीन लेनेकी धमकी देकर, अपने नागरिकोंके लिए उन देशोंमें

समान अधिकारका दावा कर सकता है। यदि ब्रिटेन भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेमें चूकता है, तो उसपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। सन् १८७० के 'नेचुरलाइज़ेशन ऐक्ट' के अनुसार कोई विदेशी भी ब्रिटिश प्रजाके समान अधिकार प्राप्त कर सकता है। वह राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त करके पार्लामेन्टके सदस्य होनेके योग्य भी हो सकता है। विदेशी सरकारोंकी तो बात ही छोड़ दीजिए, ज़रा स्वराज्य-प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशोंकी दशापर ही विचार कीजिए। कैनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड इत्यादि अपने देशमें भारतीयोंको बसने नहीं देते। हाँ यात्रियों और विद्यार्थियोंको कुछ निश्चित समयके लिए आनेकी अनुमति दे देते हैं। ब्रिटिश सरकार कह सकती है कि ये स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश हैं और उन्हें अपने घरेलू मामलोंमें पूर्ण स्वतंत्रता है, मगर ज़रा क्राउन कालोनीज़ और प्रोटेक्टोरेट्सको देखिए। इन सबमें भारतीय बहुत बड़ी संख्यामें बसे हुए हैं। दक्षिण-अफ्रिकाकी यूनियन और मन्डेटेड भूभागोंके सिवा, वे लंका, फिजी, ब्रिटिश-गायना, जमैका, मारीशस, ट्रिनीडाड, स्ट्रेट सेटेलमेंट, फेडरेटेड मलाया स्टेट्स आदिमें भी बसे हैं। हमें मालूम हुआ है कि प्रवासी भारतीय संसारके चौंतीस देशोंमें हैं और उनकी संख्या २० लाखसे अधिक हैं, जब ब्रिटेनने बड़ी उदारता दिखाकर गुलामीकी प्रथाका अन्त कर दिया, तब कई उपनिवेशोंमें प्लेन्टरोंको सहायता देनेके लिए उसने शर्तबन्दी कुली-प्रथा चलाई! यह प्रथा प्रायः गुलामीकी ही भाँति थी। गुलामोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारोंमें और इन कुलियोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारमें कोई विशेष अन्तर नहीं था। इधर कुछ ब्रिटेन भी चेता और कुछ भारतकी चेतना भी जाग्रत हुई। इसका फल यह हुआ कि यह शर्तबन्दी कुली-प्रथा उठा दी गई। मुझे इस बातका अब तक पता नहीं है कि समस्त उपनिवेशोंने मज़दूरोंके कन्ट्राक्ट तोड़नेपर सज़ाकी जो व्यवस्था बना रखी थी, उसे उठा दिया या अभी नहीं। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि भारतीय कुलियोंकी सहायता न मिली होती, तो कई उपनिवेश अपनी वर्तमान समृद्धशाली अवस्थाको न पहुँच सके होते, लेकिन लोगोंकी स्मरणशक्ति कम हुआ करती है, और कृतज्ञता भी एक दुर्लभ वस्तु है। लंकाके चाय और रबरके स्टेटोंपर काम करनेके लिए दक्षिण-भारत प्रतिवर्ष सहस्रों प्रवासी भारतीय नवयुवक देता है। वहाँ अब आठ लाख (पहले नौ लाख) थे, भारतीय हैं। प्रतिवर्ष औसतमें डेढ़ लाख भारतीय लंकाको जाते और आते हैं। वहाँके दस लाख तामिलोंमेंसे आधेके लगभग मज़दूरीके लिए वहाँ ले जाये गये हैं। लंकाकी सरकारने इन बसनेवाले प्रवासी मज़दूरोंको २६,००० एकड़ भूमि, १५) रु० प्रति एकड़की दरसे, जो पाँच वार्षिक किश्तोंमें अदा किया जा सकता था, देनेका वादा किया था। इसमेंसे कितने एकड़ भूमि उन्हें दी गई, मेरे पास इसके आँकड़े नहीं हैं, मगर यह बात ज़रूर है कि लंकामें जो मज़दूरी मिलती है, वह अन्य सब उपनिवेशोंकी अपेक्षा थोड़ी है। पूर्वी अफ्रिकाके सुरक्षित देशमें—मुम्बासा, नैरोबी, किसेम आदिमें भारतीय इस पक्के वादेपर लाये गये थे कि समुद्र-तट तथा किनके बीचका और फोर्ट टरनन और झीलके बीचका भूभाग उन्हें दे दिया जायगा। वहाँ वे ग्राम बसा कर रहेंगे। प्रत्येक बसनेवालेको पहले ५० एकड़ ज़मीन मिलेगी, और फिर उसे १५० एकड़ भूमि खरीदनेका अग्रिम अधिकार होगा।

परन्तु पहले तीन वर्ष तक ३० एकड़ भूमिपर खेती करनेके बाद ही वे डेढ़ सौ एकड़ भूमिमेंसे कुछ खरीद सकेंगे। भूमिकी क़ीमत २) रु० प्रति एकड़ लगेगी और पहले पाँच वर्ष तक कुछ लगान भी नहीं देना पड़ेगा। बादमें बंगालके इस्तेमरारी बन्दोबस्तके ढंगपर लगान निश्चित कर दिया जायगा। आबपाशीका इन्तज़ाम सरकारके ज़िम्मे था। इसके अतिरिक्त, पहले पाँच वर्ष तक सरकार प्रवासियोंको किराये, बैल, कृषिके औज़ार आदिके लिए तीन सौ रुपये प्रतिव्यक्ति तक आर्थिक सहायता भी देगी। उस समय तो यह सब वचन दिये गये, परन्तु अब धीरे-धीरे पूर्वी अफ्रिका गोरोंका देश हो रहा है! पहाड़ियोंपर और समुद्र

तटपर गोरोंकी संख्या बढ़ रही है। अब जब उसे स्वराज्य देनेका समय आया, तब भारतीयोंपर बड़े अपमान-जनक प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे। अब वहाँ प्रत्येक स्थानमें झगड़ा दिखलाई देता है। गोरे लोग फावड़ा चलवानेके लिए सदा भारतीयोंका उपयोग किया करते हैं, मगर जब भारतीय अपने समान अधिकार—जिनका उन्हें वचन दिया गया था—माँगते हैं, तब गोरे उन्हें निकाल बाहर करते हैं! जब मिस्टर मान्टेगूने जर्मनीसे छीने हुए प्रदेशोंमेंसे टांगानिका भारतीयोंको बसनेके लिए देना चाहा था, उस समय सरकारने चालाकीसे भारतीयोंके हिस्सेका अपहरण कर लिया। इस विषयमें जो कुछ पत्र-व्यवहार हुआ है, उससे सरकारकी गुप्त बेईमानी प्रकट हो जाती है। उगांडा रेलवे भारतीय मजदूरों ही की बनाई हुई है। जिस समय वे मज़दूर वहाँ ले जाये गये थे, उस समय उनसे जो प्रतिज्ञाएँ की गई थीं, वे शीघ्र ही भुला दी गईं! समुद्री तटका विकास भी भारतीयों ही ने किया। गोरोंके अफ्रिकामें जाकर बसनेका विचार करनेके कई शताब्दी पहले ही भारतीय वहाँ जाकर रहे थे। अब यह कहा जायगा कि भारतीयोंके लिए गोरोंके साम्पत्तिक स्वार्थोंमें गड़बड़ी नहीं की जा सकती, लेकिन भारतीयोंके साम्पत्तिक स्वार्थोंके लिए क्या होगा? गोरे कहते हैं कि अफ्रिकाके आदिम निवासियोंके स्वत्वोंकी रक्षा करनी है, भारतीयोंके स्वार्थोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और पूँजीपति गोरोंके स्वार्थ भूले नहीं जा सकते। अत: इन सबके स्वार्थोंकी रक्षाके लिए जो प्रस्ताव हों, उनपर पक्षपातहीन होकर विचार करना चाहिए; परन्तु यह पक्षपातहीनता है कहाँ? भला, कोई भी, दूसरोंको आनेका उचित साधन दिये बिना और अफ्रिकामें पहले बसे हुए लोगोंकी—चाहे वे हब्शी हों या भारतीय अथवा गोरे—न्यायोचित रक्षा किये बिना, अफ्रिका जैसे महादेशपर अपना एकाधिपत्य कैसे स्थापित कर सकता है? यद्यपि हिल्टन यंग कमीशनने वोट-दाताओंकी एक सम्मिलित सूची बनानेके पक्षमें राय दी है, मगर उसमें भी यह शर्त लगी हुई है कि यदि वहाँके गोरे उसे स्वीकार कर लें। यदि भारतवर्षमें स्वराज्य देनेके पहले नौकरशाहीकी स्वीकृति माँगी जाय, तो क्या वह स्वीकृत दे देगी? अफ्रिकामें यदि प्रतिनिधित्व जनसंख्याके आधारपर हो, तो यूरोपियन कहींके न रहें। तब सबसे अच्छा उपाय यही है कि एक तिहाई प्रतिनिधित्व भारतीयोंका हो, एक तिहाई यूरोपियनोंका और एक तिहाई आदिम निवासी हब्शियोंका। इस प्रकार सभीके स्वार्थोंकी रक्षा हो सकेगी। जबतक भारतीयोंके स्वार्थ पूर्णतया सुरक्षित न हो जायँ तब तक पूर्वी अफ्रिकाको स्वराज्य देकर वहाँके शासनमें यूरोपियनोंको प्रधानता न देना चाहिए। दक्षिण-अफ्रिकामें भी इसी प्रकारकी कठिनाइयाँ हैं जिन्हें हल करनेके लिए बड़ी राजनीतिज्ञताकी आवश्यकता है। राइट आनरेबुल श्रीनिवास शास्त्री और सर के० वी० रेड्डी वहाँपर भारतीयोंके स्वत्वोंके लिए लड़ रहे हैं, मगर फिर भी उनका निपटारा अबतक दृष्टिगोचर नहीं होता है। जहाँ कहीं भूमि आदिम निवासियोंकी है, मेहनत भारतीयोंकी है और पूँजी गोरोंकी है, वहाँ वे आपसमें न्याय-पूर्वक ईमानदारीसे समझौता क्यों नहीं कर लेते? लंका और फेडरेटेड मलाया स्टेट्सके बाद भारतीय बड़ी संख्यामें ब्रिटिश-गायनामें मिलते हैं। वहाँ कोई १,२५,००० भारतीय हैं। दीवान बहादुर केशव पिल्लेका जो डेपुटेशन ब्रिटिश-गायना गया था, उसने अपनी रिपोर्टमें वहाँकी असली दशा दिखलाई है, फिर भी सरकारने उसकी सब शिफारिशें मंजूर नहीं की। ब्रिटिश-गायनाके हब्शियोंके पीपुल्स-एसोसियेशनने उससे पहले ही शिकायत की थी कि भारतीय मज़दूरोंके आगमनसे उनकी मज़दूरी घट गई है और उनका किसान हो कर बसना भी कठिन हो गया है। उन्होंने यह भी बतलाया था कि यदि भारतीय मज़दूर लाये जाते हैं, तो उनका समस्त खर्च प्लैन्टरोंको—जिनके फायदेके लिए वे लाये जाते हैं—उठाना चाहिए। हमें वर्तमान किसानोंको प्रोत्साहन देना चाहिये, चाहे वे हब्शी हों या भारतीय। इसके अतिरिक्त रहन-सहनके स्टैन्डर्डको उच्च बनाये रखनेके लिए वहाँ भी आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्डकी भांति

क़ानूनके द्वारा कम-से-कम मज़दूरी निर्धारित कर देनी चाहिये। ब्रिटिश गायनामें बहुतसे प्राकृतिक द्रव्य साधन (Natural Resorces) हैं, और वहाँ बहुतसा भूभाग खाली पड़ा है। ब्रिटिश-गायना भारतीयोंके स्वागतके लिए तय्यार है, मगर उन्हें वहाँ उन्हीं शर्तोंपर जाना चाहिए, जिनकी सिफारिश श्री केशव पिल्लेके डेपुटेशनने की थी।

एक दूसरा उपनिवेश मारिशस है, जहाँ बहुतसे भारतीय हैं। इस द्वीपकी कुल आबादी ३,७५,००० है जिसमें २,६५,००० भारतीय हैं। इनमेंसे ५५,००० तेलगू हैं। यह उपनिवेश अब अधिक भारतीयोंको नहीं चाहता क्योंकि वहाँका क्षेत्रफल केवल ७१६ वर्गमील है, और बसनेवालोंको देनेके लिए सरकारी भूमि भी नहीं है। मारिशसमें बहुतसी भूमि भारतीयोंके अधिकारमें है। हमें और अधिक भारतीयोंको भेजकर उनके सुखी जीवनमें खलल न डालना चाहिए, क्योंकि केवल कुछ अस्थायी कामोंके लिए प्लैन्टरोंको सस्ते मज़दूरोंकी जो आवश्यकता हो, उसे छोड़कर, उपनिवेशमें और अधिक भारतीयोंका जाना लाभदायक नहीं है।

लंकाकी भांति फेडरेटेड मलाया स्टेट्समें भी लगभग ६,६०,००० भारतीय हैं। भारत-सरकारने वहाँ और लंका—दोनों स्थानोंमें अपने एजेन्ट नियत किये हैं। इन दोनो स्थानोंके भारतीयोंकी आर्थिक दशा खराब है। उनके राजनैतिक अधिकार पूरे या काफ़ी तौरपर स्वीकार नहीं किये जाते।

फिजीकी मैंने स्वयं यात्रा की है। वहाँ सन् १९२१ की मनुष्य-गणनाके अनुसार ६०,६३४ भारतीय, ८४,४७५ फिजियन, ३,८७८ यूरोपियन और ३,२७६ अन्य देशवासी थे। हमारे डेपूटेशनके सामने वहाँके भारतीयोंने जो शिकायतें पेश की थीं, वे चार शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती हैं—(१) पेट, (२) इज्ज़त, (३) इंसाफ, और (४) जहाज़।

डेपूटेशनने सिफारिशकी थी कि मज़दूरोंको संगठित रूपसे फिजी भेजनेकी इजाज़त न दी जाय। भारत-सरकार और फिजी-सरकार आपसमें समझौता करके स्वतंत्र प्रवासियोंको फ़िजी जाकर बसनेके लिए प्रोत्साहन दें। भारतवर्षसे फिजी आने-जानेके साधनोंमें उन्नति की जाय, और वे सुलभ कर दिये जायँ। फिजीमें बसनेके लिए भूमि सहयोगके द्वारा दी जाय। मैंने कहा था कि जिस किसी उपनिवेशमें भारतीय



श्री वेंकटपति राजू सी० आई० ई०

मज़दूरोंकी आवश्यकता है और जहाँ उनका उपयोग किया जाता है, वहाँ क़ानूनके अनुसार कम-से-कम मज़दूरी, जो आरामसे जीवन-निर्वाहके लिए पर्याप्त हो, निर्धारित कर देनी चाहिए।

इन सब बातोंके सम्बन्धमें, जब तक राजनैतिक विचारोंके भारतीय सतर्क न रहेंगे, तब तक प्रवासी भारतीयोंकी आर्थिक और राजनैतिक अवस्था न सुधर सकेगी। यह समय ऐसा नहीं है कि हम उदासीनता दिखलावें। जब हम ब्रिटिश कामनवेल्थमें बराबरीके हिस्सेका दावा कर रहे हैं और प्रत्येक विचारशील पुरुष ब्रिटिश साम्राज्यमें डोमिनियन स्टेटस प्राप्त करनेके लिए लड़ रहा है, तो हमें अपने प्रवासी भाइयोंके राजनैतिक अधिकारोंके लिए भी लड़ना चाहिए। केनियाका प्रश्न ज़ोरोंसे उठ रहा है। पूर्वी अफ्रिकाके सवालका निपटारा, वहाँके आदिम, निवासियों और भारतीयोंके स्वत्वोंकी सुरक्षाको ध्यानमें रखकर, न्यायोचित आधारपर सदाके लिए कर देना चाहिए। 'विशाल-भारत' के सम्पादकने जो प्रचार-कार्य उठाया है, समस्त देशभक्त भारतीयोंको उसका हृदयसे समर्थन करना चाहिए। यदि प्रवासी भारतीयोंके लिए एक विशेष त्रैमासिक पत्रिका निकाली जाय,—जैसा कि 'विशाल-भारत' सम्पादकका प्रस्ताव है,—तो उनकी दशा सुधारनेके लिये वह बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

[लेखक :—परशुराम ; और चित्रकार—श्री यतीन्द्रकुमार सेन]

पुनर्मिलन

महाकवि भास-रचित 'मध्यम' नाटिकाके कथानकको कुछ उलट-फेरकर कहा जाता है।

पंच पाण्डव विन्ध्याटवीमें मृगयाके लिए गये थे। मध्यम पाण्डव ज़रा कुछ ज़्यादा चंचल और दुःसाहसी थे, इसीसे वे अपने साथियोंसे अलग होकर रास्ता भूलकर जंगलमें भटकने लगे। एकाएक एक राक्षसने आकर कहा—"युद्ध देहि।"

राक्षस तरुण था, आषाढ़के सजल मेघके समान उसकी कान्ति थी, कण्ठ-स्वरमें बाल्यकी मधुरता और यौवनकी गम्भीरताका अभी तक द्वन्द्व चल रहा था। उसे देखकर भीमके मनमें एक साथ वीर और वात्सल्य-रसका संचार हो आया। बोले—"अयि बालक, तुम्हारे साथ मैं न लड़ूँगा; तुम अपने पिताको बुलाओ।"

राक्षसने गरदन हिलाकर कहा—"मुझसे चालाकी नहीं चल सकती। या तो युद्ध करो, या पराजय स्वीकार करके मेरे साथ चलो। मेरी माता व्रत करनेके बाद अभी तक भूखी हैं, आज उनकी पारणा है। उन्होंने एक मोटा-ताज़ा आदमी लानेके लिए कहा है। तुम मुझे काफ़ी मोटे-ताज़े मालूम पड़ते हो, तुम्हींसे उनकी भूख मिट सकती है।"

भीमको बड़ा कौतूहल हुआ। बोले—"अच्छी बात है, चलो।"

बहुतसे वन, पर्वत, नदी पार होकर राक्षस उन्हें एक बड़ी-भारी गुफाके दरवाज़ेके सामने ले गया। पुकारने लगा—"मातः, 'पारणा' उपस्थित है।"



"छिः छिः मारे शरमके मरी!"

भीतरसे राक्षसीने कहा—"चिरजीवी होओ वत्स! तुझे गर्भमें धारण करना सार्थक हुआ।"

इसके बाद, भीमने रोमांचित होकर सुना कि राक्षसी अपनी एक चेरीसे कह रही है—"हंजे, इस मनुष्यके ज़रा बड़े-बड़े टुकड़े करना। जब अच्छी तरहसे यह गल जाय, तो थोड़ासा गन्धकका बघार देकर उतार लेना। छाती और बाँहें लड़केके लिए रखना, पैर तुम ले लेना, सिर मैं खाऊँगी।"

राक्षसने कहा—"मात:, एक बार बाहर चलकर देखो तो सही, कैसा उमदा शिकार लाया हूँ।"

राक्षसीने कहा—"उसका अब देखूँ क्या? आदमी तो सभी एक-से होते हैं; अच्छी तरह राँधनेसे कुछ फर्क नहीं रहता—कौन ऋषि है, कौन अपढ़ जन। मुझे अभी फ़ुरसत नहीं है, दाल सम्हाल रही हूँ।"



"देहलताको शिथिल करके गिर पड़ी"

राक्षसने कहा—"दाल फिर सम्हाल लेना, एक बार बाहर चलकर देख तो सही।"

पुत्रके अनुरोधसे राक्षसी बाहर आई। भीमको देखते ही दाँतों तले जीभ दबाकर बोली—"अरे, ये तो आर्यपुत्र हैं! छि: छि:, मारे शरमके मरी! ओ पागल, ओ घटोत्कच, प्रणाम कर इन्हें।"

भीमने कहा—"कौन, देवी हिडिम्बा? प्रिये, आज मैं धन्य हूँ।"

राक्षसीने फिर क्या खाया, व्यासने कुछ लिखा नहीं है।

उपेक्षिता

बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है। ड्राइंग-रूममें पियानोके पास बैठी हुई हैं गरिमा गंगोली, उनके सामने ईज़ी-चेयरपर हैं चटक राय। कमरेमें असबाब ज़्यादा नहीं है, क्योंकि गरिमाके पिताका तबादला होनेवाला है, लगभग सभी चीज़ें पैक करके पहलेसे ही रवाना कर दी गई हैं।

यह चटक लड़का धनिक भी खूब है और मिष्टभाषी विनयी भी। नोंच लेनेपर भी कुछ कहता नहीं,—अंग्रेज़ीमें जिसे कहते हैं लेडीज़ मैन। होता कैसे नहीं, उसने तो पाँच वर्ष विलायतमें रहकर सिर्फ एटिकेट (अदब क़ायदा) का ही अध्ययन किया है। किसी लड़कीके लिए ऐसा योग्य लड़का मिलना कम-से-कम आजकलके बाज़ारमें तो दुर्लभ ही है। गरिमाके माता-पिता कलकत्ता छोड़नेसे पहले ही कन्याको वाग्दत्ता देखना चाहते हैं, इसीलिए वे यात्राकी पूर्व-रजनीको भावी दम्पतिको विश्रम्भालापका मौक़ा देकर कुर्सियोंमें बैठे हुए सुसंवादकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लेकिन आलाप ऐसा कुछ जमा नहीं। दस-पन्द्रह गाने गा चुकनेके बाद गरिमाने तीसरी बार कहा—"कब हम जा रही हैं।"

चटकने कहा—"अच्छा।"

गरिमासे कुछ कहते नहीं बनता—शब्द खोजकर नहीं मिल रहे हैं। वह बोली—"कुछ और गाना गाऊँ?"

"नहीं, अब जाऊँगा।"

"इतनी जल्दी क्यों, मेह तो अभी भी बरस रहा है।"

चटक कुरसीपर बैठा हुआ उचकने लगा। दो मिनट बाद फिर बोला—"अब जाता हूँ।"

गरिमा सोच रही थी—कविने व्यर्थ ही बदलीके दिनकी तारीफ़ की है। हाय, यह बदलीकी शाम क्या यों ही जायगी? चटकको हो क्या गया? क्यों वह भागना चाहता है? उसे घबराहट किस बातकी है—इतनी चंचलता क्यों? गरिमाकी मोहिनी-शक्ति आज उसे पकड़कर बैठा भी नहीं सकती। कहीं उस कलमुँही बेहया मेनी मिशिरने तो चटकको वशमें नहीं कर लिया? हो सकता है। गरिमाने अपने प्रबल अभिमानको दमन करके कहा—"ज़रा और बैठ जाइये।"

परन्तु चटक बैठा नहीं। कुरसीसे उठकर बोला—"नहीं, अब जाने दो, गुड-नाइट।"

वर्षाकी निरवच्छिन्न झमझमको भेदकर चटककी मोटर गरज उठी। गया, जो कहना था, उसे बिना कहे ही चला गया,—भोंपू-भोंपू दूर, बहुत दूर······

गरिमा रोनेके लिए तैयार होकर चटककी छोड़ी हुई कुरसीपर देह-लताको शिथिल करके गिर पड़ी। उसके बाद ही मारी एक छलांग। भीषण सत्य यकायक प्रकट हो गया। बेचारा चटक······

कुरसीमें बेशुमार खटमल थे।

उपेक्षित

शहर फतेहाबाद। समय तीसरा पहर। शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा दिलतोषबागमें बैठी हुई हैं। आस-पासके वृक्षोंके मस्तकपर अस्तराग झिलमिला रहा है, डाल-डालपर बुलबुल हज़ार-दास्तां बोल रही हैं, गुलाबका फ़व्वारा इन्द्रधनुषकी बहार दे रहा है, चारों ओर फूल ही फूल छा रहे हैं। शाहज़ादीके हाथमें एक रबाब है, उसमें तीन झंकार चढ़ाकर मृदुस्वरमें गा रही हैं—"ऐसे बेदर्दके पाले पड़ी हूँ।" उनका सुनहले रंगका प्यारा शेर फर्रुखसियर



शाहज़ादी ज़ेबउन्निसा

उनके पैरोंके पास बैठा हुआ अपने पंजेसे ताल दे रहा है, और बीच-बीचमें स्वामिनीकी बीजापुरी जूतियाँ चाट रहा है।

सहसा एक पुरुष-मूर्तिका आविर्भाव हुआ। गोरा मोटा-ताज़ा बदन है, छोटीसी ख़ूबसूरत दाढ़ी है, क़ीमती पोशाक

है, कमरसे तलवार बँधी है। ये ही हैं कोफ्ता खाँ—बादशाहके सिपहसालार और दाहने हाथ।

ज़ेबरउन्निसा चौंक पड़ीं, बोलीं—"एँ! कोफ्ता खाँ, तुम यहाँ कैसे?"

सिपहसालारने कहा—"हाँ, खूबरू! आज फैसला करना चाहता हूँ। तुमने बहुत दिनोंसे मुझे धोखेमें डाल रखा है, आज ज़बान खोलकर साफ़ साफ़ कहो कि तुम मुझसे शादी करोगी या नहीं?"

ज़ेबरउन्निसाने भौंह चढ़ाकर कहा—"बेवकूफ़, तू किससे बात कर रहा है? या एक ज़रखरीद गुलाम, बादशाहकी मेहरबानीसे सिपहसालार बन गया है। बस, यहीं तक रह, ज़्यादा ऊँची निगाह न कर।"

कोफ्ता खाँ यथोचित भीषणताके साथ क़हक़हाकर हँस पड़े। बोले—"शाहज़ादी, किसने तुम्हारे वालिदको तख़्तनशीन किया? मरहठोंके धावोंको बार-बार किसने रोका? किसकी मेहरबानीसे तुम्हारा यह ऐशो-आराम है? ये हीरे-जवाहरात, यह निशात बाग़, यह बुलबुले हज़ार-दास्ताँकी आवाज़से गूँजता हुआ बोस्ताँ किसकी मेहरबानीसे है? इंशा-अल्लाह! जानती हो, एक उंगलीके हिलाते ही सारी दुनियाँको ज़मीनसे मिला सकता हूँ? सल्तनतका असली मालिक है कौन? तुम्हारे कमज़ोर बाप, या यह बहादुर रुस्तमे-हिन्द कोफ्ता खाँ फतहजंग?"

ज़ेबरउन्निसाने कहा—"कुत्तेकी गरदनपर अयाल पैदा हो जायँ, तो वह शेर नहीं हो जाता।"

सिपहसालार साहब बोले—"बिस्मिल्लाह! ये अल्फ़ाज़ अगर और कोई कहता, तो एक लहमेमें मैं उसे क़त्ल कर डालता, लेकिन तुमने मेरा दिल गिरफ्तार कर रखा है, इस बार तुम्हें माफ़ किये देता हूँ। खैर, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अब भी बताओ, तुम मेरी दिलरुबा बनोगी या नहीं?"

ज़ेबरउन्निसाने नज़ाकतके साथ हँसकर कहा—"कोफ्ता खाँ, तुमने हाफ़िज़ शीराज़ीकी वह बैत नहीं सुनी?—कुत्ते बार-बार भौंकते हैं, मगर शेर एक ही बार गरजता है।"

इसके बाद कोई भी मर्द खामोश नहीं रह सकता, खासकर उस मुग़ल-ज़मानेमें। कोफ्ता खाँ गरजकर बोले—"अल-हमदुलिल्लाह! शाहज़ादी, तो खुदाका नाम याद करके मरनेके लिए तैयार हो जाओ।"

झटसे मियानसे तलवार निकाल ली।

शाहज़ादीने कहा—"कोफ्ता खाँ, तुमने तो मुझे खूब ही हँसाया!"

अस्तु। कोफ्ता खाँके बेदर्द हाथमें तलवार चमक उठी। आसमानमें जैसे बिजली चमकी हो, एक फड़कती हुई कांचन-काया क्षण-भरमें उछलकर फिर ज़मीनपर गिर पड़ी। ज़रासा अस्फुट आर्तनाद हुआ, क्षण-भर कोई तड़पता रहा, उसके बाद सब खतम......

सन्ध्याका अन्धकार घना हो आया। ज़ेबरउन्निसा उस समय भी गा रही थीं—'ऐसे बेदर्दीके पाले पड़ी हूँ।'

उनका पालतू शेर अपना भोजन समाप्त करके परम तृप्तिके साथ स्वामिनीकी जूतियाँ चाट रहा है। उसके बाईं तरफ़ कोफ्ता खाँकी पगड़ी पड़ी है, दाहनी तरफ़ पाजामा और क़बा चोगा, सामने थोड़ीसी हड्डियाँ।

रातों-रात

रातके बारह बजे हैं। वृद्ध गोविन्द बाबू ऊपरके कमरेमें पलंगपर गहरी नींद सो रहे हैं।

सहसा उनकी आँखोंपर एक तीव्र प्रकाश पड़नेसे वे जग गये। सुना—दबी हुई ज़बानसे कोई कह रहा है—"खबरदार, चिल्लाते ही गोली मार दूँगा। लोहेके सन्दूककी चाबी कहाँ है—जल्दी।"

गोविन्द बाबू समझ गये कि आधुनिक चोर है। घरमें एक आलसी बूढ़े नौकरके सिवा और कोई न था, वे खुद भी गठिया-बातसे पंगु थे। लाचारीसे बोले—"चाबी तो मेरे

पास नहीं है, मालकिनके पास है। वे अपने भाईके यहाँ गई हैं।"

चोरने कहा—"मनीबेग? कहाँ-कहाँ?"

गोविन्द बाबूने कहा—"उस ड्रेसिंग टेबिलके दरारमें देखो।"

टॉर्चकी रोशनीको इधर-उधर घुमाकर चोर टेबिलकी तलाश करने लगा। यकायक धपसे कुछ गिरनेका शब्द हुआ और साथ-ही-साथ चोर कराह उठा—"ओ:ह!"

गोविन्द बाबूने पूछा—"क्या हुआ?"

सन्नाटा। कुछ देर बाद चोर फिर "ओ:ह" कर उठा। गोविन्द बाबू सोचमें पड़ गये। पलंगके पास ही बिजली-बत्तीकी स्वीच थी, उसे मसककर कमरेमें उजेला कर दिया। देखा—चोर टेबिलके पास ज़मीनपर बैठा है, कमर पर हाथ है—चेहरे पर कातर-भाव।

गोविन्द बाबूने पूछा—"तुम्हें भी गठिया है क्या?"

चोरने कहा—"ऊँ-हुँक्। चार दिन हुए, डेंगो बुखारसे उठा हूं,—यकायक आज कमरमें दर्द होने लगा है।"



"बड़ाबाजार टू-थ्री-वन-सेवन—"

"दवा-दवा कुछ खाते हो कि नहीं?"

"अभी तक तो नहीं की।"

"गलती करते हो, डेंगू बड़ी खराब बीमारी है। कुछ दिन नीबूके रसके साथ कुनैन खा देखो, बड़ा फ़ायदा पहुँचेगा। अगर इस समय कुछ दिन पुरी जाकर रहो, तो और भी अच्छा हो।"

चोर हँसकर बोला—"पुरी या बड़े घर?"

गोविन्द बाबूने कहा—"हाँ, है तो ठीक बात; बूढ़ा आदमी हूँ, मैं तो भूल ही गया था; लेकिन डरनेकी बात नहीं पुलिस-केस-फेस हमसे न होगा। सज़ा जो देनी होगी मैं ही दूँगा। लेकिन गठियाने मुझे परेशान कर रखा है। दिक्कत है तो इसीकी है।"

चोर अब ज़रा स्वस्थ होकर आहिस्तेसे उठा। गोविन्द बाबूने कहा—"बैठ जाओ उस कुरसीपर।"

तरुण चोर है। बड़े-बड़े बाल हैं, चेहरेपर चश्मा है, मगर मूँछ नहीं।

गोविन्द बाबूने पूछा—"पिस्तौल कितनेमें खरीदा था?"

"छै आनेमें, मुरगीहट्टेसे।"

"स्वदेशी डकैत हो?"

"भविष्यमें शायद वही होना पड़ेगा। फ़िलहाल तो पेटके लिए—"

"बाप नहीं हैं?"

"हैं, घरसे मुझे निकाल दिया है।"

"बड़े सख्त हैं। क्या किया था तुमने, विद्रोह?"

"जी हाँ। पिताजीके बाल्य बन्धुकी लड़कीसे ब्याह नहीं किया था, इसलिए। बाबूजी ठहरे पुराने ज़मानेके ज़बरदस्त पिता। यकायक एक दिन बोले—'बाड़, यहाँ आ सुन, अगले महीनेमें राखाल-बाबूकी लड़कीसे तेरा ब्याह है।' राखाल-बाबूको मरते वक्त उन्होंने कुछ ज़बान दी थी।"

"लड़की अच्छी होगी ?"

"सुना है, अच्छी तो नहीं है ; लेकिन जिसके हृदयकी बात मुझे नहीं मालूम, उसके साथ ब्याह कैसे कर सकता हूँ, आप ही कहिये ? बाप-मा उसके नहीं परदेशमें मामाके यहाँ रहती है, उन्हींने उसे पाला है, मामा भी—सुनता हूँ—पूरा पागल ही है, भानजीको जानवर बना रखा है। मेरे मनकी प्रिया और ही पेटर्न (नमूने) की है।"

"कैसी, सुनूँ तो सही ?"

चोरने उत्साहके साथ कहा—"सुनेंगे ?"

जेबमेंसे कविताकी कापी निकालकर पढ़ने लगा—

"कहूँ क्या हृदयेश्वरिकी बात।
बिन देखी वह मूर्ति मनोहर, देखन जिय ललचात
अनुपम रूप गुणी अति चातुर 'कलचर' तासु अनन्य
मिलै प्रिये जो मनकी चाही तो जीवन हो धन्य।"

"बस बस, रहने दो। उस लड़कीका नाम क्या है ?"

"कहते तो उसे 'नेड़ी' हैं, अच्छा नाम मुझे मालूम नहीं।"

"कहते क्या हो ? चारुचन्द्रकी हृदय-रानी होगी नेड़ी ! नेड़ी होता, तो भी कुछ ग़नीमत थी।"

नीचे मोटरके ठहरनेका अस्फुट शब्द हुआ। उसके बाद कमरेके बाहर बरामदेमें किसीके आनेकी आवाज़ हुई। गोविन्द-बाबूने कहा—"कौन, नेड़ी आ गई ? इतनी रात क्यों कर दी ?"

वीणा-विनिन्दित कण्ठसे उत्तर मिला—"मामा, अभी जगे ही हुए हो ? कैसा जिमाया है, बिलकुल टौपिंग !"*

एक सालंकारा अनवद्यांगी तरुणी कमरेमें प्रवेशकर चित्रार्पितकी भाँति खड़ी हो गई। चोर मुँह बाकर देखने लगा।

'कलचर'=संस्कृति। * सर्वोत्तम।

गोविन्द-बाबूने कहा—"हाँ, क्या कह रहे थे लड़के तुम ? रूपमें गुणमें कलचरमें ?—नेड़ी, स्पेलिंग बतलाना—प्रतिद्वन्द्वी—"

नेड़ीने कहा—"पमें रेफ, तमें ह्रस्व इकार—" इत्यादि।

"दोका स्क्वायर रुट (वर्गमूल) कितना होता है, री ?"

"१·४१४२५—"

"बस बस। तेरी रायमें आधुनिक लेखकोंमें सबसे बड़ा लेखक कौन है ?"

"अगर कंटिनताल ऑथर कहा जाय, तो मौं-क्लाँकि सामने कोई नहीं टठ सकता। आधुनिक उपोसी साहित्यके वे ही सबसे बड़े एक्सपनेण्ट (प्रदर्शक) हैं। कैसा एक करुण विश्व लुट भाव है, जैसे कोई अधीर प्यासी भूख हो,—लेकिन बड़ी मीठी लगती है। और, इसके ठीक उल्टे हैं जापानी रेनेसाँसके कवि फूजियामा।* इनके ग्रन्थोंमें कैसी एक औदरिक उदारता है, जैसे किसी पूर्तिका आनन्द हो,—लेकिन लगता बड़ा विचित्र है।"

"अच्छा। 'अन्तिम कविता' की अन्तिम कविताका भाव क्या है री ?"

"उत्कण्ठ भावसे मेरे लिए यदि किसीने प्रतीक्षा की हो, वही धन्य करेगा मुझे।"

"वाह ! अब ज़रा तू कोई चीज़ बजाकर सुना तो सही।"

नेड़ी पियानोपर बैठकर टुङ् टुङ् करने लगी। चोरने गोविन्द बाबूसे चुपकेसे पूछा—"नाइन्थ सिमफोनी ?"

"ऊँ-हुँक्, शायद 'साला-लुट-लिया' बजा रही है। नेड़ी, ज़रा नाइन्थ सिमफोनी सुना देना।"

"नहीं, अभी नहीं बजता मुझसे। नींद नहीं आती होगी

* रिनेसांस=नवीन युग। फूजियामा=जापनका एक ज्वालामुखी पर्वत। नाइन्थ सिमफोनी=अंग्रेजी संगीतकी एक प्रसिद्ध गत।

किसीको ? अच्छा मामा, ये कौन हैं, सो नहीं बताया—"

"ये हैं एक चोर। यकायक कमरमें दर्द हो जानेसे विपत्त पड़ गया बेचारेको।"

"ऐं—चोर ! अब तक कहा क्यों नहीं था।"—नेड़ीने चटसे उठकर फोन उठा लिया, बोली—"बड़ाबाज़ार टू-थ्री-वन-सेविन,—हैलो, मोचीपाड़ा थाना ?"

गोविन्द बाबूने कहा—"अरे, करती क्या है ! बैठ चुपचाप।"

"वाह जी वाह, चोरको योंही छोड़ दोगे ? तुम्हारा वह चाबुक कहाँ है,—न हो तो मैं ही—"

"खबरदार, यह मेरा चोर है, तू कौन होती है मारनेवाली ?—जा, तू रानी बिटिया है, जोड़ेसे गरम-गरम कैटलेट भूस ला, और बगलके कमरेमें इसके सोनेके लिए इन्तज़ाम कर दे। अब इतनी रातमें कहाँ जायगा बेचारा।"

नेड़ी मामाकी आज्ञा पालन करने चली गई।

गोविन्द बाबूने कहा—क्यों बेटे, कैसी मालूम होती है ?"

"बड़ी उमदा।"

"तुम्हारे मनकी प्रियाके साथ मिलती है ?"

"हू-बहू !"

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

सब जातियोंका संगम-स्थान

[लेखक :— श्री मणिलाल, एम० ए०, बार-ऐट-ला]

अदन संसारकी सब जातियोंका संगम-स्थान है। संसारकी सब जातियों और सब धर्मोंके लोगोंने किसी-न-किसी समय यहाँ आकर—चाहे वे यात्रीके रूपमें ही क्यों न आये हों—यहाँकी वर्षाहीन खुश्क आब-हवामें साँस जरूर ली है। अदन कोई उपनिवेश नहीं है। कम-से-कम अभी तक तो यह उपनिवेश नहीं है, गोकि बहुतसे अंग्रेज़ इसे उपनिवेशके नामसे पुकारते हैं। यह फौजी छावनी, जो बम्बईकी कुछ फौजोंके दुस्साहस और समाधियोंकी यादगार है, सन १८३९ में अंग्रेजोंके अधिकारमें आई।

आखिरी मनुष्य-गणनाके अनुसार यहाँकी आबादी इस प्रकार थी—

अरब	३०,५६२
यहूदी	४,४०८
सुमाली	७,५६४
भारतीय मुसलमान	५,५६४
हिन्दू	३,६९१
जैन	३०८
यूरोपियन	१,६००
अन्य जातिवाले	२,०६३
टोटल	५६,४००

यहाँका शासन एक रेज़ीडेन्टके हाथमें था, जो अभी तक बम्बईके गवर्नरके अधीन था, मगर अब ऐसा समझा जाता है कि यह विलायतके औपनिवेशिक मंत्रीकी मातहतीमें है। यहाँकी सरकार निकटवर्ती अरब रियासतों और सुमाली लोगोंके देशपर यह बसानेके लिए चिन्तित है कि अंग्रेजोंके प्रभावमें आना उनके लिए वांछनीय है। इन लोगोंको आकर्षित करनेके लिए ब्रिटिश इंसाफ और ब्रिटिश न्यायपरायणताका खूब प्रदर्शन किया जाता है, इसीलिए आप देखेंगे कि यहाँ गोरे सिपाही अरबों और सुमालियोंके साथ फुटबाल खेलनेसे इनकार नहीं करते। यहाँ तक कि ब्रिटिश अफसरों तकका—जिन्हें हिन्दुस्तानका कई वर्षका अनुभव होता है—रुख सुमालियों और अरबोंके साथ व्यवहार करते समय बदला हुआ मालूम होता है। अदनमें भी भारतीय अपनी खुशामदकी नीच आदतको छोड़नेमें समर्थ नहीं हो सके हैं। वे अदनमें भी अपनी गुलामीके इतिहासको लिये फिरते हैं। वे अपनी आर्थिक दशाको सुधारनेके अवसरोंको खोनेके डरसे सदा भयभीत रहते हैं। वे डरते हैं कि भारतवर्षमें उन्हें ऐसे अवसर नहीं प्राप्त हो सकते। वे सबसे अधिक धनिक श्रेणीसे डरते हैं, और भारतवर्षके उस प्रान्तसे आये हैं, जो क़ानूनसे सबसे अधिक डरता है, इसलिए वे किसी तरहके खतरेमें पड़नेके लिये तय्यार नहीं।

निस्सन्देह पारसी लोग अधिक पढ़े-लिखे हैं और अपने स्वार्थोंके लिए सदा अग्रसर होनेको तय्यार रहते हैं। अदनमें उन्होंने उदार-हृदयसे बड़े-बड़े दान भी दिये हैं। मगर वे भी यहूदियोंकी भाँति अपने कारबारको खतरेमें डालनेके लिए तय्यार नहीं होते। हिन्दू लोग—जो अधिकतर काठियावाड़ और गुजरातके बनिया या अन्य जातियोंके हैं—किसी भी सम्मिलित कार्यके लिए एक नहीं हो सकते। उनमें रत्ती भर भी पब्लिक-स्पिरिट नहीं है, और यदि वे अपेक्षाकृत आराम और आसानीसे अपना जीवन निर्वाह कर सकें, तो वे उतने ही में सन्तुष्ट हो जाते हैं। वे अब तक अपने किसी भी सार्वजनिक कार्यको सफल नहीं बना सके हैं। उनका पिंजरापोल, उनकी लाइब्रेरी आदि वैसे ही अनियमित ढंगसे चलती है, जैसे कि अन्य स्थानोंकी संस्थाएँ चला करती हैं, जहाँ बहुत अधिक फूट और क्षुद्र पारस्परिक ईर्षा होती है। उनके इन दोषोंने उन्हें ही नहीं, बल्कि औरोंको भी चौपट कर दिया। यहाँ तक कि मैंचेस्टरकी एक अंग्रेज़ी फर्मके प्रतिनिधिने बतलाया कि

आपसकी चढ़ा-उतरीके कारण ये मैंचेस्टरके मालको अदनमें मैंचेस्टरसे सस्ता बेंचते हैं।



स्टीमर-पाइंट अदनमें फौजी बैरक

भारतमें आनेवाले मालके लिए भी यही बात है। बहुतसे बनियोंने अपने भाग्यवान भाइयों या यूरोपियनकी बराबरी करनेके लिए अपनी शक्तिसे अधिक माल मँगा लिया है, और बाजारको मालसे पूरकर चौपट कर दिया है। आर्थिक दृष्टिसे वे लोग एक दूसरेका गला काटनेमें लगे हैं।

फल यह है कि बाज़ार बड़ा मन्दा है, और प्रत्येक व्यक्ति कारबारकी खराबीकी शिकायत करता है। अदनसे ब्रिटिश फौजें हटा ली गई हैं, इस कारण यह दशा और भी भयानक हो गई है।

केवल कुछ वर्ष यहूदियोंकी दशा ईर्षाके योग्य नहीं थी। संख्यामें अब भी वे बहुत अधिक नहीं हैं। उस समय उनमें ऐसे लोग अधिक नहीं थे, जो धनी कहला सकें, लेकिन आजकल अदनका सबसे धनी व्यक्ति यहूदी है। थोड़े ही दिनोंमें सम्पूर्ण यहूदी-जाति ऐसी फली-फूली कि आजकल वे एक लड़कोंका हाईस्कूल और लड़कियोंका हाईस्कूल बिना सरकारी सहायताके चला रहे हैं। लोग कहते हैं कि एक समय था, जब यहूदी लोग शामके बाद इस डरसे घरके बाहर निकलनेकी हिम्मत नहीं करते थे कि कहीं कोई अरब या शुमाली छेड़-छाड़ न करे, मगर आजकल शामको टहलनेके लिए और जातियोंकी अपेक्षा यहूदी लड़के और लड़कियां ही सबसे आगे दिखाई पड़ते हैं। यह उदाहरण इस बातको सिद्ध करता है कि आर्थिक दशाकी उन्नतिसे जातिकी स्थिति कैसी उच्च हो जाती है। यहांके स्थानीय यहूदी भारत या यूरोपके यहूदियोंके खिलाफ शनिवारको



अदनका प्रमोद स्थान

ही अपना पवित्र दिन मनाते हैं, और अपने प्रत्येक त्यौहारपर अपना काम-काज बन्द रखते हैं। इसलिए उन्हें सरकारी नौकरियोंसे हाथ धोना पड़ा है, परन्तु इससे वे स्वतंत्र हो गये हैं, और उनकी स्त्रियां बड़ी मेहनती हो गई हैं। वे कभी अपना समय नहीं खोतीं। वे सदा अपने घरमें भी सीने पिरोने आदिके काममें लगी रहती हैं।

मैं समझता हूँ कि यदि हमारी भारतीय स्त्रियां इस बातमें यहूदियोंकी नक़ल करें और गृह-शिल्पको बढ़ावें, तो बहुत अच्छा हो। मेरे एक पारसी मित्र (जो बड़े ऊँचे सरकारी पदपर आसीन हैं) हमारी स्त्रियोंकी सहायताके लिए तय्यार हैं। वे उन्हें चरखा कातना और सुई-कैंचीका काम सिखाना चाहते हैं। यहांपर शुमाली लोग खुली सड़कों और गलियोंमें विलायती सूतसे लुंगी विना करते हैं। मेरी रायमें यदि हम लोग यहां भारतवर्षसे किसी होशियार खादीके कार्यकर्ताको ला सकें, तो बहुतसे लोगोंके बेकार समयका उपयोग हो सकता है और बहुतसी दरिद्र विधवाओंको कुछ आराम मिल सकता है। ये बेचारी विधवाएँ पहले गेहूँ पीसकर कुछ पा जाती थीं, परन्तु आजकल उन्हींके जाति-भाइयोंने इंजनकी चक्कियां चला, उनकी इस जीविकाका भी अपहरण कर लिया है।

पूर्वी अफ्रिकामें आर्यसमाज

[लेखक :—श्री चमूपति, एम० ए०]

उपनिवेशोंकी बात करते समय हमें यह याद रखना चाहिए कि उनमें जो व्यक्ति गये हैं—चाहे वे यूरोपियन हों या एशियाई—वे उच्च श्रेणीके नहीं हैं। अपनी मातृभूमिको त्याग करनेका प्रलोभन पहले उन्हीं लोगोंको हुआ करता है, जिन्हें अपने देशमें सम्मान-पूर्वक जीविका उपार्जन करना मुश्किल होता है। वे अपने साहस और परिश्रमके लिए प्रशंसाके पात्र हैं, मगर यह कहा जा सकता है कि उनमें बहुत ही थोड़े व्यक्ति ऐसे हैं, जो अपनी जातिके प्रशंसनीय नैतिक गुणोंको प्रदर्शित करते हों। उनमेंसे अधिकांश लोग तो चरित्रकी हीन दिशा ही को प्रदर्शित करते हैं। प्राय: यह माना जाता है कि नैतिक कट्टरता ही सब गुणोंकी केन्द्र है। और वे लोग, जो दूसरे देशोंको जाते हैं, सबसे कम कट्टर हुआ करते हैं। अनजान देशोंमें प्रेम और घृणाके बन्धन नहीं होते, और न वे सामाजिक रोक-थाम ही होती हैं, जिनसे वैयक्तिक सद्गुण और नैतिकता सुरक्षित रहती है। वहाँपर प्रत्येक व्यक्तिको इस बातकी स्वतंत्रता रहती है कि वह जैसे चाहे, रहे और जो चाहे, करे। मैंने 'करागोला' जहाज़पर पहले-पहल मोम्बासाकी यात्रा की थी। इस जहाज़के एक सहयात्रीने मुझे बतलाया कि केवल कुछ समय पूर्वसे ही शाकाहारी और मद्यपान न करनेवाले लोग फैशनेबुल यात्रियोंमें पाये जाने लगे हैं। यह स्टीमर-लाइन, जो भारतवर्ष और पूर्वी एवं दक्षिणी अफ्रिकाके बीचमें अपना व्यापार करती है, ऐसे यात्रियोंकी कमीके लिए प्रसिद्ध है, जो किसी प्रकारके नैतिक सिद्धान्तोंकी परवाह करते हों। थोड़े दिनोंसे ही, जबसे विदेश-यात्रा रोज़मर्राकी बात हो गई है और भारतवर्षकी आर्थिक दशा दिन-ब-दिन दुस्तर होती जाती है, पढ़े-लिखे और हैसियतवाले लोगोंने विदेशोंमें जाकर पैर जमाना शुरू किया है। उन लोगोंने अपने रिश्तेदारोंको बुलाकर उनको वहाँ बसाया है, और इस प्रकार भ्रातृत्व भाव और सहयोगका बीज बोया है। अपने बुजुर्गों और भाई-बन्दोंके नियन्त्रणकी कमीके कारण साधारण चरित्रके व्यक्तियोंके चरित्रके शिथिल हो जानेका बहुत मौका रहता है।

पूर्वी अफ्रिकाकी कुछ ऐसी ही दशा थी, जब वहाँके कुछ प्रमुख केन्द्रोंमें आर्यसमाजकी बुनियाद डाली गई थी। पूर्वी अफ्रिकामें नैरोबी, मोम्बासा और ज़ांज़ीबारकी आर्यसमाजें सबसे प्राचीन आर्य-संस्थाएँ हैं। आज नैरोबीकी आर्यसमाजके पास अपना निजका भवन है, जो अपनी शान-शौक़तमें भारतवर्षके किसी भी आर्यसमाज-मन्दिरकी बराबरी कर सकता है। उसके सदस्योंकी संख्या काफ़ी बड़ी है। यह एक कन्या-पाठशाला, एक वाचनालय, एक आर्य युवक-ऐसोसियेशन और वह एक महिला-आर्यसमाजका परिचालन कर रहा है। कुछ दिन हुए, जब उसने यहाँके आदिम निवासियोंके लिए एक रात्रि-पाठशाला भी खोली थी। एक समय तो इस पाठशालामें शिक्षार्थियोंकी संख्या ३०० तक पहुँच गई थी, परन्तु कुछ विपरीत परिस्थितियोंके कारण उपस्थिति घट गई, और अन्तमें स्कूल बन्द कर देना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि कभी-कभी आपको यहाँ इक्के-दुक्के हब्शी लड़के मिल जायँगे, जो दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्ते' कहते हैं।

ज़ांज़ीबार और दारस्सलमकी आर्यसमाजोंकी उत्पत्ति एक साहसी और धनी गुजराती सज्जन श्री कारसन द्वारकादासके द्वारा हुई। कहते हैं कि उन्हें आर्यसमाजका खब्त-सा था। दारस्सलम यूरोपीय महायुद्धके पहले जर्मनीके अधिकारमें था।

मैं बालक-बालिकाओंके एक सम्मिलित स्कूलकी फोटो

लाया हूँ, जिसे इस उत्साही आर्यसमाजीने चलाया था। जब टांगानिका जर्मनीके हाथसे निकलकर अंग्रेज़ोंके हाथमें आया, तब उनके विरुद्ध कुछ खबरें पहुँचनेके कारण उन्हें बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी थीं, परन्तु अन्तमें वे सब खबरें झूठी साबित हुईं, और द्वारकादासको भारतवर्ष आनेकी अनुमति मिल गई। यहाँ आनेके बाद, कई वर्ष हुए उनकी मृत्यु हो गई। अब तक इस आर्यसमाजी अग्रणी पुरुषका नाम प्रेम और आदरसे लिया जाता है।

ज़ांज़ीबारकी आर्यसमाजके अधीन आजकल एक वाचनालय और एक बालिका-विद्यालय है। दो वर्ष हुए, मेरी उपस्थितिमें, हब्शियों और भारतीय कारीगरोंके लिए उसने वहां एक रात्रि-पाठशाला भी खोली थी।

गत महायुद्धके पहले मोम्बासा-आर्यसमाज खूब फूलती-फलती दशामें थी। किसी प्रकार आर्यसमाजके प्रमुख सदस्योंपर ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध विश्वासघातका सन्देह उत्पन्न हो गया। उनमेंसे कईको मृत्यु-दंडके पूर्व जेलखाना हो गया। श्री बी० आर० शर्मा, जिनके लिए मृत्यु दंडका आयोजन हो रहा था, आजकल नेरोबीमें हैं। वे आर्यसमाजके उत्साही कार्यकर्ता हैं और अपने साथियोंमें अपनी बुद्धिमत्ताके लिए मशहूर हैं। उन्होंने मुझसे बतलाया कि किस तरह वह और उनके साथी बिना किसी प्रकारके अपराधके पकड़े गये, किस प्रकार उन्हें जेलमें बन्द कर दिया गया, कैसे उन्हें तंग किया गया और अन्तमें किस प्रकार वे छोड़ दिये गये। इस दुर्घटनाके बाद समाज-मन्दिरको पुनः खोलना और उसके सिद्धान्तोंका दम भरना बड़े साहसका काम था; लेकिन फिर भी धर्ममें सच्चा विश्वास रखनेवाले लोगोंका एक छोटा दल स्वामी दयानन्दके झंडेके नीचे आकर एकत्रित हो गया है, और आशा की जाती है कि पुराना उत्साह फिर पुनर्जीवित हो जायगा। किसूमोकी आर्यसमाज एक बालिका-विद्यालयको सफलता-पूर्वक चला रही है। हालमें उसने एक शिक्षिका और एक स्थायी उपदेशक भी नियत किया है।

युगांडामें केवल जिंजा ही को आर्यसमाज रखनेका गर्व प्राप्त है, मगर फिर भी वहां कोई मन्दिर नहीं है। आर्यसमाजके व्याख्यान वहाँकी नानजी-लायब्रेरीमें होते हैं। यह लायब्रेरी वहाँके प्रधान सेठके नामपर प्रसिद्ध है, जो आर्यसमाजके सभापति भी हैं। समाजके सदस्य इस बातपर दृढ़ हैं कि वे दो-एक वर्षमें आर्यसमाजका मन्दिर ज़रूर बना लेंगे।

कम्पालामें किसी समय आर्यसमाज था, परन्तु धार्मिक विचारोंके लोगोंकी कमीके कारण अब वहाँ समाज नहीं है। इसके अतिरिक्त, और भी छोटे-छोटे आर्यसमाज केनिया उपनिवेशमें मेचाकोस, लोन्डियानी और लुम्बवा नामक स्थानोंमें और टांगानिकामें टोबरा नामक स्थानमें चल रहे हैं। इन उपनिवेशोंमें और भी कई आर्यसमाजोंके लिए क्षेत्र है।

भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारके काममें आर्यसमाजी अग्रणी हैं। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, अधिकांश आर्यसमाजोंके साथ बालिका-विद्यालय संलग्न हैं। और जातिवाले भी अब अपने स्कूल खोल रहे हैं। आजकल वहाँके आर्य लोग एक गुरुकुल खोलनेका विचार कर रहे हैं। यह आन्दोलन लोकप्रिय बनाया जा रहा है और उसके लिए फंड भी एकत्रित किया जा रहा है। आर्यसमाजों और उनके सदस्योंकी संख्याकी अपेक्षा यहाँके सार्वजनिक जीवनमें आर्यसमाजका प्रभाव बहुत अधिक है। मांसाहार और मद्यपानके दुर्गुण साथ-साथ चला करते हैं। कुछ डाक्टरोंका कथन है कि मांसको हज़म करनेके लिए शराबके छींटोंकी आवश्यकता होती है, और इन दोनों चीज़ोंके संगसे काम-विकार उत्पन्न होता है। डाक्टरोंके इस कथनकी सत्यता मुझे पूर्वी अफ्रिका ही में ज्ञात हुई। मैं आर्यसमाजको धन्यवाद देता हूँ कि उसने इन तीनों प्रकारके असंयमोंकी जड़पर कुठाराघात करके अपने सदस्योंको मांसाहारकी मनाही कर दी है।

ईसाई-धर्म यहाँके आदिम निवासियोंमें तेज़ीसे बढ़

रहा है। इब्शियोंमें कई बड़े सुधारोंका—जैसे, बहु-विवाहकी बन्दी आदिका—श्रेय उसे ही प्राप्त है, लेकिन उन लोगोंकी नैतिक दशा जो पहले ही से ईसाई हैं—जैसे यूरोपियन—अन्य धर्मावलम्बियोंसे अच्छी नहीं है। कुछ विशेष बातमें इन लोगोंमेंसे कुछने तो काफी बदनामी प्राप्त कर ली है। वे गिरजेघर, जिनके वे अपने जन्म-दिनसे अनुयायी हैं, उनके नैतिक जीवनकी ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। मैंने अक्सर इस बातपर विचार किया है कि किसी धर्ममें उसके अनुयायियोंकी संख्या अधिक बढ़ानेमें सुविधा होती है, और इसीलिए ये ईसाई गिरजेवाले अपने सदस्योंके चरित्रकी ओरसे इतने उदासीन रहते हैं। यदि आप नैतिक नियमोंको दृढ़ता-पूर्वक पालन करावें, तो बहुतसे लोगोंको आपको बाहर रखना पड़ेगा, जो नैतिक नियमोंकी शिथिलतासे आपके साथ उपासना कर सकते हैं। यदि आप उन्हें अपनेमें सम्मिलित होने दें, परन्तु उन्हें उच्च पद देनेसे इनकार करें, तो बहुतसे प्रभावशाली लोग आपको छोड़ जायँगे। इसीलिए ईसाई धर्म बिना किसी प्रकारके मीन-मेखके अपना चेत्र विस्तृत कर रहा है। यही बात इस्लामकी है। फिर आर्य-धर्ममें क्यों इस नियमका अपवाद किया जाय ? ऐसा मालूम होता है कि मानो हम लोगोंने एक परिमित जाति बने रहनेका ही निश्चय कर लिया हो।

जब मैं ईसाई धर्मकी—जो आजकल यूरोपियन गवर्मेन्टोंका पिट्ठू हो रहा है—बढ़ती हुई व्यापकताको देखता हूँ, तब मेरा सिर चकरा जाता है। क्या हम भारतकी भी वही सेवा नहीं कर सकते ? परन्तु किसीका पिट्ठू बनना बड़ा घृणास्पद है, इसलिए मैं नैतिकताका ही पक्ष ग्रहण करूँगा।

हमें स्वराज्यके लिए उद्योग करना चाहिये, परन्तु राजनैतिक कार्यकर्ताओंके पिट्ठू बनकर नहीं। कोई भी ऐसा आर्यसमाजी नहीं है, जिसे अपने देश और अपने देशकी स्वाधीनताका स्वाभाविक प्रेम न हो। भारतके लिए जितनी लड़ाइयां लड़ी जाती हैं, उनमें आर्य-समाजी सरलतासे अग्रणी रहते हैं। इस सम्बन्धमें मैंने जो कुछ देखा, वह वही है, जिसे पूर्व-अफ्रिका आनेवाले अन्य पचीसों आदमी पहले कह चुके हैं। राजनीतज्ञोंको कभी कभी यह देखकर दु:ख होता है कि आर्यसमाजी लोग अक्सर अपने धर्मके झंडेको देशके झंडेसे ऊपर रखना चाहते हैं। कम से-कम वे अपने धर्मकी विश्व-व्यापकताको अपनी राष्ट्रीयताके अधीन नहीं करना चाहते।

चाहे उचित हो या अनुचित, वे अपने वेदोंके नैतिक आदेशोंको स्वयं अपने लिए राजनैतिक उच्चता प्राप्त करनेके लिए ढीला भी नहीं करना चाहते, और न वे अपने धर्मके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ानेके लिए ही नैतिक नियमोंमें शिथिलता लाना चाहते हैं। यद्यपि वे अल्प संख्यक हैं, परन्तु उनकी यह अल्पसंख्या ही शानदार है। इस 'काले महादेश' में केवल वे ही संयम और नैतिकताके रक्षक हैं। उन्होंने दूसरे लोगोंमें भी स्वतंत्रता और आत्म-बलिदानके भावोंको उत्पन्न कर दिया है। फल यह हुआ है कि राजनैतिक बातें केवल उन्हीं स्थानोंमें सफल हो सकी हैं जहाँ आर्य-समाजोंने काम किया है। मेरी समझमें राष्ट्रीयताका सवाल किसी देशके समस्त अधिवासियोंके लिए एकसा है, इसलिए किसी धर्मको किसी राष्ट्रीयतासे मिश्रित कर देनेसे मामला और भी अधिक उलझ जाता है। हमें सदा सत्य और पवित्रताके नामपर खड़ा होना चाहिए। इक्का-दुक्का आर्यसमाजियोंने भी, जो जंगलमें रहते हैं, नशेसे बचने और काम-प्रवृत्ति सम्बन्धी पवित्रताके लिए ख्याति प्राप्त की है। यह उनके लिए श्रेयकी बात है।

शर्तबन्दी कुली-प्रथाकी एक स्मृति

[लेखक :—रायबहादुर श्री रामदेव चोखानी]

यों तो प्रायः ८०-९० वर्षोंसे आसामके चायके बगीचोंमें भेजे जानेवाले भारतीय कुलियोंकी दुःखपूर्ण कथा सुनी जाती थी, पर इधर गत बीस वर्षोंसे नेटाल, मारीशस, ट्रिनीडाड, ब्रिटिश-गायना, फिजी, जमैका आदि टापुओंमें जानेवाले भारतीय कुलियोंकी दुर्दशा तथा उनपर होनेवाले अत्याचारोंके समाचार बड़े जोरोंसे सुनाई देने लगे हैं। कलकत्तेके मारवाड़ी-ऐसोसियेशनने पहले-पहल यहाँसे जानेवाले कुलियोंके विषयमें सन् १९१३ में लिखा-पढ़ी आरम्भ की। जब इसका आन्दोलन बढ़ा, तब भारत-सरकारने मि० मेकनील और लाला चिमनलालको कुलियोंकी दशा जाँचकर अपनी रिपोर्ट पेश करनेके लिए कहा। उन लोगोंने जून सन् १९१४ में भारत लौटकर अपनी रिपोर्ट सरकारको दी। यह रिपोर्ट दो भागोंमें छपी, और लोगोंको मालूम हो गया कि लीपा-पोतीके सिवा सरकारका कोई उद्देश नहीं है। उसी समय दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ और भारत-हितैषी पियर्सनके हृदयमें इस विषयको हाथमें लेनेकी उमंग उठी।

मारवाड़ी ऐसोसियेशनने अगस्त सन् १९१५ में भारत-सरकारको इंडियन ऐमीग्रेशन-ऐक्टको सुधारनेके लिए ज़ोर दिया, और मि० मेकनील और चिमनलालकी रिपोर्टके बुरे प्रभावको दूर करनेके उद्देश्यसे भारतके सपूत सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके परामर्शके अनुसार किसीको अत्याचारके केन्द्र फिजीको अपने प्रतिनिधि भेजकर दूसरी सच्ची रिपोर्ट प्रकाशित करनेकी इच्छा की। परमात्माकी कृपासे उसके दो-चार दिन बाद मि० ऐण्ड्रूज़ और पियर्सन कलकत्ते आये, और मारवाड़ी-एसोसियेशनने उन दोनोंके मार्ग-व्ययके लिए डेढ़ हज़ार रुपयेकी सहायता दी। शेष सहायताकी रकम बंबईकी 'इंडियन सिटिज़नशिप-लीग' से प्राप्त हुई। वे लोग फिजी गये, और फरवरी सन् १९१६ में ऐसोसियेशनकी सहायतासे अपने करुणाजनक अनुभवोंका ऐसा हृदय विदारक चित्र खींचा, जिससे भारतीय जनतापर बड़ा ही प्रभाव पड़ा, देशमें चारों ओर हलचल मच गई, और उदार-हृदय लार्ड हार्डिंजका हृदय पिघल उठा। मि० ऐन्ड्रूज़ने श्रीमती सरोजिनी नायडूकी सहायतासे उस समय भारतव्यापी प्रचण्ड आन्दोलन खड़ा कर दिया, और सरकार घबरा उठी। कलकत्तेमें, पण्डित अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी, बाबू देवीप्रसाद खेतान, डा० टंडन आदि महानुभावोंके उद्योगसे 'ऐन्टी-इन्डेन्चर्ड लेबर-लीग' बनी, और उसने भी सार्वजनिक सभाओं, ट्रेक्टों, समाचारपत्रों द्वारा यथेष्ट सहायता की। डा० टंडन और पं० तोतारामजी सनाढ्यने जी-तोड़ परिश्रम किया। अन्तमें एसोसियेशनकी देशपूज्य मालवीयजीने लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें कुली-प्रथा रोकनेके प्रस्ताव पेश किया। पूज्य मालवीयजीकी ओजस्विनी वक्तृताका कौन्सिलपर ऐसा उत्तम प्रभाव पड़ा कि प्रस्ताव पास हो गया।



रायबहादुर श्री रामदेव चोखानी

इसके पहले यूरोपीय महायुद्ध सन् १९१४ में आरम्भ हो गया था। सरकारने आन्दोलनका ज़ोर देखकर युद्धके बहाने एक आर्डिनेन्स द्वारा कुलियोंको भेजना अस्थायी रूपसे बन्द कर दिया था, परन्तु इस क़ानूनके पास हो जानेसे शर्तबंदी कुली-प्रथा एक प्रकारसे बन्द हो गई। सन् १९१६ के मार्चके अन्तमें, जिस समय लार्ड हार्डिजको दिल्लीमें समस्त भारतकी ओरसे विदाई दी जा रही थी, उस समय इन पंक्तियोंका लेखक उक्त उत्सवमें मारवाड़ी-ऐसोसियेशनकी ओरसे प्रतिनिधि-स्वरूप उपस्थित था। लार्ड हार्डिंजसे बातें करते समय और उनकी वक्तृता होते समय उसने देखा कि लार्ड हार्डिंज सचमुच कुली-प्रथासे बड़े व्यथित थे।

शर्तबन्दी कुली-प्रथा यद्यपि बन्द हो गई, तथापि उसका दूसरा संस्करण 'असिस्टेड इमिग्रेशन' के नामसे किया गया। गोरे व्यापारी भला अपने लाभके मोहसे कैसे मुक्त हो सकते थे? उन लोगोंने करोड़ों सम्पत्ति इस प्रथासे प्राप्त की थी। सिर्फ फिजीकी 'शुगर-रिफाननिंग-कम्पनी' ने ही इस प्रथाके कारण वह दब-दबा हासिल किया था, जिसको रोकनेकी सामर्थ्य किसमें थी? गोरोंने भी अब कोशिश की कि भारतसे कुली भेजना बन्द न हो, परन्तु भारतमें इस प्रथाको जड़-मूलसे नष्ट करनेके लिए निश्चय हो चुका था, सन् १९२२ में इस विषयके क़ानूनका फिर संशोधन किया गया। ऐसोसियेशनने उद्योग किया था कि कुछ भारतीय सज्जनोंका एक बोर्ड टापुओंको जानेवाले कुलियोंके निरीक्षणके लिए निमित्त नियुक्त हो। तदनुसार, बोर्ड बनाया गया, पर उससे कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ; क्योंकि सरकारी कर्मचारी कुलियोंके हिताहितकी ओर विशेष ध्यान देना नहीं चाहते थे। मैंने कुछ समयके लिए उक्त बोर्डका सदस्य होना स्वीकार कर लिया था, परन्तु कर्मचारियोंका दुराग्रह देखकर पद त्याग कर दिया। यद्यपि इस कार्यमें बहुतसे महापुरुषोंने भाग लिया है, तथापि महात्मा गान्धी, स्वर्गीय गोखले, लार्ड हार्डिंज, दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़, स्वर्गीय पियर्सन, माननीय मालवीयजी और पं० तोताराम सनाढ्यके नाम चिरस्मरणीय रहेंगे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदीने भी कुली प्रथाके विरुद्ध प्रचार-कार्यमें अच्छी सहायता दी। मारवाड़ी ऐसोसियेशनसे भी जो थोड़ी-बहुत सेवा इस पुण्य कार्यमें बन पड़ी, उससे वह अपनेको गौरवान्वित मानता है। अब यह दशा है कि टापुओंके गोरे व्यापारी अब यहांके कुलियोंको रखना नहीं चाहते। वे लोग जी-जानसे चेष्टा कर रहे हैं कि भारतसे कुली न आवें, क्योंकि वहाँ बसे हुए भारतीय अपने सीधे-सादे जीवनसे व्यापार आदिमें उनको ठेस देने लगे हैं। भारतमें आनेपर कुलियोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। इसके लिए भी ऐसोसियेशनने भारत-सरकारसे बहुत लिखा-पढ़ी की, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। ऐसोसियेशनका कहना था कि कुलियोंको शारीरिक तथा सामाजिक विषयमें निकम्मे बनाकर भारत लौटा देनेसे ही सरकारकारका उत्तरदायित्व पूरा नहीं होता, बल्कि सरकारका कर्तव्य है कि वह उन्हें किसी काम-धन्धेमें लगावे और उनकी आजीविकाका प्रबन्ध करे।

मेरी तो यही सम्मति है कि हम अपने भाइयोंको, जहाँ तक हो सके, दूर-देशोंमें निःसहाय अवस्थामें न भेजें, क्योंकि उपनिवेशोंकी सरकारें हमारे भाइयोंकी सहायता कभी नहीं कर सकतीं। अच्छा तो यही है कि हम भारतमें ही उनके लिए खेती-बारी तथा काम-धन्धेका ऐसा प्रबन्ध कर दें कि उन्हें बाहर जानेकी आवश्यकता ही न हो। ऐसा होनेसे हम लोग एक बड़ी तोहमतसे बच सकते हैं। यह विषय ऐसा है कि जिसमें गरम-नरम सभी दलोंके तथा सभी धर्मोंके भारतीय सहयोग कर सकते हैं, क्योंकि यह प्रश्न मनुष्यताका है।

एक पुरानी स्मृति

[लेखक :—श्री पं० तोताराम सनाढ्य]

कोठियोंमें ओवरसियरोंकी तूती बोलती थी। बिना उनकी आज्ञाके भारतीय मज़दूर स्वाँस भी नहीं ले सकते थे। मेला-तमाशोंमें भी जाना उनके लिए कठिन था। बाहरसे आये अपने इष्ट-मित्रोंका सत्कार भी वे गोरे मालिकोंकी आज्ञा बिना कोठीमें नहीं कर सकते थे। भारतीय मजदूरोंके शरीरपर केवल हड्डियाँ बाकी थीं। स्वाधीनताका तो नामोनिशान नहीं था—पूरी गुलामी थी, स्वेच्छा-पूर्वक कोई काम करने पाते थे। कोठीके मालिकोंकी नकेल उनके पड़ी थी, जिधर वे फेरते, उधर ही उन्हें चलना होता था। उनकी दु:ख-भरी साँसें मुखसे निकलतीं और कोठीके दूसरे किनारे जाकर विलीन हो जाती थीं।

कोठीवाले कितने ही गोरे मुझसे इतने नाराज़ हो गये थे। कितनी ही कोठियोंमें मेरा जाना बन्द करवा दिया था। जिन कोठियोंमें मैं अपने भारतीय भाइयोंसे मिलने जाता था, वहींसे वे मुझे निकलवानेका यथाशक्ति प्रयत्न करते थे।

इस कठिनाईसे बचनेके लिए मैंने भी एक उपाय ढूँढ़ निकाला था। हाथमें इकतारा लिये घूमता रहता था, और कबीरके कितने ही पद जो मैंने याद कर लिये थे, गाया करता था। जब किसी कोठीके भारतीय भाइयोंकी दशा देखनी होती, बस, उसी कोठीके पास सड़कके किनारे बैठकर भजन गाने लगता। भजन सुनकर शर्तबँधे भारतीय मेरे पास आ बैठते, और तब मैं उनका सब हाल मालूम कर लेता था।

एकबार मैं घूमते घूमते एक कोठीके पास पहुँचा। कोठीके भीतर घुसनेकी आज्ञा तो थी ही नहीं, इसलिए मैं सड़कके किनारे बैठकर ज़ोरसे भजन गाने लगा। भजन सुनकर कितने ही आदमी कोठीके बाहर निकले और मेरे निकट आ बैठे। मैंने गाना बन्दकर उनसे बातचीत करना आरम्भ किया। बातें करते करते मेरी दृष्टि एक मुसलमान युवतीपर पड़ी, जो थोड़ी ही दूर, मेरे पास बैठे हुए मनुष्योंके पीछे, बैठी थी।

वह स्त्री एक फटी हुई मैली धोती, पहने थी, जो जगह जगह फटी हुई थी। उसकी मुखाकृति चिन्तासे भरी दीखती थी। उसकी छोटी लड़की उसकी गोदमें बैठी थी, जो बार-बार खानेको माँग रही थी। स्त्री उस लड़कीको चुप करती और अपनी गोदमें सम्हाल-सम्हालकर बिठलाती थी, स्त्री कभी लंबी स्वांस लेती थी, कभी पृथ्वीकी ओर देखती थी और कभी सिर नीचाकर कुछ सोचने लगती थी। जब कभी वह अपने सिर ऊपरको उठाती थी तो उसकी शकलसे मालूम होता था, मानो अभी रोये देती है। उसकी यह दशा देखकर मैं जान गया कि यह शर्तबँधे कुलियोंमें भरती होकर हाल ही में आई है और अवश्य किसी विपत्तिसे व्याकुल है। मैं यह विचार कर ही रहा था कि इतनेमें एक भारतीय भाईने भजन सुननेके लिए आग्रह किया।

मैंने कबीरका पद गाया—'मन तो हि कौन भाँति समझाऊँ।'' अभी भजन पूरा भी नहीं होने पाया कि ज़ोरसे रोनेकी आवाज़ आई। मैंने देखा कि वही स्त्री सिर नीचे किये रो रही है। गाना बन्द करके मैं उसके पास गया, और पूछा—'कहो, तुम्हें क्या दु:ख है? सब कहो, जैसी कुछ मुझसे बन सकेगी, मैं तुम्हारी मदद करूँगा।'

आँखें पोंछती हुई उस स्त्रीने कहा :—

"मेरा नाम है ललिया और मेरे मालिकका इस्माइल। हम दोनों कानपुरमें रहते थे। मेरा मालिक स्टेशनपर मुसाफिरों माल ढोया करता था, और इस तरह वह आठ-दस आने रोज़ कमा लेता था। उसमें हम तीनों -मर्द, औरत और बेटी — गुज़र करते थे। एक दिन मेरा खाविन्द मजदूरी करनेके लिए

गया और उस दिन वह लौटकर घर नहीं आया। इस फ़िक्रमें उस दिन रात-भर मैं घबराती रही। दूसरे दिन एक आदमी मेरे घरपर आया, और उसने कहा—'तुम यहाँ बैठी हो और वहाँ तुम्हारे मालिकको बड़ी चोट लगी है। वह एक मुसाफ़िरके दो सन्दूक लिये आ रहा था कि सन्दूक उसके पाँवपर गिर पड़े। इससे उसे कई जगह भारी चोट पहुँची है, अगर तुम उसे देखना चाहो तो मेरे साथ चलो।' मैं यह सुनकर घबरा गई और उसके साथ चल दी। वह मुझे साथ लेकर एक बड़े मकानके दरवाज़ेपर पहुँचा। उसने मुझसे कहा—'देखो, इसी मकानमें तुम्हारा मालिक है। यह डाक्टर साहबका मकान है। थोड़ी देर ठहरो मैं डाक्टर साहबकी आज्ञा ले आऊँ, बिना हुक्म कोई मकानके अन्दर नहीं जा सकता।'

थोड़ी देर बाद मकानके अन्दरसे कोट-पाजामा पहने, चश्मा लगाये, एक आदमी आ पहुँचा, मेरे साथवाले आदमीने कहा—'लो, डाक्टर साहब आ गये। यह कहकर आगे जा और झुककर उसने डाक्टर साहबको सलाम किया। डाक्टर साहबने कहा—'कहो, कोई ज़रूरी काम है?' उस आदमीने कहा—'हाँ साहब! देखिये, यह स्त्री उस आदमी (इस्माइल) की औरत है, जो कल दिनको चोट लगनेसे आपके अस्पतालमें आया है। यह अपने आदमीको देखना चाहती है।' डाक्टर साहबने कहा—'अभी हम नहीं मिलने देगा क्योंकि उस आदमीको भारी चोट लगा है। उसका जान आफ़तमें है। यदि उसने अपनी औरतको देखा, तो इसमें शक नहीं कि उसका जान निकल जायगा और औरतको भी बहुत घबराहट होगा। चार-पाँच दिन बाद कुछ सेहत होनेपर मिल सकती है। कहीं भागा थोड़े ही जाता है। तुम कैसे अहमक़ हो, जो ऐसे बेमौक़े इस औरतको ले आये हो।''

[पाठक पूछेंगे कि यह आदमी जो ललियाको साथ ले आया था, वह और डाक्टर कौन थे! यह समझा देना यहाँ आवश्यक है। डाक्टर साहब तो कुलियोंकी भरती करनेवाले दलाल हैं, और जो आदमी ललियाको धोखा देकर ले आया है, वह उनका आरकाटी है, जो छल-कपटका जाल बनाकर भोले-भाले स्त्री-पुरुषोंको बहकाकर ग्रामोंसे फाँस लाता है और डिपोवाले दलालको सौंप देता है। अब आगे चलकर हम आरकाटी शब्दका ही प्रयोग करेंगे। ये आरकाटी धोखा देनेमें इतने चतुर होते हैं कि इनके जालसे निकलना बड़ा कठिन काम है।]

आरकाटीने डाक्टर साहबसे कहा—'हुज़ूर इस औरतके पास खानेको कुछ नहीं है। देखिये, इसकी छोटी लड़की भी भूखसे तड़प रही है।' डाक्टर साहबने कहा—'अच्छा, दोनोंके लिए खानेका बन्दोबस्त कर दो।' इस तरह मेरे खाने और रहनेका बन्दोबस्त कर दिया गया। मैं वहाँ रहने लगी। वह आरकाटी रोज़ मेरे पास आता और घण्टों बातें किया करता। जब मैं अपने खाविन्दको देखनेकी विनती करती तो ''दो-एक दिन अभी और ठहरो'' कहकर चला जाता। मैं दिन-रात फ़िक्रमें रहती और अपने खाविन्दकी चोटका हाल मुझे चैन नहीं लेने देता। कोई मुझसे मिलने भी नहीं आता। अपना दुःख मैं किससे कहूँ, यह आदमी कौन है, जो मुझे यहाँ लाया है? इसने जो कुछ कहा, वह सच है या झूठ, मैं कुछ भी तय न कर सकी। कल अपने मालिकको देखूँगी। अच्छा, आज नहीं एक दिन बाद ही सही, देख तो पाऊँगी। हाय! न जाने कितनी चोट लगी होगी, घबरा गये होंगे, लड़कीकी याद कर रोते होंगे। समयपर खानेको उन्हें कौन देता होगा? ऐ ख़ुदा! यह आफ़तका पहाड़ कहाँसे हम गरीबोंपर टूट पड़ा। इसी सोच-विचारमें दिन-रात डूबी रहती थी। वह आदमी (आरकाटी) रोज़ मुझे बहकाता रहता था। इसी तरह मुझे वहाँ दस दिन बीत गये। तब वही डाक्टर साहब आये। मैंने अर्ज़ की कि आज मेरे मालिकसे मिला दीजिए हुज़ूर!

डाक्टर साहब बोले—'अरे, तुम अभी तक यहीं पड़ी हो?' तुमारा आदमी, इस्माइल, तो पाँच-सात दिन हुए हमारे सफ़ाख़ानेसे चला गया। हमने बहुत कहा कि चार-पाँच दिन और ठहर जा, अच्छी तरह आराम हो जाने दे, लेकिन

उसने नहीं माना। कहा कि मेरे बाल-बच्चे भूखों मरते होंगे, और चला गया।

यह सुनकर मैं तुरन्त लड़कीको लेकर घरकी तरफ चल पड़ी। थोड़ी दूर जानेपर रास्तेमें तीन आदमी कुछ कुछ दूरीपर खड़े मिले। पहले आदमीने कहा—'अरे ललिया, कहाँ जाती हो? किसकी तलाशमें हो?' मैंने सारा किस्सा कह सुनाया। उस आदमीने बड़े अचम्भेके साथ कहा—'अरे, इस्माइल तो कलकत्ते भेज दिया गया! उसे आरकाटीने बहका दिया था।' दूसरे आदमीने भी यही बात कही,—'हाँ, हाँ, हमने भी देखा, वह तो गया।' तीसरे आदमीने कहा—'अरे ललिया, सुन, पीछे तेरा मालिक स्टेशनसे मजूरी करके घरपर आया था, लेकिन तुझे घरपर नहीं पाया। तब वह तुझे खोजने निकला और एक आरकाटीने उसे बहका दिया, कहा कि तेरी स्त्री डिपोमें भर्ती होकर कलकत्ते चली गई। यह सुनकर वह तो तुरत कलकत्ते तुम्हें खोजने चला गया। अगर तुझे उससे मिलना हो, तो तू भी कलकत्ते जा जल्दीसे।'

[ये तीनों आदमी जो ललियाको रास्तेमें मिले, वे भी अरकाटीके सहायक थे !] मैं ये बातें सुनकर घबड़ा गई और अपने मालिकसे मिलनेकी चिन्तासे पागल-सी हो गई, खाना-पीना सब भूल गई। मैं फौरन कलकत्ते जानेको राजी हो गई। उस आदमीने मुझे बहुतसे आदमियोंके साथ, जो कलकत्ते जा रहे थे, भेज दिया।

जब मैं कलकत्ते डिपोमें, जो कुलियोंका प्रधान अड्डा था, पहुँची, तो मुझे पता लगा कि मेरा मालिक कुछ दिनों पहले फिजी-टापूको भेज दिया गया है। यह सुनते ही मैं पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जब मुझे होश हुआ, तो मैंने अपनी लड़कीको अलग पड़ा पाया। उसके सिरमें चोट लग गई थी, और दो-तीन बंगाली बाबू मेरे पास खड़े थे। मैंने लड़कीको सम्हाला और लंबी स्वांस लेकर बैठ गई। बगाली बाबुओंने मुझे समझाया कि तुम मत घबराओ, तुम्हारे पतिके पास हम फिजी तुमको भेज देंगे, वहाँ वह मिल जायगा और तुम दोनों खूब पैसा कमाओगे। तुम्हारा सब दुःख दूर हो जायगा। जब तुम्हारा मालिक चला गया है, तब तुम अकेली यहाँ क्या करोगी? यह सुनकर मैंने भी यह तय कर लिया कि जब मेरा मालिक ही चला गया, तो मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी। खुदाने चाहा, तो वे मिल ही जायँगे। चलो, फिजी ही चलकर उनसे मिलूँ। जब दूसरा जहाज खुला, तो उससे मैं फिजी भेज दी गई।

आज करीब तीन बरस हो गये। मैं इस कोठीमें काम करते-करते मरी जाती हूँ। अपने मालिककी यादमें कोई दिन बिना रोये नहीं रहा जाता। मुझे नहीं मालूम कि मेरा मालिक कहाँ है। मैं आपका बड़ा अहसान मानूँगी, अगर आप मेरे मालिकको मुझसे मिला दें।"

इतना कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी सारी कहानी सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उसका नाम, उसके घरका और उसके मालिकका हिन्दुस्तानका पता-ठिकाना मैंने लिख लिया, और उसे तसल्ली देकर वहाँसे रवाना हुआ।

सूवा जाकर मैंने एजेन्ट जनरलसे भेंट की। उनसे प्रार्थना की कि गत तीन वर्षसे आये हुए लोगोंमें इस्माइल नामक आदमी जिस कोठीमें हो, उनकी मुझे सूची चाहिए। यह सुनकर एजेण्ट-जनरल साहबने मुझे फटकार बताई और फेहरिस्त देनेसे इनकार कर दिया।

कुछ दिनों बाद, मैं नबुआकी रामलीला देखने गया था। दूर-दूरके लोग उसमें आये थे। हर किसीसे मैं इस्माइलका पता पूछता था। मुझे पता लगा कि इस्माइल नामका एक आदमी रबरकी कोठीमें काम करता है। मैं वहाँ पहुँचा, और भेंट होनेपर मैंने उससे कहा—"तुम ललियाको जानते हो?" ललियाका नाम सुनते ही उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। रोते-रोते उसने पूछा—"क्या उसके पास एक लड़की है? आपने कहाँ देखा उसे?" मैंने कहा—"हाँ, लड़की है और दोनों अच्छी तरहसे फिजीमें आ गये हैं। तुम्हारे आनेके कुछ दिन बाद आये हैं।" इस्माइलने आरकाटियोंकी करतूतोंका सब किस्सा सुनाया और मैंने भी ललियाकी सब

कथा बतलाई। सुनकर वह रोते-रोते बोला—'खुदाके नामपर आप मेरी मदद करें। मेरी औरत और बच्चीको मुझे मिला दें।" मैं उसे धीरज देकर सूवा पहुँचा और एजेन्ट जनरलसे प्रार्थना की कि इस्माइलका सब खर्च लेकर उसे छोड़ दें, लेकिन मेरी अर्जी नामंजूर हुई। तब मैं कोठीके मैनेजरके पास गया और उससे कहा कि आप अपना सब खर्च लेकर इस्माइलको छोड़ दें। उसने कहा—'बड़ा मैनेजर सिडनी गया है, उसके आनेपर विचार किया जायगा।"

इस तरह दौड़-धूप करते पाँच महीने बीत गये। छठे महीने मैं फिर कोठीके बड़े मैनेजरसे मिला और इस्माइलका कुल खर्च लेकर उसे छोड़नेकी प्रार्थना की। मैनेजरने कहा—"आज पाँच महीनेसे इस्माइल बीमार था, उसकी सिर्फ हड्डियाँ ही रह गई हैं। डाक्टरने लिखा है कि इसको कोढ़ हो जानेका डर है, इसलिए इसको फौरन हिन्दुस्तान वापस भेज दो, इसी कारण उसे यहाँसे भेज दिया गया और इस वक्त सूवामें है। कुछ ही दिनोंमें जो जहाज़ आया है, उसपर उसे हिन्दुस्तानको वापस भेज दिया जायगा।"

मैं वहाँसे रवाना हुआ और सूवामें इस्माइलसे मिला। उसने एक आह-भरी साँस खींची, और कहा कि अब मैं अपनी औरत और बच्चीको न देख पाऊँगा। मैंने एक बैरिस्टरको दो गिनी देकर राय ली। उसने कहा कि कल जहाज़ छूटनेवाला है, अब कुछ नहीं हो सकता। उसे कोढ़ होनेका डर है, इस कारण उसको वापस भेजना तय हो चुका है।

लाचार होकर मैं बैठ रहा। रात-भर नींद नहीं आई। सवेरे उठकर मैं जहाज़पर गया। जानेवाले लोग चढ़ रहे थे। खलासी उनकी गठरी लाद रहे थे। कहीं मिला-भेंटी होती थी। कहीं सदाके लिए एक दूसरेसे विदा हो रहे थे। कोई क्षमा माँगता था। कोई कहता था—"छोह रखले रहब, भाय।" कोई कहता था—"भाय, चिठिया ज़रूर भेजिहो।" यही आवाजें चारों ओरसे गूँज रही थीं। इस्माइल कम्बल बिछाये जहाज़के एक कोनेमें बैठा था। मुझे देखते ही वह रोने लगा, और बोला—"महाराज, आपको खुदा खुश रखे। बड़ी मेहनत की आपने। खुदाको जो मंजूर है, वही होगा। हो सके तो ललियाको धीरज देना और कह देना कि अब खुदाके यहाँ मिलना होगा।"

इतनेमें जहाज़ने पहली सीटी बजाई। तमाशगीर फाटकमें उतरकर नीचे आ गये। कुछ देर बाद दूसरी सीटी बजी। जहाज़का लंगर उठा और तीसरी सीटी बजाकर जहाज़ चल दिया। इस्माइलने जहाज़के ऊपरसे मेरी तरफ़ हाथ जोड़े, और दोनों हाथ सिरपर दे मारे, मेरी आँखे आँसुओंसे भर गईं, कुछ न देख सका। आँखें खुलीं, तो देखा कि जहाज़ अब बहुत दूर चला गया है। मैं पछताता हुआ घर लौट आया।

कुछ दिन बाद, उसी जहाज़के एक करीम नामक खलासीकी चिट्ठी मेरे पास आई। उसने लिखा कि इस्माइल कलकत्ता पहुँचते ही दुनियाँसे कूँच कर गया!

ललियाको यह समाचार मैंने चिट्ठी द्वारा भेज दिया था। तीन बरस बाद, मैं घूमता हुआ उधर जा निकला। ललियासे भेंट हुई। लड़कीकी शादी होनेको थी कि इतनेमें वह मर गई! ललिया अब पहलेकी ललिया नहीं है। सिरके बाल बिखरे हैं। शरीरके कपड़ोंकी सुधि नहीं है। जहाँ पाती है, बैठ जाती है; कभी अपनी देह नोंचने लगती है, कभी रोती है, कभी हँसती है। जो मिल गया, वह खा लेती है। मुँह बन्द किये पागल हुई जिन्दगीके दिन गिन रही है। हाय रे दासता!

× × ×

शर्तबन्दीकी गुलामी ८० वर्ष जारी रही। हज़ारों ही ऐसी दुर्घटनाएँ घटी होंगी। मैं खुद २१ वर्ष फिजीमें रहा, पाँच वर्ष शर्तबन्दीमें और सोलह वर्ष स्वतंत्र होकर। मुझे हिन्दुस्तानको लौटे हुए भी १६ वर्ष हो गये। महात्मा गान्धी और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़के प्रयत्नसे शर्तबन्दी गुलामीकी प्रथा, जिसमें इस तरहके अत्याचार होते थे, बन्द हो गई। बहुत सी पुरानी बातें भूल गया और भूलता जाता हूँ, पर इस्माइल और ललियाकी बात नहीं भूला। भुलाये भी नहीं भूल सका। आज भी आँखें बन्द करनेपर जहाज़का वह दृश्य मेरे सामने आ जाता है। आज भी कानोंमें वह आवाज़ गूँज रही है, इस्माइल कह रहा है—"खुदाको जो मंजूर है, वही होगा। हो सके तो ललियाको धीरज देना, और कह देना कि अब खुदाके यहाँ मिलना होगा।"

प्रो० पांडुरंग सदाशिव खानखोजे

[लेखक :—श्री आनन्दराव जोशी]

न्यायप्रिय ब्रिटिश गवर्मेन्टकी न्याय-प्रियतासे हम लोग अपने ही देशमें सरकारी विभागोंके उच्च पदोंपर आसीन नहीं हो सकते। डेढ़ शताब्दीके सुदीर्घ शासनकालमें अंग्रेज़ोंको भारतवर्ष-भरमें केवल एक व्यक्ति इस योग्य मिला, जो थोड़े दिनोंके लिए एक प्रान्तका स्थायी गवर्नर बनाया जा सके! प्राय: सभी सरकारी पदोंके लिए विलायतसे मोटी मोटी तनख्वाहोंपर अंग्रेज़ लाकर बिठा दिये जाते हैं, और विलायतवाले आये दिन हमारी अयोग्यताके गीत गाया करते हैं। ऐसी दशामें पाठकगण, क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि कोई निर्धन भारतीय विद्यार्थी विदेशमें जाकर अपने परिश्रम और पुरुषार्थसे ज्ञानोपार्जन करके किसी छोटी रियासतका शिक्षा-मंत्री या मैक्सिको जैसे प्रजातंत्र राज्यके सरकारी कृषि-प्रयोगशालाका प्रधान हो सकता है? पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि एक निर्वासित महाराष्ट्रीय देशभक्त प्रो० पांडुरंग सदाशिव खानखोजे एक ईरानी रियासतके शिक्षा-मंत्री रह चुके हैं और आजकल मैक्सिकोमें कृषि-प्रयोगशालाके प्रधान हैं। उनका संक्षिप्त जीवन-चरित पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किया जाता है।

प्रो० पांडुरंग सदाशिव खानखोजे ऋग्वेदी शाखाके महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। उनका जन्म मध्यप्रान्तके वर्धा नगरमें २७ दिसम्बर सन् १८८४ को हुआ था। उनके वृद्ध पिता श्री सदाशिवराव उर्फ़ अन्याजी खानखोजे इसी नगरमें अर्ज़ीनवीस (Petition waiter) का धन्धा करते हैं। श्री अन्याजीको तीन पुत्र हुए थे। प्रो० खानखोजे उनमें सबसे बड़े हैं। अन्य दो भाइयोंमें, एककी भरी जवानीमें मृत्यु हो गई, और दूसरे आजकल वर्धा डिस्ट्रिक्ट-बोर्डमें नौकर हैं।

प्रो० खानखोजेकी प्रारम्भिक मराठी शिक्षा वर्धाके प्राइमरी स्कूलमें ही हुई। उन्होंने मराठीकी चौथी कक्षाकी परीक्षा सन् १८९६ में पास की थी।

इसके बाद वे वहाँके फर्स्ट ग्रेड मिडिल स्कूलमें अंग्रेज़ीकी तालीम पाने लगे और वहाँसे सन् १९०२ में मिडिल स्कूलकी परीक्षा पास की। बादको वर्धामें उस समय हाई-स्कूल न होनेके कारण वे अपने चाचा श्री गोविन्दराव खानखोजेके पास नागपुर चले गये और वहाँके प्रसिद्ध सिटी हाई-स्कूलमें पढ़ने लगे। इस हाई-स्कूलमें उन्होंने मैट्रिक तककी शिक्षा प्राप्त की। मैट्रिककी परीक्षामें बैठनेके पूर्व कुछ कारणवश वे हाई-स्कूलकी टेस्ट-परीक्षामें इतिहास और भूगोलमें फेल हो गये। इसपर उक्त हाई-स्कूलके हेड मास्टरने उन्हें मैट्रिककी परीक्षामें भेजनेसे इनकार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि युवक खानखोजेने इस दूषित शिक्षा-प्रणालीसे अन्तिम विदा ले ली, और हेडमास्टर साहबसे कहा—"अब सिटी स्कूलमें ही क्या, मैं भारतवर्षके किसी भी स्कूलमें शिक्षा ग्रहण न करूँगा।"

प्रो० खानखोजे विद्यार्थी-अवस्थासे ही स्वदेशोन्नतिके कार्योंमें योग दिया करते थे। उन दिनों स्वदेशी आन्दोलनमें उन्होंने बड़े उत्साहसे भाग लिया था। हाई-स्कूल छोड़नेके बाद वे कुछ दिनों तक यवतमालकी राष्ट्रीय पाठशालामें अध्यापक रहे थे। विदेशोंमें जाकर शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छा उन्हें पहलेसे ही थी, किन्तु उपर्युक्त घटनासे उनका यह विचार और भी दृढ़ हो गया। इसके पहले उनके पिता दो-एक बार उनके विवाहकी बातचीत कर चुके थे, किन्तु उन्होंने उनसे साफ कह दिया था, "मैं शिक्षा प्राप्त करनेके लिये विदेश जानेवाला हूँ, इसलिए मैं विवाह नहीं करूँगा। कृपया आप इस झंझटमें न पड़ें।" इस जवाबसे उनके पिता उनसे बहुत बिगड़े, और उन्होंने उनको अत्यन्त कठोर शब्द सुनाये। फल यह हुआ कि उनका विदेश-गमनका विचार दूना दृढ़ हो गया, और उन्हें अमेरिका जानेकी धुन सवार हो गई। पहले वे लाहौर गये, और वहाँसे

आर्यसमाजके कुछ सज्जनोंसे तथा विवेकानन्द-मिशनके लोगोंसे परिचय-पत्र आदि ले आये। इधर यह खबर सुनकर उनकी माताके हृदयपर बहुत गहरी चोट पहुँची। उन्होंने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु अन्तमें उन्हें निराश होना पड़ा। प्रो० खानखोजे वर्धासे पहले पूना गये और वहाँ लोकमान्य तिलकसे मिले। उसके बाद वे बम्बई गये। अन्तमें सन् १९०६ में उन्होंने भारत-भूमिसे विदाई ली। भारतवर्ष छोड़ते समय उनकी उम्र २२ वर्षकी थी।

पहले वे चीन और जापान गये। इन देशोंमें क़रीब एक वर्ष रहकर उन्होंने वहाँकी औद्योगिक तथा कृषि-विषयक अवस्थाका अध्ययन किया। इसके बाद सन् १९०७ में वे युनाइटेड-स्टेट्स (अमेरिका) पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे केलीफोर्निया-यूनिवर्सिटीमें दाखिल हुए। उन्होंने कारवालिसके ओरेगन ऐग्रिकलचरल कालेजमें कृषिकी शिक्षा ग्रहण करना शुरू किया। सन् १९११ में उन्होंने इस यूनिवर्सिटीसे बी० एस-सी० की डिग्री हासिल की। डिग्री प्राप्त करनेवाले २२ विद्यार्थियोंमें उनका नम्बर चौथा रहा। इसके बाद, Dry Farming का अभ्यास करनेके लिए उन्होंने ओरेगनके अर्ध-शुष्क प्रदेशोंमें प्रवास किया। फिर पुलमनके वाशिंगटन स्टेट कालेजमें अध्ययन किया। इस प्रकार सन् १९१३ में उन्होंने वाशिंगटन यूनिवर्सिटीसे एम्० एस्-सी० की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने वहांके स्टेट ऐग्रिकलचरल एक्सपेरिमेंट स्टेशनमें (कृषि-प्रयोगशालामें) प्रो० थामकी मातहतीमें काम करके भिन्न-भिन्न प्रकारकी ज़मीनों तथा फसलोंका खास तौरसे ज्ञान प्राप्त किया। कुछ दिन बाद वे मिनेसोटा-युनिवर्सिटीमें कृषि-विभागमें लेक्चरर हो गये। यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि अमेरिकामें उनकी यह सब शिक्षा केवल उनके परिश्रमसे ही हुई थी। अमेरिकामें रहते समय उन्होंने भारतकी तथा भारतीय विद्यार्थियोंकी उन्नतिके लिए जो विविध कार्य किये, उनमें भारतमें औद्योगिक शिक्षाका प्रचार करनेकी योजना, 'हिन्दुस्थान ऐसोसिएशन-आफ् अमेरिका' नामक सुविख्यात संस्थाकी स्थापनामें सहयोग और भारतकी पत्र-पत्रिकाओंमें उपयोगी तथा लाभदायक लेख प्रकाशित करवाना और पुस्तकें लिखना, ये काम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।



प्रो० सदाशिव खानखोजे, एम० एस-सी०

सन् १९१४ में वे यूरोपके रास्ते मातृभूमिमें वापस आनेके लिए रवाना हुए। उनका विचार इंग्लैण्ड और यूरोपके कुछ प्रधान देशोंकी कृषि-विषयक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करके स्वदेश लौटनेका था। दुर्भाग्यसे इसी बीचमें यूरोपियन महासमर छिड़ गया, और उनका भारत लौटना भी असम्भव हो गया। इटलीके पालेर्मो नामक शहरसे उन्होंने २६ सितम्बर सन् १९१४ को एक पत्र अपने पिताजीको भेजा था। बस, यही उनका आखरी पत्र था। इसके बाद, सात वर्ष तक उनका एक भी पत्र नहीं आया, या यों कहिये कि नहीं आने दिया गया। इन सात वर्षोंमें वे कहाँ थे और क्या करते रहे, यह कोई भी नहीं जानता था। बादको

हिन्दुस्तान ऐसोसियेशन आफ् अमेरिकाकी 'दी हिन्दुस्तानी स्टूडेन्ट' नामक मासिक पत्रिकासे यह पता लगा कि इस अर्सेमें वे यूरोपके कई देशोंमें भ्रमण करते रहे। इसी बीचमें ईरानकी धाशगई रियासतके अमीरने उन्हें अपनी रियासतका शिक्षा-मन्त्री तथा व्यापार और कृषि-विभागका डाइरेक्टर नियुक्त किया था। * अमीर साहबने उनके कार्यकी खूब तारीफ़ की थी। इसके बाद, सन् १९२२ के नवम्बरमें वे बर्लिन (जर्मनी) चले गये। जर्मनीमें रहते समय वे देश-हितके लिए कितना कष्ट उठाते थे, इसका वर्णन स्वामी सत्यदेवजीने अपनी 'जर्मन-यात्रा' नामक पुस्तकमें (पृष्ठ ७६) किया है। वे लिखते हैं:—

"अगले दिन सवेरे भाई खानखोजे मुझसे होटलमें मिलनेके लिए आये। उनसे मेरा पहलेका परिचय था। आप बड़े नम्र और विनयी हैं। आपने बड़ा स्वार्थत्याग किया है। अमेरिकन यूनिवर्सिटीके एम० एस-सी० होकर आप कुलियोंकी तरह हिन्दुस्तानियोंकी सेवामें लगे रहते हैं। सादा जीवन व्यतीत करते हुए, जीवनके सब सुखोंपर लात मारकर, आपने सेवा व्रत धारण किया है। आप भारतीय विद्यार्थियोंकी निरन्तर सहायता करते हैं। श्री खानखोजेजीको भारत आनेका पासपोर्ट नहीं मिलता। ऐसा आदमी पासपोर्टके बिना अपनी मातृभूमिके दर्शन नहीं कर सकता, यह कितने दु:खकी बात है। गुलाम देशमें पैदा होनेवाले व्यक्तिके सद्गुण उसके दुर्गुण माने जाते हैं, परन्तु देशाभिमानी पुरुष अपना सर्वस्व होम करके भी देशकी आजादीकी रक्षा करते हैं।"

सन् १९२३-२४ में जर्मनीमें बड़ा-भारी अर्थ-संकट उपस्थित हुआ था। उस समय जर्मनीकी आर्थिक दशा बहुत ही करुणाजनक हो गई थी। फल-स्वरूप प्रोफेसर खानखोजेको जर्मनीमें रहना कठिन हो गया। आखिरकार सन् १९२४ में उन्होंने जर्मनी छोड़ मैक्सिकोके लिए प्रस्थान किया। इस देशमें भी उन्हें कई अड़चनोंका सामना करना पड़ा। सबसे पहली अड़चन भाषाकी थी, क्योंकि मैक्सिकोमें स्पेनिश भाषा बोली जाती है, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम स्पेनिश सीखनी पड़ी। दूसरी अड़चन थी जीविकाकी, किन्तु कुछ दिनोंके उपरान्त वह भी मिट गई। वे आजकल मैक्सिको नगरके नेशनल-ऐग्रीकल्चरल कालेजमें कृषिके प्रोफेसर हैं। वे जूनियर तथा सीनियर ऐग्रिकल्चरल इंजीनियरिंगके विद्यार्थियोंको 'जमीन और फ़सल' विषयकी शिक्षा देते हैं। मैक्सिको-यूनिवर्सिटीकी फैकल्टीने प्रो० खानखोजेकी योग्यताकी बहुत प्रशंसाकी है। सन् १९२८ में मैक्सिकोकी सरकारने उन्हें कृषि-प्रयोगशालाका प्रधान नियुक्त किया। इसके अलावा, वहाँकी कृषक-समितिने 'Escuela Libre de Agri-culture F. 3.' का डाइरेक्टर बनाया है। इतना ही नहीं, आप इस समितिके ऐग्रीकल्चरल डिपार्टमेन्टके सभापति भी नियुक्त किये गये हैं।

प्रो० खानखोजेकी उम्र इस समय ४६ वर्षकी हो गई है, किन्तु वे अभी तक अविवाहित ही हैं। उन्हें अपनी भारत-भूमिसे विदा लिए हुए आज पचीस वर्ष हो चुके हैं। मातृभूमिका दर्शन करने तथा उसकी सेवा करनेकी उनकी प्रबल इच्छा है, किन्तु हमारी ब्रिटिश सरकार उन्हें अपने देशमें नहीं आने देती! वह उन्हें अपनी जन्मभूमिके दर्शनसे भी ज़बर्दस्ती वंचित करना चाहती है। हमें यह लिखते अत्यन्त दु:ख होता है कि प्रो० खानखोजेकी माता अपने प्रिय पुत्रके दर्शनकी कई वर्षों तक प्रतीक्षा करते-करते अन्तमें इस पवित्र अभिलाषाको मनमें लिए हुए ही सन् १९१८ को परलोकको चल बसीं। अब इधर उनके पिता भी बहुत वृद्ध हो गये हैं। उनकी अवस्था इस समय लगभग ७५ वर्षकी है। उनपर पड़ी हुई भयंकर कौटुम्बिक विपत्तियोंसे उनका हृदय दु:खाग्निसे जर्जर हो गया है। ऐसी दशामें अपने पुत्रके वियोगका उन्हें कितना दु:ख होता होगा, यह पाठक ही सोचें! क्या ब्रिटिश सरकार इस तड़पती हुई वृद्ध आत्माकी पुत्र-दर्शनकी अभिलाषा शीघ्रातिशीघ्र नहीं पूर्ण करेगी?

औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघकी मंसूरी-यात्रा

[लेखक :—श्री बी० डी० लक्ष्मण]

भारतसे बाहर जानेवाले प्रवासी प्राय: ऐसे देशोंमें जाकर बसे हैं, जो समुद्रसे बहुत पास हैं। बहुतसे भारतीय उपनिवेश—जैसे मारिशस, फिजी, लंका, ट्रिनीडाड आदि—तो द्वीप हैं, जिनके चारों ओर ही समुद्र है। आप जानते हैं कि समुद्रके पास होनेसे किसी भी देशकी आब-हवापर बड़ा असर पड़ता है। समुद्र गर्मीमें अपने समीपके स्थानोंकी गर्मीको घटाता है और जाड़ेमें सर्दीको बढ़ने नहीं देता, इसलिए समुद्रके समीपस्थ स्थानोंकी आब-हवा सम-शीतोष्ण होती है। प्राय: अधिकांश औपनिवेशिक बालक इसी सम-शीतोष्ण जल-वायुके आदी होते हैं।

अप्रेलके महीनेमें उत्तर-भारतके मैदान सूर्यकी प्रखर किरणोंसे तपने लगते हैं। उस समय भारतके स्थायी वासियोंका मन भी गर्मीसे क्लान्त होकर शीतल पहाड़ी स्थानोंके लिए लालायित हो उठता है। फिर औपनिवेशिक विद्यार्थियोंके लिए तो इस गर्मीका असह्य होना स्वाभाविक ही है। इन्हीं दिनोंमें विद्यार्थियोंको गर्मीकी लम्बी छुट्टियाँ भी मिला करती हैं, इसलिए इस वर्ष यह विचार किया गया कि औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघके सदस्य अपनी इन छुट्टियोंको देहरादून और मंसूरीमें बितावें। साथ ही, वहाँ संघका अधिवेशन भी किया जाय। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंने इस विचारको पसन्द किया। देहरादूनके दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजके प्रिन्सपल श्री लक्ष्मणप्रसादने सबके ठहरनेके लिए अपने कालेजके होस्टलमें प्रबन्ध कर दिया। अन्तमें भिन्न-भिन्न स्थानोंके विद्यार्थीगण आकर एकत्रित हुए।

२६ मईको विद्यार्थियोंका एक दल देहरादून आकर उतरा। इसमें कानपुर, गुरुकुल वृन्दावन तथा मेरठमें पढ़नेवाले विद्यार्थी थे। वे अपनी-अपनी संस्थाओंके पूर्ण परिचायक थे। गुरुकुलके विद्यार्थी और स्कूलोंके छात्र स्पष्ट रूपसे पृथक् दिखाई पड़ते थे। यहाँ भोजन आदिका प्रबन्ध पहलेसे ही कर लिया गया था। सब लोग होस्टलमें जाकर ठहरे और यथासमय भोजमें सम्मिलित हुए।

पहले कुछ दिन केवल आराम करने और थकावट उतारने ही में बिताये गये, फिर यहाँके दर्शनीय स्थानोंकी सैर की गई। कोलागढ़का अजायबघर तथा एक्सपेरिमेन्टल सेक्शन, जंगलातका कालेज और सहस्रधारा आदि स्थान एक-एक करके देखे गये। सहस्रधारा नामक स्थानमें गन्धकके पानीका सोता है, जिसमें स्नान करनेसे सब प्रकारके चर्म रोग दूर हो जाते हैं। यहाँ पानीका एक झरना प्राय: सौ फीटसे अधिक ऊँचाईसे गिरता है। इतनी ऊँचाईसे गिरनेके कारण पानीकी अनेकों धाराएँ हो जाती हैं। यहीं एक खोह भी है, जिसमें मूसलाधार पानी बरसता रहता है।

देहरादूनमें संघकी पाँच साधारण बैठकें हुईं। इनमें सभी सदस्योंने बड़े उत्साहसे भाग लिया था। औपनिवेशिक विद्यार्थियोंकी उन्नति-सम्बन्धी प्रश्नोंपर खूब विचार किया गया और उनके हल करनेके उपाय निकाले गये। संघकी अन्तरंग सभाकी भी बैठक हुई। उसमें आगामी छ: महीनेका



औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघके सदस्य मंसूरीके रास्तेमें सुस्ता रहे हैं

कार्यक्रम निश्चित किया गया और अन्य कई प्रस्ताव भी पास किये गये। इन प्रस्तावोंमें एक यह था कि 'औपनिवेशिक' नामका एक त्रैमासिक पत्र संघकी ओरसे निकाला जाय। एक दूसरे प्रस्तावमें फिजी-निवासी ब्रह्मचारी ईश्वरचन्द्रकी असामयिक मृत्युपर खेद प्रकट किया गया तथा मृतककी आत्माको शान्ति और उसके दुःखित माता-पिताको धैर्य देनेके लिए परमेश्वरसे प्रार्थना की गई।

१२ जूनको मंसूरीकी यात्रा आरम्भ हुई। पहले हम सब लोग राजपुर तक मोटरपर गये। राजपुरसे मंसूरीकी चढ़ाई आरम्भ होती है। इसके आगे मोटर गाड़ी नहीं जा सकती। दस वर्षसे कम आयुके लड़कोंके लिए डांडीका प्रबन्ध था। बाकी सब लोग रमणीय प्रकृतिके सौन्दर्यका आनन्द लूटते हुए पैदल चले। गुरुकुल वृन्दावनके सहायक अधिष्ठाता श्री रामचन्द्रजीके उद्योगसे वहाँ एक सप्ताह ठहरनेके लिए प्रबन्ध हो गया था।

मंसूरीके जल-वायुका क्या कहना है! वहाँ पहुँचते ही हम लोगोंका मन प्रफुल्लित हो गया। हमारे सब साथी इधर उधर घूमकर मंसूरीका मज़ा लेने लगे। हम लोगोंने पहाड़ी शिखरोंका आरोहण किया, और जंगलोंका आनन्द उठाया। यहाँकी ठंडी ठंडी सुगन्धित हवा हृदयमें एक नया जीवन ला देती है। यहाँ ईश्वरीय लीलाका एक नया ही दृश्य दिखाई देता है। कहाँ वे समस्त प्रकारके गुल-गपाड़ेसे भरे हुए शहर, जहाँ "दिन नहिं चैन, नींद नहिं राती" का भूत सदा सिरपर सवार रहता है, और कहाँ यह निर्जन प्रकृतिकी रमणीक क्रीड़ा-भूमि! महामहिमामय हिमालयकी हिमाच्छादित चोटियोंके दर्शनका सौभाग्य जीवनमें सर्वप्रथम हमें यहीं प्राप्त हुआ। हमें यहाँ पहुँचकर भारतके इस नैसर्गिक मुकुटके महत्त्व, सौन्दर्य्य महानता, और प्रभावका कुछ अनुभव हुआ। मंसूरीमें दो दिन संघकी बैठक हुई, जिसमें श्री स्वा० सत्यानन्दजीने बहुमूल्य उपदेश दिये।

मसूरीसे लौटकर देहरादूनमें चार दिन आराम करनेके बाद, एक दिन सायंकाल सहभोज होना निश्चित हुआ। इस अवसरपर प्रिंसिपल लक्ष्मणप्रसादजी, प्रो० अनन्तस्वरूपजी सिनहा, पं० नरेन्द्रनाथजी, पं० दामोदरजी स्नातक तथा फिजी-निवासी श्री वेचूसिंह आदि सज्जन उपस्थित थे। यह सहभोज ही यहाँपर संघका अन्तिम कार्य था। दूसरे दिन हम विद्यार्थी अपने-अपने स्थानोंको लौटने वाले थे। फलतः हम सबके हृदयमें वियोगके भाव उदय हो रहे थे। इसीलिए



औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघके सदस्य मंसूरीके श्री रामचन्द्रजीके साथ प्रातःभ्रमणको जा रहे हैं

इस भोजका दृश्य बहुत करुणाजनक था। सबके हृदयमें ये विचार उत्पन्न हो रहे थे कि न जाने फिर कभी मिलना हो सके या नहीं। उक्त सज्जनोंने अपने मीठे वचनोंसे हम सबके हृदयोंको शीतल किया।



औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघके सदस्य मंसूरीके सबसे उच्च शिखरके मार्गमें

दूसरे दिन सबेरे ही सब लोग स्टेशन पर पहुँचे। यहीं सबकी अन्तिम विदाई थी। यहाँके विद्यार्थियों और बाहरवाले विद्यार्थियोंने एक दूसरेको बार-बार गले लगाया, अपने-अपने स्मृतिचिह्न एक दूसरेको दिये और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे विदा हुए। देहरादूनके कुछ छात्र हरिद्वार तक गये। वहाँ ज्वालापुर महा विद्यालयके अध्यक्ष महोदयने सबका सत्कार करके अपने सद्व्यवहारका परिचय दिया। इस जगहसे सब लोग अपने अपने स्थानोंको चले गये।

नेटाली भारतीयोंके प्रति दो शब्द

[लेखक :—श्री हेराल्ड वोडसन, सम्पादक 'नेटाल-एडवरटाइजर']

नेटाल-प्रवासी भारतीयोंको सहानुभूति और सद्भावका सन्देश देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। नेटाली भारतीयोंके लिए पिछले दो वर्ष बड़े महत्वपूर्णके थे। इन्हीं दो वर्षोंमें केप-टाउनका समझौता स्वीकृत हुआ, और इन्हीं दो वर्षोंमें भारतीयोंने मिस्टर शास्त्रीके उत्साहोत्पादक अद्वितीय नेतृत्वका अनुभव किया। मि० शास्त्रीके बाद, सर कूर्म रेड्डी भारतीयोंके एजेन्ट-जेनरल बनकर आये हैं, जो अपनी समविवेचनापूर्ण बुद्धि और अनुभवसे भारतीयोंकी समस्याएँ हल करेंगे। मिस्टर शास्त्रीके आगमनके पूर्व जो कुछ हो चुका अथवा उनके चले जानेके पश्चात् जो कुछ होगा, उसके महत्वको कम किये बिना मैं यह कह सकता हूँ कि मिस्टर शास्त्रीका आगमन नेटाली भारतीयोंके सम्पूर्ण इतिहासमें सबसे महत्वपूर्ण घटना है। उन्होंने पूर्वकी समस्त सबसे उच्च बातोंको एक बड़े अतुलनीय ढंगसे प्रकट किया। उन्होंने छोटेसे प्रवासमें हम लोगोंके बीचमें रहनेवाले भारतीयोंकी आशाओं, उनकी गुप्त शक्तियों और उनकी आकांक्षाओंको बड़े मर्मभेदी ढंगसे प्रदर्शित करके उनके लिए जो अधिकार प्राप्त किये गये हैं, वे राजनीतिक कार्यकर्ताओंकी एक समूची पीढ़ी भी नहीं कर सकती। यहाँके भारतीयोंकी बहुतसी समस्याएँ हम लोगोंके वर्षों बाद भविष्यमें ही हल हो सकेंगी, लेकिन यदि यहाँके भारतीय और उनके स्थानीय नेतागण इन समस्याओंके हल करनेमें मिस्टर शास्त्रीकी सहिष्णुता और समझका एक हिस्सा भी प्रदर्शित करें, तो उनकी आगामी सन्तानका भविष्य उज्ज्वल होगा। जो कुछ भी हो, इस देशके भारतीयोंकी मुक्ति तथा



मि० हेराल्ड वोडसन

अन्य सब लोगोंकी मुक्ति—जो इस बहुमिश्रित राष्ट्रके अंश हैं—उन्हींके साथमें है। बाहरी लोग इस कार्यमें बहुत कुछ मदद दे सकते हैं, परन्तु असलमें यहाँके निवासी ही आपसमें मिलकर सभ्य दक्षिण-अफ्रिकाके निर्माण-कार्य्यको पूरा कर सकेंगे।

* *
*

चित्र-परिचय

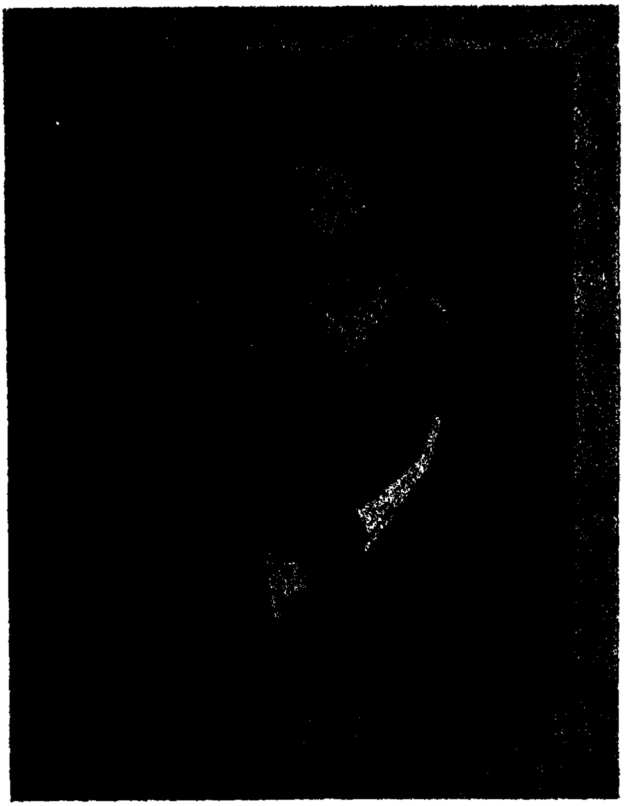
श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह

अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार-जगत्में श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। विलायतके सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'रिव्यू आफ् रिव्यूज़'के सम्पादक स्वर्गीय मि० स्टीड तो उन्हें सर्वश्रेष्ठ पत्रकार बतलाते थे।

निहालसिंहका जन्म-स्थान रावलपिण्डी है। बचपनसे ही आप बड़े विद्या-व्यसनी थे और पुस्तकें आदि बहुत पढ़ा करते थे। उसी समयसे उनके हृदयमें संसार घूमनेकी धुन समाई हुई थी, इसलिए बहुत छोटी उम्रमें ही बिना किसीसे कुछ कहे-सुने और बिना कुछ लिये-दिये ही वे एक दिन घरसे चल पड़े! उन्होंने अपने पुरुषार्थ और प्रतिभाके सहारे समस्त संसारकी यात्रा की, और संसारके बड़े-बड़े व्यक्तियोंसे भेंट की। वे मेहनत करके खर्च-भरका रुपया कमा लेते थे, और बाक़ी समय विद्याभ्यासमें लगाते थे। लेख लिखनेका अभ्यास उन्होंने स्कूल ही से किया था, परन्तु आगे चलकर उनकी यह प्रतिभा ऐसी प्रस्फुटित हुई कि वे संसारके एक उत्तम पत्रकार बन गये। देखिये, एक निर्धन भारतीय युवक बिना किसीकी शिफारिशके केवल अपनी वाणी और लेखनीकी प्रतिभाके सहारे आज जापानके प्रधान-मन्त्रीके साथ भोजन कर रहा है, तो कल कनाडाके वायसरायके साथ जलपान कर रहा है!

अमेरिकामें सिंह महाशयके विरुद्ध पहले समाचारपत्रोंने कुछ लिखा था, परन्तु बादमें वहाँ भी उनकी विद्वत्ताकी ऐसी धाक जमी कि उन्हें एक-एक लेखके लिए पाँच-पाँच सौ-सौ रुपये तक मिलने लगे। इतना ही नहीं, एक प्रसिद्ध मासिक पत्रने कुछ कालके लिए उन्हें अपना सम्पादक नियुक्त किया था। अमेरिकाकी एक विदुषी महिला, जो स्वयं बड़ी अच्छी लेखिका थीं और कई पत्रोंका सम्पादन कर चुकी थीं, सिंह महाशयके गुणोंपर मुग्ध हो गईं। सिंह महाशयने उन्हींसे विवाह किया है।

सेन्ट निहालसिंह अपने देशवासियोंके बड़े सेवक हैं। उन्होंने प्रवासी भारतीयोंकी बड़ी सेवा की है। वे प्रसिद्धिके इच्छुक नहीं हैं। वे चुपचाप शान्ति-पूर्वक अपना काम करते रहते हैं, इसीलिए लोगोंको उनके कार्योंका पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है। भारतीय जनता नहीं जानती कि पार्लमेन्टमें होनेवाले न मालूम कितने प्रश्न सिंह महाशयके दिमागसे निकलते हैं।



श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह

गत दो वर्षसे वे लंकामें हैं, और लंका-प्रवासी भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा और उनपर होनेवाले अत्याचारोंको दूर करनेके लिए तन-मन-धनसे जुटे हुए हैं। 'विशाल-भारत' के इस अंकमें उन्होंने अपने 'लंकामें भारतीय' शीर्षक लेखमें इन अत्याचार-पीड़ित भारतीयोंकी दुर्दशाका दिग्दर्शन कराया है।

डाक्टर सुधीन्द्र बोस

'विशाल-भारत' के बहुतसे पाठक डाक्टर सुधीन्द्र बोसके नामसे परिचित होंगे। बोस महाशय अमेरिकामें आयोवाकी



डाक्टर सुधीन्द्र बोस

सरकारी यूनिवर्सिटीमें राजनीतिके लेक्चरर हैं। डाक्टर महोदयका जीवन बड़ा घटनापूर्ण और मनोरंजक है। वे एक सम्भ्रान्त बंगाली परिवारके रत्न हैं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा कुमिल्लाके विक्टोरिया स्कूलमें हुई थी। इसी स्कूलसे उन्होंने एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की थी, परन्तु उनके मनमें अमेरिका जाकर शिक्षा प्राप्त करनेकी आकांक्षा घुसी हुई थी। अतः वे अमेरिकाके लिए रवाना हो गये। परन्तु वहाँ जानेके लिए उनके पास किराया नहीं था, इसलिए उन्होंने एक जहाज़पर मल्लाहीका काम कर लिया। इस प्रकार अमेरिका जा पहुँचे। सन् १९०७में उन्होंने इलीनोइस यूनिवर्सिटीसे बी० ए० की परीक्षा पास की। उसके बाद ही उन्हें शिकागो-यूनीवर्सिटीसे ग्रेजुएट-स्कालरशिप मिल गया। वहाँ उन्होंने 'डेली मेरून' नामक दैनिक पत्रके सम्पादकीय विभागमें भी कार्य किया था। सन् १९०९में उन्होंने इलीनोइससे एम० ए० की परीक्षा पास की, और फिर आयोवा-यूनिवर्सिटीमें 'रिसर्च' का कार्य करने लगे। वहाँ उन्होंने सन् १९१३में 'डाक्टर-आफ्-फ़िलासफ़ी' की उपाधि प्राप्त की। तबसे वे वहींपर पोलिटिकल साइन्सके अध्यापक हैं। यह बात याद रखनी चाहिए कि बोस महाशय इस सम्पूर्ण कालमें कड़ी-से-कड़ी मेहनत-मज़दूरी करके पैसा कमाते थे और उसीसे अपनी पढ़ाईका खर्च चलाते थे!

लगभग २५ वर्षसे डाक्टर सुधीन्द्र बोस अमेरिकामें हैं। गत महायुद्धके समय वे अमेरिकन नागरिक बन गये थे। इस कारण ब्रिटिश नौकरशाही उनसे बहुत बिगड़ गई! जब उन्होंने अपनी माता और मातृभूमिके दर्शनके लिए भारतमें आना चाहा, तब नौकरशाहीने बड़ी नीचता-पूर्वक उन्हें भारत आनेकी इजाज़त न दी। अन्तमें वर्षोंके लड़ाई-झगड़ेके बाद गत वर्ष उन्हें छै मासके लिए भारतमें आनेकी आज्ञा मिली थी, और वे भारत आये थे। सरकारने अनेक प्रार्थना करनेपर भी यह अवधि नहीं बढ़ाई!

डाक्टर बोसने संसारको अच्छी तरह देखा है, और बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियोंसे भेंट की है। उन्होंने यूनाइटेड स्टेट्स आफ् अमेरिकाकी अधिकांश रियासतोंमें भ्रमण करनेके अतिरिक्त इंग्लैण्ड, यूरोप, चीन, जापान, श्याम, कम्बोडिया, लंका, कोरिया, मंचूरिया, स्टेट सेटेलमेन्ट, इन्डो-

चाइना, हवाई और मिश्र आदिकी यात्रा की है। अमेरिकामें वे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोरके साथ घूमे थे। मिस्रमें उन्होंने सुप्रसिद्ध मिस्री नेता स्वर्गीय जायलूल पाशासे भेंट की थी। चीनमें वे आधुनिक चीनके पिता स्वर्गीय डा० सन-यात-सेनसे मिले थे। कम्बोडियामें वहाँके राजाने उन्हें अपने महलमें निमन्त्रित किया था और जापानमें वे काउन्ट-ओकूमा आदि सज्जनोंसे मिल चुके हैं।

डाक्टर बोस बड़े अच्छे लेखक हैं और बड़े अच्छे वक्ता। एक बार आप अमेरिकाकी व्यवस्थापिका-सभा (कांग्रेसकी एक कमेटी) के सामने अमेरिका-प्रवासी भारतीयोंकी शिकायतें पेश करने गये थे। कमेटीने उन्हें बोलनेके लिए तीस मिनटका समय दिया था, परन्तु जब वे बोलने लगे, तब वह दो घंटेसे अधिक तक उनकी बातें सुनती रही। उन्होंने अमेरिका-प्रवासी भारतीयोंके दुःख दूर करनेमें बड़ा प्रयत्न किया है। अमेरिकामें उनके लेक्चर बड़े लोकप्रिय हैं। उन्होंने दो पुस्तकें भी लिखी हैं।

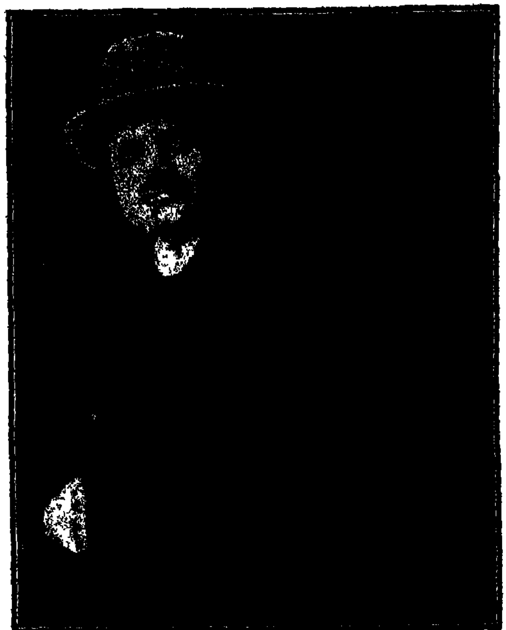
'विशाल-भारत'के इस अकमें उनका 'अमेरिकामें वेदान्ती' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है तथा भविष्यमें भी उनके लेख बराबर प्रकाशित होते रहेंगे।

—

प्रोफेसर ताराचन्द राय

जर्मनी-प्रवासी प्रोफेसर ताराचन्द रायके नामसे 'विशाल-भारत' के पाठक अपरिचित नहीं हैं। वे 'विशाल-भारत' में अकसर लेख लिखा करते हैं।

प्रोफेसर राय भारतके उन सपूतोंमें से हैं, जिन्होंने विदेशोंमें भी अपनी विद्वत्तासे लोगोंको चकित कर दिया है। वे लाहोरके रहनेवाले ब्रह्मभट्ट हैं। उनका जन्म सन् १८९०में हुआ था। वे लाहोरके मिशन-कालेजसे ससम्मान बी० ए०की परीक्षा पास करनेके बाद सुप्रसिद्ध डी० ए० वी० कालेजमें भर्ती हुए और वहाँ सन् १९११में संस्कृतमें एम० ए० पास किया। उसके बाद वे एक साल तक रिसर्च-स्कालर रहे। सन् १९१२में सरकारी वजीफा प्राप्त करके जर्मनी गये और हीडलबर्गकी यूनिवर्सिटीमें जर्मन-भाषाका अध्ययन करने लगे। गत यूरोपीय महायुद्धके समय उनका



बर्लिन-यूनिवर्सिटीके हिन्दी-अध्यापक श्री ताराचन्द राय

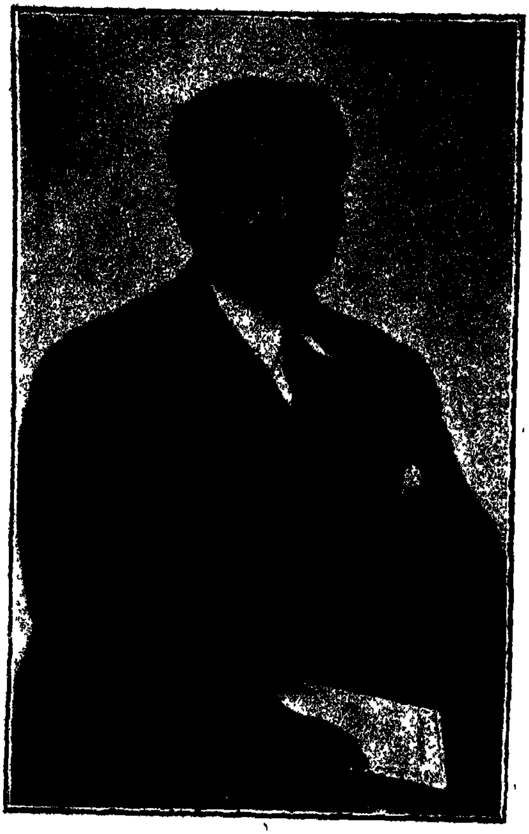
वजीफा गायब हो गया, इसलिए उन्हें स्वावलम्बी विद्यार्थी बनना पड़ा। सन् १९२५में बर्लिन-यूनिवर्सिटीने उन्हें हिन्दी और उर्दूका अध्यापक नियत किया। तबसे वे बर्लिनमें स्थायी रूपसे रहते हैं।

जब कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर जर्मनी गये थे, तब राय महाशय उनके दुभाषिये बने थे। कवि-सम्राट् अंग्रेज़ीमें अपनी कविता पाठ करते थे और राय महाशय मुँह-ज़बानी बढ़िया-से-बढ़िया मुहावरेदार जर्मन-भाषामें उसका अनुवाद कर देते थे। जब कवि-सम्राट् जर्मन-राष्ट्रपति हिंडनबर्गसे मिलने गये थे, तब राय महाशय भी उनके साथ थे। राय महाशयकी धाराप्रवाह जर्मन-भाषा सुन राष्ट्रपति हिंडनबर्ग दंग रह गये, और कहने लगे—"आपने हमारी भाषामें कमाल हासिल किया है। आपने जर्मन कहाँ पढ़ी है?"

—

डाक्टर तारकनाथ दास

डाक्टर तारकनाथ दास अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके उच्च-कोटिके विद्वान हैं। वे पूर्वी बंगालके रहनेवाले हैं। उनका



डाक्टर तारकनाथ दास, पी-एच० डी०

जन्म सन् १८८५ में मांझीपाड़ामें हुआ था। पहले आर्य-मिशन इंस्टीट्यूशनमें और बादमें स्काटिश-चर्च-कालेजमें शिक्षा पाई थी। निबन्ध लिखनेमें लड़कपनसे ही दक्ष थे। सन् १९०१ और १९०२ में उन्होंने निबन्ध-प्रतियोगितामें चैतन्य लाइब्रेरी और सरस्वती लाइब्रेरीसे पदक प्राप्त किये थे। बंगालके स्वदेशी आन्दोलनमें भी उन्होंने भाग लिया था। सन् १९०५ में वे लंका, मलाया और चीन होते हुए जापान गये। वहाँसे वे अमेरिका गये और केलीफोर्निया-यूनिवर्सिटीमें पढ़ते रहे। कुछ दिन तक वे केनाडामें यूनाइटेड स्टेट्सके इमीग्रेशन-विभागके हिन्दी दुभाषियेका काम करते रहे। वहाँ उन्होंने भारतकी पूर्ण स्वाधीनताका प्रचार करनेके लिए 'फ्री हिन्दुस्तान' नामक पत्र भी निकाला था और भारतीयोंको शिक्षा देनेके लिये एक 'रात्रि-पाठशाला' भी खोली थी। सन् १९०८ से १९०९ तक वे नारविच-यूनिवर्सिटीके मिलिटरी-कालेजमें पढ़ते रहे। उसके बाद वे वाशिंगटन चले गये, जहाँ उन्होंने एम० ए० पास किया। फिर केलीफोर्निया-यूनिवर्सिटीमें तीन वर्ष तक पी-एच०डी०के लिए पढ़ते रहे। इसी समय उन्होंने भारतवर्षसे एक सीधा जहाज़ किराये करके भारतीय प्रवासियोंको केनाडा लानेकी सलाह दी थी, जिसका फल कामागाटा मारूकी इतिहास-प्रसिद्ध दुर्घटना है।

सन् १९१४ में डा० दास अमेरिकन नागरिक बन गये। फिर उन्होंने समस्त यूरोप और चीन-जापानकी यात्रा की। सन् १९१७ में षड्यन्त्र करके भारतको गोला-बारूद भेजकर अमेरिकाकी निष्पक्षता भंग करनेके अपराधपर उन्हें २२ महीनेकी जेल हो गई। वे सन् १९१९ में जेलसे लौटे और इधर-उधर घूमते और पढ़ते रहे। सन् १९२४ में उन्होंने पी-एच० डी०की उपाधि प्राप्त की।

इस सम्पूर्ण कालमें वे मेहनत-मज़दूरी करके पैसा कमाते रहे। उन्होंने एक अमेरिकन महिलासे विवाह भी कर लिया है। अब उन्होंने अपने जीवनका मुख्य उद्देश शिक्षा बना लिया है। 'विशाल-भारत' के इस अंकमें उनका एक सुन्दर लेख दिया जाता है।

राजा महेन्द्रप्रताप

प्रसन्नताकी बात है कि राजा महेन्द्रप्रताप गत २० दिसम्बरको काबुल आ गये और आजकल बादशाह नादिर ख़ाँके अतिथि हैं।

राजा साहब उन देशभक्त वीरोंमें से हैं, जिन्हें अपने राजनैतिक विचारोंके कारण प्रवासी बनना पड़ा है। भारतमें उनके समान धुनके पक्के और लगनसे काम करनेवाले लोग



निर्वासित देशभक्त राजा महेन्द्रप्रताप

बहुत कम होंगे। उनका जन्म मुरसान राजवंशमें सन् १८८६ में हुआ था, और हाथरसके राजा हरनारायणने उन्हें दत्तक लिया था। उन्होंने बी० ए० तक शिक्षा पाई है। सन् १९०४ में उन्होंने यूरोपकी यात्रा की थी। उस समय उन्हें अपने देशमें औद्योगिक शिक्षाकी कमी बहुत खटकी। बस, उन्होंने अपनी आधी सम्पत्ति दान देकर वृन्दावनका सुप्रसिद्ध प्रेम-महाविद्यालय स्थापित कर दिया।

गुरुकुल वृन्दावन आज जिस भूमिपर खड़ा है, वह भी राजा साहबकी उदारताका नमूना है। किसानोंमें शिक्षा-प्रचारके लिए उन्होंने कई प्रेम-पाठशालाएँ स्थापित की थीं, जो आज तक चल रही हैं।

सन् १९१४ में महायुद्ध छिड़नेपर उनके मनमें यह विचार आया कि शायद वे जर्मनीकी सहायतासे अपने देशका उद्धार कर सकें। बस, फिर क्या था, वे बिना पासपोर्ट लिए ही जर्मनी चल दिये। तबसे आज तक वे अपनी उसी लगनमें घूम रहे हैं। कभी वे काबुलमें दिखाई देते हैं, कभी जापानमें सुनाई देते हैं, कभी चीनमें किसी षड्यंत्री धूर्त अंग्रेज़को पीटते हुए नज़र आते हैं, कभी तिब्बतके दुर्गम लासामें दलाईलामाकी मुलाक़ात करनेके लिए जाते दिखाई पड़ते हैं, कभी जर्मनीके कोई समाचारपत्र निकालते सुनाई पड़ते हैं और कभी रूसमें काउन्टलियो टाल्स्टायकी पुत्रीके स्थापित किए हुए स्कूलोंके निरीक्षणमें व्यस्त दृष्टिगोचर होते हैं। देखें, पराधीन भारतका द्वार कब तक उनके लिए बन्द रहता है।

साहस, त्याग और कर्मठता राजा साहबके स्वाभाविक गुण हैं। राजा साहबका एक चित्र यहाँ दिया

जाता है। यह चित्र गत वर्ष जब वे जर्मनीमें थे, तबका है।

श्री नानजी भाई कालिदास मेहता

नानजी कालिदास मेहता भारतके उन वाणिज्य-विशारदोंमेंसे हैं, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ, अध्यवसाय और ईमानदारीसे विदेशोंकी प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी आश्चर्यजनक उन्नति की है। वे काठियावाड़के निवासी हैं और आजकल अफ्रिकाके युगांडा प्रदेशके प्रमुख व्यापारी हैं। वे पहले ब्रिटिश पूर्वी अफ्रिकामें फुटकर चीज़ोंकी एक छोटी-सी दूकान करते थे। एक बार उन्होंने युगांडा-प्रदेशकी यात्रा की। वहाँकी उर्वरा भूमि और उत्तम जल-वायुको देखकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि यहाँ ईखकी खेती की जाय, तो खूब लाभ हो। धीरे-धीरे उन्होंने इस विचारको कार्यमें परिणत कर दिया, और आज युगांडामें बारह वर्गमील भूमिमें उनकी ईख बोई जाती है। इस ईखसे शक्कर तय्यार करनेके लिए उन्होंने सात लाख रुपयेकी लागतसे एक बड़ा कारखाना भी तय्यार कराया है। इस कारखानेमें आजकल सवा सौके लगभग भारतवासी कार्य करते हैं। इंजीनियर, असिस्टेन्ट इंजीनियर और खेतोंके निरीक्षक आदि यूरोपियन हैं। यह कारखाना लुगाज़ी नामक स्थानमें है। इस स्थानमें जहाँ पहले जंगल-ही-जंगल था, वहाँ आज मंगल हो रहा है। अब यहाँपर कारखानोंकी इमारतोंके अतिरिक्त, कर्मचारियोंके घर, दूकानें, पोस्ट-टेलिग्राफ आफिस, अस्पताल आदिकी इमारतें बन गई हैं। इस कारखानेके खोलने और चलानेमें मेहताजीको दुनियाँ-भरकी कठिनाइयों और कष्टोंका सामना करना पड़ा, परन्तु उन्होंने उन सबको अतिक्रम करके सफलता प्राप्त की।

एक बात और है। मेहताजी केवल धन कमाना ही नहीं जानते, बल्कि उसे उदारता-पूर्वक व्यय भी करते हैं। लुगाज़ीका अस्पताल, जिसमें मुफ्त चिकित्सा होती है, उन्हींका बनवाया हुआ है। वहाँ उन्होंने एक आर्य समाज-मन्दिर भी बनवा दिया है। जिंजा नगरमें उन्होंने एक



श्री नानजी भाई कालीदास मेहता

लायब्रेरी भी खोल रखी है, जो 'नानजी-लायब्रेरी' कहलाती है। वहाँके आर्यसमाजकी बैठकें और व्याख्यान इसी लायब्रेरीमें होते हैं।

स्वर्गीय श्री बरकतुल्ला

खेदकी बात है कि गत वर्ष मि० बरकतुल्लाका देहान्त हो गया। वे उन भारतीय देशभक्तोंमें थे, जिन्हें अपने राजनैतिक विचारोंके कारण ज़बर्दस्ती निर्वासित बनना पड़ता था। श्री बरकतुल्लामें एक और बड़ा-भारी गुण था—साम्प्रदायिकताका अभाव। वे मुसलमान थे, परन्तु पक्के राष्ट्रीय विचारोंके थे। उन्होंने अपने ढंगसे देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए कुछ उठा नहीं रखा था। वे सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल,



स्वर्गीय श्री बरकतुल्ला

श्यामजी कृष्ण वर्मा आदिके साथी थे। रौलेट-कमेटीने अपनी रिपोर्टमें कई स्थानोंपर उनका ज़िक्र किया है। वे बेचारे अपने देशसे ऐसे गये कि फिर वापस न आ सके! न मालूम और भी कितने देशभक्त इसी तरह अपनी मातृभूमि देखनेके लिये तरस रहे हैं।

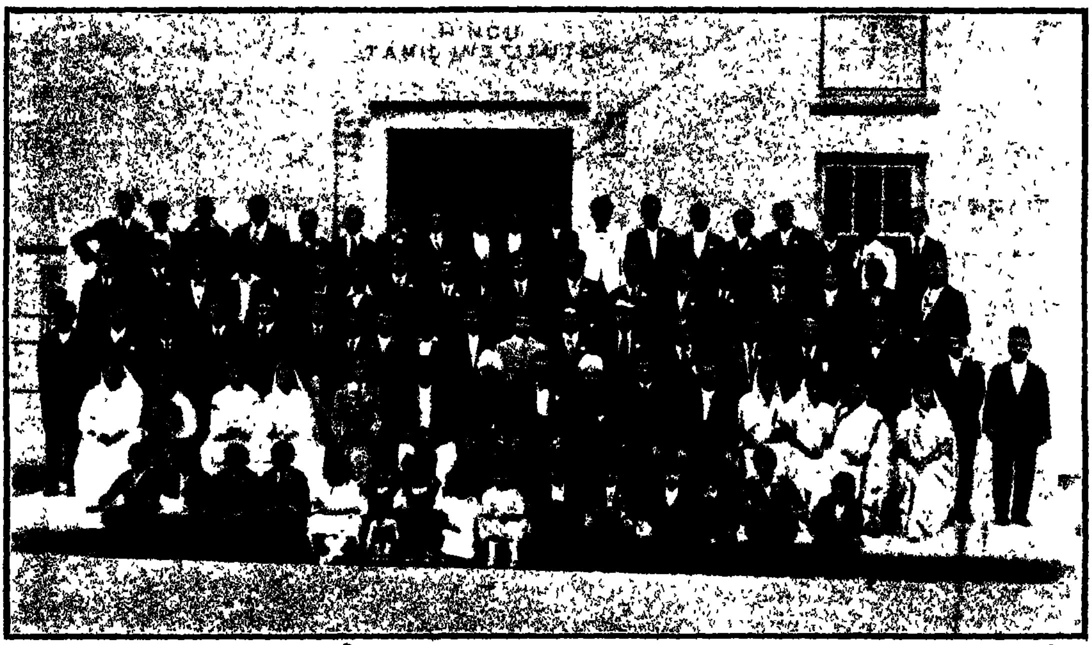
—

दरबनका यंगमैन-आर्यसमाज

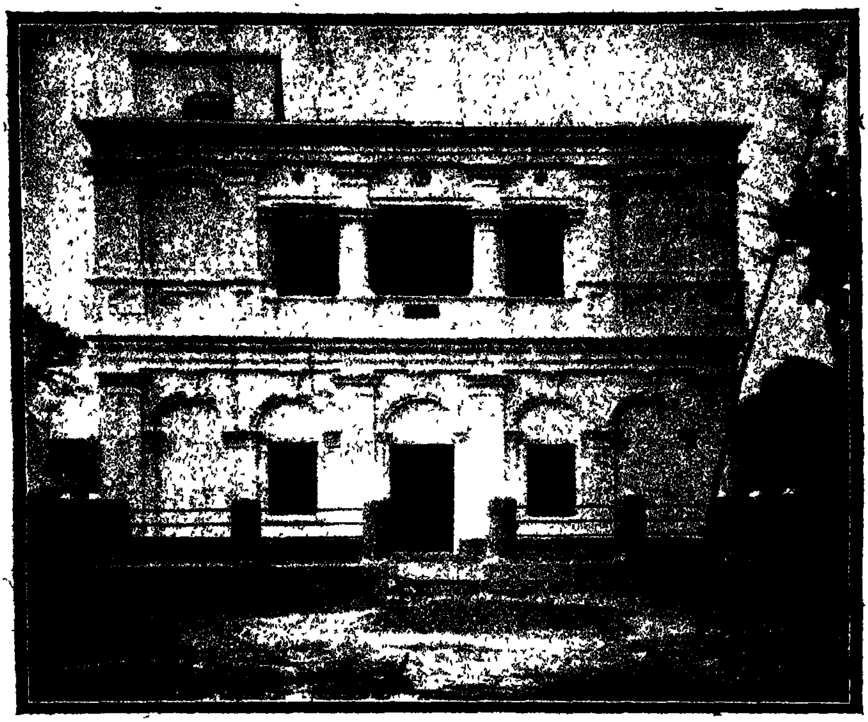
दरबनमें गत दो वर्षोंसे यंगमैन-आर्यसमाज नामक एक आर्यसमाज स्थापित हुआ है। इस समाजमें अधिकांश नवयुवक हैं, अथवा वे वयोवृद्ध सज्जन भी हैं जिनमें नवयुवकोंके समान उत्साह और कार्यशीलता बनी है। प्राय: प्रत्येक देश और समाजकी उन्नतिमें नवयुवक ही सबसे प्रधान भाग लिया करते हैं महाकवि चकवस्तने भी कहा है—

"जुनून हुब्बे-वतनका मज़ा शबाबमें है,
लहूमें फिर यह रवानी रहे रहे, न रहे।"

अत: यह समाज भी ज़ोरोंसे काम कर रहा है। यहाँ इसके प्रथम वार्षिकोत्सवका चित्र दिया जाता है। यह चित्र



दरबनके यंगमैन आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवके समयका चित्र



प्रवासी-भवन बहुआरा

दरबनकी हिन्दू-तामिल-इंस्टीट्यूटकी बिल्डिंगमें लिया गया था, जहां समाजकी बैठक हुआ करती है। यह इंस्टीट्यूट दरबनकी प्रमुख भारतीय संस्था है। दरबनमें भारतीयोंकी प्रायः समस्त सार्वजनिक सभाएँ इसी बिल्डिंगमें या गान्धी-लायब्रेरीमें हुआ करती हैं।

—

प्रवासी-भवन

उपर्युक्त चित्र बहुआरा ग्राम (पोस्ट० करगहर, वाया सासाराम, ज़ि० आरा, बिहार) के 'प्रवासी-भवन' का है। इस भवनको दक्षिण-अफ्रिकाके स्वामी भवानीदयाल संन्यासीने बनवाया था तथा बिहारके प्रसिद्ध नेता श्री राजेन्द्रप्रसादने सन् १९२६ में इसका उद्घाटन किया था। इसमें एक अच्छा पुस्तकालय है, जिसमें दो हज़ार पुस्तकें हैं। इसमें प्रवासी भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे कागज़-पत्र संग्रहीत हैं, जो अन्य स्थानोंमें प्रायः दुष्प्राप्य हैं।

—



निर्वासित देशभक्त स्वनाम धन्य लाला हरदयाल



दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़, महात्माजी और स्वर्गीय मि० पियर्सन



'फिजीमें मेरे इक्कीस वर्ष' के प्रणेता प० तोताराम सनाढ्य

सम्पादकीय विचार

——::०*०::——

विशाल भारत

"अगर हम लोग अपने नवयुवकोंको इन राजकीय उपनिवेशोंको भेज सकें, तो वे निस्सन्देह अपना जीवन निर्वाह करनेमें समर्थ होंगे और बहुत-कुछ लाभदायक काम भी कर सकेंगे। थोड़ेसे संगठन और कुछ प्रयत्नसे ही इस महान् शक्तिका, जो सुदूर उपनिवेशोंमें छिन्न-भिन्न अवस्थामें पड़ी हुई है, उपयोग हो सकता है।" —रानाडे

स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडेने ये शब्द आजसे ३७ वर्ष पूर्व पूनाकी औद्योगिक परिषद्में कहे थे। रानाडे ही सर्वप्रथम भारतीय नेता थे, जिन्होंने विशाल भारतकी महान् शक्तिका अनुभव किया और उसके उपयोग करनेकी बात सोची। भिन्न-भिन्न उपनिवेशोंमें पड़ी हुई इस शक्तिको संगठित करनेका प्रयत्न वहींपर बहुत दिनोंसे होता रहा है। महात्मा गान्धीने दक्षिण-अफ्रिकामें सत्याग्रहके संग्रामका संचालन करके संसारको विशाल भारतकी इस शक्तिका परिचय दे दिया था। दूसरे उपनिवेशोंके भी प्रवासी भारतीयोंने समय-समयपर अपनी मातृभूमिके गौरवकी रक्षाके लिए जो प्रयत्न किये हैं, वे भी वास्तवमें प्रशंसनीय हैं; पर जिस कार्यकी ओर महामति रानाडेने भारतीय जनताका ध्यान आकर्षित किया था, वह अब भी—आज ३७ वर्ष बाद भी—प्रारम्भ नहीं किया गया! भारतमें एक भी संस्था ऐसी नहीं जो नवयुवकोंको इस बातके लिए उत्साहित करे और सुविधा प्रदान करे कि वे उपनिवेशोंमें जाकर बसें। सुविधा प्रदान करना तो दूर रहा, कहींपर इस बातका भी प्रबन्ध नहीं है कि उपनिवेशोंको जानेकी इच्छा करनेवालोंको कुछ सूचनाएँ ही मिल जावें। पर हमें निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। असली दोष न भारतीय जनताका है और न भारतीय नेताओंका, बल्कि उन लोगोंका है, जो इस कार्यके महत्त्वको समझते हुए भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसकी पूर्तिके लिए नहीं लगा सकते। हम लोगोंमें—भारतीय नवयुवकोंमें—सबसे बड़ा दोष यही है कि हम परमुखापेक्षी हैं। यदि कभी हमारे मनमें कोई उच्च विचार आता है, तो बजाय इसके कि स्वयं उसे कार्यरूपमें परिणत करनेका प्रयत्न करें, हम इस बातकी आशा करते हैं कि गान्धीजी या मि० ऐण्डूज़ या मालवीयजी इस कार्यको अपने हाथमें ले लें! यह परमुखापेक्षिता ही हमारे कार्यमें सबसे बड़ी बाधक रही है। विशाल भारतमें आज २५ लाख भारतीय निवास करते हैं। उनके प्रश्नोंकी विभिन्नता, आवश्यकता और उपयोगिताका कुछ अनुमान हमारे पाठकोंको इस विशेषाङ्कसे लग सकता है। यह कार्य ऐसा है कि इसमें दस-बीस नहीं, बल्कि सैकड़ों ही नवयुवकोंकी शक्तिका सदुपयोग हो सकता है। आज इन प्रवासी भारतीयोंकी संख्या २५ लाख है, पच्चीस-तीस वर्ष बाद ये बढ़कर ४०-४५ लाख हो जायँगे। संसारमें भारतीय संस्कृतिका प्रचार करनेमें इन लोगोंसे जो महत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त होगी, उसका हम लोग अभी अनुमान भी नहीं कर सकते। व्यापारिक लाभ तो इन लोगोंसे इस समय भी मातृभूमिको बहुत काफ़ी हो रहा है, आगे चलकर तो वह और भी अधिक होगा। इस समय भी अनेक नवयुवक और धर्मोपदेशक उपनिवेशोंको जाते हैं और अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। विशाल भारतका निर्माण हो रहा है, पर हो रहा है वह बड़े अव्यवस्थित ढंगसे। आवश्यकता इस बातकी है कि उसे संगठित रूप दिया जावे।

प्रवासी भारतीयोंके लिए संगठित रूपसे कार्य करनेके लिए क्या किसी संस्थाकी आवश्यकता है? जिन लोगोंका ऐसा विश्वास हो, वे अवश्य संस्था स्थापित करें, पर अब हमारा

विश्वास तो संस्थाओंमें नहीं रहा। संस्थाएँ तो संस्थापकोंकी छाया-मात्र होती हैं। उनमें समय बहुतसा नष्ट होता है और काम बहुत थोड़ा हो पाता है। हमारा यह विश्वास बराबर दृढ़ होता जाता है कि व्यक्तिगत ढंगसे ही यह कार्य हो सकता है। यदि दो-चार नवयुवक भी ऐसे मिल जायँ जो अपना सम्पूर्ण समय और शक्ति इस कार्यमें लगा सकें, तो वे वह काम कर दिखावेंगे, जो अनेक संस्थाएँ नहीं कर सकतीं। पर बड़े खेदकी बात तो यह है कि ऐसे नवयुवक नहीं मिलते। आज यदि ब्रिटिश साम्राज्यका इतना विस्तार है और अंग्रेज़ लोग तमाम दुनियाँमें फैले हुए हैं, तो इसका श्रेय उन अंग्रेज़ नवयुवकोंको है, जो लाखोंकी संख्यामें विदेशोंको जाते हैं। अंग्रेज़ोंकी साम्राज्यवादिताकी हम कदापि प्रशंसा नहीं करते, हम उसके विरोधी हैं, और इस साम्राज्यवादिताके नाशमें ही मैं संसारकी भलाई समझते हैं, पर हम उस उत्साहकी प्रशंसा करते हैं, जिससे प्रेरित होकर अंग्रेज़ लोग हज़ार बाधाओंको पार करके अपने देशके लिए संसारके कोने कोनेमें जाते हैं। हम साम्राज्यवादी सेसिल रोड्सके विरोधी हैं, पर देशभक्त सेसिल रोड्सके नहीं। रोड्सने मरते समय इतना रुपया आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयको दिया था कि उसके ब्याजसे तीन सौ पौंड प्रतिवर्षकी १७५ (पौने दो सौ) छात्रवृत्तियाँ विद्यार्थियोंको मिला करें। ये छात्रवृत्तियाँ कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, रोडेसिया, जमैका इत्यादिके विद्यार्थियोंको मिलती हैं। दूर-दूर देशोंमें बसे हुए अंग्रेज़ोंका मातृभूमिसे दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए जो महत्त्वपूर्ण कार्य इन १७५ छात्रवृत्तियों द्वारा हो रहा है, उसका अनुमान पाठक कर सकते हैं; पर क्या हम लोग किसी भी ऐसे भारतीय धनाढ्यका नाम बतला सकते हैं, जिसने एक भी छात्रवृत्ति किसी विद्यालय या विश्वविद्यालयको इसलिए दी हो कि जिससे कोई प्रवासी विद्यार्थी अपनी पढ़ाईका खर्च चला सके? लाखों ही रुपयेके मूल्यके ग्रन्थ आक्सफोर्डके रोड्स-पुस्तकालयमें संग्रहीत हैं, जहाँ बैठकर आप ब्रिटिश साम्राज्यके प्रश्नोंका अध्ययन बड़ी सुविधाके साथ कर सकते हैं; पर क्या भारतमें कोई एक भी ऐसा स्थान है, जहाँ प्रवासी भारतीयोंके विषयको अध्ययन करनेकी सुविधा प्राप्त हो सके? जहाँ इस विषयकी पुस्तकों तथा रिपोर्टों आदिका आप-टू-डेट संग्रह हो?

ऐसे नवयुवकोंकी चिट्ठियाँ प्रति सप्ताह हमारे पास आया करती हैं जो उपनिवेशोंको जानेके लिए उत्सुक हैं, पर उनमेंसे अधिकांशका ध्येय रुपया कमाना-मात्र होता है। इनमेंसे बहुतसे इस बातकी आशा करते हैं कि कोई धनाढ्य आदमी उनको जहाज़का किराया देकर विदेश भेज दे और वहाँ उनके लिए अच्छे वेतनकी कोई नौकरी तय्यार मिल जावे! डाक्टरी अथवा बैरिस्टरी करके और बहुतसा रुपया कमाकर वे देशको लौट आवें! बस, यही उनका उद्देश्य होता है। उद्देश्य बुरा नहीं है। प्रत्येक नवयुवकसे हम इस बातकी आशा भी नहीं कर सकते कि वह किसी उच्च आदर्शके लिए अपने 'केरियर' या जीवनको अर्पित कर दे, पर खेद तो इस बातका है कि अपने स्वार्थके लिए भी ये नवयुवक परिश्रम करना या थोड़ेसे खतरेमें पड़ना पसन्द नहीं करते।

हम लोगोंमेंसे अधिकांश आज ही बीज बोना चाहते हैं, आज ही पेड़ उगाना और आज ही उसका फल भी चाखना चाहते हैं! हम लोग 'नगद धर्मी' हैं। किसी दूरस्थ लक्ष्यके लिए प्रयत्न करना हम जानते ही नहीं।

ये बातें हम किसीकी शिकायतके लिए नहीं लिख रहे, और न हम इससे स्वयं निराश ही होते हैं। जो सच्ची हालत है उसे छिपाना अनुचित और हानिकारक है। यही सोचकर हमने ये पंक्तियाँ लिख दी हैं।

विशाल भारतके—२५ लाख प्रवासी भारतीयोंके—उज्ज्वल भविष्यमें हमारा विश्वास है। साथ ही हमें यह भी आशा है कि आज न सही कल भारतीय जनता विशाल भारतके प्रश्नोंके महत्त्वको समझेगी।

कहा जाता है कि जब भगवान रामचन्द्रने सेतुबन्ध रामेश्वरका पुल बाँधा था, उस समय एक गिलहरीने धूलके कण इकट्ठे करके भगवानके उस निर्माण-कार्यमें सहायता की

थी। विशाल भारत और भारतको मिलानेके लिए जो सांस्कृतिक पुल बाँधा जा रहा है, उसमें हमारा और हमारे क्षुद्र पत्र 'विशाल-भारत'का प्रयत्न भी उस गिलहरीके उद्योगके समान ही है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जिस भूमिने भगवान गौतम बुद्ध और उनके शिष्योंको जन्म दिया, जिन्होंने देशदेशान्तरोंमें जाकर भारतीय संस्कृतिको फैलाया, उस मातृभूमिमें अब भी ऐसे मिशनरियोंके उत्पन्न करनेकी शक्ति है, जो एक बार फिर विशाल भारतका निर्माण कर भारतका सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित करेंगे।

—

प्रथम प्रवासी-परिषद्

'विशाल-भारत'के पाठक यह सूचना पा चुके हैं कि आगामी १६ से २१ अप्रेल तक गुरुकुल वृन्दावनकी रजत-जयन्ती बड़ी धूमधामसे मनाई जानेवाली है। इस अवसरपर प्रथम प्रवासी-परिषद्की भी आयोजना की गई है। इस दूरदर्शिता और बुद्धिमताके लिए हम रजत-जयन्तीके कार्य-कर्ताओंकी सराहना करते हैं। वास्तवमें यह परिषद् भारत-वर्षमें अपने ढंगकी पहली ही है। ऐसे तो प्राय: कांग्रेस, हिन्दू-महासभा और आर्यसमाजकी वेदियोंसे प्रवासियोंकी कुछ न कुछ चर्चा होती ही रहती है, किन्तु प्रवासियोंकी समस्या इतनी उलझी हुई है कि उसके सुलझानेके उपाय सोचनेके लिए एक ऐसी परिषद्की अत्यन्त अवश्यकता थी। यह तो हम नहीं कहते कि प्रवासियोंकी भारी समस्याओंपर इस परिषद्में विचार किया जा सकेगा, किन्तु यदि प्रवासियोंके हितचिन्तक एकत्र होकर इन प्रश्नोंपर गम्भीता-पूर्वक विचार करेंगे, तो निश्चय ही प्रवासियोंकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंपर अच्छा प्रकाश पड़ेगा। हमारी इच्छा है कि इस परिषद् द्वारा प्रवासियोंके सम्बन्धमें कुछ ठोस कार्यका श्रीगणेश हो। यद्यपि रजत-जयन्तीके अवसरपर और भी अनेक सम्मेलन होंगे, किन्तु कई दृष्टियोंसे इस परिषद्का महत्त्व किसीसे कम न होगा। हमारी सम्मतिमें इस परिषद्का एक अलग ही विभाग होना चाहिए और जयन्तीके समय परिषद्को मौक़ेका और काफ़ी समय मिलना चाहिए, ताकि २५ लाख प्रवासियोंकी वर्तमान स्थितिपर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सके और उनके सुधारके लिए भावी कार्य-क्रमकी रूप-रेखा तैयार हो सके। इस परिषद्के प्रधान पदके लिए श्री भवानीदयाल संन्यासीका चुनाव उचित और उपयुक्त ही हुआ है। वे प्रवासियोंके अन्दर १८ साल तक रहकर उनकी सेवा कर चुके हैं, और वह भी केवल एक ही दिशामें नहीं, प्रत्युत: प्रवास-सम्बन्धी धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, शिक्षा-विषयक आदि सभी क्षेत्रोंमें उन्होंने कार्य किया है। अतएव यह आशा करना अनुचित नहीं है कि उनका अभिभाषण प्रवासियों और देशवासियोंके सम्बन्धको और भी दृढ़ करनेमें उपयोगी सिद्ध होगा। प्रवासी भाइयोंसे हमारी आग्रह-पूर्वक प्रार्थना है कि वे इस परिषद्से पूर्ण लाभ उठावें। यदि हो सके तो सीधे अपने उपनिवेशसे प्रतिनिधि भेजनेका प्रयत्न करें अथवा अगर उनके कोई विश्वासपात्र मित्र इस समय हिन्दुस्तानमें आये हुए हों, तो उनको अपना प्रतिनिधि बनाकर परिषद्में योग देनेके लिए अनुरोध करें। यदि यह भी सम्भव नहीं हो तो अपने उपनिवेशके सम्बन्धमें लिखित वक्तव्य तो अवश्य भेजें। यदि ठीक समयपर उनके पत्र और वक्तव्यको भारत पहुंचनेकी सम्भावना न हो, तो तार द्वारा अपना सन्देश भेजना तो उनका अनिवार्य कर्तव्य ही है। इस परिषद्के प्रति हमारी पूरी सहानुभूति है, और उसे सफल बनानेके लिए हम यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।

—

डा० कालिदास नागकी विदेश-यात्रा

यह हमारे लिए बड़े गौरवकी बात है कि बृहत्तर भारत-परिषद्के सुप्रसिद्ध मंत्री डाक्टर कालीदास नाग एम० ए० डी० लिट को यूरोप और अमेरिकाकी बहुतसी संस्थाओंने निमंत्रित किया है। न्यूयार्ककी कारनेगी इंस्टीट्यूट आफ इंटरनेशनल एड्यूकेशनने उन्हें सन् १६३०-३१ का विज़िटिंग प्रोफेसर नियत किया है। डाक्टर नाग आगामी अक्टूबर

मासमें वहाँ 'भारतीय कला और पुरातत्त्व' पर अपना व्याख्यान आरम्भ करेंगे और इंस्टीट्यूटकी न्यूयार्क ब्रांचमें दिसम्बर सन् १६३० तक रहेंगे। उसके बाद वे यूनाइटेड स्टेट्सकी अन्य यूनिवर्सिटियोंमें व्याख्यान देंगे और उन्हें देखेंगे। वहाँसे वे दक्षिण-अमेरिकासे प्रसिद्ध केन्द्रोंको और भारतीय उपनिवेशोंको देखते हुए भारत लौटेंगे।

इसके अतिरिक्त, जेनेवाके 'स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज़' ने भी उन्हें विशाल भारतपर व्याख्यान देनेके लिए जुलाई-सितम्बरके बीचमें बुलाया है। साथ ही म्यूनिचकी जर्मन एकाडमी, जेकोस्लोवेकियाकी ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, प्रेगकी यूनिवर्सिटी, हालैण्ड (लेडन) की केर्न इंस्टीट्यूट आदिने भी उन्हें निमन्त्रण दिया है।

यदि हमारे फिजी, गायना, ट्रिनीडाड, न्यूज़ीलैण्ड आदिके प्रवासी भाई डाक्टर नागको निमन्त्रित करें और उनके पैसेज (किराये) का प्रबन्ध कर दें, तो प्रसन्नता-पूर्वक वे पैसेफिकके रास्ते होकर लौट सकते हैं।

डाक्टर नाग भारतके उन इने-गिने विद्वानोंमें हैं, जिनमें क्रियात्मक कल्पना-शक्ति है, और जो अपनी संस्कृति तथा विद्वत्ताकी धाक सुशिक्षितसे सुशिक्षित यूरोपियन जनतापर जमा सकते हैं। उनके व्याख्यानोंसे निस्सन्देह प्रवासी भारतीयोंका बड़ा हित होगा। हम आशा करते हैं कि प्रवासी भारतीय इस ऐतिहासिक अवसरसे अवश्य लाभ उठावेंगे।

अक्टूबरसे दिसम्बर तक उनका पता यह होगा—
C-o, The Carnegie Institute of International Education, Newyork, U. S. A.

इसके पूर्व उनका पता—C-o, 'विशाल-भारत' आफिस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता रहेगा।

—

'विशाल-भारत'का प्रवासी-अंक

'विशाल-भारत'का प्रवासी अंक 'प्राचीन विशाल भारतके निर्माता गौतम बुद्ध' नामक लेखसे आरम्भ होता है। इस लेखके लेखक हैं नालन्द-कालेजके प्रोफेसर फणीन्द्रनाथ बोस। बोस महाशय पिछले दस वर्षोंसे इस विषयका अध्ययन कर रहे हैं, और इस विषयपर प्रमाणिकतासे लिख सकते हैं। दूसरा लेख 'विशाल-भारत'के सम्पादककी लेखनीसे निकला हुआ 'वर्तमान विशाल-भारतके निर्माता' शीर्षक है। तीसरे लेखमें माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके दक्षिण-अफ्रिकाके कार्यका संक्षिप्त विवरण है। यह विवरण सर्वेन्ट-आफ्-इण्डिया सोसाइटीके मि० पी० कोदण्ड राव एम० ए०का लिखा हुआ है, जो दक्षिण-अफ्रिकामें मि० शास्त्रीके—जब वे वहाँ भारत-सरकारके एजेन्ट थे—प्राइवेट सेक्रेटरी थे। एक लेखमें दीवान बहादुर पी० केशव पिल्ले एम० एल० सी०, सी० आई० ई०, ने—जो ब्रिटिश-गायनाके डेपुटेशनके सभापति थे—अपने पश्चिमी द्वीप-समूह सम्बन्धी अनुभव लिखे हैं।

संसारप्रसिद्ध लेखक मि० सेन्ट निहालसिंहने लकाके भारतीयोंपर एक बड़ा महत्वपूर्ण लेख लिखा है, जिसपर हमारे राजनीतिज्ञोंको तुरन्त ही ध्यान देना चाहिए। अमेरिकाकी आयोवा-यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर डाक्टर सुधीन्द्र बोस, एम० ए०, पी०-एच० डी०ने अपने लेखमें अमेरिकामें वेदान्ती लोग जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं उसका संक्षिप्त वृत्तान्त दिया है। बृहत्तर भारत-परिषद्के डाक्टर कालिदास नाग, एम० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) ने भावी विशाल भारतपर एक विचारोत्पादक लेख लिखा है। अन्तराष्ट्रीय प्रसिद्धिके एक और लेखक डा० तारकनाथ दास, एम० ए०, पी-एच० डी० पाठकोंको विदेशोंमें सभ्यता-सम्बन्धी प्रचारकी आवश्यकताका महत्त्व बतलाते हैं। बर्लिन यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर ताराचन्द रायने जर्मनी-प्रवासी भारतीयोंका हाल लिखा है। मि० वेंकटपति राजू, सी० आई० ई० ने, जो फिजी-डेपुटेशनके सभापति थे, भारतीय प्रवासी पर लेख लिखा है। प्रवासी भारतीयोंके सच्चे सहायक दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्डूज़ और मि० एच० एस० एल० पोलकने भी इस अंकमें अपना-अपना भाग लिया है। 'टांगानिका-ओपिनियन' के भूतपूर्व सम्पादक मि० यू० के० ओझाने टांगानिकाके सम्बन्धमें अपने भाव प्रकट किये हैं।

दक्षिण-अफ्रिकाके प्रसिद्ध कार्यकर्ता स्वामी भवानीदयाल संन्यासीने दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए प्रवासियोंके सम्बन्धमें स्वतंत्र जांच करके अपनी संक्षिप्त रिपोर्ट दी है।

इस अंकके अन्य उल्लेखनीय लेखक हैं—पंडित तोताराम सनाढ्य; श्री चमूपति, एम० ए०; रायबहादुर रामदेव चोखानी; अदनके श्री मणिलाल डाक्टर एम० ए०, एल-एल० बी०, बैरिस्टर; फिजीके डाक्टर आई० एच० बीटी, एम० ए० (आक्सन); मि० क्रिस्टोफर (सभापति दक्षिण-अफ्रिकन इंडियन कांग्रेस); मि० पी० आर० पत्तर, मि० ए० आई० काज़ी; मि० वोडसन (सम्पादक 'नेटाल अडवर्टाइज़र'); रेवरेण्ड बी० एल० ई० सिगामोनी; मि० सी० डी० डोन (सम्पादक 'स्टार' जोहान्सबर्ग); मि० जे० डब्ल्यू० गाडफ्रे, एडवोकेट और कुमारी फातिमा गुल आदि।

इन लेखोंके अतिरिक्त, इस अंकमें सेन्ट निहालसिंह, राजामहेन्द्र प्रताप, डा० सुधीन्द्र बोस, डा० तारकनाथ दास, प्रो० ताराचन्द राय, लाला हरदयाल, नानजी भाई कालिदास मेहता आदिकी संक्षिप्त सचित्र जीवनियां हैं।

इस अंकमें चित्र भी काफ़ी हैं। तीन सुन्दर तिरंगे चित्रोंके अतिरिक्त कोई ६० सादे चित्र हैं। यह विशेषांक अनेक उपयोगी बातों और पाठनीय लेखोंसे भरा हुआ है। यह वर्तमान विशाल भारतपर एक प्रामाणिक ग्रंथका काम दे सकता है। इस विशेषांकमें १७० पृष्ठ हैं। इसकी बहुत थोड़ी कापियां छपाई गई हैं, अत: जो सज्जन प्रवासी भारतीयोंके मामलेमें सहानुभूति रखते हों, उन्हें तुरन्त ही ६) (विदेशोंसे ७॥) या १२ शिलिंग) भेजकर ग्राहक हो जाना चाहिए।

'विशाल-भारत'का यह विशेषांक स्वर्गीय मि० गोखले, स्व० मगनलाल गान्धी, स्व० कुमारी वलि अम्मा, स्व० रेवरेण्ड डोक और स्व० हरबत सिंहकी पवित्र स्मृतिमें, जिन्होंने प्रवासियोंके लिए बहुत बड़ा त्याग और बलिदान किया था, समर्पित किया गया है।

'विशाल-भारत' का तृतीय वर्ष

इस अंकसे 'विशाल-भारत'के तृतीय वर्षका प्रारम्भ होता है। दो वर्षमें जो कुछ सेवा इस पत्रसे बन पड़ी है, उसका वर्णन करके हम आत्म-प्रशंसाके अपराधी नहीं बनना चाहते। न हम अपनी कठिनाइयोंका जनताके सामने प्रदर्शन ही करना चाहते हैं। संचालककी ओरसे और अपनी ओरसे हम इतना अवश्य कह देना चाहते हैं कि 'विशाल-भारत' को हमें इस वर्ष अपने पैरों खड़ा करना है। ऐसा हो जानेसे वह चिरकालके लिए पाठकोंकी सेवामें उपस्थित होने योग्य बन जायगा। तृतीय वर्ष 'विशाल-भारत'के लिए संकटका वर्ष है, इसलिए 'विशाल-भारत'के प्रत्येक पाठकसे हमारा साग्रह अनुरोध है कि यदि वे 'विशाल-भारत' को उपयोगी समझते हों तो उसको चिरंजीव बनानेके लिए यथाशक्ति उद्योग करें। 'विशाल-भारत' का यह २५ वाँ अंक है, और हम समझते हैं कि २५ अंकोंमें हमारी नीतिका पता पाठकोंको अच्छी तरह लग गया होगा। 'विशाल-भारत' किसीका प्रतिस्पर्धी नहीं बनना चाहता, क्योंकि वह अपने व्यक्तित्वको अलग बनाये रखनेका पक्षपाती है। वह किसीकी नक़ल नहीं करना चाहता, (भारतके सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज़ी मासिक पत्र 'माडर्न रिव्यू'की भी नहीं!)—क्योंकि उसकी सम्मतिमें नक़ल करना आत्मघातके समान है। वह किसीसे ईर्ष्या नहीं करता, क्योंकि ऐसा करना मूर्खता होगी। 'विशाल-भारत' पूर्ण व्यक्तिगत स्वाधीनताका समर्थक है। किसी भी दल विशेषसे—(राजनैतिक या धार्मिक सामाजिक दलोंसे)—उसका सम्बन्ध नहीं, और न वह किसीका अन्ध-भक्त ही है।

'विशाल-भारत' अपने उद्देश्यमें विश्वास रखता है, और इसीलिए वह जीवित रहनेका अधिकारी है। हर्ष-पूर्वक अपने जीवनके दो वर्ष समाप्त कर श्रद्धा, उत्साह और दृढ़ताके साथ वह तृतीय वर्षमें अपना पग रखता है। आशा है कि तृतीय वर्ष उसके पाठकोंके लिए और उसके लिए भी मंगलकारी होगा।

विदेश जानेकी इच्छा करनेवाले नवयुवक

हमारे पास प्रति सप्ताह दो एक पत्र ऐसे आया करते हैं जिनमें नवयुवकोंकी ओरसे यह अनुरोध किया जाता है कि हम उनके लिये किसी उपनिवेशमें जानेका प्रबन्ध कर दें। कभी कभी तो जहाज़के पैसेजका प्रबन्ध करनेके लिये भी हमें ही आज्ञा दी जाती है! ऐसे नवयुवकोंसे हमें केवल यही प्रार्थना करनी है कि हमारे पास ऐसे साधनोंका सर्वथा अभाव है। इसके लिये तो उन्हें स्वयं ही प्रबन्ध करना पड़ेगा। जिन महानुभावोंसे हमारा व्यक्तिगत परिचित नहीं है, उनकी सिफारिश करना भी हम अनुचित समझते हैं। केवल एक सेवा हम कर सकते हैं, यानी इस विषयके विधिवत् अध्ययन करनेके लिये उन्हें परामर्श देना। उनसे पहला अनुरोध तो हमारा यह होगा कि वे सज्जन विशाल-भारतके ग्राहक बनें।

प्रत्येक मासमें हमकुछ न कुछ मसाला इस विषयका दिया करते हैं। उन्हीं बातोंको पत्रोंमें बार बार दुहराना हमारे लिये सम्भव नहीं। आशा है कि इस स्पष्ट निवेदनके लिये वे महानुभाव हमें क्षमा करेंगे।

—

'विशाल-भारत'के परिवारसे प्रार्थना

जो महानुभाव विशाल-भारतको बराबर पढ़ते हों (चाहे वे इसके ग्राहक हों या न हों) उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे हमें यह लिख भेजें कि उन्हें किस विषयके कौन-कौनसे लेख पसन्द आये, और कौन-कौनसी त्रुटियाँ 'विशाल-भारत' में दीख पड़ीं। उन त्रुटियोंको दूर करनेका हम प्रयत्न करेंगे। विशाल-भारतके पाठकोंकी संख्या ४-५ हज़ारसे कम न होगी। यद्यपि सभी ग्राहकोंकी रुचिका पूरे तौरपर ख्याल नहीं रक्खा जा सकता, फिर भी भिन्न-भिन्न विषयोंके सुरुचिपूर्ण लेखोंको जुटानेमें हम अपनी ओरसे कोई कसर नहीं रक्खेंगे।

—

प्रवासी भारतीयोंके पते

प्रवासी अंकके पाठकोंसे हमारा एक निवेदन है कि वे हिन्दी जाननेवाले और पत्रोंके पढ़नेके शौक़ीन पचास प्रवासी भारतीयोंके नाम तथा पूरे पते हमें लिख भेजें। पचास न मिल सकें तो दस-बीस ही पर्य्याप्त होंगे। जो केवल अंग्रेज़ी जानते हों उनके पते भी हमें चाहिए। इन महानुभावोंको हम 'विशाल-भारत' तथा 'माडर्न रिव्यू' के ग्राहक बनानेका प्रयत्न करेंगे।

—

चित्र-परिचय

इस अंकमें तीन रंगीन चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। इनमेंसे पहला चित्र भगवान् बुद्धकी पूजा है। भगवान बुद्धका परिचय देना सूर्यको दीपक दिखानेकी भांति है। इस चित्रकी चित्रकर्त्री हैं श्रीमती प्रतिमा देवी। इस चित्रमें विशाल-भारतके निर्माता भगवान बुद्धकी उपासना चित्रित की गई है।

दूसरा चित्र सिद्ध-नागार्जुनका है। नागार्जुन बौद्धधर्मके एक महान विद्वान, पंडित, प्रचारक और सुधारक हुए हैं। उन्होंने बौद्धधर्मको दार्शनिक रूप दिया था। बौद्धधर्मका जो पंथ 'महायान' के नामसे प्रसिद्ध है, वह इन्हींका चलाया हुआ है। तिब्बत, चीन, जापान, नेपाल, तातार आदिमें यही महायान धर्म प्रचलित है। इसीलिए प्राचीन विशाल-भारत के निर्माणमें महात्मा गौतम बुद्धके साथ सिद्ध नागार्जुनका भी नाम लिया जा सकता है। यह चित्र बंगालके सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री यतीन्द्रकुमार सेनकी सुन्दर क़लमका नमूना है।

तीसरे चित्रका शीर्षक है 'प्रवासीकी प्रतीक्षामें'। यह श्रीमती प्रतिमा देवीका बनाया हुआ है।

—

कृतज्ञता प्रकाश

प्रवासी भारतीयोंके लिए जो-कुछ सेवा हमसे बन पड़ती है, उसके लिए हम पंडित तोताराम सनाढ्य, दीनबन्धु ऐगड्रूज और महात्मा गान्धीजीके ऋणी तथा कृतज्ञ हैं। पहिले सज्जनसे हमें इस कार्यके लिए प्रेरणा मिली, दूसरेसे उत्साह और गान्धीजीसे इन चीज़ोंके अतिरिक्त आर्थिक सहायता भी। 'विशाल-भारत'का प्रवासी-अंक भी उनकी की हुई कृपाओंका फल है, अतएव इस अवसरपर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

—

धन्यवाद

जिन लेखकोंने 'प्रवासी-अंक'को सफल बनानेके लिए अपने लेख भेजे, उनको हम हृदयसे धन्यवाद देते हैं। इस विषयमें सबसे अधिक सहायता हमें संन्यासी भवानीदयालजीसे मिली है। यदि हम उनकी सहायताका पूरा-पूरा उपयोग करते, तो 'प्रवासी-अंक' का आकार ड्योढ़ा करना पड़ता।

—

परिचय

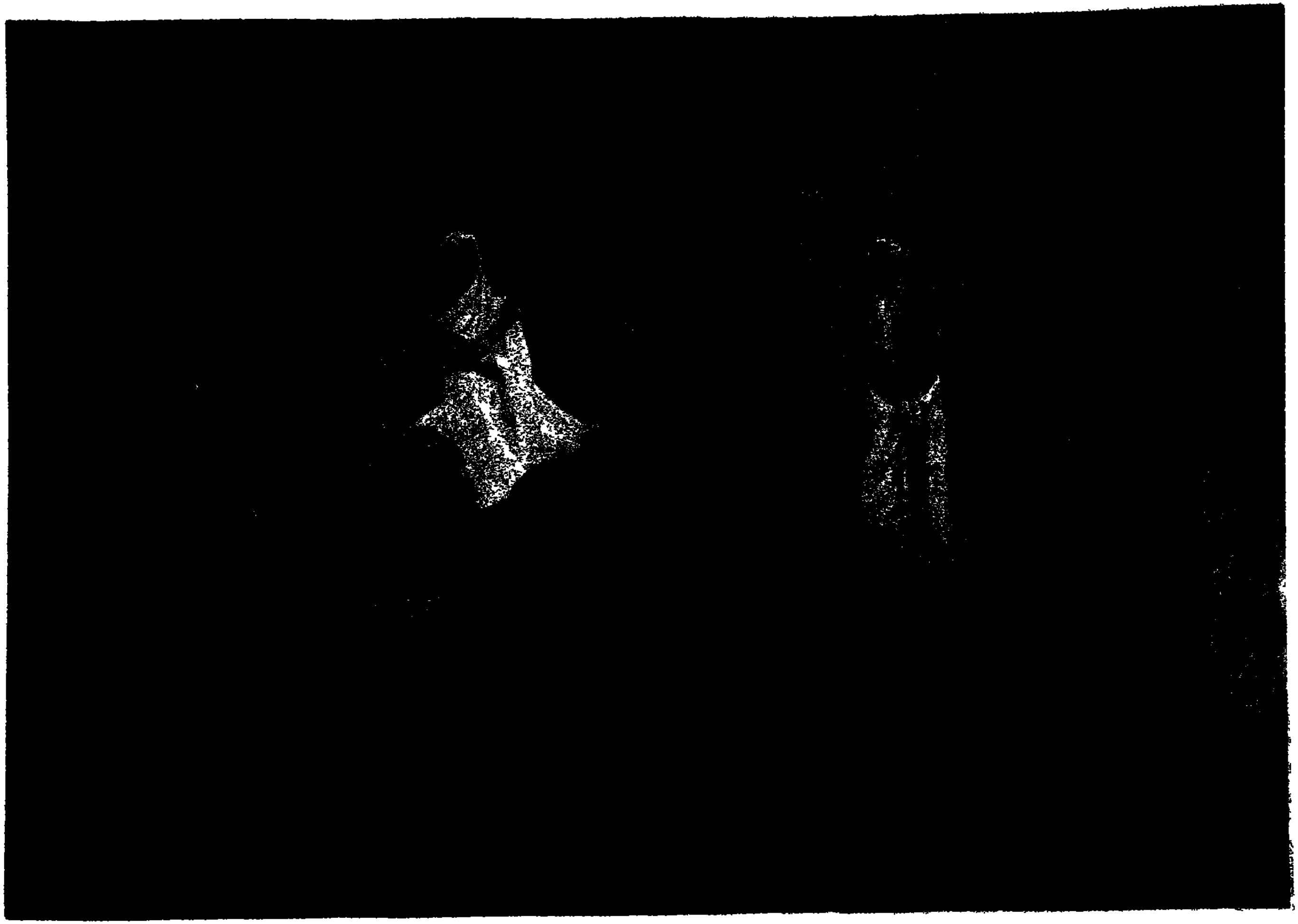
इस अंकके अधिकांश लेख अंग्रेज़ीमें थे। उन्हें हिन्दी रूप देनेका कठिन कर्तव्य हमारे सहकारी सम्पादक और सुयोग्य अनुवादक श्री ब्रजमोहन वर्माको करना पड़ा है। पाठक उन्हें पहचान लें।

—

क्षमा याचना

जिन लेखकोंके लेख हम इस अंकमें नहीं दे सके, उनसे क्षमा-प्रार्थी हैं। इनमें कितने ही लेख तो बड़े प्रसिद्ध-प्रसिद्ध आदमियोंके हैं। स्थानाभाव ही इसका कारण है।

EDITED, PRINTED & PUBLISHED BY BENARSI DAS CHATURVEDI, AT THE PRABASI PRES,
120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.



मातासे चैतन्यदेवकी विदाई

"विशाल-भारत"]

[चित्रकार—श्री गगनेन्द्रनाथ ठेगोर

विशाल-भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ३ खण्ड १ | फरवरी, १९३०—फाल्गुन, १९८६ | अङ्क २ पूर्णाङ्क २६

चित्रकूट

[लेखक :—श्री मैथिलीशरण गुप्त]

"हा ! ठहरो, बस, विश्राम प्रिये लो थोड़ा ;
हे राजलक्ष्मि, तुमने न रामको छोड़ा ।
श्रम करो, स्वेद-जल स्वास्थ्य-मूलमें डालो ;
पर तुम यतिका भी नियम स्वगतिमें पालो !
तन्मय हो तुम-सा किसी काममें कोई,
तुमने अपनी भी आज यहाँ सुध खोई ।
हो जाना लता न आप लता संलग्ना ;
करतल तक तो तुम हुई नवल-दल मग्ना !
ऐसा न हो कि मैं फिरूँ खोजता तुमको,
है मधुप ढूँढ़ता यथा मनोज्ञ कुसुमको ।
वह सीताफल जब फलै तुम्हारा चाहा,
मेरा विनोद तो सफल,—हँसी तुम आहा !"

"तुम हँसो नाथ, निज इन्द्रजालके फलपर,
पर ये फल होंगे प्रकट सत्यके बलपर ।
उनमें विनोद, इनमें यथार्थता होगी,
मेरे श्रमफलके रहे सभी रस-भोगी ।
तुम मायामय हो तदपि बड़े भोले हो,
हँसनेमें भी तो झूठ नहीं बोले हो ।
हो सचमुच क्या आनन्द, छिपूँ मैं वनमें,
तुम मुझे खोजते फिरो गभीर गहनमें !"
"आमोदिनि, तुमको कौन छिपा सकता है ?
अन्तरको अन्तर अनायास तकता है ।
बैठी है सीता सदा रामके भीतर,
जैसे विद्युद्द्युति घनश्यामके भीतर !"

"अच्छा, ये पौधे कहो, फलेंगे कब लों ?
हम और कहीं तो नहीं चलेंगे तब लों ?"
"पौधे ! सींचो ही नहीं, उन्हें गोड़ो भी ;
डालोंको चाहो जिधर उधर मोड़ो भी।"
"पुरुषोंको तो बस, राजनीतिकी बातें,
नृपमें, मालीमें काट-छाँटकी बातें ।
प्राणेश्वर, उपवन नहीं, किन्तु यह वन है,
बढ़ते हैं विटपी जिधर चाहता मन है।
बन्धन ही का तो नाम नहीं जनपद है ?
देखो, कैसा स्वच्छन्द यहाँ लघु नद है।
इसको भी पुरमें लोग बाँध लेते हैं,"
"हाँ, वे इसका उपयोग बढ़ा देते हैं।"
"पर इससे नदका नहीं, उन्हींका हित है,
पर-बन्धन भी क्या स्वार्थ-हेतु समुचित है ?"
"मैं तो नदका परमार्थ उन्हें मानूँगा,
हित उसका उससे अधिक कौन जानूँगा !
जितने प्रवाह हैं, बहें—सदैव बहें वे,
निज मर्यादामें किन्तु अवश्य रहें वे ।
केवल उनके ही लिए नहीं है धरणी,
वह औरोंकी भी भार धारिणी भरणी ।
जनपदके बन्धन मुक्ति-हेतु हैं सबके,
यदि नियम न हों, उच्छिन्न सभी हों कबके।
जब हम सोनेको ठोक-पीट गढ़ते हैं,
तब मान-मूल्य-सौन्दर्य सभी बढ़ते हैं।
सोना मिट्टीमें मिला खानमें सोता,
तो क्या इससे कृतकृत्य कभी वह होता ?"
"वह होता चाहे नहीं, किन्तु हम होते,
हैं लोग उसीके लिए झींकते—रोते !"
"होकर भी स्वयं सुवर्णमयी ये बातें,
पर सोनेकी नहीं, लोभकी घातें ।
यों तो फिर कह दो कहीं न कुछ भी होता,
निर्द्वन्द्व भाव ही पड़ा शून्यमें सोता !"

"हम-तुम तो होते कान्त,' "न थे कब कान्ते,
हैं और रहेंगे नित्य विविध वृत्तान्ते !
हमको लेकर ही अखिल सृष्टिकी क्रीड़ा,
आनन्दमयी नित नई प्रसवकी पीड़ा !"
"फिर भी नदका उपयोग हमारे लेखे,
किसने हैं उसके भाव सोचकर देखे ?"
"पर नदको ही अवकाश कहाँ है इसका ?
सोचो, जीवन है आद्य स्वार्थमय किसका ?
करते हैं जब उपकार किसीका हम कुछ,
होता है तब सन्तोष हमें क्या कम कुछ ?
ऐसा ही नदके लिए मानते हैं हम,
अपना जैसा ही उसे जानते हैं हम।
जल निष्फल था, यदि तृषा न हममें होती,
है वही उगाता अन्न, चुगाता मोती ।
निज हेतु बरसता नहीं व्योमसे पानी,
हम हों समष्टिके लिए व्यष्टि-बलिदानी।"
"तुम इसी भावसे भरे यहाँ आये हो ?
यह घनश्याम तनु धरे, हरे छाये हो ।
तो बरसो, सरसै, रहे न भूमि जली-सी,
मैं पाप-पुँजपर टूट पड़ूँ बिजली-सी ।"
"हाँ, इसी भावसे भरा यहाँ आया मैं,
कुछ देने ही के लिए प्रिये, लाया मैं।
निज रक्षाका अधिकार रहे जन-जनको,
सबकी सुविधाका भार किन्तु शासन को।
मैं आर्योंका आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धनको तुच्छ जताने आया।
सुख-शान्ति-हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,
विश्वासीका विश्वास बचाने आया।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
जो विवश, विकल, बलहीन, दीन, शापित हैं।
हो जायँ अभय वे जिन्हें कि भय भासित हैं,
जो कर्बुर-कुलसे मूक सदृश शासित हैं।

मैं आया जिसमें बनी रहे मर्यादा,
बच जाय प्रलय से, मिटे न जीवन सादा।
सुख देने आया, दु:ख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्वका नाट्य खेलने आया।
मैं यहाँ एक अवलम्ब छोड़ने आया,
गढ़ने आया हूँ, नहीं तोड़ने आया।
मैं यहाँ जोड़ने नहीं, बाँटने आया,
जगदुपवन के झंखार छाँटने आया।
मैं राज्य भोगने नहीं, भुगाने आया,
हंसोंको मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया।
भवमें नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नरको ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्गका लाया,
इस भूतलको ही स्वर्ग बनाने आया।
अथवा आकर्षण पुण्यभूमिका ऐसा,
अवतरित हुआ मैं, पका पुण्य-फल जैसा।
जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
वे भी भव-सागर विना प्रयास तरेंगे।
पर जो मेरा गुण-कर्म-स्वभाव धरेंगे,
वे औरों को भी तार, पार उतरेंगे।"
"पर होगा यह उद्देश्य सिद्ध क्या वनमें?
सम्भव है चिन्तन मनन मात्र निर्जन में।"
"वन में निज साधन सुलभ धर्मणा होगा,
जब मनसा होगा तब न कर्मणा होगा?
बहुजन वनमें हैं बने ऋक्ष-वानर-से,
मैं दूँगा अब आर्यत्व उन्हें निज करसे।
चल दण्डक वन में शीघ्र निवास करूँगा,
निज तपोधनोंके विघ्न विशेष हरूँगा।
उच्चारित होती चले वेदकी वाणी,
गूँजे गिरि-कानन-सिन्धु-पार कल्याणी।
अम्बर में पावन होम-धूम घहरावे,
वसुधा का हरा दुकूल भरा लहरावे।
तत्त्वोंका चिन्तन करें स्वस्थ्य हो ज्ञानी,
निर्विघ्न ध्यानमें निरत रहें सब ध्यानी।
आहुतियाँ पड़ती रहें अग्निमें क्रमसे,
उस तपस्त्यागकी विजय-वृद्धि हो हमसे।
मुनियोंको दक्षिण-देश आज दुर्गम है,
बर्बर कौणप-गण वहाँ उग्र यम-सम है।
वह भौतिक मदसे मत्त यथेच्छाचारी,
मेटूँगा उसकी कुगति-कुमति मैं सारी।"
"पर यह क्या, खग-मृग भीत भगे आते हैं,
मानो पीछे आखेटिक लगे आते हैं!
चर्चा भी अच्छी नहीं बुरोंकी मानो,
साँपोंकी बातें जहाँ वहीं वे जानो।
अस्फुट कोलाहल-भरित, मर्मरित वन है,
वह धूल धूसरित उच्च गम्भीर गगन है।
देखो, यह मेरा नकुल देहलीपर से—
बाहरकी गति-विधि देख रहा है डरसे!
लो, ये देवर आ रहे बाढ़के जल-से,
पल-पलमें उथले-भरे, अचल-चंचल-से!
होगी क्या ऐसी बात न जानें स्वामी,
भय न हो उन्हें जो सदय पुण्य-पथगामी।"
"भाभी, भयका उपचार चाप यह मेरा,
दुगना गुणमय आकृष्ट आप यह मेरा।
कोटिक्रम-सम्मुख कौन टिकेगा इसके?
आई परास्तता कर्म भोगमें जिसके।
सुनता हूँ, आये भरत यहाँ दल-बलसे,
वन और गगन हैं विकल चमू-कलकलसे।
विनयी होकर भी करें न आज अनय वे,
विस्मय क्या है, क्या नहीं स्वमातृतनय वे?
पर कुशल है कि असमर्थ नहीं हैं हम भी,
जैसेको तैसे, एक बार हो यम भी।
हे आर्य, आप गम्भीर हुए क्यों ऐसे?
निज रक्षामें भी तर्क उठा हो जैसे!

आये होंगे यदि भरत कुमतिवश वनमें,
तो मैंने यह संकल्प किया है मनमें।
उनको इस शरका लक्ष्य चुनूँगा क्षणमें,
प्रतिषेध आपका भी न सुनूँगा रणमें।"

"गृह-कलह शान्त हो, हाय! कुशल हो कुलकी,
अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुलकी!
विग्रहके ग्रहका कोप न जाने अब क्यों?
आ बैठे देवर राज्य छोड़ तुम जब यों।"

"भाई, न भरत भी उसे छोड़ आये हों,
मातृश्रीसे भी मुँह न मोड़ आये हों।
लक्ष्मण, लगता है यही मुझे हे भाई,
पीछे न प्रजा हो पुरी शून्य कर आई।"

"आशा अन्त:पुर मध्यवासिनी कुलटा,
सीधे हैं आप, परन्तु जगत है उलटा।
जब आप पिताके वचन पाल सकते हैं,
तब माँकी आज्ञा भरत टाल सकते हैं?"

"भाई, कहनेको तर्क अकाट्य तुम्हारा,
पर मेरा ही विश्वास सत्य है सारा।
माताका चाहा किया राममे आहा!
तो भरत करेंगे क्यों न पिताका चाहा!"

"मानव-मन दुर्बल और सहज चंचल है,
इस जगती-तलमें लोभ अतीव प्रबल है।
देवत्व कठिन, दनुजत्व सुलभ है नरको,
नीचेसे उठना सहज कहाँ ऊपरको?"

"पर हम क्यों प्राकृत पुरुष आपको मानें?
निज पुरुषोत्तमकी प्रकृत पयों न पहचानें?
हम सुगति छोड़ क्यों कुगति विचारें जनकी?
नीचे-ऊपर, सर्वत्र, तुल्यगति मनकी।"

"अब हार गया मैं आर्य आपके आगे,
तब भी तनमें शत पुलक भाव हैं जागे।"
"देवर, मैं तो जी गई, मरी जाती थी,
विग्रहकी दारुण मूर्ति दृष्टि आती थी।"

"पर मैं चिन्तित हूँ, सहज प्रेमके कारण,
हठ पूर्वक मुझको भरत करें यदि वारण?
वह देखो, वनके अन्तरालसे निकले,
मानो दो तारे क्षितिज-जालसे निकले!

वे भरत और शत्रुघ्न, हमीं दो मानो,
फिर आया हमको यहाँ प्रिये तुम जानो।"
कहते-कहते प्रभु उठे, बढ़े वे आगे;
सीता-लक्ष्मण भी संग चले अनुरागे।

देखी सीताने स्वयं साक्षिणी हो-हो,
प्रतिमाएँ सम्मुख एक-एककी दो-दो।
रह गये युग्म स्वर्वैद्य आप ही आधे,
जगतीने थे निज चार चिकित्सक साधे!

दोनों आगत आ गिरे दण्डवत नीचे,
दोनोंसे दोनों गये हृदयपर खींचे।
सीता-चरणामृत बना नयन-जल उनका,
इनका दृगम्बु अभिषेक सु-निर्मल उनका!

"रोकर रजमें लोटो न भरत ओ भाई,
यह छाती ठण्डी करो सुमुख, सुखदायी।
आँखोंके मोती यों न बिखेरो, आओ,
उपहार-रूप यह हार मुझे पहनाओ।"

"हा आर्य, भरतका भाग्य रजोमय ही है,
उर रहते उर्वी उसे तुम्हींने दी है।
उस जड़ जननीका विकृत वचन तो पाला,
तुमने इस जनकी ओर न देखा-भाला!"

"ओ निर्दय, कर दे न यों निरुत्तर मुझको,
रे भाई, कहना यही उचित क्या तुझको?
चिरकाल राम है भरत-भावका भूखा,
पर उसको तो कर्तव्य मिला है रूखा।" *

('साकेत' से)

* [गत दिसम्बरके अंकमें इस कविताका जो अंश छपा है, वह सीताजीके गीतके साथ समाप्त होता है। इसमें उसके आगे राम-सीताका कथोपकथन है। —सं०]

भारतमें ब्रॉडकास्टिंग* और उसका भविष्य

[लेखक :— बनारसीदास चतुर्वेदी]

"इंडियन ब्रॉडकास्टिंग-कम्पनीका दिवाला निकल गया है, और फ़रवरीके अन्तमें वह अपना कार्य समाप्त कर देगी" यह खबर इस महीनेके प्रारम्भमें समाचारपत्रोंमें छपी थी। अंग्रेज़ी पत्रोंमें इस विषयपर कितने ही लेख तथा टिप्पणियाँ और चिट्ठियाँ प्रकाशित हुई और खासी चर्चा रही, पर हिन्दी-पत्रोंने इस प्रश्नके महत्त्वको समझा ही नहीं। अभी तक केवल 'आज'का ही नोट हमारे देखनेमें आया है। 'ध्वनि-क्षेपन'के विषयमें लिखे हुए इस नोटसे यह ध्वनि निकलती है, "चलो अच्छा ही हुआ कि भोग-विलासकी यह चीज़ खतम हो गई। हिन्दुस्तान जैसे ग़रीब देशके लिए इसकी क्या ज़रूरत थी? सरकार यदि भारतीय खज़ानेसे इसके लिए सहायता देगी, तो यह भारतकी ग़रीब जनतापर अन्याय होगा।" ये शब्द ज्योंके त्यों 'आज' सम्पादकके नहीं हैं, पर उनके कथनका अभिप्राय यही है। जब 'आज' जैसे प्रगतिशील पत्रके सुयोग्य सम्पादक, जिनका ज्ञान काफ़ी विस्तृत है और जो अन्तर्जातीय प्रश्नोंका भी गम्भीर अध्ययन किया करते हैं, ब्रॉडकास्टिंगके विषयमें इतने भ्रान्त विचार रखते हैं, तो अन्य पत्रकारोंसे यह आशा करना कि वे ध्वनि-क्षेपनके महत्त्वको समझ सकेंगे, व्यर्थ ही होगा। ऐसे महानुभावोंके सूचनार्थ यह लिख देना आवश्यक है कि भारत जैसे निरक्षरतापूर्ण देशके लिए ब्रॉडकास्टिंगका जितना महत्त्व है, उतना यूरोपके देशोंके लिए नहीं। ग्रामों तक ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिए ग्रामवासियोंके शुष्क जीवनमें सरसता लानेके लिये ब्रॉडकास्टिंगसे जितना काम लिया जा सकता है, उतना और किसी साधनसे कदापि नहीं। थोड़े दिन पहले हमें वाइ०एम०सी०ए० के सेक्रेटरी मि० एच० एच० पीटरसनसे इस विषयपर बातचीत करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होंने हमें बतलाया कि जैकोस्लोवाकियामें ब्रॉडकास्टिंग द्वारा किसानोंका बड़ा भारी हित हो रहा है। हमारी प्रार्थनापर उन्होंने 'विशाल-भारत'के लिए इस विषयपर एक छोटासा लेख भी लिखा था, जो जून सन् १९२९के अंकमें प्रकाशित हुआ था।* उन्होंने इस लेखमें बतलाया था कि जैकोस्लोवाकियामें ब्राडकास्टिंगका जो प्रोग्राम रहता है, उसमें आधेसे अधिक समय सुप्रसिद्ध पुरुषोंके व्याख्यानों, व्यावहारिक विषयोंपर उपदेशों और बातचीत तथा कविता पाठमें व्यतीत होता है। एक विशेष सप्ताहके व्याख्यानोंके विषय ये थे :—

१. प्रोफेसर सडिन्कों, कृषि-विभागके मन्त्रीका व्याख्यान, विषय—'हमारा कृषिका भविष्य-विकास।' इस व्याख्यानके कुछ भाग विदेशी सुननेवालोंके लिए फ्रेंचमें भी अनुवाद किये गये थे।

२. डाक्टर कुबेक, प्रागके कृषि-कालेजके प्रोफेसरका व्याख्यान, विषय—'भू-सम्पत्ति—सरकारी और निजी—के रक्षणार्थ नये क़ानून।'

३. मिसेज़ स्टेपानेक, मन्त्री ऐग्रीकल्चरल यूनिटी सोसाइटीका व्याख्यान, विषय—'आधुनिक गृहिणीका कार्य।'

४. एक इंजिनियरका व्याख्यान, विषय—'आबपाशीकी आर्थिक क़ीमत।'

* ब्रॉडकास्टिंगका अर्थ है 'ध्वनि-क्षेपन'—बिना तारके तार द्वारा गान, भाषण, समाचार इत्यादि भेजना। आजकल बेतारके तारके यन्त्र द्वारा गाने, स्पीचें, खबरें और किस्से-कहानियाँ भेजी जाती हैं। किसी एक केन्द्रीय स्थानमें—जैसे, कलकत्ता, बम्बई—ब्रॉडकास्टिंग-स्टेशन होते हैं, जहाँ वायरलेस यन्त्रके सामने बैठकर गायक गाना गाते हैं, बाजा बजानेवाले बाजा बजाते हैं, वक्ता स्पीच देते हैं और समाचार पढ़े जाते हैं। देश-भरमें जिन लोगोंके घरोंमें वायरलेसका रिसीवर-यन्त्र लगा है, उनके घरोंमें—सैकड़ों मील दूर भी—यह गाने आदि सुनाई देते हैं। *इस समाचार भेजनेकी क्रियाको ब्रॉडकास्टिंग कहते हैं और रिसीवर यन्त्र रेडियो कहलाता है।*

* 'जैकोस्लोवाकियामें ब्रॉडकास्टिंग द्वारा कृषि-उन्नति।'

बातचीत या प्रश्नोत्तरमें कृषकोंको निम्न-विषयोंकी संक्षेपमें कुछ बातें बताई गई थीं :—

१ खेतपर गल्ला इकट्ठा करना।

२ गहरा जोतनेके गुण।

३ शकरका चुकन्दर काटना।

४ जाड़ोंमें जानवरोंका चारा।

५ घोड़ोंकी नालबन्दी।

६ जानवरोंके बढ़ानेके लाभ।

७ आलूकी खेतीकी रक्षा।

८ चिड़ियाँ और खरगोश पालना।

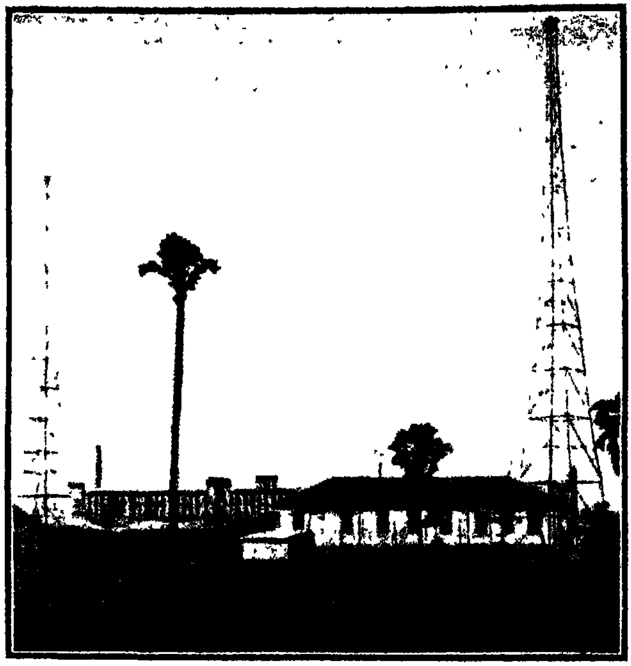
९ जानवरोंकी देखरेख।

१० स्वास्थ्यकर अस्तबल कैसे बनाना चाहिए।

११ मधु-मक्खी पालना।

१२ सुन्दर फल और आकर्षक बगीचे।

१३ उचित खाद्य।



बम्बईका ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन और ध्वनिक्षेपक यन्त्र

इसी प्रकारके विषयोंकी बातचीत और कविताएँ विशेषकर प्रभावोत्पादक होती है, क्योंकि वे चलते-फिरते ढंगसे और कृषकोंकी भाषामें कही जाती हैं। इस सप्ताहके विषय थे :—

१ कृषि-मेलेमें कृषक ब्लैक। (संगीत और यथोचित आवाज़के साथ)

२ किसानकी स्त्री क्या नहीं जानती थी। (ठीकसे दूध दुहनेके सम्बन्धमें)

३ खेत काटनेका ठीक समय। (कविता)

४ टाम और उसका घोड़ा। (घोड़ेके सम्बन्धमें)

५ कृषक ब्ल्यूको सोनेकी कुंजी कैसे हाथ लगी। (एक किसान और एक भूमि-विशेषज्ञकी भूमि विश्लेषण, कृमि और खादके सम्बन्धमें बातचीत)

६ कृषक व्हाइटको आश्चर्य है कि फसलकी विशेषज्ञताका क्या अर्थ है।

७ कृषकोंका सहायक। (बिजलीपर कविता)

इस साप्ताहिक कार्यक्रमको देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जेकोस्लोवाकियामें ब्रॉडकास्टिंग द्वारा किसानोंकी ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजनके लिए कितना ज़बरदस्त काम हो रहा है। स्वयं मि० पीटरसनने 'भारतीय कृषि' पर अंग्रेज़ीमें एक व्याख्यान दस मिनटके लिए ज़ेकोस्लोवाकियाके 'प्राहा' नामक नगरमें दिया था, जिसका अनुवाद तुरन्त ही ज़ेक भाषामें कर दिया गया था। इसके कई सप्ताह बाद पीटरसन साहब प्राहासे कई सौ मील दूर एक ग्राममें जा निकले। वहाँ एक अनपढ़ किसानने उनसे कहा—"हमने उस दिन आपका व्याख्यान सुना था। अब आप हमें हिन्दुस्तानकी खेतीके बारेमें कुछ और भी बातें बतलाइये।"

हम यह मानते हैं कि अभी भारतवर्षमें ब्रॉडकास्टिंग द्वारा किसानोंके हितका कार्य नहीं हो रहा है, पर यह 'ब्रॉडकास्टिंग' का दोष नहीं है, अपराध है ब्रॉडकास्टिंग-कम्पनीका, जो अभी तक अपने कार्यको सर्वसाधारणके लिए

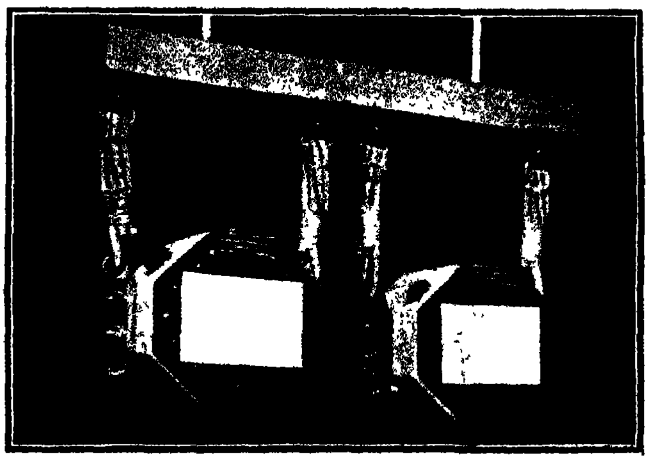


स्टूडियो—जहाँ बैठकर गाना-बजाना इत्यादि किया जाता है

काफ़ी प्रबल है, और यहाँसे भेजे हुए व्याख्यान कानपुर, आगरा, लाहोर तो क्या, मास्को तकमें सुनाई पड़ सकते हैं। पर जिन ग्राहक-यन्त्रोंसे वे सुनाई पड़ते हैं, उनका मूल्य कमसे कम दो-तीन सौ रुपये होता है, इसलिए कलकत्तेका स्टेशन उतना उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा है। हाँ, कलकत्तेके आसपास २५।३० मील दूर तक सुनाई देनेके लिए बीस रुपयेके ग्राहक यन्त्रसे काम चल जाता है। यन्त्र रखनेवालेको १०) प्रति वर्ष सरकारको लेसन्स देना पड़ता है। स्वयं हम आजसे कई महीने पहले 'कबीर' पर पन्द्रह मिनटके लिए बोले थे, और हमारी बातें आसपासके स्थानोंमें काफ़ी स्पष्ट सुनाई पड़ी थीं। हावड़ाके एक अपरिचित पंजाबी सज्जनने जब हमसे कहा कि उन्होंने कबीरपर हमारा भाषण स्पष्टतया सुना था, तो हमें अवश्य ही हर्ष हुआ।

हमारी प्रार्थनापर पंडित पद्मसिंहजी शर्माने 'हिन्दी-कविता' पर पन्द्रह मिनट तक भाषण दिया था। वह भी पूर्णतया उपयोगी नहीं बना सकी है, और साथ ही हम लोगोंका भी कुछ दोष है, क्योंकि हम लोग इस विषयको बिलकुल उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते रहे हैं। कलकत्तेमें जो ब्रॉडकास्टिंग-स्टेशन है, उसमें बँगला तथा हिन्दी कार्यक्रमके डिरेक्टर श्री एन० एन० मजूमदारसे हमारा परिचय है और जब-जब हमारी उनसे बातचीत हुई है, हमने उन्हें इस बातके लिए चिन्तित और उद्यत पाया है कि हमारा कार्यक्रम सर्वसाधारणके लिए किस प्रकार उपयोगी बनाया जावे। बँगलामें जो प्रोग्राम होता है, वह निःसन्देह काफ़ी विस्तृत और विविध विषयोंसे परिपूर्ण होता है। छोटे-छोटे बच्चोंके लिये कहानियाँ, स्त्रियोंके लिए बातचीत, विद्यार्थियोंके लिए व्याख्यान, साधारण जनताके लिए स्वास्थ्य इत्यादिपर भाषण प्रायः हुआ करते हैं। इसके सिवा मनोरंजनके लिए गाना, बजाना, नाटक इत्यादि होते ही हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि हिन्दीवालोंके लिए भी ऐसा ही उपयोगी तथा मनोरंजक प्रोग्राम रखा जावे।

यदि प्रयाग, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, नागपुर, लाहोर इत्यादिक स्थानोंमें ब्रॉडकास्टिंग-स्टेशन खुल जायँ, तो उनसे साधारण जनताका बड़ा हित हो। वैसे कलकत्तेका स्टेशन



माइक्रोफोन-यन्त्र—जिनके सामने बोलनेसे ध्वनि ब्रॉडकास्टिंग-स्टेशनके ध्वनिक्षेपक-यन्त्र तक पहुँचाई जाती है

साफ़-साफ़ सुनाई दिया। जब तक यह अंक पाठकोंकी सेवामें पहुँचेगा, तब तक हम 'सत्यनारायण कविरत्न' पर



ध्वनिक्षेपक यन्त्रका कार्यालय

२५ फरवरीको बोल चुके होंगे। विचारोंके प्रचारके लिए इससे बढ़िया कोई दूसरा साधन हो सकता है, इस विषयमें हमें तो सन्देह है। जनता भी रेडियोके उपयोगको समझने लगी है, यह बात निम्न-लिखित अंकोंसे ज्ञात हो सकती है। अगस्त सन् १९२७ से लेकर जुलाई सन् १९२९ तक जितने आदमियोंने लैसन्स लिए उनकी संख्या इस प्रकार है—

अगस्त १९२७ से	जुलाई १९२८ तक	६१९६
अगस्त १९२८ से	जुलाई १९२९ तक	७११४

सुना है कि अकेले बंगालसे इस समय ६००० आदमी ऐसे हैं, जिन्होंने सरकारको दस रुपया लैसन्स देकर यन्त्र अपने पास रखे हैं। इनके सिवा बिना लैसन्स लिए चोरीसे ग्राहक-यन्त्रोंका उपयोग कर रहे हैं, उनकी संख्या भी कई हज़ार होगी। खेद है कि ब्रॉडकास्टिंग-कम्पनीने काफ़ी किफ़ायतसे काम नहीं लिया, नहीं तो उसका दिवाला कदापि न निकलता। जिन कारणोंसे कम्पनीकी यह हालत हुई, उसमें दो कारण और भी ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि कम्पनीने सर्वसाधारणमें रेडियोकी उपयोगिताके विषयमें कुछ भी प्रचार नहीं किया। अभी जनतामें इस विषयमें काफ़ी अज्ञान फैला हुआ है। दूसरा कारण यह है कि कम्पनीने हिन्दी-भाषा-भाषी जनताकी रुचिकी ओर बहुत कम ध्यान दिया। अकेले कलकत्तेमें ही पाँच लाख हिन्दी-भाषा-भाषी हैं। इस दृष्टिसे तिहाई समय तो हिन्दी-भाषा-भाषियोंके मनोरंजनके लिए रहना चाहिए, पर यहाँ शायद दसवाँ भाग हिन्दीवालोंके लिए रहता है! साढ़े सात घंटेके प्रोग्राममें बमुश्किल तमाम पौन घंटा हिन्दी-प्रोग्राम होता होगा।

हिन्दीवाले किस चीज़को पसन्द करते हैं, किसको नहीं, यह भी जाननेका प्रयत्न कम्पनीने कभी नहीं किया। इसके सिवा एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि यदि कोई आदमी २००–२५० रुपये खर्च करके प्रयाग या आगरेमें रेडियो रखे भी तो वर्तमान कार्य क्रमसे उसका बहुत कम मनोरंजन हो सकता है। प्रोग्राममें बंगलाका आधिक्य उन लोगोंको, जो बंगला नहीं जानते, बहुत अखरता है, और उनके लिए रेडियो सेट खरीदना क़रीब-क़रीब निरर्थक हो जाता है।

अब यह सवाल रह जाता है कि ब्रॉडकास्टिंग-कम्पनीके फेल हो जानेपर यह कार्य किस प्रकार जारी रखा जावे। सरकारसे प्रार्थना की जा रही है कि वह इसे अपने हाथमें ले ले। यदि ऐसा हो जावे, तब भी कोई विशेष बुराई नहीं है, पर एक बात याद रखना चाहिए, वह यह कि इस कार्यके संचालनके लिए सरकार द्वारा जो कमेटी नियत हो, उसमें लैसन्स लेकर ग्राहक-यन्त्रोंका प्रयोग करनेवालोंके और रेडियो सेटोंका व्यापार करनेवालोंके भी प्रतिनिधि होने चाहिए। बम्बईमें ब्रॉडकास्टिंग-कम्पनीकी जो असाधारण मीटिंग हुई थी, उसमें उसके प्रधान मि० सी० एन० वाडियाने अपने भाषणमें कहा था,—'अगर सरकार इस कार्यको अपने हाथमें ले ले, और उन लोगोंको, जो बिना लैसन्स लिए चोरीसे अपने ग्राहक-यन्त्रों द्वारा रेडियो-प्रोग्राम सुनते हैं, काफ़ी दण्ड दे तो ब्रॉडकास्टिंगका खर्चा लैसन्सोंसे ही निकल आवेगा, और आगे चलकर तो इससे खासी आमदनी होने लगेगी।'

एक अनुभवी व्यापारीका यह कथन वास्तवमें विचारणीय है। यदि सरकार इसे अपने हाथमें न ले, तो फिर किसी प्राइवेट कम्पनीको ही इसे ले लेना चाहिए और व्यावहारिक ढंगपर चलाना चाहिए। किसी भी हालतमें ब्रॉडकास्टिंग बन्द

न होना चाहिए। वयस्कोंमें शिक्षा फैलाने, जनताका मनोरंजन करने, उसे स्वास्थ्य इत्यादि विषयोंपर शिक्षा देने तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके ज्ञानका प्रसार करनेके लिए ब्रॉडकास्टिंग एक अत्युत्तम साधन है। यदि उसका कार्यक्रम ठीक नहीं है, तो उसे उपयोगी बनाइये। उसे बन्द कर देनेका उपदेश देना उतनी ही बुद्धिमानीका कार्य है, जितना स्कूलोंको बिलकुल बन्द कर देनेका आदेश सिर्फ़ इस कारण देना कि उनकी शिक्षा-प्रणाली दोषयुक्त है।

संसारके भिन्न-भिन्न उन्नतिशील राष्ट्रोंमें सैकड़ों ही ब्रॉडकास्टिंग-स्टेशन हैं। अकेले अमेरिकामें ही पाँच सौसे ऊपर स्टेशन हैं, और उनसे नाना प्रकारके शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक गान, भाषण, नाटक इत्यादि ध्वनि-क्षेपक-यन्त्रकी सहायतासे सर्वसाधारण तक पहुँचाये जाते हैं। भारतवर्षमें कुल जमा दो स्टेशन हैं; एक कलकत्तेमें और दूसरा बम्बईमें। और इनके बन्द करनेकी बात सोची जा रही है! आशा है कि हिन्दी-जनता इस बातका घोर विरोध करेगी। भारतमें वह समय शीघ्र ही आना चाहिए, जब कि गाँवकी चौपालपर बैठे हुए किसान खेतीके विषयमें कलकत्ते, बम्बई, प्रयाग इत्यादिमें दिये हुए भाषण सुनें, भिन्न-भिन्न गाने सुनें और होलीके दिनोंमें दो-चार रसिये भी!

[इस लेखके छपते समय समाचार मिला कि सरकारने ब्राडकास्टिंग कम्पनीका काम अपने हाथमें ले लिया।—लेखक]

'डेली हेराल्ड'की आश्चर्यजनक कथा

[लेखक :—श्री विल्फ्रेड वेलाक, मेम्बर ब्रिटिश पार्लमेंट]

प्रत्येक बड़े आन्दोलनमें कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ हुआ करती हैं, यद्यपि उसके कार्यकर्ताओंको आन्दोलनकी सफलता तक वे आश्चर्यजनक घटनाएँ मुश्किलसे दिखाई देती हैं। दुस्साहसिक और वीर प्रकृतिके लोग जब अपने पुराने उन्मत्त दुस्साहसिक कार्योंकी और दुर्घटनाओंसे बाल-बाल बचनेकी बातें याद करते हैं, तो अक्सर उन्हें हँसी आती है; परन्तु मैं कह सकता हूँ कि जिस समय वे लोग उन संघर्षोंमें लगे थे, जिस समय उन्हें इस बातका निश्चय नहीं था कि आगामी दिन वे वीर कहकर पूजे जायँगे या अपराधीकी भाँति जेलखानेमें ठूस दिये जायँगे, उस समय उनमेंसे शायद ही कोई हँसता हो। अब सफलता प्राप्त कर चुकने बाद शामके वक्त अंगीठीके चारों ओर बैठकर लैन्सबरीसे 'डेली हेराल्ड'की कथा—किस तरह 'डेली हेराल्ड' समाप्त होनेसे बाल बाल बचा, किस तरह उसके पावनेदार उसे धमकाते थे, किस तरह अन्य समाचारपत्रोंने उसका बायकाट किया आदि-आदि बातें—सुननेमें बड़ा आनन्द आता है। इस पत्रके चलानेवाले लोगोंके छोटे दलकी धृष्टतापर जब लैन्सबरी मन्द-मन्द मुसकराते हैं, तब उन लोगोंकी बेपरवाही और निर्भीकतापर श्रद्धा उत्पन्न होती है, और ईश्वरको इस बातपर धन्यवाद देनेकी इच्छा होती है कि अब तक संसारमें कुछ ऐसे पुरुष होते जाते हैं, जो बुद्धिवादी नहीं हैं। लैन्सबरी तो कहेंगे—"हम लोग उस समय बहुत नहीं हँसते थे।" मगर मैं कल्पना कर सकता हूँ कि उस समय भी, जब वे अपने दुस्साहसिक कार्योंपर अपने साथी डिरेक्टरोंके निर्णयोंको चाय पीते हुए बयान करते होंगे, तब ज़रूरी ही मन्द-मन्द मुसकराते होंगे।

'डेली हेराल्ड'को लोग फ्लीट-स्ट्रीट'*का जादूका करिश्मा कहते हैं, सो बिलकुल ठीक है। किसी भी अन्य अंग्रेज़ी अख़बारका ऐसा इतिहास नहीं है। यह अभूतपूर्व विश्वास और साहसका फल है। केवल इसी एक समाचारपत्रको छोड़कर और सब समाचारपत्र पूँजीके बलपर खड़े हैं, परन्तु 'डेली हेराल्ड'की बुनियाद विश्वास, आदर्शवाद वीर और पुरुषोंके एक छोटे दलके दुस्साहसिक कार्योंपर है।

किसी दैनिक समाचारपत्रका संचालन अन्य देशोंकी अपेक्षा इस देशमें अधिक कठिन है। इंग्लैंडमें पहले-पहले पैर जमानेवाले लन्दनसे प्रकाशित होनेवाले राष्ट्रीय पत्र ही

* लन्दनके प्रायः सभी समाचारपत्र फ्लीट-स्ट्रीटसे निकलते हैं।

थे। हम लोग राजनैतिक मनोवृत्तिके आदमी हैं, और लन्दन सदासे हमारे राजनैतिक जीवनका केन्द्र रहा है। इसके अतिरिक्त, रेलवे और डाकखानेके विकासमें भी यह देश सबसे आगे रहा है। फल-स्वरूप केवल कुछ घंटोंमें ही इस देशके प्राय: प्रत्येक भागमें समाचारपत्र पहुँचाये जा सकते हैं। इसीसे



श्री जार्ज लैन्सबरी 'डेली हेराल्ड'के सम्पादक (सन् १९१३-२२ तक) और जनरल मैनेजर
(ब्लाक 'डेली हेराल्ड'की कृपासे प्राप्त)

इस देशके लोग लोकल समाचारपत्रोंके निकलनेसे पहले ही लन्दनके समाचार-पत्र पढ़नेके आदी हैं, इसलिए इस देशमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जहाँ कहीं भी आप जायँ, आपको सवेरे आठ या नौ बजे समस्त पुस्तक-विक्रेताओंकी दूकानोंपर लन्दनके समाचारपत्रोंके ढेर-के-ढेर रखे मिलेंगे।

मगर यूरोपके अन्य देशोंमें या संयुक्त राज्य अमेरिकामें इसके बिलकुल विपरीत है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति लोकल पत्रोंको ही देखता है, उन्हींका फैशन है। वहाँ राष्ट्रीय समाचारपत्रोंका स्थान दूसरे नम्बरपर है। इंग्लैण्डमें मज़दूर-दलका एक भी लोकल पत्र नहीं है, और महान् भगीरथ प्रयत्नके बाद 'डेली हेराल्ड' एक राष्ट्रीय संस्थाके रूपमें स्थापित हो सका है।

'डेली हेराल्ड'के स्थापनमें सबसे बड़ी बाधा थी धनकी कमी। आजकल समाचारपत्र संसारकी दशा कुछ ऐसी हो रही है कि किसी दैनिक समाचारपत्रका चलाना एक बड़ी भारी आर्थिक समस्या है। प्राय: लन्दनके सभी समाचार-पत्रोंमें करोड़पतियोंकी सम्पत्ति लगी है। न मालूम कितने लाख पौण्ड इन समाचारपत्रोंके चलानेमें डूब चुके हैं। इसी कारणसे ये समाचारपत्र समाजके लिए बहुत भयानक हैं, विशेषकर इस युगमें, जब कि रुपया सर्वशक्तिमान हो रहा है, और उससे सब जनतन्त्रकी नींव ही को खतरा जान पड़ता है। एक दूसरी भयानक बात यह है कि इधर कुछ वर्षोंसे पूँजीपतियोंमें लोकल समाचारपत्रोंके खरीदनेकी प्रवृत्ति हो रही है। ये पूँजीपति उन समाचारपत्रोंको खरीदते हैं, जो उन औद्योगिक क्षेत्रोंमें बहुत चलते हैं, जिनमें उन पूँजी-पतियोंका रुपया लगा है। संकटके समयमें इन समाचार-पत्रोंका कितना बुरा प्रभाव होगा, इस बातमें अतिशयोक्ति नहीं हो सकती।

ऐसी परिस्थितिका सामना करनेके लिए मज़दूर-दलको एक दैनिक पत्रकी बड़ी आवश्यकता थी। यह आवश्यकता दिन-दिन बढ़ रही थी, मगर किया क्या जाता? इसके लिए कईबार चेष्टाएँ भी की गईं, मगर सब बेकार हुईं। पुराने समाचारपत्रोंकी प्रतियोगिता बड़ी ज़बर्दस्त थी, और मज़दूर-दलके समर्थकोंमें ऐसे लोगोंकी काफी संख्या नहीं थी, जो इस योजनामें सहायताकी गारंटी कर सकें। इसके अलावा, किसी बड़ी स्कीमके लिए रुपया कहाँ था? इसलिए जिन लोगोंको परिस्थितिका कुछ भी ज्ञान था, उन्हें यह बात प्रत्यक्ष थी कि इंग्लैण्डमें बहुत वर्षों तक मज़दूर-दलका दैनिक पत्र निकलनेकी सम्भावना बहुत कम है। यदि उसके लिए कोई चेष्टा भी की जायगी, तो वह पागलपनसे कम न होगी।

अन्तमें यह 'पागलपन'की चेष्टा की ही तो गई। पहला 'डेली हेराल्ड' जो २५ जनवरी सन् १९११को प्रकाशित हुआ, वह एक हड़तालका परचा था, और उसका दाम दो पैसा था। इस प्रथम अंकके पहले शब्द विलियम मारिसकी निम्न-लिखित पंक्तियाँ थीं—

"यह कैसी आवाज़, खबर यह कैसी छाई?
क्या लोगोंको आज अहा दे रहा सुनाई?
ज्यों गह्वर-घाटीके भीतर प्रबल प्रभंजन—
अरुणोदयके समय विकट करता हो गर्जन?

अथवा ज्यों विकराल किसी सन्ध्या अवसरमें
करती हों हुंकार क्षुब्ध लहरें सागरमें ?
अथवा जनताने यह रण-दुंदुभी बजाई,
उसका ही जयघोष हमें पड़ रहा सुनाई ?"

पुनः एक बार ये शब्द सच्ची भविष्यवाणी सिद्ध हुए। जिस हड़तालके सम्बन्धमें ये शब्द इस्तेमाल किये गये थे, वह छापेखानेवालोंकी हड़ताल थी, जिसका उद्देश्य छापेखानेमें काम करनेवालोंके कामका समय ५० घन्टे प्रति सप्ताह नियत कराना था, जो बादमें ४८ घन्टे प्रति सप्ताह रह गया। हड़तालका जो परचा प्रकाशित किया गया था, उसका उद्देश्य उन झूठी खबरोंका प्रतिवाद करना था, जो इस हड़तालके सम्बन्धमें फैलाई जा रही थीं।

हड़ताल समाप्त हो गई, मगर अखबार निकलता ही रहा। यदि हड़ताल न होती, तो 'डेली हेराल्ड' निकलता, इस बातमें पूरा सन्देह है। खैर, जो कुछ भी हो, लेकिन मज़दूरदलके कुछ उत्साही कार्यकर्ता इस काममें बड़ा उत्साह दिखलाते थे। लैन्सबरी बतलाते हैं कि बेन टिलेट इसके लिए सबसे अधिक प्रोत्साहन दिखलाते थे। उन्होंने ही लैन्सबरीको कोंचकाँचकर इसमें लगाया था। मज़दूर-आन्दोलनके उत्साही कार्यकर्ता एक स्थानपर एकत्रित हुए। वहाँ उन्होंने अपनी योजनापर वाद-विवाद किया। जो कुछ धन वे एकत्रित कर सकते थे, किया, और 'डेली हेराल्ड'को प्रकाशित करनेके लिए कार्य-क्षेत्रमें कूद पड़े। दरअसल 'डेली हेराल्ड' केवल तीन सौ पौंडकी हास्य-जनक टुटपुँजिया पूँजीसे आरम्भ किया गया था। उसके लिए न तो कोई काफ़ी जगह थी, न आफ़िस था, न फर्निचर! यहाँ तक कि क़लम, दवात और पेंसिल तक न थी! सब लोग एक ही कमरेमें काम करते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं उन प्रारम्भिक दिनोंमें एक बार 'डेली हेराल्ड'के दफ्तरमें गया था। मुझे 'डेली हेराल्ड'का गर्व था, मगर दफ्तरमें प्रवेश करनेपर मैंने अपने जीवनका सबसे बड़ा आश्चर्य देखा। मैंने देखा कि हमारे आन्दोलनके ये 'बड़े-बड़े व्यक्ति' दियासलाईकी लकड़ीके छोटे-छोटे कटघरोंमें बन्द हैं। ये कटघरे एक दूसरेसे अलग बैठनेके लिए बनाये गये थे, मगर फिर भी लोगोंकी बोली इन पतले लकड़ीके तख्तोंको भेदकर आसानीसे एक दूसरेके पास पहुँच जाती थी। यदि जेलखानेवालोंने इन लोगोंको ऐसी दशामें रखा होता, तो इन लोगोंने कैसा तीव्र प्रतिवाद किया होता!



श्री हेमिल्टन फाइफ, हेराल्डके दूसरे सम्पादक (सन् १९२२-२६ तक)
(ब्लाक 'डेली हेराल्ड'की कृपासे प्राप्त)

परन्तु यह तो 'डेली हेराल्ड'के संकटपूर्ण जीवनका—इतना संकटपूर्ण जीवन शायद ही किसी समाचारपत्रका हुआ हो,—आरम्भ था। अंग्रेज़ीमें एक कहावत है कि बिल्लीके नौ प्राण होते हैं। इस कहावतवाली बिल्लीकी भाँति 'डेली हेराल्ड'के भी नौ जाने थीं। एक नहीं, अनेक मौक़ोंपर यही मालूम होता था कि बस, 'डेली हेराल्ड'का अन्तिम अंक निकल गया, अब उसकी समाप्ति है; लेकिन दूसरे दिन जो देखिये, तो कहीं न कहींसे एक-न-एक रक्षक उत्पन्न हो जाता था, जिसकी सहायतासे पत्र अपने घटनापूर्ण जीवनका और थोड़ा मार्ग चलनेमें समर्थ होता था। लैन्सबरी बतलाते हैं कि एक बार 'डेली हेराल्ड'के डिरेक्टरोंकी मीटिंग हाउस-आफ्-कामन्सके कमेटी-रूममें हुई, और बहुत दुःख एवं वेदनाके साथ उन्होंने गम्भीरता पूर्वक यह प्रस्ताव पास किया कि कम्पनी तोड़ दी जाय। इस मीटिंगसे उठकर लैन्सबरी सीधे स्टेशन भागे हुए गये, जहाँसे उन्हें रेल द्वारा 'क्रू' नामक स्थानमें उसी सन्ध्याको व्याख्यान देनेके लिए जाना था।

दूसरे दिन सवेरे जब वे वहाँसे लौटकर स्टेशन आ रहे थे, तब उसी दिनका 'डेली हेराल्ड' बिकते देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। बादमें यह मालूम हुआ कि 'डेली हेराल्ड'में काम करनेवाले कुछ लोगोंने उसके कागज़के गोदामकी तलाशी ली। उन्हें वहाँ जो कटा-फटा, छोटा-बड़ा, ग़ैर साइज़का



श्री विलियम मेलर हेराल्डके वर्तमान सम्पादक
(ब्लाक 'डेली हेराल्ड'की कृपासे प्राप्त)

कागज़ मिला, उन्होंने उसीपर अख़बारको छापकर प्रकाशित कर दिया! उस दिनका 'डेली हेराल्ड' सब प्रकारकी शक्ल और साइज़का था, लेकिन इस चौबीस घन्टेकी मोहलत मिल जानेसे 'डेली हेराल्ड'की जीवन-रक्षा हो गई।

कुछ दूसरे अवसरोंपर कागज़ बनानेवालोंने कागज़ देना रोक दिया। इन कागज़ बनानेवालोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। यदि वे चाहें, तो 'डेली हेराल्ड'के समान समाचारपत्रका प्रकाशन आसानीसे असम्भव कर दे सकते हैं, लेकिन जब इन कागज़वालोंको यह बतलाया गया कि उनके पेपर-मिलोंमें भी मज़दूर काम करते हैं, और यदि वे मज़दूर हड़ताल कर देंगे, तो किसीको भी कागज़ न मिलेगा, तब वे लोग ढीले पड़ गये।

ऐसी दशामें यह असम्भव था कि उदार-दल और अनुदार-दलके नेताओंको 'डेली हेराल्ड'की आर्थिक दुरावस्थाका पता न लगता। उन्हें ताज्जुब तो इस बातका था कि अब तक वह जारी कैसे था! अकसर जब कभी 'डेली हेराल्ड' पूँजीपतियोंके दुर्गपर कोई सफल आक्रमण करता था, तभी वे उसके खूनके प्यासे हो जाते थे। वे उसका बायकाट करते थे, और जब इसमें सफल न होते, तो इस बातका दोष लगते कि 'डेली हेराल्ड' विदेशी धन खाता है। मगर लैन्सबरीने 'डेली हेराल्ड'पर जो किताब लिखी है, उसमें प्रेसके—जिसमें 'डेली हेराल्ड' छपता था—मैनेजर मि० ड्रू, और उनके मालिक सर एफ० न्यूनेस तथा कागज़-मर्चेन्ट्स बोवाटर ऐण्ड को० की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"ये सज्जन 'डेली हेराल्ड'की कैथोलिक, जर्मन और बोल्शेविकोंसे धन पानेकी बात सुनकर अकसर हँसते होंगे, क्योंकि यही तीनों सज्जन अच्छी तरह जानते हैं—जिसे और लोग कम जानते हैं—कि 'डेली हेराल्ड' अपनी भयंकर आर्थिक कठिनाइयोंका किस प्रकार सामना करता है।"

महायुद्धके समय 'डेली हेराल्ड'का दैनिक प्रकाशन एकदम असम्भव हो गया। तब वह साप्ताहिक रूपमें परिणत कर दिया गया। साप्ताहिक रूपमें उसे जारी रखनेमें अपेक्षाकृत बहुत-कुछ आर्थिक सहूलियत हो गई। यद्यपि वह तब तक स्वावलम्बी नहीं हुआ था, लेकिन साप्ताहिक रूपमें जारी रखनेमें बहुत ही थोड़े धनकी आवश्यकता होती थी। आरम्भसे अन्त तक वह युद्ध-विरोधी समाचारपत्र रहा, इसलिए उन समस्त वीरात्माओंके लिए, जो युद्धके समर्थक नहीं थे, और इसी कारण जिन्हें अनेकों अत्याचार और सहस्रों मानसिक वेदनाएँ उठानी पड़ी थीं, वह सान्त्वना और प्रेरणाका उद्गम था। इंग्लैण्डमें हज़ारों मनुष्य ऐसे हैं, जो साप्ताहिक हेराल्डके उन वर्षोंके कार्यको और जिस उच्च भावनाओंसे उसने युद्धका विरोध किया था, उसे नहीं भूल सकते।

अपने अस्तित्वके पहले एक या दो वर्षों तक 'डेली हेराल्ड'के कई सम्पादक हुए। इस प्रकार उसके पाठकोंको कई प्रकारकी सुन्दर लेखन-शैलियोंका आनन्द मिला। वह कभी शर्मीला अख़बार नहीं रहा। उस समय उसके 'शीर्षक' और पोस्टर ऐसे थे, जिन्हें साहस और सनसनी पैदा करनेमें पराकाष्ठातक पहुँचे हुए कहना चाहिए। मुझे अच्छी तरह याद है कि जिन दिनों स्त्रियोंके मताधिकारका आन्दोलन चल रहा था और मताधिकार-अभिलाषिणी स्त्री कैदियोंको जेलमें ज़बर्दस्ती खाना खिलाया जाता था, उस समय सरकारकी

ओरसे मुकदमा चलानेवाला जो व्यक्ति था, उसका नाम था बाडकिन। 'डेली हेराल्ड'ने बाडकिनको टिकटीपर लटकाकर नीचे लिखा था—"बाडकिन शैतान कौन है ?" दो-ही-चार दिनमें लन्दनके ट्राफाल्गर-स्क्वायरमें इन मताभिलाषिणी महिलाओंका एक बड़ा भारी प्रदर्शन हुआ। उस प्रदर्शनमें लोगोंने देखा कि ईस्ट ऐण्ड और स्ट्रैंडकी ओरसे एक जुलूसमें सैकड़ों बड़ी पोस्टर कागज़के बोर्डोंपर चिपकाये हुए निकाले गये। वह दिन भी बड़ा घटनापूर्ण था।

लैन्सबरीका सम्बन्ध हेराल्डके आदि ही से है, और आजकल वे ही उसके प्रधान हिस्सेदार हैं। वे सन् १९१३ उसके सम्पादक हुए और सन् १९२२ तक उस पदपर रहे। उनके हाथोंमें पत्रकी बड़ी उन्नति हुई। वह बहुत थोड़े समाचारोंके एक सस्ते चीथड़ेसे उन्नति करके एक आधुनिक बढ़िया समाचारपत्र बन गया, यद्यपि अब तक भी कई महत्त्वपूर्ण विषयोंमें उसकी शक्ति सीमित है। समय पाकर उसका प्रचार लगभग पाँच लाख प्रतियाँ प्रतिदिन तक पहुँच गया। शायद मज़दूर-दलका अन्य कोई व्यक्ति ऐसे समयमें इतनी सफलता प्राप्त न कर सकता। कारण यह है कि लैन्सबरी मज़दूर-आन्दोलनमें सबसे लोकप्रिय व्यक्ति हैं। लन्दनमें लोग उन्हें बहुत चाहते हैं। यद्यपि वे बड़े दु:साहसी और अग्निकी भाँति गरम व्यक्ति हैं, फिर भी उनमें सहिष्णुता और उदारता है। साथ ही उनमें ऐसी शक्ति है, जिससे वे लोगोंके दलमें—जैसे समाचारपत्रके कार्यकर्तागण—प्रेम उत्पन्न करके उनसे काम करा सकते हैं।

सन् १९२२ में हेराल्डको ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस और लेबर-पार्टीने ले लिया। उस समय लैन्सबरी सम्पादकके पदसे अलग होकर उसके जनरल-मैनेजर हो गये। यह उन्होंने स्वयं अपनी इच्छानुसार किया, क्योंकि एक बात तो यह थी कि वे स्वयं परिवर्तनके इच्छुक थे, दूसरे उन्हें यह मालूम पड़ा कि किसी कमेटी या कांग्रेसकी आज्ञानुसार चलनेमें वे सुखी नहीं होंगे। उस समय इत्तिफाक़से श्री हेमिल्टन फाइफ खाली थे। लैन्सबरीने उनका सम्पादन-कार्य ग्रहण करना पसन्द किया। श्री फाइफने मंजूर कर लिया, और कई वर्ष तक सम्पादकीय आसनपर रहे। सन् १९२६ में उनकी अपेक्षा कम उम्रके एक नवयुवक श्री विलियम मेलरने, जो कई वर्षसे सम्पादकीय विभागमें काम कर रहे थे, सम्पादकीय बागडोर श्री फाइफके हाथसे ली, और वे अब तक उसे ग्रहण किये हैं।

लेबर-दलके प्रत्यक्षरूपसे समर्थन करनेसे और दलके अन्य प्रधान साहित्यिक व्यक्तियोंकी सहायतासे हेराल्डका प्रचार खूब बढ़ा। इसमें श्री फाइफके सम्पादकत्वने भी सहायता पहुँचाई। उनके लेख एक विशेष श्रेणीके पाठकोंको अधिक पसन्द आते थे। श्री फाइफको अन्य कई दैनिकोंका काफ़ी अनुभव था, इसलिए उन्होंने हेराल्डके मुख्य पृष्ठपर कुछ ऐसी नई विशेषताएँ उत्पन्न कीं, जो बहुत आकर्षक सिद्ध हुईं। उन्होंने अग्रलेखोंमें भी सरलता और हास्यका भाव उत्पन्न किया, जो बहुतोंको पहलेके अग्रलेखोंसे अच्छा जान पड़ा। वर्तमान सम्पादकने इन सब विशेषताओंको जारी रखा। साथ ही लैन्सबरीकी उत्तम बातों और स्वयं अपनी मौलिकताओंका प्रभावशाली सम्मिश्रण भी किया।

हेराल्डको बहुतसी उत्तम कृतियोंका श्रेय प्राप्त है। उसने स्त्रियोंके अधिकारोंका ज़ोर समर्थन किया है। उसने युद्धके विरुद्ध न्यायसंगत आपत्ति की थी और वह युद्ध तथा शस्त्रीकरणका सदा कट्टर विरोधी रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंमें वह सदा वीरता-पूर्वक स्वतन्त्रताका समर्थन करता है।

हालकी हेग-कान्फ्रेन्समें समस्त समाचारपत्रोंमें हेराल्डके ही लेख सबसे अधिक ठीक और अच्छे थे। ब्रिटिश प्रतिनिधियोंने हेराल्ड-सम्पादकको पत्र लिखकर उसके इन लेखों और उसके लन्दनस्थित संवाददाता श्री जार्ज स्लोकोम्बकी प्रशंसा की थी। महायुद्धके बाद लायड जार्जके प्रधान मंत्रित्वमें जब इंग्लैण्ड और रूसमें युद्धकी सम्भावना जान पड़ी, उस समय 'डेली हेराल्ड'ने इस विषयपर दो विशेषांक निकाल कर इंग्लैण्डकी सरकारके पागलपन और अन्यायपर जनताका

ऐसा ज़ोरदार मत उत्पन्न कर दिया कि लायड जार्जकी सरकारको दबना पड़ा। इस प्रकारके युद्धका विचार—जिसे कुछ राजनीतज्ञ और कुछ समाचारपत्र समय-समयपर उठाते रहते थे—अन्तमें एक दम त्याग दिया गया।

हेराल्ड, जिसके लिए जार्ज लेन्सबरीने एक बार लिखा था—"मुझे निश्चय है कि आज तक किसी भी समाचारपत्रने इतना प्रेम या इतना विरोध कभी उत्पन्न नहीं किया।" अब वह अपने जीवनका नया अध्याय आरम्भ करनेवाला है। अब एक समाचारपत्र प्रकाशित करनेवाली कम्पनीसे ऐसा प्रबन्ध किया गया है, जिससे हेराल्डके चिर वांछित विकासके लिए धन प्राप्त हो सकेगा। इस विकासमें उसके प्रान्तीय संस्करण संध्या-संस्करण और रविवार संस्करण प्रकाशित करनेका इन्तज़ाम होगा। मज़दूर-दलकी वृद्धि और आर्थिक दृढ़तासे ही यह प्रसार सम्भव हो सका है, मगर इस नये प्रबन्धमें पत्रकी नीति और सम्पादकीय स्वतन्त्रताकी गारंटी ले ली गई है। इस वृद्धिसे समाचारपत्र प्रकाशनकी भावी नीतिपर साधारणतः प्रभाव अवश्य पड़ेगा, मगर जिन लोगोंने हेराल्डको आज इस दशा तक पहुँचाया है, उनके साहस और विश्वासको देखकर किसीको भी भविष्यके लिए चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।

नया नखशिख

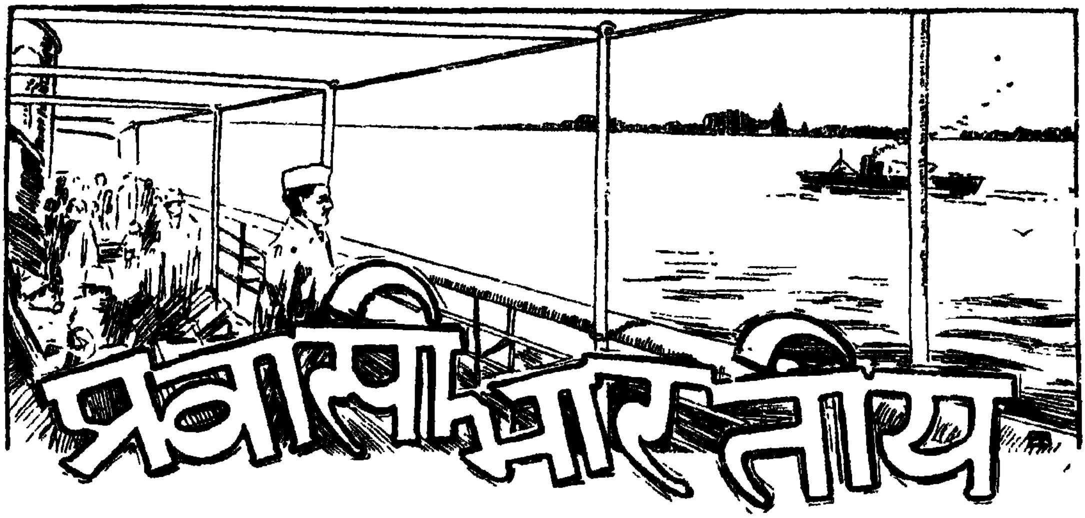
[लेखक :—श्री रामनरेश त्रिपाठी]

(१)

जिसके उरोज मिश्र देशके पिरामिड हों,
रेडियोके विद्युत तरंग-सी नज़र हो।
भारी-भारी भूधर समान हों नितम्ब मोटे,
चीनकी दिवार मेखला-सी जिसपर हो॥
साहबके दिलमें, दिमागमें, दिखावमें भी,
हिन्दकी भलाईके खयाल-सी कमर हो।
ऐसी नायिकाओंका निवास भगवान करे,
हिन्दीके कवित्त-प्रेमियोंके घर-घर हो।

(२)

भाल हो अरोरा बोरिएलिस समान और
ध्रुवकी निशा-सी केश-राशि सिरपर हो।
चशमा समेत दोनों आँखें साइकिल-सी हों,
ऊँट ऐसी गति हो, सुमतिमें सिफ़र हो॥
लाल-लाल चीकने टोमैटो ऐसे गाल लाल,
गाजर-सी नाक रक्त मूली-सा अधर हो।
ऐसी नायिकाओंका निवास भगवान करे,
हिन्दीके कवित्त-प्रेमियोंके घर-घर हो॥



सतलज जहाजकी दुर्घटना

भारतीय सरकारकी निन्दनीय उपेक्षानीति

लगभग दो वर्ष पहलेकी बात है। माननीय बद्री महाराज, श्रीयुत गोपेन्द्रनारायण पथिक और फिजीके कितने ही विद्यार्थी —लड़के और लड़कियाँ—सतलज जहाज़ द्वारा कलकत्ते आये थे। उनसे मिलने और बातचीत करनेका अवसर मुझे मिला था। माननीय बद्री महाराजने इस बातकी बड़ी शिकायत की कि सतलज जहाज़पर यात्री लोग जानवरोंकी तरह भरे हुए लाये गये थे, इस कारण सबको—खासकर बच्चोंको—बड़ी तकलीफ़ रही। श्री बद्री महाराजसे 'इंटरव्यू' लेकर हमने उसका वृत्तान्त 'फ्री-प्रेस'के द्वारा समाचारपत्रोंमें छपाया था। सम्भवतः भारत-सरकारका भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ, और सरकारके एक अत्युच्च पदाधिकारीने श्री बद्री महाराजसे शिमला या दिल्लीमें इस बातका ज़िक्र किया था कि जहाज़पर उन्हें क्या तकलीफ रही, पर सरकारकी ओरसे यात्रियोंकी दुर्दशा दूर करनेके लिए क्या कार्रवाई की गई, और सतलज जहाज़की स्वामिनी 'ब्रिटिश इंडिया स्टीम नैवीगेशन कम्पनी'से इस विषयमें कुछ लिखा-पढ़ी की गई या नहीं, इसका पता भारतीय जनताको अब तक नहीं लगा।

इसके बाद जब सितम्बर सन् १९२८ में यही सतलज जहाज ब्रिटिश-गायनासे लौटा, तो डरबन-बन्दरगाह (दक्षिण-अफ्रिका) तक आते-आते उसमें २४ मृत्यु हो गईं! उस समय 'रूटर' द्वारा डरबनसे भेजा हुआ एक तार समाचारपत्रोंमें छपा था—"पता लगा है कि सतलज जहाज़पर—जो 'जार्ज टाउन' ब्रिटिश-गायनासे आ रहा है और जो मार्गमें डरबन-बन्दरगाहपर ठहरा है—२४ भारतीय मर गये। सतलजमें ७७५ यात्री हैं। ये ब्रिटिश-गायनामें गन्नेके खेतोंपर शर्तबँधी मज़दूरीमें काम करते थे।"

ज्यों ही हमने यह समाचार पढ़ा, त्यों ही तुरन्त भारत-सरकारसे लिखा-पढ़ी की। डरबनसे बम्बई भारत आते-आते १०।१२ आदमी और भी मर गये। २४ तो पहले ही मर चुके थे। सुना है, भारत-सरकारने इनकी जाँच भी कराई, पर जाँचका परिणाम आज तक नहीं ज्ञात हुआ! यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस विषयपर महात्मा गान्धीने भी 'यंग-इण्डिया'में एक बड़ा ज़ोरदार लेख लिखा था।

अभी उस दुर्घटनाको हम भूले नहीं थे कि अबकी बार सतलज जहाज़ने ४४ भारतीयोंको जल-समाधि-प्रदान कर दी! जहाज़के कलकत्तेमें लगनेके एक दिन बाद २२ जनवरीको संन्यासी भवानीदयालके साथ हम लौटे हुए भाइयोंसे मिलनेके

लिए गये। जो दृश्य हमने देखा, वह वास्तवमें बड़ा हृदय-द्रावक था। जहाज़से लौटकर तुरन्त ही हमने भारत-सरकारके इस विभागके माननीय सदस्य सर मुहम्मद हबीबुल्लाको तार दिया कि इस दुर्घटनाकी जाँच कराई जावे। सर हबीबुल्लाकी ओरसे जवाब आया कि इस प्रश्नपर भारत-सरकार विचार कर रही है। विचार करनेमें सरकारने ७।८ दिन लगा दिये। इसके बाद भारत-सरकारने चौबीस परगनेके मजिस्ट्रेट, प्रोटेक्टर-आफ्-ऐमीग्रायट्स और श्रीयुत भवानीदयालजी संन्यासीकी एक जाँच-कमेटी नियुक्त की।

श्री भवानीदयालजी बीमार थे, पर वे इसकी प्रतीक्षामें कलकत्तेमें डटे रहे। पर जब तक कमेटीकी नियुक्ति हुई, तब तक जहाज़से लौटे हुए भारतीय कलकत्तेसे अपने-अपने घरोंके लिए रवाना हो गये थे। सतलज जहाज़पर जो डाक्टर आया था, वह भी, सुना जाता है, विलायतके लिए चल दिया, और २ फरवरीको सतलज जहाज़ सैकड़ों यात्रियोंको लेकर फिजीके लिए रवाना हो गया!

भारत-सरकारकी हृदयहीनताका इससे बढ़कर क्या सबूत हो सकता है? ४४ आदमियोंकी मृत्युकी दुर्घटनाकी गम्भीरताको ही वह अनुभव नहीं कर सकी। अव्वल तो जाँचका कार्य तुरन्त प्रारम्भ कर देना चाहिए था, वह नहीं किया गया। फिर जहाज़को भी फिजी चले जाने दिया। और फिर कमेटीमें मुकर्रर कर दिया प्रोटेक्टर-आफ्-ऐमीग्रायट्सको, जो इस कामके लिए सर्वथा अनधिकारी हैं। इन महाशयसे हमने जहाज़पर ही इस विषयपर बातचीत की थी। उन्होंने जो बातें कहीं, उन्हें हम प्रकट नहीं करना चाहते, पर इतना अवश्य कहेंगे कि प्रोटेक्टर साहब अपने विचार इस विषयमें पहलेसे ही निश्चित कर बैठे थे। उनकी मनोवृत्ति देखकर हमारा यह विश्वास दृढ़ हो गया कि उनसे निष्पक्षताकी आशा करना ठीक न होगा।

इस दुर्घटनाको हुए अब लगभग एक महीना हो गया। भारत-सरकारने अब तक क्या किया, इसका कुछ पता नहीं! भारत-सरकार कुछ करे या न करे, बेचारे ४४ आदमी तो मर चुके, और अब वे शिकायत करनेके लिए नहीं लौटेंगे।

जापान-सरकारका प्रवासी-विभाग

'विशाल-भारत' के प्रवासी-अंकमें जापान-सरकार द्वारा खोले हुए प्रवासी-विभागके विषयमें एक लेख छपा था। इस विषयमें जापानके 'असाही' नामक पत्रके विशेषांकसे और भी कुछ वृत्तान्त ज्ञात हुआ है।

प्रवासी-विभाग टनका मन्त्रिमण्डल द्वारा खोला गया था। इसका उद्देश्य जापानके निम्न-लिखित उपनिवेशोंकी देख-भाल करना तथा उनके प्रश्नोंका अध्ययन करना निश्चित हुआ था :—

कोरिया, फारमोसा, सघालीन, क्वाण्टग और दक्षिण-समुद्रके मेण्डेट द्वारा प्राप्त द्वीप।



मि० गेनजी मत्सूदा, जापानके प्रवासी-विभागके मन्त्री

साथ ही इस विभागका यह भी उद्देश्य रखा गया कि जापानियोंको प्रवास करनेके लिए उत्साहित किया जाय तथा प्रवासी जापानियोंको सलाह-मशवरा दिया जाय। इस विभागकी स्थापनाके लिए जापानी जनताने काफी आन्दोलन किया था, इसीलिए सरकारको यह विभाग स्थापित करना पड़ा। इस विभागमें व्यय करनेके लिए ४५ लाख

येन (एक येन डेढ़ रुपयेके बराबर होता है ।) का बजट स्वीकृत हुआ। पहले-पहल जापान-सरकारके प्रधान मन्त्री टनकाको ही यह विभाग सौंपा गया। इस विभागकी एक शाखा है और तीन उप-विभाग हैं। कोरियाका शासन उस शाखाके अधीन है। शेष तीन उप-विभाग ये हैं :—

(१) निरीक्षण-विभाग

(२) प्रवासी-प्रश्न-विभाग

(३) प्रवासी-उत्पत्ति-विभाग

इस विभागकी नीतिका आधार दो बातोंपर रखा गया है। पहला, उपनिवेशोंका शान्तिमय विकास, कर-सम्बन्धी कठिनाइयोंका दूर करना और उपनिवेशोंके द्रव्य साधनोंकी उन्नति। दूसरा, कोरियामें शिक्षा और जापानी संस्कृतिका प्रचार। कोरिया, फारमोसा, सघालीन, क्वाग्टंग प्रदेश और दक्षिण समुद्रके द्वीपके लिए क्या-क्या कार्य करना चाहिए, यह भी प्रवासी-विभागने निश्चय कर दिया है।

प्रवासके विषयमें लिखा है —

"Spiritual as well as scientific training will be given to emigrants. Special organs will be established for the investigation of conditions in territories of emigration. As a first step officials will be despatched abroad for inspection."

अर्थात्—'प्रवास करनेवाले जापानियोंको आध्यात्मिक और वैज्ञानिक शिक्षा दी जावेगी। जिन-जिन देशोंमें जापानी प्रवास करते हैं, उनकी दशाकी जाँच करानेके लिए खास तौरसे प्रबन्ध किया जायगा। प्रवासके पहले जापान-सरकारकी ओरसे एक अफ़सर सारी हालत अपनी आँखोंसे देखनेके लिए भेजा जावेगा।''

जापान-सरकार तो अपने ६ लाख प्रवासी जापानियोंके लिए इतना अच्छा प्रबन्ध कर रही है, और भारत-सरकार २५ लाख प्रवासी भारतीयोंके लिए अलग विभाग स्थापित करना आवश्यक ही नहीं समझती! यहाँ सारा काम बड़े लबड़धोंधों तरीकेसे हो रहा है। कोई इस बातकी परवाह ही नहीं करता कि यहाँसे जो भारतीय विदेशोंको जा रहे हैं, वे किस कोटिके हैं। उन्हें 'आध्यात्मिक' तथा 'वैज्ञानिक' शिक्षा देनेकी बात तो दूर रही, भारत-सरकारको इस बातकी भी फ़िक्र नहीं है कि इन प्रवास करनेवाले भारतीयोंको जहाज़पर ठीक तौरसे जगह भी मिलती है, या ये जानवरोंकी तरह ठूँसकर भर दिये जाते है! स्वाधीनता और पराधीनतामें यही तो अन्तर है। जापान स्वाधीन है और भारत?

अखिल भारतीय महिला-महासभा

[लेखक :—श्री ब्रजमोहन वर्मा]

आजसे चार वर्ष पहले पूनामें भारतीय महिलाओंकी एक छोटीसी सभा हुई थी। सभाका उद्देश्य भारतीय स्त्रियोंमें सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी सुधार करना था। पूनाकी इस सभाने धीरे-धीरे एक अखिल भारतीय महिला-महासभाके रूपमें देशके आन्दोलनोंमें एक स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। पूनाकी बैठकके दूसरे वर्ष इस महासभाका अधिवेशन भारतकी राजधानी और प्राचीन नगरी दिल्लीमें हुआ। इस अधिवेशनमें पूर्व वर्षकी अपेक्षा अधिक महिला प्रतिनिधि आईं, और अधिक उत्साह दिखलाई पड़ा। तीसरे वर्ष महासभाका अधिवेशन चन्द्रगुप्त और अशोककी प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) में हुआ। यह अधिवेशन दिल्लीके अधिवेशनसे भी अधिक सफल रहा। इस वर्ष गत २० जनवरीसे २४ जनवरी तक इस महासभाकी चौथी बैठक बम्बई महानगरीमें बड़े समारोहके



महिला-महासभाकी स्थायी समितिकी पदाधिकारिणी

साथ हुई। इस वर्ष यद्यपि प्रतिनिधि फीस दुगनी कर दी गई थी, फिर भी पिछले तीनों अधिवेशनोंसे प्रतिनिधियोंकी संख्या अधिक थी।

इस अधिवेशनकी सभानेत्री थीं संसार-प्रसिद्ध, भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू। पिछले तीन अधिवेशनोंकी सभानेत्रियाँ राजवंशीय महिलाएँ थीं, परन्तु बम्बईके अधिवेशनसे महासभाने लोकसत्तात्मक रूप ग्रहण किया। महासभामें मद्रास, युक्त-प्रदेश, पंजाब, बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र आदि—भारतके प्राय: सभी प्रान्तोंसे महिला-प्रतिनिधि आई थीं। बम्बईकी महिलाओंकी बहुत बड़ी संख्या होना तो स्वाभाविक ही था। स्वागतकारिणी-समितिकी अध्यक्षा लेडी दोराब ताता थीं और मन्त्रिणी थीं श्रीमती हंसा मेहता बी०ए०। स्वागतकारिणी-सभाने प्रतिनिधियोंको ठहराने और उनकी खातिरदारी करनेमें कोई भी बात उठा नहीं रखी थी।

महासभाका अधिवेशन बम्बई-यूनिवर्सिटी-बिल्डिंगके कनवोकेशन-हालमें हुआ था। हाल नीचेसे ऊपर तक ठसाठस भरा हुआ था। उस दिनके अनुभवसे यह ज्ञात हो गया कि इतना बड़ा हाल भी महासभाके लिए काफ़ी नहीं है।

सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडूने अपने भाषणमें अन्य बातोंके साथ बतलाया कि महासभाका उद्देश्य केवल प्रस्ताव पास करना या सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी बातोंपर वादविवाद करना ही नहीं है। भारतीय महिलाओंका आदर्श सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी विवादोंसे कहीं अधिक गम्भीर, अधिक ठोस और अधिक मनुष्यता-पूर्ण है। भारतकी यह विशेषता है कि उसकी संस्कृति सदा क्रियात्मक रही है, और उसने अपने वैरियों तकके विरोधमें परिवर्तन कर दिया है। कहा जाता है कि भारतीय महिलाएँ दुनियाँसे दूर एकान्तमें



स्थायी समितिकी सभानेत्री श्रीमती पी० के० सेन (पटना)



सामाजिक विभागकी सभानेत्री श्रीमती ब्रजलाल (रामेश्वरी) नेहरू

रहती हैं, वे जीवनकी समस्त बातोंको निश्चेष्ट होकर भाग्यपर छोड़ देती हैं। वे पुरानी सड़ी हुई रूढ़ियोंकी गुलाम हैं, मगर यह महासभा इन समस्त दोषोंको ग़लत साबित करती है। यहाँ आज हिन्दू, मुसलमान, ईसाई तथा पारसी सम्प्रदायकी महिलाएँ एकत्रित होकर भारतीय महिलाओंके अभिन्न सौहार्द्र और बन्धुत्वभावका परिचय दे रही हैं।

महिला-महासभाने देखा कि केवल सभा करके प्रस्ताव पास कर देना व्यर्थ है। इस समयकी सबसे बड़ी आवश्यकता है स्त्रियोंमें शिक्षा-प्रचार की। मगर शिक्षा-प्रचारका काम ऐसा है, जो बिना धनके नहीं चल सकता, अतः महासभाने एक शिक्षा-फण्ड स्थापित किया है। इस फण्डके स्थापनमें लेडी इर्विनका बहुत बड़ा हाथ है। लेडी इर्विनकी अपीलपर बीस हज़ार रुपये राजा-महाराजोंसे एकत्रित हो गये थे। फण्ड-एसोसिएशन अब महासभासे पृथक् करके एक संलग्न संस्थाके रूपमें कर दिया गया है। अब इस फण्डमें पंचानवे हज़ार रुपये हैं। यह फण्ड महिलाओंको गार्हस्थ-विज्ञान (Home Science) की विशेष शिक्षा देनेके लिए एक ट्रेनिंग-कालेज खोलनेमें लगाया जायगा। कालेजका प्रश्न एक स्पेशल सब-कमेटीको सौंप दिया गया है। आशा है कि इस वर्षके अन्त तक उसकी योजना इत्यादि तय्यार हो जायगी।

महासभाने अपने आरम्भिक वर्ष हमारी शिक्षा-पद्धतिके दोषोंके निरीक्षणमें लगाये थे। उसके बाद सभाने उन सामाजिक दोषोंकी ओर दृष्टिपात किया, जिनके कारण हमारी महिलाएँ संसारकी अन्य महिलाओंके साथ शिक्षा प्राप्त करनेमें असमर्थ थीं। गत वर्ष पटना-कान्फ्रेंसमें शिक्षा-फण्ड एक स्थायी और दृढ़ भित्तिपर स्थापित किया गया। इस वर्ष महासभाने उन तरीक़ों और उपायोंकी विशेष विवेचना की, जिनसे हम स्थानीय क्षेत्रोंकी महिलाओंको शिक्षाकी सहायता दी जा सके। साथ ही सभाने

सामाजिक सुधारोंके सूत्र निश्चित किये। बाल-विवाह और स्त्रियोंके उत्तराधिकारके विषयमें महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास



श्रीमती कजिन्स

किये गये। मजेकी बात तो यह थी कि जब ऐसेम्बलीके कुछ मुसलमान सदस्य शारदा-बिलको शरियतके खिलाफ़ बतलाते हैं, इस महासभामें मुस्लिम महिलाओंने उसे शरियतके अनुकूल बताकर उसका ज़ोरदार समर्थन किया।

महासभाकी बैठकके साथ ही बम्बईके प्रसिद्ध और मनोरंजक स्थानोंकी यात्रा और निरीक्षण भी कार्य-क्रममें रखा गया था। इनमें वहाँकी कई एक महिला-संस्थाएँ—जैसे महिला औद्योगिक संस्था 'सेवा-सदन', 'ज़रतुस्त-महिला-समिति' और 'महिला-मंडल' आदि—भी सम्मिलित थीं। आरम्भमें ये समितियाँ बहुत छोटे पैमानेपर शुरू की गई थीं, परन्तु अब वे विकसित होकर काफ़ी बड़ी संस्थाएँ बन गई हैं। अन्य प्रान्तोंकी प्रतिनिधियोंको इस बातके लिए उत्साहित किया गया कि वे अपने-अपने प्रान्तोंमें स्त्रियोंकी दरिद्रता और बेकारी कम करनेके लिए इस प्रकारके छोटे-छोटे औद्योगिक स्कूल स्थापित करें।

इस महासभामें भाग लेनेवाली महिलाओंमें विशेष उल्लेखनीय श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती फरीदूंजी, श्रीमती हंसा मेहता, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय, श्रीमती पी० के० सेन, लेडी दोराब ताता, लेडी इर्विन और श्रीमती कज़िन्स (डाक्टर कज़िन्सकी पत्नी) हैं।

**
*

चित्र-परिचय

मंगलाप्रसाद-पारितोषिक

इस वर्ष मंगलाप्रसाद-पारितोषिकका १२००) रुपयेका इनाम 'मौर्य-साम्राज्यका इतिहास' नामक ऐतिहासिक पुस्तकके लिए देना निश्चय हुआ है। इस गवेषणापूर्ण पुस्तकके लेखक गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी (हरिद्वार) के सुयोग्य स्नातक श्री सत्यकेतु विद्यालंकार हैं। श्री सत्यकेतुजी आजकल गुरुकुल विश्वविद्यालयमें ही इतिहासके अध्यापकका कार्य कर रहे हैं। भारतके पुरातन इतिहासके विषयमें जितनी भी खोज हुई है, उसकी देख-भाल करके और संस्कृत एवं पाली-साहित्यकी मूल पुस्तकों तथा शिला-लिपियोंका अध्ययन करके लेखकने इस प्रामाणिक पुस्तककी रचना की है। लेखकने केवल प्राचीन साहित्यके आधारपर ही यह पुस्तक नहीं लिखी, बल्कि अंग्रेज़ी और जर्मन-भाषामें भी मौर्य-साम्राज्यके विषयमें जितना साहित्य उपलब्ध है, लेखकने उसका भी अवलोकन किया है। पुस्तककी प्रस्तावना प्रख्यात इतिहासवेत्ता श्री काशीप्रसादजी जायसवालने लिखी है। वे लिखते हैं—

"पुराने हिन्दू पुराविदोंकी तरह और नये ऐतिहासिकोंकी तरह ग्रन्थकारने शिलालेख, प्राचीन पुस्तकों तथा अन्य ऐतिहासिक साधनोंसे मौर्य-राज्यकी इतिवृत्ति संकलित की है। मैंने ठोक-बजाकर देख लिया कि यह माल खरा है।"

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाने भी इस ग्रन्थकी प्रशंसा की है। पारितोषिककी निर्णायक-समितिमें भारतके निम्नलिखित प्रख्यात विद्वान् थे:— प्रिन्सिपल कविराज गोपीनाथजी, प्रिन्सिपल आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, पुरातत्त्वशास्त्री श्री राखालदास बन्दोपाध्याय, डाक्टर वेणीप्रसादजी तथा डाक्टर रामप्रसादजी त्रिपाठी। इन पाँचों परीक्षकोंने सर्वसम्मतिसे उपर्युक्त पुस्तकको पुरस्कार-योग्य ठहराया है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी (हरिद्वार) को इस प्रकारका यह दूसरा मान मिला है। इसके पूर्व भी प्रोफ़ेसर



श्री सत्यकेतु विद्यालंकार

सुधाकरजीको उनकी पुस्तक 'मनोविज्ञान' पर यह पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुआ था। वे भी उक्त विश्वविद्यालयके ही अध्यापक थे, और गुरुकुलमें रहते हुए ही उन्होंने उक्त पुस्तकका प्रणयन किया था।

—

सस्ता साहित्य-मंडल अजमेर

इसीमें अंक अजमेरके सस्ता साहित्य-मंडलपर एक लेख अन्यत्र प्रकाशित किया गया है। उससे पाठकोंको मण्डलके विषयमें और उसकी कृतियोंके विषयमें काफ़ी ज्ञान हो जायगा। इस सस्ता साहित्य-मण्डलकी स्थापनामें सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री जमनालालजी बजाज और सुप्रसिद्ध सेठ घनश्यामदासजी बिड़लाका बड़ा हाथ है।

यहाँ घनश्यामदासजी बिड़लाका चित्र प्रकाशित किया जाता है। पाठकोंको बिड़लाजीका परिचय देनेकी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि समाचारपत्रके पाठक उनसे इतने अधिक परिचित हैं कि उनके लिए कुछ अधिक लिखना व्यर्थ है।



श्री घनश्यामदास बिड़ला

दूसरा चित्र सस्ता साहित्य-मंडलके कार्यकर्ताओंका है। बीचमें श्री जमनालाल बजाज और 'त्यागभूमि'के सम्पादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय बैठे हैं।



सस्ता साहित्य-मंडल अजमेरके कार्यकर्तागण

चित्रकार श्री हरिपदराय

पाठक 'विशाल-भारत'के चित्रकार श्री हरिपद रायके नामसे तो परिचित न होंगे, परन्तु उनकी कृतियोंसे भलीभाँति



चित्रकार श्री हरिपद राय

परिचित होंगे। राय महाशयके बनाये हुए दो व्यंग चित्र (कार्टून) 'विशाल-भारत' के इस अंकमें भी अन्यत्र छपे हैं। चित्रकार महाशयका कुछ परिचय देना अनुचित न होगा।

श्री हरिपदजीने सन् १६२०में कलकत्ता-यूनिवर्सिटीसे बी० ए० पास किया। उनका विचार क़ानून पढ़नेका था। उसी वर्ष उन्होंने एम० ए०में पढ़ना आरम्भ किया। एम० ए०में उनका विषय 'भारतका प्राचीन इतिहास और संस्कृति' था, परन्तु परीक्षाके पहले ही वे कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके शान्ति-निकेतनके 'विश्वभारती' विद्यालयमें चले गये, जहाँ उन्होंने सुप्रसिद्ध प्राच्य-विद्याविशारद प्रोफेसर सिलवन लेवीके भाषण सुने। वे बोलपुरमें दो वर्ष तक संस्कृत भाषाके सहकारी अध्यापक रहे। वहाँ रहते समय श्री असितकुमार हाल्दार (जो आजकल लखनऊ आर्ट-स्कूलके प्रिन्सपल हैं।) और भारतके प्रसिद्ध चित्रकार श्री नन्दलाल बोससे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। वहाँ उन्होंने यद्यपि चित्रकारीका कुछ विशेष अभ्यास नहीं किया, फिर भी उन्हें इन बड़े चित्रकारोंको अपनी निजी चित्रशालामें चित्र बनाते हुए देखनेका सौभाग्य अवसर प्राप्त हुआ।

बोलपुरमें दो वर्ष रहकर हरिपदजी कलकत्ते आकर क़ानून पढ़ने लगे और साथ ही यहाँके सामाजिक आन्दोलनमें आर्टिस्टका काम करने लगे। कुछ दिनके बाद कलकत्ता-कार्पोरेशनके शिक्षा-विभागने उन्हें अपना आर्टिस्ट नियत किया। वहाँ उन्होंने बहुतसे ऐतिहासिक डिज़ाइन आदि बनाये। कुछ दिन बाद

बंगाल-केमिकल्स और फार्मेस्यूटिकल वर्क्सने भी उन्हें अपना चित्रकार बनाया।

राय महाशय सामाजिक बुराइयोंके बड़े विरोधी हैं। वे अपनी सम्मति 'शनिबारेर चिट्ठी' नामक बंगला मासिक पत्रिकामें कार्टूनोंके रूपमें प्रकट किया करते हैं। इस मासिक पत्रिकाने बंगला-साहित्यमें बढ़ते हुए घासलेटी साहित्यको रोकनेके लिए काफी उद्योग किया है। हालमें देशके राजनैतिक प्रश्नोंपर राय महाशयके बनाये हुए कार्टून बहुत पसन्द किये गये हैं। हमारे घासलेट-विरोधी आन्दोलनमें भी उनके व्यंग चित्रोंने बड़ी सहायता पहुँचाई है। राय महोदयका पता है—८६, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता।

"प्यारा वसन्त आया"

[लेखक :— श्री श्यामसुन्दर खत्री]

(१)

नव कान्तिका विधायक,
नव सौख्य-शान्ति-दायक,
रसराजका सहायक,
ऋतु-मण्डलीका नायक,
प्यारा वसन्त आया।

(२)

अभिनव हरीतिमा है
सब ओर लहलहाई,
गिरि, ग्राम, वन, नगरकी
निखरी नई निकाई।
मंजुल अमल विमलता
नभने अनूप पाई,
नव साज-बाजसे सज
धरती है मुसकराई।
मनमोहनी प्रकृतिने पलटी सुरम्य काया,
प्यारा वसन्त आया।

(३)

मुँह खोल पल्लवोंमें
कलियाँ चटक रही हैं,
झोंके समीरके खा
डालें मटक रही हैं।
तरु-कंठ-हार-सी हो
लतरें लटक रही हैं,
फूलों पै मधुकरोंकी
टोली भटक रही हैं।
मन मुग्धकर अनोखा, क्या दृश्य है सुहाया,
प्यारा वसन्त आया।

(४)

अभिनव उथल-पुथलका
ऐसा प्रभाव छाया,
उत्तर दिशाको रविने
अपना कदम बढ़ाया।
बढ़ ग्रीष्मको शिशिरने
सविनय गले लगाया,
समशीत उष्णताकी
फैली विचित्र माया।
कोयलने मस्त होकर सन्देश जब सुनाया,
प्यारा वसन्त आया।

(५)

निर्जीव-तुल्य निश्चल
जो ठूँठ थे खड़े कल,
उनमें लगी निकलने
सुन्दर नवीन कोंपल।
जग-त्रासकर शिशिरकी
भागी सभीत ठिठुरन,
मृदु गन्ध-पूर्ण मन्थर
बहने लगी समीरण।
एक क्रान्ति-सी मचाता, युग है नवीन लाया,
प्यारा वसन्त आया।

साहित्य-देवता

[लेखकः—श्री वनवासी]

"मैं तुम्हारी एक तसवीर खींचना चाहता हूँ।"

"परन्तु भूल मत जाना कि तुम्हारी भी एक तसवीर खिंचती चली आ रही है।"

"अरे, मैं तो स्वयं ही अपने भावी जीवनकी एक तसवीर अपने अटैची-केसमें रखे हुए हूँ। तुम्हारी तसवीर बना चुकनेके बाद मैं उसे प्रदर्शनीमें रखनेवाला हूँ, किन्तु मेरे मास्टर, मैं यह पहले देख लेना चाहता हूँ कि मेरे भावी जीवनको किस तरह चित्रित कर तुमने अपनी जेबमें रख छोड़ा है।"

"प्रदर्शनीमें रखो तुम अपनी बनाई हुई, और मैं अपनी बनाई हुई रख दूँ—केवल तुम्हारी तसवीर।"

"ना सेनानी, मैं किसी भी आईनेपर बिकने नहीं आया। मैं कैसा हूँ, यह फिसलते समय देख लेता हूँ। चढ़ते समय तो मुझे तुम्हीं दीख पड़ते हो।"

"क्या देखना है?"

"तुम्हें, और तुम कैसे हो, यह कलमके घाट उतारनेके समय यह हरगिज़ नहीं भूल जाना है कि तुम किसके हो।"

"आज चित्र खींचनेकी बेचैनी क्यों है?"

"कल तक मैं तुम्हारा मोल-तोल कूता करता था। आज अपनी वेदनाको लिखनेके आनन्दका थार मुझसे नहीं सम्हलता।"

"सचमुच पत्थरकी क़ीमत बहुत थोड़ी होती है, वह बोझीला ही अधिक होता है।"

"बिना बोझके छोटे पत्थर भी होते हैं, जिनमेंसे एक-एककी क़ीमत पचासों हाथियोंसे नहीं कूती जाती, परन्तु—"

"परन्तु क्या?"

"मेरे प्रियतम, तुम वह मूल्य नहीं हो, जिसकी अभागे गाहककी अड़चनोंको देखकर अधिकसे अधिक माँग की जाती है।"

× × ×

"हाँ, तो मैं तुम्हारा चित्र खींचना चाहता हूँ। मेरी कल्पनाकी जीभ लिखेगी, कलमकी जीभ बोलेगी; किन्तु हृदय और मसिपात्र दोनों ही तो काले हैं। तब मेरा प्रयत्न चातुर्यका अर्ध-विराम, अल्हड़ताका अभिराम, केवल धवलताका गर्व गिरानेवाला श्याम-मात्र होगा। परन्तु ये काली बूँदें अमृत-बिन्दुओंसे भी अधिक मीठी, अधिक आकर्षक और मेरे लिए अधिक मूल्यवान् हैं। मैं अपने मास्टरका चित्र बना रहा हूँ।"

× × ×

"कौनसा आकार दूँ? मानव-हृदयके जो मुग्ध संस्कार हो! चित्र खींचनेकी सुध कहाँसे लाऊँ? तुम अनन्त जाग्रत आत्माओंके ऊँचे, पर गहरे स्वप्न जो हो! मेरी काली क़लमका बल समेटे नहीं सिमटता। तुम कल्पनाओंके मन्दिरमें बिजलीकी व्यापक चकाचौंध जो हो! मानव-सुखके फूलों और लड़ाके सिपाहीके रक्त बिन्दुओंके संग्रह, तुम्हारी तसवीर खींचूँ, मैं? तुम तो वाणीके सरोवरमें अन्तरात्माके निवासीकी जगमगाहट हो। लहरोंसे परे, पर लहरोंमें खेलते हुए। रजतके बोझ और तपनसे खाली, पर पंछियों वृक्ष-राजियों और लताओं तकको रुपहलेपनमें नहलाये हुए।

"वेदनाओंके विकासके संग्रहालय, तुम्हें किस नामसे पुकारूँ? मानव-जीवनकी अब तक पनपी हुई महत्ताके मन्दिर, ध्वनिकी सीढ़ियोंसे उतरता हुआ ध्येयका माखन-चोर, क्या तुम्हारी ही गोदके कोनेमें 'राधे' कहकर नहीं दौड़ा आ रहा है? अहा, तब तो तुम ज़मीनको आसमानसे मिलानेवाले ज़ीने हो—गोपालके चरण-चिह्नोंको साध साध कर चढ़नेके साधन। ध्वनिकी सीढ़ियाँ जिस समय लचक रही हों, और कल्पनाकी सुकोमल रेशम-डोर जिस समय गोविन्दके पादारविन्दके पास पहुँचकर झूलनेकी मनुहार कर रही हो, उस समय यदि वह झूल पड़ता होगा?—आह,

तुम कितने महान हो, इसलिए लॉंगफेलो चरवा-चिड़ोंके मार्गकी कुंजी तुम्हारे द्वारपर लटका गया है मेरे मास्टर। चिड़ियोंकी चहकका संगीत, मैं और मेरी अमृत-निस्यंदिनी गाय अन्न-लता, दोनों सुनते हैं। 'सखि चलो सजनके देस, जोगन बनके धूनी डालेंगे'—मैं और मेरा घोड़ा दोनों जहाँ थे, वहीं 'शम्भुजी'ने अपनी यह तान छेड़ी थी; परन्तु वह तो तुम्हीं थे, जिसने द्विपाद और चतुष्पादका विश्वको निगूढ़ तत्त्व सिखाया। अरे, पर मैं तो भूल ही गया, मैं तो तुम्हारी तसवीर खींचनेवाला था न?

× × ×

"हाँ, तो अब मैं तुम्हारी तसवीर खींचना चाहता हूँ। पशुओंको कच्चा खानेवाली ज़बान और लज्जा ढकनेके लिए लपेटी जानेवाली वृक्षोंकी छालें—वे इतिहाससे भी परे खड़े हुए हैं, और यह देखो श्रेणीबद्ध अनाजके अंकुर और शाहज़ादे कपासके वृक्ष बाक़ायदा अपने ऐश्वर्यको मस्तकपर रखकर भू-पाल बननेके लिए वायुके साथ होड़ बद रहे हैं। इन दोनों ज़मानोंके बीचकी ज़ंजीर—तुम्हीं तो हो। विचारोंके उत्थान और पतन तथा सीधे और टेढ़ेपनको मार्ग-दर्शक बना तुम्हीं न कपासके तन्तुओंसे झीने तार खींचकर विचार ही की तरह आचारके जगत्में पांचालीकी लाज बचा रहे हो? कितने दुःशासन आये और चले गये। तुम्हारी बीनसे रातको तड़पा देनेवाली सोरठ गाई थी और सवेरे विश्व-संहारकोंसे जूझने जाते समय उसी बीनसे युद्धके नक्कारेपर डंकेकी चोट लगाई थी। नगाधिराजोंके मस्तकपरसे उतरनेवाली निम्नगाओंकी मस्ती-भरी दौड़ और उनसे निकलनेवाली लहरोंकी कुरबानीसे हरियाली होनेवाली भूमि, लजीली पृथ्वीसे लिपटे तरल नीलाम्बर महासागरों और उनकी लहरोंको चीरकर ग़रीबोंके रक्तसे कीचड़ सान साम्राज्योंका निर्माण करनेके लिए दौड़नेवाले जहाज़ोंके झंडोंमें तुम्हीं—केवल तुम्हीं लिखे दीखते हो। इंग्लैण्डका प्रधान-मंत्री, इटलीका डिक्टेटर, अफ़ग़ानिस्तानका पदच्युत, चीनका ऊँचकर आगया हुआ और रूसका सिंहासन उलटने और क्रांतिसे शान्तिका पुण्याहवाचन करनेवाला ग़रीब—यह तो तुम्हीं हो। यदि तुम स्वर्ग न उतारते तो मन्दिरोंमें किसकी आरती उतरती? वहाँ चिमगादड़ टँगे रहते, उलूक बोलते। मस्तिष्कके मन्दिर जहाँ भी तुमसे ख़ाली हैं, वहाँ यही तो हो रहा है। क़ुतुबमीनारों और पिरामिडोंके गुम्बज़ तुम्हारे ही आदेशसे आसमानसे बातें कर रहे हैं। आँखोंकी पुतलियोंमें यदि तुम कोई तसवीर न खींच देते, तो वे बिना दाँतोंके ही चींथ डालतीं, बिना जीभके ही रक्त चूस लेतीं। वैद्य कहते हैं, धमनियोंके रक्तकी दौड़का आधार हृदय है—क्या हृदय तुम्हारे सिवा किसी औरका नाम है? व्यासका कृष्ण और बाल्मीकिका राम किसके पंखोंपर चढ़कर हज़ारों वर्षोंकी छाती छेदते हुए आज लोगोंके हृदयोंमें विराज रहे हैं? वे चाहे काग़ज़के बने हों, चाहे भोजपत्रोंके; परन्तु वे पंख तो तुम्हारे ही थे!"

"झूठो नहीं। स्याहीके शृंगार, मेरी इस स्तुतिपर तो पत्थर ही पड़ गये कि—

'मैं तुम्हारा चित्र खींच रहा था।'"

× × ×

"परन्तु तुम सीधे कहाँ बैठते हो? तुम्हारा चित्र? बड़ी टेढ़ी खीर है। सिपहसालार, तुम देवत्वको मानवत्वकी चुनौती हो। हृदयसे छनकर धमनियोंसे दौड़नेवाले रक्तकी दौड़ हो, और हो उन्मादके अतिरेकके रक्त-तर्पणकी: आह, कौन नहीं जानता कि तुम कितनों ही बंसीकी धुन हो; धुन वह, जो गोकुलसे उठकर विश्वपर अपनी मोहिनीका सेतु बनाये हुए है। कालकी पीठपर बना हुआ वह पुल मिटाये मिटता नहीं, भुलाये भूलता नहीं। आह, महर्षियोंका राग, पैग़म्बरोंका पैग़ाम, अवतारोंकी आन, युगोंको चीरती किस ताक़तके सहारे हमारे पास तक आ पहुँची? वह तो तुम। और आज भी कहाँ ठहर रहे हो? सूरज और चाँदको अपने रथके पहिये बना सूक्ष्मके घोड़ोंपर बैठे बढ़े ही तो चले आ रहे हो, प्यारे! इस समय हमारे सम्पूर्ण युगका मूल्य तो मेल-ट्रेनमें पड़नेवाले

छोटेसे स्टेशनका-सा भी नहीं होता, पर इस समय तो तुम मेरे पास बैठे हो। तुम्हारी एक मुट्ठीमें भूत-कालका वैभव छटपटा रहा है,—अपने समस्त समर्थकों समेत दूसरी मुट्ठीमें विश्वका विकसित पुरुषार्थ विराजमान है। धूलके नन्दनमें परिवर्तित स्वरूप, कुंजविहारी, आज तो कल्पनाकी फुलवारियाँ भी विश्वकी स्मृतियोंमें तुम्हारी तर्जनीके इशारोंपर लहलहा रही हैं। तुम नाथ नहीं हो, इसीलिए कि मैं अनाथ नहीं हूँ; किन्तु हे अनन्त पुरुष, यदि तुम विश्वकी कालिमाका बोझ सम्हालते, मेरे घर न आते, तो ऊपर आकाश भी होता और नीचे ज़मीन भी, नदियाँ भी बहतीं और सरोवर भी लहराते; परन्तु मैं और चिड़ियाँ दोनों छोटे-छोटे जीव-जन्तु और स्वाभाविक अन्न-कण बीनकर अपना पेट भरते होते। मैं भर वैशाखमें भी वृक्षोंपर शाखा-मृग बना होता। चीते-सा गुर्राता, मोर-सा कूकता और कोयल-सा गा भी देता; परन्तु मेरा और विश्वके हरियालेपनका उतना ही सम्बन्ध होता, जितना नर्मदाके तटपर हारसिंगारकी वृक्षराजिमें लगे हुए टेलिग्राफ़के खम्भेका नर्मदासे कोई सम्बन्ध हो। उस दिन भगवान 'समय' न-जाने किसका, न-जाने कब कान उमेठकर चलते बनते? मुझे कौन जानता है? विन्ध्यकी जामुनों और अरवलीकी खिरनियोंके उत्थान और पतनका इतिहास किसके पास लिखा है, इसीलिए तो मैं तुमसे कहता हूँ—

'ऐसे ही बैठे रहो, ऐसे ही मुसकाहु।"

"क्यों?"

"इसलिए कि अन्तरतरकी तरल तूलिकाएँ समेट कर, अराजक! मैं तुम्हारा चित्र खींचना चाहता हूँ।"

× × ×

"क्या, तुम अराजक नहीं हो? कितनी गद्दियाँ तुमने चकनाचूर नहीं कीं, कितने सिंहासन तुमने नहीं तोड़ डाले कितने मुकुटोंको गलाकर घोड़ोंकी सुनहली खोगीरें नहीं बना दी गईं? सोते हुए अखण्ड नर-मुण्डोंके जागरण, नाड़ी रोगीके ज्वरकी नाप बतानेमें चूक सकती है, किन्तु तुम मुग्ध होकर भी ज़मानेको गणितके अंकों जैसा तुला हुआ और दीपक जैसा स्पष्ट निर्माण करते चले आ रहे हो। आह, राज्यपर होनेवाले आक्रमणको बरदाश्त किया जा सकता है; किन्तु मनोराज्यकी लूट तो दूर, उसपर पड़नेवाली ठोकर कितने प्रलय नहीं कर डालती? सोनेके सिंहासनपर विराजमानकी हत्याओंसे ज़मानेके मनस्वियोंके हाथ लाल हैं और नक़शेपर दिये जानेवाले रंगकी तरह उसकी दौड़ और शक्तिकी सीमा निश्चित है, परन्तु मनोराज्यकी मृग-छालापर बैठे हुए बिना शस्त्र और बिना सेनाके बृहस्पतिके अधिकारको चुनौती कौन दे सके? मनोराज्यपर छूटनेवाला तीर प्रलयकी प्रथम चेतावनी लेकर लौटता है। मनोराज्यके मस्तकपर फहराता हुआ विजय-ध्वज जिस दिन धूलि-धूसरित होने लगे, उस दिन मनुष्यत्व दूरबीनसे भी ढूढ़े कहाँ मिलेगा? उस दिन ज्वालामुखी फट पड़ा होगा, वज्र टूट पड़ा होगा। प्यारे, शून्यके अंक, गतिके संकेत और विश्वके पतन-पथकी तथा विस्मृतिकी गतिकी लाल झंडी, तुम्हीं तो हो। तुम्हारा रंग उतरनेपर वह आत्म-तर्पण ही है, जो फिर तुमपर लालिमा बरसा सके। जिस मन्दिरका झंडा लिपट जाय, वह डाँवाडोल हो उठे, उसमें नर-नारायण नहीं रहते। उस देशको पराये चरण अभी धोने हैं, अपने मांससे पराए चूल्हे अभी सौभाग्यशील बनाये रखने हैं, पराई उतरन अभी पहननी है। मैं, प्रियतम, तुम्हारी—

'उतरन पहनी हुई तस्वीर नहीं खींचूँगा'।"

× × ×

"उतरन—बुरी तरह स्मरण हो आया, बुरे समय, बुरे दिनों। अपना कुछ न रखनेवाला ही उतरन पहने। जो क्षितिजके परे अपनी अंगुली पहुँचा पावे, जो प्रत्यक्षके उस ओर रखी हुई वस्तुको छू सके, वह उतरन क्यों पहने? फ्रेंच और जर्मनका आपसका लेन-देन उतरन नहीं, वह तो भाईचारेकी भेंट है। एक भिखारिन माँ मेरी भी है। उसने भी रत्न-प्रसव किये हैं। पत्थरोंसे अधिक बोझीले, कंकड़ोंसे गिनतीमें अधिक, खाली अन्तःकरणके मूकंपसे

अधिक आवाज़ करनेवाले मातृ-मन्दिरमें उतरनपर एक दूसरेकी होड़ ले रहा है। उतरन-संग्रहकी बहादुरीका इतिहास उनकी पीठपर लदा हुआ है। गत वर्ष होनेवाले विश्व-परिवर्तनोंके छपे, पुराने अख़बारोंपर आज हम हवाई-जहाज़के नये आविष्कारकी तरह बहस करते हैं। वीणा, बंसी और जल-तरंगका सर्वनाश ही नहीं हो चुका। हारमोनिअम और पियानो भी किस काम आयेंगे। हमारा कोई गीत भी तो हो, कलासे नहलाया हुआ, हृदय तोड़कर निकला हुआ। वीणामें तार कहाँ, दिलमें उबार कहाँ?"

"न जाने हम तुम्हारा जन्मोत्सव मनाते हैं, या मरण-त्यौहार? बैलगाड़ीपर बैठे बैठे हवाई-जहाज़ देखा करते हैं। बिल्लीके रास्ता काट जानेपर हमारा अपशकुन होता है; किन्तु बेतारका तार स्विट्ज़रलैंडकी खबर आस्ट्रेलिया पहुँचाकर भी हमारी श्रुतियोंको नहीं छूता! तब हमारी सरस्वतीसे तो उसका सम्बन्ध ही कैसे हो सकता है? इंजिनके रूपमें धधकती हुई ज्वालामुखीका एक व्यापार हमारी छातीपर हो रहा है। प्यारे, इस समय अधोगतिकी ज्वाल-मालाओंमेंसे ऊँचा उठनेके लिए आकर्षण चाहिए। कृषकोंने इसी लालचसे तो तुम्हारा नाम कृष्ण रखा होगा। ज़रा तुम युग-सन्देश-वाहिनी अपनी बांसुरी लेकर बैठ जाओ। रामायणमें जहाँ बालकाण्ड है, वहाँ लंकाकाण्ड भी तो है। तुम्हारी तानमें भैरवी भी हो, कालिंगड़ा भी हो। ज़रा बंसी लेकर बैठ जाओ। मैं तुम्हारा चित्र मुरलीधरके रूपमें खींचना चाहता हूँ।"

× × ×

"'शिव संहार करते हैं,'—कौन जाने? किन्तु मेरे सखा, तुम ज़रूर महलोंके संहारक हो। झोंपड़ियों ही से तुम्हारा दिव्य गान उठता है, किन्तु यह आपकी पर्ण-कुटी देखो। जाले चढ़ गये हैं, वातायन बन्द हो गये हैं, सूर्यकी नित्य नवीन प्राण-प्रेरक और प्राण-पूरक किरणोंकी यहाँ गुज़र कहाँ! वे तो द्वार खटखटाकर लौट जाती हैं। द्वारपर चढ़ी हुई बेलें पानीकी पुकार करती हुई बिना फलवती हुए ही अस्तित्व खो रही हैं। पितृतर्पण करनेवाले अल्हड़ोंको लेकर मैं इस कुटीका कूड़ा साफ़ करने ही में लग जाना चाहता हूँ। कितने दिन हुए कि इस कुटियामें सूर्य-दर्शन नहीं होते। मेरे देवता! तुम्हारे मन्दिरकी जब यह अवस्था किये हुए हूँ, तब बिना प्रकाश, बिना हरियालेपन, बिना पुष्प और बिना विश्वकी नवीनताको तुम्हारे द्वारपर खड़ा किये तुम्हारा चित्र ही कहाँ उतार पाऊँगा? विस्तृत नीले आसमानका पत्रक पाकर भी, देवता! तुम्हारी तस्वीर खींचनेमें शायद दैवी चितेरे इसीलिए असफल हुए और उन्होंने चन्द्रकी रजतिमाकी दावातमें क़लम डुबो-डुबोकर चित्रणकी कल्पनापर चढ़नेका प्रयत्न किया और प्रतीक्षाकी उद्विग्नतामें सारा आसमान धबीला कर चलते बने। इस बार मैं पुष्प लेकर नहीं, कलियाँ तोड़कर आनेकी तैयारी करूँगा; और ऐ विश्वके प्रथम प्रभातके मन्दिर, ऊषाके तमोमय प्रकाशकी चादर तुम्हें उढ़ाकर तुम्हारे उस अनारतरका चित्र खींचने आऊँगा, जहाँ तुम अशेष संकटोंपर अपने हृदयके टुकड़े बलि करते हुए शेषके साथ खिलवाड़ कर रहे होगे। आज तो उदास, पराजित और भविष्यकी वेदनाओंकी गठरी सिरपर लादे, अपने बागमें उन कलियोंके आनेकी उम्मीदमें ठहरता हूँ जिनके कोमल अन्तस्तलको छेदकर, उस समय, जब तुम नगाधिराजका मुकुट पहने दोनों स्कन्धोंसे आनेवाले संदेशोंपर मस्तक डुला रहे होगे, गंगा और जमुनाका हार पहने वंगके पास तरल चुनौती पहुँचा रहे होंगे, नर्मदा और ताप्तीकी करधनी पहने विन्ध्यको विश्व नापनेका पैमाना बना रहे होगे, कृष्णा और कावेरीकी कोरवाला नीलाम्बर पहने विजयनगरका संदेश पुष्प-प्रदेशसे गुज़ारकर सह्याद्रि और अरवलीको सेनानी बना मेवाड़में ज्वाला लगाते हुए देहलीसे पेशावर और भूटान चीरकर अपनी चिर-कल्याणमयी वाणीसे विश्वको न्यौता पहुँचा रहे होंगे और 'हवा और पानीकी बेड़ियाँ' तोड़नेका निश्चय कर हिन्द-महासागरसे अपने चरण धुलवा रहे होंगे;—ठीक उसी सन्निकट भविष्यमें, हाँ, सूईसे कलियोंका अन्तःकरण छेद, मेरे प्रियतम, मैं तुम्हारा चित्र खींचने आऊँगा। तब तक चित्र खींचने योग्य अरुणिमा भी तो तैयार रखनी होगी! बिना मस्तकोंको गिने और रक्तको मापे ही मैं तुम्हारा चित्र खींचने आ गया। प्रियतम,

"वे दिन आ रहे हैं।

"स्वर साध रहा हूँ।"

× × ×

"मैं समझा मेरे मालिक, तुम इसीलिए मुझसे तसवीर खिंचवानेके बजाय मेरी तसवीर स्वयं खींचकर प्रदर्शनीमें रखनेकी बात कह रहे थे। मेरी तसवीर—मुक्त गुलामकी! तर्पणकी तसवीरका यह तुम्हारा मौन संकेत किसे विश्वकी सलहको उथल-पुथल कर देनेकी प्रेरणा नहीं करता?"

श्रीयुत मुन्शी अजमेरीजी

विशाल-भारतके गत अंकोंमें प्रकाशित 'पन्नोंका कण्ठा' और 'हे तुलसी' शीर्षक कविताओंके लेखक कविवर मुन्शी अजमेरीजीका परिचय बहुत कम कविता-प्रेमी हिन्दी-पाठकोंको होगा। यों तो उनकी कविताएँ समय-समयपर कई पत्र-पत्रिकाओंमें कभी कल्पित और कभी असली नामोंसे प्रकाशित हुई हैं, पर अपनी सकोचशीलताके कारण हिन्दी-संसारमें वह प्राय: अपरिचित-से ही हैं। मुन्शीजी कविताके अतिरिक्त और भी कई कलाओंमें निपुण हैं। वह बड़े अच्छे गायक, कीर्तनकारी और विनोदी व्यक्ति हैं। अनुकरण-कलामें तो उन्हें असाधारण दक्षता प्राप्त है। बड़े-बड़े गवैयोंके गीत, ग्रामोफ़ोनके रिकार्ड, सरोद आदि बाजोंकी ध्वनिकी हूबहू ऐसी नक़ल उतारते हैं कि असल और नक़लमें ज़रा भी भेद मालूम नहीं होता। यदि उन्हे पर्देकी ओटमें बैठाकर सुना जाय, तो मालूम पड़ता है कि हम असली 'सरोद या ग्रामोफ़ोनका रिकार्ड सुन रहे हैं। कीर्तनके ढगकी भागवतकी कथा इस ढंगसे कहते हैं कि सुनते ही बनती है। उनका संस्कृत, व्रजभाषा और बंगलाका उच्चारण इतना विशुद्ध और विस्पष्ट होता है कि सुननेवाला आश्चर्य-चकित रह जाता है। कवीन्द्र रवीन्द्रके बंगला गीत जब वह अपने मधुर कण्ठसे गाकर सुनाते हैं, तो जान पड़ता है कि साक्षात् श्री रवीन्द्रनाथके मुखसे ही सुन रहे हैं। उनकी व्रजभाषाकी कथा तो इतनी मनोहर होती है कि श्रोता तन्मय और गद्गद हो जाते हैं। आप जन्मके मुसलमान हैं, और अब तक उसी जातिमें हैं; पर उनके आचार, व्यवहार, वेष-भूषा, भाषा और भावोंको देखकर यह खयाल तक नहीं होता कि यह इस जन्ममें तो क्या, किसी पहले जन्ममें भी मुसलमान रहे होंगे—पक्के वैष्णव बूझ पड़ते हैं। हिन्दीके बड़े अच्छे कवि हैं। उनकी रचनामें वर्णनका प्रवाह और प्रसाद पर्याप्त मात्रामें रहता है, भाषा साफ़-सुथरी होती है। समस्यापूर्ति और आशु-कवितामें भी निपुण हैं। कथात्मक रचना तो आपकी बहुत ही उत्तम होती है। ऐसी रचनाओंमें 'पन्नोंका कण्ठा' 'शाही कुँजड़ा' और 'हेमला-सत्ता' प्रकाशित हो चुकी हैं। 'गोकुलसिंह' और 'मधुकरशाह' यह दो रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। 'रामकथा' शीर्षक एक बाल रामायणकी रचना भी आप कर रहे हैं। 'विशाल-भारत'के साहित्याङ्कमें समालोचित 'मालूराम धालूराम संवाद' शीर्षक पुस्तकपर लेखकके स्थानमें यद्यपि मुन्शीजीका नाम नहीं है, पर वर्णनकी शैली और भाषाका प्रवाह पुकार-पुकारकर इन्हींकी ओर उंगली उठा रहा है।



श्रीयुत मुन्शी अजमेरीजी

मुन्शीजी प्राय: साहित्य और संगीत-प्रेमी रईसों और ताल्लुकेदारोंके यहाँ निमन्त्रित होकर जाते रहते हैं। एक बार संयुक्त-प्रान्तके भूतपूर्व गवर्नर सर हारकोर्ट बटलरको भी आपने साहित्य और संगीतसे प्रसन्न करके सर्टिफ़िकेट और मेडल प्राप्त किया था। पिछले सितम्बरमें ११से १६ तारीख तक महात्मा गान्धी जब आगरेमें उतरे थे, तब मुन्शीजी भी इत्तफ़ाक़से घूमते-फिरते वहाँ जा पहुँचे, और नित्य सायंकालीन प्रार्थनाके पश्चात् पद, भजन और कीर्तनादि

सुनाकर महात्माजीको प्रसन्न करते रहे। प्रार्थना समाप्त होते ही महात्माजी कहते—'अजमेरीजी ! आ जाइए'। अजमेरीजी सुनाते और महात्माजी सुनते, 'श्रोता वक्ता च दुर्लभः' का अपूर्व संयोग था। चलते समय अपनी प्रसन्नताका सूचक प्रमाण-पत्र अपने हाथसे लिखकर महात्माजी मुन्शीजीको दे गये, और उनसे अहमदाबाद आश्रममें आनेका वादा ले गये। महात्माजीके उस प्रमाणपत्रकी नक़ल यह है—

"भाई अजमेरीजीने मुझको अपनी संगीत प्रसादीका आश्रेमें बहोत अनुभव कराया है, उनकी मधुर वाणीसे और हिन्दी संस्कृत भाषाके ज्ञानसे मुझको बड़ा आनन्द हुआ।"

आग्रा मोहनदास गांधी

१६-६-२६

वास्तवमें मुन्शीजी सभा-रंजनकी कलामें बड़े ही प्रवीण हैं, श्रोताओंपर जादू-सा कर देते हैं।

हिन्दी-साहित्यके प्रचारमें मुन्शीजी परम उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। जो लोग हिन्दी-कविता नहीं समझते या उसकी उपेक्षा करते हैं, वह भी मुन्शीजीके कीर्तन और कविताको सुनकर मुक्तकण्ठसे गद्‌गद हो हिन्दी-कविताकी प्रशंसा करते देखे गये हैं। इसका परिचय गत मार्चमें मेरठ ज़िलेके असौढ़ा स्थानमें मिला। असौढ़ेके सुप्रसिद्ध देशभक्त रईस श्रीयुत चौधरी रघुबीरनारायण सिंहकी पौत्रीका विवाह था। बरात बिहार-प्रान्तसे गई थी। दोनों ओरसे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोंका समूह जुटा था। जिनमें मेरठ और देहलीके बहुतसे नये-पुराने ढंगके रईस भी थे, जिन्हें हिन्दी-कवितासे अनुराग तो क्या, परिचय भी न था। उस अवसरपर मुन्शीजी भी बुलाये गये थे। मुशायरे और कवि-समाजकी भी आयोजना थी। मुन्शीजीने कविता, कीर्तन और संगीतसे श्रोताओंको मुग्ध कर दिया। उर्दू-कविताके रसिया भी हिन्दी-कविताकी सिर धुन-धुनकर तारीफ करने लगे। कहने लगे—'हिन्दी-कवितामें भी इतना माधुर्य है, यह हमें आज ही मालूम हुआ।' बंगाल और दूसरे ऐसे प्रान्तोंमें, जहाँ शिक्षित समुदायमें हिन्दी-साहित्यका प्रचार अभीष्ट है वहाँके लिए मुन्शीजी सर्वोत्तम हिन्दी-साहित्य-प्रचारक प्रमाणित हो सकते हैं। हिन्दी-संस्थाओंको उनसे लाभ उठाना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि जहाँ उर्दू-मुशायरा और हिन्दी-कवि-सम्मेलन साथ-साथ होते हैं, वहाँ मुशायरेके मुक़ाबिलेमें कवि-सम्मेलनका रंग नहीं जमता। उर्दूवाले बाज़ी मार ले आते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि पब्लिकके कानोंमें उर्दू ग़ज़लोंकी लय रची हुई है। उर्दूवाले कविता पढ़ते भी अच्छे ढंगसे हैं। हिन्दीवालोंमें यह बात अभी नहीं आई। कवि-सम्मेलनोंमें नवीन रचनाओंके साथ यदि पुरानी अच्छी-अच्छी कविता भी आकर्षक ढंगसे पढ़ी जाया करे, तो सर्वसाधारणकी रुचि हिन्दी-कविताकी ओर आकृष्ट हो जाय। लोग समझने लगें कि हिन्दी-कवितामें भी कुछ है।

मुन्शीजीका संक्षिप्त परिचय

मुन्शीजीके पूर्वज कभी बादशाही ज़मानेमें मुसलमान हो गये थे। वह मुसलमान भाट या 'ढाढ़ी' कहलाते थे। यह लोग मारवाड़में जैसलमेर राज्यके निवासी और पालीवाल ब्राह्मणोंके भाट या याचक थे। मुन्शीजीके पिताजीका नाम भीकाजी था। चिरगांव-निवासी स्वर्गीय सेठ गोविन्दरामजी रावबहादुर पालीवालने उन्हें बुलाकर चिरगांवमें बसा लिया था। सेठजी उनके यजमान थे। भीकाजीके यहाँ अगहन बदि द्वितीया संवत् १९३८ वि० को अजमेरीजीका जन्म हुआ। जब यह १७ वर्षके थे, तब भीकाजीका देहान्त हो गया। भीकाजी भी बड़े गुणीजन थे। सुप्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्तके पिताजीसे भीकाजीका बड़ा स्नेह था। श्री मैथिलीशरणजीके पिता स्वर्गीय सेठ रामचरणजी कनकने चिरगांवके बड़े रईस थे। भीकाजीके देहान्तके उपरान्त उन्होंने अजमेरीजीको अपना-लिया। अपने पुत्रोंके समान ही उनपर भी स्नेह-भाव दिखाने लगे। तभीसे बा० मैथिलीशरणजी गुप्तके साथ अजमेरीजीका अभिन्न सम्बन्ध है। अन्तमें मुन्शीजीका संक्षिप्त परिचय उन्हींके शब्दोंमें देकर यह संक्षिप्त परिचय प्रसंग समाप्त किया जाता है:—

"संस्कृत सुनाऊँ, छंद भाषामें बनाऊँ,
और पिंगलको डिंगल समेत अपनाऊँ मैं;
मुखतें बजाऊँ, त्यों सितार औ सरोद वाद्य,
देस-परदेसके बिसेस गीत गाऊँ मैं।
कथा तथा कीर्तन कहानी-इतिहास कहूँ,
नाना रंग राग सों रईस को रिझाऊँ मैं;
मूल मारवाड़, जन्मभूमि है बुन्देलखण्ड,
नावँ अजमेरी चिरगाँव को कहाऊँ मैं।"

—एक जानकार

बेकारी और ग़रीबी

[लेखक :—श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार]

विदेशी करों और कम्पनीके शासकोंके अत्याचारसे तंग आकर पहले ही यहाँके व्यवसायी—विशेषतः वस्त्र-व्यवसायी—अपने-अपने हस्त-व्यवसायोंको छोड़कर माता पृथ्वीकी शरणमें आ रहे थे कि भारतमें मिलें स्थापित हुईं। मिलोंने यहाँके प्रसिद्ध हस्त-व्यवसाय हाथकी कताई-बुनाईको मटियामेट कर दिया। इसके भयंकर परिणाम हुए। जो लोग कताई, बुनाई, छपाई, धुनाई आदिका काम करते थे, वे सब बेकार हो गये। उनमेंसे कुछ तो कुली बनकर दक्षिण अफ्रिका, पूर्वी अफ्रिका, कनाडा, फिजी, मारिशस, आस्ट्रेलिया आदि देशोंमें गये। कुछ बम्बईकी तरफ मेहतरी करके दिन बिताने लगे। आज भी महाराष्ट्रमें ऐसे पेशेके लोगोंमें हाथकी कताई और बुनाईकी प्रथा जारी है। बहुसंख्यक लोग किसान बन गये और खेती करने लगे। इससे किसानोंकी संख्यामें वृद्धि हो गई, और ज्यों-ज्यों भारतमें मिलोंकी वृद्धि हो रही है, त्यों-त्यों किसानोंकी संख्या भी बढ़ रही है। सन् १८९१ से १९२१ तक किसानोंकी वृद्धि इस प्रकार हुई (१)—

वर्ष	सौमेंसे कितने आदमी केवल खेतीपर निर्भर थे
१८९१	६१·१
१९०१	६६·५
१९११	७२·२७
१९२१	७२·७८

यद्यपि यह सत्य है कि किसानोंकी वृद्धिके साथ-साथ खेतीकी भूमिमें भी वृद्धि हुई है, पर यह वृद्धि किसानोंकी वृद्धिकी अपेक्षा बहुत कम है। (२) फिर इस बातपर भी ध्यान देना चाहिए कि भूमिकी उत्पत्तिमें अर्थशास्त्रका क्रमागत ह्रास नियम लागू होता है, इसलिए भूमिसे लगातार आय कम होती गई। इस समय संसारके सब देशोंकी अपेक्षा भारतमें प्रति-एकड़ उपज सबसे कम है। नीचेके अंक इस सचाईको स्पष्ट करेंगे (१) :—

देशका नाम	उत्पादक शक्तिके इन्डेक्स नम्बर
बेल्जियम	२२१
स्विट्ज़रलैण्ड	२०२
नीदरलैण्ड	१९०
यूनाइटेड किंगडम	१७७
जर्मनी	१६६
डेनमार्क	१६८
न्यूज़ीलैण्ड	१६७
मिस्र	१६१
जापान	१३७
कनाडा	१३६
चीन	१३६
स्वीडन	१३६
नार्वे	१२८
फ्रान्स	१२३
आस्ट्रिया	१२०
हंगरी	११६
संयुक्तराज्य (अमेरिका)	१०८
इटली	९९
रोमानिया	९४
स्पेन	९३
बलगेरिया	८७
भारतवर्ष	८६
आस्ट्रेलिया	७६

इसी प्रकार नीचेके अंकों द्वारा पता लगेगा कि संसारके भिन्न-भिन्न देशोंमें प्रति-एकड़ कितनी रुई, चावल और गेहूँकी उत्पत्ति होती है (२):—

---

(१) 'हिन्दी-नवजीवन', १९२८ ई०, पृ० ४०३।

(२) Report of the Deccan Ryots Commission, at 1875, p. 6.

(१) Production in India, p. 165

(२) Production in India, p. 164 के कोष्टकके आधारपर।

देशका नाम	चावल	गेहूँ	रुई
	(प्रति एकड़	उत्पत्ति	मनोंमें)
भारतवर्ष	६·६७	३·६६	·०४
जापान	१५·१४	६·४१	—
संयुक्तराज्य (अमेरिका)	८·५४	३·६६	·०६
स्पेन	२५·२८	—	—
इटली	१३·४७	४·०३	—
मिस्र	१२·१६	६·८८	१·२३

इन अंकोंसे स्पष्ट है कि भारतकी उत्पत्ति संसारके सब देशोंसे प्रति-मन कम है।

किसानोंकी वृद्धिके दो परिणाम हुए। प्रथम तो यह कि भूमिपर दबाव अधिक पड़ा, उससे उसकी शक्तिसे अधिक निकाला गया। दूसरे, खेत छोटे होते गये। चूँकि इंग्लैन्डकी तरह भारतमें इन छोटे खेतोंकी वृद्धिको रोकनेके लिए नियम नहीं हैं, इसलिए अब तक खेत छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बँटते जाते हैं। नीचेके अंकोंसे स्पष्ट होगा कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें खेतोंका औसत परिमाण क्या है (१) :—

(ये अंक १९२१ की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे लिए गये हैं)

प्रान्त	औसत खेत (एकड़ोंमें)
बम्बई	१२·९५
उ० प० सीमाप्रान्त	११·२२
पंजाब	९·१८
मध्यप्रान्त, बरार	८·४८
बर्मा	५·६५
मद्रास	४·९१
बंगाल	३·१२
बिहार-उड़ीसा	३·०९
आसाम	२·९६
संयुक्त-प्रान्त	२·५१

(१) 'हिन्दी-नवजीवन', पृ० ९०

इस प्रकरणमें पूनाके समीपस्थ एक गाँवके अंक भी उपर्युक्त सत्यको पुष्ट करते हैं। इससे स्पष्ट होगा कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, साथ-साथ खेतोंका औसत परिमाण छोटा होता जा रहा है। डाक्टर हेरल्डमानकी जाँचके अनुसार इस गाँवके खेतोंका औसत परिमाण इस प्रकार छोटा होता गया (१) :—

वर्ष	खेतोंका औसत परिमाण (एकड़ोंमें)
१७७१	४०
१८१८	१७॥
१८२०-४०	१४
१९१५	७

सन् १९१५ में औसत खेत ७ एकड़का था। इसका यह मतलब नहीं कि ७ एकड़से बड़े खेत नहीं थे। ७ एकड़से बड़े खेत भी थे और छोटे भी, पर देखना यह है कि छोटे अधिक थे या बड़े। बम्बई-प्रान्तके निम्न-लिखित अंक इस बातको भी स्पष्ट करेंगे कि छोटे परिमाणके खेतोंकी भूमि बड़े परिमाणके खेतोंकी भूमिसे कहीं अधिक है, और उनके स्वामियोंकी संख्या तो बड़े खेतोंके स्वामियोंसे बहुत ही कम। बम्बई-प्रान्तमें खेतोंका परिमाण और उनके स्वामियोंकी संख्या निम्न अंकोंसे स्पष्ट होगी (२):—

खेतका परिमाण (एकड़ोंमें)	कुल क्षेत्र (एकड़ोंमें)	स्वामियोंकी संख्या
०—५	२०२९४६१	८७२४८५
५—१५	४९३२२६६	५२६६४९
१५—२५	४३३७१४३	२२१४४९
२५—१००	८८५४१४४	२०६१४३
१००—५००	२७७७००५	१८१७३
५०० से अधिक	५५६५९३	५५१

तिनेवेली ज़िलेमें खेतोंके परिमाणों और उनके स्वामियोंकी संख्या इस प्रकार है (३) :—

(१) Rural Economics of India, p. 35
(२) Rural Economics of India, p. 36
(३) Some South Indian Villages, p. 57

खेतका परिमाण (एकड़ोंमें)	स्वामियोंकी संख्या
०—१	१०५
१—५	२२०
५—१०	२५०
१०—२०	१००
२०—३०	५०
३०—४०	६०
४०—५०	५०
५० से ऊपर	६०

पंजाबकी हालत भी देखने लायक है। निम्न कोष्ठक इसे स्पष्ट कर देगा (१): —

खेतका परिमाण एकड़ोंमें	उपजाऊ भूमिका प्रति-शतक	प्रतिशतक स्वामी
०—१	१	१७.९
१—५	११	४०.४
५—१५	३६·६	२६.२
१५—५०	३५ ६	११·८
५० से ऊपर	२५·७	३·७

होशियारपुर ज़िलेके बिरहामपुर गाँवकी जाँच श्री भल्लाने की थी। उन्होंने अपनी जाँचमें लिखा है—"५५ प्रतिशत किसानोंके पास ३ एकड़से कम भूमि नहीं है, और २३ प्रतिशतके पास ६ एकड़से अधिक नहीं है।" (२)

अन्य देशोंके खेतोंके परिमाणोंके साथ भारतके खेतोंके परिमाण तुलना करनेपर बहुत छोटे ठहरते हैं। नीचेके अंकोंसे स्पष्ट होगा कि भिन्न देशोंमें खेतोंके परिमाणका क्या औसत है और वहाँकी खेतीपर कितना दबाव है (३):—

देशका नाम	खेतोंका औसत परिमाण	प्रति शत एकड़पर कितने पुरुष काम करते हैं
ग्रेट-ब्रिटेन	६२·०	४·६
डेनमार्क	४०·०	५·५
फ्रान्स	२०·२५	७·०
जर्मनी	२१·५	६·२
बेल्जियम	१४·५	१०·०
हालैण्ड	२६·०	९·०

हम पहले देख आये हैं कि भारतमें सबसे बड़े खेत हैं बम्बईके, और उनका परिमाण है १२·४५ एकड़; पर यहाँपर छोटेसे छोटे खेतोंका परिमाण है १४·५ एकड़, और वे हैं बेल्जियमके। सारांश यह कि अन्य देशोंके छोटेसे छोटे खेत भी भारतके बड़ेसे बड़े खेतको अपेक्षा बड़े हैं, और भारतके बड़े-से-बड़े खेत भी अन्य देशोंके छोटेसे छोटे खेतकी तुलनामें छोटे हैं।

ऊपरके अंकोंसे यह भी स्पष्ट है कि भारतकी भूमिपर अन्य सब देशोंकी अपेक्षा अधिक दबाव है। बेल्जियममें १०० एकड़ ज़मीनपर १० आदमी काम करते हैं, अन्य देशोंकी अपेक्षा यह दस सबसे अधिक हैं, पर भारतमें १०० एकड़पर ५८ आदमी काम करते हैं। यहाँकी कुल खेतोंकी भूमि है, ३८४५४००० एकड़ और कुल कृषक हैं २२४००००००। (१) यह गणना सन् १९२१ की है।

साथ ही यहाँके किसानोंके पास खेतीके उपकरणोंकी कमी है। यद्यपि नीचेके अंकोंसे स्पष्ट है कि भारतमें हलोंकी प्रतिवर्ष वृद्धि हुई है, पर अब भी सन् १९२१–२२ में कुल हल २७५७१०० थे। इस हिसाबसे प्रति किसानके पास ·१ हल है, या यों कहना चाहिए कि प्रति नौ किसानोंके पास एक हल है। हलोंकी क्रमशः वृद्धि इस प्रकार है (२) :—

(१) Rural Economics of Indir, p. 46

(२) The Punjab Peasant in prosperity and debt, P. 29

(३) Rural Economics of India, P. 79

(१) Production in India, P. 20

(२) Production in India, P. 79

वर्ष	कुल हज़ारोंमें
१८६०—६१	११४५३
१६००—०१	१३८१४
१६१०—११	२१४४४
१६२०—२१	२७५७१

अब प्रश्न यह है कि क्या इतने छोटेसे खेत और इतने थोड़े उपकरणोंसे एक आदमी, चाहे उसका जीवन-व्यय (Cost of living) कितना ही कम क्यों न हो, अपना निर्वाह कर सकता है? पंजाबके गांवोंके निरीक्षणसे पता लगता है कि "एक :आठ १४ एकड़ जमीनसे कमी भी अपने परिवारको—जिसमें जाट समेत पाँच आदमी हैं—पाल-पोस नहीं सकता।" (१) भारतके किसान-परिवारके—परिवार पाँच आदमियोंका माना है—पास ६·५ एकड़ ज़मीन है। इस ६·५ एकड़ ज़मीनसे किसी भी तरह न तो वे अपना निर्वाह कर सकते हैं और न कामपर ही लगे रह सकते हैं।

भारतमें इसीलिए किसानोंमें बेकारी बेहद दर्जेकी है। संसारमें शायद ही कहीं ऐसी बेकारी हो। सन् १६२६ के 'नवजीवन'में भिन्न-भिन्न सरकारी अफसरोंकी रिपोर्टोंसे दिखलाया गया है कि ये छोटे छोटे खेत साल भर तक किसानोंको काम देनेमें असमर्थ हैं। मैं उक्त पत्रमेंसे ही उन रिपोर्टोंको (२) उद्धृत करता हूँ :—

"बंगालके मर्दुमशुमारीके कमिश्नर मिस्टर टामसन कहते हैं कि 'बंगालमें असल खेतिहरोंकी संख्या है १ करोड़-१०॥ लाख। इसका अर्थ हुआ फी-किसान २·२५ एकड़से भी कम खेत। किसानोंकी गरीबीका पता इन अंकोंसे ही लगता है। अब २·२५ एकड़से भी कम खेतकी आबादीमें एक आदमीको साल भरमें कुछ ही दिनोंका काम रहता है। जब किसान खेत जोतता है तब, और जब फसल काटता है तब, कुछ दिनोंके लिए उसे काफी काम रहता है, मगर सालमें अधिक दिन या तो उसे काम रहता ही नहीं, या नाम मात्रको थोड़ासा काम रहता है।' इन्हीं लेखकका कहना है कि गेहूँ पैदा करनेवाले संसारके सभी बड़े देशोंमें फी किसान खेतका औसत इससे कहीं अधिक पड़ता है।

"संयुक्त-प्रान्तके सेन्सर-कमिश्नर श्री रोडीका कहना है कि 'इस प्रान्तमें खेतीका काम कुछ थोड़े दिनोंके लिए बड़ी मेहनतका होता है और सालके शेष दिनोंमें प्रायः बिल्कुल बेकारी रहती है। ये बेकारीके दिन आलस्यमें कटते हैं।'

"मध्य-प्रान्तके कमिश्नर श्री हफटन कहते हैं कि 'बरसातके अन्तमें होनेवाली खरीफ (उन्हारी) फसल ही यहाँकी मुख्य फ़सल है। यह फ़सल खतम होनेपर दूसरी बरसात शुरू होने तक किसानोंको कोई काम नहीं रहता।'

"श्री कैलवर्ट 'पंजाबकी सम्पत्ति और भलाई' नामकी किताबमें लिखते हैं—पंजाबमें एक किसानका औसत काम सालमें १५० दिनोंके कामसे अधिक नहीं होता।

"श्री मुकर्जी अपनी 'Rural Economics of India'में अन्य पुस्तकोंके आधारपर लिखते हैं—"मध्य-प्रान्तके प्रायः अधिक हिस्सोंमें लोग सालमें ६ मास तक बेकार रहते हैं।' (१)

"डा० स्लेटरकी जाँचके अनुसार दक्षिण-भारतमें किसान लोगोंके समयके $\frac{5}{12}$ हिस्सेमें खेतीका काम होता है। शेष बेकारीके समयमें वे फल पैदा करते, साग-सब्जीकी बारी लगाते, मुर्गी पालते और हाथकी कताई-बुनाई आदि गृह-व्यवसाय करते हैं, पर तो भी वे बेकार रहते हैं। इस प्रकार गरीबी बढ़ रही है।"

बिहारके विषयमें श्री राजेन्द्रप्रसादजी लिखते हैं—

(१) The Panjab Peasant in prosperity and debt, P. 28

(२) 'नवजीवन',—पृ० ६०

(१) यह उदाहरण मैंने लखनऊ-विश्वविद्यालयके अध्यापक श्री राधाकमल मुकर्जीकी 'Rural Economics of India' पुस्तकके ७३ वें पृष्ठसे लिया है। पर इलाहाबाद-विश्वविद्यालयके अध्यापक श्री दयाशंकर दुबेकी रायमें मध्य-प्रान्तमें ६ मासकी जगह सालमें ४ या ५ मास बेकारी रहती है।

"इस देशमें प्रायः ८० प्रतिशत लोग कृषिपर ही निर्भर हैं। उनको सब काम मिलाकर वर्षमें ८०।९० दिनसे अधिकका काम नहीं होता, और स्त्रियोंको तो और भी कम काम होता है।" (१)

श्री क्यूकसका अनुमान है कि एक आदमी ३ या ४ एकड़ ज़मीनसे सालमें दो सौ दिन बेकार रहता है, और यह बेकारी किसानोंकी गरीबीमें एक बड़ा कारण है।" (२) भारतके किसानोंके पल्ले तो औसत १'७ एकड़ प्रति किसान ज़मीन है।

ऊपरके उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि खेतोंके परिमाण छोटे होते जानेके कारण किसानोंकी गरीबी बढ़ रही है। इस प्रकार खेतोंके परिमाणमें छोटे होते जानेके कारण फ़सलोंका क्रम ठीक प्रकार नहीं हो सकता, इसलिए खेतीकी उत्पत्तिमें भी ये बाधक हो रहे हैं। इस कारण गरीबी और भी बढ़ रही है। साधारण तौरपर दादा भाई नौरोजीने सबसे पहले सन् १८७० में प्रति भारतीयकी औसत आय पता लगानेकी कोशिश की। इसके बाद भी न-जाने कितनोंने प्रति भारतीयकी औसत आमदनी निकाली। इनमेंसे कुछ एककी निकाली औसत आमदनीका पता नीचे लिखी सारणीसे लग सकेगा :—

अनुमान करनेवालोंके नाम	वर्ष जिसका अनुमान किया गया है	प्रति भारतीयकी वार्षिक औसत आय
दादा भाई नौरोजी	१८७०	२०)
लार्ड क्रोमर	१८८२	२७)
लार्ड जार्ज हैमिल्टन	१९०१	३०)
बारिंग बार्बर	१८९८-९९	१८'९०
डिग्बी	१९००	१७'४०
माननीय वी० एन० शर्मा	१९११	८६)
लार्ड कर्जन	१९००	३०)
प्रो० के० टी० शाह	१९०१	३६)
प्रो० केटी शाह	१९२१-२२	७६)
प्रो० पी० ए० वाडिया १ और जी० एन० जोशी	१९१३	४४)
सर विश्वेश्वर ऐय्या	१९११	३६)
प्रफुल्लचन्द्र घोष	१९२२	५१.८६.
वी० जी० काले	१९२२	३६)
डा० बालकृष्ण	१९११-१२	२१)
फिण्डले शिरास	१८७१	२०)
,,	१८८१	२७)
,,	१९०१	३०)
,,	१९११	८०)
,,	१९२१	१०७)
,,	१९२२	११६)

यद्यपि एक भारतीयकी औसत आमदनी ३६)से कम और ५०) से अधिक नहीं है, परन्तु फिर भी यदि श्री शिरासकी गणनाके अनुसार प्रति भारतीयकी औसत आमदनी ११६) वार्षिक मानी जाय और साथमें यह भी माना जाय कि भारतीयोंकी औसत आमदनी रुपयोंमें बढ़ रही है, तो भी यह कहना निर्विवाद नहीं है कि भारतीयोंकी गरीबी घट रही है। प्रथम तो वार्षिक औसत आमदनीके साथ-साथ मुद्राकी क्रय शक्ति कम होती जाती है। इसका अभिप्राय यह कि भारतमें कीमतें बढ़ती जाती हैं। नीचे दिये गये कोष्ठकसे भारतमें कीमतोंमें किस प्रकार बढ़ती हुई, इसका स्पष्टीकरण होगा (१):—

वस्तु	जुलाई १९१४	मार्च १९१८	मार्च १९१९	मार्च १९२०	मार्च १९२१
चावल	१००	८३	१२८	१४७	१२७
गेहूं	१००	११७	१६६	१५२	१५२
दाल	१००	१२७	१७२	१८६	११२

(१) हिन्दूपंच कलकत्ता, १९८३, कमलांकमें बाबू राजेन्द्रप्रसादजीका एक लेख, पृ० ५९८

(२) The Punjab Peasant in Prosperity and debt, P. 30

(१) Indian Economics, By V.G. Kale, P. 646

खांड	१००	१८१	२२१	३२१	३६६
नमक	१००	४८६	२३७	३१०	२१६
रुई	१००	३११	३००	३५१	३०१
आम तौरपर					
औसत	१००	१७६	१८०	१६८	१७५

इस मँहगीके परिणाम-स्वरूप भारतीयोंका जीवन-व्यय (Cost of living) भी बढ़ रहा है। बम्बईके इस विषयके इण्डेक्स-नम्बर इसे स्पष्ट करेंगे (१):—

जीवन-व्ययके इण्डेक्स-नम्बर

वर्ष मास जुलाई	भारतवर्ष	यूनाइटेड किंगडम	संयुक्तराज्य (अमेरिका)
१९१४	१००	१००	१००
१९१५	१०४	१२५	१०५
१९१६	१०८	१४८	११८
१९१७	११८	१८०	१४२
१९१८	१४६	२०३	१७४
१९१९	१८६	२०८	१९९
१९२०	१९०	२५२	२००
१९२१	१७७	२१९	१७४
१९२२	१६५	१८४	१७०
१९२३	१५३	१६९	१७३
१९२४	१५७	१७०	१७३
१९२५	१५७	१७३	७७४
१९२६	१५७	१७०	—

यह तो श्री शिरासने भी माना है कि प्रति किसानकी औसत आमदनी ८०।९०) रु० है (२), जब कि जेलमें प्रति व्यक्ति पीछे ६०) वार्षिक व्यय होता है (३):—

आर्थिक बजटके स्वाध्यायसे पता लगता है कि दक्षिणमें ४४), बंगालमें ५२), मद्रासमें ७२) और पंजाबमें १००) प्रति व्यक्तिकी औसत वार्षिक आमदनी है। इसका अभिप्राय यह है कि पंजाबके लोगोंको छोड़कर बंगाल, मद्रास और दक्षिणके लोग एक क़ैदीसे भी बुरा जीवन व्यतीत करते हैं।

साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि किसानोंकी वार्षिक औसत आमदनीसे उनकी औसत व्ययराशि बहुत बड़ी है। श्री पत्तरोने अभी उस दिन एक निबन्ध मद्रासके गवर्नरकी अध्यक्षतामें पढ़ा था, जिसमें उन्होंने कहा था—"मैंने एक गाँवकी जाँच की। वहाँ एक किसानके आय व्ययमें वार्षिक २२ रु० ६ आनेका घाटा है। उसके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह प्रति दिन भोजन कर सके। इसी प्रकार चिकेकोलो जिलेके एक नमूनेके गाँवमें मैंने जाँच की। इसके अनुसार वहाँका एक ज़मींदारके—जो नदीमातृक और देवमातृक दोनों प्रकारकी ज़मीनोंका मालिक है—परिवारकी वार्षिक आमदनी १२९ रु० ८ आने है, और चावल, दाल, कपड़ेको मिलाकर कुल व्यय १८१ रु० ८ आने है। इस प्रकार ५२) का वार्षिक घाटा है। अदालत और विवाहके लिए परिवारके मुखियाने सन् १९०७ में ३८०) उधार लिये। सन् १९१३ में उसने चावलकी बिक्री, ख़राब अन्नका उपयोग और चावलोंको पीसकर उस ऋणको उतारा। किसानके कथनानुसार परिवारके लोग जनवरीसे मई तक ही पूरा भोजन पाते हैं। एक ज़मींदारा गाँवमें एक आदर्श परिवारकी वार्षिक आमदनी ३१६ रु० है, और वार्षिक व्यय ३२१ रु० ६ आने है। इसपर काफ़ी कर्ज़ा है। एक और ज़मींदारा गाँवमें एक आदर्श किसान-परिवारकी वार्षिक आमदनी ७८६) है और वार्षिक व्यय ६९९) है। इस प्रकार इस परिवारको वार्षिक ६८) की बचत है। इस परिवारके सब काम बहुत अधिक किफ़ायतसे किये जाते हैं। यह उसकी बचत नहीं है, यह उसके परिवारके आदमियोंका वह वेतन है, जो उन्होंने १४) वार्षिक प्रति व्यक्तिकी दरसे सालमें प्राप्त किया है।"

इससे स्पष्ट है कि श्री शिरास चाहे कहें कि भारतीयोंकी औसत आमदनी ११६) है और वह दिन पर दिन बढ़ रही

(१) Economics of Khddar, P. 6

(२) The Science of Public Finance, P. 139

(३) Sixty years of Indian Finance, P. 212

है, पर भारतकी ग़रीबीमें कोई फ़र्क नहीं आया है। यदि ऊपरके उद्धरणसे सन्तोष न हुआ हो, तो डा० एच० मानकी एक जाँचका परिणाम सुनिये (१):—

"एक गाँवमें, जो पूनासे २५ मीलके फासलेपर है, १४७ परिवारोंकी कुल आय २४६६३ रु० है, जब कि उनका वास्तविक व्यय ३८६७६ रु० है। फिजूल-खर्ची और अन्य व्यसनकी चीज़ोंको निकालकर भी यह व्यय ३२२२१ रु० है। इसका अभिप्राय यह है कि एक परिवारकी औसत वार्षिक आमदनी १६८ रु० ८ आने है, तो जीवन-व्यय २१६ रु० ६ आने है। आम तौरपर कुल गाँवकी उत्पत्ति कुल गाँवके जीवन-व्ययके ¾ हिस्सेको पूरा करती है। ८५ प्रति-सैकड़े परिवारोंकी आर्थिक दशा अत्यन्त खराब है। उनकी आय उस व्ययका ५१·५ प्रति सैकड़ा है, जो सबसे अधिक सादगीसे रहनेके लिए आवश्यक है।"

इसका अभिप्राय यह कि एक परिवारको ४० रु० २ आना वार्षिक घाटा है। इस प्रकार भारतके किसान जीवन-निर्वाहके व्ययकी निम्न सीमापर हैं।

इन उद्धरणोंसे स्पष्ट हो गया होगा कि चाहे भारतकी वार्षिक औसत आमदनी बढ़ रही हो, पर भारतकी दशा, और भारतकी ग़रीबीमें कोई सुधार नहीं हुआ है। यदि रुपयोंमें वार्षिक आय बढ़ी है, तो यह भी सत्य है कि जीवन-निर्वाहका दर्जा भी बढ़ गया है। इस कारण इन रुपयोंमें बढ़ी आमदनीका कोई असर नहीं है।

यहाँपर अन्य देशोंके साथ भारतकी औसत आमदनीकी तुलना करनेसे और भी स्पष्ट हो जायगा कि संसारमें सबसे ग़रीब देश भारतवर्ष है। ये अंक युद्धके पहलेके हैं। वर्तमान कालके अंक प्राप्त नहीं हो सके हैं (२):—

देश	प्रति व्यक्तिकी वार्षिक औसत आमदनी
ग्रेट-ब्रिटेन	७५०)
अमेरिकाके संयुक्तराज्य	१०८०)
जर्मनी	४५०)
फ्रान्स	५३०)
इटली	३४५)
कनाडा	६००)
आस्ट्रेलिया	८१०)
जापान	६०)
भारतवर्ष	३६)

यदि युद्धके बाद भारतकी वार्षिक औसत आमदनी ११६) हो गई है, तो इसी अनुपातसे अन्य देशोंकी भी बढ़ी होगी।

इस ग़रीबीके ही कारण भारतमें आधा पेट खानेवालोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। यह नीचेकी गणनासे स्पष्ट होगा (१):—

वर्ष	आधा पेट भोजन पानेवाले (लाखोंमें)	कुलका प्रति-शत
१६११-१२	६५६	५४
१६१२-१३	६५२	७८
१६१३-१४	११८२	६२
१६१४-१५	८५२	७०
१६१५-१६	५८८	४८
१६१६-१७	४८६	४०
१६१७-१८	६८६	५७
१६१८-१६	१७१२	१४०
१६१६-२०	४२१	३६·२

१६१६-२० का वर्ष इस दृष्टिसे बहुत उन्नत रहा, पर इस साल भी ४.२ करोड़ आमदनी आधा पेट भोजन करनेवाले हैं, अर्थात् २.१ करोड़ भारतीयोंको सर्वथा भोजन नहीं मिलता है। यदि मिलता है तो नाम-मात्रको।

श्री ए० ओ० ह्यूम, भारत-सरकारके भूतपूर्व कृषि-मन्त्री

(१) Economic condition in India, P. 46

(२) हाथकी कताई-बुनाई, पृ० १४१

(१) भारतमें कृषि-सुधार पृ० २५

लिखते हैं—"कुछ अच्छी मौसमोंको छोड़कर प्राय किसान लोग और उनके परिवारको पर्याप्त भोजन नहीं मिलता है।" (२)

श्री हारिगने 'पायोनियर'में लिखा—"यह गणना की गई है कि ६० प्रतिशत ऐसी स्पष्ट ग़रीबीमें डूबे हुए हैं कि यदि छोटे-छोटे बच्चोंके परिश्रमका भी फ़ायदा उठाया जाय, तो भी वे भूखे रहेंगे।"

श्री एच० मानने, जो बम्बई-सरकारके कृषि-विभागके अध्यक्ष रह चुके हैं, 'टाइम्स-आफ़्-इंडिया'के संवाददातासे भारतकी ग़रीबीपर बातचीत करते हुए कहा था—"तब तक कुछ भी संभव नहीं है, जब तक सरकार और सामाजिक सुधारक यह न समझ लेंगे कि किसानोंकी समृद्धिका रहस्य उनके ख़ाली पेटको भरनेमें है। यह ख़ाली पेट ही भारतकी उन्नतिमें सबसे अधिक बाधक है।"

यह पूछनेपर कि भारतके ख़ाली पेटको भरनेके लिए क्या सलाह देते हैं, डा० मानने कहा—"हिन्दुस्तानका उद्धार केवल काम करनेसे ही होगा। जिस देशके अधिकांश आदमी सालमें ६ महीने बेकार रहें, उस देशका भला कब हो सकता है। बेकारी दिनोंमें लोगोंको कुछ-न-कुछ काम देना ही होगा, चाहे उससे कितनी ही कम आमदनी क्यों न हो।" गान्धीजीने जब हाथ-कताईका प्रचार शुरू किया—यद्यपि उससे एक आना ही रोज़ मिलता—तब उन्होंने भारतकी ग़रीबीका मुख्य कारण पहचान कर ही वैसा किया था। इससे स्पष्ट है कि भारतकी ग़रीबीका एकमात्र कारण बेकारी है। श्री मानने तो बेकारी ६ महीनेकी बताई है। श्री राजेन्द्रप्रसादजीका मत है कि किसान सालमें ७ महीने फालतू रहते हैं। हम सुभीतेके लिए ६ महीनेकी बेकारीको मान कर ही गणना करेंगे।

यदि २२४० लाख बेकार किसानोंमेंसे ४२० लाख बच्चे और इतने ही बूढ़े निकाल दें तो १४०० लाख किसान बचते हैं जो ६ मास ख़ाली रहते हैं। अर्थात् ७०० लाख किसान साल-भर बेकार रहते हैं। अब यदि इनको सरकार द्वारा निश्चित 'फेमिन-रेट' के अनुसार ≈) प्रतिदिनका काम मिल जाय, तो ये साल-भरमें ४७२५० लाख रु० कमा लेते। सारे भारतके सब प्रकारके कुल टैक्स २०३७६ लाख रु० है और कुल व्यय २३६१४ लाख रु० है। इस प्रकार कुल भारतीय बजट ४४१६० लाख रु० का है, पर यह रक़म जो बेकार किसान इकट्ठा कर लेंगे, इससे भी ३ करोड़के लगभग अधिक है। इस बेकारीके कारण भारतीय राष्ट्रीय आयमें ४७२५० लाख रु०की प्रति वर्ष कमी आती है। इसका यह अर्थ हुआ कि इस बेकारीका १४॥।) प्रति भारतीयपर कर है। यदि चरखेसे एक आना रोज़ भी कमाई हो, तो भी १५७५० लाख रु० तो इसमेंसे बच ही जायँगे।

इस बेकारीके कारण प्रति भारतीयकी क्रय-शक्तिमें कमी आती जा रही है। अतः बेकारीसे जहाँ उन किसानोंका नुक़सान है, जो बेकार हैं, वहाँ जो पूँजीपति व्यवसायी हैं, उनका भी उतना ही नुक़सान है। यदि इनकी क्रय-शक्ति बढ़ेगी, तो ये व्यवसायियोंका अधिक माल ख़रीद सकेंगे, और इससे उन्हें मुनाफ़ा होगा, इसलिए व्यवसायपतियोंका यह कर्तव्य है कि वे भारतीय किसानोंकी बेकारीको दूर करनेमें पूरी मदद करें।

हमने इस अध्यायमें किसानोंकी ही बेकारीका वर्णन किया है। वास्तवमें बेकारीकी मुख्य समस्या है भी किसानोंके विषयमें, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि किसानोंके सिवा और कहीं बेकारी है ही नहीं। स्त्रियोंकी बेकारी भी ध्यान देने योग्य है। भारतमें विशेषतः शहरोंमें स्त्रियाँ एक प्रकारकी आर्थिक बोझ हैं। शिक्षित नवयुवकोंकी बेकारी, साधुओंकी बेकारी और बालकों तथा मिलके मज़दूरोंकी बेकारीको भी उपेक्षाके दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। इन सबकी—विशेषतः किसानोंकी बेकारी किस प्रकार दूर हो, इस प्रश्नपर हम अगले लेखोंमें विचार करेंगे।

(२) Unhappy India p, 370.

राष्ट्रीयता या साम्यवाद ?

[लेखक :—श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, अध्यापक, बिहार-विद्यापीठ]

आज करीब एक चौथाई शताब्दीसे भारतवर्षमें स्वाधीनताकी लहर चल रही है। स्वाधीनताकी लहरसे हमारा अभिप्राय उस आन्दोलनसे है, जिसका लक्ष्य शुरूसे ही भारतवर्षकी पूर्ण स्वाधीनता रहा है, अथवा जो भारतवासियोंके अपने शक्ति-संचयको ही स्वराज्य पानेका एकमात्र उपाय समझकर रचनात्मक काम करता रहा है। ब्रिटिश साम्राज्यके अन्दर रहकर थोड़े-बहुत सुधार माँगनेका और ब्रिटिश सरकारकी सहायतासे भारतवर्षका उद्धार करनेका जो आन्दोलन चलता रहा है, उसे हम स्वाधीनताका असली आन्दोलन नहीं मानते। भारतवर्षकी स्वतन्त्रताकी वह लहर शुरूसे ही भारतीय राष्ट्रीयता (Nationalism) पर आश्रित थी, अर्थात् भारतीय राष्ट्रको राष्ट्ररूपमें स्वतन्त्र होना चाहिए, उसे एक दूसरे राष्ट्र—ब्रिटेन—के अधीन न होना चाहिए, उस भारतीय राष्ट्रमें भारतवर्षके अमीर-गरीब, राजा-रंक सभी सम्मिलित हैं। यही उस लहरका अभिप्राय था। वे स्वाधीनताके इच्छुक भारतीय राष्ट्र-भक्त शुरूसे ही भारतवर्षकी राजनैतिक दासता और व्यावसायिक परवशता एवं असहायताको दूर करना चाहते हैं। भारतवर्षको राजनैतिक दृष्टिसे पूर्णतः स्वतन्त्र और व्यावसायिक दृष्टिसे स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं। भारतवर्षकी राजनैतिक स्वतन्त्रता और व्यावसायिक उन्नति एक दूसरेपर बहुत-कुछ निर्भर हैं, यह भी वे शुरूसे ही अनुभव करते रहे हैं। इसी कारण स्वाधीनताकी लहरने पहले-पहल लोकमान्य तिलकके नेतृत्वमें स्वदेशी आन्दोलनका रूप धारण किया। देशमें स्वदेशी व्यवसाय और कल-कारखाने स्थापित करना उस आन्दोलनका एक विशेष उद्योग था।

भारतवर्षमें ज्यों-ज्यों नये कारखाने स्थापित होंगे, उनके पूँजीपतियों और मजदूरोंमें परस्पर कैसा सम्बन्ध रहेगा, यह प्रश्न उस समय तक न उठा था। यह प्रश्न यदि स्वदेशी आन्दोलनके नेताओंके सामने आता, तो स्वभावतः वे यह सोचते कि देशमें व्यवसाय स्थापित करना देशभक्तिका काम है, और उसमें पूँजीपति और मजदूर दोनोंको सहयोग करना चाहिए, दोनोंका ऐसा सम्बन्ध रहना चाहिए, जिससे परस्पर लड़ाई न हो' और विदेशी व्यवसायी हमारी उस लड़ाईसे लाभ न उठावें। भारतवर्षके राष्ट्रवादी अपने देशके पूँजीपतियोंसे यह आशा रखते हैं कि वे अपने मजदूरोंको अच्छीसे अच्छी दशामें रखें। यही नहीं, बल्कि उनकी हालत सुधारने और उनमें राष्ट्रीय जागृति तथा मुकाबलेकी शक्ति पैदा करनेके लिए यत्नवान् हों। हमारे पूँजीपतियोंका अपना और उनके देशका—दोनोंका ही स्वार्थ इसमें है कि हमारे मजदूर खुशहाल, संगठित, शिक्षित और मजबूत हों।

भारतवर्षके प्रतीक्षित स्वराज्यमें किसानों और मजदूरोंकी क्या स्थिति होगी, वह स्वराज्य एक प्रजाके प्रति जवाबदेह राजाका राज्य होगा या सीधा प्रजाका, इत्यादि प्रश्न स्वदेशी आन्दोलनके समयमें भारतीय राष्ट्रवादीके लिए बिलकुल फालतू थे। जब तक हममें स्वराज्य पानेकी शक्ति नहीं है, तब तक इन चिन्ताओंमें पड़ना खाली शेखचिल्ली बनकर हवाई किले खड़ा करना है। मोटे तौरपर भारतीय राष्ट्रवादीके हृदयमें शुरूसे यह गहरी धारणा है कि भारतवर्षके स्वतन्त्र होनेका अर्थ भारतवर्षकी जनताका स्वतन्त्र होना है, और वह स्वतन्त्रता जनसाधारणमें जागृति हुए बिना और उनके संगठित हुए बिना किसी प्रकार मिल भी नहीं सकती। इस प्रकार भारतवर्षकी गरीबसे गरीब जनताकी तरफ़ तो भारतीय राष्ट्रवादीका शुरूसे ध्यान है, और उसीकी सेवा तथा संगठनको वह अपना मुख्य लक्ष्य मानता है। यह भी उसकी दृढ़ और अटल धारणा है कि भारतीय स्वराज्यमें भारतवर्षके प्रत्येक पुत्र और पुत्रीको बिलकुल समान अधिकार

मिलेंगे। समान अधिकारका मतलब केवल क़ानूनकी दृष्टिमें समान समझे जाना और राजनैतिक अधिकारों—वोट देने और देशके राजकीय पदोंपर चुने जाने आदि—की ही समानता होगी, या धनी-निर्धन, खाली-हाथों (have nots, पूँजी-रहित पैदा होनेवालों) में और भरे-हाथों (haves, पूँजी-सहित पैदा होनेवालों) में किसी प्रकारकी आर्थिक समानता लानेका भी यत्न किया जायगा, कम से-कम उतनी दूर तक कि जिससे प्रत्येक स्त्री और पुरुषको उन्नति करनेके समान अवसर मिल सकें—यह बारीक प्रश्न भारतीय राष्ट्रवादीके सामने अभी तक नहीं आया था; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जब यह प्रश्न आवेगा, उसका स्वाभाविक झुकाव प्रत्येक व्यक्तिकी अधिकतम स्वतन्त्रता और समानताकी तरफ़ होगा।

विभिन्न राष्ट्रोंके हितों और स्वार्थों तथा राष्ट्रोंके मुक़ाबलेके बजाय अब आर्थिक श्रेणियोंके स्वार्थों और उनकी लड़ाईका ज़माना आ गया है, और हमें उन्हींकी ओर ध्यान देना चाहिए। भारतवर्षके राष्ट्रीय हितोंका नाम लेना छोड़कर अब हमें दुनियाँ-भरके मेहनतियोंके स्वार्थोंके लिए लड़ना चाहिए, यह एक ऐसी स्थापना है, जिसे भारतीय राष्ट्रवादी कभी न मानेगा, और जिसका वह कट्टर विरोधी है।

हमारे देशमें गुलामीकी मनोवृत्ति गहरी जमी हुई है, इसी कारण शिक्षित कहलानेवाली श्रेणीमें एक बड़ी तादाद ऐसे लोगोंकी है, जो विदेशमें चलनेवाले किसी भी नये आन्दोलनका अनुयायी बन जानेमें और उसकी परिभाषाओंको समझकर या बग़ैर समझे भी अपना लेनेमें तथा उस आन्दोलनके मूल विचारोंको अपने देशकी स्थितिपर ठीक-ठीक घटाये बिना भी उसकी परिभाषाओंको तोतेकी तरह दोहराने लगनेमें अपना गौरव मानते हैं। चीज़ विलायती होनी चाहिए, यही उसके उम्दा होनेका सुबूत होता है। हमारे शिक्षित समाजके बहुतसे साम्यवादी नेता इसी ढंगके हैं।

रूसमें पिछले बारह वर्षोंसे जो साम्यवादी शासनका परीक्षण (Experiment) चल रहा है, उसे हम बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। दो बरस हुए हमने अपने एक लेखमें, जो अप्रकाशित पड़ा हुआ है, लिखा था—"बोलशेविज़्म ...वह अद्वितीय संस्था...है, जिसकी प्रबल और उत्तेजक प्रेरणासे आज दो-चार-दस नहीं, प्रत्युत लाखों साधारण स्त्री-पुरुष अपने स्वार्थके लिए ही नहीं, बल्कि दलित लोगोंके उद्धार और कल्याणके लिए, तथा संसारमें समानता, भ्रातृभाव और शान्तिका साम्राज्य स्थापित करनेके लिए जी-जान एक करके दृढ़ विश्वास और अटल इरादेके साथ अपने सामने शताब्दियोंकी उज्ज्वल लड़ाईको देखते हुए संसार-भरके साम्राज्योंका मुक़ाबला करनेको डटकर खड़े हो गये हैं। बोलशेविज़्म उस आध्यात्मिक शक्तिके रूपमें प्रकट हुई है जिसने इतने बड़े पैमानेपर इतने बड़े जनसमुदायमें इतनी गहरी और अटल आध्यात्मिक प्रेरणा जगा दी है और जिसकी तुलना विश्वके इतिहासमें बौद्ध-संघके सिवाय और किसी संस्थासे नहीं की जा सकती।" किन्तु भारतवर्षमें आज रूसी साम्यवादके अनुयायी जो कुछ कह और कर रहे हैं, उस सबका औचित्य इतनेसे ही नहीं मान लिया जा सकता। उनके साधन और उनकी कार्य-प्रणाली कहां तक ठीक हैं और कहां गलत, इसकी गहरी और स्पष्ट मीमांसा करनेकी ज़रूरत है।

रूसी साम्यवादके सब सिद्धान्त अच्छे हैं या बुरे, इस प्रश्नको फ़िलहाल हम अलग रखते हैं। हम मान लेते हैं कि वे पूर्णतः अच्छे ही हैं। तो भी हमें यह जान पड़ता है कि भारतवर्षकी परिस्थितिमें रूसी साम्यवादके आदर्श कैसे चरितार्थ होंगे और उसके सिद्धान्त किस प्रकार लागू होंगे, इसे ठीक प्रकारसे समझे बिना हमारे बहुतसे जोशीले भाई खाली उस साम्यवादकी परिभाषाओंको तोतेकी तरह दोहराया करते हैं। भारतवर्षकी राष्ट्रीय लहरकी ठीक-ठीक प्रेरणाको भी वे सज्जन प्रायः समझ नहीं पाते, और अपने सिद्धान्तोंकी मौलिकता जतानेके लिए उसकी प्रायः ऐसी उपेक्षा करते हैं, जो उनके अपने ही कार्यमें विघातक होती है।

रूस-प्रवासी साम्यवादी नेता श्री मानवेन्द्रनाथ रायने* भारतवर्षके आन्दोलनोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। उनका कहना है कि भारतवर्षके अब तकके राष्ट्रीय आन्दोलनों में से किसीने भी जनताके वास्तविक आर्थिक हितोंकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। नरम-दलके वैध आन्दोलनको वे भले ही सफ़ेदपोशों (Bourgoise) की हलचल कह सकते थे, लेकिन पूर्ण स्वाधीनतावादी अल्पसंख्यक युवकोंके दलको भी जब वे दिमागी कुलीन-श्रेणी (Intellectual aristocracy) का दल और उनके आन्दोलनको शिक्षित समाजकी आर्थिक बेकारी-मात्रासे पैदा हुआ आन्दोलन† कहते हैं, तब हम उनके साथ सहमत नहीं हो सकते।

कौन कहता है कि भारतीय राष्ट्रवादीको जनसाधारणके हितोंकी पर्वाह नहीं है ? यह ध्यान रखिये कि उसने उस समय काम शुरू किया था, जब कि खुले आम स्वाधीनताका नाम लेना भी गुनाह था। यदि आज तक भी वह अपने देशके सुदूर देहात तक नहीं पहुँच सका, तो इसका कारण उसके साथी कार्यकर्ताओंकी कमी ही है। देशकी जहालत भारी है, उसे दूर करनेवाले थोड़े हैं, किन्तु भारतीय राष्ट्रवादी यह अच्छी प्रकार जानता है कि देशके जनसाधारणकी जहालत दूर किये बिना और उन्हें संगठित किये बिना हमें स्वराज्य हर्गिज़ नहीं मिल सकता। भारतवर्षका विदेशी शासन आज हमारी जनताकी जहालत और असहायताकी बदौलत ही चल रहा है। आज हमारी विदेशी सरकारकी बड़ी फ़ौज है, वही पुलिस है। जो युद्ध-सामग्री देशमें तैयार होती या बाहरसे आती है, उसे बनाने और ढोनेवाले मज़दूर भी हमारी उसी जनतामेंसे आते हैं। उनको संगठित किये बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। उनको खुले आम संगठित करना आज भी सुगम नहीं है, तो भी यदि उन तक किसीने थोड़ा-बहुत पहुँचनेका यत्न कभी किया है, तो भारतीय राष्ट्रवादीने ही। मज़दूर-संगठनका यही असल काम है, और इस अंशमें एक सच्चे राष्ट्रवादी और एक सच्चे साम्यवादीके मार्गमें तनिक भी अन्तर नहीं हो सकता।

भारतीय राष्ट्रवादीके आदर्शों और विचार-प्रणालीका जो खाका हमने ऊपर खींचा है, उससे यह स्पष्ट है कि जनसाधारणकी अवस्था सुधारने और उनका संगठन करनेके विषयमें राष्ट्रवादी और साम्यवादीके आदर्शोंमें कुछ भी भेद नहीं है। भेद यदि किन्हीं प्रश्नोंपर हो सकता है, तो निम्न-लिखित प्रश्नोंपर—

(१) भारतवर्षके पूँजीपति और बड़े-बड़े ज़मींदारोंके प्रति भारतीय राष्ट्रवादीकी क्या मनोवृत्ति है ?

(२) क्या वह विदेशी मज़दूरोंका सहयोग पानेकी आशा रखता है ? क्या भारतीय मज़दूरों और विदेशके दलित मज़दूरोंके हित उसकी दृष्टिमें एक ही नहीं हैं ?

(३) भारतवर्षके ग़रीब लोगोंके आर्थिक उद्धारके अतिरिक्त क्या भारतवर्षकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रताका कुछ और भी ध्येय है ? और है तो क्या उसमें कुछ सार्थकता है ?

हम एक-एक प्रश्नपर क्रमसे विचार करेंगे।

पहले प्रश्नका उत्तर यह है कि भारतीय राष्ट्रवादी अपने देशके पूँजीपतियों और ज़मींदारोंसे व्यर्थमें लड़ाई मोल नहीं लेना चाहता। वह उनसे आशा करता है कि वे भी राष्ट्रकी लड़ाईमें राष्ट्रवादियोंका साथ दें, उनका वास्तविक हित और स्वार्थ इसीमें है। किन्तु यदि वे अपने और अपने देशके वास्तविक हितोंको तिलाञ्जलि देकर तुरतके तुच्छ आरामोंकी खातिर देशके साथ विश्वासघात करेंगे, तो राष्ट्रवादी उन्हें भी अपना शत्रु गिनेगा और उनसे वही व्यवहार करेगा जो देशद्रोहियोंसे किया जाता है।

विदेशी राज्यका वास्तविक कष्ट तो ग़रीब किसान और मज़दूर जानते हैं, जो अकथनीय ग़रीबीसे कुचले जाते हैं।

* कुछ दिन पहले उनके कम्यूनिस्ट इन्टर-नेशनलसे अलग कर दिये जानेकी खबर सुनी गई थी।

† ये विचार श्रीयुत रायने अपनी पुस्तक 'India in transition' में प्रकट किये हैं। पुस्तक हस्तगत न होनेसे हम प्रतीक नहीं दे सके।

वे पूँजीपति इसका कष्ट क्या जानें जो आरामसे गद्देलोंपर सोते और शहरोंमें बिजली, टेलिफ़ोन और मोटरोंकी मौज लूटते हैं ? उनके लिए तो वकालत है, जजी है, मिनिस्टरी है, शेयर-मार्केट है। इस प्रकारकी बातें आजकल बहुधा दुहराई जाती हैं, पर इनमें रुपयेमें दो आना-भर सचाई भी मुश्किलसे है। जिन पूँजीपतियों और ज़मींदारोंमें अपने मनुष्यत्वका तनिक भी अभिमान विद्यमान है, वे यह आसानीसे देख सकते हैं कि ज़रासी आराम-आसाइशकी सुविधाके बावजूद देशकी पराधीनताके कारण उनका भी पग पगपर वैसा ही अपमान और लांछन होता है, जैसा उनके ग़रीब भाइयोंका और उनके भी सब उन्नतिके अवसर रुके हुए हैं; वे अपने ही देशमें परदेशी और परवश हैं। विदेशी राज्य उनके आगे तुच्छ टुकड़े ही फेंक सकता है, फिर भी उन्हें भिखारी बनकर विदेशीकी भाषा बोलते हुए ही उसके आगे गिड़गिड़ाना पड़ता है। वे अंग्रेज़ोंके दिये हुए तुच्छ ओहदोंमेंसे बड़ेसे बड़ेको भी पालें, तो भी उनके लिए वे अवसर नहीं खुल सकते, जो जापान, तुर्की या अफ़गानिस्तानकी स्वतन्त्र प्रजाके लिए खुले हैं। ब्रिटिश साम्राज्य भारतीय पूँजीपतियोंपर पूरा भरोसा कभी नहीं कर सकता ; इसी कारण भारतीय पूँजीपतियोंमेंसे जो चरित्रकी दृष्टिसे एकदम ही गये-बीते नहीं हैं, जिनकी रीढ़ एकदम टूट नहीं चुकी है और जिनके मनुष्यत्वका गौरव बिलकुल मिट नहीं गया है, वे यह अनुभव करेंगे कि उनका वास्तविक हित और स्वार्थ देशके साथ रहनेमें है।

ग्राम-संगठन, किसान-संगठन और मज़दूर-संगठनका हल्ला तो आज बहुत किया जा रहा है, किन्तु जितने लोग इन शब्दोंकी दुहाई दिया करते हैं, उनमेंसे एक फ़ी-सदीने भी अभी तक न तो ग्रामीण जनता और मज़दूरोंकी वास्तविक स्थितिका ठीक-ठीक अध्ययन किया है, और न उनके संगठनका कोई निश्चित और स्पष्ट मार्ग समझा है। जब हम किसान-संगठन या मज़दूर-संगठनका ठीक-ठीक अर्थ समझेंगे, तब हम देखेंगे कि एक सच्चे और देशभक्त ज़मींदार या कारखानेदारको किसानों और मज़दूरोंका संगठन करनेका जितना अवसर है, उतना किसीको नहीं है। हमें विश्वास है कि जब देशके सामने किसान और मज़दूर-संगठनका स्पष्ट व्यावहारिक आदर्श रखा जायगा, तब बहुतसे ऐसे सच्चे और देशभक्त ज़मींदार तथा पूँजीपति निकल आयेंगे, जो स्वयं अपनी ज़मींदारीके किसानों या कारखानेके मज़दूरोंका आदर्श संगठन करने लगेंगे। क्या रूसके अन्दर ऐसे ज़मींदार पैदा न हुए थे जिन्होंने अपनी ज़मींदारी अपने किसानोंको खुद बाँट दी थी ? या अपने बहुतसे 'हक़' खुद छोड़ दिये थे ? तब भारतवर्षमें वही बात क्यों नहीं हो सकती ? जो ज़मींदार अपने मनुष्यत्व और अपनी स्वतन्त्रताकी कीमत अनुभव करेंगे और साथ ही यह देखेंगे कि अपने किसान भाइयोंको उठाये बिना वे अपने इन खोये हुए रत्नोंको पा नहीं सकते, उस समय उनके लिए अपनी ज़मीन और धनको इस प्रकार निपटा देना कुछ भी कठिन न होगा।

शब्दोंका अर्थ समझे बिना दूसरोंके देखादेखी उनका प्रयोग करने लगनेका जो परिणाम होता है, उसका एक दृष्टान्त हम इस प्रसंगमें देंगे।

पंजाबमें हमारे कई मित्र 'किरती (मज़दूर) किसान-संगठन' करना चाहते हैं। वे साम्यवादी भी हैं, राष्ट्रवादी भी, और खूब मुसीबतें झेले हुए। उनकी सच्ची लगनपर कोई अंगुली नहीं उठा सकता, किन्तु क्या उन्होंने 'किरती-किसान-दल' बनानेका अर्थ समझा है ? पंजाबके किसान तो खुद ज़मीनके मालिक हैं, बड़े-बड़े तालुक़ेदार वहाँ नहीं होते। वे प्राय: जाट हैं। दूसरी तरफ़ पंजाबके 'किरती' (मज़दूर) हैं अछूत लोग। वे किरती जो खेतोंमें मज़दूरी करते हैं, किसानोंका सब तरहका ज़ोर-ज़ुल्म सहते हैं। वे ज़मीन नहीं ख़रीद सकते। वे ख़ाली-हाथ कृषक हैं, जब कि किसान भरे-हाथ कृषक हैं। वे अछूत हैं, किसान जाट हैं। किरतीमें और किसानोंमें दो ऊँची आर्थिक और सामाजिक दीवारें खड़ी हैं, दोनों मिलकर एक दल कैसे हो सकते हैं ? या तो किरती और किसानोंमें परस्पर लड़ाई

ठना दीजिए, या यदि दोनोंको मिलाकर एक दल बनाना है, तो सिवाय इसके कोई चारा नहीं है कि किसानोंको यह समझा या जाय कि वे अपने वास्तविक हितोंको देखते हुए अपने तुच्छ निकट-स्वार्थोंको त्याग दें, और अपने किरती भाइयोंके साथ न्यायपूर्ण बर्ताव कर उन्हें अपने बराबर उठावें। किन्तु जब आप पंजाबके किसानोंमें उच्च त्यागके ऐसे भाव पैदा करनेकी आशा रखते हैं, तब विहार और अवधके तालुकेदारोंसे भी बिलकुल निराश क्यों होते हैं ?

इतने ऊँचे त्यागके लिए या खतरेके कामोंमें पड़कर सरकारकी नज़रोंमें खटकनेके लिए जो धनी लोग तैयार न हों, वे भी अन्य अनेक प्रकारसे राष्ट्रीय आन्दोलनकी मदद कर सकते हैं। जनताको जगानेके लिए और उनके अन्ध विश्वास दूर करनेके लिए उनमें वैज्ञानिक शिक्षा फैलानेकी ज़रूरत है। उसके लिए जनसाधारणकी भाषामें वैज्ञानिक साहित्य तैयार होना चाहिए। क्या ये लोग ऐसे कामोंमें भी सहायता नहीं कर सकते ?

ये सब बातें हमने सिद्धान्तकी दृष्टिसे कही हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पिछले वर्षोंका व्यावहारिक तजरबा बहुत कड़ुवा है। असहयोग आन्दोलनमें पहले-पहल ग़रीब जनता आगे बढ़ी, और धनियोंके हाथसे सामाजिक नेतृत्व छिनने लगा। तबसे सरकारने धनिक-श्रेणीको अपने साथ मिलानेका प्रयत्न आरम्भ किया। इन लोगोंने देशके राजनैतिक आन्दोलनको गिरानेके लिए दिलकी ऐसी जलन दिखाई, मानो वे विदेशियोंसे बढ़कर देशके दुश्मन हों। हिन्दू और मुस्लिम मज़हबी आन्दोलन इन्होंने अपना खोया हुआ नेतृत्व फिरसे लेनेके लिए चलाये, किन्तु हिन्दू या मुस्लिम जनताके वास्तविक हितोंका प्रश्न आनेपर ये एक फूटी कौड़ी देनेको या एक अंगुली हिलानेको भी तैयार नहीं होते, यह बात भी देर तक छिपी न रही। ग़रीब कार्यकर्ताओंको इन लोगोंकी ऐंठका और इनकी निपट-स्वार्थपरताका ऐसा बुरा तजुरबा हुआ, जिसे उनके दिल ही जानते हैं।

सच बात तो यह है कि भारतीय राष्ट्रवादी स्वयं साम्यवादकी तरफ़ शायद अभी न झुकता, किन्तु उसे देशके धनिकोंका बर्ताव उस तरफ़ धकेल रहा है। देशमें साम्यवादकी लहरको जगाने और बढ़ानेमें और किसी शक्तिने पिछले, पाँच-छ: वर्षोंमें उतना काम नहीं किया, जितना धनिक-समाजके देश द्रोहने। वे धनिक लोग अपनी कब्र आप खोद रहे हैं, और अपने लिए उस दशाको आमन्त्रित कर रहे हैं, जो फ्रांसीसी क्रान्तिके, समय फ्रान्सके ज़मींदारोंकी हुई थी, या जो आज रूसके धनिकोंकी हुई है।

दूसरा प्रश्न है विदेशी मज़दूरोंके सहयोगका। भारतवर्षकी राष्ट्रीय कशमकश फ़िलहाल ब्रिटेनके साथ है। यदि ब्रिटेनके मज़दूर यह समझने लगें कि उनका हित और स्वार्थ ब्रिटिश-साम्राज्यके बनाये रखनेमें नहीं, प्रत्युत भारतीय जनताको स्वाधीन करानेमें है, तब भारतीय राष्ट्रवादी भी क्यों न ब्रिटिश मज़दूरोंसे सहयोग करेगा ? लेकिन ऐसा कभी हो नहीं सकता, कारण कि ब्रिटिश मज़दूरोंको ब्रिटेनके साम्राज्यसे स्पष्ट लाभ हो रहा है।

रूसके ज़ारका एशियामें विस्तृत साम्राज्य था। रूसी मज़दूरोंके हाथमें जब उस साम्राज्यकी बागडोर आई, उन्होंने सब अधीन जातियोंको स्वतन्त्र कर दिया। क्यों ? क्योंकि वे अनुभव करते थे कि साम्राज्यसे जो कुछ फायदा होता था, वह थोड़ेसे पूँजीपतियोंको। वे अल्पसंख्यक पूँजीपति अपने स्वार्थोंकी पूर्तिके लिए रूसी मज़दूरोंको दूसरी जातियोंके साथ लड़वाते थे। रूसके साधारण मज़दूरोंको दूसरी जातियोंको अधीन करने या रखनेसे कुछ भी लाभ न था। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद साथ-साथ चलते हैं, किसी भी देशके साम्राज्यका लाभ उस देशके पूँजीपति ही उठाते हैं।

लेकिन हमारे साम्यवादी भाइयोंकी यह स्थापना सोलह आने सही नहीं है, और खासकर इंग्लैण्डपर नहीं घटती। रूस और ब्रिटेनमें ज़मीन-आसमानका फरक है। रूसका शासन एकदम निरंकुश था, ब्रिटेनमें मज़दूरोंका राज तक हो सकता है।

अठारहवीं सदीके उत्तरार्द्धमें भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी

नींव पड़ी, और तभीसे बंगालकी लूट पहले-पहल विलायत पहुँचने लगी। उसी ज़मानेमें यूरोपमें स्टीम-इंजिन वगैरहकी ईजादें हुईं, जिनके कारण व्यावसायिक क्रान्ति (Industrial revolution) हुई। सच बात तो यह है कि उन ईजादोंके बावजूद भी लंकाशायर और मैन्चेस्टरके कारखानोंकी जड़ें न जमतीं, यदि बंगालकी लूटसे इंग्लैण्डमें नई पूँजी न पहुँच रही होती। और उन कारखानोंके बननेसे पहले-पहल इंग्लैण्डके पुराने कारीगरोंमें बेकारी पैदा हुई। इस प्रकार यह सही है कि शुरू-शुरूमें बंगालकी लूटसे जहाँ ब्रिटिश पूँजी-पतियोंको फ़ायदा हुआ, वहाँ ब्रिटिश मज़दूरोंकी बरबादी हुई।

लेकिन यह हालत बहुत थोड़े अरसे तक रही। भारतवर्षके अंग्रेज़ोंके गुलाम होनेके कारण यहांके बाज़ारपर भी उन्होंने शीघ्र काबू कर लिया। जब यहाँ भी उनका माल खपने लगा, तब उनकी उपज इंग्लैण्डकी अपनी ज़रूरतोंसे कई गुना बढ़ गई। इस बढ़ी हुई माँगको पूरा करनेके लिए सब बेकार कारीगर काममें लग गये और पहलेसे ज्यादा पैसा पाने लगे। हिन्दुस्तानमें जो गोरी फ़ौज रहती है उसमें भी तो इंग्लैण्डके किसान-मज़दूर श्रेणीके ही लोग होते हैं। सन् १८५७ के गदरके बादसे उनकी तादाद बढ़ा दी गई थी, क्योंकि ब्रिटिश सेनापति या पूँजीपति हिन्दुस्तानी सैनिक या मज़दूरपर उतना विश्वास नहीं कर सकता। इस समय भारतवर्षमें एक लाखके करीब गोरी फौज रहती है। बूढ़े होनेपर अपने देश लौट जानेपर भी उन्हें हिन्दुस्तानसे पेन्शन मिलती है। इस प्रकार भारतवर्षके फौजी महकमेंसे फायदा उठानेवाले ब्रिटिश मज़दूरोंकी तादाद भी कई लाख है।

ब्रिटिश मज़दूरोंको इस प्रकार भारतवर्षके लहूकी चाट लग चुकी है। ब्रिटिश पूँजीपति साम्राज्यके नफ़े में से काफ़ी हिस्सा उन्हें दे रहे हैं, ज़रूरत होनेपर और भी वे देंगे—आज तो अपने देशका शासन और उस शासनके साथ पूँजीपर टैक्स लगानेका अधिकार भी उन्होंने अपने मज़दूरोंको दे रखा है। ब्रिटिश पूँजीपति इतने मूर्ख नहीं हैं कि साम्राज्यके मुनाफेका कुछ हिस्सा अपने मज़दूरोंको न देकर, उन्हें बिगाड़कर साम्राज्यसे हाथ धो बैठें।

सच पूछिये तो आज भारतवर्ष हाथसे निकल जानेसे पहले सीधा नुकसान ब्रिटिश मज़दूरोंको ही होगा—पहले वही लोग बेकार होंगे। ब्रिटिश पूँजीपति तो अपनी पूँजी लाकर स्वाधीन भारतवर्षमें भी लगा सकते हैं। वहांके मज़दूर ही हमारी स्वतन्त्रताके अधिक विरोधी होंगे। अमेरिका और कनाडामें आज अगर हिन्दुस्तानियोंका जाना बन्द हुआ है, तो वहांके मज़दूरोंके ही कारण। हमारे सिक्ख भाई वहाँ मेहनत-मज़दूरी करके पैसा बनाते थे। वहांके पूँजीपति उन्हें पसन्द करते थे, क्योंकि वे अमेरिकन मज़दूरोंसे कम मज़दूरी लेते थे, लेकिन वहांके मजदूर उनके जानी दुश्मन हो गये और उन्हींने उन्हें निकलवाया।

इसलिए हमारे साम्यवादी भाईकी यह पुकार कि 'दुनियाके मज़दूरो, एक हो जाओ!' ब्रिटेनमें बहरे कानोंमें पड़ेगी। ब्रिटिश मज़दूरके स्वार्थ कभी हमारे साथ मिल नहीं सकते। दो-चार-दस आदमी ऊँचे सिद्धान्तोंके नामपर भले ही एक 'इन्डिपेन्डेन्ट लेबर-पार्टी' बना लें, पर साधारण जनसमुदाय सिद्धान्तोंको नहीं देखता, स्वार्थोंको देखता है। वह कभी 'इंडिपेन्डेन्ट लेबर-पार्टी'का अनुसरण न करेगा।

तीसरे प्रश्नपर अब बहुत कहनेकी ज़रूरत नहीं रहती। यह ठीक है कि हमारी पराधीनताका सबसे बुरा परिणाम हमारी ग़रीबी और हमारा भूखों मरना है, लेकिन ग़रीबी ही एकमात्र कष्ट नहीं है, जो हमें गुलामीसे मिल रहा है। हमारा समूचा व्यक्तित्व ही कुचला जा रहा है। भारतवर्षकी अपनी भाषा है, अपना साहित्य है, अपनी संस्कृति है, अपनी विचारसरणि है। अपना राज्य न होनेसे यह सब कुछ नष्ट हो रहा है, कुम्हलाया पड़ा है और पनपने नहीं पाता। आज अगर विदेशी राज्यमें, दूधकी धारें भी बह रही होतीं, और दूसरी तरफ़ हम अगर अपना सर्वस्व हारकर भी अपनी स्वतन्त्रताको पा सकें, तो इन वस्तुओंकी खातिर और अपने मान-गौरवकी खातिर विदेशी राजसे स्वतन्त्रता अच्छी।

आप शायद हँसेंगे कि पहले रोटी है, तब ये सब बातें हैं। रोटीके सवालको लेकर जब दुनिया-भरके ग़रीबोंको एक हो जाना है, तब इन राष्ट्रोंके झगड़ोंकी गुंजाइश नहीं रहती। बेशक, आपकी पुकार है—दुनिया-भरके मज़दूर एक हो जाओ! लेकिन वे दुनिया-भरके मज़दूर एक होकर दुनिया-भरकी किस एक (International) भाषामें काम करेंगे? अंग्रेज़ीमें? लेकिन अंग्रेज़ी अगर आज दुनिया भरकी भाषा है, तो ब्रिटिश साम्राज्यके बूतेपर, मज़दूरोंकी एकताके बूतेपर नहीं। जब एक बड़े देशके लोगोंकी भाषा कुचली जा रही है, तब उसका अर्थ यह है कि उस जातिके—उसके सब मज़दूर बच्चोंके उन्नतिके अवसर छीने जा रहे हैं। अपनी दिमाग़ी शक्तिके इस प्रकार कुचले जानेके खिलाफ़ उस जातिका विद्रोह करना अत्यन्त उचित और स्वाभाविक है। भाषाकी बात हमने केवल नमूनेके तौरपर ली है। राष्ट्रीय विद्रोहके लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रताकी लड़ाईको जारी रखनेके लिए इस प्रकार भूखके सिवा और भी बहुतसी प्रेरक शक्तियां हैं।

आज मध्य-एशियामें दुनिया-भरके राष्ट्रोंको एक करनेवाले रूसी बोल्शेविक लैटिन लिपिको फैला रहे हैं। क्यों? क्या इसलिए कि वह अन्तर्राष्ट्रीय—दुनिया-भरकी—लिपि है? लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय वह किस अधिकारसे बनी? लिपिके गुणोंसे नागरी उससे अच्छी है। फिर यदि आज लैटिन केवल इसलिए दुनिया-भरकी लिपि बन रही है, क्योंकि आज यूरोपियन राष्ट्रोंकी दुनियापर प्रभुता है, तब क्या नागरीके देशवालोंके दिलमें यह उमंग न उठे कि काश! हमारा राष्ट्र भी आज शक्तिशाली होता?

राष्ट्रीय स्वतंत्रताकी लड़ाईकी प्रेरक और उत्तेजक शक्तियाँ अभी बुझा-कारतूस नहीं बन चुकीं। वे अभी ठंडी न होंगी। और उनमें कुछ भी अनौचित्य नहीं है, वे बिलकुल सही रास्तेपर जा रही हैं।

हमारे देशकी राष्ट्रीयता और साम्यवादका रास्ता अनेक अंशोंमें साथ-साथ चलता है। जिन अंशोंमें दोनोंमें भेद दीखता है, उनमें राष्ट्रवादीका रास्ता ठीक है। भारतवर्षकी उपस्थित अवस्थाओंमें उन अंशोंमें साम्यवादको भी अपना रास्ता बदलना ही चाहिए। हमारे साम्यवादी भाई यदि खाली परिभाषाओं और शब्दोंपर ज़ोर देनेके बजाय देशकी स्थितिको ठीक समझनेका और उस स्थितिपर साम्यवादके सिद्धान्तोंको घटानेका कष्ट स्वीकार करें, तो वे देखेंगे कि उसके लिए ठीक मार्ग—साम्यवादके सच्चे आदर्शको पानेका उपाय—राष्ट्रवादीके संग-संग चलना ही है।

मेरी जीवन-कथाके कुछ पृष्ठ

आर्यसमाजके कतिपय प्रभावशाली नेता

[लेखक :—आचार्य श्री रामदेवजी]

शहीद लेखराम

सन् १८९४में मुझे मिडिलकी परीक्षा देनी थी। आर्यसमाजमें उस समय तक दो दल मांस-पार्टी और घास-पार्टीके बन चुके थे। मैं भी इसी वर्ष मांस-पार्टीका एक उत्साही सदस्य बन गया। दो-तीन वर्षों तक इसी दलमें रहा। मांस-पार्टीमें शामिल भी मैं एक अजीब बातपर हुआ। पहले मैं मांस-भक्षणके विरोधमें था। अपने इसी मन्तव्यको लेकर मैं लाला हंसराजजीके बड़े भाई लाला मुल्कराजजीसे भिड़ पड़ा। वे आयुमें मुझसे बहुत बड़े थे। मांस भक्षणके वे सबसे बड़े प्रचारक समझे जाते थे। नवयुवकोंमें अहं-भाव स्वभावसे बहुत होता है, खासकर मुझमें तो इसकी मात्रा बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। बालक होते हुए भी

मैंने यह शपथ कर ली कि यदि मैं लाला मुल्कराजजीसे विवादमें हार गया, तो मांस खाना शुरू कर दूँगा। बहस हुई, और मैं सचमुच हार गया। मैं अपने वचनपर पक्का रहा। लाला साहबने उसी समय बाजारसे मांस मंगवाया, और मैंने उसे खाया, परन्तु अपने पुराने संस्कारोंके कारण दो-तीन बारसे अधिक मांस न खा सका, यद्यपि मांस-पार्टीका तरफदार मैं दो-तीन वर्षों तक रहा। मैं उन दिनों नौमुस्लिमकी तरह जोशीला था। महात्मा-पार्टीके बच्छोवाले समाजमें जाना मैं गुनाह समझता था, मगर फिर भी मुझे वहाँ हर सप्ताह जाना होता था। मांस-पार्टीके नेता लाला हंसराजजीने मेरे ज़िम्मे यह ड्यूटी लगा दी थी कि मैं उस समाजके साप्ताहिक अधिवेशनमें सम्मिलित होनेवाले सदस्यों और दर्शकोंकी गिनती करके उन्हें बतलाया करूँ।

उन्हीं दिनों बच्छोवाले समाजके एक साप्ताहिक अधिवेशनमें मैंने देखा कि एक हट्टा-कट्टा रौबदार पंजाबी जवान व्याख्यान देनेके लिए समाजकी वेदीपर आया। वह लुधियानाके कपड़ेका बन्द गलेवाला कोट पहने था, परन्तु कोटके ऊपरवाले बटन खुले हुए थे। सिरपर पगड़ी थी। उसका शमला बहुत लम्बा था। देखनेमें वह व्यक्ति एक पहलवान प्रतीत होता था। वेदीपर आते ही उसने व्याख्यान शुरू कर दिया। वह बड़ी ऊँची आवाज़में और जल्दी-जल्दी बोलता था। अपने पास बैठे हुए एक महाशयसे मैंने पूछा—"यह कौन है?" उसने आश्चर्यसे उत्तर दिया—"तुम्हें यह भी नहीं मालूम! यह आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान प्रचारक पण्डित लेखरामजी हैं।" मैं व्याख्यान सुनने लगा। सुनने क्या लगा, व्याख्यानने स्वयं मुझे अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया। पण्डितजी एक घंटे तक बोले। उनका भाषण सचमुच ज्ञानका भण्डार था। अपने व्याख्यानमें उन्होंने इतने अधिक वेद-मन्त्रों, फार्सी-अरबीके वाक्यों तथा यूरोपियन विद्वानोंके प्रमाण और उद्धरण दिये कि मैं आश्चर्य-चकित रह गया। मेरे दिलमें आया, यदि व्याख्याता बनना हो, तो इसे आदर्श बनाना चाहिए। मैंने सचमुच उन्हें अपना आदर्श बनाया। उस दिनके बादसे मैं जो कुछ पढ़ता, उसे दर्ज करनेकी कोशिश करता। पुस्तकोंपर निशान लगानेकी आदत भी मैंने उसी दिनसे डाली। दस-बारह वर्षोंके बाद पढ़े हुए उद्धरणोंको मैं अपने रजिस्टरमें लिखने लगा। आज मेरे पास इस तरहके रजिस्टर बहुत अधिक संख्यामें हैं, और मैं उन्हें अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझता हूँ। पण्डितजीका व्याख्यान सुनकर मुझपर यह प्रभाव पड़ा था कि वे संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी और अरबीके प्रकाण्ड विद्वान हैं, परन्तु पीछेसे यह जानकर मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही कि वे संस्कृत बहुत थोड़ी जानते हैं और अंग्रेज़ी तो बिलकुल ही नहीं जानते! हाँ, अरबी और फारसीके अभिज्ञ वे अवश्य थे।

मैं चकित था कि एक भाषाका बिलकुल ज्ञान न होते हुए भी ये उसके इतने अधिक प्रमाण वे किस तरह सुनाते हैं। मज़ा तो यह है कि उन प्रमाणोंमें एक भी अशुद्ध नहीं होता। यह रहस्य भी एक दिन खुल गया। एक दिन मैं रविवारके अतिरिक्त किसी और दिन बच्छोवाले आर्यसमाजके मन्दिरमें गया। वहाँ एक टोली जमा थी। कौतूहलवश मैं भी उसीमें शामिल हो गया। वहाँ देखा कि पण्डित लेखरामजी दो ग्रेजुएटोंको घेरकर बैठे हैं। एक ग्रेजुएटको वे बड़ी ज़ोरसे डाँट बता रहे थे, "बी० ए० पास करके भी तुमने अंग्रेज़ी नहीं सीखी! मैक्समूलरके एक उद्धरणका तुमने अशुद्ध अनुवाद किया है।" वह ग्रेजुएट बिलकुल सटपटाया हुआ था, तथापि उसे मालूम था कि पण्डितजी अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं जानते। साहस करके उसने कहा—"यह आपको कैसे मालूम?" पण्डितजीने दूसरे ग्रेजुएटसे कहा—"बताओ भाई, इसने क्या ग़लती की है।" दोनों नये-नये ग्रेजुएट एक-दूसरेसे पिल पड़े। थोड़ी देरके मुबाहिसेके बाद, पहले ग्रेजुएटने स्वीकार किया कि उसका अनुवाद अशुद्ध था। पीछेसे मुझे मालूम हुआ कि पण्डितजी सदैव ऐसा ही करते हैं। संस्कृतके उद्धरणोंके लिए संस्कृतज्ञोंको और अंग्रेज़ीके उद्धरणोंके लिए अंग्रेज़ीदाँ लोगोंको एक दूसरेसे भिड़ाकर वे

इन दोनों भाषाओंके प्रमाण जमा करते हैं। मुझपर पण्डितजीके इस सत्य-प्रेम और स्वपक्ष-पुष्टिकी निष्ठाने बहुत गहरा प्रभाव डाला। मैंने सोचा, जो व्यक्ति एक भाषा बिलकुल न जानते हुए भी इतने अध्यवसायसे उसके प्रमाण जमा कर सकता है, उसके मार्गमें कोई कठिनाई अंकुरित नहीं हो सकती।

(२)

पं० लेखरामजी जहाँ एक ओर असाधारण विद्वान् थे, वहाँ दूसरी ओर वे एक वीर शहीदकी भाँति निर्भीक और साहसी भी थे। मेरे एक मित्र ब्राह्म समाजके नेताने उनका नाम 'आर्यसमाजका अली' रखा था।

अपने विवाहके बाद एक दिन मैं लाला मुंशीरामजीके निवास-स्थानपर बैठा था। उन दिनों वे लालाजी कहलाते थे। उसी समय पं० लेखरामजी उनसे मिलनेके लिए उनके मकानपर आये। लाला मुंशीरामजी उन दिनों आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाबके प्रधान थे और पं० लेखरामजी सभाके एक वैतनिक उपदेशक। आज आर्यसमाजके अनेक अधिकारी आर्यसमाजके वास्तविक आजन्म सेवकोंको, जो असलमें आर्यसमाजके प्राण हैं, केवल इसलिए सभाका वेतनभोगी सेवक समझते हैं, क्योंकि अपना सम्पूर्ण समय आर्यसमाजकी सेवामें व्यय कर देनेके कारण उनके लिए सभासे आजीविका-मात्र वृत्ति लेना आवश्यक होता है; परन्तु उन दिनों यह बात न थी। प्रतिनिधि-सभा तब उपदेशकोंका मान करना जानती थी। यहाँ तक कि सभाके अधिकारी प्रभावशाली प्रचारकोंसे चुपचाप डाँट खानेमें भी अपनी मानहानि नहीं समझते थे। जब पं० लेखरामजी मकानपर आये, तब प्रधानजी उठे और पण्डितजीके बैठ जानेके बाद ही बैठे। नमस्कार आदिके बाद प्रधानजीने कहा—"सभाके कार्यालयसे सूचना दी गई थी कि इस सप्ताह आप ······नगरमें प्रचारके लिए जावेंगे, परन्तु अब आपका प्रोग्राम बदल दिया है। आप अब······आइयेगा।"

पण्डितजीने पूछा—"यह किस लिए?"

प्रधानजीने उत्तर दिया—"मुझे विश्वस्त सूत्रसे विदित हुआ है कि······के मुसलमान आपके प्राण लेनेका कुचक्र रच रहे हैं। यदि आपको अपने जीवनकी चिन्ता नहीं, तो मुझे तो उसकी परवाह करनी ही चाहिए न!"

न मालूम क्यों, पण्डितजीको क्रोध आ गया। वे असाधारण जोशमें आकर बोले—'लालाजी! आप जैसे डरपोक यदि संस्थामें बहुत अधिक बढ़ गये, तो आर्यसमाजका बेड़ा अवश्य डूब जायगा। मैं मरनेसे नहीं डरता। अब तो मैं अवश्य ही वहीं जाऊँगा।"

प्रधानजी तब भी मुस्करा रहे थे। इस बार उन्होंने नियन्त्रणसे काम लेना चाहा। उन्होंने कहा—"मैं सभाके प्रधानकी हैसियतसे आपका······जाना आवश्यक समझता हूँ, इसलिए मैंने आपका प्रोग्राम बदल दिया है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि अब आप बताये हुए प्रोग्रामका ही अनुसरण करें।"

अबकी बार पण्डितजीने ज़रा नम्र आवाज़में ज़वाब दिया, परन्तु उनकी जिद उसी तरह क़ायम थी। उन्होंने कहा—"मुझे मालूम है कि आपको मुझसे मोह है, उस मोहमें कायरतापूर्ण वकालत मिलाकर आप मुझे······न जानेके लिए बाधित करना चाहते हैं, परन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दोंमें कह देता हूँ कि अब तो ज़रूर वहीं जाऊँगा। यदि आप वहाँ मुझे सभाकी तरफ़से नहीं भेजेंगे, तो मैं अवैतनिक अवकाश लेकर अपने किरायेसे वहाँ जाऊँगा।"

मुझे स्मरण है, उन दिनों पंडितजी सभासे केवल ५०) मासिक वेतन पाते थे। प्रधानजी भला उनकी इस निर्भीक घोषणाका क्या जवाब देते? उन्होंने केवल इतना ही कहा—"आप जहाँ चाहें जा सकते हैं, अब मैं आपको किसी बातके लिए बाधित नहीं करूँगा। सचमुच हमारी सभाका यह सौभाग्य है कि आप जैसे वीर पुरुषकी सेवा उसे प्राप्त है।"

(३)

एक दिन लाहोरकी सनातनधर्म-सभामें किसी सनातनी पण्डितका व्याख्यान था। मैं भी वह व्याख्यान सुनने

गया था। वह व्याख्यान मैंने बड़े ध्यानसे सुना था, उसका सार मुझे याद हो गया।

भाषण सुननेके बाद घरकी तरफ लौटते हुए राहमें अचानक पंडित लेखरामजीसे मुलाकात हो गई। वे मेरा नाम जानते थे। उन्होंने मुझसे पूछा—"कहाँसे आ रहे हो?" मैंने कहा सनातनधर्म-सभाके भवनसे। उन्होंने पूछा—"वहाँ क्या करने गये थे?" मैंने उत्तर दिया—"व्याख्यान सुनने।" पंडितजीने पूछा—"व्याख्यानमें क्या-क्या बातें सुनीं?" मैंने उस भाषणका सारांश पंडितजीको सुना दिया। पंडितजीने मेरी पीठपर हाथ रखकर मुझे शाबासी दी और कहा—"शाबास, प्रत्येक चीज़को इसी तरह ध्यानसे सुना करो। मैंने पूछा—"क्या इस व्याख्यानकी बातें ठीक हैं?" पंडितजीने एकदम उत्तर नहीं दिया, और कहा—"मेरे यहाँ आना, मैं तुम्हें इन सभी बातोंका विस्तृत उत्तर दूँगा।" पंडित लेखरामजी सचमुच अपने विश्वासोंके इतने ही पक्के थे। उन्हें कभी यह आशंका तक न होती थी कि मेरे विचारोंमें कोई अशुद्धि या भ्रांति भी हो सकती है। अपने विपक्षियोंकी बातें तो वे बड़ी सभ्यता और शान्तिसे सुनते थे, परन्तु उनके दिलमें यही होता था कि यह व्यक्ति गुमराह और अशुद्ध विचारोंका है।

डाक्टर चिरंजीव भरद्वाज

सन् १९१८में लाहोरमें 'सिरमुन्नी' समाजके नामसे एक नया आर्यसमाज खुलनेकी मज़ेदार चर्चा पढ़े-लिखे लोगोंमें ज़ोरोंपर थी। लोगोंमें मशहूर था कि बच्छोवाली समाज (महात्मा-पार्टीकी समाज) के बहुतसे नौजवान सदस्य इस सिरमुन्नी समाजकी ओर खिंचे चले जा रहे हैं। ठीक संख्या पता लगानेपर मालूम हुआ कि ९ जवान इस समाजके मेम्बर बन चुके हैं। मैं भी जवान था और अभी ताज़ा-ताज़ा ही कालेज-दलसे महात्मा-दलमें सम्मिलित हुआ था। अपने एक मित्रसे मैंने पूछा कि भाई, यह सिरमुन्नी समाज किस चीज़का नाम है? मेरे मित्र किसी चीज़का वर्णन करनेमें सिद्धहस्त थे। उन्होंने कहा—"डाक्टर भारद्वाज नामके एक उत्साही नौजवान हैं। अपनी अध्यक्षतामें बहुतसे अन्य नवयुवकोंको साथ लेकर उन्होंने इस नई संस्थाकी स्थापना की है। इस संस्थाका वास्तविक नाम सिरमुन्नी समाज नहीं, आर्यधर्म-सभा है। इस सभाका उद्देश्य आर्यसमाजियोंमें ऋषि दयानन्दके व्यावहारिक जीवन-सम्बन्धी सिद्धान्तोंको असली तौरसे शुरू करना है। आजकल तो अधिकांश आर्यसमाजी सिर्फ़ कहने भरको ही आर्य हैं, समाजके प्रधान तक बन जाते हैं और श्राद्धके दिन ब्राह्मणोंको भोजन भी अवश्य कराते हैं। माघीके दिन चावलका संकल्प किसी ब्राह्मणके नामपर न सही, अनाथालयके नामपर ही सही, किया जाता है। किसीने कड़ा केश आदि धारण कर रखे हैं, तो कोई सन्ध्या भी कर लेता है और साथ ही जपजीका पाठ भी। समाज भी होता है और गुरुद्वारा भी। लोगोंको यही भय होता है कि न-जाने मरनेके बाद कौनसी बात सच निकले। सन्ध्याके साथ विष्णु-सहस्रनामका भी पाठ कर लेनेमें हर्ज ही क्या है? यही न कि थोड़ा समय अधिक लग जायगा, परलोकके लिए इतना ही सही। भारद्वाज बड़े उत्साही हैं। उन्हें यह बरदाश्त नहीं, इसी कारण उन्होंने यह सभा खोली है। इस सभाका उद्देश्य है परदा, जन्म-मूलक जात-पाँत और परम्परागत रूढ़ियोंको तोड़ना। सभाका सदस्य बननेके लिए व्यक्तिको एक बार सिरके बालोंका मुण्डन करना होता है। इसी कारण लोगोंने इस सभाका नाम 'सिरमुन्नी समाज' रख छोड़ा है।"

इस वर्णनसे मैं इस सभाकी ओर आकृष्ट हुआ। अपने उत्साहके कारण इस सभाने लाहोरमें एक विचित्र सनसनी पैदा कर दी। शुरू-शुरूमें जब किसी नये सदस्यका प्रवेश-संस्कार किया जाता था, तब लोग बड़ी संख्यामें कौतूहलवश उसे देखने जाते थे। लाला हंसराजजी तथा पं० आर्यमुनिजी इन दर्शकोंमें थे। डाक्टर साहबने स्वयं अपने घरसे बिलकुल परदा हटा दिया था। इस बातसे लोगोंमें असन्तोष भी था। भारद्वाजकी तारीफ़ करनेवाले लोग भी थे। कहा जाता था कि भारद्वाजजीको महात्मा-दलसे बड़ी आशा थी, परन्तु

पं० लेखरामजीकी अमर शहादतके परिणाम-स्वरूप जब थोड़ी देरके लिए दोनों पार्टियाँ मिल गईं, तब वे अपने सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें समाजकी ओरसे निराश हो गये, और उन्होंने यह आर्यधर्म-सभा क़ायम की। मेरे दिलमें इस सभाके सदस्योंसे मिलने और परिचय बढ़ानेकी इच्छा उत्पन्न हुई। दिल्लीके डाक्टर सुखदेवजी मेरे मित्र थे। वे भी इस सभाके सदस्य थे। उन्हींके द्वारा मुझे सभाके अन्य सदस्योंसे परिचय प्राप्त करनेका अवसर मिला। वे लोग थे—डा० चिरंजीव भारद्वाज, जो इस सभाके संस्थापक और प्राण थे; डा० लब्भूराम, जो पीछेसे स्थिररूपसे विलायत चले गये; पं० चरणदास, जिनका अब देहान्त हो गया है; पं० लक्षवीर सिंह, जिनका एक ही फेफड़ा काम करता था। फिर भी शास्त्रार्थ करनेको सदा तैयार रहते थे। इनके बारेमें मशहूर था कि ये क़ुरानशरीफ़को सदा अपनी काँखमें रखते हैं। डा० धर्मवीर, जो बरसों तक विलायत रहकर अब लाहोरमें प्रेक्टिस कर रहे हैं। इन सब शक्तिशाली और दृढ़-निश्चयी नवयुवकोंसे परिचय प्राप्त करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। खासकर डा० भारद्वाजके व्यक्तित्वने तो मुझे बहुत प्रभावित किया। अपने अनुयायियोंपर उनका प्रभाव एक गौरवकी वस्तु थी। दृढ़-निश्चय, आत्म-विश्वास, निर्भयता, अपने सिद्धान्तोंका ज्ञान और युक्तिकी प्रौढ़ता—ये सब बातें थीं, जिनसे वह अपने नवयुवकोंके नेतृत्वको अधिकार-पूर्वक क़ायम रख सकते थे। यद्यपि बहुतसे लोग मुझे तब तक कालेज-पार्टीका भेदिया ही समझते थे, फिर भी भारद्वाज और डा० धर्मवीरने बहुत शीघ्र मुझे अन्तरंगतासे अपना लिया।

(२)

मेडिकल कालेजकी अन्तिम परीक्षामें डा० भारद्वाज फेल हो गये थे, परन्तु उन्होंने भारतमें बैठे-बैठे ही एम० डी०का खिताब मँगवा लिया। इसके बाद वे बड़ोदा चले गये, और मेरी-उनकी मुलाकातें बंद हो गईं। बहुत दिनों बाद लाहोर ही में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगली देवी तथा उनकी बहन कुमारी केसरी देवीसे मेरा परिचय हुआ। डाक्टर साहब हिप्नोटिज़्म भी जानते थे। केसरी उचित माध्यम थी। उसीपर वे अपने परीक्षण किया करते थे। जिस दिन मैं डा० साहबके यहाँ पहुँचा, उनके पास लाहोर ही के एक महाशय भी आये हुए थे। आज हिप्नोटिज़्मका तमाशा देखिये। मैंने इससे पूर्व केवल एक बार ही इस विद्याका चमत्कार देखा था, अस्तु डाक्टर साहबने केसरीपर प्रभाव किया, और मेरे साथ जो दूसरे महाशय बैठे थे, उनकी तरफ़ देखकर कहा—"इन महाशयके घर जाओ और वहाँके समाचार लाओ।"

हम लोग केसरीकी तरफ़ बड़े कौतुहलसे देख रहे थे। वह थोड़ी देर तो चुप रही। इसके बाद उसने कहा—"इनके घरमें सिर्फ़ एक कमरा है, उसके सामने बरामदा है, दालान बहुत तंग है। इस दालानमें एक युवती और बुढ़िया बैठी है। ये दोनों परस्पर गाली-गलौज कर रही हैं।"

वे महाशय चौंककर खड़े हो गये। उन्होंने कहा—"ओहो, मेरी मा और मेरी स्त्री लड़ रही होंगी।" यह कहकर वे घर चले गये। केसरीकी बात सचमुच सही थी। डाक्टर साहब हिप्नोटिज़्मसे चिकित्सा भी किया करते थे।

अमेरिकाकी मुफ़्तमें प्राप्त की हुई एम० डी० उपाधिको अपने नामके साथ लगाते हुए डाक्टर साहबको लज्जा प्रतीत होती थी। डा० धर्मवीर भी मेडिकल कालेजकी परीक्षामें फेल हो गये थे और उन्होंने अमेरिका ही से एम० डी० मँगवा ली थी। अतः दोनों मित्र अपनेको लज्जित अनुभव करते थे। एक दिन जालंधरमें मुझे पत्र मिला कि दोनों मित्र चिकित्साकी उच्च-शिक्षा प्राप्त करनेके लिये विलायत चले गये हैं।

(३)

महात्मा मुंशीरामजीकी कन्या अमृतकलाका विवाह जन्म-मूलक जात-पाँत तोड़कर डा० सुखदेवजीसे हुआ। देवी अमृतकलासे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसे मैं अपनी छोटी बहन समझा करता था। महात्माजी तो मेरे धर्म-पिता थे ही, अतः सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया था।

डा० सुखदेवजी भी मेरे पुराने मित्र थे, और वह विवाह करानेमें भी मेरा बड़ा हाथ था, अतः इस नवीन परिवारसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक ही था।

डा० सुखदेवजीकी लड़कीका नामकरण-संस्कार था। मुझे तो उसमें आना ही था। डाक्टर साहबने डा० भारद्वाजकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगली देवीको भी निमंत्रित किया। वह आईं। संस्कारमें वह और हम मिले। निश्चित रूपसे हम दोनोंकी बातचीतका एक ही विषय हो सकता था। चिरंजीव भारद्वाज मेरे घनिष्ठ मित्र थे और वे तो उनका उत्तम भाग ही थीं। फिर किसी और बातकी चर्चाका अवसर ही कहाँ हो सकता था। भाग्यसे ये भी दोनों ही बोलनेवाले। हम दोनों उनकी प्रशंसा करने लगे। खूब देर तक यह प्रकरण चला। विदा होते समय देवी सुमंगलीने कहा—"पत्र लिखते रहा कीजिए।" उस समयसे पूर्व मेरा किसी महिलासे पत्र-व्यवहार न था। इसी झेंपके कारण मैंने कहा—"पत्र-व्यवहारका प्रारम्भ आप ही की ओरसे होना चाहिए।"

इसके तीसरे दिन ही उनकी चिट्ठी मेरे पास आई, और उसी दिन मैंने उसका जवाब दे दिया। फिर तो यह पत्र-व्यवहारका सिलसिला जारी ही रहा। कई मास बाद सुमंगली देवीजीका मुझे एक पत्र मिला। उसमें बहुत संक्षेपमें लिखा था कि 'एकदम लुधियाना चले आइये।' मैं बड़ी चिन्तामें पड़ा। इसका क्या जवाब दूँ। भारद्वाजजी विलायत हैं। इस देशका वायुमण्डल इस सम्बन्धमें बहुत ही सन्देहपूर्ण और विषाक्त है। यहाँ तो लोग वैसे ही लांछन लगानेसे बाज़ नहीं आते, फिर एक देवीके घर आने-जानेका मतलब तो लोग सीधा सबूत समझेंगे। यह प्राचीन भारत तो है नहीं कि द्रौपदी अपनेको कृष्णका मित्र कह सके, या कौशल्या अपनेको जनककी सखी उद्घोषित कर सके। दूसरी तरफ़ सुमंगली देवी मेरे मित्रकी पत्नी ही नहीं, मेरी बहन थी, अतः इसे मैं अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था कि बुलाने आनेपर उसकी सहायता करूँ। इस कारण मैं कुछ किं-कर्तव्य-विमूढ़-सा बन गया। बहुत देर तक यह निर्धारित ही न कर सका कि इस अवस्थामें मुझे क्या करना चाहिए। अन्तमें मैंने सोचा, मेरा धर्म मुझे आज्ञा देता है कि इस अवस्थामें मैं वहाँ अवश्य जाऊँ। मुझे खयाल आया, क्या हिन्दुओंकी धर्म-बहनें नहीं होतीं? कौन पतितसे पतित हिन्दू भी मित्रकी पत्नीकी सहायता करना पाप समझेगा। बस, मुझमें साहसकी भावना जाग्रत हो गई। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं कायर नहीं बनूँगा। लोकाचारकी उपेक्षा करके मैं अपना कर्तव्य पालन करूँगा।

दूसरे दिन मैं लुधियाना जा पहुँचा। वहाँ एक और कठोर परीक्षा मेरी प्रतीक्षामें थी! बहन सुमंगलीने मुझसे कहा—"अपनी अन्तरात्माकी आवाज़ तथा अपने पतिदेवकी इच्छा-पूर्ण अनुमतिसे मैं यहाँके बहुतसे सामाजिक कार्योंमें हिस्सा लेती हूँ। यहाँकी कन्या-पाठशालामें मैं पढ़ाती हूँ, स्त्री-समाजमें मैं भाषण देती हूँ। मेरे पति विलायतसे प्रायः अपने सभी पत्रोंमें उपदेश दिया करते हैं—'मेरे उद्देश्योंको कभी न भूलना, स्त्रियोंसे परदेकी बुराईको दूर करना और उन्हें वैदिक सिद्धान्तोंका सन्देश सुनाते रहना। प्रिये, मेरी आत्माको तुमसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।' परन्तु दूसरी तरफ़ मेरे पिता मेरी इन कृतियोंमें अपना अपमान समझते हैं। वे कहते हैं कि सुमंगली मेरी नाक काट रही है। पहले मुझे वे तरह-तरहसे समझाया ही करते थे, परन्तु अब तो उन्होंने मेरे इन कार्योंको जिस किसी तरह बन्द कर देनेका निश्चय ही कर लिया है। वे कहते हैं कि कम-से-कम जब तक मेरे पास हो, तब तक मेरी इच्छाके अनुसार ही चलो। भले घरकी लड़कियाँ घरमें ही रहती हैं, ऐसे काम नहीं करतीं। मुझसे अब ये बातें नहीं सही जातीं। मैं बहुत दुविधामें हूँ, पतिकी बात मानूँ या पिताकी। आप मुझे आदेश दीजिए कि इस अवस्थामें मैं क्या करूँ?"

मैं फिर चिन्तामें पड़ा, देवी सुमंगलीके प्रश्नका क्या उत्तर दूँ। यदि पिताकी बात माननेको कहता हूँ, तो यह अपनी आत्मापर अत्याचार करना है। यदि पतिकी बातपर

वह रहनेकी बात कहता हूँ, तो उसके परिणामोंको भी मुझे ही सहन करना होगा। हे ईश्वर! अपनी बहनको मैं क्या राय दूँ?

अन्तमें मेरी साहसकी स्वाभाविक भावना पुनः विजयी हुई। सुमंगलीको मैंने यही राय दी कि वह अपने पतिकी आज्ञाका ही अनुसरण करे। उसका यह निश्चय जानकर उसके पिताने कहा—"तो फिर अब तुम मेरे यहाँ नहीं रह सकती।" उसके पिताको कभी यह स्वप्नमें भी आशा न थी कि मेरी पुत्री कभी मेरी इतनी बड़ी धमकीका सामना कर सकती है, और फिर कोई अन्य व्यक्ति चाहे, वह सुमंगलीका धर्म-भाई ही क्यों न हो, उसे अपने घर ले जानेका साहस कर सकता है, परन्तु उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब मैंने उनसे कहा—"तो फिर वह अपने भाईके घर चली जायगी।"

यह बात उन दिनोंकी है, जब किसी घरसे परदा हटानेको भी भारी पाप समझा जाता था, और यह बात लोगोंको असम्भव कल्पना प्रतीत होती थी कि कभी परदा भी हट जायगा। बहन सुमंगली तो पहले ही तय्यार थी। अब उसके पिता चकराये। जो बात कभी उनकी कल्पनामें भी न आई थी वह प्रत्यक्ष दिखाई दे गई। वह घबरा गये। उन्होंने झटसे कहा—'सुमंगली मेरे ही पास चाहे जिस तरह रहे।"

अब उसकी बारी थी। उसने मुझे समझा दिया कि पिताजीसे यह कह दो कि यदि कभी मेरी बहनको आप इस तरहसे तंग करेंगे, तो मैं अवश्य ही उसे अपने यहाँ ले जाऊँगा। मैंने यही बात उनसे कह दी, और मैं फिर जालन्धर लौट गया।

इस घटनासे हमारे सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ हो गये। देवी सुमंगलीने यह घटना अपने पतिको भी लिख दी थी। कुछ ही सप्ताहोंके बाद डाक्टर भारद्वाजका एक लम्बा-चौड़ा प्रेम-पत्र मेरे पास आया। इसमें उन्होंने लिखा था—'"पुरानी स्मृतियोंके नामपर मेरी पत्नीकी खोज-खबर लेते रहिये, उसके हृदयमें आपके लिए विशेष अनुभूति है।"

[आगामी अङ्कमें समाप्य।

साहब बहादुर

——:o:——

आँखें ईश्वरीय विभूतिका दिव्य प्रकाश हैं, पर ईश्वर भला करे हम हिन्दुस्तानियोंका कि ईश्वरके इस अनुपम दानकी कभी क़द्र नहीं करते। समझते हैं कि मुफ्तका माल है, जिस तरह चाहे, काममें लाओ। रातको पढ़ो, दिनको पढ़ो, सवेरे पढ़ो, शामको पढ़ो। या तो इनसे इतना काम लो कि बेकार हो जायँ, या इस तरह छोड़ दो कि खुद निकम्मी हो जायँ। दूसरोंको क्या कहूँ, खुद मैंने इनको तबाह कर लिया। जब देखो, पुस्तक हाथमें है, रोशनी है तो कुछ परवा नहीं, अँधेरा है तो कुछ परवा नहीं, किताब है और मैं हूँ। आँखें-आख़िर कहाँ तक काम देतीं। कमज़ोर होनी शुरू हुईं। आँखें फाड़-फाड़कर पढ़ा; आँसू आये, पोंछ लिये; ज़रा धुँधला दिखाई दिया, धो डाला। आख़िर जब सारी तरकीबें ख़तम हो गईं और पुस्तकके अक्षर निगाहके सामनेसे भागने लगे, सामने भुनगे-से उड़ने लगे, उस वक्त ख़याल आया कि आँखें गईं, और गईं नहीं तो कमज़ोर ज़रूर हो गईं। अब इलाजकी सूझी। सबने कहा कि किसी बड़े डाक्टरको दिखाओ। मित्रोंसे परामर्श किया। उन्होंने मदरास जानेकी राय दी। बिस्तर बाँध, सीधा मदरास पहुँचा। आँखोंके रोगियोंका जो अस्पताल है, उसमें जाकर परीक्षा कराई, फ़ीसें भरीं। तीन-चार दिन तक देखनेके बाद डाक्टरोंने कह दिया—"हिन्दुस्तानमें इलाज नहीं हो सकता, जर्मनी जाओ।" वापस आया। फिर मशवरे

हुए, सबने कहा—"मियाँ जाओ, आँखोंसे ज्यादा कहीं रुपया है।" मरता क्या न करता। बैङ्कका हिसाब देखा, टिकटका इन्तज़ाम किया, चलनेकी तैयारी की, यार-दोस्तोंसे रुख़सत होने गया। एक साहबने कहा—"अजी हज़रत! क्यों रुपया बर्बाद करते हो? अगर विलायत जानेका शौक़ है, तो खैर इसी बहानेसे जाओ। हाँ, अगर बाल-बच्चोंके लिए कुछ छोड़ मरना है, तो यहीं इलाज कराओ। विलायत-वालोंमें कौनसा सुरख़ाबका पर लगा है? हम लोग खुद अपने हिन्दुस्तानी भाइयोंको अयोग्य और हेय समझने लगे हैं, वरना जो वह कर सकते हैं, वह हम कर सकते हैं। हाँ, वह गैर समझकर लूटते हैं, हम अपना समझकर हमदर्दी करते हैं। लो, मुझे ही देख लो। मेरी आँखोंमें क्या रहा था। मैं तो न फ्रान्स गया, न जर्मनी, यहीं इलाज किया और अच्छा हो गया। अगर रुपयेसे दुश्मनी नहीं है, तो भाई साहब! बम्बई जाइये। डाक्टर 'डगन' से मिलिये। हाँ, वह जवाब दे दे, तो फिर आपको अख्त्यार है; कुछ बात तो है, जो इंग्लिस्तानके नेत्र-चिकित्सकोंने इनको अपनी कान्फ्रेंसका सभापति बनाया था। हमारा काम समझाना था, समझा दिया। अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने, मानो या न मानो।"—मैंने भी सोचा कि हाँ, बेचारा सच तो कहता है, लाओ डाक्टर 'डगन' को भी देख लें कि कितने पानीमें हैं। घर आया, सवेरे ही बिस्तर बाँध रेलपर सवार हो गया। मैं बेचारा हिन्दुस्तानी आदमी, सामान भी कुछ वाजबी-ही-वाजबी साथ था। सामानके साथ पानदान और लोटा साफ़ ज़ाहिर करता था कि अव्वल नम्बरका प्राचीनताका पुजारी है। अंग्रेज़ी जानता हूँ, अंग्रेज़ोंके साथ मुद्दतों रहा हूँ। अंग्रेज़ी कपड़े भी पहनता था, मगर वह ज़माना गया। अब तो कुछ अपने ही मुल्कके लिबासमें आराम आता है। सेकेन्ड क्लासमें बैठ, टोपी उतारी, शेरवानी उतारी, जूता उतारा, जुराबें उतारीं, बिछौना बिछाया, पानदान खोलकर पान खाया, बिछौनेपर लेट, तकैनी (छोटा तकिया) घुटनोंमें दबा, आरामसे खोट मारी।

इन दिनों सम्पादकोंके तक़ाज़ेने नाकमें दम कर रखा था, मगर कुछ समझमें नहीं आता था कि क्या लिखूँ। पेन्सिल और काग़ज़ सिरहाने रख लिया था, कि कुछ सूझ जायगा तो लिख लूँगा। पर गाड़ीके हिलोरोंमें कुछ ऐसा मज़ा आया कि आँख लग गई। नींद तो ऐसी मज़ेकी आई थी कि शायद बम्बई ही में जाकर आँख खुलती, मगर क्या करूँ, एक साहब बहादुरकी कर्कश आवाज़ने नींदमें खलल डाल दिया। आँखें तो मैंने नहीं खोलीं, हाँ, ज़रा मिची-मिची आँखोंसे गाड़ीका रंग देखा। क्या देखता हूँ कि एक काले-कलूटे जवान-से आदमी, निहायत उम्दा सूट पहने मुँहमें सिगार दबाये, कुलियोंसे अंग्रेज़ी लहजे (टोन) की हिन्दीमें लड़ रहे हैं। लड़ाई एक टीनके लोटेपर थी। कुली कहते थे कि हज़ूरका है, साहब कहते थे कि "हमारा नहीं होना सकटा।" कुलियोंको शायद यह डर था कि चोरीका इलज़ाम न लग जाय, वरना उन्हें झगड़नेकी क्या ज़रूरत थी, लोटा उठाकर चलते बनते, घरमें काम आता। मैं समझ गया कि इन हमारे हिन्दुस्तानी भाईको अंग्रेज़पनका नया शौक़ चर्राया है। घरसे लोटा साथ कर दिया होगा, यहाँ सूट पहनकर लोटा साथ रखते शर्म आती है, इसलिए इसको अपनानेसे इनकार किया जा रहा है। घड़ी-घड़ी उनका हाथ मूँछोंपर जाता और खाली आता। इससे साफ़ ज़ाहिर था कि मूँछें पहली ही बार मुँडाई हैं। रह-रहकर टाई दुरुस्त करते, कोट और वास्कटकी सलवटें निकालते, यह इस बातका प्रमाण था कि सूट पहननेकी आदत नहीं है। हाथमें मोटी-सी अंग्रेज़ी एटीकेट (सदाचार-व्यवहार) के विधानकी पुस्तक थी। इससे समझ लीजिए कि अंग्रेज़ी रहन-सहनके ढंगसे परिचित होने और उसके अनुसार अभ्यास करनेके लिए कहीं जा रहे हैं। बक्सोंकी अधिकता बता रही थी कि सफ़र करनेके अभ्यासी नहीं, इसलिए बे-ज़रूरत सामान समेट लाये हैं। इन ख्यालातका दिलमें आना था कि मैं चट उठ बैठा। सोचा कि चलो, दैवयोगसे मुफ्तका एक मज़मून मिला, ईश्वर करे कुछ देर साथ

रहे; मज़ा आ जायगा। सबसे पहले तो मैंने कुलियोंको समझाया कि "बेवकूफ़ो! कहीं साहब लोगोंके पास लोटा होता है? जो इनके पास होगा। चलो हटो, लोटा पुलिसमें दे दो, कोई दूसरा मुसाफ़िर छोड़ गया होगा।" साहब यह सुनकर मुस्कराये और 'थैङ्क यू' (thank you) से मेरी इस सूझकी दाद दी। इसके बाद बड़ी उदारतासे कुलियोंको इनाम दिया। बेतरतीब सामानको बे-वजह टटोल-टटोलकर और बेतरतीब कर दिया। बँधा हुआ बिस्तर एक सीटपर रखा, उससे तकिया लगाकर बैठे और अपनी अंग्रेज़ी सभ्यता सिखानेवाली पुस्तक पढ़नेमें लग गये। मैंने फिर लम्बी तानी, लेकिन कनखियोंसे उनको देखता रहा। वह भी कभी-कभी मेरी तरफ़ देख लेते थे कि सो गया या जागता है। मैं पहलेसे इनको धोखा देनेके लिए तैयार था कि इनका असली रंग देखूँ। आहिस्ता-आहिस्ता खुर्राटे लेने शुरू किये। वह समझे कि चलो, यह तो सो गया, अब अपना काम करो। चुपकेसे टिफिन-बास्केट खोला, छुरी, काँटे और चमचे निकाले, किताबको देखकर इसी मुवाफ़िक़ सामने जमाये। अब थोड़ी देर किताब पढ़ते और थोड़ी देर खाली छुरी काँटे चलाते। कभी-कभी ऐक्टरोंकी तरह धन्यवाद देनेके ढंगपर इधर-उधर गर्दन भी झुकाते। ग़रज़ इसी तरह कोई दो घन्टे गुज़ार दिये। मैंने करवट ली और इन्होंने आहिस्तासे सब सामान टिफ़िन-बास्केटमें रख दिया। स्टेशन आया, गार्डने खानेके बारेमें पूछा। मैंने खानेके टिकटके रुपये दे दिये। उन्होंने साहब बहादुरसे भी पूछा। पहले तो इन्होंने दिमाग़पर ज़ोर डाला कि 'किताबके पाठपर आचरण करूँ' (खाना मँगाकर अंग्रेज़ी ढंगपर खाऊँ) या न करूँ। फिर शायद ख़याल आया कि कहीं औरोंके सामने हतक न हो जाय—पोल न खुल जाय, लिहाज़ा डाँटकर 'नो' (No, नहीं) कह दिया। गार्डने मुझे लाकर टिकट दे दिया, और हमारे दोस्त (साहब बहादुर) अपनी किताबके सिर रहे। मैं उठा, हाथ-मुँह धोया, कपड़े पहने, ज़रा भला आदमी बना, पान खाया, साहबसे अंग्रेज़ीमें पूछा—"आप तो पान न खाते होंगे?"

उन्होंने कहा—"नहीं, इससे दाँत ख़राब होते हैं।" मैंने पूछा—"शायद विलायतका इरादा है?" कहने लगे—"नहीं, इस वक़्त तो सिर्फ़ बम्बई तक जा रहा हूँ।" मैंने कहा—"बम्बईमें कुछ अर्से तक ठहरियेगा?" फर्माया—"नहीं, सिर्फ़ चार दिन।" इसके बाद ज़रा खुले और ख़ुद सवाल (प्रश्न) शुरू किये। पहला ही सवाल मतलबका था—कहने लगे—"बम्बई बहुत बुरी जगह है, खाना अच्छा नहीं मिलता। कोई होटल अच्छा नहीं है।" मैंने कहा—"यह तो न फ़रमाइये, 'ताजमहल होटल' के बारेमें कौन कह सकता है कि वहाँ आराम नहीं मिलता, या खाना अच्छा नहीं मिलता। हाँ, खर्च ज़रूर ज़्यादा होता है।" कहने लगे—"ओः! खर्चकी हमें परवा नहीं, हम ऐंग्लो-इण्डियन्सको पसन्द नहीं करते। हम ऐसी जगह ठहरना चाहते हैं, जहाँ सब हिन्दुस्तानी हों या सब यूरोपियन।" भला ऐसा मौक़ा मिले और मैं हाथसे जाने दूँ! मैंने कहा—"ईस्टर्न होटलमें ठहरिये, वहाँ आपको आराम भी मिलेगा, ऐंग्लो इण्डियन्स भी नज़र न आयेंगे।" मेरा मतलब दूसरा ही था। मैं ख़ुद इसी होटलमें ठहर रहा था, समझा कि यह शेर साथ रहा तो मज़मून पूरा हो जायगा। भला, वह इस पैंतरको क्या समझते, चट राज़ी हो गये। फिर मेरे विषयमें इन्होंने प्रश्नोंकी भरमार शुरू की—"क्या नाम है? कहाँ पढ़ा है? कहाँ तक पढ़ा है? कहाँ नौकर हो? क्या तनख्वाह मिलती है? कितने बच्चे हैं? क्यों बम्बई जा रहे हो? कब तक रहोगे? कब वापस आओगे? अंग्रेज़ोंमें रहने-सहनेका इत्तफ़ाक़ हुआ है? अंग्रेज़ी सोसाइटीकी सभ्यतासे परिचित हो? तुम ख़ुद किस होटलमें ठहरोगे?"—ग़रज़ हज़ारों सवाल कर डाले। जब उनको मालूम हुआ कि हिन्दुस्तानी भेष रखता हुआ भी मैं अंग्रेज़ी रहन-सहनसे नावाकिफ़ नहीं हूँ और ईस्टर्न होटलमें ठहर रहा हूँ, तो उनके चेहरेपर कुछ प्रसन्नता-सी झलकने लगी। समझे होंगे कि चलो, किताबके मज़मूनपर—अंग्रेज़ी सभ्यतापर अभ्यास करनेमें कुछ तो इनसे सहायता मिलेगी।

× × ×

दूसरे स्टेशनपर मैं तो उतरकर खाना खाने चला गया, और हमारे साहब बहादुरने मालूम नहीं क्योंकर, स्टेशनपरसे पूरियाँ और मिठाई खरीदी और खूब छककर खाया, रातके कपड़े (Night dress) पहन, बिस्तर बिछा, बत्ती बुझाकर सो गये। इनका भांडा न फूटता, अगर हम्माम (नहानेके कमरेमें) में तरकारी और मिठाईके पत्ते पड़े हुए मुझे न मिलते। पत्ते देखकर मैंने दो नतीजे निकाले। पहला यह कि इन्होंने जो कुछ भी खाया, नहानेके कमरेमें खाया, जिससे कोई यह देखकर ताज्जुब न करे कि एक साहब बहादुर बैठे पूरियाँ खा रहे हैं। दूसरा यह कि या तो घबराहटमें यह पत्ते बाहर फेंकने भूल गये, या इन्होंने फेंके थे और वह हवाके ज़ोरसे फिर उलटे अन्दर घुस आये। खैर, मालूम हो गया, बम्बईमें अच्छी कटेगी।

दूसरे दिन सवेरे साढ़े छै बजे बम्बई पहुँच गये। यह तो अपना सामान सिमिटवानेमें रहे, और मैं किरायेकी मोटर ले, ईस्टर्न होटल पहुँचा। बीसियों बार वहाँ ठहरा हूँ, सबसे मुलाक़ात है, मैनेजर साहबसे तो दोस्ती ही है। पहले उन्हींसे मिला, और कहा—''एक साहब आ रहे हैं, मेरे कमरेके बराबर ही उनको कमरा देना, और ज़रा इधर-उधर जायँ, तो मुझे खबर कर दिया करना। इस वक्त तो बस इतना ही सुन लो, बाक़ी फिर कहूँगा।'' खैर, मैं तो इनसे यह कहकर तीसरे तल्लेके कमरे नं० ३६ में जा टिका। ऊपरसे देखा, तो साहब बहादुरकी लदी-फँदी दो मोटरें नीचे दरवाज़ेके सामने आकर ठहरीं। असबाब चढ़ना शुरू हुआ। थोड़ी देरमें आगे-आगे मैनेजर साहब और पीछे-पीछे हमारे दोस्त आये। कमरा नं० ३५ खोला गया और इसमें उन्हें ठहराया गया। मैनेजर साहब उनसे निपट मेरे पास आये, और कहने लगे—''यह क्या बात है? जो आपने कहा था, बिलकुल वही इन्होंने कहा, आते ही पूछा—'अभी जो साहब आये हैं, वह कौनसे कमरेमें ठहरे हैं?' मैंने कहा—'कमरा नम्बर ३६ में।' इन्होंने फ़रमाया—'हमें उनके बराबरवाला कमरा दो, और जब वह मेज़पर आयें, हमको इत्तला दिया करो।'' मैंने मैनेजर साहबसे कहा—''ज़रा तुम नीचे जाओ, अभी मैं आकर सारा क़िस्सा बयान करता हूँ। हाँ, मेरे कमरेके सामने जो हिन्दुस्तानी पाखाना है, उसका लोटा उठवा दो, साहबको लोटोंसे बड़ी नफ़रत है। स्टेशनपर कुलियोंसे लड़ाई होते-होते रह गई।'' बेचारे मैनेजर परेशान थे कि यह खासा भला-चंगा आदमी बावला तो नहीं हो गया। कुछ बड़बड़ाते हुए चले गये। थोड़ी देरमें मैंने जाकर उनको सब कुछ समझा दिया। कहने लगे—''भई! ज़रा देखना, ऐसी कोई बात न हो कि होटल बदनाम हो जाय। लुत्फ़ तो ज़रूर आयगा, मगर यह व्यापारका मामला है।'' मैंने कहा—''आप निश्चिन्त रहिये, बटलरों (खानसामों) से कह दीजिए कि मैं जो माँगूं, वह मुझको चुप-चाप ला दिया करें। इसमें आपका क्या नुक़सान है? आपके होटलकी क्या बदनामी है? मैं शकर (चीनी) की जगह अगर काफ़ीमें नमक डालकर पीता हूँ, तो आपको वास्ता? आपको अपने दामसे काम।'' मालूम होता है कि मेरे इतना कहनेपर वह कुछ समझ गये, और खुद भी साहब बहादुरकी अंग्रेज़ी सभ्यताके अभ्यासका आनन्द लेनेके लिए तैयार हो गये।

हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल, मैं नीचे उतरा और दूसरी मंज़िल (तल्ले) में जो खानेका कमरा है, उसमें दाखिल हुआ। होटलके जितने 'बटलर' (खानसामा, बावर्ची) थे, वह मुझे पहचानते थे। देखकर ज़रा मुसकराये। मैं समझ गया कि मैनेजर साहबने ज़रूरी हिदायतें (सूचनाएँ) दे दी हैं। सड़ककी ओर जो मेज़ बिछी हुई थी, मैं उसपर जा बैठा। मेरे सामने एक बड़ा आईना था। पीछे दो मेज़ें और थीं। सीधे हाथपर सड़क थी, और बाईं तरफ़ और बहुतसी मेज़ें, कुरसियाँ और सामानका कमरा था। मालूम होता है कि हमारे साहब बहादुरको भी मेरे मेज़पर पहुँच जानेकी खबर हुई। वह नये सूटमें, टोपी उतारे, सिगार पीते, बड़े ठाठसे कमरेमें दाखिल हुए। इधर-उधर देखा और कुछ दिलमें सोचकर, मेरे पीछेकी ओर जो मेज़ें बिछी हुई थीं,

उनमेंसे एकपर बैठ गये। मैं समझ गया कि यह इस तरह बैठना चाहते हैं कि वह मुझको देख सकें कि मैं किस तरह खाना खाता हूँ, और मैं उनको न देख सकूँ, लेकिन शायद उनको इसका खयाल न रहा कि मेरे सामने यह बड़ा आईना लगा हुआ है, और उनकी सब हरकतें मुझको इसमें दिखाई देती हैं। जब वह मेरे पाससे गुज़रे तो मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उनके कोटके कालरमें पीछेकी तरफ एक पर्चा पिनसे लगा हुआ है। बहुत सोचा, लेकिन कुछ समझमें न आया कि आखिर यह क्या पहेली है। इतनेमें बटलरने पोरिज* (porridge)की रकाबी, शक्कर और दूध सामने ला रखा। मैंने उससे कहा—"मैनेजर साहबको बुलाओ।" वह दरवाज़े ही तक गया कि मैनेजर साहब खुद मुसकराते हुए आये, और मेरे पास एक कुर्सीपर बैठ गये। मैंने आहिस्तासे उनसे कहा—"मिस्टर! ज़रा चुपकेसे यह तो देख आओ कि हमारे साहबके कालरपर यह कागज़ क्या लगा हुआ है।" वह मेरे पाससे उठ साहबके पास पहुँचे और बगलमें खड़े होकर पूछा—"आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं है। अगर किसी इन्तज़ामकी ज़रूरत हो, तो कर दिया जाय?" साहबने फ़रमाया—"नहीं, सब ठीक है।" यह बातें करते-करते मैनेजर साहबने इस कागज़पर भी नज़र डाल लीं। मगर कुछ समझ न सके, कुछ सोचसेमें पड़ गये। वहाँसे टहलते हुए मेरे पास आये और वही सवाल मुझसे किया। मैंने भी वही जवाब दिया, और आहिस्तासे पूछा—"आपने कागज़ देखा?" कहा—"हाँ, देखा"—"इसमें क्या लिखा है?"—"साढ़े सातसे साढ़े दस तक, समझमें नहीं आता कि इसके क्या मानी हैं।" मैंने कहा—"आप न समझे हों, मैं तो समझ गया। साहबने नये सूट बनवाये हैं, और अपनी किताब देखकर हर सूटपर उसके पहननेका वक्त लिख दिया है। यह साढ़े सातसे साढ़े दस तक पहननेका सूट है। घबराहटमें कागज़ निकाले बगैर सूट पहने चले आये। चलो, इनके साहबपनका कुछ तो रंग मालूम हो गया। अब देखो, दूसरा तमाशा दिखाता हूँ।" साहब बहादुर इस वक्त अखबार पढ़नेमें लगे थे। मैंने अपनी रकाबी इस तरह रखी कि वह देख सकें कि मैं 'पोरिज' किस तरह खाता हूँ। मैंने नमकका चमचा भरा, रकाबी तक लाया और इस तरह उलटा कि नमक बजाए रकाबीके मेरे नेप्किन (Napkin)† पर गिरा। इस तरह दो-तीन चमचे भर-भरकर डाले, बादमें सिरकेकी बोतल ली। इसके मुँहपर उँगली रखकर इस तरह उलटी, मानो 'सिरका' मिला लिया। साहब अखबारकी आड़से मेरी इन चेष्टाओंको देखते रहे। इसके बाद रकाबी मैंने ज़रा सरकाकर अपने सामने कर ली और जल्दी-जल्दी शक्करके दो-तीन चमचे डाल, दूध उँडेल, चमचेसे मिला, फिर रकाबी ज़रा उनकी तरफ़ करके खाना शुरू किया। वह 'पोरिज' खानेकी तरकीब समझ गये। निहायत इतमिनानसे दिल खोलकर नमक और 'सिरका' मिलाया और चमचेसे खाना शुरू किया। मैनेजर साहब और बटलरोंको हँसी आई; बेचारोंने बड़ी मुश्किलसे रोकी, और एक-एक करके सब सरक गये। इसके बाद मैंने जो चीज़ खाई, ज़रा ढंगसे खाई, और साहबने भी हूबहू नकल उतारी। यह मैंने इसलिए किया कि कहीं खटक न जायँ और मज़ा किरकिरा हो जाय।

× × ×

इसके बाद मैं जे० जे० अस्पतालमें डाक्टर 'डगन'से मिलनेका वक्त दर्याफ्त करने चला गया। फिर-फिराकर कोई एक बजे वापस आया। देखा कि साहब बहादुर अपने कमरेमें बिराज रहे हैं। शायद उनको मेरे आनेका ही इन्तज़ार था, क्योंकि इधर मैं खानेके कमरेमें आया, और उधर वह भी आ पहुँचे। 'लंच' (Lunch, दोपहरका खाना) शुरू हुआ। पहले तो सही-सही काररवाई होती रही। इसके

* पोरिज=अंग्रेज़ी ढंगका दलिया, जिसमें इच्छानुसार दूध और शक्कर मिलाकर खाते हैं।

† नेपकिन=रूमालकी तरहका चौकोर मोटा कपड़ा, जिसे खाते वक्त गोदमें फैला लेते हैं; जिससे खाना गिरनेसे कपड़े खराब न हों।

बाद मैंने 'तोस' उठाया, छुरीसे इस पर मक्खन मला, राईकी बोतलमें छुरी डाल थोड़ीसी राई निकाली और पहलू बदल इस तरह हाथ चलाया, मानो 'तोस'पर राई मल रहा हूँ। भला, नक़लमें अक़्ल कहाँ! इन्होंने भी कुछ इन्तज़ार करके पूरी नक़ल उतारी। इधर मैंने 'तोस' मुँहमें रखा, और उधर उन्होंने अपने 'तोस' पर मुँह मारा। खबर नहीं, बेचारेके गलेपर क्या बीती। हाँ, आईने (दर्पण) में यह ज़रूर देखा कि एक बार ही उनके चेहरेकी हालत कुछ बदलसी गई। वह कोशिश कर रहे थे कि मुँहसे ग्रास निकालकर फेंक दें, पर मैं एकाएक उनकी तरफ मुड़ गया। अब बेचारेको कौर न उगलते बनता है, न निगलते। आखिर किसी न-किसी तरह गलेसे उतार ही लिया। इसके बाद मैंने उनसे बातें शुरू कीं। बातें करता जाता और तोस खाता जाता। उन्होंने भी डरते-डरते तोसका दूसरा टुकड़ा मुँहमें रखा, और सोडेके सहारे नीचे उतारा। किसी तरह तोस खत्म हुआ। मैंने भी इससे ज्यादा काररवाई करनी मुनासिब न समझी। नेप्किन लपेट मेज़पर डाला और उठ खड़ा हुआ। थोड़ी देरके बाद वह भी अपने कमरेमें आ गये, और हम्माम (स्नान-घर) में जाकर कुल्लियाँ करनी शुरू कीं। ईश्वर झूठ न बुलवाये, हज़ारों ही कुल्लियाँ कर डालीं। जब कहीं जाकर कुछ ठण्डक पड़ी। मुझे अफ़सोस भी हुआ और हँसी भी आई। अफ़सोस तो इसलिए हुआ कि बैठे बिठाये एक ग़रीबका मुँह छलनी कर दिया और हँसी इस बातपर आई कि इस बेवकूफ़को 'साहब' बननेकी क्या ज़रूरत थी! खैर, लंच भी खासे मज़ेसे गुजर गया।

× × ×

तीसरे पहर मैं डाक्टर डगनसे मिला, सब हाल सुनाया और अपने मद्रास आनेका ज़िक्र किया। वहाँवालोंकी राय ज़ाहिर की कि किस तरह कई घन्टे आँखोंका इमतिहान करनेके बाद मुझे साफ जवाब दे दिया गया। डाक्टर साहबने जो बातें ऐसी कहीं कि मेरे दिलमें लग गईं। कहने लगे।

(डाक्टर उवाच)—"मैं किसीकी बुराई नहीं करता। हाँ, यह ज़रूर कहता हूँ कि आँखोंका ज्यादा देर तक इमतिहान करना कुछ मुफ़ीद (लाभदायक) नहीं होता। रोगीकी आँखें घूरते-घूरते पथरा जाती हैं। इसके बाद ठीक परिणाम निकालना कठिन होता है। अब रही तुम्हारी हालत, तो इसके बारेमें मेरी यह राय है कि आँखोंका तुमको कोई रोग नहीं है, सिर्फ़ सही नम्बरकी ऐनककी ज़रूरत है। विलायत जाना चाहते हो, चले जाओ, पर यह समझ लो कि जो कुछ मैं कर सकता हूँ, इससे अधिककी वहाँ भी तुमको आशा न रखनी चाहिए। यूरोपवालोंकी यह दशा है कि बचपन ही से आँखोंका खयाल रखते हैं। ज़रा कुछ फ़र्क़ आया और आँखके चिकित्सकके पास पहुँचे, इलाज किया, ऐनक ली, चलो छुट्टी हुई। हमारे यहाँ लोगोंकी यह हालत है कि जब आँखें बिलकुल बेकार हो जाती हैं, उस वक्त इलाजका खयाल आता है। खयाल आने और इलाज करानेमें भी बरसों बीत जाते हैं, तब कहीं डाक्टरके पास आते हैं, और चाहते हैं कि आज ही अच्छे हो जायँ। यही कारण है कि प्रतिदिन जितने रंग-बिरंगके रोगी हमारे देखनेमें आते हैं, वैसे विलायतके डाक्टरोंको बरसोंमें भी नहीं मिलते, और जितने आपरेशन हम एक हफ्तेमें कर लेते हैं, वहाँके बड़े-बड़े डाक्टरोंको साल-भरमें भी नहीं करने पड़ते। इसलिए यह खयाल तो बेकार है कि विलायत जाकर तुम यहांसे कुछ ज्यादा लाभ उठा सकोगे। हाँ, अपनी तसल्लीके लिए जाना चाहते हो, तो चले जाओ।"—मैंने कहा—"डाक्टर साहब! अन्धा क्या चाहे! दो आँखें। यदि यहीं मुझको आराम हो जाता है, तो फिर मैं कोई पागल हुआ हूँ कि ख्वाहमख्वाह रुपया खर्च करके जर्मनी या फ्रान्स जाऊँ। अच्छा, आप ऐनकके नम्बर निकालिए।" इस मेरे ज़ोरने दस मिनटमें नम्बर निकाल, मेरे हवाले किये। इसके बाद कुछ सोचकर कहा—"खैर, ठहरो, मैं दवा डालकर भी नम्बर देख लेता हूँ। अगर थोड़ी-बहुत कुछ ग़लती हुई है, तो वह भी निकल जायगी।" यह कह मेरी आँखोंमें उन्होंने



बुलबुल

[चित्रकार—श्री एम० ए० आर० चग़ताई]

दवा डाली, और दूसरे दिन, तीसरे पहरको आनेकी बात कही। वहाँसे निकल मैं फिरता-फिराता शामको होटल पहुँचा। दवा पड़नेसे ज़रा आँखमें पर्दा-सा आ गया था, इसलिए रातका खाना मैंने अपने कमरेमें ही खाया। साहब-बहादुरने भी मेरा अनुकरण किया। दूसरे दिन भी मैं खानेके कमरेमें नहीं गया, पर अब हमारे साहब इन दो वक्तके खानोंसे वाक़िफ़ हो चुके थे, इसलिए उन्होंने नाश्ता (प्रातराश) और लंच, खानेके कमरेमें ही जाकर खाया। मैनेजर साहब मेरी खैरियत पूछने आये। इनसे पूछा, तो मालूम हुआ कि साहब बहादुरने कलका पाठ पूरी तरह दोहराया। हाँ, इस दिन तोमको हाथ नहीं लगाया। तीसरे पहर तक मेरी आँखें साफ़ हो गईं। मैंने जाकर डाक्टर डगनको दिखाईं। देखनेके बाद उन्होंने कहा—"मेरे पहले और अबके नम्बरोंमें फरक़ नहीं है, आप शौक़से इन्हीं नम्बरोंकी ऐनक खरीद लीजिए, बहुत दिनों काम देगी, पर जब उतर जाय, तो मुझसे आकर ज़रूर मिलिये। कहीं उतरे हुए नम्बरोंकी ऐनक न लगाये फिरिये, आँखोंका सत्यानाश हो जायगा।

× × ×

वहाँसे नम्बर ले मैं दिनशा एम० दस्तूरकी दूकानपर पहुँचा। नम्बर दिये, उन्होंने दूसरे दिन ऐनक देनेका वादा किया। मैं चौपाटी, अपालो बन्दर, हार्नबी रोडकी सैर करता हुआ रातको कोई साढ़े सात बजे होटलमें पहुँच गया। मेरे ठहरनेका यह आखरी दिन था, इसलिए मुझे शरारत सूझी। खानेके कमरेमें जो सामने अलमारी थी, इसमें सलफ़र बिटर* की बोतल, खबर नहीं, क्यों रखी हुई थी। मैंने सोचा कि साहबको आज यह पिला दो।

× × ×

रातको खानेके लिए कमरोंमेंसे दोनों साथ निकले, मैंने साहबसे पूछा—"फ़रमाइये, कुछ पीनेका भी शौक़ है ?" कहने लगे—"हाँ, पीता हूँ, मगर कम, ज्यादा पीना स्वास्थ्यके लिए हानिकर है।" मैं समझ गया कि पीते-पिलाते नहीं, सिर्फ़ अंग्रेज़ी कपड़ोंकी लाज रखनेके लिए पीनेके दावेदार हो रहे हैं। खैर, नीचे आकर वहीं अपनी-अपनी जगहपर दोनों बैठ गये। खाना शुरू हुआ। मैंने बटलरको आवाज़ दी कि सलफ़र बिटरका एक पेग लाओ। वह बिचारा घबराया कि हैं, कहीं इस भले आदमीका दिमाग़ तो खराब नहीं हो गया। मुझसे तो कुछ नहीं कहा, सीधा मैनेजर साहबके पास पहुँचा। वह समझ गये कि कुछ तमाशा होनेवाला है। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे बटलर दोनों कमरेमें आये। बटलरने अलमारी खोल 'सलफ़र बिटर'की बोतलसे एक पेग निकालकर मेरे गिलासमें ला डाला। मैंने सोडा मँगवाकर गिलास भर लिया, और खाना शुरू किया। थोड़ी-थोड़ी देर बाद गिलास उठाता और मुँह तक ले जाता, फिर गुलदानकी आड़में रख देता कि कहीं साहब यह न देख लें कि भरे-का-भरा गिलास है। मेरी देखा-देखी इन्होंने भी 'सलफ़र बिटर'का एक पेग लेकर उसमें सोडा मिलवाया। इसके बाद जो एक घूँट लिया, तो क़यामत आ गई। मेरे यहाँ तो बराबर घूँट-पर-घूँट चल रहा था, वह भला हाथ रोककर क्यों अपना अपमान कराते! किसी-न-किसी तरह पीये ही गये। बिटर्स एक क़िसमकी शराब भी होती है, समझे होंगे कि जिस बिटर्सका ज़िक्र उनकी 'अंग्रेज़ी सभ्यता-शिक्षक' पुस्तकमें है, शायद वह यही होगी। जो हो, गिलास खत्म करना मुश्किल हो गया। बड़ा घूँट लें तो गलेसे उतरना मुश्किल। छोटे घूँट लें तो गिलासका खत्म होना कठिन। आखिर किसी-न-किसी तरह कोई आध घण्टेके बाद गिलास खाली हुआ, मगर साहब बहादुरकी तबीयत कुछ ऐसी बिगड़ गई, कि मीठा खाये बग़ैर मेज़परसे उठ गये। कमरेमें जाकर उनपर क्या बीती, यह तो ईश्वरको मालूम है, लेकिन यह ज़रूर है कि दूसरे दिन बेचारेने दो वक़्तका उपवास किया।

मैं दूसरे दिन दोपहरको दिनशाकी दूकानपर गया और ऐनक ले आया। ऐसी ठीक बैठी कि जी खुश हो गया।

* सलफर-बिटर (Sulphur-bitter)= रक्तशोधक औषध विशेष, शाहतरा, चिरायता आदि कई कड़वी दवाओंके अर्क़में गन्धक मिलाकर बनाई जाती है। कड़वाहटमें कुनैनकी नानी होती है।

अब घर चलनेकी सूझी और शाम ही को चल देनेका इरादा कर लिया।

× × ×

जब दूसरोंकी हँसी उड़ाई, तो अपनी बेवकूफ़ीको क्यों छिपाऊँ। एक मुसलमान भाईने मुझे भी बेवकूफ़ बनाया, और ख़ूब बनाया। दिनशाकी दूकानसे मैं ट्राममें सवार हुआ। मेरे साथ-साथ एक भले आदमी ट्राममें दाख़िल हुए। उनकी शक्ल अब तक मेरी आँखोंके सामने है। छरेरा बदन, सफ़ेद रंगत, मियाना क़द, भूरे बाल, सिरपर टर्की टोपी, जिस्मपर ख़ाकी कोट-पतलून, कोटके ऊपर बग़ैर हाथोंकी केपदार बरसाती। जब ट्राममें वह मेरे पाससे गुज़रने लगे, तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरी शेरवानीकी जेबमेंसे रुपयोंका बटुवा कुछ ख़ुद-बख़ुद ऊपरको उठा चला आ रहा है। मैंने एक दफ़ा ही जेबपर हाथ डाला। क्या देखता हूँ कि बटुआ जेबसे आधा बाहर आ गया। ख़ैर, बटुवेको अन्दर किया और उन साहबकी तरफ़ देखकर मुसकराया कि आप तेज़ ज़रूर हैं, मगर मैं आपसे भी कुछ ज़्यादा तेज़ हूँ,। इन्होंने शर्माकर गर्दन नीची कर ली। थोड़ी ही देरमें ट्राम ठहरी। दो आदमी अन्दर आये, आँखों-ही-आँखोंमें, इन साहबसे उनकी कुछ बातें हो गईं। उस वक्त तो मैं नहीं समझा था, मगर हाँ, बादमें समझमें आया कि यह दोनों इन हज़रतके साथी थे। ख़ैर, यहाँसे चलकर ट्राम 'क्राफोर्ड-मार्केट'पर रुकी। टर्की टोपीवाले साहब पहले उतर गये, और उनके दोनों यार भी उतरनेको एक साथ बढ़े। नतीजा यह हुआ कि दोनों दरवाज़ेमें फँस गये। मुझे उतरनेकी जल्दी थी। मैं इन दोनोंको चीरकर नीचे उतर गया। जो साहब पहले नीचे उतरे थे, उनको देखकर मैं मुसकराया कि जनाब! हर आदमीकी जेबमेंसे बटुवा निकालना आसान काम नहीं है, मगर बजाय शर्मिन्दा होनेके, वह भी मुसकराये, और एक तरफ़को चल दिये। अब जो जेबमें हाथ डालता हूँ, तो बटुआ ग़ायब! इस वक़्त उन लोगोंकी तरकीब समझमें आई कि एक साहबने नीचे उतरकर मुझे निश्चिन्त कर दिया, दो ने इस तरह रास्ता रोका कि मुझे इनको दोनों हाथोंसे हटाना पड़ा। इनमेंसे एकने इस धकापेलमें बटुवा ग़ायब कर दिया। कुशल हुई कि जितने रुपये मैं लेकर गया था, वह ऐनकवालेको दे आया था, शायद पाँच रुपयेका एक नोट और कुछ आने रह गये थे। हाँ, डाक्टर डगनने ऐनकके जो नम्बर दिये थे, वह बटुयेके साथ गये। सचमुच किसीने सच कहा है कि "जो दूसरोंपर हँसता है, उसपर दूसरे हँसते हैं।" ख़ैर, मैं होटलमें से जाकर और रुपये लाया, और दूसरा बटुआ ख़रीदा। 'दिनशा' के यहा जाकर नम्बरोंकी नक़ल ली, लेकिन इस कार्रवाईने कुछ ऐसा खिसियाना कर दिया कि फिर अपने 'साहब बहादुर' को भी भूल गया। सात बजे कमरे ही में खाना मँगवाकर खा लिया, और साढ़े आठ बजेकी मेलसे रवाना हो गया। बलासे रुपये गये तो गये, एक मज़ेदार मज़मून तो मिल गया। हाँ, यह कह देता हूँ कि पाठक इसे कृपा करके 'एक गल्प' ही समझें, तो अच्छा है।*

* 'हुमायूं' में प्रकाशित जनाब मिरज़ा फ़रहतुल्ला बेग देहलवीके 'साहब बहादुर' का उल्था।

—पद्मसिंह शर्मा

शिकागो-यूनिवर्सिटीके नये प्रेसीडेन्ट

[लेखक :—डा० सुधीन्द्र बोस, एम० ए०, पी-एच० डी०]

विश्वविद्यालय-सम्बन्धी बहुतसी रस्मोंके बाद डाक्टर राबर्ट मेनार्ड हचिन्स गत मास शिकागो-यूनिवर्सिटीके पाँचवें प्रेसीडेन्ट नियुक्त हुए। शिकागो-यूनीवर्सिटी सैंतीस वर्ष पुरानी है और अमेरिकामें उच्च शिक्षा देनेवाली संस्थाओंमें प्रमुख है। यह शिक्षा देनेकी एक विशालकाय मशीन है। इसकी स्थापना जान डी० राकफेलरने की थी। इसके पास बहुत बड़ी आर्थिक विभूति भी है। इस समय यूनाइटेड स्टेट्समें केवल दो-तीन यूनिवर्सिटियां ही ऐसी हैं, जिनके शिक्षण-विभाग शिकागो-यूनिवर्सिटीके बराबरीके कहे जा सकते हैं, परन्तु कुछ चुने हुए विषयोंमें तो उसकी बराबरी करनेवाला कोई भी नहीं है।

डा० हचिन्स केवल तीस वर्षके हैं। संसारमें नहीं, तो कमसे कम अमेरिकामें वे किसी भी बड़ी यूनिवर्सिटीके सबसे कम उम्रके प्रेसीडेन्ट हैं। पचीस वर्षकी उम्रमें वे येल-यूनिवर्सिटीके क़ानून-विद्यालयके प्रधान थे।

भारतवर्षकी अपेक्षा पाश्चात्य संसारमें नवयुवकोंने बहुधा बड़े-बड़े कार्य किये हैं। एलेक्जेण्डर, नेपोलियन, पिट इत्यादि नवयुवक ही थे। नवयुवक कैप्टन नेलसनको—जो बादमें एडमिरल नेलसन और लार्ड नेलसन हुए थे—जब वे केवल पचीस वर्षके थे, उनके एक अफ़सरने उनके लड़कपनपर डाँटा था। उस समय युवक नेलसन उत्तर दिया था—"जनाब, मुझे उतनी उम्रके होनेका सम्मान प्राप्त है, जितनी इंग्लैण्डके प्रधान मंत्रीकी है।"

यदि कोई उनकी कम उम्रकी आलोचना करे, तो शिकागो-यूनिवर्सिटीके नये प्रेसीडेन्ट भी नेलसनके वाक्यको दोहरा सकते हैं, क्योंकि वे पिटसे, जिस समय वह प्रधान मंत्री था, केवल पाँच वर्ष बड़े हैं।

कम आयु कोई जुर्म नहीं है। नवयुवक सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरूपर उँगली उठानेवाले लोगोंको यह जानकर हर्ष होगा कि अमेरिकाके सेनेटके, जो संसारकी सबसे बड़ी विचारक सभा कही जाती है, दो बड़े योग्य सदस्य नवयुवक हैं, जो अभी तीस वर्षके भी नहीं हैं। लोग उन्हें प्रशंसासे 'बालक सेनेटर' कहा करते हैं।

शिकागो-यूनिवर्सिटीके नये प्रेसीडेन्ट राबर्ट एम० हचिन्स इस समय पूरे तीस वर्षके हैं। वे यूनिवर्सिटीके प्रथम प्रेसीडेन्ट स्वर्गीय विलियम रेनी हार्परसे कुछ अधिक छोटे नहीं हैं। हार्पर साहबने केवल चौंतीस वर्षकी आयुमें प्रेसीडेन्टका पदक ग्रहण किया था। और न मि० हचिन्स चार्ल्स डबल्यू० इलियटसे ही बहुत छोटे हैं, जो पैंतीस वर्षकी आयुमें हारवर्ड-यूनिवर्सिटीके प्रेसीडेन्ट हुए थे; मगर यह बात सभी मानते हैं कि हार्पर या इलियट—दोनों ही की अपेक्षा हचिन्स अधिक अनुभवी हैं। वे पाँच वर्ष तक येल-यूनिवर्सिटीके सेक्रेटरी रहे और फिर येलके क़ानूनके स्कूलमें डीन भी हो गये थे।

शिकागो-यूनिवर्सिटीके नये सभापतिका जन्म सन् १८९९ में हुआ था। महायुद्धके समय वे इटेलियन फौजमें भर्ती हो गये थे। वहाँ उन्होंने दो वर्ष तक एक एम्बुलेन्सकी ड्राइवरी की थी। इसके लिए उन्हें इटलीके राजासे पदक भी मिला था। महायुद्धसे लौटकर वे येल-यूनिवर्सिटीमें भर्ती हो गये, और वहांसे उन्होंने सन् १९२१में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की।

येलमें मि० हचिन्स स्वावलम्बी विद्यार्थी थे। धनोपार्जनके लिए उन्होंने जो काम किये, उनमेंसे एक 'को-अपरेटिव ट्यूटरिंग ब्यूरो'का संगठन और परिचालन था। यह 'ब्यूरो' ट्यूशन करनेवाले विद्यार्थियोंकी एक सहकारी समिति थी।

उन्होंने सन् १९२५ में येलके ला-स्कूलसे एल-एल० बी०

की डिग्री प्राप्त की। उसी समय वे येलमें क़ानूनके प्रोफ़ेसर नियुक्त हो गये, और एक वर्षसे कुछ ही अधिक कालमें वे वहांके ला-स्कूलके डीन हो गये।

प्रेसीडेन्ट हचिन्सने अपनी विद्वत्ता और अपने सुप्रबन्धकी ख्याति स्थापित कर ली है। उदाहरणके लिए येलमें जो 'स्कूल-आफ़्-ह्यूमन रिलेशन्स' (मानुषिक व्यवहार-सम्बन्धी विद्यालय) स्थापित हुआ है, उसकी स्थापनामें मि० हचिन्सका ही प्रधान हाथ था।

शिकागो-यूनिवर्सिटीसे प्रकाशित एक वक्तव्य कहता है—"जब वे येलके ला-स्कूलके डीन थे, तब उन्होंने डाक्टर मिल्टन सी० विंटरनिज़की, जो येलके मेडिकल स्कूलके डीन हैं, सहायतासे इंस्टीट्यूट-आफ़्-ह्यूमन रिलेशन्स (मानवी व्यवहार-समिति) नामक संस्थाका संगठन किया था। इसका उद्देश्य मनुष्योंके पारस्परिक सम्बन्धोंका समाज-विज्ञान और जीव-विज्ञानके अनुसार अध्ययन करना है। इस नये ढंगके अध्ययनके लिए उन्होंने गवाहीके क़ानूनके मनो-वैज्ञानिक पहलुओंका अन्वेषण करके उसे उक्त समितिको अर्पण किया है।

"जब मि० हचिन्स क़ानूनमें सामाजिक विज्ञानके सम्बन्धका अनुसन्धान कर रहे थे, उसी समय डीन विंटरनिज़ मेडिकल स्कूलमें उसी प्रकारकी दूसरी परीक्षा कर रहे थे। येलके इन दो शिक्षक अन्वेषकोंने दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें एक साथ अपने-अपने प्रयोग किये, और अन्तमें परस्पर उनको मिलाकर एक करने और मानव-जीवनके समस्त उद्योगोंमें उसे प्रभावोत्पादक बनानेके लिए उन्होंने उक्त समितिकी स्थापनाका विचार किया।"

जब शिकागो-यूनिवर्सिटीकी कल्पना भी नहीं हुई थी, तब आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, गाटिनबर्ग, पेरिस, सेन्ट-ऐन्ड्र्यूज़, बेसेल और हारवर्ड आदि यूनिवर्सिटियाँ सदियों पुरानी हो चुकी थीं, परन्तु इन सभी यूनिवर्सिटियोंके प्रतिनिधि तथा सैकड़ों अन्य यूनिवर्सिटियोंके प्रतिनिधियोंने उस दिन अल्पायु शिकागो-यूनिवर्सिटीको और उसके युवक सभापतिको प्रणाम किया। केवल शिक्षण-संस्थाओंने ही उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं किया, बल्कि गवर्नर, नगरके अधिकारी, महाजन व्यापारियोंके नेताओं और साहित्य-क्षेत्रके नेताओंने प्रेसीडेन्टके प्रति और जिन बातोंके वे प्रचारक हैं, उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। सम्पूर्ण समारोह शिक्षाके भविष्यकी दृष्टिसे बहुत आशाप्रद था।

इस समारोहमें जो आशा दिखाई पड़ती थी, वह युवक मि० हचिन्सके आरम्भिक व्याख्यानसे और भी दृढ़ हो गई। उन्होंने कहा—

"उच्च शिक्षाका उद्देश्य है नवयुवकोंके मस्तिष्कको विचलित करना, उनकी मानसिक क्षितिजको विस्तृत करना, उनकी बुद्धिको प्रज्ज्वलित करना। इन सब बातोंसे मेरा मतलब यह बतलानेका है कि तथ्यों, सिद्धान्तों या नियमोंको सिखानेके लिए शिक्षा नहीं होती। वह युवकोंको सुधारने या उनका मनोरंजन करने अथवा उन्हें किसी विशेष कार्यमें दक्ष बनानेके लिए नहीं होती। शिक्षा केवल उन्हें विचार करना सिखलाती है। यदि सम्भव हो, तो वह उन्हें ठीक रास्तेपर विचार करना सिखलाती है, परन्तु वह उन्हें इस योग्य बना देती है कि वे किसी बातपर स्वयं ही विचार कर सकें। यदि हम अपने ला-कालेजके किसी ग्रेजुएटको—जिसने देशके क़ानून, क़ायदे और अदालतोंके फ़ैसले खूब याद कर लिए हों, परन्तु जिसकी आलोचना-वृत्ति और स्वतन्त्ररूपसे तर्क करनेकी शक्ति विकसित नहीं हुई है (स्वतन्त्र तर्क और आलोचना-शक्ति भी तो रटन्त विद्याके साथ-साथ अधिक नहीं चल सकती)—अदालतमें वकालतके लिए भेजें, तो हम समझेंगे कि हम बुरी तरह असफल हुए। इसी तरह यदि हम अदालतमें ला-कालेजका कोई ऐसा ग्रेजुएट भेज सकें, जो क़ानूनकी एक लाइन भी न दोहरा सके अथवा जिसे एक भी मुक़दमा याद न हो, परन्तु जिसने कालेजमें काम करनेकी आदत डाली है, जो अपने मसालेको काममें लाना जानता है, जो उनमें नवीन सम्मिश्रण उत्पन्न कर सकता है, जो उत्पादक विचारोंको काममें ला सकता है, अथवा एक शब्दमें यों कहिये कि जिसमें विचारशक्ति आ गई है, तो हमें उस ग्रेजुएटके लिए गर्व हो सकता है।

"प्रत्येक युगमें बुजुर्गोंमें नवयुवकोंके विकासको कम समझनेकी चाल-सी रही है। इसका फल यह हुआ कि बहुतसे लोगोंमें यह धारणा हो गई है कि शिक्षा देनेकी प्रणाली बड़ी सरल और आसान है। लोग समझते हैं कि कालेज आनेवाला विद्यार्थी गीली मिट्टीका लोंदा होता है, उसे टीचर जिस शक्लमें चाहता है, बना देता है। इसीलिए माता-पिता कभी-कभी समझते हैं कि वे अपनी घरेलु समस्याओंको शिक्षकोंके सिपुर्द करके हल कर सकते हैं।

"कालेज और उसकी समस्त सुविधाएँ मौजूद हैं। अब यह विद्यार्थीपर निर्भर है कि वह चाहे उन्हें ग्रहण करे या छोड़ दे। इसका अर्थ यह निकलता है कि यदि किसी विद्यार्थीमें चरित्र नहीं है, यदि उसमें बौद्धिक मनोयोगके कीटाणु नहीं हैं और यदि उसमें कुछ बननेकी इच्छा नहीं है, तो कालेज उसे न तो चरित्र ही दे सकता है, न उसमें बौद्धिक मनोयोग ही पैदा कर सकता है और न उसे कुछ बना ही सकता है। कालेज कार्यको पूरा कर सकता है, वह उसे आदिसे आरम्भ नहीं कर सकता।"

प्रेसीडेन्ट हचिन्सने बताया कि "शिकागो-यूनिवर्सिटीका महत्त्व विचारोंकी परीक्षामें और नवीन बातोंके आरम्भ करनेमें अग्रणी होनेमें है। आज दिन लोग जिस तरहका जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उसकी खोज करके विद्वानोंको उसके संसर्गमें लाया जा रहा है। इसका फल यह हो सकता है कि भावी जीवनमें कुछ उन्नति हो जाय।

"यूनिवर्सिटीने यह बात जान ली है कि वास्तविक जीवनके संसर्गमें रहकर ही यह बात जानी जा सकती है कि वास्तविक जीवन क्या है। अन्वेषण और वास्तविक जीवनकी समस्याओंमें घनिष्ठ सम्बन्ध रखकर ही, यानी यूनिवर्सिटीको वास्तविकताके सामने रखकर ही हम लोग मानव-जातिकी अधिकसे अधिक सेवा कर सकते हैं।"

अमेरिकामें उच्च शिक्षाकी संस्थाएँ प्रतिवर्ष १,२०,००० ग्रेजुएट निकालती हैं। यह बताते हुए डा० हचिन्सने इस बातपर जोर दिया कि यूनिवर्सिटीके संगठन, तरीके और साज-सामानकी उपयोगितापर पुनर्विचार करनेकी ज़रूरत है, जनताके प्रति अपने महान् उत्तरदायित्वको ध्यानमें रखकर उनमें घटा-बढ़ी करनेकी ज़रूरत है।

प्रेसीडेन्ट हचिन्सके अनुसार यूनिवर्सिटी भविष्यका प्रस्फुटनमात्र है, न उससे कम, न उससे ज्यादा। वे कहते हैं—"यूनिवर्सिटीका रुख सदा अन्वेषणकी ओर रहेगा। वह भिन्न भिन्न उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए नई उच्च डिग्रियाँ मुकर्रर कर सकती है। उदाहरणके लिए—आजकल डाक्टर-आफ्-फिलासफ़ीकी डिग्री उन विद्यार्थियोंको भी दी जाती है जो रिसर्चके उद्देश्यसे काम करते हैं और उन्हें भी दी जाती है जो शिक्षक बनना चाहते हैं। यह दोनों मार्ग एकदम एक दूसरेसे असमान हैं, मगर आजकल उन्हें जबर्दस्ती मिलाकर एक ही रास्ता बन जाना पड़ता है।"

पहले वे बहुत ही दबी आवाज़में, किन्तु बिना किसी प्रकारकी अंगभंगीके बोले, और उन्होंने अपनी नीति सबके सामने उपस्थित की, जिससे वे अपनी यूनिवर्सिटीके शासनकालमें अवलम्बन करके पूरा करनेकी चेष्टा करेंगे। उसकी मुख्य बातें यह हैं :—

१. प्रोफेसरोंके वेतनमें वृद्धि।

२. यूनीवर्सिटीके अंडरग्रेजुएट कालेजोंके तरीक़ोंमें क्रान्तिकारी सुधार, जिससे कि विशेष प्रतिभाशाली विद्यार्थी मामूली लड़कोंके द्वारा रोका न जा सके।

३. प्रयोग-सम्बन्धी कामको विस्तृत करना और नये विचारोंकी परीक्षाको और अधिक उत्तेजित करना।

४. 'परिवारकी समस्या' के सदृश समस्याओंपर यूनिवर्सिटीके विशेषज्ञोंका घनिष्ठ सहयोग स्थापित करना। उपर्युक्त समस्यामें यूनिवर्सिटीके ग्यारह विभागोंके और सात प्रोफेशनल स्कूलों—आर्ट और केमिस्ट्रीसे लेकर डाक्टरी तक—के सहयोगकी आवश्यकता पड़ेगी।

५. पुरुष और स्त्रियोंको रिसर्च और क्रियात्मक अध्ययनके लिए तैयार करनेके लिए सर्वोत्तम उपायोंको निकालना और उन्हें सिखलाना।

प्रेसीडेन्ट हचिन्सका प्रारम्भिक व्याख्यान अनेक विचार-रत्नोंसे जगमगाता था। जैसे—

“यूनिवर्सिटी इमारतोंके समूह, या पुस्तकोंके समूह, या विद्यार्थियोंके समूहका नाम नहीं है। वह विद्वानोंका एक समाज है। मनुष्य—और केवल मनुष्य ही—शिक्षाको उत्पन्न करते हैं।”

“यदि शिकागो-यूनिवर्सिटीके शिक्षकगण पहले एक खीमे ही में एकत्रित हुए होते, तो भी एक महान् यूनिवर्सिटी होती।”

“केवल वास्तविकताके संसर्गमें रहकर ही वास्तविक जीवन समझा जा सकता है।”

“दुर्भाग्यवश यूनिवर्सिटी स्थापित करनेवाले व्यक्ति ऐसे थे, जो पढ़ना जानते थे और जिन्हें इस बातका गर्व भी था। इसी बातने पढ़नेके अभ्यासके महत्त्वपर ज़ोर डाला है, और इसीलिए लायब्रेरियाँ वैज्ञानिक खोजका केन्द्र हो रही हैं।”

“क्रियात्मक अध्ययन (जो अंडर-ग्रेजुएटोंको पढ़ानेसे भिन्न है) शिकागो-यूनिवर्सिटीकी प्रारम्भ ही से विशेषता रही है और अन्त तक रहेगी।”

उनके शब्दोंसे यह आसानीसे जाना जा सकता है कि वे शिक्षाको अधिकसे अधिक वैज्ञानिक रूप देनेपर विशेष ज़ोर दे रहे थे। अब तक विज्ञानने जिन तथ्योंको ज्ञात किया है, वे अवश्य ही अपरिपूर्ण और परिवर्तनशील हैं, क्योंकि अब तक वैज्ञानिक तरीक़े ही परिपूर्ण नहीं हुए हैं। मनुष्यका मस्तिष्क अब तक सर्वज्ञता प्राप्त नहीं कर सका, परन्तु विद्यार्थीका काम यह है कि किसी भी समय निरीक्षणके जो सबसे परिपूर्ण तरीक़े उपलब्ध हों, उनके द्वारा सत्यका अन्वेषण करे। उसे वैज्ञानिक ज्ञानका अग्रगामी होना चाहिए। उसके लिए विज्ञानका अर्थ यही है कि निरीक्षण और प्रयोगों द्वारा सत्यका अन्वेषण किया जाय। सत्यकी इस खोजमें समाज-विज्ञान और प्रकृति-विज्ञान सभी आ जाते हैं। यद्यपि मि० हचिन्सने ये बातें कही नहीं थीं, परन्तु ये बातें उनके दिमागमें उपस्थित ज़रूर रही होंगी।

ढाई हज़ार बड़े-बड़े विद्वानोंकी सभाने तीस वर्षीय प्रेसीडेन्ट हचिन्सकी प्रतिज्ञाओं, उनके सिद्धान्तों और भविष्य



प्रेसीडेन्ट राबर्ट मेनार्ड हचिन्स

वाणियोंको सुना। उस दिनको हचिन्स-दिवस कहना चाहिए और उस दिनकी समाप्ति भी बड़ी मनोरंजक हुई। उस दिनका अन्तिम कार्य यह था कि प्रेसीडेन्ट हचिन्सके पिता मि० विलियम जेम्स हचिन्सको, जो बेरा-कालेज केन्टकीके प्रेसीडेन्ट हैं, शिकागो-यूनिवर्सिटीकी ओरसे डाक्टर आफ़्-लाकी सम्माननीय उपाधि दी गई। विनम्र बूढ़ा पिता रुकता हुआ अपने पुत्रके हाथसे डिग्री लेनेके लिए आगे बढ़ा! उस दिनकी समस्त कार्रवाई और रस्में बड़ी प्रभावोत्पादक थीं। प्रेसीडेन्ट हचिन्स उस दिनको 'मेरे जीवनका सबसे महान् दिवस' कहते हैं, परन्तु उस दिनकी समस्त कार्रवाईमें सफेद बालोंवाले वृद्ध पिताका उपाधि-ग्रहण सबसे अधिक विचित्र बात थी। इस दृश्यका देखनेवालोंपर बहुत असर पड़ा और यह उन्हें बहुत दिनों तक याद रहेगा।

दिनके एकदम अन्तिम भागमें, जब व्याख्यानों, गीतों और दावतकी धूम थी, तब राकफेलर फाउन्डेशनके अवकाश ग्रहण करनेवाले सभापति डाक्टर जार्ज ई० विन्सेन्ट खड़े हुए, और उन्होंने उन व्याख्यानोंपर आपत्ति की, जिनमें प्रेसीडेन्ट हचिन्सको 'आश्चर्यजनक बालक (नवयुवक)' बतानेकी चेष्टा की गई थी।

डाक्टर विन्सेन्टने कहा—'प्रेसीडेन्ट हचिन्स उससे ज्यादा—कहीं ज्यादा—हैं। ज़रा उन मरियल तरुणोंके झुण्डका विचार कीजिए, जो कभी बढ़ेंगे ही नहीं! आधुनिक विज्ञानने हमारे आयु-सम्बन्धी विचार बदल दिये हैं। आजकल चरित्र और व्यक्तित्व दिनोंकी गणनाकी चीज़ें नहीं हैं। किसी आदमीका बहुतसे अनुभवोंमेंसे गुज़रना इस बातकी गारंटी नहीं है कि वह बुद्धिमान भी होगा। बहुसंख्यक लोगोंका अनुभव केवल एक धुँधले खाकेके सिवा कुछ नहीं होता। बहुतसे लोगोंको अनुभवके लिए बहुत समयकी आवश्यकता होती है। कुछ ऐसे भी होते हैं—जैसे प्रेसीडेन्ट हचिन्स—जो प्रत्येक बातको शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं।

"प्रेसीडेन्ट हचिन्सकी परीक्षा दोनों प्रकारसे हो चुकी, और उन्होंने बहुत शीघ्र ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, अपनी सूझ-बूझ, कल्पना, अग्रणी होनेके स्वभाव और अपने सर्वप्रिय व्यक्तित्वके लिए ख्याति प्राप्त कर ली है। शिकागो-यूनिवर्सिटी और शिकागोका नगर उनका स्वागत करता है। उनके नेतृत्वमें यह संस्था समाजकी, राष्ट्रकी और मानव-जातिकी जीवनदायिनी, बलवर्धिका और सेविका बनकर शीघ्र अग्रसर होगी।"

हर्षध्वनि!

अन्धा गायक

[लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द']

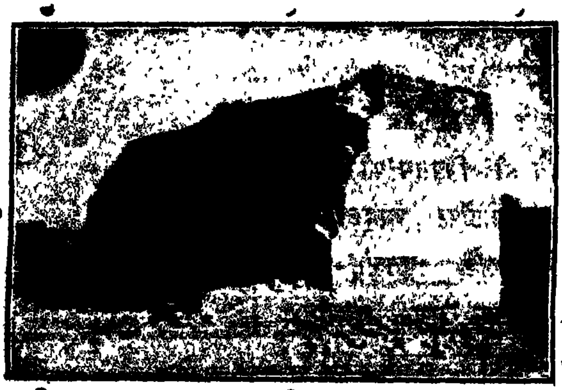
नीरव खँजड़ी लिये गोदमें तुम इस राह-किनारे
तरुके तले टाटपर बैठे रहते हो मन मारे।
सहसा कभी नाच उठती हैं आते ही 'प्रियतम'की याद
खँजड़ीपर अँगुलियाँ, कंठमें तानें, ओठोंपर आह्लाद।
नभकी ओर उठाकर जब ये पलकें 'पुतली'-हीन
आत्म-निवेदन सा करते हो, होकर तुम तल्लीन,
उमड़-उमड़ पड़ते हैं स्वरसे प्राणोंके मदके प्याले,
ठिठक बटोही चित्र लिखे-से रह जाते सुननेवाले।
केवल तुम्हीं देख पाते हो उरकी आँखोंसे उरमें,—
स्वरकी नभचुम्बी डोरोंसे उतर समुद अन्तःपुरमें—
कितनी सुरभि, सुधा-मधु कितना, कितनी छवि, कितना संगीत,—
कितना सुख, कितनी मादकता, कितना स्नेह, प्रकाश, प्रतीति—
इन छोटे-से प्राणोंमें 'प्रिय' एक साथ भर जाते हैं!
तरुके तले बटोही केवल एक गान सुन पाते हैं!
त्रिभुवनका आलोक तुम्हारे अन्तरमें भर जाता है,
अतः बाहरी जगमें तुमको तिमिर शेष रह जाता है!

महात्मा सूरदासकी जन्मभूमि

(रेणुका क्षेत्र)

[लेखक :—अध्यापक हरिहरनाथ टण्डन, एम० ए०]

आगरा शहरसे ११ मील दूर, जी० आई० पी० रेलवेपर रुनकुता नामका एक स्टेशन है। यहाँसे लगभग एक कोसपर ब्रजभाषाके परम प्रसिद्ध कवि, 'सूर-सागर'के निर्माता महात्मा सूरदासकी जन्मभूमि और उनका निवास-स्थान है। सूरदासकी जन्म भूमिके स्थानका नाम 'रेणुका' और इनके निवास-स्थानका नाम 'गऊघाट' है। ये दोनों स्थान जमुनाजीके किनारे स्थित हैं। एकान्तमें बैठकर भगवन-भजन और कविता करनेके लिए यह स्थान कवि रवीन्द्रके शांति-निकेतनसे किसी प्रकार कम नहीं है। गऊघाट



सूर-कुटी (सामनेका भाग) गऊघाट, रेणुकाक्षेत्र

आजकल बिलकुल उजाड़ है। नदी-तटसे कुछ हटकर छोटी ईंटकी एक कुटी बनी है, जिसमें श्रीराम नाम अंकित पत्थर भी लगा हुआ है। यह कोठरी सूरकुटीके नामसे प्रसिद्ध है। बनावट और इसकी जीर्ण अवस्था देखकर इसके चार सौ वर्ष पूर्वकी होनेमें कुछ सन्देहके लिए स्थान नहीं है।

अभी हालमें सेंट-जान्स-कालेजके कुछ विद्यार्थियोंके साथ मुझे वहाँ जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कवि-सम्राट अनन्य प्रेमी उस चर्मचक्षु-विहीन महात्माके आश्रमकी रक्षा आवश्यक समझकर भारत-सरकारके पुरातत्त्व-विभागसे इसके सुरक्षित रखनेकी प्रार्थना भी कर दी गई है। आशा है कि शीघ्र ही यह स्थान 'सुरक्षित' कर दिया जायगा। वास्तवमें सूर-कुटी श्रीकृष्ण-भक्तों और हिन्दीके विद्यार्थियोंके लिये तीर्थस्थान-सा महत्त्व रखती है। हिन्दीके पठन-पाठनकी



सूर-कुटी पिछला भाग और गिरी हुई ईंटें

अधिकताके साथ-साथ यह आशा है कि हिन्दीके विद्यार्थी भी अपने जातीय कवियोंकी समाधियों और उनके जन्म-स्थानोंके प्रति वही आदर प्रदर्शित करेंगे, जो दूसरे स्वतन्त्र देशके विद्यार्थी अपने कवियोंके प्रति करते हैं। रेणुकाक्षेत्रमें पाँच और तीर्थ हैं और वहाँ सोमवती-स्नानका बड़ा महात्म है। इसकी कथा स्कंधपुराणमें विस्तार-पूर्वक लिखी हुई है। अस्तु, 'विशाल-भारत'के पाठकोंके अवलोकनार्थ सूरदासजीकी कुटिया तथा गऊघाटके चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

भुमराका शिव-मन्दिर

[लेखक—श्री शारदाप्रसाद]

मध्य-भारतमें उचेहरा स्टेशनके पास परसमनिया पहाड़ी है। सन् १९२० में श्री राखालदास बनर्जीको इसपर घने जंगलमें एक प्राचीन मन्दिरके चिह्न मिले। उन्होंने नागौद दरबारके व्ययसे जंगलको साफ कराया और खुदाई कराई। खुदाईमें एक बहुत प्राचीन मन्दिर निकला। यद्यपि मन्दिर खंडहर हो चुका है, फिर भी इस बातका पता चल जाता है कि अपने समृद्ध-कालमें उसकी बनावट कैसी थी।



भुमराके मन्दिरका पिछला हिस्सा

मन्दिर भुमरा गाँवके पास होनेके कारण 'भुमराका शिव-मन्दिर' के नामसे प्रसिद्ध हो गया है, परन्तु आसपासके लोग इस स्थानको भाकुलदेव कहते हैं। श्री राखालदास बनर्जीका मत है कि अब तक जितने प्राचीन स्थान मिले हैं, उनमें यह हिन्दुओंका सबसे प्राचीन मन्दिर है। गुप्त-साम्राज्य कालमें विक्रमीय चौथी शताब्दीमें इसका निर्माण हुआ था।

गर्भ-गृह तो अब भी किसी दशामें खड़ा है, शेषमन्दिर अर्थात् परिक्रमा-पथके चारो ओरकी बाहरी दीवाल और सामनेका मंडप, चबूतरा आदि बिलकुल गिर गया है। चौरस गढ़े हुए बड़े-बड़े पत्थरोंको एक दूसरेपर रखकर मन्दिर बनाया गया था। किसी प्रकारके गारे-चूनेका प्रयोग नहीं किया गया था। छत बहुत बड़े-बड़े पाटन रखकर बना दी गई थी, इसका भी एक भाग टूट गया है। मन्दिरके गर्भगृहकी विशाल चौखट पत्थरकी बनी है। उसकी कारीगरी अपूर्व है। नीचे अगल-बगल मकर तथा कूर्म-वाहन-युक्त और परिचारक-परिचारिकासे सेवित गंगा तथा यमुनाकी बड़ी सुन्दर मूर्त्तियाँ हैं। ऊपरके पाटनके मध्यमें शिवजीकी मूर्ति भी देखने लायक है। यह चौखट आजकल उचेहरामें श्री वरमेन्द्रनाथके मन्दिरके अहातेमें पड़ी है। बाहरी दीवालमें शिवगणोंकी बहुत सुन्दर छोटी मूर्त्तियाँ बनी थीं। दीवालके गिर जानेके कारण अब ये मन्दिरके चारों ओर पड़ी हैं। शिवगणोंकी मूर्त्तियोंके रूप अद्भुत हैं। कोई मोटा है तो कोई नाटा; किसीका [illegible] है तो किसीके पेटमें एक और मुख है। इसके अतिरिक्त, उन सबके बाल देखने लायक हैं। उनके बाल इतने भिन्न-भिन्न और विचित्र



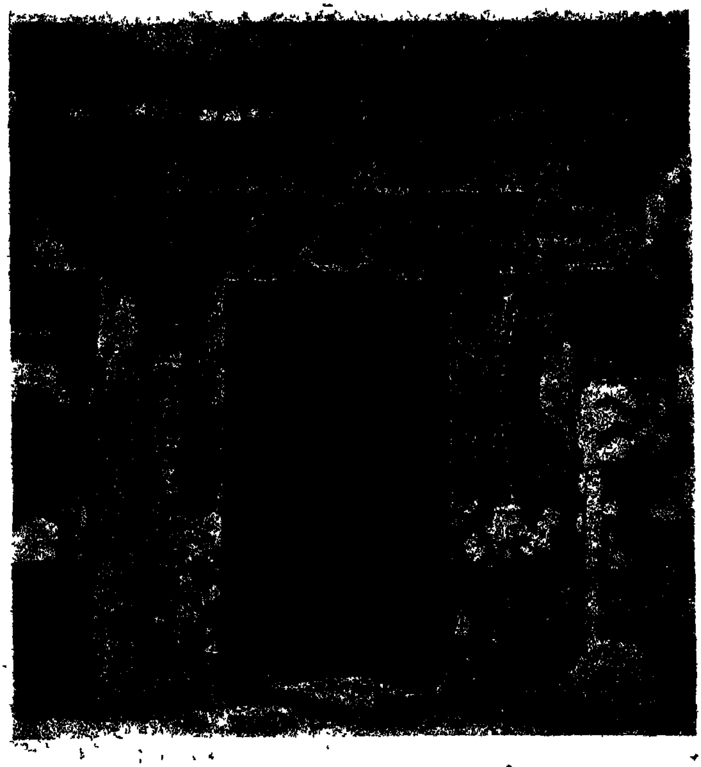
भुमराके शिव-मन्दिरका साधारण दृश्य



भुमराके मन्दिरकी एक सुन्दर मूर्तिका मुख

तरीक़ोंसे बनाये गये हैं कि आजकलके शौकीनोंसे भी न बनें। इन मूर्तियोंको देखकर गोस्वामी तुलसीदासका शिव-गणोंका वर्णन याद आ जाता है।

मन्दिरमें एक अत्यन्त सौम्यमूर्त्ति एक मुखलिंग स्थापित था। यह अब गर्भगृहमें एक ओर पड़ा है। मन्दिर प्राचीन कालकी शिल्प और स्थापत्य-कलाका एक उत्तम उदाहरण है, और ऐसा दूसरा मन्दिर अब तक कहीं नहीं मिला है। अजयगढ़-रियासतका नचना-कुठराका पार्वतीजीका मन्दिर भी बहुत प्राचीन है और वह भी ऐसे ही नक़्शेका बना था, परन्तु वह दो-मंजिला था और उसकी बाहरी दीवालमें स्वाभाविक पहाड़ी चट्टानोंकी नक़ल उतारनेका प्रयत्न किया गया था, जिसमें जगह-जगह जंगली जानवर दिखलाये गये थे। भुमराके मन्दिरमें दूसरी मंजिलके कोई चिह्न नहीं मिले। बाहरी दीवालपर ऊपर लिखे अनुसार शिवगणोंकी मूर्तियाँ हैं। विद्वानोंका मत है कि भुमराका मन्दिर, नचना कुठराके मन्दिरसे कम-से-कम पचास वर्ष पुराना है।



भुमराके मन्दिरकी विशाल पत्थरकी चौखट

दोनों ही मन्दिर खंडहर हैं। भुमराके मन्दिरकी कुछ बहुत बढ़िया मूर्तियाँ किसी अजायबघरको चली गई हैं।

चौखट तथा बाहरी दीवालके अनेक पत्थर उचेहरामें पड़े हैं। सम्भव है कि आस-पासके गाँवोंमें भी कुछ पड़े हों। ऐसे प्राचीन स्थानका इस प्रकार स्वयं हिन्दुओंके हाथसे नाश होना बड़ी लज्जाकी बात है। हर्षकी बात है कि नागौद-दरबारका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है, और उचेहराके कुल पत्थर भुमरा भेजे जानेवाले हैं। जितने पत्थर मिल सकें सबोंको एकत्रित करके मन्दिरको पुनः अपने पूर्व रूपमें बनवा देना आवश्यक है। इस कार्यके लिए यदि कोई धनी शौक सज्जन तैयार हो जायँ, तो इस प्राचीन मन्दिरका जीर्णोद्धार हो जाय। चन्दा करना शुरू तो अवश्य कर दिया गया है, परन्तु देखना है कि उदासीन हिन्दू-जातिका ध्यान इस ओर आकर्षित होता है या नहीं।

पुष्यमित्र

[लेखक :—अध्यापक बेनीमाधव अग्रवाल, एम०ए०]

कलिंग-युद्धमें जो भीषण रक्तपात हुआ, उसने मौर्य-सम्राट् अशोककी नीतिमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि भविष्यमें वे कभी युद्ध नहीं करेंगे। वे मैत्री और अहिंसाके उपासक बन गये। कुछ कालके उपरान्त आचार्य उपगुप्तसे उन्होंने बौद्धधर्मकी दीक्षा ली। अपने प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्वकी सारी स्फूर्तिके साथ विशाल एवं सुसंगठित मौर्य-साम्राज्यकी सारी शक्तिको उन्होंने इस धर्मके प्रचारमें लगा दिया। यह धर्म दया, प्रेम, मैत्री, सदाचार और निःस्वार्थ सेवाका धर्म था। वे चाहते थे कि न केवल भारतवर्षमें, वरन् संसार भरमें इस धर्मका प्रचार हो। इसी आदर्शकी सेवामें सम्राट् अशोकने अपने जीवनके शेष भागको लगाया।

उन्होंने अद्भुत सफलता पाई। बौद्धधर्मका सन्देश भारतके कोने-कोनेमें पहुँच गया। क्या उत्तर, क्या दक्षिण, सर्वत्र ब्राह्मणोंके धर्मकी शक्ति घटने तथा बौद्धोंकी प्रबल प्रधानता बढ़ने लगी। लोगोंके आचार-विचारपर बौद्धधर्मका प्रभाव पड़ने लगा। सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा आचार्य चाणक्यका मत था कि विशाल सुशिक्षित सेनाको तैयार रखना, देशमें जान-मालकी रक्षाकर सुव्यवस्थाको फैलाना, बाहरी आक्रमणकारियों तथा भीतरी विद्रोहियोंसे देशकी रक्षा करना तथा आर्थिक एवं व्यापार-विषयक उन्नतिके साधनोंको प्रस्तुत करना ही राजनीतिका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। धार्मिक मामलोंसे कोई विशेष सम्बन्ध रखनेकी आवश्यकता नहीं। किन्तु अशोकने इस नीतिमें परिवर्त्तन कर दिया। धर्म और सदाचारको फैलाना ही वे राजनीतिका प्रधान उद्देश्य मानने लगे।

अशोककी इस परिवर्तित नीतिके कारण बौद्धधर्म तथा संस्कृतिकी जो अभूतपूर्व उन्नति हुई, उसकी चर्चा हम यहां नहीं करेंगे। यहाँपर हमें यही देखना है कि राष्ट्रीय और राजनीतिक दृष्टिसे भारतपर उसका क्या असर पड़ा।

दया, मैत्री, अहिंसा आदि सिद्धान्तोंके वातावरणमें युद्ध-विद्याका महत्त्व घटने लगा। राजनीतिमें तो युद्धको स्थान ही नहीं रहा। स्वयं अशोकने तलवारको म्यानमें रखकर भिक्षु-वेष धारण कर लिया। कितने राजपुत्रों और क्षत्रिय कुमारोंने उनका अनुसरण न किया होगा? वह युग भिक्षुओंका युग था। लोगोंको भिक्षुका पीत-परिधान सैनिककी पोशाकसे अधिक आकर्षित करता था। जिन्हें देशकी रक्षाके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए था, वे अहिंसातत्त्वके प्रचारमें लग गये। फलतः देशकी सामरिक शक्तिका ह्रास होने लगा। आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिसे उनका महत्त्व कुछ भी हो, किन्तु राजनीतिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे अहिंसा, शान्ति और मैत्रीका पाठ हमें कमजोर बना देता है। आततायी

शत्रु इन महान् तत्त्वोंका महत्त्व न समझकर हमारी शारीरिक निर्बलतासे लाभ उठाते हैं। हम उनकी पाशविक शक्तिके शिकार बन जाते हैं, और अन्तमें हम उन्हीं आदर्शोंके पालन करने योग्य नहीं रह जाते, जिनकी उपासना और प्रचार करना हमारा प्रधान ध्येय होता है। यह एक कठोर सत्य है, और भारतका इतिहास इसका साक्षी है।

पहले बौद्धधर्म मगध तथा कोशल प्रान्तोंमें ही सीमित था। उसे लोग ब्राह्मण-धर्मका एक सुधार सम्प्रदाय ही समझते थे, किन्तु अब उसकी अभूतपूर्व उन्नति हुई। वह न केवल सारे भारतमें, वरन् अनेक देशोंमें फैल गया। अब यह असम्भव था कि बौद्धधर्म ब्राह्मण-धर्मका एक अंग माना जाता। अब उसका स्वतन्त्र अस्तित्व एवं प्रधानता घोषित होने लगी। उसका अपूर्व उत्थान देखकर ब्राह्मण घबड़ाये, उन्हें आत्म-रक्षाकी चिन्ता होने लगी। देशमें दो बड़े-बड़े साम्प्रदायिक विभाग हो गये—ब्राह्मण और बौद्ध। इसका परिणाम हुआ, आपसकी फूट और निर्बलता।

यह सच है कि अशोकके जीवनकालमें उनकी नीतिके कोई अश्रेयस्कर परिणाम प्रकट नहीं हुए। ग्रीक लोगोंकी एक महत्त्वाकांक्षा थी—भारतको जीतना। दिग्विजयी सिकन्दरने भारतके कुछ प्रान्तोंको जीता भी था, किन्तु दो-तीन साल बाद ही चन्द्रगुप्तने ग्रीक सेनाओंको परास्त कर उन्हें छीन लिया। फिर पन्द्रह वर्षके बाद सेल्यूकसने उन प्रान्तोंको जीतनेका प्रयत्न किया, किन्तु हारकर उसे भी सन्धि करनी पड़ी, जिससे चन्द्रगुप्तको दो प्रान्त और मिले। इससे मौर्य-साम्राज्यकी पश्चिमोत्तर दिशामें वैज्ञानिक सीमा प्राप्त हो गई। इस सीमाके उस पार ग्रीक लोग राज्य करते थे। भारतको जीतनेकी इच्छा उनमें बनी हुई थी, किन्तु जब तक महाराज अशोक जीवित रहे, तब तक उन्हें इस इच्छाको कार्यरूपमें परिणत करनेका साहस नहीं हुआ। इसके कई कारण थे। ग्रीक लोग कुछ समय तक आपसमें ही लड़ते रहे। बौद्ध-भिक्षुओंके उपदेशोंसे कदाचित् उनकी विजय तथा युद्धकी लालसा कुछ कम हो गई, किन्तु उनके चुप रहनेका प्रधान कारण महाराज अशोकका प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व ही था। मौर्य-साम्राज्यके अन्तर्गत कलिंग आन्ध्र आदि देश ऐसे थे, जिनमें अपनी खोई हुई स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छा थी। तथापि महाराज अशोकके समय हम किसी भी विदेशी आक्रमणका अथवा किसी प्रान्तीय विप्लव या विद्रोहका वृत्तान्त नहीं पाते। अशोकके व्यक्तित्वने सब आक्रमण-कारियोंके प्रवृत्तियोंको शान्त कर दिया। यही कारण है कि उनके जीवन-कालमें उनकी नीतिके कोई हानिकर परिणाम प्रकट नहीं हुए।

ईस्वी-सन् पूर्व २३२ में अशोककी मृत्यु हुई। जिन कुपरिणामोंको उनके व्यक्तित्वने दबा रखा था, वे अब धीरे-धीरे प्रकट होने लगे। इस विषयपर कोई टीका-टिप्पणी न कर इतना ही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि उनकी मृत्युके एक वर्ष बाद ही आन्ध्र देशने स्वतन्त्रताका झण्डा फहराया। शिमूक वहांके नेता थे। आन्ध्रके विद्रोहको मौर्य-शक्ति नहीं दबा सकी, इससे उसके ह्रासका पता लगता है। यह कहा जा सकता है कि अशोकके उत्तराधिकारी निर्बल थे। उनमें न अशोकका व्यक्तित्व था, न चन्द्रगुप्तका युद्ध-कौशल, न चाणक्य जैसी राजनीति-कुशलता। शासन-संगठनका ढीलापन और सेनाकी कमज़ोरी भी मौर्य-पराजयके प्रधान कारण थे। कुछ वर्षोंके बाद श्री खारवेलके नेतृत्वमें कलिंगने भी स्वतन्त्रताका युद्ध प्रारम्भ किया। इतने भीषण रक्तपातके बाद जिस देशको अशोकने जीता था, उसे उसके उत्तराधिकारी अपने अधिकारमें नहीं रख सके। इस प्रकार मौर्य-साम्राज्यका अंग-भंग होने लगा।

देशकी निर्बल और विच्छिन्न दशा देखकर ग्रीक लोगोंकी भी विजय-लालसा जागृत हो उठी। सीरियाके राजा एन्टिओकसने ईस्वी-सन्-पूर्व २०६ में काबुलपर आक्रमण किया। काबुलके शासक सुभगसेनकी हार हुई और विजेताको धन, हाथी आदि देकर उसने अपनी जान बचाई। सात वर्ष बाद बेक्ट्रिया (Bactria) के राजा डियोडोटसने गान्धार और पंजाबको जीता, और 'भारतवासियोंका अधिपति' यह उपाधि

धारण की। इसके बाद यूकेटाइडिज़ने भारतपर चढ़ाई की। उसने अपने एक कुटुम्बी मिनेन्दरको काबुलका शासक नियुक्त किया। मिनेन्दर बड़ा योग्य एवं बलशाली राजा था। उसमें सिकन्दर जैसी महत्त्वाकांक्षा थी, वह भारतको जीतना चाहता था।

इस प्रकार भारतके अनेक प्रान्त यवनोंके हाथ पड़ने लगे। बौद्धधर्मावलम्बी मौर्य-सम्राटोंने देशकी रक्षा क्यों नहीं की? जिन विशाल सेनाओंको चन्द्रगुप्तने सुशिक्षित किया था, वे कहां गईं? वे सेनापति जो ग्रीक और भारतीय दोनों युद्ध-विद्याओंमें निपुण होते थे, किधर गये? वह राजनीति जो यवनोंको देशसे निकालना राजाका परम प्रधान कर्तव्य मानती थी, अब कहां थी? चन्द्रगुप्तकी कीर्ति हुई थी—ग्रीकोंकी पराजय, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तोंपर अधिकार, साम्राज्य और सेनाके संगठनसे। बिम्बिसारकी कीर्ति थी -आन्ध्र विजय। अशोककी कीर्ति थी—कलिंग विजय। किन्तु जब उन सबकी कीर्तिका लोप हो रहा था, उस समय उनके उत्तराधिकारी पाटलिपुत्रमें चुपचाप बैठे थे। देशकी ऐसी संकटपूर्ण परिस्थितिमें भी उन्हें अपने कर्तव्यका ध्यान नहीं आया। यह कहना कि वे बौद्ध धर्मसे प्रेरित होकर शान्त बैठे थे, बौद्धधर्मको कलंकित करना है। वे अशक्त थे, राजनीति-ज्ञानसे अनभिज्ञ थे। ईस्वी-सन्-पूर्व १९० में बृहद्रथ नामक मौर्य राजा पाटलिपुत्रके सिंहासनपर आसीन था। साम्राज्यका अंग-भंग हो रहा था। देशकी इज्ज़त मिट्टीमें मिल रही थी। इसकी उसे कोई परवाह नहीं थी। क्या वह अपनी प्रजाका श्रद्धाकापात्र था?

यह स्पष्ट था कि ऐसी शोचनीय अवस्थासे देशका उद्धार करनेके लिए एक क्रान्तिकी आवश्यकता थी। इस क्रान्तिमें ब्राह्मणोंने बहुत भाग लिया। पुष्यमित्र इसी क्रान्तिके नेता और विधाता थे।

किसी महापुरुषके महत्त्वको ठीक ठीक समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि उसके समयकी परिस्थिति क्या थी, इसीलिए हमने उपर्युक्त प्रकरणोंमें उन घटना-प्रवाहोंका संक्षिप्त वर्णन किया है, जिन्होंने पुष्यमित्रके उत्थान-कालके लगभग उग्ररूप धारण कर लिया था। भूमिकात्मक होते हुए भी यह वर्णन कुछ सविस्तर हो गया है।

पुष्यमित्र मौर्य-सेनाके प्रधान सेनापति तथा विदिशा-प्रान्तके शासक थे। वे बौद्धधर्मानुयायी नहीं थे। उनके सम्बन्धमें हमारे ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम हैं, इसलिये उनके जीवनका कोई विस्तृत वृत्तान्त नहीं लिखा जा सकता। वे ब्राह्मण थे या क्षत्रिय, इस विषयमें भी मतभेद है। तिब्बतके इतिहासकार तारानाथ कहते हैं कि वे मौर्य सम्राटोंके पुरोहितोंके घरानेके थे – ब्राह्मण थे। ईस्वी-सन्-पूर्व १८५ में पुष्यमित्र पाटलीपुत्र आये। महाराज बृहद्रथ सेनाका निरीक्षण करनेके लिए गये और वहाँपर वे मार डाले गये। इस षड्यंत्रके नेता पुष्यमित्र थे। इस षड्यंत्रको दो प्रधान कारणोंने प्रेरित किया था। पहला, ब्राह्मण लोग अपनी खोई हुई प्रधानताको पानेके लिए आन्दोलन कर रहे थे, और वे चाहते कि हमारा ही आदमी, न कि कोई बौद्ध, पाटलिपुत्रका राजा हो। दूसरा, बहुतसे लोग देशकी संकटपूर्ण परिस्थितिका विचारकर यह चाहते थे कि कोई ऐसा राजा गद्दीपर बैठे, जो यवनोंसे भारतका उद्धार कर सके। पहला आन्दोलन था साम्प्रदायिक और दूसरा था राजनीतिक। दोनोंमें ब्राह्मणोंका हाथ था। राजाकी हत्याके बाद पुष्यमित्रने पाटलीपुत्रपर अधिकार जमाया और अपनेको सम्राट् घोषित किया। इस प्रकार मौर्य-वंशको अलगकर उन्होंने पाटलिपुत्रमें शुङ्ग-वंशका आधिपत्य स्थापित किया।

पुष्यमित्रने अपने स्वामीकी हत्यामें क्यों भाग लिया? इसके उत्तरमें विशेष मतभेद नहीं है। बाण लिखते हैं— "प्रतिज्ञा दुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषा सैन्य सेनानीर-नार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनं।" अर्थात सेनाके दिखानेके बहानेसे नीच सेनापति पुष्यमित्रने अपने स्वामी मौर्य बृहद्रथको मार डाला, जो प्रतिज्ञा-पालन करनेमें दुर्बल था।' इस उद्धरणमें 'प्रतिज्ञा दुर्बलं' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। बृहद्रथ मौर्य कौनसी प्रतिज्ञाको पालन करनेमें असमर्थ सिद्ध हुआ? आर्य-राजनीतिके अनुसार

राजाको प्रजाके हिताहितका सदैव ध्यान रखना चाहिए। उसे निश्चेष्ट बैठने और अनियन्त्रित शासन करनेका अधिकार नहीं था। प्रत्येक राजाको सिंहासनपर बैठते समय यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि "मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। यदि मैं तुम लोगोंपर अत्याचार करूँ, तो मेरे प्राण ले लिये जायँ और मेरी कोई सन्तान बाक़ी नहीं रहे।" महाभारतके शान्तिपर्वमें युधिष्ठिरको राजधर्मका उपदेश देते हुए राजर्षि भीष्म तो यहाँ तक कहते हैं कि "जो राजा अपनी प्रजासे कहता है कि मैं तुम्हारा रक्षक हूँ, किन्तु वास्तवमें उनकी रक्षा नहीं करता, वह समस्त प्रजा द्वारा पागल कुत्तेकी तरह मार डाले जाने योग्य है।" श्री जायसवालजी कहते हैं—"मौर्य-वंशके अन्तिम युगमें जो राजा हुए, वे पतित थे, राजनीतिमें निर्बल थे, इसलिये राज्यकी भलाईके लिए तथा देशको यवनोंके आक्रमणसे बचानेकी इच्छासे पुष्यमित्रको बृहद्रथका वध करना पड़ा।" हेविल कहता है—"आर्य-राजत्वके कर्तव्योंकी अवहेलना करनेके लिए मौर्य-वंशको पुष्यमित्र द्वारा दण्ड मिला।" देशकी रक्षा न कर सकनेके कारण ही मौर्य-सम्राट्को अपने प्राण खोने पड़े। जनताने पुष्यमित्रका विरोध नहीं किया, क्योंकि हम जानते हैं कि बिना किसी अड़चनके पुष्यमित्र मगधके राजा बन गये। स्वामि-द्रोहके जघन्य अपराधकी कालिमा क्या देशोद्धारके पावन जलसे छूट सकती है? यदि हाँ, तो हमें कहना पड़ेगा कि पुष्यमित्रका अपराध क्षम्य था।

सुख और आराम भोगनेके लिये पुष्यमित्रने राजमुकुट नहीं पहना था। उस समय मगधकी परिस्थिति बड़ी संकट पूर्ण थी। साम्राज्यका अंगभंग हो चुका था। शासन-संगठन ढीला पड़ गया था। पुष्यमित्रके उत्थानसे बौद्ध लोग चबड़ा गये थे। ग्रीक लोग युक्त-प्रान्त तथा मगधपर आक्रमण करना चाहते थे। कलिंग-नरेश श्री खारवेल बड़ा महत्वाकांक्षी था। वह मगधको अपने राज्यमें मिलाना चाहता था। आन्ध्र राजाओंकी भी शक्ति बढ़ रही थी। आपसमें मिलकर यवन-शत्रुके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए वे लोग तैयार नहीं थे। राजगद्दीपर बैठते ही पुष्यमित्रको इन विकट समस्याओंका सामना करना पड़ा।

अपनी सीमित शक्ति तथा चारों तरफ़से घेरे हुए संकटोंका विचारकर पुष्यमित्रने यह समझ लिया कि मौर्य-साम्राज्यके सब प्रान्तोंको एकबारगी जीत लेना असम्भव होगा, अतः सबसे पहले उन्होंने घरकी हालतको सुधारना ही उचित समझा। मगध, तिरहुत, युक्तप्रान्त और मालवा यही प्रान्त उनके अधीन बचे थे। यहांके शासनका पुनः संगठन किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र अग्निमित्रने विदर्भको जीता। पुष्यमित्रने आन्ध्र, कलिंग आदि देशोंको जीतने तथा साम्राज्यका विस्तार करनेका प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि उनका मुख्य अभिप्राय यवनोंसे लड़नेका था। वह गृह-युद्धमें अपनी सीमित शक्तिको बरबाद नहीं करना चाहते थे।

किन्तु कलिंग-नरेशकी विजय-लालसा कैसे शान्त हो सकती थी। वह पुष्यमित्रसे जलता था और मगधपर राज्य करना चाहता था। इसलिये उसने ईस्वी-सन्-पूर्व १६५ में मगधपर आक्रमण किया, किन्तु सफल नहीं हुआ। ईस्वी-सन्-पूर्व १६१ में उसने फिर चढ़ाई की। इस बार उसने पाटलिपुत्रको घेर लिया। उत्तर-पश्चिमसे ग्रीक लोगोंका आक्रमण प्रारम्भ हो गया था। पुष्यमित्रकी शक्ति ऐसी नहीं थी कि वह घरू दुश्मन और बाहरी दुश्मन—दोनोंका सामना कर सके, इसलिए उसने खारवेलसे सन्धिके लिए आग्रह किया। खारवेलने भी देखा कि पुष्यमित्रको हराना कोई सरल काम नहीं है। पाटलिपुत्रमें प्रथम जैन-तीर्थङ्कर ऋषभदेवकी विशाल सुवर्ण-मूर्ति थी। इस मूर्तिको महापद्मनन्द (नन्द-वंशका पहला राजा) कलिंगके राजाको हराकर छीन लाया था और पाटलिपुत्रमें स्थापित की थी। अपने पूर्वजके अपमानका बदला चुकानेकी इच्छासे जैन राजा श्री खारवेलने सन्धिके मूल्य-स्वरूप पुष्यमित्रसे इसी मूर्तिको ले लिया, और अपने देशको लौट गया। *

* खारवेल अपने हस्तिगुफ़ाके लेखमें कहता है कि पहले आक्रमणमें उसने पुष्यमित्रको मथुराकी तरफ़ भगा दिया और दूसरे

शासन-संगठन हो चुका। कलिंगका डर भी नहीं रहा। अब पुष्यमित्र ग्रीक लोगोंसे भिड़नेके लिए तैयार थे, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी सब समस्याएँ हल हो चुकी थीं, अथवा सारा देश उन्हें सहायता देनेको तैयार था। बौद्ध लोग उनके विरोधी थे। वे समरशक्तिसे काम नहीं लेते थे। सारे देशमें उनके बड़े-बड़े मठ बने हुए थे। वेही उनके केन्द्र थे और यहींसे वे राजद्रोह कर सकते थे। विशेषकर उस दशामें, जब कि एक बलवान यवन-शत्रु पुष्यमित्रपर आक्रमण कर रहा था। देशकी स्वाधीनता सकटमें है, यह विचार बौद्ध-भिक्षुओंपर यह असर नहीं डाल सका कि वे पुष्यमित्रकी सहायता करते। पुष्यमित्रको यह भी भय था कि कहीं आन्ध्र-नरेश और कलिंगाधिपति मगधपर धावा न बोल दे। इन कारणोंसे पुष्यमित्रने आगे बढ़कर यवनोंको रोकना उचित नहीं समझा। वह आत्म-रक्षाके लिए प्रस्तुत हो गये। उन्होंने यह समझ लिया कि यदि मैं मगधको बचा सका, तो अन्य प्रान्तोंको बचानेमें अधिक कठिनाई नहीं होगी।

वीर मिनेन्दरके सेनापतित्वमें ग्रीक लोगोंने भारतपर आक्रमण प्रारम्भ किया। यह भारतपर यूनानियोंका तीसरा स्मरणीय आक्रमण था। पहला सिकन्दरने किया था, दूसरा सेल्यूकसने। एक बड़ी फौज लेकर ईस्वी सन् पूर्व १६५ में मिनेन्दरने सिन्धपर चढ़ाई की, और बिना कठिनाईके उसे जीत लिया। इसके बाद उसने गुजरात-प्रान्तपर अधिकार जमाया। फिर राजपूतानेपर चढ़ाई की। वहाँ अनेक नगरों और किलोंको फतहकर मध्यामिकाके विशाल एवं प्रसिद्ध दुर्गको घेर लिया। मध्यामिका आधुनिक चितौरके पास बसा हुआ था। यहाँपर पहले-पहल मिनेन्दरको कुछ कठिनाई हुई। अग्निमित्रके भेजे हुए कुछ सैनिक मध्यामिकाकी रक्षाके लिए पहुँच गये। यह मिनेन्दरके विजय-पथमें पहली रुकावट थी, किन्तु वह रुकनेवाला वीर नहीं था। मध्यामिकाके घेरे रखनेके लिये थोड़ीसी फ़ौज छोड़कर मिनेन्दरने अपनी विजय-यात्राको जारी रखा। अब उसने युक्त-प्रान्त (मध्य-देश) पर चढ़ाई की। हिन्दुओंके प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान मथुराका पतन हो गया। मथुराके बाद उसने साकेत (अयोध्याके पास) को घेरा। फिर दोआबको जीतकर प्रयागकी तरफ़ बढ़ा और काशी तथा पाटलिपुत्रपर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगा। कोई भी यवन विजेता, स्वयं सिकन्दर तक, भारतमें इतनी दूर तक नहीं आ सका था। देशमें हलचल मच गई। भारतवासियोंकी स्वाधीनताकी नौका डगमगा रही थी। काशी हिन्दुओंकी पुनर्जागृतिका केन्द्र था। पाटलिपुत्र हिन्दुओंके राजनीतिक पुनरुत्थानका केन्द्र था। यदि इन दोनों नगरोंका भी पतन हो जाता ?

अब पुष्यमित्रने अपनी सेना लेकर यवन विजेतासे लड़नेके लिए पाटलिपुत्रसे प्रस्थान किया। सम्भव है कि सैन्य संचालनका कार्य राजपुत्र अग्निमित्रको सौंपा गया हो, क्योंकि पुष्यमित्र कुछ वृद्ध हो गये थे। जो युद्ध उस समय प्रारम्भ हुआ, वह अवश्य ही बड़ा भीषण रहा होगा। दुर्भाग्यसे उसका कोई सविस्तर वर्णन नहीं मिलता। हमारे पूर्वजोंने अपने सामरिक पराक्रमकी घटनाओंका विस्तार-पूर्वक वर्णन लिखना उचित नहीं समझा। चन्द्रगुप्तने सेल्यूकसको हराया किन्तु उस युद्धकी घटनाओंका हाल हमें नहीं मिलता। पुष्यमित्र और मिनेन्दरका युद्ध बहुत समय तक जारी रहा। हमारे ऐतिहासिक प्रमाण केवल इतना ही कहते हैं कि यवनोंकी हार हुई। एक एक करके मिनेन्दरके सब जीते हुए प्रान्त और नगर छीन लिये गये। मगधसे सिन्धु नदी तक पुष्यमित्रकी विजय-पताका फहराने लगी। हारकर, निराश होकर, मिनेन्दर अपने राज्य काबुलको लौट गया।

आक्रमणमें पाटलिपुत्रको जीतकर लूट लिया। यह लेख अहमितिके भावोंसे भरा हुआ है। उसकी बातोंको पूर्णरूपसे ऐतिहासिक प्रमाण मानना ठीक नहीं होगा। इसी प्रकार आन्ध्रके सम्बन्धमें भी खारवेलने अपनी खूब प्रशंसा की है। यदि उसने पुष्यमित्रको पूरी तरह हराया होता, तो वह पाटलिपुत्रपर कब्जा क्यों नहीं करता ? पुष्यमित्र तब अश्वमेध-यज्ञ कैसे कर सकते ? अन्य प्रमाण और घटनाएँ भी खारवेलके लेखकी बातोंको पुष्टि नहीं करतीं।

इस प्रकार पुष्यमित्रने स्वदेशको यवनोंसे बचाकर राजधर्मका पालन किया। मिनेन्दरका आक्रमण यूनानियोंका भारतको विजय करनेका तृतीय एवं अन्तिम प्रयत्न था। ईस्वी सन् पूर्व ३२७ में सिकन्दरने इस महत्वाकांक्षाको कार्य रूपमें परिणत करनेका प्रयत्न किया। ईस्वी सन् पूर्व १५३ में मिनेन्दरकी पराजयके साथ इसकी इति श्री हो गई। भारत तथा यूनान दोनों सुसभ्य देश थे। सामरिक तथा राजनीतिक झगड़ोंके अन्त हो जानेपर दोनों देशोंमें संस्कृतिका सम्बन्ध जारी रहा, जिससे दोनोंका बहुत कुछ उपकार हुआ।

इस प्रसंगमें मिनेन्दरके जीवनकी दो-एक मुख्य घटनाओंका उल्लेख पाठकोंको रुचिकर होगा। सिकन्दरकी सी महत्वाकांक्षा लेकर मिनेन्दरने भारतपर चढ़ाई की थी। कुछ समय तक चंचला विजयलक्ष्मी उसपर मुसकराई भी। फिर कुछ छोटी-छोटी रुकावटें उसके सामने आईं, अन्तमें उसे पूर्ण पराजयका सामना करना पड़ा। उसकी विजय-लालसा नष्ट हो गई। काबुल लौटकर उसने देखा कि छोटे-छोटे भीक राजा आपसमें लड़ रहे हैं। पराजयसे वह निराश हो ही चुका था, गृह-युद्धने उसे बिलकुल खिन्नकर दिया। युद्धसे उसका मन उचट गया। उसका जीवन एक प्रकारसे निरुद्देश्य-सा हो गया।

लेकिन भारतमें उसका आना पूर्णतया निष्फल नहीं हुआ। अशोककी लगाई हुई लता सारे भारतमें कुसुमित हो रही थी। जो कार्य अशोकने किये थे, उनमें अब भी यवनोंपर आध्यात्मिक विजय प्राप्त करनेकी शक्ति थी। सारे देशमें मिनेन्दरने बौद्ध-मठोंको देखा था। वहाँ भिक्षु-भिक्षुणी रहते और धर्म-आचरण, ज्ञानोपार्जन तथा निःस्वार्थ सेवामें अपना जीवन व्यतीत करते थे। सांसारिक वैभवकी परवाह न कर, युद्ध-विग्रह आदिसे तनिक भी प्रभावित न हो, यहाँ तक कि देशकी स्वतन्त्रता तथा दासताके प्रश्नोंके प्रति भी उदासीन होकर वे विश्वमैत्री अहिंसा आदि तत्वोंकी शान्ति-पूर्वक उपासना करते थे। अपने देशपर आक्रमण करनेवाले यवनके लिए भी उनके हृदयमें सहानुभूति थी—आतिथ्य भाव भी था। पराजयके बाद अपने जीवनकी ऐश्वर्यदायिनी आशाओंके मिट्टीमें मिल जानेके अनन्तर, काबुल-नरेश मिनेन्दरने इन बौद्ध-भिक्षुओंका सत्संग प्रारम्भ किया। मिनेन्दर तथा बौद्ध विद्वान नागसेनमें जो वार्तालाप एवं प्रश्नोत्तर हुए, वे सौभाग्यसे बौद्धोंकी 'मिलिन्दा-पन्हो' अर्थात् 'मिनेन्दरके प्रश्न' नामक पुस्तकमें हमें मिलते हैं। मिनेन्दरके सम्बन्धमें इस बौद्ध-ग्रन्थमें लिखा है—

"वाद-विवादमें उसकी समता करना कठिन था, उसे हराना तो कहीं अधिक कठिन था।.......जैसे ज्ञानमें वैसे ही शारीरिक शक्तिमें, स्फूर्तिमें अथवा पराक्रममें मिनेन्दरकी बराबरी करनेवाला भारतमें कोई नहीं मिलता था। वह समृद्ध तथा ऐश्वर्यशाली था, और उसकी सुसज्जित सेनाकी संख्या अगणित थी।"

पुष्यमित्रके प्रधान शत्रु मिनेन्दरके सम्बन्धमें बौद्धोंका उपर्युक्त कथन है, किन्तु जिस प्रकार मिनेन्दरकी सेनाको पुष्यमित्रसे हारना पड़ा, उसी प्रकार मिनेन्दरकी बुद्धि और तर्क-शक्तिको आचार्य नागसेनके सामने मस्तक झुकाना पड़ा। नागसेनने मिनेन्दरके तर्कोंको काटकर उसकी समस्याओंको हल कर दिया। इसका फल हुआ कि यवन वीर मिनेन्दरने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया।

बौद्धोंके ग्रन्थोंमें लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धधर्मका कट्टर शत्रु था और वह उनका दमन कर ख्याति लाभ करना चाहता था। इस सम्बन्धकी एक कथा है कि पुष्यमित्र पाटलिपुत्रके पास प्रसिद्ध विहार कुक्कुटारामका नाश करना चाहता था, लेकिन उसके दरवाज़ेपर पहुँचते ही उसने सिंहकी गर्जना सुनी और वह डरकर नगरमें भाग गया। दूसरी कथा यह है कि स्यालकोटमें वह प्रत्येक भिक्षुके कटे हुए सिरके लिये इनाम देता था। बौद्ध-ग्रन्थ कहते हैं कि अन्तमें दैवी शक्तियां उनकी रक्षाके लिए आईं और पुष्यमित्रकी मृत्यु हुई।

ये सब दन्त-कथाएँ हैं, इनमें ऐतिहासिक सत्यकी मात्रा बहुत कम है। पुष्यमित्र हिन्दू-जागृतिके नेता होनेके कारण बौद्धोंकी आँखोंमें बहुत खटकते थे। तथापि हम इन कथाओंको सर्वथा निर्मूल और असत्य नहीं कह सकते। इनसे

एक बात सिद्ध होती है कि बौद्धों और पुष्यमित्रके बीच शत्रुता अवश्य थी। सबके धार्मिक विचारोंके प्रति उदार सहिष्णुता प्राचीन भारतीय इतिहासकी एक विशेषता है। प्राचीन युगमें यह सम्भव नहीं था कि कोई राजा किसी धार्मिक सम्प्रदायका बल-पूर्वक दमन कर प्रशंसाकी आशा कर सकता। इस विषयमें अधिक न कहकर हम हेविलका मत उद्धृत करते हैं :—

"बौद्धोंके इस अभियोगमें सत्यकी मात्रा कुछ भी हो—बौद्ध-ग्रन्थ कहते हैं कि पुष्यमित्रने विहारोंको जलाया और भिक्षुओंको क़त्ल किया।—यह निश्चित है कि ऐसा कठोर दमन बौद्धधर्मके विरुद्ध नहीं, वरन् बौद्ध-संघकी राजनीतिक शक्तिके विरुद्ध किया गया था। वाद-विवादके मामलोंमें तर्कके अस्त्रोंके प्रहारको छोड़कर किसी धर्मपर और किसी प्रकारके प्रहार करनेका प्रयत्न करना आर्योंके राजकीय न्याय-सिद्धान्तोंका घोर तिरस्कार करनेके समान था। पुष्यमित्रने—जिनके द्वारा मौर्य राजवंशको आर्यराजत्वकी अवहेलना करनेके कारण दण्ड मिला था,—शायद ही एक शक्ति-सम्पन्न धार्मिक सम्प्रदायके दमन करनेका नीति-विरुद्ध कार्य किया हो। हां, यह सम्भव है कि उसने उक्त संघके राजनीतिक अथवा सामाजिक अपराधोंके लिए उसे उस कठोरतासे दण्ड दिया हो, जो महाराज अशोकके समयमें आर्य-नियमोंमें न्याय-संगत माने जाते थे, इसलिए यदि बौद्धोंकी उपर्युक्त लोक-कथामें कुछ भी सत्यकी मात्रा है, तो हम यह भी कह सकते हैं कि संघने अवश्य ही पुष्यमित्रके विरुद्ध किसी षड्यन्त्रमें भाग लिया होगा।"

हम यह जानते हैं कि बौद्धोंने मिनेन्दरका बड़ा आदर-सत्कार किया था। क्या उन्होंने भारतपर आक्रमण करते समय उसे किसी प्रकारकी मदद देकर राजद्रोह किया था? क्या उन्होंने पुष्यमित्रको गद्दीसे उतारने तथा उससे कोई बदला चुका करनेका प्रयत्न किया था? इन प्रश्नोंका उत्तर केवल अनुमानसे दिया जा सकता है। इतना अवश्य है कि प्राचीन भारतमें धार्मिक दमनके बहुत कम प्रमाण मिलते हैं।

सब शत्रुओंको परास्तकर अपनी विजयको घोषित करनेके लिए, आर्योंकी प्राचीन प्रथाके अनुसार, पुष्यमित्रने पाटलिपुत्रमें एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। यह यज्ञ वही राजा कर सकता था, जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहता था, अर्थात् जो चक्रवर्ती होता था। कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटकसे इस यज्ञका कुछ हाल मिलता है। यज्ञका घोड़ा सारे देशमें विचरनेके लिए छोड़ दिया गया। उसकी रक्षाके लिए पुष्यमित्रका पुत्र वसुमित्र सेनाके साथ भेजा गया। जहाँ-जहाँ घोड़ा जाता, वहाँके राजा या तो पुष्यमित्रको अपना राजराजेश्वर स्वीकार करते या युद्धके लिए प्रस्तुत होते थे। पुष्यमित्रकी अधीनता स्वीकार करनेवाले राजाओंने घोड़ेसे छेड़-छाड़ नहीं की। सिन्धुनदी (राजपूताना) के तटपर यवनोंकी एक फ़ौजने इस घोड़ेको पकड़ लिया, इसीलिए यवनोंमें और वसुमित्रमें तुमुल युद्ध हुआ। वसुमित्रकी जीत हुई। वह घोड़ेको छीन एक वर्षके बाद पाटलिपुत्र लाया। पुष्यमित्रकी अधीनता स्वीकार करनेवाले राजा भी उसके साथ-साथ आये। बड़े समारोहसे यज्ञ हुआ। पातंजलि महाभाष्यमें लिखा है—"इह पुष्यमित्रम् याजयाम:।" इससे मालूम होता है पातंजलि इस यज्ञमें उपस्थित थे, और उन्होंने पुरोहितका कार्य किया था।

यह यज्ञ अनेक कारणोंसे उल्लेखनीय है। पहले तो इससे यह पता लगता है कि पुष्यमित्रने कम-से-कम उत्तर-भारतके चक्रवर्ती सम्राट्के पदका दावा किया था। दूसरे, यह मालूम होता है कि देशमें बौद्धोंके अहिंसा तत्त्वके प्रति राष्ट्रीय प्रतिक्रिया प्रारम्भ होने लगी थी। महाराज अशोकने जीवोंका वध क़ानूनके द्वारा बन्द करा दिया था। इस नियमको भंग करनेवालोंको बड़ा कठोर दण्ड मिलता था। यज्ञोंका इस भाँति रोक दिया जाना ब्राह्मणोंको बड़ा ख़राब मालूम हुआ। धीरे-धीरे अपनी शक्तिको संगठित कर वे अपने पुनरुत्थानका प्रयत्न करने लगे। पुष्यमित्रके नेतृत्वमें यह आन्दोलन सफलता-पूर्वक फैलने लगा। राजनीतिक दृष्टिसे इस यज्ञका महत्त्व है—यवनोंकी पराजय और

उत्तर-भारतमें पुष्यमित्रका आधिपत्य। धार्मिक दृष्टिसे इसका महत्त्व है—ब्राह्मणोंकी पुनर्जागृतिकी सूचना।

मिनेन्दरको परास्त करनेके बाद लगभग पाँच वर्ष तक पुष्यमित्रने राज्य किया। अग्निमित्रको उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ईस्वी सन् पूर्व १४८ में ३६ वर्ष राज्य करनेके बाद पुष्यमित्रकी मृत्यु हुई।

पुष्यमित्रको अपने उद्देश्यकी प्राप्तिमें बहुत कुछ सफलता मिली। हैविलने कहा है—"यवन-आक्रमणकारियोंको आर्यावर्तकी पवित्र भूमिसे बाहर करनेमें पुष्यमित्रने वही महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जोयशस्वी मौर्य-सम्राटोंने किया था, यद्यपि उन्हें उतनी अधिक सफलता नहीं मिल सकी।" मौर्य साम्राज्यमें दक्षिण-भारतके तथा सिन्धु नदीके उस पारके कई प्रान्त शामिल थे। वे पुष्यमित्रके राज्यके बाहर थे। अपनी प्रतिभाके बलपर एक नया राजवंश स्थापित करना; घर और बाहरके शत्रुओंको परास्त कर चक्रवर्ती पद प्राप्त करना तथा एक धार्मिक जागृतिकी बागडोर अपने हाथमें रखना—ये सब ऐसे कार्य थे, जो उनकी महिमाको सूचित करते हैं। उनकी सफलताको हम स्मरणीय कह सकते हैं, क्योंकि उनके सामने कई विकट समस्याएँ उपस्थित थीं। अत्यन्त संकटपूर्ण परिस्थितिमें उन्होंने स्वदेशका उद्धार किया, इसलिए उनका नाम चन्द्रगुप्त, यशोधर्मन्, शिवाजी आदिकी श्रेणीमें लिखे जानेके योग्य है।

दुर्भाग्यका विषय है कि पुष्यमित्रके जीवनकी घटनाओंका वृत्तान्त नहीं मिलता। इससे उनकी वास्तविक महत्ताको सिद्ध करनेमें कुछ कठिनाई भी होती है, तथापि जो कुछ थोड़ा-बहुत हालमें उनके सम्बन्धका मालूम है, उसके बलपर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि वह उन स्मरणीय वीरों, देशभक्तों और राजनीतिज्ञोंमेंसे एक था, जिनका भारतको अभिमान होना चाहिए।

जय-पराजय

[लेखक :—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

[१]

राजकुमारीका नाम अपराजिता है। राजा उदयनारायणके सभा-कवि शेखरने उन्हें कभी आँखोंसे भी नहीं देखा; परन्तु जिस दिन वह किसी नये काव्यकी रचना करके सभामें बैठकर राजाके सामने उसे सुनाते, उस दिन कण्ठस्वर ठीक इतना ऊँचा चढ़ाकर पढ़ते कि वह उस ऊँचे महलके ऊपर झरोखोंमें बैठी हुई अदृश्य श्रोतृयोंके कानों तक पहुँच जाता। मानो वे किसी अगम्य नक्षत्र-लोकके लिए अपना संगीतोच्छ्वास भेजते, जहाँ ज्योतिष्क-मण्डलीके बीच उनके जीवनका एक अपरिचित शुभ ग्रह अपनी अदृश्य महिमा लिये-हुए विराज रहा है।

कभी छायाकी तरह दिखाई देती, कभी नूपुरकी झमझमाहटकी तरह सुन पड़ती; बैठे बैठे मन-ही-मन सोचा करते—कैसे वे चरण होंगे, जिनमें वे सोनेके नूपुर, बँधे रहनेपर भी ताल-तालपर गाना गा रहे हैं! वे दोनों गुलाबी गोरे कोमल चरण हर क़दमपर न-जाने कितने सौभाग्य, कितने अनुग्रह और कितनी करुणाको लिये-हुए पृथ्वीका स्पर्श करते हैं। मनमें उन्हीं चरणोंकी प्रतिष्ठा करके कवि मौका पाते ही वहाँ आकर लोट जाता और नूपुरकी झनकारके साथ अपना गीत शुरू कर देता।

किन्तु जिस छायाको देखा है, जिन नूपुरोंकी झनकार सुनी है, वह किसकी छाया है, किसके नूपुर हैं—ऐसा तर्क, ऐसा संशय उनके भक्त हृदयमें कभी उठा ही नहीं।

राजकुमारीकी दासी मंजरी जब घाटको जाती, तो

शेखरके घरके सामनेसे ही उसकी राह थी। आते-जातेमें कविके साथ उसकी दो-चार बातें बिना हुए न रहतीं। अनुकूल एकान्त मिलता, तो सुबह-शाम वह शेखरके घर भी जाकर बैठती। जितनी बार वह घाटको जाती, उतनी बार कामसे ही जाती हो, यह नहीं कहा जा सकता, और ऐसा भी नहीं कि बिना ज़रूरत यों ही जाती हो; परन्तु घाटको जाते समय उतने ही में से ज़रा जतनके साथ एक रंगीन साड़ी और कानोंमें दो आम्र-मुकुल पहननेकी उसे क्या ज़रूरत पड़ जाती, इसका कोई उचित कारण ढूँढे नहीं मिलता।

लोग हँसते और काना-फूँसी करते। लोगोंका कुछ दोष भी न था। मंजरीको देखकर शेखरको विशेष आनन्द प्राप्त होता था और उसे छिपानेकी वे कोशिश भी नहीं करते थे।

उसका नाम था मंजरी। विचार कर देखा जाय, तो साधारण स्त्रीके लिए उतना ही नाम काफ़ी था; किन्तु शेखर उसमें ज़रा कवित्व मिलाकर उसे वसन्तमञ्जरी कहा करते। लोग सुनकर कहते—"मार डाला!"

इसके सिवा कविके वसन्त-वर्णनमें—"मंजुल वंजुलमंजरी" अनुप्रास भी जहाँ-तहाँ पाये जाते थे। आखिर यहाँ तक नौबत आई कि बात राजाके कानों तक पहुँच गई।

राजा अपने कविमें ऐसा रसाधिक्य पाकर बहुत ही खुश होते—इसपर खूब हास्य-कौतुक भी करते। शेखर भी उसमें योग देते।

राजा हँसकर पूछते—"भ्रमर क्या केवल वसन्तकी राज-सभामें गाया ही करता है?"

कवि उत्तर देते—"नहीं तो, पुष्प-मंजरीका मधु भी चखा करता है।"

इस तरह सभी हँसते और आमोद किया करते। शायद अन्तःपुरमें राजकुमारी अपराजिता भी मंजरीसे कभी-कभी उपहास करती होंगी। मंजरी उससे असन्तुष्ट न होती थी।

इसी तरह सच-झूठ मिलाकर मनुष्यका जीवन किसी तरह कट जाता है,—कुछ विधाता गढ़ते हैं, कुछ मनुष्य आप गढ़ लेता है और कुछ पाँच जने मिलकर गढ़ देते हैं। जीवनको एक पँचमेल जोड़-तोड़ समझना चाहिए—प्रकृत और अप्रकृत, काल्पनिक और वास्तविक।

केवल कवि जो गान गाते थे, उन्हें ही सत्य और सम्पूर्ण समझना चाहिए। गानोंका विषय वही था राधा और कृष्ण—वही चिरन्तन नर और चिरन्तन नारी, वही अनादि दुःख और अनन्त सुख। उन्हीं गानोंमें उनकी यथार्थ अपनी बातें थीं—और उन गानोंकी यथार्थता अमरापुरके राजासे लेकर दीन-दुखी प्रजा तक सबने अपने-अपने हृदयपर कसकर उसकी परीक्षा कर ली थी। उनके गाने सबकी ज़बानपर थे। चाँदनी खिलते ही, ज़रा दक्षिणकी हवा चलते ही, देशमें चारों ओर न-जाने कितने काननों, कितनी नावों, कितने झरोखों और कितने आँगनोंसे उनके रचे हुए गाने गूँज उठते—उनकी ख्यातिकी कोई सीमा न थी।

इसी तरह बहुत दिन बीत गये। कवि कविता बनाते और राजा सुना करते, राजसभाके लोग वाहवाही देते; मंजरी घाटपर आती, और अन्तःपुरके झरोखेसे कभी-कभी एक छाया आकर पड़ती, कभी-कभी नूपुरकी झनकार सुनाई देती।

[२]

इसी समय दाक्षिणात्यसे एक दिग्विजयी कवि राजसभामें उपस्थित हुए, और उन्होंने शार्दूलविक्रीडित छन्दमें राजाका स्तव-गान किया। वे स्वदेशसे निकलकर मार्गमें समस्त राज-कवियोंको परास्त करते हुए अन्तमें अमरापुर आकर उपस्थित हुए हैं।

राजाने बड़े आदरके साथ कहा—"एहि, एहि!"

कवि पुण्डरीकने दम्भ-भरे स्वरमें कहा—"युद्धं देहि!"

राजाके सम्मानकी रक्षा करनी होगी—युद्ध देना होगा, किन्तु वाग्-युद्ध कैसे हो सकता है, शेखरको इस बातका अच्छी तरह अनुभव नहीं था। वे बहुत ही चिन्तित और शंकित हो उठे। रातको उन्हें नींद न आई। उन्हें अपने चारों तरफ़ यशस्वी पुण्डरीकका दीर्घ बलिष्ठ शरीर, सुतीक्ष्ण वक्र नासिका और दर्पोद्धत उन्नत मस्तक अंकित दिखाई देने लगा।

प्रातःकाल होते ही कम्पित-हृदय कविने रङ्गक्षेत्रमें आकर प्रवेश किया। सवेरेसे ही सभा-भवन लोगोंसे खचाखच भर गया है, कोलाहलकी सीमा नहीं, नगरके और सब काम-काज बिलकुल बन्द हैं।

कवि शेखरने बड़ी मुश्किलसे मुँहपर हँसी और प्रफुल्लता लाकर प्रतिद्वन्द्वी कवि पुण्डरीकको नमस्कार किया। पुण्डरीकने बड़ी लापरवाहीके साथ सिर्फ़ ज़रा इशारेसे नमस्कारका उत्तर दिया, और फिर अपने अनुयायी भक्तवृन्दोंकी ओर देखकर मुसकरा दिये।

शेखरने एक बार अन्तःपुरके झरोखोंकी ओर अपनी कटाक्ष दृष्टि दौड़ाई, समझ गये कि वहाँसे आज सैकड़ों कौतूहल-पूर्ण कृष्ण-तारकाओंकी व्यग्र-दृष्टियाँ इस जनतापर लगातार बरस रही हैं। एक बार एकाग्र भावसे चित्तको उस ऊर्ध्वलोकमें फेंककर अपनी जयलक्ष्मीकी बन्दना कर आये, मन-ही मन बोले—"मेरी यदि आज विजय हुई, तो हे देवि, हे अपराजिता, उससे तुम्हारे ही नामकी सार्थकता होगी।"

तुरही और भेरी बज उठी। जयध्वनिके साथ सारी सभा उठ खड़ी हुई। सफेद वस्त्र पहने हुए राजा उदयनारायणने शरदऋतुके प्रभातके शुभ्र मेघके समान धीरे-धीरे सभामें प्रवेश किया, और सिंहासनपर जा विराजे।

पुण्डरीक उठकर सिंहासनके सामने जाकर खड़े हो गये। विराट् सभा स्तब्ध हो गई।

विराट्मूर्ति पुण्डरीकने छाती फुलाकर और गरदनको ज़रा ऊपर उठाकर गम्भीर स्वरसे उदयनारायणका स्तव पढ़ना शुरू किया। कण्ठस्वर घरमें समाता ही नहीं—वह विराट् स्वर सभा-भवनकी चारों तरफ़की दीवारों, खम्भों और छतके नीचे समुद्रकी तरंगोंकी तरह गम्भीर गर्जनासे आघात-प्रतिघात करने लगा, और केवल उसी ध्वनिके वेगसे समस्त जन-मण्डलीके वक्ष-कपाट थर-थर काँप उठे। कविकी रचनामें कितना कौशल है, कितनी दस्तकारी है, उदयनारायणके नामकी कितनी तरहकी व्याख्याएँ, राजाके नामके अक्षरोंका कितनी तरफसे कितने प्रकारका विन्यास, कितने छन्द, कितने यमक! कोई शुमार है!

पुण्डरीक जब अपनी रचना समाप्त करके बैठे, तो कुछ देरके लिए निस्तब्ध सभा-भवन उनके कण्ठकी प्रतिध्वनि और हज़ारों हृदयोंकी मूक विस्मय-राशिसे गूँज उठा। बहुत दूर-देशोंसे आये हुए पण्डितगण अपना बायाँ हाथ उठाकर गद्गद स्वरसे "साधु-साधु" कह उठे।

तब राजाने सिंहासनसे शेखरके मुँहकी तरफ देखा। शेखरने भी भक्ति, प्रणय और अभिमान-भरी एक प्रकारकी सकरुण संकोचपूर्ण दृष्टिसे राजाकी ओर देखा, और धीरेसे उठकर खड़े हो गये। रामने जब प्रजानुरंजनके लिए दूसरी बार अग्नि-परीक्षा करनी चाही थी, तब सीता मानो इसी तरह अपने पतिके मुँहकी ओर देखती हुई, ठीक ऐसे ही उनके सिंहासनके सामने जाकर खड़ी हो गई थी।

कविकी दृष्टिने चुपकेसे राजाको जताया—"मैं तुम्हारा ही हूँ! तुम्हीं यदि संसारके सामने मुझे खड़ा करके परीक्षा लेना चाहते हो, तो लो। किन्तु—" उसके बाद आँखें नीची कर लीं।

पुण्डरीक शेरकी तरह खड़ा था और शेखर चारों तरफसे शिकारियोंसे घिरे हुए हिरनकी तरह। तरुण युवक है, रमणियों जैसी लज्जा और स्नेह-कोमल मुख है, पाण्डुवर्ण कपोल हैं और शरीरांश तो अत्यन्त स्वल्प है। देखनेसे मालूम होता है कि भावके स्पर्श-मात्रसे ही सारा शरीर मानो वीणाके तारोंकी तरह काँपकर बज उठेगा।

शेखरने मुँह न उठाकर पहले अत्यन्त मृदुस्वरसे कहना प्रारम्भ किया। पहलेका एक श्लोक तो शायद किसीने अच्छी तरह सुन भी न पाया। उसके बाद धीरे-धीरे मुँह उठाया—जहाँ दृष्टि डाली, वहाँसे मानो सारी जनता और राजसभाकी पाषाण-प्राचीर विगलित होकर बहुत दूरके अतीतमें विलीन हो गई। कविका सुमिष्ट और स्पष्ट कण्ठस्वर काँपते-काँपते उज्ज्वल अग्नि-शिखाकी तरह ऊपरको जाने लगा। पहले राजाके चन्द्रवंशीय आदि पुरुषोंकी कथा शुरू की। फिर

धीरे-धीरे न-जाने कितने युद्ध-विग्रह, शौर्य-वीर्य, यज्ञ, दान—कितने महत् अनुष्ठानोंमेंसे होकर अपनी राज-कहानीको वर्तमान कालमें लाकर उपस्थित किया। अन्तमें उन्होंने अपनी दूरकी स्मृतिमें उलझी हुई दृष्टिको खींचकर राजाके मुँहकी ओर देखा, और राज्यके समस्त प्रजा-हृदयकी एक बृहत् अव्यक्त प्रीतिको भाषा और छन्दसे मूर्तिमान् बनाकर सभाके बीचमें खड़ा कर दिया। मानो दूर-दूरान्तरसे सैकड़ों-हजारों प्रजाओंके हृदय-स्रोतने दौड़-दौड़कर राज-पितामहोंके इस अति प्राचीन प्रासादको महासंगीतसे भर दिया—इसकी प्रत्येक ईंटको मानो उसने स्पर्श किया, आलिंगन किया, चुम्बन किया, ऊपर अन्तःपुरके झरोखों तक पहुँचकर राजलक्ष्मी स्वरूपा प्रासाद-लक्ष्मियोंके चरणोंमें स्नेहार्द्र भक्ति-भावसे लोट गया, और वहाँसे लौटकर राजाकी और राजाके सिंहासनकी, बड़े भारी उल्लाससे, सैकड़ों बार प्रदक्षिणा करने लगा। अन्तमें कविने कहा—"महाराज, वाक्योंमें हार मान सकता हूँ, किन्तु भक्तिमें कौन हरावेगा!"—यह कहकर काँपते हुए बैठ गये। तब आँसुओंसे भीगे हुए प्रजागण "जय जय" ध्वनिसे आकाश कँपाने लगे।

धिक्कारपूर्ण हँसीसे साधारण जनताकी इस उन्मत्तताकी अवज्ञा करते हुए पुण्डरीक फिर खड़े हुए। दर्प-भरे गर्जनके साथ पूछा—"वाक्यसे बढ़कर श्रेष्ठ और कौन है?"

सब लोग क्षण-भरमें स्तब्ध हो गये।

तब अनेक छन्दोंमें अद्भुत पाण्डित्य प्रकट करते हुए वेद-वेदान्त और आगम-निगमोंमें प्रमाणित करने लगे कि विश्वमें वाक्य ही सर्वश्रेष्ठ है। वाक्य ही सत्य है, वाक्य ही ब्रह्म है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश वाक्यके वशमें हैं—अतएव वाक्य उनसे भी बड़ा है। ब्रह्मा चार मुखोंसे वाक्य समाप्त नहीं कर पाये हैं। पंचानन पाँच मुखोंसे वाक्यका अन्त न पाकर अन्तमें चुपचाप ध्यानमें लीन होकर वाक्य ढूँढ़ रहे हैं।

इस तरह पाण्डित्यपर पाण्डित्य और शास्त्रपर शास्त्रके ढेर लगाकर वाक्यके लिए एक आकाशभेदी सिंहासन बनाकर, वाक्यको मर्त्यलोक और सुरलोकके मस्तकपर बिठा दिया; और बिजलीकी तरह कड़ककर फिर पूछा—"वाक्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ और कौन है?"

दर्पके साथ चारों तरफ़ देखा; जब किसीने कुछ उत्तर न दिया, तो धीरे-धीरे आसनपर आकर बैठ गये। पण्डितगण 'साधु-साधु' 'धन्य-धन्य' कहने लगे—राजा आश्चर्यसे देखते रह गये, और कवि शेखरने इस विपुल पाण्डित्यके सामने अपनेको क्षुद्र समझा। आजके लिए सभा भंग हो गई।

[३]

दूसरे दिन शेखरने आकर गान शुरू कर दिया,—वृन्दावनमें पहले पहल वंशी जब बजी है, तब गोपियोंको मालूम नहीं कि किसने बजाई—मालूम नहीं कहाँ बज रही है। एक बार मालूम हुआ कि दक्षिण-पवनमें बज रही है। एक बार मालूम हुआ कि उत्तरमें गिरि-गोवर्द्धनके शिखरसे ध्वनि आ रही है, जान पड़ा कि उदयाचलके ऊपर खड़े कोई मिलनेके लिए बुला रहा है; जान पड़ा कि अस्ताचलके प्रान्तमें बैठकर कोई विरहके शोकसे रो रहा है; मालूम हुआ कि यमुनाकी प्रत्येक तरंगसे वंशी बज उठी; जान पड़ा कि आकाशका प्रत्येक तारा मानो उसी वंशीका छिद्र है,—अन्तमें कुंज-कुंजमें, राह-घाटमें, फूल-फूलमें, जल-स्थलमें, ऊँचे-नीचे, अन्दर-बाहर सर्वत्रसे वंशी बजने लगी,—वंशी क्या बोल रही है, यह कोई न समझ सका, और वंशीके उत्तरमें हृदय क्या कहना चाहता है, इसका भी कोई निर्णय न कर सका। सिर्फ़ दोनों आँखोंमें आँसू भर आये, और अलोक-सुन्दर श्याम-स्निग्ध मृत्युकी आकांक्षासे सारे प्राण मानो उत्कण्ठित हो उठे।

सभाको भूलकर, राजाको भूलकर, आत्म-पक्ष प्रतिपक्षको भूलकर, यश-अपयश, जय-पराजय, उत्तर-प्रत्युत्तर, सब कुछ भूलकर शेखर अपने निर्जन हृदय-कुंजमें अकेले खड़े-खड़े इस वंशीके गानको गाते ही चले गये। सिर्फ़ याद थी एक

ज्योतिर्मयी मानसी मूर्तिकी, कानोंमें केवल बज रही थी वो कमल-चरणोंकी नूपुरध्वनि। कवि जब गान समाप्त करके हतज्ञानकी तरह बैठ गये, तब एक अनिर्वचनीय माधुर्यसे, एक सुदूर व्याप्त विरह-व्याकुलतासे सभा-भवन भर गया, कोई साधुवाद भी न दे सका।

इस भावकी प्रबलताका कुछ उपशम होनेपर पुण्डरीक सिंहासनके सामने आकर खड़े हो गये। प्रश्न किया—"कौन राधा है, और कौन कृष्ण ?"—कहकर चारों तरफ़ देखा और शिष्योंकी ओर देखकर ज़रा मुसकराकर फिर प्रश्न किया—"कौन राधा है और कौन कृष्ण ?" कहकर असाधारण पाण्डित्य दिखाते हुए उन्होंने स्वयं ही उसका उत्तर देना प्रारम्भ किया।

कहने लगे—"राधा प्रणव हैं, ओंकार हैं, कृष्ण ध्यान हैं, योग हैं, और वृन्दावन दोनों भौंहोंका मध्यबिन्दु है।" ईड़ा, सुषुम्ना, पिंगला, नाभिपद्म, हृत्पद्म, ब्रह्मरन्ध्र सबको ला पटका। फिर, 'रा' का क्या अर्थ है और 'धा' का क्या, तथा कृष्ण शब्दके 'क' से मूर्द्धन्य 'ण' तक प्रत्येक अक्षरके कितने प्रकारके भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं, उन सबकी एक-एक करके मीमांसा की। एक बार समझाया—कृष्ण यज्ञ हैं और राधिका अग्नि, फिर समझाया—कृष्ण वेद हैं और राधिका षड्दर्शन, उसके बाद समझाया—कृष्ण शिक्षा हैं और राधा दीक्षा। राधिका तर्क हैं और कृष्ण मीमांसा; राधिका उत्तर-प्रत्युत्तर हैं और कृष्ण जय-लाभ।

इतना कहकर राजाकी ओर, पण्डितोंकी ओर और अन्तमें तीव्र हास्यके साथ शेखरकी ओर देखकर पुण्डरीक बैठ गये।

राजा पुण्डरीककी आश्चर्यजनक क्षमतापर मुग्ध हो गये, पण्डितोंके विस्मयकी सीमा न रही और राधा-कृष्णकी नई-नई व्याख्याओंसे वंशीका गान, यमुनाकी कल्लोलें, प्रेमका मोह बिलकुल दूर हो गया; मानो पृथ्वी परसे कोई वसन्तके हरे रंगको पोंछकर शुरूसे आखिर तक पवित्र गोबर पोत गया। शेखर इतने दिनोंसे सँभालकर रखे हुए गानोंको वृथा समझने लगे। इसके बाद उनमें आगे गानेकी सामर्थ्य न रही। उस दिन भी सभा भंग हो गई।

[४]

दूसरे दिन पुण्डरीकने व्यस्त और समस्त, द्विव्यस्त और द्विसमस्तक, वृत्त, तार्क्ष्य, सौत्र, चक्र, काकपद, आद्युत्तर, मध्योत्तर, अन्तोत्तर, वाक्योत्तर, वचनगुप्त, मात्राच्युतक, च्युतदत्ताक्षर, अर्थगूढ़, स्तुतिनिन्दा, अपह्नुति, शुद्धापभ्रंश, शाब्दी, कालसार, प्रहेलिका आदि शब्दोंका प्रयोग कर अद्भुत शब्द-चातुरी दिखलाई। सुनकर सभाके सब लोग आश्चर्यसे देखते रह गये।

शेखरकी जो पद-रचनाएँ होती थीं, वे अत्यन्त सरल—उन्हें लोग सुखमें, दुखमें,* आनन्द और उत्सवमें, हमेशा गाया करते थे—आज उन लोगोंने समझ लिया कि मानो उनमें कोई खास खूबी है ही नहीं; चाहते, तो वे भी वैसी रचना कर सकते थे। केवल अनभ्यास, अनिच्छा, अनवसर आदि कारणोंसे ही नहीं कर पाते। नहीं तो बातें ऐसी कोई नई नहीं हैं, दुरूह भी नहीं हैं। उनसे संसारके लोगोंको कोई नवीन शिक्षा भी नहीं मिलती, और न कोई लाभ ही है। किन्तु आज जो कुछ सुना, वह तो एक अद्भुत ही वस्तु है। कल जो कुछ सुना था, उसमें काफ़ी शिक्षा और मनन करनेका विषय था। पुण्डरीकके पाण्डित्य और निपुणताके सामने अपना कवि उन्हें नितान्त बालक और साधारण व्यक्ति सा मालूम होने लगा।

मछलीकी पूँछकी ताड़नासे पानीके अंदर जो गूढ़ आन्दोलन चलता रहता है, सरोवरका कमल जैसे उसके प्रत्येक आघातको अनुभव कर सकता है, उसी तरह शेखर भी अपने हृदयमें चारों तरफ़ घेरकर बैठी हुई जनताके मनका भाव समझ गये।

आज अन्तिम दिन है। आज ही जय-पराजयका निर्णय होगा। राजाने अपने कविकी ओर देखा। उसका अर्थ यह

था कि आज चुपकी साधनेसे काम न चलेगा—तुम्हें शक्ति-भर प्रयत्न करना होगा।

शेखर एक किनारेसे उठ खड़े हुए, उन्होंने सिर्फ दो ही एक बात कही—"वीणापाणि, श्वेतभुजा, देवि! तुम्हीं यदि अपना कमल-वन सूना करके आज इस मल्ल-भूमिपर आकर खड़ी हुई हो, तो हे देवि, तुम्हारे चरणासक्त जो भक्तजन अमृतके प्यासे हैं, उनकी क्या दशा होगी?" मुँहको ज़रा ऊपर उठाकर करुणस्वरसे कहा—मानो श्वेतभुजा वीणापाणि नीचेको दृष्टि डाले राजान्तःपुरमें झरोखेके सामने खड़ी हैं।

तब पुण्डरीक उठकर पहले तो खूब हँसे,—फिर 'शेखर" शब्दके अन्तिम दो अक्षरोंको लेकर धाराप्रवाह श्लोक रचते गये। कहने लगे—"पद्म-वनके साथ खरका क्या सम्बन्ध? और संगीतकी बहुत चर्चा करते रहनेपर भी इस प्राणीने क्या लाभ उठाया? और सरस्वतीका अधिष्ठान तो पुण्डरीक*में ही होता है। महाराजके शासनमें ऐसा उन्होंने क्या अपराध किया है, जो यहां उन्हें खर वाहन देकर अपमानित किया जाता है?"

इस प्रत्युत्तरको सुनकर पण्डित लोग हँस पड़े। सभासदोंने भी उसमें योग दिया, उनकी देखादेखी सभाके और सब लोग—जो समझे थे और जो न समझे वे भी—हँसने लगे।

इसके उपयुक्त प्रत्युत्तरकी आशासे राजा अपने कवि-सखाको बार-बार अंकुशकी तरह अपनी तीक्ष्ण दृष्टिसे ताड़ना देने लगे; परन्तु शेखरने उस ओर कुछ ध्यान न दिया—चुपचाप अटल बैठे रहे।

तब राजा मन-ही-मन शेखरपर बहुत नाराज़ हुए, सिंहासनसे उतर आये और अपने गलेसे मोतियोंकी माला खोलकर पुण्डरीकके गलेमें पहना दी—सभाके सब लोग 'धन्य-धन्य' कहने लगे। अन्तःपुरसे एक साथ बहुतसे वलय, कंकण और नूपुरोंकी झनकार सुनाई दी—उसे सुनकर शेखर अपने आसनसे उठे और धीरे-धीरे सभा-भवनसे बाहर निकल गये।

[५]

कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रि है। घना अन्धकार है। फूलोंकी सुगन्ध लिये हुए दखिनी हवा उदार विश्वबन्धुकी तरह खुले हुए झरोखोंसे नगरके घर-घरमें प्रवेश कर रही है।

घरके काष्ठमंचसे शेखरने अपनी पोथियाँ उतारकर अपने सामने उनका ढेर लगा रखा है। उनमेंसे छाँट-छाँटकर अपने रचे हुए ग्रन्थ अलग कर लिये। बहुत दिनोंके लिखे हुए बहुतसे ग्रन्थ थे। उनमेंसे बहुतसी रचनाओंको वे स्वयं भूल-से गये थे। उन्हें उलट-पुलटकर यहाँ-वहाँसे पढ़-पढ़कर देखने लगे। आज उनको अपनी ये सारी रचनाएँ क्षुद्र-सी जान पड़ीं।

एक लम्बी साँस लेकर बोले—"सारे जीवनका क्या यही संचय है! थोड़ेसे शब्द और छन्द, थोड़ीसी तुकबन्दियाँ, बस!" आज उन्हें इसमें कोई सौन्दर्य, मानव-हृदयका कोई चिर आनन्द, विश्व-संगीतकी कोई प्रतिध्वनि, उनके हृदयका कोई गंभीर आत्म-प्रकाश नहीं दिखाई पड़ा। रोगीको जैसे कोई भोजन नहीं रुचता, मुँहमें आते ही उगल देता है, वैसे ही आज उनके हाथके पास जो कुछ भी आया, सबको हटा-हटाकर फेंकते गये। राजाकी मैत्री, लोककी ख्याति, हृदयकी दुराशा, कल्पनाकी कुहुक—आज अन्धकार रात्रिमें सब कुछ शून्य विडम्बना-सी जान पड़ने लगी।

तब एक-एक करके अपनी पोथियोंको फाड़-फाड़कर सामने जलती हुई अंगीठीमें डालने लगे। अकस्मात् एक उपहासकी बात याद उठ आई। हँसते-हँसते बोले—"बड़े-बड़े राजा-महाराजा अश्वमेध-यज्ञ किया करते हैं—आज मेरा यह काव्यमेध-यज्ञ है।" किन्तु उसी समय विचार उठा कि तुलना ठीक नहीं हुई। अश्वमेधका अश्व जब सर्वत्र विजयी होकर आता है, तभी अश्वमेध होता है—और मैं, मेरा कवित्व जिस दिन पराजित हुआ है, उसी दिन काव्यमेध करने बैठा हूँ—इससे बहुत दिन पहले ही कर डालता, तो अच्छा रहता।

एक-एक करके अपने समस्त ग्रन्थ अग्निको समर्पण कर दिये। आग जब धाँय-धाँय ऊँची लपटोंसे जलने लगी, तब कविने अपने रीते हाथोंको शून्यमें फेंकते हुए कहा—"तुम्हें दे दिये, तुम्हें दे दिये, तुम्हें दे दिये,—हे सुन्दरि अग्निशिखा, तुम्हींको दिये हैं। इतने दिनोंसे तुम्हींको सर्वस्व आहुति

* पुण्डरीक नाम श्वेत कमलका है।

खेला जा रहा था, आज बिलकुल शेष कर दिया। बहुत दिनोंसे तुम मेरे हृदयमें जल रही थी, हे मोहिनी वह्निरूपिणि! यदि मैं सुवर्ण होता, तो उज्ज्वल हो उठता—किन्तु मैं तुच्छ तृण हूँ, देवि, इसीसे आज भस्म हो गया हूँ।"

रात बहुत हो चुकी है। शेखरने अपने घरकी सारी खिड़कियाँ खोल दीं। वे जिन-जिन फूलोंको पसन्द करते थे, शामको ही बगीचेसे उन्हें चुन लाये थे। सब सफेद फूल थे—जूही, बेला और गन्धराज। उन्हींमेंसे एक-एक मुट्ठी लेकर अपने साफ़-सुथरे बिछौने पर बखेर दिये। घरके चारों तरफ दीपक जला दिये।

उसके बाद मधुके साथ एक जड़ीका विषरस मिलाकर उसे पी गये—मुँहपर चिन्ताकी कोई रेखा तक न थी, और फिर धीरे-धीरे अपनी उसी शय्यापर जाकर सो रहे। शरीर शिथिल हो आया और आँखें मिंचने लगीं।

नूपुर बज उठे। दक्षिण-पवनके साथ केश-गुच्छकी एक सुगन्धने घरमें प्रवेश किया।

कविने आँखें मींचे-ही-मींचे कहा—"देवि, भक्तपर दया की है क्या? इतने दिनों बाद क्या आज दर्शन देने आई हो?"

एक सुमधुर कण्ठसे उत्तर सुन पड़ा—"कवि, मैं आ गई।"

शेखरने चौंककर आँखें खोलीं—देखा, शय्याके सामने एक अपूर्व सुन्दरी रमणी-मूर्ति खड़ी है।

मृत्युसे आच्छन्न आँसुओंकी भापसे आकुल नेत्रोंसे कुछ साफ़ दिखाई नहीं दिया। मालूम हुआ, उनके हृदयकी वह छायामयी प्रतिमा ही भीतरसे निकलकर बाहर आ गई है और मृत्युके समय उनके मुँहकी तरफ स्थिर नेत्रोंसे देख रही है।

रमणीने कहा—"मैं राजकुमारी अपराजिता हूँ।"

कवि बड़े कष्टसे किसी तरह उठकर बैठ गये।

राजकुमारीने कहा—"राजाने तुम्हारा सुविचार नहीं किया। तुम्हारी ही विजय हुई है, कवि, इसीसे मैं आज तुम्हें जयमाला पहनाने आई हूँ।"—कहकर अपराजिताने अपने हाथसे गूँथी हुई पुष्पमाला अपने गलेसे उतारकर कविके गलेमें पहना दी।

मरणाहत कवि शय्यापर गिर पड़े।

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

सम्मेलनकी परीक्षाएँ

[लेखक :—श्री दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०]

[सम्मेलनका सबसे अधिक उपयोगी कार्य उसकी परीक्षाएँ हैं। इन परीक्षाओंसे निस्सन्देह सहस्रों ही हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें साहित्यिक रुचि हुई है। इस दृष्टिसे परीक्षा-विभागके मन्त्रीका निम्न-लिखित लेख महत्त्वपूर्ण है।—सम्पादक]

इस वर्षकी प्रथमा और मध्यमा परीक्षाएँ ६ सितम्बर सन् १९२९ से तथा उत्तमा-परीक्षा २२ अक्टूबरसे आरम्भ हुई। प्रतिदिन दो प्रश्नपत्र दिये गये। परीक्षा फलपर एक विशेषज्ञको परीक्षा-समितिने विचार किया। २५०४ परीक्षार्थियोंने आवेदनपत्र भेजे थे। उनमेंसे १७१९ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए और ८०० उत्तीर्ण हुए। भिन्न-भिन्न परीक्षाओंके परीक्षार्थियोंकी संख्या नीचे लिखे अनुसार थी :—

परीक्षा	आवेदनपत्र	सम्मिलित हुए	उत्तीर्ण	प्रतिशत
प्रथमा	१६५७	११८५	६१८	५३
मध्यमा	६५८	४११	१२८	३१
उत्तमा	५४	३४	१६	४७
मुनीमी	७२	५०	१०	२०
आरायजनवीसी	१७	१२	५	४२
राष्ट्र-भाषा-प्रचार परीक्षा	३६	२७	२२	७५
योग	२५०४	१७१९	८००	४६

इस वर्ष जितने परीक्षार्थियोंने आवेदनपत्र भेजे, उनमेंसे केवल ८६ प्रतिशत परीक्षामें सम्मिलित हुए। सब परीक्षाओंमें केवल ४६ प्रतिशत परीक्षार्थी ही उत्तीर्ण हुए। गतवर्ष यह संख्या ४४ प्रतिशत थी। उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंकी संख्या कम होनेका प्रधान कारण यही है कि परीक्षा-समिति सम्मेलनकी परीक्षाओंके स्टैण्डर्डको किसी भी प्रकारसे कम करना नहीं चाहती। मध्यमा-परीक्षामें तो इस वर्ष उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंकी संख्या केवल ३१ प्रतिशत ही है।

इस वर्ष उत्तमा-परीक्षामें सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियोंमें काफ़ी वृद्धि हुई। गत वर्ष केवल १३ परीक्षार्थी ही सम्मिलित हुए थे, परन्तु इस वर्ष उनकी संख्या ३४ तक पहुँच गई, जिसमें एक परीक्षार्थिनी भी थी। इस वर्ष परीक्षा-समितिने नियम-परिवर्तन कर उन व्यक्तियोंको भी इस परीक्षामें सम्मिलित होनेकी आज्ञा दे दी, जो किसी विश्वविद्यालयकी बी० ए० या एम० ए० परीक्षा हिन्दी लेकर उत्तीर्ण कर चुके थे। इस प्रकार सम्मेलनके विशारद और विश्वविद्यालयोंके बी० ए० या एम० ए० इस परीक्षामें एक ही साथ सम्मिलित हुए। इस कारण परीक्षा-फल भी इस वर्ष अच्छा हुआ। साहित्यरत्नोंकी संख्या इसवर्ष इतनी अधिक हो गई, जितनी कि सम्मेलनके स्थापित होनेके संवत्से लगातार गत वर्ष तक न हुई थी। यह संख्या उत्तमा-परीक्षाके स्टैंडर्डको किसी भी प्रकार कम करके नहीं बढ़ाई गई है। विश्वविद्यालयोंके कुछ बी० ए० और एम० ए० परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियोंका इस परीक्षामें अनुत्तीर्ण होना स्पष्टरूपसे सिद्ध करता है कि सम्मेलनकी उत्तमा-परीक्षाका स्टैण्डर्ड विश्वविद्यालयोंकी एम० ए० परीक्षासे ऊँचा है। इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए कम-से-कम ४५ प्रतिशत अंक प्राप्त करने होते हैं। किसी भी विश्वविद्यालयमें एम० ए०की परीक्षाके लिए ४५ प्रतिशत उत्तीर्णांक नहीं रखे गये हैं। हम युक्तप्रान्तके इन्टरमीडिएट बोर्ड और अन्य प्रान्तोंके बोर्ड तथा देशी राज्योंके शिक्षा-विभागके अधिकारियोंसे अनुरोध करते हैं कि वे सम्मेलनकी उत्तमा-परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियोंको वे सब सुविधाएँ देनेकी कृपा करें, जो वे विश्वविद्यालयोंके एम० ए० परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तिको देते हैं।

मध्यमा-परीक्षाका स्टैंडर्ड यद्यपि पर्याप्त ऊँचा है, परीक्षा-समिति उसको और भी ऊँचा करनेका प्रयत्न कर रही है। इसके वैकल्पिक विषयोंमें अभी तक केवल एक प्रश्न-पत्र रहता था, जिसमें कि उस विषयके सम्बन्धमें पर्याप्त पाठ्य-पुस्तकें नहीं रखी जा सकती थीं। इस कारण वैकल्पिक विषयोंका स्टैंडर्ड उतना ऊँचा नहीं रखा जा सकता था, जितना कि इतिहासका आजकल है, इसलिए परीक्षा-समितिने आगामी वर्षसे मध्यमाके प्रत्येक वैकल्पिक विषयमें दो प्रश्नपत्र दिये हैं, और उनका पाठ्य-क्रम भी बदल दिया है। इससे हम आशा करते है कि भविष्यमें हमारे विशारदोंके साहित्य और इतिहासके साथ अपने वैकल्पिक विषयके ज्ञानमें भी वृद्धि होगी। इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवाले परीक्षार्थियोंकी संख्याकी कमीका प्रधान कारण परीक्षाके स्टैण्डर्डका ऊँचा होना ही है। इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए परीक्षार्थियोंको ४० प्रतिशत अंक प्राप्त करने होते हैं, इसलिए परीक्षक भी प्रायः विश्वविद्यालय तथा कालेजके ऐसे अध्यापक होते हैं, जो अपने विषयोंके विशेषज्ञ होते हैं। सम्मेलनके विशारदोंको हिन्दी-साहित्य और इतिहासका अच्छा ज्ञान होता है, और वे अपने विषयोंको योग्यता-पूर्वक पढ़ा भी सकते हैं। सैकड़ों विशारद शिक्षकका कार्य सफलता-पूर्वक कर रहे हैं। लेखन-कार्यमें भी कई विशारदोंने अच्छा काम करके दिखाया है। सम्मेलन-द्वारा इस वर्ष एक विशारद-सूची प्रकाशित की गई है, जिसमें एक हज़ारसे अधिक विशारदोंका संक्षिप्त परिचय है। इससे कोई भी सज्जन आसानीसे मालूम कर सकते हैं कि हमारे विशारदगण बिना विशेष प्रोत्साहनके ही क्या कर रहे हैं। यदि इन्हें जनता, सार्वजनिक संस्थाएँ—जैसे, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड—और देशी रियासतोंके शिक्षा-विभाग द्वारा उचित प्रोत्साहन मिलने लगे, जिसको प्राप्त करनेका उनको पूरा अधिकार है, तो हमें पूर्ण विश्वास है कि वे और भी उत्तम कार्य करके दिखा सकेंगे। वे अपने गुणोंके उपयोग किये जानेका अवसर चाहते हैं। क्या उनको वे अवसर प्राप्त न हो सकेंगे?

जिन देशी रियासतोंने हमारे मध्यमा-परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियोंको वेतन वृद्धिकर प्रोत्साहित किया है, परीक्षा-समिति और सम्मेलन उनकी बहुत कृतज्ञ है। आशा है कि अन्य देशी राज्योंके तथा म्यूनिसिपल्टी-शिक्षा-विभागके अधिकारीगण हमारे विशारदोंको उचित प्रोत्साहन देनेकी कृपा करेंगे।

अभी तक संपादन-कला मध्यमाके अन्तर्गत ही समझा जाता रहा, और जो परीक्षार्थी इसमें सम्मिलित होना चाहता था, वह मध्यमाके साथ ही सम्मिलित हो जाता था। इस वर्ष दो परीक्षार्थियोंने इस विषयके साथ ही मध्यमा-परीक्षा देनेका आवेदन पत्र भेजा। वे सम्मिलित भी हुए और अनुत्तीर्ण हुए। मध्यमा परीक्षाके साथ इस परीक्षाके विषयोंका भी लिया जाना ठीक नहीं समझा गया, और परीक्षा-समितिने स्थायी-समितिकी अनुमतिसे सम्पादन-कलाकी दो नवीन परीक्षाएँ स्थापित कर दीं। इन परीक्षाओंमें विशेषतः विशारद ही सम्मिलित हो सकेंगे। जो विशारद पत्र-सम्पादनका कार्य अपनी जीविकाका साधन बनाना चाहते हैं, उनको इन परीक्षाओंमें सम्मिलित होकर अपनी योग्यता बढ़ानी चाहिए। इन परीक्षाओंका पाठ्यक्रम और नियमावली तैयार हो चुकी है, और विवरण-पत्रिकामें प्रकाशित कर दी गई है। आशा है, इस परीक्षाका प्रचार भी सम्मेलनकी अन्य परीक्षाओंके समान खूब होगा।

प्रथमा-परीक्षाका परीक्षा-फल इस वर्ष गत वर्षकी अपेक्षा अच्छा रहा। यह परीक्षा विशेषरूपसे प्रचारकी ही दृष्टिसे रखी गई है। इसी उद्देश्यसे परीक्षा-समितिने इस परीक्षामें सम्मिलित होनेके सम्बन्धमें कुछ विशेष सुविधाएँ दे दी हैं। जिन परीक्षार्थियोंकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वे केवल साहित्य-विषयमें ही उत्तीर्ण होनेपर प्रथमाके प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके अधिकारी हो जाते हैं। जो परीक्षार्थी मिडिल-परीक्षा हिन्दी लेकर उत्तीर्ण होते हैं, उनको भी इसी प्रकारका अधिकार दे दिया गया है। महिलाओंके लिए गार्हस्थ्य-शास्त्र नामक एक नया विषय अनिवार्य करके उनके दो अनिवार्य विषय-क्रम कर दिये गये हैं। इन सब सुविधाओंका लाभ परीक्षार्थियोंने खूब उठाया। यद्यपि परीक्षामें सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियोंकी संख्यामें बहुत अधिक वृद्धि नहीं हुई, उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंकी संख्या छः सौसे भी अधिक हो गई है। हम इस परीक्षाका प्रचार खासकर उन प्रान्तोंमें अधिक चाहते हैं, जहाँके निवासियोंकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। इन प्रान्तोंमें इस परीक्षाके नये केन्द्र खोलनेको भी परीक्षा-समिति तैयार है।

बर्मा, आसाम, बंगाल, उत्कल, दक्षिण-भारत, महाराष्ट्र, गुजरात और सिन्धमें राष्ट्र-भाषा हिन्दीका विशेषरूपसे प्रचार करनेके लिए परीक्षा-समितिने राष्ट्र-भाषा-प्रचार-परीक्षा, नामक एक नवीन परीक्षा स्थापित की। समयकी कमी होनेपर भी आसाम, मैसूर और कोचीन राज्योंसे २७ परीक्षार्थी इस परीक्षामें सम्मिलित हुए, और २३ उत्तीर्ण हुए। अभी इस परीक्षाके केवल तीन-चार केन्द्र ही इन प्रान्तोंमें खुल पाये हैं। परीक्षा-समिति कम-से-कम ५० केन्द्र इन प्रान्तोंमें खोलना चाहती है। किसी भी प्रतिष्ठित पाठशालामें, जहाँ कि परीक्षाकी उचित व्यवस्था हो सकती हो, केन्द्र खोला जा सकता है। परीक्षाका पाठ्यक्रम ऐसा रखा गया है कि हिन्दी न जाननेवाला व्यक्ति भी नौ-दस महीने एक घंटा प्रतिदिन समय देनेपर आसानीसे पाठ्य-क्रम पूरा कर सकता है। क्या हम आशा करें कि इन प्रान्तोंके देश-प्रेमी सज्जनगण इस परीक्षाके नये केन्द्र अपने स्थानोंमें स्थापित कर राष्ट्र-भाषा-प्रचारके पवित्र कार्यमें हमारे सहायक होंगे? महाराष्ट्र और गुजरात-प्रान्तोंमें इस परीक्षाका एक भी केन्द्र न होना, हमें बहुत खटकता है। इन प्रान्तोंसे हमें बहुत आशा है। आशा है कि इन प्रान्तोंके देश-प्रेमी सज्जनगण इस कार्यमें विशेषरूपसे सहयोग करनेकी कृपा करेंगे। आरायशनिवासी-परीक्षामें सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियोंकी संख्या बहुत ही कम है। अदालती कार्रवाई करनेके लिए हिन्दी जाननेवाले व्यक्तियोंकी कमी दूर करनेके लिए ही यह परीक्षा कायम की गई है। युक्त-प्रान्तमें और अन्य प्रान्तोंमें भी अदालती कार्रवाई उर्दूमें ही की जाती

है। वकीलोंको हिन्दी जाननेवाले मुन्शी अब भी आसानीसे नहीं मिलते। यदि हमारे वकील लोग अपने मुन्शियोंको हमारी आरम्भ-निवासी-परीक्षामें सम्मिलित होनेके लिए उत्साहित करें, तो अदालतोंमें हिन्दी-प्रचारकी एक बड़ी असुविधा दूर हो जाय।

महिला-समाजमें सम्मेलन-परीक्षाएँ गत तीन-चार वर्षोंसे लोक-प्रिय हो रही हैं। इस वर्ष १०१ देवियोंने आवेदनपत्र भेजे थे। गत वर्ष उनकी संख्या ६४ थी। प्रथमा-परीक्षामें गार्हस्थ्य-शास्त्र-विषय विशेषकर उन्हींकी सुविधाके लिए रखा गया है। आशा है कि आगामी वर्ष और भी अधिक महिलाएँ हमारी परीक्षाओंमें सम्मिलित होंगी।

आजकल परीक्षा-केन्द्रोंकी संख्या २५४ हैं। गत दो वर्षोंमें भिन्न-भिन्न प्रान्तों तथा राज्योंमें केन्द्रोंकी संख्या नीचे लिखे अनुसार थी :—

प्रान्त तथा राज्य	सं० १९८५	सं० १९८६
संयुक्त-प्रान्त	७२	९३
बिहार	३६	५७
मध्य-प्रान्त	२१	३०
इन्दौर राज्य	६	१५
ग्वालियर	३	४
मध्य-भारतके अन्य राज्य	४	५
बीकानेर राज्य	६	७
जयपुर राज्य	५	८
झालावाड़	२	२
अन्य राज्य	८	१५
बंगाल प्रान्त	३	४
मद्रास	३	३
आसाम	२	२
ब्रह्मा	२	२
पंजाब	२	४
बम्बई	२	३

इस कोष्ठकसे स्पष्टरूपसे विदित होता है कि भारतके कई प्रान्तों और देशी राज्योंमें सम्मेलन-परीक्षाओंके नवीन केन्द्र स्थापितकर उनका प्रचार करनेकी बहुत गुंजाइश है।

गत वर्ष सम्मेलनके परीक्षा-केन्द्रोंके बढ़ानेका विशेष-रूपसे प्रयत्न किया गया था। सबसे अधिक वृद्धि संयुक्त-प्रान्त और बिहारमें हुई। मध्य-प्रान्त और इन्दौर राज्यमें भी नवीन केन्द्र काफ़ी संख्यामें बढ़े। इन्दौर राज्यमें नवीन केन्द्र स्थापित करनेमें श्रीयुत हरिहरजी त्रिवेदी, एम० ए०, काव्यतीर्थ, ने विशेषरूपसे सहायता दी। परीक्षा-समितिकी ओरसे हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। इस वर्ष अन्य भाषा-भाषी-प्रान्तोंमें और देशी राज्योंमें ५० नवीन केन्द्र स्थापित करना चाहिए। हमें पूर्ण आशा है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके हिन्दी प्रेमी सज्जनगण परीक्षाओंके प्रचारके पवित्र कार्यमें परीक्षा-विभागकी सब प्रकारसे सहायता करेंगे।

इस वर्ष परीक्षा-समयमें सम्मेलन-कार्यालयसे भेजे गये निरीक्षकों द्वारा विशेषरूपसे निरीक्षण किये जानेकी व्यवस्था की गई थी। बिहार, युक्त-प्रान्त और राजपूतानेके बीस-पचीस केन्द्रोंका निरीक्षण कराया गया था। इससे कई आश्चर्यजनक बातोंका पता लगा। एक केन्द्रमें तो परीक्षा-समयमें परीक्षा-भवनमें व्यवस्थापक, निरीक्षक तथा परीक्षार्थियोंका कुछ पता नहीं था, तो भी उत्तर पुस्तकें सम्मेलन-कार्यालयमें ठीक समयपर प्राप्त होती ही गईं! यह केन्द्र तोड़ दिया गया, और वहाँके सब परीक्षार्थी इस वर्ष भी अनुत्तीर्ण माने गये। कुछ केन्द्रोंके सम्बन्धमें निरीक्षकोंने ठीक समयपर परीक्षा आरम्भ न किये जानेकी शिकायत की। कहीं-कहीं परीक्षार्थियोंके अनुचित लाभ उठानेके अवसर दिये जानेकी भी शिकायत आई, और उन केन्द्रोंमें मध्यमाके केन्द्र तोड़ दिये गये। यदि भविष्यमें इन केन्द्रोंके व्यवस्थापकोंने विशेष जिम्मेदारीके साथ कार्य नहीं किया, तो प्रथमाके केन्द्र भी तोड़नेको परीक्षा-समितिको बाध्य होना पड़ेगा। इस प्रकारकी शिकायतें बहुत ही कम केन्द्रोंके सम्बन्धमें आई हैं। प्रायः सब केन्द्र-व्यवस्थापकोंने अपना सब कार्य अवैतनिक रूपसे पूरी जिम्मेदारीके साथ किया। मैं उनको अपने कार्यकी सफलतापर बधाई देता हूँ, और आशा करता हूँ कि सं० १९८७की परीक्षाके लिए हमारे सब केन्द्र-व्यवस्थापक

परीक्षाओंका इतना अच्छा प्रबन्ध करेंगे कि जिससे किसी भी व्यक्तिको किसी भी प्रकार की शिकायत करनेका मौका नहीं मिलेगा।

अवैतनिक रूपसे परीक्षकका कार्य करनेमें विश्वविद्यालयों और कालेजोंके अध्यापकों, परीक्षा-समितिके सदस्यों और विशारदोंने हमारी बड़ी सहायता की। प्रथमा-परीक्षाके परीक्षक तो विशेष संख्यामें अनुभवी विशारद ही नियत किये गये थे। मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि इन्होंने अपना काम बड़ी लगन, जिम्मेदारी और तत्परताके साथ किया। इस वर्ष परीक्षक इतनी संख्यामें नियुक्त किये गये थे कि किसी भी परीक्षकके पास ६० से अधिक उत्तर-पुस्तकें नहीं भेजी गईं। इसका परिणाम सन्तोषप्रद ही हुआ। उत्तर-पुस्तकें अधिक सावधानीके साथ देखी गई हैं, और परीक्षा-फल भी उनके पाससे जल्दी प्राप्त हुआ। यदि कुछ परीक्षकोंने विशेष कारणोंसे अपना परीक्षा-फल बहुत समय तक न रोक रखा होता, तो परीक्षा-फल कई दिन पहले प्रकाशित हो जाता। मैं सब परीक्षकोंको सम्मेलनकी ओरसे धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्यमें वे इसीप्रकारकी कृपा किया करेंगे।

सम्मेलनकी परीक्षाओंका कार्य अब इतना अधिक बढ़ गया है कि अब परीक्षा-समितिका संगठन नये ढंगसे किया जाना बहुत आवश्यक है। वर्तमान परीक्षा-समितिने उसे 'हिन्दी-विश्वविद्यालय-समिति'का रूप देना स्वीकार कर लिया है। जब हमारी सम्मेलनकी परीक्षा-समितिका संगठन वर्तमान विश्वविद्यालयोंकी समितियोंके समान हो जायगा, तो कार्य और भी सुचारुरूपसे चलने लगेगा। परीक्षाओंका महत्व बढ़ जायगा और हिन्दी-प्रचारका कार्य अधिक तेज़ीके साथ हो सकेगा।

सम्मेलनकी वर्तमान स्थायी समितिने 'हिन्दी-विश्वविद्यालय' सम्बन्धी प्रस्तावको स्वीकार कर लिया है। सम्मेलनकी नियमावलीमें आवश्यक परिवर्तन करनेके लिए 'हिन्दी-विश्वविद्यालय' सम्बन्धी प्रस्ताव सम्मेलनके आगामी अधिवेशनमें रखा जायगा। आशा है कि सम्मेलनके प्रतिनिधि तथा अन्य हिन्दी प्रेमी सज्जनगण इस प्रस्तावपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करके 'हिन्दी-विश्वविद्यालय'को शीघ्र ही स्थापित हो जानेके लिए पूर्णरूपसे सहायक होंगे।

दिमागी दिवाला

[लेखक :—श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी]

अक्टूबरके 'विशाल-भारत' में मित्रवर पण्डित रामनरेशजी त्रिपाठी लिखित 'दिमागी ऐयाशी' नामकी कहानी छपी है। त्रिपाठीजीको 'डाक्टर लग है', शायद इसीसे कहानीका वह अंश छूट गया है, जिसमें स्वामी मूसलानन्दजीने महात्मा अलग्यकी बातोंका मुँहतोड़ उत्तर दिया है। पाठकोंकी जानकारीके लिए वह छूटा हुआ अंश यहाँ लिखा जाता है। पाठक दोनोंको मिलाकर पढ़ें।

मकरन्दकी बी कहती है—"एक विचित्र बोलीमें, क्या-क्या कहते-सुनते हैं और हँसते-हँसाते हैं।" अलग्य पूछते हैं—"क्या मकरन्दने कोई दूसरी बोली भी सीख ली है?" मकरन्दकी लड़की जवाब देती है कि पिताजी उसका नाम ब्रजभाषा बतलाते थे। इसपर अलग्यजी मुसकराकर कहते हैं—"अच्छा, रहते हैं यहाँ, बोलते हैं दो सौ कोस दूरकी बोली!"

इतना सुनकर मूसलानन्दजीने पूछा—"क्यों जनाब, आपके दोस्त यहाँ कहाँ रहते हैं और कहाँकी बोली बोलते हैं?"

अलग्य—"वह पास ही कोमरीपुर (ज़िला जौनपुर) रहते, और ब्रजभाषामें कविता करते हैं।"

मूसला०—"सचमुच यह बड़ा भारी कुकर्म है। कोयरीपुरमें रहकर ब्रजभाषामें कविता! घोर पाप! बड़ा अन्याय है!! हिन्दुस्तानमें रहकर सात समुद्र पारकी अंग्रेज़ीभाषा बोले और उसमें कविता करे, तो कोई दोष नहीं, पर युक्तप्रान्तमें रहकर ब्रजभाषामें कविता करना महापाप और अनर्थ है! मकरन्दकी स्त्रीका ब्रजभाषाको एक विचित्र बोली कहना विचित्र नहीं, विचित्र है आपका तर्क। वह बेचारी तो 'होनो लूलू'से आई है, इसीसे ऐसा कहती है, पर आप तो हिन्दी-मन्दिरके पुजारी और खद्दरधारी हैं, फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं?"

अरुण—"क्योंकि यह ग्राम-गीतोंका ज़माना है। अब ब्रजभाषा क्या संस्कृतका भी नाम न लेने दूँगा।"

मूसला०—"बड़ी कृपा है। ऐसा किये बिना भला, ग्राम-गीतादि पुस्तकोंको कोई कैसे पूछेगा? अच्छा एक बात और बताइये, अगर जौनपुर रहकर ब्रजभाषा बोलना गुनाह है, तो प्रयागमें बैठकर हिन्दीवालोंके लिए मराठी, पंजाबी, मारवाड़ी, मलयाली, तामिल, तेलगू आदि ग्राम-गीतोंका संग्रह करना क्या गुनाह नहीं है? ब्रजभाषा क्या उनसे भी गई-बीती है?"

महात्मा अरुण जवाब न दे बगलें झाँकने लगे।

(२)

मधुकर सिंहके दरबारमें बेचारा मकरन्द ब्रजभाषाकी कविताएँ सुना रहा था। अरुणजी भी सूँघते हुए वहाँ पहुँच गये। पहुँचते ही बोले—"ब्रजभाषामें इस तरहकी चोरी बहुत चलती है।"

मूसलानन्द वहाँ पहलेसे ही आसन जमाये थे। बोले—"कैसी चोरी, जनाब?"

अरुण—"दूसरोंके भावोंको चुराना या दूसरोंकी कविताओंको अपना बताना।"

मूसला०—"यह तो खड़ी-बोलीमें ही बहुत होता है। 'मतवाला' अकसर ऐसी चोरियोंका पता लगाता है।"

अरुण—"मतवालेका क्या विश्वास?"

मूसला०—"अच्छा 'मतवाले'को जाने दीजिए। मैं स्वयं पता बताता हूँ। दूर जानेकी ज़रूरत नहीं। सीधे त्रिपाठीजीके मन्दिरमें चले चलिये। देखिये, 'स्वप्न' निकालिये, पृष्ठ ११, पढ़िये।

'कहते हुए पद्मसे सुन्दर
ललनाके हैं दृग मुख कर पद।'

मिलाइये तुलसीदासजीकी रचनासे—

'श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन
हरण भव भय दारुणं।
नवकंज लोचन कंज मुखकर
कंज पद कंजारुणं॥"

अब कहिये यह चोरी है या सीना जोरी?

एक ही नहीं अनेक ऐसे उदाहरण हैं, पर एक और सुनिये। रामचरित मानसमें है—

'रज होइ जाँय पखान पवारे।'

त्रिपाठीजी देखिए इसे कैसे उड़ाते हैं—

'पर्वतको भी खंड-खंडकर
रजकण कर देनेको चंचल।"

(स्वप्न, पृष्ठ ४७)

सिर्फ पखानको पर्व्वत और रजको रजकण कर देनेसे माल दोस्तोंका हो गया!"

अरुण—"यह चोरी नहीं, भावोंकी टक्कर है।'

मूसला०—"अगर त्रिपाठीजी तुलसीदासजीके समसामयिक होते, तो यह बात हो सकती थी, पर दुर्भाग्यवश त्रिपाठीजी तीन सौ वर्ष बाद पैदा हुए, इसलिए टक्कर कहना मक्कारपन है। मैं यह नहीं कहता कि ब्रजभाषामें चोरी नहीं होती है। जैसे खड़ी-बोलीमें होती है, वैसे ही उसमें भी हो जाती है। चोरी करनेसे कवि बदनाम होता है, भाषा नहीं। त्रिपाठीजीके घरमें चोरी हो जाय और चोर पकड़ लिया जाय, तो चोरको सजा होगी या त्रिपाठीजीके घरको?"

अरुणजीसे इसका कुछ जवाब न बन पड़ा, तो दूसरी

ही बात लेकर मकरन्दसे कहने लगे—"स्त्री-पुरुषोंके केवल काम-सम्बन्धी अश्लील चर्चासे तुम्हें क्या लाभ ?"

मूसलानन्दजी मान-न-मान मैं तेरा मेहमान बन बोल उठे—"यह तो त्रिपाठीजीसे पूछिये। लाभ तो उन्हें ही 'स्वप्न' लिखकर हुआ है। अगर लाभ न होता, तो वह 'स्वप्न' में क्यों लिखते—

(१) प्रियम्वदाकी पृथुल जाँघपर···(पृ० ३)

(२) 'मैं तत्काल भुजाओंमें भर
बार-बार चुम्बन करता हूँ' (पृ० ५)

(३) नित मुकुलित यौवनका चिन्तन (पृ० १५)

(४) 'जहाँ किये थे मान जहाँपर
हास जहाँ परिरम्भण चुम्बन।" (पृ० ६६)

(५) 'अमने अधर रख दिये मैंने
उसके अरुण वर्ण अधरोंपर।' (पृ० ७१)

यह काम-सम्बन्धी अश्लील चर्चा है या योगकी पवित्र क्रियाओंका वर्णन ?"

अरुणजी सुनी अनसुनी कर कहने लगे—"मान लो कोई पतिव्रता विरहकी ज्वालासे कुछ सन्तप्त ही है, तुम उसके शरीरको आवा, पजावा, दावानल और तावा बनाकर हल्ला मचाते घूमते हो, यह क्या कोई शिष्टाचार है ?"

मूसला०—"कदापि नहीं, शिष्टाचार तो 'स्वप्न' में कूट-कूटकर भरा है, जहाँ पतिव्रताके 'मुकुलित यौवन' 'पृथुल जाँघ', परिरम्भण चुम्बन' आदिका वर्णन है। यह त्रिपाठीजीकी रचना है और खास खड़ी-बोलीमें है, इसीसे शिष्टाचारका बाल बाँका न हुआ। अगर यही बातें ब्रजभाषामें होतीं तो शिष्टाचार बिना मारे मर जाता। क्यों यही बात है न ?"

अब तक श्रोतागण चुपचाप सुन रहे थे। मूसलानन्दकी जोरदार और वजनी दलीलें सुनकर 'सब लोग जाग ऐसे (से) उठे।' प्राय: सभी मूसलानन्दजीके पक्षमें आ गये। यह देख महात्मा अरुणजी जरा झेंपकर कहने लगे—"छातीसे चुम्बन दिया-जाती क्यों न धारि लै।" वाह वा! ऐसी एक की मिल जाय, तो तुम तो उसकी छातीपर दूध भी गरम कर लिया करो।"

मूसला०—"आपकी कृपासे मिल जाय, तो सब कुछ कर लूँगा, पर त्रिपाठीजीकी नई नायिकाकी कृपासे किसानोंके खेत अब नहीं सूखेंगे और वह भी अकबकल लगा मुट्ठी गर्म कर लेंगे, क्योंकि 'पथिक' के ११ वें पृष्ठमें लिखा है—

'बरस पड़ीं आँखें पावसके घन-सी भर जलधारा।···"

इसपर खूब ठहाका हुआ और महात्मा अरुणका मुँह पके पीले कुम्हड़ेकी तरह लटक गया। वह सम्हलकर फिर बोले—"अच्छा सुनो! पद्माकरको क्या अधिकार था कि वे उस 'किशोरी' और 'नन्दकिशोर' के गुप्त प्रेमको इस तरह गली-गली कहते फिरते !"

मूसलानन्द भी चुप रहनेवाले जीव न थे। बोल उठे—"कोई नहीं, सवा सोलह आने अधिकार तो त्रिपाठीजी महाराजको है, जिससे उन्होंने सुमना और वसन्तकी गुप्त रति-क्रियाओंका विशद वर्णन 'स्वप्न'के द्वारा गाँव-गाँव घरघर पहुँचा दिया है। किसी भले घरकी बहू-बेटियोंकी गुप्त रति-लीलाओंका बखान करना क्या शिष्टाचार या सभ्यताके अनुकूल है ? त्रिपाठीजीने न आँखों देखी और न कानों सुनी थी। यह कोरी कल्पना है। कहिये, यह मिथ्या भाषण है या नहीं ? इसके सिवा ऐसे वर्णनोंसे पढ़नेवालोंकी कामुकता भी बढ़ सकती है या नहीं ? अगर आप कहें कि नहीं, तो फिर ब्रजभाषाके प्राचीन कवियोंपर ही क्यों आक्षेप करते हैं ? उन्हें तो सब समझ भी नहीं सकते !

अरुणने अपना रंग जमते न देख कहा—"ब्रजभाषाके कवि पेटके गुलाम थे। उन्होंने अपने आश्रयदाताओंकी कामुकताकी वृद्धि की है, और उन्हें प्रसन्न करके जीविका प्राप्त की है।"

मूसलानन्द हँसकर बोले—"खूब तो खूब अब चलनी भी बोलने लगी, जिसमें बहत्तर छेद ! जीविका प्राप्त की, तो क्या बुरा किया। पेटके गुलाम तो सभी हैं। क्या आप या

हिन्दी-मन्दिरके प्रख्यात पुजारी पंडित रामनरेश त्रिपाठी और ब्रजभाषा



श्री त्रिपाठीजी—(भक्त सूरदास और मीराबाईसे) "भाओ भागो, तुम्हारी 'दो सौ कोस दूरकी विचित्र भाषा' हमारी समझमें नहीं आती। हमारे 'हिन्दी-मन्दिर'में तुम्हारी भाषाको कोई स्थान नहीं।"

सूरदास—"तो फिर आप हमारी ब्रजभाषाके पदोंका उपयोग अपनी पुस्तकोंमें क्यों करते हैं ?"

त्रिपाठीजी—"वाह ! वह बात दूसरी है। मैं व्यापारमें ब्रजभाषाके उपयोग करनेके पक्षमें हूं, काव्यमें नहीं !"

त्रिपाठीजी नहीं हैं ? क्या वह अपने आश्रयदाताओंके चित्र और चरित्र नहीं छापते हैं ? पुस्तकें अर्पित कर अपना मतलब नहीं गाँठते हैं ?"

सब लोग एक स्वरसे बोल उठे—"सरासर गुलामी है। ब्रजभाषाके कवि इनसे कहीं अच्छे थे। वह जिसका खाते थे उसका गाते थे। त्रिपाठीजीकी तरह जिस पत्तरमें खाते, उसीमें छेद नहीं करते थे। जिस ब्रजभाषाकी बदौलत यह बढ़े, अब उसीकी जड़ काटते हैं !"

अरुण—"जड़ न काटें, तो क्या करें। अतिशयोक्तियोंसे तो ब्रजभाषाकी कविता भरी हुई है।"

मूसला०—"पर खड़ी-बोली भी तो इनसे पाक-साफ नहीं, विश्वास न हो, तो आदर्श कवि त्रिपाठीजीकी आदर्श पुस्तिका 'स्वप्न' का अवलोकन कीजिये। उसमें इनकी भरमार है।

सुनिये—

'बार-बार चुम्बन करता हूँ
उससे जो लालिमा उमड़कर
निकल कपोलोंपर आती है
क्या है वैसी उषा मनोहर ?'
(स्वप्न, पृ० ५)

चुम्बनकी लालिमाको भोरकी लालीसे बढ़कर कहना क्या अतिशयोक्ति नहीं है ? अच्छा और सुनिये—

'पर्वतको भी खंड-खंडकर
रजकण कर देनेको चंचल।'

अतिशयोक्तिके सिवा यह गोस्वामीजीके 'रज होइ जाय पखान पवारे' का रूपान्तर भी है, जैसा पहले कहा जा चुका है।"

यह जवाब सुनकर मण्डलीके लोग अरुणको धिक्कारने लगे, पर वह चुप न हुआ। खिसियानी बिल्लीकी तरह खम्भा नोचने लगा—"और कुछ नहीं, तो कृष्णकी आड़ लेकर मिथ्याभावना और व्यभिचारका प्रचार कर रहे हो।"

मूसला०—"यह भी सरासर गलत है। जो श्रीकृष्णचन्द्रको अवतार मानते और उनके भक्त हैं उनमें तो मिथ्याभावना और व्यभिचारका प्रचार नहीं हो सकता। हाँ, जो अवतारके माननेवाले नहीं हैं उनमें ही होना सम्भव है। जहाँ ब्रजभाषाकी कविताका प्रचार नहीं है, वहाँ क्यों व्यभिचार होता है ? थोड़ी देरके लिए मान लिया जाय कि आपका कहना ठीक है, तो त्रिपाठीजीने 'स्वप्न' में सुमना और वसन्तका रति-वर्णन क्यों किया ? इससे क्या विलासिता या व्यभिचार नहीं फैल सकता है ? क्या इसके बिना राष्ट्रीयताका भाव नहीं उदय हो सकता था ?"

अरुण—"व्यभिचार नहीं, तो 'दिमागी ऐयाशी' बढ़ती है।"

मूसला०—"जी नहीं। आपकी बातोंसे दिमागी दिवाला हो सकता है। आपकी मनगढ़न्त बातें सुन भोलेभाले नवयुवक ब्रजभाषासे घृणा करने लगेंगे—पुराने कवियोंका अनादर करने लगेंगे—अपना पुराना सभ्य साहित्य छोड़ ग्राम-गीत पढ़ने लगेंगे। नतीजा यह होगा कि गम्भीर साहित्य लोप होगा और टुच्चू साहित्य बढ़ेगा, और यही आपका उद्देश्य भी मालूम होता है। आप देशी बोलीमें कविता करनेकी सलाह देते हैं, तो क्या ब्रजभाषा देशी नहीं विलायती भाषा है ? आप खद्दरधारी हो, ब्रजभाषाको देशी भाषा नहीं समझते, यही दिमागी दिवाला है !"

सब लोग—"ठीक है ! बहुत ठीक है ! बोलो ब्रजभाषाकी जय !"

कायापलट

[लेखक :—श्रीयुत सुदर्शन]

(१)

गाड़ीने सीटी दी और आहिस्ता-आहिस्ता चलने लगी। इन्टर क्लासके एक जनाने डिब्बेमें बैठी हुई 'रत्ना'ने घूँघटकी आड़से बाहरकी तरफ देखा और विछोहके पछतावेका एक गहरा साँस लिया। सवेरे गाँव छूटा था, अब ज़िला भी छूट गया। 'रत्ना'ने निचला होंठ दाँतों तले दबाकर सिर झुकाया, और सोचने लगी—"देखें, अब फिर कब आना हो। इस वक्त बाप आँगनमें बैठा हुक्का पी रहा होगा, मा रसोईमें खाना पका रही होगी, छोटे भाई खेल रहे होंगे और एक तरफ भैंस बँधी है।" उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे "बापने घड़ी निकाल कर वक्त देखा है।" और कहा है, "अब 'रत्ना' गाड़ीमें बैठ चुकी होगी।" फिर उसको ऐसा मालूम हुआ—"माकी आँखोंमें आँसू भर आये हैं और वह दुपट्टेसे आँखें पोंछ रही है।" 'रत्ना'को माकी एक-एक बात याद आकर बेताब करने लगी। चलनेके वक्त उसने किस तरह उसे गले लगाकर प्यार किया था, किस तरह फूट-फूटकर रोई थी, जिस वक्त उसने रत्नाके पतिसे कहा—"बेटा! अब यह तुम्हारे हवाले है, हमारा हक आजसे खत्म हुआ।" उस वक्त उसकी आवाज़ किस तरह काँप रही थी, उसने कितनी दीनतासे कहा था—"इसे हमने बड़े लाड़-प्यारसे पाला है, इसका दिल न दुखाना।" यह सब बातें याद करके 'रत्ना'का दिल भर आया। उसने अपना सिर लकड़ीकी खिड़कीके साथ लगा दिया और रोने लगी।

गाड़ी तेज़ हो गई थी। वृक्ष, खेत, तारके खम्बे इस तरह उड़ते चले जाते थे, जैसे कोई अपने प्रेमी मित्रसे मिलने जा रहा हो। 'रत्ना'ने अपने दिलको सम्हाला और घूँघटका कोना उठाकर इधर-उधर देखा। डिब्बेमें एक स्त्री थी—बाईस-तेईस सालकी उमर होगी, गोरा रंग, गोल चेहरा, सुराहीदार गर्दन, शक्ल-सूरतसे रोब बरसता था। इतनेमें उसकी निगाहें भी ऊपर उठ गईं। 'रत्ना' चौंक पड़ी। यह सावित्री थी, उसीके गाँवकी रहनेवाली। उसकी शादी हुए अभी चार ही साल गुज़रे थे। इस थोड़े समयमें ही वह कितनी बदल गई थी। उसको देखकर खयाल भी न होता था कि वह किसी गाँवकी रहनेवाली होगी। चेहरेपर कैसी गम्भीरता थी, कैसा दबदबा, जैसे कोई रानी हो। 'रत्ना' उसे थोड़ी देर चुपचाप देखती रही, इसके बाद उठकर उसके पास चली गई, और बोली—"वाह बहन! इतनी जल्दी भूल गई।"

सावित्रीने उसकी तरफ देखा और गले लगाकर बोली—"अरी मेरी 'रत्ना'! तू कहाँसे आ गई, (मुसकराकर) इस कोनेमें जो पार्सल-सा पड़ा था, क्या! तू उसीमें से निकली है। आ, एक दफा फिर गले मिल लें! (गले मिलनेके बाद) वाह, मेरे 'पार्सल' तू किधर जा रहा है?"

रत्ना—"तुम्हारे पार्सलका विवाह हो गया।"

सावित्री—"यह तो साफ दिखाई दे रहा है, वर्ना जंगलकी यह बंदरिया तो इस तरह मुँह छिपाकर बैठनेवाली न थी। मालूम होता है, पहली दफा सुसराल जा रही हो!"

रत्ना—"हाँ बहन, पहली दफा। शादी तो दो साल हुए हो गई थी, गौना अब हुआ है।"

सावित्री—"कहाँ विवाह हुआ है?"

रत्ना—(सर झुकाकर आहिस्तासे) "स्यालकोट।"

सावित्री—"जीजाजी क्या करते हैं?"

रत्ना—"लाहोरमें नौकर हैं।"

सावित्री—"लाहोरमें! (मुसकराकर) तब तो प्रायः मुलाकात होती रहेगी। हम भी वहीं रहते हैं। जीजाजी कैसे हैं? बदसूरत तो नहीं?"

रत्ना—(फिर सर झुकाकर उसी तरह आहिस्तासे) "मुझे क्या मालूम ! मैंने उन्हें देखा थोड़े ही है ।"

सावित्री—"और जो वह अब कहीं गुम हो जायँ, तो कैसे ढूँढ़ो ?"

रत्ना—"तुमको बुला भेजूँगी ! आओगी न ?"

सावित्री—"ज़रूर आऊँगी, यदि भक्तिसे बुलाओ !"

रत्ना—"ख़ैर, तुम अपनी सुनाओ, क्या हाल है ?"

सावित्री—"बहन ! परमात्माकी कृपासे कोई तकलीफ नहीं । वकालत करते हैं । तीन-चार सौ रुपयेकी आमदनी हो जाती है । मिजाजके इतने अच्छे हैं कि तुमसे क्या कहूँ । जब देखो, तब चेहरा गुलाबकी तरह खिला हुआ है । नाराज़ होना तो जानते ही नहीं । मुझे पूरी आज़ादी दे रखी है, कहीं जाऊँ-आऊँ, ज़रा एतराज़ नहीं करते ।"

रत्ना—"तो क्या, तुम बाज़ारोंमें घूमती-फिरती हो, मेमसाहब बनकर ?"

सावित्री—(मुसकराकर) "तुम्हें शायद मालूम नहीं, वह पर्देके बहुत विरुद्ध हैं । (बकससे एक किताब निकालकर) यह देखो, उन्होंने एक किताब लिखी है । इसमें उन्होंने हर तरहसे सिद्ध कर दिया है कि पर्देकी प्रथा एक मूर्खता है और औरतोंके लिए बहुत हानिकर है । इसे पढ़ो, तो तुम्हारी आँखें खुल जायँ ।"

रत्ना—(किताब लेकर) "तो यह कहो, तुमको भी अंग्रेज़ोंकी हवा लग गई ।"

सावित्री—(मुसकराकर) "मैं पहले ही पर्देके पक्षमें न थी ।"

रत्ना—"तो नंगे-मुँह, बाज़ारोंमें से निकलते हुए तुम्हें सर्म नहीं आती ! कोई अपना आदमी देख ले तो क्या कहे ! मैं तो मर जाऊँ, तब भी यह बेगैरती (लज्जाहीनता) स्वीकार न करूँ । तो ! दोनों हाथमें हाथ डालकर जाते होगे और लोग हँसते होंगे ।"

सावित्री—"तुम्हें एक और भी खबर सुना दूँ । उन्होंने एक सोसाइटी स्थापित की है, जिसका उद्देश्य ही यह है कि इस खराब प्रथाको दूर किया जाय । इस सिलसिलेमें प्रायः पंजाबके बहुतसे स्थानोंमें उनके लेक्चर हो चुके हैं । आगामी मासमें स्यालकोट भी आयँगे । यदि कहो, तो मैं भी चली आऊँ, परन्तु एक शर्त है ?"

रत्ना—"क्या ?"

सावित्री—"तुम्हें भरी सभामें कहना होगा कि यह पर्दा-प्रथा कुप्रथा है और स्त्रियोंपर भयानक अत्याचार है ।"

रत्ना—"मुझसे यह आशा मत रखो । यदि केवल स्त्रियोंकी सभा हो, तो मैं उठकर तुम्हारी वह गत बनाऊँ कि तुम्हें भागनेका रास्ता न मिले ।"

सावित्री—"बड़ी तीसमारखाँ हो, सभामें खड़ी कर दी जाओ, तो पसीना आ जाय, मुँह न खुले, और मेरा तो ख्याल है कि थर-थर काँपने लगो ।"

रत्नाने ज़ोरसे हँसकर कहा—"बहन ! यह तो बिलकुल ठीक है, तो क्या तुम वहाँ भी इसी प्रकार अनर्गल खुलकर बोल सकती हो ?"

सावित्री—"डर क्या है, कोई मुँहमें थोड़े ही डाल लेगा—घोलकर थोड़े ही पी जायगा ।"

रत्ना—"मैं तो एक अक्षर भी न बोल सकूँ । बोलना चाहूँ भी तो बोल मुँहसे न निकले । अपने चारों तरफ़ मनुष्योंको देखकर ही घबरा जाऊँ ।"

सावित्री—"यही तो पर्देका सबसे निन्दनीय दुर्गुण है । यह स्त्रियोंको 'अबला' बना देता है । उनका उत्साह जाता रहता है । यही कारण है कि यदि वे किसी संकटमें पड़ जायँ, तो भले ही सर्वनाश हो जाय, जान दे दें ; पर उनसे इतना न होगा कि उठकर खड़ी हो जायँ, या शोर ही मचा दें ।"

रत्ना—"और ऐसी दशामें तुम क्या करो ?"

सावित्री—"कोई टेढ़ी निगाहोंसे भी देखे, तो मारे जूतोंके सिरके बाल उड़ा दूँ । ज़रा भी लिहाज़ न करूँ ।"

रत्ना—"कहना तो आसान है, मगर वक्तपर ऐसी हिम्मत नहीं होती, हाथ ही नहीं उठते ।"

सावित्री—"अब अपने मुँहसे क्या कहूँ। यदि ऐसा समय आ जाय, तो दिखा दूँ कि हाथ उठते या नहीं। (गाड़ीको रुकते देखकर) लो, वज़ीराबाद आ गया, यहाँ तुम्हें गाड़ी बदलनेको उतरना होगा। मैं तो सीधी लाहोर जाऊँगी। लो, पत्र लिखना। मेरा पता उस किताबमें है।"

रक्षा अपने कपड़े ठीक करके खड़ी हो गई और मुँहपर घूँघट खींच लिया। सावित्री यह देखकर मुसकराई, और बोली—"तो स्यालकोट आऊँ या न आऊँ?"

रक्षा—(घूँघटके अन्दरसे उसकी ओर देखकर आहिस्तासे) "न क्यों आओ! ज़रूर आओ। मैं अपना पता लिख भेजूँगी।" इतनेमें गाड़ी एक झटकेके साथ ठहरी। सावित्रीने कहा—"हाँ, मेरी वह शर्त स्वीकार है न, तुम्हें भरी सभामें खड़ा होकर पर्देके विरुद्ध बोलना होगा?"

रक्षा—(आहिस्तासे) "पहले तुम किसीको जूते मारकर दिखाओ, फिर मैं भी कह दूँगी—'पर्दा बुरा' बल्कि……"

वाक्य पूरा भी न होने पाया था कि रक्षाका पति आकर इस डिब्बेके सामने खड़ा हो गया। रक्षा घूँघटको और भी लम्बा करके गाड़ीसे उतर गई। सावित्रीने ज़ोरसे हँसकर कहा—"कहीं गिर न जाइयो।" इसी समय कई स्त्रियाँ इस डिब्बेमें आ चढ़ीं। सावित्री देखती रह गई। उधर रक्षा लम्बा घूँघट काढ़े, यात्रियोंकी भीड़में धक्के खाती चुपचाप अपने पतिके पीछे-पीछे चल दी। नवयुवक और अनुभवशून्य रक्षाका पति भीड़को दोनों हाथोंसे इधर-उधर हटाते हुए आगे बढ़ा जा रहा था। बेचारा कभी कुलीकी तरफ़ देखता था, जो उसका असबाब उठाये आगे-आगे आ रहा था और कभी स्त्रीकी ओर देखता, जो घूँघट काढ़े पीछे-पीछे आ रही थी। सहसा रक्षाके मुँहसे हल्कीसी चीख निकल गई, उसने हाथसे घूँघटको कुछ ऊँचा उठाकर आँखें फाड़-फाड़कर देखा, पर उसे अपना पति दिखाई न दिया—"किधर चले गये, अभी तो आगे-आगे जा रहे थे। मैं बराबर उनके पीछे-पीछे चल रही हूँ, कहीं एक मिनटके लिए भी नहीं ठहरी, एक क़दम भी इधर-उधर नहीं हुई, फिर कहाँ छिप गये, कहीं पीछे न रह गये हों।" रक्षाके पाँव रुक गये। उसने पीछे मुड़कर देखा, मगर वह वहाँ भी न थे। मुसाफ़िर दौड़े हुए आ रहे थे, हरएकको जल्दी थी, कि कहीं ऐसा न हो मैं रह जाऊँ और गाड़ी चल दे। मुसाफ़िरोंके इस द्रुतगति-प्रवाहमें रुकना आसान न था। रक्षा भी कभी इधर लुढ़कती, कभी उधर। यहाँ तक कि एक रेलेमें वह कहींसे कहीं जा पहुँची। बड़ी कठिनाईसे भीड़से बाहर निकली और सिर झुकाकर एक ओर खड़ी हो गई। उसे आशा थी कि पति ढूँढ़ता हुआ मुझे देखकर स्वयं इधर चला आयगा; पर कई मिनट बीत गये, इधर कोई न आया। रक्षा घबरा गई, अपने पतिको कैसे ढूँढ़े। उसने उसे अच्छी तरह देखा भी तो न था। वह केवल इतना ही जानती थी कि पतिदेवता बादामी रंगका बूट पहने हुए हैं। देखते-देखते कई बादामी बूटवाले आये और आगे बढ़ गये। उसके पास कोई न ठहरा। सारी गाड़ीमें आदमी ही आदमी भरे थे, पर पतिका पता नहीं, कहाँ था। गाड़ीने सीटी दी, और चलने लगी। रक्षाको जान पड़ा, गाड़ी नहीं, उसके प्राण जा रहे हैं। अब उसकी रक्षाका कोई उपाय नहीं रह गया। उसने घूँघटका कोना उठाकर दौड़ती हुई गाड़ीकी ओर देखा, और मन-ही-मन परमात्मासे प्रार्थना करने लगी कि गाड़ी रुक जाय; पर गाड़ी न रुकी। प्लेटफार्म खाली हो गया। कुली और खोंचेवाले भी दूसरे प्लेटफार्मपर चले गये। अभी कुछ देर पहले यहाँ कितना कोलाहल था, कानों पड़ी आवाज़ न सुनाई देती थी, कितने आदमी थे, पर अब उस बिछुड़ी हुई, अल्पवयस्क बालिकाके अतिरिक्त वहाँ कोई न था। रक्षाने दीवारकी ओर मुँह कर लिया और अपने दुर्भाग्यपर फूट-फूटकर रोने लगी।

शामके वक़्त रेलवेका एक बाबू उधरसे निकला। वह अपने घर जा रहा था, रक्षाको देखकर ठिठक गया। यह कौन है, कोई आदमी भी पास नहीं, सारा प्लेटफार्म सूना है, अकेली कहाँ

क्या कर रही है। एकाएक उसे याद आया, मैंने इसे दोपहरके समय भी देखा था। उस वक्त भी अकेली थी, कोई साथ न था। मालूम होता है, गाड़ीसे रह गई है। बाबू आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ा। रक्षाने उसके पाँवकी आहट सुनी। चौंककर सिर उठाया और बाबूके पाँवकी तरफ़ देखा कि शायद 'बादामी बूटवाला' आ गया हो, पर ऐसे भाग्य कहाँ। रक्षाने ठंडी साँस भरी और सिर झुका लिया।

बाबू—(रक्षाको सिरसे पाँव तक घूरकर) "तुम यहाँ खड़ी क्या कर रही हो ?" रक्षाने घूँघट और भी लम्बा खींच लिया और जवाब न दिया।

बाबू—"तुम्हारे साथ कोई पुरुष भी है या नहीं ?"

रक्षाने सिर हिलाकर इशारेसे कहा—"नहीं।"

बाबूकी आँखें उधर झुक गईं। सिगरेटका दम खींचकर बोला—"तुम यहाँ अकेली कैसे आ गई हो ? कहाँसे आ रही हो ?"

रक्षाने अस्फुट स्वरमें उत्तर दिया—"गुजरातसे।"

बाबू—"तुम्हारा टिकिट कहाँ है ? दिखाओ, है या नहीं ?" सुनकर रक्षाका मुँह सूख गया, जीभ तालुसे चिपक गई, बोलना चाहा, पर शब्द गलेमें फँसकर रह गये, बोल न निकला। उसे खयाल आया, कल इस समय आरामसे अपने घर बैठी थी, कोई चिन्ता न थी, और आज···" रक्षाकी आँखोंमें आँसू आ गये। ठंडी आह भरी और सोचा, अब क्या होगा।

बाबू—(ज़रा सख्तीसे) "तुम्हारा टिकिट कहाँ है ? बोलती हो या नहीं ?"

रक्षा थर-थर काँपने लगी, बोली—"बाबूजी ! मुझपर दया कीजिए, परमात्मा आपका भला करेगा।"

बाबू—(धमकाकर) "टिकट लाओ!"

रक्षा—(रोते हुए) "टिकट उनके पास है।"

बाबू—(क्रोधसे) "तो उनको बुलाओ, कहाँ हैं ?"

रक्षा—(घबराहटका साँस लेकर) "अब बाबूजी ! मुझे क्या मालूम कहाँ हैं ! भीड़में साथ छूट गया, फिर पता नहीं चला, कहाँ चले गये।"

बाबू—"कैसी विचित्र बात है कि पुरुष अपनी नई दुलहिनको यों छोड़ जाय ! ख़ैर, हमें इससे क्या मतलब, किराया दो।"

बिल्लीके पंजेमें फँसे चूहेकी भी ऐसी दयनीय दशा न होती होगी, जो इस समय रक्षाकी थी। मन-ही-मन हाथ जोड़ भगवानसे प्रार्थना कर रही थी कि किसी तरह आपद टल जाय, सावित्री ही यहाँ आ जाय।

बाबूने चारों तरफ देखा बिलकुल सन्नाटा था। तब इसने रक्षाके और पास आकर चुपकेसे कहा—"कहो तो अपनी गाँठसे किराया देकर रसीद काट दूँ। सिर्फ एक बार मुसकराकर 'हाँ' कह दो। क्या हर्ज है, हमारा जी इसीमें ख़ुश हो जायगा।"

रक्षाके कानोंमें जैसे किसीने गर्म सीसा उँडेल दिया हो। ऐसे छल प्रपंचसे इसे कभी वास्ता न पड़ा था, पर इतनी वह अनजान न थी। सब कुछ समझती थी। उसका जी चाहता था कि इस शैतानका मुँह नोंच ले, बस चले तो गर्दन मरोड़ दे। क्रोध था, पर साहस न था। निर्बलको क्रोध आता है तो रो देता है। इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। रक्षा भी रोने लगी।

सहसा बाबू चौंक पड़ा। प्लेट-फ़ार्मके दूसरे सिरेपर एक स्त्री आती दिखाई दी। देखते-देखते वह आकर इसके पास खड़ी हो गई। रक्षाकी जानमें जान आई। उसके कानके पास मुँह ले जाकर बहुत धीमेसे कहा—"बहन ! मुझे बचाओ, यह शैतान···।" इसके आगे ज़बान रुक गई, पर वह स्त्री सब कुछ समझ गई। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने बाबूकी तरफ़ इस क्रोध-भरी चितवनसे देखा, मानो इसे खा ही जायगी। क्रोधसे झिड़ककर बोली—"तुम्हारे अपनी मा-बहन कोई है या नहीं ?"

शब्द सुनकर रक्षा उछल पड़ी—'यह तो सावित्री है !' इसकी जानमें जान आई, डूबतेको किनारा मिल गया। अब

उसे कोई चिन्ता न थी। पहले सोचती थी कि घर कैसे पहुँचूँगी, वह घबराहट भी जाती रही। इस समय वह अपनेको सर्वथा सुरक्षित समझती थी, मानो अपने घरमें खड़ी है या माकी गोदमें बैठी है।

सावित्रीने बाबूकी तरफ़ रोष-भरी दृष्टिसे देखा, और फिर पूछा—"तुम्हारे घरमें कोई मा-बहन है या नहीं? जो इस तरह कुलांगनाओंको तंग करते हो।"

बाबूपर आतंक छा गया कि यह महिला ज़रूर किसी बड़े कुलकी है और सुशिक्षिता है, नहीं तो ऐसी स्वतन्त्रता और निर्भीकतासे कभी बात न कर सकती। सोचने लगा, अब क्या करूँ, कैसे छुटकारा हो। थोड़ी देर बाद बोला—"मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा था, या टिकिट दिखाओ, या किराया दो। इससे अधिक एक शब्द भी नहीं कहा। इसीपर यह रोने लगी।"

सावित्रीने रक्षाके मुँहके पास कान करके पूछा—"किराया माँगता था, या कुछ और भी कहता था?"

रक्षाने उसके कानमें बहुत धीरेसे रुक-रुककर कहा—"कहता था, 'ज़रा मुसकरा दो, तो तुम्हारा किराया अपनी गाँठसे दे दूँगा। हमारा जी इसीमें खुश हो जायगा'।" यह कहकर रक्षा फिर रोने लगी।

सावित्रीने यह शब्द सुने, तो उसे क्रोधका आवेश आ गया; बोली—"तुम्हारा नाम क्या है?"

बाबू—"तुम मेरा नाम पूछनेवाली कौन होती हो?"

सावित्री—(लाल-लाल आँखें निकालकर) "मैं कोई हूँ, इससे क्या, तुम अपना नाम बताओ।" बाबू डर गया, फिर भी साहस करके बोला—"वाह! चली हैं मुझे धमकाने। इनसे नहीं कहतीं कि बिना टिकटके गाड़ीपर क्यों सवार हुई थीं।"

सावित्रीने आगे बढ़कर उसकी गर्दन दबाई और झँझोड़कर कहा—"तुम अपना नाम बताओगे या नहीं? बोलो! तुम्हारा नाम क्या है? मैं तुम्हारी रिपोर्ट करूँगी।"

जब आदमी निराश होता है, तो साहस आ जाता है। निराशामें बाबू भी साहसी बन गया। इसने सावित्रीका हाथ झटक दिया, और कहा—"ख़बरदार! मैं तरह दिये जाता हूँ और तुम शेर बनी जाती हो, लेकिन इतना समझ लो, यदि मैंने कुछ कह दिया, तो आबरू दो कौड़ीकी भी न रहेगी। रिपोर्ट करना है, जाओ शौक़से करो, मैं इससे डरता थोड़े ही हूँ।"

सावित्रीसे सहन न हो सका। फ़ौरन पाँवसे जूता निकालकर बाबूके सिरपर दो-चार तड़ातड़ जड़ दिये। कोलाहल सुनकर स्टेशनके दो-चार और बाबू भी कुछ दूर फ़ासलेपर आकर खड़े हो गये थे। वे 'हैं! हैं!' करते ही रह गये और यहाँ बाबूकी मरम्मत हो गई। ऐसे मौक़ेपर लड़ाईमें जो पहल कर जाय, वही जीत जाता है। बाबूके होश-हवास जाते रहे, वह बौखला-सा गया था। इससे इतना भी न हुआ कि सावित्रीको परे धकेल ही दे। जब जूता-काण्ड समाप्त हो गया, तब दूसरे बाबुओंने आकर सावित्रीसे कहा—"आपने जूता मारनेकी बात अच्छी नहीं की। ज़बानसे चाहे जो कुछ कह लेतीं हर्ज न था।"

सावित्री बफरी हुई सिंहनीकी तरह गरजकर बोली—"तुम जूतोंकी कहते हो, यह एक शब्द भी कहे, तो मैं इसका लहू पी जाऊँ। यह पर्देवाली कुलवधुओंकी बे-इज़्ज़ती करता है।"

बाबू चुपचाप खड़ा काँप रहा था, हुल्कार न निकालता था। वह नहीं, उसके पाप काँप रहे थे। एक बाबू उसे पकड़कर किसी तरह बाहर ले गया। दूसरेने कहा—"इसके सिरपर भी भूत सवार था। हम लोग समझा-समझाकर थक गये, यह किसीकी सुनता ही न था। आपने इसे अच्छी शिक्षा दी, याद रखेगा।"

सावित्री—"अगर आप लोग न आ जाते, तो यह अभी और पिटता।"

दूसरा—"बहन! मेरा तो जी खुश हो गया। जो आदमी कुलीन स्त्रियोंपर बुरी दृष्टि डाले, वह हमारी सहानुभूतिका पात्र नहीं। इसीसे मैं चुप था। जानता था

यह सब मेरे विरोधी बने हुए हैं। बात बढ़ी तो सब मेरे विरुद्ध हो जायँगे।"

तीसरा बाबू—"आपने बड़े साहससे काम लिया। यदि ऐसी दो-चार घटनाएं हर महीने हो जाया करें, तो बदमाशोंके कान हो जायँ, और इनकी आँखें खुल जायँ।"

(३)

इसके बाद सावित्री और रक्षा एक बेंचपर बैठकर बातें करने लगीं। रक्षाने सम्मान और श्रद्धाकी दृष्टिसे सावित्रीकी ओर देखकर कहा—"बहन! तुमने बचा लिया, नहीं तो क्या हो जाता! मैं काँप रही थी, तुम्हारी आवाज़ सुनते ही चिन्ता मिट गई, विश्वास हो गया कि अब संकट टल गया।"

सावित्री—"और मैं भी तुम्हीं जैसी होती, तो?"

रक्षा—"जिस वक़्त तुमने जूते लगाने शुरू किये, उस वक़्त मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। एक बार तो मेरे जीमें भी आई कि बढ़कर एक मैं भी लगा दूं।"

सावित्री—(आश्चर्यसे) "तेरे! तेरे भीरु हृदयमें?"

रक्षा—"तुम यहाँ कैसे आ गई? मैं तो समझ रही थी, तुम लाहोर पहुँच चुकी होगी।"

सावित्री—"तुमने मुझे याद किया था या नहीं?"

रक्षा—(लजाकर) "किया तो था।"

सावित्री—(मुसकराकर) "उसी वक़्त उड़कर यहाँ पहुँच गई। तुमसे आज ही तो प्रण किया था कि जब भक्तिसे बुलाओगी, उसी वक़्त पहुँच जाऊँगी।"

रक्षा—"नहीं, बहन! सच बताओ।"

सावित्री—"तुम्हारे चले आनेके बाद यहाँकी एक सहेली मिल गई। अपनी भाभीको विदा करने स्टेशनपर आई थी। मुझे देखकर लिपट गई। बहुत मना किया, पर उसने एक न सुनी, कहा—'इस वक़्त तो न जाने दूँगी, शामकी गाड़ीसे चले जाना'। मजबूर होकर उतर पड़ी। उन्हें तार दे दिया है कि रातकी गाड़ीसे आ रही हूँ, स्टेशनपर आ जाइयो।"

रक्षा—"अब अकेली जाओगी? बहन, तुम्हें नमस्कार है।"

सावित्री—"तुम साथ चली चलो, पहुँचाकर चली आना।"

रक्षा—"मैं भला क्या जाऊँगी। (कुछ ठहरकर) परमात्माने तुम्हारी सहेलीको मेरे ही लिए स्टेशनपर भेजा था। मिल जायँ, तो पाँव चूम लूँ।"

सावित्री—"मेरे हाथ नहीं चूमती, जिसने उस शैतानकी मरम्मत की है।"

रक्षा—(सावित्रीके हाथ दबाकर) "बहन, मेरा रोम-रोम तुम्हारा कृतज्ञ है। जब तक जीती रहूँगी, यह उपकार न भूलूँगी। तुमने मेरी जान बचा ली। ओह! कितना भयानक वक़्त था, अब भी ख्याल आता है तो कलेजा काँप उठता है। इस वक़्त तुम्हारे रूपमें स्वयं भगवान आ गये। द्रौपदीको कृष्णने बचाया था, मुझे तुमने बचा लिया।"

सावित्री—"आशा तो है, अब वह दुष्ट किसीसे छेड़छाड़ न करेगा।"

रक्षा—"मैं तुम्हारा साहस देखकर दंग रह गई। तुम उसे डाँट रही थी, मैं मन-ही-मन सराह रही थी कि एक यह है जो सिंहनीकी तरह दहाड़ रही है, और एक मैं हूँ जो भीगी बिल्लीकी तरह खड़ी काँप रही हूँ।"

सावित्री—"पर यह हुआ क्या, बहनोईजी तुम्हें छोड़कर चले किधर गये?"

रक्षा—(चिन्तासे) "यह तो मैं नहीं जान सकी। जब गाड़ीसे उतरे हैं, तो वह मेरे आगे-आगे चल रहे थे, फिर न जाने किधर छिप गये।"

सावित्री कुछ देर सोचती रही, फिर बोली—"मैं समझ गई। उन्होंने भ्रमसे किसी दूसरी स्त्रीको अपनी समझ लिया। उसके कपड़े भी तुम्हारी तरह होंगे। सम्भव है, उसका भी गौना अभी हुआ हो। हाथोंमें मेंहदी और चूड़ियाँ देखकर धोखा खा जाना कोई ताज्जुबकी बात नहीं। पर्देकी कृपासे अक्सर ऐसी दुर्घटना होती रहती हैं। अब स्यालकोट

पहुँचकर भेद खुलेगा, तो भागे हुए आयेंगे। शायद इसी गाड़ीमें आ जायँ।"

रक्षा—"उनको तो भ्रम हुआ और मेरी मौत ही आ गई।"

सावित्री—(छेड़कर) "ज़रा घूँघट और लम्बा खींच लो। क्यों! अब भी इस पर्देको छोड़ोगी या अभी और कुछ देखनेका इरादा है?"

रक्षाने मुँहसे तो उसका जवाब न दिया, पर इसके दिलमें हलचल मची हुई थी। सोचती थी, कहती तो ठीक है। यदि पर्दा न होता, तो यह दुर्घटना क्यों घटती! साथ-साथ चली जाती। यदि साथ न जाती, तो पीछे-पीछे ही जाती, तब भी धोखा न होता। मैं समझती थी, पर्दा न करनेसे निर्लज्जता आ जाती है, परन्तु मेरा यह विचार गलत निकला, और यह सिद्ध हो गया कि पर्दा उत्साहका घातक है। जो पर्दा करेगी, उसमें उत्साह नाम-मात्र भी न होगा। फिर पर्देसे सेकड़ों हानियां हैं, दो मीलका सफ़र हो, मर्द साथ जावे। एक सावित्री है कि अकेली सफ़र करती है, और उसमें इतनी हिम्मत है कि क्या मजाल जो कोई आँख भी उठा जाय; परन्तु फिर ख्याल आया, लोग क्या कहेंगे। समझेंगे, निर्लज्ज हो गई है, कैसा मुँह खोलकर चलती है। स्त्रियाँ अलग ताने मारेंगी। हाय! दुनियाँकी ज़बान, हाय! लोगोंकी लज्जा।

आध घण्टेके बाद स्यालकोटसे गाड़ी आई, तो उसमें रक्षाका पति भी था। बेचारा घबराया हुआ था। मुँहपर वह रौनक ही न थी। मालूम होता था, जैसे राहमें रोता रहा है। गाड़ीसे उतरते ही इधर-उधर ढूँढने लगा। सावित्रीने उसे देखते ही पहचान लिया, और इशारेसे अपने पास बुलाकर पूछा—"क्यों! आपकी कोई चीज़ खो गई है क्या?"

रामजीदास—"जी हाँ! क्या कहूँ, मेरी आँखें······"
यह कहकर उन्होंने रक्षाकी तरफ देखा, जो सिमटी-सिमटाई बेंचपर बैठी थी।

सावित्री—"हाँ, हाँ, कहिये! आप रुक क्यों गये?"

मिस्टर रामजीदासने जवाब न दिया, चुपचाप रक्षाकी तरफ देखने लगा और सोचने लगा—'यही तो नहीं है।'

सावित्रीने त्योरी चढ़ाकर कहा—"आप उधर क्या देखते हैं। शर्म नहीं आती, यों पर्देवाली स्त्रीकी तरफ घूर-घूरकर देख रहे हो! बुलाऊँ किसी पुलीसमैनको!"

रामजीदासका चेहरा उतर गया, भर्राई हुई आवाज़में बोला—"मेरी स्त्री खो गई है। उसके भी ऐसे ही कपड़े थे, इसी तरहकी थी।" यह कहते-कहते उसकी आँखोंमें पानी आ गया।

सावित्रीने मुसकराकर कहा—"अरे! स्त्री खो गई! बड़े मज़ेकी बात है; उधर इस बेचारी गरीबका भी पति खो गया है! आप! स्यालकोटसे आ रहे हैं क्या? हाँ, वहींसे तो आ रहे हैं। देखिये, पहचानिये वही है या नहीं?"

रामजीदासकी आँखें फिर चमकने लगीं, ज़रा हिचकिचाकर बोला—"इसे तो क्या पहचानूँगा। हाँ, कपड़े पहचानता हूँ, बिलकुल ऐसे ही थे। मेरा ख्याल है, यही थे।"

सावित्री—"विचित्र बात है, न पति स्त्रीको पहचानता है, न स्त्री पतिको पहचान सकती है!"

रामजीदासको अब और भी आशा हो गई, समझे भार्या मिल गई, सन्तोषका साँस लेकर बोले—"स्यालकोटसे यहां तक जैसे आया हूँ, परमात्मा ही जानता है। अब चिन्ता मिटी है।"

सावित्री—"यह कैसे समझे कि यह आप ही की स्त्री है, और की नहीं!"

रामजीदास—"बहन! मज़ाक न कीजिए, बहुत ज़्यादा परेशान हो चुका हूँ। अभी तक दिल धड़क रहा है।"

सावित्री—"और जिस वक़्त इस बेचारीको छोड़कर चले गये थे, उस वक़्त इसका दिल तो खुशीसे उछलने लगा होगा! निहाल हो गई होगी!"

रामजीदास—"अब क्या कहूँ, भीड़में आ रहा था कि इतनेमें देखा, एक स्त्री ज़नाने डिब्बेमें सवार हो रही है। इतनी ही उम्र थी, ऐसे ही कपड़े थे, मैं समझा यही है,

बेफिक्र हो कर सामने कमरेमें बैठ गया। स्यालकोट पहुँचनेपर भेद खुला।"

सावित्री—"आइये ज़रा दौड़कर मिठाई लाइये, मुँह मीठा किये बिना इसे न दूँगी, पर स्यालकोट तक इसे ले भी जा सकोगे ?"

रामजीदास—"क्यों, अब भी सन्देह है ?"

सावित्री—"मुझे डर है कि कहीं फिर रास्तेमें न खो दें। कहिये तो साथ चलकर पहुँचा आऊँ।"

रामजीदास—"अब अधिक लज्जित न कीजिये, यह शिक्षा जीवन-भर याद रहेगी।"

इसके बाद सावित्रीने रामजीदाससे सारी घटना कह सुनाई। रामजीदास सावित्रीके साहसको सराहने लगा, बोला—"आपके इस उपकार-भारसे मेरी गर्दन सदा झुकी रहेगी। ऐसा साहस स्त्रियोंमें आ जाय, तो बस बेड़ा पार हो जाय—सब कष्ट दूर हो जायँ।"

सावित्री—"यह सब तुम्हीं लोगोंके हाथमें है। आप चाहें, तो औरतें भी सिंहनी हो जायँ। अब मेरी गाड़ीका भी वक़्त हो गया है। जाती हूँ, फिर कभी मिलेंगे तो बातें होंगी।"

रामजीदास—(उत्कण्ठासे) "आप अपना पता तो नोट कराती जायँ, और नहीं तो भाई साहबको कृतज्ञताका पत्र तो लिख दूँ।"

सावित्री—"पता रक्षासे पूछ लेना, मैंने उसे बतला दिया है। रही कृतज्ञताके पत्रकी बात। वह इसके भूखे नहीं। वकील हैं, उन्हें तो फीस चाहिए। इतना भारी काम किया है, फीस कभी न छोड़ेंगे।" यह कहकर सावित्रीने रक्षासे विदा ली।

रामजीदासने पुकारकर कहा—"जब कभी स्यालकोट आना हो, तो ख़त लिख दीजिए; स्टेशनपर आ जाऊँगा। ख़ुद न आ सका, तो किसीको भेज दूँगा।"

सावित्रीने मुसकराकर पीछेकी ओर देखा, उत्तर दिया—"बहुत अच्छा, लिख दूँगी।"

(४)

कई महीने बीत गये। दोनों सखियोंकी गाड़ी ही में, फिर भेंट हुई, पर इस समयकी रक्षा पहली रक्षा न थी। उसे देखकर मालूम होता था कि किसी स्वाधीन जातिकी स्वतन्त्र महिला चली आ रही है। घूँघट और पर्दा नामको भी न था। उसके पीछे-पीछे कुली असबाब लिये आ रहे थे। वह भी उसी डिब्बेके सामने आकर खड़ी हो गई, जिसमें सावित्री बैठी मायके जा रही थी। रक्षाने कुलियोंसे कहा—"असबाब अन्दर रखो", और कुलियोंको गिनकर मज़दूरी दी, और गाड़ीमें बैठ गई।

सावित्री इस दृश्यको बैठी-बैठी देख रही थी और प्रसन्न हो रही थी, मुसकराकर बोली—"वाह! बहन! अब तो बड़ी बहादुर हो गई।"

रक्षाने चौंककर सिर उठाया, देखा, सामने सावित्री खड़ी हँस रही है। रक्षा झपटकर उसके गलेसे लिपट गई, और बोली—"बहन, मैं तो निराश हो चुकी थी कि तुमसे भेंट न होगी। तुम्हारे मकानपर दो बार गई। दोनों बार मालूम हुआ, 'लाहोरसे बाहर हैं।' आज जाते-जाते अचानक भेंट हो गई। जी ख़ुश हो गया।"

इतनेमें रामजीदास डिब्बेके सामने आकर बोले—"सब असबाब ठीक रखा गया ?"

रक्षाने मुसकराकर कहा—"देखिये, बहनजी मिल गईं, नमस्ते कर लीजिए, न मालूम किस स्टेशनपर उतर पड़ें।"

रामजीदासने झुककर सावित्रीकी तरफ देखा, हाथ जोड़कर नमस्ते किया, और कहा—"दो दफा गये, मगर कोई न मिला।"

इतनेमें गाड़ीने सीटी दी। सावित्रीने नमस्तेका उत्तर देते हुए कहा—"अच्छा, अब जाकर बैठ जाइये, गाड़ी छूट जायगी।" रामजीदास चले गये, गाड़ी चलने लगी। सावित्रीने पूछा—"रक्षा! वह घूँघट कहाँ है ?"

रक्षाने मुसकराकर जवाब दिया—"वज़ीराबादके स्टेशनपर उसी दिन छोड़ दिया।"

सावित्री--"लोग देखकर हँसते होंगे ?"

रक्षा--"हँसते रहें, इससे क्या होता है।"

सावित्री--"स्त्रियाँ कहती होंगी कि कितनी निर्लज्ज है, खुले-मुँह चलती है।"

रक्षा--"उस विवशतासे यह निर्लज्जता अच्छी, अब पद-पदपर अपमानित तो नहीं होना पड़ता। अभी चले आ रहे थे, पुलपर उनके पुराने मित्र मिल गये। कई बरस बाद मिले थे, बातें करने खड़े हो गये। पर्दा होता, तो मैं भी इनसे चार क़दमके फासलेपर घूँघट निकाले खड़ी रहती, जैसे बेड़ियाँ पहरे क़ैदी अपने जमादारका इन्तज़ार कर रहा हो।"

सावित्री--"पर यह कायापलट कैसे हुई ? कहाँ वह बन्द 'पारसल', कहाँ यह फुदकने और चहकनेवाली चिड़िया, कितना अन्तर है !"

रक्षा--"बड़ी लम्बी कहानी है बहन ! (लम्बी साँस लेकर) यह स्वतन्त्रताकी वायु बड़ी महँगी मिली है। ऐसे-ऐसे कष्ट उठाये कि तुमसे क्या कहूँ, पर धन्य है उन्हें, ज़रा न घबराये। कोई और होता, तो ज़रूर साहस छोड़ बैठता।"

सावित्रीकी जिज्ञासा और भी बढ़ी, पास खिसककर बोली--"इस तरह नहीं, विस्तारसे सुनाओ।"

सामने दो स्त्रियाँ और बैठी थीं। उन्होंने भी झुककर अपनी ठोढ़ियाँ हथेलीपर रख लीं, और कान लगाकर सुनने लगीं।

रक्षाने कहा--"बहन, स्यालकोट जाकर उन्होंने घरवालोंसे साफ कह दिया कि मैं तो पर्दा न कराऊँगा। घरवाले सुनकर सन्नाटेमें आ गये। उनको कभी इसकी आशंका भी न थी कि लड़का यों हाथसे निकल जायगा। कई दिन तक समझाते-बुझाते रहे, उनपर कुछ असर न हुआ, कहा, 'मैं आपकी हरएक बात मानूँगा, पर पर्देके मामलेमें एक न सुनूँगा।' दो दिन तक यह चर्चा चलती रही। तीसरे दिन प्रातःकाल मुझे सैरको बाहर ले गये। लौटकर देखा, सबके मुँह टेढ़े थे--कोई सीधे मुँह बात न करता था। सासने मुझे सुनाकर कहा--'चलो और नहीं, मेम तो बन गई है। साया पहन ले, तो स्वांग पूरा हो जाय। लाहौर जाकर यही बातें सीखता रहा है।' उनकी भावीने कहा--'रामजीका इसमें ज़रा भी कसूर नहीं, यह सब इन बहूरानीकी करतूत है। चाहती है कि किसी तरह अलग हो जाऊँ, पर कितनी चालाक है, मुँहसे एक शब्द नहीं बोलती, चुपके-चुपके आग लगाती फिरती है।'

सास--'नहीं, बेटी ! रामजी ही बिगड़ गया है, इसका क्या है, जो कहेगा, करेगी।'

जिठानीजी--'बहू चाहे, तो रामजीकी एक भी न चले, देखता ही रह जाय। कहे, मैं तो पर्दा करूँगी, पर यह हमारे सामने तो मिनमिन करती है' और एकान्तमें आगपर तेल छिड़कती है।'

सासने कहा--'यह तो ठीक है। यह सैरको न जाती तो कैसे ले जाता। झट जूता पहनकर तैयार हो गई।'

इसके बाद बहन जो मुझपर बीती है, मैं ही जानती हूँ। सारा घर बैरी बन गया, एक भी अनुकूल न रहा। कोई इतना भी न पूछता था कि इसने खाना भी खाया है या नहीं। ताना मारनेको सब तैयार थे। मैं दिन-भर रोती रहती कि कहाँ आ फँसी। इसी तरह पन्द्रह दिन बीत गये। साँझका समय था। आकाशपर बादल घिरे हुए थे। ससुरजी बाहरसे आये, आते ही बरस पड़े--'ऐं ! तुम किधर हो ?' सासजी कमरेमें जिठानीकी लड़कीको कंघी कर रही थीं। सुनते ही बाहर निकल आईं--'क्यों ! क्या है ? बड़े गुस्सेमें मालूम होते हो।'

ससुर--'गुस्सेमें न हूँ, तो क्या करूँ ? इस लड़केने तो जीना दूभर कर दिया। सारा बाज़ार हँसी उड़ाता है। मुझे देखते हैं, तो सुना-सुनाकर बातें करते हैं। अब तुमसे क्या कहूँ। कभी-कभी तो जीमें आता है विष खा लूँ।'

सास--'विष खायें तुम्हारे बैरी, तुम ज़रा डाँट क्यों नहीं देते। एक बार फटकार दो तो फिर कोई बात भी न करे।'

ससुर—'अब किस-किससे लड़ता फिरूँ, सारा बाज़ार ही हँसता है। आज तो मैं इसका फैसला ही कर देना चाहता हूँ, या इधर या उधर। रामजी घरमें है या कहीं बाहर गया है?'

सास—''बाहर गया है, आता ही होगा। शान्तिसे बातचीत करना। तुम्हारा स्वभाव लट्ठमार बातें करनेका है।'

ससुर—(त्योरी चढ़ाकर) 'बस, मैंने बात की और तुम्हें क्रोध चढ़ा। तुमसे तो छोटी बहू ही अच्छी है, जो रामजीकी बात तो मानती है, चाहे उसकी भूल ही हो। एक तुम हो कि सिरके बाल सफेद हो गये, पर तुम्हें समझ न आई।''

सास—(मुँह फुलाकर) 'अब इस जनममें तो समझ आ चुकी, दूसरे जनममें देखा जायगा।'

इतनेमें वह भी आ गये। मैं डर गई। ससुरजी देखते ही बोले—'सुनो भई, मेरे घरमें यह निर्लज्जता न चलेगी। या पर्देके पाबन्द रहो या घरसे निकलो। बोलो, क्या मंजूर है?'

वह बाहरसे आये थे। आते ही गुस्सेकी बातें सुनकर घबरा गये। थोड़ी देर बाद बोले—'अब पर्दा इतना प्यारा हो गया?'

'इससे भी प्यारा। इसके सामने पुत्र भी कोई पदार्थ नहीं?',

'पुत्र तो एक तरफ रहा, मैं इसके सामने प्राणोंको भी कुछ नहीं समझता, तुम इसे पर्दा कहते हो, मैं इसे प्रतिष्ठा समझता हूँ।'

'बहुत अच्छा, मैं घर छोड़ दूँगा'।

मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसीने मर्मस्थलपर कसकर घूसा मारा हो—पता नहीं कि अब क्या होनेवाला है। सास बोलीं—'बापके सामने यों बोलते लाज नहीं आती। यह नहीं कहता कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही करूँगा। मा-बापके होते हुए बहूके बारेमें तुम्हें मुँह भी न खोलना चाहिए। विवाह सारी दुनियाका होता है, पर तुझ-सा निर्लज्ज तो कोई न देखा।'

ससुर—(क्रोधमें) 'तो तुम्हारा यही फैसला है। देखो, पछताओगे, खूब सोच लो।''

उन्होंने दृढ़तासे कहा—'जो सोचना था, सोच चुका।'

'बहुत अच्छा, तो आप तशरीफ ले जाइये। अपनी स्त्रीको भी लेते जाइये। आजसे मेरे लिए तुम मर गये और तुम्हारे लिए मैं मर गया।' यह कहते-कहते ससुरजी उठकर अपने कमरेमें चले गये। सासजी रोने लगीं। उन्होंने अपने बेटेको बहुत समझाया, मगर उन्होंने एक न सुनी। देखते-देखते चलनेको तय्यार हो गये। घरकी कोई चीज़ साथ न ली, यहाँ तक कि विवाहमें मिला हुआ सब सामान भी वहीं छोड़ दिया। मुझसे बोले—'चलो!'

मैं चुपचाप उठ खड़ी हुई। उन्होंने मांसे कहा—'देख लो, मैं सब कुछ यहीं छोड़े जाता हूँ।'

मांने कुछ उत्तर न दिया, दुःख-भरा साँस लेकर सिर झुका लिया, पर भाभी न चूकी, चमककर बोली—'कैसे छोड़े जाते हो, बहू तो गोंदनीकी तरह लदी हुई है।'

यह बात मुझे ऐसी बुरी मालूम हुई, जैसे कोई दुखती उँगलीको पकड़कर झंझोड़ दे। मुँहसे कुछ न कहा, पी गई। वह बोले—'यह ज़ेवर भी उतार दो, इस डाइनका कलेजा ठंडा हो जाय।'

मैं चुपचाप गहने उतारने लगी। सासने रोते-रोते कहा—'बेटी! रहने दे, अरी क्या करती है? यह तो पागल हो गया है।'

उन्होंने कहा—'उतार दे, परमात्मा देगा तो पहन लेना, नहीं तो नहीं।'

मैंने एक-एक करके सब गहने उतार दिये, और उनके पीछे-पीछे बाहर चली आई। सासजी रोती ही रह गईं। घरसे निकलकर गलीके मोड़पर पहुँचे, तो आकाश भी रोने लगा। मैंने ठिठककर कहा—'पानी बरस रहा है।' वह कुछ खिन्न-से होकर बोले—'तुम कागज़का खिलौना नहीं हो कि गल जाओगी। चुपचाप चली आओ।'

रातका समय था। बादल बरस रहा था, सन्नाटेकी हवा चल रही थी। बिजली कौंद रही थी और हम दोनों घरसे निकलकर वर्षामें भीगते, सर्दीमें कांपते, छपछप करते स्टेशनकी तरफ़ जा रहे थे।"

(५)

इतना कहकर रक्षा चुप हो गई। सावित्रीने इसकी तरफ़ सम्मानकी दृष्टिसे देखकर कहा—"बहन! तुम दोनोंने बड़ा साहस किया, मैं बहनोईजीको ऐसा न समझती थी। सोचती थी, सीधे-साधे आदमी हैं, बापने एक घुड़की दी तो गलिया बछियाकी तरह बैठ जायँगे, पर मेरी यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हुई। आते हैं, तो बधाई देती हूँ।"

इसके बाद बहुत देर तक सन्नाटा रहा कोई कुछ न बोला। अन्तमें सावित्रीने मौन-मुद्रा तोड़कर पूछा—'अब किधर जा रही हो?"

रक्षा—"रावलपिण्डीको बदली हो गई है, वहीं जा रहे हैं।"

इतनेमें वज़ीराबादका स्टेशन आ गया। गाड़ी खड़ी होते ही रक्षा सावित्रीका हाथ पकड़े नीचे उतरी, और बोली—'ज़रा इधर आओ।"

सावित्रीने कुछ भी आपत्ति न की, चुपचाप उसके साथ चल दी। दोनों स्यालकोट-वाले प्लेटफार्मपर जाकर उस दीवारके सामने खड़ी हो गईं, जहाँ दो महीने पहले रक्षा बौखलाई खड़ी थी। उस समय यह जगह कितनी भयानक थी और आज वह मन्दिर जैसी पवित्र प्रतीत हो रही थी। रक्षाको मालूम हुआ, मानो यह दीवार मुसकरा रही है, इससे बातें कर रही है। आज रक्षाको यहाँ इतनी प्रसन्नता है, मानो स्वर्गका राज्य मिल गया। रक्षाने सावित्रीसे कहा—"बहन! यही वह स्थान है, जिसने मेरी 'कायापलट' दी। यहींपर मेरे बंधन खुले। यहींपर मुझे स्वतन्त्रतासे साँस लेनेका वरदान मिला। यह जगह मेरे लिए मन्दिरसे भी बढ़कर है।"

यह कहते-कहते रक्षाका गला भर आया। सावित्रीने एक बाबूकी ओर इशारा करके कहा—"वह देखो, कौन है, पहचानती हो?"

रक्षा—"नहीं?"

सावित्री—(मुसकराकर) "तुम्हारे मन्दिरका देवता। वही बाबू, जिसकी उस दिन मैंने पादत्राण-पुष्पोंसे पूजा की थी। तुम इतनी जल्दी भूल गई? उसे प्रणाम करो।"*

---

* उर्दू 'मिलाप' के बसन्त नम्बरसे। —गोपालचन्द्र,

* * *

अमेरिकामें सबसे बड़ा विद्वान भारतीय उपदेष्टा !

(श्री मेहता जैमिनिसे 'आर्यमित्र' का इंटरव्यू)

१ फरवरीको महता जैमिनीजी अमेरिका तथा इंग्लैण्ड होते हुए आगरा पधारे। आपने उस दिन आर्यसमाज-मन्दिरमें एक व्याख्यान भी दिया। १ फ़रवरीको तीन बजे 'आर्यमित्र' के प्रतिनिधिने महताजीसे भेंट की। प्रतिनिधिके प्रश्नोंके उत्तरमें महताजीने जो कुछ कहा, उसका सारांश पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे दिया जाता है। महताजीने कहा—

"मैं दो वर्ष बाद फिर आगरा आया हूँ। इन दो वर्षोंमें मैंने फिजी तथा अमेरिकामें प्रचार किया। ब्रह्मा, स्याम, आदि देशोंमें भी प्रचारार्थ यात्रा की है। मेरे व्याख्यानोंको विदेशी लोग बड़े प्रेमसे सुनते हैं। व्याख्यान अंग्रेज़ीमें देने पड़ते हैं, क्योंकि विदेशमें लोग हिन्दी नहीं जानते। जो हिन्दुस्तानी अमेरिका आदिमें हैं, उनमेंसे भी बहुतोंको हिन्दी समझने और बोलनेमें बड़ी कठिनाई होती है। फिजीमें बहुतसे आर्य भाई हैं, वहाँ आर्य-समाजसे सम्बन्ध रखनेवाले गुरुकुल, हाई-स्कूल, अनाथालय, कन्या-पाठशालाएँ आदि कई संस्थाएँ हैं। आर्यसमाजके तीन पत्र निकलते हैं। फिजीमें अधिकतर काम करनेवाले संयुक्त-प्रान्त-निवासी हैं। वहाँ समाजका अच्छा प्रभाव है। यहाँ मैंने कितने ही व्याख्यान दिये, जिनमें अंग्रेज़ीकी तादाद बहुत काफ़ी होती थी। *मैंने कितनी ही शुद्धियाँ भी कराईं और कई आर्यसमाजोंकी स्थापना भी की। अमेरिकाके उन स्थानोंमें मैं प्रचारार्थ गया, जहाँ आज तक कोई भारतवासी नहीं पहुँचा। अमेरिकामें मेरे व्याख्यानोंकी धूम मच गई। जिस शहरमें मेरे व्याख्यान होते थे, उसमें वहाँका मेयर ही अधिकतर सभापतिका आसन ग्रहण करता था। कई व्याख्यानोंमें सरकारसे बड़ेसे बड़े कर्मचारियोंने सभापतिका आसन ग्रहण किया था।* अमेरिकामें व्याख्याताकी स्थिति और योग्यताका अन्दाज़ा अध्यक्षके प्रधानसे लगाया जाता है। जिस व्याख्यानका जितना ही बड़ा तथा प्रसिद्ध व्यक्ति प्रधान होता है, उतना ही वह सफल और महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। *कितने ही व्याख्यानोंमें तो अमेरिकन लोगोंकी इतनी अधिक भीड़ हुई थी कि विशाल 'व्याख्यान-भवन भर जानेपर सैकड़ों लोगोंको बाहर बरामदोंमें खड़े-खड़े मेरा भाषण सुनना पड़ा था। मेरे व्याख्यानोंकी अमेरिकाके पत्र मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करते थे। कितने ही प्रसिद्ध पत्रोंने तो यहाँ तक लिखा है कि अमेरिकामें इतना विद्वान भारतीय उपदेष्टा आज तक कोई नहीं आया।* (इन सब पत्रोंकी कतरन महताजीने प्रतिनिधिको दिखाई।) मुसलमानोंने मस्जिदोंमें, ईसाइयोंने गिरजोंमें और सनातनधर्मियोंने मन्दिरोंमें मेरे व्याख्यान कराये। मैंने सर्वत्र बड़ी निर्भयतासे वैदिक धर्मकी महत्ता दिखाई। जहाँ-जहाँ मैं गया, वहाँके भारतीय भाइयोंने मुझे अभिनन्दनपत्र भी दिये, तथा मेरा खूब स्वागत किया। (वे अभिनन्दनपत्र भी महताजीने प्रतिनिधिको दिखाये) अमेरिकामें कांग्रेस-कमेटियाँ बहुत हैं। सब प्रवासी भारतवासी एक प्रश्नका उत्तर सुननेके लिए बड़े उत्सुक रहते हैं—"हमारा देश कब स्वतन्त्र होगा ?" उन्हें भारतके स्वतन्त्र होनेकी बड़ी चिन्ता है। कई स्थानोंके गवर्नर मेरे व्याख्यानोंपर मुग्ध हो गये, और उन्होंने मुझे प्रचार-सम्बन्धी सब प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान कर दीं। इन्डियानाके गवर्नरने तो मुझे आज्ञापत्र लिखकर दे दिया कि मैं वहाँ जेल, अस्पताल, अनाथालय, हाई-स्कूल—कहीं भी स्वतन्त्रतासे प्रचार कर सकता हूँ। मुझे जहाज़ या रेलके फर्स्ट-क्लासमें बिना किरायेके सफर करनेका भी अधिकार दे दिया गया। यह अधिकार वहाँ केवल बिशप (लाट पादरी) को प्राप्त है। कई अमेरिकन देवियाँ मेरी शिष्या बन गई हैं। श्रीमती मेग

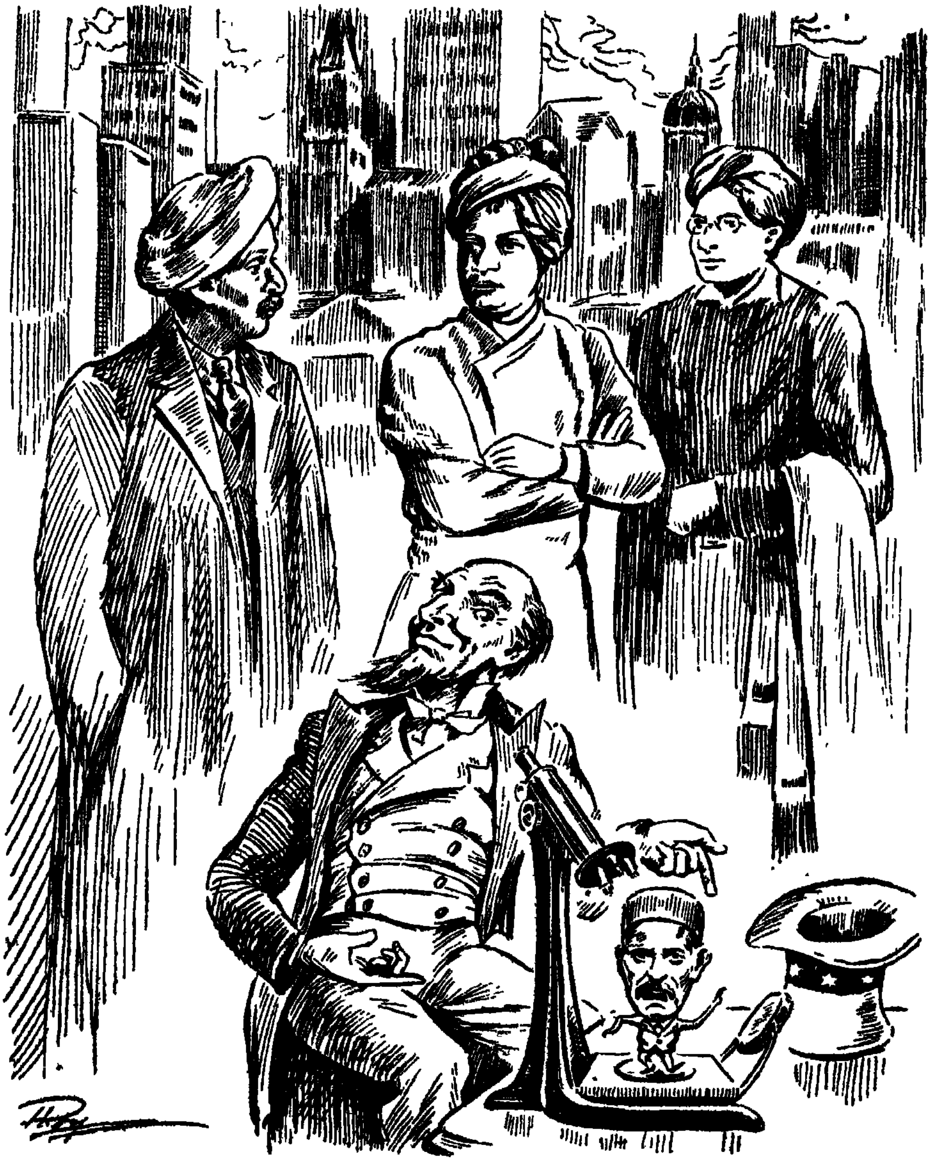
अमेरिकाकी एक विदुषी तथा धनी महिला हैं। वे वैदिक धर्मकी बड़ी भक्त हैं। उनका नाम मैंने गार्गीदेवी रखा है। उन्होंने मेरे मुखसे केवल दो मन्त्रोंकी व्याख्या सुनकर ही मेरी शिष्यता स्वीकार की है। अमेरिकामें प्रचारकी बड़ी गुंजायश है। वहाँ स्वामी विवेकानन्दके शिष्य संन्यासी लोग बड़े आरामसे रहते हैं। उन्हें सारा व्यय अमेरिकासे ही मिल जाता है। यदि आर्यसमाजके उद्योगसे अमेरिकाके कुछ धन-सम्पन्न व्यक्ति आर्य बन जायँ, तो फिर विदेशका सारा व्यय उन्हीं पाँच-सात सज्जनोंसे मिल सकता है। ऐसा होना कठिन कार्य नहीं है। अमेरिकावालोंमें हठ या दुराग्रह नहीं है, वह न्याय-युक्त बातको सुनते और समझमें आ जानेपर, उसे स्वीकार करनेको तैयार हो जाते हैं। मेरे द्वारा वैदिक सिद्धान्त सुनकर अमेरिकन लोग मुग्ध हो जाते थे, और मेरे पाँवोंको स्पर्श करने लगते थे। परन्तु प्रचारका काम अमेरिकामें अधिक दिनों तक नियमित रूपसे करनेपर ही हो सकता है। मेरे पास इतना धन कहाँ था, जो मैं अधिक दिनों तक वहाँ रह सकता। वहाँ रोजाना खर्चके लिए दस-बारह रुपये चाहिए।"

प्रतिनिधिने फिर प्रश्न किया—"आपका व्यय कितना पड़ा और वह किसने दिया?"

महताजीने कहा—"दो वर्षकी प्रचार-यात्रामें मेरे पाससे पाँच सहस्र रुपये व्यय हुए हैं। इनमेंसे १६५) तो मुझे नीचे लिखे समाजोंने भेजे—५०) आ० स० मैनपुरी, ४०) हापड़, ५०) फैज़ाबाद और २५) बलिया। ५००) फिजी तक किराया आर्य-प्रादेशिक-सभा पंजाबने दिया। ७००) मुझे अपनी किताबोंकी बिक्रीसे लाभ हुआ। ११००) मिसेज़ ग्रेगने मुझे भेंट किये, ४५०) फिजीके आर्य भ्राताओंने दिये, ४००) ट्रिनीडाडसे मिले, ६०० ब्रिटिश-गायनासे और ४००) डच-गायनासे प्राप्त हुए। पाँच हज़ारका शेष मुझे अपनी गाँठसे पूरा करना पड़ा। मैंने भारतकी कई बड़ी सभाओंको लिखा कि लागत-मात्रपर वितीर्ण करनेके लिए कुछ पुस्तकें भेज दो, परन्तु किसीने उत्तर भी न दिया। हाँ, कई सभाओंने मुझे यह अवश्य लिखा कि अमेरिकासे चन्दा करके हमें भेजो, तो तुम्हारी कुछ सहायता की जा सकती है, परन्तु मैंने वहाँ आर्थिक सहायता किसीसे नहीं माँगी। अगर ऐसा करता, तो मेरे व्याख्यानोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ता। आर्य भ्राताओंने निजी रूपसे मेरे मार्ग-व्ययका जो प्रबन्ध कर दिया, उसका उल्लेख किया जा चुका है। इस समय अमेरिकामें आर्यसमाजके प्रचारकी अत्यन्त आवश्यकता है। सद्धर्मके अभावमें वहाँ लोग इधर-उधर भटक रहे हैं, और मनमाने मार्गोंपर जा रहे हैं। हमारे भाई भारतवासी भी वहाँ अपने आदर्श हिन्दू-धर्मको भूलकर ईसाइयतके रंगमें रंगे जा रहे हैं। मैं समझता हूँ कि अगर वहाँ शीघ्र ही प्रचारकी व्यवस्था न हुई, तो बीस-पचीस वर्षोंमें लाखों अमेरिका-प्रवासी भारतीय ईसाई हो जायँगे। अमेरिकामें हिन्दी-भाषाके स्कूलोंकी बड़ी ज़रूरत है।"

वहाँ धनकी कमी नहीं, काम करनेवालोंका अभाव है। इसके बाद महताजीने प्रतिनिधिको चिट्ठियोंके पुलन्दे और अख़बारोंकी कतरनोंके बण्डल दिखाये, जिनमें उनके पाण्डित्य तथा प्रचारकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की गई थी। अमेरिकामें महताजीसे साधुवर श्री ऐण्ड्रूज़से भी मुलाक़ात हुई। ऐण्ड्रूज़ साहबने इनके कामकी प्रशंसामें जो उद्गार निकाले हैं, उनके कारण प्रत्येक आर्य अभिमानसे अपनी ऊँची गर्दन कर सकता है। महताजी अभी चार महीने भारतमें ठहरेंगे, फिर मई मासके अन्तमें जापान और जर्मनी प्रचार करने जायँगे। आप कहते हैं कि अब मैं अपने बल-बूतेपर ही सब काम करूँगा, क्योंकि *भारतीय सभा-संस्थाएँ तो मुझे सहायता देती ही नहीं।* आगरेसे आप लाहोरके लिए रवाना हो गये।

(आर्य्यमित्र)



अंकिल सैम (Uncle Sam—अमेरिकन) खुर्दबीनसे श्री मेहता जैमिनीको देखते हुए कह रहा है—
"अमेरिकामें इतना उच्च विद्वान् भारतीय उपदेष्टा आज तक कोई नहीं आया !"
लाला लाजपतराय, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ खड़े हुए हैं।
अमेरिकनकी टोपी और श्री महताजीकी उच्चताका तुलनात्मक अध्ययन दर्शनीय है।

आत्म-प्रशंसाका रोग

आत्म-प्रशंसाको आर्य-शास्त्रकारोंने बड़ा ही 'अनार्य कार्य' कहा है। भगवान् वेदव्यासने महाभारतमें लिखा है—

"महद्ध्यनार्य-कर्मैतत् प्रशंसा स्वयमात्मनः।"

अर्थात्—'अपनी प्रशंसा स्वयं करना, यह बड़ा ही अनार्य कर्म है।' शास्त्रोंमें जगह-जगह इसकी तीव्र शब्दोंमें निन्दा की गई है। प्रतिष्ठाको शूकरकी विष्ठा और गौरव—महत्त्वाकांक्षाको रौरव नरक कहा है—

"प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा गौरवं रौरवास्पदम्।"

खासकर उपदेष्टा या ब्राह्मणके लिए तो इससे बचनेका उपदेश बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें किया गया है। महर्षि मनुकी आज्ञा है—

"सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा॥"

अर्थात् 'ब्राह्मण, सम्मानको विष समझकर डरे—उससे दूर रहे, और अपमानको अमृतके समान उपादेय समझे।'

आजकल पुराने ढंगके कवियोंकी प्रशंसात्मक अत्युक्तिके लिए निन्दा की जाती है कि वह दस-पाँच रुपये देनेवाले दाताको भी कर्ण और दधीचिकी उपाधि दे डालते हैं, अपनी तुकबन्दियोंको कालिदासकी कवितासे बढ़ी-चढ़ी बतलानेमें संकोच नहीं करते, पर आजकलके अधिकांश धार्मिक उपदेष्टाओंका आचरण आत्म-प्रशंसामें अत्युक्तिकी सीमासे भी परे पहुँच गया है। उन्हें डींग मारनेमें ज़रा भी संकोच नहीं होता। बात-बातमें "कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया" की घोषणा करते हुए उन्हें कुछ भी लज्जा नहीं आती!

धर्मप्रचारकी आड़में अपनी महिमाका विस्तार महत्त्वाकांक्षाकी सिद्धि ही उनका 'मिशन' या उद्देश्य होता है—धर्म-प्रचार-साधन और महत्त्वाकांक्षा तथा अर्थ-सिद्धि उनका साध्य है। इधर-उधरसे दो-चार व्याख्यान तोतेकी तरह रट लिये, और विज्ञापनबाज़ी—प्रोपेगैण्डाके पंख लगाकर उड़ चले दिग्विजय करने! जिस धर्मके 'मिशनरी' बननेका यह लोग दावा करते हैं, उसके तत्त्वको—मूल सिद्धान्तोंको स्वयं समझनेकी इन्हें चिन्ता नहीं होती! शायद समझ ही नहीं सकते, क्योंकि किसी धर्मका विशेषज्ञ होनेके लिए जो साधन अपेक्षित हैं, वे कठिन तपस्यासाध्य होते हैं। यह लोग उन खट्टे अंगूरोंसे दूर भागते हैं। जब वैसे ही सिद्धि प्राप्त हो जाय, तो साधनके झंझटमें पड़नेकी ज़रूरत भी क्या है!

महाकवि 'क्षेमेन्द्र' ने 'वशीकरण' का एक सिद्धयोग (अनुभूत नुसखा) लिखा है, जिसके सेवनसे लोक-प्रसिद्ध—वशीकरणकी सिद्धि अनायास प्राप्त हो जाती है, तथाकथित प्रचारक या 'मिशनरी' लोग इसी योगके सहारे सिद्धिकी सीढ़ीपर चढ़कर ऊपर पहुँचते हैं। क्षेमेन्द्रका वह नुसखा यह है—

"आदौ देयाः पञ्चधाष्टर्यस्य मात्रा द्वे दम्भस्य द्वे मृषाभाषणस्य।
एको देयो धूर्ततायाश्च भागः पूर्व्वं वश्या मेष योगः करोति॥"

अर्थात्—'पांच तोला धृष्टता (ढिठाई) दो-दो तोले दम्भ (मक्कारी) और मिथ्या-भाषण और एक तोला धूर्तता (चालाकी-अय्यारी) इनके योगसे तैयार किया हुआ यह योग (नुसखा) संसारको वशमें करनेवाला है। जो इसका सेवन करता है, वह दिग्विजयी हो जाता है।'

संसारमें ऐसे दृष्टान्तोंकी कभी कमी नहीं रही, जो इस योगकी अमोघताको सिद्ध करते रहे हैं। आजकल तो इस योगका उपयोग बहुत ही अधिकतासे हो रहा है। प्रत्येक दिशामें सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। लीडर-मान्यता और मिथ्या-महत्त्वाकांक्षाने तो इस रोगको संक्रामक बना दिया है, बड़े वेगसे फैल रहा है।

इस विज्ञापनबाज़ीके युगमें विनय शालीनता और नम्रताको कहीं स्थान नहीं है। ढिठाई और आत्म-प्रशंसा सफलताकी कुंजी है। इसीके सहारे बिना पूँजी और योग्यताके दिग्विजयकी दुन्दुभि बजाई जा सकती है, भरपूर धन और मान बटोरा जा सकता है। दम्भका साम्राज्य है।

पंडित हृषीकेश शास्त्री

[लेखक :—महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, सी०आई०ई०]

पंडित हृषीकेष शास्त्री कितनी ही दृष्टियोंसे एक महत्वपूर्ण पुरुष थे। उनका जन्म सन् १८५० ई०में हुआ था और मृत्यु ६४ वर्षकी उम्रमें सन् १६१३में। वे खासतौरसे एक बड़े संस्कृत लेखक थे और उनमें साहित्यक कार्य करनेकी अद्भुत शक्ति थी। लगातार परिश्रम करनेसे उनका स्वास्थ्य खराब हो गया, नहीं तो वे और भी अनेक वर्षों तक जीवित रहते। अपने विद्यार्थी जीवनके दिनोंसे ही वे बड़े काम करने वाले और परिश्रमी थे और अपने समयको कभी नष्ट नहीं करते थे। उनके पूर्वज भाटपाड़ाके प्रख्यात पंडित थे और उनकी बाल्यावस्थासे ही लोगोंने यह अनुमान कर लिया था कि वे भविष्यमें अपने स्थानके गौरवशाली पुरुषोंमें होंगे और उनका सितारा खूब चमकेगा। पाठशालामें अपनी पढ़ाई समाप्त कर उन्होंने व्याकरण, कोष, साहित्य इत्यादि विषयोंका अध्ययन किया और बाल्यावस्थासे ही अंग्रेजी पढ़नेका विचार किया। अंग्रेज़ीके प्रति उन दिनों—पिछली शताब्दीके मध्यकालमें—पंडित-कुटुम्बोंमें एक प्रकारकी घृणाके भाव विद्यमान थे, पर हृषीकेश शास्त्रीको तो अंग्रेज़ी पढ़नेकी चाट पड़ गई और इसे तुष्ट करनेके लिये उन्हें बंगाल छोड़कर लाहौर आना पड़ा। वहां उन्होंने थोड़े ही दिनोंमें पंजाब विश्वविद्यालयकी पूर्वी भाषा सम्बन्धी सभी परीक्षाएँ विशेष योग्यताके साथ पास कर डालीं और एण्ट्रेन्सके इम्तिहानमें भी उत्तीर्ण हो गये।

लाहौरमें थोड़े समयमें ही उन्होंने अपनी धाक जमा ली और विश्वविद्यालयके अधिकारियोंके कृपापात्र बन गये। पंजाब विश्व-विद्यालयके जन्मदाता डाक्टर लाइटनर श्रीभट्टाचार्यजीकी संस्कृत लेखन-प्रणाली पर मुग्ध हो गये, उन्होंने 'विद्योदय' नामक संस्कृत मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया और शास्त्रीजीको उसका सम्पादक बना दिया। 'विद्योदय' अपने जीवनके उपयोगी—मैं तो कहूँगा गौरवमय—५० वर्ष व्यतीत करके बन्द हुआ। सम्पादक हृषीकेशजीकी मृत्युके बाद उनके लड़कोंको उसे बन्द कर देना पड़ा। शास्त्रीजीके लिये यह कोई कम श्रेयकी बात नहीं थी कि वे अकेले ही ४४ वर्ष तक उसका संचालन-सम्पादन करते रहे। वे ही विद्योदयके मुख्य लेखक थे और प्रायः सारेके सारे लेख उन्हें स्वयं ही लिखने पड़ते थे। श्रीहृषीकेश भट्टाचार्यके प्रशंसकोंने उनकी संस्कृत गद्यकी तुलना बाणभट्ट तथा प्राचीन कालके अन्य प्रसिद्ध लेखकोंसे की है। पर जो लोग उनके प्रशंसक नहीं भी हैं वे भी इस बातकी प्रशंसा करते हैं कि वे इतने भिन्न-भिन्न विषयों पर लेख लिख सकते थे। यद्यपि उनका मुख्य विषय प्राचीन संस्कृत साहित्य ही था, पर वे दैनिक घटनाओं और चालू विषयोंपर भी प्रायः लेख लिखा करते थे और उनके ये लेख मधुर हास्यरससे परिपूर्ण होते थे। उन्नीसवीं शताब्दीमें इस शैलीकी संस्कृत लिखना सचमुच बड़े गौरवकी बात थी और जिन प्रचलित विषयोंपर वे लेख लिखते थे उनमें हिन्दू जीवनके अनेक अङ्गोंका समावेश हो जाता था। पर शास्त्रीजीने तो एक असम्भव कार्य अपने जिम्मे ले रखा था, यानी उन्नीसवीं शताब्दीमें संस्कृतका मासिक पत्र निकालना और सो भी यूरोपियन विचारोंसे परिपूर्ण, यूरोपियन विचार-शैलीसे युक्त और यूरोपियन साहित्यके प्रति प्रेम प्रदर्शित करनेवाला। आश्चर्य तो इसी बातका है कि वे ४८ वर्ष तक इस पत्रको कैसे चलाते रहे! सचमुच यह एक प्रकारका अद्भुत कार्य था। मैक्समूलर तक शास्त्रीजीके कार्यकी प्रशंसा करते थे और इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि विद्योदयके पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता था। यद्यपि मैं भी मेकालेके इस कथनसे सहमत हूँ कि "उन्नीसवीं शताब्दीमें संस्कृत लिखना वैसा ही है जैसे कि किसी खास तरहके गरमदेशके पौदेको कृत्रिम उष्ण स्थानमें उगाना"—और इस तरहका प्रयत्न स्वभावतः ही कष्टसाध्य और व्ययसाध्य

था, तथापि शास्त्रीजीके कितने ही निबन्धोंको पढ़कर मुझे बड़ा आनन्द आता था और उनसे मेरा मनोरंजन भी होता था।

पर शास्त्रीजीके साहित्यिक कार्यकी समाप्ति विद्योदयके साथ ही नहीं हुई। उन्होंने कलकत्ता संस्कृत कालेजके पुस्तकालयकी संस्कृतकी हस्त-लिखित पुस्तकोंका एक विवरणात्मक सूचीपत्र तय्यार किया था। यह सूचीपत्र संस्कृतके विद्यार्थियोंके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है और वे एतदर्थ शास्त्रीजीके कृतज्ञ हैं। उन्होंने रघुनन्दनके २८ तत्त्वोंमेंसे ७ तत्त्वोंका बंगला भाषामें अनुवाद किया था और उनके इस अनुवादने रघुनन्दनके ग्रन्थोंको लोकप्रिय बनानेमें बड़ी मदद दी। संस्कृत व्याकरण 'सुपद्म'की जो शैली है वह पाणिनिके वैज्ञानिक कठिन व्याकरण और आगे चलकर जो व्यावहारिक (सुबोध) व्याकरण बने, इन दोनों प्रकारकी शैलियोंके बीचका मार्ग है। इस व्याकरणकी रचना १४ वीं शताब्दीमें मिथिलामें मैथिल पंडित पद्मनाभके द्वारा हुई थी, पर विचित्र भाग्यकी बात तो यह है कि मिथिलाने तो इस व्याकरणका परित्याग कर दिया और बंगाल प्रान्तने इसे अपना लिया! भाटपाड़ाके पण्डित तो इसे अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं, और उसका उपयोग भी करते हैं। शास्त्रीजीने इस व्याकरणको अपनी टीका तथा विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियोंके साथ प्रकाशित किया। इस प्रकार शास्त्रीजीकी साहित्यिक कृतियाँ विद्योदय तक ही परिमित नहीं थीं, वे अनेक दिशाओंमें विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण थीं।



पण्डित श्रीहृषीकेश शास्त्री

शास्त्रीजी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी तो थे ही पर साथ ही आदमी भी बड़े अच्छे थे। घमंड तो उन्हें छू भी नहीं गया था। दम्भसे वे बिल्कुल मुक्त थे। उनकी नम्रता और निरभिमानताके कारण सभी उन्हें चाहते थे, सभी उनसे प्रेम करते थे।

पंजाब विश्वविद्यालयके वे चमकते हुए नक्षत्र थे और वहां उनका भविष्य बड़ा उज्ज्वल प्रतीत होता था। पर दैव-दुर्विपाकसे अपने कुटुम्बमें अनेक मृत्यु हो जानेके बाद जब उनके पूज्य पिताजीका दिल घबराने लगा तो उन्हें

सान्त्वना देनेके लिये पंजाब विश्व-विद्यालयमें अपनी भावी उन्नतिको तिलांजलि देकर हृषीकेशजी कलकत्ते चले आये। संस्कृत-कालेजमें उनकी पोज़ीशन बहुत अच्छी नहीं थी, क्यों नहीं थी, इसका कारण बतलाना अनावश्यक है, पर उन्होंने अपने पिताजीकी खातिर उसी स्थितिमें काम करना स्वीकार कर लिया।

श्रीहृषीकेश भट्टाचार्य्यजीके सत्सङ्गका सौभाग्य मुझे संस्कृत-कालेजमें कई वर्ष तक प्राप्त हुआ था। मेरे हृदयमें उनके प्रति सहानुभूति थी, और यथाशक्ति मैंने उनकी सहायता भी की, पर यह सहायता अधिक न हो सकी। किन्तु एक बात मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि पंडित लोगोंमें वे अपने चरित्रके असाधारण आदमी थे। उनकी नम्रताकी मैं सदा प्रशंसा करता था और उन्हें मैं अपना एक सुयोग्य मित्र मानता था।

यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि पंडित पद्मसिंह शर्माने शास्त्रीजीका जीवन-चरित लिखा है और उनके साहित्यिक कार्योंकी क़द्र की है। उन्होंने विद्योदयके अनेक निबन्धोंका संग्रह प्रकाशित किया है। पण्डित पद्मसिंहजी शास्त्रीजीके प्रशंसक हैं और जो लेख उन्होंने चुने हैं वे इस परिस्थितिमें जब कि विद्योदयके अङ्क दुष्प्राप्य हो गये हैं, सभी संस्कृत-प्रेमियोंके लिये शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक सिद्ध होंगे।

सस्ता साहित्य-मण्डल

[लेखक :—सस्ते-साहित्यका एक प्रेमी]

श्री जमनालाल बजाज बहुत समयसे इस त्रुटिको अनुभव करते आ रहे थे कि हिन्दीमें एक ऐसी संस्थाकी बड़ी आवश्यकता है, जो सस्ते-से-सस्ते मूल्यमें ऊँचे दर्जेके साहित्यका प्रचार करे। प्रकाशक लोग अकसर पुस्तकोंकाकी कीमत तिगुनी-चौगुनी तक रख देते हैं। इससे कई बार पुस्तकें अच्छी होनेपर भी भारतके ग़रीब पाठक उनसे लाभ नहीं उठा सकते। अथक पुरुषार्थी भिक्षु अखण्डानन्दजीके परिश्रमसे अहमदाबादमें एक संस्था इस दिशामें गुजराती साहित्यके प्रचार द्वारा बड़ा उपयोगी काम कर रही थी। अब भी वह चल रही है—'सस्तु साहित्य-वर्धक कार्यालय'। श्री जमनालालजी चाहते थे कि ऐसी ही एक प्रकाशक संस्था हिन्दीमें भी हो। उन्होंने इस तरहका काम शुरू करनेके लिए एक-दो जगहसे प्रयत्न भी किया, परन्तु विशेष सफलता न मिली। इधर जब असहयोगके समयसे श्री हरिभाऊ उपाध्याय और उनके साथ-साथ श्री जीतमल लूणिया सेठजीके सम्पर्कमें आये, तबसे उनकी वह इच्छा फिर प्रबल हुई, पर उस समय श्री हरिभाऊजी 'हिन्दी-नवजीवन'में लगे हुए थे, और श्री जीतमलजी अपने निजी तौरपर प्रकाशनका व्यवसाय कर रहे थे। शनैः शनैः सस्ता मण्डलकी स्थापनाके अनुकूल परिस्थिति होने लगी। श्री हरिभाऊजीका हृदय लेखन-क्षेत्रसे अब कार्य-क्षेत्रमें उतरनेके लिए अधीर होने लगा। अपने प्रान्त राजस्थानमें काम करनेके लिये उनकी उत्सुकता बढ़ी। इधर अपने लम्बे अनुभवसे श्री जीतमलजी भी इसी निश्चयपर पहुँचे कि व्यवसायकी स्थितिको प्रधान रखकर किया गया प्रकाशनका काम देशके लिए विशेष लाभदायक नहीं हो सकता। अच्छेसे अच्छे उद्देश्य होनेपर भी प्रकाशकोंको अन्तमें लोक-रुचिका अनुगमन करनेपर मजबूर होना ही पड़ता है। लोक-रुचिके पथ-प्रदर्शन करनेकी शक्ति तो किसी संस्था या व्यक्तिको बहुत अधिक त्याग और वर्षोंके लगातार परिश्रमसे ही प्राप्त हो सकती है, इसलिए वे भी इस विचारको कार्यान्वित करनेकी चिन्तामें लगे।

इसी समय श्री जमनालालजीने अपनी पुस्तक-प्रकाशनवाली इच्छा इन दोनों मित्रोंके सामने रखी। तब तक श्री हरिभाऊजी तो पू० महात्माजीसे राजस्थानमें काम करनेकी अनुज्ञा प्राप्त कर ही चुके थे और श्री जीमतलजीके लिए तो यह प्रस्ताव सर्वथा स्वागत-योग्य ही था। गान्धी-सेवा-संघकी तरफसे पच्चीस हज़ार रुपये श्री जमनालालजीके द्वारा मिले। सन् १९२५ के मध्यमें श्री घनश्यामदासजी बिड़लाकी अध्यक्षतामें सस्ते मूल्यमें उच्चकोटिकी राष्ट्रीय पुस्तकें प्रकाशित करनेके उद्देश्यसे अजमेरमें 'सस्ता साहित्य-मण्डल'की स्थापना हुई,

और उसकी बाकायदा रजिस्ट्री भी करा दी गई। नीचे लिखे सात सज्जन उसके संस्थापक नियुक्त किये गये—

श्री घनश्यामदास बिड़ला (अध्यक्ष)
श्री जमनालाल बजाज
स्वामी आनन्दानन्द (कोषाध्यक्ष)
श्री महावीरप्रसाद पोद्दार
डा० अम्बालालजी
श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री जीतमल लूणिया (मन्त्री)

हिन्दीमें सस्ते मूल्यमें उच्चकोटिका साहित्य प्रकाशित करनेके उद्देश्यसे स्थापन की गई सस्ता-मण्डल पहली ही रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था है। उसके द्वारा साधारणतया अब तक १) में ४०० से ५०० पृष्ठकी पुस्तकें पाठकोंको दी गई हैं। अर्थात् जिस पुस्तकका मूल्य अन्य प्रकाशक १) रखते थे, उसे मण्डलने।-) या ।=) में देना शुरू कर दिया।

दूसरे ही वर्ष मण्डलको दो भारी काम उठाने पड़े। मण्डलको आर्थिक चिन्ता न होनेपर भी एक बहुत भारी असुविधा थी। मण्डलका अपना प्रेस न होनेके कारण पुस्तकें छपानेमें उसे बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। इन कठिनाइयोंकी गुरुता वही सज्जन समझ सकते हैं, जिनको प्रकाशनका थोड़ा-बहुत अनुभव है। इसलिए मण्डलको दूसरे ही वर्ष अपना निजी प्रेस खोलनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। पर सबसे बड़ी समस्या द्रव्यकी थी, और उपर्युक्त असुविधाके कारण कष्ट भी भारी हो रहा था। उसे दूर किये बिना मण्डलका किसी तरह आगे बढ़ना असम्भव-सा हो रहा रहा था, इसलिए भरतपुरके हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके बाद ही उपाध्यायजी द्रव्य एकत्र करनेके लिए कलकत्तेकी ओर भ्रमणपर निकले। इसे परमात्माकी ही दया समझना चाहिए कि उन्हें इस कार्यमें बहुत अधिक कष्ट न उठाना पड़ा। कुछ मित्रोंने तो इस काममें अपने सहयोग द्वारा उनकी असीम सहायता की, उसीके बलपर १५ दिनके भीतर ही वे बीस हज़ार रुपयेकी सहायताके वचन लेकर कलकत्तेसे अजमेर लौट आये, और सन् १६२७ के अक्टूबरमें तो प्रेसका काम शुरू भी हो गया।

इसी वर्ष मण्डलने एक और भारी काम अपने सिरपर लिया। अब तक श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा श्री जीतमलजी लूणिया अपने निजी तौरपर एक छोटासा, किन्तु शिक्षाप्रद मासिक 'मालव-मयूर' चला रहे थे। मण्डलकी स्थापना और प्रेसके खुलते ही उसे अधिक उन्नत बनानेकी इच्छाका होना स्वभाविक हो गया। 'मालव-मयूर' का क्षेत्र और कार्य तो काफ़ी व्यापक था, परन्तु उसके नाममें वह व्यापकता न थी, इसलिए 'मालव-मयूर' का नाम 'त्यागभूमि' कर दिया गया। और व्यापक क्षेत्रके अनुकूल सामग्री देनेके लिए उसकी पृष्ठ-संख्या भी ४० से बढ़ाकर ६० कर दी गई। पहले-पहल जैसा कि अभी तक चला आया था, त्यागभूमिको हरिभाऊजी तथा जीतमलजी निजी तौरसे ही निकालनेवाले थे, परन्तु श्री घनश्यामदासजी बिड़लाके प्रोत्साहनसे मण्डलने उसके प्रकाशनकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली, और तीसरे अंकसे उसकी पृष्ठ-संख्या ६४ से बढ़ाकर १२० कर दी। सत्साहित्यके प्रचार और पाठकोंकी सुविधाके ख्यालसे मूल्य चार रुपया ही रखा गया।

त्यागभूमिकी सुरुचि, सादगी और सात्विकताका हिन्दी-संसारपर जो असर पड़ा है, वह हिन्दी-साहित्य-रसिकोंसे छिपा हुआ नहीं है। पू० महात्माजी, स्व० लालाजी तथा पू० मालवीयजी जैसे गुरुजनोंने उसे अपने आशीर्वादोंसे अभिषिक्त किया है। पीछे देशके अनेक अग्रगण्य नेताओं, विचारकों और बहनोंने उसे अपने लेख आदि भेजकर अनुगृहीत किया है। प्राय: सभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओंने अपनी इस छोटी बहिनका अत्यन्त प्रेमपगी भाषामें भूरि-भूरि स्वागत किया है। त्यागभूमिकी महत्त्वाकांक्षा नम्र है और उसका कार्यक्षेत्र सीमित है। सबसे श्रेष्ठ पत्रिका कहलानेके लिए वह अधीर नहीं है, और न वह व्यावसायिक प्रतिस्पर्धामें ही फँसना चाहती है। फिर भी अज्ञातत: उसके कार्यका असर पड़े बिना नहीं रहता, क्योंकि हाल ही में पं० जवाहरलाल नेहरूने अपने एक पत्रमें उसे हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका बताया है। त्यागभूमि अपने दो वर्ष समाप्त कर तीसरेमें पदार्पण कर रही है। इतने समयमें त्यागभूमि अपने कठिन मार्गमें जितनी सफलता मिली है, उतनी शायद ही किसी पत्र-पत्रिकाको मिली हो।

राजगोपालाचार्य, श्री दिवेकर (पेरिस), काका कालेलकर, श्री किशोरलाल घनश्याम मश्रुवाला, साधु वास्वानी, स्वर्गीय लालाजी, सरदार शार्दूलसिंह, पं० जवाहरलाल नेहरू, गणेशशंकर विद्यार्थी, आचार्य रामदेवजी, श्री कृष्णदास,

श्रीजयशंकर प्रसाद, श्री नवीन, श्रीहरविलास सारदा, श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी, बिजनराय चटर्जी, श्री ऐण्ड्रूज़, श्री रामलाल बाजपेयी (अमेरिका), श्री कस्तूरमल बाठिया (लन्दन), श्री घनश्यामदास बिड़ला, रा० ब० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' आदि पुरुषोंमें तथा स्त्रियोंमें श्रीमती उमादेवी नेहरू, श्रीमती रागिणी देवी (अमेरिका), सौ० गिरिजाबाई केलकर, सौ० कमलाबाई किबे, श्री पार्वतीबाई इत्यादिकी रचनाएँ त्यागभूमिमें प्रकाशित होती रहती हैं।

अब मण्डलके प्रकाशनों पर विचार करें। मण्डल द्वारा ऐसी ही पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं, जो देशको स्वराज्यकी ओर ले जानेमें सहायक हों, इसलिए उसके प्रकाशनोंमें पू० महात्माजीके लिखे ग्रन्थों एवं ऐसे ही अन्य प्रकारके क्रान्तिकारी साहित्यको प्रधानता मिलना स्वाभाविक है। रूसके महर्षि टाल्स्टायका रूसके निर्माणमें बहुत हाथ रहा है। उनके सिद्धान्त अत्यन्त उच्च और भारतीय संस्कृतिसे मिलते-जुलते और पोषक हैं, इसलिए उनके ग्रन्थोंके अनुवाद भी मण्डल द्वारा प्रकाशित किये गये हैं।

स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार, संस्कृति-निर्माण, इतिहास आदिके ग्रन्थ भी राष्ट्रके निर्माणमें परम आवश्यक हैं। इसलिए इन विषयोंपर भी अनेक पुस्तकें मण्डलने प्रकाशित की हैं, यह लेख प्रकाशित होने तक मण्डलसे कोई ५० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकेंगी।

मण्डलकी प्रायः सभी पुस्तकोंका हिन्दी-संसारने अच्छा आदर किया है। 'आत्म-कथा', 'तामिल-वेद' आदि कुछ प्रकाशन तो ऐसे हैं, जिनका विश्वके साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान है। 'क्या करें', 'स्त्री और पुरुष', 'अनीतिकी राहपर', 'जीवन-साहित्य', 'स्वाधीनताके सिद्धान्त' आदि पुस्तकें उच्च संस्कृतिकी निर्माण करनेवाली हैं। 'हमारे ज़मानेकी गुलामी', 'नरमेध', 'समाजिक कुरीतियाँ', 'अन्धेरेमें उजाला', 'जब अंग्रेज आये' आदि पुस्तकें ऐसी हैं, जिनके पढ़नेसे भारतमें धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक क्रान्तिको बल और पोषण मिल सकता है। 'दक्षिण-अफ्रिकाका सत्याग्रह', 'विजयी बारडोली', 'हाथकी कताई-बुनाई' और 'खद्दरका सम्पत्ति-शास्त्र' महात्माजीके सिद्धान्तोंके अनुसार देशको स्वराज्यके लिए तैयार करनेमें सहायक हो सकती हैं। 'दिव्य-जीवन' और 'ब्रह्मचर्य-विज्ञानसे' युवकोंके लिये बड़ी उपयोगी हैं। 'भारतके स्त्री-रत्न' प्राचीन भारतकी महिलाओंका सजीव चित्र है। हमारे देशकी महिलाओंमें इस पुस्तकका बड़ा आदर है। इनमेंसे अनेक पुस्तकोंके दो, तीन और चार संस्करण तक (तीन वर्षमें) निकल चुके हैं। मण्डलकी कई पुस्तकोंका इन्दोर तथा कोटा राज्यके शिक्षा-विभागोंने अपने पुस्तकालय आदिके लिए भी सिफारिश की है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओंने तथा देशके विख्यात पुरुषोंने भी मंडलके प्रकाशनोंकी सुरुचि, प्रेरकता एवं सुलभताकी प्रशंसा की है। मण्डलका उद्देश्य शुद्ध सात्त्विक साहित्य जनता तक पहुँचानेका है जिससे उसकी रुचि परिस्कृत हो। इस प्रकार मण्डल कुरुचिपूर्ण 'घासलेटी' साहित्यका क्रियात्मक रूपसे ठोस विरोध कर रहा है।

अब मण्डलके खास-खास कार्यकर्ताओंका भी थोड़ासा परिचय करा देना आवश्यक है। श्री हरिभाऊजी और जीतमलजी तो मंडलके प्राण ही हैं। श्री हरिभाऊजी वैसे मंडलके ट्रस्टियोंमेंसे एक हैं, परन्तु एक तो ऐसे साहित्यसे उनका विशेष प्रेम होनेके कारण और दूसरे खास अजमेरमें उनके हमेशा रहनेके कारण मंडलको उनकी सेवाओंका अमूल्य लाभ मिलता आ रहा है। श्री जीतमलजीका त्याग बहुत भारी है। उन्होंने तो अपना सर्वस्व ही मण्डलको अर्पण कर दिया, अगर ऐसा कहें तो अत्युक्ति न होगी। प्रारम्भमें वे बहुत कम तनख्वाहपर काम करते थे। बादमें जब देखा कि मण्डल एवं 'त्यागभूमि'को बहुत अधिक घटी रहती है, तो उन्होंने उतना वेतन लेना भी बन्द कर दिया। उन्होंने तो इससे भी कहीं अधिक त्याग किया है, जिसका उल्लेख करना भी उनकी सात्त्विक आत्माको सह्य न होगा। मण्डलकी उन्नतिके लिए रात-दिन अविराम परिश्रम करना उन्हींका काम है, बल्कि इस अति उत्साहके कारण उनका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया है, और आज उन्हें मण्डलका सारा काम-काज छोड़कर एकान्तमें विश्रान्ति-लाभका प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है, पर वहां भी उनकी आत्माको चैन नहीं है। मण्डल और त्यागभूमिकी उन्नतिके लिए वहां भी वे बराबर सोचते ही रहते हैं।

तीसरे सज्जन जिन्होंने मण्डलकी उन्नतिमें अधिक भाग लिया है, वे हैं श्री नरसिंहदास अग्रवाल। आप असहयोगके पहले नसीराबादमें केमिस्टकी और ड्रगिस्टकी दूकान करते थे। पर जब असहयोग छिड़ा, तो अपना सारा व्यापार छोड़-छाड़कर देशकी सेवामें लग गये, और तबसे बराबर आप राजस्थानकी सेवामें लगे

हुए हैं। मदरासमें उन्होंने श्रीराहतजीके सम्पादकत्वमें 'भारत-तिलक' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक भी निकाला था। मण्डलकी स्थापना होनेके कुछ ही दिन बादसे इनकी सेवाओंका भी लाभ मंडलको मिला। आपके आते ही मण्डलमें एकाएक कायापलट हो गया। व्यवस्थापकके लिए जितने गुणोंकी आवश्यकता है, प्रायः उतने सारे उनमें हैं। अब वे मण्डलसे अवकाश प्राप्त कर श्री हरिभाऊजीके साथ अजमेर-प्रान्तकी कांग्रेसके संगठनमें लगे हुए हैं।

मण्डल और 'त्यागभूमि'का सम्पादकीय विभाग भी कम सौभाग्यशाली नहीं है। श्री हरिभाऊजीके अतिरिक्त क्षेमानन्दजी राहत जैसे प्रतिभाशाली और कोमलहृदय कवि सम्पादकका भी लाभ उसे मिल चुका है। साथ ही श्रीबैजनाथजी महोदय, श्रीरामनाथलाल 'सुमन', श्री मुकुटबिहारी वर्मा, श्रीकृष्णचन्द्र विद्यालंकार, श्रीकाशीनाथ नारायण त्रिवेदी और श्री हरिकृष्ण विजयवर्गीय जैसे उत्साही और स्वतन्त्र विचारवाले लेखकोंका सहयोग मिल रहा है। इनमेंसे प्रत्येक सज्जनको अपने कामकी धुन है, और अपने स्वतन्त्र विचार होनेपर भी 'त्यागभूमि'के आदर्श और सिद्धान्तोंसे प्रेम है और उनके प्रचारके लिए वे सतत प्रयत्न करते रहते हैं।

परन्तु ये सभी सज्जन त्यागभूमिके वैतनिक कार्यकर्ता नहीं हैं। श्री काशिनाथजी तथा श्री कृष्णचन्द्रजी तो अन्यत्र काम कर रहे हैं। श्री मुकुटबिहारी वर्माके जिम्मे मंडलकी पुस्तकोंका सम्पादन है।

मण्डलने अब तक जो काम किया है, वह कुछ अंशोंमें सन्तोष-जनक कहा जा सकता है, परन्तु स्वयं मण्डलके संचालकोंको भी अभी तक उससे आधा सन्तोष भी नहीं है। इसका कारण है उसकी विशेष कठिनाइयां। अजमेर एक ऐसा पिछड़ा हुआ स्थान है कि यहाँ प्रेसकी आवश्यक सामग्री तथा मशीन-सम्बन्धी कई ऐसी विकट कठिनाइयां कभी-कभी खड़ी हो जाती हैं, जिनको हल करना यहां बड़ा कठिन होता है। फिर कुशल कार्यकर्ता कम होनेके कारण उन्हें अधिक तनखाहें देनी पड़ती है। इन सब कठिनाइयोंके कारण मण्डल जितनी सस्ती पुस्तकें देना चाहता है, इच्छा होनेपर भी नहीं दे सका है। यही मण्डल कलकत्ता बनारस या ऐसे ही किसी अन्य शहरमें होता, तो निस्सन्देह वह इससे भी कहीं सस्ती पुस्तकें दे सकता, परन्तु मण्डलकी इच्छा केवल हिन्दीकी एकान्त सेवा ही नहीं है। प्रायः उसके सभी कार्यकर्ता और संचालक राजस्थानके निवासी है, और वे साहित्य-सेवाके साथ-साथ अपने प्रान्तकी जनताकी विशेष सेवा भी करना चाहते है। इसलिए इन सारी कठिनाइयोंको एवं घटीको उठाकर भी मण्डलकी स्थापना अजमेरमें ही की गई।

अन्तमें मण्डलकी आर्थिक अवस्था और घटीके सम्बन्धमें भी एक बात कह देना आवश्यक है। मण्डलको कार्यारम्भके लिए श्री जमनालालजीके मार्फत गान्धी-सेवा-संघसे २५०००) मिले हैं और श्री जमनालालजी बजाज तथा श्री घनश्यामदास बिड़ला उसके संस्थापकोंमेंसे हैं। प्रेसके लिए भी इन्हीं सज्जनों तथा अन्य प्रेमी मित्रोंकी सहायतासे मण्डलको २०००० रुपये मिले हैं, परन्तु इसके मानी यह नहीं कि अब मण्डलको किसी प्रकारका सहायताकी आवश्यकता ही नहीं है। अब तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, लागतसे भी कम मूल्यमें पाठकोंको दी गई हैं। त्यागभूमि भी लागतसे कम मूल्यमें दी जा रही है। अतः इन दोनों कार्योंमें घटी होना स्वाभाविक है। यह ठीक है कि प्रारम्भमें कामको चलानेके लिए कुछ घटी भी उठानी पड़ती है, परन्तु अब मंडलने यह निश्चय कर लिया है कि एक-दो सालमें अन्दर वह अपने प्रत्येक विभागको स्वावलम्बी बना ले। हिन्दी-प्रेमी सज्जनोंके प्रेम और सहानुभूतिकी आवश्यकता है।

संयुक्त-प्रान्तीय अध्यापक-मण्डलका
नवाँ वार्षिक अधिवेशन

[लेखक :—सम्पादक]

आजकल हमारे नेताओंका ध्यान ग्राम-संगठनकी ओर खास तौरसे आने लगा है। ग्राम-संगठनकी नई-नई स्कीमें जनताके सामने रखी जाती हैं, और उनको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए सहायताकी अपील की जाती है, पर खेदकी बात है कि ऐसे सुअवसरपर उन लोगोंको बिलकुल भुला दिया जाता है, जो इस विषयमें सबसे अधिक सहायक हो सकते हैं। हमारा अभिप्राय ग्राम्य स्कूलोंके अध्यापकोंसे है। ग्रामीण जनताके संसर्गमें जितने ये लोग

आते हैं, उतना कोई भी साधारण नेता कभी नहीं आ सकता। आवश्यकता है ग्रामीण अध्यापक-समुदायमें नवीन जागृति लानेकी और उन्हें अपना कर्तव्य पालन करनेके लिए तैयार करनेकी। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक अध्यापक राजनैतिक कार्यकर्ता बन जावे। भारतीय पराधीनताके इन दिनोंमें निस्सन्देह उन लोगोंका स्थान उच्च होगा, जो इस गुलामीकी जंजीरोंको तोड़नेमें अपनी सारी शक्ति लगा देंगे; पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि जिन्हें सैनिक बनकर युद्ध-क्षेत्रमें लड़नेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है अथवा परिस्थितियोंने जिन्हें इतना मजबूर कर दिया है कि वे स्वाधीनताके यज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुति देनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं, वे सभी नगण्य हैं। हमारी समझमें वह ग्रामीण अध्यापक जो सच्चरित्रता और ईमानदारीके साथ विद्यार्थियोंको पढ़ाता है, उनके हृदयमें मातृभूमिके प्रति प्रेम तथा देश-सेवाके भाव भरता है, स्वयं खादी पहनता है तथा ग्रामवासियोंको खादी पहननेका आदेश करता है, उन लोगोंकी निरक्षरता दूर करता है, देशके समाचारोंसे उन्हें परिचित कराता है, वह अध्यापक भी निःसन्देह उपयोगी कार्य कर रहा है, और उसकी उपेक्षा करना अनुचित होगा।

हर्षकी बात है कि अध्यापक-समुदाय स्वयं ही जाग्रत हो रहा है। वह अपने पैर खड़े होना सीख रहा है, और उसमें स्वाभिमानके भाव उत्पन्न हो रहे हैं। हम लोगोंका—खास तौरसे पत्रकारोंका—कर्तव्य है कि अध्यापक-समुदायकी इस जागृतिमें यथाशक्ति सहायता दें। ग्रामीण अध्यापक-समुदाय जिस दिन पूर्णतया जाग्रत हो जावेगा, उस दिन ग्राम-संगठनकी समस्या आधेसे अधिक हल हो जावेगी।

'अध्यापक' (बाराबंकी)के ३० जनवरीके अंकमें संयुक्त-प्रान्तीय अध्यापक-मंडलके नवें वार्षिक अधिवेशनकी रिपोर्ट छपी है। उसे हमने पढ़ा है, और उसके आवश्यक अंश यहाँ दिये जाते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संयुक्तप्रान्तमें लगभग ४१००० वर्नेक्यूलर स्कूल-मास्टर हैं, और अध्यापक-मंडल उन्हींकी प्रतिनिधि-संस्था है। इसके अभी तक नौ अधिवेशन हो चुके हैं। किस-किस अधिवेशनके कौन-कौन सभापति हुए, उसका ब्यौरा निम्न-लिखित है :—

नम्बर	स्थान	सभापति
पहला	फर्रुखाबाद	मु० नारायणप्रसाद अष्ठाना, एडवोकेट
दूसरा	मुरादाबाद	पं० हरिनन्दनजी पाण्डे, हेडमास्टर मिडिल-स्कूल, सकलडीहा, बनारस
तीसरा	बस्ती	मि० शाकिर अली, एम० एल० सी०, भूतपूर्व अ० इन्सपेक्टर मदारिस
चौथा	बलिया	डाक्टर गणेशप्रसाद
पाँचवाँ	जालौन	प्रोफेसर अमरनाथ झा
छठा	लखनऊ	रायसाहब पं० शुकदेव तिवारी, रिटायर्ड इन्सपेक्टर, मदारिस
सातवाँ	रायबरेली	मि० भगवतीसहाय बेदार
आठवाँ	मेरठ	चौधरी मुख्तार सिंह, एम० एल० ए०
नवाँ	बिजनौर	पंडित गंगादत्तजी पाण्डे, हेडमास्टर घनानन्द हाईस्कूल

अध्यापक-मंडलको सलाह देनेका हमें कोई अधिकार नहीं, फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि यथासम्भव शिक्षा-विशेषज्ञोंको ही अधिवेशनका सभापति बनाना चाहिए। राजनैतिक नेताओंकी खुशामद करते फिरना अनुचित होगा। वैसे उन लोगोंको दर्शकोंके तौरपर निमन्त्रित करना चाहिए, पर अध्यापक-मंडलकी बागडोर सदा शिक्षकोंके ही हाथमें रहनी चाहिए। हर्षकी बात है कि इस बारका चुनाव सर्वथा उचित हुआ। सुना जाता है कि श्री गंगादत्तजी बड़े आदर्शवादी हैं, और अपनी सच्चरित्रताके लिए अध्यापक मंडलमें प्रसिद्ध हैं। उनके भाषणसे भी उनकी आदर्शवादिता स्पष्ट है।

स्वागताध्यक्ष पं० गोविन्दरामजी शर्मा, बी० ए० एल० टी०के भाषणमें कई उपयोगी बातें थीं, और उनकी ओर शिक्षा-विभागके अधिकारियोंको ध्यान देना चाहिए। ठीक समयपर वेतन न मिलना यह हमारे अध्यापकोंकी बड़ी पुरानी शिकायत है, और यह शीघ्र ही दूर होनी चाहिए। वर्नेक्यूलर

स्कूलोंमें बीज-गणितके प्रवेश करानेका प्रस्ताव अत्यन्त आवश्यक है। जो सवाल अंक-गणितसे हल नहीं होते, वे बीज-गणितसे प्राय: हल हो जाते हैं। हम उस दिनकी याद अभी तक नहीं भूले, जब हिन्दी-मिडिलमें पढ़ते समय हमने पहली बार दो-एक सवाल 'य' मानकर बीजगणितसे हल कर लिए थे, यद्यपि बीजगणित उस समय भी पढ़ाया नहीं जाता था और हमने उसे स्कूलके बाहर ही थोड़ासा सीख लिया था। सच बात तो यह है कि प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंको हल करनेके प्रयत्नमें वह आनन्द कभी नहीं आया, जो बाल्यावस्थामें बीजगणितसे अंकगणितके प्रश्न हल करनेमें आया था। स्वागताध्यक्षके भाषणमें सबसे अधिक विचारणीय अंश यह था :—

"हम देखते हैं कि आधुनिक शिक्षा-प्रणालीकी कठोरता विद्यार्थियोंके व्यक्तित्वका नाश कर रही है। छोटे-छोटे बच्चोंको ४ या ६ घंटे निरन्तर कार्य करना पड़ता है। उचित समयपर भोजन भी नहीं प्राप्त होता, जिससे उनके स्वास्थ्यपर बहुत बुरा असर पड़ता है। भारतीय विद्यालयोंमें जो समय (प्रात: १० बजेसे सायं ४ बजे तक) शिक्षाके लिए नियत है, वह प्राकृतिक जीवनके प्रतिकूल होनेके कारण विद्यार्थियोंकी शिक्षाके प्रति अतीव हानिकारक सिद्ध हुआ है; विद्यालयोंमें नियत समयपर उपस्थितिके चिन्तनके कारण उनको अति शीघ्रतासे अरुचिपूर्ण भोजन करना पड़ता है, जिससे शिक्षा कालके पूर्व भागमें पाचन-शक्ति तथा मस्तिष्क शक्तिके परस्पर प्रतिद्वन्द्वी हो जानेके कारण विद्यार्थी तन्द्रावस्थामें हो जाते हैं, जो कि उनकी शिक्षामें उनको दत्तचित्त बनानेके लिए विघ्नस्वरूप है।

भोजन करनेके बाद शीघ्र ही पढ़नेके लिये भागना सचमुच अत्यन्त हानिकारक है। यह लाखों ही बच्चोंके स्वास्थ्यका प्रश्न है। मालूम नहीं कि हमारे कौन्सिलोंके मेम्बर बैठे-ठाले क्या करते हैं, जो इस आवश्यक सुधारकी ओर ध्यान नहीं देते! आखिर कौन्सिलवाले भी बाल-बच्चेवाले आदमी हैं। उनके भी लड़के स्कूलोंमें पढ़ते होंगे। फिर वे इस प्रश्नकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?

स्वागताध्यक्षने डाक्टर नानबुडके इस कथनको उद्धृत किया था—

"It is the business of the Primary School to teach the child to see and observe to make and do and to speak and sing."

अर्थात्—प्राथमिक पाठशालाओंका यह कर्तव्य है कि बच्चोंको देखना, ध्यान-पूर्वक जाँच करना, निर्माण करना, कार्य करना, बोलना और गाना सिखावें।

हमारा ख्याल है कि इस स्टैंडर्डसे माप करनेपर हमारे कितने ही प्राइमरी स्कूल फेल हो जावेंगे! गानेकी जगह रोना ही अधिकांश स्कूलोंमें सिखलाया जाता है।

स्वागताध्यक्षने कहा था—

"एक दोष जो लगभग सब जगह भारतवर्षमें पाया जाता है, जाति-भेद-विषयक है, और मेरा अनुमान है कि उक्त दोषने इस मण्डलमें भी किसी अंशमें स्थान प्राप्त कर लिया है। मुझको आशा है कि आपसके वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष तथा अन्ध-विश्वासको भविष्यमें आनेवाली संतानों में से दूर करनेके लिए अध्यापक वर्ग बहुत कुछ सहायक प्रमाणित होगा।" क्या यह बात ठीक है कि अध्यापक-मंडलमें भी जातिभेद (साम्प्रदायिकता !) घुस पड़ा है ? यदि यह सच है, तो इस सत्यानाशी बीमारीको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि यह बढ़ गया तो अध्यापक मंडलको तो जड़ खोखली कर ही देगा साथ ही साम्प्रदायिकताका यह रोग बालकोंके कोमल मनोंपर विघातक प्रभाव डालेगा।

स्वागताध्यक्षके भाषणमें एक बात हमें खटकी, वह यह कि उन्होंने अंग्रेज़ीके उद्धरणोंका हिन्दी-अनुवाद नहीं दिया। अधिकांश अध्यापक-समुदाय अंग्रेज़ी नहीं जानता, और उनके लिए दिये हुए भाषणमें अंग्रेज़ीके अंशोंका हिन्दी-अनुवाद न होना अक्षम्य अपराध है।

अधिवेशनके सभापति *श्री गंगादत्तजी पाण्डेका* भाषण संक्षिप्त, किन्तु महत्त्वपूर्ण था। वह स्पष्टतया प्रकट करता है कि सभापति महोदय कोई मामूली हेडमास्टर नहीं हैं। वे दूरकी सोचते हैं, और अपनी बातोंको संयमयुक्त भाषामें

की कला भी उन्हें ज्ञात है। उनके जीवनका ... आदर्श भी है, जैसा कि उनके स्वप्नसे जिसका ज़िक्र उन्होंने अपने भाषणमें किया था प्रकट होता है। उनके भाषणसे यह ज्ञात होता है कि उनकी प्रत्येक बात दिलसे निकली हुई है। स्थानाभावसे हम सम्पूर्ण भाषणको देनेमें असमर्थ हैं, अतएव उनके कुछ विचारोंको ही यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"देश और शिक्षक

"यदि शिक्षा और शिक्षकोंकी दशा देशकी हालतपर निर्भर है, तो हमें इसे सुधारनेमें हृदयसे सहायक होना चाहिए। हम राजनीतिक दलबन्दियोंमें न पड़ सकते हैं, न हमें पड़ना ही चाहिए, पर ऐसा किये बिना ही राष्ट्रके उत्थानमें और राष्ट्रीयताके प्रचारमें हमें पूरा भाग लेना चाहिए। प्रथम तो हमें राष्ट्रीयताके नियमोंपर ही अपने जीवनको ढालना चाहिए, और इसीके बलपर शिक्षामें राष्ट्रीयताका रंग छिड़कना चाहिए। हमें अपने विचारों और रहन-सहनसे यह साबित कर देना चाहिये कि हम जात-पाँतके झगड़ों, मज़हबी झंझटों और छूआछूतके घोर कलंकसे बिलकुल परे हैं। सोचिये तो आज भारतीय समाज कितने छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बँट गया। क्या दुनियाँके किसी और हिस्सेमें आपने पानी चाय-बिस्कुट आदि बेजान चीज़ोंको किसी मज़हब या जातिकी होनेकी बात पढ़ी या सुनी है? कैसी अप्राकृतिक दशामें हम लोग रहते हैं कि हमें उसकी बर्बरता या भीषणताका भास ही नहीं होता!"

"भारतीय राष्ट्रके उत्थानके लिए यह भी परम आवश्यक है कि स्त्रीका स्थान समाजमें सचमुच मान्य और पूज्य हो, लड़कियोंकी शिक्षापर विशेष ध्यान दिया जाय और उनको मनुष्योंके विलासकी ही सामग्री न समझा जाय।"

"कहा जाता है कि अधिकारियोंका दृष्टिकोण बदल गया है, और शिक्षा-विभाग लोकमतके अनुसार चलता है। ऐसी हालतमें आशा तो यह थी कि शिक्षकोंको संगठनमें सहायता मिलेगी, अधिक ... उनको रास्ता बताया जायगा, पर यह सब ... ही रही। मुझे जो ख़बर मिली है, वह तो यह है कि जो कुछ संगठन आप कर रहे हैं, उनमें उलटी अड़चनें पड़ रही हैं, और कई कार्यकर्ताओंपर कोप-दृष्टि भी है। यह हमारे दुर्भाग्यकी बात है, पर यह सब होते हुए भी हमें अपना लक्ष्य छोड़ना न होगा। कभी कभी तो विरोधका सामना ही संगठनमें जीवनकी पहिचान होती है। वह पेड़ ही क्या, जो गरमियोंकी धूप और जाड़ोंकी सर्दी न सह सके?"

"हमारे आन्दोलनके पीछे अभी वह शक्ति नहीं है, वह ठोस बल नहीं है, वह आकर्षण नहीं है, जो आलोचकों और मित्रों—दोनोंके चित्तमें असर किये बिना नहीं रह सकता। हमें वह शक्ति लानी ही होगी, तभी हम मान्य होंगे, जो अब तककी प्रार्थनासे नहीं हो सके हैं।"

"इसी प्रकार स्वदेशी वस्तुओंसे प्रेम करना और जहां तक हो सके, उनको ही बर्तना भी हमारा कर्तव्य है। खद्दर देशका पोषक, ग़रीबका सहायक और बेवाका सहारा है। हम ग़रीब शिक्षकोंको तो उसे अपने स्वार्थसे भी अपनाना चाहिए, क्योंकि कुछ कपड़ेके खर्चमें कमी भी उसीसे हो जाती है।

इस प्रकार रचनात्मक देश-कार्य और राष्ट्रीयताके प्रचारमें भाग लेनेसे हम जहाँ देशकी शिक्षा और शिक्षकोंके लिए भविष्यमें सुविधा पैदा करेंगे, वहाँ अपने शिक्षित होनेकी सच्ची परीक्षा भी पास करेंगे। देशके प्रति यह एक फ़र्ज़ और पुण्य कर्तव्य है, और कौन ऐसा अभागा होगा, जो उसे पूरा करना न चाहेगा।"

"ज़िले-ज़िलेमें सम्मेलन हों। विविध-विषयोंको कैसे पढ़ाया जाय, बालकोंमें स्वयं पढ़नेका चाव या उत्साह कैसे उत्पन्न किया जाय, स्कूलोंके शासन तथा प्रबन्धमें किसको क्या दिक़्क़त पड़ी और उसने उसे कैसे पार किया, स्कूलोंमें सज़ा या मारपीटका क्या स्थान हो, स्कूलोंमें ब्रह्मचर्यकी कैसे रक्षा हो, आदि-आदि अनेक प्रश्नोंपर हम लेख पढ़के या व्याख्यान द्वारा अपने अनुभव या पुस्तकोंसे प्राप्त ज्ञानको प्रकट करें। इनके लिए तैयारी करना और इनमें सम्मिलित होना—दोनों ही हमारे लिए लाभकारी होंगे। इन्हीं सम्मेलनोंके साथ जो कुछ काम

स्कूलोंमें कराया गया हो, उसकी प्रदर्शिनी हो, ताकि हमको वहाँ क्या हो रहा है, इसका पता चलता रहे। इस प्रकार मिल जुलकर काम करते हुए हम सदा इस खोजमें लगे रहें कि हमारे काममें क्या उन्नति और किस तरह हो सकती है। यह भी ज़िला-सम्मेलनका एक काम होगा कि वह शिक्षकोंके सामने कार्य और व्यक्तिगत चरित्रका एक उत्कट और उज्ज्वल उदाहरण रखें; उनमें भ्रातृभाव, मिल-जुलकर काम करनेकी शक्ति और सहृदयता उत्पन्न करें।"

"हमारे विचारों और कार्योंका असर हमारे विद्यार्थियोंपर पड़ता है, और इससे देशका भविष्य बनता है या बिगड़ता है। ऐसा और इतना किसी व्यवसायमें नहीं होता, चाहे उसके कार्यकर्ता शिक्षित हों या अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित। कभी-कभी मुझको शिक्षकोंके विरुद्ध आलोचना और आक्षेप सुननेका अवसर मिलता है, और जब वे आक्षेप उनके चरित्रके विरुद्ध होते हैं और उनमें कुछ भी सत्य मालूम पड़ता है, तो मुझे बड़ा शोक होता है, चाहे मैं जानता हूँ कि वह बढ़ाकर कहे जाते हैं और बहुतांशमें उनके कर्ता स्वयं चरित्र-हीन होनेसे वैसे आक्षेप करनेके अधिकारी नहीं होते। मैं इस विषयमें ज्यादः न कहकर केवल इतनी ही प्रार्थना करूँगा कि नमक ही कड़ुवा हो जाय, तो भोजनमें रस कहाँसे आवे! शिक्षकोंकी लम्पटता तो समाजके प्रति विश्वासघात है, और मण्डलका यह धर्म है कि वह इसे रोकनेके भी उपाय सोचे।"

"जब मैं पढ़ता था, उस समयके देखते हुए आपलोगोंमें आज बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है, परन्तु अफ़सरोंके सामने ज़मीन तक सर झुकाकर सलामकी आदत अब भी मिट नहीं चुकी है। ईश्वरने सभी जीवोंमें आदमी ही का सर ऊँचा बनाया है। उसको आप अध्यापक होकर नीचा करते हैं, तो *कौन अपना सर ऊँचाकर सकेगा! हमें हर वक्त यह याद रहना* चाहिए कि हम मनुष्य हैं, और मनुष्यसे गिरे दर्जेका बर्ताव होनेपर चुपचाप उसे सहन कर लेना पाप है, आपको अपने देशकी चीज़ोंका इस्तेमाल करना चाहिए, देशका अन्न खाना चाहिए और देशका पानी पीना चाहिए। यदि इसमें कोई बाधा दे, तो उसका मुकाबला करना चाहिए। मुकाबलेमें यदि आपको नौकरी छोड़नी पड़े, तो छोड़कर किसी दूसरे तरीक़ेसे



श्री गङ्गादत्त पाण्डे

जीविका चलानी चाहिए। यदि आप और किसी प्रकार यहाँ तक कि भीख माँगकर भी रोज़ी न कमा सकें, तो आपको खुदकुशी कर लेना चाहिये परन्तु देशकी चीज़ोंका इस्तेमाल न छोड़ना चाहिए। जितना आपमें चरित्र-बल बढ़ता जायगा, उतना ही आपका संगठन भी प्रबल होता जायगा। अब आपमें कार्यकर्ता भी पैदा होने लग गये हैं। चाहे वह सामान्य-घरमें पैदा हुए हों, चाहे उनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा सामान्य ही रूपसे हुई हो, चाहे वह डेढ़ हड्डीके ही क्यों न हों परन्तु वह इतने चतुर और दृढ़ प्रतिज्ञ देखे जाते हैं कि ऊँचेसे ऊँचे अधिकारियोंसे दो-चार हाथ खेलनेको तैयार हैं। यह शुभ लक्षण है। आप अपनी आनपर मरना सीखिये, परन्तु अफ़सरोंका मुनासिब अदब करनेसे न चूकिये। आप

बच्चोंके सदाचार और स्वास्थ्यके पूरे-पूरे ज़िम्मेवार हैं। आपने देश और समाजकी उन्नतिका ध्यान आपके सरमें सदा रहना चाहिए. परन्तु इसका सदा विचार रखिये कि अध्यापक किसी विशेष जातिका नहीं होता। सभी अध्यापक ब्राह्मण हैं, हिन्दोस्तानी हैं। ईश्वरकी कोई जाति नहीं है उसीसे डरिये। न्याय, सत्य और प्रेमसे बाहर न हूजिये। आदर्श अध्यापक बनकर देशके सामने आइये।"

अधिवेशनके अवसरपर और जो कार्य हुए, उनमें पण्डित मदनमोहनलालजी दीक्षित (सभापति संयुक्त-प्रान्तीय अध्यापक-मंडल) तथा श्रीयुत पं० श्रीरामजी (संचालक 'अध्यापक') को मानपत्र देनेकी बात भी उल्लेख-योग्य है। तिवारीजीके उत्तरका निम्नलिखित अंश ध्यान देने योग्य है—

"गवर्मेन्ट शायद यह समझ बैठी है कि हम राजनैतिक लोगोंके हाथकी कठपुतली बन गये हैं, *यह गलतफ़हमी है। हम* अपनी अच्छाई-बुराई खूब समझते हैं, और जमातकी हैसियतसे किसीके बहकाये नहीं बहक सकते, फिर चाहे बहकानेवाला शक्तिशाली ही क्यों न हो। हम ग़रीब हैं, इसीसे ग़रीबीसे उद्धारके लिए चिल्ला रहे हैं। इस चिल्लानेमें जो हमारी मदद करे, हम उसे क़बूल कर लेंगे। हमारी सभाओंको जो राजनैतिक समझने लगे हैं, यह उनकी भूल है। *हम गुलामी* करनेवाले लोग राजनैतिक विचारोंसे कोई सभा ही नहीं कर सकते। जो लोग हमारे अफ़सर होते हुए ऊपरके अफ़सरोंको भ्रममें डालते हैं, वे ग़लतीपर हैं। हमारी तनख्वाहोंका औसत बहुत गिरा हुआ है। बम्बईमें ४७), ब्रह्मामें ३३), पंजाबमें २५), सी० पी०में २४), यू० पी० में १८), मद्रासके सूबेमें १५), सूबे आसाममें १४), बिहारमें ११) और बंगालमें ८) मासिक प्राइमरी स्कूलके मास्टरकी औसत तनख्वाह है। ऐसी सूरतमें यदि हम तरक्की मांगें और वह भी टाइम स्कूल द्वारा, तो क्या बेजा है। बड़े-बड़े अफ़सरानकी सभाएँ हैं वह राजनैतिक नहीं समझी जातीं, तो आपकी सभा क्यों राजनैतिक है? यदि सरकारके पास धन नहीं है, तो पहले वे माँगें पूरी करें, जो उचित हैं, परन्तु जो बिना धनके पूरी की जा सकती हैं।"

स्वीकृत प्रस्ताव वैसे तो सभी आवश्यक थे, पर खास तौरसे ध्यान देने-योग्य निम्न-लिखित प्रस्ताव हैं :—

"८—देशी कला-कौशलकी उन्नति एवं सादगी और किफ़ायत शआरीकी दृष्टिसे यह सम्मेलन समस्त अध्यापकोंसे अनुरोध करता है कि वे यथासम्भव खद्दर एवं स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार किया करें।

९—यह अध्यापक-मंडल संयुक्त-प्रान्तीय वर्नाक्यूलर अध्यापकोंसे अनुरोध करता है कि वे अपने *कर्तव्योंका पालन* इस तत्परतासे करें कि सूबेके बालक राष्ट्रके सच्चे और सच्चरित्र नागरिक बनें।"

इनसे प्रकट है कि अध्यापक मंडल समयकी गतिके अनुसार चल रहा है। मुन्शी रामदीनजी (सुल्तानपुर) की 'मुदर्रिस' शीर्षक कविता भी बहुत अच्छी रही। वह अन्यत्र उद्धृत की जाती है।

हम आशा करते हैं कि अध्यापक मंडल निर्भीकता-पूर्वक अपने संगठनको दृढ़ करता हुआ आगे बढ़ेगा। अध्यापकोंमें शक्ति आनेपर अधिकारी लोगोंको उनके सामने सर झुकाना ही पड़ेगा। हम लोगोंका—पत्रकारोंका—कर्तव्य है कि हम अध्यापकोंकी स्वाधीनताके संग्राममें उनकी भरपूर सहायता करें। वे हमारे बच्चोंके संरक्षक हैं और उनकी सहायता करनेमें परमार्थके साथ हमारा स्वार्थ भी है।

मुदर्रिस

[लेखक :—श्री मुं० रामदीनजी]

सिक्का था जमा अपना कभी सारे ज़मांपर,
पर अब नहीं सुनता कोई गुफ़्तारे-मुदर्रिस।
रहता था कभी पासमें दौलतका ज़ख़ीरा,
पर आज नज़र आते हैं नादार मुदर्रिस।
जिनसे था क़दरदान कभी सारा ज़माना,
पर आज कहा जाता है अग़ियार मुदर्रिस।

तालीम दें, कैसे जो करें रातमें फ़ाके,
इसके तो कभी थे न सज़ावार मुदर्रिस।
रोने वे नहीं पाते हैं मिल बैठके दुखड़े,
मजबूर हैं, लाचार हैं, एहरार मुदर्रिस।
दिखला दो उन्हें पहले कमेटीका एजेन्डा,
मंज़ूर अगर करना है दरकारे मुदर्रिस।

आखिरमें वही होवेंगे अल्सेके सदर भी,
हर तरह किये जाते हैं लाचार मुदर्रिस।
तनख्वाह तलब पाते नहीं वक़्के ऊपर,
इस वास्ते रहते हैं करज़दार मुदर्रिस।
देता न इन्हें क़र्ज़ भी माँगेसे महाजन,
फिर जीनेसे क्योंकर न हों बेज़ार मुदर्रिस।
मर जाय अगर कोई किसी घरमें यकायक,
पावें न क़फ़न ऐसे हैं ज़रदार मुदर्रिस।
भरते हैं इन्हें डाँड बहुत फ़ीसके पैसे,
झकमारके देते सभी लाचार मुदर्रिस।
कैसे वे जियें बोलिए अब साहबे इन्साफ़,
बैठे जो किए तर्क हैं घरबार मुदर्रिस।
गोशे शुनवा बन्द किए बैठे हैं हुक्काम,
सुनते नहीं, चिल्लाते हैं सौ बार मुदर्रिस।
तहरीरें चली आती हैं दफ्तरसे बराबर,
ग़फ़लत न करें काममें हुशियार मुदर्रिस।
किस तरहसे अच्छी रहे फिर हालते तालीम,
हर तरहसे जब हो रहे लाचार मुदर्रिस।
हो जायगा बरबाद फिर यह सारा ज़माना,
कर बैठेंगे जिस वक़्त कि इसरार मुदर्रिस।
डिप्टीसे कहे गर कोई बदलीके लिये जा,
वह सुनते नहीं होता है लाचार मुदर्रिस।
लाचारीसे गर पैरवी पहुँचाता सिफ़ारिश,
उस वक़्त कहा जाता खताकार मुदर्रिस।
इस तरहका अन्धेर है दफ्तरमें हमारे,
भगवानसे हैं हक़के तलबगार मुदर्रिस।
ओ टीचरो! कुछ होश करो अपनी खबर लो,
डट करके सजाओ ज़रा दरबारे मुदर्रिस।
हर हाल में यारो है कमेटी से मुनाफ़ा,
शिरकतसे करे कोई न इनकार मुदर्रिस।
आपस में रहें मेल से हिन्दू व मुसलमान,
कोई न करे भूलसे तकरार मुदर्रिस।
देखें तो नहीं जाती है कब तक ये नहूसत,
हो जायें सभी चुस्त व हुशियार मुदर्रिस।
मिन्नत व समाजत से न अब काम चलेगा,
हो करके कहें साफ़ ये दो-चार मुदर्रिस।
तनख्वाहें अगर देना है तो दीजे बराबर,
हो जायेंगे वरना सभी बेकार मुदर्रिस।
समझो न इसे गाना, यह है ग़म का तराना,
हैं इसके क़दरदान समझदार मुदर्रिस।
यह नज़्म है इस वास्ते पेशेनज़र अहबाब,
होवें इसे सुन ताकि खबरदार मुदर्रिस।
तशहीरसे मतलब है न कुछ नाम की ख्वाहिश,
लाया जो बना करके यह अशआर मुदर्रिस।
खुफ़ियाका नहीं खौफ़ मेरे दिलमें ज़रा भी,
समझे वह भले ही मुझे ग़द्दार मुदर्रिस।

जापानी मासिक पत्रोंके सम्राट्

श्री सेजी नोमा

पत्रकार इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि एक पत्रको भी सफलता-पूर्वक चलाना कोई आसान काम नहीं है। जिन महाशयका चित्र यहाँ दिया जाता है, वे जापानमें नौ मासिक पत्रोंका संचालन कर रहे हैं, और ये मासिक-पत्र एक-से-एक बढ़िया हैं। ये महानुभाव 'दाई निप्पन यूबेंकाई कोडांशा' नामक प्रकाशन-संस्थाके प्रधान हैं। इस संस्थाने बीस वर्षके अन्दर आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखाई है। जापानमें इस समय लगभग ८०० सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। उनके जितने ग्राहक हैं, उनमें ७० फी-सदी ग्राहक श्री सेजी नोमाके नौ मासिक पत्रोंके हैं, इसीलिए जापानकी जनताने आपको (Magazine King of Japan) 'जापानी मासिकपत्रोंके सम्राट्' की उपाधि दे दी है। अंग्रेज़ीमें इन महोदयका एक जीवन-चरित भी प्रकाशित हो गया है। इनके नौ मासिकपत्रोंमें कई बच्चों और स्त्रियोंके लिए, और शेष साधारण जनताके लिए है। उन पत्रोंकी खूबी यह है कि वे सभी मनोरंजक होनेके साथ-ही-साथ उपयोगी भी हैं। किसी भी पत्रको आप ले लें उसमें आप मनोहर कहानियोंके अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान देनेवाला काफी मसाला पावेंगे।

जितने परिश्रमके साथ यह मसाला संग्रह किया जाता है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। इन मासिकपत्रोंके सम्पादक तथा सहकारी सम्पादक जिस लगन और धुनके साथ काम करते हैं, वह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। 'मासिकपत्रों द्वारा स्वदेशकी सेवा करना' यही उनके जीवनका लक्ष्य है। इन लोगोंने अपने पत्र-संचालनके लिए तीन नियम बना रखे हैं :—

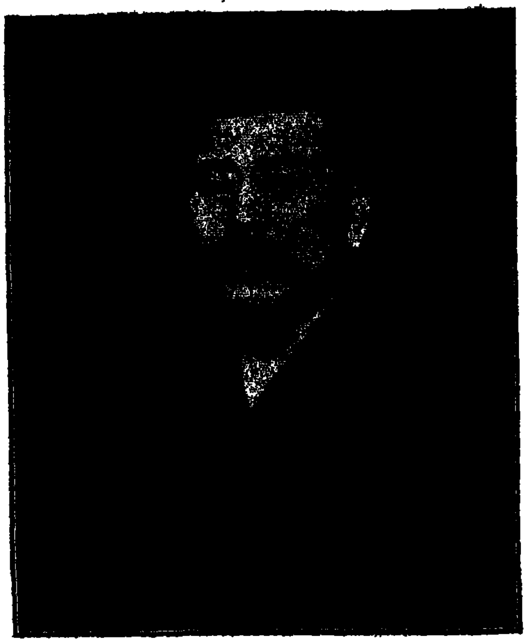
(१) हम सब सहयोगसे काम करेंगे।
(२) ईमानदारी तथा परिश्रमको सर्वोच्च स्थान देंगे।
(३) बुद्धिमत्ता और व्यावहारिकताका ख्याल रखेंगे।

प्रेसिडेण्ट सेजीनोमा और उनके साथी अपने पत्रोंके लिए भरपूर आत्म-त्याग करनेको सर्वथा उद्यत रहते हैं। वैसे काम करनेके लिए केवल ८ घंटेका नियम है, पर इन कार्य-कर्ताओंमें कोई-कोई तो प्रात:कालके ५ बजे आते हैं और रातके १० बजे जाते हैं। बाज़-बाज़ तो रातके बारह बजे तक काम करते रहते हैं। इन पत्रोंके कार्यालयोंमें काम करनेवालोंमें ५४ आदमी तो ऐसे हैं, जो १५ से लेकर १८ घंटे रोज़ तक काम करते हैं, और १३।१४ घंटे काम करनेवालोंकी संख्या तो काफ़ी बड़ी है। इन लोगोंने यह निश्चय कर लिया है कि हम अपने पत्रोंको सर्वश्रेष्ठ बनावेंगे, और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वे अपना जीवन खपा रहे हैं। इन पत्रोंके कार्यालयोंमें छोटे-बड़ेका कोई भेद-भाव नहीं है। विश्वविद्यालयकी डिग्री अथवा उमरका भी कोई ख्याल नहीं किया जाता। जो नये-नये आदमी आते हैं, उन्हें भी काफ़ी अवसर मिलता है। ईमानदारी, परिश्रम, और सच्ची लगनकी ही यहाँ क़द्र होती है। यदि किसी नवागन्तुकमें ये गुण काफी मात्रामें पाये जावें, तो उसे यहाँ उच्च-से-उच्च पद मिल सकता है। इन कार्यालयोंसे ६ पत्रोंके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थमालाएँ भी प्रकाशित होती हैं।

इन पत्रोंके नाम निम्न-लिखित हैं :—

(१) 'किंग' (२) 'यूबेन' (३) 'फूजिन क्लब' (४) 'कोदन क्लब' (५) 'फूजी' (६) 'गेंदाई' (७) 'शोनन क्लब' (८) 'शोजो क्लब' और (६) 'योनन क्लब'।

इनमें पहला सार्वजनिक राष्ट्रीय पत्र है। सर्वसाधारण, स्त्री पुरुष, युवक, वृद्ध—सभीकी रुचिका ख्याल रखता है। जापानमें जितने ग्राहक इस मासिकपत्रके हैं, उतने किसी



श्री सेजी नोमा

दूसरेके नहीं। दूसरा नवयुवकोंके लिए और तीसरा महिलाओंके लिए विशेषत: उपयोगी है। चौथेमें मनोरंजक गल्प तथा उपन्यासोंकी प्रधानता रहती है। पाँचवें और छठवें अपने-अपने ढंगके निराले हैं। सातवाँ विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी शिक्षा-सम्बन्धी पत्र है। आठवाँ कन्याओंके लिए है, और नवाँ छोटे-छोटे बच्चोंका मनोरंजन करता है।

इन मासिकपत्रोंकी खूबी यह है कि इनके एक-से-एक बढ़िया अंक निकलते हैं। सालभरमें एक-दो अंक अच्छे निकाल देना और शेष आठ-दस अङ्कोंमें रद्दी मसाला भरना तो कोई मुश्किल काम नहीं पर प्रत्येक अङ्कमें अपने स्टैन्डार्डको ऊँचा रखना अत्यन्त कठिन है। क्या ही अच्छा हो, यदि हम लोग हिन्दी-पत्र-संचालक और सम्पादक श्री० सेजी नोमाके आदर्शको अपने सम्मुख रखकर अपने पत्रोंको अधिकाधिक मनोरंजक तथा उपयोगी बनानेका प्रयत्न करें। क्या कभी हमारे यहाँ भी कोई ऐसा पत्र संचालक उत्पन्न होगा, जिसे 'भारतीयपत्रोंके सम्राट्' की उपाधि दी जा सके?



प्रो० रमेशचन्द्र शास्त्री एम० ए०

[लेखक :—श्री सरदार सिंह 'सैनिक']

प्रत्येक देशको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेसे पहले शक्तिकी उपासना करनी पड़ती है। शक्ति-सम्पन्न जातियाँ ही संसारमें स्वतन्त्रताकी अधिकारिणी हैं। बिना शक्तिके स्वतंत्रता देवीके दर्शन करना टेढ़ी खीर है। भारत जब शक्तिशाली था, तब सम्पूर्ण संसार उसके सम्मुख झुकनेमें अपना गौरव समझता था। आज वही वृद्ध भारत शक्तिहीन होनेके कारण दासताकी बेड़ियोंमें जकड़ा हुआ तड़प रहा है। लेकिन नवीन भारतने शक्तिकी आराधना आरम्भ कर दी है। चारों ओर जागृतिके चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भारतके नवयुवकोंके हृदयोंमें उमंग और उत्साहकी झलक दिखाई दे रही है। नवयुवक शक्तिकी खोजमें भटक रहे हैं। स्थान स्थानपर व्यायामशालाएँ खोली जा रही हैं। प्रो० माणिकराव प्रो० राममूर्ति और प्रो० रमेशचन्द्र शक्ति संगठनके कार्यको बड़ी संलग्नतासे कर रहे हैं। इन्हीं तीन महानुभावोंमेंसे हम एकके यानी प्रो० रमेशचन्द्रके विषयमें कुछ लिखेंगे।

रमेशचन्द्रका जन्म बुलन्दशहर-प्रान्तके अन्तर्गत बाजीदपुर नामक ग्राममें हुआ था। आपके पिताजीका शुभ नाम चौधरी रामस्वरूप सिंह है। चौधरी साहब अपने गाँवके मुखिया हैं; इतना ही नहीं, बल्कि चारों ओर उनकी साखनी तथा पवित्रताकी धाक है।

रमेशचन्द्र अपने पिताके द्वितीय पुत्र हैं। चौधरीजीने अपने प्रथम पुत्रको अंग्रेजी स्कूलों और कालेजोंमें शिक्षा प्राप्त करनेको भेजा, परन्तु जब हमारे चरित्र-नायक रमेशचन्द्रके पढ़नेका समय आया, तो उन्हीं दिनों सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर)में वैदिक शिक्षा-प्रणालीके अनुसार एक गुरुकुल खुल चुका था, जो अब तक विद्यमान है। चौधरीजीने रमेशचन्द्रको अपने आर्यसामाजिक विचारोंके कारण उस गुरुकुल ही में भेजनेका निश्चय किया। यदि उन्होंने इनको अंग्रेज़ी स्कूलों या कालेजोंमें भेज दिया होता, तो आज रमेशचन्द्र केवल एक मामूली ग्रेजुएट बन गये होते।

प्रारम्भसे ही आपकी रुचि शारीरिक उन्नतिकी ओर थी। आप प्रत्येक व्यायाम—जैसे, दौड़ना, दंड-बैठक लगाना, फुट-बाल खेलना, हाकी खेलना आदि—में नियमित समयपर इस लगनके साथ करते थे और आपकी व्यायाम-विधि ऐसी अनूठी होती थी कि देखनेवालोंका मन शीघ्र ही आपकी ओर आकर्षित हो जाता था।

आप कबड्डीके अच्छे खिलाड़ी हैं। आपके समान कबड्डी खेलनेवाला उस समय गुरुकुल-भूमिमें दूसरा कोई न था। फिर आपका ध्यान कुश्तीकी ओर गया। कुश्तीमें भी आपकी योग्यता बढ़ी हुई थी, परन्तु इस शारीरिक उन्नतिकी रुचिने कभी भी आपकी पढ़ाईमें विघ्न नहीं डाला। आप व्यायामके प्रगाढ़ प्रेमी होनेके साथ-साथ पढ़नेमें जी तोड़कर परिश्रम करते थे। इस परिश्रमके कारण ही आप संस्कृत और अंग्रेज़ीमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर सके हैं।

सन् १९१३ में प्रो० राममूर्ति बृन्दावन पधारे।

गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंको प्रो० राममूर्तिके शारीरिक खेल देखनेका सुअवसर मिला। अन्य साधारण मनुष्योंके समान और दर्शक तो प्रो० साहबके शारीरिक खेल देखकर ही सन्तुष्ट हो गये, परन्तु रमेशचन्द्रको इससे सन्तोष न हुआ। उन्होंने अपने मनमें सोचा कि जिस कार्यको राममूर्ति कर सकते हैं, उसे मैं क्यों नहीं कर सकता ? बस, फिर क्या था, उस दिनसे रमेशचन्द्रने प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। व्यायाममें रुचि होनेके कारण आपका शरीर सुन्दर और सुडौल था ही, और इच्छा शक्ति भी आपकी प्रबल रही है, फिर भला, आपको सफलता मिलनेमें सन्देह ही क्या था।

सबसे प्रथम आपका ध्यान जंजीर तोड़नेकी ओर गया, यह कार्य प्रो० राममूर्तिके सब खेलोंमें कठिन है। आपने प्रारम्भमें बहुत ही पतली जंजीर तोड़ना सीखा, और अभ्यास करते-करते आज आप काफी मोटी जंजीर तोड़ने लगे हैं। इसके बाद अपनी छातीपर भारी पत्थर रखनेकी ठानी। गुरुकुल वृन्दावनमें व्यायाम करनेकी सुविधाएँ पर्याप्त नहीं हैं, इसलिए रमेशचन्द्रके सम्मुख यह प्रश्न आया कि वे छातीपर रखनेके लिए भारी पत्थर कहाँसे लावें ? चारों ओर निगाह दौड़ाई, मगर वहाँ पत्थर कहाँ ? यदि सारा दिन व्यायाम करना ही रमेशचन्द्रके जीवनका ध्येय होता, तो वह सब वस्तुयें सुलभतासे एकत्र कर लेते, परन्तु यहाँ तो बात ही दूसरी थी। बेचारेको दिन-भर तो विद्यालयमें कठिन परिश्रम करना पड़ता और शामको एक घन्टा इस कार्यके लिए मिल पाता। एक घंटेमें सामान एकत्र करते या छातीपर पत्थर तोड़नेका अभ्यास! सबसे पहले अपनी छातीपर पत्थर तोड़नेका अभ्यास चूना पीसनेकी चक्कीसे आरम्भ किया था। इसमें आपको सहज ही में सफलता मिल गई। शारीरिक बलके इन कार्योंके साथ आपने प्राणायाम साधनकी ओर भी ध्यान दिया था और अब प्राणायाम द्वारा प्रो० रमेशचन्द्र अपने शरीरकी पेशियोंको डेढ़ गुना तक कर सकते हैं। हाल ही में आपने अपने खेल राजपूत इन्टरमीडियेट कालेजमें दिखाये थे। उस समय इन पंक्तियोंके लेखकको भी उनके प्राणायाम द्वारा वृद्ध की गई पेशी देखनेका सुअवसर मिला था। आप जब पेशी प्रदर्शनके लिए आये तो उस समय आपके शरीरपर एक जाँघियेके सिवाय कुछ न था। आपका स्वास्थ्य अच्छा था, परन्तु जब आपने अपनी पेशियाँ दिखाना आरम्भ किया उस समय आपका शरीर दूना ज्ञात होता था, और छूनेसे तो लोहेके समान कठोर प्रतीत होता था। आपने अपनी छातीपर आदमियोंसे भरी हुई बैलगाड़ी भी उतारी थी जिसमें कमसे-कम तीस आदमी बैठे थे।

इन सब कामोंमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात्, आपके मनमें जब मोटर रोकनेकी आई, तो सबसे पहले आपने गुरुकुलमें दो बैलोंकी गाड़ीको रोकना शुरू किया। जब आपको गाड़ी रोकनेमें सफलता प्राप्त हुई, तो फिर मोटर रोकनेका प्रयास करनेके लिए आपको आगरे आना पड़ा। आप आगरे तो इसलिये आये कि मोटर रोकनेका अभ्यास करेंगे, परन्तु पहले बार ही मोटर रोकनेमें कृतकार्य हो गये जिससे आपका हौसला बढ़ गया।

इनकी ऐसी असाधारण शक्ति देखकर महात्मा नारायणस्वामीने, जो उस समय गुरुकुल वृन्दावनके मुख्याधिष्ठाता थे, इनको ग्रीष्मावकाशमें बड़ौदेकी प्रसिद्ध व्यायामशालामें प्रो० माणिकरावजीके पास भेज दिया। इनकी शारीरिक योग्यता देखकर प्रो० माणिकरावजी इतने प्रसन्न हुए कि इनको दो ही मासमें लाठी, लेज़िम, तलवार, मलखम आदि देशी खेलोंमें दक्ष कर दिया। इन खेलोंको सीखनेके लिये अन्य विद्यार्थियोंको दो वर्षसे अधिक समय लगता है। वहाँसे लौटकर आपने इन सब खेलोंको गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंको सिखा दिया है। आपने इतनेपर ही सन्तोष नहीं किया। अब आपने संसारके सबसे प्रसिद्ध पहलवान सैन्डोकी तरह पेशियोंका विकास करना भी आरम्भ कर दिया है, और आप अपने प्रत्येक अंगकी पेशी बड़ी अच्छी तरह दिखानेमें सफल हुए हैं।

साधारणतया आप निम्न-लिखित शारीरिक शक्तिके खेल जनताको दिखाया करते हैं—

(१) लोहेकी जंजीर तोड़ना

(२) छाती परसे भरी हुई बैलगाड़ी उतारना

(३) छातीपर पत्थर तोड़ना

(४) तीन मनसे भी अधिक भारी पत्थरको एक हाथमें लेकर और उसको सिरके बराबर ऊँचा उठा कर दौड़ना

(५) मोटर रोकना

(६) पेशी दिखाना

(७) लेज़िम, लाठी, तलवार, मलखम आदिके खेल दिखाना।

आपने गुरुकुल वृन्दावनके उत्सवपर एक ई० घोड़ेकी

शक्तिशाली मोटर रोकी थी। गुरुकुल वृन्दावनने आपको गुरुकुलीय भीमकी उपाधि प्रदान की है।



प्रोफेसर रमेशचन्द्र राय

आपका स्वास्थ्य आदर्श है। हम आपको न मोटा ही कह सकते हैं, न पतला ही, परन्तु आश्चर्य यह कि इसपर भी आपके बदनका बोझ दो मनसे अधिक है। आप दौड़नेमें भी बहुत कुशल हैं। फुट-बाल और हाकीके तो आप अच्छे खिलाड़ी हैं ही।

आपने जब अपने धनुर्विद्याके खेलोंको आगरेमें दिखाया, तो जनतापर उसका बहुत ही प्रभाव पड़ा। आपकी निराली बाण-विद्या देखकर रह-रहकर भारतके प्राचीन धनुर्धारी अर्जुन और शब्दभेदी बाण चलानेवाले पृथ्वीराजकी याद आती थी।

बाण-विद्याके निम्न-लिखित खेल जनताके सम्मुख दिखाये गये थे।

(१) बाणसे तागा काटना

(२) हिलते हुए दो तागोंको एक ही बाणसे काटना

(३) भिन्न-भिन्न दिशाओंमें हिलते हुए कई तागोंको एक ही बाणसे काटना

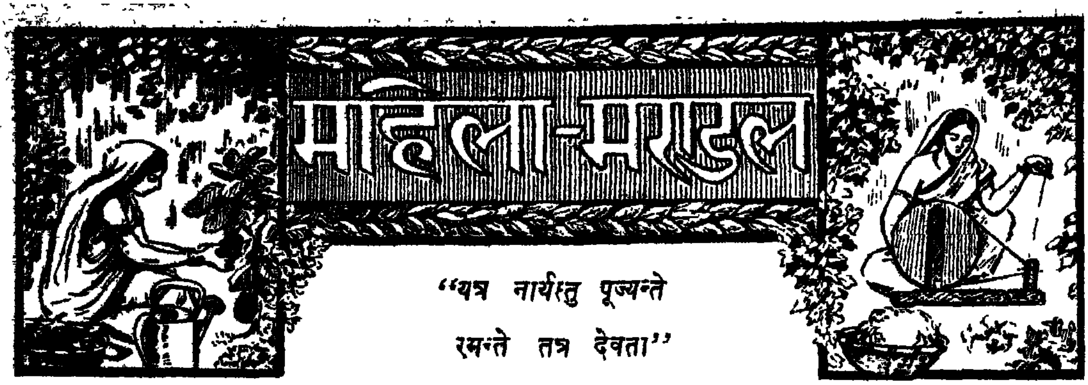
(४) शीशेमें देखकर लक्ष्यभेदन करना

(५) शीशेमें देखकर हिलते हुए निशानोंका भेदन करना।

(६) एक बाणसे दस जलती हुई बत्तियोंको गिरा देना।

(७) आँख बाँधकर शब्दभेदी बाण चलाना।

गुरुकुलसे पास करते ही आपको गुरुकुलमें अंग्रेज़ीका अध्यापक नियत किया गया। इसके पश्चात् एफ० ए० और बी० ए० परीक्षाओंकी तय्यारी अपने-आप ही करके पास हुए। आपकी विद्या-सम्बन्धी योग्यता भी कम नहीं है। आपने गुरुकुल-शिक्षा-प्रणालीके अनुसार उच्चकोटिकी शिक्षा प्राप्त की है। आपकी कालेज-शिक्षामें रुचि धर्मकी ओर थी। आपका विशेष विषय धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन था। गुरुकुल वृन्दावनके आप प्रतिष्ठित स्नातक हैं, और वहाँसे सिद्धान्त-शिरोमणिकी उपाधि प्राप्त की है। इसके सिवा आपने पंजाब-विश्वविद्यालयसे शास्त्री-परीक्षा भी पास कर ली है। एम० ए०की डिग्री आपने गत वर्ष आगरा-विश्वविद्यालयसे प्राप्त की थी।



माता, गृहिणी, भगिनी

[लेखक :—राधामोहन गोकुलजी]

(क)

सबसे नीची श्रेणीके प्राणियोंमें प्रजनन-क्रिया बिना पति-पत्नीके भेद और संयोगके ही होती रहती है। लेस्टर एफ० वार्डने अपने समाज-शास्त्र (Pure Socialogy)में लिखा है,—"The female is not only the primary and original sex, but continues throughout as the main Trunk. The male is a mere after throught of nature."

अर्थात्—'स्त्री ही प्रधान और मौलिक लिंग है, पुरुषका निर्माण प्रकृतिने बादमें सोचा और किया।'

विकासवादके पण्डितोंका मत है कि प्रजनन-क्रिया-सम्बन्धी दाम्पत्य व्यवहार पहले-पहल मछलियोंमें विकसित हुआ। उत्तरोत्तर विकासके साथ पक्षियों और बच्चा देनेवाले प्राणियोंका प्रादुर्भाव हुआ। जब यह विकास मनुष्यकी उत्पत्तिका कारण हुआ, तो इसमें सज्ञानताके कारण माता-पिताके स्वत्वों और दायित्वोंका विचार पैदा हुआ, और सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक भावोंकी जड़ पड़ी।

आज इस समुन्नत मनुष्य-समाजमें गार्हस्थ्य जीवनकाल ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसी आश्रममें मानव-सृष्टिकी वृद्धि, पालन और संरक्षण होता है। इस आश्रमका बड़ा भारी और कठिन बोझ नारियोंको उठाना पड़ता है, इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि माता, पत्नी और भगिनीके जीवनपर कुछ विचार किया जाय। विचार उस दृष्टिकोणसे हो, जिससे गार्हस्थ्य जीवन सुख देनेवाला बने, सन्तति सभ्य, नीतिज्ञ, सदाचारी, पुष्ट और दीर्घजीवी हो। बड़े दुःखकी बात है कि पढ़ना-लिखना न जाननेके कारण हमारी अधिकांश महिलाओंके कानों तक वह बातें नहीं पहुँचतीं, जो उनके हितके लिए आजकल संवाद-पत्रों और पुस्तकोंमें अक्सर निकलती रहती हैं।

पढ़ी-लिखी बहनोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि वे अपनी जातिकी उन्नतिकी अधिक परवा करें, अनपढ़ बहनोंमें जाकर उनको बीसवीं शताब्दीके प्रकाशमय वैज्ञानिक युगका सन्देश सुनावें और हानिकर रूढ़ियों तथा प्रथाओंके फन्देसे बचाकर उन्हें स्वतन्त्रता, वीरता और देश, जाति एवं मानव-जगत्के प्रेमके पाठ पढ़ावें। जब तक हमारी माताएँ, बहनें और गृहिणियाँ हमारा साथ नहीं देतीं, हम ऊँचे नहीं उठ सकते। एक ओर पुरुष-मण्डल अपने ऐबोंका सुधार करे, दूसरी ओर महिला-मण्डल उसका हाथ बँटाये, तो अभीष्टकी सिद्धि शीघ्र और कम प्रयाससे हो सकती है।

हमारी माताएँ सदा अपने बच्चोंसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखतीं हैं, तो क्या उनका यह प्रधान कर्तव्य नहीं है कि वे सन्ततिके मस्तिष्क उन्नत और विजयी होनेकी दृढ़ कामनासे भर दें? जब बच्चा एक छोटीसी कटोरी उठाकर देता है, तो

माता ही मुसकराते हुए शाबाशी देकर उसकी हिम्मत बढ़ाती है, तब वह तुरन्त बड़ा लोटा उठानेके लिए दौड़ पड़ता है। बालकको अपनी शक्तिका अनुमान नहीं होता, वह तो माताकी इच्छा-शक्तिके अनुसार अपनेको बनाना चाहता है। यदि माता सन्ततिके सुधारमें सतर्क रहे, तो कदाचित ही सन्तान निकम्मी हो। मातृ-शक्ति इस जगत्में सर्व-प्रधान शक्ति है। वह स्त्री जो सन्ततिवती होकर अपने गौरव और दायित्वका अनुभव नहीं करती, निःसन्देह वह मृतकके समान है। जो माता सन्ततिकी रक्षाके लिए खतरेके समय अपने प्राणोंको तृणवत् त्याग सकती है, वही माता क्या अपने शिशुमें अपना प्राण नहीं फूँक सकती? अवश्य फूँक सकती है। माताओ, सावधान! तुम अबला नहीं हो, सबलोंको जन्म देनेवाली महाशक्ति हो।

समय चाहता है कि विज्ञान और नीतिके बलसे देश बली बने। सौ कुपूतोंसे पाँच सुपूत अच्छे होते हैं, इसलिए हमारी माताओंको चाहिए कि सिंहोंकी जननी बनें। बहुतसे कायरों और गुलामोंको तय्यार करना बन्द कर दें। आज हमें ज़रूरत है कि हमारी संख्यामें चाहे कमी हो, किन्तु हमारे सद्गुणोंकी वृद्धि हो। जो माताएँ सपूत नहीं उत्पन्न करती हैं, केवल प्राणियोंकी संख्या बढ़ाकर पृथ्वीपर भार डालती हैं, वे अपने कर्तव्योंको पहचाननेवाली नहीं कही जा सकतीं। जैसे, चतुर कारीगर अपने कामको सुन्दर बनाकर अपने चातुर्यका परिचय देते हैं, वैसे ही माताएँ सुसन्ततिका निर्माण करके अपनी चातुरी, सद्भाव, देश-प्रेम और सर्वोपरि मातृ-धर्मका परिचय देती हैं।

माताओंको ध्यान रखना चाहिए कि एक सन्तानकी सृष्टि करनेके बाद पाँच-छः वर्ष तक केवल उसके लालन-पालनमें निरत रहें। वर्ष-वर्ष दो-दो वर्षकी छोटाई-बड़ाईकी अनेक सन्ततिका होना माता-पिताकी दायित्वहीनताका परिचायक है। जो कुम्हार टेढ़े-मेढ़े, भद्दे, रद्दी बहुतसे खिलौने जल्दी-जल्दी बना डालता है, उसे पैसेके चार-चार बेचने पड़ते हैं, लेकिन चतुर कारीगर कई दिनमें एक चीज़ बनाता है और उसे पाँच सात रुपयेमें भी मुश्किलसे देता है। नशेबाज़ सन्तति प्रायः निर्बल, मूर्ख, आवारा और दरिद्र होती है। नशेबाज़ दम्पतिकी सृष्टिमें पागलोंकी संख्या अधिक होती है, इसलिए मिथ्या आनन्दके लोभमें अपना और अपनी भावी सन्तानका दिमाग़ ख़राब करनेवाले नशेसे सदा बचना चाहिए।

आशावती होनेपर दाम्पत्य सम्बन्ध बन्द करना ही श्रेष्ठ है। जिन स्त्रियोंका पैर भारी हो जाता है, उनको कष्ट देना बड़ा अधर्म है। पत्नियाँ अपने प्रेमके अंकुशसे समझदारीके साथ प्रायः पतियोंकी नशेबाज़ी, असामयिक प्रेमालाप, अनुचित दाम्पत्य व्यवहारकी आदतें छुड़ा सकती हैं। इस सम्बन्धमें हम पत्नियोंके विषयपर लिखते हुए यथा अवसर अधिक प्रकाश डालेंगे।

भारतके सम्बन्धमें अनेक पाश्चात्य लोगोंकी राय है कि भारतीय स्त्रियाँ यूरोपीय या अमेरिकन स्त्रियोंसे शील और स्नेहमें ऊँचा दर्जा रखती हैं। एक जगह स्वाइनी कहता है—"आर्य-महिलाएँ कामकी इतनी गुलाम नहीं होतीं, जितने पुरुष।' यह बिलकुल सत्य है, लेकिन वही स्वाइनी कहता है—

"The Chinese and Hindus are the most prolific people among the nations ; but it is quality not quantity test the superiority of race ; and the average stalwart Anglo Saxon is worth in stamina and endurance ten of the enfeebled units of the teeming races."

अर्थात्—'चीनी और हिन्दू बड़े ही प्रजावृद्धि करनेवाले (बहुप्रज) हैं, लेकिन किसी जातिकी महत्ताकी जाँच गुणसे होती है, संख्यासे नहीं होती। मध्यम-श्रेणीका एक निर्भीक बलिष्ठ अंग्रेज़ तेज और सहनशक्तिमें जनपरिपूर्ण जातियोंके दस निर्बलोंके बराबर है।

यह बात मैं सर्वथा सत्य माननेके लिए तय्यार नहीं हूँ। हाँ, चीन और भारतके वर्तमान पतनके अनेक कारणोंमेंसे एक यह भी कहा जा सकता है। अंग्रेज़ोंकी तुलनाके सम्बन्धमें

भी मैं अंग्रेज़ोंको छलमें तो बड़ा समझता हूँ, परन्तु बलमें नहीं। भारतवासियोंकी निर्बलताका कारण उनकी जात-पाँत और बेढंगी सामाजिक रीति-नीतियाँ हैं, इसलिए जो कुछ भी हो, भारतवासी नर-नारियोंको इन अंग्रेज़ोंके मतसे इतना तो अवश्य मालूम होता है कि उन्हें दूसरे देशवाले क्या और कैसा समझते हैं। हमें अपने सुधारनेके लिए इतना जानना काफ़ी है। अपने मुँह मियांमिट्ठू बननेसे कुछ नहीं होता। हमारी माताएँ चाहें, तो भूमण्डलपर फिर हमारा सिक्का जमा सकती हैं। हमें भी चाहिए कि हम महिलाओंको स्वाधीनता दें, और उन्हें इस योग्य बननेका अवसर दें कि वे अपने कर्तव्यका पालन कर सकें।

अनेक प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिकोंका मत है कि रजोकाल और गर्भकालमें माता जो खाती, देखती, सुनती और विचारती है, उसका प्रभाव कुक्षस्थ बच्चेपर पड़ता है। इसी प्रकार माता-पिताके आचार-व्यवहारका प्रभाव भी क्रोडस्थ शिशुपर पड़ता है। इसलिए माताओंको इन बातोंपर ध्यान देनेकी ज़रूरत है। माता-पिताके रोगों और अनेक असद्व्यवहारोंका प्रभाव गर्भस्थ बालकपर प्रत्यक्ष देखनेमें आता है। तीन वर्षकी अवस्थाके बाद तो बालकके सामने कोई भी काम या बात बहुत समझकर करनी चाहिए। बच्चे बोलना सीखनेके साथ-ही-साथ और भी अनेक बातोंकी नक़ल करना सीखने लगते हैं। यह कहावत बहुत बड़ी सीमा तक सच पाई जाती है कि 'जैसे मा-बाप, वैसे बच्चे'।

***

(ख)

कुमार अवस्था वह अवस्था है, जिसमें हम अपने भावी जीवनको सुन्दर बनानेके लिए अपने गुरुजनोंसे, जो अनुभवी या भुक्तभोगी होते हैं, बहुत-कुछ सीख सकते हैं। इससे निकलकर वैवाहिक जीवनमें प्रविष्ट होना कुछ अधिक ज़िम्मेदारीका काम है। जिन देशों और जातियोंमें [illegible] पशु-पक्षी या बीज-वस्तुकी तरह बेच [illegible] (बे-जाने) का रिवाज है, जिनके विवाहमें लड़के और लड़कीका ज़रासा भी हाथ नहीं होता, जिन लोगोंमें स्त्रियोंको पर्देमें आमकी भाँति पकाया जाता है, उनके यहाँकी स्त्रियोंकी दशा बहुत ही दयनीय होती है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु जहाँ न पर्दा है, न इतनी पराधीनता है—जैसे, अमेरिकामें—वहाँ भी भीतरी सामाजिक जीवन बहुत नष्ट-भ्रष्ट देखनेमें आती है। अमेरिकाके दाम्पत्य जीवनकी पवित्रताको अनुभव ही कह सकता है कि वह कितना पवित्र (?) है। इस लेखका अभीष्ट अमेरिकाकी गन्दगीका वर्णन करना नहीं है। मतलब यह है कि केवल पर्देके उठा देनेसे ही स्त्रियोंमें नीतिमत्ता आकर निवास करने लगेगी, ऐसा समझना ठीक नहीं है।

हाँ, जहाँ तक पर्दा नारियोंकी शिक्षा-दीक्षामें, उनकी शारीरिक उन्नतिमें, उनके स्वतन्त्र प्राकृत ज्ञानके उपार्जनमें बाधक होता है, निश्चय ही बहुत बुरा है। भारतवर्षमें सरकारी जेलोंमें रहनेवाले कैदियोंकी जो मानसिक और शारीरिक दुर्गति होती है, वही पर्देके भीतर रखी जानेवाली स्त्रियोंकी भी होती है। विवाहिता स्त्रियोंको या कुमारी नवयुवतियोंको पर्देमें रखना एक अपराध है, किन्तु संसारके सारे रोगोंकी एक ही दवा मान बैठना भी भूल है।

विवाह युवा अवस्थामें होता है। इस अवस्थामें कुरूपोंमें भी एक प्रकारका लावण्य होता है, रूपवतियोंकी तो बात ही जुदा है। विवाहके बाद भी यह सौन्दर्य बहुत काल तक स्थिर बनाये रखना वधुओंका अपना काम है। इसमें सन्देह नहीं कि पुरुष इस मामलेमें बहुधा बहुत अविचारी होते हैं। स्त्रियोंको पर पुरुषोंकी दुष्टतासे अपनी रक्षा करना कठिन नहीं है। यदि वे चाहें, तो अपने पतिके व्यवहारको भी उचित क्रम और शृंखलाबद्ध कर सकती हैं। आत्म-बलकी कमी या सरलता, कोमलता, अथवा दयाकी अधिकता उन्हें पुरुषोंका शिकार बना देती है।

विवाहित अवस्थामें प्रवेश करनेके समय स्त्रियोंको समझ लेना चाहिए कि वे माताके दायित्वपूर्ण पदको प्राप्त करने जा रही हैं। माताओंका काम मानव वंशको बनाये रखना और देश तथा

जातिकी रक्षाके लिए कष्ट सहन करता है। इस बातको बिना समझे नारियोंको गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना बड़ी भूल है। यह दुर्भाग्यकी बात है कि हमारे देशमें बालक-बालिकाओंका अपने विवाहमें कोई हाथ नहीं होता। उनकी अनुमतिके बिना ही माता-पिता उन्हें वैवाहिक बन्धनमें डाल देते हैं, किन्तु हम देख रहे हैं कि अब अवस्था बदल रही है। समाज अपनी भूलोंको समझने लगा है। राज-नियम भी ऐसे बनाये जा रहे हैं, जिनसे अबोध बालक-बालिकाओंके विवाहोंकी रोक होगी।

हमें भूलना न चाहिए कि दाम्पत्य-सम्बन्ध एक पवित्र सम्बन्ध है। यह केवल कामवासनाकी परितुष्टिका एक साधन-मात्र नहीं है। विचार और विवेकके साथ सृष्टि-वृद्धिके काममें प्रवृत्त होना धर्म है, आनन्द वर्धक है और स्वास्थ्यका स्थिर रखनेवाला है। दाम्पत्य संयोग ही हमारे सामाजिक और नैतिक उत्कर्षका प्रधान आधार है। इनमेंसे यदि एक भी अगमें कुछ खराबी हो जाती है, तो समाजका पतन हो जाता है। यदि पति-पत्नी परस्पर एक दूसरेके उत्थान और प्रतिष्ठाका भाव मनमें रखकर काम करते हैं, तो समाज ऊँचा उठता है और बलशाली, नीतिमान और उन्नत होता है।

याद रहे कि कामके क्रीतदास बनकर दाम्पत्य जीवनको एकमात्र वासनाके परितोषका साधन समझ लेना बड़ी-बड़ी हानियोंका कारण हो जाता है। बहुत तरहकी भयानक व्याधियाँ जो शरीरमें उत्पन्न होती हैं, उनका एक कारण विवेकहीन अधिक सहवास है। अत्यन्त कामी दम्पतिकी सन्तति बहुधा विक्षिप्त, मूर्ख, और पापाचार-प्रवृत्त होती है। संयमको एकदम तोड़ देनेसे पुरुष और स्त्रीमें नाना प्रकारके रोग हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने अपने अनुभवसे बतलाया है कि अन्धापन, बहरापन, त्वचाके रोग—खाज आदि—रीढ़के रोग, कुल्होंकी व्याधि, पक्षाघात, अर्द्धांगवायु, माथेकी भिल्ली आदिकी पीड़ा और जलन इत्यादिके द्वारा मनुष्यको पूर्वकृत अतिरतिका प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

अतः बहनो और भाइयो! सावधान! क्षणिक आनन्दके लिए सारे जीवनको व्यर्थ और नीरस न बनाओ।

आयुर्वेदज्ञोंने अध्याय-के-अध्याय इस सम्बन्धमें लिखे हैं। उनको एक बार पढ़कर और अपने अंगोंकी बनावट तथा क्रियायोंको जानकर जो समझदार अपनी जवानी रूपी अमूल्य धनकी रक्षा संयमके साथ करते हैं, वे ही संसारमें स्वयं सुखी रहते हैं और सुयोग्य संतान उत्पन्न करके देश तथा जातिकी प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं। नहीं तो स्वयं रोगी होकर और कायर, कुरूप, रोगी और निकम्मी सन्ततिसे देशको रसातल पहुँचानेका कारण होते हैं। स्त्रियोंके सतीत्व, लज्जा और नीतिमत्ताकी जरूरतोंको पुरुषोंके सदाचार, लज्जा और नीतिमत्तासे विरुद्ध दूसरी तरहकी समझना एक बड़ी संगतिहीन बात है। फिर भी यह दोष पुरुषोंमें भरा पड़ा है। पुरुष-समाज आधी जनता—स्त्री-समाज—को अपनी सेवा-शुश्रूषा और भोग-विलासका साधन समझे बैठा है! इस दशामें यदि स्त्रियाँ स्वतः सावधान होकर अपने सुधार और उद्धारके लिए तय्यार न हों तो अभीष्टकी सिद्धि कठिन और देरसे होगी। अब समय आ गया है कि स्त्रियाँ अपने सुधारके साथ-साथ पुरुष-समाजकी शिक्षिका बनें, और उसे नीतिमत्ता, समाजिकता और प्रेमसे रहना सिखलावें।

विवाह करनेमें युवतियोंको, और जहाँ युवतियोंको मुँह खोलना असम्भव हो वहाँ उनके माता-पिताओंको, चाहिए कि वे वरके पसन्द करनेमें उसके धन, कुलीनता, सामाजिकस्थिति और प्रतिष्ठाकी अपेक्षा वरके आचार-व्यवहार और शारीरिक स्वास्थ्यपर ज़्यादा ध्यान दें। आचार-भ्रष्ट चतुर, कुमार्गी विद्वान, रोगी कुलीन और मन तथा शरीरका गन्दा धनिक, ये किसी कामके नहीं होते। मानव-शरीरके रोगी, कदाचारी दम्पति संसारको वांछनीय फल देकर सुखी नहीं बना सकते। यदि आचरण-भ्रष्टा महिला जीवन-संगिनी बननेके योग्य नहीं होती, यदि वह उत्तम गृहिणी नहीं हो सकती, तो आचरणहीन पुरुष भी सद्गृहस्थ नहीं हो सकता। दोनों ही दूर रखनेके लायक हैं। पुरुषोंके दोषोंपर पर्दा डालना और स्त्रियोंके ही

दोषोंको सामने रखना अत्याचार है। इस प्रकारके अत्याचारोंसे समाजका कल्याण असम्भव है, लेकिन आजकल पुरुष अपने अधिकारके मदसे पागल और निकम्मे हो चुके हैं। यह काम स्त्रियोंका है कि अपने अन्तरस्थ मातृ-शक्तिको उद्बोधित करके पुरुषोंको मनुष्यताकी शिक्षा दें, और ऐसी सन्तति पैदा करें, जो शारीरिक और मानसिक व्याधियोंकी शिकार न हो सके।

अकसर युवतियाँ विवाह होनेपर अपने पतियोंके दोषोंको स्वयं ग्रहण कर लेती हैं। वे उनकी नक़ल करके सिगरेट, तम्बाकू और नशे आदिका स्वयं सेवन करने लगती हैं। ऐसी स्त्रियाँ अपनी पुरानी शारीरिक और मानसिक गुलामीके बन्धनोंको और दृढ़ करनेवाली हैं। वे अपना और देश तथा जातिका अपकार ही करती हैं।

स्त्रियाँ कह सकती हैं कि हम लोगोंने बहुधा बुराइयोंका तीव्र विरोध किया, कर्तव्य कार्योंके लिए घोर आन्दोलन किया, स्वतन्त्रताके लिए तुमुल युद्ध किया; लेकिन पुरुषोंके कानपर जूँ तक नहीं रेंगी, इसलिए वे अब सुधारकी आशाके परिकोटेके बाहर निकल गये। यह बात कुछ अंशमें ठीक है, पर नारियोंमें निराशावाद जन्मसे नहीं होता, इसलिए वे यह कहकर ही चुप नहीं बैठ सकतीं। वे अपनी सन्तानको—भावी पुरुष-समाजको—अपने मनके अनुकूल बनानेमें स्वतंत्र हैं, तथा अपने स्नेहके अंकुशसे वर्तमान पुरुष-समाजपर भी महान् प्रभाव डाल सकती हैं, इसलिए उन्हें जाति-सुधारका बीड़ा उठाना चाहिए। वे अवश्य सफल होंगी।

अब तक सम्भवतः स्त्रियोंने अपनी प्रेम-शक्तिका पूरा-पूरा अनुभव नहीं किया है। प्रेम सबसे बड़ा बल है। प्रेम-बलसे स्त्रियोंने बड़े-बड़े धनुर्धारियोंको क्षणमें बिना अस्त्र-शस्त्रके जीत लिया। एक समय रोममें मचे हुए महासमरको स्त्रियोंने अपनी कोमल वाणियोंसे क्षण-भरमें शान्त कर दिया था। आज भी यह बात सम्भव है। माताओं, बहनों, और गृहणियोंके ज़रा ध्यान देने और आत्म-संयमके साथ रहकर पुरुषोंके सुधारका प्रयत्न करनेकी ज़रूरत है। फिर विजय निश्चय है। पहले दो लेखोंमें बतलाया जा चुका है कि स्त्रियाँ शारीरिक गठनमें पुरुषोंसे अधिक विकसित हैं। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे वे पुरुषोंसे किसी प्रकार कम नहीं हैं। यही कारण है कि हमें उनकी जीत होनेका दृढ़ विश्वास है।

भारतके पतनका प्रधान कारण लड़कियोंको दान कर देने, दे डालने और बेच देनेकी चीज़ समझना है। जो वस्तु पशु या जड़ पदार्थोंकी तरह बेची या दे डाली जा सकती है, उसकी प्रतिष्ठा नहीं रह सकती। कितने ही कुलीनोंमें बहुतसा धन लेकर वर कन्याका पाणि-ग्रहण करता है, इसलिए भी स्वार्थी धन-लोलुप कुलीन पुरुषोंमें स्त्रियोंकी क़दर नहीं होती। वे बहुधा चाहते हैं कि स्त्री मर जाय, तो फिर नई स्त्री और हरामका धन हाथ आवे। इन दोनों बातोंमें स्त्री-जातिका घोर अपमान होता है। स्त्रियोंको जान लेना चाहिए कि उनका पहला काम इन दोनों प्रथाओंको मिटाना है। यदि पिता धन लेकर या दहेज देनेका इकरार करके विवाह करते हों, तो स्त्रियोंको ऐसे विवाहको सम्पन्न न होने देना चाहिए। विवाह कैसा भी हो, वर और कन्याकी अनुमतिका प्राधान्य होना ज़रूरी है। इसके लिए महिलाओंकी ओरसे आन्दोलन होना चाहिए।

यद्यपि हम देखते हैं कि पुरुषोंकी क्रूरता, अन्याय, अत्याचार और भोग-लोलुपताके कारण स्त्रियोंका वैवाहिक जीवन बहुधा जितना सुखी होना चाहिए, उतना नहीं होता, फिर भी नवयुवतियोंमें विवाहकी चाह और उत्साह देखा जाता है। उनके मनोंमें वैवाहिक जीवनके सुखकी कल्पनाके हवाई क़िले वैसे ही बना करते हैं, जैसे माता अपने गोदके बच्चेके जवान होनेके बादके सुखोंकी आशामें फूली नहीं समाती, इसीलिए इस विषयपर भी दो-चार पंक्तियाँ लिखना ज़रूरी समझता हूँ।

जिनमें बहुविवाह होता है, ऐसे सभ्य कहलानेवाले महा असभ्य लोगोंको छोड़कर बाकी संसारके लोगोंमें—यहाँ तक कि जंगल और पहाड़ोंमें रहनेवाले लोगोंमें भी, जिनको

हम असभ्य कहकर पुकारते हैं—एक ही विवाहकी प्रथा है। नर हो या नारी, पहले उसके मनमें एक साथी पानेकी इच्छा या कामना पैदा होती है, और यह स्वाभाविक भी है। यदि यह साथी ठीक प्रेमका सम्मान करनेवाला मिलता है, तो प्रारम्भिक उत्साह और उत्फुल्लता स्थिर रहती है और विवाह सफल होता है, अन्यथा वैवाहिक जीवन असफल हो जाता है। असफल विवाहसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह भी बहुत उच्चकोटिकी नहीं बन सकती। इसके अनेक कारण हैं, जो हम अपने नित्यके अनुभवसे जान सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सन्तान माता-पिताके प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ़ करनेवाली होती है, फिर भी वह माता-पिताके मानसको एकदम सदाके लिए नहीं बदल सकती।

अदूरदर्शी व्यभिचारी पुरुष अपनी दुष्टतासे पत्नीका प्रेम खो बैठता है। जो अपना सारा प्रेम अपनी पत्नीको समर्पण नहीं कर सकता, उसे भी पत्नीके पूरे प्रेमकी आशा न करनी चाहिए। व्यभिचारी शक्तिहीन हो जाता है, इसलिए भी पत्नीका पूर्ववत प्रेमपात्र नहीं रह जाता।

स्त्री और पुरुषका अज्ञान उनके पारस्परिक प्रेम-सम्बन्धमें बहुधा बाधक होता है, इसलिए वे दूसरोंकी ओर दृष्टिपात करने लग जाते हैं। बहुधा बिना समझे-बूझे दरिद्र लोग विवाह कर बैठते हैं और अपनी स्त्री तथा सन्ततिका पालन-पोषण नहीं कर पाते। घरमें कलह विराजा करती है, इससे भी वैवाहिक जीवन असह्य और कटु हो जाता है।

अकसर स्त्री और पुरुष बराबरीके साथ मित्रवत प्रेम-पूर्वक न रहकर एक दूसरेपर हुकूमत करना चाहते हैं, इसलिए भी वैवाहिक जीवन दुखमय होते देखा गया है। इस अपराधका अपराधी अकसर पुरुष ही देखा जाता है। पुरुष स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताकी कुछ परवा नहीं करता, अपने आरामके आगे उसके आरामको गौण और बहुधा गैर-जरूरी मान लेता है। इससे मैत्री बहुत दिन नहीं चलती और जीवन दुखी हो जाता है, परन्तु बहुतसी स्त्रियाँ भी इस अपराधसे बरी नहीं हैं।

नवयुवक और नवयुवतियाँ विवाह करनेके पहले अपनेको वैवाहिक जीवनके लिए तय्यार नहीं करतीं, न उन स्वत्वों और दायित्वोंकी ओर गम्भीरताके साथ ध्यान देती हैं, जो वैवाहिक जीवन उनके आगे पैदा करनेवाला है। जैसे नये बैलकी जोड़ीको जब हम जबरदस्ती जोत देते हैं, तो वह तुड़ाकर भागनेकी कोशिश करती है, इसी तरह बिना सोचे-समझे बिना तय्यारीके विवाह-बन्धनमें बँधे दम्पत्ति अपने जीवनको शीघ्र ही दुखमय समझने लगते हैं, और पीछा छुड़ानेकी फिक्रमें पड़ जाते हैं।

इसी प्रकार और भी अनेक बातें हैं, जिनपर विचार करना अनुभवशक्ति-सम्पन्न नवयुवतियों और नवयुवकोंका काम है। कामके वेगसे प्यार करना प्यार नहीं है। केवल क्षणिक वासनाकी परितुष्टिके आगे भावी स्वत्वों और दायित्वोंको भूलकर विवाह करना विवाह नहीं है, पागलपन है, व्यभिचार है। मुझे याद पड़ता है कि एक स्थानपर अंग्रेज़ महाकवि शेक्सपीयरने कहा है—"नवयुवकोंके नेत्रोंमें प्रेम होता है, हृदयमें नहीं" यह बात बहुत ठीक है। बिना हार्दिक प्रेमका विवाह निस्सन्देह बहुत दुखदायी होता है।

भारतमें अनेक बुड्ढे बुड्ढे इसीलिए ब्याह कर लेते हैं कि स्त्री आकर उनकी सेवा करेगी। इनकी समझमें दस-पन्द्रह रुपया मासिकके नौकरकी आवश्यकता रोटियोंपर रहकर काम करनेवाली विवाहितासे पूरी हो सकती है। प्रत्यक्षमें उन्हें सस्ता नौकर तो अवश्य मिल जाता है, पर वह उन्हें अन्तमें बहुत महँगा पड़ता है।

इस छोटेसे लेखमें जो थोड़ीसी बातें कही गई हैं, मुझे आशा है कि उनपर मेरी विवाहिता या विवाहके लिए उत्सुक बहनें गहरी दृष्टि डालेंगी, और इस बातकी कोशिश करेंगी कि उनका वैवाहिक जीवन सदाके लिए सुखी हो।

(ग)

हमारा अनुभव हमें बतलाता है कि जितना हमारी बहनें और बेटियाँ हमें प्यार करती हैं, उतना हमारे भाई और बेटे प्यार नहीं करते। हमारे आर्थिक कष्टोंसे, शारीरिक रोगोंसे,

मानसिक वेदनाओंसे हमारी बहनें जितनी दुखी और चिन्तित होती हैं, और जितनी सेवा, सुश्रुषा तथा सहायता करती हैं, उतना भाई नहीं करते। बहनें और बेटियाँ अपने घरोंमें दूर बैठी हुई अपने पिता और भाईके दुःखका स्मरण करके घुलती रहती हैं। बहुधा अपने घरोंसे छिपाकर आर्थिक सहायता भी करती पाई जाती हैं, किन्तु सुखी भाई ग़रीब बहनोंकी याद करता, उनके दुखसे कातर होता और आर्थिक सहायता देता अपेक्षाकृत बहुत कम देखा जाता है, इसलिए मेरा प्रेम बहनों और बेटियोंके प्रति अधिक होना ही उचित है। यह समझमें नहीं आता कि जो पुत्र और पुत्री, भाई और बहन एक ही माताके पेटसे उत्पन्न हुए, एक ही गोदमें पाले-पोसे गये, उनके अधिकार समान क्यों न हों। हमारे यहाँ तो बहन-बेटियोंका कोई भी अंश पिता या भाईकी सम्पत्तिमें नहीं रखा गया। माताके स्त्री-धनमें उनका तिल भर अधिकार जो मनु आदिके समयमें था, वह भी आजकल भाइयोंने छीन लिया है। आजकल स्त्री-धन भी पुत्र ही हज़म कर बैठते हैं, पुत्रियोंको कोई पूछता ही नहीं।

इन बेचारियोंका सास-ससुरके घरमें भी सिवा अन्न-वस्त्रके और किसी प्रकारका कोई साम्पत्तिक अधिकार नहीं है। उनका स्त्री-धन भी आजकल अक्षुण्ण नहीं रहने पाता। उनकी प्रतिष्ठा नहीं की जाती। वे अपने स्त्री-धनमें से यदि कुछ कभी किसी काममें लगाती हैं, तो वह भी पुरुषोंकी दृष्टिमें खटकता है। यह दशा साधारणतः हमारी बहनोंकी है।

बहनोंको चाहिए कि अपने अधिकारों और मान-मर्यादाकी रक्षाके लिए कमर कसकर खड़ी हों। क्या स्त्री-समाजके लिए यह बदनामीका कारण नहीं है कि घरोंमें लड़कियोंको पढ़ानेके लिए विधवा-आश्रमोंके प्रबन्धके लिए, लड़के और लड़कियोंकी पाठशालाओंमें पढ़ाने और प्रबन्ध करनेके लिए हमें महिलाएँ न मिलें, किन्तु दुष्टों और दुराचारियोंकी पापमयी काम-वासनाकी तृप्तिके लिए स्त्रियोंके बाजार सर्वत्र देखनेमें आवे।

इसमें सन्देह नहीं कि सहस्रो वर्षकी विदेशियोंकी गुलामी और धन-प्रधान आलस्यसत्ताक समाज इन बुराइयोंके कारण हैं। साथ ही भारतवासियोंकी कायरता भी इन दोषोंके लिए एक बड़ी हद तक ज़िम्मेवार है। हमारे आधुनिक धर्म-ग्रन्थ और धर्म-याजक भी इस पापके अधिकांशके भागीदार हैं। तो भी बहनोंकी ज़िम्मेवारी कुछ कम नहीं है। उनमें अन्य देशकी बहनोंकी तरह अपने अधिकारोंके लिए साहस होना चाहिए।

वह देश बहुत पतित देश है, जहाँ पुरुषोंकी अनुचित इच्छा पूर्तिके लिए वेश्याओंके बाज़ार हों। वह सरकार अत्यन्त पतित सरकार है, जिसके शासन-सीमामें फौजके सिपाहियोंके लिए वेश्याएँ रखी जायँ, और उनके द्वारा सेनामें रोग फैलाया जाय! वह धर्म्म अत्यन्त पतित धर्म है, जो इस प्रथाका प्रत्यक्ष या परोक्ष-रीतिसे समर्थन करे।

इन पतिता बहनोंमें कई प्रकारकी पाई जाती हैं।

कुछ निखट्टू लोगोंकी स्त्रियाँ हैं, जो अन्न-वस्त्रके लिए ही अपनी लज्जा बेच बैठी हैं। माता-पिताकी मूर्खतासे कुछ अयोग्य व्यक्तियोंको ब्याही हुई लड़कियाँ पाई जाती हैं। उनमें बहुत बड़ी संख्या उन विधवाओंकी मिलती है जिनको हिन्दूधर्म ध्वजियोंने कम उम्रमें विधवा बनाकर बिठाला दिया और दूसरा विवाह नहीं होने दिया है। वे अवसर पाकर निकलीं और इस दुराचारमें प्रवृत्त हो गईं।

निःसन्देह इनमें कुछ स्वभावसे ही ऐसी दुर्वृत्त स्त्रियाँ हैं, जो पुरुषोंकी भाँति अपने मनको वशमें रखनेमें असमर्थ हो गई, और जिन्हें नवीनतामें ही आनन्द प्रतीत होने लगा।

लेकिन केवल थोड़ी-सी स्वाभाविक कुलटाओंके सिवा शेष ९८ फीसदी वेश्याओंके उत्पन्न करनेमें क्या वस्तुतः हमारा सीधा हाथ नहीं है? फिर भी दुःख है कि हम इस बुराईको दूर करनेके बदले आज तक बढ़ाते ही जाते हैं! आज भी पूर्वके ब्राह्मण कुलीनोंमें, राजाओं और जमींदारोंमें अनेक विवाहकी प्रथाएँ हैं। राजाओंके विवाहमें बहुतसी दासियाँ दहेजमें आती हैं। उन सबका गुजर रनवासमें नहीं होता, सबका यथावत विवाह भी नहीं होता। वे सब रनवासमें सेवा चाकरी करनेके कारण भोग-विलास सीख जाती हैं, इसीसे वे *व्यभिचारकी वृद्धि करनेवाली* होती हैं। किसी भी नगरमें जहाँ राजधानी हो, हम जाकर देखेंगे *तो दुराचारिणी* स्त्रियोंकी संख्या बहुत ज्यादः मिलेगी। इन सबका अपराध निस्सन्देह पुरुषोंपर है, परन्तु इनके होते हुएभी स्त्री जातिकी बदनामी होती है, स्त्री जातिका अपमान होता है, इसलिए स्त्री समाजको उपर्युक्त सारे कारणोंको मिटानेके लिए तय्यार होना चाहिए, जिससे बहनें पतित न हों, और पतिता बहनोंके सुधार और उद्धारके लिए भी आन्दोलन करना चाहिए।

सम्पादकीय विचार

स्वाधीनता-संग्राम और हमारा कर्तव्य

"And so your activity in the Transvaal, as it seems to us, at the end of the world, is the most essential, the most important of all the work now being done in the world, and in which not only the nations of the Christian, but of all the world will unavoidably take part."

७ सितम्बर सन् १९१० को रशियन ऋषि टाल्सटायने महात्मा गान्धीजीको अपने पत्रमें यह बात लिखी थी— "ट्रान्सवालमें जो कार्य आज आप कर रहे हैं, वह हम लोगोंको, जो दुनियाँके इस छोरपर रहते हैं, संसारमें सबसे अधिक आवश्यक कार्य प्रतीत होता है। एक समय आवेगा, जब संसारकी ईसाई जातियोंको ही नहीं, बल्कि अन्य सभी जातियोंको भी इसमें भाग लेना पड़ेगा।"

ऋषिवर टाल्सटायकी यह भविष्यवाणी सम्भवतः निकट कालमें ही सत्य होगी। जो संग्राम महात्माजी छेड़नेवाले हैं, उसका परिणाम संसार-व्यापी होगा। हम लोग अभी इस संग्रामके महत्त्वको पूर्णतया नहीं समझते, पर समय आवेगा, जब कि संसारके इतिहासज्ञ इस संग्रामका विवरण गौरवके साथ लिखेंगे और पढ़ेंगे। एक ओर पाशविक शक्ति-सम्पन्न ब्रिटिश साम्राज्य है और दूसरी ओर डेढ़ पसलीके महात्मा गान्धीजी। आजसे आठ-नौ वर्ष पहले जो *विद्युतमय वायुमण्डल देशमें दीख पड़ता था, वही आज फिर* दीख पड़ने लगा है। महात्मा गान्धी इस युद्धका धार्मिक दृष्टिसे संचालन करेंगे। आठ वर्ष पहलेका साबरमतीका वह प्रातःकाल हमें अभी तक नहीं भूला, जब महात्माजी बारडोली जानेवाले थे। बारडोलीमें सत्याग्रहकी तय्यारियाँ हो चुकी थीं। देशकी आँखें गुजरातकी ओर लगी हुई थीं। देशभक्तोंके दिल उछल रहे थे, और मातृभूमिको स्वाधीन देखनेके मनोहर चित्र उनके हृदयपटपर खिंच रहे थे। बारडोली जानेके पहले प्रातःकालमें साढ़े चार बजे महात्माजीने जो उपदेश दिया था, उसका सार हम अपनी पुरानी नोटबुकसे उद्धृत करते हैं :—

"कल मैं प्रोफेसर वसवानीजीकी एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें एक दृष्टान्त आया है। जिस समय महाराणा प्रताप अपनी मृत्यु-शय्यापर लेटे हुए थे, उस समय उनका चेहरा बड़ा रंजीदा और चिन्ता-पूर्ण था। उनके सरदारोंने उनसे पूछा—'महाराज, आपको क्या चिन्ता है?'

"महाराणाने कहा—'मुझे चिन्ता यही है कि आप लोग मेरे पीछे कहीं ऐश-आराममें न पड़ जायँ, और अपनी स्वाधीनताको न खो बैठें।' राजपूतोंने महाराणा प्रतापको विश्वास दिला दिया कि नहीं, हम लोग भोग-विलासमें नहीं पड़ेंगे। जब महाराणाको यह आश्वासन मिला, तब वह शान्त हुए, और उनके मुखपर वही प्रसन्नता और तेज झलकने लगा। महाराणाकी मृत्युके बाद राजपूत लोग अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ नहीं रह सके। कोई परलोककी बात नहीं जानता, पर यदि कोई जानता, तो कह सकता कि महाराणा प्रतापकी आत्मा स्वर्गमें अवश्य पूर्ण आनन्द न पाती होगी।

"महाराणा प्रताप तो ऐसे वीर हो गये हैं कि संसारमें उनके समान देश-भक्त बहुत कम हुए हैं, लेकिन उनके उद्देश्यसे इस समय हम लोगोंका उद्देश्य बहुत बड़ा है। वह एक राज्यकी स्वाधीनताके लिए लड़ रहे थे, पर हम लोग तो सम्पूर्ण भारतवर्षकी स्वतंत्रताके लिए लड़ रहे हैं।

"मैं आज बारडोली जाऊँगा। पहले तो जब कभी मैं जाता था, महीने डेढ़ महीने बाद लौट आता था, लेकिन इस बार मैं अपने कामको समाप्त किये बिना नहीं लौटना चाहता। वैसे तो कौन जानता है कि मुझे कब यहाँ लौटना पड़े, क्योंकि मालवीयजी अभी 'राउंड टेबिल कान्फ्रेन्स'का प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु मेरी इच्छा यही है कि जिस कामको करनेके लिए मैं बारडोली जा रहा हूँ, उसे खतम करके लौटूँ। महादेवने जेलसे लिखा था कि जब ब्रिटिश सरकारने जग़लूलपाशाको मिसरसे देश-निकाला दे दिया, तब संभव है कि भारत-सरकार आपको भी देश-निकाला

दे दे। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि सरकार ऐसा करेगी, पर यदि वह ऐसा करे भी, अथवा यदि मैं बारडोलीमें ही गोलीसे मारा जाऊँ, तो मुझे अन्तिम उस समय यह सन्तोष होना चाहिए कि आप लोग (आश्रम-निवासी) अपने कर्तव्यका पालन कर रहे हैं। एक छोटी-सी चीजसे बढ़ाकर यह बना-बनाया आश्रम मैं आपको सौंपता हूँ। आप लोग संयम-पूर्वक रहकर इसकी उन्नति करें—व्यक्तिगत उन्नति और सामुदायिक उन्नति।"

जिस समय गान्धीजीने अपना कथन समाप्त किया, उस समय बिलकुल सन्नाटा था। मानो साबरमतीका जल मंद गतिसे बहते हुए धीरे-धीरे 'संयम'-'संयम' कह रहा था, चिड़ियोंकी चहचहाहट 'संयम' के उपदेशसे परिपूर्ण थी। यदि Wireless broad-casting (बेतारके तार) के द्वारा महात्माजीका वह महत्त्वपूर्ण 'संयम'-सम्बन्धी उपदेश संपूर्ण देशमें फैला दिया जाता, यदि हम लोग, यदि देशवासी, यदि चौरीचौरावाले 'संयम' से काम लेते, तो आज हमारे देशका इतिहास ही पलट गया होता, पर ऐसा नहीं होना था। हम लोगोंके असंयमसे गान्धीजीको असफलता मिली।

हम लोगोंका कर्तव्य है कि इस बार हम पूर्ण संयमसे काम लें। खास तौरपर पत्रकारों तथा समाचारपत्रोंके सम्पादकोंका कर्तव्य है कि वे इस अवसरपर अहिंसात्मक वायुमण्डल उत्पन्न करनेके लिए भरपूर प्रयत्न करें।

महात्माजीने इस बातके लिए सर्वसाधारणसे अपील की है, और हम सबको कम-से-कम इस हद तक उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। आश्चर्य तो इस बातका है कि अहिंसाके पक्षपाती पत्र हिंसावादियोंके विषयमें प्रशंसामय लेख छापा करते हैं। महात्माजी एक ऐसा प्रयोग कर रहे हैं, जिसकी ओर संसारकी आँखें लगी हैं। जो कोई इस प्रयोगके प्रतिकूल वायुमण्डल तय्यार करता है, वह सचमुच देशद्रोहका अपराधी है।

लिबरल लोगोंसे हमें एक बात कहनी है वह यह कि यदि अबकी बार उन्होंने सरकारका साथ दिया तो वे न घरके रहेंगे न घाटके।

जिन लोगोंको इस पुण्य-संग्राममें भाग लेनेका सौभाग्य प्राप्त हो, उनसे इतनी प्रार्थना है कि वे उन सभी आदमियोंको, जो उनसे मतभेद रखते हैं अथवा उनके विरोधी हैं, बेईमान, कायर अथवा डरपोक न समझ बैठें। संसारमें भिन्न रुचि और भिन्न मनोवृत्तिके मनुष्य सदासे ही रहे हैं और रहेंगे। पूर्ण एकता तो केवल मुर्दोंमें ही हो सकती है। यदि इस संग्राममें भाग लेनेवाले लोग अपने विरोधियोंके प्रति अथवा उन निर्बलोंके प्रति, जिनमें इस युद्धमें सम्मिलित होनेकी योग्यता या साहस नहीं है, उदारतासे काम लेंगे, तो वह समय शीघ्र ही आवेगा, जब जेल जानेके लिए सहस्रों ही आदमी उद्यत हो जावेंगे। इस समय स्वतन्त्रता देवी पवित्रसे पवित्र आत्माओंका बलिदान चाहती है। स्वयं महात्माजी भी संख्याकी अपेक्षा गुणोंको अधिक महत्त्व देते हैं। दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रहके दिनोंमें जब गान्धीजीसे मि० गोखलेने पूछा था कि तुम्हारे सच्चे साथियोंकी संख्या कितनी है, तो उन्होंने जवाब दिया था—"सोलह।" इन सोलह आदमियोंके दृढ़ विश्वासके कारण आगे चलकर सोलह हजारके भी ज्योढ़े भारतीय दक्षिण-अफ्रिकामें जेल जानेके लिए उद्यत थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि वहाँ प्रवासी भारतीयोंकी कुल संख्या डेढ़ लाख है। आजसे पन्द्रह-सोलह वर्ष पहले मि० गोखलेने कहा था—"गान्धीजी मिट्टीसे वीर पुरुष तय्यार कर सकते हैं (Gandhi can make heroes out of clay)।" सोलह वर्षमें महात्माजीकी वह अद्भुत शक्ति घटी नहीं, बढ़ी है, और यदि देशवासी उन्हें उपयुक्त वायुमण्डल तय्यार करनेमें सहायक होंगे, तो शीघ्र ही हमारी मातृभूमि दासताकी घोर अन्धकारमय रात्रिसे निकलकर सहस्र-रश्मि-स्वाधीनता-सूर्यके दर्शन करेगी।

—

आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका आगामी अधिवेशन गोरखपुरमें तारीख २,३,४ मार्चको होगा। 'प्रताप'-सम्पादक श्रद्धेय श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थी इस अधिवेशनके सभापति होंगे। सम्मेलनके अवसरपर जो प्रस्ताव उपस्थित किये जायँगे, उनकी सूची समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो गई है। उनके विषय निम्न-लिखित हैं:—

(१) प्रवासी भारतीयोंमें हिन्दी-प्रचार।

(२) विश्वविद्यालयोंकी उच्च कक्षाओंमें हिन्दीको स्थान।

(३) राष्ट्रीय, जातीय, सामाजिक, धार्मिक तथा व्यापारिक संस्थाओंमें हिन्दी-भाषा तथा नागरी लिपीका प्रयोग और प्रचार।

(४) संयुक्त-प्रान्तीय बोर्ड-आफ्-रेवेन्यूके एक सरकूलरका विरोध।

(५) नरेशों, ज़मींदारों तथा रईसोंसे हिन्दी-भाषा तथा नागरी लिपीके प्रचारका अनुरोध।

(६) घासलेटी साहित्यका विरोध।

(७) व्यापारियोंसे अनुरोध कि वे अपने बही-खाते नागरी लिपीमें रखें।

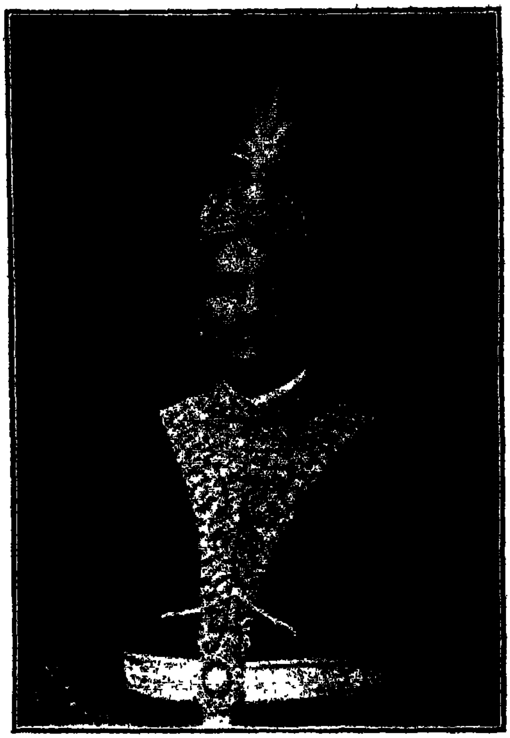
(८) हिन्दी-प्रचारकों तथा शिक्षकोंकी सूची तय्यार करना।

(९) विद्यापीठके भावी संगठनके लिए कमेटीकी नियुक्ति।

(१०) सम्मेलनकी नियमावलीमें संशोधन करनेके लिए कमेटीकी नियुक्ति।

शेष प्रस्ताव रिपोर्ट, अनुमान-पत्र, पदाधिकारियोंका चुनाव तथा बीसवें अधिवेशनके विषयमें हैं।

इन प्रस्तावोंमें कई तो ऐसे हैं, जिनके विषयमें विशेष मतभेद नहीं हो सकता। प्रस्ताव नं० १,२,३,४,५,७,८ के विषयमें मतभेदकी गुंजायश बहुत कम है, अतएव इन विषयोंपर लम्बे-लम्बे भाषण दिलाकर प्रतिनिधियोंका समय नष्ट करना अनुचित होगा। सम्मेलनके सभापतिजीसे हमारी साग्रह प्रार्थना है कि वे इस बार कुछ ऐसी कार्रवाई करें, जिससे प्रतिनिधियोंके समयका अधिक-से-अधिक सदुपयोग हो। सभापतिके चुनावके समय जो लम्बी-लम्बी स्पीचें हुआ करती हैं, वे अब बन्द होनी चाहिए। आशा है कि स्वागतकारिणीके सभापति महोदय इस बातपर कृपा-पूर्वक ध्यान देंगे। बजाय इसके कि प्रतिनिधियोंको नागरी लिपीकी महिमा बतलानेमें समय नष्ट किया जाय (क्योंकि यह महिमा तो वे जानते ही हैं), यह कहीं अच्छा होगा कि उन्हें विशेष-विशेष विषयोंपर अच्छे वक्ताओंके भाषण सुनाये जायँ।



(राजा बहादुर) राजा व्रजनारायण राय
स्वागताध्यक्ष

सम्मेलनके कार्यमें जो शिथिलता आ गई है, उसके विषयमें विचार करनेके लिए और आपसमें परामर्श करनेके लिए उपस्थित सदस्योंको काफ़ी समय मिलना चाहिए। सम्मेलनका संगठन क्या हो, इस विषयमें अधिकार-पूर्वक सम्मति देनेकी योग्यता हममें नहीं है, पर एक साधारण प्रतिनिधिकी हैसियतसे हम इतना अवश्य कहेंगे कि वर्तमान संगठन कुछ अंशोंमें दोष-पूर्ण सिद्ध हुआ है। वैसे स्थायी समितिके सदस्य तो प्रत्येक प्रान्तसे चुने जाते हैं, पर कार्यत: सम्मेलनकी बागडोर मुख्यतया प्रयागवालोंके ही हाथमें रहती है। प्रयागके आस-पास काशी, कानपुर तथा लखनऊ आदिके सदस्य भी कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य डाल सकते हैं, पर मुख्य भार आकर पड़ता है प्रयागवालोंपर।

बाहरवालोंको न तो इतना अवकाश मिलता है, और न उनके पास इतने साधन होते हैं कि वे प्रयाग जाकर मीटिंगमें सम्मिलित हो सकें।



श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थी
सभापति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

यह दुर्भाग्यकी बात है कि प्रयागस्थित हिन्दी-प्रेमियोंमें आपसमें काफी मतभेद और शायद वैमनस्य भी है। वर्तमान परिस्थिति ऐसी है कि सम्मेलनके साल-भरके कार्यपर प्रयाग तथा उसके आसपासके नगरोंके सदस्योंको छोड़कर बाक़ी सदस्योंका विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता। सुविधाके लिए हम प्रयाग, काशी इत्यादिके रहनेवालोंको सम्मेलनके 'घरवालों'के नामसे और दूरके रहनेवालोंको 'बाहरवाले' के नामसे पुकारेंगे। वैसे सम्मेलन हम सबका समान रूपसे है, और उपर्युक्त शब्दोंका प्रयोग हमने केवल समीपता तथा दूरी दिखलानेके उद्देश्यसे किया है। अब सवाल यह है कि जब घरवालोंमें आपसमें इतना वैमनस्य बना हुआ है और काम उन्हीं घरवालोंको करना पड़ेगा, तो बाहरवाले मंत्रिमंडलके चुनावके दलदलमें क्यों फँसें? अपने पिछले अनुभवसे हमें तो यही उचित प्रतीत होता है कि बजाय इसके कि हम लोग मंत्रि-मण्डलके प्रत्येक सदस्यको चुनें, यह कहीं अच्छा होगा कि जिस किसीपर हमारा दृढ़ विश्वास हो, उन्हें प्रधान मंत्री चुन लिया जाय, और उन्हें इस बातका अधिकार दिया जाय कि वे अपने मंत्रिमंडलको स्वयं ही बना लें। बाहरवालोंके पास न तो इतना समय है और न सामर्थ्य कि वह घरवालोंके पारस्परिक झगड़ोंमें पड़ें। पिछली बार हमने ऐसा करके बुद्धिमानी की या मूर्खता, इस विषयमें हमें अब सन्देह होने लगा है, और इसलिए हमने यह निश्चय कर लिया है कि इस बार इस झगड़ेमें न पड़ेंगे।

यह प्रश्न भी विचारणीय है कि सम्मेलनका वर्तमान जनसत्तात्मक रूप वर्तमान परिस्थितिमें उपयोगी है या नहीं। बजाय इसके कि सम्मेलनका कार्य ऐसे सौ सदस्योंके हाथमें रखा जाय, जिनमें ८० कभी साल-भरमें एक बार भी स्थायी कार्यालयपर नहीं जाते, यह कहीं अच्छा होगा कि सम्मेलनकी बागडोर २० आदमियोंके सुपुर्द कर दी जावे। ये बीस आदमी ऐसे होने चाहिए कि जिनमें मूल नीतिके विषयमें मतभेद न हो। हाँ, विवरणकी बातोंमें भले ही वे एक दूसरेसे काफी विभिन्न विचारोंके हो सकते हैं। ये बीस आदमी प्रयाग, काशी, कानपुर तथा लखनऊ और आसपासके नगरोंसे ही चुनने पड़ेंगे, क्योंकि बाहरवाले अधिक संख्यामें वहाँ नहीं पहुँच सकते।

सम्मेलनका सबसे अधिक उपयोगी विभाग परीक्षा-विभाग है, और हमें यह देखना चाहिए कि घरवालोंके पारस्परिक झगड़ोंके कारण इस विभागको कोई क्षति न पहुँचे। परीक्षा-विभागके कार्यकी उपयोगिताका अन्दाज़ पाठक इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित श्री दयाशंकरजी दुबेके लेखसे कर सकते हैं।

जिस तरह कांग्रेसमें आल-इण्डिया कांग्रेस-कमेटी और वर्किंग-कमेटी है, उसी तरह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें स्थायी

समिति और कार्यकारिणी-समिति बना देनेसे कार्य करनेमें अधिक सुविधा होगी। यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि विधानमें परिवर्तन किये बिना इस प्रकारका सुधार किया जा सकता है या नहीं ? हमारी समझमें विधान इत्यादि कार्यकी सुविधाके लिए हैं, और संकटपूर्ण स्थितिमें यह आवश्यक और अनिवार्य है कि विधानके नियमोंका अक्षरशः पालन न किया जाय, बल्कि उनके आन्तरिक उद्देश्यको ध्यानमें रखकर कार्यको अग्रसर किया जाय।

सम्मेलनमें प्रभावशाली व्यक्तित्वका अभाव है। संस्थाएँ बहुधंधी आदमियोंसे नहीं चला करतीं। आज नागरी-प्रचारिणी-सभा काशीकी स्थिति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे कहीं अच्छी है, इसका मुख्य कारण यह है कि सभाको बाबू श्यामसुन्दर दासजी जैसे धुनके पक्के, अत्यन्त परिश्रमी और उत्कृष्ट प्रबन्धक प्राप्त हैं। सम्मेलनमें ऐसे व्यक्तियोंका सर्वथा अभाव है। प्रतिवर्ष इस बातकी आशा की जाती है कि श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन सम्मेलनको अपने हाथमें लेंगे, पर वह आशा निराशामें परिणत हो जाती है। श्री टंडनजीके प्रति हमारे हृदयमें बहुत श्रद्धा है, पर हम किसी भी संस्थाके लिए यह अत्यन्त हानिकारक समझते हैं कि वह किसी विशेष व्यक्तिकी आशामें अटकी रहे।

गोरखपुरमें सम्मिलित होनेवाले बाहरवालोंसे संक्षेपमें हमारी यह प्रार्थना है।

(१) प्रधान मन्त्रीका चुनाव करके उन्हें इस बातका अधिकार दे दें कि वे अपने साथी अन्य मन्त्री चुन लें।

(२) प्रधान मन्त्रीके पास यदि अधिक समय न हो, तो उन्हें एक सुयोग्य सहायक मन्त्री दिया जाय। यदि वे महाशय उचित रीतिसे अपना कर्तव्यपालन करें, तो उन्हें स्थायी सहायक मन्त्री या संयुक्त-मन्त्री बना दिया जाय।

(३) मन्त्रिमंडलके अतिरिक्त दस-पन्द्रह आदमियोंका चुनाव और कर दिया जाय, और वे लोग मिलकर कार्यकारिणी-समिति बना लें।

(४) परीक्षा-विभागकी ओर सबसे अधिक ध्यान दें। सम्मेलनका यह अत्यन्त उपयोगी विभाग है। इसे दलबन्दीसे बचानेके लिए भरपूर प्रयत्न किया जाय। इसका संगठन अधिक व्यापक बनाया जाना चाहिये। परीक्षा विभागका कार्य अब इतना बढ़ गया है कि वह सम्मेलनके मुकाबलेकी ही एक संस्था बन गई है। अब समय आ गया है कि सम्मेलनके अधीन उसे 'डोमीनियन स्टेटस' दे दिया जावे।

अन्तमें हम सम्मेलनके सभापति श्रद्धेय विद्यार्थीजीसे यह प्रार्थना करेंगे कि वे उसी व्यावहारिक ढंगसे काम लें, जिससे महात्मा गान्धीजीने इन्दौरमें काम लिया था। सम्मेलनका सारा कार्यक्रम समयपर हो। थोड़ेसे वक्तमें बहुतसे जल्से और मीटिंग ठूँस देनेकी प्रवृत्तिको रोक दिया जावे। मुख्य सवाल तो सम्मेलनमें नवीन जीवन-संचार करनेका है, बाकी सब गौण हैं। कितने ही प्रस्ताव तो इतने निर्विवाद हैं कि उन्हें सभापतिकी ओरसे रखकर समय बचाना उचित होगा। सम्मेलनके साथ जिन अन्य संस्थाओंके अधिवेशन हों, उनके कार्यकर्ताओंसे प्रार्थना करके इस प्रकार प्रोग्राम बनाया जावे कि प्रतिनिधियोंका समय नष्ट न हो।

देशकी वर्तमान राजनैतिक स्थितिमें श्री विद्यार्थीजीने, जो प्रादेशिक कांग्रेस-कमेटीके प्रधान भी हैं, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सभापतित्व स्वीकार करके यह बात सिद्ध कर दी है कि राजनैतिक उथल-पुथलके दिनोंमें भी हमें साहित्यिक कार्योंको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए। श्री विद्यार्थीजी प्रयागके निकट भी रहते हैं। यद्यपि उनके समयका अधिकांश 'प्रताप' तथा प्रान्तके राजनैतिक संगठनमें व्यय होगा, फिर भी उनसे यह आशा करना अनुचित न होगा कि वे सम्मेलनके संगठनको दृढ़ और व्यावहारिक बनानेके लिए भरपूर प्रयत्न करेंगे। राष्ट्रीय महासभाके कामके सिवा अन्य कोई भी कार्य सम्मेलनके कार्यसे अधिक महत्त्व नहीं रखता।

हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के सम्पादक श्रीयुत लक्ष्मणनारायणजी गर्देके सभापतित्वमें हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलनका अधिवेशन

भी गोरखपुरमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ ही होगा। हिन्दी-पत्रकारोंके संगठनके लिए कई बार प्रयत्न किया गया, पर वह सफल नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण सम्भवतः यह था कि जिन लोगोंने इस कार्यको अपने जिम्मे लिया, उन्होंने इसकी कठिनताका अनुभव नहीं किया। स्वयं हम भी एक बार ऐसी मूर्खता कर बैठे थे, इसलिए अब जिस किसीको यह कार्य सुपुर्द किया जाय, उसके साधन और सामर्थ्यका भी अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। खूब सोच-समझकर अगले वर्षका कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए। वह इतना नपा-तुला होना चाहिए कि तीन-चार आदमी मिलकर उसे अपने बल-बूतेपर पूरा कर सकें। उदाहरणार्थ, हिन्दी-पत्रकारोंकी सूची बनाना एक आवश्यक कार्य है, और यह विशेष परिश्रमके बिना हो भी सकता है। दूसरा कार्य यह होना चाहिए कि बम्बईकी 'आल इंडिया जर्नेलिस्ट ऐसोसियेशन' तथा कलकत्तेकी पत्रकार-समितिने जो कार्य अब तक किया है, उसके विषयमें उनसे पत्र-व्यवहार किया जावे। उनके अनुभवसे लाभ उठाया जावे। जहाँ तक हम जानते हैं, कलकत्तेकी पत्रकार-समिति बहुत कम काम कर सकी है। उसकी पिछली मीटिंगमें सम्मिलित होनेका अवसर हमें प्राप्त हुआ था। उस समय जो बातें हमें ज्ञात हुईं, वे वास्तवमें बड़ी निराशा-जनक थीं। उनसे यही प्रतीत होता था कि पत्रकारोंका ध्यान अपनी इस संस्थाकी ओर बिलकुल नहीं है। पत्रकार लोग अपनी संस्थाको कितना महत्त्व देते हैं और उसके प्रस्तावोंका कितना सम्मान करते हैं, उसके विषयमें एक घटना सुन लीजिए। कलकत्ता-कांग्रेसके अवसरपर 'अखिल भारतीय पत्रकार-सम्मेलन'की भी आयोजना की गई थी। सम्मेलनके प्रधान थे 'इंडियन डेली मेल'के सुयोग्य सम्पादक श्री नटराजन और स्वागतकारिणी-समितिके अध्यक्ष थे 'माडर्न-रिव्यू' तथा 'प्रवासी'के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय। इस सम्मेलनमें एक कमेटी बनाई गई थी, जिसको पत्रकारोंकी दशाकी जाँच करनेका काम सौंपा गया था। इस कमेटीने साल सवा सालमें क्या कार्य किया, इसका अभी तक हम लोगोंको कुछ पता नहीं! कमेटीके संयोजक श्री मृणालकान्ति बोस कहते थे कि कमेटीकी एक भी बैठक नहीं हो सकी। कमेटीमें बड़े-बड़े अंग्रेज़ी पत्रोंके धुरन्धर सम्पादक रखे गये थे। भला, उन्हें इतना अवकाश कहाँ कि वे इस ओर ध्यान दे सकें! प्रायः इन अंग्रेज़ी पत्रोंके सम्पादकोंकी दृष्टिमें देशी भाषाके पत्रकार तो उपेक्षणीय हैं। हमने स्वयं श्री नटराजनसे कहा था कि आप अपनी कमेटीमें श्री अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी और श्री बाबूराव विष्णु पराड़करके नाम रखिये, पर उन्होंने हमारे इस प्रस्तावकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। वर्नाक्युलर जर्नेलिज़्मका महत्त्व उनकी दृष्टिमें बहुत कम है। चूँकि ये अंग्रेज़ीवाले अकसर हम लोगोंको तुच्छ समझते हैं, इसीलिए हमारा भी कर्तव्य है कि अपना दृढ़ संगठन करके हम इन लोगोंको बतला दें कि हममें भी कुछ शक्ति है।

एक बात बड़े खेदकी है कि हमारे यहाँ भी जो प्रतिष्ठित पत्रोंके सम्पादक हैं, वे पत्रकार-संगठनके कार्यसे बिलकुल उदासीनसे प्रतीत होते हैं। पत्रकारोंमें जिनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है, जिन्हें इस बातका कोई अन्देशा नहीं कि हमारी नौकरी छूट जायगी, उनकी मनोवृत्तिमें और बेचारे उन पत्रकारोंकी मनोवृत्तिमें, जिनकी जीविका अनिश्चित-सी रहती है, अन्तर होना स्वाभाविक ही है। छुट्टी, वेतन-वृद्धि इत्यादिके सम्बन्धमें भी एकसे नियम प्रचलित नहीं हैं। इस विषयमें उप-सम्पादकोंकी शिकायत रहती है। एक बात और भी विचारणीय है, वह यह कि जब इन पत्रकारोंकी नौकरी छूट जाती है, उस समय उन्हें कहींसे भी सहायता मिलनेकी उम्मेद नहीं रहती। जो पत्र अपना खर्च मज़ेसे चला रहे हैं और काफ़ी आमदनी भी कर रहे हैं, उन्होंने भी स्वतंत्र पत्रकारोंको लेखोंका पारिश्रमिक देनेका नियम नहीं बनाया है। हम जानते हैं कि 'लीडर' प्रतिवर्ष आठ-दस हजार रुपये इस मदमें खर्च करता है। अपने घाटेके दिनोंमें भी वह स्वतन्त्र पत्रकारोंकी यथाशक्ति सहायता करता रहा है। हिन्दीमें भी

दो-एक पत्र ऐसे हैं, जो व्यक्तिगत रूपसे पत्रकारोंकी सहायता करते हैं। अपनी संकटमय स्थितिमें स्वयं हमें 'प्रताप', 'आज' तथा 'माधुरी'से सहायता मिली थी, पर सबसे अधिक सहायता प्राप्त हुई थी अंग्रेज़ी पत्र 'लीडर'से। जिन दिनों कोई पत्रकार घर बैठा हुआ हो, उन दिनों उसे दस-बीस रुपयेकी मासिक मदद मिल जानेपर भी कितनी प्रसन्नता होती है, इसका अनुमान भुक्त-भोगी ही कर सकते हैं! हमारी समझमें प्रत्येक प्रतिष्ठित पत्रको यथाशक्ति एक रकम प्रतिवर्ष पत्रकारोंको पारिश्रमिक देनेके लिए रखनी चाहिए। मासिक पत्रोंको तो यह करना ही पड़ता है। इस विषयमें श्री दुलारेलालजी भार्गवने जो कार्य किया, वह वास्तवमें प्रशंसनीय है। पहले 'सरस्वती' ही लेखकोंको थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक दिया करती थी, पर श्री दुलारेलालजीने इस प्रथाको काफी उत्तेजन दिया, इसके लिए हम लोगोंको उनका कृतज्ञ होना चाहिए। यदि पत्रकारोंका संगठन दृढ़ हो जावे, तो पत्र-संचालकोंपर इस बातके लिए दबाव डाला जा सकता है कि वे एक निश्चित रक़म पारश्रमिकके लिए रखें।

एक कार्य और भी आवश्यक है, यानी हिन्दी पत्रोंके क्रमबद्ध इतिहासकी रचना। यदि दो-तीन पत्रकार मिलकर इस कामको उठा लें, तो इसे सफलता-पूर्वक पूर्ण करना बहुत कठिन न होगा। हिन्दी-जर्नेलिज़्म आज जिस दशामें है, वह दशा चिरकाल तक न रहेगी। वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब हिन्दी-पत्रकारोंका प्रभाव अंग्रेज़ी पत्रकारोंके प्रभावसे कहीं अधिक गम्भीर और विस्तृत होगा। उन दिनों हिन्दी-पत्रोंके बीस-पचीस हज़ार ग्राहक होना मामूली बात होगी। जिन लोगोंके त्याग और तपस्याके कारण यह हुआ है उनका स्मरण न करना कृतघ्नताकी बात है। हम लोगोंमेंसे कितनोंको उन कठिनाइयोंका पता है, जिनका सामना स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्टने अपने 'हिन्दी-प्रदीप'के संचालन तथा सम्पादनमें किया था? सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा ४५ वर्ष तक प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्रोंका सम्पादन कर अन्तमें भूखों मरे, इस बातको कितने पत्रकार जानते हैं? पूज्य महावीरप्रसादजी द्विवेदीके अथक परिश्रम और अनुपम नियमबद्धताकी बातें कितनोंको मालूम हैं? इन लोगोंके जीवन-चरितोंको प्रकाशित करना पितृऋण उतारनेके समान ही आवश्यक कार्य है। वे लोग निःसन्देह 'हिन्दी-पत्रकार-कलाके पिता' (Father of Hindi Journalism) कहे जा सकते हैं। यह इन लोगोंकी ही तपस्याका फल है कि हम लोगोंको आज रुखी-सूखी रोटी मिल जाती है। स्वर्गीय बालकृष्णजी भट्टजीके सुपुत्र श्री जनार्दनजी भट्टसे ज्ञात हुआ कि भट्टजी अपना वेतन प्रेसवालोंके बिल चुकानेमें खर्च कर आते थे और घर खाली हाथ आ बैठते थे! जनार्दनजीकी माँको उस समय बड़ी चिन्ता हो जाती थी कि तनख्वाह तो इस तरहसे आते ही चली गई, अब महीने-भर गुज़र कैसे होगी! जब 'हिन्दी-प्रदीप'का कोई भूला-भटका ग्राहक १ रु० १० आने भेज देता, तो उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर भट्टजी आटे-दालका प्रबन्ध करते। कई वर्ष पहले श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टण्डनने सजल नयन होकर कहा था—"भट्टजीको जीवन-भर यही खेद रहा कि हमारे 'हिन्दी-प्रदीप'के तीन सौसे अधिक ग्राहक न हुए!" आज हिन्दी पत्रोंकी स्थिति उस समयसे कहीं अच्छी है। दो-तीन हज़ार ग्राहक होना साधारणसी बात हो गई है, पर हम लोगोंमेंसे कितने हैं, जो यह अनुभव करते हों कि हम लोग कुछ अंशोंमें भट्टजीके ऋणी हैं?

हमारे पूर्वज सम्पादकोंने जो तप किया था, उसका शुभ फल हम भोग रहे हैं। यदि हम त्याग और तप करेंगे, तो उसके लिए भावी पत्रकार हमारे ऋणी तथा कृतज्ञ होंगे।

हम लोगोंका कर्तव्य है कि अपने चरित्र-बल तथा आदर्शवादितासे पत्रकार-वृत्तिको पवित्र रखें। यद्यपि यह कार्य किसी संस्थासे नहीं हो सकता, क्योंकि कोई भी संस्था मनुष्यको चरित्रवान बनानेमें विशेष सहायक नहीं हो सकती, यह तो व्यक्तिगत प्रश्न है, फिर भी संस्थाओं द्वारा उपयुक्त वातावरण या परिस्थितिका निर्माण हो सकता है, जिससे आदर्शवादियोंके मार्गकी कुछ बाधाएँ दूर हो सकती हैं। पत्रकारोंका सुदृढ़ संगठन कठिन कार्य तो है ही, पर है वह

आवश्यक। जब तक दो-चार पत्रकार ऐसे न निकल आवें, जो परोपकार-वृत्तिसे अपने समयका कुछ भाग इस पवित्र कार्यके लिए भी व्यय करें, तब तक यह कार्य नहीं होनेका। सभी पत्रकार, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई हों या पारसी, दर असल ब्राह्मण हैं, और प्राचीन कालके ब्राह्मणोंकी तरह उनमें त्याग तथा तपकी उपयुक्त मात्रा होनी चाहिए। यदि उनमें भी घासलेटी व्यापारिकता घुस पड़ी, तो फिर उस जनताका—जिसके कि वे नेता हैं—राम ही मालिक है।

हिन्दी-पत्रकारोंके संगठनकी आवश्यकताको अनुभव तो प्रायः सभी करते हैं, पर वह किस तरहसे हो, इसपर विचार बहुत कम लोग करते हैं, और आगे बढ़कर काम हाथमें लेनेके लिए कोई भी तय्यार नहीं होते! बड़े-बड़े सम्पादक इस बोझको सम्हालनेके लिए उद्यत नहीं, यहाँ तक कि पत्रकार-सम्मेलनके सभापतित्वके लिए वे उद्यत नहीं होते; और हम छुटभइयोंके द्वारा, जिनकी जीविका हमेशा अनिश्चित-सी रहती है, इस कार्यका सुचारुरूपसे संचालित होना अत्यन्त कठिन है। हिन्दी-पत्रकारोंमें एक-दो आदमी तो ऐसे निकलने चाहिए, जो पत्रकारोंके संगठनको ही अपने जीवनका लक्ष्य बना लें। यदि एक-दो आदमी ऐसे नहीं मिल सकते, तो फिर हिन्दी-पत्रकारोंका भविष्य अंधकारमय ही समझिये। हम निराशावादी नहीं, इसलिए यह माननेके लिए तय्यार नहीं। हालत बड़ी दुविधा-जनक है। करना तो कुछ चाहिए, पर करें, तो क्या करें। आशा है कि पत्रकार-सम्मेलनके सभापति श्री लक्ष्मणनारायणजी गर्दे इन प्रश्नोंपर अपने बीस वर्षके अनुभवसे कुछ प्रकाश डालेंगे, और इस दुविधाको दूर करेंगे।

'प्रबन्ध-मंजरी'

इस अंकमें अन्यत्र महामहोपाध्याय श्री हरप्रसादजी शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०, सी० आई०ई०, का एक लेख स्वर्गीय पंडित हृषीकेश शास्त्रीके विषयमें प्रकाशित हुआ है। उस लेखमें पं० हृषीकेशजीके संस्कृत-निबन्धोंके संग्रहका ज़िक्र आया है। हर्षकी बात है कि यह संग्रह अब प्रकाशित हो गया है, और डेढ़ रुपयेमें श्री रामनाथ शर्मा ग्राम नायक नगला, पो० चान्दपुर, जिला बिजनौरसे प्राप्त हो सकता है। पुस्तककी विस्तृत आलोचना तो हम आगामी किसी अंकमें किसी संस्कृतज्ञ सज्जनसे कराके प्रकाशित करेंगे, इस समय केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि यह पुस्तक विश्वविद्यालयोंकी उच्च कक्षाओंमें संस्कृतके विद्यार्थियोंके लिए पाठ्य-पुस्तककी भाँति नियत की जानी चाहिए।

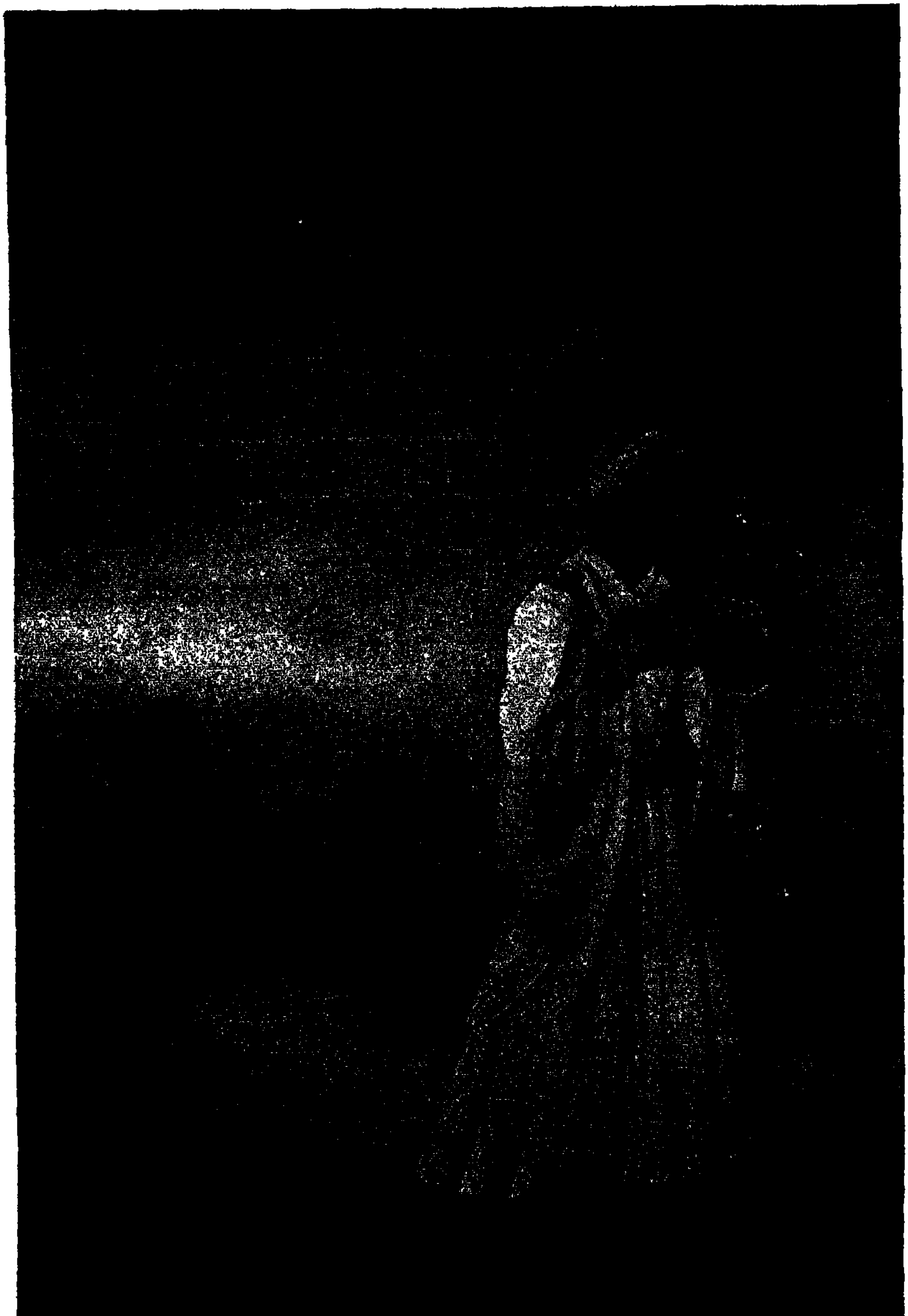
सम्मेलनमें घासलेट विरोधी प्रस्ताव

गोरखपुर-सम्मेलनमें निम्न-लिखित प्रस्ताव सर्वसाधारणके सम्मुख उपस्थित किया जावेगा :—

"यह सम्मेलन हिन्दी-साहित्यमें कुरुचिपूर्ण पुस्तकोंकी उत्तरोत्तर वृद्धिको साधारण जनताके लिए तथा साहित्यके लिए भी अत्यन्त हानिकर समझता है, और सर्वसाधारणसे अनुरोध करता है कि वह इस प्रकारकी पुस्तकोंको प्रोत्साहन न दें। साथ ही पत्रकारोंसे प्रार्थना करता है कि वे इस हीन व्यापारको रोकनेके लिए प्रयत्न करें।"

प्रस्ताव वास्तवमें कुछ विवादग्रस्त है, क्योंकि अनेक लेखक और पत्रकार इस प्रकारके प्रस्तावसे असहमत हैं। वे या तो इसे अनावश्यक समझते हैं, अथवा सिद्धान्तकी दृष्टिसे ही इसके विरोधी हैं। ऐसे महानुभावोंके सदुद्देश्यमें हम शंका नहीं कर सकते, और न हमने कभी इस बातकी आशा ही की है कि हमारा प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हो जावेगा। फिर भी हमारा यह विश्वास है कि उपस्थित प्रतिनिधियोंमें आधेसे अधिक इस प्रस्तावके पक्षमें होंगे। घासलेट-विरोधी आन्दोलन हम पिछले अक्टूबरसे ही बन्द कर चुके हैं, और अब उसे उठानेकी हमारी बिलकुल इच्छा भी नहीं है, पर यदि सम्मेलनने यह प्रस्ताव बहुमतसे अस्वीकृत कर दिया, तो फिर कर्तव्यवश अगले सम्मेलन तक हमें यह आन्दोलन चलाना ही पड़ेगा। उसके लिए भी हम उद्यत हैं। इसी कारण प्रस्तावकी सफलता या असफलताके विषयमें हमें विशेष चिन्ता नहीं।

Edited, Printed & Published by Benarsi Das Chaturvedi, at the Prabasi Press,
120-2, Upper Circular Road, Calcutta.



स्वामी रामदास और छत्रपति शिवाजी

"विशाल-भारत"] [चित्रकार—श्री असितकुमार हालदार]

विशाल-भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ३ खण्ड १ — मार्च, १९३०—चैत्र, १९८६ — अङ्क ३ पूर्णाङ्क २७

अभिमन्यु

[लेखक :—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बी० ए०]

धरम-सपूतकी रजाय चित चाही पाय,
धायौ धारि हुलसि हथ्यार हरबरमैं ।
कहै रतनाकर सुभद्राकौ लड़ैतौ लाल,
प्यारी उत्तराहूकी रुक्यौ न सरबरमैं ॥
सारदूल-सावक वितुंड-झुण्डमैं ज्यौं,
त्यौं ही पैठ्यौ चक्रव्यूहकी अनूह अरबरमैं ।
लाग्यौ हास करन हुलास पर बैरिनिके,
मुख मन्दहास चन्द्रहास करबरमैं ॥

बीरनिके मान औ गुमान रनधीरनिके,
आनके विधान भटबृन्द घमसानीके ।
कहै रतनाकर विमोह अंध भूपतिके,
द्रोहके सँदोह सूत-पूत अभिमानीके ॥
द्रोनके प्रबोध, दुरबोध दुरजोधनके,
आयु-औध-दिवस जयद्रथ अठानीके ।
कौरवके दाप, ताप पाण्डवके जात बहे,
पानी मांहि पारथ-सपूतकी कृपानीके ॥

महात्मा गान्धी और सत्याग्रह-संग्राम

फुटकर बातें

[लेखक :—बनारसीदास चतुर्वेदी]

सत्याग्रह-संग्राम छिड़ गया है। स्वाधीनताका महायज्ञ प्रारम्भ हो चुका है। संसारके इतिहासमें एक नया अध्याय लिखा जा रहा है। दुनियाँकी आँखें भारतकी ओर लगी हुई हैं। ऐसे अवसरपर राष्ट्र-नौकाके कर्णधार महात्मा गान्धी तथा उनके संग्रामके विषयमें दो-चार बातें लिखना अप्रासंगिक न होगा।

युद्धकी गम्भीरता

जो लोग महात्माजीके इस संग्रामको बच्चोंका खेल समझकर मज़ाकमें उड़ा देना चाहते हैं, वे सचमुच बड़ी भूल कर रहे हैं। वे महात्माजीको जानते नहीं। अप्रेल सन् १८६३ में गान्धी दक्षिण-अफ्रिकाके लिए रवाना हुए थे, और तभीसे उनके सार्वजनिक जीवनका प्रारम्भ समझना चाहिए। गान्धीजी अपने सैंतीस वर्षके विशाल अनुभवसे इस युद्धका संचालन कर रहे हैं। इनमें पिछले पचीस वर्षोंमें तो जो महान् संयमपूर्ण जीवन उन्होंने व्यतीत किया है, उसने उन्हें एक अदम्य शक्ति प्रदान की है। अपने जीवनके प्रत्येक क्षणमें वे जागरूक रहते हैं। उन्होंने अपनेको इस महायुद्धके लिए ट्रेन किया है, तय्यार किया है। जनरल फौश या हिण्डनबर्गने अपने हिंसामय संग्रामके लिए उतना विचार न किया होगा, जितना गान्धीजीने अपने इस सत्याग्रह-संग्रामके लिए किया है। यह निश्चित है कि वे इस संग्रामके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर देना चाहते हैं। इधर मन-सवा मनका एक पतला-दुबला आदमी है और उधर संसारका सबसे अधिक शक्तिशाली साम्राज्य! इधर आत्मिक बल है, तो उधर पाशविक शक्ति। स्वर्गसे देवता इस दृश्यको देखते होंगे। संसारके इतिहासमें यह प्रयोग अनुपम है। इसकी सफलतासे संसारके युद्धोंका रूप ही पलट सकता है। लाखों ही प्राणियोंका जीवन नष्ट करनेवाले युद्धोंसे संसार तंग आ गया है। प्रत्येक देशमें युद्ध-विरोधी संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं। वे बराबर कुछ न कुछ आन्दोलन किया करती हैं। आज भारतवर्ष क्रियात्मक रूपसे इस विषयमें सबसे बड़ा आन्दोलन कर दिखानेके लिए उद्यत हुआ है। यदि निहत्थे भारतीय अपनी आत्मिक शक्तिके आगे संसारके सबसे प्रबल पाशविक शक्तिके मूर्तिमान रूप ब्रिटिश साम्राज्यको झुका लेंगे, तो इसका प्रभाव देश-देशान्तरोंमें पड़े बिना न रहेगा। इस प्रकार यह संग्राम अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व रखता है। रशियन ऋषि टाल्सटायकी वह वाणी—"एक समय आवेगा, जब तुम्हारे संग्राममें केवल ईसाई जातियोंको ही नहीं, वरन् संसारकी सभी जातियोंको भाग लेना पड़ेगा"*—सत्य होनेवाली है।

संग्राममें विजय किसकी होगी? इस प्रश्नका उत्तर गीतामें दिया जा चुका है, 'यतः धर्मः ततः जय'।

युद्धक्षेत्रके लिए प्रस्थान

दक्षिण-अफ्रिका और भारत

सत्याग्रह-संग्रामके लिए उपयुक्त वायुमंडल कैसे तय्यार किया जाता है, यह बात महात्माजी अच्छी तरह जानते हैं। महात्माजीके साबरमतीसे प्रस्थान करनेका वृत्तान्त पढ़कर उनकी इसी प्रकारकी दक्षिण-अफ्रिकाकी यात्राकी याद आती है। आज ७० आदमियोंने ही रणक्षेत्रके लिए प्रस्थान किया है, कल ७०० आदमी ऐसा करेंगे और परसों यह संख्या ७००० हो सकती है। गान्धीजीने दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्रामके द्वितीय भागमें लिखा था :—

"अनुभव मुझे यह शिक्षा देता है कि जिसे मैं 'वृद्धिका नियम' कहता हूँ, वह प्रत्येक शुद्ध लड़ाईके लिये लागू होता है। परन्तु सत्याग्रहके विषयमें तो मैं उसे सिद्धान्त-रूपसे मानता

---

* ७ सितम्बर १९१० को टाल्सटाय द्वारा महात्मा गान्धीको लिखे हुए पत्रसे उद्धृत।

हूँ। गंगाजी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों उनमें अनेक नदियाँ मिलती जाती हैं। अन्तमें उनके मुखके पास उनका पात्र इतना विशाल हो जाता है कि न तो दाहनी ओर और न बाँई ओर किनारा दीख पड़ता है। नावमें बैठे हुए मुसाफिरको तो उनके और समुद्रके विस्तारमें कोई फर्क नहीं दिखाई देता। यही बात सत्याग्रहके युद्धके विषयमें भी कही जा सकती है। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसमें अनेक वस्तुएँ मिलती चली जाती हैं, और इसके लिए उसके परिणाममें भी वृद्धि होती जाती है। सत्याग्रहके इस परिणामको, उसकी इस विशेषताको, मैं अनिवार्य मानता हूँ।"

दक्षिण-अफ्रिकामें एक बार महात्माजीके पक्के साथी कुल जमा १६ आदमी रह गये थे, और बढ़ते-बढ़ते वहाँ यह दशा हुई कि २५ हज़ार आदमी जेल जानेके लिए उद्यत हो गये। कौन कह सकता है कि ये ७० कभी ७० हज़ार न हो जायँगे?

सन् १९१३ और सन् १९३०

नवम्बर सन् १९१३ की बात है। २०२७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ और ५७ बच्चे चार्ल्सटाउनके लिए महात्मा गान्धीजीके नेतृत्वमें चल पड़े थे। ट्रान्सवालमें नेटालके भारतीयोंका प्रवेश करना वहाँके क़ानूनके मुताबिक जुर्म था। यूनियन सरकारके वचन-भंगके विरोध-स्वरूप ट्रान्सवालमें प्रवेश करके पकड़े जाना और जेल जाना ही इस प्रस्थानका उद्देश्य था। वह यात्रा सत्याग्रह-संग्रामके इतिहासमें एक अमर घटना थी। आज उसीकी पुनरावृत्ति भारत-भूमिमें हो रही है, पर अभी इस यात्राके यात्रियोंको वे कष्ट नहीं उठाने पड़े, जो दक्षिण-अफ्रिकाके प्रवासी भाई-बहनोंको उठाने पड़े थे। महात्माजीने इस यात्राका वर्णन करते हुए लिखा था:—

"इस समय हड़ताल पूरे जोरमें थी। पुरुषोंकी तरह उसमें स्त्रियाँ भी शामिल होती जा रही थीं। उनमें दो माताएँ अपने बच्चोंको साथमें लिये हुए थीं। एक बच्चेको कूचमें जाड़ा लग गया और वह मृत्युकी गोदमें जा सोया। दूसरीका बालक एक नाला पार करते हुए गोदमेंसे पानीमें गिरकर डूब गया, पर माता निराश नहीं हुई। दोनोंने



ट्रान्सवालके लिये भारतीयोंका कूच



ट्रान्सवालकी सीमापर वाक्सरस्टमें रोक दिये गये

अपनी कूचको उसी प्रकार जारी रखा। एकने कहा—'हम मरे-हुओंका शोक करके क्या करेंगी? इससे वे कहीं लौटकर थोड़े ही आ सकते हैं। हमारा धर्म तो है जीवितोंकी सेवा करना।' उस शान्त वीरताके ऐसी असीम आस्तिकताके और अगाध ज्ञानके कई उदाहरण मैंने उन ग़रीबोंमें देखे।''

इन बच्चोंकी मृत्युपर मि० ऐण्ड्रूज़ने अंग्रेज़ीमें एक हृदय-द्रावक कविता सन् १९१४ के 'माडर्न-रिव्यू'में प्रकाशित की थी, उसे श्री ब्रजमोहन वर्माके अनुवाद सहित हम यहाँ प्रकाशित करते हैं :—

Bharat Mata

Slowly as shadows lengthened,
Woman and tender child.
Sharing with men each hardship,
Struggled across the wild.

Weary and worn, at nightfall,
On the hard ground they lay:
But two were cold and lifeless,
Before the dawn of day—

Two children. Mute with anguish
Their mother saw them die.
While all the stars in silence
Watched from the silent sky.

But the Mother, the great Mother,
She took them to her breast;
She kissed their young heads gently
And folded them to rest.

Dear unknown Indian children!
Mothers so brave, so true!
All we who love the Mother—
We love and worship you.

भारत माता

मन्द चाल, अस्ताचल-बेला,
माता औ' बालक सुकुमार,
पुरुषोंके संग कष्ट झेलते,
करते हैं जंगलको पार।

निशिमें क्लान्त-शिथिल हो लेटे,
शय्याको थी कड़ी ज़मीन,
किन्तु भोरसे पहले ही वो,
हुए ठिठुर कर प्राण-विहीन।

मूक वेदनासे माताने
देखा निज बच्चोंका अन्त,
टुकुर-टुकुर निस्तब्ध देखते
थे नभसे नक्षत्र अनन्त।

पर प्यारी माताने उनको,
हृदय लगाकर किया दुलार,
मृदुल भावसे नन्हा मस्तक,
चूम, सुलाया अन्तिम बार।

भारतके अज्ञात बालको!
वीर-जननि हे अम्ब महान्,
हम सब, जिनमें मातृ-प्रेम है,
देते तुम्हें भक्ति सम्मान।

× × × ×

मातृभूमि भारतमें भी वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब यहाँकी माताएं भी युद्धमें हताहत अपने अमर पुत्रोंके लिए इसी प्रकारके भाव प्रकट करेंगी।

जनरल स्मट्स और लार्ड इर्विन

जिस प्रकार गान्धीजीने कूच करनेके पहले साबरमतीसे लार्ड इर्विनको अपना पत्र भेजा था, उसी प्रकार दक्षिण-अफ्रिकामें भी कूचके पहले उन्होंने ऐसा ही किया था। उन्हींके शब्दोंमें इसका वृत्तान्त सुन लीजिए :—

"इस तरह कूचकी तैयारी होते ही मैंने फिर समझौतेकी कोशिश की। पत्र, तार वगैरह तो भेज ही चुका था। यह तो मैं जानता था कि मेरा अपमान तो करेंगे ही, पर मैंने यही निश्चय किया कि अपमान करें भी तो भले ही करते रहें, मुझे एक बार कमसे कम टेलीफोनसे बातचीत कर ही लेनी चाहिए। चार्ल्स-टाउन और प्रिटोरियाके बीच टेलीफोन था। जनरल स्मट्सको मैंने टेलीफोन किया। उनके सेक्रेटरीसे कहा—'जनरल स्मट्ससे कहिये कि कूच करनेकी तमाम तैयारियाँ मैंने कर ली हैं। वॉक्सरस्टके लोग उत्तेजित हो गये हैं। सम्भव है, वे हमारी जानको भी



जनरल स्मट्स

हानि पहुँचाएँ। कम-से-कम ऐसा करनेकी धमकी तो उन्होंने हमें अवश्य ही दी है। शायद यह तो जनरल स्मट्स भी नहीं चाहते होंगे। यदि वे तीन पौंडका कर उठा लेनेका वचन दे सकते हों, तो मैं कूच नहीं करूँगा। महज क़ानून-भंग करने ही पर हम तुले हुए नहीं हैं। मैं इस समय लाचार हूँ। क्या इस समय वे मेरी इतनी-सी बातको नहीं सुनेंगे?' आधी मिनिटमें उत्तर मिला—'जनरल स्मट्स आपके साथ कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहते। आपका जी चाहे सो करिये।' टेलीफोन बन्द!

पर यह अकल्पित बात नहीं थी। हाँ, मैंने इस रूखेपनकी आशा जरूर नहीं की थी। क्योंकि सत्याग्रहके बाद मेरा उनका कोई छ: वर्षका राजनैतिक सम्बन्ध हो गया था, इसलिए मैं शिष्टतापूर्ण उत्तरकी उम्मीद कर रहा था, पर उनकी शिष्टतासे मैं फूलके कुप्पा तो नहीं हो जाता। उसी प्रकार न इस अशिष्टतासे मैं जरा भी शिथिल हुआ! मेरे कर्तव्यकी सरल रेखा मेरी आँखोंके सामने स्पष्टतया दीख पड़ती थी। दूसरे दिन निश्चिन्त समयपर हमने प्रार्थना की और परमात्माके नामपर कूच भी कर दी। उस वक्त मेरे साथ २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ और ५७ बच्चे थे।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि लार्ड इर्विनने वैसा ही सूखा जवाब दिया है, जैसा कि जनरल स्मट्सने आजसे १७ वर्ष पहले दिया था।

तब और अब !

जनरल बोथा—(जनवरी सन् १९०७में)—"अगर चुनावमें मेरी पार्टीकी विजय हुई, तो हम लोग चार वर्षके अन्दर तमाम कुलियोंको देशसे बाहर निकाल देंगे। भारतीयोंकी जो जायदाद यहाँपर है, वह उनसे लेखा-जोखा करके छीन लेना ठीक होगा। हाँ, उसका मुआवज़ा उन्हें दे दिया जाय और वे भारतको रवाना कर दिये जायँ।"

जनरल स्मट्स—(अक्टूबर सन् १९०६में)—"इस एसियावासियोंके प्रश्न-रूपी फोड़ेने दक्षिण-अफ्रिकाकी जीवन-शक्तिको नष्ट कर डाला है, और इसे तो जड़-मूलसे नष्ट कर देना ही ठीक होगा।"

जनरल बोथा—(जून सन् १९१४में)—"भारतीयोंकी यहाँ ज़मीन-जायदाद है। उसमें हम कैसे दखल दे सकते हैं? मुझे अच्छी तरह याद है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंके विषयमें प्रारंभमें ही कठिनाई उपस्थित हुई थी। कोई भी पार्लामेन्ट बिना सोचे-विचारे यों ही थोड़े ही कह सकती है, 'निकाल बाहर करो इन भारतीयोंको। हम नहीं चाहते इन लोगोंको।' लाखों ही पौण्ड देकर हम इन लोगोंसे छुटकारा पा सकते हैं, पर फिर भी हमारा पीछा नहीं छूटेगा।"

जनरल स्मट्स—(१९१४में, सत्याग्रह-संग्रामकी विजयके बाद)—"इंडियन रिलीफ़-बिलपर आप लोग गम्भीरता-पूर्वक विचार कीजिये। यह बड़ा टेढ़ा सवाल है, और इसपर पार्टीबन्दीकी दृष्टिसे विचार न होना चाहिए। इस बिलके पास हो जानेसे भारतीय प्रश्नका सन्तोष-जनक निपटारा हो जायगा। सोलोमन कमीशनने भारतीयोंकी जाँच की थी, और उसकी सिफारिशोंको भारत-सरकार तथा भारतीय जनताने भी स्वीकृत कर लिया है।"

इतिहास क्या अपनेको फिर भी दुहरावेगा? जो लार्ड इर्विन आज गान्धीजीको रूखा जवाब दे रहे हैं, क्या वे कल उन्हें समझौतेके लिए निमन्त्रण देंगे?

गान्धीजी और गोरे

महात्मा गान्धी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तके माननेवाले हैं। उनके हृदयमें गोरे लोगोंके प्रति घृणा अथवा द्वेषके भावका सर्वथा अभाव है। दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्राममें कितने ही—गोरे स्त्री और पुरुष—उनके साथ थे, और इस संग्राममें भी श्रीमती मीराबाई तथा मि० रेनाल्ड आदि उनका साथ देनेके लिए उद्यत हैं। गान्धीजीने उन दोनोंको अपने आश्रमका देख-रेख करनेका काम सौंप दिया है। इस समय अंगेज़ लोग भले ही यह बात न समझें, पर आगे चलकर उन्हें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि महात्माजी ही अंग्रेज़ोंके सबसे बड़े मित्र हैं। गान्धीजी इस बातकी प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठाके साथ कर रहे हैं, जब भारत स्वाधीन होगा और भारतीयों तथा अंग्रेजोंके बीचमें जो कृत्रिम सम्बन्ध है, वह टूटकर उसके बजाय हार्दिक सम्बन्ध स्थापित होगा। दर असल गान्धीजीके संग्रामका उद्देश्य यही है। यदि भारतमें कोई ऐसा आदमी है, जिसके हृदयमें जातीय विद्वेष (Racial feeling) बिलकुल नहीं है, तो निःसन्देह वे गान्धीजी ही हैं।

इस सिलसिलेमें एक घटना हमें याद आती है। एक अंग्रेज़ पादरी साहब अपनी मेम साहबा तथा अपने एक नवयुवक मित्रके साथ गान्धीजीसे मिलनेके लिए आये। महात्माजीने बहुत देर तक उनसे बातचीत की। इसके बाद सन्ध्याकी प्रार्थनाका समय आया। दोनों अंग्रेज़ तथा मेम साहबा भी उसमें सम्मिलित हुईं। प्रार्थनाके बाद गान्धीजीने पादरी साहबसे कहा—"मुझे वह गीत बड़ा सुन्दर लगा है, जिसके अन्तमें आता है 'When the mists have rolled away.' क्या आपको वह याद है?" पादरी साहबने कहा—"हाँ, हमें याद है।" महात्माजीने कहा—"उसीको आप गाइये।" दोनों अंग्रेज़ोंने गाना प्रारम्भ किया :—

"When the mists have rolled in splendour
From the beauty of the hills,
And the sun-light falls in gladness
On the river and the rills,
We recall our Father's promise,
In the rainbow of the spray:
We shall know each other better
When the mists have rolled away,
We shall know as we are known,
Never more to walk alone,

In the dawning of the morning
Of that bright and happy day !
We shall know each other better,
When the mists have rolled away."*

उन दिनों असहयोग-आन्दोलन बड़े ज़ोरोंपर था, और गान्धीजीके विरुद्ध अंग्रेज़ोंके पत्रोंमें अनेकों लेख निकल रहे थे। वायु-मण्डल पारस्परिक अविश्वासके भावोंसे परिपूर्ण था। अंग्रेज़ लोग सभी भारतीयोंको भय तथा घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, और भारतीय जनता प्रत्येक अंग्रेज़को धोखेबाज़ और मनुष्यता-हीन समझती थी। उस समयके वातावरणमें गान्धीजीका यह प्रिय गीत कुछ विशेष अर्थ रखता था, और उन अंग्रेज़ोंने इस अंशको बड़े गद्गद् कण्ठसे गाया था—

"We shall know each other better.
When the mists have rolled away."

गान्धीजी और विदेशोंमें प्रचार

जब-जब महात्माजीके सामने यह प्रस्ताव रखा गया है कि विदेशोंमें कांग्रेसकी ओरसे प्रचार किया जाय, तब-तब उन्होंने इसका विरोध किया है। वे सदा ही इस मतके रहे हैं कि देशके लिए कष्ट सहना ही सबसे बड़ा प्रचार है। त्याग और तपमें जो प्रचारशक्ति है, उसका मुक़ाबला काग़ज़ी घोड़े कदापि नहीं कर सकते। आज विलायत और अमेरिकाके अख़बारोंमें भारतकी इतनी चर्चा हो रही है, उसका मुख्य कारण यह है कि यहाँपर गान्धीजीने एक ऐसा महत्त्वपूर्ण संग्राम छेड़ दिया है, जिसकी ओर सारे संसारका ध्यान आकर्षित होना चाहिए। शक्तिहीन पराधीन आदमियोंकी बात कौन सुनता है ? जो विलायती पत्र हमारे यहाँके बड़ेसे बड़े आदमियोंके लेख अस्वीकृत कर देनेमें अपनी शान समझते हैं, वे ही अपने विशेष संवाददाता रखकर आज भारतीय परिस्थितिके विषयमें कालम पर कालम छाप रहे हैं ! कहा जाता है कि प्रसिद्ध रूसी ट्राट्स्कीके मुक़ाबलेका प्रचारक यूरोपमें दूसरा नहीं हुआ। स्वर्गीय लार्ड नार्थ क्लिफकी प्रचार-शक्ति तो प्रसिद्ध ही थी। ये दोनों पाश्चात्य ढंगके प्रचारक रहे हैं। महात्मा गान्धी प्राच्य ढंगके प्रचारक हैं। उनके प्रचारका ढंग गौतम बुद्ध और ईसा मसीहकी शैलीपर है। यद्यपि महात्माजी 'यंग-इंडिया', 'गुजराती-नवजीवन' तथा 'हिन्दी-नवजीवन'—ये तीन पत्र निकालकर पाश्चात्य प्रचार-पद्धतिसे भी लाभ उठाते हैं, पर उनके प्रचारके मूलमें 'सत्य' तथा 'तप' रहता है, और प्रेस तथा प्लेटफ़ार्मको उन्होंने मुख्य स्थान न देकर गौण स्थान ही दिया है।

* अर्थात्—"जब पर्वतके सौन्दर्यको आवृत करनेवाली घटा दूर हो जायगी, और जब नदी-नालोंपर सूर्यका प्रकाश पड़ेगा, तब हम अपने परम-पितासे की हुई प्रतिज्ञाको स्मरण करेंगे, और अविश्वासकी घटाके दूर हो जानेपर एक दूसरेके हृदयको भलीभाँति पहचान लेंगे। फिर हम उस प्रभातके उषकालमें तथा उस प्रकाश पूर्ण सुखमय दिनमें संसार-यात्राके पथपर अकेले ही न जायँगे। अज्ञान और अविश्वासके बादल दूर हो जानेपर हम लोग एक दूसरेको अच्छी तरह जान लेंगे।"

गान्धीजीका सर्वोत्तम चित्र कौनसा है ?

महात्माजीका सर्वोत्तम तसवीर कौनसी है ? इस विषयमें काफ़ी मतभेद हो सकता है। हमें जो चित्र सबसे अधिक पसन्द आया है, वह यहाँ उद्धृत किया जाता है। यह चित्र २२ दिसम्बर सन् १६१३ को लिया गया था। इसमें गान्धीजी गलेमें थैला डाले हुए खड़े हैं, और उनके पास मि० कैलन बैक (जर्मन), मि० आइज़क और मिसेज़ पोलक (भारत-हितैषी मि० पोलककी धर्मपत्नी) उपस्थित हैं। पीछे कोनेकी ओर हाथोंमें फूल लिये हुए पूज्य कस्तूर बा हैं। उनके पीछे जेलसे लौटी हुई भारतीय स्त्रियाँ थीं, जिनका चित्र इस फोटोमें नहीं आ सका। महात्माजीके चेहरेसे दृढ़ता, निश्चय और युद्धमें मर-मिटनेका भाव टपका पड़ता है। यह चित्र समयके अनुरूप भी है। इसका पिछला भाग (Back ground) (जेलसे लौटी हुई पूज्य कस्तूर बा और अन्य भारतीय महिलाएँ) भी महत्त्वपूर्ण है। इसके सिवा मि० कैलन बैक (जर्मन), मिसेज़ पोलक (अंग्रेज़) और मि० आइज़क (दक्षिण-अफ्रिका प्रवासी भारतीय) होनेके कारण चित्रमें अन्तर्राष्ट्रीयता भी है। यदि 'विशाल-भारत' के कोई पाठक महात्माजीका इससे बढ़िया चित्र बतला सकें, तो हम उसे भी सहर्ष 'विशाल-भारत' में स्थान देंगे।

युद्धका अन्त कब होगा ?

दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्रामके इतिहासमें महात्माजीने लिखा है :—

"इस युद्धमें यह एक बात भी देखी गई कि ज्यों-ज्यों लड़नेवालोंका दु:ख बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसका अन्त भी नज़दीक आता गया। साथ ही ज्यों-ज्यों दु:खीकी निर्दोषता



महात्माजीका सर्वोत्तम चित्र ?

अधिकाधिक प्रकट होती गई, त्यों-त्यों लड़ाईका अन्त निकट आने लगा। मैंने इस युद्धमें यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, निःशस्त्र और अहिंसक युद्धके लिए ऐन वक्तपर जिन-जिन साधनोंकी आवश्यकता होती है, वे भी अनायास प्राप्त होते चले आते हैं। कितने ही स्वयंसेवकोंने, जिन्हें मैं आज तक भी नहीं जानता, अपने आप सहायता की। ऐसे सेवक अकसर निःस्वार्थ होते हैं। अनिच्छा-पूर्वक भी वे अदृश्य-रूपसे सेवा कर देते हैं। न तो कोई उनका हिसाब रखता है और न कोई प्रमाण-पत्र ही उन्हें दे देता है। उनके वे अमूल्य कार्य परमात्माकी किताबोंमें जमा होते रहते हैं, पर कई सेवक तो यह भी नहीं जानते। दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीय अपनी परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। उन्होंने अग्नि-प्रवेश किया और ज्यों-के-त्यों शुद्ध बाहर निकल आये।"

महात्माजीका यह वाक्य ही उपर्युक्त प्रश्नका उत्तर देनेके लिए पर्याप्त है। जब सत्याग्रहियोंके दुःख काफी बढ़ जायँगे, उनकी निर्दोषता संसारपर प्रकट हो जावेगी, जब हमारे यहाँके निःस्वार्थ सेवक इस संग्राममें निष्काम कर्मके सिद्धान्तके अनुसार सहायक होंगे, तभी इस युद्धका अन्त निकट आ जायगा। परमात्मा करे कि हम लोग भी इस अग्नि-परीक्षामें उसी तरह उत्तीर्ण होकर शुद्ध सिद्ध हों, जिस प्रकार आजसे सत्रह वर्ष हमारे दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी भाई सिद्ध हुए थे।

महात्माजीका निम्न-लिखित वाक्य स्मरणीय है—

"स्वदेश-यज्ञमें, जगत्-यज्ञमें असंख्य आत्माओंका बलिदान दिया गया है, दिया जा रहा है और दिया जायगा। यही ठीक भी है, क्योंकि कोई नहीं जानता कि पूर्णरूपेण शुद्ध कौन है; पर सत्याग्रही इतना तो ज़रूर जानते हैं कि उनमेंसे यदि एक भी शुद्ध होगा, तो उसका यज्ञ फलोत्पत्तिके लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। 'असत्' 'असत्य' के मानी हैं 'नहीं'। 'सत्' 'सत्य' अर्थात् 'है'। जहाँ 'असत्' अर्थात् अस्तित्व ही नहीं है, उसकी सफलता कैसे हो सकती है? और जो सत् अर्थात् 'है', उसका नाश कौन कर सकता है? बस, इसीमें सत्याग्रहका समस्त शास्त्र समाविष्ट है।"

चित्रकूट

[लेखक :—श्री मैथिलीशरण गुप्त]

[गताङ्कमें इस कविताका जो अंश छपा है, वह राम-भरतके मिलापके साथ समाप्त होता है। उससे आगेका अंश इस अङ्कमें दिया जाता है।]

इतनेमें कल-कल हुआ वहाँ जय-जयका,
गुरुजन सह पुरजन पंच सचिव समुदयका।
हय-गज-रथादि निज नाद सुनाते आये,
खोयेसे अपने प्राण सभीने पाये।
क्या ही विचित्रता चित्रकूटने पाई,
सम्पूर्ण अयोध्या जिसे खोजती आई।
बढ़कर प्रणाम कर वसिष्ठादि मुनियोंको,
प्रभुने आदरसे लिया गृही-गुनियोंको।
जिसपर पालेका एक पर्त-सा छाया,
हत जिसकी पंकज-पंक्ति, अचल-सी काया।
उस सरसी-सी, आभरण-रहित, सित-वसना,
सिहरे प्रभु माँको देख, हुई जड़ रसना।
"हा तात!" कहा चीत्कार समान उन्होंने,
सीता सह लक्ष्मण लगे उसी क्षण रोने।
उमड़ा माँओंका हृदय हाय ज्यों फटकर,—
"चिर मौन हुए वे तात तुम्हींको रटकर।"
"जितने आगत हैं रहें क्यों न गतधर्मा,
पर मैं उनके प्रति रहा क्रूर ही कर्मा।"
दी गुरु वसिष्ठने उन्हें सान्त्वना बढ़कर,—
"वे समुपस्थित सर्वत्र कीर्तिपर चढ़कर।
वे आप उऋण ही नहीं हुए जीवनसे,
उलटा सबको कर गये ऋणी निज धनसे।
वे चार चार दे गये एकके बदले,
तुम तकको यों तज गये टेकके बदले।
वे हैं अशोच्य, हाँ, स्मरण योग्य हैं सबके,
अभिमान योग्य, अनुकरण योग्य हैं सबके।"
बोले गुरुसे प्रभु साश्रुवदन बद्धांजलि—
"दे सकता हूँ क्या उन्हें अभी श्रद्धांजलि?
पितृ-देव गये हैं तृषित-भावसे सुरपुर।"
भर आया उनका गला, हुआ आतुर उर।
फिर बोले वे—"क्या कहूँ और मैं कहिये,
गुरुदेव, आप ही तात-तुल्य अब रहिये।"
"वह भार प्राप्त है मुझे प्रपूर्ण प्रथम ही,
हम जब जो उनके लिए करें, है कम ही।"
"भगवन्, इस जनमें भक्तिभाव अविचल है,
पर अर्पणार्थ बस पत्र-पुष्प फल-जल है।"
"हा! याद न आवे उन्हें तुम्हारे वनकी!"
प्रभु-जननी रोने लगी व्यथासे मनकी।
"वे सब दुःखोंसे परे आज हैं देवी,
स्वर्गीय भावसे भरे आज हैं देवी।
उनको न राम-वनवास देख दुख होगा,
अवलोक भरतका वही भाव सुख होगा।"
गुरु-गिरा श्रवण कर हुए सभी गद्गद-से,
बोले तब राघव भरे स्नेहके नद-से—
"पूजा न देखकर देव भक्ति देखेंगे,
थोड़ेको भी वे सदय बहुत लेखेंगे।"
कौशल्याको अब रहा न मान परेखा,
पर कैकेयीकी ओर उन्होंने देखा।
बोली वह अपना कण्ठ परिष्कृत करके—
प्रभुके कन्धेपर वलय-शून्य कर धरके—
"है श्रद्धापर ही श्राद्ध, न आडम्बरपर,
पर तुम्हें कमी क्या, करो कहें जो गुरुवर।"
यह कह मानो निज भार उतारा उसने,
लक्ष्मण-जननीकी ओर निहारा उसने।
कुछ कहा सुमित्राने न अश्रुमय मुखसे,
सिरसे अनुमति दी नेत्र पोंछकर दुखसे।

'जो आज्ञा' कह प्रभु घूम अनुजसे बोले—
"लेकर अपने कुछ चुने बनेचर भोले
सबका स्वागत सत्कार करो तुम तबलौं
मैं करूँ स्वयं करणीय कार्य सब जबलौं।"

यह कह सीता सह नदी-तीर प्रभु आये,
श्रद्धा समेत सद्धर्म समान सुहाये।
पीछे परिजन विश्वास-सदृश थे उनके
फल-सम लक्ष्मणने दिया आपको चुनके।

तन गये तनिकमें इधर-उधर बहु तम्बू,
छाया करते थे जहाँ निम्ब-वट जम्बू।
मानो बहु कटि-पट चित्रकूटने पाये
किंवा नूतन घन उसे घेर घिर आये।

आलान बने द्रुम-कानन गजोंके जैसे
गज-निगड वलय बन गये द्रुमोंके वैसे।
च्युत पल पीठपर पड़े, फुरहरी आई
घोड़ोंने ग्रीवा मोड़ दृष्टि दौड़ाई।

नव उपनिवेश-सा बसा घड़ी-भर ही में
समझा लोगोंने कि हैं सभी घर ही में।
लग गई हाट जिसमें न पड़े कुछ देना,
ले लें उसमें जो वस्तु जिन्हें हो लेना।

बहु कन्द-मूल-फल कोल-भील लाते थे,
पहुँचाते थे सर्वत्र, प्रीति पाते थे।
"बस, पत्र-पुष्प हम वन्यचरोंकी सेवा,
महुवा मेवा है, बेर कलेवा, देवा!"

उस ओर पिताके भक्ति-भावसे भरके,
अपने हाथों उपकरण इकट्ठे करके,
प्रभुने मुनियोंके मध्य श्राद्ध-विधि साधी,
ज्यों दण्ड चुकावे आप अवश अपराधी।

पाकर पुत्रोंमें अटल प्रेम अघटित-सा,
पितुरात्माका परितोष हुआ प्रकटित-सा।
हो गई होमकी शिखा समुज्ज्वल दूनी,
मन्दानिलमें मिल खिली धूपकी धूनी।

अपना आमन्त्रित अतिथि मान कर सबको,
पहले परोक्ष परितृप्ति-दान कर सबको।
प्रभुने स्वजनोंके साथ किया भोजन यों,
सेवन करता है मन्द पवन उपवन ज्यों।

तदनन्तर बैठी सभा उटजके आगे,
नीले वितानके तले दीप बहु जागे।
टकटकी लगाये नयन सुरोंके थे वे,
परिणामोत्सुक उन भयातुरोंके थे वे।

उत्फुल्ल करौंदी-कुंज वायु रह-रहकर,
करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह-महकर।
वह चन्द्रलोक था, कहाँ चाँदनी वैसी,
प्रभु बोले गिरा गभीर नीरनिधि जैसी।

"हे भरतभद्र अब कहो अभीप्सित अपना।"
सब सजग हो गये भंग हुआ ज्यों सपना।
"हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब तब भी?

पाया तुमने तरु-तले अरण्य बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा?
तनु तड़प-तड़पकर तप्त तातने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा?

हा! इसी अयशके हेतु जनन था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा!
अब कौन अभीप्सित और आर्य वह किसका?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।

मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा।"
प्रभुने भाईको पकड़ हृदयपर खींचा;
सविनोदन रुदन सलिल गिराकर सींचा।

"उसके आशयकी थाह मिलेगी किसको,
जन कर जननी ही जान न पाई जिसको?"
"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घरको"
चौंके सब सुनकर अटल कैकयी स्वरको।

सबने रानीकी ओर अचानक देखा,
वैधव्य तुषारावृता यथा शशि-लेखा ।
बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा ;
वह सिंही अब थी हहा ! गोमुखी गंगा ।

"हाँ, जन कर भी मैंने न भरतको जाना,
सब सुन लें तुमने स्वयं अभी पहचाना ।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया ।

दुर्बलताका ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलाजनके लिए कौन-सा पथ है ?
यदि मैं उकसाई गई भरतसे होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ ।

ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो ।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ ?
राई-भर भी अनुताप न करने पाऊँ ?"

थी सनक्षत्र शशि निशा ओस टपकाती,
रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती ।
उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी ;
सबमें भय, विस्मय और खेद भरती थी ।

"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी ।
जल पंजर गत अब अरे अधीर अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझीमें जागे ।

पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मनमें ?
क्या शेष बचा था कुछ न और इस जनमें ?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य-मात्र, क्या तेरा ?
पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा !

थूके, मुझपर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके कहे, क्यों चूके ।
छीने न मातृपद किन्तु भरतका मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे !

कहते आते थे यही अभी नर-देही,
माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही ।
अब कहें सभी यह हाय, विरुद्ध विधाता,
'है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता ।'

बस, मैंने इसका बाह्य-मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा ।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा ।

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघु कुलमें भी थी एक अभागी रानी ।
निज जन्म-जन्ममें सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार उसे था महा-स्वार्थने घेरा ।"

"सौ बार धन्य वह एक लालकी माई,
जिस जननीने है जना भरत-सा भाई ।"
पागल सी प्रभुके साथ सभा चिल्लाई—
"सौ बार धन्य वह एक लालकी माई ।"

"हा ! लाल, उसे भी आज गमाया मैंने,
विकराल कुयश ही यहाँ कमाया मैंने ।
निज स्वर्ग उसीपर वार दिया था मैंने,
हर तुम तकसे अधिकार दिया था मैंने ।

पर वही आज यह दीन हुआ रोता है,
शंकित सबसे धृत हरिण तुल्य होता है ।
श्रीखण्ड आज अंगार-चण्ड है मेरा,
हा ! इससे बढ़कर कौन दण्ड है मेरा ?

पटके मैंने पद-पाणि मोहके नदमें,
जन क्या-क्या करते नहीं स्वप्नमें मदमें ?
हा, दण्ड कौन, क्या उसे डरूँगी अब भी ?
मेरा विचार कुछ दयापूर्ण हो तब भी,

हा दया, हन्त वह घृणा, अहह वह करुणा,
वैतरणी-सी है आज जाह्नवी वरुणा ।
सह सकती हूँ चिर नरक, सुनें सुविचारी,
पर मुझे स्वर्गकी दया दण्डसे भारी ।

लेकर अपना यह कुलिश-कठोर कलेजा,
मैंने इसके ही लिये तुम्हें वन भेजा।
पर चलो इसीके लिए न रूठो अब यों,
कुछ और कहूँ तो उसे सुनेंगे सब क्यों।
मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे,
मेरे दुगने प्रिय रहो न मुझसे न्यारे।
मैं इसे न जानूँ, किन्तु जानते हो तुम,
अपनेसे पहले इसे मानते हो तुम।
तुम भ्राताओंका प्रेम परस्पर जैसा
यदि वह सबपर यों प्रकट हुआ है वैसा
तो पाप दोष भी पुण्य-तोष है मेरा,
मैं रहूँ पंकिला, पद्म कोष है मेरा।
आगत ज्ञानीजन उच्च भाल ले-लेकर,
समझावें तुमको अतुल युक्तियाँ देकर।
मेरे तो एक अधीर-हृदय है बेटा,
उसने फिर तुमको आज भुजा-भर भेटा।
देवोंको ही चिरकाल नहीं चलती है,
दैत्योंकी भी दुर्वृत्ति यहाँ फलती है।"
हँस पड़े देव केकयी-कथन यह सुनकर,
रो दिये क्षुब्ध दुर्दैव दैत्य सिर धुनकर।
"छल किया भाग्यने मुझे अयश देनेका,
बल दिया उसीने भूल मान लेनेका।
अब कटे सभी वे पाश नाशके प्रेरे,
मैं वही केकयी, वही राम तुम मेरे।
होनेपर बहुधा अर्ध रात्रि अन्धेरी
"जीजी आकर करतीं पुकार थीं मेरी
'लो कुहकिनि, अपना कुहक, राम यह जागा,
निज मझली माँका स्वप्न देख उठ भागा।'
भ्रम हुआ भरतपर मुझे व्यर्थ संशयका,
प्रतिहिंसाने ले लिया स्थान तब भयका।
तुमपर भी ऐसी भ्रान्ति भरतसे पाती
तो उसे मनाने भी न यहां मैं आती!—
जीजी ही आतीं, किन्तु कौन मानेगा!
जो अन्तर्यामी वही इसे जानेगा।"
"हे अम्ब, तुम्हारा राम जानता है सब,
इस कारण वह कुछ खेद मानता है कब?"
'क्या स्वाभिमान रखती न केकयी रानी?
बतलावे कोई मुझे उच्च कुलमानी।
सहती कोई अपमान तुम्हारी अम्बा?
पर हाय आज वह हुई निपट नालम्बा।
मैं सहज मानिनी रही वही क्षत्राणी,
इस कारण सीखी नहीं दैन्य वह वाणी।
पर महादीन हो गया आज मन मेरा,
भावज्ञ सहे जो, तुम्हीं भाव धन मेरा।
समुचित ही मुझको विश्व-घृणाने घेरा,
समझाता कौन सशान्ति मुझे भ्रम मेरा।
योंही तुम वनको गये, देव सुरपुरको,
मैं बैठी ही रह गई लिए इस उरको!
बुझ गई पिताकी चिता भरत भुजधारी,
पितृभूमि आज भी तप्त तथापि तुम्हारी।
भय और शोक सब दूर उड़ाओ उसका,
चलकर सुचरित, फिर हृदय जुड़ाओ उसका।
हो तुम्हीं भरतके राज्य, स्वराज्य सम्हालो,
मैं पाला सकी न स्वधर्म उसे तुम पालो।
स्वामीको जीते जी न दे सकी सुख मैं,
मर कर तो उनको दिखा सकूँ यह मुख मैं।
मर मिटना भी है एक हमारी क्रीड़ा,
पर भरत वाक्य है—'सहूँ विश्वकी व्रीड़ा।'
जीवन-नाटकका अन्त कठिन है मेरा,
प्रस्ताव-मात्रमें जहाँ अधैर्य अँधेरा।
अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता,
करती है तुमसे विनय आज यह माता।"

[क्रमशः

रूसका परराष्ट्र-सचिव चिचेरिन

[लेखक :— श्री ब्रजमोहन वर्मा]

पिछले दस वर्षोंमें संसारके राजनैतिक रंगमंचपर कितने परिवर्तन, कितने उलट-फेर हुए ! गत यूरोपियन युद्धने यूरोपके समस्त देशोंमें उथल-पुथल मचा दी। इंग्लैण्डमें, जिसे लड़ाईमें विजयी होनेका अभिमान है, पिछले दस वर्षोंमें छे बार मन्त्रि-मण्डल बदला जा चुका है, और सातवीं बार पुन: जनरल निर्वाचनकी अफवाह सुनाई पड़ रही है। फ्रान्समें भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुए। वहाँका मन्त्रि-मण्डल ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी अपेक्षा अधिक बार परिवर्तित हुआ होगा। जब विजयी देशोंकी यह दशा है, तब बेचारे हारे हुए देशोंकी जो दशा होगी, उसका वर्णन ही व्यर्थ है। रूसमें क्रान्तिके आरम्भिक दिनोंमें जो भयंकर परिवर्तन हुए, वे बीसवीं शताब्दीके इतिहासमें अमिट रहेंगे। रूसकी राज-सत्ता बोल्शेविकोंके हाथमें आनेके बादसे वहाँ कुछ स्थिरता आई। परन्तु परिवर्तन जारी रहे। वहाँ लेनिनका उदय हुआ और ट्राटस्कीका बोलबाला हुआ। लेनिनकी मृत्युके बाद स्टैलिनके हाथमें रूसकी बागडोर आई, और धीरे-धीरे बेचारे ट्राटस्कीका ऐसा पतन हुआ कि उसे मजबूरन निर्वासित बनना पड़ा।

परन्तु जब समस्त संसारमें परिवर्तनका चक्र चल रहा था और संसारकी राजनीतिके रंगमंचपर नित्यप्रति नवीन मूर्तियाँ उदय होतीं और क्षण-मात्रमें अज्ञातमें विलीन हो जाती थीं, उस समय भी रूसके पर-राष्ट्र-विभागकी पतवार पकड़े हुए एक छोटीसी मूर्ति अचल भावसे बैठी थी। पिछले दस वर्षमें संसारमें जो भयंकर तूफान आये, राजनैतिक समुद्रमें जो उथल-पुथलकारी लहरें पैदा हुईं, उनका उस अचल मूर्तिपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह उसी दृढ़ भावसे अपने देशका जहाज अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रमें खेता रहा। उस दुबली-पतली मूर्तिका नाम जार्जी वैसेलिटनोविच चिचेरिन है।

चिचेरिन पिछले दस-ग्यारह वर्षसे रूसके वैदेशिक विभागका अध्यक्ष है। उसका क़द छोटा, शरीर दुबला, स्वभाव विनम्र और कपड़े ढीले-ढाले होते हैं। मास्को नगरके क्रेमलिन नामक स्थानके एक सीधे-सादे, टीमटाम-विहीन क्वार्टरमें बैठकर वह दस वर्षोंसे इस बातके लिये लगातार अथक परिश्रम कर रहा है कि संसारके अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें उसके बारहबाट देशको एक सम्मानीय स्थान प्राप्त हो। साधारणत: एक राज्यवाले दूसरे राज्यवालोंको जो चिट्ठियाँ लिखा करते हैं, वे बड़ी कुटिलता और मक्कारीपूर्ण भाषामें हुआ करती हैं, परन्तु चिचेरिनके पत्र लिखनेका ढंग एकदम खरा और सीधा है। उसमें लगी-लिपटी बातें नहीं होतीं। फल यह होता है कि रूसके पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके देशोंके वैदेशिक विभागोंके मेज़ोंपर चिचेरिनके पत्र बमके गोलेके समान जाकर फूटते हैं।

मालूम होता है कि विधाताने चिचेरिनको वैदेशिक राजनीति (Diplomacy) के लिए बनाया था। या यों कहिये कि वैदेशिक राजनीति चिचेरिनकी पुश्तैनी जायदाद है, क्योंकि जिस समय उसका जन्म हुआ था, उस समय उसका पिता पेरिसके रूसी राजदूतावासमें कौन्सिलर था। उसका जन्म सन् १८७२ में हुआ था। रूसके तमबोव नामक प्रान्तमें उसके पिताकी जागीर थी, वहीं चिचेरिनका बाल्यकाल बीता। उसके पिताकी मृत्यु उसके छोटेपनमें ही हो गई थी, अत: पिताके बाद वह अपने चचाकी संरक्षकतामें रहा। उसका चचा एक उदार विचारोंका दार्शनिक था। इस प्रकार चिचेरिनने एक उदारतापूर्ण और शिक्षित वातावरणमें शिक्षा पाई थी। उसने अपने पिताके ही पेशेकी शिक्षा प्राप्त की थी, और उसी पेशेको उसने ग्रहण भी किया था, परन्तु वैदेशिक राजनीतिकी कुटिलतापूर्ण शिक्षा ग्रहण करते समय

भी चिचेरिन संगीत और साहित्यका बड़ा प्रेमी था। आज दिन भी जब उसका स्वास्थ्य खराब रहता है, जब इतने बड़े राज्यके वैदेशिक विभागकी बागडोर उसके हाथमें है, जब समस्त पूँजीवादी देश उसके देशके शत्रु हो रहे हैं और उन सबसे रोज़मर्राके दाव पेंचोंकी चिन्ताका भार उसपर है, तब भी थोड़ा अवकाश पाते ही मन बहलानेके लिए चिचेरिन पुस्तकोंका ही सहारा लेता है। सुप्रसिद्ध जर्मन महाकवि गेटे उसे बहुत प्रिय है।

शिक्षा समाप्त करनेके बाद चिचेरिन रूसके वैदेशिक विभागमें नौकर हो गया, परन्तु निरंकुश ज़ारोंकी गुलामी उसकी महत्वाकांक्षाओंको पूरा न कर सकी। रूसके शिक्षित-समुदायके हृदयोंमें निरंकुश ज़ारशाहीके विरुद्ध धीरे-धीरे क्रान्तिकी जो आग सुलग रही थी, चिचेरिन उससे अनभिज्ञ न था। वह लोगोंके विचारों, आशाओं और आदर्शोंमें सम्मिलित था। इन्हीं बातोंके कारण थोड़े दिन बाद उसने नौकरीपर लात मार दी, देशको खैरबाद कहा और विदेशका रास्ता लिया। विदेशमें रूसी क्रान्तिकारियोंकी एक संस्था 'रशियन सोशल डिमाक्रेटिक पार्टी' के नामसे थी। चिचेरिन इस संस्थामें सम्मिलित हो गया और क्रान्तिकारी कार्योंमें भाग लेने लगा। सन् १९०२ में 'ओशन डिमाक्रेटिक पार्टी' की कान्फ्रेंसमें एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। पार्टीमें फूट पड़ गई। पार्टीके अधिकांश लोग कुछ नम्र विचारोंके थे, परन्तु उसमें एक छोटासा दल बड़े उग्र विचारोंका था। यह उग्र विचारवाली टुकड़ी अधिकांश (मेनशेविक) दलसे पृथक् हो गई, और 'बोल्शेविक' या अल्पांशके नामसे प्रसिद्ध हुई। चिचेरिन लेनिनके साथ इसी अल्पांश दलमें था।

सन् १९०३ से सन् १९१८ तक रूसके अन्य क्रान्तिकारियोंके साथ चिचेरिन भी महाकालके गर्तमें संसारके धक्के खाया किया। वे लोग विदेशोंमें भूख, प्यास, दरिद्रता, निर्वासन, राजदंड, मृत्यु आदि संसारकी समस्त कठिनाइयोंका सामना करते हुए लगातार अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उद्योग करते रहे। अन्तमें सन् १९१७ में ज़ारशाहीके पापोंका घड़ा फूट गया। रूसके पार्थिव ईश्वरके विरुद्ध क्रान्तिका ज्वालामुखी उबल पड़ा। इस ज्वालामुखीकी लपटें उठतीं देखकर रूसके समस्त निर्वासित पुनः रूसकी ओर चल पड़े। निर्वासित चिचेरिन भी, जो उस समय इंग्लैंडमें था, रूस जा पहुँचा।

केवल कुछ महीनोंके अनेकों परिवर्तनोंके बाद रूसमें लेनिनकी प्रधानता हुई। लेनिनको सबसे पहली चिन्ता यह हुई कि यूरोपियन महायुद्धसे कैसे छुटकारा पाया जाय। वह जर्मनीके साथ सन्धि करनेको तय्यार हो गया। इस सन्धिमें जर्मनीने रूससे अपनी मनमानी शर्तें की थीं, मगर लेनिनकी समझमें रूसका कल्याण इस सन्धिके करनेमें ही था; परन्तु लेनिनके दाहिने हाथ ट्राट्स्कीने, जो उस समय परराष्ट्र-सचिव था,* इस सन्धिपत्रपर दस्तखत करनेसे साफ इनकार कर दिया। चिचेरिन सन्धिमें जर्मनीकी ज्यादती स्वीकार करते हुए भी सन्धिको माननेके लिए तय्यार हो गया, और उसने तीसरी मार्च सन् १९१८के दिन रूसकी ओरसे इस सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर किये। इसके बादसे चिचेरिन लेनिनके साथ प्रत्येक बातमें सहयोग देता रहा।

जिस समय चिचेरिनने परराष्ट्र-विभागका भार ग्रहण किया, उस समय रूसका और बाहरी संसारका सम्बन्ध एकदम गड़बड़ीकी दशामें था। यूरोपके साम्राज्यवादी मित्र-राष्ट्र रूसके साम्राज्यवादियोंको गुप्त सहायता देकर रूसमें पुनः ज़ारशाही स्थापित करनेकी चेष्टामें थे। ट्राट्स्की इन रूसी साम्राज्यवादियोंका सामना करनेके लिए देशकी फौजोंको संगठित कर रहा था। उस समय चिचेरिनने मित्र-राष्ट्रोंके हस्तक्षेपके विरुद्ध प्रतिवाद किया। पहले यह प्रतिवाद नम्रता-पूर्ण था, परन्तु उत्तरोत्तर वह अधिक उग्र होता गया। अमेरिकाके प्रेसीडेन्ट विल्सनने रूसी जनताके प्रति खुलम-खुला सहानुभूति प्रकट की थी, अतः चिचेरिनको उनसे कुछ आशा थी, इसलिए उसने विल्सनको इस हस्तक्षेपको रोकनेके लिए बहुत गरमागरम पत्र लिखे थे।

सन् १९१९में पेरिसमें यूरोपके लड़ाकू राष्ट्रोंकी सन्धि

सभा एकत्रित हुई । इस सभामें यूरोपके तमाम हारे हुए राष्ट्रोंके भाग्यका निपटारा और जीतके मालका हिस्सा बाँट आदि हुआ, परन्तु इस कान्फ्रेन्समें भी रूसका प्रश्न हल न हो सका। स्वार्थी मित्र-राष्ट्रोंने रूसकी बोल्शेविक सरकारको रूसका शासक माननेसे इनकार कर दिया। उन्होंने केवल यह स्वीकार किया कि रूसके राजनैतिक क्षेत्रमें कई दल हैं और बोल्शेविक भी उन्हीं दलोंमेंसे एक दल है। उन्होंने रूसके प्रश्नका निपटारा करनेके लिए प्रिन्सेज़ आइलैण्डमें एक सभा बुलाई, जिसमें बोल्शेविकोंके साथ-साथ अन्य रूसी दलोंको भी निमन्त्रित किया गया था। चिचेरिनने इस बातका पक्का इरादा कर लिया था कि जैसे बने वैसे रूसको अन्तर्राष्ट्रीय मैदानमें लाना ही होगा, अतः उसने इस कान्फ्रेन्सका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। परन्तु अन्य रूसी दलोंने इस कान्फ्रेन्समें शामिल होनेसे इनकार कर दिया। लिहाज़ा कान्फ्रेन्स विफल हो गई। इधर मित्र-राष्ट्रोंको बोल्शेविक विचारोंके प्रचारका 'हौआ' खाये जाता था, इसलिए उन्होंने रूसकी समस्त सीमाओंपर ऐसा कड़ा घेरा डाल दिया, जिससे रूसका बाहरी संसारसे किसी तरहका राजनैतिक अथवा आर्थिक सम्बन्ध न हो सके।

अब चिचेरिनको बड़ी दिक्कतका सामना करना पड़ा। उसका सबसे पहला और मुश्किल काम था आर्थिक घेरेको तोड़ना और दूसरा काम था राजनैतिक बायकाटको मिटाना। लेनिनकी नीतिके अनुसार चिचेरिनने संसारका ध्यान रूसके आर्थिक महत्त्वकी ओर दिलाया। उसने संसारके देशोंको रूसके कच्चे माल और उसके बाज़ारोंका महत्त्व महानता समझाया। उसने मित्र-राष्ट्रोंसे व्यापारीके रूपमें लिखा-पढ़ी आरम्भ की, और उनसे कहा कि वे लोग केवल व्यापार ही जारी रखें तथा उसके लिए राजनैतिक झगड़ोंको स्थगित कर दें। यूरोपके समस्त राष्ट्र गत महायुद्धकी भयंकर आर्थिक कठिनाइयोंसे सँभलनेकी चेष्टा कर रहे थे, इसलिए उन्हें चिचेरिनका प्रस्ताव उचित जान पड़ा। सन् १९२० में मित्र-राष्ट्रोंने केनेस (Cannes) नामक स्थानमें यह निश्चय किया कि रूसका व्यापारिक बायकाट हटा लिया जाय। इस निर्णयके बाद ही सभी देशोंमें सोवियट रूससे व्यापारी सन्धियाँ करनेके लिए बातचीत शुरू हो गई।



चिचेरिन

मगर सोवियट सरकार केवल व्यापारी बातचीतसे सन्तुष्ट नहीं हुई। वह तो कुछ और ही चाहती थी। उसका मतलब था कि सब देशोंसे उसका साधारण राजनैतिक सम्बन्ध हो जाय, जिससे रूसको माल उधार मिलने लगे। इस समय रूसको साख (Credit)की सख्त ज़रूरत थी। रूसके इन दावोंको प्रकट करनेमें चिचेरिन उसका प्रधान वक्ता था। हरएक स्थानमें वह अपने इस दावेको घोषित किया करता था। लुसेन और जेनोआकी सभाओं (सन् १९२२) में वह रूसका प्रतिनिधि बन कर गया था। वहाँ उसने ऐसा व्यवहार किया, मानो वह किसी महानशक्तिका प्रतिनिधि हो। चिचेरिनको अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओंका बड़ा अच्छा ज्ञान है। उसकी राजनीति इस आर्थिक नींवपर स्थिर है इसी कारण जेनोआ और लुसेनकी सभाओंमें, लार्ड

कर्ज़न और लायड जार्जके समान चतुर प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिज्ञोंके मुक़ाबिलेमें भी वह तगड़ा पड़ता था।

चिचेरिनकी सबसे बड़ी विजय सन् १९२२ में रूस और जर्मनीके बीचमें सन्धि करनेमें हुई। यह सन्धि रैपालो नामक स्थानमें हुई थी। चिचेरिनके अथक परिश्रम और बुद्धिमत्ताका ही यह नतीजा है कि आज रूसकी बोल्शेविक सरकारको संसारके प्रायः दो दर्जन देशोंने स्वीकार कर लिया है।

इंग्लैण्डके अनुदार लोगोंको बोल्शेविकोंका 'हौआ' सबसे अधिक सताता है। उसका नाम सुनकर वे चिढ़ जाते हैं, इसलिए इंग्लैण्डने अब तक रूसकी सरकारको स्वीकार नहीं किया था। मि० मैकडानल्डकी पहली मज़दूर-सरकारने रूससे सम्बन्ध जोड़नेकी चेष्टा की थी, मगर वह असफल हुई। इस बार मि० मैकडानल्डकी इस दूसरी मज़दूर-सरकारने रूससे पुनः राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करनेका श्रीगणेश किया है। देखें, वह कहाँ तक सफल होता है।

चिचेरिनकी राहमें सबसे बड़ी कठिनाई कम्यूनिष्ट इंटरनेशनलकी कार्रवाइयाँ हैं। विदेशोंमें इस इंटरनेशनलके उद्देश्यों और हरकतोंसे अकसर सोवियट सरकारके हितोंको धक्का पहुँचता है। चिचेरिनने थर्ड इंटरनेशनलसे उसका कोई सम्बन्ध न होनेकी घोषणा भी की, परन्तु इसमें अब तक वह पूरी तौरसे सफल नहीं हुआ है।

चिचेरिनकी वैदेशिक नीति क्या है, वह भी उसीके शब्दोंमें सुन लीजिए। वह कहता है कि रूसका उद्देश्य है—"अपनी सीमाओंकी रक्षा करना तथा अपनी उपजका विकास करना।" इस नीतिको सफल करनेके लिए यह आवश्यक है कि रूसमें बाहरी और भीतरी दोनों तरहकी शान्ति स्थापित रहे। इस प्रकार चिचेरिनके नेतृत्वमें रूस इस समय शान्ति और निरस्त्रीकरणका सबसे बड़ा पोषक है। मित्र-राष्ट्रोंकी निरस्त्रीकरण-कान्फ्रेन्समें रूसने निरस्त्रीकरणका जो प्रस्ताव उपस्थित किया था, उसे देखकर सम्पूर्ण संसारके राजनीतिज्ञ दंग रह गये थे।

गत मास समाचार-पत्रोंमें समाचार निकला था कि बीमारी और अस्वस्थताके कारण चिचेरिनने वैदेशिक सचिवके पदसे इस्तीफ़ा दे दिया है।



महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री

[लेखक :—श्री भवविभूति भट्टाचार्य, एम० ए०, विद्याभूषण]

पंडित हरप्रसाद शास्त्रीका जन्म सन् १८५३ में नैहाटी ज़िला २४ परगनेके एक पण्डित कुटुम्बमें हुआ था। यह स्थान बंगालमें संस्कृत-विद्याके केन्द्र भाटपाड़ेसे एक मीलकी दूरीपर है। भाटपाड़ेकी ग्राम-पाठशालामें शिक्षा प्राप्त करनेके बाद बालक हरप्रसाद कलकत्ते चले आये और सरकारी संस्कृत-कालेजमें दाखिल हो गये। आपका विद्यार्थी-जीवन प्रारम्भसे ही बड़ा तेजस्वितापूर्ण रहा। संस्कृत-कालेजमें जो छात्र-वृत्तियाँ तथा पुरस्कार तेजस्वी विद्यार्थियोंके लिए रखे गये थे, उनमें कितने ही इन्हें प्राप्त हुए। फरवरी सन् १८७७ में आपने एम० ए० की परीक्षा दी, और आप फर्स्ट डिवीज़नमें पास हुए तथा उत्तीर्ण विद्यार्थियोंमें आपका नम्बर सर्वोच्च रहा। तबसे बराबर आपका सम्बन्ध 'एशियाटिक सोसाइटी-आफ़्-बंगाल' से चला आता है। कुछ दिनों तक आप उसके प्रधान भी रहे थे। स्वर्गीय राजा राजेन्द्रलाल मित्रके, जिन्होंने बंगालमें बड़ा महत्त्वपूर्ण अन्वेषण कार्य किया था, बाद इस क्षेत्रमें यदि किसीका नाम लिया जा सकता है, तो वह पं० हरप्रसाद शास्त्री ही हैं। आपके द्वारा किये हुए अन्वेषण-कार्यका यूरोपियन विद्वानोंमें बड़ा भारी सम्मान है। बहुत वर्ष हुए, आपने स्कूलोंमें पढ़ानेके लिए भारतवर्षका संक्षिप्त इतिहास लिखा था। इस इतिहासकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि इसमें पहले-पहल हिन्दू-कालका इतिहास सम्यक रीतिसे दिया गया था। शास्त्रीजीके पहले जिन लेखकोंने इस प्रकारकी पाठ्य-पुस्तकें लिखी थीं, उनमें हिन्दू-कालका नाम मात्रको ज़िक्र करके मुसलिम पीरियडसे वृत्तान्त प्रारम्भ किया था। शास्त्रीजीने इस ऐतिहासिक भूलको दुरुस्त किया। आपका लिखा हुआ यह ग्रन्थ लोक-प्रिय हुआ, और भारतके अनेक विश्वविद्यालयोंमें वह पाठ्य-पुस्तककी भाँति पढ़ाया जाने लगा। इस पुस्तकने आपको धन भी दिया और यश भी।

शास्त्रीजी शिक्षा-विभागमें उच्चसे उच्च सरकारी पदपर रहे हैं, और अपना कार्य बड़ी योग्यता-पूर्वक निबाहा है। कुछ दिनों तक आप बंगाल-लाइब्रेरीके पुस्तकाध्यक्षके पदपर भी रहे थे। फिर प्रेसीडेन्सी कालेजमें संस्कृतके मुख्य अध्यापकका भी कार्य आपने किया था। सन् १९०० से १९०८ तक आप सुप्रसिद्ध संस्कृत-कालेजके प्रिन्सीपल भी रहे थे। विद्यार्थियोंसे सदा ही आपको बड़ा स्नेह रहा है। संस्कृत-कालेजके छोटे-छोटे विद्यार्थियोंको पढ़ानेके लिए आप तय्यार रहते थे, और अपने कालेजके लगभग सभी विद्यार्थियोंका नाम जानते थे। यही नहीं, बल्कि प्रत्येक विद्यार्थीसे प्रेमपूर्वक बातचीत करके उसके हृदयको ग्रहण करनेकी कलामें आप बड़े निपुण थे। संस्कृत-कालेजके प्रत्येक विभागसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। समालोचनात्मक रीतिसे संस्कृत-साहित्य और संस्कृत-नाटकोंके पढ़ानेका ढंग पहले-पहल सम्भवतः आपने ही चलाया था। आपके विद्यार्थी सदा ही आपसे सन्तुष्ट रहते थे। जब आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयके संस्कृत-शिक्षक प्रोफेसर मेकडोनल भारतकी यात्रा करने आये थे, उस समय सरकारकी ओरसे शास्त्रीजी उनके साथ भारत-यात्रा करनेके लिए नियुक्त कर दिये गये थे। उस समय आपने अपने संस्कृत-कालेजके विद्यार्थियों द्वारा मालविकाग्निमित्रका अभिनय कराकर उन्हें दिखलाया था। दो हज़ार वर्ष पूर्व जैसे वस्त्र भारतमें पहने जाते थे, वैसे वस्त्र नाटकमें अभिनय करनेवाले छात्रोंके लिए बनवाये गये थे, और पर्दे भी उसी तरहके चित्रित किये गये थे। नाटकका अभिनय देखकर अध्यापक मेकडोनल साहब मुग्ध हो गये थे। बंगलामें आपकी प्रथम पुस्तक 'बाल्मीकिर जय' नामसे प्रकाशित हुई थी, जिसे सर्वसाधारणने बहुत पसन्द किया था। श्रीयुत बंकिमचन्द्रने भी इस पुस्तककी बड़ी प्रशंसा की थी। इसका अनुवाद अंग्रेज़ी, कनाड़ी तथा मराठी इत्यादिमें भी हो गया था।

सन् १९०८ में आपकी धर्मपत्नीका देहान्त हो गया, तबसे आपका सारा समय साहित्य-सेवामें ही व्यतीत हो रहा है। बंगला-साहित्य आपका बहुत ऋणी है। आपने प्रमाणों द्वारा यह बात सिद्ध कर दी कि बंगला-साहित्य ईसाकी छठवीं शताब्दीमें भी विद्यमान था। आपने बंगीय साहित्य-परिषद्के लिए प्रशंसनीय कार्य किया है, और वर्षों तक आप उसके प्रधान भी रहे हैं। आपकी देख-रेखमें परिषद्ने काफ़ी उन्नति की है। कुछ दिनों तक ढाका-विश्वविद्यालयमें आप संस्कृत-विभागके अध्यक्ष भी रहे थे। उक्त विश्वविद्यालयने सर्वप्रथम आपको ही 'डाक्टर' की उपाधि दी थी।

आजसे १८ वर्ष पहले ही आपको सरकारकी ओरसे 'महामहोपाध्याय' की उपाधि मिली थी। सन् १६११ में



महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री, एम०ए०, सी०आई०ई०

आप 'सी० आई० ई०' हुए। शास्त्रीजीके पाँच लड़के हैं। आपके प्रथम पुत्र श्री सन्तोष के. भट्टाचार्य बी० ई० इंजीनियर हैं, और मध्यप्रदेशकी एक मीका-खानके मैनेजर हैं। द्वितीय पुत्र श्रीयुत आशुतोष भट्टाचार्य, एम० ए०, बी० एल० वकालत करते हैं। तृतीय पुत्र डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी० बड़ौदाकी संस्कृत-लाइब्रेरीके अध्यक्ष हैं। चतुर्थ पुत्र बाबू परितोष भट्टाचार्य ठेकेदारीका काम करते हैं और पंचम पुत्र बाबू कालितोष भट्टाचार्य एम०ए० व्यापार करते हैं।

आजकल पं० हरप्रसाद शास्त्री एसियाटिक सोसाइटीकी संस्कृत-पुस्तकोंकी विवरणी तय्यार कर रहे हैं। विवरणी तय्यार करना बड़े अनुसन्धानका कार्य है। फिर भी ७८ वर्षकी उम्रमें आप ७।८ घंटे प्रतिदिन परिश्रम करते हुए आप इस कार्यका भलीभाँति सम्पादन कर रहे हैं।

शास्त्रीजीके दर्शन

(सम्पादकीय)

'विशाल-भारत' के साहित्यांकमें हमने एक विचार पाठकोंके सम्मुख रक्खा था, वह यह कि दो-तीन साथियोंको लेकर भारतवर्षकी तीर्थ-यात्रा की जाय। भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके वृद्ध विद्वानोंके दर्शन करके उनके आशीर्वाद ग्रहण करना ही इस यात्राका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। पंडित पद्मसिंह शर्माकी कृपासे अबकी बार ऐसे दो तीर्थोंके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ; एक तो काशीजीमें शर्माजीके पूज्य गुरु पं० श्री काशीनाथजीके और दूसरे कलकत्तेमें श्री हरप्रसादजी शास्त्रीके। संस्कृतके इन दोनों महा-विद्वानोंके दर्शन करके मनमें नाना प्रकारके विचार उत्पन्न हुए। जिस समय पंडित पद्मसिंहजीने अपने गुरुके चरण स्पर्श करके उनकी सेवामें अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक कुछ फलोंके साथ अपने दो ग्रन्थ—'पद्म पराग' और 'प्रबन्ध-मंजरी'—अर्पित किये। उस समयका दृश्य वास्तवमें दर्शनीय था। गुरुवर लगभग ७०।७२ वर्षके हैं और अपनी अगाध विद्वत्ताके लिए भारतवर्षमें प्रसिद्ध हैं। प्राचीन ढंगके पण्डितोंमें—जिनका मस्तिष्क ही विश्वकोषका काम देता है—गुरुवरका स्थान अत्युच्च है। अपने यशस्वी शिष्य पंडित पद्मसिंहजीको देखकर उनके चेहरेपर वैसे ही भाव थे, जैसे अपने सुयोग्य पुत्रको देखकर पिताके चेहरेपर होते हैं। आचार्य और शिष्यका वह श्रद्धापूर्ण व्यवहार हम कदापि नहीं भूल सकते। आजकलके शुष्क शिक्षकों और चालाक चेलोंके ज़मानेमें इस प्रकारके दृश्य दुर्लभ ही हैं।

पंडित पद्मसिंहजीकी आज्ञानुसार ही अभी उस दिन हमने संस्कृतके सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर हरप्रसादजी शास्त्रीके भी

दर्शन किये। श्री हृषीकेश भट्टाचार्यके सुपुत्र श्री भवविभूति विद्याभूषण शास्त्रीजीके शिष्य रह चुके हैं, हमारे साथ थे। हरिसन रोड और ऐमहर्स्ट स्ट्रीटके चौराहेके पास एक गलीमें शास्त्रीजीका मकान है और वहीं तिमंजिलेपर आप रहते हैं। आजसे २१ महीने पूर्व गिर पड़नेके कारण आपके चोट आ गई, जिससे आपकी जाँघ टूट गई, और अब आप चल-फिर नहीं सकते हैं। आराम-कुर्सीपर लेटे हुए ही आप लिखने-पढ़नेका काम करते रहते हैं। उपाधिधारी आदमियोंसे मिलनेमें वैसे ही संकोच होता है, इसलिए शास्त्रीजीकी सेवामें जाते हुए हमारे हृदयमें भी संकोचका भाव था। एम० ए०, पी-एच० डी०, सी० आई० ई०, महामहोपाध्याय इत्यादि उपाधियोंसे हृदयमें कुछ भयका संचार हो गया था, और साथ ही यह भी आशंका थी कि अन्वेषण-कार्य करनेवाले जैसे शुष्क होते हैं, शास्त्रीजी भी वैसे ही होंगे। पंडित पद्मसिंहजीकी आज्ञा थी कि शास्त्रीजीसे तुम ज़रूर मिल लेना, इसलिए महज़ आज्ञा पालनके विचारसे मैं वहाँ गया था, पर वहाँ जाकर दृश्य ही दूसरा देखा। शास्त्रीजी सचमुच बड़े सहृदय और हिन्दी-प्रेमी प्रतीत हुए। हम दोनोंने उनके चरण छुए और बैठ गये।

श्री भट्टाचार्यजीने मेरा परिचय कराया। फरवरीका 'विशाल-भारत' मैंने उनकी सेवामें अर्पित किया। इसी अंकमें शास्त्रीजीकी उस अंग्रेज़ीकी भूमिकाका अनुवाद, जो उन्होंने पं० हृषीकेश भट्टाचार्यकी 'प्रबन्ध-मंजरी'के लिए लिखी थी, छपा था। आपने उसे पढ़ना शुरू किया। 'लगातार' शब्दको पढ़कर आप बोले—"इसका क्या अर्थ है? हिन्दी-पुस्तकोंमें मैंने इसे नहीं पढ़ा।" मैंने लगातारके माने बतलाते हुए निवेदन किया—"यह शब्द प्रचलित भाषामें आता है, शायद उर्दूका है।" शास्त्रीजीने अपने शिष्य भवविभूतिजीसे कहा—"तुमने अपने पिताजीका किस समयका चित्र इस पत्रमें छपाया है? मैंने तो उन्हें तरुण देखा था। इस चित्रसे तो मैं उन्हें पहचान भी न सका।" तत्पश्चात् शास्त्रीजीने 'विशाल-भारत' के चित्र देखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भसे अन्त तक लगभग सभी चित्र देखे। अखिल भारतीय महिला-मंडलके विषयमें एक सचित्र लेख इसी अंकमें छपा है। आपने उनके चित्र भी देखे। उसमें श्रीमती सरोजिनी देवी, श्रीमती पी० के० सेन, श्रीमती राजेश्वरी नेहरू इत्यादिके चित्र छपे हैं। श्रीमती पी० के० सेनके चित्रको देखकर कहा—"यह तो किसी बंगाली महिलाका है?" मैंने पढ़कर नाम बतलाया। फिर आपने अपने शिष्यसे पूँछा—"ये कौन हैं?" हम दोनों ही श्रीमती पी० के० सेनके कार्यसे विशेष परिचित न थे, इसलिए कुछ उत्तर न दे सके। एक अन्य महिलाके चित्रको देखते हुए आपने कहा—"उनका चेहरा तो Dravidian (द्राविड़ देशवासियों जैसा) प्रतीत होता है। मैंने उनका परिचय दिया। फिर उनके माथेपर बिन्दी देखकर आपने कहा—"तुम्हें बिहारीका वह दोहा याद है—

"कहत सबै बेंदी दियें आँक दसगुनौ होत।
तिय लिलार बेंदी दियें अगनित बढ़त उदोत।'..."

मैंने यह दोहा पढ़ा तो था, पर मुझे याद नहीं था। बड़ी लज्जा मालूम हुई। उस समय यह बात समझमें आ गई कि हिन्दीके प्रत्येक सम्पादकको तुलसी-कृत रामायण, बिहारी-सतसई इत्यादि खास-खास ग्रन्थ तो अवश्य अच्छी तरह पढ़ लेने चाहिए। शास्त्रीजीने कहा—'मैंने तीस वर्ष पहले सतसई पढ़ी थी। प्रारम्भसे अन्त तक ७०० दोहे पढ़े थे, और अच्छी तरह पढ़े थे। मुझे वह इतनी पसन्द आई कि उसके कई दोहे याद रह गये हैं। इतने वर्ष बाद भी आज यह दोहा याद आ गया।" मैंने दिलमें सोचा कि आज यह परीक्षा बिलकुल बिना पूर्व-सूचनाके हो गई और उसमें भी फेल हो गया! शास्त्रीजी दिलमें क्या खयाल करेंगे कि हिन्दी-पत्रके सम्पादकोंका साहित्यिक ज्ञान कितना अल्प होता है। यह मुझे स्वप्नमें भी आशंका नहीं थी कि ७८ वर्षके वृद्ध आचार्य संस्कृत विद्वान 'बिहारी-सतसई'में मेरी परीक्षा लेंगे, नहीं तो सात महीनेमें पंडित पद्मसिंहजीसे 'बिहारी-सतसई' ही पढ़ लेता। खैर, मैंने बात साधते हुए

कहा—"पंडित पद्मसिंहजी विहारीके सर्वश्रेष्ठ टीकाकार हैं। वे यदि आज यहाँ आते, तो आपके सतसई-प्रेमको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते।" श्री भवविभूतिने कहा—"वही पंडित पद्मसिंहजी, जिन्होंने पिताजीके संस्कृत निबन्धोंका संग्रह किया है।" मैंने सोचा चलो, परीक्षा-संकट दूर हुआ। फिर शास्त्रीजीने कहा—"विहारी ही ने तो जयपुर-नरेशको, जो किसी लड़कीपर मुग्ध हो गये थे, वह दोहा बनाके भेजा था।" यह दोहा सौभाग्यवश मुझे याद था, मैंने फ़ौरन कह सुनाया—

"नहिं पराग नहिं मधुर-मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही स्यों रम्यौ, आगे कौन हवाल॥"

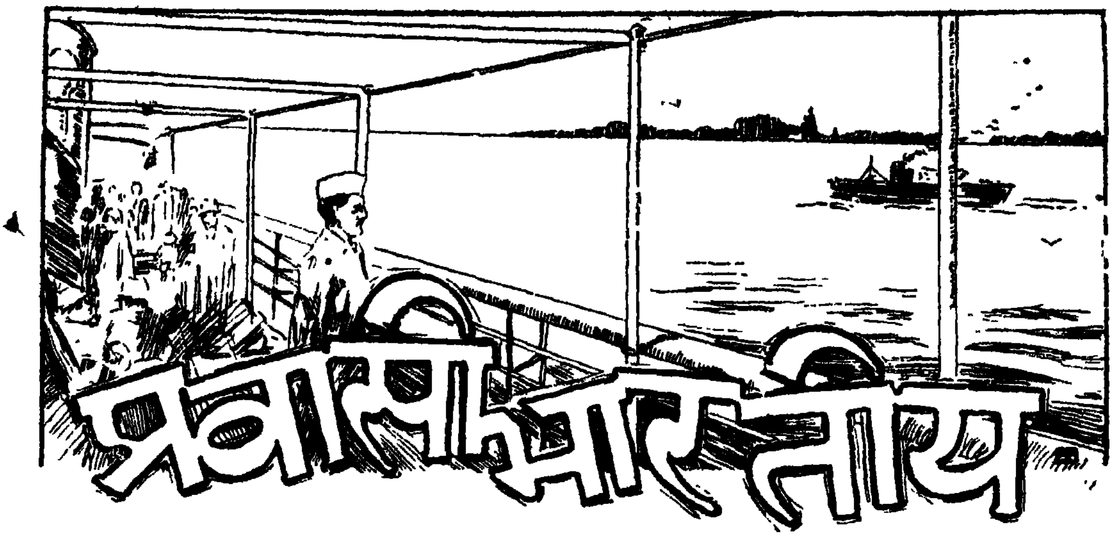
भवविभूतिजीके लिए इसका अर्थ भी मैंने किया। मैंने सोचा कि दो सवालोंमें एक तो कर लिया। मनको बड़ा सन्तोष हुआ, पर अभी परीक्षाका संकट टला नहीं था। शास्त्रीजीने कहा—"विहारी किसके समयमें हुए थे—जहाँगीरके या शाहजहाँके?" मैंने कहा—"यह तो कुछ पता नहीं।" "उन राजाका नाम क्या था? वे कौनसे जयसिंह थे?" मैंने कहा—"हाँ, वे राजा जयसिंह थे।" कौनसे राजा जयसिंह थे, इसका मुझे पता ही नहीं था। पंडित पद्मसिंहजीको मैंने मन-ही-मन कोसा कि 'विहारी-सतसई' और इतिहासकी यह परीक्षा देनेके लिए मुझे कहाँ फँसा दिया। आखिरकार इस परीक्षा-संकटको टालनेके लिए मैंने निवेदन किया—"मेरा मुख्य विषय तो प्रवासी भारतीय है—'बृहत्तर भारत' (Greater India)। डाक्टर कालिदास नाग तो प्राचीन विशाल भारतका काम करते हैं, और मैं आधुनिक विशाल भारतका।" शास्त्रीजीने कहा—"विषय तो बड़ा मनोरंजक है। मनमें आता है कि तुम्हारे विषयके ग्रन्थ पढ़ूँ, पर अब वृद्ध हो गया। डाक्टर कालिदास नाग तो मुझे दो बार अपनी 'ग्रेटर इण्डिया सोसाइटी'के अधिवेशनमें ले गये थे।"

७८ वर्षका वह वृद्ध—इस हालतमें भी, जब २१ महीने पहले उनकी जाँघ टूट चुकी है और जब वे कहीं चल फिर भी नहीं सकते—संस्कृत ग्रन्थोंके अनुशीलन और अन्वेषणमें लगा हुआ है! हँसते हुए उन्होंने कहा—"You know, I had a fall and broke my thigh." (मैंने गिरकर अपनी जाँघ तोड़ ली)। जो आदमी ऐसी कष्टप्रद दुर्घटनाओंका हँसते हुए ज़िक्र कर सकता है, वह सचमुच असाधारण है।

संस्कृत-ग्रन्थोंके इण्डियन ऐण्टीक्वेरी इत्यादिके समूहके समूह अलमारीमें रक्खे हुए थे। एक लेखक सामने बैठा हुआ था। उसे बोलकर वे कुछ लिखाना चाहते थे। उनके कार्यमें बाधा न पड़े, यह सोचकर हम लोग नमस्कार करके चल दिये। चलते वक्त मैंने कहा—"एक अनुमति चाहता हूँ, वह दोहा जो आपने कहा था, उसे मैं अपने लेखमें उद्धृत करूँगा।" शास्त्रीजीने हँसते हुए कहा—"उसे शुद्ध कर लेना। मार्थेपर हिन्दी देखकर तीस वर्ष पहलेकी बात याद आ गई। उसका पाठ शायद ठीक नहीं होगा।"

मैंने कहा—"हम हिन्दीवालोंके लिए यही कम गौरवकी बात नहीं है कि आप सतसईके इतने प्रेमी हैं।" यह कहकर मैं चला आया। पाठ मैंने शास्त्रीजीका ही दे दिया है। 'विहारी-सतसई' यहाँ 'विशाल-भारत'के पुस्तकालयमें है भी नहीं।

अब एक बात मैंने अच्छी तरह समझ ली है, यानी जब कभी ऐसी तीर्थ-यात्रा करनी हो तो साहित्य-प्रेमी विद्वानोंको साथ ले जाना चाहिए; नहीं तो कभी-कभी कठिन परीक्षा हो जानेका खतरा है।



पूर्व-अफ्रिकामें आर्यसमाज

[लेखक—श्री अविराम, बी० ए०]

उन्नीसवीं शताब्दीमें ऋषि दयानन्दने वैदिक धर्मका शुद्ध रूप प्रकट करके उसका द्वार सारे संसारके लिए खोल दिया, और आर्यसमाजका एक नियम सारे संसारका हित करना और विद्याका फैलाना निश्चित किया। सौभाग्यवश यह भाव आर्यसमाजियोंके अन्दर भली प्रकार प्रविष्ट हो चुका है और यह उनके आर्यत्वका मुख्य चिह्न है। एक आर्यसमाजी जहाँ कहीं भी होगा, अपने धर्मको दूसरों तक ले जानेका प्रयत्न करेगा। यह उसके जीवनका मुख्य उद्देश्य है, और इसमें वह बड़े आनन्दका अनुभव करता है। आर्यसमाजकी स्थापनाके पश्चात् आर्यसमाजी जिस किसी उपनिवेशमें भी अपनी जीविकाके लिए गये हैं, उन्होंने वहाँ समाज संगठित करनेका प्रयत्न किया है। फिजी, मारीशस, अफ्रिका, बर्मा, मेसोपोटामिया आदि सभी स्थानोंमें ऐसा ही हुआ है।

इस लेखमें मैं केवल पूर्व-अफ्रिकामें आर्यसमाजकी स्थितिके सम्बन्धमें कुछ लिखना चाहता हूँ। पूर्व-अफ्रिकाकी अवस्था दूसरे उपनिवेशोंसे भिन्न है। इस प्रान्तमें पाँच सालके ठेकेवाले कुली नहीं गये हैं, प्रत्युत जो भी गये हैं, स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यापार या नौकरी करनेके लिये गये हैं, अतः इस स्थानमें भारतीय प्रायः मध्यम श्रेणीके हैं। उनमेंसे बहुत अपने परिश्रम और योग्यतासे बड़े धनवान और प्रतिष्ठित हो गये हैं। उनके भीतर मातृभूमिके लिए बहुत प्रेम है, और उस प्रेमका प्रत्यक्ष प्रमाण उन्होंने यहाँकी संस्थाओंके लिए लाखों रुपये चन्दा देकर दिया है। केनिया कालोनीमें आर्यसमाजकी स्थापना २५ वर्ष पहले हो गई थी, परन्तु खेद और दुःखके साथ कहना पड़ता है कि वहाँके आर्यसमाजके संचालकोंकी नीति उदारता, दूरदर्शिता, गम्भीरता और धर्मके वास्तविक तत्त्वोंपर अवलम्बित नहीं थी, इसका परिणाम यह हुआ कि नैरोबीमें आर्यसमाजी और सनातनधर्मी दो परस्पर विद्वेषी कट्टर दल हो गये हैं। वहाँ इस नीतिसे इतना मनो-मालिन्य और कलह उत्पन्न हुआ है, जिसका उदाहरण भारतमें भी कठिनतासे मिलेगा। जो लोग समुद्र-यात्रा करके जाते हैं, स्वभावतः वे छूतछात और जात-पांतके पुराने संस्कारोंको छोड़ देते हैं, और बिना प्रयत्नके ही उनकी प्रवृत्ति आर्यसमाजकी तरफ़ हो जाती है। यदि प्रेम और उदारताके साथ उनके लिए समाजका द्वार खोल दिया जावे और समाजके पास लोगोंमें धार्मिक भाव पैदा करनेका साधन हो, तो उपनिवेशोंमें आर्यसमाजके विरुद्ध कोई संस्था स्थापित नहीं हो सकती; परन्तु केनिया कालोनीके प्रमुख स्थान नेरोबीमें ऐसा नहीं हो सका, बल्कि इससे उल्टा ही कार्य हुआ। वहाँ आर्य-

समाजने एक संकीर्ण-सम्प्रदायका रूप धारण किया। उनके सदाचारकी सबसे बड़ी कसौटी मांस-भक्षण-निषेध रही। मांसाहारीके भीतर वे किसी गुणकी कल्पना कर ही नहीं सकते थे, अतः वह समाजका अंग हो ही नहीं सकता था। हाँ, अगर एक मूर्ख और अन्य अवगुणोंको रखनेवाला भी यदि मांसाहारियोंके विरुद्ध दिन-रात घृणाका भाव प्रकट करता रहे, तो वह उनके समीप एक अच्छा आर्यसमाजी था! समाजका सबसे बड़ा बल बाहरके कर्मकाण्ड और मानने मनवानेपर था। उन्होंने इस बातकी चिन्ता नहीं की कि धर्मके जो विश्वव्यापी नियम—सत्य, प्रेम, सरलता, सात्विक सेवा आदि—हैं, वे कहाँ तक उनके अन्दर मौजूद हैं।

शिक्षाके सम्बन्धमें भी उन्होंने उसी संकुचित नीतिका अवलम्बन किया। स्वयं सब-के-सब अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त होने पर भी और उसके द्वारा अपनी आजीविका उपार्जन करते हुए भी साम्प्रदायिक भावसे प्रेरित होकर उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा-पद्धतिसे घृणा की, और साथ ही अपनी कोई शिक्षा-संस्था भी नहीं खोली। परिणाम यह हुआ कि उनके बच्चे गवर्मेन्ट स्कूलमें केवल अंग्रेज़ी और उर्दू पढ़ते हुए देव-भाषा नागरीके दर्शनसे भी वंचित रहे! अन्तमें वहाँके समाजियोंने कालोनीकी अवस्थाको न देखते हुए किसी जंगलमें गुरुकुल ही खोलनेका निश्चय किया। उसके लिए उन्होंने पाँच लाख शिलिंगकी अपील की। फलतः न वह गुरुकुल बना और न दूसरी संस्था खुल सकी। आर्यसमाज नैरोबीके लिए एक कन्या-पाठशाला चलाना कोई विशेष गौरवकी बात नहीं है, क्योंकि सिक्खों, गुजरातियों, सनातनियों, आगाखानियों—सबके इस प्रकारके स्कूल खुले हुए हैं, और वे भली प्रकार उन्हें चला भी रहे हैं। इन सब अवस्थाओंको देखकर मेरी उपस्थितिमें नैरोबीमें एक और समाज खोला गया; ताकि लोगोंको आर्य-समाजका उदार एवं विश्वव्यापी भाव दिया जाय और परस्परके वैमनस्यको कम किया जाय। उसके लिए सरकारसे भूमि मिल चुकी है, और शायद मन्दिर भी बन गया है। यह नया मन्दिर नैरोबीमें नगारा रोडपर भारतीय कारटरके मध्यमें है। पास ही हाई स्कूल, वेटरनरी हास्पिटल तथा सरकारी नौकरोंके निवास-स्थान हैं। इस समाजकी सफलता तथा सत्ता सार्थक तभी होगी, जब यह वैदिक धर्मका विशाल और उदार भाव लोगोंके सम्मुख रखकर सबको अपनी ओर आकर्षित करेगा।

कुछ आर्यसमाजी वैदिक धर्मके प्रचारार्थ तथा पालनार्थ यह आवश्यक समझते हैं कि वैदिक कालकी परिस्थिति उत्पन्न की जाय। उसी प्रकारकी भूमि तथा तपोवनके जंगल हों, और उसी प्रकारकी हमारी वेश-भूषा और रहन-सहन हो, और जब तक ऐसा न हो, तब तक हम वैदिक जीवनसे शून्य समझे जाते हैं। वह यह भूल जाते हैं कि वह भूत काल वापस नहीं आ सकता। वर्तमान कालमें बहुतसी जातियोंके संघर्षसे जीवनकी नई समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। हमारी दिनचर्या बहुत-कुछ परिवर्तित हो गई है, और वह पूर्णतया हमारे अधीन भी नहीं है। सोचना यह है कि आया हमारी इस परिवर्तित परिस्थितिमें भी वैदिक धर्मका पालन हो सकता है या उन प्रदेशों और जातियोंमें जिनका रहन-सहन हमारे समान नहीं है, वैदिक धर्मका प्रचार हो सकता है? स्वामी दयानन्दका यह विश्वास था कि इस धर्मका सर्वत्र और सब कालोंमें आचरण हो सकता है, परन्तु इसके लिए वे यह आवश्यक नहीं समझते थे कि सबके बाह्य रूप-रंग तथा भिन्न-प्रकृतिके लोगोंके रहन-सहनको एक प्रकारका किया जाय। हमारे वैदिक धर्मके बहुतसे ऐसे आवश्यक और बुनियादी सिद्धान्त हैं, जिनको बहुत सख्यामें दुनियाँ स्वीकार नहीं करती। उदाहरणके लिए, आत्माका नित्यत्व, पूर्व तथा पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त, आश्रम-व्यवस्था तथा ऐसी ही दूसरी बातें। क्या हम इन सिद्धान्तोंका उस समय तक प्रचार नहीं कर सकते, जब तक इंग्लैण्ड या अमेरिका-निवासी हमारे समान प्रातः स्नान करके और धोती बाँधकर सिद्धासनपर नहीं बैठें या वे हमारे समान दाल शाक रोटीका भोजन ग्रहण नहीं करें? यदि हमारा ऐसा ही विश्वास है, तो यह वैदिक धर्म कभी भी संसारका धर्म

नहीं हो सकता। यह एक अल्प भारतीय समुदायका धर्म हो सकता है। विदेशकी बात जाने दीजिए, स्वयं भारतवर्षमें बंगाल एक बड़ा दिव्य प्रान्त है। यहाँके प्राय: सभी ब्राह्मण-अब्राह्मण मत्स्य-मांसका प्रयोग करते हैं और यह उनके आहारका एक शीघ्र न टूटनेवाला अंग हो गया है, तो क्या बंगालमें वैदिक धर्मका प्रचार तब तक नहीं हो सकता, जब तक बंगाली लोग मछली खाना नहीं छोड़ेंगे? यदि किसी महाशयकी ऐसी धारणा है तो उन्हें वैदिक धर्मके सम्बन्धमें लम्बे-चौड़े स्वप्न देखना छोड़ देना चाहिए।

इसी प्रकारकी संकुचित मानसिक अवस्थाने उपनिवेशोंमें परस्पर घृणा और विद्वेषकी अग्नि प्रचण्ड की है और हिन्दू-समुदायको दो-तीन कट्टर दलोंमें विभाजित कर दिया है। यह आवश्यक है कि जो लोग धर्म-प्रचारार्थ उपनिवेशोंमें जायँ, वे इन बातोंके सम्बन्धमें पूर्ण आलोचना करें और उनकी शिक्षा भी उदार, विस्तृत तथा सामयिक होनी चाहिए। नहीं तो वे लाभके स्थानमें बाहर जाकर हानि ही करेंगे।

उपनिवेशोंके लिए एक बड़ी आवश्यकता है कि जहाँ वे लाखों रुपया यहाँकी संस्थाओंको देते हैं, वहाँ अपने लिए भी उन्हें कुछ प्रबन्ध चाहिए। भारतके उच्चकोटिके विद्वान बहुत कालके लिए बाहर नहीं जा सकते। उनमें बहुतोंको यहाँ अपने कर्तव्य पालन करने पड़ते हैं, और उनके पास विदेश-यात्राके साधन भी नहीं हैं। यदि कोई ऐसी निधि हो, जिससे प्रत्येक वर्ष इस प्रकारके उच्चकोटिके विद्वान तीन मासके लिए विशेष-विशेष उपनिवेशोंका भ्रमण कर सकें और वह वहाँ पूर्ण परिश्रमसे तय्यार किये हुए व्याख्यान अंग्रेज़ी तथा हिन्दीमें दे सकें, तो बहुत लाभ होगा। यहाँके विद्वानोंको बाहरका परिचय होगा, वे वहाँकी अवस्थाके अनुसार परामर्श दे सकेंगे और बाहरके लोगोंको प्रत्येक वर्ष मातृभूमिकी सामाजिक और धार्मिक जाग्रतिके समाचार मिलते रहेंगे। यदि वहाँ किसी संकुचित या स्वार्थी प्रचारकने किसी प्रकार लोगोंको कुपथपर डाला होगा, तो उसका भी शीघ्र संशोधन हो सकेगा। मेरे विचारमें यह एक ऐसा साधन है, जिससे उपनिवेशोंमें धर्मका प्रचार ठीक मार्गपर डाला जा सकता है। स्थानीय आवश्यकतानुसार प्रचारक तो होंगे ही, परन्तु ये उच्चकोटिके विद्वान थोड़े समयके लिए भी जाकर उनको परामर्श दे सकेंगे और उनकी समस्याओंका समाधान कर सकेंगे और वहाँ भारतीयोंसे भिन्न जातियोंके लोग भी उनके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान सुनकर वैदिक धर्मकी ओर आकर्षित होंगे।

[इस विषयपर अपने विचार हम फिर कभी प्रकट करेंगे।
—सम्पादक]

स्वामी राममनोहरानन्द सरस्वती

फिजीके पत्रोंमें यह समाचार पढ़कर कि स्वामी राममनोहरानन्दजीका देहान्त हो गया! हमें खेद हुआ, स्वामीजी आजसे १७।१८ वर्ष पहले फिजी गये थे, और उन्होंने वहाँ आर्यसमाजका कार्य बड़े उत्साहके साथ उठाया था। यद्यपि स्वामीजी विशेष विद्वान नहीं थे, और संस्थाओंके संचालनका उन्हें काफ़ी अनुभव भी नहीं था—इसी कारण उन्हें



स्वर्गीय स्वामी राममनोहरानन्द सरस्वती

अपने उद्देश्यमें विशेष सफलता न मिली—फिर भी जो थोड़ा-बहुत कार्य उन्होंने किया, उसके लिए उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए। खेदकी बात है कि वृद्धावस्थामें विवाह करके स्वामीजीने फिजीकी साधारण जनताकी सहानुभूति खो दी थी। वे यह नहीं समझ सके कि सुधारकका मार्ग तलवारकी धारसे भी अधिक भयंकर है। कभी-कभी एक ग़लती ही सारे जीवनके कार्यको नष्ट कर देती है। विदेशी लोग भारत तथा आर्यसमाजके विषयमें अपनी धारणा उन उपदेशकों तथा शिक्षकोंसे ही करते हैं, जो समय-समयपर वहाँ जाया करते हैं। स्वामी राममनोहरानन्दजीके दृष्टान्तसे उनके हृदयमें आर्यसमाजके प्रति श्रद्धा घटी होगी या बढ़ी, इस नाजुक प्रश्नपर हम कुछ नहीं लिखना चाहते। अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें वे ईसाई हो गये थे। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति प्रदान करे, यही हमारी प्रार्थना है।

—

ब्रिटिश-गायना-प्रवासी भारतीयोंके विवाह-सम्बन्ध

ब्रिटिश-गायनाके एजेन्ट-जनरलकी ओरसे निम्न-लिखित इश्तिहार वहाँके सरकारी गज़टमें प्रकाशित हुआ है—

नोटिस

"भारतीयोंको सावधान होना चाहिए एक नये विवाह कानूनके विषय अर्थात् धारा (आरडिनान्स) अंक ४२, १६२६॥

भारतीय जोकि अपने धर्म और व्याक्तिक रीत्यानुसार विवाह कर चुके हैं इस नये कानूनके कार्यमें आनेसे पूर्व अर्थात् ४ तारीख जनवरी महीने सन् १६३० ई०के पूर्व किन्तु जो अपने विवाह नहीं रजिस्टर करवाये हैं सो अब वे ऐसे कर सकते हैं यदि विवाहके समय कुछ रुकावट न था अब कुछ रुकावत न हो और वे अभी पति-पत्नी सदृश रहते हों।

उनको केवल इमिग्रेशन एजेन्ट जनरलके सामने जाना है और अपने विवाहका विवरण करना है। इस विवरणके लिए ४ तारीख जनवरी महीने सन् १६३० ई०से एक वर्ष समय दिया जाता है।

सूचनाका फार्म (कागज़) छपा हुआ अंग्रेज़ी नागरी और उर्दूमें आंचनेपर इमिग्रेशन दफ्तर जार्जटौन न्युअमस्टरडाम और अनदरनीभिंगमें मिल सकता है उन मनुष्योंको जो चाहते हैं विवाह करनेके लिए अपने धर्म्म और व्याक्तिक रीत्यानुसार उपरोक्त नये कानूनके कार्य्यमें आनेके पश्चात्।

अर्थर पच हिल इमिग्रेशन एजेण्ट
जनरल इमिग्रेशन डिपार्टमेंट।
६ जनवरी १६३० ई०।"

इस नवीन क़ानूनसे एक बड़ी भारी बाधा जो वहाँके भारतीयोंके वैवाहिक सम्बन्धके विषयमें थी, दूर हो जायगी। इसके पहले अपनी धार्मिक रीतिके अनुसार किये गये विवाह क़ानूनन जायज़ नहीं समझे जाते थे, पर अब रजिस्ट्री करा लेनेपर वे विवाह ठीक समझे जायँगे। मि० ऐण्ड्रूज़को इस क़ानूनके पास करानेके लिए बड़ा उद्योग करना पड़ा और तदर्थ हम उनके कृतज्ञ है। वे अपने १२ फरवरीके पत्रमें लिखते हैं—(१२ फरवरी मि० ऐण्ड्रूज़का जन्म दिवस है)—"मुझे खयाल नहीं पड़ता कि मैंने ब्रिटिश-गायना प्रवासी भारतीयोंके विवाहसे सम्बन्ध रखनेवाले नये क़ानूनका नोटिस तुम्हें भेजा या नहीं। इस क़ानूनके लिए मुझे काफ़ी परिश्रम करना पड़ा था। अब यह क़ानून पास हो गया है। भला, इससे बढ़िया उपहार अपने जन्म-दिवसपर मुझे और क्या मिल सकता था? यदि आज मेरी माता जीवित होतीं और उन्हें यह खबर सुनाई जाती कि असंख्य हिन्दुस्तानी माता-पिताओंको, जिनकी सन्तान क़ानूनन नाजायज़ करार दी जा रही थीं, इस नवीन क़ानूनसे बड़ी सुविधा होगी, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती।"

यह नोटिस हमने ब्रिटिश-गायनाकी ही भाषामें ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया है। वहाँकी सरकारसे हमारा यह अनुरोध है कि इमीग्रेशन-आफिसमें एक ऐसा क्लार्क रखे, जो अंग्रेज़ीसे शुद्ध हिन्दीमें अनुवाद कर सके।

स्वदेश

[लेखक :—श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक']

रातके आठ बज चुके हैं।

केपटाउन (दक्षिण-अफ्रिका) के एक भवनके छोटे कमरेमें तीन यूरोपियन बैठे हैं। बीचमें मेजपर शराबकी एक बोतल, तीन-चार सोडाकी बोतलें और तीनों व्यक्तियोंके सम्मुख रक्तवर्ण मदिरासे भरा हुआ एक एक गिलास रखा है। तीनों व्यक्ति मदिरा पान कर रहे हैं, और परस्पर वार्त्तालाप भी कर रहे हैं। एक कह रहा है—"आजके लेक्चरने मुझपर बड़ा प्रभाव डाला है। वास्तवमें यहाँ जितने कम हिन्दोस्तानी रहें, हम लोगोंके लिए अच्छा है।"

दूसरा बोला—"निस्सन्देह! जहाँ तक सम्भव हो, हिन्दोस्तानियोंको यहाँसे निकाल बाहर कराना चाहिए।"

तीसरेने कहा—"लेक्चरमें कही गई एक दलील बड़ी जबरदस्त थी—याद है?"

—"हाँ, याद क्यों नहीं है। हिन्दोस्तानियोंकी संख्या यहाँ बढ़ रही है। यदि इसी प्रकार बढ़ती गई, तो एक दिन वह आवेगा कि ये लोग ऊधम मचावेंगे और प्रत्येक बातमें हम लोगोंकी बराबरी करेंगे।" दूसरेने कहा।

—"अभी ऊधम मचा रहे हैं, प्रत्येक बातमें बराबर अधिकार माँग रहे हैं।" पहला बोला।

—"और जब कि इनकी तादाद थोड़ी है,—जब अधिक हो जायँगे, तब तो हम लोगोंका खाना-पीना हराम कर देंगे, इसलिए सबसे अच्छी बात यह है कि इन्हें जिस तरह भी सम्भव हो, यहाँसे नौ-दो ग्यारह करना चाहिए। मैं तो अपने भारतीय नौकरको हिन्दुस्तान पैक किये देता हूँ।" दूसरा बोला।

—"और मैं भी!" तीसरेने कहा।

—"ईश्वरको धन्यवाद है कि मेरे यहाँ कोई हिन्दुस्तानी नौकर नहीं है।" पहला बोला।

दूसरे व्यक्तिने मदिराकी बोतल उठाकर गिलासमें मदिरा ढालनी चाही, परन्तु वह खाली हो गई थी। यह देखकर उसने मेजपर रखी हुई घंटी बजाई। एक क्षण पश्चात् ही एक भारतीय बैरा उपस्थित हुआ। साहबने कहा—"दूसरी बोतल लाओ।"

भारतीय बोतल लेने चला गया। पहला व्यक्ति बोला—"इससे जरा पूछकर तो देखो—जानेके लिए तैयार है या नहीं?"

दूसरा व्यक्ति जो मकान-मालिक था, बोला—"अब काफ़ी रुपया मिलेगा, तो अवश्य तैयार हो जायगा।"

इसी समय भारतीय बैरा बोतल ले आया। उसने बोतलसे मदिरा गिलासोंमें ढालनी चाही, पर साहबने उसे हाथके इशारेसे रोक दिया, और कहा—"अभी रख दो।"

बैराने बोतल मेजपर रख दी और जानेके लिए उद्यत हुआ। हठात् साहब बोल उठे—"सुन्दर सिंह!"

भारतीय शिष्टता-पूर्वक खड़ा होकर बोला—"यस सर!"

—"तुम्हारे मनमें कभी हिन्दोस्तान जानेकी इच्छा होती है?"

सुन्दर सिंह अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ीमें बोला—"हाँ, हुज़ूर कभी-कभी तो होती है।"

तीसरे साहब बोले—"होनी ही चाहिए। मातृभूमिको देखनेकी इच्छा किसे न होगी।"

गृह-स्वामीने कहा—"तो, यदि तुम जाना चाहो तो तुम्हें वहाँ भेज सकता हूँ।"

सुन्दर सिंह कुछ क्षण तक मौन रहकर बोला—"परन्तु मैं वहाँ जाऊँगा किसके पास? मैं वहाँ किसीको जानता नहीं। यहाँ पैदा हुआ। हिन्दोस्तानका नाम ही नाम सुनता हूँ—देखा तो कभी है नहीं।"

—"परन्तु वह तुम्हारी मातृ-भूमि है।" पहले साहब बोले।

—"हाँ सरकार, इसीलिए तो एक बेर देखनेकी इच्छा होती है।" सुन्दर सिंहने कहा।

—"तब तो तुम्हें एक बेर अवश्य वहाँ जाना चाहिए।" गृह-स्वामीने कहा।

—"परन्तु अकेले जानेका तो मेरा साहस नहीं पड़ता।"

तीसरे महोदय बोले—"मेरा बेरा जा रहा है, अगर तुम चाहो, तो उसके साथ जा सकते हो।"

—"हाँ, अगर कोई साथी मिल जाय तो चला जाऊँगा।"

—"वह तुम्हारा साथी हो जायगा।"

—"लेकिन!" इतना कहकर सुन्दर सिंह रुक गया।

—"लेकिन क्या?" गृह-स्वामीने कहा।

—"सरकार मेरे पास इतना फालतू रुपया नहीं है कि मैं जहाज़का किराया और वहाँ रहनेका खर्च बरदाश्त कर सकूँ।"

गृह-स्वामी बोले—"इसके लिए तुम कुछ चिन्ता मत करो। वह सब हम दिला देंगे।"

सुन्दर सिंह प्रसन्न-मुख होकर बोला—"तब तो मैं चला जाऊँगा, परन्तु सरकार मैं वहाँ थोड़े दिनोंके लिए जाऊँगा, फिर यहीं चला आऊँगा।"

—"हाँ हाँ क्या हर्ज है, चले आना।" गृह-स्वामीने कहा।

—"वहाँ मेरा जी भी तो नहीं लगेगा।" सुन्दर सिंह बोला।

गृह-स्वामी उसकी इस बातपर ध्यान न देकर बोले—"तो तुम्हारा जाना तय है न? मैं पासपोर्टका प्रबन्ध करूँ।"

सुन्दर सिंह तीसरे साहबकी ओर देखकर बोला—"वह आपका आदमी कब जायगा?"

—"वह भी उसी दिन और उसी जहाज़से जायगा, जिस दिन और जिस जहाज़से तुम जाओगे।"

—"तब तो मैं चला जाऊँगा।"

—"तो मैं पासपोर्टका प्रबन्ध करूँ?"

—"हाँ, कीजिए!" सुन्दर सिंहने धड़कते हुए हृदयसे कहा।

गृह-स्वामीने कहा—"मैं तुम्हें पासपोर्ट और जहाज़का टिकिट दिला दूँगा और वहाँके खर्चके लिए २० पौण्ड। इतना काफ़ी होगा, क्यों न?"

यह कहकर साहबने सुन्दर सिंहके मुखको ध्यान-पूर्वक देखा। सुन्दर सिंहके मुखपर प्रसन्नताकी रेखा दौड़ गई। वह बोला—"तब तो मैं अवश्य जाऊँगा। आप प्रबन्ध कर दीजिए।"

गृह-स्वामीने एक रहस्यपूर्ण दृष्टिसे अन्य दोनों साहबोंकी ओर देखकर ज़रा मुसकराते हुए कहा—"अच्छी बात है। जाओ, बैठो।"

सुन्दर सिंह चला गया। उसके जानेके पश्चात् गृहस्वामीने अन्य दो साहबोंसे कहा—"देखा आपने, तैयार हो गया कि नहीं।"

—"जहाज़का टिकिट और २० पौण्ड नक़द कोई मामूली प्रलोभन नहीं है।" पहले साहब हँसते हुए बोले।

दूसरे साहबने कहा—"मैं भी अपने नौकरको यही प्रलोभन दूँगा।"

—"बिना इसके ये लोग जानेको तैयार न होंगे। तुम अपने नौकरसे क्या कहोगे?"

—"यही, जो तुमने सुन्दर सिंहसे कहा है।"

—"हाँ, उससे कहना कि सुन्दर सिंह जा रहा है, उसके साथ तुम भी चले जाओ।"

—"यही कहूँगा।"

—"कैसी अच्छी युक्ति सोची। इधर इससे यह कहा कि वह जा रहा है, उससे कहना कि यह जा रहा है!"

—"यह बहुत बढ़िया युक्ति सूझी, परन्तु वे लोग फिर लौट आवेंगे।"

—"अब लौट चुके। जहाजका किराया और वापिस देनेके लिये २० पौण्ड कहाँ मिलेंगे?"

—"हाँ, यह बात तो पक्की है।"

[२]

बम्बईमें तीन दिन ठहरनेके पश्चात् सुन्दरसिंह अपने साथीसे बोला—"क्यों भई रामाधीन, बम्बई तो घूम चुके, अब किधर चलनेका इरादा है?"

रामाधीन बोला—"मैं तो अपने गाँव जाऊँगा।"

—"तुम्हारे गाँवमें तुम्हारा कोई है?"

—"यह मैं ठीक नहीं कह सकता। जानेपर पता लगेगा। और तुम?"

—"मुझे तो अपने गाँवका पता भी नहीं है। मेरे माता-पिता अफ्रिकामें उस समय मर गये थे, जब मैं केवल दस बरसका था। मेरे पिताके एक मित्रने मुझे पाला-पोसा।"

—"तो तुम्हारे पिताके मित्रको तो तुम्हारे गाँवका पता मालूम ही होगा?"

—"मालूम तो था, परन्तु उनका तो बहुत दिन हुए देहान्त हो गया। मैंने होश सँभालते ही नौकरी कर ली, और घूमता फिरता केपटाउन पहुँच गया। तबसे उनसे भेंट भी नहीं हुई। एक दफा उन्होंने जिक्र तो किया था, पर मैं भूल गया। इलाहाबाद जिलेके किसी गाँवका नाम लिया था।"

—"इलाहाबाद जिलेमें तो सैकड़ों गाँव हैं।"

—"हाँ, इसलिए गाँवका पता लगाना असम्भव है।"

—"तब फिर कहाँ जाओगे?"

—"क्या बताऊँ। मेरी खुद समझमें नहीं आता कि कहाँ जाऊँ। मेरे लिए तो हिन्दोस्तान परदेस हो रहा है। मेरी हिन्दी भी यहाँ लोग मुश्किलसे समझते हैं।"

—"आखिर करोगे क्या?"

—"जो तुम कहो। मैं तो तुम्हारे साथ आया हूँ।"

—"तुम मेरे साथ आये हो कि मैं तुम्हारे साथ आया हूँ! साहब लोगोंने हम दोनोंको उल्लू बनाकर यहाँ भेज दिया।"

—"इसमें उल्लू बनानेकी कौन बात है। उन बेचारोंने तो नेकी की, अपनी ओरसे कोशिश करके हमें यहाँ भेजा। इसमें उनका कौन लाभ था!"

रामाधीन बोला—"यही बात तो मेरी समझमें नहीं आती कि इसमें उनका कौन फायदा था। और यदि फायदा नहीं था, तो हमें इस प्रकार धोखा क्यों दिया।"

—"खैर जी, जब आये हैं तो महीना-बीस दिन रहकर जाँयगे।"

—"जाओगे कैसे?"

—"इसकी तो बड़ी सहज युक्ति है। मैं तो अपने साहबको चिट्ठी लिख दूँगा, वह खर्च भेज देंगे और पासपोर्टके लिए चिट्ठी भेज देंगे—बस, मैं चला जाऊँगा। मेरे तो दिन यहाँ कठिनतासे कटेंगे—जी नहीं लगेगा।"

—"जी तो मेरा भी नहीं लगेगा।"

—"मेरी तो यह इच्छा है कि एक महीना इधर-उधर घूमनें-फिरनेमें काट दूँ। पन्द्रह दिन बाद साहबको चिट्ठी लिख दूँगा। वह वहांसे प्रबन्ध कर देंगे। इस बीचमें पन्द्रह बीस दिन और बीत जाँयगे। बस, फिर चला जाऊँगा।"

रामाधीन कुछ क्षणों तक सोचकर बोला—"तो अब घूमना-फिरना ही है, तो मेरे साथ मेरे गाँव चलो। वहाँ चार-छह दिन रहना, फिर जहाँ इच्छा हो चले जाना। और यदि वहाँ मेरा कोई ठिकाना न हुआ, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

—"यह ठीक है। मैं तुम्हारे गांवके पतेसे ही साहबको चिट्ठी लिखूँगा। क्यों न?"

—"बहुत ठीक है।"

—"तो बस चलो, मैं तुम्हारे गाँव चलूँगा।"

यह परामर्श हो जानेपर दोनों व्यक्ति उसी दिन बम्बईसे चल दिये।

उचित समयपर दोनों रामाधीनके गाँव पहुँचे। दोपहरका

समय था। गाँवमें प्रविष्ट होते ही गाँवके कुत्तोंका समूह, इनकी विचित्र पोशाकके कारण, भूँकता हुआ इनके पीछे लग गया। गाँवके बालकोंका झुण्ड भी इनके साथ हो लिया। रामाधीनने एक व्यक्तिसे पूछा—"क्यों भई, यहां भैकूलाल कहाँ रहते हैं ?"

रामाधीनकी भाषा यद्यपि हिन्दी थी ; परन्तु शब्दोंका उच्चारण विचित्र था, अतएव वह व्यक्ति केवल मुसकराकर रह गया। रामाधीनने पुन: वही प्रश्न किया। इस बार वह व्यक्ति बोला—"हमें नहीं मालूम है। सामने चौपालमें जाकर पूछो।"

सामने एक चौपालमें तीन-चार व्यक्ति बैठे हुए थे। ये दोनों वहीं पहुँचे। रामाधीनने पुन: वही प्रश्न किया। चौपालमें बैठे हुए व्यक्तियोंमेंसे एक वृद्धने पूछा—"आप लोग कहांसे आये हो ?"

रामाधीन बोला—"आये तो हम अफ्रिकासे हैं।"

अफ्रिकाका नाम सुनते ही सब लोग अवाक् होकर इन दोनोंका मुँह ताकने लगे। कुछ क्षणके पश्चात् वृद्धने पुन: पूछा—"भैकूलालसे आपका क्या काम है ?"

रामाधीनने उत्तर दिया—"वह मेरे रिश्तेदार हैं।"

वृद्ध किंचित मुसकराकर बोला—"अच्छा ! अब मालूम हो गया। भैकूलाल कहा करते थे कि हमारा एक भतीजा अफ्रिका भाग गया है। आपका नाम ?"

—"मेरा नाम रामाधीन है।"

वृद्ध बोला—"हाँ, कुछ ऐसा ही सा नाम लिया था। खैर, उनको मरे हुए छ:-सात बरस हो गये। उनका एक लड़का था, सो वह भी कहीं चला गया।"

रामाधीन कुछ क्षणोंके लिए स्तब्ध हो गया, तत्पश्चात् बोला—"उनके घरमें और कोई नहीं है ?"

वृद्ध सिर हिलाते हुए बोला—"कोई नहीं। खाली घर है, पर वह भी खराब हालतमें है—खंडहर हो गया है।"

रामाधीनने सुन्दरसिंहकी ओर देखकर दक्षिणी-अफ्रिकाकी भाषामें पूछा—"अब क्या करें ?"

सुन्दरसिंह बोला—"मैं क्या बताऊँ।"

—"यहाँ तो ठिकाना है नहीं।"

—"और क्या ? परन्तु चलोगे कहाँ ?"

—"यहाँसे तो चलो, रास्तेमें सोचेंगे।"

ये दोनों चलनेको उद्यत हुए। वृद्धने कहा—"आये हो तो बैठो, पानी-वानी पियो। ऐसी दोपहरीमें कहाँ जाओगे।"

वृद्धकी यह बात दोनों व्यक्तियोंको बड़ी सन्तोषजनक प्रतीत हुई, क्योंकि दोनों थके हुए थे। दोनोंने तुरन्त अपनी-अपनी पीठकी गठरी उतारकर चौपालके एक कोनेमें रख दी और एक चारपाईपर बैठ गये।

वृद्धने एक नवयुवकसे कहा—"सुनुवाँ, जा शरबत बनवा ला।" इसके पश्चात् उन दोनोंकी ओर देखकर बोला—"रोटी खाओ, तो रोटी भी तैयार है।"

रामाधीनने सुन्दर सिंहकी ओर देखा। सुन्दर सिंह बोला—"खा लो, रास्तेमें खानेकी नौबत न आवेगी।"

रामाधीन वृद्धसे बोला—"खा लेंगे।"

वृद्धने नवयुवकसे कहा—"शरबत बनवा ला और रोटीके लिए भी कह देना। नवयुवक घरके भीतर चला गया। थोड़ी देरमें गाँव-भरमें यह समाचार फैल गया कि अफ्रिकाके दो आदमी आये हुए हैं, अतएव गाँव-भर चौपालके सामने आकर इकट्ठा हो गया। सब लोग कौतूहल-पूर्ण दृष्टिसे इन दोनोंको देखते थे।

थोड़ी देरमें शरबत आया। दोनोंने शरबत पिया। इसके पश्चात् वृद्धने इनसे अफ्रिकाकी बातें पूछनी आरम्भ कीं।

घंटे-भर पश्चात् दोनोंने भोजन किया। तदुपरान्त एक घंटे आराम किया। तीन बजेके लगभग इन्होंने वृद्धसे विदा माँगी।

वृद्धने पूछा—"कहाँ जाओगे ?"

रामाधीनने उत्तर दिया—"कुछ दिनों तक इधर-उधर घूम-फिरकर फिर अफ्रिका लौट जायँगे।"

वृद्धने कहा—"यहीं कहीं शहरमें नौकरी कर लो। अफ्रिका

क्यों जाओगे ? तुम तो यहींके रहनेवाले हो, तुम्हें यहीं रहना चाहिए।"

रामाधीन बोला—"यहाँ हमारा जी न लगेगा। जी लग गया तो रह जायँगे।"

यह कहकर और वृद्धको धन्यवाद देकर दोनों चल दिये।

[३]

रामाधीन और सुन्दर सिंहको भारतवर्ष आये हुए तीन मास व्यतीत हो गया। इस बीचमें वे अनेक बड़े-बड़े नगरोंमें घूमनेके पश्चात् इलाहाबादमें रहने लगे। इलाहाबादमें रामाधीनकी अपने पिताके एक मित्रसे त्रिवेणी-तटपर अकस्मात भेंट हो गई थी। क़िलेके नीचेसे नौका द्वारा ये दोनों संगमपर स्नान करने गये थे। जिस नौकापर ये दोनों थे, उसीपर वह भी थे। परस्परकी वार्तालापमें इन दोनोंने जब अपना परिचय दिया, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि रामाधीन उनके मित्रका पुत्र है। वह रामाधीनको बड़े स्नेहपूर्वक अपने घर ले गये। रामाधीन तथा सुन्दरसिंहने परस्पर परामर्श करके कुछ दिनोंतक वहीं रहनेका निश्चय किया। सुन्दर सिंहने उन्हींके पतेसे अपने साहबको पत्र लिखा, जिसमें उसने अपने अफ्रिका लौटनेके लिए उनसे प्रबन्ध कर देनेकी प्रार्थना की थी।

× × ×

रातका समय था। एक कमरेमें रामाधीन सुन्दर सिंह तथा वह सज्जन जिसके यहाँ ये लोग ठहरे हुए थे, परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। रामाधीन कह रहा था—"अफ्रीकासे तो कोई उत्तर आया नहीं, अब क्या इरादे हैं ?"

सुन्दर सिंह बोला—"मेरी समझमें नहीं आता कि उत्तर क्यों नहीं दिया, कहीं पत्र इधर-उधर तो नहीं हो गया।"

रामाधीनके पिताके मित्र, जिनका नाम रामावतार था, बोले—"यदि यहाँका पता ठीक लिखा गया होगा, तो पत्र इधर-उधर नहीं हो सकता।"

रामाधीनने सुन्दर सिंहसे पूछा—"यहाँका पता ठीक लिखा था ?"

—"यहाँका पता कैसे ग़लत हो सकता है ! यह तुमने अच्छी कही !" सुन्दर सिंहने उत्तर दिया।

—"तब फिर उत्तर न आनेका कारण क्या है ?" रामावतार बोल उठे—"सम्भव है साहब ही ने उत्तर न दिया हो। तुम उनके नौकर ही तो हो, कोई रिश्तेदार तो हो नहीं !"

—"नहीं, ऐसी आशा तो नहीं कि उत्तर न दें।"

रामाधीन बोला—"अरे भाई, उनका व्यवहार आरम्भसे ही विचित्र रहा। हम दोनोंको उन्होंने जिस प्रकार यहाँ भेजा, उससे तो यह मालूम होता है कि उन्होंने हम लोगोंसे अपना पिण्ड छुड़ाया है।"

—"पिण्ड छुड़ाना होता तो वहीं हमें नौकरीसे अलग कर देते, हिन्दुस्तान भेजनेका खर्च क्यों बरदाश्त करते ?" सुन्दर सिंह बोला।

रामावतार बोल उठे—"तो जो आ गये हो, तो यहीं रहो न, अफ्रिकामें तुम्हारा कौनसा ख़ज़ाना गड़ा है ? बाल-बच्चे भी तो वहाँ नहीं हैं। यहां रहो, दोनों अपना-अपना ब्याह कर लो, बस। वहाँ जाके क्या करोगे ?"

—"परन्तु यहाँ अच्छी नौकरी मिलेगी ?"

—"मिलेगी क्यों नहीं।"

—"तनखाह क्या मिलेगी ?" सुन्दरसिंहने पूछा।

—"यही बीस रुपये तक।"

—"बस। तब तो हमारा गुज़र हो चुका।" रामाधीन बोला।

—"वहाँ क्या मिलता था ?" रामावतारने पूछा।

—"वहां हम लोग चालीस-पचास रुपये महीना कमाते थे।"

—"इतना तो यहां कहीं नहीं मिलेगा। इतना तो तब मिल सकता है, जब कुछ लिखने-पढ़नेका काम कर सको।"

सुन्दरसिंह रामाधीनकी ओर देखकर बोला—"तब तो यहाँ रहना व्यर्थ है।"

—"और क्या ! कमसे कम तीस-पैंतीस मिलें, तब हम लोगोंका गुज़र हो सकता है।"

—"इतना तो नहीं मिलेगा।" रामावतारने कहा। "कोई अंग्रेज भले ही इतनी तनख्वाह दे दे, पर हिन्दुस्तानी नहीं दे सकेगा।"

रामाधीन बोला—"तो हिन्दुस्तानीके यहाँ हम नौकरी करेंगे भी नहीं।"

—"बीस रुपये तो केवल हमारे खाने-भरको ही होंगे।" सुन्दर सिंहने कहा।

—"वहां चालीस-पचास कमाते थे, तब भी कुछ नहीं बचता था।"

रामावतारने आश्चर्यसे कहा—"अकेली जान और चालीस-पचासमेंसे कुछ बचता नहीं था! आखिर करते क्या थे?"

—"मौज करते थे और करते क्या थे। खूब खाते थे और खर्च करते थे।" रामाधीन बोला।

रामावतारने सिर हिलाते हुए कहा—"तब तो यहाँ आप लोगोंका गुजर होना कठिन है। यहाँ पन्द्रह-बीससे अधिक नहीं मिलेंगे। हिन्दुस्तानीके यहां पन्द्रह, अंग्रेज़के यहां बीस-पचीस, बस, इससे अधिकका डौल नहीं है।"

—'तब तो यहाँ आकर मुसीबतमें फँस गये।' सुन्दर सिंहने कहा।

—"मालूम तो ऐसा ही पड़ता है!" रामाधीन बोला।

"तब फिर क्या होगा?" सुन्दर सिंहने पूछा। "अफ्रिका चलनेकी तरकीब सोचनी पड़ेगी। बीस-बीस पौण्ड जो मिले थे सो तो खर्च हो गये। वे वापिस देने होंगे और किराया भी देना पड़ेगा।"

—"इतने रुपये मिलना तो कठिन है।"

—"तब फिर कहीं नौकरी करना चाहिए।"

—"परन्तु वेतन वही पन्द्रह-बीस मिलेगा।"

—"किसी अंग्रेज़की नौकरी करें। नौकरी भी करें और अफ्रिका जानेके लिए अवसर खोजते रहें,—जब दाम लग जाय, तब वहाँ चले जायँ।"

—"हाँ, यही हो सकता है।"

रामावतारने भी इस प्रस्तावको पसन्द किया।

दूसरे दिनसे ये दोनों नौकरीकी तलाशमें घूमने लगे। अंग्रेज़ोंके बंगलोंपर जाते थे और नौकरीकी बाबत पूछते थे, परन्तु सब जगह टका-सा जवाब मिलता था। एकमात्र जगह स्थान खाली भी था, परन्तु वहाँ वेतन नहीं पटा।

इसी प्रकार ये लोग तीन-चार दिन तक चक्कर लगाते रहे। अन्तमें जब निराश हो गये, तो रामावतारसे बोले—"यहाँ तो नौकरी मिलेगी नहीं। हम लोग कलकत्ते जाते हैं। सम्भव है, वहां मिल जाय।"

रामावतार बेचारा स्वयं इन लोगोंसे ऊब उठा था। उसने कहा—"हाँ हाँ, वहाँ चले जाओ, वहाँ नौकरी अवश्य मिल जायगी।" दूसरे दिन ये दोनों रामावतारसे विदा होकर कलकत्तेकी ओर चले।

[४]

कलकत्ते पहुँचकर दोनों पाँच-छः दिनों तक इधर-उधर घूमते रहे।

एक दिन शामको डेरेपर आकर सुन्दर सिंहसे रामाधीन बोला—"भाई, मुझे तो नौकरी मिल गई।"

सुन्दर सिंह उत्सुकता पूर्वक बोला—"कहाँ?"

—"जहाज़पर!"

—"किस जहाज़पर?"

—"एक स्टीमशिप कलकत्ते और रंगूनके बीचमें चलता है—उसीपर!"

—"अच्छा!"

—"हाँ, कल मैं चला जाऊँगा।"

सुन्दर सिंहने पूछा—"तनख्वाह?"

—'तनख्वाह तीस रुपये और खुराक।"

—"तब तो तुम मजेमें रहे।"

—"मैंने तो तुम्हारे लिए भी कोशिश की थी, परन्तु उसमें एक ही आदमीकी गुंजायश है।"

—"कल मैं भी डौकपर आऊँगा, सम्भव है किसी दूसरे स्टीमरपर स्थान मिल जाय।"

—"हाँ हाँ, क्या हर्ज है, कोशिश तो करना चाहिए।"

—"तो कल तुम चले जाओगे?" सुन्दर सिंहने उदास होकर पूछा।

—"हाँ, कल चला जाऊँगा।"

—"कब लौटोगे?"

—"जब स्टीमर लौटेगा।"

—"अकेले मेरा जी घबरायगा। तुम्हारे कारण जी लगा रहता था।"

—"क्या बताऊँ, मुझे भी बड़ा अफसोस है।"

—"परन्तु तुम घबराओ नहीं, तुम यहीं रहो। मैं तुम्हारे लिए भी कोशिश करूँगा।"

सुन्दर सिंहको रात-भर नींद नहीं आई। वह पड़ा-पड़ा सोचता रहा—'यहाँ अकेले कैसे रहूँगा। नौकरी न मिली, तो क्या करूँगा। अफ़िका होता, तब तो कोई चिन्ता नहीं थी—पचासों काम मिल जाते। वहाँका हाल जाना-बूझा हुआ है। यहाँ परदेशमें—जहाँ कोई हमें नहीं जानता—हम किसीको नहीं जानते, कैसे क्या होगा। अभी तक तो रामाधीनका सहारा था, अब वह भी चला।'

इस प्रकारकी बातें सोचता हुआ सुन्दरसिंह रात-भर जागता रहा। प्रातःकाल उठकर रामाधीन सुन्दरसिंहसे विदा हुआ।

सुन्दर सिंह आँखोंमें आँसू भरकर बोला—"भाई, तुम जा रहे हो, मेरा यहाँ जी बहुत ऊबेगा। इतना बड़ा शहर, परदेशका वास्ता, किसीसे जान-पहचान नहीं। मुसीबत ही मुसीबत है।"

रामाधीन बोला—"यह परदेस है! यह तो अपना देश है सुन्दर सिंह, परदेस तो अफ़िका था।"

सुन्दर सिंह बोला—"मुझे तो यह परदेस ही मालूम होता है। अपना देस तो मुझे अफ़िका मालूम होता है। न जाने किस बुरी साइतमें अफ़िका छोड़ा था, अब उसे देखने तकको तरसते हैं।"

रामाधीन बोला—"खैर, तुम घबराओ नहीं। मेरा स्टीमर दस-पन्द्रह दिनमें लौट आवेगा, तब तक यहीं रहो।"

सुन्दरसिंह रामाधीनको डॉक तक पहुँचाने गया। जिस समय स्टीमरने लंगर उठाया और चला, उस समय सुन्दर सिंहकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे।

× × ×

रामाधीनको गये हुए दस दिन व्यतीत हो गये। इसी बीचमें सुन्दर सिंहको मेलेरिया हो गया। मटियाबुर्जके जिस मकानमें वह रहता था, उसमें और भी बहुतसे आदमी रहते थे। वे दिनमें एकआध बार सुन्दर सिंहसे पानी-वानीके लिए पूछ लेते थे, अन्यथा वह बेचारा दिन-भर अकेला पड़ा रहता था। जिस समय ज्वरका वेग होता था, उस समय वह प्रलाप करने लगता था। प्रलापमें केवल अफ़िकाकी बातें ही कहता था।

उपयुक्त चिकित्सा न होनेके कारण सुन्दर सिंहकी दशा प्रतिदिन बिगड़ती गई। पन्द्रहवें दिन अकस्मात् रामाधीन आ पहुँचा। सुन्दर सिंह बहुत कमज़ोर हो गया था। रामाधीनने पुकारा—"सुन्दर सिंह!"

सुन्दरसिंहने आँखें खोलकर रामाधीनको कुछ क्षणों तक देखा, तत्पश्चात् पहचानकर बोला—"तुम आ गये, भाई! अच्छा किया। अन्त समय तुम्हारे भी दर्शन हो गये।"

रामाधीन बोला—"क्यों घबराते हो, अब मैं आ गया हूँ, तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे। और मैंने तुम्हारे लिए भी नौकरी ठीक कर ली है।"

सुन्दरसिंह बोला—"नौकरी? नौकरी करने लायक मैं अब नहीं हो सकूँगा—मेरा तो चल-चलाव है रामाधीन!"

—"ऐसी निराशाकी बातें क्यों करते हो, तुम अच्छे हो जाओगे।"

—"अब मैं अच्छा-वच्छा नहीं होऊँगा। खैर, अब मुझे कोई इच्छा नहीं। केवल एक बेर अफ़िका और देख लेता, और जो वहाँ मरता, तो अच्छा था।"

—"पागल हो, वहाँ परदेसमें मरने जाते। यह तुम्हारा सौभाग्य है जो तुम अपने देसमें हो।"

—"यह हमारा देस है रामाधीन ! तुम भूलते हो। जहाँ हमारा जी नहीं लगता, जहाँ हमारी बात पूछनेवाला कोई नहीं, जहाँ हमें आरामसे रोटी नहीं मिल सकती, जहाँ हमारे बैठनेके लिए ठिकाना नहीं—यह हमारा देस है ! हमारा देस यह नहीं है, हमारा देस अफ्रिका है।"

"ऐसी बातें मत करो सुन्दर सिंह ! यह ठीक है कि हमें जितना आराम, जितनी सुविधाएँ अफ्रिकामें थीं, उतनी यहाँ नहीं है, परन्तु फिर भी यह हमारा देस है।"

—"है भी तो किस कामका, हुआ करे। ऐसे देससे तो अफ्रिका परदेस कहीं अच्छा है।"

—"हाँ, यह तुम कह सकते हो। इसे मैं मानता हूँ।"

रामाधीनने सुन्दर सिंहकी उपयुक्त चिकित्सा प्रारम्भ की, परन्तु सब निष्फल हुई ! तीन दिन बाद सुन्दर सिंह इस संसारसे चल बसा ! अन्त समय तक वह अफ्रिका ही अफ्रिका रटता रहा।

सुन्दरसिंहकी मृत्युके पश्चात् रामाधीनके लिए कलकत्तेमें, केवल कलकत्तेमें नहीं, वरन् हिन्दुस्तानमें कोई दिलचस्पी नहीं रह गई। उसने निश्चय कर लिया कि अब वह लौटकर नहीं आवेगा।

जिस समय उसका स्टीमर कलकत्तेसे चला, उस समय उसने सन्तोषकी दीर्घ-निःश्वास छोड़ी। उसे ऐसा ही प्रतीत हुआ, जैसा कि उस व्यक्तिको प्रतीत होता है जो बहुत दिनों तक जंगलमें भटकनेके पश्चात् रास्ता पाकर बस्तीकी ओर लौटता है।

मंगलमय महावीर

[लेखक :— श्री टी० एल० वास्वानी]

चैत्रका परमपावन महीना महावीरका स्मारक है। इस पुण्य मासमें वे आजसे २४ शताब्दी पहले अवतीर्ण हुए। उन्होंने पटनाके समीपके एक स्थानको अपनी जन्मभूमि बनाया। अशोक और गुरु गोविन्दसिंहका भी स्मारक होनेके कारण पटना पवित्र है।

परम्परासे उन महाभागकी जन्म-तिथि चैत्र शुक्ला त्रयोदशी मानी जाती है। यह दिन—महावीरकी वर्ष-गाँठका दिन—युवकोंके कैलेण्डरमें स्मरणीय है। युवकोंको याद रहे, यह तिथि अनेक महावीरोंकी जननी है।

यद्यपि भारत दरिद्र है, फिर भी वह श्री-सम्पन्न है। उसकी यह श्री उसके मनुष्योंमें है। उसके करोड़ों मनुष्य, यदि कुछ करनेका संकल्प करें, तो क्या नहीं कर सकते ? और प्रत्येक शताब्दीमें भारतने ऐसे कितने महापुरुष पैदा नहीं किये, जो आत्माकी शक्तिमें महान् थे ? क्योंकि वह, जिसकी कीर्तिका प्रसार यह चैत्र शुक्ला कर रही है, हमारे इतिहासका एकमात्र महावीर नहीं हुआ है; अन्य महावीर भी हुए हैं। वे हुए हैं अन्य युगोंमें। वे आत्मिक क्षेत्रके योद्धा थे। उन्होंने भारत-भूमिको पुण्य-भूमि बना दिया और उसे आध्यात्मिक आदर्शवादकी श्रीसे सम्पन्न कर दिया।

वे महावीर—अर्थात् महान् विजयी—ही इतिहासके सच्चे महापुरुष हैं। वे उद्धतता और हिंसाके नहीं, किन्तु निरभिमानता और प्रेमके महावीर थे।

रूसके महान् ऋषि टाल्स्टायने इस रागको बार-बार अलापा है कि "जिस प्रकार अग्नि अग्निका शमन नहीं कर सकती, उसी प्रकार पाप पापका शमन नहीं कर सकता।" कहा जाता है कि इस पर ईसाके इस प्रवचनकी कि 'पापका प्रतिकार मत करो' छाप है, परन्तु ईसासे भी पाँच शताब्दी पहले अहिंसाकी यह शिक्षा भारतके दो आत्मज्ञों और ऋषियों—बुद्ध और महावीर—द्वारा उपदिष्ट और आचरित हो चुकी थी। जैन लोग भगवान्, ईश्वर, महाभाग इत्यादि कहकर महावीरको पूजते हैं।

वे उन्हें तीर्थंकर भी कहते हैं। मैं जिसका अर्थ करता हूँ

"सिद्ध पुरुष"। महावीरका स्मरण उन्हें चौबीसवें तीर्थंकर मानकर किया जाता है। उनके प्रथम तीर्थंकरका नाम ऋषभनाथ अथवा आदिनाथ है, जो अयोध्यामें जन्मे और कैलास पर्वतपर महत्तम आत्म-ज्ञान (कैवल्य) के अधिकारी हुए। वे इस धर्मके सबसे प्रथम प्रवर्त्तक थे, जिसे इतिहासमें जैनधर्म कहा है। महावीर जैनधर्मके प्रवर्त्तकोंकी लम्बी सूचीमें २४ वें हैं। उन्होंने इस बौद्धधर्मसे भी प्राचीनतर धर्मकी पुनर्घोषणा की और उसका पुनर्निर्माण किया।

महावीरके विषयमें मैंने जो कुछ जाना है, उससे मुझपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। उनका जीवन अद्वितीय उदारता और अद्वितीय सौन्दर्यसे परिपूर्ण था। बुद्धके समकालीन होनेके कारण वे बुद्धके त्यागका, बुद्धके तपका और बुद्धके मानव-प्रेमका स्मरण दिलाते हैं।

वे ईसासे ५९९ वर्ष पूर्व विहार-प्रान्तके एक शहरमें जन्मे थे। उनके पिता सिद्धार्थ एक क्षत्रिय राजा थे। उनकी जननी त्रिशला—प्रियकारिणी वज्जियोंके प्रजातन्त्रके मुखिया चेटककी पुत्री थीं। महावीर अन्य लड़कोंके समान पाठशालामें भेजे जाते थे, परन्तु जान पड़ा कि उन्हें शिक्षककी आवश्यकता नहीं है। उनके हृदयमें वह ज्ञान विद्यमान है, जिसे कोई भी विद्यालय नहीं प्रदान कर सकता। बुद्धके समान ही वे इस जगतको त्याग देनेके लिए व्याकुल हो उठते हैं। अट्ठाईस वर्षकी अवस्था पर्यन्त वे कुटुम्बमें ही रहते हैं। अब उनके माता-पिता गुज़र जाते हैं और उन्हें संन्यासके प्रवाहमें प्रवेश करनेके लिए अन्त:प्रेरणा होती है। तब वे अपने ज्येष्ठ भ्राताके समीप अनुमतिके लिए जाते हैं। उनके भाई कहते हैं—"घाव अभी हरे हैं, ठहरो।" वे दो वर्ष और ठहर जाते हैं। अब वे तीस वर्षके हैं। ईसाके समान अब उन्हें अन्त:प्रेरणा होती है कि अब सब कुछ छोड़कर सेवाके सुमार्गमें प्रवेश करना चाहिए। बुद्धके समान वे अपनी सब सम्पत्ति दरिद्रोंको दान कर देते हैं। कुटुम्बको त्यागनेके दिन वे अपना सारा राज्य अपने भाइयोंको और सारी सम्पत्ति ग़रीबोंको दे देते हैं। फिर वे तपश्चर्या और ध्यानका जीवन व्यतीत करते हैं। बुद्धको ६ वर्षकी साधनाके बाद प्रकाशके दर्शन हुए थे। महावीरको वह ज्योति १२ वर्षके अन्तर्ध्यान और तपस्याके बाद दीखती है। ऋजुकूला नदीके किनारे जृम्भक ग्राममें वे परम-आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। अन्योंकी भाषामें अब वे तीर्थंकर, सिद्ध, सर्वज्ञ अथवा महावीर हो जाते हैं। वे अब उस अवस्थाको प्राप्त करते हैं, जिसे उपनिषदोंमें कैवल्य—द्रष्टाकी अवस्था कहा है। जैनग्रन्थोंके अनुसार अब उनका नाम 'केवली' हो जाता है।

तब वे बुद्धके समान धर्म-प्रचारके लिए एक महान् मिशन लेकर लोगोंमें ज्ञानका उपदेश देने निकलते हैं। तीस वर्ष तक वे यहाँसे वहाँ घूमते-फिरते हैं। बंगाल और बिहारमें वे सच्चे सुखकी सुवार्ता (Gospel) का सदुपदेश देते हैं। अपने सन्देशको वे जंगली जातियों तक भी ले जाते हैं, और इसमें वे उनके क्रूर व्यवहारोंकी पर्वाह नहीं करते। वे अपने मिशनमें लवश (?) और हिमालय तक जाते हैं। अनेक पीड़कों और पीड़ओंके बीच वे कितने गम्भीर और शान्त बने रहते हैं, और इस गम्भीरता तथा शान्तिमें कितना सौन्दर्य है!

वे गुरु हैं और व्यवस्थापक भी। उनके ग्यारह प्रधान शिष्य हैं। चार सौसे ऊपर मुनि और अनेक श्रावक उनके धर्मको धारण करते हैं। ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों ही उनके समाजमें शामिल होते हैं। उनका विश्वास वर्ण और जातिमें नहीं है। वे दिवालीके दिन पावापुरी (बिहार) में, ७२ वर्षकी आयुमें ईसासे ५२० वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त करते हैं।

इन महावीरका—जैनियोंके इस महापुरुषका—चरित्र कितना सुन्दर है! वे धनवान क्षत्रिय कुलमें जन्म लेते हैं और गृहको त्याग देते हैं। वे अपना धन दरिद्रोंमें दान कर देते हैं, और विरक्त होकर जंगलमें अन्तर्ध्यान और तपस्याके लिए चले जाते हैं। कुछ लोग उन्हें वहाँ ताड़ना देते हैं, परन्तु वे शान्त और मौन रहते हैं।

तपस्याकी अवधि समाप्त होनेपर वे बाहर आते हैं। वे अपने सिद्धान्तकी शिक्षा देनेके लिए जगह-जगह घूमते हैं, और बहुतसे लोग उनका मज़ाक उड़ाते हैं। सभाओंमें वे उन्हें तंग करते हैं, उनका अपमान करते हैं, परन्तु वे प्रशान्त और मौन बने रहते हैं।

उनका एक शिष्य उन्हें त्याग देता है और उनके विरुद्ध लोगोंमें मिथ्या प्रवाद फैलाता है, पर फिर भी वे शान्त तथा मौन रहते हैं।

वे एक महावीर—एक विजेता—एक महापुरुष हो जाते हैं, क्योंकि वे शान्तिकी शक्तिका विकास करते हैं।

निःसन्देह ही उनके जीवनने उनके भक्तोंपर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने उनके संदेशको सब तरफ फैलाया। कहा जाता है कि पायरो (Pyrrho) नामक यूनानी विचारकने जिमिनोसोफिस्टोंके चरणोंमें दर्शनशास्त्र सीखा। मालूम होता है कि ये जिमिनोसोफिस्ट लोग जैन योगी थे, जैसा कि उनका यह नाम निर्देश करता है।

बचपनमें उनका नाम 'वीर' रखा गया। उस समय वे वर्द्धमान भी कहलाते थे, परन्तु आगे चलकर वे महावीर कहलाये। महावीर शब्दका मूल अर्थ महान योद्धा है। कहा जाता है कि एक दिन जब कि वे अपने मित्रोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे, उन्होंने एक बड़े काले सर्पको उसके फनपर पैर रखकर बड़े गौरवसे वशमें किया और तभीसे उन्हें यह विशेषण मिला। मुझे यह कथा एक रूपक मालूम पड़ती है, क्योंकि महावीरने सचमुच कषाय-रूपी * सर्पको वशमें किया था। वे दर असल एक महान् वीर—महान् विजेता—थे। उन्होंने राग और द्वेषको जीत लिया था। उनके जीवनका मुख्य उद्देश्य चैतन्य था। † वह जीवन परम शक्तिका था। 'पीत वर्ण' और 'सिंह' ये दो उनके प्रिय चिह्न हैं। आधुनिक भारतको भी महान् वीरोंकी आवश्यकता है। सिर्फ धन या ज्ञान बहुत कम उपयोगी है। आवश्यकता है ऐसे पुरुषार्थी पुरुषोंकी, जो अपने हृदयसे डरको निर्वासित कर स्वातन्त्र्यकी सेवा करें। महावीरकी वीरता उनके जीवन और उनके उपदेशोंमें प्रतिबिम्बित है। वह जीवन अद्वितीय आत्म-विजयका है। उनका उपदेश भी वीरता-पूर्ण है। "सब जीवोंको अपने समान समझो और किसीको कष्ट न पहुँचाओ।" इन शब्दोंमें अहिंसाके द्विगुण सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है। एक स्पष्ट है और दूसरा गूढ़। इनमें 'स्पष्ट' ऐक्यके सिद्धान्तका अनुसरण करता है, अर्थात् अपनेको सबमें देखो; और 'गूढ़' उसमेंसे विकसित होता है, अर्थात् किसीकी हिंसा मत करो। सबमें अपने आपका दर्शन करनेका अर्थ ही किसीको कष्ट देनेसे रुकना है। अहिंसा सब जीवोंमें अद्वैतके आभाससे ही विकसित होती है।

हमारे इतिहासके इस महान् वीरका जीवन और उनका संदेश तीन मतोंपर ज़ोर देता है:—

१ ब्रह्मचर्य—बहुतसे साधु गोशालके नेतृत्वमें नीति-भ्रष्ट जीवन व्यतीत करते थे। वे औरतोंके गुलाम थे। यह गोशाल उनका एक भागा हुआ शिष्य था, जो पीछेसे पागल होकर मरा। जो लोग सच्चा आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना चाहें, उनके लिए महावीरने ब्रह्मचर्य-व्रत अनिवार्य कर दिया है, इसलिए जो युवक भारतका पुनर्निर्माण एक महान् देशके रूपमें करना चाहें, उन्हें ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे पूर्ण होना चाहिए।

२ अनेकान्तवाद या स्याद्वाद—महावीरने सिखाया कि विश्वका कोई भी एक स्वरूप सत्यका पूर्ण प्रतिपादन नहीं कर सकता, क्योंकि सत्य अनन्त है। इससे मुझे आइन्स्टेनके सापेक्षवाद (Doctrine of Relativity) के आधुनिक संप्रयोगका स्मरण हो आता है। हमने अभी कुछ वर्षोंमें धर्मके नामसे वाद-विवाद और घृणाके कारण काफी कष्ट उठाया है। महावीरकी वाणी युवकगण सुनें, और उनका सहानुभूति एवं समानताका संदेश ग्रामों और नगरोंमें ले जावें। विभिन्न धर्मोंने भेदों और झगड़ोंका सृजन किया है। वे आध्यात्मिक जीवन-सम्बन्धी नये विचार, नूतन देशभक्ति और नवीन

* कषाय = हिंसाका भाव—क्रोध, मान, माया, लोभ।

† The Centrel note of his life was 'Virya' Vitality.

राष्ट्रीय जीवनका सृजन करें; क्योंकि सत्य असीम है और धर्मका उद्देश्य भिन्नता और झगड़ोंका उत्पादन करना नहीं, किन्तु उदारता और प्रेमका पाठ पढ़ाना है।

३ अहिंसा—यह वस्तु आलस्य और कायरताके परे है। अहिंसा सत्तात्मक है, निरी कल्पना नहीं। यह साधारण गुणोंसे उच्च श्रेणीकी वस्तु है। यह एक शक्ति है। यह शक्ति शान्तिकी है—लड़ाकू दुनियामें शान्तिकी अन्तःप्रेरणा है।

बहुत दिनोंसे यूरोपमें नित्य ही बलात्कार और हिंसाके नये-नये कार्यक्रम स्वीकृत हो रहे हैं। आज भारतमें भी बहुत लोगोंके लिए वे आकर्षक सिद्ध हुए हैं। एक फरासीसीने अभी हालमें ही प्रकाशित एक पुस्तकमें लिखा है—"हमें जर्मनीके नाशकी ज़रूरत है।" एक भारतीयने भी रशियोंका-फण्डमें सहायता करनेके लिए आग्रह किये जानेपर कहा था—"हमें आवश्यकता है यूरोपियनोंके नाशकी।" इस तरहकी बातें मेरे हृदयको पीड़ा पहुँचाती हैं। फिर मैं भारतके ज्ञानी महात्माओंका चिन्तन करता हूँ, और मेरा हृदय उनके मंगलमय महावीरकी तरफ़ जाता है, जिन्होंने आजसे २५ शताब्दी पहले हिन्दुस्तानके लोगोंको वह महान् संदेश—द्वेषको सहानुभूति और निःस्वार्थतासे जीतो—दिया था।

मैं इतिहासके पृष्ठोंको नाश और क्षयसे आच्छादित पाता हूँ। युद्ध! नाश! धार्मिक अत्याचार! अपनी जीवन-यात्रामें हमने अहिंसाको अपना लक्ष्य नहीं रखा। हमारे भोजनमें, हमारे व्यापारमें और हमारे सामाजिक जीवनमें क्या अहिंसासे हिंसा अधिक नहीं है?

और वर्तमान राजनीतिमें हम क्या देखते हैं, कषायोंकी मन्त्रणा या अहिंसाकी शक्ति?

एक बातका मैं और भी अनुभव करता हूँ, और वह यह है राष्ट्रीय आन्दोलनोंको एक नवीन उदार आध्यात्मिक स्पन्दन (प्रोत्साहन) मिलना आना चाहिए। एक भ्रातृत्वमय सभ्यताका निर्माण होना चाहिए। विद्वेष हमारी सहायता नहीं करेगा। आजकल राष्ट्र अपनी मानसिक शक्तियोंकी सम्पत्ति लड़ाई-झगड़ोंमें खर्च कर रहे हैं। हमें चाहिए कि हम ईश्वरको अपने राष्ट्रीय जीवनमें खींच लावें। मानव-विश्वके पुनर्निर्माणके लिए हमें आध्यात्मिक शक्तिकी आवश्यकता है।

यदि कोई मुझसे एक ही शब्दमें कहनेके लिए कहे कि भारतकी आत्मा क्या है? तो मैं कहूँगा—'अहिंसा'। भारतका अनन्त अन्वेषण अहिंसाको विचार, कला, उपासना और जीवनमें समाहृत करता रहा है।

अहिंसाके सिद्धान्तने भारतवर्षके सांसारिक सम्बन्धोंपर भी प्रभाव डाला। उसने साम्राज्यों और विजयोंके स्वप्न नहीं देखे और वह जापान तथा चीनका भी गुरु हो गया। अपनी इस आध्यात्मिक उन्नतिके कारण यह अपरिचित देश उन देशोंका ईर्षापात्र हो गया। भारतवर्ष सैनिकवादियोंका देश नहीं था। मनुष्यताके प्रति आदरबुद्धिने ही उसे साम्राज्य-वादित्वकी आकांक्षासे बचा लिया। वह महान् राजनीतिक सत्य था, जिसे बुद्धने अपने वचनोंमें व्यक्त किया था कि 'विजेता और विजित दोनों ही असुखी हैं। विजित अत्याचारके कारण और विजेता इस डरके मारे कि विजित कहीं फिर न उठ बैठे और उसपर विजय प्राप्त करे।" भारतवर्षने कभी किसी देशको गुलाम बनानेका प्रयत्न नहीं किया। गुलाम बनाना ही हिंसाचरण है।

यूरोप इस प्रकार पीड़ित है और संक्षोभमें भटकता फिर रहा है, और प्रायः लोग उसकी शक्तिको भूलसे स्वतन्त्रता समझ बैठे हैं। साधनोंके बिना और नैतिक नियमोंके अभ्यासके बिना स्वातन्त्र्य नहीं हो सकता। यूरोप अभी तक राष्ट्रीय और जातीय नियमसे अधिक और किसी नियमको नहीं मानता। इसके परिणाम हैं राष्ट्रीय संघर्ष और पश्चिमके राष्ट्रवाद। इनका परिणाम हुआ संसार-व्यापी युद्ध, और युद्धका अभी तक अन्त नहीं हुआ है।

मुझे मालूम है कि युवकोंको हिंसाके मूल्यके विषयमें सन्देह है। वे प्रकृतिसे शक्ति-मदमत्त अनियन्त्रित शासन द्वारा किये गये अपने देशके अपमानके कारण संक्षुब्ध हैं, परन्तु स्वतन्त्रताके युद्धमें शक्तिका रहस्य, धैर्ययुक्त उद्यम और आत्म-यज्ञका अभ्यास है। जिस अहिंसाकी चर्चा मैं कर रहा हूँ, वह निर्बलता नहीं है। सच्ची अहिंसा मृत्युका डर नहीं है, किन्तु मनुष्यताके प्रति आदरभाव है। मुझे गहरा विश्वास है कि भारत स्वतन्त्र हो जायगा, यदि वह अपने आपके प्रति सच्चा होगा। मुझे उपनिषदोंके इस उपदेशपर पूरा विश्वास है कि अहिंसा यज्ञ है, और यज्ञ अथवा बलिदान महान् बल है। जब मैं अपने कामके लिए जाता हूँ, तब गीताके एक उद्गारको अपने आप गुनगुनाया करता—"हे कौन्तेय, मेरा भारत कभी नष्ट न होगा!"

अनुवादक—हेमचन्द्र मोदी

मेरी जीवन-कथाके कुछ पृष्ठ

[लेखक :—आचार्य श्री रामदेवजी]

डाक्टर भारद्वाज

डाक्टर भारद्वाज विलायतसे लौट आये। लाहोरमें रहकर चिकित्सा द्वारा आजीविका करने लगे। उसी वर्ष वह लाहोर आर्यसमाजके प्रधान चुन लिये गये। मैं और वे एक प्राण दो शरीरसे बन गये। वे मुझसे कहा करते थे 'देव'। मैं उन्हें सम्बोधन करता था 'चिरि' मेरे घरको अपना घर समझते थे और उनके घरको मैं अपना घर। उनके पास फुरसत कम होती थी, फिर भी वे मेरे यहां अवश्य आते-जाते थे। सम्बन्ध बहुत निकटका हो जानेपर, दोषोंका ज्ञान हो जानेसे, प्राय: भक्ति कम हो जाती है और दया तथा प्रेम बढ़ जाते हैं; परन्तु इस मामलेमें मेरा उनका ज्यों-ज्यों सम्बन्ध बढ़ता गया, त्यों-त्यों भक्ति भी बढ़ती गई। उनके जीवनका एक ही धर्म उद्देश्य मैंने देखा, और वह था 'सत्य'। यहाँ तक कि उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंका नाम भी सत्यव्रत और सत्यकाम ही रखा। इनकी एक कन्या थी, उसका नाम भी उन्होंने सत्यव्रता रखा। जीवन-भरमें सबसे ज़्यादा उन्होंने 'सत्यार्थ-प्रकाश'का ही स्वाध्याय किया। मेरे साथ मिलकर उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश'का अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया। इसका अनुवाद करते हुए एक भी पृष्ठ शायद ऐसा न गया हो जिसपर मेरी उनकी बहस न हुई हो। उनका सत्य प्रेम इतना निर्मल था कि इसके लिए उन्हें लोक-लाजकी भी परवाह न थी। उनके प्रधानत्वमें आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवपर वार्षिक विवरण सुनाते हुए प्रमादवश मन्त्री महोदयने एक राशिको दो बार सुना दिया। डाक्टर साहबको यह बात इतनी खटकी कि उन्होंने मन्त्री महोदयकी इस असावधानताके लिए तीन बार क्षमा प्रार्थना की।

आर्यसमाजके उसी उत्सवपर मौलवी सनाउल्ला और स्वामी योगेन्द्रपालका मुबाहसा भी हुआ था। मुबाहसेमें स्वामीजीके उत्तर लोगोंको नापसन्द आ रहे थे, कुछ कमज़ोरसे प्रतीत होते थे। लोग चाहते थे कि स्वामीजीके बजाय किसी और विद्वानको खड़ा किया जाय, परन्तु स्वामीजीके हटानेसे भी तो आर्यसमाजका रोब घटता था, इसलिए कुछ समझदार महानुभावोंने प्रधानजीको राय दी कि आप यह सूचना दीजिए कि स्वामीजीकी आवाज़ धीमी है, अत: स्वामी नित्यानन्दजीको खड़ा करते हैं। सत्यप्रेमी भारद्वाज इस निर्देशपर सचमुच गुस्सा हो गये। उन्होंने कहा—"चाहते हो सत्य प्रेमके लिये मुबाहसा करवाना और उसके लिए बुलवाते हो मुझसे झूठ!"

लोग भला इस बातका क्या जवाब देते। थोड़ी देरमें प्रधानजी मंचपर खड़े होकर यह घोषणा करते हुए सुनाई

दिये—"हम देख रहे हैं कि हमारे प्रतिनिधि स्वामी योगेन्द्रपालजी विषयान्तर बात करते हैं, ठीक उत्तर नहीं देते, अतः आर्यसमाजका प्रतिनिधित्व करनेके लिए मैं उनके स्थानपर स्वामी नित्यानन्दजीको नियुक्त करता हूँ।"

यह घोषणा लोगोंको एक चमत्कारके समान प्रतीत हुई, और इससे सबसे अधिक चकित हुए स्वयं मुसलमान भाई ही। मौलवी सनाउल्ला तो इस घटनाके बाद सारी उमर डाक्टर साहबकी तारीफ़ करते रहे। वे कहा करते थे—"भाई, समाजका प्रधान तो एक ही देखा!" स्वामी योगेन्द्रपाल इस घटनासे डाक्टरजीपर बहुत नाराज़ हो गये, मगर जनता डाक्टरजीसे सन्तुष्ट थी।

(५)

डाक्टर भारद्वाजको शुद्धिका प्रथम प्रचारक समझना चाहिए। बड़ौदामें रहते हुए उन्होंने ढेड़-जातिके बहुतसे अछूतोंको आर्य बनाया था। उनकी शिक्षिता कन्याओंके विवाह भी ब्राह्मण आदि कुलोंमें उत्पन्न पुरुषोंसे करवा दिये थे। इस घटनाके काफी देर बाद धर्मपाल मुसलमानसे आर्य बना। यह पहला मुसलमान ग्रेजुएट था, जो आर्य बना। इस कारण डाक्टर साहब स्वभावसे उसकी ओर आकृष्ट हुए। वह उनके घर आने-जाने लगा। बहिन सुमंगली देवीको वह माताजी कहकर बुलाया करता था। धर्मपालके आनेपर भारद्वाजजीने आर्यधर्म-सभाको पुनरुज्जीवित किया। मैं भी इस सभामें सम्मिलित हुआ। धर्मपालको सभाका मन्त्री बनाया गया। धर्मपाल डाक्टरजीके घरमें ही बच्चोंकी तरहसे रहता था। भाग्यसे मेरी बाँहमें फोड़े निकल आये। इस कारण मुझे भी इलाजके लिए डाक्टरजीके घर लाहोरमें आ जाना पड़ा। धर्मपालने उन्हीं दिनों एक अपराध किया था, जिसका यहाँ बयान करना उचित नहीं। अपनी साहसी प्रवृत्तिके कारण एक दिन मैंने साफ शब्दोंमें धर्मपालसे उसका अपराध कह सुनाया। वह भड़क उठा और डण्डा उठाकर मुझे मारनेके लिए झपटा। इसी समय बहन सुमंगली भागकर उसके और मेरे बीचमें आ गई। उनकी उपस्थितिमें वह मुझपर प्रहार न कर सका। मैं तो बच गया, परन्तु मेरी बहनको उसपर इतना अधिक क्रोध आया कि जब डाक्टर साहब घर वापस आये, तब उन्होंने उनसे कहा कि धर्मपाल अब यहाँ नहीं रह सकता।

सारी घटना सुनकर डाक्टरजीने धर्मपालको मेरे पाँव पकड़कर माफी माँगनेको कहा। इतना तो उसने कर दिया, परन्तु अपने अपराधके लिए वह डाक्टरजी द्वारा बताया हुआ प्रायश्चित्त करनेको तय्यार नहीं था। इस कारण डाक्टरजीने उसे घरसे बाहर कर दिया। एक रात उसने रावीके किनारे काटी। फिर वह समाजके मुखियाओंके वैयक्तिक मतभेदका अनुचित लाभ उठाकर लोगोंको डाक्टरजीके बरखिलाफ़ उभाड़ने लगा। यहाँ तक कि डाक्टरजीके घरकी छोटी-छोटी बातों और बातचीतोंके आधारपर उसने महात्मा-पार्टीके सर्वमान्य नेता महात्मा मुंशीरामजीको धोखा देनेका प्रयत्न किया। इस मामलेका पंच भी महात्माजीको ही नियुक्त किया गया। उन्होंने धर्मपालको यह सज़ा दी कि छः मास तक सार्वजनिक जीवनसे जुदा रहे। धर्मपालको अपने अपराधपर पश्चात्ताप तो था ही नहीं, अतः वह और अधिक भड़का। उसने हमारे विरुद्ध एक किताब छपवाई। उसमें उसने डाक्टर भारद्वाजजीके निजी चरित्रपर घृणित और गन्दे आक्षेप किये। डाक्टर साहब उन दिनों लाहौर-आर्यसमाजके प्रधान और प्रतिनिधि-सभा पंजाबके मन्त्री थे। उनका चरित्र तो तपे हुए कुन्दनकी तरह उजला और पवित्र था। उन्होंने प्रतिनिधि-सभाकी अन्तरंग-समितिमें कहा कि धर्मपालने मेरे चरित्रपर आक्षेप लगाये हैं। मैं उनके लिए अदालतमें नहीं जाना चाहता। इसका न्याय मैं सभा द्वारा करवाना चाहता हूँ कि वह मामलेकी जाँच करके यदि मुझे दुराचारी पावे, तो मुझे दण्डित करे अन्यथा धर्मपालको दण्डित किया जाय।"

सभाकी ओरसे धर्मपालसे उत्तर माँगा गया। उसके पास कोई आधार तो था ही नहीं, जिसे वह पेश करता। उसने बहाना किया—डाक्टरजी शक्तिशाली हैं, सभाके मन्त्री हैं, उनके बरखिलाफ कहनेकी हिम्मत ही कौन करेगा।

यह बात मालूम होते ही डाक्टरजीने सभाके मन्त्रीपदसे त्यागपत्र दे दिया।

अब और कोई बहाना तक न मिलनेसे धर्मपाल सभाको ही गालियाँ देने लगा। इसपर सभाके प्रधानजीकी अनुमतिसे डाक्टरजीने धर्मपालपर अदालतमें मानहानिका दावा दिया, धर्मपालने समझा कि अदालतमें तो उनके चरित्रपर धूल उड़ानेका और भी अच्छा मौक़ा है। उसने डाक्टरजीके विचारोंसे मतभेद रखनेवाले महानुभावोंका आश्रय लिया। परन्तु वे लोग भी डाक्टरजीके व्यक्तिगत चरित्रसे इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने अदालतमें यही कहा कि मतभेद होना और बात है, परन्तु व्यक्तिगत चरित्रकी दृष्टिसे डाक्टर साहबका जीवन बहुत उन्नत है। ब्रह्मसमाजके एक नेता जब गवाहके कटघरेमें लाये गये और अदालतने उनसे पूछा कि डाक्टर भारद्वाजके चरित्रके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है, तो उन्होंने कहा कि यदि ज़रूरत हो, तो मैं अपनी धर्मपत्नी या अपनी कन्याको डाक्रजीके कमरेमें रात-भर अकेला उन्हींके पास छोड़ सकता हूँ।"

अदालतने कहा—"अब मुझे आपसे और कोई प्रश्न पूछनेकी आवश्यकता नहीं।"

इसी मामलेमें एक और घटना भी हुई, जिसने डाक्टरजीके चरित्रको और भी अधिक चमका दिया। धर्मपाल जिन दिनों पुत्रकी तरहसे डाक्टरजीके घर रहा करता था, उन्हीं दिनों डाक्टरजी अपने एक नवयुवक आर्यसमाजी मित्रके घरमें बहुत आया-जाया करते थे। एक दिन इसी मज़ाकमें देवी सुमंगलीने उस नवयुवकका नाम लेकर कह दिया कि वह तो मेरी सौत है जो तुम उसके घरमें खूब आते-जाते हो। बहन सुमंगलीके इस वाक्यका धर्मपाल नाजायज लाभ उठाकर डाक्टर साहबसे अदालतमें यह जवाब पूछा—"क्या आपकी धर्मपत्नीने आपसे यह बात कभी की थी या नहीं?"

डाक्टर साहबके वकीलने यह आवश्यक समझा कि भारद्वाज इस घटनाकी सचाईसे इन्कार कर दें। यह साफ़ था कि सुमंगलीका वह अभिप्राय तो था नहीं, जिसके लिये धर्मपाल इस वाक्यको पेश कर रहा था। तथापि सत्यनिष्ठ भरद्वाज इस वाक्यको मिथ्या किस तरह कहते। उनके वकीलने उनसे कहा—'कह देना, मुझे याद नहीं।" परन्तु डाक्टर साहबने कहा—"यह भी कैसे कहूँ, क्योंकि मुझे तो याद है।"

अन्तमें हारकर वकील साहब इस मामलेमें मेरी मदद लेने लगे। मैंने भी उन्हें मदद देनेसे इनकार कर दिया। साथ ही मैंने उन्हें यह भी समझा दिया कि कल्पना करो... कि यदि मैं तुम्हारे कहनेसे डाक्टर साहबको इतना-सा गोलमाल करनेकी सलाह भी दूँ, तो मुझे मालूम है कि वह इस मामलेमें मेरी सलाह भी न मानेंगे।"

अन्तमें खुली अदालतमें धर्मपालके वकीलने उनसे यही प्रश्न किया। डाक्टर साहबने अदालतसे कहा—"क्या प्रश्नका उत्तर अवश्य दूँ?"

अदालतने कहा—"हाँ।"

सत्यवीर भरद्वाजने कहा—"यह बात सत्य है।"

बस मजिस्ट्रेटका रुख एकदम बदल गया। इस घटनाके बाद उसने बहुत अधिक गवाहियाँ आदि लेना भी व्यर्थ समझा। उन्हीं दिनों धर्मपाल डिप्टी-कमिश्नरके पास डाक्टर साहबको राजद्रोही सिद्ध करनेमें भी गया था, परन्तु डाक्टर महोदयकी इस सत्यनिष्ठाके सामने उसकी दाल न गली। मैजिस्ट्रेटने एक बहुत ही सख़्त फैसला लिखा और धर्मपाल पर ५००) जुर्माना किया।

इस निर्णयमें उसने डाक्टर साहबके चरित्रकी बड़ी तारीफ़ की थी।

महात्मा मुन्शीरामजी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने डाक्टर भरद्वाजको यह मामला जीतनेपर अपने अखबारमें बधाई दी। धर्मपाल अभी तक समझता था कि महात्माजी मेरे तरफ़दार हैं। इस घटनासे वह उनसे भी नाराज़ हो गया। उसने उनके विरोधमें भी एक पुस्तक लिख मारी। फलतः उसे आर्यसमाजसे ही पृथक् होना पड़ा। आजकल उसने अपनेको

गाज़ीमहमूद धर्मपाल अब्दुर ग़फ़ूर नामसे मशहूर किया है और आर्यसमाजको गाली देकर वह अपना पेट पालता है।

यदि मेरी ये पंक्तियाँ पढ़नेका अवसर धर्मपालको भी मिले, तो मैं उसे साफ़ शब्दोंमें कह देना चाहता हूँ कि ये पंक्तियाँ मैंने उसकी पोल खोलनेके लिए नहीं, बल्कि डाक्टर साहबके चरित्रकी उज्ज्वलता दिखानेके लिए ही लिखी है।

(६)

अवस्थाओंके फेरसे डाक्टर साहबको यह देश छोड़ना पड़ा। कुछ समय बर्मा रहकर मारिशस चले गये। वहाँ वह पोर्टलुई नगरमें प्रेक्टिस करने लगे। डाक्टरजीके हाथमें यश था। वह शीघ्र ही हज़ारों रुपया कमाने लगे। एक मोटर भी खरीद ली, परन्तु डाक्टर चिरंजीव किस तरह होते, यदि धन कमाना ही उनके जीवनका उद्देश्य होता। अपनी प्रेक्टिस शीघ्र ही बहुत अच्छी हो जानेपर उन्होंने वहाँ आर्यसमाजकी स्थापना भी कर दी। विदेशमें वह आर्यसमाजके प्रथम दूत थे। वहाँ उन्होंने हज़ारों भारतीयोंको आर्य बना दिया। यहाँ तक कि मारिशसकी एक पृथक् प्रतिनिधि सभा भी क़ायम कर दी।

धीरे-धीरे मारिशस सनातनधर्मावलम्बी भारतीयोंको डाक्टर साहबका यह कार्य खटकने लगा। वे लोग एक डेपुटेशन बनाकर उनके पास आये, और कहा—"आप अपना यह आर्यसमाजके प्रचारका कार्य बन्द कर दीजिए, वरना हम लोग भविष्यमें आपसे अपना इलाज करवाना ही छोड़ देंगे। आपकी बजाय, तब हम फिरसे यूरोपियन डाक्टरोंके पास ही जाया करेंगे।"

डाक्टर साहबने हँसकर कहा—"आप लोगोंके मशविरेके लिए धन्यवाद! मैं अपना काम बन्द नहीं कर सकता। हाँ, अपने इलाजके लिए आप स्वतन्त्र हैं। चाहे आप मेरे पास आवें या किसी और डाक्टरके पास जावें।"

बस, इस दिनके बादसे धर्मके नामपर इस यशस्वी डाक्टरकी चिकित्साका बहिष्कार कर दिया गया! लोग धरना देने लगे। डाक्टर साहबकी आय एकदम घट गई। आर्यसमाजी ग़रीब थे, वह डाक्टरजीको उनकी सेवाओंका बदला धनसे न दे सकते थे। परिणाम यह हुआ कि उनका गुज़ारा भी कठिन हो गया। शीघ्र ही उन्हें मोटर बेच देनी पड़ी। धीरे-धीरे नौकर हटा दिये गये। नौबत यहाँ तक पहुँची कि धोबीकी धुलाई देने तकको डाक्टर साहबके पास पैसोंकी कमी हो गई। सुमंगली देवी इन दिनों सचमुच डाक्टरजीकी अथक सेवा किया करती थी। सारी उमर आरामसे व्यतीत करनेकी आदत होनेपर भी वह स्वयं कपड़े धोती थी, रोटी पकाती थी और झाड़ू देकर घर बुहारती थी। पति-पत्नी दोनों हँसते हुए इन आपत्तियोंका सामना करते थे। डाक्टर साहबने ग़रीब आर्योंकी सन्तानोंके लिए स्कूल भी खोल रखा था। वह और देवी सुमंगली स्वयं ही इस स्कूलमें पढ़ाया भी करते थे।

डा० चिरंजीव मारीशससे पुन लाहोर वापस आ गये हैं। लाहोर ही में उन्होंने अपनी प्रेक्टिस शुरू की है। अब वह बिलकुल बदल गये हैं। उन्हें अब अपनी आजीविकाकी चिन्ता नहीं रही। चिन्ता है सिर्फ़ दुःख पीड़ितोंकी सेवा करनेकी। वह अब किसीसे कोई फ़ीस नहीं माँगते। कोई किसी रोगीको देखनेके लिए अपने घर ले जाता है, तो उससे भी फ़ीस नहीं लेते। यदि कोई पूछता है—"डाक्टर साहब! आपकी फ़ीस क्या है?"

डाक्टरसाहब अपनी स्वाभाविक पवित्र मुस्कराहटके साथ जवाब देते हैं—"शून्यसे लेकर १६ रु० तक, जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो।"

डा० चिरंजीवका उद्देश्य अब मनुष्यकी सेवा है। दरिद्रनारायणके उस सच्चे उपासकके घर जाकर एक दिन मुझे सचमुच ही एक स्वर्गीय दृश्य देखनेको अवसर मिला। मेरी मौजूदगीमें ही एक दरिद्रसा व्यक्ति अपनी बीमार पत्नीको डाक्टर साहबके घर लाया! वह बेचारी महीनोंसे बीमार थी। सूरत देखते ही प्रतीत होता था कि मानो मौत उससे खिलवाड़ कर रही है। डाक्टर चिरंजीवने उसकी परीक्षा की, उसके लिए नुस्खा लिखा और अपने कम्पाउण्डरसे कहकर

उसके लिए मुफ्त ही दवाई भी बनवा दी। उसी उस व्यक्तिने बड़ी नम्रतासे पूछा—"महाराज! इसे खानेके लिए क्या चीज़ दूँ।"

डाक्टर साहबने कहा—"इसे दूधके अतिरिक्त और कोई चीज़ खानेको मत देना।"

वह आदमी दो-तीन क्षणों तक तो डाक्टर साहबकी तरफ़ देखता रहा। इसके बाद उसकी रुलाई फूट पड़ी। वह कातरभावसे सिसककर रोने लगा। डाक्टर साहबके सहानुभूति-पूर्ण हृदयको यह देखकर ठेस पहुँची। उन्होंने आश्वासनके तौरपर कहा—"क्यों भाई, रोते क्यों हो?"

वह आदमी पहले तो कुछ न बोला, परन्तु डाक्टर साहबके ज़ोर देनेपर उसने कहा—"जो आदमी अपनी पत्नीकी बीमारीमें दवा तकके लिए पैसे नहीं दे सकता, वह दूधका कैसे इन्तज़ाम करेगा?"

डाक्टर साहबने अपनी जेबमें हाथ डाला। कुछ रुपये निकाले और उस गरीबको देकर कहा—"जाओ भाई! इन रुपयोंसे अपनी पत्नीको दूध पिलाओ। जब ये समाप्त हो जायँ, तो मुझसे और ले जाना।"

वह अपढ़ आदमी डाक्टर साहबसे धन्यवाद तो नहीं कह सका, परन्तु उस दरिद्रका एक-एक रोम डाक्टर साहबके लिए सहस्रों सफल आशीर्वादोंकी अजस्र वर्षा कर रहा था। उस दिनके बादसे भी डाक्टर साहबने उस असहाया नारीकी इस तरह चिकित्सा की, जिस तरह वह किसी करोड़पतिकी चिकित्सा कर रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि वह मौतके मुँहमें जानेसे बच गई।

यह घटना शीघ्र ही मशहूर हो गई। गरीबों और पीड़ितोंको मानो नारायण मिल गया। उनका निवासस्थान पीड़ितोंके लिए एक सच्चा तीर्थ बन गया। डाक्टर साहबका एक-एक मिनट बीमारोंकी सेवामें कटने लगा। उनकी आमदनी भी कम न थी, क्योंकि उनके यहाँ इलाजके लिए आनेवाले धनी अमीरोंकी संख्या भी कम न थी। इसपर भी उनका जीवन बिलकुल सादा था। वह अपने विलासके लिए जरा भी खर्च नहीं करते थे। वह सादे मकानमें रहते, सादे कपड़े पहनते और सादा ही भोजन करते। वह पहले पंजाबी F. R. C. S. थे। उनके हाथोंमें यश था। उनका घर एक अच्छे बड़े अस्पतालके समान चिकित्साके सभी तरहके सामानोंसे पूर्ण था। बीमारोंका इलाज करनेके साथ-ही-साथ वह उनकी नैतिक तथा आत्मिक चिकित्सा भी किया करते थे। परिणाम यह हुआ कि वह शीघ्र ही लाहोरमें एक महात्माके समान पुजने लगे। नगरकी जिस गलीसे वह निकल जाते, उसीके गरीब लोग खड़े होकर उन्हें हार्दिक आशीर्वाद देते थे।

डाक्टर साहब 'पापरोग' खरीदनेवाले धनी लोगोंकी खबर लेना भी खूब जानते थे। एक दिन मेरी मौजूदगीमें ही एक धनी उनके पास इलाजके लिए आया। डाक्टर साहबने उससे पूछा—"तुम्हें क्या शिकायत है?"

उसने कहा—"अलग कमरेमें चलकर सुनिये।"

डाक्टर साहबने कहा—"यहींपर कहो। इनसे घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं।" परन्तु वह अब भी हिचकिचा रहा था, अतः डाक्टर साहबने उससे कहा—"अपनी बीमारीका नाम काग़ज़पर लिख दो।"

काग़ज़के एक पुर्जेपर उसने लिखा—'सिफलिस।'

डाक्टर साहबने एक और पुर्जेपर 'फीस ६४)' लिखकर उसके सामने कर दिया। वह घबराकर बोला—"डाक्टरजी आप तो कमाल करते हैं। सिविलसर्जन तक तो ३२) लेते हैं और आप ६४) माँगते हैं। यह कहाँका न्याय है?"

डाक्टर साहबने इस बार गम्भीरतासे कहा—"भले आदमी, यह तो बताओ कि यह बीमारी तुमने खरीदी कितने रुपये देकर है। क्या ६४) इनसे अधिक हैं। जाओ! तुम्हारा इलाज मैं नहीं करूँगा। इलाज होगा, तो केवल फीसपर ही, और साथ ही तुम्हें यह प्रतिज्ञा भी करनी होगी कि भविष्यमें सदाचारी रहोगे।"

वह पापरोगी शीघ्र ही डाक्टर साहबके घरसे खिसक गया।

उनके बाहर होते-न-होते डाक्टरजी मेरी तरफ देखकर जोरसे खिलखिलाकर हँस पड़े।

मैं कट्टर आर्यसमाजी हूँ। अपने लिए मैं ऋषि दयानन्दकी एक-एक बातको प्रामाणिक मानता हूँ, फिर भी आध्यात्मिक रहस्यवादपर मेरा विश्वास है। मुझे ज्ञात है कि पाखण्डी लोग धनके लोभसे इस विद्याका दुरुपयोग भी करते हैं, तथापि इसकी सत्यतापर भी मेरा विश्वास है, क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरे अनेक वैयक्तिक अनुभव भी हैं। अपने जीवनकी जिन घटनाओंका उल्लेख मैं यहाँ करने लगा हूँ, उसकी गणना भी आध्यात्मिक रहस्यवादमें की जा सकती है।

एक रात नींदमें मुझे स्वप्न आया, एक जहाज़पर सवार होकर मैं समुद्र-यात्रा कर रहा हूँ। साँझके समय मैं रेलिंगके सहारे जहाज़के डेकपर खड़ा होकर समुद्रके अनन्त विस्तीर्ण वक्षस्थलकी ओर देख रहा हूँ। इसी समय दूरपर एक और जहाज़ आता हुआ दिखाई दिया। क्रमशः वह जहाज़ बहुत निकट आ गया। मुझे दिखाई दिया कि दूसरे जहाज़के डेकपर अकेले डा० चिरंजीव भारद्वाज खड़े हैं। सहसा उनकी दृष्टि मुझपर पड़ी और ऊँची आवाज़में उन्होंने अंग्रेज़ीकी एक कविताका एक पद पढ़ा, जिसका भावार्थ है—"जहाज़ एक बार समुद्रमें मिलते हैं, और फिर अपने-अपने रास्तेपर चले जाते हैं।"

उसी समय मेरी नींद उचट गई। मेरी अन्तरात्माने कहा—अवश्य ही मेरे मित्रका कोई भारी अनिष्ट होनेवाला है। मैं उठा, और मैंने अंग्रेज़ी कविताकी वह पंक्ति नोट कर ली। उससे पूर्व आज तक मैंने वह लाइन न कहीं पढ़ी थी और न सुनी ही थी। रात-भर मुझे नींद न आई। मैं चिन्तित रहा। प्रातःकाल ८ बजे मुझे तार मिला—"डा० चिरंजीव बहुत अधिक बीमार हैं एकदम चले आओ।"

उसी समय मैं लाहोरके लिये रवाना हो गया। मेरे मित्रपर हैजेने आक्रमण किया था। मैंने लाहोर पहुँचकर देखा कि लाहोरके सभी बड़े-से-बड़े डाक्टर मेरे मित्रकी जी-जानसे, बिना एक भी पैसा लिए, चिकित्सा कर रहे हैं। मालूम होता था कि डाक्टरोंने इस मामलेमें मौतसे लड़ाई करनेका संकल्प कर लिया है। डा० बेलीराम, डा० हीरालाल, डा० बालकृष्ण, डा० सदरलैण्ड, डा० निहालचन्द, डा० धनपत राय—ये लोग उन दिनों लाहोरके सर्वश्रेष्ठ डाक्टर समझे जाते थे। रातको ड्यूटी भी डाक्टर लोग ही दिया करते थे। अस्पतालोंकी नर्सेज़ डाक्टर चिरंजीवकी शुश्रूषा करनेको लालायित नज़र आती थीं। यह सब इसलिए कि डा० चिरंजीवका व्यक्तित्व पंजाबके डाक्टरोंके लिए सम्मानप्रद था। अपनी योग्यता और सेवा इन दोनों दृष्टियोंसे लाहोरमें उन्हें जो स्थान प्राप्त था, वह डाक्टर-जमातके लिए ही प्रशंसास्पद था। मैं भी दिन-रात जागकर अपने मित्रकी यत्किञ्चित सेवा करनेका प्रयत्न करता था। डा० चिरंजीव परसे हैजेका प्रभाव तो जाता रहा, परन्तु उन्हें 'यूरीमिया' हो गया। इस बीमारीके दौरोंमें कई बार उन्हें सरसाम भी हो जाता था। इस अर्ध-चेतनामय पागलपनकी दशामें भी वह दर्शन और धर्मकी चर्चा ही करते थे। आठ दिनों तक मुझे उनकी सेवा करनेका अवसर मिला, इसके बाद वह पवित्रात्मा अपने भौतिक देहको छोड़कर स्वर्ग चली गई।

उस अन्तिम समयमें भी मैं अपने मित्रके सिराहने ही बैठा था। उनके वियोगने मेरा दिल तोड़ दिया। मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रोया। मुझे याद नहीं कि अपने इस जीवनमें मैं और कभी इस दिनसे अधिक रोया होऊँ। मेरे बचपनमें ही मेरी युवती बहनका देहान्त हुआ था, मेरे दो भाई और मेरे पूज्य पिता भी मेरे युवाकालमें ही परलोक सिधारे, परन्तु उस दिनकी तरह मुझमेंसे आँसुओंका सोता और कभी नहीं फूटा। उस दिन मेरा वह अभिन्न हृदय मित्र उठ गया, आर्यसमाजका वह यशस्वी सेवक उठ गया, वैदिक सिद्धान्तोंका विद्वान एवं सच्चा ब्राह्मण उठ गया और सबसे बढ़कर दरिद्रनारायणका वह सच्चा सेवक उठ गया! शहर-भरमें रोना धोना मच गया। मुझे याद है, उस महात्माकी अर्थीके साथ सैकड़ों ग़रीब इस तरह रोते-चीखते हुए चल रहे थे, जिस तरह उनके पिताका देहान्त हो गया हो। नगरके मरीजोंमें बहुत दिनों तक मातम छाया रहा। सचमुच वह ऐसा ही दरिद्रवत्सल था। जिन लोगोंको कभी उस सच्चे ब्राह्मणके संसर्गमें आनेका अवसर मिला है, वे उसकी याद आज तक भी आँखोंमें आँसू भरकर करते हैं।

ग़रीबीकी दवा

[लेखक :—श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार]

भारतकी भयंकर बेकारी और उससे उत्पन्न हुई ग़रीबीको हम देख चुके। उसको दूर करनेके लिए भारतमें व्यवसायोंकी उन्नति करनी होगी। यह दो प्रकारसे हो सकती है; एक तो गृह-व्यवसाय और मिल-व्यवसाय द्वारा, दूसरे, केन्द्रीय व्यवसाय-पद्धति और अकेन्द्रिय व्यवसाय-पद्धतिसे। इन दो में से हमें एकको पसन्द करना है। 'किस पद्धतिको स्वीकार करें' इसपर विचार करते हुए हमें इस बातपर ध्यान रखना चाहिए कि हम उन किसानोंकी बेकारीपर मुख्यतया विचार कर रहे हैं, जो सालमें ६ महीने बेकार रहते हैं और ढूँढनेपर भी कोई काम नहीं प्राप्त कर सकते। "मगर ये बेकारीके दिन लगातार नहीं होते, बल्कि आज काम रहता है तो कल नहीं, फिर परसों काम है तो दो दिन बेकारी है। यानी साल-भरमें उनकी बेकारीका समय बँटा रहता है। साथ-ही-साथ उनके कामके दिन भी साल-भर तक फैले रहते हैं।" (१) इसलिए किसान लोगोंको अपनी भूमिसे लगातार कुछ महीनों तक दूर नहीं रखा जा सकता। इसे न तो किसान पसन्द करेंगे और जहाँ तक भारतीय हितोंका सम्बन्ध है, न यह इष्ट ही है। किसानोंसे खेत छुड़वानेकी सलाह तो कोई देगा नहीं, इसलिए गाँवोंसे दूर होनेवाले मिल-व्यवसाय तो कभी भी किसानोंको काम नहीं दे सकते। हाँ, यदि प्रत्येक गाँवके पास एक एक मिल बन जाय, तो आशा की जा सकती है कि इन ७० लाख मिलोंसे भारतीय बेकारी दूर हो जायगी, परन्तु यह तो सर्वथा असम्भव है। गृह-व्यवसाय ही गाँव-गाँवमें फैलाये जा सकते हैं, और बेकार किसानों तथा अन्य लोगोंकी कुछ आमदनी बढ़ा सकते हैं।

यदि यह मान भी लिया जाय कि किसान लोग अपने-अपने गाँवोंको छोड़कर अपनी खेतीकी परवाह न कर कलकत्ते, बम्बई या ऐसे ही किसी समीपस्थ मिलमें काम करनेको तय्यार हो भी जायँगे, तो भी यह सम्भावना बहुत कम है कि मिल-व्यवसाय इनकी बेकारीको दूर कर सकेगा। मिल-व्यवसायोंको उन्नत करनेके लिए सबसे पहले जिस चीजकी आवश्यकता होती है वह है पूँजी। इंग्लैण्डने तो पलासीकी लूट और भारतीय व्यवसायोंके ख़ूनके बलपर अपनी मिलें चला ली थीं, पर ग़रीब भारत इतनी पूँजी इकट्ठी नहीं कर सकता कि भारतमें इतनी मिलें खुल जायँ, जिनसे ये सारे बेकार कामपर लग सकें। इसके साथ-साथ मिल-व्यवसायोंको इतना उन्नत करनेके लिए कि ये सारे बेकार उनमें खप जायँ, इतने अधिक समयकी ज़रूरत है कि भारत प्रतीक्षा नहीं कर सकता। भारतमें सबसे पहली मिल १८३८ में खुली। (१) यदि इसीको भारतकी पहली मिल समझ लें, तो १९१९ में ८१ वर्षके बाद, भारतमें सब प्रकारकी मिलें मिलाकर कुल ५३१२ थीं, और ये मिलें १३६७१३६ आदमियोंको काम दे सकीं। (२) इसका अभिप्राय यह हुआ कि बच्चों और बूढ़ोंको निकालकर सात करोड़ किसानोंको बारह मासका काम देनेके लिए २६५६०० मिलोंकी ज़रूरत है, और इतनी मिलोंके चलानेके लिए ४०।५० वर्ष तक भारतीय किसानोंको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। रुपयेकी बात तो हम छोड़ ही गये। केवल कपड़ेकी मिलोंमें ५० करोड़ रुपया व्यय हो चुका है। इससे सब प्रकारकी कुल मिलोंमें दो अरब रुपया व्यय हुआ है, यह मान लेते हैं। और इस प्रकार इन मिलोंको चलानेके लिए एक सौ अरब रुपयेकी ज़रूरत होगी। कहनेकी ज़रूरत नहीं कि भारत इतनी पूँजी और समय मिल-व्यवसायकी उन्नतिमें व्यय नहीं कर सकता, और न उसे करना चाहिए। फिर भी यदि किसी प्रकार यह मान भी लिया जाय कि भारतवासी इतना भयंकर व्यय करनेको तैयार हो भी जायँगे,

(१) हिन्दी-नवजीवन,—१९२८, पृ० २४२

(१) Economic Condition in India, p, 168.
(२) Economic Condition in India, p, 169.

तो भी मिलोंका काम इतना परिश्रम-साध्य होता है कि बालक बूढ़े और स्त्रियोंका उनमें काम करना इष्ट नहीं है। लंगड़ों और लूलोंकी समस्या तो मिल हल ही नहीं करती, बल्कि मिलके द्वारा उनकी संख्या बढ़ ही रही है। मिल-मालिकोंको तो स्त्रियोंका परिश्रम महँगा भी पड़ता है। फिर मिल-व्यवसायके लिए तो विशेष निपुण परिश्रमकी भी तो ज़रूरत है, इसके अतिरिक्त व्यय और समयकी। साथ-ही-साथ हमें यह भी नहीं भुलाना चाहिए कि इस प्रकार मिल-व्यवसायोंको उन्नत करनेके लिए गांवोंको नष्ट कर बड़े-बड़े शहर बनाने पड़ेंगे। इससे जहाँ गाँवमें रहनेवाले ९० प्रतिशत भारतीयोंको स्थान बदलनेका अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा, वहाँ भारतवर्षके ग्रामोंका पुरातन संगठन टूट जायगा, जो किसी प्रकारसे भी भारतीय दृष्टिकोणसे वांछनीय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार गाँवोंको नष्ट करना मिलोंके कच्चे मालके लिए भी लाभप्रद होगा, इसमें सन्देह है।

इनके सिवा मिलके विरुद्ध बहुतसी युक्तियाँ और दी जा सकती हैं। मिलोंसे उत्पत्तिका समान और उचित रूपसे विभाग नहीं होता। उत्पत्ति माँगसे अधिक बढ़ जाती है और फिर वह दूसरोंके मत्थे बल-पूर्वक मढ़ दी जाती है। गत यूरोपीय महायुद्ध इस दिशामें बढ़े हुए व्यवसायोंके संघर्षका अच्छा उदाहरण है। मिलोंमें मज़दूरोंकी हालत देखकर कोई भी यह कह सकता है कि वहाँ मनुष्यताका खून किया जाता है, पर मैं मानता हूँ कि मिलके इन उपर्युक्त दोषोंकी दवा साम्यवाद है। लेकिन श्री हेनरी फोर्डकी इस स्थापनाका जवाब क्या है—"यह साधारण नियम है कि बड़े कारखाने आर्थिक दृष्टिसे ठीक नहीं हैं।" निश्चय ही यह स्थापना एक विचित्र स्थापना है, चूँकि यह एकदम क्रान्तिकारी है। श्री फोर्डकी स्थापना उनके दो-एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगी।

"जहाँ कहीं सम्भव हो, हमें अकेन्द्रीय व्यवसाय-पद्धतिको स्वीकार करना चाहिए। एक बहुत बड़ी आटेकी मिल चलानेसे कहीं अच्छा है कि उन सब स्थानोंमें छोटी-छोटी मिलें खोल दी जायँ, जहाँ कि अनाज पैदा होता है। जो समाज कच्चा माल तय्यार करता है, यथाशक्ति उसीको तय्यार माल भी बनाना चाहिए। आटा वहीं पीसना चाहिए, जहाँ अनाजकी फसल होती है। सुअर पालनेवाले देशको सुअर नहीं, किन्तु सुअरके मांसका निर्यात करना चाहिए। कपड़ेकी मिलें कपासके खेतोंके निकट होनी चाहिए। ये विचार क्रान्तिकारी नहीं हैं, यह कोई नई बात नहीं है, परन्तु बहुत पुरानी बात है। हज़ारों मीलसे कच्चा माल ला लाकर एक छोटेसे स्थानमें जमा करनेकी आदत पड़नेसे पहले हम ऐसा ही करते थे। अब तो ग्राहकसे हम मालकी ढुआईका भी व्यय वसूल करते हैं। हमारे समाज अबसे अधिक अपनेमें पूर्ण होने चाहिए। उन्हें रेलवेपर कम आश्रित होना चाहिए। वे जो पैदा करें, उसे निर्यात करनेसे पहले उससे अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर लें, मगर जब तक गल्ले या दूसरे कच्चे मालसे तय्यार माल बनानेका ढंग उनके हाथ नहीं आया, तब तक यह कैसे होगा? अगर यह बात हरएक किसानके बूतेकी न हो, तो वे सहयोग करके ऐसे कारखाने तय्यार कर सकते हैं। आज किसान ही सबसे अधिक कच्चा माल तय्यार करता है, किन्तु इस ज़मानेका दुर्भाग्य है कि फिर भी वह सबसे बड़ा व्यापारी नहीं बन सकता। चूँकि उसे कच्चे मालको बेचने लायक बनानेके लिए दूसरोंके हाथ बेच देना पड़ता है। अगर वह अपने कच्चे मालको खुद ही उपयोगके योग्य बना सके, तो केवल उसीको उसका पूरा लाभ नहीं मिलेगा, बल्कि उसको समाज और रेलवे इत्यादिसे स्वतन्त्रता मिलेगी, और फिर रेलवे इत्यादिका काम घटनेसे कुछ राहत मिलेगी। यह न सिर्फ युक्तियुक्त एवं व्यावहारिक ही है, बल्कि परमावश्यक भी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह योजना कई जगहोंपर अमलमें आ रही है, पर जब तक इस योजनापर अधिक अमल न हो, लोगोंके जीवन-व्ययपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।"

---

(1) My life and work, by Henery Ford, P. 232. परिवर्तनोंके साथ अनुवाद 'नवजीवन'से लिया गया है।

श्री फोर्ड अन्य स्थानपर फिर लिखते हैं (१)—

"हमने किसानोंको खेतीसे नहीं खींच लिया है, बल्कि हम खेतीके साथ ही उद्योगको जोड़ना चाहते हैं।"

"बड़ा उद्योग यदि देशके लाभकी दृष्टिसे चलाया जाय, तो उसे सारे देशमें बाँट देना होगा, जिससे खर्च तो कम पड़ेगा ही, पर साथ-ही-साथ ग्राहकोंमें ही मजदूरी भी बँट जायगी।"

"वास्तवमें समस्या यह है कि किसान खेतीके अतिरिक्त भी कामकी माँग करता है, ताकि वह अपने निर्वाहके लिए और कमा सके। यह स्पष्ट सचाई है।"

"अगर खेतीके साथ छोटे पैमानेपर विस्तृत उद्योगको मिला देवें, तो यह प्रश्न सहज ही हल हो जाता है। खेतीमें बैठे रहने और उद्योगमें मन्दीके दिन आते हैं। दोनोंको इस प्रकार मिलाया जा सकता है कि एककी मन्दीमें दूसरा तेज चले। इसका फल यह होगा कि सभी किसीको सस्ता माल मिलेगा और कोई भूखा नहीं मरेगा।"

श्री हेनरी फोर्डने शायद ये वाक्य अमेरिकाके किसानोंके लिए लिखे हैं, पर भारतके किसानोंपर ये वाक्य सबसे अधिक अच्छी तरहसे लागू होते हैं, चूँकि हम पहले देख आये हैं कि भारतीय किसान सबसे गरीब हैं। श्री फोर्डके मिल-विषयक विचारोंका समर्थन अमेरिकाकी प्रसिद्ध जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी (General Electric Company) के इंजीनियर चार्ल्स स्टाइन मेट्सने भी किया है। वे लिखते हैं—"एक स्थानपर कई झरनों या स्रोतोंका पानी इकट्ठा कर गिराया जाय और फिर इस गिरावकी ताकतसे बिजली ली जाय, तो इसमें बड़ा खर्च पड़ेगा। इससे कहीं अधिक अच्छा है कि जहाँ झरना मिले वहीं आवश्यकता पड़नेपर बिजली उत्पन्न की जाय।"

इसी प्रकार श्री एडवर्ड ए० फ़िलेनने, जो अमेरिकाके प्रसिद्ध व्यापारी हैं, उपर्युक्त बातोंकी सचाईको स्वीकार किया है।

(1) Economics of Khaddar, p. 77

हो सकता है कि कुछ लोग फोर्डके इन अनुभवोंको प्रामाणिक न समझें, पर वे भी मिलोंके कच्चे मालको एक जगह ला जमा करनेके व्यर्थ श्रम और परिश्रमका किसी तरह भी पक्ष समर्थन नहीं कर सकते। इसी प्रकार बने मालको उपयोग करनेवालों तक पहुँचानेमें जो व्यय होता है, वह भी हाथके व्यवसायमें बच जायगा। फिर मिलोंकी अपेक्षा हाथके व्यवसायके उपकरण सस्ते और सरलतासे प्राप्य होते हैं। कच्चे मालकी रखाई (Storage) पक्के मालका रखना इनकम टैक्स, अदालतका व्यय, विज्ञापनका व्यय आदि कितने ही व्यय हैं, जो हाथके व्यवसायमें नहीं होते। फिर इससे विदेशी पूँजीको भी भारतमें लाना पड़ेगा, जो कभी भी भारतीय हितोंके अनुकूल नहीं होगी।

अब हमारे आगे एक ही मार्ग है, और वह है हाथके व्यवसायका बेकार किसानोंमें प्रचार। परन्तु यह हाथका व्यवसाय कौनसा हो? भिन्न-भिन्न गृह-व्यवसाय इस कामके लिए सुझाये जा सकते हैं—पशुपालन, अण्डोंको पैदा करना, खिलौने बनाना, मधुमक्खी पालना, बाँसका व्यवसाय, चमड़ेका व्यवसाय इत्यादि मैं इन सब व्यवसायोंको बुरा नहीं कहता, आप इन व्यवसायोंका खूब प्रचार कीजिए। पर मेरा विश्वास है कि इनव्यवसायोंके फैलनेपर भी लोग बेकार रहेंगे। फिर इन व्यवसायोंको किसान स्वीकार कर भी लें, तो इनसे बनी चीज़ोंकी माँग भी तो चाहिए। इसके सिवा पशुपालन आदि ऐसे व्यवसाय हैं, जिनमें लगकर किसानको खेतीसे मुक्त होना पड़ेगा। इसके लिए पूँजीकी भी जरूरत है। चरखा ही एकमात्र ऐसा यन्त्र है, जिसकी कताई प्रत्येक आदमीको, चाहे वह दिनमें एक घण्टा ही बेकार रहता हो, कुछ न कुछ काम दे सकती है। इससे उसके अन्य व्यवसायोंपर ज़रा भी आँच नहीं आवेगी। चरखा तो एक सहायक धन्धा है, जो यहाँकि किसानोंके खाली समयको—उनके खेतको कुछ भी हानि न पहुँचाकर—कीमती बना सकता है और उनकी आमदनीमें वृद्धि कर सकता है। फिर वह आमदनी

(1) Economics of Khaddar, p. 78-76

चाहे एक आनेसे अधिक ही क्यों न हो। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि चरखा कभी भी उन लोगोंको आर्थिक दृष्टिसे सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जो बेकार नहीं हैं। चरखेकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह मनुष्य-समाजकी उस आवश्यकताको पूरा करता है, जो भोजनको छोड़कर सबसे अधिक ज़रूरी है। यही विशेषता उसे अन्य गृह-व्यवसायोंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त बना देती है। फिर उससे किसी भी अन्य व्यवसायको हानि नहीं पहुँचती। भारतीय स्त्रियोंके लिए तो चरखा ही एकमात्र ऐसा साधन है, जो उनकी बेकारीको दूर कर सकता है, इसीलिए दहेजमें आज भी माताएँ उन्हें चरखा देती हैं, और बाल्यावस्थामें अपनी गोदमें ही चरखा चलाना सिखा देती हैं। कताई ही एकमात्र ऐसा व्यवसाय है, जिसे बूढ़े, बच्चे और स्त्रियाँ सुगमताके साथ कर सकती हैं। इसके लिए न तो कुछ बड़ी पूँजीकी ज़रूरत है, और न विशेष निपुण परिश्रमकी। चरखा औसतन १½ रु० में मिल जाता है। खादी-प्रतिष्ठानका चरखा २॥) रु० में और सावली-केन्द्र (महाराष्ट्र) में तो बारह आनेमें एक चरखा मिल जाता है। घरकी तकली तो कहीं गई नहीं, जो शायद एक आनेमें बन सकती है।

हाथ-कताईकी विशेषताएँ सन् १९२६ के 'नवजीवन'से देता हूँ—

"(१) इसे तुरन्त ही व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है, क्योंकि—

(क) इसे शुरू करनेके लिए पूँजी और कीमती औज़ारोंकी कुछ भी ज़रूरत नहीं पड़ती। इसके लिए यन्त्र और कच्चा माल दोनों ही सस्ते दामपर हर जगह मिल जाते हैं।

(ख) इसमें उससे अधिक निपुणता या बुद्धिकी ज़रूरत नहीं, जितनी कि दुःखपीड़ित अनजान हिन्दुस्तानी जनताको है।

(ग) इसके लिए इतने कम शारीरिक श्रमकी ज़रूरत है कि छोटे लड़के और बूढ़े भी सूत कातकर परिवारकी आमदनी बढ़ा सकते हैं।

(घ) इसके लिए फिर नये सिरेसे क्षेत्र तय्यार करनेकी ज़रूरत नहीं, चूँकि अभी भी लोगोंके हाथमें हाथ-कताईकी प्रथा जीवित है।

(२) यह सार्वजनिक और स्थायी है। चूँकि खाद्य पदार्थोंके सिवा सूत ही एक ऐसी वस्तु है, जिसकी माँग अपरिमित और हमेशा बनी रह सकती है, और कातनेवालेके दरवाज़ेपर ही यह बात-की-बातमें बिक सकता है, जिससे ग़रीब किसानको बिना नागा चार पैसे दैनिक आमदनी हो सकती है।

(३) इसपर बरसातकी कमी-बेशीका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए अकालके दिनोंमें भी यह जारी रखा जा सकता है।

(४) लोगोंकी धार्मिक और सामाजिक प्रथाओंका यह विरोधी नहीं है।

(५) जैसा हम आगे देखेंगे कि अकालके दिनोंमें उसे दूर करनेका यह सहज और अच्छा उपाय है।

(६) हिन्दुस्तानकी नष्टप्राय पंचायतोंके पुनः संगठनकी कुछ आशा केवल इसीसे की जा सकती है।

(७) आर्थिक कठिनाईके दिनोंमें एक आदमीको दूर-दूरपर अलग-अलग जाकर मज़दूरी करनी पड़ती है, जिससे कुटुम्बकी एकतामें बाधा पहुँचती है, पर चरखा तो सबको घर बैठे ही रोज़गार और रोज़ी दोनों देता है।

(८) यह किसानका जितना बड़ा सहायक है, जुलाहेका भी उतना ही बड़ा सहारा है, क्योंकि केवल एक इसीसे हाथ-बुनाईके धन्धेको स्थायी आधार मिलता है। आज हाथ-बुनाईके धन्धेसे पौन करोड़से एक करोड़ आदमियोंकी गुज़र होती है, और हिन्दुस्तानके कपड़ेका एक तिहाई अंश पैदा होता है।

(९) इसके पुनरुद्धारसे कितने दूसरे सहायक धन्धे भी उठेंगे, और इस प्रकार आज नष्ट होनेवाले गाँवोंका फिरसे उद्धार संभव है।

(१) 'हिन्दी-नवजीवन'—१९२६, पृ० ६१

(१०) हिन्दुस्तानके करोड़ों निवासियोंमें केवल एक इसीके द्वारा धनका समान बटवारा हो सकता है।

(११) बेकारीकी समस्याका हल — यह भी किसानोंकी आधी बेकारी नहीं, बल्कि शिक्षित युवकोंकी, जो आज कामकी फिक्रमें मारे-मारे फिरते हैं, बेकारीका हल—केवल एक इसी वस्तुसे ही हो सकता है।"

चरखेके उपर्युक्त सब दावे अक्षरशः ठीक हैं। भिन्न भिन्न स्थानोंपर इनकी परख हुई है, और किसी भी गृह-व्यवसायके विषय इतने अच्छे और उचित दावे पेश नहीं किये जा सकते। आचार्य रायने पश्चिम-बंगालके बाढ़ और अकाल-पीड़ित क्षेत्रोंमें पहले धान कूटने आदिका काम करा कर सहायता देनेका प्रयत्न किया; पर जब उनसे कुछ भी काम न चला, तो उन्होंने लोगोंसे चरखा चलवाया। यह खूब चल निकला। तालोरा, चम्पापुर, तिलकपुर और दुर्गापुरके चार केन्द्रोंमें ओटने, धुनने और कातनेकी मजदूरीमें अड़तीस हजार रुपये दिये गये। वहाँके लोगोंने चरखेको अब सदाके लिए अपना लिया है। चरखा चलाना अब उनका घरेलू काम हो गया है। चरखेके भरोसे ही उनका विश्वास है कि वे कभी अकालके शिकार न होंगे। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न समयोंमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर चरखा सफल हुआ है। निम्न-लिखित स्थानोंपर सन् १९२० से १९२५ तक चरखेने अकाल पीड़ितों और ग़रीबोंको खानेके लिए अन्न दिया और पहननेको कपड़ा (१) :—

(१) मिरी (अहमदाबाद)	१९२०-२१ में
(२) करनूल ज़िला (आन्ध्रदेश)	१९२२ में
(३) कोयम्बटूर	१९२४ में
(४) अट्रेई (Atrai)	१९२३-२४
(५) पवुपलायम	१९२५ में
(६) उत्कल और मोरलूपलायम	१९२५ में
(७) कनाड़ा (Kanara)	१९२४ में
(८) दुआदोरेथा (Duadoratha)	१९२२में
(९) राजशाही और बोगरा ज़िला	१९२२-२३

इसी प्रकार सन् १९२३ में जब कपासकी एक मिलमें हड़ताल हो गई थी, तो अहमदाबादमें हड़ताली मज़दूरोंमें चरखेने सफलता-पूर्वक काम किया था।

बेकार और अपांग पुरुषोंके लिए प्रारम्भसे ही चरखेकी व्यवस्था है। जातककी एक कहानीमें मरते हुए पतिको तसल्ली देती हुई एक स्त्री कहती है—"मैं चरखा कात लेती हूँ, किसी तरह बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा कर लूँगी। आप चिन्ता न कीजिए।" इसी प्रकार आचार्य चाणक्यके अर्थशास्त्रमें बताया है कि सूत्राध्यक्षका कर्तव्य है कि वह बेकारों और अपांगोंको सूत-कताईका काम दे। कुछ लोगोंको शंका है कि इस चरखेसे किसानोंकी खेतीका नुकसान होनेकी सम्भावना है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि किसानोंको बेकार समयके लिए चरखा दिया गया है, इसलिए उपर्युक्त शंका निर्मूल है। बारडोली-ताल्लुकेके एक किसानसे पूछनेपर पता लगा कि उसके पास १२६ बीघे ज़मीन है, और तब भी उसने मजेसे चरखा चलाकर १४७ रु०की बचत कर ली। उसने संवत्‌में १९८२ ११६।) का कपड़ा खरीदा था, पर संवत् १९८३ में चरखा चलानेसे कुल ४॥≈) का कपड़ा खरीदा। यह पूछनेपर कि चरखा चलानेसे तुम्हें खेतीकी दृष्टिसे कोई हानि तो नहीं हुई, उसने कहा—"खेतीका काम छोड़कर तो हमने कभी काता ही नहीं, फिर नुकसान कैसे हो सकता था?" ऐसे कितने ही उदाहरण 'नवजीवन'के पृष्ठोंसे उद्धृत किये जा सकते हैं।

गान्धीजीने भारतके लिए ही सबसे पहले चरखेकी सलाह दी हो, सो बात नहीं। अमेरिकाने भी अपनी ग़रीबीको दूर करनेके लिए इसी चरखेका आश्रय लिया था। हिन्दी-नवजीवनमें श्री प्यारेलाल द्वारा प्रकाशित 'अमेरिकाके इतिहासकी कुछ बातें' लेखका एक अंश यह था (२) :—

"उस समय अमेरिकाके नेताओंने जनताको अधिक कपास

(१) Economics of Khaddar, p 105
(२) कामकी बातें, जुलाई—पृ० २३

(१) हिन्दी नवजीवन—पृ० २११ १९२८
(२) हिन्दी नवजीवन—पृ० २१६ १९२८

बीनेके लिए प्रेरित किया। उसी समय घर-घरमें कपड़ा तयार करानेके आन्दोलनको बढ़ानेके लिए समितियाँ बनने लगीं। इसमें उनको सफलता भी बहुत मिली। जैसे-जैसे लोगोंके हाथ चरखेपर बैठते गये, वैसे-वैसे सूत और कपड़ेकी जाति अच्छी होती गई। २० साल बाद मि० जौफर्सनने कहा था कि अब तो प्रायः सभी अमेरिकाका ही बुना हुआ कपड़ा पहनते हैं, और वह यूरोपके अच्छे-से-अच्छे कपड़ेका मुकाबला करता है। उस समय उनमें कताईका इतना जोश था कि सन् १७८६में जब अमेरिकाका स्वाधीनता-दिवस मनाया गया, तो १०४० स्त्रियोंने लगातार दिन-भर तक चरखा काता। इसी प्रकार अन्य त्यौहारोंपर भी अमेरिकाकी स्त्रियाँ दिन-भर चरखा कातती थीं।

जिन लोगोंको अब भी आशंका हो कि चरखेसे खेतीको नुकसान हुआ होगा, उनके लिए अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति श्री वाशिंगटनके पत्रका उद्धरण यहाँ देता हूँ—"गोकि खेतीके कामको नुकसान पहुँचाकर मैं सबके लिए कपड़ा बनाना लाज़मी नहीं बनाऊँगा······मगर बच्चे, औरतें तथा कुछ मर्द मिलकर खेतीके कामसे एक आदमीको हटाये बिना भी बहुत-कुछ कर सकते हैं।"

एक दूसरे पत्रमें मि० वाशिंगटनने लिखा था—"अब कि कपड़ेके व्यवसायमें सबसे अधिक उन्नति हुई है, खेतीके काममें ज़रा भी कमी नहीं हुई। मैं आशा करता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है कि जब हरएक भलामानस घरके बने कपड़ेको छोड़ और कुछ पहनकर बाहर निकलना फैशनके विरुद्ध समझने लगेगा। सचमुच ही हम लोग अंग्रेजोंके खयालोंके बहुत दिनों तक अन्ध-भक्त बने रहे।"

यह घटना तबकी है, जब कि इंग्लैण्डमें कपड़ेकी मिलें बने कम-से-कम २५ साल हो चुके थे। कुछ भारतीय समालोचक प्रायः कहा करते हैं कि भारतमें चरखा तब चलता था, जब कि मिलें नहीं थीं। आजकल जब कि मिलें चल पड़ी हैं, तब चरखा चलाना एक प्रकारकी मूर्खताके सिवा कुछ नहीं। ऐसे लोगोंके लिए अमेरिका उपर्युक्त उदाहरण एक जवाब है, और क्रियात्मक जवाब है। आप कहेंगे कि आज तो अमेरिका मिलें चला रहा है—उसने चरखा चलाना छोड़ दिया, उसने गृह-व्यवसाय छोड़ दिया। उसके जवाबमें यह स्पष्ट तौरपर कहा जा सकता है कि अमेरिकाके ही नहीं, किन्तु संसारके सबसे बड़े व्यवसाय पति, श्री फोर्ड फिरसे 'Go back to Cottage industry' का उपदेश दे रहे हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि भविष्यमें संसारमें इस प्रकारकी मिलें न होकर किसी दूसरे प्रकारकी ही हों। श्री फोर्ड कहते हैं—"कारखाने कभी भी समृद्ध नहीं हो सकते, और इसीलिए वे आजीविकाके निर्वाहके लिए तनख्वाह नहीं दे सकते।"

"हम तब तक पूर्ण सभ्य नहीं होंगे, जब तक कि दैनिक काममेंसे मिलको बिलकुल बहिष्कृत न कर दिया जायगा।"

आशा है कि भारत श्री हेनरी फोर्डके अनुभवोंसे लाभ उठावेगा, और पूर्ण सभ्य बननेकी कोशिश करेगा।

१, २ 'हिन्दी-नवजीवन' १९२८, पृ० १०३

(१) Mylife and work, By Henery Ford, P. 279

(२) Mylife and work, By Henery Ford, P. 278

क्रान्तिकी भावना

[लेखक :— प्रिन्स क्रोपाटकिन]

मानव-समाजके जीवनमें ऐसे अवसर आया करते हैं, जब क्रान्ति एक अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है, जब वह पुकार-पुकारकर कहती है कि वह अवश्यम्भावी है। हर तरफ नये विचार उत्पन्न हो जाते हैं, जो प्रकाशमें आकर लोगोंके जीवनमें लागू होनेके लिए ज़बर्दस्ती अपना मार्ग ढूँढ़ निकालते हैं। जिन लोगोंका स्वार्थ पुरानी व्यवस्थाको क़ायम रखनेमें ही सिद्ध होता है, उनकी अकर्मण्यता इन विचारोंका विरोध करती है। पूर्व संस्कारों और लोक-परम्परागत रूढ़ियोंके श्वास-रोधक वातावरणमें उन लोगोंका दम घुटा करता है। राज-व्यवस्थाके माने हुए विचार, सामाजिक सामंजस्यके नियम और नागरिकोंके राजनैतिक तथा आर्थिक बातोंमें पारस्परिक व्यवहार—इनमेंसे कोई भी उस अशान्त समालोचनाके आगे खड़े नहीं रह सकते, जो बैठकखानेमें, पब्लिक अड्डोंमें, दार्शनिकोंके लेखोंमें और रोज़मर्राकी बातचीतमें उनकी जड़ काटा करती है। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक संस्थाएँ टूटने-फूटने लग जाती हैं। हमारा सामाजिक भवन अब रहने योग्य नहीं रह जाता। वह उन अंकुरोंको भी, जो उसकी टूटी दीवारोंके भीतर या उनके चारों ओर उगते हैं, रोकता है—विकसित नहीं होने देता।

एक नये जीवनकी आवश्यकता प्रत्यक्ष हो जाती है। प्रतिष्ठित नैतिकताके साधारण विधान, जो अब तक अधिकांश लोगोंके जीवनको परिचालित करते रहे हैं, अब पर्याप्त नहीं समझ पड़ते। जो बात पहले उचित जान पड़ती थी, वह अब चिल्ला-चिल्लाकर अपना अनौचित्य प्रकट करती मालूम होती है। कलकी नैतिकता आज असह्य अनीति समझाई देती है। पुरानी रूढ़ियों और नवीन विचारोंका संघर्ष समाजकी प्रत्येक श्रेणीमें, प्रत्येक अवस्थामें और प्रत्येक कुटुम्बके बीच प्रज्वलित हो उठता है। बेटा बापसे लड़ बैठता है। जो बात बापको अपने सम्पूर्ण जीवनमें बिलकुल स्वाभाविक ज्ञात होती रही है, वही बात बेटेको वीभत्स जान पड़ती है। पुराने अनुभवसे जो बातें माताएँ अपनी बेटियोंको सिखाती हैं, बेटियाँ उनके विरुद्ध विद्रोह कर देती हैं। धनी और अधिकार प्राप्त तथा चैनकी बंशी बजानेवाली श्रेणियोंमें जो कलंककी बातें उत्पन्न हुआ करती हैं, शक्तिशालियोंके क़ानूनके नामपर अथवा उनकी सुविधाओंकी रक्षाके लिए जो जुर्म किये जाते हैं, सर्वसाधारणकी आत्मा दिन-दिन उनके विरुद्ध होती जाती है। जो लोग न्यायकी विजयके लिए लालायित रहते हैं अथवा जो लोग नवीन विचारोंको काममें लाना चाहते हैं, उन्हें शीघ्र ही यह मालूम हो जाता है कि इस समय समाज जिस प्रकार संगठित है, उसमें उनके उद्धार, मनुष्यतापूर्ण और नवजीवन संचारक विचार सफल नहीं हो सकते। उन्हें क्रान्तिकी एक ऐसी आँधीकी आवश्यकता दिखलाई देने लगती है, जो समाजके समस्त सड़े-गले अंशोंको उठा ले जाय, जो अपनी पवित्र पवनसे आलसी हृदयोंमें स्फूर्ति भर दे और मानव-समाजमें श्रद्धा, आत्म-त्याग तथा वीरताके भावोंको संचार कर दे, जिन भावोंके बिना समाज पतन और दुर्गुणोंमें डूबकर बिलकुल छिन्न-भिन्न हो जाता है।

जब लोग धन कमानेके लिए पागलोंकी तरह उतावले हो जाते हैं, जब फाटकेबाज़ीका ज्वार-भाटा आता है, जब बड़े-बड़े व्यापारोंका आकस्मिक पतन होता है, जब उत्पादनके अन्य अंशोंका क्षणभंगुर प्रसार होता है, जब लोग दो ही चार वर्षोंमें अगणित धनराशि बटोर लेते और उतनी ही शीघ्रतासे उसे खो बैठते हैं; तब ऐसे अवसरोंपर यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि हमारी आर्थिक संस्थाएँ, जो उत्पादन और विनिमयका नियन्त्रण करती हैं, समाजको सुख-समृद्धि देनेसे, जैसी कि उनसे आशा की जाती है, बहुत दूर हैं। वे उसका ठीक विपरीत फल पैदा करती हैं। वे शान्ति और सुव्यवस्थाके स्थानमें अशान्ति और गड़बड़ी उत्पन्न करती हैं, सुख-समृद्धिके स्थानमें दरिद्रता और अरक्षाके भाव पैदा करती हैं, भिन्न-भिन्न स्वार्थोंमें मेल पैदा करनेके

स्थानमें युद्ध उत्पन्न करती है। वे धन-शोषकों और मजदूरोंमें आपस ही में स्थायी युद्ध पैदा कर देती है। मानव-समाज दो प्रतिद्वन्द्वी भागोंमें विभक्त हो जाता है। साथ ही प्रत्येक भाग सहस्रों छोटे-छोटे भागोंमें विभाजित हो जाता है, जो आपसमें निर्दयतापूर्ण संग्राम बराबर जारी रखते हैं। इन संग्रामोंसे ऊबकर तथा इन संग्रामोंसे उत्पन्न हुए दुःख-दैन्यसे ऊबकर समाज कोई नई व्यवस्था ढूँढ़ निकालनेके लिए दौड़ पड़ता है। वह सम्पत्तिके अधिकारके नियमों, उसके उत्पादन तथा विनिमयके नियमों और उनसे उत्पन्न होनेवाले आर्थिक सम्बन्धोंको एकदम नये सिरेसे ढालनेके लिए ज़ोर-ज़ोरसे पुकारने लगता है।

गवर्मेण्टकी मशीन, जिसपर वर्तमान व्यवस्थाकी रक्षाका भार होता है, अपना काम करती रहती है, परन्तु उसके घिसे हुए चक्रोंके प्रत्येक चक्करमें वह फिसलकर बन्द होने लगती है। उसका चलना दिन प्रतिदिन मुश्किल होता जाता है, जिससे उसके प्रति असन्तोष बराबर बढ़ता जाता है। प्रतिदिन यही आवाज़ सुनाई देती है कि 'इसको दुरुस्त करो', 'उसको सुधारो।' सुधारकगण कहते हैं—"युद्ध, आर्थिक व्यवस्था, टैक्स, अदालतें, पुलिस—प्रत्येक वस्तुका नये सिद्धान्तोंके अनुसार पुनः संगठन करो, फिरसे ढालो।" यह बात सभी जानते हैं कि चीज़ोंको फिरसे बनाना—अकेली किसी चीज़को फिरसे ढालना असम्भव है, क्योंकि समस्त वस्तुएं एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं, अतः सभी वस्तुओंको एक साथ तोड़कर बनाना होगा। तब यह सवाल उठता है कि समाजका—जब कि वह तो विरोधी भागोंमें विभक्त है—पुनर्निर्माण कैसे किया जाय? असन्तुष्ट लोगोंको सन्तुष्ट करनेसे और भी नये असन्तुष्ट पैदा हो जायँगे।"

इस समय शासक-संस्थाओंकी दशा बड़ी विचित्र होती है। वे सुधार करनेमें अशक्त होती हैं, क्योंकि खुल्लम-खुल्ला सुधारका अर्थ होता है क्रान्तिका रास्ता खोलना। साथ ही वे इतनी नपुंसक होती हैं कि वे खुल्लम-खुल्ला सुधारोंका विरोध भी नहीं कर सकती हैं। फल यह होता है कि वे आधे-परधे सुधार करती हैं, जिनसे सन्तोष उत्पन्न होनेके स्थानमें और भी असन्तोष बढ़ता है। ऐसे परिवर्तनके अवसरोंपर प्रतिभाशून्य व्यक्तियोंका—जिनके हाथमें राज्य-नौकाका परिचालन होता है—एक ही उद्देश्य हुआ करता है। वह है भावी महान् उलट-पलटके पूर्व धन बटोरकर अपना घर भर लेना। चारों ओरसे आक्रमण होनेपर वे बड़े अनाड़ीपनसे अपना बचाव करते हैं। वे इधर-उधरकी टालमटूल और एकके बाद दूसरी भयंकर भूलें किया करते हैं। शीघ्र ही वे अपने बचावकी अन्तिम कड़ीको काट देते हैं। सरकारी लोगोंकी निजी अयोग्यतासे सरकारकी प्रतिष्ठा उपहासके जलमें डूब जाती है।

ऐसे अवसरोंपर क्रान्तिकी आवश्यकता होती है। क्रान्ति एक सामाजिक आवश्यकता हो जाती है। ऐसे अवसर स्वयं ही क्रान्तिकारी होते हैं।

'जब हम बड़े-बड़े इतिहासकारोंकी पुस्तकें पढ़ते हैं, तो उनमें मुख्य-मुख्य क्रान्तिकारी विप्लवोंकी उत्पत्ति और विकासके वृत्तान्तोंमें 'क्रान्तिके कारण' शीर्षकके अन्तर्गत क्रान्तिकी घटनाओंके ठीक पूर्वका बड़ा रोमांचकारी वृत्तान्त मिलता है। इन वृत्तान्तोंमें लोगोंकी दुर्दशा, सर्वव्यापी संकटके भाव; सरकारके परेशान करनेवाले क़ानून-क़ायदे, समाजके बड़े-बड़े दुर्गुणों और कलंकोंका नग्न भंडाफोड़, नये विचारोंके प्रचलित होनेके लिए छटपटाहट और पुरानी व्यवस्थाओंके समर्थकों द्वारा उनका दमन इत्यादि सभी बातें वर्णित होती हैं। इस चित्रको देखकर प्रत्येक मनुष्यको दृढ़ विश्वास हो जाता है कि इन अवसरोंपर क्रान्ति सचमुचमें अवश्यम्भावी थी; विप्लवको छोड़कर और कोई मार्ग ही नहीं था।

उदाहरणके लिए सन् १७८९के पहले फ्रान्सकी दशा ले लीजिए। इतिहासज्ञ लोग उस दशाका कैसा वर्णन करते हैं। इतिहासकारोंका वर्णन पढ़कर आपको ऐसा मालूम होगा, मानो किसान लोग नमकके करके विरुद्ध, दशांश करके विरुद्ध और ज़मींदारोंके लगानके विरुद्ध शिकायत कर रहे हैं, जिसकी आवाज़ आपके कानोंमें आ रही है। उस वृत्तान्तको पढ़कर जान पड़ता है कि किसान लोग ज़मींदारों, महन्तों, एकाधिपत्य

रखनेवाले व्यापारियों और सरकारी अहलकारोंके विरुद्ध घृणाकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं। आपको दिखाई देगा कि लोग अपने म्यूनिसिपल अधिकारोंके छिन जानेका रंज कर रहे हैं, और बादशाहको गालियाँ दे रहे हैं। वे रानीको बुरा-भला कहते हैं, वे मंत्रियोंकी कार्रवाईपर विक्षुब्ध हैं और लगातार चिल्ला रहे हैं कि टैक्सोंका बोझ असह्य है, मालगुजारी बहुत है, फसलकी दशा बहुत खराब है, जाड़ा बहुत जोरका है, खाद्य-सामग्री बड़ी मँहगी हो गई है, व्यापारका एकाधिपत्य रखनेवाले बड़े लालची हैं, ग्रामीण वकील किसानोंकी फसल खा जाते हैं, गाँवका चौकीदार छोटा-मोटा नवाब बना बैठा है। यहाँ तक कि डाकखानेका इन्तिज़ाम भी ठीक नहीं है और उसके कर्मचारी बड़े आलसी हैं। थोड़े शब्दोंमें यों कहिये कि प्रत्येक व्यक्तिको यही शिकायत है कि कोई भी चीज़ ठीक-ठीक काम नहीं करती। हर स्थानपर लोग यही कहते नज़र आते हैं—"यह अधिक दिन नहीं चल सकता, इसका बड़ा भयानक अन्त होगा।"

परन्तु इन शान्तिपूर्ण बकौलों और क्रान्ति या विप्लवके बीच एक बड़ी चौड़ी खाई है। यह वही खाई है, जो अधिकांश मनुष्योंमें कहने और करनेमें या विचार और इच्छामें हुआ करती है। परन्तु यह खाई कैसे भरती है? यह कैसे सम्भव है कि जो लोग कल तक शान्ति-पूर्वक हुक्का पीते समय अपने दुर्भाग्यपर खीझा करते थे और स्थानीय पटवारी और दरोगाको गालियाँ दिया करते थे; परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हीं पटवारी और दारोगाको अदबसे झुककर सलाम किया करते थे—यह कैसे सम्भव है कि वे ही आदमी दो-चार दिन बाद इस योग्य हो गये कि वे अपने हँसिये और धारदार गँड़ासे लेकर उन्हीं प्रभुओंके क़िलोंपर—जो केवल एक दिन पहले ऐसे भयंकर देखाई देते थे—हमला करने लगे! जिन लोगोंकी पत्नियाँ उन्हें कायर कहा करती थीं, वे ही एक दिनमें ऐसे वीर बन गये कि गोलोंकी वर्षा और गोलियोंकी बौछारमें घुसकर अपने अधिकारोंको छीननेके लिए क़दम बढ़ाने लगे। यह किस जादूके असरसे हुआ? शब्द, जो मुखसे निकलकर हवामें विलीन हो जाया करते थे, कार्यमें कैसे परिणत हो गये?

इसका उत्तर बहुत सहज है।

कर्म—अल्पांश लोगोंका अविरल, अविश्राम कर्म ही ऐसे परिवर्तन ला देता है। साहस, लगन और त्यागकी भावना ऐसी ही संक्रामक वस्तुएँ हैं, जैसी कायरता, अधीनता और आतंक।

यह कर्म क्या रूप धारण करेगा? यह प्रत्येक रूप धारणकर सकता है। वास्तवमें परिस्थिति, स्वभाव और उपलब्ध उपायोंके अनुसार इस कर्मके बड़े विभिन्न रूप हुआ करते हैं। कभी इस कर्मका रूप दुखान्त होता है, तो कभी हास्यप्रद। लेकिन वह रूप सदा बड़ा दुस्साहिक हुआ करता है। यह कर्म कभी सामूहिक रूप धारण करता है कभी केवल व्यक्तिगत। कर्मकी यह नीति किसी भी उपलब्ध उपायको नहीं भूलती। असन्तोष फैलाने या उसे प्रकट करनेमें, शोषणकारियोंके प्रति घृणा उत्पन्न करनेमें, सरकारकी कमज़ोरियोंका पर्दाफ़ाश करने तथा उसका मज़ाक उड़ानेमें और सबसे अधिक, वास्तविक दृष्टान्तोंके द्वारा लोगोंके साहसको जाग्रत करने तथा उनमें क्रान्तिकी भावना फैलानेके लिए कर्मकी यह नीति किसी भी पब्लिक घटनाको नहीं छोड़ती।

लोगोंमें खुल्लमखुल्ला विप्लव करने और सड़कों आदिमें उग्र प्रदर्शन करनेका साहस उत्पन्न होनेके पूर्व, किसी देशमें जो क्रान्तिकारी परिस्थिति उत्पन्न हुआ करती है, वह कुछ अल्प संख्यक लोगोंके कर्मका नतीजा है। यह अल्प संख्यक लोग अपने कर्मोंसे लोगोंमें स्वतन्त्रता और साहसके उन भावोंको उत्पन्न कर देते हैं, जिनके बिना कोई भी क्रान्ति आगे नहीं बढ़ सकती।

क्रान्तिमें सर्वसाधारण पहले भाग नहीं लेते हैं। साहसी पुरुष, जो कोरे शब्दोंसे कभी सन्तुष्ट नहीं होते और सदा उन शब्दोंको कार्यमें परिणत करनेका अवसर ढूंढा करते हैं; ईमानदार एवं स्वाभिमानी व्यक्ति, जिनकी मनसा, वाचा, कर्मणा एक ही

जुन है तथा जो अपने सिद्धान्तोंके विरुद्ध चलनेकी अपेक्षा जेल, निर्वासन और मृत्युको अधिक पसन्द करते हैं ; और निर्भीक आत्माएँ, जो यह जानती हैं कि सफलताके लिए हिम्मत करना जरूरी है—यह तीनों ही क्रान्तिके एकाकी सैनिक हैं, जो सबसे पहले समर भूमिमें कूदते हैं। इनके कूदनेके बहुत पीछे सर्वसाधारणमें इतनी जागृति उत्पन्न होती है कि वे खुल्लमखुल्ला क्रान्तिका झंडा उठा कर अपने स्वत्वोंकी प्राप्तिके लिए हथियार ग्रहण करके अग्रसर हों।

इस समस्त असन्तोष, बातचीत और सिद्धान्तोंके वाद विवादके बीचमें किसी एक व्यक्तिका अथवा समूहका कोई क्रान्तिकारी कार्य उठ खड़ा होता है, जो लोगोंकी प्रबल उच्च कांक्षाओंको मूर्तिमान बना देता है। सम्भव है कि आरम्भमें सर्वसाधारण उस कामसे बिलकुल उदासीन रहें। विचक्षण और सचेत लोग तुरन्त ही ऐसे कामोंको 'पागलपन' कह देते हैं। वे कहते हैं—'ये पागल लोग, ये धर्मोन्मत्त व्यक्ति प्रत्येक चीजको संकटमें डाल देंगे" इसलिए यह भी सम्भव है कि आरम्भमें सर्वसाधारण इन विचक्षण पुरुषों ही का अनुगमन करें।

ये विचक्षण और सतर्क व्यक्ति खूब हिसाब लगाया करते हैं! वे हिसाब लगाते हैं कि सौ, दो सौ या तीन सौ वर्षोंमें उनकी पार्टी संसार भरको जीत लेगी, मगर बीच ही में यह अप्रत्याशित घटना घुस पड़ती है! अवश्य ही उन विचक्षण व्यक्तियोंको जिस बातकी आशा नहीं होती, उसीको अप्रत्याशित समझते हैं। जिस किसीको भी इतिहासका थोड़ा भी ज्ञान और साधारण बुद्धि है, वह यह बात भलीभांति जानता है कि क्रान्तिके सिद्धान्तोंके प्रोपगेण्डा एक-न-एक दिन कार्यरूपमें अवश्य ही प्रकट हो जाता है। यह दिन सिद्धान्तवादियोंके सोचे हुए कार्य करनेके दिनसे बहुत पहले ही आ जाता है। जो कुछ भी हो, ये सचेत सिद्धान्तवादी इन पागलोंपर खूब बिगड़ते हैं। वे उन्हें जातिसे बाहर कर देते हैं, और कोसा करते हैं, मगर वे पागल आदमी लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। सर्वसाधारण छिपे-छिपे उनके साहसकी प्रशंसा करते हैं। इन पागलोंकी नकल करनेवाले लोग पैदा हो जाते हैं। विद्रोह संग्राममें क्रान्तिके अगुवा लोग जेलों और काले पानी आदिको जाते हैं, उसीके अनुपातमें अन्य लोग उनका कार्य जारी रखते हैं। अवैध प्रतिवाद, विद्रोह और प्रतिहिंसाके कार्य बढ़ते चले जाते हैं।

अब ऐसी स्थिति पहुँच जाती है कि अब उदासीनता असम्भव हो जाती है। जिन लोगोंने आरम्भमें कभी यह पूछनेका कष्ट भी नहीं उठाया कि 'ये पागल आदमी क्या चाहते हैं', उन्हें भी मजबूर होकर इन पागलोंकी चिन्ता करनी पड़ती है, उन्हें उनके विचारोंपर बहस करनी पड़ती है और उनके अनुकूल या प्रतिकूल पक्ष ग्रहण करना पड़ता है। ऐसे कार्योंके द्वारा, जिनसे लोगोंका ध्यान खामखवाह आकर्षित होता है, नये विचार लोगोंके दिलोंमें घर करते हैं और नये अनुयायी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारका एक कार्य जितना प्रोपगेंडा कर देता है, उतना हजारों पैम्फलेटोंसे नहीं होता।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह लोगोंमें क्रान्तिकी भावना उत्पन्न करता है और वह उनमें दुस्साहसका अंकुर उगाता है। पुरानी व्यवस्था (सरकार) अपनी पुलिस, अपने मैजिस्ट्रेट और अपनी फौज-फाटेके बलपर एकदम अचल और अजेय दिखाई पड़ती थी। वह ऐसी अचल और अभेद्य दिखाई पड़ती थी, जैसे बस्तीलेका दुर्ग उस निःशस्त्र जनसमूहको अभेद्य दिखाई देता था, जो उसकी तोपें चढ़ी हुई ऊँची दीवारोंके नीचे एकत्रित हुआ था, मगर शीघ्र ही यह मालूम पड़ जाता है कि मौजूदा सरकारमें वह शक्ति नहीं है, जिसकी लोग धारणा करते थे। केवल एक ही साहसिक कार्य गवर्मेंटकी सम्पूर्ण मशीनको दो-ही-चार दिनमें उलट-पुलट डालनेके लिए काफी हुआ। सरकारका भारी-भरकम भवन काँपने लगा। एक दूसरे विद्रोहमें एक समूचे सूबेमें गदर मच गया। सरकारी फौजने, जो अब तक बड़ी प्रभावोत्पादनी दीख पड़ती थी, केवल एक मुट्ठी-भर किसानोंके सामने, जिनके पास केवल डंडे और पत्थर थे, पीठ फेर दी। लोगोंने देखा

कि खेल उतना भयंकर नहीं है, जितना वे समझते थे। उन्हें यह भी अस्पष्ट-सा दीखने लगा कि इस प्रकारकी दो-चार साहसपूर्ण चेष्टाएँ इस खेलको मार गिरायेंगी। अब लोगोंके मनमें आशा उत्पन्न होती है। यह बात भूल न जानी चाहिए कि क्रोध और क्षोभ लोगोंको क्रान्तिकी ओर ले जाता है और आशा—विजयकी आशा ही सदा क्रान्तियाँ कराया करती हैं।

गवर्मेंट इसका विरोध करती है, वह दमन करनेके लिए पागल हो उठती है, मगर जहाँ पहले सरकारका दमन अत्याचार-पीड़ितोंकी शक्तिको नष्ट कर देता था, अब सनसनी पूर्ण अवसरोंपर वह एकदम विपरीत फल पैदा करता है। अब दमनसे क्रान्तिके अन्य कार्यों—व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही—को प्रोत्साहन मिलता है। अब उससे विद्रोही लोग वीरताकी ओर अग्रसर होते हैं। इस प्रकार क्रान्तिकारी घटनाएँ बड़ी शीघ्रतासे एकके बाद दूसरी घटती हैं, वे सर्वव्यापी हो जाती हैं और उनका विकास होता है। जो लोग अब तक क्रान्तिके विरोधी या उदासीन थे, वे भी अब उसमें सम्मिलित हो जाते हैं, जिनसे वह और भी मज़बूत हो जाती है। यह सर्वव्यापी गड़बड़ी गवर्मेंटमें और शासक तथा अधिकार-प्राप्त श्रेणियोंमें भी घुस जाती है। उनमेंसे कुछ लोग इस बातका उपदेश देते हैं कि दमनको अन्तिम सीमा तक चलाना चाहिए, दूसरे लोग कुछ रियायतें करनेके पक्षमें होते हैं और अन्य कुछ लोग इस आशामें अपने अधिकार भी त्यागनेकी घोषणा करते हैं कि लोगोंके क्रान्तिके भावोंको शान्त करके वे फिर उनपर प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगे। सरकार और अधिकार-प्राप्त लोगोंकी एकता भी टूट जाती है।

शासकवर्ग भयंकर प्रतिक्रिया द्वारा (अर्थात, लोगोंके मौजूदा अधिकारोंको भी छीनकर) भी अपनी रक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं, मगर अब इतनी अधिक देर हो चुकी है कि यह सब बातें बेकार होती हैं। इससे संघर्ष और भी अधिक कटु और भयंकर हो जाता है। इनके सामने दिखाई पड़नेवाली क्रान्ति और भी अधिक खूनी हो जाती है। इसके विरुद्ध शासक वर्ग जो छोटीसे-छोटी रियायत भी करते हैं, तो उससे क्रान्तिके भाव और भी अधिक जाग उठते हैं, क्योंकि यह रियायत बहुत देरमें की जाती है, और लोग यह समझते हैं कि उन्होंने उसे लड़ाईमें जीता है। साधारण लोग जो पहले छोटीसे-छोटी रियायतपर ही सन्तुष्ट हो जाते, अब प्रत्यक्ष देखने लगते हैं कि उनके शत्रुके पैर उखड़ रहे हैं, उन्हें अपनी विजय दिखाई पड़ने लगती है। उन्हें अनुभव होता है कि उनका साहस बढ़ रहा है। जो आदमी पहले दुःख-दारिद्रके नीचे पिसे हुए थे और चुपके-चुपके ठंडी सासें भरकर ही चुप रह जाते थे, वे ही अब गर्वके साथ सर ऊँचा उठाकर सुन्दर भविष्यकी विजयके लिए निकल पड़ते हैं।

अन्तमें क्रान्ति जागृत हो उठती है। उससे पहलेका संघर्ष जितना ही अधिक भयानक और कड़ुवा होता है, वह भी उतनी ही भयानक और कड़ुवी होता है।

क्रान्ति कौनसा रुख धारण करेगी, यह बात निःसन्देह उन घटनाओंके समूहपर निर्भर करती है, जो इस विप्लवकी बाढ़के आगमनको निश्चय करते हैं। मगर एक बात पहलेसे ही कही जा सकती है कि वह उन क्रान्तिकारी कार्योंके ज़ोरके अनुसार होती है जो विभिन्न उन्नतिशील दल क्रान्तिकी तय्यारीके प्रारम्भपर दिखलाया करते हैं।

कोई पार्टी अपने सिद्धान्तोंको खूब अच्छी तरह प्रकट करती है। वह एक प्रोग्राम भी पेश करती है, जिसे पूरा करनेकी उसकी इच्छा है। वह उनके लिए लेक्चरों और पर्चों आदिके द्वारा खूब ज़ोरदार प्रोपेगेंडा भी करती है, मगर यदि उसने अपने विचारोंको कार्यों द्वारा खुल्लम खुल्ला खुलेआम प्रकट नहीं किया ; यदि उसने अपने प्रधान शत्रुओंके विरुद्ध कुछ नहीं किया, यदि उसने उन संस्थाओंपर आक्रमण नहीं किया, जिन्हें वह नष्ट करना चाहती है ; यदि उसका बल केवल उसके सिद्धान्तों ही में परिमित है, क्रियामें नहीं है; यदि उसने क्रान्तिके भाव उत्पन्न करनेमें कुछ सहायता नहीं दी ; अथवा यदि उसने उन भावोंको उन बातोंके विरुद्ध नहीं

फैलाया, जिनपर वह क्रान्तिके समय आक्रमण करना चाहती है, तो वह पार्टी बहुत कम प्रसिद्ध होती है। क्योंकि उस दलकी आकांक्षाएँ रोज़मर्राके क्रान्तिकारी कार्योंके रूपमें प्रकट नहीं हुई हैं। इन क्रान्तिकारी कार्योंका ही प्रकाश दूर-दूरकी झोंपड़ियों तकमें पहुँचता है। वह पार्टी इसीलिए प्रसिद्ध नहीं होती कि वह सड़कपर इकट्ठी होनेवाली भीड़में नहीं घुलती-मिलती, क्योंकि वह लोगोंकी लोकप्रिय पुकारोंमें अपनेको प्रकट नहीं करती।

इस पार्टीके सबसे चलते-पुर्ज़े लेखकोंको, उनके पाठक यही समझते हैं कि ऊँची श्रेणीके विचारशील विद्वान हैं, मगर उनमें न तो काम करनेवाले व्यक्तियोंकी-सी योग्यता है और न उनकी-सी इज्ज़त। जिस दिन क्रान्ति भड़क उठती है, उस दिन सर्वसाधारण इन बड़े-बड़े सिद्धान्तवादियोंका अनुगमन न करके, उन लोगोंकी सलाहके अनुसार चलते हैं, जिनके सिद्धान्त तो इतने प्रसिद्ध नहीं हैं, परन्तु जिनको उन्होंने कार्य करते देखा है।

जिस दिन काम करनेका दिन आता है, जिन दिन सर्वसाधारण क्रान्तिके लिए धावा बोलते हैं, उस दिन उस पार्टीकी बात सबसे अधिक सुनी जाती है, और जिसने सबसे अधिक हिम्मत और दुस्साहस दिखाया है। मगर जिस पार्टीमें इतना साहस नहीं है कि वह अपने विचारोंको क्रान्तिकारी तैयारीके ज़मानेमें क्रान्तिकारी कार्यों द्वारा प्रकट करती, जिस पार्टीमें व्यक्तियोंको तथा जन-समूहोंको प्रोत्साहित करने और आत्म-त्यागके आवेशसे उन्हें प्रेरित करनेकी शक्ति नहीं है, जिस पार्टीमें वह ताक़त नहीं है कि वह लोगोंमें अपने विचारोंको कार्यरूपमें प्रेरित करनेके लिए अदम्य इच्छा उत्पन्न कर सके (यदि यह इच्छा उन लोगोंमें पहलेसे उत्पन्न होती, तो वह जनसाधारणके क्रान्तिमें सम्मिलित होनेके पहले ही कार्यरूपमें परिणत हो गई होती) जो पार्टी यह नहीं जानती कि वह अपने झंडेको लोकप्रिय कैसे बनावे या अपनी इच्छाओंको किस प्रकार दूसरोंपर प्रकट करके समझा सके, ऐसी पार्टीको अपना कार्यक्रम पूरा करनेकी बहुत ही थोड़ी आशा है। देशके क्रियाशील दल उसे ढकेलकर एक ओर डाल देंगे।

यह सब बातें हमें क्रान्तियोंके पूर्ववर्ती समयके इतिहाससे मालूम होती हैं। फ्रान्सके राजतन्त्रको नष्ट करनेके पूर्व वहाँके मध्यम श्रेणीके क्रान्तिकारी लोग इन बातोंको अच्छी तरह समझते थे, और उन्होंने एकतंत्री शासनके विरुद्ध क्रान्तिकी भावनाको जाग्रत करनेके लिए कोई उपाय उठा नहीं रखा। अठारवीं सदीके फ्रेंच किसान ज़मींदारोंके अधिकार उठा देनेके प्रश्नके अवसरपर इन्हें मन ही मन समझते थे। जब इंटरनेशनलने, शहरोंके मज़दूरोंमें, मज़दूरी करनेवालोंके स्वाभाविक शत्रुओं अर्थात् पूँजीपतियोंके—जिनके हाथमें उत्पादन और कच्चे मालका एकाधिपत्य है—विरुद्ध क्रान्तिके भाव उत्पन्न करनेकी चेष्टा की, तब उसने भी इन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार ही कार्य किया।

थर्ड क्लास

[लेखक :—श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र]

पीले रंगका रेलका डब्बा है। बहुतसे बकुची-बकुचे, बीस-पचीस टूटे-फूटे अधमैले ट्रंक, दस-बारह टोकनियाँ, पन्द्रह-बीसेक केम्बिसके बैग, बीस बाईस देशी कथड़ियाँ, बीसियों चिलम, हुक्के, पानदान और पानीके गिलास-लोटे दिखाई दे रहे हैं। कहीं-कहीं जूते भी—पम्प-शू, स्लीपर, डर्बी, केम्ब्रिज, पंजाबी, सलीमशाही, दिल्लीवाल, गुरगाबी, चप्पल, कलकत्ता, कानपुर, कटक, आगरा—सभी जगहके नये-पुराने नमूने एक साथ ले लो।

डब्बेके भीतर सिरके ऊपर लिखा है—"चौबीस मुसाफिर बैठेंगे।" चौबीस मुसाफिरोंके लिए साढ़े चार बेंचें हैं। जिसमें आधीपर 'कलक्टर साहब' के अरदलीका कब्ज़ा है। बेंचके तख्तोंकी संधोंमें लाखों खटमल भरे पड़े

हैं, और उनके ऊपर इकतालीस मुसाफिर — स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध और दुधमुँहे बच्चे—लदे हैं। पगड़ी, टोपी, साफ़ा, अंगरखा, बेलबा, लंगोटी, लहँगा, दुपट्टा, साड़ी, कलकतिया किनारीकी धोती, पायजामा और अचकन आदिका विचित्र संगम हो रहा है।

बुरी बदबू मार रही है। पेखानेका दरवाज़ा रस्सीसे बँधा हुआ है, चिटकनी नहीं है। एक बेंचके नीचे मरा हुआ चूहा पड़ा सड़ रहा है, दूसरी बेंचके तले केलेके छिलके भिनक रहे हैं। खैनी, तमाकू, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, तेल, फुलेल, मैले-कुचैले कम्बल और कथरी, काबुली बकुचे और कलदर सा'बके अरदलीकी डाट-खुली 'रम'की बोतल—सबकी बदबू एक साथ मिलकर लपटें छोड़ रही है।

भादोंकी गरमी है। छोटे-छोटे बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं। ज़रासी हवाके लिए एक खिड़कीमेंसे तीन-चार आदमियोंके सिर एक-साथ बाहरको निकलनेकी कोशिश कर रहे हैं। ऐसी हालतमें घूँघटके भीतर पसीनेसे तराबोर एक युवती सतर्कतासे आँचल हिलाकर ठंडी होनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। कोनेमें एक बुढ़िया सिमटी हुई बुखारकी गरमीमें धधक रही थी।

'टन! टन! टन!' सीटी!

स्टेशन आ गया। 'पान बीड़ी सिगरेट!' 'पूड़ी मिठाई!' 'हिन्दू चा गर्रम!' 'ऐ कुली, इधर!'

"इधर कहाँ? दीखता नहीं, कमरा भरा पड़ा है। आगे जाओ!"

"गार्ड साहब!"

"यू डैम!"

"ओ टिकट-बाबू, कैसे चढ़ें?"

"इसमें चढ़ता क्यों नहीं?"

"कोई चढ़ने ही नहीं देता, बाबूजी!"

"काहे नहीं देगा? गाड़ी उसका बापका है? जल्दी चढ़ो!—हैलो, गुडमौर्निंग मेजर!"

टिकट-बाबू गार्डके डब्बेकी तरफ दौड़े।

"चढ़-चढ़ महेश, अरे झंडी दे दी, चुप जल्दी!"

'धड़ांग्!'

'अरे बाप रे, इसीमें!' 'बस, दो ही स्टेशनके लिए, भाई साहब!' 'हटाना ज़रा इसको, किसकी है यह गठरी, उःफ बड़ी गरमी है।'

सीटी दे दी।

फिलहाल चवालीस मुसाफिर हैं।

'घट!' सिरपर टोप, सुफेद कोट-पतलून, सुर्ख चेहरा, फ्लाईङ्-चेकर है। शंकित युवती और भी सिमट गई। ज़रा आगे बढ़कर युवतीकी देहसे सटकर चेकर खड़ा हो गया, सामनेके बुड्ढेसे बोला—"ऐ, टिकट दिखलाव!"

"दिखाता हूँ, साहब।"

"जल्दी निकालो—एइ हटो डैम!" बालक डरके मारे पैरोंके पाससे हट गया, लेकिन गिर पड़ा।

"टुमरा टिकट?"

"जल्दीमें ले नहीं सका, साहब, दासपुर उतरूँगा।"

"टिकट नईं लिया? निकालो, रुपया निकालो! जल्डी करो मैन।"

"देता हूँ साहब, ये लीजिए सात आना।"

"नेईं होगा, रुपी डेओ!"

बेचारेने अँगौछेके ठोकसे चार आना निकालकर और दिये। बस, इतनी ही उसके पूँजी थी।

"आउर डेओ।"

"और कहाँसे लायें साहब? आठ आना टिकटके दाम हैं, ग्यारे आना दे दिये—अब नहीं है मेरे पास।"

"आट आना मा'सूल, और आट आना जुरमाना।"

"साहब, अबकी बार माफ़ कर दो, सा'ब!"

"अच्छा ठीक है, ऐसा माफ़िक कभी मट करो। एइ हटो, आगे देख, एइ अन्धाना।"—कहता हुआ अकड़ाई हुई युवतीको कुहनीसे धक्का देकर—बूढ़ेका पैर कुचलकर—साहब बाहर निकल गया!

"अरे मर गया!"। बूढ़ेका आर्तनाद।

"साहब, हमरा म'सुल ले लिया, टिकट ?"

"म'ट चिल्लाओ बोलटा है।" साहब दूसरे डब्बेमें घुस गया।

'बलदपोर !' 'बलदपोर !' स्टेशनका पोर्टर चिल्लाने लगा। फिर वही शोर-गुल। गाड़ीमें चढ़नेके लिए यात्रियोंका वही जी-तोड़ उद्यम। स्टेशन-मास्टरकी विचित्र हिन्दी, रेलके कुलियोंकी गाली-गलौज। थर्ड क्लासके यात्रियोंका कोलाहल और आर्तनाद।

"एइ, घन्टी डो!" स्टेशन-मास्टर बोला।

"तनिक ठहर जा बेटा! ओ साहब-बाबू, तनिक ठहर जा बेटा!"—कहती हुई हाथमें पोटली लिये एक बुढ़िया गाड़ीके पास तक पहुँच गई।

"अरे, हट जा, हट जा बुढ़िया!" गार्ड छोड़ दी।

बुढ़ियाने बड़ी मिन्नत-खुशामदके साथ कहा—"अरे मेरा मोहना नहीं जीयेगा रे बेटा, सवेरे आई थी वैदके पास दवा लेने, अरे मेरा मोहना फड़फड़ाता होगा।" कहती हुई वह डब्बेकी ओर लपकी, लेकिन टिकट-बाबूने उसे पकड़ लिया। रेल छूट गई। बुढ़ियाने हाथकी पोटली प्लेटफार्मपर फेंक दी और बड़े करुण-स्वरसे बिलखने लगी—"अरे मेरा मोहन रे!" रेल चलनेकी आवाज़में बाकीके उसके शब्द सुनाई न दिये।

गाड़ी चल रही है। मैं सोच ही रहा था कि डब्बेकी खिड़कियाँ सब बन्द कर दी जायँ, तो कितनी देरमें अन्धकूपकी हत्याका पुनराभिनय हो सकता है। इतनेमें गाड़ी रुकी। प्याससे घबराये हुए मुसाफिर लोग एक साथ चिल्ला उठे—"पानी पाँड़े, ऐ पानी पाँड़े!" साथ ही-साथ आस-पासकी पचासों खिड़कियोंमेंसे दो-डेढ़ सौ रीते लोटे, ग्लास, कटोरे और बधने निकल पड़े।

"ऐ पानी-पाँड़े! इधर दो इधर!"

काले रंगकी बालटी हाथमें लटकाये, नंगे-पैर, सिरपर अँगौछा बाँधे पानी-पाँड़े आ पहुँचे। मारे झुँझलाहटके भुड़ककर बोले—"इधर दो इधर! तोहर हुकुमसे पानी मिली?" उसके बाद धीमे स्वरसे बोले—"एक-एक लोटा, दो दो पैसे।" बाएँ हाथकी मुट्ठी पैसोंसे भरकर और दाएँ हाथमें रीती बालटी लटकाये, पानी-पाँड़े महाराज वापस जा रहे थे, इतनेमें 'कलहर साहब'के अरदलीने ऊँचना छोड़कर आवाज़ दी—"ऐ पाँड़े, पानी ले आओ, पाँड़ेजीकी आँखोंमें सुर्खी आ गई; मुँह फेरकर देखा, तो लम्बी दाढ़ीवाले सरकारी पगड़ीसे सुशोभित अरदली-साहब! हाथकी बालटी नीचे रखकर लम्बा सलाम किया, बोला—"सलाम हुज़ूर! तनी सबुर कीजिए. ताजा पानी लाते हैं।"

बड़ी अकड़के साथ अरदली साहब अपनी बेंचपर आकर बैठ गये और मूँछोंपर ताव देने लगे।

गाड़ी दस मिनट ठहरनी चाहिए थी; लेकिन बीस मिनट हो गये, छूटी नहीं। गरमीके मारे घबराकर मैं प्लेटफार्मपर उतर आया। पोर्टर आ रहा था।

'क्योंजी, गाड़ी छूटनेमें इतनी देर क्यों हो रही है, बतला सकते हो?"

"नहीं मालुम।"

पोर्टर चला गया।

टिकट चेकर आ रहे हैं।

"चेकर-साहब, गाड़ी छूटनेमें देर क्यों हो रही है?"

"केडी साहबकी लेडी (!) खाना खाने गई हैं।"

"केडी साहब कौन?"

"व्हाट फौर योर नोइङ्?"

मेरे जाननेसे फायदा क्या, यह समझकर मैं चुप हो गया।

चेकर साहब चले गये।

रीती बोतलोंकी घड़ड़-घड़ड़ आवाज़ करता हुआ सोडा-वाटरवाला आ रहा था।

"मियाँ साहब, केडी साहब कौन हैं, बतला सकते हो?"

"नीलगंजके पट-सनके दलाल हैं। सेकेण्ड-क्लासमें हैं।"

केडी साहबकी 'लेडी' आईं, स्टेशन-मास्टर साथ-साथ आये और उन्हें डब्बेमें बिठा गये। गार्ड-साहबने स्टेशन-मास्टरसे पूछकर हरी झंडी दिखाई, गाड़ी चल दी।

मेरे कानोंमें सहसा बुढ़ियाका वह करुण-स्वर घुमड़ने लगा—"तनिक ठहर जा बेटा, ओ साहब-बाबू, तनिक ठहरा दे बेटा!—अरे मेरा मोहना रे—मोहना—!"

—धन्यकुमार जैन

कुमुदिनी

(उपन्यास)

[लेखक :—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

[४५]

मधुसूदनने आफिसमें आकर सुना तो वहाँ भी खबर अच्छी नहीं थी। मद्रासका कोई बड़ा बैंक फेल हो गया है, जिसके साथ उसकी कम्पनीका व्यापारिक सम्बन्ध था। उसके बाद सुना कि किसी डिरेक्टरकी तरफसे कोई-कोई कर्मचारी मधुसूदनको बिना जताये ही रजिस्टर वगैरह देख रहे हैं। अब तक मधुसूदनपर सन्देह करनेकी किसीने भी हिम्मत न की थी, एकने ज्यों ही ज़रा इशारा किया कि मानो चटसे कोई मन्त्रशक्ति-सी छूट गई। बड़े कामकी छोटी त्रुटियाँ पकड़ना बहुत आसान है, जो मातबर सेनापति होते हैं, वे फुटकर हिसाबोंमें ही कुल मिलाकर बहुत ज़्यादा जीतते हैं। मधुसूदन हमेशासे ऐसी ही जीतमें रहा है,—इसीसे चुन-चुनकर उन्हींपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ी। लेकिन, चुन-चुनकर उनकी एक लिस्ट बनाकर अगर उनके सामने रखी जाय, तो वे अपनी बुद्धिकी तारीफ करते हैं, कहते हैं—हम होते तो ऐसी ग़लती हरगिज़ न करते। कौन उन्हें समझावे कि टूटी नावपर बैठकर ही मधुसूदन पार हो रहा है, नहीं तो पार होना ही मुश्किल था, असलमें बात तो इतनी ही है कि नाव किनारे तक पहुँच गई। आज, नावको पानीसे बाहर निकालकर उसके छेदोंपर विचार करते समय, उनके तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं, जो सकुशल घाटसे आ लगे हैं। इस तरहकी टूँक-टूँक बिखरी हुई समालोचनासे अनाड़ियोंको चकमा देना सहज है। साधारणतः अनाड़ियोंको कुछ पा जानेकी इच्छा रहती है, वे विचार करना नहीं चाहते। लेकिन अगर कहीं वह विचार करने बैठे, तो मामला खतरनाक हो जाता है। इन सब बेवकूफोंपर मधुसूदनको बहुत ही क्रोध आया, जिसमें अवज्ञा भी मिली हुई थी, लेकिन जहाँ बेवकूफ़ोंकी प्रधानता है, वहाँ उनके साथ फैसला किये बिना दूसरी गति नहीं। पुरानी नसैनी चर्राती है, डगमगाती है, टूट जानेका डर दिखाती है; इसलिए जो उसपर पैर रखकर चढ़ता है, उसे उसकी रक्षा करनी ही पड़ती है। गुस्सा तो ऐसा आता है कि दे एक लात, सो टूट जाय, लेकिन इससे तो विपत्ति और भी बढ़ जानेकी सम्भावना है।

अपने बच्चेपर आफ़त आनेपर सिंहिनी जैसे अपने शिकारका लोभ भूल जाती है, व्यापारके विषयमें मधुसूदनके मनकी अवस्था भी ठीक वैसी ही है। यह तो उसकी अपनी सृष्टि है; इसपर जो उसका दर्द है, वह खासकर रुपयेका दर्द नहीं है। जिसमें रचना-शक्ति है, वह अपनी रचनामें अपनेको ही ज़्यादातर पाता है। उतना पानेमें भी जब आफत मालूम होने लगती है, तो जीवनके और सब सुख-दुःख और कामनाएँ तुच्छ हो जाती हैं। कुमुदने कुछ दिनोंसे उसे प्रबलतासे अपनी ओर आकर्षित किया था, वह आकर्षण आज यकायक ढीला पड़ गया। जीवनमें प्रेमकी आवश्यकताको मधुसूदनने प्रौढ़वयमें बड़े जोरोंके साथ अनुभव किया था। यह उपसर्ग जब असमयमें दिखाई देता है, तो निरंकुशता (व्यग्रता) आ ही जाती है। मधुसूदनको कुछ कम चोट नहीं पहुँची थी, परन्तु आज उसकी वह वेदना गई कहाँ!

नवीनके घर आते ही मधुसूदनने उससे पूछा—"मेरी प्राइवेट जमा-खर्चकी बही बाहरके किसी आदमीके हाथ पड़ी थी क्या, मालूम है तुम्हें?"

नवीन चौंक उठा, बोला—"यह क्या बात ?"

"तुम्हें इसकी खोज करनी होगी, खजांचीके पास कोई आता-जाता है या नहीं।"

"रतिकान्त तो विश्वस्त आदमी है, वह क्या कभी—"

"उसके अनजानमें मुहर्रिरोंसे कोई बातचीत चला रहा है, सन्देहका यही कारण है। खूब सावधानीसे पता लगाना है कि किन लोगोंका हाथ है इसमें।"

नौकरने आकर खबर दी कि रसोई ठंडी हुई जा रही है। मधुसूदन उसकी बातपर कुछ ध्यान न देकर, नवीनसे कहने लगा—"जल्दीसे हमारी गाड़ी तैयार करनेके लिए कह दो।"

नवीनने कहा—"खाकर नहीं जाओगे ? रात हो गई।"

"बाहर ही खा-पी लूँगा, काम है।"

नवीन सिर झुकाये कुछ सोचता हुआ बाहर चला गया। उसने जो चाल चली थी, वह भी शायद खुल जायगी।

यकायक फिर मधुसूदनने नवीनको बुलाकर कहा—"यह चिट्ठी कुमुदको दे आओ।"

नवीनने देखा कि विप्रदासकी चिट्ठी है। समझ गया कि चिट्ठी आज सवेरे ही आई है, शामको अपने हाथसे कुमुदको देनेके लिए उसे इन्होंने अपने पास रख ली थी। इसी तरह हर बार मिलनके लिए कुछ अर्घ्य हाथमें ले चलनेकी इन्हें इच्छा रहती है। आज आफिसके काममें सहसा तूफान उठ खड़ा होनेसे इनका यह प्रेमोपहार बीच ही में रुक गया।

मद्रासकी जो बैङ्क फेल हुई है, उसपर लोगोंका पूरा विश्वास था। उसके साथ घोषाल-कम्पनीका जो सम्बन्ध है, उसके बारेमें अध्यक्षों या हिस्सेदारोंमेंसे किसीके भी मनमें कोई संशय न था। ज्यों ही मशीन बिगड़ी कि सब कोई कहने लगे—हम शुरूसे ही जानते थे, इत्यादि।

आकस्मिक आघातके समय जब कि एक साथ कोशिश करके व्यवसायकी रक्षा करनेकी जरूरत होती है, उसी समय सञ्चालकके विषयमें दोषारोप प्रबल हो उठता है; और जिनपर किसीकी ईर्ष्या होती है, उन्हें बेकार करनेकी कोशिश व्यापारको और भी चौपट कर देती है। मधुसूदन इस बातको जानता था कि ऐसी कोशिश की जायगी। मद्रास बैङ्कके फेल होनेसे घोषाल-कम्पनीको कितना नुकसान पहुँचेगा, इस बातको निश्चित रूपसे जाननेका तो अभी समय ही नहीं आया, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मधुसूदनकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेमें यह भी एक मसालेका काम देगा। कुछ भी हो, दिन अच्छे नहीं, अब और सब बातें भूलकर इसीके लिए मधुसूदनको कमर कसनी होगी।

रातको मधुसूदनसे बातचीत होनेके बाद नवीनने घर आकर देखा कि अभी तक कुमुदके साथ मोतीकी माकी बातचीत हो रही है। नवीनने कहा—"बहू-रानी, तुम्हारे भइयाकी चिट्ठी आई है।"

कुमुदने चौंककर चिट्ठी हाथमें ली। खोलते हुए हाथ काँपने लगे। डर गई, शायद कोई अप्रिय समाचार हो। शायद यह लिखा हो कि अभी उनका आना न होगा। बहुत धीरे-धीरे लिफाफा खोलकर चिट्ठी पढ़ी। जरा देर चुप रही। चेहरेसे तो यही मालूम होता है कि दिलपर कहीं चोट पहुँची है। नवीनसे बोली—"भइया आज शामको तीन बजे कलकत्ते आ गये हैं।"

"आज ही आ गये ! उनकी तो—"

"लिखा है कि दो-एक दिन बाद आनेकी बात थी, लेकिन किसी खास वजहसे पहले ही चला आना पड़ा।"

कुमुदने और कुछ नहीं कहा। चिट्ठीके आखिरमें लिखा था—जरा तबीयत ठीक होते ही मैं तुमसे मिलने आऊँगा, इसके लिए तुम उद्विग्न न होना। यही बात पहलेकी चिट्ठीमें लिखी थी। क्यों, क्या हुआ है ? कुमुदने कौनसा अपराध किया है ? यह तो मानो एक तरहसे साफ-साफ ही कहना है कि तुम हमारे घर न आना। कुमुदके जीमें तो ऐसी आई कि जमीनपर धूलमें लोटकर जरा रो ले; लेकिन उस आवेगको रोककर वह पत्थरकी भाँति कठोर होकर बैठी रही।

नवीन समझ गया, चिट्ठीमें कुछ न-कुछ कड़ी मार है।

कुमुदका चेहरा देखकर कल्याससे उसका मन व्यथित होने लगा। बोला—"बऊ-रानी, उनके पास तो कल ही तुम्हें जाना चाहिए।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।"—ज्यों ही उसके मुँहसे यह बात निकली, फिर उससे रहा न गया, दोनों हाथोंसे मुँह ढककर रो उठी।

मोतीकी माने कोई प्रश्न न करके कुमुदको छातीसे लगा लिया। कुमुदने रुँधे हुए गलेसे कहा—"भइयाने मुझे जानेके लिए मना कर दिया है।"

नवीनने कहा—"नहीं-नहीं, बऊ-रानी तुमने ज़रूर समझनेमें भूल की है।"

कुमुदने ज़ोरसे सिर हिलाकर जता दिया कि उसने ज़रा भी ग़लती नहीं की।

नवीनने कहा—"तुमने कहाँ ग़लती की है, बताऊँ? विप्रदास बाबूने समझा है कि भाई साहब तुम्हें वहाँ भेजना नहीं चाहेंगे; इसीसे, कहीं तुम्हें अपमानित न होना पड़े, उन्होंने कोशिश नहीं की। कहीं तुम्हें कष्ट न पहुँचे, तुम व्यथित न हो, इस खयालसे तुम्हें बचानेके लिए उन्होंने अपने आप ही तुम्हारा रास्ता साफ़ कर दिया है।"

कुमुदको क्षण-भरमें बड़ा आराम मालूम हुआ। अपनी भीगी आँखोंकी पलकोंको नवीनके मुँहकी ओर उठाकर चुपचाप स्निग्ध दृष्टिसे देखती रही। नवीनकी बातकी सत्यतापर अब उसे ज़रा भी सन्देह न रहा। भइयाके स्नेहको क्षण-भरके लिए भी वह ग़लत समझ सकी, इसपर उसने अपनेको मन-ही-मन धिक्कारा। हृदयको एक प्रकारका बल मिल गया। अभी तुरत ही भइयाके पास दौड़ी न जाकर उनके आनेकी वह प्रतीक्षा जो कर सकेगी, यही अच्छा है।

मोतीकी माने ठोढ़ीसे हाथ लगाकर कुमुदका मुँह उठाया, बोली—"ओ:फ्हो! भइयाकी बातकी ज़रा भी आँच हवा लगी नहीं कि एकदम अभिमानका समुद्र उफन उठा।"

नवीनने कहा—"बऊ-रानी, तो कलके लिए तुम्हारे चलनेकी तैयारियाँ करूँ न?"

"नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं।"

"वाह, ज़रूरत कैसे नहीं? तुम्हें ज़रूरत नहीं तो न सही, मुझे तो है।"

"तुम्हें ज़रूरत किस बातकी?"

"वाह! हमारे भइयाको तुम्हारे भइया जैसा कुछ समझेंगे, वैसा ही समझ लेने देंगे हम! अपने भइयाकी तरफसे मैं उनसे लडूँगा। तुम्हारे मुक़ाबिले हार नहीं माननेका। कल तुम्हें उनके यहाँ जाना ही होगा।"

कुमुदिनी हँसने लगी।

"बऊ-रानी, यह मज़ाककी बात नहीं है। हमारे घरानेकी अपकीर्तिसे तुम्हारा गौरव घटता है। अब तुम मुँह-हाथ धोओ, जाओ, भोजन करना है। भाई साहबका तो आज मैनेजर साहबके यहाँ न्योता है। मैं समझता हूँ, शायद आज वे भीतर सोने भी न आयेंगे; मैं देख आया हूँ, बाहरके कमरेमें उनके बिस्तर लग गये हैं।"

इस समाचारसे कुमुदको भीतर-ही-भीतर कुछ आराम मिला, उसके दूसरे ही क्षण आराम मिलनेपर उसे शरम मालूम हुई।

रातको, सोते समय, मोतीकी माके साथ नवीनकी इस बारेमें बातचीत होने लगी। मोतीकी माने कहा—"तुमने तो जीजीको दिलासा दे दी, लेकिन अब?"

"'लेकिन अब' क्या? नवीनकी ज़बान और काम एक है। बऊ-रानीको जाना ही पड़ेगा, फिर जो होगा सो देखा जायगा।"

नये-बने राजाओंको पारिवारिक सम्मानका ज्ञान बहुत ही उग्र होता है। वे ज़रूर ही समझे हुए हैं कि विवाह हो जानेके बाद नववधू अपने पूर्व पदसे बहुत ऊपर चढ़ गई है, इसलिए, उसके कोई 'मायका' नामकी कोई बला है, इस बातको भूलने देना ही ठीक है। ऐसी दशामें दोनों ओर रक्षा करना यदि असम्भव मालूम हो, तो कम-से-कम एक ओरकी रक्षा तो करनी ही चाहिए। वह 'ओर' कौनसी है, उसका नवीनने मन-ही-मन निर्णय कर लिया।

कुछ दिन पहले वह इस बातकी स्वप्नमें भी कल्पना न कर सकता था कि जहाँ भाई साहबका चरम अधिकार है, वहाँ भी किसी दिन भाई साहबके साथ लड़ाई छेड़नेका साहस वह कर सकेगा।

पति-पत्नीने परामर्श करके निश्चय किया कि यह प्रस्ताव मधुसूदनके सामने रखा जाय कि कल सवेरे कुमुद सिर्फ एक दफ़े विप्रदासके साथ कुछ देरके लिए भेंट कर आवे। अगर भाई साहब राजी हुए और कुमुदको वहाँ भेजा गया, तो दो-चार दिन कुमुदके वहीं बने रहनेका क़यासमें आने लायक बहाना बनानेमें नवीनको कुछ भी कठिनाई न होगी।

मधुसूदन बहुत रात बीते घर आया, साथमें था कागज़ातका बहुतसा बोझा। नवीनने झाँककर देखा, मधुसूदन सोनेकी तैयारी न करके नाकपर चश्मा लगाकर नीली पेन्सिल हाथमें लिये आफिस-रूमकी टेबिलपर किसी दस्तावेज़पर निशान लगा रहे हैं, और बीच-बीचमें नोट-बुकमें कुछ नोट भी करते जाते हैं। नवीन हिम्मत बाँधकर कमरेमें घुस पड़ा, और बोला—"भाई साहब, मैं कुछ काम करवाऊँ तुम्हारे साथ?"

मधुसूदनने संक्षेपमें कहा—"नहीं।" व्यापारके इस संकटको मधुसूदन पूरी तौरसे समझ लेना चाहता है; सब बातोंपर उसकी दृष्टि पड़ना आवश्यक है; इस काममें औरकी दृष्टिकी सहायता लेना अपनेको कमज़ोर बनाना है।

नवीनको कुछ कहनेका बहाना न मिला, तो वापस चला आया। और यह बात भी उसकी समझमें आ गई कि जल्दी कोई मौक़ा भी नहीं मिलनेका। नवीनकी प्रतिज्ञा है कि कल सवेरे ही बहू-रानीको रवाना कर देगा। आज रात ही को उसके लिए सम्मति वसूल कर लेनी चाहिए।

कुछ देर बाद एक लैम्प भाई साहबके टेबिलपर रखकर नवीनने कहा—"रोशनी बहुत कम थी।"

मधुसूदनने अनुभव किया—इस दूसरे लैम्पसे उसके काममें बहुत-कुछ सुभीता हुआ, परन्तु इस बहानेसे भी कोई बात न हो सकी और नवीनको फिर बाहर चला आना पड़ा।

थोड़ी देर बाद नवीनने गुड़गुड़ीपर सुलगी हुई चिलम रखकर मधुसूदनके अभ्यासके अनुसार उसे चौकीके बाईं तरफ़ रखके आहिस्तेसे उसकी नली टेबुलपर धर दी। मधुसूदनने उसी वक़्त महसूस किया कि इसकी भी ज़रूरत थी। क्षणभरके लिए पेन्सिल रखकर हुक़्क़ा पीने लगा।

मौक़ा पाकर नवीनने बात छेड़ दी—"भाई साहब, सोने नहीं जाओगे? बहुत रात हो चुकी है। बहू-रानी तुम्हारे लिए शायद बैठी जाग रही होंगी।"

"बैठी जाग रही होंगी"—यह बात क्षण-भरमें मधुसूदनके कलेजेमें जाकर चुभ गई। पानीकी ऊँची लहरोंपर जहाज़ जब डगमगाता हुआ चल रहा था, एक छोटीसी चिड़िया उड़कर मानो उसके मस्तूलपर बैठ गई। क्षुब्ध समुद्रके भीतर क्षण-भरके लिए मानो श्यामल द्वीपकी एकान्त वनच्छायाका दृश्य सामने आ गया; परन्तु इन सब बातोंपर ध्यान देनेके लिए अभी समय नहीं,—जहाज़ चलाना होगा।

मधुसूदन अपने मनकी इस ज़रासी चंचलतासे डर गया। उसी समय उसने उसे धर दबाया, और बोला—"बड़ी बहूसे कह दो कि सो जायँ, मैं आज बाहर सोऊँगा।"

"नहीं तो उन्हें यहीं भेज दूँ?"—कहकर नवीन गुड़गुड़ीकी चिलम फूँकने लगा।

मधुसूदनने यकायक झुँझलाकर कहा—"नहीं, नहीं।"

नवीन इतनेपर भी विचलित न हुआ, बोला—"वे जो बैठी हैं तुम्हारे साथ दरबार करनेको।"

रूखे स्वरमें मधुसूदनने कहा—"अभी दरबारके लिए वक़्त नहीं।"

"तुम्हारे पास तो वक़्त नहीं, भाई साहब, लेकिन उनके पास भी तो समय थोड़ा है।"

"क्या, हुआ क्या है?"

"ख़बर आई है कि विप्रदास कलकत्ते आ गये हैं, इसीसे बड़ी रानी कल सवेरे—"

"सवेरे जाना चाहती हैं?"

"ज़्यादा देरके लिए नहीं, सिर्फ़ एक बार जा—"

मधुसूदनने ज़ोरसे हाथ हिलाकर कहा—"हाँ, सो

जाती क्यों नहीं, जायँ, चली जायँ। बस, अब नहीं, तुम जाओ।"

हुक्म वसूल होते ही नवीन वहाँसे भागा। बाहर निकला ही था कि मधुसूदनकी आवाज़ कानोंमें पहुँची—"नवीन!"

डर मालूम हुआ कि फिर शायद भाई साहब हुक्म वापस न ले लें। कमरेमें आकर खड़े होते ही मधुसूदनने कहा—"बड़ी बहू अभी कुछ दिन अपने भइयाके यहाँ ही जाकर रहेंगी, तुम सब इन्तज़ाम कर देना।"

नवीनको भय हुआ कि भाई साहबके इस प्रस्तावपर उसके चेहरेसे कहीं उत्साह न प्रकट हो जाय। यहाँ तक कि वह ज़रा दुविधाका भाव दिखाकर सिर खुजाने लगा। बोला—"बऊ-रानीके चले जानेसे घर सूना-सूना-सा मालूम देगा।"

मधुसूदन कुछ जवाब न देकर पेचवानकी नली रखकर अपने काममें जुट गया। समझ गया कि प्रलोभनका रास्ता अभी तक खुला हुआ है—उधर बिलकुल नहीं।

नवीन खुश होकर चला गया। मधुसूदनका 'काम' चलता रहा; परन्तु कब इस 'काम'की धाराके पाससे और एक उल्टी मानस-धारा खुल पड़ी, इस बातको बहुत देर तक वह खुद ही न समझ सका। मालूम नहीं कब, नीली पेन्सिलने ज़रूरत पूरी होनेसे पहले ही रुखसत ले ली, पेचवानकी नली पहुँच गई मुँहमें। दिनमें मधुसूदनके मनने जब कुमुदकी चिन्ताके विषयमें बिलकुल छुट्टी ले रखी थी, तब पहलेके दिनकी तरह अपनेपर अपना एकाधिपत्य पुनः प्राप्त हो जानेसे मधुसूदन बहुत खुश हुआ था; परन्तु अब ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती है, त्यों-त्यों उसे सन्देह होने लगा कि शत्रु दुर्ग छोड़कर अभी भागा नहीं है—सुरंगकी कोठरीमें दुबका हुआ है।

वर्षा थम गई है, कृष्णपक्षका चन्द्रमा बगीचेके एक कोनेमें खड़े पुराने सीसमके पेड़के ऊपर आकाशमें चढ़कर भीगी हुई दुनियाको विह्वल कर रहा है। ठंडी हवा चल रही है। मधुसूदनका शरीर रज़ाईके भीतर किसी गरम कोमल स्पर्शके लिए माँग पेश करने लगा, नीली पेन्सिलको ज़ोरसे दबाकर वह रजिस्टरोंपर झुक पड़ा। परन्तु उसके हृदयके गभीर आकाशमें एक बात क्षीण किन्तु स्पष्टतया गूँजने लगी—"बऊ-रानी शायद बैठी जाग रही होंगी।"

मधुसूदनने प्रतिज्ञा की थी कि कोई एक खास काम आज रातको पूरा कर ही रखेगा। वह कल सबेरे तक पूरा होता तो भी कोई हानि न थी, लेकिन प्रतिज्ञाका पालन करना उसके व्यवसायकी धर्मनीति है। किसी भी कारणसे यदि उससे वह भ्रष्ट हो जाय, तो अपनेको वह किसी भी तरह माफ नहीं कर सकता। अब तक उसने अपने धर्मकी रक्षा बड़ी कठोरतासे ही की है। उसका पुरस्कार भी उसे काफ़ी मिला है; परन्तु इधर कुछ दिनोंसे दिनके मधुसूदनके साथ रातके मधुसूदनका सुर नहीं मिलता—एक बीणाके दो तारोंकी तरह। जिस दृढ़ प्रतिज्ञाको करके वह डेस्कपर झुककर जमके बैठा था—जब बहुत रात हो गई, तो उस प्रणके किसी एक सँधमेंसे एक उक्ति भौंरेकी तरह भनभनाने लगी—"बऊ-रानी शायद बैठी जाग रही होंगी।"

उठ बैठा। बत्ती बिना बुझाये, कागज़ात रजिस्टर वगैरह ज्यों-के-त्यों छोड़कर चल दिया ऊपर अपने सोनेके कमरेकी तरफ। अन्तःपुरमें, तिमंज़िलेपर जानेके रास्तेमें आँगनको घेरे हुए जो बरामदा पड़ता है, उस बरामदेमें रेलिंगके किनारेसे श्यामासुन्दरी बैठी थी। चन्द्रमा उस समय बीच आकाशमें था, उसकी चाँदनीने आकर उसे घेर लिया है। उस समय वह ऐसी दिखाई दे रही थी, मानो किसी उपन्यासके भीतरकी तसवीर हो; अर्थात् मानो वह रोज़मर्राकी आदमिन नहीं है, बहुत पासके अत्यन्त परिचयके आवरणसे निकलकर मानो वह बहुत दूर आ पहुँची है। वह जानती थी कि मधुसूदन इसी रास्तेसे सोनेके लिए ऊपर जाता है—जानेका वह दृश्य उसके लिए अत्यन्त तीव्र वेदनामय है, इसीसे उसका आकर्षण इतना प्रबल है; परन्तु केवल व्यर्थ वेदनासे अपने कलेजेको छलनी कर डालनेका

पागलपन ही उसकी इस प्रतीक्षाका कारण नहीं, बल्कि उसमें एक आशा भी है—शायद क्षण-भरके लिए कुछ हो जाय; असम्भव कब सम्भव हो जाय, इसी आशासे रास्तेके किनारे बैठकर यह जगना है।

मधुसूदन उसकी तरफ़ एक नज़र फेंककर ऊपर चला गया। श्यामासुन्दरी अपने भाग्यपर गुस्सा होकर ज़ोरसे रेलिंग पकड़कर उसपर अपना सिर धुनने लगी।

ऊपर अपने कमरेमें जाकर मधुसूदनने देखा कि कुमुद बैठी जाग नहीं रही है,—घरमें अँधेरा पड़ा है, गुस्लखानेके अध खुले दरवाज़ेमेंसे थोड़ासा प्रकाश आ रहा है। मधुसूदनने एक दफ़े सोचा कि लौट जाये, लेकिन न जा सका। उसने गैस-बत्ती जला दी। कुमुद बिस्तरपर रजाई ओढ़े आरामसे सो रही है—बत्ती जलानेपर भी नींद न छूटी। कुमुदकी इस सुखकी नींदपर उसे गुस्सा आया। बड़ी अधीरताके साथ मशहरी उठाकर धमसे पलंगपर जाकर बैठ गया। पलंग चरमराया और काँप उठा।

कुमुद चौंक पड़ी, उठकर बैठ गई। उसे मालूम था कि आज राजासाहब न आयँगे। यकायक उन्हें देखकर उसके चेहरे पर ऐसा एक भाव झलक उठा कि उसे देखकर मधुसूदनकी कलेजेमें मानो शूल-सा चुभ गया। माथेमें खून चढ़ गया, कहने लगा—"मुझे तुम किसी भी तरह बरदाश्त नहीं कर सकतीं, क्यों?"

इस तरहके प्रश्नका वह क्या उत्तर दे, कुछ समझमें न आया। सचमुच ही मधुसूदनको देखकर आतंकसे उसका कलेजा काँप उठा था। तब उसका मन सावधान न था। जिस भावको वह अपनेसे भी सर्वदा छिपाये रखना चाहती है, जिसकी प्रबलताको वह खुद ही पूरी तरह नहीं जानती, वह यकायक अपनेको प्रकाश कर बैठा।

मधुसूदन दाँतों पीसकर बोला—"भइयाके पास जानेके लिए जी फड़फड़ाता है, क्यों?"

कुमुद इसी क्षण उसके पैरों पड़नेके लिए तैयार हो रही थी, लेकिन उसके मुँहसे भइयाका नाम सुनते ही वह कठोर हो उठी। बोली—"नहीं।"

"तुम नहीं जाना चाहतीं?"

"नहीं, मैं नहीं चाहती।"

"नवीनको मेरे पास दरबार करनेके लिए नहीं भेजा तुमने?"

"नहीं, नहीं भेजा मैंने।"

"भइयाके पास जानेकी बात तुमने उससे नहीं कही?"

"मैंने उनसे कहा था कि भइयाके यहाँ मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"सो मैं नहीं कह सकती।"

"नहीं कह सकतीं? फिर तुमने बड़ी नूरनगरी चाल चली?"

"हूँ तो मैं नूरनगरकी ही लड़की।"

"जाओ तुम उन्हींके यहाँ जाओ! नहीं हो, तुम यहाँके लायक नहीं हो। मेहरबानी की थी, लेकिन क़द्र नहीं जानी। अब पछताना पड़ेगा।"

कुमुद पत्थरकी तरह बैठी रही, कुछ जवाब न दिया। कुमुदका हाथ पकड़कर ज़ोरसे झकझोरकर मधुसूदनने कहा—"क्षमा माँगना भी नहीं जानतीं?"

"किस लिए?"

"तुम जो मेरे इस बिस्तरपर लेट सकी हो, इसके लिए।"

कुमुद उसी वक्त बिस्तरेसे उठकर बगलके कमरेमें चली गई।

मधुसूदन बाहर चल दिया—रास्तेमें देखा कि श्यामासुन्दरी उसी तरह बरामदेमें औंधी पड़ी हुई है। मधुसूदनने पास जाकर झुककर उसका हाथ पकड़कर उसे उठाना चाहा, बोला—"क्या कर रही हो, श्यामा?" सुनते ही श्यामा झटसे उठकर बैठ गई, मधुसूदनके पैरोंको छातीसे लगाकर गद्गद कण्ठसे बोली—"मुझे मार डालो तुम।"

मधुसूदनने हाथ पकड़कर उसे खड़ा कर दिया, बोला—"अरे तुम्हारी देह तो बिलकुल ठंडी हो रही है! चलो तुम्हें सुला आऊँ।" कहकर उसे अपने दुशालेमें लेकर दायाँ हाथ ज़ोरसे दबाकर उसके कमरेमें ले गया। श्यामाने चुपकेसे कहा—"ज़रा बैठोगे नहीं?"

मधुसूदनने कहा—"काम है मुझे।"

रातको न जाने कहाँसे भूत सवार हो गया, जो मधुसूदनका तमाम काम चौपट कर देना चाहता है,—बस अब नहीं! इतना तो वह समझ गया कि कुमुदकी तरफ़से उसकी जो उपेक्षा हुई है, उसकी क्षति-पूर्तिका भण्डार और भी कहीं जमा है। प्रेमके भीतर मनुष्य अपना जो परम मूल्य अनुभव करता है, आज रातको उसके अनुभव करनेकी ज़रूरत मधुसूदनको थी। श्यामासुन्दरी सारे जीवन और मनसे उसके लिए प्रतीक्षा किये-हुए है, इस सान्त्वनाको पाकर मधुसूदनमें आज रातमें काम करनेका ज़ोर आ गया। जिस अपमानका काँटा उसके कलेजेमें चुभ रहा है, उसका दर्द बहुत कुछ कम हो गया।

इधर रातको कुमुदको जो धक्का पहुंचा, उसमें उसकी एक सान्त्वना थी। जितनी बार मधुसूदनने उससे प्रेम दिखाया है, उतनी ही बार कुमुदके हृदयमें खींचातानी मची है। प्रेमके मूल्यसे ही यह कर्ज अदा करना चाहिए, इस कर्तव्यकी समझने उसे बहुत ही चंचल कर दिया है। इस लड़ाईमें कुमुदको जीतनेकी कोई आशा न थी; परन्तु यह पराजय बड़ी भद्दी है, कुमुदने उसे दबाये रखनेकी बार-बार और जी-जानसे कोशिश की है। कल रातको वह दबी हुई पराजय एक ही क्षणमें बिलकुल पकड़ाई दे गई। कुमुदकी असावधान दशामें मधुसूदनने स्पष्टतया देख लिया कि कुमुदकी सारी प्रकृति मधुसूदनकी प्रकृतिके विरुद्ध है; यह अच्छा ही हुआ कि निश्चित रूपसे जान लिया। इसके बाद परस्पर एक दूसरेके साथ अकपट भावसे अपना कर्तव्य पालन तो भी कर सकेंगे। मधुसूदन जहाँ उसे चाहता है, समस्या तो उसी जगह है; प्रेमके साथ जहाँ वह उसे विसर्जन करना चाहता है, सत्य नहीं है। सचमुच ही मधुसूदनके बिस्तरपर सोनेका अधिकार उसे नहीं है। सोकर वह सिर्फ़ उसे धोखा दे रही है। इस घरमें उसका जो पद है, वह तो विडम्बना है।

आज रातको बस यही एक प्रश्न बार बार उसके मनमें उठ रहा है—"मेरे कारण उन्हें इतनी अड़चन क्यों?" बात-बातमें मधुसूदन नूरनगरीकी चालका ज़िक्र करके कुमुद चुटकीपर लिया करता है, इसके मानी यह हुए कि कुमुदका स्वभाव उन लोगोंसे बिलकुल अलग है, जात अलग है, लेकिन फिर क्यों मधुसूदन उससे प्रेम दिखाता है? यह क्या कभी सच्चा प्रेम हो सकता है? कुमुदका दृढ़ विश्वास है कि आज मधुसूदन अपने मनमें कुछ भी क्यों न खयाल करे, लेकिन कुमुदसे उसका कभी जी नहीं भर सकता। जितनी जल्दी मधुसूदन इस बातको समझे, उतना ही सबके लिए मंगल है।

कल रातको नवीन भाई साहबसे सम्मति लेकर जितने आनन्दसे सोने गया था, आज सवेरे वह सारा-का-सारा काफ़ूर हो गया। रातके करीब ढाई बजे होंगे, मधुसूदनने उसी वक़्त नवीनको बुला भेजा। हुक्म हुआ कि कुमुदिनीको विप्रदासके यहाँ भेज दिया जाय, और जब तक वह खुद उसे न बुलाये, तब तक उसे यहाँ आनेकी ज़रूरत नहीं। नवीन समझ गया कि यह निर्वासन-दण्ड है।

आँगनको घेरे हुए चौकोन बरामदेमें जिस जगह कल रातको मधुसूदनके साथ श्यामासुन्दरीकी मुलाकात हुई थी, उसके ठीक सामनेके बरामदेसे सटा हुआ नवीनका कमरा है। उस समय वे दोनों—स्त्री-पुरुष कुमुदके विषयमें ही बातचीत कर रहे थे। इतनेमें गलेकी आवाज़ सुनकर मोतीकी माने ज्यों ही दरवाज़ा खोला, चाँदनीके उजालेमें मधुसूदनके साथ श्यामाके मिलनका दृश्य उसके सामने पड़ा। समझ गई कुमुदके भाग्यके जालमें आज रातको चुपकेसे एक कड़ी गाँठ और लग गई।

नवीनसे बोली—"ऐसे संकटके समयमें जीजीका चला जाना क्या ठीक है?"

नवीन कहा—"इतने दिनोंसे तो बड़-रानी यहीं थीं,

बात तो इतनी नहीं बढ़ पाई थी। बऊ-रानी हैं, इसीलिए यह सब हो रहा है।"

"क्या करना चाहिए, तुम्हीं बताओ।"

"बऊ-रानीने जिस सोती हुई भूखको जगा दिया है, उसकी खुराक वे नहीं जुटा सकीं, इसीसे यह अनर्थ हो रहा है। मैं तो कहता हूँ, इस समय उनका दूर रहना ही अच्छा है; इससे और कुछ हो चाहे न हो, कम-से-कम वे शान्तिसे रह तो सकेंगी।"

"तो क्या यह इसी तरह चलता रहेगा?"

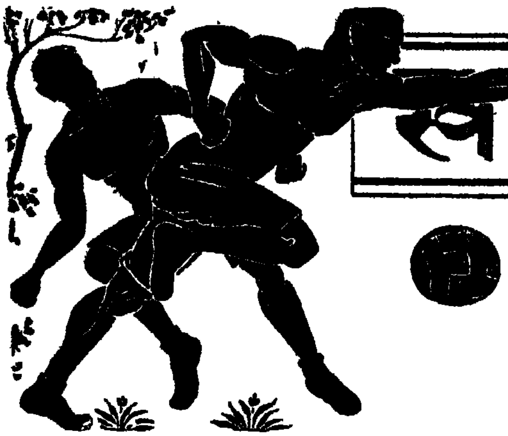
"जिस आगके बुझानेका कोई उपाय नहीं, उसे खुद जलकर भस्म होने तक दूरसे देखते रहनेके सिवा और चारा ही क्या है।"

दूसरे दिन सवेरेसे हाबलू कुमुदके साथ-साथ घूमता रहा। पण्डितजी जब पढ़ाने आये और उसे बुलवा भेजा, तो वह कुमुदके मुँहकी ओर देखने लगा। कुमुद अगर कह देती, तो वह चला जाता, लेकिन कुमुदने बेरासे कह दिया—"आज हाबलूकी छुट्टी है।"

बहू कुछ दिनके लिए मायके जा रही है, कुमुदकी यात्राके समय आज इस बातका भान न हुआ। यह घर आज मानो उसे खोने बैठा है। जिस चिड़ियाको पिंजड़ेमें क़ैद किया गया था, आज मानो वह दरवाज़ा कुछ खुला पाकर उड़ चली, मानो वह अब इस पिंजड़ेमें कभी न घुसेगी।

नवीनने कहा—"बऊ रानी, जल्दी आना, यह बात पूरे मनसे कह सकता तो क्या न था, लेकिन मुँहसे निकली नहीं। जिनके यहाँ तुम्हारा यथार्थ सम्मान है, उन्हींके यहाँ रहो तुम। जब कभी नवीनकी ज़रूरत हो, याद करना।"

मोतीकी माने अपने हाथकी बनी अमावट और अचार वगैरह एक मट्टीके बरतनमें रखकर उसे पालकीमें रख दिया। विशेष कुछ बोली नहीं, लेकिन मनमें उसके आपत्ति बहुत ज्यादा थी। जब तक बाधा स्थूल थी, जब तक मधुसूदनने कुमुदका बाहरसे अपमान किया है, तब तक मोतीकी माका सारा हृदय कुमुदके पक्षमें था; लेकिन जो बाधा सूक्ष्म है, जो मर्मगत है, विश्लेषण करके जिसका नाम निर्णय करना कठिन है, उसकी शक्ति इतनी प्रबलतम है, यह बात मोतीकी माके लिए सहज नहीं है। स्वामी जिस क्षणमें प्रसन्न होंगे, उसी क्षण शीघ्र ही स्त्री उसे अपना सौभाग्य समझेगी, मोतीकी मा इसीको स्वाभाविक मानती है, इसके व्यतिक्रमको ज्यादती! और तो क्या, इस बातपर भी उसे गुस्सा आता है कि अभी तक बऊ-रानीके विषयमें नवीनके हृदयमें दर्द है। कुमुदकी स्वाभाविक अरुचि बिलकुल अकृत्रिम है, जिसमें अहंकार नहीं, यहाँ तक कि इसीके कारण कुमुदको अपने ही साथ अपना दुर्जय विरोध है, साधारणतः स्त्रियोंके लिए यह बात मान लेना कठिन है। जिस चीनी लड़कीने वहाँकी प्रथाके अनुसार अपने पैर विकृत करनेमें आपत्ति नहीं की, वह अगर सुने कि संसारमें ऐसी लड़कियाँ भी हैं; जो अपने इस पद-संकोचकी पीड़ाको स्वीकार करना अपमानजनक समझती हैं, तो अवश्य ही वह उस बलाको हँसके उड़ा दे—ज़रूर कहे कि ये सब नखरे हैं। जो निगूढ़ दृष्टिसे स्वाभाविक है, उसीको वह जानती है अस्वाभाविक। मोतीकी माको किसी दिन कुमुदके दुःखसे सबसे ज्यादा दुःख हुआ था, शायद इसीलिए आज उसका मन इतना कठोर होने लगा है। प्रतिकूल भाग्य जब वरदान देने आता है, तब उसके पैरोंपर सिर रखकर जो स्त्री शीघ्रतासे उसे ग्रहण नहीं कर सकती, उसपर ममता करना मोतीकी माके लिए असम्भव है—यहाँ तक कि क्षमा करना भी। [क्रमशः



स्वास्थ्य-विभाग

प्रत्येक व्यक्तिको एक टाइम-टेबिल चाहिए

वार्ड ट्रेवर अमेरिकाके एक सफल चित्रकार हैं। उनकी अवस्था काफ़ी हो चुकी है, मगर फिर भी वे युवकोंके समान ही तेज़, कार्यशील और बलवान बने हैं। अभी हालमें 'फिज़ीकल कल्चर' नामक मासिक पत्रके एक प्रतिनिधिने उनसे बातचीतमें पूछा कि वे इस उम्रमें ऐसे जवान और पुरुषार्थी कैसे बने हैं? उन्होंने इतनी सफलता कैसे प्राप्त की? उन्होंने कहा कि थोड़ीसी सहज-बुद्धि खर्च करने और स्वस्थ रहनेसे ही वे ऐसे सफल हो सके हैं। उन्होंने बतलाया कि उनकी सफलताकी कुंजी यह है कि वे एक टाइम-टेबिल बनाकर उसके अनुसार चलते हैं। वे हरएक काम उसी टाइम-टेबिलके अनुसार करते हैं, इससे उनका स्वास्थ्य हमेशा ठीक बना रहता है, और उनका काम भी ठीक समयपर, नियमित रूपसे हुआ करता है। वे प्रतिदिन आठ घंटा अपने काममें लगाते हैं। उन्होंने सन् १९३० के लिए अपने कामका जो टाइम-टेबिल बनाया है, वह इस प्रकार है :—

प्रातःकाल

६-० बजे—फुर्तीसे उठना। एक गिलास ठंडा पानी पीना। हाथ-पैर फैलाना, जम्हाई लेना और गहरी साँसें लेनेकी कसरत करना। इस कसरतको करते समय अपने आदर्शोंको दुहराना।

६-२० ठंडे पानीसे स्नान, बिना आवाज़के खूब हँसना, इससे लाली बढ़ती है। रक्तका परिचालन बढ़ानेके लिए लज्जासे मुस्करानेका अभ्यास।

६-३० ब्रससे बाल झाड़ना।

६ ३५ एक खास ब्रससे मसूढ़ोंकी मालिश।

६-४० नाखूनोंकी कटाई, सफाई।

६-४५ हजामत बनाना।

६-५५ फुर्तीसे कपड़ा पहनना।

७—० नाश्ता; फल, गेहूँका दलिया, अंडा और रोटी आदि।

७-३० समाचारपत्रोंपर सरसरी निगाह डालना।

७-४५ कामके लिए तय्यार होना।

८—० तत्परतासे काम आरम्भ करना। काम करते समय रेडियोका संगीत सुनना।

८ १५—

८-३० पाँच मिनटके लिए हाथ-पैर फैलाना और सिकोड़ना, गहरी साँसें लेना, झरनेका एक गिलास पानी पीना। आठ घंटेके काममें प्रत्येक आध घंटेके बाद यही अभ्यास करना। काम करते वक़्त गाना गाना या सुनना।

११-३० दोपहरका भोजन—ताज़े फल, शाक सब्ज़ी इत्यादि।

१२—० कपड़े खोलकर आध घंटे तक धूप लेना।

१२-३० काम आरम्भ।

५ बजे शाम—अपनी चित्रशालाको ठीक-ठाक करना और आगन्तुकोंसे भेंट करना।

६—० पोशाक बदलना।

६-३० चित्रशालामें या कहीं और भोजन करना ।

८—० सिनेमा देखना या और सामाजिक बातोंमें भाग लेना

१०-३० सोनेकी तय्यारी । कुछ व्यायाम और परमात्माको धन्यवाद ।

११—० निद्रा ।

मिस्टर ट्रेवर्सने कहा—"मैं बहुतसे चित्रकारोंको जानता हूँ जिनमें बड़ी प्रतिभा है, मगर शारीरिक अस्वस्थताके कारण वे कुछ भी नहीं कर सकते। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि बचपनमें मैं बहुत कमज़ोर और मरियल था। बचपन ही से मुझे चित्रकार बननेकी आकांक्षा थी, मगर मेरी अस्वस्थता इस इच्छाकी पूर्तिमें बड़ी बाधक थी; क्योंकि मैं कमज़ोरीके कारण खेतों आदिको देखनेके लिए नहीं जा सकता था। अन्तमें मैं स्कूलकी पढ़ाई समाप्त करके केलीफोर्निया चला गया, क्योंकि मैंने सुना था कि वहाँकी आबहवा बहुत अच्छी है। वहाँ मुझे स्ट्राबेरीके खेतमें काम करना पड़ा। इस काममें मुझे धूप भी खूब मिली और खुली हवामें रहनेका मौका भी। बस, यहींसे मेरी तन्दुरुस्ती अच्छी होने लगी। उसके बाद मैं जर्मनी गया। वहाँ भी मेरी शारीरिक उन्नति हुई।

"मैंने देख लिया कि जहाँ तक सम्भव हो, धूपमें और खुली हवामें रहना चाहिए। न्यूयार्कके इस व्यस्त-जीवनमें भी मैं प्रायः प्रतिदिन—जब धूप निकली हो—मकानकी सबसे ऊपरवाली छतपर आध घंटे तक एकदम नग्न होकर धूप लेता हूँ। मैं सदा खुली हुई खिड़कीके सामने ही खाता-पीता, सोता और काम करता हूँ।

"मैं अपने टाइम-टेबिलकी पाबन्दी बड़ी कड़ाईसे करता हूँ। कभी-कभी मेरे मित्र मेरे इस टाइम-टेबिलकी पाबन्दीपर अप्रसन्न भी होते हैं, मगर मैं कभी इसे नहीं तोड़ता।

"इसके अलावा, मैंने कुछ और भी सिद्धान्त तथा आदर्श निश्चित कर रखे हैं जिनके अनुसार सदा काम करता हूँ। मेरा एक सिद्धान्त तो यह है कि पाक-साफ सादा जीवन बिताना और उसे सब प्रकारसे क्रियात्मक बनाना। दूसरे, मैं अधिक मित्र भी नहीं बनाता, केवल दो-चार भले मित्रोंसे ही, जिनकी मित्रताका कुछ मूल्य हो, मैं दोस्ती रखता हूँ। तीसरे, इतना धन सदा पास रखता हूँ, जिससे धनकी चिन्ता न सता सके। चौथे, उन्हीं चित्रोंको बनाता हूँ जिनसे मुझे आनन्द प्राप्त हो तथा जिनसे—मेरी समझमें—औरोंको आनन्द हो। पाँचवाँ, प्रेम और सेवाके अतिरिक्त और किसीका कुछ देना न रखना। छठे, न किसीसे कुछ उधार लेना, न देना। सातवाँ अपने शरीरको शक्ति और मनको शान्ति देना।"

प्रेस-प्रतिनिधिने कहा—"मि० ट्रेवर्स, आपके कथनानुसार आपकी समस्त सफलता अच्छी तन्दुरुस्ती और आपकी प्रतिभापर ही निर्भर करती है?"

इसपर चित्रकारने कहा—"तन्दुरुस्ती और प्रतिभा ही पर नहीं, बल्कि टाइम-टेबिलपर भी निर्भर है।"

इस देशमें भी अगर लोग अपनी आवश्यकतानुसार अपना टाइम-टेबिल बनाकर उसके अनुसार काम करें, तो वे थोड़े समयमें बहुत काम भी कर लेंगे, और साथ ही उन्हें बहुतसी फिजूलकी परेशानी भी न उठाना पड़ेगी।

आदि कवि वाल्मीकिके प्रति श्रद्धांजलि

[लेखक :— श्री भगवानदास केला]

महात्मन् ! गुदड़ीमें बहुधा लाल छिपे रहते हैं, बहुत समय तक निम्न-श्रेणीके वातावरणसे प्रभावित व्यक्ति भी अपना जीवन सुधार सकता है, दूसरोंके लिए बहुत-कुछ आदर्श बन सकता है—एक चोर-डाकू अपने त्याग और तपसे ऋषि-पद प्राप्त कर सकता है—इन बातोंका तुमने जीता-जागता उदाहरण उपस्थित कर दिया था। अन्धकारमय मार्गमें भटकनेवालोंके लिए तुम प्रकाश-स्तम्भ हो । अपने जीवनसे निराश व्यक्तियोंके लिए तुम आशाकी ज्योति हो । तुम्हारे जीवनसे स्फूर्ति मिलती है, उत्साहका संचार होता है । सर्वसाधारणके लिए तुम्हारा जीवन एक शिक्षाप्रद ग्रन्थ है । तुम धन्य हो । तुम्हें सादर नमस्कार !

× × × ×

अग्निमें तपाये जानेपर सोनेका सब मैल दूर हो जाता है । त्याग और तपका जीवन बितानेपर तुम्हारे मनोमन्दिरसे अन्धकार दूर होकर उसमें ज्ञानकी ज्योति जग जाना अनिवार्य था । एक दिन तुमने देखा कि एक निषादने अपने तीरसे एक क्रौंच पक्षीको मार डाला । उसकी मादा शोक-विह्वल है । तुम उसकी वेदनासे मर्माहत हो गये । अनायास तुम्हारी जिह्वासे जो शब्द निकले, वह कविताके रूपमें थे । जिस श्लोककी तुमने रचना की, वह काव्य जगत्का श्रीगणेश माना जाता है । निःस्सन्देह जो आदमी दूसरोंकी पीड़ाका अच्छी तरह अनुभव करता है, और उस वेदनासे स्वयं दुखी होता है, या जो त्याग और कष्टका जीवन व्यतीत करता है, उसीकी वाणी कविताके अन्तस्तल तक पहुँचती है । वही वास्तवमें काव्य-रचनाका अधिकारी है ।

× × × ×

हे धर्म और नीतिके महान् शिक्षक ! समुचित तपस्या करनेके बाद तुम्हारा रामचरित लिखनेका विचार हुआ, और तुम भारतवर्षका, नहीं-नहीं, संसारका प्रथम महाकाव्य लिखनेमें सफल हुए । इसके अध्ययनसे प्रत्येक नर-नारी, बाल-वृद्ध, गृहस्थ और संन्यासी, राजा और रंक, नीतिज्ञ और योद्धा अपने-अपने विविध क्षेत्रोंके अनुसार यथेष्ट शिक्षा ले सकता है । रामायण अपने पाठकोंको मनोरंजनके साथ-साथ मातृ-प्रेम, आज्ञापालन, निर्भयता, सहनशीलता, स्वार्थत्याग, शान्ति, धर्म और परोपकार आदि विविध सद्गुणोंकी प्राप्तिका उपदेश प्रदान करती है । यह दुष्ट-दमन और दीन-रक्षाका आदेश करती है । संक्षेपमें बात यह है कि अपने जीवनका उद्देश्य उच्च रखनेवाले आदमीको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए जिन-जिन साधनोंकी आवश्यकता होती है, वे उसे रामायणमें भलीभाँति मिल जाते हैं । अब तक असंख्य लोगोंको अपना जीवन पवित्र और सदाचारमय बननेमें इससे सहायता मिली है । स्थान-स्थानपर सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनके विकासमें इसने अद्भुत भाग लिया है । महर्षि, तुम्हारी कृति अमर है । वह सबको जीवन-सन्देश देनेवाली है । तुम धन्य हो !

× × × ×

हे महानुभाव ! अन्यान्य लोगोंके साथ भारतीय कवि और लेखक भी तुम्हारे महाकाव्यका अभिमान करते हैं, परन्तु कितने हैं, जो अपने रचना-कार्यमें तुम्हारे जीवनसे समुचित शिक्षा लेते हैं । हमारे अधिकांश आदमी कलमका धन्धा अपनी भूख-प्यास मिटाने या धन कमानेके लिए करते हैं । हमारे जीवनका कोई उच्च लक्ष्य नहीं । सबकी कीमत है । हम थोड़े या बहुत दामोंमें बिकनेके लिए तैयार रहते हैं । आज एक पैसेवाला आश्रय देता है, तो हम उसका गुण-गान करने लगते हैं ; कल किसी दूसरी जगहसे कुछ अधिक प्राप्तिकी आशा हो जाय, तो हमें अपना सुर बदलनेमें जरा भी संकोच न होगा ; जिस प्रकारकी रचनाके बाजारमें अच्छे दाम उठ सकें, वैसी ही तैयार करनेके लिए हम लालायित रहते हैं । जिस बातके

कहनेमें हमें सत्ताधारियोंकी भृकुटिका सामना करना पड़े, उसे हम बड़ी चतुराईसे बचा जाते हैं।

जब लेखकोंकी यह दशा है, तो प्रकाशक अपने आपको व्यापारी कहनेमें क्यों लजाने लगे ? वे प्राय: लोक रुचिके पीछे दौड़ रहे हैं, कैसी पुस्तकोंकी माँग है, इसी बातको अध्ययन करनेकी उन्हें चिन्ता रहती है। वे साहित्यके बाज़ारको ऐसी रचनाओंसे पाटते रहते हैं, जो वास्तवमें साहित्यके लिए कलंक-स्वरूप हैं। घासलेटी साहित्यकी वृद्धिके लिए लेखकों और प्रकाशकोंका वर्तमान सहयोग देखकर समाजका भविष्य चिन्ताजनक प्रतीत होता है। साहित्यसे सेवाका भाव विलुप्त हो जानेसे यह क्या अनर्थ न कर डालेगा !

× × × ×

हे आदि कवि ! हमारे हृदयमें स्वाभिमान और स्वतन्त्रता नहीं, मनमें क्रान्तिकी ज्वाला नहीं। हम केवल शब्द-जालसे दूसरोंको जाग्रत करनेका दम भरते हैं। हम संसारके सुधारक बननेकी डींग हाँकते हैं, पर स्वयं स्वार्थान्धकारमें निमग्न हैं। स्वाभाविकतासे तो हम दूर रहते हैं। कृत्रिमता, अलंकार और आडम्बर हमारे साधन हैं। हमें अपने मस्तिष्कका भरोसा है, हृदय भले ही साथ न दे। केवल साहित्य-शास्त्री बनकर, विविध ग्रन्थोंमें बताये नियम-उपनियमोंको कंठ करके हम कविता करने चलते हैं। हे कविशिरोमणि ! हम भूल जाते हैं कि तुमने महाकाव्यकी रचना करनेके लिए अपने हृदयका भी विकास किया था, तभी तुम सरस धारा प्रवाहित कर सके। हृदयमें अपने आप ही उमड़ पड़नेवाली, दूसरोंके अन्त:करण तक पहुँचनेवाली उद्गारोंकी धारा ही तो वास्तवमें कविता है।

परमात्मा, हमें सुबुद्धि दे ! तुम्हारे चरण-चिह्नोंको देखकर हम समुचित शिक्षा-ग्रहण करें। हमारा कल्याण हो, और हम दूसरोंकी सच्ची सेवा करें। महात्मन् ! लेखन-कार्यके लिए तप और त्यागकी आवश्यकता बतलानेमें तुम हमारे गुरु-स्वरूप हो। तुम धन्य हो। तुम्हें सादर प्रणाम !

फास्ट

[लेखक :—तुर्गनेव]

(एक गल्प नौ चिट्ठियोंमें)

पहली चिट्ठी

...ग्राम, ६ जनवरी, सन् १८५०

प्रिय मित्र,

मुझे यहाँ आये हुए तीन दिन हो गये। जैसा कि मैंने तुमसे वादा किया था, आज मैं तुम्हारे पास कुछ लिखकर भेजना चाहता हूँ। आज प्रात:कालसे ही कुछ बूँदाबाँदी हो रही है। इस समय मैं घरसे कहीं बाहर नहीं निकल सकता, और तुम्हारे ही साथ इस पत्र द्वारा थोड़ीसी बातचीत करना चाहता हूँ। यहाँ मैं अपने पुराने घरमें ठहरा हुआ हूँ। वही घर, जिसे—यह कहते भी भय मालूम होता है—मैं गत नौ वर्षोंसे छोड़े हुए था। सचमुच, जैसा तुम खयाल कर सकते हो, मैं यहाँ अपनेको एकदम दूसरा ही आदमी पाता हूँ। सच तो यह है कि मैं बिलकुल ही बदल गया हूँ। मेरी बैठकमें मेरी परदादीके समयका झाँई पड़ा हुआ एक छोटा आईना था, जिसके फ्रेममें एक अजीब ढंगकी नक्काशीका काम किया हुआ था और इसी आईनेके सम्बन्धमें तुम कहा करते थे कि एक सौ वर्ष पहले इस आईनेने क्या देखा होगा, क्या तुम्हें उसकी याद है ? यहाँ पहुँचते ही मैं इस शीशेके पास गया, और उस समय मुझे बड़ी परेशानी मालूम हुई। मुझे एकाएक यह मालूम पड़ा कि गत कई वर्षोंके अर्सेमें मैं कितना पुराना पड़ गया हूँ, और साथ ही उसके बदल भी गया हूँ, किन्तु यह परिवर्तन अकेले मुझमें ही हुआ

हो, सो बात नहीं। मेरा छोटा मामूली घर भी, जो बहुत पहले ही से पुराना और लड़खड़ाया हुआ था, अब मुश्किलसे खड़ा रह सकेगा। इस समय वह बिलकुल झुकी हुई हालतमें है, और ऐसा जान पड़ता है, मानो वह ज़मीनके अन्दर धसा जा रहा है। मेरी प्रिय गृह-रक्षिका बूढ़ी लिनना (जिसे तुम भूले नहीं होगे, और जो तुम्हें बढ़िया मुरब्बा दे-देकर ख़ुश रखा करती थी) इस समय बिलकुल सिकुड़कर झुक गई है। वह मुझे देखकर पुकार नहीं सकी और न उससे ज़ोरसे रोते ही बन सका। वह सिर्फ़ शोकसे सिसकने लगी, जिससे उसका गलारुद्ध हो गया। आख़िर वह लाचार होकर कुर्सीमें धस-सी गई और अपना हाथ हिलाने लगी। बुड्ढे टिरेन्टीमें अब भी कुछ तेज बाकी रह गया है। वह पहलेके समान सीना ऊँचा करके चलता है, और चलते समय अपने पाँवको घुमाता है। अब भी वह उसी पीले रंगके नयनकिलाटका पायजामा और भेंड़के चमड़ेका ऊँची एड़ीवाला चरचराता हुआ जूता पहनता है। (तुम्हें याद है या नहीं, उस जूतेकी चराचराहट तुम्हें कैसी बुरी मालूम होती थी।) इस समय उसके दुबले-पतले पाँवमें वही पायजामा ढीला लटकता हुआ किस तरह फटफटा रहा है! उसके बाल कितने सफ़ेद हो गये हैं। उसका चेहरा सिकुड़कर एक छोटी मुट्ठी-भर रह गया है। जिस समय वह मुझसे बातें करता है और जब वह नौकरोंको हिदायत करना शुरू करता है तथा दूसरे कमरेमेंसे उन्हें हुक्म देता है, तो मुझे हँसी आ जाती है, और मैं उसकी दशापर तरस खाने लगता हूँ। उसके सब दाँत गिर गये हैं, और वह सिसकती हुई आवाज़में घुनघुनाकर बोलता है। उधर बगीचेकी हालत देखकर आश्चर्य होता है। बबूल, बकाइन और 'Honeysuckle' के छोटे-छोटे पौधे—क्या तुम्हें यह याद है कि हम दोनोंने मिलकर उन्हें रोपा था?—इस समय बढ़कर खूब घने झाड़ीदार वृक्षके रूपमें हो गये हैं। सनोबर और Maples आदिके पेड़ भी बढ़कर लम्बे हो गये हैं और फैले हुए देख पड़ते हैं। नींबूके वृक्षोंकी कुंजकी शोभा विशेष दर्शनीय मालूम पड़ती है। मैं इन कुंजोंको प्यार करता हूँ। मुझे उनका सुकुमार भूरा और हरा रंग तथा उनकी महराबदार शाखाओंके नीचे भीनी-भीनी महक प्रिय मालूम पड़ती है। मैं यहाँकी काली मिट्टीपर—जिसमें बालूका कहीं नामोनिशान नहीं, जैसा कि तुम जानते ही हो—रोशनीके परिवर्तनशील जालीदार मण्डलको प्यार करता हूँ। मेरा प्रिय सिन्दूर वृक्ष (Oak) का पौधा इस समय बढ़कर एक जवान वृक्षके रूपमें हो गया है। कल दोपहरको मैंने उसकी छायाके नीचे एक बेंचपर बैठकर एक घण्टेसे अधिक समय बिताया। इस प्रकार बैठे रहनेमें मुझे बड़ा आनन्द मालूम पड़ा। मेरे चारों तरफ़ घास खूब बढ़ी हुई थी। आस-पासकी सभी चीज़ोंपर एक मुलायम सुनहली रोशनी पड़ रही थी। इस रोशनीका प्रवेश छायाके अन्दर भी हो रहा था। चिड़ियोंकी बोली भी साफ़-साफ़ सुन पड़ती थी। मुझे उम्मीद है कि तुम इस बातको नहीं भूले होगे कि चिड़ियोंसे मुझे ख़ास प्रेम है। पण्डुक बिना रुके हुए निरन्तर काँव-काँव कर रहे थे। समय-समयपर श्यामा पक्षीकी सीटीकी-सी आवाज़ सुन पड़ती थी। Chaffinch अपने मधुर मन्द रागमें गा रहे थे। कौवे आपसमें झगड़ रहे थे और काँव-काँव कर रहे थे। कोयल दूरसे ही अपनी सुरीली तान छेड़ रही थी। बीच-बीचमें एकाएक पागल जैसा कठफुरवा अपनी तेज चुभती हुई आवाज़में बोल उठता था। मैं देर तक इस दबी हुई मिश्रित आवाज़को सुनता रहा। वहाँसे हटनेकी इच्छा भी न होती थी। उस समय मेरा हृदय शिथिलता एवं करुणाके भावोंसे भरा हुआ मालूम पड़ता था।

सिर्फ़ बगीचेकी ही बदली हुई हालत हो, सो नहीं। मुझे बराबर ऐसे हट्टे-कट्टे सुघर जवान लड़के मिलते हैं, जिन्हें मैं अपने पुराने परिचित छोटे लड़कोंके रूपमें इस समय नहीं पहचान सकता। तुम्हारा प्रिय तिमोशा इस समय तिमोफेके रूपमें इतना बदल गया है, जिसका तुम कभी ख़याल भी नहीं कर सकते। उन दिनों तुम्हें उसके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें

आशंका थी, और तुम कहा करते थे कि इसे जलोदर हो जायगा, परन्तु इस समय तुम्हें उसके नैनसुखके कोटके तंग आस्तीनोंसे निकले हुए विशाल आरक्तिम भुज-दण्डोंको और उसके सारे बदनपर उभड़े हुए मज़बूत गोल पुट्ठोंको देखना चाहिए। उसकी साँड़ जैसी गर्दन, उन्नत मस्तक और सुन्दर घुँघराले बाल देखते ही बनते हैं। उसके चेहरेमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है और गोलाई भी अधिक नहीं बढ़ी है। उसकी पहले जैसी मुसकराहट—जिसे तुम हँसीमें मुँह फाड़ना कहा करते थे—इस समय भी क़ायम है। मैंने उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया है। मैंने अपने पिटर्सबर्गवाले नौकरको मास्कोमें ही छोड़ दिया। सचमुच उसे इस बातका शौक़ था कि किसी तरह ऐसा अवसर मिले, जिससे मुझे शर्मिन्दा होना पड़े और मैं उसके पिटर्सबर्गके शिष्टाचारको श्रेष्ठ समझूँ। मेरे उन कुत्तोंमें अब एक भी नहीं रह गया है। वे एक-एक करके सब चल बसे। नेफका उन सबोंमें अधिक दिन तक जीता रहा, किन्तु मेरे आने तक वह भी जीता नहीं रह सका। नेफकाके भाग्यमें यह नहीं बदा था कि वह एक बार फिर अपने मालिक और शिकारके साथीको अपनी ज्योतिहीन आँखोंसे देख सके, परन्तु शवका अच्छी तरह है, और पहलेके समान ही ज़ोर-ज़ोरसे भूकता रहता है। उसका एक कान पहले जैसा ही फटा हुआ है और उसकी पूँछ भी वैसी ही झाड़ोंके कटीले बीजोंसे चिपटी हुई रहती है। मैंने उस कमरेमें डेरा डाला है, जिसमें तुम आकर ठहरा करते थे। यद्यपि इस कमरेमें सूर्यकी किरणे पड़ती है और इसके अन्दर बहुत-सी मक्खियाँ भी हैं, किन्तु दूसरे कमरोंकी अपेक्षा इसमें पुराने घरकी-सी गन्ध कम है। यह एक अजीब बात है कि उस सड़ी हुई, बल्कि कड़ुवी और हल्की-सी गन्धका मेरी कल्पनापर ज़बरदस्त असर पड़ता है। मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि वह मुझे अप्रिय लगती है, बल्कि इसके विपरीत वह मुझे उदास बनाकर आख़िर हतोत्साह किये देती है। तुम्हारे सदृश ही मैं पीतलके तख़्तेवाले छोटे-मोटे सन्दूकोंको, गोलाकार पीठवाली और टेढ़ी टांगवाली सफ़ेद आराम-कुर्सियोंको तथा इसी प्रकारके अन्य मौरूसी सामानोंको बहुत पसन्द करता हूँ, परन्तु मैं इन सब चीज़ोंको बराबर देखते रहना बर्दाश्त नहीं कर सकता। एक तरहकी घबराहट पैदा करनेवाली उदासी मुझपर आ जाती है।

जिस कमरेमें मैंने डेरा डाला है, उसके सामान बहुत मामूली किस्मके देहातके बने हुए हैं। मकानके एक कोनेमें मैं लम्बी क़तारवाली तंग अलमारियोंको छोड़ गया था, जिनपर पुराने ढंगके हरे और नीले रंगके शीशे जड़े हुए हैं। इस समय वे गर्देसे भरे हुए दीख पड़ते हैं। तुम्हें याद होगा कि मैंने काले चौखटोंमें जड़ा हुआ एक स्त्रीका चित्र दीवालमें लटका दिया था। वही चित्र; जिसे तुम मैनन लेसकटका चित्र कहा करते थे। इन नौ वर्षोंके अर्सेमें वह कुछ अधिक काला हो गया है, लेकिन उसकी आँखोंमें अब भी वही गम्भीर सलज्ज और कोमल दृष्टि बनी हुई है, उसके होठोंपर वही विषादपूर्ण सनकी मुसकराहट है और उसकी क्षीण अंगुलियोंसे अब भी उसी तरह अधटूटे गुलाबके फूल धीरेसे गिरते रहते हैं। मुझे अपने कमरेकी झिलमिलियोंपर लगे हुए पर्दोंको देखकर बड़ी हँसी आती है। किसी समय वे हरे रंगके थे, किन्तु सूर्यकी किरणोंके पड़ते रहनेसे इस समय वे पीले रंगके हो गये हैं, और उनपर काले रंगमें दृश्य अंकित किये हुए हैं। एक पर्देपर एक साधुका चित्र है, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है, आँखोंपर बड़े बड़े चश्मे हैं और पाँवमें खड़ाऊँ हैं। वह एक युवती स्त्रीको—जिसके बाल बिखरे हुए हैं—हरण करके पहाड़ोंमें लिए जा रहा है। दूसरे पर्देपर चार योद्धाओंके बीच—जो पादरियों जैसी टोपियाँ पहने हुए हैं—भयानक द्वन्द्व-युद्ध हो रहा है, उनमें एक आहत होकर पड़ा हुआ है। इसी प्रकारके बहुतसे भयानक चित्र इन पर्दोंपर अंकित है और चारों ओर निस्तब्ध शान्ति छाई हुई है। इन पर्दोंसे होकर कोमल रोशनी छतपर पड़ती है। जबसे मैंने यहाँ डेरा डाला है, मुझे एक प्रकारकी आन्तरिक शान्तिका अनुभव हो रहा है। यहाँ रहते हुए किसी

कामके करनेकी इच्छा नहीं होती, किसी चीज़को देखनेको मन नहीं चाहता, किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रहती, किसी विषयपर विचार करनेमें आलस्य मालूम होता है; किन्तु इसके साथ ही ध्यान करनेमें आलस्य नहीं जान पड़ता। पिछली दो बातोंमें जो फ़र्क़ है, उसे तुम भली-भाँति जानते ही हो। बाल्यकालकी स्मृतियाँ एकके बाद एक मुझे याद आने लगीं। जहाँ कहीं मैं गया, जिधर दृष्टि दौड़ाई, सभी ओरसे स्मृतियाँ हिलोरें लेने लगीं, और उनकी अत्यन्त छोटीसे छोटी बात भी अचलत्वमें स्पष्टतया दीख पड़ने लगी। इन स्मृतियोंके बाद दूसरी स्मृतियाँ भी आईं, तब मैंने अतीतकालसे क्रमश: अपने मनको हटा लिया।

उस समय मेरे हृदयमें जो कुछ शेष रह गया था, वह एक प्रकारका तन्द्रा-आलसयुक्त भारीपनका भाव था। मेरी उस समयकी दशाका खयाल करो, जब मैं एक बेंतके पेड़के नीचे एक चबूतरेपर बैठा हुआ था। एकाएक मैं न जाने कैसे ज़ोरसे रो उठा! मैं कोई बच्चा तो हूँ नहीं, मेरी उम्र काफ़ी बड़ी है, फिर भी मैं इसी तरह रोता रहता, अगर उस समय उस रास्तेसे एक कृषक-स्त्री न निकलती। वह स्त्री कुतूहलमें आकर मुझे घूरने लगी। फिर बिना मेरी तरफ़ अपना चेहरा घुमाये ही कमर तक झुककर मुझे सलाम करके चलती बनी! यह देखकर मुझे बड़ी लज्जा आई। क्या ही अच्छा हो, यदि मेरे मनकी बिलकुल वही हालत सितम्बर तक बनी रहे, क्योंकि मैं सितम्बर तक ही ठहरूँगा। हाँ, मैं रोऊँगा नहीं। मुझे इस बातका बहुत ही खेद होगा, यदि इस अवधिके अन्दर मेरा कोई पड़ोसी मुझसे मिलनेका विचार करे। मुझे इस बातकी भी विशेष चिन्ता नहीं है, क्योंकि मेरे पासमें यहाँ कोई मेरे पड़ोसी है भी नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे मनोभावको समझ गये होगे। तुम खुद अपने अनुभवसे यह जानते हो कि एकान्तवास प्राय: कितना लाभप्रद हुआ करता है। चारों ओर चक्कर काटनेके बाद अब मुझे इस एकान्तवासकी बड़ी आवश्यकता है।

किन्तु मैं यहाँ बेकार बनकर नहीं रहूँगा। मैं अपने साथ कुछ पुस्तकें लाया हूँ, और यहाँ मेरे पास एक अच्छासा पुस्तकालय भी है। कल मैं पुस्तकोंके कुछ सन्दूकोंको खोलकर बड़ी देर तक पुरानी किताबोंकी खोज-खाज करता रहा। उनमें मैंने बहुतसी ऐसी अजीब चीज़ें पाईं, जिन्हें पहले मैंने नहीं देखा था। सन् १७७० के लगभगका कैविडका एक हस्त-लिखित अनुवाद, इसी समयके समाचारपत्र और मासिक पत्रिकाएँ, मिराब्यूके ग्रन्थ तथा अन्य बहुतसी चीज़ें मिलीं। मैंने लड़कोंकी किताबें देखीं, जिनमें मेरी, मेरे पिताकी, मेरी दादीकी, और ज़रा खयाल तो कीजिए, मेरी परदादी तककी किताबें उनमें मौजूद थीं। एक फटी-पुरानी पुस्तकमें—जिसकी जिल्द रंगीन थी फ्रेंच-भाषाका व्याकरण मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ था। '............' उसकी तारीख दी हुई थी सन् १७४१। भिन्न-भिन्न समयोंमें मैं बाहरसे जो पुस्तक लाया था, उन्हें मैंने वहाँ पाया। इन पुस्तकोंमें जर्मन कवि गेटेका काव्य-ग्रन्थ फास्ट' (Faust) था। तुम्हें शायद यह बात न मालूम होगी कि एक समय था, जब 'फास्ट' मुझे कण्ठस्थ था (सिर्फ़ उसका प्रथम भाग)। उसका एक-एक शब्द मुझे याद था और उसे पढ़ते हुए मैं कभी थकता न था, किन्तु अब वे दिन नहीं रहे, वे स्वप्न नहीं रहे, और गत नौ वर्षोंमें तो कदाचित ही मुझे गेटेकी पुस्तक कभी हाथमें लेनेका मौका मिला हो। उस छोटी किताबको—जिसे मैं इतनी अच्छी तरह जानता था—फिर देखकर (यद्यपि वह सन् १८२८ का एक साधारण संस्करण था) मेरे मनमें जो भावावेश हुआ, वह अकथनीय है। मैं उसे साथ लेता आया, बिछौनेपर लेट गया और पढ़ने लगा। उसके चमत्कारपूर्ण प्रथम दृश्यका मुझपर कितना प्रभाव पड़ा!

मुझे पुरानी बातें याद आ गईं—बर्लिन और वहाँका छात्र-जीवन। बड़ी देरके बाद नींद आई। मेरी युवावस्था मेरे सामने छायाकी भाँति उदित होकर दृष्टिगोचर होने लगी। आगकी तरह, विषकी तरह वह मेरी नसोंमें दौड़ गई, मेरा हृदय उछलने लगा और कोशिश करनेपर भी शान्त नहीं

हुआ। ऐसा मालूम हुआ, मानो मेरी हृत्तन्त्रीको किसीने ज़ोरसे बजा दिया हो; जिससे मेरी उत्कण्ठाओंकी तरंगे उठने लगीं हों।

देखो न! तुम्हारा यह मित्र चालीस वर्षकी अवस्थामें, जब वह इस सुन-सान छोटेसे घरमें एकान्तवास करता हुआ बैठा है, किस प्रकार खयाली बातोंमें ग़र्क़ हो जाता है। यदि इस समय कोई झाँककर मेरी दशा देख लेता, तो कैसा होता! होता क्या? मैं ज़रा भी लज्जित न होता। शर्मिन्दा होना युवावस्थाकी निशानी है। मुझे अब मालूम होने लगा है (क्या तुम जानते हो, किस तरह?) कि मैं वृद्धावस्थाको प्राप्त हो रहा हूँ। यह मुझे किस प्रकार मालूम हो रहा है, मैं तुम्हें बताऊँगा। इन दिनों मैं अपनी सुखद भावनाओंसे भरसक लाभ उठानेकी और अपनी उदास भावनाओंको तुच्छ समझनेकी कोशिश करता हूँ, परन्तु अपनी युवावस्थामें मैं इसके ठीक विपरीत करता था। कभी कभी ऐसा होता है कि मनुष्य अपनी उदासीनताको अपनी निधि समझकर उसे अपने साथ लिए फिरता है, और उसे अपनी प्रसन्नतापर लज्जा मालूम होती है, किन्तु इन सब बातोंके होते हुए भी मुझे ऐसा मालूम होता है कि यद्यपि मुझे अपने जीवनमें बहुत अनुभव प्राप्त हुए हैं, फिर भी संसारमें अभी कोई ऐसी चीज़ है, जिसका अनुभव मुझे नहीं हुआ है, और 'वह चीज़' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आह! मैं क्या-से-क्या कह गया! इस समय तुमसे विदा लेता हूँ। पिटर्सबर्गमें तुम क्या कर रहे हो? इस प्रसंगमें एक बात तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि मेरा देहाती रसोइया तुम्हारे यहाँ काम करनेकी इच्छा रखता है। वह भी काफी उमरका है, परन्तु बहुत बुड्ढा नहीं हुआ है। उसका शरीर कुछ स्थूल हो गया है और उसका बदन गठीला है। भाँति-भाँतिके भोजन बनानेमें वह पहलेके समान ही निपुण है। इस समय भी वह मांस उसी तरह पकाता है, जैसा कि बराबर पकाया करता था। वह इतना सख्त होता है कि तुम चाहो तो उससे बालोंको मजेमें ठोकपीट सकते हो!

अच्छा, तो अब मैं तुम्हें अपना प्रणाम कहता हूँ और इस पत्रको यहीं समाप्त करता हूँ। तुम्हारा—

....

दूसरी चिट्ठी

१२ जून १८५०

प्यारे दोस्त!

मुझे आज तुमसे एक महत्त्वपूर्ण बात कहनी है। ध्यान देकर सुनो। कल भोजनके पहले मुझे घूमनेकी इच्छा हुई, किन्तु उद्यानमें नहीं। मैं शहरकी तरफ सड़कपर टहलने लगा। किसी लम्बी-सीधी सड़कपर यों ही बिना किसी खास लक्ष्यके तेज़ीसे चलते रहना बड़ा सुखद प्रतीत होता है। उस समय ऐसा मालूम होता है, मानो तुम कुछ कर रहे हो, या कहीं जल्दीमें जा रहे हो। मैंने ऊपरकी ओर नज़र दौड़ाई, तो एक गाड़ीको अपनी ओर आते देखा। मैं मन-ही-मन सशंकित चित्तसे आश्चर्य करने लगा कि कहीं मुझसे मिलनेके लिए तो कोई नहीं आ रहा! नहीं, ऐसा तो नहीं मालूम होता, क्योंकि उस गाड़ीमें बड़ी-बड़ी मूछवाले एक सज्जन बैठे हुए थे, जो मुझसे बिलकुल अपरिचित थे। अब मुझे सन्देह करनेका कोई कारण नहीं रह गया, परन्तु जब वह सज्जन मेरे आमने-सामने आ पहुँचे, तो एकाएक उन्होंने गाड़ीवानको घोड़ा रोकनेके लिए कहा, नम्रतापूर्वक अपनी टोपी उठाई और उससे भी अधिक विनम्रभावमें मुझसे पूछा—"क्या आपका शुभ नाम···है?" मैं भी वहींपर रुक गया और अदालतके सामने विचारके लिए लाये गये एक क़ैदीके समान साहस-पूर्वक उत्तर दिया—"हाँ, मुझे इसी नामसे पुकारते हैं।" यह कहते हुए उस मूँछवाले भले आदमीकी तरफ भेड़की तरह टकटकी लगाकर देखने लगा और अपने मनमें विचार करने लगा। मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैंने उन्हें कहीं देखा है।

गाड़ीसे उतरते ही वह सज्जन बोल उठे—"क्या आप मुझे पहचानते नहीं?"

मैं, "माफ कीजिए, मैं नहीं पहचानता।"

"किन्तु मैं तो आपको फौरन ही पहचान गया।"

इसके बाद परस्पर परिचय सूचक बातें होने लगीं। फिर मालूम हुआ कि उन सज्जनका नाम प्रेमकवि था। क्या तुम्हें इनकी याद है? ये वही महाशय हैं, जिन्हें हम विश्वविद्यालयमें अपने एक साथीके रूपमें जानते थे।

इस समय तुम्हारे मनमें यह प्रश्न उठता होगा कि यह समाचार महत्त्वपूर्ण किस प्रकार है? जहाँ तक मुझे स्मरण है, प्रेमकवि एक सुस्त लड़का था, यद्यपि उसमें कोई बुराई नहीं थी और न वह मूर्ख ही था। वह ठीक ऐसा ही था न? अच्छा, तो अब हम दोनोंमें आगे जो बातचीत हुई, सो सुनो।

उन्होंने कहा—"जिस समय मुझे यह मालूम हुआ कि आप मेरे पड़ोसमें आ गये हैं, उस समय मुझे बड़ी खुशी हुई। इस तरहकी खुशी सिर्फ मुझे ही मालूम हुई हो, सो बात नहीं।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझपर और कौन मेहरबान है?"

"मेरी स्त्री।"

"आपकी स्त्री?"

"हाँ, मेरी स्त्री, वह आपकी एक पुरानी परिचिता है।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि आपकी स्त्रीका नाम क्या है?"

"वीरा नीकलवना।"

यह सुनते ही मैं चौंककर बोल उठा—'वीरा नीकलवना!'

यही वह महत्त्वपूर्ण समाचार है, जिसका मैंने अपने पत्रके शुरूमें ज़िक्र किया है।

किन्तु शायद तुमको इसमें भी कोई विशेषता मालूम न हो, इसलिए मुझे अपने अतीतकाल—गत जीवनके सम्बन्धमें तुम्हें कुछ सुनाना पड़ेगा।

*

जिस समय हम दोनों सन् १८३—में विश्वविद्यालयसे पृथक् हुए उस समय मेरी अवस्था २३ वर्षकी थी। तुम नौकरी करने चले गये और मैंने—जैसा कि तुम जानते ही हो—बर्लिन जानेका निश्चय किया, किन्तु बर्लिनमें अक्टूबरसे पहले मेरे लिए कोई काम करनेको नहीं था। इसलिए मैंने इसके किसी देहातमें ग्रीष्मकाल व्यतीत करनेका इरादा किया, जिससे मुझे आखिरी बार निठल्ला रहकर छुट्टी मनानेका मौक़ा मिले, और इसके बाद फिर मैं पूरे उत्साहके साथ कामपर जुट जाऊँ। मेरा यह अन्तिम उद्देश्य कहाँ तक कार्यरूपमें परिणत हो सका, इस सम्बन्धमें यहाँ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। किन्तु ग्रीष्मऋतुका समय मैं कहाँ बिताऊँ, यह प्रश्न मेरे मनमें उठा। मैं अपने निजके स्थानपर जाना नहीं चाहता था। मेरे पिता अभी हाल ही में मरे थे और मेरा कोई सगा सम्बन्धी भी नहीं था। एकान्तवास और सुन-सान जीवनसे मुझे भय मालूम होता था अतएव मेरे एक दूरके सम्बन्धीने जब मुझे अपने घरपर देहातमें आनेके लिए आमंत्रित किया, तो मुझे बड़ी खुशी मालूम हुई। वह एक साधु स्वभाव, सरल हृदय तथा सम्पन्न व्यक्ति थे। देहातके ज़मींदारोंकी तरह एक बड़े आलीशान मकानमें रहा करते थे। मैं वहाँ रहनेके लिए गया। मेरे सम्बन्धीका परिवार बड़ा था। उनके दो लड़के और पाँच लड़कियाँ थीं। उनके सिवा उनके घरमें बराबर लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी। मेहमान लोग हमेशा पहुँचते ही रहते थे; फिर भी वहाँ मुझे तनिक भी आनन्द मालूम नहीं पड़ता था। तमाम दिन कोलाहलमय आमोद-प्रमोदमें बीत जाता था, जिससे किसी व्यक्तिको अपने सम्बन्धमें विचार करनेका मौक़ा ही नहीं मिलता था। जो कुछ काम करते थे, सब मिलकर करते थे। हरएक आदमी एक दूसरेको खुश करनेकी कोशिश करता था और आमोद-प्रमोदका कोई मार्ग ढूँढ़ निकालनेकी चेष्टामें लगा रहता था। इस प्रकार दिन समाप्त होते-होते प्रत्येक व्यक्ति थककर स्तब्ध हो जाता था। हम लोग जिस तरीकेसे रहते थे, उसमें कुछ भद्दापन मालूम पड़ता था। मैं तो तंग आकर वहाँसे विदा होनेकी बाट जोहने लग गया था, और सिर्फ अपने

सम्बन्धीके जन्म-दिनके उत्सवकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसी उत्सवके दिन नाचके समय मैंने वीरा नीकलवनाको देखा, और मैं वहीं ठहर गया।

उस समय उसकी अवस्था सोलह वर्षकी थी। वह अपनी माँके साथ मेरे सम्बन्धीके घरसे चार मीलकी दूरीपर एक छोटी ज़मींदारीमें रहा करती थी। उसका पिता—जैसा कि मुझसे बताया गया था—एक विलक्षण पुरुष था। वह बहुत शीघ्र सेना-विभागमें कर्नलके पदपर पहुँच गया था। उसकी और भी उन्नति हुई होती, किन्तु वह युवावस्थामें ही संयोगवश अपने एक मित्रकी गोलीसे, जब कि वह शिकारके लिए बाहर गया हुआ था, मारा गया। उसकी मृत्युके समय वीरा नीकलवना शैशवावस्थामें थी। उसकी माँ भी एक असाधारण स्त्री थी। वह कई भाषाएँ बोल लेती थी और उसकी जानकारी भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। वह अपने स्वामीसे उम्रमें सात-आठ वर्ष बड़ी थी। उसके साथ उसने प्रेमके वश होकर ही विवाह किया था। उसका स्वामी उसे उसके बापके घरसे चुपचाप अपने साथ ले भागा था। वह अपने स्वामीके मृत्यु-विषयक शोकपर विजय प्राप्त करनेमें कभी समर्थ नहीं हुई, और अपनी मृत्युके समय तक उसने काला कपड़ा पहननेके सिवा और कुछ धारण नहीं किया। प्रेमकविसे मैंने सुना कि अपनी लड़कीके विवाहके कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

मुझे इस समय भी उसके चेहरेका स्पष्ट स्मरण हो रहा है। उसका चेहरा भावपूर्ण और विषण्ण मालूम पड़ता था। उसके घने बाल कुछ-कुछ सफेद होने लग गये थे। उसकी आँखें बड़ी बड़ी, कठोर और ज्योतिहीन थीं। उसकी नाक बिलकुल सीधी और सुघड़ थी। उसका बाप, जिसका नाम लडनोव था, १८ वर्ष तक इटलीमें रहा था। वीरा नीकलवनाकी माँ अलवनिया-निवासी एक साधारण किसानकी लड़की थी, जो अपनी इस लड़कीके पैदा होनेके दूसरे ही दिन अपने एक पूर्व प्रेमी द्वारा मार डाली गई, जिसके यहाँसे लडनोव उसे बहकाकर ले भागा था। उस समय इस बहकानेकी कहानीको लेकर बड़ी सनसनी फैली हुई थी। रूस लौट आनेपर लडनोवने न तो कभी अपने घरको ही छोड़ा और न अपने अध्ययनको ही। उसने अपने आपको रसायनशास्त्र, शरीरशास्त्र और जादूगरीके कलाओंमें तल्लीन कर दिया। मनुष्य-जीवनको दीर्घस्थायी बनानेके उपायोंको ढूँढ़ निकालनेकी उसने चेष्टा की। उसका खयाल था कि वह प्रेतात्माके साथ वार्तालाप कर सकता है। पड़ोसके लोग उसे एक जादूगर समझा करते थे। वह अपनी लड़कीको बहुत प्यार करता था और प्रत्येक विषयकी उसे खुद शिक्षा दिया करता था, किन्तु अल्सटोवके साथ घरसे निकलकर भाग जानेके अपराधको उसने कभी भूला नहीं। उन दोनोंको उसने कभी अपने सामने आने नहीं दिया। उनके लिए शोकपूर्ण जीवनकी भविष्यवाणी की, और अन्तमें एकान्तवास करता हुआ मृत्युको प्राप्त हुआ। अब मेडम अल्सटोव विधवा हो गई और अपना सारा समय अपनी लड़कीको शिक्षा देनेमें बिताने लगी। इसके बाद वह अपने किसी मित्रसे कदाचित् ही मिली हो। जब मैं पहले-पहल वीरा नीकलवनासे मिला, उस समय तक वह किसी शहरमें—यहाँ तक कि अपने जिलेके शहरमें भी—नहीं रही थी।

वीरा नीकलवना साधारण रूसी लड़कियों जैसी नहीं थी। उसपर कुछ विशेषताकी छाप नजर आती थी। जिस समय मेरा उसके साथ परिचय हुआ था, उस क्षणसे ही मैं उसके हाव-भाव और लक्षणोंकी असाधारण शान्ति देखकर चकित होने लग गया था। उसमें किसी प्रकारकी घबराहट या विक्षोभ जैसा नहीं मालूम पड़ता था। वह किसी प्रश्नका उत्तर सीधे तरीकेसे समझदारीके साथ दिया करती थी, और जो कुछ उससे कहा जाता था, ध्यानपूर्वक सुना करती थी। उसके चेहरेसे एक बच्चे जैसी निश्छलता एवं सत्यशीलता झलकती थी, किन्तु उसके साथ ही उसका चेहरा कुछ प्रेमहीन और निश्चल-सा जान पड़ता था। वह कदाचित् ही कभी प्रफुल्ल मालूम पड़ती हो, और सो भी प्रकारकी उस

प्रफुल्लित तो वह कभी नहीं होती थीं, जिस प्रकार साधारण श्रेणीकी लड़कियाँ हुआ करती हैं। उसकी हरएक बातसे उसके निष्कपट हृदयकी शान्ति झलकती थी, जो चुहल-पहलकी अपेक्षा अधिक आनन्दप्रद प्रतीत होती थी। वह लम्बे क़दकी नहीं थी और उसके शरीरका ढाँचा बहुत ही उम्दा कुछ दुबलापन लिए हुए था। उसके अंग-प्रत्यंग सुघड़ और सुकुमार मालूम पड़ते थे। उसकी भौंहें सुन्दर और स्निग्ध थीं, उसके बाल हल्के और चमकीले थे, नाक सीधी और उसके होठ भरे हुए थे। उसकी काली और भूरे रंगकी आँखें उसकी ऊपरकी ओर मुड़ी हुई कोमल पलकोंके अन्दरसे प्रत्यक्ष-सी दीख पड़ती थीं। उसके हाथ छोटे-छोटे थे, जो देखनेमें विशेष सुन्दर नहीं मालूम पड़ते थे। उसके जैसे हाथ प्रतिभाशाली मनुष्योंके कदापि नहीं देखे जाते। असलमें बात भी तो यही थी कि मीरा नीकलवनामें कोई विशेष प्रतिभा नहीं पाई जाती थी। उसका कण्ठ-स्वर ठीक एक सात वर्षके बच्चों जैसा स्पष्ट ध्वनित होता था। मेरे सम्बन्धीके जन्म-दिवसके अवसरपर जो नाच हुआ था, उस समय ही मेरा उस लड़कीकी माँके साथ परिचय कराया गया, और इसके चन्द दिनके बाद ही मैं पहले-पहल उन लोगोंके घरपर जाकर मिला।

[क्रमशः

केयर हार्डी

[लेखक :—श्री विल्फ्रेड वेलाक, एम० पी०]

(विशेषता 'विशाल-भारत'के लिये)

केयर हार्डी ब्रिटिश लेबर और साम्यवादी आन्दोलनोंके पैग़म्बर हैं। वे लगभग तीस वर्ष तक अविरल उत्साहके साथ अपने विश्वासकी ज्वलन्त ज्योतिसे साम्यवादके मार्गमें प्रकाश फैलाते रहे। वे आन्दोलन-कर्ता ही नहीं, बल्कि महात्मा थे। जैसे ही उन्हें वह मार्ग दिखाई पड़ा, जिसमे उनकी श्रेणीवाले व्यक्तियोंको आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती थी, वैसे ही उन्होंने एक ऐसे आन्दोलनकी नींव डाली, जो समय पाकर उनके ध्येयको पूरा करेगा। उन्होंने स्वयं उसे इतना अधिक परिपूर्ण कर दिया था, जितना वे स्वयं भी नहीं समझते थे। उन्होंने ऐसे विश्वास और सफाईसे एक-एक क़दम करके अपना रास्ता बनाया था, जिसे देखकर उनके सम्पर्कमें आनेवाले लोग स्तम्भित हो जाते थे। उन्होंने ऐसे उत्साह और दृढ़तासे अपने ध्येयका पालन किया, जिससे वे थोड़े ही दिनोंमें एक ऐसे राष्ट्रीय व्यक्ति हो गये, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। जो शख़्स यह कह सके कि—"इसीकी तो हमें ज़रूरत है," और फिर उसके अनुसार योजना बनाकर उसे पूरा करनेमें जुट जाय, वह शख़्स ऐसी मिट्टीका बना होता है, जो ज़मानेको पलट देती है। इसमें भी सन्देह नहीं कि ऐसे मनुष्य उन लोगोंकी घृणाके भी पात्र होते हैं, जो नया ज़माना या अन्य किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं चाहते।

किसी भी व्यक्तिकी अपेक्षा केयर हार्डीके लिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे ब्रिटेनके मजूर और साम्यवादी आन्दोलनोंके जन्मदाता थे। केयर हार्डीको छोड़कर मैंने आज तक कोई अन्य व्यक्ति नहीं देखा, जिसके चरित्र, महत्त्व, जीवन और कामके लिए उसके दलके सभी लोग ऐसे एक स्वरसे प्रशंसा करते हों।

केवल अपने चरित्रबल, परिष्कृत निरीक्षण-शक्ति, दृढ़ विश्वास, अपने उद्देश्यके प्रति लगन और अपनी नीति तथा कार्योंके साहसके कारण वे ऐसे व्यक्ति थे, जिनके प्रति एक ओर तो भय और दूसरी ओर श्रद्धाका संचार होता था। राष्ट्रकी एक बड़ी भारी कमी—जिसकी पूर्ति अवश्यम्भावी थी—पूरी

करनेके लिए वे एक प्रधान राष्ट्रीय व्यक्ति हो गये थे। उनके प्रसिद्धि प्राप्त करते ही पूँजीवादी समाचारपत्र उन्हें मूर्तिमान् साम्यवाद समझने लगे थे। वे और साम्यवादके अन्य शत्रु उनकी खरी नीति और खरे सिद्धान्तों तथा बिना लल्लो-पत्तोकी बातोंको लेकर जनताको डराया करते थे। वे लोगोंको यह समझानेकी कोशिश करते थे कि यदि वे इस मनुष्यको अपने ऊटपटांग सिद्धान्तोंका प्रचार करने देंगे, तो शीघ्र ही समाजका अन्त निश्चय है। इस प्रकार महायुद्धके पहले बीस वर्षोंमें वे सभ्य समाजमें हौआ समझे जाते जाते थे। समाचारपत्र, गिरजेके पादरी और अन्य बहुतसी मान्य संस्थाएँ भी उन्हें हौआ ही समझा करती थी।

अतः कुछ ही दिनोंमें मि० हार्डी खूब प्रभावशाली हो गये। वे श्रमजीवी मजदूरोंसे भलीभाँति परिचित थे, और यह जानते थे कि उनके हृदयमें कैसे घर करना चाहिए। वे जानते थे कि समूहवाद आदिके सिद्धान्तोंपर लम्बी-चौड़ी दलीलें पेश करना व्यर्थ है। सबसे पहली आवश्यकता तो यह थी कि लोगोंकी कल्पना जाग्रत की जाय, उन्हें चर्मचक्षुओंसे दिखाई देनेवाले वर्तमान समाजकी भयंकर असमानता अच्छी तरह समझाई जाय और आजकलकी औद्योगिक प्रणालीकी असमानुषिकता तथा आजकलके व्यापार-व्यवसायकी साधारण अनीतिका भण्डाफोड़ किया जाय।

हार्डीके साम्यवाद-संग्राम छेड़नेके छै-सात वर्ष बाद, साम्यवाद-आन्दोलनके अन्य प्रधान राष्ट्रीय व्यक्ति उसमें सम्मिलित हुए थे। उनका सन्देश शीघ्र ही फैल गया। अपने विचारोंको प्रकट करनेका उनका ढंग ऐसा था, जिसे आश्चर्यजनक सफलता मिली। उनका सीधा ढंग, उनका साहस, उनके अपने अनुभवोंके उदाहरण, उनके बिना चिकने-चुपड़े कड़ुवे सत्य आदि बातें श्रोताओंको एकदम मुग्ध कर देती थीं। साथ ही उनकी सहृदयतापूर्ण ईमानदारी और पीड़ित तथा दलित लोगोंके प्रति उनकी सहानुभूति बहुतसे ऐसे लोगोंका हृदय द्रवित कर देती थी और बहुतोंको उनका अनुगामी बना देती थी, जो उनके साम्यवादमें विश्वास भी नहीं रखते थे। जिस समय मैंने पहले-पहल हार्डीको वक्तृता देते सुना, उस समय उनके प्रति मेरे विचार बहुत उच्च नहीं थे, क्योंकि—मैं स्वीकार करता हूँ—समाचारपत्रोंमें बहुत दिनोंसे उनके प्रति जो लगातार भ्रमपूर्ण बातें फैलाई जा रही थीं, मैं भी उन बातोंका शिकार हो चुका था। सचमुचमें और अन्य घटनाओंकी अपेक्षा, सबसे अधिक उसी मीटिंगने मेरे हृदयमें पूँजीवादी पत्रोंकी बेईमानी और उनकी जान-बूझकर भ्रमात्मक बातें फैलानेकी नीतिका दृढ़ विश्वास दिला दिया। कमसे कम इस मामलेमें तो मेरे विचार उसी दिनसे पलट गये, मगर मि० हार्डीने मुझपर एक विशेष प्रभाव डाला। उनकी कोमलता, उनके आवेश, उनके उत्साह और उनके आत्म-संयमने मुझे मुग्ध कर दिया। उनकी वक्तृताने मेरे बहुतसे तत्कालीन विचारोंपर प्रकाश डालकर उन्हें दृढ़ किया।

मि० जे० केयर हार्डीका जन्म १५ अगस्त सन् १८५६ में हुआ था। उनके माता-पितादोनों ही स्काच थे। उनके पिता कोयलेकी खानमें काम करते थे। बालक हार्डी केवल सात वर्ष ही की छोटी आयुमें कोयलेकी खानमें काम करनेके लिए भेजा गया। थोड़े ही दिनोंमें उनका कुटुम्ब प्रायर शायर ज़िलेमें जा बसा। इसी ज़िलेमें हार्डीने सबसे पहले अपने महान् मजूर आन्दोलनके आरम्भ करनेकी चेष्टा की थी। लड़कपनका उनका खानका अनुभव उनके आन्दोलनकारी जीवनके लिए बहुत ही उचित बुनियाद था।

अपने लड़कपनमें केयर हार्डीने जो पुस्तकें पढ़ीं, उनमें 'बर्नकी कविताएँ', 'स्काटलैंडके प्रसिद्ध पुरुष', 'स्काटिश सीमान्तकी कहानियाँ' और कार्लायलके ग्रन्थ भी थे। अपने अन्तिम समय तक हार्डी 'बॉबी बर्न्स' नामक जनतन्त्रवादी कविताको बड़े चावसे सुनाया करते थे। मजूर-सभाओं और साम्यवादी कान्फ्रेंसोंके अवसरोंपर जो भाई-चारेकी पार्टियाँ हुआ करती थीं, उनमें वे उस कविताको खास तौरपर पढ़ा करते थे। अपनी जवानीके दिनोंमें कार्लायलने उनके हृदयपर बड़ा प्रभाव डाला था। मकानके सबसे ऊपरके

तालेके अपने छोटे कमरेमें हार्डीने अपनी खानकी लैम्पकी सहायतासे इस रूखे दार्शनिक, कार्लायलकी एक किताबके बाद दूसरी किताब पढ़ी थी। कार्लायलकी पुस्तकोंसे हार्डीने वह तत्त्व ढूँढ़ निकाला, जिससे बादमें उनके लिए साम्यवादका विकास बहुत सरल हो गया। मिस्टर ब्रूस ग्लेसियरने बताया है कि इसके बहुत दिन बाद हार्डी साम्यवादके स्पष्ट प्रचारके सम्पर्कमें प्रत्यक्ष रूपसे आये। हेनरी जार्जकी लिखी हुई 'उन्नति और दरिद्रता' नामक पुस्तक भी उन्होंने पढ़ी और उसका उनपर प्रभाव भी बहुत पड़ा, परन्तु उन्हें उसमें दोष भी दीख पड़े। अपने अन्तिम दिनोंमें हार्डीने अनेकों बार पब्लिक सभाओंमें स्वीकार किया था कि उन्हें मज़दूर-आन्दोलन उठानेकी और उसे चलानेकी प्रेरणा सबसे पहले और सबसे अधिक 'नज़ारथके प्रभु ईसा मसीहकी शिक्षाओं'से मिली थी।

सन् १८७८ में जब हार्डी २२ वर्षके थे, तब उन्होंने 'आयरशायर माइनर्स ऐसोसियेशन' नामक संस्था क़ायम की। नौ वर्ष बाद उन्होंने 'दी माइनर' नामक मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया, जिसका उद्देश्य खानमें काम करनेवालोंके मामलोंको प्रकट करना और उनमें सुधार करना था। बादमें यही पत्र साप्ताहिक रूपमें 'लेबर-लीडर' के नामसे निकलने लगा, और वह इंडिपेन्डेन्ट लेबर-पार्टीका मुख-पत्र हो गया। यही 'लेबर-लीडर'' वर्तमान 'न्यू लीडर' का पुराना रूप था।

इसी समय हार्डीको अनुभव होने लगा कि एक ऐसी लेबर-पार्टी बनानेकी बड़ी आवश्यकता है, जो औद्योगिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी मामलोंमें मज़दूरोंका मत प्रकट कर सके। मज़दूरोंकी पार्टीकी आवश्यकता बतानेके साथ-ही-साथ उन्होंने उस पार्टीके योग्य एक प्रोग्राम बनानेकी भी आवश्यकता बतलाई। एक ट्रेड-यूनियन-कांग्रेसकी मजूर-निर्वाचन-समितिने एक वक्तव्य निकाला था, जिसमें कहा गया था—''यह आन्दोलन किसी भी श्रेणी या फ़िर्क़ेके भी स्वत्वोंका विरोधी नहीं है।'' मगर हार्डीका विचार इसके बिलकुल प्रतिकूल था। उनका यह कथन सचमुच सच था—'मज़दूरोंकी दशामें कोई भी नाम लेने लायक सुधार ऐसा नहीं हो सकता, जो अधिकार-प्राप्त दलके सुरक्षित स्वत्वोंमें कमी न करे।' अतः उन्होंने एक ऐसा संगठन बनानेका उपदेश दिया, जिसका नाम 'सन्स-आफ़-लेबर' (श्रम-पुत्र) था, और जिसका उद्देश्य था प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्रमें राजनैतिक शक्ति संगठित करके सर्वसाधारणकी सांसारिक, मानसिक और नैतिक दशामें उन्नति करना।

यह एक बड़ा दूरदर्शितापूर्ण प्रस्ताव था, परन्तु इसकी सिद्धिमें हार्डीके जीवनका सबसे बड़ा उद्देश्य छिपा था। उस समय तक वे राजनैतिक क्षेत्रमें अच्छी तरह घुस चुके थे, क्योंकि अप्रेल सन् १८८८ में वे मिडलेनार्कके उप-निर्वाचनकी लड़ाई लड़ चुके थे। इस निर्वाचनके अनुभवसे उत्साहित होकर उन्होंने केवल तीन ही महीनेके भीतर स्काटिश लेबर-पार्टीकी स्थापना की। इस पार्टीने निर्वाचनके समय समस्त मज़दूरोंकी शक्तिको संगठित करनेके लिए एक पृथक् सुस्पष्ट और स्वतन्त्र लेबर-पार्टी स्थापित करनेकी माँग पेश की। यही अन्तमें इंडिपेन्डेन्ट लेबर-पार्टीका अंश हुई।

सन् १८९१ में 'आयरशायर माइनर्स यूनियन ऐण्ड गिल्ड-आफ़्-कामरेड कोलियर्स' नामक संस्थाके नियमोंके साथ जो प्रस्तावना प्रकाशित हुई थी—जो प्रत्यक्षमें हार्डीकी लिखी हुई जान पड़ती है—उसका निम्न-उद्धरण पाठकोंको मनोरंजक प्रतीत होगा। उसमें लिखा है—

''समस्त धन-सम्पत्ति श्रमसे उत्पन्न होती है। पूँजी इस सम्पत्तिका एक अंश है। यह पूँजी उत्पन्न होनेके बाद खर्च न की जाकर और अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करनेमें सहायता देनेके लिए जमा करके रखी जाती है। ब्याज उस मूल्यका नाम है, जो पूँजीके मालिक मज़दूरोंको अपनी पूँजी इस्तेमाल करनेके बदलेमें माँगते हैं। यदि समस्त भूमि और पूँजी उन्हीं लोगोंकी हो, जो श्रम करते हैं, तो श्रम करनेवालोंको उनकी उत्पन्न की हुई समस्त सम्पत्ति

मजदूरीके रूपमें मिल सकती है, लेकिन भूमि एवं पूँजीके मालिक वे लोग हैं, जो मजदूर नहीं हैं, और बिना भूमि एवं पूँजीके मजदूरी नहीं हो सकती। नतीजा यह है कि पूँजी और भूमिके स्वामी श्रम करनेवालोंके मालिक हो गये हैं। इस प्रकार पूँजी, जिसे श्रमिक उत्पन्न करते हैं, अपने उत्पन्न करनेवालोंकी मालिक हो गई है।"

अगले वर्षके जुलाई मासमें साउथ-वेस्ट हैमके निर्वाचनमें केयर हार्डी पार्लामेंटके मेम्बर चुने गये। इस घटनासे राष्ट्र-व्यापी सनसनी फैल गई। यह सनसनी उस दिन और भी अधिक बढ़ गई, जिस दिन मि० हार्डी पहले पहल पार्लामेंट-भवनमें बैठनेके लिए गये। वे पैदल गये थे और उनके आगे एक बैंड बजता चलता था। उस दिन वे अरमीरेका सूट, फलैनलकी कमीज़ और टोपी पहने हुए थे। उस समय पार्लामेंटके समस्त मेम्बर विलायतके बड़े-से-बड़े जेन्टिलमैन थे। उनके हृदयको पार्लामेंटके एक सदस्यकी यह पोशाक देखकर बड़ा आघात लगा।

परन्तु उस भव्य परिषद्को मि० हार्डीने केवल एक यही आघात नहीं लगाया। उनकी प्राय: प्रत्येक वक्तृतामें मौजूदा सामाजिक व्यवस्था और जिन समाज-विरोधी सिद्धान्तोंपर वह व्यवस्था स्थित है, उनके लिए खुला हुआ चैलेंज होता था। उनकी वक्तृता राष्ट्रके लिए होती थीं। उन्होंने हाउस-आफ् कामन्सको बहुत अधिक श्रोताओं तक पहुँचनेका साधन बनाया, जो अन्य किसी प्रकारसे कम सम्भव था, किन्तु इतनी बड़ी सभामें बनाये जानेवाले क़ानूनोंपर भला एक आदमीका क्या प्रभाव पड़ सकता था? वहाँ उनका उद्देश्य केवल पूँजीवादी समाजकी कमजोरियोंको और समस्त भयंकर असमानताओंको प्रकट करना था। कभी-कभी हाउस-आफ् कामन्समें उन्होंने ऐसे दृश्य उत्पन्न किये थे, जो ऐतिहासिक हो गये हैं। इसी तरहका एक दृश्य तब उपस्थित हुआ था, जब उन्होंने महारानी विक्टोरियाके पौत्र होनेपर उन्हें बधाई देनेके प्रस्तावका विरोध किया था, क्योंकि हाउस-आफ् कामन्सने कुछ ही दिन पहले उनके उस प्रस्तावको रद्द कर दिया था, जिसमें वेल्सकी एक कोयलेकी खानोंमें एक भयंकर दुर्घटनामें मरनेवाले व्यक्तियोंके सम्बन्धियोंसे सहानुभूति प्रकट की गई थी।

तीन वर्षके पार्लामेंटरी जीवनके बाद हार्डी दूसरे निर्वाचनमें हार गये, मगर सन् १९०० मर्थर टिडविलके निर्वाचन-क्षेत्रमें पुन: निर्वाचित हुए और तबसे सन् १९१५ तक, अपनी मृत्यु पर्यन्त, वे वहाँसे पार्लामेंटके मेम्बर बने रहे।

यह कहना बिलकुल ठीक है कि महायुद्धने उनका दिल तोड़ दिया था। युद्धके आर्थिक कारणोंको समझकर मि० हार्डी युद्ध और पूँजीवाद दोनों ही के समान विरोधी थे। वे युद्ध रोकनेका उपाय सर्वव्यापी हड़ताल बताते थे, और उसका प्रचार करते थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि युद्धने मजदूरोंकी राजनैतिक उन्नतिकी समस्त आशाओंपर पानी फेर दिया, और उन्नतिकी सुईको दस वर्ष पीछे हटा दिया। इस मामलेमें, जैसा और बहुतसे लोगोंको हुआ था, उन्हें भी धोखा हुआ। यदि वे आजकलकी दशा देखते, तो उन्हें मालूम होता कि वर्षोंके साहसपूर्ण परिश्रमके कैसे सुफल फले हैं।

इंडिपेन्डेन्ट लेबर-पार्टी आज भी केयर हार्डीको अपना देवता समझती है। वे इस पार्टीके जन्मदाता और प्रथम सभापति थे। उनके सभापतित्वमें पार्टीके उद्देश्य इस प्रकार बनाये गये थे—

"इसका उद्देश्य उत्पादन, वितरण और विनमयके समस्त उपायोंपर सामूहिक आधिपत्य प्राप्त करना है।"

कभी-कभी वे साम्यवादकी परिभाषामें कहा करते थे—"न्यायकी भित्तिपर स्थित भ्रातृभाव।" सन् १८८६ में उन्होंने लिखा था—"साम्यवादका अर्थ यह है कि भूमि और उद्योग-धंधोंकी पूँजीका मालिक सम्पूर्ण समाज हो। लोगोंको काम मिलना या न मिलना केवल दो-चार स्वार्थी मनुष्योंकी इच्छापर निर्भर न हो, बल्कि उन लोगोंकी और उनके आश्रित आदमियोंकी आवश्यकताओंको पूरी करनेपर निर्भर करे।"

केयर हार्डीने मरते दम तक अपना बाना मज़दूरों ही का सा रखा। अपने साथी रावर्ट स्माइलीकी भाँति वे अन्त दिन तक ओलु कमनाक नामक स्थानमें अपने खानके मज़दूरों-वाले झोपड़ेमें रहे। वे धनी समाजकी प्रत्येक वस्तुको दूषित समझते थे, और उनसे सदा दूर रहते थे। वे अपने शत्रुओंसे कभी मिलनेके लिए तय्यार नहीं थे, बल्कि उनसे दूर साभिमान खड़े रहते थे। उन्हें अपने मज़दूर-श्रेणीमें उत्पन्न होनेका और अपने मज़दूरोंके आदर्शों और आशाओंका बड़ा अभिमान था, यद्यपि वे उसे कभी प्रकट नहीं करते थे। उन्हें अस्पष्ट भविष्यमें मज़दूरोंकी विजय दिखाई पड़ती थी। प्रत्येक वर्ष हार्डीकी मृत्यु-तिथि समस्त देशमें मनाई जाती है, और प्रत्येक वर्ष हार्डीका स्वप्न अधिक सुस्पष्ट होता जाता है। हम लोग आज उनकी आशाओंके पूरी होनेके इतने समीप पहुँच गये हैं, जितना सन् १९१५में कोई आशा ही नहीं कर सकता था। मज़दूर-दलकी स्थापनाका—जो अन्तमें साम्यवादी दल बन जायगा—श्रेय सबसे अधिक केयर हार्डीको ही है।

विचार

[लेखक :—श्री वीरेश्वर]

मैं जब पैदा हुआ, तब केवल एक शब्द जानता था।

उसे मैं अपने जीवनकी पहली ही घड़ीमें, विह्वल हो पुकार उठा था—

"अम्मा !"

मैं बड़ा हुआ।

लोगोंने मुझे कई भाषाएँ सिखाईं।

दुनियाँके कई मीठे, भड़कीले शब्द बताये।

किन्तु मैं जितना ही सीखता हूँ, उतना ही मुझे अपना पहला शब्द 'अम्मा' अधिकाधिक प्रिय और महान ज्ञात होता है।

वह मेरे मस्तिष्कमें, मेरे हृदयमें और भी गहराईसे जमता जा रहा है।

संसारने कहा—" 'ओ३म्' भजो।"

मैंने खीझकर कहा—"अम्माके नामको क्यों बिगाड़ रहे हो ?"

एक बकरीका बच्चा करुणापूर्ण स्वरमें पुकार उठा—

"अम्मा !"

चमकती आँखोंसे बिल्लीका गोलमटोल बच्चा पुकार उठा—

"अ···म्मा···ऊँ।"

दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं।

मालूम होता था कि इस बूढ़े विश्वकी बाल-स्मृतियाँ अकचकाकर जग उठी हैं, और उसके प्राण एक बार फिर विश्व-शक्तिकी गोदमें बालककी तरह खेलनेको व्याकुल होकर पुकार रहे हैं।

मैंने कहा—"सुनो न, चराचर, बस, एक शब्द जानता है। वह है 'अम्मा'।"

संसार मेरे विरुद्ध हो गया।

मैं नास्तिक कहा जाने लगा। लोग मुझे भय तथा घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे।

× × ×

मैं मृत्यु शय्यापर पड़ा हुआ था।

लोगोंने कहा—"अब तो उस आसमानी पिता—ईश्वर—का नाम ले लो।"

मैंने पृथ्वीकी ओर देखा।

एक गहरी, किन्तु रुकीसी साँसके साथ मेरे अन्तस्तलसे निकल पड़ा—"अम्मा !"

मैंने 'माँ' ही को विश्व-शक्ति समझा।

इस पृथ्वी ही को उसका मन्दिर समझा, और इसको सुन्दर बनाना अपना कर्तव्य।

मेरी आँखें निराशामें भी कभी याचनाके लिए आकाशकी ओर नहीं उठीं।

यदि मैं कभी गिरा भी तो फूलकी तरह जिस पृथ्वीसे उठा, उसीपर।

जब मृत्युने मेरी पलकें बरबस खोलकर मेरी आँखोंको ऊपर देखनेको विवश किया, तब—

उनमें न तो स्नेह ही रह गया था और न ज्योति ही—और मैं भी काठ हो गया था।

भारतके देशी राज्य

[लेखक :—प्रो० शंकरसहाय सक्सेना, एम०ए०, बी०कॉम०, विशारद]

भारतीय महाद्वीपमें ३१ करोड़ ६० लाख मनुष्य निवास करते हैं, जिनमें लगभग २४ करोड़ ७० लाख तो ब्रिटिश भारतमें और लगभग ७ करोड़ २० लाखके देशी राज्योंमें। आज हमें भारतके राजवंशोंके भग्नावशिष्ट इन देशी राज्योंकी ओर दृष्टि डालनेका भी अवकाश नहीं मिलता। हम लोग ब्रिटिश भारतमें रहकर ब्रिटिश प्रभुओंकी छत्र-छायामें सुखसे अथवा दुःखसे जीवन व्यतीत करके ही अपने हृदयको सान्त्वना दे लेते हैं। हाँ, इधर कुछ स्वतन्त्रता देवीके भक्तोंने इस दासताकी शृंखलाओंका नाश करना ही अपना ध्येय बना लिया है, और उन्हींके प्रयत्नोंका फल है कि देशमें चेतनाशक्तिका प्रादुर्भाव हो रहा है। राष्ट्रीय महासभा तथा असहयोग-आन्दोलन इत्यादिके कार्य इसी बातकी सूचना देते हैं कि भारतीय हृदय स्वतन्त्रताके भावोंसे पूर्णतया भर गया है, परन्तु जब हम किसी भी आन्दोलनकी समालोचना करते हैं और जब कोई भी कार्य करते हैं, तो हमारी दृष्टि केवल ब्रिटिश भारत तक ही पहुँचती है। स्वप्नमें भी यह बात हमारे ध्यानमें नहीं आती कि हमारे ७ करोड़ भाइयोंको यह अधिकार भी प्राप्त नहीं है कि वे अपनी अवस्थापर विचार कर सकें तथा उन विचारोंके अनुसार कोई कार्य प्रारम्भ कर सकें। ब्रिटिश भारत-निवासी तो देशी राज्योंके विषयमें प्रायः अनभिज्ञ ही हैं। वे तो केवल यही जानते हैं कि देशी नरेश बड़े अपव्ययी होते हैं, विलायतमें जाकर अपनी प्रजाकी गाढ़ी कमाईका धन कुवासनाओंमें स्वाहा कर देते हैं, अथवा फिर कभी-कभी पोलो इत्यादिमें सम्मिलित होनेके लिए आये हुए नरेशोंके वैभवको देखकर वे आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। इतनी ही हमारी जानकारी है। खेद है कि राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करनेवाले हमारे नेतागण भी इस ओरसे प्रायः उदासीन हैं, किन्तु जो लोग राज्योंकी परिस्थितिसे परिचित हैं, वे जानते हैं कि यह प्रश्न कितना जटिल तथा महत्त्वपूर्ण है।

एक ओर तो हमारा हृदय देशी राज्यके अतीत इतिहाससे आकर्षित होकर उन्हें ऐतिहासिक स्मारक तथा प्राचीन भारतीय सभ्यताके अवशिष्ट चिह्न समझकर उनको सुरक्षित रखनेके लिए और उनको उन्नत दशामें देखनेके लिए आतुर हो उठता है, तो दूसरी ओर जब हमें यहाँके नरेशोंके भयंकर अत्याचार, पाप-लीलाएँ और उनकी प्रजाकी दुखःभरी कथाएँ सुननेको मिलती हैं, तो हृदय सिहर उठता है, और इच्छा होती है कि इन राजवंशोंका समूल नाश कर दिया जाय, जिससे वे पापाचार और अत्याचार कम हों। एक ओर जब हम देखते हैं कि मेवाड़के सिंहासनपर बप्पारावल महाराणा सांगा तथा प्रातःस्मरणीय प्रतापके वंशज आज भी विराजमान हैं, तो हृदयमें प्राचीन इतिहासका स्मरण हो आता है, और यह इच्छा होती है कि इनमें फिर वही स्वाभिमान तथा स्वदेश-प्रेमकी अविरल धारा वह निकले, जो इनके पूर्वजोंमें थी, तो देशका एक चौथाई भाग स्वतन्त्रताका सुखद जीवन व्यतीत करने लगे; किन्तु थोड़ी देरमें ही ये भाव पानीके बुलबुलोंके समान नष्ट हो जाते हैं।

भारतवर्षमें हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा तथा काश्मीर जैसे विशाल राज्योंसे जिनका क्षेत्रफल छोटे प्रान्तके बराबर है, लगाकर, ऐसे भी राज्य हैं, जिनके पास दो-चार गाँव ही हैं। इन भिन्न-भिन्न श्रेणीके राजाओं और महाराजाओंमें अधिकार-वैभव एवं ऐश्वर्यकी दृष्टिसे चाहे कितनी भी विभिन्नता क्यों न हो पर कुछ गुण तो इनमें समानरूपसे पाये जाते हैं। प्रथम गुण तो यह है कि अधिकांश राजा-महाराजा आंग्ल प्रभुओंका सेवक बननेमें अहोभाग्य मानते हैं। सम्राट्की बातको जाने दीजिए, वे तो इनके प्रभु हैं ही,

वायसराय, ए० जी० जो, रेजीडेन्ट और पोलिटिकल एजेन्टकी भी गिनती इनके प्रभुओंमें ही करनी चाहिए। जो स्वेच्छाचारी शासक अपनी प्रजाके प्रतिनिधियोंसे बात करना भी अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझता है, जो शासक अन्य छोटी श्रेणीके शासकोंसे भी समानताका व्यवहार नहीं करना चाहता, वह इन छोटे-छोटे कर्मचारियोंके समक्ष अत्यन्त भीरु बन जाता है और उनकी घृणित चाटुकारितामें ही अपना सौभाग्य समझता है। जिस प्रकार पोलिटिकल एजेन्ट इन देशी नरेशोंका अपमान करते हैं और जिस प्रकार ये लोग उनके सामने गिड़गिड़ाते हैं, वह दृश्य वास्तवमें अत्यन्त दयनीय है। दूसरा गुण जो समानरूपसे हमारे देशी नरेशोंमें पाया जाता है, वह है चरित्रहीनता। ऐसे-ऐसे राजे-महाराजे आज इस देशमें मौजूद हैं, जिनके कुकृत्योंका अगर विवरण दिया जावे, तो 'लन्दन-रहस्य' से कहीं भयंकर उपन्यास—नहीं, नहीं, वास्तविक घटनाओंसे भरे हुए ग्रन्थ—बन सकते हैं। मेरा तो इन राज्योंका जो कुछ भी अनुभव है, उससे तो मैं यही कह सकता हूँ कि संसार-भरके स्त्रियोंमें सबसे दु:खी जीवन इन राज्योंकी रानियोंका ही है। तीसरा गुण जो इन लोगोंमें पाया जाता है, वह है इनकी फिज़ूल खर्ची। यही नहीं कि ये लोग प्रतिवर्ष विदेशोंमें जाकर सब कर्मचारियों और सेक्रेटरी आफ्-स्टेट फार इंडियाकी आव-भगतमें लाखों रुपये व्यर्थमें नष्ट कर डालते है, परन्तु वहाँ भी अपनी वासनाओंकी तृप्तिके लिए ये लोग अपमान सहकर भी अपनी प्रजाका धन लुटाते हैं। इंग्लैण्ड तो इन लोगोंका महातीर्थ बन गया है।

खैर, इंग्लैण्डकी बात जाने दीजिए, उनके राज्यमें ही जब कभी वायसराय महोदयका आगमन होता है, तो उस वर्ष प्रजाके लिए मानो भयंकर दुर्भिक्ष ही पड़ जाता है। ऐसे बहुतसे छोटे राज्य हैं, जो वायसरायकी आव-भगतमें राज्यकी वार्षिक आयका आधेसे अधिक धन नष्ट कर देते हैं। बताइए, यदि राज्यकी वार्षिक आयका ५० फी-सदी तीन दिनमें नष्ट कर दिया जाय, तो वर्ष-भर तक राज्यकी क्या दशा रहेगी? इस फिज़ूल खर्चीका फल यह होता है कि कर्मचारियोंका वेतन चार-चार महीने तक नहीं मिलता। कर्मचारी रिश्वत लेकर गुज़ारा करते हैं। कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जहाँ अक्सर जुर्माना ही किया जाता है, कारागारका दंड कम दिया जाता है और जहाँके शासक स्वयं रिश्वत लेनेमें नहीं हिचकते। यदि जाँच करके देखा जाय, तो इन नरेशोंके व्यक्तिगत व्ययमें ही राज्यकी आधी आय समाप्त हो जाती है, फिर शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग-धंधों तथा और कार्योंके लिए कहाँसे धन आ सकता है? सवाल हो सकता है कि कुछ नरेश ऐसे भी हैं, जो संयमी, सदाचारी, प्रजा-पालक तथा स्वाभिमानी हैं। इसका उत्तर यही है कि वे लोग तो अपवाद स्वरूप हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या ये ७ करोड़ भारतीय इसी शासनके अन्दर रहकर अपना निर्जीव जीवन व्यतीत करते रहेंगे? यदि ब्रिटिश भारत स्वतंत्र हो गया, तो इन देशी राज्योंका प्रश्न तो और भी जटिल हो जायगा। इन नरेशोंके विषयमें यह विचारना कि ये प्रजातंत्रवादी भारतकी सत्ता अपने ऊपर भी स्वीकार करेंगे, स्वप्न-मात्र है।

नरेशोंकी यह पुकार कि 'जब तक वायसराय सम्राट्का प्रतिनिधि है, तभी तक हम उसकी सत्ताको स्वीकार करेंगे' एक बड़ा राजनैतिक महत्त्व रखती है। इसका अर्थ यह है कि भारतवर्षके दो राजनैतिक विभाग होंगे; एक ब्रिटिश भारत, दूसरा देशी भारत। ब्रिटिश अधिकारी इस बातका अनुभव करने लगे हैं कि भारतवर्षकी स्वाधीनताका आन्दोलन सफल अवश्य होगा। इसी लक्ष्यको सामने रखकर वे देशको दो विभागोंमें बाँट देना चाहते हैं। ब्रिटिश भारतका भाग्य तो भविष्य ही निर्णय करेगा, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देशी राज्योंको तो सर्वदाके लिए अपना क्रीत-दास बनानेका षड्यन्त्र चल रहा है। शायद इसी कारणसे वे देशी नरेश, जिन्होंने अपने राज्यमें राष्ट्रीयताके भावोंको पुष्ट करनेका प्रयत्न किया, सरकारके कोपके पात्र बन गये। वे देशी राज्य क्रमश: अंग्रेज़ी सरकारके स्तम्भ बनाये जा रहे हैं और ब्रिटिश

भारतमें यदि उनका प्रभुत्व कम हो भी गया, तो इन देशी-राज्योंमें तो उनका अटल अधिपत्य रहेगा। यह अवस्था भारतके राजनैतिक जीवनमें कितनी भयंकर होगी, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। खेद है कि अधिकतर नेतागण यह समझते हैं कि जब शासन-सूत्र हमारे अधिकारमें आ जायगा, उस समय ये नरेश जिस प्रकारसे अभी ब्रिटिश साम्राज्यकी सत्ताको अंगीकार करके उनकी चाटुकारितामें अपना समय व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार स्वतन्त्र भारतकी सत्ताको भी स्वीकार कर लेंगे। यह विचार उस अवस्थामें ठीक था, जब हमारे विरोधी इन नरेशोंको अभीसे जालमें फँसानेका प्रयत्न न करते, परन्तु देशी नरेश तो इतने मूर्ख हैं अथवा बना दिये गये हैं कि वे स्वतन्त्र-रूपसे कुछ समझ ही नहीं सकते। वे तो अंग्रेज़ कर्मचारियोंकी बातको ही वेद-वाक्य समझते हैं। यदि यह चाल सफल हो गई, तो भारत भविष्यमें विश्रृंखलित तथा निर्बल रहेगा, और अंग्रेज़ोंका प्रभुत्व बना ही रहेगा। इसका उपाय क्या है? देशी राजाओं तथा नरेशोंकी उपर्युक्त दशाको देखकर उनसे तो कुछ आशा करना व्यर्थ है; यदि आशा की जा सकती है, तो उनकी प्रजासे।

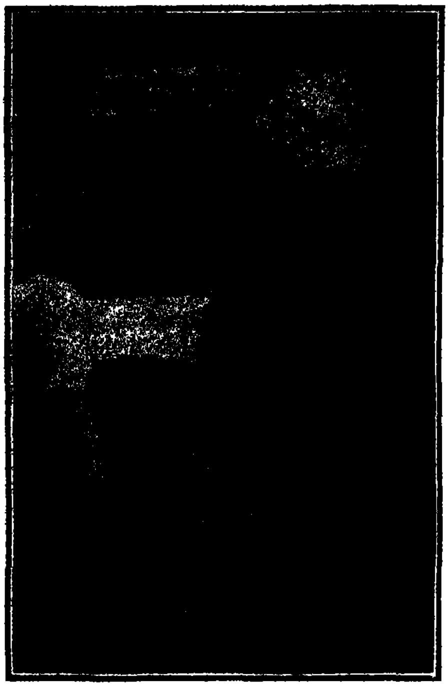
यदि देशी राज्योंकी प्रजामें राष्ट्रीयताके भावोंका समावेश हो सके, यदि वे संगठित भारतका लक्ष्य अपने सामने रख सकें, यदि उनके विचारमें सुदृढ़ भारतका आदर्श उपस्थित कर दिया जाय, तो आशा की जा सकती है कि जिस समय ब्रिटिश-भारत स्वतन्त्र होगा, उस समय यदि देशी नरेश भारतीय प्रजातन्त्रसे पृथक् रहनेका विचार भी करेंगे, तो उनकी प्रजाका प्रभाव उनको विवश कर देगा कि वे स्वतन्त्र भारतकी सत्ताको स्वीकार करें और उसके नियन्त्रणमें रहें। इसलिए जनताको तय्यार करना बहुत ही आवश्यक है। अभी तक राष्ट्रीय महासभाने देशी राज्योंके मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया है और न उस ओर अधिक ध्यान ही दिया है, परन्तु अब समय आ गया है, जब अखिल भारतीय कांग्रेसको देशी राज्योंके प्रश्नको भी अपने कार्यक्रममें सम्मिलित कर लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो सम्भव है कि देशी राज्योंकी विचार-धारा दूसरे ही प्रकारकी बन जावे। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि कांग्रेस देशी राज्योंमें भी आन्दोलन करके नरेशोंका विरोध करना प्रारम्भ कर दे। कभी-कभी, सम्भव है, यह भी करना होगा, परन्तु सबसे आवश्यक बात तो जनतामें राष्ट्रीयताके भावोंका समावेश करना है। अभी तक तो राष्ट्रीय नेताओंने देशी राज्योंको बिलकुल ही कार्यक्रमके बाहर रख छोड़ा है। यह स्थिति भविष्यके लिए हानिकारक होगी। क्या नेतागण इस ओर ध्यान देंगे?

कलकत्तेके सरकारी आर्ट-स्कूलकी प्रदर्शिनी

[लेखक :—डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी]

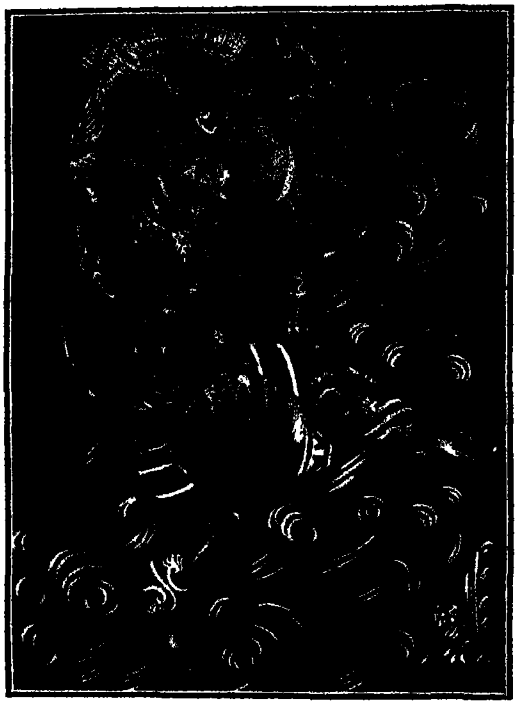
कलकत्तेके कला-संसारमें प्रतिवर्ष दो प्रधान घटनाएँ होती हैं; एक *इण्डियन सोसाइटी-आफ़्-ओरियंटल आर्ट्सकी*, और दूसरी सरकारी आर्ट-स्कूलकी वार्षिक प्रदर्शिनी। इन प्रदर्शिनियोंके सिवा कलाकी अन्य प्रदर्शिनियाँ बहुत कम होती हैं, और जो होती भी हैं, वे बहुत दिनोंके बाद। इण्डियन सोसाइटी आफ़्-ओरियंटल आर्ट्सका उद्देश्य हमारी राष्ट्रीय कलाओंका पुनरुत्थान करना है, अतः जो लोग यह नहीं चाहते कि कलाके क्षेत्रमें भी भारतवर्ष यूरोपका एक अंश बन जाय, *इण्डियन सोसाइटी उन लोगोंकी सहानुभूतिकी अधिक* हक़दार है। बात भी यह है कि इसकी प्रदर्शिनीमें लोगोंको प्रतिवर्ष श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री गगनेन्द्रनाथ टैगोर, श्री नन्दलाल बोस तथा अनेक कम प्रसिद्ध चित्रकारोंकी नई तसवीरें देखनेका मौक़ा मिलता है, इसलिए इस सोसाइटीका सम्मान अधिक है, जो उचित भी है। सरकारी आर्ट-स्कूलकी

प्रदर्शिनीमें भी ऊँचे दर्जेकी चीज़ें रहती हैं, और अक्सर उसकी प्रदर्शित चीज़ोंका चुनाव और सामंजस्य बहुत अच्छा होता



'रेलगाड़ीके दूसरी ओर'—चित्रकार, श्री इन्दु रक्षित

है, मगर फिर भी उसकी प्रदर्शिनीको कुछ लोग—कम-से-कम कला-प्रेमियोंका एक प्रधान अंश—बहुत अच्छी नहीं समझता। बात यह है कि इस प्रदर्शिनीका बहुतसा भाग स्कूलके विद्यार्थियोंकी कृतियोंसे भरा रहता है, और विद्यार्थीगण लोगोंकी दृष्टिमें वह सम्मान नहीं प्राप्त कर सकते, जो दक्ष उस्तादोंको प्राप्त है। दूसरी बात यह है कि इस प्रदर्शिनीकी सबसे बढ़िया चीज़ें यूरोपियन स्टाइलकी होती हैं, जिनके लिए समझदार जनतामें विशेष उत्साह नहीं। कम-से-कम बंगालके पढ़े-लिखे लोगोंकी उच्चश्रेणीमें अब विलायती ढंगकी कलाके प्रति बहुत उत्साह बाक़ी नहीं है, इसलिए सरकारी आर्ट-स्कूलकी प्रदर्शिनीको आकर्षक, विभिन्न रुचिपूर्ण और वर्ष भरकी सर्वोच्च बंगाली कलाका सच्चा प्रतिनिधि बनाना मुश्किल होता जाता है। प्रदर्शिनीको नौसिखिये विद्यार्थियोंके स्कूलके अभ्यासों या भारतीय चित्रकारोंके बनाये हुए यूरोपियन या अर्ध-यूरोपियन ढंगके प्राणहीन चित्रोंके समूहसे



'वीर हनुमान'—चित्रकार, श्री रेणु राय

ऊपर उठानेके लिए एक ऐसे व्यक्तिकी ज़रूरत थी, जिसमें कलाकी सच्ची रुचिके साथ-ही-साथ साहस और शक्ति भी हो। आर्ट-स्कूलके वर्तमान प्रिन्सपल श्री मुकुलचन्द्र दे ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने स्कूलकी प्रदर्शिनीमें नई जान डाल दी है। वे उसे विद्यार्थियों और नौसिखियोंकी प्रदर्शिनीसे बढ़ाकर एक ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तु बना रहे हैं, जो समस्त कला-प्रेमियोंको सन्तोष प्रदान करेगी। पिछली प्रदर्शिनी, जो बड़े दिनकी छुट्टियोंमें हुई थी, एक ऐसी प्रदर्शिनी थी, जिसमें सब प्रकारके नमूने मौजूद थे, और हम कह सकते हैं कि वह कलकत्तेके अच्छी-से-अच्छी कला-प्रदर्शिनियोंकी समानता कर सकती थी। प्रदर्शिनीमें स्कूलके लड़कोंकी तसवीरें अधिकांश संख्यामें थीं, जो उचित भी है। स्कूलके अध्यापकोंकी कृतियाँ भी अच्छी संख्यामें रखी गई थीं। इसके अलावा एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अनेक

बाहरी चित्रकारोंकी कलाके उत्कृष्ट नमूने भी प्रदर्शिनीमें प्रदर्शित थे। साथ ही कुछ पुरानी तसवीरें भी प्रदर्शनमें सम्मिलित थीं।



'माता' (काठपर खुदा हुआ चित्र)—चित्रकार, श्री रमेन्द्र चक्रवर्ती

प्रदर्शिनीमें ड्राइंग, पेंटिंग—जिनमें अधिकांश जल-चित्र (वाटर कलर) और कुछ तैल-चित्र (आयल पेंटिंग) थे—और लकड़ीपर खुदे हुए चित्र थे। प्रदर्शित वस्तुओंकी संख्या तीन सौ पचासके लगभग थी।

साधारण तौरपर विद्यार्थियोंका काम अच्छी श्रेणीका था, परन्तु खेद है कि उनकी कोई वस्तु असाधारण या विचित्र नहीं कही जा सकती। बहुतसे चित्रोंमें अजन्ताकी गुफाओंकी दीवालोंपर बने हुए चित्रोंका ढंग अख्तियार किया गया था और अनेक तसवीर राजपूत और मुग़ल-चित्रोंकी नक़लकी बनाई गईं थीं। राजपूत और मुग़ल ढंगपर बनाई हुई तसवीरोंमें कई बहुत सुन्दर थीं, जिन्हें देखकर पुराने चित्रोंकी याद आ जाती है, मगर यह बात कहनी पड़ेगी कि विद्यार्थियोंकी कल्पना और कृति—दोनों ही में सजीवताकी कमी है। उन लोगोंमें समझदारी और दृढ़ताके स्थानमें भावुकता अधिक दिखाई देती है। भारतवर्षमें पोस्टरकी कलाका



'चित्र' (Study)—चित्रकार, श्री अतुल बोस

आविर्भाव हुआ है, अतः इस विभागमें दर्शकोंको कुछ अधिक सजीवताकी आशा थी, लेकिन वह पूरी नहीं हुई। इस प्रदर्शिनीमें और बाहर भी लोगोंमें इस बातकी इच्छा दिखाई देती है कि अजन्ताकी कला और मध्य-कालीन हिन्दू-मूर्ति-कलाके कामुक अंशको पुनर्जीवित किया जाय—व्यापारके लिए भी और केवल कलाके लिए भी; परन्तु अब तक इस ओर जितना प्रयत्न किया गया है, वह उत्साहप्रद नहीं है। इसका प्रारम्भ उचित ढंगसे नहीं हुआ। उसे देखकर ऐसा मालूम होता है, मानो चित्रकार प्रेम-सम्बन्धी चित्रोंको कुछ ऊँचा स्वरूप देनेकी चेष्टा करता हो। प्राचीन भारतकी कलाके भीतरी अर्थको समझनेकी बड़ी कमी दिखलाई दी। दुर्भाग्यसे इस नासमझीने

विद्यार्थियों तथा बाहरी लोगों—दोनों ही की कुछ तसवीरोंको गम्भीर बनानेके स्थानमें थियेटरके तमाशेकी तरह बनावटी बना दिया। इसका यह कारण तो नहीं कि हम लोगोंके जीवनका दृष्टिकोण कुछ ऐसा बदल गया है कि हम लोग दिन प्रति दिन अतीतके भावोंको समझनेमें असमर्थ होते जाते हैं? प्राकृतिक दृश्यों (Landscapes) के चित्र अलबत्ता बहुत अच्छे थे।



'लक्ष्मी'—चित्रकर्त्री, श्रीमती सुनयनी देवी

विद्यार्थियोंकी कृतियोंके दो चित्र हम यहाँ प्रकाशित करते है। और भी कई चित्र ऐसे थे, जिन्हें प्रकाशित करानेकी हमारी इच्छा थी। श्री इन्दु रक्षितका बनाया हुआ 'रेलगाड़ीकी दूसरी ओर' नामक चित्र बड़ा मनोरंजक है। इसमें वर्तमान जीवनका एक दृश्य नये भारतीय ढंगकी चित्रकलामें सफलता-पूर्वक दिखाया गया है। इस चित्रमें इस युवतीकी आँखोंका, जो इस ओर ताक रही हैं, चित्रण ही चित्रकी जान है। इन आँखोंमें चित्रकारने चित्रका समस्त सौन्दर्य, भाव-व्यंजना और प्रेरणा भर दी है। श्री रेणु रायके 'वीर हनुमान' भी एक विचित्र 'हनुमान' हैं। हनुमानजी या महावीरजी हिन्दुओंके देवताओंमें एक लोकप्रिय देवता हैं। उनकी समस्त मूर्तियाँ और चित्र केवल दो ही रूपमें मिलते हैं; एक तो भक्त-वेशमें, जिसमें वे भगवान् रामचन्द्रके चरणोंमें नत बैठे हैं, और दूसरे वीर-वेशमें, जिसमें वे एक हाथसे अपना भीमकाय गदा घुमाते हैं और दूसरे हाथसे



'संथालोंका नृत्य'—चित्रकार, श्री रमेन्द्र चक्रवर्ती

लक्ष्मणजीको पुनः जिलानेके लिए संजीवनी बूटीवाला गन्धमादन पर्वत उठाये हुए हैं। भारतवर्षके बाहर इंडोचीन और इंडोनेशियामें हनुमानजीकी जो मूर्तियाँ या चित्र मिलते हैं, उनमें वे किसी राक्षसपर कूदते हुए दिखाये गये हैं। उन चित्रोंमें उनकी बानरी फुर्ती और उनके चेहरेपर एक ऐसी भयंकर मुस्कराहट होती है, जिसे देखकर उनके प्रतिद्वन्द्वीका दम सूखता है। भारतीय कलामें हनुमानजीके इन दोनों चित्रोंमें ऐसी लौकिकता है, जो सजीव है और सरल भी।

श्रीयुत रायका चित्र बिलकुल ही नया है। यद्यपि उन्होंने प्रचलित प्रथाका कुछ उल्लंघन भी किया है और चित्रमें



'बंशी'—चित्रकार, श्री यामिनी राय

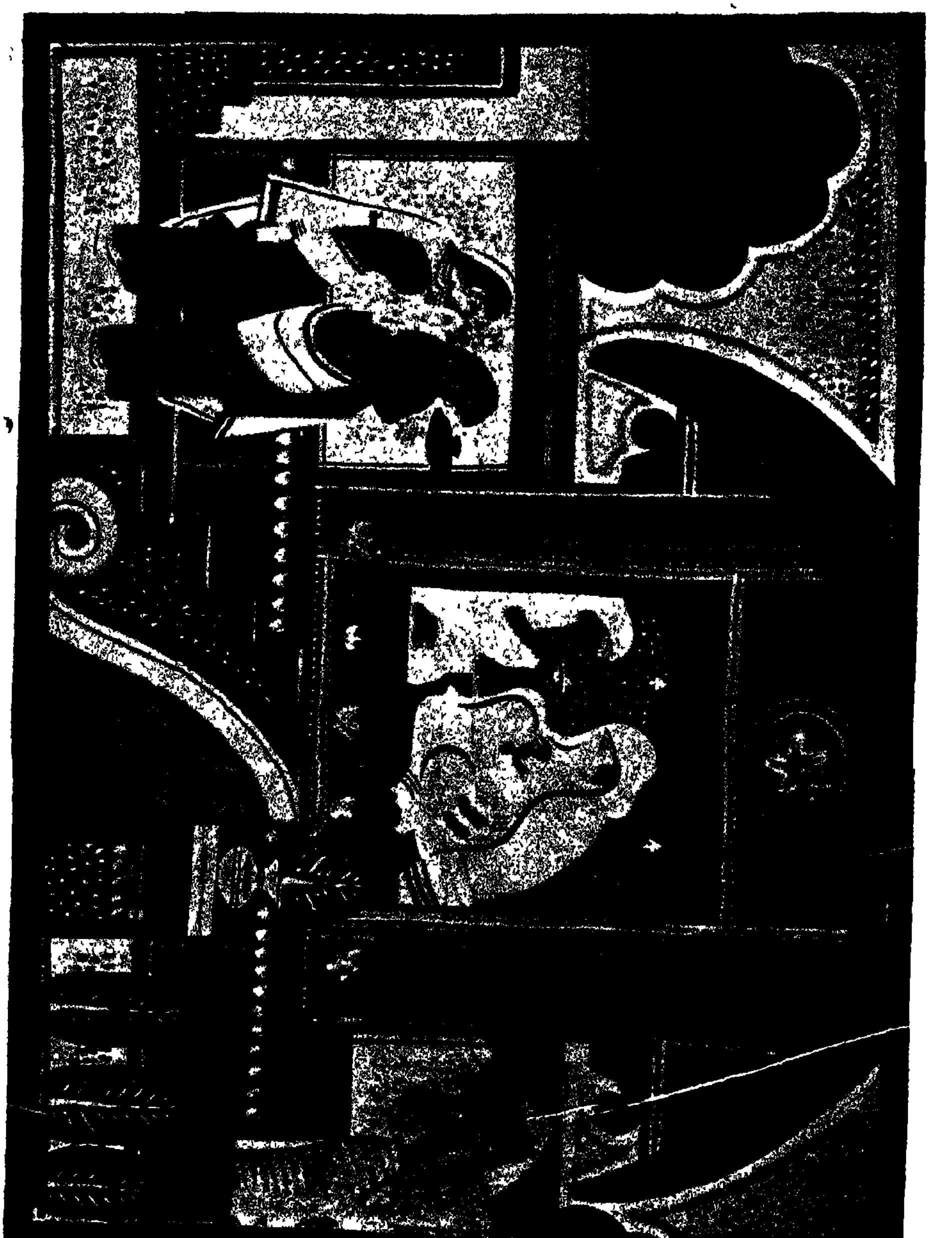
विद्रूपकी ओर भी कुछ झुकाव मालूम होता है, फिर भी वह काफ़ी सजीव है और उसकी स्वाभाविकता प्रत्यक्ष है। चित्रमें विद्रूपका भाव इतना नहीं है, जिससे हनुमानजीके प्रति — जिन्हें हम लोग बचपनसे ही श्रद्धासे देखते आये हैं—हमारी भक्तिमें कुछ कमी उत्पन्न हो सके। चित्रमें हनुमानजीकी पेशियां और पुट्ठे ऐसी अच्छी तरह प्रदर्शित किये गये हैं, जिनसे उनकी असीम शक्तिके प्रति चित्रकारके प्रशंसात्मक भाव सहज ही में प्रकट होते हैं।

अध्यापकोंकी बनाई हुई जो तसवीरें प्रदर्शित की गई थीं, उनमें श्री अतुल बोसके दैनिक जीवन-सम्बन्धी चित्र अपना अलग स्थान रखते थे। उनके चित्रोंमेंसे एक यहाँ दिया जाता है। इस चित्रमें चित्रकार एक व्यक्ति विशेष और उसके हृदयगत भावोंको बड़ी सजीवतासे चित्रित करनेमें सफल हुआ है, जिससे चित्र काफी अच्छा कहा जा सकता है। श्री रामेन्द्र चक्रवर्तीके अनेक चित्र थे। उनमें



'जावाका नर्तक अभिमन्युके वेशमें'—चित्रकार, मि० स्टोविट्स

बुद्ध भगवानके जीवनको प्रदर्शित करनेवाली जल-चित्रोंकी एक चित्रमाला थी। इसके अतिरिक्त, दो बड़े-बड़े चित्र भी थे; जिनमेंसे एकमें तो 'बुद्ध-जन्म' बड़े रूपमें प्रदर्शित किया गया था, और दूसरेमें 'सथालोंका नाच'। श्री चक्रवर्तीकी अन्य कृतियोंमें लकड़ीपर खुदे हुए चित्रोंकी एक सीरीज़ भी बड़ी सफल रही। इस सीरीज़में ग्राम्य जीवनके दृश्य चित्रित किये गये हैं। श्री चक्रवर्ती भारतीय कलाकी भावनाको जैसे अच्छी तरह समझते हैं, जो उनकी कृतियोंसे प्रकट है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनका भविष्य उज्ज्वल है। उनके काठपर खुदे हुए चित्र भारतमें इस प्रकारके चित्रोंमें सबसे उत्तम कोटिके हैं। उनकी रेखाओंकी सजीवता और थोड़ी ही चेष्टामें बहुत-कुछ चित्रित करनेका गुण उनके उस्तादी हाथकी शक्तिको प्रकट करता है और



'चैतन्य-जन्म'—चित्रकार, श्री नन्दलाल बोस

इसी चित्रमें इस कथाका अगला भाग भी अंकित है। हम देखते हैं, चारों भाई एक क़तारमें एकके पीछे एक आ



'वृक्षोंके नीचे'—चित्रकर्त्री, श्रीमती मारजोरी एडमन्डसन

रहे हैं। द्रौपदी पीछे गिरकर मर गई है, मगर उनका चलना जारी है। चित्रमें और थोड़ा आगे, एक पहाड़के पीछे युधिष्ठिर और उनका स्वामिभक्त कुत्ता दिखाई दे रहा है। यह कुत्ता चित्रमें इसी स्थानपर पहले-पहल आता है। इसके बाद और आगे—बहुत आगे, एक काले बिन्दुके समान यह मनुष्य और श्वान—दोनों बर्फमें मिले हुए दिखाई देते हैं। बोस महाशयने इस महान् कथाको बड़ी उत्तमता-पूर्वक दिखाया है।

काठपर खुदाईके कुछ चित्रोंके अतिरिक्त श्रीयुत बोसकी एक और तसवीर भी प्रदर्शिनीमें थी। यह तस्वीर छोटी और एकरंगी है। इसका नाम है 'चैतन्य-जन्म'। यद्यपि यह चित्र पश्चिमीय बंगालकी ग्राम्य कलाके ढंगका है, परन्तु उसका सौन्दर्य और सजीवता चित्रकारकी निजी विशेषता है। चित्रमें पूजाकी सामिग्री लिए हुए मूर्तियोंकी कोमल सुन्दरता बड़ी आकर्षक है। यद्यपि चित्रमें विशेषकर सजावटकी ही प्रधानता है, मगर उसमें मानवी अंशका बड़ी विचित्रता-पूर्वक सामंजस्य किया गया है। इस चित्रमें ऐसा मालूम होता है कि बंगालका एक समूचा ग्रामीण घर उठाकर रख दिया गया हो—कोई भी बात नहीं छूटी है। कच्ची दीवारसे घिरा हुआ आँगन है, जिसमें बाईं ओर दरवाज़ा लगा है। दीवारके और दरवाज़ेके ऊपर रक्षाके लिए पतलीसी छपरिया रखी है। आँगनके एक ओर छप्पर आच्छादित एक अकेली झोंपड़ी है, जिसके आगे दालान है। झोंपड़ेकी दीवारें बांसके टट्टरकी बनाई गई हैं। आँगनमें पेड़ हैं, और एक छोटेसे चबूतरेपर एक गमलेमें तुलसीका पवित्र वृक्ष लगा है। रंगकी गम्भीरता भी देखने योग्य है। चित्रमें वही रंग इस्तेमाल किये गये हैं, जो बंगालके ग्रामीण चित्रकार व्यवहार करते हैं।

प्रदर्शिनीमें महिला-चित्रकर्त्रियोंके भी कई चित्र प्रदर्शित किये गये। श्रीमती सुनयनी देवीके चित्रोंकी सभीने तारीफ की है। ये चित्र ग्राम्य कलाके परिवर्तित स्टाइलमें हैं, जो उनकी निजी विशेषता है। उनका लक्ष्मीका चित्र, मय उनके जवाहरातके डिब्बेके अपनी सहज सरलताके कारण बड़ा सुन्दर है। यह चित्र यहाँ प्रकाशित किया जाता है। श्रीमती रानी देवी और श्रीमती प्रकृति देवीके भी अनेक चित्र प्रदर्शित किये गये थे। उनमेंसे कुछ तसवीरोंकी उत्कृष्टता आश्चर्य-जनक है। यद्यपि वे आजकलके मौजूदा भारतीय कलाके ढंगकी हैं, मगर अपने निरालेपन और ताज़गीके कारण वे साधारण तसवीरोंसे कहीं ऊँची हैं। हम श्रीमती सुनयनी देवीका एक चित्र यहाँ देते हैं। चित्रमें एक ग्राम्य दृश्य अंकित किया गया है। एक वैरागी एक चित्रपट दिखला रहा है। चित्रपटमें मनसा नामी साँपोंकी देवी अंकित की गई हैं, जिन्होंने बेहुलाके द्वारा पृथ्वीपर अपनी पूजा चलाई। बेहुलाने अपनी पति-भक्ति और पातिव्रत-धर्मके बलसे अपने पतिको पुनः जीवित कर दिया था बेहुलाकी कथा बंगालकी



'दीवारपर अंकित चित्र'—चित्रकार, श्री मनीन्द्रदास गुप्त

मध्यकालीन कथाओंमें सबसे सुन्दर है। चित्रकी खूबी उसकी सादगी और सिधाईमें है।

श्रीमती मारजोरी एडमन्डसनका अंकित किया हुआ 'वृक्षोंके नीचे' नामक जलचित्र एक छोटी, परन्तु बढ़िया तसवीर है। तसवीर बड़ी सुन्दर और सजीव है। उसके देखनेसे केवल यही नहीं मालूम होता कि वह किसी उस्तादी क़लमसे निकली है, बल्कि यह भी मालूम होता है कि चित्रकर्त्रीमें इस बातकी असाधारण समझ है कि प्राकृतिक दृश्योंके चित्रोंमें किन-किन बातोंकी ज़रूरत है, उनमें किन-किन बातोंपर विशेष ज़ोर देना चाहिए। यदि श्रीमती एडमन्सनके और भी चित्र प्रदर्शिनीमें होते, तो अच्छा था।

श्रीयुत मनीन्द्र दास गुप्तका बनाया हुआ 'कार्टून फार मूरल पेंटिंग' या दीवारपर बनानेके चित्रका 'डिज़ाइन' नामक चित्र ठेठ यूरोपियन ढंगका चित्र है। केवल उसकी मूर्तियाँ आदि भारतीय हैं। पाश्चात्य कलाकी प्रथाका इस चित्रमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है, परन्तु चित्रकार महाशयकी मूर्तियोंका दृश्य थियेटरके पात्रोंके समान है। यूरोपके उन्नीसवीं सदीके चित्रकारोंमें यही दोष था, जिसे श्री गुप्त त्याग नहीं सके हैं। श्रीयुत जामिनी रायका 'वंशी' नामक चित्र इसके बिलकुल विपरीत है। इसमें श्रीयुत रायने, जैसा कि बंगाली या अन्य ग्राम्य कलाकारोंका दस्तूर है, केवल दो दिशाएँ दिखाकर ही सन्तोष कर लिया है। उनके चित्रमें यद्यपि सुन्दरताके स्थानमें कुछ रुक्षता है, परन्तु उसमें वास्तविकता और दृढ़ता है। अपनी शिक्षाके अनुसार मि० राय पाश्चात्य ढंगके चित्रकार हैं, परन्तु उन्हें आधुनिक पाश्चात्य कलासे ही सन्तोष नहीं हुआ, अत: उन्होंने नवीन भारतीय कलाके ढंगका आश्रय लिया, और अब वे प्राचीन ग्राम्य कलाकी सरलता, स्वाभाविकता और दृढ़ताको ग्रहण करनेके लिए उसपर जा पड़े हैं। कुछ मास हुए श्री मुकल देके प्रबन्धसे श्रीयुत रायके चित्रोंकी एक प्रदर्शिनी स्कूलमें हुई थी। उसमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि प्राचीन प्रथाके अनुसार और पुराने ज़मानेके रंगोंमें बनाई हुई, उनकी तसवीरें कैसे ऊँचे दर्जेकी हैं। इस चित्रके लड़केको देखकर पुराने समयकी मिश्रकी कलाकी दृढ़ रेखाएँ याद आ जाती हैं। फिर भी चित्र निःसन्देह भारतीय है। इस चित्रका नाम तो 'कृष्ण' भी दिया जा सकता था।



'बसेरा'—चित्रकार, श्री सोभागमल गहलौत

एक छोटा नयनाभिराम चित्र श्री सुभागमल गहलौतका बनाया हुआ 'बसेरा' नामक था। इसमें एक वृक्षकी ओर बसेरेके लिए जाते हुए कई कबूतर दिखलाये गये हैं। यह चित्र आधुनिक भारतीय ढंगकी चित्रकलाका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। श्री गहलौत शान्ति-निकेतनके कला-भवनके विद्यार्थी हैं।

प्रदर्शिनीमें स्टोविट्स नामक एक अमेरिकन चित्रकारके अंकित किये हुए कुछ जावाके चित्र थे। उनमेंसे एक यहाँ प्रकाशित किया जाता है। श्री मुकुल दे की प्रेरणासे स्टोविट्सके बहुतसे चित्र गत वर्ष अजायबघरमें प्रदर्शित किये गये थे। वे तमाम चित्र जावा-द्वीपके सम्बन्ध ही में थे, और उन्होंने अच्छा प्रभाव डाला था। चित्रोंके समस्त पात्र बड़े चमकदार रंगीन वस्त्र धारण किये हुए हैं, और स्टोविट्स इस बातमें काफ़ी दक्ष हैं कि रंगका वहाँ कैसा व्यवहार करना चाहिए, परन्तु उनके चित्रोंमें केवल कपड़ों और रंगोंका ही सौन्दर्य नहीं है। उनमें प्रत्येक चित्रका व्यक्तित्व भी दूरसे चमकता है, जो अपने उपयुक्त Back ground और जावाके जातियोंकी विशेषताओंके द्वारा चित्रकारकी विलक्षण प्रतिभाका परिचय देता है।

जावाके नाटकीय पात्रोंका बनाव, सिंगार और नाच—सब नाटकीय ही है, परन्तु उसमें गँवारूपन नहीं है। स्टोविट्सके बनाये हुए नाटकके चित्र भी दिखावटी और अस्वाभाविक नहीं है।

सम्पूर्ण कला प्रेमी जनताकी ओरसे श्रीयुत मुकुल दे धन्यवादके पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने सर्वसाधारणके लिए प्रदर्शिनीमें ऐसे उत्तम मनोरंजनकी सामग्री एकत्रित की थी। आशा है कि आगामी वर्षोंमें भी उनका यह प्रयोग जारी रहेगा, जिससे न केवल उनके विद्यार्थियोंकी उच्च कला-पूर्ण रुचिको आनन्द प्राप्त होगा, बल्कि सर्वसाधारण भी उससे लाभ उठायेंगे।

ज़रूरी चीज़ें

जार्ज और शर्का एक दूसरेसे बड़ा प्रेम करते थे। यह प्रेम उन्मत्तताकी हद तक पहुँच गया था। आखिर दोनोंका विवाह हो गया। फागुनका महीना था, और ऋतु बड़ी सुन्दर थी। दोनों अपने विवाहकी रजिस्ट्री करानेके लिए वैवाहिक विभागके रजिस्ट्रारके दफ्तरमें गये। जो थोड़ीसी देर उन्हें वहाँ लगी, वह दोनोंको—युवक और युवतीको—असह्य मालूम हुई। क्षण-भर कल्पके समान बीता। जल्दी ही आफिससे निकलकर दोनों सड़कपर आ गये।

दुबले-पतले संकुचित वक्षस्थलवाले शान्तिकी मूर्ति जार्जने अपनी पत्नी शर्कासे पूछा—"कहाँ चलनेका विचार है?"

लम्बतड़ंगी सुन्दरीने, जो प्रदीप्त अग्निके समान जाज्वल्यमान थी, एक फूलसे, जो उसके केशोंमें बँधा हुआ था, अपनी नाकको ऊपर और नथनोंको ज़रा फुलाकर बड़े आवेगसे पतिदेवके कानमें कहा—"और कहाँ चलेंगे? वहीं बाज़ार, ज़रूरी चीज़ें खरीदने।"

जार्जने मूर्खतापूर्ण हँसीके साथ कहा—"अपने कमरेका सामान खरीदनेके लिए?" और ऐसा कहकर अपनी टोपी, जो ज़रा टेढ़ी हो गई थी, सीधी कर ली। उस समय बाज़ारमें ज़ोरकी हवा चल रही थी। दूकानोंपर रंग-बिरंगे शाल-दुशाले रखे हुए थे। भिन्न-भिन्न ग्रामोफोन अपनी-अपनी तान अलग-अलग अलाप रहे थे। भगवान भुवन-भास्करकी किरणें दूकानोंके काँचोंपर पड़ रही थीं। इस दम्पतिकी आँखोंके सामने तरह-तरहकी नयनाभिराम मनोहर चीज़ें बिक्रीके लिए उपस्थित थीं।

शर्काके कोमल कपोलोंपर लज्जाका भाव उदित हो गया। उसके माथेपर पसीनेकी बूँदें झलक आईं। बिखुरे हुए केश-समूहसे फूल गिर पड़ा, और उसके कमलनयन आश्चर्य तथा हर्षसे विकसित हो गये। उसने जार्जकी भुजाको अपने हाथोंसे पकड़ लिया और अपने होठोंको दाँतों तले दबाती हुई बाज़ारमें आगे बढ़ी।

फिर रूँधे हुए कण्ठसे वह बोली—"हाँ, तो पहले मुलायम ऊनी चादर खरीद लो।"

दूकानदार खूब चिल्ला रहे थे, चारों ओर गुल हो रहा था। दम्पतिने दो चादर खरीदीं। एक लाल रंगकी थी और दूसरी नीली रंगकी। फिर शर्का बोली—"हाँ, तो अब मोज़े खरीदो, जिसकी धारी लाल हो और उनपर अक्षर लिखे हुए हों, जिससे कोई चोरी न कर सके।"

दो जोड़ी मोज़े खरीदे गये; एक पतिके लिए, दूसरा पत्नीके लिए। शर्काकी आँखें चमकने लगीं।

"हाँ, अब तौलिये खरीदो, जिनपर खूब काम किया हुआ हो।" ऐसा कहते हुए शर्काने अपना सिर पतिदेवके कंधेसे लगा दिया। कामदार तौलिये भी खरीदे गये। इन सबके अतिरिक्त, चार कम्बल लिए गये, एक अलार्मकी घड़ी, एक दर्पण, एक दरी, जिसपर बाघकी तसवीर बनी थी, दो कुर्सियाँ, जिनमें पीतलके पहिये थे और ऊनके कितने ही गोले भी खरीदे गये।

एक पलंग और कितनी ही दूसरी चीज़ें खरीदनेका भी विचार था, लेकिन काफी पैसा पास नहीं था। सामानसे लदे हुए दोनों प्राणी घर लौटे। कुर्सियाँ जार्जके सिरपर रखी हुई थीं और तह की हुई चादरें उसके कन्धेपर ठोढ़ीके नीचे लटक रही थीं। पसीनेकी बूँदें उसके सफेद माथेपर झलक रही थीं, और उसके पिचके हुए गालोंपर भी पसीना आ रहा था। उसकी आँखोंके नीचे काली छाया स्पष्ट दीख पड़ती थी। उसका मुँह अधखुला था और भीतरसे खराब दाँत दीख पड़ते थे। वह बोझके मारे मानो गिरा पड़ता था।

नमीसे परिपूर्ण अपने घरमें आकर जार्जने अपनी टोपी उतार फेंकी, आरामसे एक लम्बी साँस ली और खाँसना शुरू किया। शर्काने पलंगपर तमाम चीज़ें डाल दीं, फिर चारों ओर देखा और प्रेमके साथ अपने लाल हाथोंसे पतिदेवको थपथपाना शुरू किया।

कठोरताका बहाना करते हुए उसने आर्जसे कहा—"बस, बस, बहुत खाँस चुके, अब रहने दो, इसे खतम करो, नहीं तो तपेदिक़से मर-मिटोगे। अब तुम मुझे ब्याह लाये हो। हाँ, मैं सच कहती हूँ।" ऐसा कहकर उसने अपने लाल गाल आर्जके चुद कन्धोंसे लगा दिये।

सन्ध्या समय अतिथियोंका आगमन हुआ। विवाहका भोज था। बड़े गौरसे और सम्मान-पूर्वक उन लोगोंने नये सामानको देखा, और उसकी ख़ूब तारीफ़ की। दो बोतल शराबकी उड़ा गये, थोड़ा-बहुत खाया-पीया और हारमोनियमकी तान-में-तान मिलाकर नाचे-गाये और फिर घरको चले गये। सारा कार्यक्रम प्राचीन परिपाटीके अनुसार पूर्ण हुआ। पड़ोसियोंने कहा—"विवाह हो तो ऐसा हो! क्या शान्ति-पूर्वक और शिष्टाचारकी सीमाके भीतर ही सारा काम हुआ है।"

जब अतिथि चले गये, तो शर्का और आर्जने फिर तमाम चीज़ोंको एक बार देखा और उनकी प्रशंसा की। शर्काने कुर्सियोंको अखबारोंके कागज़ोंसे ढक दिया और दूसरी चीज़ोंको सन्दूक़ और तालेमें बन्द कर दिया।

आधी रातके वक्त शर्काकी नींद खुली। कुछ फ़िक्रके साथ उसने अपने पतिको जगाया—'अरे आर्ज' ओ आर्ज सुनते हो? उठो तो सही। बड़ी भूल हुई। अगर हम वह बसन्ती रंगकी चादर लाते, तो अच्छा होता। मोज़ोंपर जो धारियाँ हैं, वे उल्टी निकलीं, यह भी हमारी गलती हुई। उस वक्त हमें नहीं सूझा। अगर वे कत्थई रंगके होते, तो ठीक होता। वह सुन्दर पलंग तो हम लाये ही नहीं, क्या उम्दा पलंग था।"

सवेरा होनेके बाद आर्जको घरसे आफिसके लिए विदा करके शर्का अपने पड़ोसियोंके यहाँ गई। जानेका उद्देश्य था अपने विवाहके विषयमें बातचीत करना। पाँच मिनट तक तो शिष्टाचारके तौरपर उसने पतिके स्वास्थ्यके विषयमें चर्चा की—"क्या करूँ, उनकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है। उन्हें कुछ पचता नहीं है इत्यादि।" फिर अपने नये लाये सामानकी चर्चा करना शुरू किया। पड़ोसिनोंको वह अपने कमरेमें बुला लाई और सन्दूक़ खोलकर उन्हें अपनी चीज़ें दिखलाना शुरू किया।

चादर दिखलाते हुए कहा—'क्या करूँ, बड़ी ग़लती हुई। अगर बसन्ती रंगकी चादर लाती, तो क्या ही अच्छा होता! मुझ अभागीको यह बात तब नहीं सूझी।" ऐसा कहते हुए शर्काके नेत्रोंसे निराशा मानों टपकने लगी।

पड़ोसिनोंने साज-सामानकी ख़ूब तारीफ़ की, पर एक बुढ़िया उनमें बड़ी चंट निकली। वह किसी अध्यापककी पत्नी थी। वह बोली—"बेटी, यह सब तो ठीक है, पर तुम्हारे पतिकी खाँसी बड़ी बुरी है। उसकी आवाज़ हमें अपने घरमें सुनाई पड़ती है। ज़रा इस ओर ध्यान देना, नहीं तो यह मर्ज़ बड़ा खराब है। हाँ, न जाने क्या-से क्या…"

शर्काने जान-बूझकर कठोरतासे उत्तर दिया—"वह कुछ नहीं, जो तुम्हें डर है, सो बात नहीं।" यह बात उसने कह तो दी, पर उसका हृदय काँपने लगा। मन-ही-मन कहने लगी—"कोई चिन्ता नहीं, मैं आर्जको ख़ूब बादामका हलुआ खिलाऊँगी। खाते तो हैं ही नहीं। पेट भरके खावें तो सही, फिर देखूँ कैसे बीमार पड़ते हैं।"

महीना-भर बड़ी मुश्किलसे कटा। जब तनख्वाह मिली, तो जान-में-जान आई, पर तनख्वाह मिलते ही दोनों आदमी फिर बाज़ारको चल दिये। फिर बसन्ती रंगकी चादर खरीदी गई और गृहस्थीके लिए निहायत ज़रूरी चीज़ें, जिनके बिना काम ही नहीं चल सकता था, खरीदी गईं। टिक-टिक करनेवाली घड़ी खरीदी गई। कंधेपर डालनेके लिए शाल खरीदे गये। गुलदस्ता रखनेके लिए एक अत्युत्तम गुलदान लिया गया। भूरे रंगके मोज़े लिए गये। चीनी मिट्टीका एक कुत्ता भी लिया गया, जिसकी पीठपर रंग-बिरंगे चिह्न थे। एक ऊनी दुशाला लिया गया और हरे रंगका ट्रंक और उसमें बाजे बजानेवाला ताला। घर लौटकर शर्काने सब चीज़ें नये सन्दूक़में रख दीं और फिर ताला लगा दिया। तालेने लगते ही बाजा बजाया।

रातके वक्त फिर शर्लाकी नींद खुली और उसने अपने गरम गालोंको आर्जके पसीनेसे तर माथेपर रखकर बड़े धीरेसे कहा :—"ए सुनते हो या नहीं? प्यारे जार्ज! अरे, बड़ी गलती हुई। नीले रंगकी चादर बड़ी अच्छी थी। भूल गये, उस वक्त यह बात न सूझी!"

इसी तरह कई महीने बीत गये। गरमियाँ आ गईं। एक दिन शर्लाने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक अपनी पड़ोसिनोंसे कहा—"मेरे पतिने छुट्टी ली है। सबको तो पन्द्रह दिनकी छुट्टी मिली है, पर मेरे पतिको उन्होंने डेढ़ महीनेकी छुट्टी दे दी है। और मज़ेकी बात तो यह है कि छुट्टीके साथ वेतन और भत्ता भी मिलेगा। हम लोग फौरन ही जायँगे और एक लोहेका पलंग खरीदेंगे। यह तो ज़रूरी चीज़ है ही!"

उसी बुढ़ियाने—अध्यापक महोदयकी चतुर पत्नीने—केपचीमें आलू उसेते हुए फिर बड़ी गम्भीरता-पूर्वक कहा—"मैं तो तुम्हें यही सलाह दूँगी कि तुम इन्हें किसी अच्छे सैनीटोरियमको ले जाओ। अगर तुमने देर की, तो फिर खेर नहीं, न जाने क्या-से-क्या हो जाय।"

शर्लाने कुछ नाराज़-सी होकर कहा—"सो उन्हें कुछ नहीं होनेका। सैनीटोरियम क्या उनकी मुझसे भी अच्छी देख-भाल कर सकता है? मैं उन्हें मुर्गीका गोश्त खिलाऊँगी, हाँ, खूब पेट-भरके ठसाठस, फिर देखें, तो क्या होता है!"

शामको फिर दोनों जने बाज़ार गये और एक ठेला-भरके चीज़ें मोल ले आये। जार्ज ठेलेको ठेलता जाता था और शर्ला उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी। पलंगको देखकर वह मन-ही-मन मुग्ध हो रही थी। बेचारे जार्जको बार-बार खांसी आती थी, और उससे ठेला ठिलता भी बड़ी मुश्किलसे था। नीले रंगकी चादर भी लाई गई थी। जार्जकी खाँसी रुकती नहीं थी। उसके बैठे हुए माथेपर पसीनेकी बूँदोंकी माला-सी बन गई थी।

रातके वक्त शर्लाकी नींद फिर खुली। बड़े गम्भीर विचार उसे तंग कर रहे थे, और इससे निद्रा नहीं आती थी। वह फिर उठी और जार्जके कानके पास जाकर बोली—"ए! सुनते हो या नहीं? बड़ी भूल हुई। वह भूरे रंगकी चादर बड़ी सुन्दर थी। हाँ, भूरे रंगकी और उसकी कोर गुलाबी रंगकी थी। कैसी बढ़िया चादर थी। भाग फूट गये, जो वह चादर लेना भूल गई।"

शरदऋतुमें एक दिन जार्ज टहलता हुआ दीख पड़ा। शायद यह उसका अन्तिम बार टहलना था। ढीले ढाले ढंगसे वह चल रहा था। पैर कहीं रखता था और वे पड़ते कहीं थे। चेहरेपर केवल उसकी लम्बी नाक ही दृष्टिगोचर हो रही थी। पतली-लम्बी टाँगे चौड़े पाजामेमेंसे निकली पड़ती थीं। वह पुरानी जाकट पहने हुए था। छोटीसी टोपी सिरपर रखी थी। बाल माथेपर आ रहे थे और माथा पसीनेसे तर था।

लड़खड़ाता हुआ और अपने जूतोंको कीचड़से बचाता हुआ वह चल रहा था।

उसके पीले होंठोंपर एक मुस्कराहट थी, जो निर्बलता, प्रसन्नता तथा शान्ति प्रकट करती थी।

घर आकर जार्ज खाटपर गिर पड़ा। शीघ्र ही डाक्टर बुलाया गया। शर्ला फौरन ही बीमा कम्पनीके आफिसपर बीमारीका भत्ता लेनेके लिए जा पहुँची। अब शर्लाको अकेले ही बाज़ार जानेका कठिन कर्तव्य पालन करना पड़ा। गई और वहांसे भूरे रंगकी चादर खरीद लाई! फिर उसे चुपकेसे सन्दूकमें रख दिया।

जार्जकी तबीयत खराब होती गई। जाड़ा आया। ज़ोरका तुषार पड़ा। वायुमण्डलमें कुहरा छा गया। अध्यापक और उनकी पत्नीने आपसमें काना-फूसी की और शीघ्र ही एक दूसरा डाक्टर बुलाया गया। डाक्टर साहब पधारे। उन्होंने मरीज़को देखा, और फिर कारबोलिक साबुनसे अपने हाथ धोये। शर्ला उस समय धुएँसे भरे रसोईघरमें मुर्गीका गोश्त बना रही थी और उसकी आँखोंमें आँसू थे।

अध्यापककी स्त्रीने आश्चर्यके साथ कहा—"तुम कर क्या रही हो? क्या उन्हें मार डालना चाहती हो? भला,

वे अब मुर्गीका गोश्त और उरदकी पीठीके लड्डू खायँगे ? तुम भी अजीब पगली हो।"

डाक्टरने हाथ धोते हुए बड़े रूखेपनसे कहा—"अब वे चाहे जो खा सकते हैं।"

शर्लाने रोते हुए कहा—"हाँ, ठीक तो है, और उरदकी पीठीकी लड्डू इन्हें नुकसान ही क्या कर सकते हैं ? इन्हें कुछ नहीं होनेका।"

शामके वक्त सफाई विभागके आदमी आये और उन्होंने सब कमरोंमें फिनाइलका पानी छिड़का। फिनाइलकी बदबू सारे घरमें व्याप्त हो गई। रातके वक्त शर्लाकी नींद फिर खुली। एक अकथनीय आशंकासे उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था। वह जार्जके पास गई और बोली—"ए! सुनते हो या नहीं ? उठो तो! मेरी बात तो सुन लो······"

जार्जने कोई जवाब नहीं दिया! उसके प्राणोंने ही जवाब दे दिया। शर्ला खाटपरसे कूद पड़ी और नंगे पैर ही भागी। रातके तीन बजे थे। अध्यापक महोदयके दरवाज़ेपर जाकर वह गिर पड़ी। बड़े दु:खके साथ रोती हुई कह रही थी—"अरे चल बसे! मुझ अभागिनको अकेले छोड़कर चल बसे!! करम फूट गये मेरे!" शर्लाने रोना-पीटना शुरू किया। पास-पड़ोसके स्त्री-पुरुषोंने अपनी-अपनी खिड़कियोंसे झाँककर यह हृदयविदारक दृश्य देखा। शीतकाल था। टिम-टिमाते हुए तारोंका मन्द प्रकाश पालेपर पड़ रहा था।

सवेरेके वक्त पालतू बिल्ली आई। वह शर्लाके कमरेके दरवाज़ेपर गई। थोड़ी देर तक चौखटपर खड़ी रही, फिर उसने भीतर देखा और देखते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। शीघ्र ही वह उल्टी लौट आई।

शर्ला बीच कमरेमें बैठी हुई थी। उसकी आँखोंसे आँसू टपक रहे थे और वह अपनी पड़ोसिनोंसे इस तरह क्रुद्ध होकर बातचीत कर रही थी, मानो किसीने उसके प्रति अपराध किया हो। वह कह रही थी—"देखो, मैं उनसे पहलेसे कहती थी 'खूब पेट-भरके उरदकी पीठीके लड्डू खाओ', पर मेरा कहना वे क्यों मानने चले! अब इतने लड्डू छोड़ गये हैं! इन्हें कौन खायगा? क्या करूँ मैं इनका? अरे मुझे अकेली छोड़ गये रे? संग भी न ले गये और मेरे लड्डू भी न खाये। अरे मेरे राम।"

मुर्दा ढोनेकी गाड़ी आई। उसमें एक भूरा घोड़ा जुता था। दरवाज़ा खोल दिया गया। जार्जको ले गये।

तेरहींकि दिन पास-पड़ोसी न्यौते गये। शर्लाने उस दिन सवेरे आधा ग्लास पी ली थी। उसका चेहरा लाल हो रहा था, आँखोंसे आँसू जा रहे थे, दिमाग़ ठिकाने नहीं था। वह बक रही थी—"आओ, चले आओ, सब चले आओ। सबका स्वागत है, सिर्फ एकको छोड़कर—यानी जार्जको। उसने मेरे लड्डू खानेसे नाहीं कर दी, साफ इनकार कर दिया। आओ, स्वागत है, तुम्हारा स्वागत है बहुबार।"

"मरेको मर जाने दो, मक्खन रोटी खाने दो।" ऐसा कहते हुए वह चक्कर खाकर नये सन्दूकपर गिर पड़ी और बाजा बजानेवाले तालेसे अपना सिर धुनने लगी।

× × × ×

घरमें फिर सारा काम यथापूर्व ढंगके साथ चलता रहा। शर्लाने नौकरानीका काम कर लिया। जाड़ा आया और विवाहके इच्छुक कितने ही युवक शर्लाके घरपर आये, लेकिन उसने सबको धता बता दी, क्योंकि वे सब बने हुए आदमी थे और उसके घरके साज-सामानके मोहसे आकर्षित होकर आये थे। शर्लाको ऐसे धृष्ट आदमियोंकी क्या आवश्यकता थी! वह तो कोई शान्त प्रकृतिका मनुष्य चाहती थी।

जाड़ेके अन्तमें शर्लाका शरीर बहुत-कुछ पतला हो गया और उसने काली ऊनकी गौन पहनना शुरू किया, जिससे उसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया। वहीं आसपास आइवन नामक एक गाड़ीवान रहता था। बेचारा बड़ा भला आदमी था, शान्त प्रकृति, दयालु और विचारशील। शर्लापर वह मुग्ध हो गया। फागुन आते-आते शर्ला भी उससे प्रेम करने लगी।

बसन्तऋतु थी, मौसम बड़ा अच्छा था। वैवाहिक विभागके असिस्टेण्ट रजिस्ट्रारकी बातोंको बड़े अधैर्यके साथ दोनों जने सुन रहे थे। क्षण-भर कल्पके समान बीतता था। आफिससे निकलकर शीघ्र ही वे सड़कपर आये।

युवक आइवनने सलज्ज भाव और तिरछी निगाहसे शर्काको देखते हुए कहा—"कहाँ चलें ?"

शर्काने उसकी बगलसे अपना शरीर भिड़ाकर अपनी लाल नाकको एक पुष्पसे छुआ, और फिर नथनों फुलाकर कानमें कहा—"और कहाँ चलेंगे ? वहीं बाज़ार। ज़रूरी चीज़ें खरीदने !"

ऐसा कहते हुए शर्काके कमल-नयन फिर विकसित हो गये।

[एक रशियन कहानीका अनुवाद]—सम्पादक

मेरी माता

[लेखक :—श्री दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज़]

जब मैं लगभग ६ वर्षका था, एक ऐसी घटना घटी, जो मेरे जीवनके लिए अत्यन्त सौभाग्य-पूर्ण सिद्ध हुई और जिससे कि मेरे भावी जीवनपर बड़ा असर पड़ा, अथवा यों कहिये कि जिसने मेरे जीवनके निर्माणमें बड़ी मदद दी। मेरी माताके पास काफ़ी रुपया था, जिसके ब्याजसे पर्याप्त आमदनी होती थी, और हम लोग अपने प्रिय घरमें बड़े आरामके साथ जीवन व्यतीत करते थे। बच्चोंको भी किसी तरहकी तकलीफ़ नहीं थी। मेरे पिताजी पादरी थे। चूँकि माताजीके रुपयेके सूदसे गृहस्थीका काम चलानेके लिए काफ़ी आय हो जाती थी, इसलिए वे मिशनसे अपने धार्मिक कार्यके लिए कुछ पारिश्रमिक भी नहीं लेते थे। माताजीका रुपया एक ट्रस्टीके सुपुर्द कर दिया गया था, और वे मेरी माताजीके नामपर दस्तखत करके रुपया जमा और खर्च कर सकते थे। सब काम मेरे जन्मके समयसे ही इसी ढंगसे बिना किसी बाधाके चल रहा था। माता-पिताका यही खयाल था कि इसी तरह रुपयोंके ब्याजसे हम सबकी गुज़र होती जायगी। मेरा भाग्य भी इसी बेफ़िक्री तथा आरामके जीवन-क्रमसे बँधा हुआ था। किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी।

एक दिन प्रातःकालके समय पिताजीके नाम कहींसे एक चिट्ठी आई। उस चिट्ठीमें यह खबर थी कि जो आदमी मेरी माताकी सम्पत्तिका ट्रस्टी बनाया गया था, वह उस रुपयेको सट्टेबाज़ीमें लगा रहा था। मेरे पिताजीने लन्दनको कई जगह तार भेजकर यह पूछ-ताछ की कि मेरी माताके नामका रुपया ठीक तरहसे जमा है या नहीं। एकके बाद दूसरा तार यही आया कि रुपया तो ट्रस्टी महोदयने कभीका निकाल लिया और वे कहीं लापता भी हो गये ! वे मेरी माताके रुपयेसे शेयर-मार्केटमें सट्टेबाज़ी कर रहे थे, और उसीमें सारा रुपया गँवा बैठे थे। पीछेसे इस बातका पता चला कि कई वर्ष पहलेसे वे यह धूर्तता करते रहे थे।

उस दिन दोपहरीको मेरे पिताजी अत्यन्त चिन्तित रहे और मेरी पूज्य माता उन्हें तसल्ली देनेका प्रयत्न करती थीं। आज भी मैं माता-पिताके चिन्ताग्रस्त चेहरोंकी कल्पना कर सकता हूँ। मेरे पिताजी सारा क़सूर अपने ऊपर ले रहे थे। वे कहते थे कि ट्रस्टी तो मेरे घनिष्ठ मित्र थे, और विवाहके अवसरपर मेरी ही सिफ़ारिशकी वजहसे वे ट्रस्टी बनाये गये थे। मेरे पिताजीको दो बातोंका दुःख था; एक तो इस बातका कि उन्होंने ऐसे आदमीको ट्रस्टी बनाया, और दूसरा इस बातका कि उनके मित्रने यह भयंकर विश्वासघात किया। उस समय मेरे पिताजीको जो मानसिक क्लेश हो रहा था, उसका वर्णन करना कठिन है। एकके बाद दूसरा तार वे खोलते थे, और उनमें सम्पत्तिके नाशका समाचार पढ़ते थे।

मैं बालक तो था ही। इस दुःखको देखकर अपनी माताके पास सट कर बैठ गया। विषाद बराबर बढ़ रहा था, पर मैं इतना छोटा था कि इस मामलेको समझनेकी बुद्धि मुझमें थी ही नहीं। इतनी बात तो मेरी अकलमें आ गई कि मेरे पिताजीके एक मित्रने मेरी माताजीका सब रुपया छीन लिया। मैं यह सोचकर मन ही-मन डरता था कि अब पिताजी क्या करेंगे।

फिर सन्ध्याकालीन प्रार्थनाका समय आया। यह प्रार्थना हम सबके लिए अत्यन्त पवित्र थी। मेरी माता बड़ी बहादुरीसे सारे दुःखको सहन कर गई और वह चुपचाप बैठी रही। मैं भी माताके निकट ही बैठा हुआ था। पिताजीने बाइबिल खोली और उसमेंसे एक गीत पढ़ा। गीतमें दाऊदने एक विश्वासघाती मित्रके विषयमें लिखा था। गीतका प्रारम्भ इस प्रकार था—

"मैं इस विश्वासघातको सहन कर लेता, यदि यह मेरे किसी शत्रु द्वारा किया गया होता, पर यह तो तूने—मेरे मित्रने—किया......"

पिताजी इस गीतको पढ़कर थोड़ी देरके लिए रुके। बाइबिलमें इस पद्यके बाद विश्वासघाती मित्रको श्राप देनेवाले कई पद्य आये हैं। पिताजीने उन पद्योंको जान-बूझकर छोड़ दिया। उस समय वे अपने आँसुओंको किसी प्रकार रोकनेकी चेष्टा कर रहे थे। पिताजीने परमात्मासे प्रार्थना करना प्रारम्भ किया—"हे परमात्मन्, तू क्षमाकर मेरे उस मित्रको, जिसने यह भयंकर विश्वासघात किया है। उसे बुद्धि दे, जिससे वह अपने कियेपर पश्चात्ताप करे।"

प्रार्थना करते समय ऐसा प्रतीत होता था कि पिताजीके हृदयमें अपने विश्वासघाती मित्रपर दयाका भाव इतना अधिक उमड़ आया है कि वे अपनी भारी हानिको भूल गये हैं। जब वे प्रार्थना खतम कर चुके, तो उनके चेहरेपर एक प्रकारकी शान्ति तथा तेज प्रतीत होता था। ऐसा ज्ञात होता था कि मानो उन्हें कोई आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त हुआ हो।

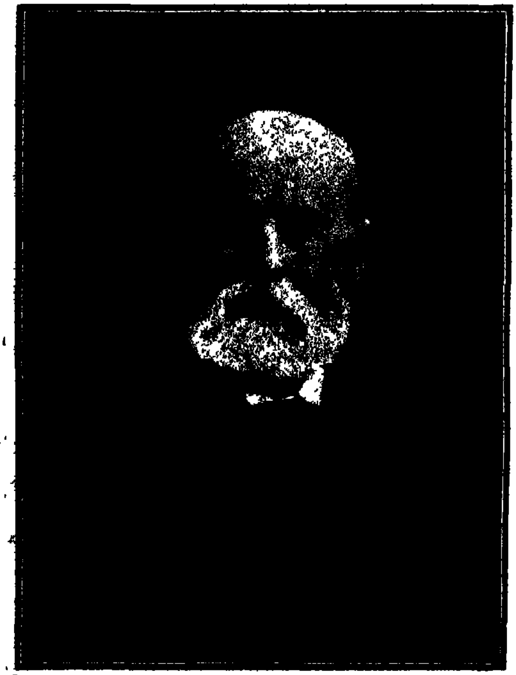


दीनबन्धुकी माताजी

मेरी माता भी पिताजीकी तरह ही आनन्दित थीं और उनके इस आनन्दको सम्पत्तिकी भयंकर हानि भी नहीं छीन सकती थी।

इसके बाद जो कुछ हुआ, उसे मैं संक्षेपमें ही कहूँगा। जैसा कि मैं प्रारम्भमें ही कह चुका हूँ, यह घटना मेरे जीवनके लिए अत्यन्त सौभाग्यपूर्ण थी। वह किस तरह, सो भी सुन लीजिए। सबसे पहली बात तो इस घटनाकी वजहसे यह हुई कि मेरा प्रेम अपने माता-पिताके प्रति बहुत बढ़ गया। यद्यपि मैं बालक ही था, फिर भी उस दुःखको समझ

सकता था, जो मेरे माता-पिताको उठाना पड़ता था। उस कष्टका कुछ अंश मैं स्वयं भी अनुभव कर सकता था।



दीनबन्धुके पिताजी

अपने दुःखी माता-पिताके प्रति मेरे हृदयमें पहलेकी अपेक्षा कई गुना प्रेम उत्पन्न हो गया।

दूसरी सौभाग्यपूर्ण बात यह हुई कि बजाय इसके कि मेरी पढ़ाई-लिखाईका सारा काम मौजसे चलता रहे, मुझे खुद परिश्रम करके अपनी पढ़ाईका खर्च निकालना पड़ता था। जब मैं आठ या नौ वर्षका था (ठीक उम्र मुझे याद नहीं), उस समय बर्मिंगहम हाई स्कूलमें मुझे एक वज़ीफा मिला, और तबसे लगाकर २५ वर्षकी उम्र तक, जब मैंने केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयसे एम० ए० पास किया, मैं अपनी पढ़ाईका सारा खर्च अपने परिश्रमसे ही चलाता रहा; बल्कि उच्च कक्षाओंमें पहुँच जानेपर तो मैं कुछ बचाकर अपने भाई-बहनोंकी भी सहायता करने लगा था।

कितने ही वर्ष पीछे यह खबर हम लोगोंके पास विदेशसे आई कि वह ट्रस्टी, जिसने मेरी माताकी सारी सम्पत्ति सट्टेबाज़ीमें उड़ा दी थी, अब हृदयसे पश्चात्ताप करने लगा है। माँकी सम्पत्ति तो वह लौटा नहीं सका, क्योंकि उसके पास कुछ बचा ही नहीं था; अपनी सम्पत्ति भी उसने इसी व्यसनमें उड़ा दी थी, पर उसके हृदयमें उस घोर अपराधके लिए पश्चात्ताप था। उसने मेरे पिताजीसे तथा माताजीसे क्षमा याचना की। माता पिताने उसे तुरन्त ही क्षमा कर दिया, और उस ट्रस्टीकी मृत्युके पहले माता-पिताका उससे मेल हो गया।

इस घटनाकी पवित्र स्मृति प्रारम्भसे ही मेरे हृदयमें रही है, और माता-पिताकी इस भलमनसाहतके स्मरणने मेरे जीवनपर बड़ा प्रभाव डाला है। माता-पिताके पारस्परिक प्रेमका यह उज्ज्वल दृष्टान्त मेरे जीवन-पथको प्रकाशित करता रहा है, और मैं परमात्माको धन्यवाद देता रहा हूँ कि उसने ऐसी माताकी कोखमें मुझे जन्म दिया और ऐसे पिताका पुत्र बनाया।

माताकी सम्पत्तिके इस प्रकार चले जानेपर हम लोग गरीब हो गये, और गरीबीके कष्टोंके कारण एक दूसरेके प्रति हमारा स्नेह बढ़ गया। जब हमारा कुटुम्ब खुशखुर्रम था, तब हम लोगोंमें इतना प्रेम नहीं था। इस प्रकार इस दुर्घटनाका परिणाम अच्छा ही हुआ। सम्पत्तिके चले जानेपर मेरी माता और भी अधिक श्रद्धा तथा प्रेमके साथ बालबच्चोंका पालन तथा कुटुम्बका संचालन करने लगी। हम १४ भाई-बहन थे, इससे माताके परिश्रमका अनुमान किया जा सकता है। हमारे लिए परिश्रम करती-करती वह थकती न थी। दिन-रात उसे हमारी ही फ़िक्र थी, अपने सुख और आरामका कुछ भी खयाल नहीं था। उसकी निस्वार्थताको देखकर हमारी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि हम किसी प्रकारके भोग-विलासमें पड़ें। ऐसा करते हुए हमें लज्जा आती थी।

राव अमरसिंह

[लेखक :— श्री विशेश्वरनाथ रेऊ]

राव अमरसिंह जोधपुरके राजा गजसिंहके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका जन्म वि० सं० १६७०की वैशाख सुदि ७ (ई० सन् १६१३की १७ अप्रेल) को हुआ था। प्रारम्भसे ही उनकी प्रकृतिमें स्वतन्त्रताकी मात्रा अत्यधिक होनेके कारण उनके पिताने उनके छोटे भ्राता जसवन्तसिंहको अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इसपर वे स्वयं भी जोधपुर राज्यकी आशा छोड़ वि० सं० १६८५ (ई० सन् १६२८) में कुछ चुने हुए राठौर सरदारोंके साथ बादशाह शाहजहाँके पास चले गये। बादशाहने भी अमरसिंहकी वीर और स्वतन्त्र प्रकृतिसे प्रसन्न होकर उन्हें बड़े आदर-सम्मानके साथ अपने पास रख लिया, और साथ ही सवारीके लिए एक हाथी भी दिया। (१) इसके बाद वे शाही सेनाके साथ रहकर युद्धोंमें बराबर भाग लेने लगे।

उनकी रणांगणमें प्रदर्शित वीरता और निर्भीकताको देखकर वि०सं० १६८६ की पौष सुदि ६ (ई० सन् १६२९के १८ दिसम्बर) को बादशाहने उन्हें दो हज़ारी ज़ात और १३०० सवारोंका मनसब दिया। (२) इसके करीब चार वर्ष बाद वि०सं० १६९१की पौष वदि ३० (ई०सन् १६३४ की १० दिसम्बर) को वे अपने अपूर्व साहसके कारण ढाई हज़ारी ज़ात और डेढ़ हज़ार सवारोंके मनसबपर पहुँच गये। इसके साथ ही बादशाहने उन्हें एक हाथी, एक घोड़ा और एक झंडा देकर उनका मान बढ़ाया। (३)

(१) बादशाहनामा—भा० १, दौर १, पृ० २२७

(२) बादशाहनामा—भा० १, दौर १, पृ० २९१

(३) बादशाहनामा—भा० १, दौर २, पृ० ६५

ख्यातोंमें उनका महाराज गजसिंहके बुलानेपर वि० सं० १६९१ की वदि ९ को पहले-पहल लाहोरमें बादशाहसे मिलना और उसका उन्हें वहींपर ढाई-हजारीजात और डेढ़ हजार सवारोंका मनसब तथा पाँच परगनोंकी जागीर देना लिखा है, परन्तु टाडने इस घटनाका वि०सं० १६९० (ई० सन् १६३४) में होना माना है। (देखो, राजस्थानका इतिहास भा० २, पृ० ९७६)

उसके अगले ही वर्ष अमरसिंह बुन्देले वीर जुँझारसिंहको दण्ड देनेके लिए सैयद खाँजहाँके साथ रवाना हुए। (१) जब धामुनीके किलेपर शाही सेनाका अधिकार हो गया तब वे अपनी सेनाके साथ प्रभात होनेकी प्रतीक्षामें बाहर ही ठहर गये। ऐसे समयमें इधर-उधर घूमते हुए लुटेरोंके हाथकी मशालसे चिनगारी झड़कर किलेके बारूदखानेमें आग लग गई। इससे किलेकी एक बुर्जके उड़ जानेसे बाहरकी तरफ़ उसके नीचे खड़ी शाही सेनाके ३०० योद्धा दबकर मर गये। उन योद्धाओंमें अधिक संख्या अमरसिंहके सैनिकोंकी ही थी। (२) उस समय अमरसिंहने बड़ी ही दृढ़ता और साहसके साथ सेनाके हताहतोंका प्रबन्ध किया और सेनाके प्रबन्धमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी न होने दी। इससे प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहाँने माघ सुदि १२ (ई० सन् १६३५ की १६ जनवरी) को इनका मनसब बढ़ाकर तीन हज़ारी ज़ात और डेढ़ हज़ार सवारोंका कर दिया। (३)

इसके बाद जब साहू भोंसलेने निज़ामुलमुल्कके कुटुम्बके एक बालकको ग्वालियरके किलेके क़ैदखानेसे निकालकर बगावतका झगड़ा खड़ा किया, तब स्वयं बादशाह शाहजहाँ सेना लेकर दौलताबाद पहुँचा और वहाँसे भोंसलेको दबानेके लिए उसने तीन सेनाएँ रवाना कीं। उनमें खाँदौराँके साथकी सेनाके अग्रभागमें अमरसिंहकी सेना रखी गई थी। (४) उक्त उपद्रवके शान्त हो जानेपर वि० सं० १६९३ (ई० सन् १६३७) में वे दरबारमें लौट आये। बादशाहने उन्हें खिलअत चाँदीके साज़का घोड़ा और तीन हजार ज़ात तथा दो हज़ार सवारोंका मनसब देकर उनका सत्कार किया। (५)

(१) बादशाहनामा—भा० १, दौर २, पृ० ९६

(२) बादशाहनामा—भा० १, दौर २, पृ० ११०

(३) बादशाहनामा—भा० १, दौर २, पृ० १२४

(४) बादशाहनामा—भा० १, दौर २, पृ० १३६-१३८

(५) बादशाहनामा—भा० १, दौर २, पृ० २४६-२४८

अगले वर्ष जिस समय शाहज़ादा, शुजा शाही लश्करके साथ कन्धारकी तरफ़ भेजा गया, उस समय बादशाहने अमरसिंहको भी खिलअत, रुपहरी जीनका घोड़ा और नक़ारा देकर उसके साथ रवाना किया। (१)

वि०सं० १६९५ की ज्येष्ठ सुदि २ (ई०सन् १६३८ की ६ मई) को अमरसिंहके पिता राजा गजसिंहका स्वर्गवास हो गया। उस समय वे शाहज़ादे शुजाके साथ काबुलमें थे, अतः पीछेसे शाहजहाँने उनके पिताकी इच्छाके अनुसार उनके छोटे भ्राता जसवन्तसिंहको तो राजाका ख़िताब देकर जोधपुरका अधिकारी नियत किया और अमरसिंहको रावकी पदवी देकर नागोरका परगना जागीरमें दिया। उसीके साथ ही उनका मनसब भी तीन हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारोंका कर दिया। (२) अगले वर्षके प्रारम्भ (ई०सन् १६३९) में बादशाहने अमरसिंहकी वीरतासे प्रसन्न होकर पहले तो उन्हें एक सवारीका घोड़ा और फिर एक हाथी उपहारमें दिया। (३)

वि०सं० १६९८ (ई० सन् १६४१के मार्च) के प्रारम्भमें बादशाहने राव अमरसिंहको शाहज़ादे मुरादके साथ फिर एक बार काबुलकी तरफ़ भेजा। इस बार भी उन्हें खिलअत, रुपहरी साज़का घोड़ा और सवारीका हाथी दिया गया। (४) परन्तु इस घटनाके पाँच मास बाद ही राजा बासूके पुत्र जगतसिंहके बाग़ी हो जानेके कारण बादशाहने अमरसिंह और शाहज़ादे मुरादको उसके उपद्रवको शान्त करनेके लिए काबुलसे स्यालकोट होते हुए पैठनकी तरफ़ जानेकी आज्ञा दी। (५) फिर जब जगतसिंहने परास्त होकर शाही अधीनता स्वीकार कर ली, तो करीब सात मास बाद वे भी शाहज़ादेके साथ ही लौटकर बादशाहके पास चले गए। (६)

(१) बादशाहनामा—भा० १, पृ० ३७
(२) बादशाहनामा—भा० २, पृ० ९७
(३) बादशाहनामा—भा० २, पृ० १४५
(४) बादशाहनामा—भा० २, पृ० २२८
(५) बादशाहनामा—भा० २, पृ० २४०
(६) बादशाहनामा—भा० २, पृ० २८५

इसी बीच ईरानके बादशाहने कंधार-विजयका विचार कर उसपर अधिकार करनेके लिए अपनी सेना रवाना की। उसकी सूचना पाते ही बादशाहने राव अमरसिंहको शाहज़ादे दाराशिकोहके साथ ईरानी सेनाको रोकनेकी आज्ञा दी। इस अवसरपर उनका मनसब चार-हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारोंका करके उन्हें खिलअतके साथ ही सुनहरी साज़का एक घोड़ा भी दिया गया। (१) फिर शीघ्र ही ईरानके बादशाहके मर जानेसे वे वि० सं० १६९९ के कार्तिक (ई० सन् १६४२ के अक्टूबर) में खानदौराँ नसरतजंगके साथ वापस लौट आये।

इसके कुछ दिन बाद बीमार हो जानेके कारण अमरसिंहने दरबारमें जाना बन्द कर दिया। स्वस्थ होनेपर जब वे दरबारमें उपस्थित हुए, तब बादशाहके बख़्शी सलाबत ख़ाँने द्वेषवश (३) उनसे कुछ कड़े शब्द (४) कह दिये।

(१) बादशाहनामा—भा० २, पृ० २९३-२९४
(इस मनसबका उल्लेख बादशाहनामा भा० २, पृ० ७२१ में दिया गया है।)

(२) ऊपर लिखा जा चुका है कि राव अमरसिंहको बादशाहकी तरफ़से नागौरका प्रान्त जागीरमें मिला था। नागौर और बीकानेरकी सरहद मिली होनेसे एक बार एक तुच्छसी बातके लिए रावजी और बीकानेर-नरेश श्री कर्णसिंहके आदमियोंके बीच सरहदी झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उस समय रावजीके मनुष्य निःशस्त्र और बीकानेरवाले हथियारोंसे लैस थे, अतः बीकानेरवालोंने उनमेंसे बहुतोंको मार डाला। जैसे ही इस घटनाकी सूचना अमरसिंहको आगरेमें मिली, वैसे ही उन्होंने अपने आदमियोंको इसका बदला लेनेकी आज्ञा लिख भेजी। इसपर बीकानेर-नरेश कर्णसिंहने भी दक्षिणसे पत्र लिखकर बादशाही बख़्शी सलाबत ख़ाँको अपनी तरफ़ कर लिया, अतः उसने शाही अमीन द्वारा झगड़ेकी जाँचकी आज्ञा निकालकर रावजीके आदमियोंको बीकानेरवालोंसे बदला लेनेसे रोक दिया। यही उनके आपसके द्वेषका कारण था।

(देखो—'बादशाहनामा' भा० २, पृ० ३८२)

(३) ख्यातोंमें लिखा है कि सलाबत ख़ाँने उन्हें गँवार कहकर सम्बोधित किया था। इस विषयका यह दोहा प्रसिद्ध है :—



राव अमरसिंह राठौर

बस, फिर क्या था, रावजीकी स्वतंत्र प्रकृति जाग उठी। उन्होंने बादशाही दरबारका और स्वयं बादशाहकी उपस्थितिका कुछ भी विचार न कर शाही बख्शी सलाबत खाँके कलेजेमें अपना कटार भोंक दिया, जिससे वह एक बार छटपटाकर वहीं ठंडा हो गया।

ख्यातोंमें लिखा है कि उन्होंने क्रोधके आवेशमें आगे बढ़ बादशाहपर भी तलवारका वार किया था, परन्तु तलवारके तख्तसे टकरा जानेसे वार खाली चला गया। इतनेमें बादशाह भागकर जनानेमें घुस गया। (१)

यह देख वहाँपर उपस्थित अमीरोंमेंसे खलीलउल्ला खाँ और अर्जुन गौड़(१)ने रावजीपर आक्रमण कर दिया, परन्तु जब वे दोनों उस क्रुद्ध राठौर वीरके सामने सफल न हो सके, तब अन्य छः-सात शाही मनसबदारों और गुर्जबरदारोंने रावजीको घेरकर उनपर तलवार चलाना शुरू किया। यद्यपि रावजीने भी निर्भीक होकर उन सबसे लोहा लिया, तथापि अभिमन्युकी तरह शाही महारथियोंसे घिर जानेके कारण अन्तमें वे वीर-गतिको प्राप्त हो गये। (२) यह घटना वि० सं० १७०१ की सावन सुदि २ (ई० स० १६४४ की २५ जुलाई) की है। (३) इसकी सूचना पाते ही किलेमें उपस्थित रावजीके पन्द्रह राजपूतवीरोंने भी शाही पुरुषोंपर हमला कर दिया, और वे भी थोड़ी देरके युद्धमें ही दो शाही अफ़सरों और ६ गुर्जबरदारोंको आहतकर रावजीका अनुसरण कर गये। जब यह संवाद रावजीके डेरेपर

"उण मुखते गग्गो कह्यो, इण कर लई कटार।
वाँर कहण पायो नहीं, जमदढ हो गइ पार॥"

अर्थात् – सबालत खाँने गँवार कहनेके लिए मुँहसे 'ग' ही निकला था कि राव अमरसिंहने कटार हाथमें ले लिया, और उसके 'वाँर' कहनेके पहले ही रावजीका वह कटार उसके कलेजेके पार हो गया।

बादशाहनामेमें उनकी वीरताके विषयमें लिखा है :—

'अमरसिंह जैसा जवान ; जोकि राजपूतोंके खानदानोंमें अपनी अमालत और बहादुरीमें मुमताज था, और जिसके हक़में बादशाह गुमान रखता था कि किसी बड़ी लड़ाईमें अपने रिश्तेदारों और हमक़ौमवालोंके साथ जान देकर शौहरत हासिल करेगा।"

(देखो, भा० २, पृ० ३८१)

कर्नल टाडने लिखा है—अमरसिंह अपनी वीरताके लिए विख्यात था। यह अपने पिताके किये हुए दक्षिणके युद्धोंमें हमेशा सबसे आगे रहा करता था।"

(देखो, राजस्थानका इतिहास भा० २, पृ० ६७५)

(१) कर्नल टाडने अपने राजस्थानके इतिहासमें लिखा है—

"राव अमरसिंह एक बार (बिना शाही आज्ञा प्राप्त किये ही) शिकारको चले गये, और इसीसे वे पन्द्रह दिनों तक शाही दरबारसे अनुपस्थित रहे। इसके बाद जब वे लौटे, तब बादशाहने उन्हें उनके इस प्रकार ग़ैर हाज़िर रहनेके कारण जुर्मानेकी धमकी दी। उत्तरमें उन्होंने निर्भीकतासे अपने शिकारमें चले जानेका उल्लेख कर जुर्माना देनेसे साफ़ इनकार कर दिया, और साथ ही अपनी तलवारपर हाथ रखकर उसे ही अपना सर्वस्व बतलाया। इससे बादशाह और भी क्रुद्ध हो गया, और उसने शाही बख्शीको उनके स्थानपर आकर जुर्माना वसूल कर लेनेकी आज्ञा दी। इसीके अनुसार जब उसने वहाँ पहुँचकर उनसे शाही आज्ञा पालन करनेको कहा, तब उन्होंने उसके लिए साफ़ इनकार कर दिया। इससे शाही बख्शी सलाबत खाँ और अमरसिंहके बीच झगड़ा हो गया। इसके बाद बख्शीके शिकायत करनेपर बादशाहने उन्हें तत्काल ही दरबारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा भेजी, परन्तु जिस समय वे दरबारमें पहुँचे, उस समय उन्होंने बादशाहको गुस्सेमें बैठे और बख्शीको अपनी शिकायत करते पाया। यह देख उनका क्रोध भड़क उठा और उन्होंने आगे बढ़ सलाबत खाँपर कटारका वार किया। इसके बाद उन्होंने तलवारका एक वार बादशाहपर भी किया। जल्दीमें तलवार खम्भेसे टकराकर टूट गई। बादशाह तख्त छोड़कर जनानेमें भाग गया।" (देखो राजस्थानका इतिहास (क्रुक संपादित) भा० २, पृ० ६७६-६७७)

(१) कर्नल टाडने इसको रावजीका साला लिखा है।

(देखो, राजस्थानका इतिहास भा० २, पृ० ६७७)

(२) बादशाहनामा—भा० २, पृ० ३८०-३८१।

आगरेमें यमुनाके किनारेपर ही रावजीका अन्त्येष्टि-संस्कार किया गया था। उनकी दो रानियाँ तो वहींपर उनके साथ ही सती हुई और तीन बादमें नागौरमें और एक उदयपुरमें सती हुई उनपर तथा इनके वंशजोंपर जो छतरियाँ बनाई गई थीं, वे अब तक नागोरमें विद्यमान हैं।

कहीं-कहीं रावजीकी लाशका यमुनामें बहा दिया जाना भी लिखा है। कर्नल टाडने अपने राजस्थानके इतिहासमें अमरसिंहके हाडी रानीका स्वयं आकर क़िलेसे अपने पतिकी लाशका ले जाना और उसके साथ सती होना लिखा है। (देखो भा० २, पृ० ६७८)

(३) बादशाहनामेमें इस घटनाका हि० सं० १०५४ सल्ख (चाँदरात) जमादि उल-अव्वल 'पंजशंबा' (गुरुवार) को होना लिखा है। (देखो, भा० २, पृ० ३८०)

आस पासके लोगोंको ज्ञात हुआ, तब चाँपावत बलू और राठौर बिहारसिंह (१) आदिने राव अमरसिंहके बचे हुए आदमियोंसे मिलकर अर्जुन गौड़को मार डालनेका इरादा किया, परन्तु इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके पूर्व ही बादशाही सेनाने उन लोगोंको घेर लिया। शाही फौजसे घिर जानेपर वे भी निर्भीकताके साथ सम्मुख रणमें उससे भिड़ गये अन्तमें अनेक शाही सेना-नायकोंको मारकर वीर गतिको प्राप्त (२) हुए।

कर्नल टाडने अपने राजस्थानके इतिहासमें लिखा है कि 'आगरेके क़िलेके जिस द्वारसे घुसकर अमरसिंहके योद्धाओंने अपने स्वामीका बदला लेनेमें प्राण दिये थे, वह 'बुखारा दरवाज़ा' उसी दिनसे बन्द कर दिया गया था।'' (३)

इस घटनाके कुछ ही मास बाद बादशाहने स्वर्गवासी राव अमरसिंहके पुत्र रायसिंहको एकहज़ारी ज़ात और सात सौ सवारोंका मनसब दिया था। (४) इसके बाद रायसिंह शाही दरबारमें बराबर तरक्की करता रहा, और वि० सं० १७१५ (ई० सन् १६५८) में जब औरंगज़ेबने खजवाके निकट शुजाको हराकर भगा दिया, तब उसने महाराजा जसवन्तसिंहसे बदला लेनेके लिए रायसिंहको चार-हज़ारी ज़ात और चार हज़ार सवारोंका मनसब, राजाका खिताब तथा जोधपुरका राज्य लिख दिया था, (१) परन्तु महाराजा जसवन्तसिंहके प्रभावके आगे यह कार्य पूर्ण न हो सका। वि० सं० १७३३ में रायसिंहकी मृत्यु हो गई, इसलिए बादशाह औरंगज़ेबने रायसिंहके पुत्र इन्द्रसिंहको अपना मनसबदार बना लिया। इसके बाद वि० सं० १७३५ (ई० सन् १६७८) में जब महाराजा जसवन्तसिंहका स्वर्गवास हो गया, तब एक बार फिर बादशाहने महाराजके साथके पुराने वैरको यादकर इन्द्रसिंहको 'राजा' के खिताबके साथ ही जोधपुरका शासन-भार भी सौंप दिया था, (२) परन्तु इस बार भी स्वर्गवासी महाराजके स्वामि-भक्तिको निबाहनेवाले सरदारोंने इन दोनोंको कृतकार्य न होने दिया।

इन्द्रसिंहका मनसब शायद पाँच हज़ारी ज़ात और दो हज़ार सवारों तक पहुँचा था।

इसके बाद वि० सं० १७७३ (ई० सन् १७१६) में महाराजा अजितसिंहने इन्द्रसिंहसे नागौर छीन लिया, लेकिन वि० सं० १७८० (ई० स० १७२३) में बादशाह मोहम्मद शाहने महाराजसे नाराज़ होकर नागौरका अधिकार फिर उसे लौटा दिया। अन्तमें वि० सं० १७८३ (ई० सन् १७२६ के अक्टोबर) में अभयसिंहने उक्त नगरपर अन्तिम बार अधिकार कर वह प्रान्त अपने छोटे भ्राता राजाधिराज बख़तसिंहजीको दे दिया।

वि० सं० १७८९ (ई० सन् १७३२) में इन्द्रसिंहका देहान्त देहलीमें हुआ, उस समय बादशाहकी तरफ़से सिरसा, भटनेर, पूनिया और बेहलोवालके परगने उसकी जागीरमें थे। (३)

---

(१) ये दोनों पहले रावजीके पिताकी और स्वयं रावजीकी सेवामें रह चुके थे, परन्तु इस समय ये बादशाही नौकरीमें थे। मारवाड़की तवारीखोंमें बिहारसिंहके स्थानपर भावसिंह कूँपावतका नाम लिखा मिलता है। कर्नल टाडने भी चाँपावत बल्लू और कूँपावत भाऊका केसरसे रँगे वस्त्र पहनकर आगरेके लाल क़िलेमें मार-काट मचाना और वहींपर वीर-गतिको प्राप्त होना लिखा है। (देखो, राजस्थानका इतिहास भा० २, पृ० ९७७)

(२) बादशाहनामा—भा० २, पृ० ३८३-३८४

(३) यह दरवाजा उसके बाद पहले-पहल वि० सं० १८६६ (ई० सन् १८०९) में कैपटन स्टील द्वारा खोला गया था। वहींपर फुटनोटमें कर्नल टाडने लिखा है कि स्वयं कैपटन स्टीलने उनसे कहा था कि जिस समय उक्त द्वार फिरसे खोला जाने लगा, उस समय वहाँके निवासियोंने कैपटन स्टीलसे कहा कि यह द्वार जबसे बन्द किया गया है, तभीसे इसमें एक बड़ा अजगर निवास करता है, इसलिए सम्भव है कि इसके खोलनेसे खोलनेवालेपर कुछ संकट आ पड़े। इसके बाद वास्तवमें जब दरवाजेके खोलनेका कार्य समाप्तिपर आया, तब उनमेंसे एक भयकर अजगर निकलकर कर्नल स्टीलके पैरोंकी तरफ़ झपटा। भाग्यवश वह भागकर मृत्यु-मुखसे बच गया। (टाड्स ऐनाल्स एण्ड ऐण्टीक्विटीज़-आफ़-राजस्थान (क्रुक-संपादित) भा० २, पृ० ९७८-९७९)

आगरेके क़िलेका यही दखिनी द्वार आजकल अमरसिंहके दरवाजेके नामसे प्रसिद्ध है।

(४) बादशाहनामा—भाग २, पृ० ४०३

(१) आलमगीरनामा,—पृ० २८८

(२) मआसिर आलमगीरी—पृ० १७५-१७६

(३) ये बातें नागौरके शासक बख़तसिंहजीके मंत्री द्वारा, वि० सं० १७८९ की कार्तिक बदि १२ को, नागौरसे लिखे महाराज अभयसिंहके शाही दरबारमें रहनेवाले वकीलके नामके पत्रसे प्रकट होती हैं।

श्रद्धेय पं० पद्मसिंह शर्मा और उनका 'पद्म-पराग'

[लेखक :—बनारसीदास चतुर्वेदी]

पुस्तकके साथ पुस्तक-प्रणेताकी भी आलोचना करना समालोचना-शास्त्रके नियमोंके अनुसार कुछ अनुचित अवश्य है, पर पंडित पद्मसिंहजीका व्यक्तित्व उनकी रचनाओंसे इतना अधिक मिला हुआ है कि वह उनसे अलग नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि भाषा हृदयके भावोंको प्रकट करनेके लिए है, पर कितने ही लेखक इससे उल्टा ही काम लेते हैं, यानी भावोंको छिपानेका ! हर्षकी बात है कि पण्डित पद्मसिंहजी उन लेखकोंमेंसे नहीं हैं। जो कुछ वे लिखते हैं, हृदयसे लिखते हैं। उनसे ज़बरदस्ती लेख लिखाना यदि असम्भव नहीं है, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। मनकी उमंग आनेपर ही वे लिखते हैं, इसीलिए उनकी रचनाओंमें स्थायित्व रहता है। श्री पारसनाथ सिंहके शब्दोंमें 'पण्डितजी अगर किसीको याद कर चार आँसू बहाते हैं, तो इसका कारण यह नहीं है कि उन्हें खामख्वाह कुछ लिखना है, किसी पत्र-सम्पादकके अनुरोधकी रक्षा करनी है। उनके चार आँसू यथार्थमें आँसू होते हैं, और लिखते समय उनकी यह अवस्था हो जाती है कि—

'नैननिके मग जल बहै, हियौ पसीजि-पसीजि।'

'पद्म-पराग'में पंडितजीके हृदयका प्रतिविम्ब स्पष्ट दीख पड़ता है। उनके गुण तथा उनकी त्रुटियाँ भी चित्रितसी दृष्टिगत होती हैं। शर्माजीका सबसे बड़ा गुण उनकी सहृदयता है। यदि उनके व्यक्तित्वका विश्लेषण रसायनशास्त्रके अनुसार किया जा सके, तो उसमें विद्वत्ताके ज़बरदस्त पुटके साथ सहृदयता + गुणज्ञताकी असाधारण मात्रा मिलेगी। 'पद्म-पराग'में उनके ये दोनों गुण प्रत्येक समझदार पाठकको प्रत्यक्ष दीख पड़ेंगे। श्रीहृषीकेश भट्टाचार्य, महाकवि अकबर, और सत्यनारायण कविरत्न—ये तीन सज्जन भिन्न-भिन्न भाषाओंके लेखक थे। भट्टाचार्यजी उच्चकोटिकी संस्कृत लिखते थे, कविरत्नजी ब्रजभाषामें कविता करते थे और महाकवि अकबरकी रचनाएँ उर्दूमें होती थीं। इन तीनों महापुरुषोंको 'दाद' देकर मुग्ध कर लेना कोई आसान काम नहीं था। संस्कृत, ब्रजभाषा और उर्दूका—भारतीय भाषाओंकी तीन पीढ़ियोंका—असाधारण ज्ञान तो इसके लिए अपेक्षित था ही, पर साथ ही उस चीज़की भी आवश्यकता थी, जिसका 'हिन्दी, हिन्द, हिन्दुस्तान'के गोंडोंमें प्रायः अभाव ही है, यानी सहृदयता। विद्वत्ता और सहृदयताका यह मेल सोने और सुगन्ध जैसा हुआ, और उसका सौरभ आप 'पद्म-पराग'में पा सकते हैं। श्री भट्टाचार्यजीको उस समय अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी, जब शर्माजीने उनके संस्कृत निबन्धोंको संग्रह करनेका प्रस्ताव उनके सम्मुख उपस्थित किया था। उन्हें इस बातकी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि संस्कृतकी इस बेकद्रीके ज़मानेमें भी कोई ऐसा प्रस्ताव उनके सामने रखेगा। शर्माजी लिखते हैं :—

"जब लेखकने उनसे 'विद्योदय'के कुछ निबन्धोंको पुस्तकाकार छपानेकी आज्ञा माँगी और साथ ही एक अधूरे निबन्धोंको पूरा कर देने तथा प्रकाशनीय निबन्धोंके पुनरालोचनाकी प्रार्थना की, तब आपने बड़े हृदयोल्लास-पूर्वक इसे स्वीकार किया। यद्यपि उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक न था, तो भी अपूर्ण निबन्धकी पूर्ति और अविशिष्ट निबन्धोंकी पुनरालोचनाके कठिन कार्यको आपने अनायास बहुत ही स्वल्प समयमें, सम्यकतया सम्पादन कर दिया, तथा 'विद्योदय'में प्रकाशित और भी कई उत्तम निबन्धोंके शुद्ध करनेकी आपने आशा दिलाई। शोक है कि दुर्भाग्यवश वह आशा पूरी न हो सकी। उनके हृदयमें अपने मुद्रित निबन्धोंको देखनेकी प्रबल लालसा रह गई।"

यह निबन्ध अब 'प्रबन्ध मंजरी'के नामसे प्रकाशित हो गये हैं,

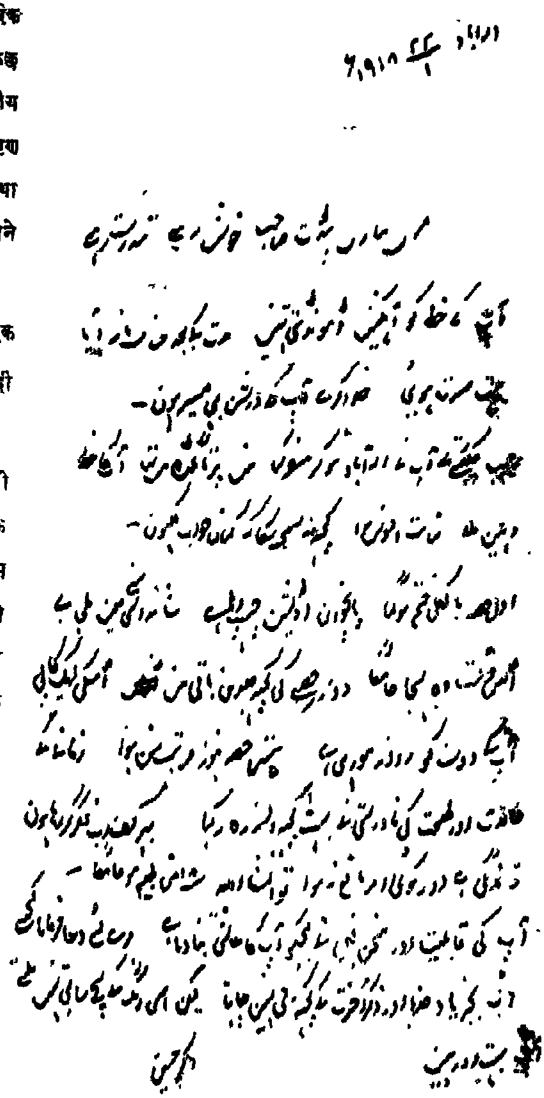
पर इनके प्रकाशनमें पाँच महीने तक कलकत्तेमें जो शारीरिक और मानसिक कष्ट शर्माजीको सहने पड़े, उन्हें हम कुछ-कुछ जानते हैं। सच बात तो यह है कि पं० पद्मसिंहजी भारतीय संस्कृतिके अनुसार पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋणसे उऋण होना जानते हैं। जो काम श्रीहृषीकेशजीके कुटुम्बी तथा उनके साधनसम्पन्न शिष्य न कर सके, उसे शर्माजीने साधनहीन होनेपर भी कर दिखाया।

एक बार पं० पद्मसिंहजीने महाकवि अकबरकी एक सूफ़ियाना कविताकी दाद एक लम्बा पत्र लिखकर दी थी। उसके उत्तरमें कविने लिखा था :—

"××× मुझको आज तक इसकी दाद नहीं मिली थी। दाद एक तरफ़, एक साहबने मुझसे फ़रमाया था कि 'मैं इस क़ितेके मानी नहीं समझा।' वह साहब बहुत ज़ी-इल्म (विद्वान्) और ख़ुद साहिबे-सुख़न (कवि) थे, मैं ख़ामोश हो रहा। ख़ुदाने आपके लिए यह बात रक्खी थी कि इसका मतलब समझिये और दाद दीजिये। असल यह है कि आप साहिबे-दिल हैं। आपने अपनी ज़बान और मज़हबमें फ़िलसफ़ा पढ़ा है, और मज़ाक़े-तसव्वुफ़ और हक़परस्ती आपमें पैदा हो गया है। ख़ुदा जाने किसने-किसने किन-किन मवाक़े (अवसर) पर किन अशआरकी दाद दी, लेकिन यह तफ़सीली नज़र इस वज्द और लज़्ज़तके साथ ग़ालिबन् किसीने नहीं की। ज़्यादातर 'सोशल' और 'मारल' पहलूपर जो नई-पुरानी रोशनीके मुताल्लिक़ मेरे अशआरमें झुमाया है, अहबाबने नज़र की; (इस ग़ज़लके इस शेरकी) दाद अलबत्ता मौलवी शिबली साहब और हज़रत इक़बालने दी थी—

'किया अच्छा जिन्होंने दारपर मन्सूरको खींचा,
कि ख़ुद मन्सूरको जीना था मुश्किल राज़दाँ होकर।'"

एक दूसरा पत्र जो महाकवि अकबरने उन्हें लिखा था, उन्हींके अक्षरोंमें यहाँ उद्धृत किया जाता है—



महाकवि अकबरके इस पत्रकी नागरीमें प्रतिलिपि :—

"मेरे प्यारे पण्डित साहब, ख़ुश रहिये, तन्दुरुस्त रहिये।

आपके ख़तको आँखें ढूँढ़ती थीं, मुद्दतके बाद इनायतनामा आया, बहुत मसर्रत हुई, ख़ुदा करे आपके दर्शन भी मयस्सर हों।

जब कलकत्तेसे आपने इलाहाबाद होकर सफ़र किया,

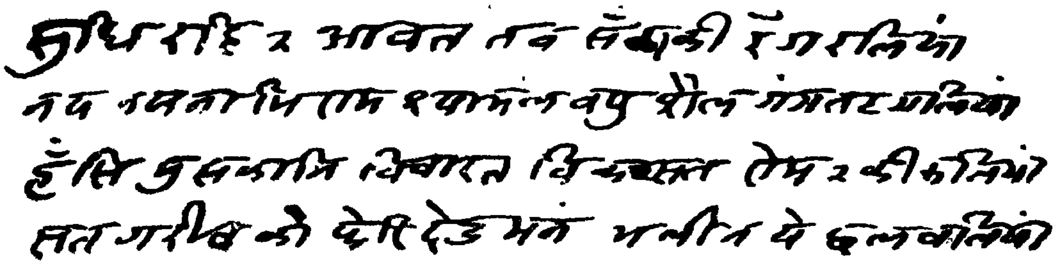
मैं परतापगढ़में था, आपका खत नहीं मिला, निहायत अफ़सोस हुआ, कुछ न समझ सका कि कहाँ जवाब लिखूँ।

अव्वल हिस्सा बिलकुल खत्म हो गया, पाँचवाँ एडीशन छप रहा है, शायद इसी महीनेमें मिल जाय, उस वक्त वह भेजा जायगा। दूसरे हिस्सेकी कुछ जिल्दें बाक़ी हैं। उसकी एक कापी आपके दोस्तको रवाना हो रही है। तीसरा हिस्सा हिनोज़ मुरत्तब नहीं हुआ, ज़मानेके हालात और तबीयतकी नादुरुस्तीने बहुत कुछ अफ़सुर्दा रक्खा, बहरकैफ़ अब फ़िक्र कर रहा हूँ, ज़िन्दगी है और कोई अम्र माना न हुआ, तो इन्शा-अल्ला सन् १८ में तबा हो जायगा।

आपकी क़ाबलियत और सुखनफ़हमीने मुझको आपका आशिक़ बना दिया है। मेरे लिए दुआ फ़रमाया कीजिए, अब बजुज़ यादे-खुदा और ज़िक्रे आख़रतके कुछ जी नहीं चाहता, लेकिन इस रंगके सच्चे साथी नहीं मिलते, आप बहुत दूर हैं।

—अकबर हुसैन।"

पं० पद्मसिंहजीकी इसी गुणज्ञताने कविरत्न सत्यनारायणके हृदयको असाधारण ढंगपर आकृष्ट कर लिया था। प्रथम मिलनके बाद ही सत्यनारायणने उन्हें यह पत्र लिखा था—

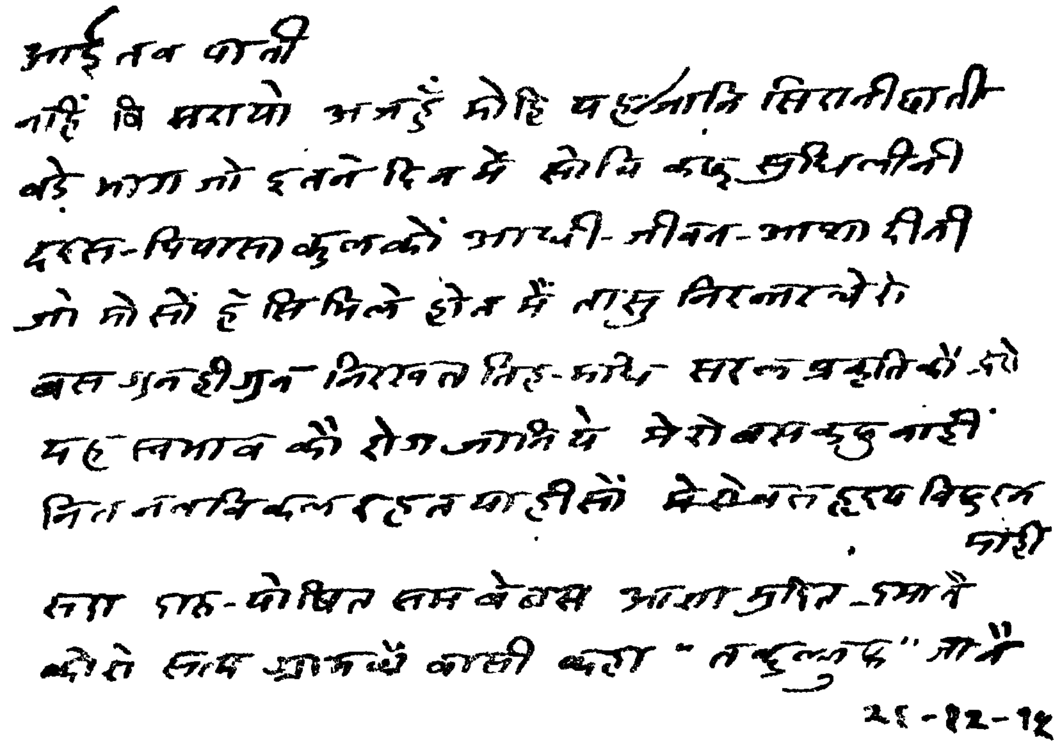


सत्यनारायणजीकी वह प्रसिद्ध कविता जिसमें अपने स्वभावका चित्र खींचा था, पं० पद्मसिंहजीको ही लिखी गई थी—(कविताकी हस्तलिपि अगले पृष्ठपर देखिये)

एक चिट्ठीमें सत्यनारायणजीने शर्माजीको लिखा था—"आपका कृपापत्र मैंने अपने सार्टिफिकेटके लिफ़ाफेमें रख लिया है। अब जानिये, जितना उत्साह प्रदान आपके इस पत्रने मुझे किया है, वैसा जागीर नहीं दे सकती थी।"

जो हृदय पं० हृषीकेश भट्टाचार्य, महाकवि अकबर और सत्यनारायण कविरत्न, संस्कृत, उर्दू तथा ब्रजभाषाके लेखकोंको अपनी ओर आकृष्ट करनेमें सफल हो सकता है, उसकी असाधारणताका अनुमान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं।

संस्मरण लिखना, तो खास तौरपर शर्माजीके हिस्सेमें ही आया है। 'पद्म-पराग'के कई संस्मरण साहित्यमें अत्युच्च स्थान पायेंगे। स्वर्गीय पं० भीमसेन शर्माके विषयमें जो लेख उन्होंने लिखा है, उसे पढ़कर अश्रुपात हुए बिना नहीं रह सकते। लेखके अन्तिम भागको सुन लीजिए—"मुझे अपने दुर्भाग्यपर भी क्रोध आ रहा है। अपनी इस बदनसीबीका अफसोस भी कुछ कम नहीं है कि अन्त समयमें सेवा तो क्या, दर्शन भी न कर सका! पहले तो समझता रहा कि मामूली बीमारी है। बादको जब वैद्य पं० हरिशंकरजीके पत्रसे मालूम हुआ कि रोग चिन्ताजनक है, तो मैंने सिकन्दराबाद आनेका इरादा किया; पर दुर्भाग्यसे (सन्मित्रके अन्तिम दर्शनसे वंचित रखनेके कारण मैं तो इसे सदा दुर्भाग्य ही समझूँगा) उसी समय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके सभापतित्वका पाश मेरी गर्दनमें आ पड़ा, उसने जकड़ लिया। सम्मेलनका समय समीप आ गया था, इसके झमेलेमें फँस गया, सोचा कि अच्छा, सम्मेलनसे लौटता हुआ दर्शन करूँगा, पर सम्मेलनके बाद भी मुझे सम्मेलनके कार्यके लिए दस-पन्द्रह दिन उधर ही—बिहारमें रहना पड़ गया। वापसीमें लखनऊ पहुँचकर सिकन्दराबाद आनेका संकल्प कर ही रहा था कि उसी दिन समाचारपत्रोंमें पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थका तार पढ़ा—'महाविद्यालयके मुख्याध्यापकजीका देहान्त हो गया।' इस तड़ित्समाचारने


आई तव पाती
नहिं बिसरायो अजहुँ मोहि यह जानि सिरानी छाती
बड़े भाग जो इतने दिन में सोधि कछू इमि लीनी
दरस-पियासाकुलकों आपनी-जीवन-आशा दीनी
जो मो सों है सिथिले होत मैं तासु निरन्तर चेरो
बस गुनहीगुन निरखत निह-कारन सरल प्रकृति कौ तेरो
यह स्वभाव कौ रोग जानि पै मेरो बस कछु नाहीं
नित नव विकल रहत याही सों [illegible] हृदय विकल नाहीं
सदा गह-पोषित सम बेबस आशा प्रीति रमावै
[illegible] "[illegible]" गावै
२९-१२-१५

दिलपर बिजली गिरा दी! सारे मन्सूबे खाकमें मिला दिये! मनकी मन ही में रह गई! बार-बार अपनेको धिक्कारता था कि कमबख्त! सब काम छोड़कर समय रहते वहाँ क्यों न पहुँचा! पीछे यह मालूम करके और भी अधिक परिताप और पश्चात्ताप हुआ कि उन्होंने महायात्रासे पहले मुझे कई बार याद किया कि 'वह कहाँ हैं, बुलाओ, एक बार आकर मिल तो जायँ।' उपाध्यायजीको पता न था कि मैं कहाँ हूँ। उन्होंने कांगड़ी गुरुकुलके पतेपर पत्र लिखा, जो मृत्युके कई दिन बाद गुरुकुलमें आनेपर मुझे मिला।

"कुछ समझमें नहीं आता कि अपने इस अक्षम्य अपराधके लिए उस स्वर्गीय आत्मासे क्या कहकर क्षमा माँगूँ! निःसन्देह मेरा अभागा शरीर वहाँ न पहुँच सका, पर दिल बराबर वहीं चक्कर काटता रहा। उनके खयालसे ग़ाफ़िल नहीं रहा—

'गो मैं रहा रहीने-सितम-हाय, रोज़गार,
लेकिन तेरे खयालसे ग़ाफ़िल नहीं रहा!'

"रोग, शोक, परिताप, बन्धन और व्यसनोंसे परिपूर्ण इस जीवन-जंजालमें कई इष्ट मित्रोंके बिछुड़नेका दारुण दुःख झेलना—वियोग-विष घूँटना पड़ा है, पर पण्डित गणपतिजीकी मृत्युके पश्चात् यह दूसरा मित्र-वियोग तो असह्य प्रतीत हो रहा है। अन्दरसे बार-बार यही आवाज़ आ रही है—

'क्या उन्हीं दोनोंके हिस्सेमें क़ज़ा थी मैं न था!'"

एक अंग्रेज़ी पत्रके सहकारी सम्पादकने हमसे कहा कि पं० भीमसेन-सम्बन्धी लेखको पढ़कर वे कई बार रोये।

'पद्म-पराग'में इन लेखोंके अतिरिक्त भगवान श्रीकृष्ण, महर्षि दयानन्द पं० गणपति शर्मा, स्वामी श्रद्धानन्दजी, कविरत्न पं० नवनीतलाल चतुर्वेदी, खलीफ़ा मामूँ रसीद, दिव्यप्रेमी मंसूर, अमीर ख़ुसरो, सरमद शहीद,

मौलाना आज़ाद इत्यादिके जीवन-चरित और संस्मरण हैं। शर्माजीके दो भाषण भी इसमें सम्मिलित कर दिये गये हैं; एक तो मुरादाबादके प्रान्तीय सम्मेलनका और दूसरा मुज़फ्फरपुरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका। इनके अतिरिक्त 'हृदयकी जीवनी', 'मुझे मेरे मित्रोंसे बचाओ', 'प्रेम-पत्रिका', 'बुढ़िया और नौशेरवाँ' तथा 'गीताके एक श्लोकका अर्थ' नामक निबन्ध हैं। हमारी समझमें उन लेखोंको, जो दूसरोंके लेखोंका अनुवाद-मात्र है, इस संग्रहमें स्थान देना उचित नहीं था।

लेखोंके नामसे यह प्रकट है कि शर्माजीका साहित्यिक प्रेम पूर्ण व्यापक है। वह किसी सम्प्रदाय-विशेष तक परिमित नहीं है। शर्माजी आर्यसमाजी हैं, पर साहित्यिक मामलोंमें वे पक्के राष्ट्रीय हैं। महाकवि अकबरकी पहली मुलाक़ातका ज़िक्र करते हुए आपने लिखा है—

'कलकत्तेसे लौटता हुआ मैं मिलनेकी ग़रज़से ८ मार्च सन् १९१५को प्रयाग उतरा। एक जगह असबाब रखकर सीधा इशरत-मंज़िल पहुँचा। पहलेसे कोई सूचना नहीं दी थी। गया और सलाम करके कुछ फ़ासलेपर पड़ी हुई सामनेकी एक कुरसीपर अदबसे बैठ गया। अकबर साहब उस वक्त एक सज्जनसे बातें कर रहे थे। थोड़ी देर बाद नज़र मिली, तो पूछा—'कहाँसे आप तशरीफ़ लाये?' मैंने अपना नाम बताया, तो बड़ी उत्सुकतासे उठे और मेरी ओर बढ़े। मैं खड़ा हो गया। पास आकर बड़े प्रेमसे मुसकराते हुए बोले—'माफ़ कीजिए, मालूम न था, आप हैं। पण्डित साहब! कुछ हर्ज़ तो न होगा—आपको नागवार तो न गुज़रेगा—मैं बग़लगीर होकर मिल लूँ?' मैंने झुककर कहा—'ज़हे-क़िस्मत, बग़ल-गीरी क्या क़दम-बोसी भी हासिल हो जाय, तो मुराद पा जाऊँ।''

यह भाव किसी सच्चे साहित्य-सेवीके हृदयसे निकल सकते हैं। सच बात तो यह है कि शर्माजी प्राचीन भारतीय संस्कृतिके अनुयायी हैं। वृद्धों तथा गुरुजनोंकी पूजा करना वे उतनी ही अच्छी तरह जानते हैं, जितनी अच्छी तरह युवकोंकी साधारणसे साधारण कृतियोंकी दाद देकर उन्हें उत्साहित करना।

पं० पद्मसिंहजी शर्माके व्यक्तित्वकी तरह उनके लेखोंमें भी दो रूप नज़र आते हैं; एक प्राचीन आर्य-संस्कृतिकी सहृदयता तथा कोमलताका और दूसरा आर्यसमाजी कठोर खण्डनात्मक प्रवृत्तिका, या यों कहिये कि एक 'पद्म' का और दूसरा 'सिंह' का।

इस लेख-संग्रहमें भी दूसरे रूपकी छटा कहीं-कहीं देखनेमें आ जाती है। मुज़फ्फरपुरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सम्भाषणमें जो व्यंग्य उन्होंने छायावादी कवियोंपर किये थे, वे वास्तवमें कठोर थे। यह प्रश्न दूसरा है कि छायावादी इसके अधिकारी थे या नहीं, पर शर्माजी हमें क्षमा करें, यदि हम इतना निवेदन कर दें कि वही बातें माडरेट भाषामें कही जा सकती थीं। दर असल बात यह है कि शर्माजीको दम्भसे घोर घृणा है, और दम्भको देखते ही वे अपने 'पद्म' रूपको ताक़पर रखकर 'सिंह' रूपको धारण कर लेते हैं। फिर उन्हें इस बातकी पर्वाह नहीं रहती कि उनके लेखनी-रूपी नख कितना गहरा घाव करेंगे। विद्यावारिधि ज्वालाप्रसादजीके ऐसी थपेड़ मारी कि बेचारे जीवन-भर पानी माँगते रहे। पं० भीमसेनजी-वाले लेखमें श्री नरदेव शास्त्रीपर ऐसी करारी चोट है कि वे उसे यावज्जीवन सेकते रहेंगे। सूडो छायावादी उन्हें 'साहित्यिक ठूँठ' कहकर अब भी स्वप्नमें बड़बड़ाया करते हैं। यदि कभी घासलेट विरोधी आन्दोलनका इतिहास लिखा जावे, तो उसके हिंसात्मक भागका श्रेय अधिकांशमें शर्माजीको देना पड़ेगा। कभी-कभी तत्कालीन मनोवृत्तिके घोड़ेपर सवार होकर आप प्राचीन कालके क्षत्रियोंकी तरह निकल पड़ते हैं, और बिना दो-चार हाथ मारे लौटते नहीं, पर ख़ूबी यह है कि मार-काटमें गीताके सिद्धान्तके अनुसार सोलह आना निस्पृह रहते हैं। शर्माजीका विरोधी यदि कभी उनसे मिले, तो आश्चर्यके साथ यही कहेगा—"ऐसे सहृदय आदमीसे ऐसे कठोर कटाक्ष कैसे बन पड़े!"

यह बात हम निःसंकोच स्वीकार करेंगे कि शर्माजीके कठोर कटाक्षोंको पढ़नेमें हमें वही आनन्द आता है, जो किसी चतुर शिकारीके साथी दर्शकोंको वन्यपशुओंकी शिकारमें।

उस समय तो हम उसी हिंसामय आनन्दमें मग्न हो जाते हैं, पर शान्ति-पूर्वक विचार करनेपर हमें उसके औचित्यके विषयमें शंका होने लगती है। उदाहरणके लिए पण्डित भीमसेन शर्मा-वाले लेखमें श्री नरदेव शास्त्रीपर 'मित्राघात' का अपराध लगाया गया है। बहुत सम्भव है कि शास्त्रीजी इस भयंकर अपराधके अपराधी हों, पर फिर भी हम इस प्रकारके शब्दोंके प्रयोगको अनुचित ही कहेंगे। यह हम मानते हैं कि जो कुछ शर्माजीने लिखा है, वह अत्यन्त हार्दिक वेदनाके साथ लिखा है, फिर भी प्राचीन सिद्धान्तके अनुसार 'कुछ कहना चाहिए और कुछ कहनेके लिए बाक़ी रखना चाहिए।' हमारा विश्वास है कि कठोर शब्द अन्तमें अपने उद्देश्यमें विफल होते हैं। उनके प्रयोगसे इस बातकी आशंका रहती है कि कहीं असाधारण कठोरताके कारण पाठककी सहानुभूति उस व्यक्तिके प्रति न हो जाय, जिसके प्रति उन शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यदि 'सिंह' किसी 'कायर पशु' विशेषको बुरी तरह चींथने लगे, तो सम्भवत: दर्शककी सहानुभूति उस पशुके प्रति हो जायगी। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि ज्यों-ज्यों हिन्दी-गद्यका विकास होता जायगा, त्यों-त्यों कठोर लेखन-शैलीकी लोक-प्रियता घटती जायगी, प्रतिपक्षीको बनानेके ढंगकी समालोचना समझदार पाठकोंको अधिकाधिक अखरने लगेगी। शर्माजीको यह बात न भूलनी चाहिए कि उनके लेख अपनी अनुपम लेखन-शैलीके कारण आजसे सौ सवा सौ वर्ष बाद भी पढ़े जायँगे। क्या यह बात शंकनीय है कि आजसे सौ वर्ष बादका पाठक उन तमाम व्यंग्यमयी कठोर बातोंको पढ़कर कहे—"बात सम्भवत: ठीक होगी, पर यह कितनी कठोरता-पूर्वक कही गई है!"

आशा है कि शर्माजी हमारी इस स्पष्टवादिताके लिये हमें क्षमा करेंगे और 'पद्य-पराग' के द्वितीय भागमें कठोर बातोंको स्थायी रूप न देंगे। शर्माजी हमारे लिए गुरु-तुल्य पूज्य हैं, और उनकी आलोचना करना हमारे लिए धृष्टताकी बात है। फिर भी समालोचकके कठोर कर्तव्यका ख़याल करके हमें यह धृष्टता करनी पड़ी है।

पिछले १८ वर्षोंमें हमें अनेक साहित्य-सेवियोंके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, पर 'कामरेड-शिप' या 'बन्धुत्व' का भाव जितनी मात्रामें शर्माजीमें दीख पड़ा, उतनी मात्रामें किसी अन्य—उनके मुक़ाबलेके विद्वान्—में नहीं दीखा। वे छोटे-से-छोटे लेखकों तथा कवियोंके साथ बराबरीका बर्ताव करना जानते हैं। यदि भारत-सरकार किसी साहित्य-सेवीको अण्डमन टापू भेजनेका दण्ड दे और साथ ही यह सुविधा भी प्रदान कर दे कि अपने एक साथीको और लेते जाओ, तो कितने ही आदमी निःसन्देह शर्माजीको साथ ले जाना पसन्द करेंगे, और शर्माजीको भी इसमें विशेष ऐतराज़ न होगा, यदि—

(१) वहाँ सुन्दर चायका नियमित प्रबन्ध कर दिया जाय।

(२) काव्यालोचनके लिए पूर्ण सुविधा, साधन तथा स्वाधीनता हो।

(३) अपनी पद्य-पुस्तकोंकी भूमिका लिखानेके लिए वहाँ कोई न पहुँचे।

हाँ, इस बातकी गारंटी हम कर सकते हैं कि थोड़े ही दिनोंमें वह टापू भी 'काव्योपवन' का रूप धारण कर लेगा।

नोट :—'पद्य-पराग' में ६ चित्र हैं। पृष्ठ संख्या पौने पाँच सौ है। सजिल्द पुस्तकका मूल्य २॥।) है। मिलनेका पता :—श्री रामनाथ शर्मा, गाँ० नायकनगला, पो० आ० चाँदपुर, ज़िला बिजनौर (U.P.)

हिन्दी-पत्र और चित्रकला

[लेखक :—श्री सुधीन्द्र वर्मा, बी० ए०]

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' ही सदासे भारतीय कलाका आदर्श रहा है। अनादिकालसे कलाके प्रत्येक क्षेत्रमें यही आदर्श सामने रखकर हमारे कला-मर्मज्ञोंने सफलता प्राप्त की है। जब-जब वे इस आदर्शसे पतित हुए हैं, तब-तब उनकी भारतीयताका नाश हो गया है। चित्रकलामें तो भारतीय आदर्शकी धाक आज तक चली आ रही है। अजन्ताके कन्दर-चित्रोंकी अनुपम कलापर मुग्ध होकर आज अनेक विदेशी चित्रकार उस आदर्शकी नक़ल करनेके लिए उद्यत हो उठे हैं। किन्तु उस प्राचीन भारतीय चित्रकारोंकी थातीके संरक्षक हम अपने आदर्शसे कोसों दूर एक विच्छिन्न ही क्षेत्रमें विचर रहे हैं। हमारी आधुनिक प्रवृत्ति हमें अपने प्राचीन आदर्शसे हटाकर बहुत दूर ले जा रही है। विदेशी चित्रकारोंकी चटकीली वर्णमालाका आकर्षण हमें अपने आदर्शकी हत्या करनेके लिए उकसा रहा है। जनसाधारणकी विविध रंगोंमें रंगी स्त्रियोंकी नंगी, अधखुली अथवा कामोत्तेजक तसवीरोंको पसन्द करनेकी प्रवृत्तिने हमारे हृदयोंमें रुपया कमानेकी एक ऐसी हविस पैदा कर दी है कि उसके प्रबल प्रवाहमें हम अपना पुरातन कलाका आदर्श एकदम बहानेके लिए उतारू हो गये हैं। हमारे वर्तमान चित्र यूरोपियन ढंगके और बिलकुल कलाहीन होते हैं। उन्हें देखकर कभी-कभी तो क्रोध हो आता है।

इस अनर्गल प्रवृत्तिके सबसे बड़े हिमायती हैं हमारे हिन्दीके मासिकपत्र। सम्पादकोंके कलामर्मज्ञ न होनेके कारण उनमें विचित्र रंग-बिरंगे धब्बे चित्रोंके नामसे प्रकाशित कर दिये जाते हैं। सम्पादक महाशय एक ओर कला-विषयक उत्तम निबन्ध छापते हैं और दूसरी ओर छापते हैं उसी कलाका गला घोंटनेवाला कोई वाहियात चित्र। बस, कलाके आदर्शोंका खून आरम्भ हो जाता है।

हिन्दीमें इस समय बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। वे सब सचित्र ही निकलनेका प्रयत्न करती हैं, मानो सचित्र निकलना हिन्दुस्तानी जर्नेलिज़्ममें कोई अक्षम्य पाप हो। कभी-कभी तो यह सचित्र होनेकी इच्छा इतनी हानिकारक हो उठती है कि उसके कारण ग्राहकोंको महीनों तक पत्रिकाके दर्शन ही नहीं होते! ब्लाक बनकर न आनेके कारण, अथवा चित्रकारकी अस्वस्थ्यताके कारण, या चित्रका कागज़ न रहनेके कारण यदि कहीं रंगीन चित्र रह गया तो फिर महीने भर पहलेसे छपी हुई पत्रिका दफ्तरीखानेके सूतिकागारके बाहर नहीं निकल पाती।

ये मशहूर चित्र बड़ी-बड़ी मेहनतोंके बाद मिल पाते हैं और उनका इतिहास बड़ा ही मनोरंजक होता है। एक ऐसे ही प्रसिद्ध चित्रकी कथा सुनिए। सन् १९२७ के आरम्भमें हिन्दीकी एक प्रसिद्ध और बूढ़ी पत्रिकाका विशेषांक निकलनेवाला था। सुना था कि उसमें चित्रोंका ऐसा चुनाव रहेगा कि जिससे हिन्दी-समाचारपत्रोंके इतिहासमें एक नवयुगका प्रारम्भ होगा। बहुत प्रतीक्षाके बाद अंकके दर्शन हुए। बड़ा खेद हुआ। सम्पादकजीने कृष्णका जो चित्र अपने अंकमें चिपका रखा था, वह ठीक कुछ दिनों पहले अँग्रेज़ीके प्रसिद्ध पत्र 'स्केच'के बड़े दिनवाले विशेषांकमें निकल चुका था। सम्पादकजीके विशेष चित्रकारने अपनी कूचीकी लीपा-पोतीसे फ्रान्सके एक प्रसिद्ध चित्रकारके कृष्ण-सम्बन्धी चित्रकी जो दुर्दशा करके उसे आत्मसात् करनेकी कुचेष्टा की थी, वह एकदम असह्य थी। ऐसे मनमोहक चित्रका सर्वनाश कराकर उसे अपने चित्रकारके नामसे प्रकाशित करना वास्तवमें अनुचित तथा निन्दनीय था। कुछ पृष्ठ और उलटनेके बाद ही फल लिए हुए एक विलायती रमणीका वह चित्र भी जो हम उसी अँग्रेज़ी पत्रमें देख चुके थे, हमने वहाँ चिपका हुआ पाया! चित्रके कोनेमें नाम था प्रेषकके चित्रकारका!

पत्रिका सचित्र निकालनेके लिए इस प्रकारकी रहस्यपूर्ण लीलाएँ हिन्दी-सम्पादकीय जगत्‌में प्रतिदिन हुआ करती हैं। विलायती रमणियोंके शिंगल्ड भूरे बालोंमें काले रंगकी पुताई और कूचीके दो हाथोंसे फ़ौरन एक काश्मीरी रमणीका स-साड़ी, अ-गाउन और अ-बाडिस रूप तय्यार कराकर सम्पादकजी उसे प्रेममग्ना, सद्यःस्नाता, विरहिणी, मंदिर-पथमें, अथवा ऐसा ही कोई ऊटपटाँग नाम देकर अपनी पत्रिकाके 'फ्रंटिस्पीस' नामसे प्रकाशित कर दिया करते हैं!

हिन्दी-भाषाके प्रसिद्ध पत्रोंमें आजकल 'सरस्वती', 'माधुरी' 'सुधा', 'चाँद', 'विशाल-भारत', 'त्यागभूमि', 'महारथी' आदिकी ही गणना है। इन्हीं मासिक-पत्रोंमें रंगीन चित्र प्रकाशित करनेकी प्रवृत्ति बहुत अधिक पाई जाती है, किन्तु दो-एकको छोड़कर बाक़ी सभी पत्रोंके चित्र चित्रकला-रहित होते हैं। वे निरुद्देश्य, आलेख्यहीन, अशुद्ध और पतितादर्श होते हैं। द्विवेदीजीके समयकी 'सरस्वती' और आजकी 'सरस्वती' के चित्रोंमें ज़मीन-आसमानका अन्तर है। जो 'सरस्वती' अपने चित्रोंके भारतीय आदर्शके कारण उस समय भारतीय चित्रकलाकी पृष्ठपोषिका समझी जाती थी, आज यूरोपियन आदर्शोंकी अपनी चित्रावलीके कारण भारतीय चित्रकलाकी प्रधान विरोधिनी प्रतीत होती है। यूरोपियन चित्रकारोंके प्रसिद्ध चित्रोंमें थोड़ा-बहुत रद्दोबदल करके उनमें केवल भारतीय वातावरण उत्पन्न कर देनेसे ही चित्र भारतीय नहीं हो जाता। चित्रकी प्रत्येक रेखा भारतीय संस्कृति, एवं भारतीय आदर्शके अनुरूप होनी चाहिए। 'सरस्वती'के अधिकांश चित्र, चाहे वे समूहचित्र (ग्रुप्स) हों अथवा प्रतिकृति चित्र, यूरोपियन चित्रोंके अनुकरण मात्र होते हैं। उनमें भारतीय क़लमका बहुत-कुछ अभाव होता है। केवल कुछ बंगाली चित्रकारोंके चित्र ही ऐसे होते हैं, जिनके प्रकाशित करनेके कारण वह एकान्ततः यूरोपियन चित्रकलाकी पत्रिका कहानेके दोषसे बच जाती है। आदर्शोंकी हानिके अतिरिक्त उसके चित्रोंमें आकर्षण, शुद्धता और सौष्ठवकी काफ़ी मात्रा रहती है। उसके चित्र रंगके धब्बोंवाले चित्रोंकी कोटिमें रखने लायक नहीं होते। वे चित्रकलाकी दृष्टिसे बुरे नहीं कहे जा सकते। उनमें कमी होती है तो केवल आदर्शोंकी।

'माधुरी' के चित्रोंके विषयमें हमें काफ़ी शिकायत है। उसके विशेषांकों, तथा अन्य असाधारण अंकोंमें जो चित्र प्रकाशित होते हैं, उनमें कुछ प्राचीन और बंगाली चित्रोंको छोड़कर बाक़ी सभी चित्रोंसे कल्पनाशून्यता तथा आदर्शहीनता प्रकट होती है।

पिछले विशेषांकमें प्रो० ईश्वरीप्रसाद वर्माका झूलती हुई स्त्रीका एक चित्र प्रकाशित हुआ था। रमणी महाशयाकी शक़ल-सूरत जैसी है, तैसी है ही, उनकी कमरसे लेकर पैरों तककी आकृति एकदम विचित्र है। घुटनेके मोड़का कहीं पता ही नहीं है। ठीक कदली स्तम्भके समान ही उसकी टाँगें बिलकुल स्ट्रेट-लाइनमें चली गई हैं। कमरका मोड़ भी अस्वाभाविक और भद्दा है। डोरीका झुकाव एकदम असम्भव है। ख़ैर, चित्रकार महोदयकी ये ग़लतियाँ तो हैं ही, सम्पादकजीका नोट उसपर और भी आश्चर्य-जनक है। आपने उस चित्रको टैगोर-अजंता-शैलीका बताया है, जो वह रत्ती-भर भी नहीं है। अजंता क़लमसे तो वह चित्र मीलों दूर है ही, टैगोर-क़लमके पाससे होकर भी वह नहीं निकला है। वह है एकदम खिचड़ी शैलीका चित्र। अजंता शैलीने मार्दव, सौष्ठव, लास्य आदि जिन अंग-संचालनकी विशेषताओं तथा रेखाओंके झुकावको अमर कर दिया है, उनका तो इस चित्रमें कहीं पता भी नहीं है। फिर भाव-प्रवणता तो अजंता शैलीका प्रधान गुण है, जिसके कारण उसके पात्रोंकी भावभंगी इतनी प्रसिद्ध हो गई है, इस चित्रमें नाममात्रको भी नहीं है।

'सुधा' के आधुनिक चित्रोंमें भी बहुत परिवर्तनकी आवश्यकता है। उनकी छपाई ठीक नहीं होती। हकीम मुहम्मद खाँ जैसे प्रसिद्ध चित्रकारके चित्रोंकी ऐसी छपाई कभी भी वाञ्छनीय नहीं। इसके अतिरिक्त आर्ट-स्कूल लखनऊके नौसिखिये लड़कोंकी बनाई हुई आँखों तस्वीरोंको

भी उसमें स्थान नहीं मिलना चाहिए। उनकी केवल वे ही तसवीरें उसमें छपनी चाहिए, जो एकदम दोषरहित और भारतीय आदर्शके अनुकूल हों। 'सुधा'के जन्मकालमें जिस प्रकारके चित्र प्रकाशित हुए थे, उसी प्रकारके उच्चकोटिके चित्र उसमें अब भी निकलने चाहिए। भरतीके लिए कोई भी रंगीन चित्र प्रकाशित करना उसकी नीतिके विरुद्ध होना चाहिए। चित्र-सम्पादनका काम हकीम महोदय जैसे कुशल चित्रकारके हाथमें दे देनेसे ही यह कमी दूर हो सकती है। हमें आशा है कि 'सुधा'के सम्पादकद्वय हमारी इस सलाहको अवश्य मानेंगे। अन्यथा वे स्वयं अपने आदर्शसे बहुत दूर जा गिरेंगे।

'चाँद' के चित्रोंके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उसके अधिकांश चित्रोंमें उतनी ही सुरुचि और कला रहती है, जितनी 'मारवाड़ी-अङ्क'में। अपनी व्यापारिक प्रवृत्तिके कारण वह भले-बुरेका विचार किये बिना ही घासलेटी तसवीरें—जो अधिकांशमें टेढ़े-सीधे मुँहवाली, तिरछी भौंह और पिचके सिरवाली किसी स्त्रीके किसी उचित-अनुचित अवस्थाके रंगीन खाकेके अतिरिक्त और कुछ नहीं होतीं—प्रकाशित करनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेता है।

हम 'चाँद'के संचालकसे केवल यही प्रार्थना करना चाहते हैं कि वे स्त्रियोंमें कुरुचि फैलानेवाले तथा पुरुषोंमें दुर्भावोत्पादक चित्रों और कार्टूनोंके बजाय कुछ ऐसे चित्र अधिक प्रकाशित करें कि जिनसे स्त्रियोंका वास्तविक हित हो।

× × × ×

[यहाँपर लेखक महोदयने 'विशाल-भारत' के चित्रोंके विषयमें प्रशंसात्मक बातें लिखी थीं, जिन्हें छापनेकी हम आवश्यकता नहीं समझते। —सम्पादक]

× × × ×

'त्यागभूमि' एक विशेष लक्ष्यको सामने रखकर प्रकाशित हुई थी। जनसाधारण तक देशकी राजनीतिक तथा सामाजिक प्रगतियोंकी समालोचना पहुँचाना उसका उद्देश्य रहा है, अतएव उसका दाम भी बहुत कम रखा गया था। शायद इसीलिए उसमें चित्रोंका दर्शन कभी-कभी ही होता है। चित्र प्रकाशित करनेसे पत्रिकाका मूल्य कुछ बढ़ाना पड़ता, जो संचालकोंकी नीतिके विरुद्ध है। अभी तक उसमें जो भी चित्र प्रकाशित हुए हैं, वे प्रायः देशभक्त वीरोंके ही थे। हम 'त्यागभूमि' की इस प्रवृत्तिकी भूरि-भूरि सराहना करते हैं।

'महारथी' भी युवकोंकी जागृतिके लिए ही प्रकाशित हुआ है। श्री रामचन्द्र शर्माने उसमें सदासे ही युवक लेखकों और युवक चित्रकारोंको ही प्रोत्साहन देनेका नियम कर लिया है, अतएव वे बड़े-बड़े लेखकों और चित्रकारोंकी अपेक्षा किये बिना ही अपने पत्रका संचालन करते हैं। उनका उद्देश्य भी है युवकोंमें वीरताका संचार करना। परिणामतः 'महारथी' में कर्मवीरों, युद्धवीरों तथा धर्मवीरों और ऐसे ही जीवन-क्षेत्रके अन्य महारथियोंकी प्रतिकृतियाँ, जो युवक और नौसिखिये चित्रकारों द्वारा बनाई गई होती हैं, प्रकाशित होती हैं। उसके इस महान् उद्देश्यकी ओर देखते हुए उसके चित्रोंमें कलाका अभाव कुछ अंशोंमें क्षन्तव्य है। यही क्या कम है कि उसके चित्र उद्देश्यहीन नहीं होते ?

'भारतेन्दु' और 'माया' नये पत्र हैं, इनमें भी चित्र प्रकाशित होते हैं, किन्तु केवल दो-चार अंकोंको देखकर ही उनके चित्रोंके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ, अभी तक जितने चित्र प्रकाशित हुए हैं, उनमें सुधारकी काफ़ी गुँजाइश है। कलाके जिस भारतीय आदर्शका हमने सूत्र रूपमें सबसे पहले ज़िक्र किया था, उसे सामने रखकर ही इन नवजात पत्रोंको अपने चित्र बनवाने चाहिए। आँख मूँद कर चाहे जैसे रंगीन चित्र प्रकाशित करनेकी हिन्दी-पत्रोंकी पुरानी प्रवृत्तिको उन्हें न अपनाना चाहिए।

चित्रोंकी आदर्श रक्षाके लिए कुछ सिद्धान्त स्थिर कर लेनेके बाद ही चित्र बनवाना नये हिन्दी पत्रोंके लिए अधिक उत्तम होगा। पहले तो उन्हें यह निश्चित करना चाहिए कि वे भारतीय चित्रकलाकी किसी पुरानी शैलीका अनुगमन करेंगे अथवा यूरोपियन ढंगसे बनाई जानेवाली आधुनिक

भारतीय तसवीरोंकी शैलीका। आधुनिक शैलीमें भी उन्हें मुग़ल, अजन्ता, राजपूत और योरोपियन कलमोंका भेद करना होगा। अधिकांश हिन्दी पत्रिकाएँ यूरोपियन कलम और यूरोपियन ढंगके मिश्रणसे बने हुए चित्र ही प्रकाशित कर रही हैं। इस प्रवृत्तिके विरुद्ध उन्हें यह निश्चित करना चाहिए कि वे भारतीय क़लमोंके यूरोपियन ढंगसे बने हुए चित्र प्रकाशित करें। इससे आदर्शकी रक्षा और जनताका मनोरंजन दोनों हो सकते हैं। क़लमका निश्चय हो जानेपर उन्हें अपने चित्रोंका उद्देश्य और आदर्श निश्चय करना चाहिए। उन्हें यह देखना चाहिए कि क्या उनके चित्र 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्'की परिभाषाके अन्तर्गत हैं या नहीं। क्या वे जीवनके किसी जाज्वल्यमान सत्यको, जो संसारके लिए कल्याणकारी और हार्दिक आनन्दका उत्पादक है, प्रकट करते हैं या नहीं। क्या वे ऐसे तो नहीं कि जिनके द्वारा बीभत्स, रौद्र, भयानक, जुगुप्सित और कामोत्तेजक भाव प्रकट होकर पाठकोंकी मानसिक शान्तिमें बाधा पहुँचावें, तथा जनसाधारणके अशिव एवं अकल्याणके कारण हों?

यदि इन थोड़ीसी बातोंका ध्यान रखकर हमारी पत्र-पत्रिकाएँ अपने चित्रोंका चिलण करावें, तो वह दिन दूर नहीं जब अजायबघरकी ही शोभा बढ़ानेवाली, प्राचीन कहलानेवाली और नष्टप्राय भारतीय चित्रकला फिरसे जाग्रत हो उठे और घर-घर उसका मंगलमय आलोक उद्दीप्त हो जाय।

चम्पामें भारतीय संस्कृति

[लेखक :— अध्यापक श्री फणीन्द्रनाथ वसु, एम० ए०]

'गंगादर्शनजं सुखं महदिति प्रायादसौ जाह्नवीम्' अर्थात् 'गंगाके दर्शनसे महान् सुख मिलता है, अत: वह जाह्नवीके दर्शनके लिए गया।' चम्पाके राजा गंगाराजकी यह पवित्र इच्छा थी, जो पूरी हुई। यह चम्पा एक उपनिवेश था, जिसे भारतीयोंने ईस्वी सन्‌की आरम्भिक शताब्दियोंमें सुदूर इन्डोचीन प्रायद्वीपके पूर्वी भागमें, जो अब अनाम कहलाता है, बसाया था। यह बात सभी जानते हैं कि हिन्दू लोग गंगाजीको कितना पवित्र मानते हैं। प्रत्येक हिन्दू गंगाजीके दर्शनको अपना सौभाग्य मानता है, और पवित्र जाह्नवीमें स्नान करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतवर्षमें उत्पन्न हुए और वहीं पोषित होकर बड़े हुए हिन्दू ही नहीं, बल्कि औपनिवेशिक हिन्दू भी गंगाके प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते हैं।

प्राचीन कालमें जब भारतीय भारतके पूर्वीय और पश्चिमीय तटोंसे चलकर चम्पामें गये, और उन्होंने वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित किया, तब वे अपने साथ अपनी भारतीय सभ्यता तथा संस्कृतिको भी लेते गये। धर्म भारतीय सभ्यताका एक प्रधान अंश रहा है, इसलिए यह बात स्वाभाविक ही है कि चम्पाके इन भारतीय औपनिवेशिकोंने अपने धार्मिक भावोंको उस नये देशमें भी क़ायम रखा। हम देखते हैं कि चम्पाके राजाओंने शिव, विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य भारतीय देवी-देवताओंके मन्दिर बनवाये थे, जिनमें इन देवताओंकी सुन्दर-सुन्दर प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की गई थीं, और जिनके खर्चके लिए उन्होंने बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ लगा दी थीं। इसलिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि राजा गंगाराजमें—जिसे गंगाजीके नामपर अपना नाम होनेका गर्व था—गंगाजीके प्रति वही पवित्र भारतीय भावना मौजूद थी। गंगाजीके प्रति उसकी ऐसी अपार भक्ति थी कि उसने केवल गंगाजीके दर्शनके लिए अपना सिंहासन तक त्याग दिया, जो बड़ा कठिन है (दुस्त्यज्यं राज्यं), और भारतवर्ष आकर अपनी पवित्र इच्छाको पूर्ण किया।

उसके सम्बन्धमें यह भी लिखा है :—

"गंगाराज इति श्रुतो नृपगुण प्रख्यातवीर्य्यश्रुतिः ।"

अर्थात्—'गंगाराज नामक एक राजा था, जो अपने राजकीय गुणों और वीरताके लिए प्रसिद्ध था ।'

गंगाजीके दर्शनके लिए चम्पाके औपनिवेशिक भारतीयोंकी इसे प्रथम तीर्थयात्रा समझनी चाहिए। हमें चीन देशके अनेक बौद्ध-भिक्षुओंके भारतके बौद्ध तीर्थस्थानोंमें तीर्थयात्राके लिए आनेके अनेक दृष्टान्त ज्ञात हैं, मगर किसी हिन्दू धर्मावलम्बी औपनिवेशिक भारतीयके तीर्थयात्राके लिए भारत आनेका यह अनोखा उदाहरण है।

राजा गंगाराजने चम्पाके हिन्दू-राज्यपर सन् ४१३से ४१५ तक राज्य किया। उनसे पहले भी अनेक हिन्दू राजा चम्पाकी गद्दीपर बैठ चुके थे। चम्पामें पहला हिन्दू-राजवंश ईसाकी दूसरी शताब्दीके अन्तिम भागमें स्थापित हुआ था। उसकी नींव श्रीमार नामक राजाने डाली थी, अतः वह उसीके नामसे 'श्रीमार-राजकुल' कहलाता था। इस वंशके एक राजाने एक पवित्र स्थानमें पूजाके निमित्त बहुत बड़ा दान दिया था, उसके शिलालेखमें लिखा है कि समस्त 'रजतम सुवर्णं, स्थावरां, जंगमां' तथा अन्नके भाण्डार जो कुछ उसके पास था, उसने अपने प्रियजनोंकी भलाईके निमित्त दे डाला। अनेक भारतीय शिलालेखोंकी भाँति यह शिलालेख भी 'विदितं अस्तु' पर समाप्त होता है।

इस प्रकार भारतीयोंने चम्पामें एक फलता-फूलता उपनिवेश स्थापित किया था, जो पन्द्रह सौ वर्ष तक—ईसाकी दूसरी शताब्दीसे लेकर सोलहवीं शताब्दी तक—क़ायम रहा। सोलहवीं शताब्दीमें अनामी लोगोंने इन राजाओंके हाथसे शासन छीन लिया। भारतके साहसी पुत्रोंने सागरको पार करके चम्पाकी भूमिपर अपने देशका झण्डा गाड़ा, और पन्द्रह सौ वर्षके सुदीर्घ समय तक वे उस झण्डेकी सम्मानकी रक्षा करते रहे। चम्पाके राजा सुशासक होनेके साथ बड़े तेजस्वी और प्रभावशाली भी थे। उन्हें सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे, और वे 'पार्थिव परमेश्वर' कहे जाते थे। एक दूसरे शिलालेखमें राजाको चन्द्र, इन्द्र, अग्नि, यम और कुबेरका अंश कहा गया है। इन राजाओंके राजमहलोंमें भारतीय संस्कृतिकी छटा विराजमान थी। वे लोग अपने ब्राह्मणों, पंडितों, पुरोहितों, ज्योतिषियों और याजकोंके साथ भारतीय ढंगपर अपना दरबार किया करते थे।

नया राजा अभिषेकके दिन एक अभिषेक-नाम ग्रहण किया करता था, जिसे वह जीवन-भर धारण किये रहता था। वह एक धार्मिक नाम भी रखा करता था, इसीलिए हम देखते हैं कि चम्पाके एक राजाका अभिषेक-नाम शम्भू वर्मन था, परन्तु उसका धार्मिक नाम प्रशस्तधर्म था। अनेक भारतीय नरेशोंके समान चम्पाके राजाओंकी भी अनेक उपाधियाँ होती थीं। उदाहरणके लिए राजा हरिवर्मन 'श्री हरिवर्म देव राजाधिराज चम्पापुर परमेश्वर' के नामसे प्रसिद्ध था। एक दूसरा राजा विक्रान्त वर्मा 'श्रीमान् श्रीचम्पापुर-परमेश्वर महाराज श्रीविक्रान्त वर्मा' कहलाता था। इन्द्रवर्म देव नामक राजाने 'परम राजाधिराज'की उपाधि ग्रहण की थी। चम्पाके छठवें राजवंशके संस्थापकने 'श्रीजय इन्द्रवर्मन् महाराजाधिराज' की उपाधि ली थी। राजा परमेश्वर वर्मनकी प्रथमकी उपाधि 'धर्मराज' थी। इन भारी-भारी उपाधियोंको देखकर भारतवर्षके गुप्त और पाल-वंशीय सम्राटोंकी उपाधियोंका स्मरण हो आता है। केवल महाराजकी पदवीको भद्रवर्मनके समान राजाओंने भी ग्रहण किया था।

चम्पाके राजाओंके उत्तराधिकारी भी भारतीय प्रथाके अनुसार 'युवराज' कहलाते थे। उन्हें 'पुत्या' या 'पुल्यान' की 'चम' उपाधि भी होती थी। जब युवराज बड़ा हो जाता था, तब साधारणतया सेनापति या किसी प्रान्तका गवर्नर बना दिया जाता था। उदाहरण सुन लीजिये। श्रीविक्रान्त वर्मनको, जो क्षत्रियोंमें सबसे श्रेष्ठ था, पहले 'पुत्या'की उपाधि थी। उसे उसके पिता श्री हरिवर्म देव राजाधिराजने पांडुरंगपुरका शासक बनाया था, और फिर बढ़ाकर सेनापतिके पदपर किया नियुक्त था। न केवल राजाका

युवराज थे, बल्कि उसका भाई भी 'युवराज' कहलाता था। राजकुमार पान, जो बादमें राजा परम बोधिसत्व हुआ था और राजा हरिवर्मनका सहोदर था, 'पुल्यान श्री युवराज महा-सेनापति'के नामसे वर्णित किया गया है। यहाँ 'युवराज'की पदवी तथा अन्य पदवियाँ राजाके भाईको दी गई हैं।

चम्पाका सम्पूर्ण राज्य तीन प्रान्तोंमें विभक्त था, जिनमें प्रत्येकमें एक शासक रहता था। यह बात ध्यान देनेके योग्य है कि इन तीनों प्रान्तोंके नाम भारतीय हैं। वे नाम शायद भारतीय औपनिवेशिकोंने ही रखे होंगे। वे प्रान्त निम्न-लिखित थे :—

(१) अमरावती—यह चम्पाके उत्तरी भागमें था। फ्रेंच-विद्वान् एम० फिनात इसे वर्तमान 'क्वांग-नाम' बतलाते हैं। इस प्रान्तमें इन्द्रपुर नामक नगर और सिंहपुर नामक बन्दरगाह है। इन्द्रपुर एक समय चम्पाकी राजधानी था।

(२) विजय—यह चम्पाका मध्यभाग था। एम० फिनात इसे आधुनिक बिंग-दिन्ह बतलाते हैं। इसका प्रधान नगर सन् १००० से चम्पाकी राजधानी बनाया गया था। इसका बन्दरगाह श्रीविजय था।

(३) पांडुरंग—यह दक्षिणी चम्पामें था। यह भी कुछ दिन तक, जब पांडुरंगके प्रथम राजवंशके हाथमें शक्ति थी, चम्पाकी राजधानी रहा था।

यह बात अक्सर कही जाती है कि हिन्दूधर्म ऐसा धर्म है, जो अन्य धर्मावलम्बियोंको अपने धर्ममें नहीं मिलाता और उसने भारतके अपने परिमित घेरेके बाहर कभी अपना प्रभाव नहीं डाला, मगर हम देखते हैं कि चम्पामें हिन्दूधर्म सर्वप्रधान हो गया था, और उसने चम लोगोंको अपनी शीतल छायामें लाकर अपनी शक्ति और सजीवताका पूरा परिचय दिया था। देशके आदिम निवासियोंने भी हिन्दूधर्म ग्रहण कर लिया, और उन्होंने हिन्दू देवी-देवताओंकी पूजाके लिए अनेकों देवालय निर्मित किये। हिन्दू राजाओंने भी बहुतसे मन्दिर बनवाये थे, जो चम्पाके शिलालेखोंमें 'प्रासाद' और 'पूजा-स्थान' के नामसे उल्लिखित हैं। ये मन्दिर बहुधा ईंटोंके बने हैं। कुछ मन्दिर, जैसे 'श्रीशानभद्रेश्वर'का मन्दिर पत्थरके भी बने हैं।

हमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि चम्पामें जो हिन्दूधर्म प्रचलित हुआ, वह पुराना वैदिक धर्म नहीं था, बल्कि नया ब्राह्मण-धर्म था, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अन्य देवताओंकी प्रधानता है। हिन्दुओंकी त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—चम्पामें पूजी जाती थीं, परन्तु उनमें भी शिव-पूजनकी प्रधानता थी। यह बात देखी जाती है कि चम्पाके अधिकांश शिलालेखोंमें 'शिव' का जिक्र आता है। बहुतसे तो 'ओं नमः शिवाय' से प्रारम्भ होते हैं। भगवान शिव चम्पा-राज्यके इष्टदेवता माने जाते थे। एक लेखमें भगवान 'श्रीशानभद्रेश्वर' को चम्पा-राज्यका उत्पादक बताया गया है।

भगवान शिव चम्पामें अनेक भिन्न-भिन्न नामोंसे—जैसे 'महेश्वर', 'महादेव', 'परमेश्वर', 'शम्भू', 'शंकर', 'ईशान', 'रुद्र', 'महारुद्र देव', 'भीम', 'उग्र', 'भव', 'पशुपति', 'वामेश्वर', 'योगीश्वर' आदि—प्रसिद्ध थे। शिव त्रिमूर्तिके प्रधान और 'देवोंके देव'के नामसे सम्बोधित किये गये हैं। यह भी कहते हैं कि 'शिवने अपनी अलौकिक शक्ति और प्रसिद्धिके बलपर देवताओंमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था।'

चम्पाके मूर्तिकारोंने शिवकी मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपोंमें बनाई हैं, मगर उनमें भी लिंग-रूपमें शिवकी मूर्तिका अधिक प्रचार था। इस प्रकारके अनेक शिव-लिंग चम्पामें मिले हैं। इसके अतिरिक्त हमें एक और रूपकी भी मूर्तियाँ मिलती हैं, जो 'मुख-लिंग' कहलाता है।

चम्पामें शिवकी और साधारण रूपकी मूर्तियाँ भी मिलती हैं। एम० फिनातने टौरेनके दो प्राचीराङ्कित चित्रोंका वर्णन किया है, जिनमें शिव अपने नान्दीपर सवार हाथमें त्रिशूल लिये आक्रमण करते हुए दिखाये गये हैं। एक अन्य स्थानमें शिव भगवान खड़े रूपमें दिखाये गये हैं, और उनके छै भुजाएँ हैं। छै भुजाओंमेंसे दो तो सिरके ऊपर गुम्फित हैं

और शेष चारमें क्रमशः त्रिशूल, पद्म, खड्ग और खप्पर है। शिव भगवानका नटराज रूप, जो दक्षिण-भारतमें इतना प्रसिद्ध है, सुदूर चम्पामें भी पहुँच गया है।

टौरेनकी दीवारपर भगवान शंकर अपना ताण्डव-नृत्य करते हुए भी दिखलाये गये हैं।

उमा भगवती चम्पा उपनिवेशकी लोकप्रिय देवी थीं। पो नगरका देवालय, जो चम्पाके लोगोंका राष्ट्रीय देवालय हो गया था, उन्हींके निमित्त बनाया गया था। यह देवी उमा, गौरी, भगवती, महाभगवती, देवी और महादेवीके नामसे प्रसिद्ध थीं।

इनके अतिरिक्त चम्पामें अन्य देवी-देवताओंको भी पूजा होती थी, जिनमें (१) विष्णु, (२) लक्ष्मी, (३) ब्रह्मा, (४) गणेश, (५) कार्तिकेय, (६) इन्द्र, (७) यम, (८) चन्द्र, (९) सूर्य, (१०) कुबेर, (११) अग्नि, (१२) सरस्वती आदि हैं।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि चम्पामें यद्यपि हिन्दू-धर्म इतना अधिक प्रचलित हुआ, मगर बौद्धधर्म प्रचलित न हो सका। इसका कारण यह हो सकता है कि चम्पाके अधिकांश राजा हिन्दू-धर्मावलम्बी थे, और वे हिन्दू देवी-देवताओंकी पूजा और देवालयोंके लिए बड़े लम्बे-चौड़े दान दिया करते थे।

चम्पामें टूटी-फूटी बौद्ध-मूर्तियोंके जो चिह्न पाये गये हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि वहाँ हिन्दू-धर्मके साथ-साथ बौद्धधर्म भी मौजूद था, यद्यपि वह लोक-प्रियतामें हिन्दू-धर्मकी बराबरी नहीं कर सकता था। महान् चीनी यात्री इत्सिंगने लिखा है—"उस देशमें बौद्धधर्मावलम्बी साधारणतयः आर्यसमिति निकायके हैं।" इससे यह बात प्रकट है कि चम्पाके बौद्ध 'महायान' सम्प्रदायके थे।

चम्पामें भारतीय पठन-पाठनकी रीति भी प्रचलित थी। इस भारतीय उपनिवेशमें संस्कृतकी नियमित पढ़ाई होती थी और वही विद्वानोंकी भाषा भी बन गई थी। चम्पाके राजाओंके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके विद्वान थे। उदाहरणके लिए राजा भद्रवर्मनके विषयमें कहा गया है कि वह चारों वेदोंका ज्ञाता था। राजा श्री जयइन्द्र वर्म देव व्याकरणशास्त्र, होराशास्त्र, तत्त्वज्ञान (अर्थात् समस्त दर्शनशास्त्र), महायान तत्त्वज्ञान, नारदीय धर्मशास्त्र, और भार्गवीय धर्मशास्त्रका ज्ञाता बताया गया है। एक अन्य राजा, श्री इन्द्र वर्मन तृतीय भी षट्दर्शन, बौद्ध-तत्त्वज्ञान, पाणिनीके व्याकरण और काशिकावृत्ति, आख्यान और शैवोत्तर कल्पका विद्वान कहा जाता था।

भारतवर्षकी दोनों महान् गाथाएँ—रामायण और महाभारत—भी चम्पा-उपनिवेशमें प्रचलित थीं। चम्पामें हमें युधिष्ठिर, दुर्योधन, राम, कृष्ण, पांडु और धनंजय आदि व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख मिलता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि हमारे चम्पा-उपनिवेशमें संस्कृत-साहित्यकी निम्न-लिखित वस्तुओंका पठन-पाठन होता था—

१. चतुर्वेद
२. रामायण और महाभारत
३. षट्दर्शन
४. पाणिनकी व्याकरण और काशिकावृत्ति
५. होराशास्त्र
६. नारदीय शास्त्र
७. भार्गवीय शास्त्र
८. पुराण
९. शैवोत्तरकल्प

भारतके महानपुत्रोंने चम्पाके सुदूर देशमें जो सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया था, वह ऐसा था! ईस्वी सन्‌की दूसरी शताब्दीमें भारतीय चम्पामें गये, और वहाँ उपनिवेश बसाकर उन्होंने वहाँके आदि निवासियोंको नई सभ्यता और संस्कृति प्रदान की। चम्पामें भारतीय संस्कृति दस-बीस वर्ष ही नहीं चली, बल्कि पन्द्रह सौ वर्षसे अधिक फलती-फूलती रही! भारतने चम्पाको अपना धर्म—हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म, दोनों ही—अपना शिल्प और मूर्तिकला अपने राजकीय दरबारोंकी प्रणाली, अपनी सामाजिक संस्थाएँ—जैसे, वर्ण-व्यवस्था आदि—तथः अपना संस्कृत-साहित्य प्रदान किया। उस अतीत कालमें भारतवर्षका यह चिरस्मरणीय दान था।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

श्री प्रेमचन्दजीकी कहानियाँ

(मराठी भाषान्तर)

हिन्दी-भाषाके सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्री प्रेमचन्दकी प्रशंसा अनेक बार सुननेमें आई है। मैंने उनकी छोटी-छोटी कहानी हिन्दीमें पढ़ी भी हैं। उनसे उनका भाषाधिकार और लेखन-कौशल अच्छी तरह प्रकट होता है।

हालमें ही श्री प्रेमचन्दकी कुछ छोटी-छोटी कहानियोंका भाषान्तर मराठीमें भी हो गया है। भाषान्तरकार मराठी साहित्यके सुपरिचित श्री आनन्दराव जोशी हैं। उनकी हिन्दी और मराठीकी लेखन-शैली उत्तम है।

श्री प्रेमचन्दकी कहानियोंका अनुवाद मराठीमें हो जानेसे हिन्दी-मराठीके प्रेम और सहकारिताको उत्तेजन मिलेगा। उत्कृष्ट साहित्यका जन्म किसी भाषामें और चाहे जहाँ हो, उसका पठन-पाठन तथा संवर्द्धन करना सब प्रकारके समाजोंके लिए गौरवप्रद है। इस काममें प्रान्तिक, साम्प्रदायिक या धार्मिक विरोधकी गन्ध तक न होना चाहिए। सृष्टि देवीका वन-प्रदेश प्रत्येक प्रकारके जीवोंके लिए खुला रहता है। उसका उपयोग करनेके लिए प्रत्येकका जन्मसिद्ध हक़ है। साहित्यका अधिकार भी इसी प्रकार व्यापक और अभिन्न है। साहित्यकी उत्पत्ति मानव-विकासके लिए पोषक होती है, और मानव-विकास समाजको शान्तिप्रद बनानेमें कारणीभूत होता है, अर्थात् साहित्यका आदर्श समाज और समाजका आदर्शचिह्न उसका साहित्य है।

श्री प्रेमचन्दकी कथाओंमें भाषा-सौन्दर्य, प्रत्यक्ष सामाजिक घटनाएँ, सुन्दर सांसारिक सादगी इत्यादिके मनोहर दृश्य दीख पड़ते हैं, और रस-परिपूर्ण बातचीत पढ़ते समय पाठक उसमें तल्लीन हो जाता है। उसमें ऐतिहासिक समय और उस समयके वीर राजपूतवृत्तिके मनुष्य तथा उनके जन्मजात पराक्रमका सजीव चित्र खींचा गया है। राजपूत-जातिके ह्रास होनेका मुख्य कारण उनका स्वाभाविक उतावलापन—जो सर्वनाशकी नींव है—बड़ी खूबीके साथ बतलाया गया है।

पराक्रम, तेजस्विता और सहृदयता प्रारम्भसे ही राजपूतोंमें दिखलाई पड़ती है, परन्तु किसी बातका भी अतिरेक हो जानेसे उसके मूल तत्त्व लुप्त हो जाते हैं।

साहस, निर्भीकता और महत्त्वाकांक्षाका पुण्यस्थान राजस्थानकी पुण्यभूमि ही है। इस भूमिमें सैकड़ों शूर-वीरों और असंख्य पतिव्रता ललनाओंने जन्म लिया है। इतिहासके महत्त्वके स्थानोंकी रक्षा इन्होंने ही की है, परन्तु नाशकारी मद्यपानके व्यसनसे प्रस्तुत समयमें राजपूत शब्द अर्थशून्य दीखने लगा है। आह! कैसा दुष्परिणाम! देवीशक्ति-सम्पन्न पत्नी, स्वर्गतुल्य राज्य, ऐश्वर्य एकनिष्ठ सेवक, शस्त्रास्त्र-सज्जित सेना आदि सामग्री होते हुए भी राजस्थान परतंत्र क्यों हो गया? इसके कारणोंको तलाश करना चाहिए।

प्रेमचन्दके कथानक तत्त्वयुक्त होते हैं। लेखनीकी पवित्रता सम्हाले रहनेका उनका ढंग प्रशंसनीय है। सामाजिक प्रसंग तो उपयुक्त हैं ही, साथ-ही उनकी भाषा-रचना अर्थपूर्ण और मधुर है। प्रेमका व्यर्थ दिखलावा इसमें नहीं है और मर्यादाका अतिक्रमण भी नहीं किया गया।

मराठीमें इस ढंगके कथा-लेखक—मेरे विचारसे—दो ही हैं; एक पि॰ सि॰ गुर्जर और दूसरे वि॰ स॰ खांडेकर। इनकी रचना भी सादी, साथ ही मधुर होती है।' हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए तो प्रेमचन्दकी रचनाएँ अभिमानपूर्ण हैं ही, अब मराठीमें भाषान्तर हो जानेसे मराठी भाषा-भाषियोंको भी उनके भाषा-माधुर्यका अनुभव हो सकेगा। लेखकपर एक महत्त्वका उत्तरदायित्व रहता है। वह समाजका पथप्रदर्शक होता है। मन बहलावके साथ ही जनताके अन्तःकरणमें एक प्रकारका सदुपदेश भर देनेका उत्तरदायित्व-पूर्ण काम भी उसपर रहता है। उसके शिक्षकका काम

पाठककी दृष्टि करती है। इतना ही नहीं, बरन् प्रारम्भमें लेखक पाठकोंका विद्यार्थी समझा जाता है, ऐसा कहें तो भी ठीक होगा। इसलिए सुयोग्य लेखकको सदैव उच्च ध्येय रखकर अपनी जवाबदेही समझकर उत्तम साहित्य निर्माण करना चाहिए। लेखकोंका यही धर्म है, यही कर्तव्य है। लेखक अनेक पीढ़ियोंके मार्गदर्शक होते हैं। तरुण स्त्री-पुरुषोंकी मनोभूमिका तैयार करनेका काम लेखकपर अवलम्बित रहता है। प्रस्तुत समय अनुकूल या प्रतिकूल बना देनेका सामर्थ्य भी लेखकोंके हाथमें है। तलवारसे भी अधिक परिणामकारक काम लेखनी कर सकती है। आधुनिक समयमें साहित्य-सेवियोंकी कक्षा श्रेष्ठ मानी जाती है। समाजकी रीति-रस्म समझा देनेका काम साहित्यमें ही दिखलाई पड़ता है।

सामाजिक उच्चता, उसकी पद्धति और स्वाभिमान देखनेका स्थान साहित्य ही है। जैसा साहित्य, तैसा समाज। प्रेमचन्दकी कथामें उत्तर हिन्दुस्तानकी रीति-भाँति देखनेको मिलती है। पात्रोंके नाम, स्थल-वर्णन, समाज आदि सब प्रकार भली-भाँति दृष्टिगोचर होता है। पाठिकाएँ और पाठक उनकी रचनाओंको निस्संकोच पढ़ सकते हैं, और मनोरंजनके साथ-साथ उपदेश भी ग्रहण कर सकते हैं।

—श्रीमती सौ० कमलाबाई किबे

चित्र-संग्रह

श्रीयुत मंचेरशाह अवारी

मध्यप्रान्तके सुप्रसिद्ध सत्याग्रही वीर श्रीमंचेर शाह अवारीको सरकारकी जेलमें पड़े हुए तीन वर्ष हो गये। श्रीयुत आवारी भारतकी उन दुर्दमनीय आत्माओंमेंसे हैं जिन्हें अपने देशकी दासता एक क्षणके लिए भी सह्य नहीं है। वे पारसी जातिके हैं, मगर वे उन पारसियोंमेंसे नहीं है, जो अपनेको भारतीय नहीं मानते। वे पक्के भारतीय हैं, उनके हृदयमें देशकी लगन है। वे देश स्वाधीनताके लिए गत तीन वर्षसे सरकार जेलकी महमानदारी कर रहे हैं। उनके सत्याग्रहका वृत्तान्त समाचार पत्रोंके सभी पाठक जानते हैं। उन्होंने मुकदमेमें अपना जो ओजस्वी बयान दिया था, वह आज भी देशके अनेक नवयुवकोंको याद होगा। उन्हें जो सज़ा मिली थी वह उनके अपराधके लिए—जिसे कोई भी स्वाधीनताप्रिय न्यायपरायण आदमी अपराध नहीं कह सकता—बहुत अधिक थी।

मगर इतनेपर भी नौकरशाहीके अधिकारियोंको सन्तोष नहीं हुआ। जेलमें उनके साथ जो व्यवहार हुआ था उसके प्रतिवादमें उन्हें अनशन करना पड़ा था।



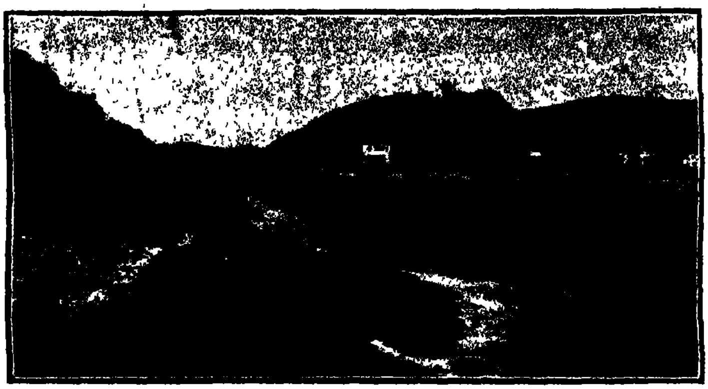
जनरल मंचेरशाह अवारी

यह कितनी निष्ठुरता और हृदय-हीनताकी बात है कि तीन वर्षके इस सुदीर्घकालमें सरकारने श्रीयुत अवारीके एक भी मित्रको उनसे भेंट करनेका अवसर नहीं दिया। इस बीचमें—गत १८ दिसम्बरको—अवारीजीके पूज्य पिताका देहान्त हो गया, और आजकल उनकी वृद्धा माता भी बहुत बीमार हैं। अवारीजीकी अनुपस्थितिमें उनके परिवारकी आर्थिक दशा भी कुछ विश्रृंखल हो गई है। मराठी-मध्यप्रादेशिक-काँग्रेस-कमेटीके मंत्री श्री पूनमचन्द रकाने गत २६ फरवरीको नागपुर सेन्ट्रल जेलके सुपरिंटेन्डेन्टको पत्र लिखकर श्री अवारीसे भेंट करनेकी इजाज़त चाही, मगर जेल-अधिकारियोंने वही हृदयहीन उत्तर दे दिया कि उन्हें भेंट करनेकी आज्ञा नहीं मिल सकती। एक ओर तो वायसरायकी एक्सक्यूटिव कौंसिलके सदस्य मि० क्रेरार राजनैतिक क़ैदियोंके साथ अच्छा व्यवहार किये जानेकी व्यवस्था देते हैं, और दूसरी ओर सरकारके अधिकारियोंका यह मनुष्यता-हीन व्यवहार क्या ही अच्छा! हो कि सरकारी कर्मचारी थोड़ी सहृदयताका परिचय दें।

—

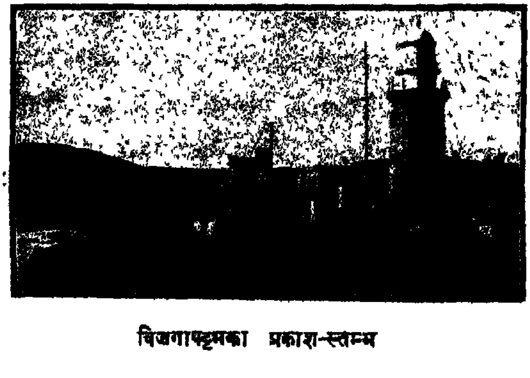
विज़गापट्टमका बन्दरगाह

विज़गापट्टमको बन्दरगाह बनानेकी बात बहुत दिनोंसे हो रही थी, मगर अब वह सचमुच कार्यमें परिणत हो रही है। भारतवर्षमें अच्छे स्वाभाविक बन्दरगाहोंकी बहुत कमी है। इतने बड़े देशमें कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और कराचीके बन्दर ही प्रसिद्ध बन्दर हैं। इनमेंसे कलकत्ता हुगली नदीके किनारेपर है, जिसमें भारी जहाज नहीं आ सकते। मद्रासका बन्दर कृत्रिम बन्दरगाह है। कलकत्तेसे लेकर मद्रास तक लगभग सात सौ मील लम्बे समुद्र-तटमें एक भी बड़ा बन्दरगाह नहीं है। अब विज़गापट्टमका बन्दरगाह बन जानेसे कलकत्ते और बम्बईके बन्दरगाहोंकी भीड़-भाड़में कुछ कमी होगी। विज़गापट्टम बंगाल-नागपुर रेलवेपर स्थित है। मद्रास एण्ड सदर्न मराठी रेलवेकी भी एक शाखा वाल्टेयर तक आती है। विज़गापट्टमसे बंगाल-नागपुर रेलवेकी एक सीधी शाखा मध्य-प्रदेशमें रायपुर तक गई है। विज़गापट्टममें बन्दरगाह बन जानेसे मध्य-प्रदेश और मध्य-भारतका तमाम माल अनायास ही जहाज़ों तक पहुँच सकेगा।

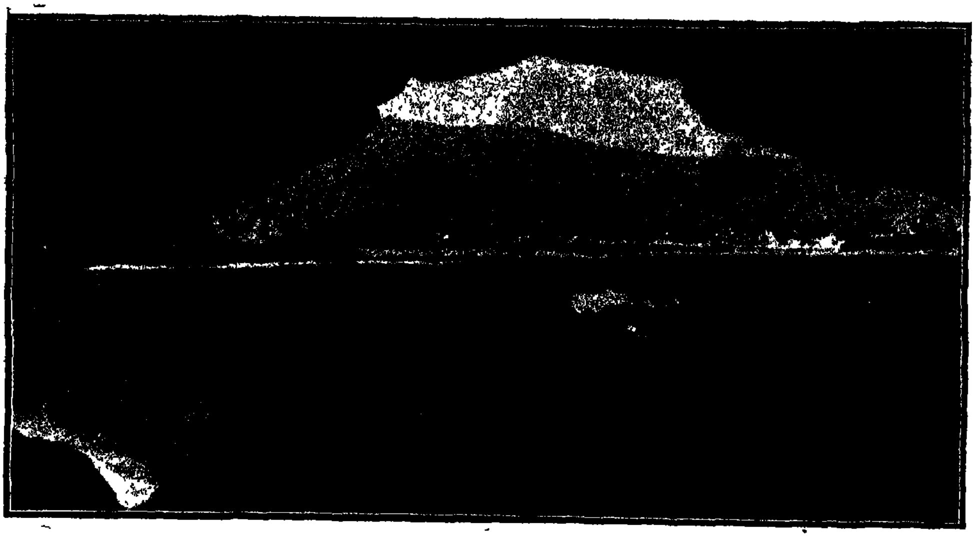


विज़गापट्टम बन्दरगाहका मुहाना

विज़गापट्टम मौर्यकालीन नगर है, जिसका शुद्ध नाम 'विशाखपट्टम' था। वह समुद्र-तटपर पहाड़ीपर बसा हुआ है। उसका एक भाग वाल्टेयर कहलाता है। वाल्टेयर और विज़गापट्टम अपने उत्तम जलवायुके लिए प्रसिद्ध हैं। वहाँकी समुद्री हवा बड़ी स्वास्थ्यप्रद है। वे एक प्रकारसे सेनीटोरियम समझे जाते हैं।



विज़गापट्टमका प्रकाश-स्तम्भ



'डालफिन नोज' नामक पहाड़ी गुफाके भीतरसे विजगापट्टमका दृश्य



विजगापट्टमका विहंगम दृश्य

पहाड़ियोंसे घिरे होनेके कारण विज़गापट्टममें स्वाभाविक बन्दरगाह बनानेका बड़ा अच्छा स्थान है। यहाँका बन्दरगाह ऐसा सुरक्षित होगा, जहाँ बड़ेसे बड़े तूफ़ानके समय भी जहाज़ हिफ़ाज़तसे रह सकेंगे।

बन्दरके लिए दस वर्ग-मील स्थान अधिकृत कर लिया गया है। इसके लिए सत्ताईस लाख रुपयोंकी मंजूरी और भी हो चुकी है। बन्दरके साथ, जहाज़ोंकी मरम्मतके लिए 'डक' और जहाज़ बनानेके कारखानेके लिए भी शायद स्थान रहेगा।



एक पुराने फ्लेमिश चित्रकारकी कल्पनामें नरकका दृश्य

नर्कका ताप और शीत

पुराने समयके धर्म याजकगण जनसाधारणको पाप-पथसे दूर रखनेके लिए उन्हें नर्कके कष्टोंका डर दिखाया करते थे। पुराने चित्रकारोंने नर्क या जहन्नुमकी अनेक तसवीरें भी बनाई हैं। इन तसवीरोंमें पापियोंको भाँति-भाँतिके कष्ट दिखाये गये हैं। इन कष्टोंमें सबसे भयंकर कष्ट अग्निमें जलाना या सर्दीमें ठिठुराकर मारना था, परन्तु प्राचीन कालके लोग आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानसे एकदम अनभिज्ञ थे। अतः उस समयके चित्रकारों और धार्मिक लेखकोंने नर्ककी ज्वाला और शीतके भयंकरताके जो चित्र खींचे हैं, वे आजकलकी साइन्सके अधिकारोंके आगे बच्चोंके खेलके सदृश मालूम होते हैं। पुराने समयके लोग सर्दीको ही शीतकी भयकर पराकाष्ठा समझ लेते थे। समुद्रका पानी ३२ डिग्रीके टेम्परेचरपर जम जाता है, परन्तु आजकलके वैज्ञानिक लोग अपने कुछ प्रयोगोंके द्वारा हवाको भी इतना ठंडा कर देते हैं कि वह जमकर नीले पानीके रूपमें तरल हो जाती है। इस तरल वायुका टेम्परेचर शून्यसे ३१० डिग्री नीचा होता है। इसी प्रकार 'हीलियम' नामक पदार्थ—४५८ डिग्री तक ठंडा किया जा सकता है। इस ठंडकके सामने बर्फके टुकड़ेको अंगारेकी तरह गर्म समझना चाहिए।

दूसरी ओर पुराने लोग मामूली आगकी लपटको ही गर्मीकी हद समझ लेते थे, मगर आजकलके वैज्ञानिक आक्सिजन और हाइड्रोजनके मेलसे ३६०० डिग्रीकी गर्मी पैदा कर देते हैं और आक्सिजन और एसेटिलीन गैससे ६००० डिग्रीकी उष्णता उत्पन्न कर देते हैं। इस पिछली गर्मीकी लौ चौथाई इंच मोटी इस्पातकी चद्दरको ऐसी आसानीसे भेद सकती है, जैसे गर्म चाकू जमे हुए घीमें घुसता हो!

यदि पुराने चित्रकारों और धर्म-याजकोंको इस भयंकर



एक आधुनिक वैज्ञानिक भयंकर उष्णता उत्पन्न कर रहा है

शीत और तापका ज्ञान होता, तो अलबत्ता वे नर्ककी भयंकरता दिखानेमें समर्थ हो सकते थे।

यहाँ एक फ्लेमिश चित्रकारका बनाया हुआ नर्कका चित्र दिया जाता है। चित्रमें ईसा मसीहका नर्कमें आगमन दिखाया गया था। एक दूसरे चित्रमें आजकलका एक आधुनिक वैज्ञानिक भयंकर टेम्परेचरकी गर्मी उत्पन्न कर रहा है।

सूर्य-रश्मियोंका उपयोग

आजकल संसारका अधिकतर काम कोयले या मिट्टीके तेलसे चला रहा है। भूगर्भमें इन पदार्थोंके बड़े-बड़े भंडार भरे हैं, जहाँसे इन्हें निकालकर लोग इनका उपयोग करते हैं। संसारमें इनका व्यवहार दिन-बदिन बढ़ता ही जाता है, इसलिए वैज्ञानिकोंको इस बातकी चिन्ता हो रही है कि इन पदार्थोंके भण्डार समाप्त हो जायँगे, तब क्या होगा? यद्यपि अभी हज़ार-पाँच सौ वर्ष तक इन भंडारोंके समाप्त होनेकी आशंका नहीं है, फिर भी वैज्ञानिकगण अभीसे उसकी चिन्तामें व्यग्र हैं।

वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तोंके अनुसार पृथ्वीपर कोयला, तेल, लकड़ी आदिमें जितनी शक्ति है, वह सूर्यसे आई हुई है। सूर्यसे प्रतिवर्ष न मालूम कितनी शक्ति पृथ्वीपर आया करती है, जिसका प्रायः बहुत बड़ा भाग व्यर्थ जाता है। सैकड़ों वर्षोंसे संसारके वैज्ञानिक इस शक्तिको काममें लानेके लिए कोशिश कर रहे हैं, मगर अभी तक वे कोई ऐसा आविष्कार नहीं कर सके, जिससे सूर्यके तापसे मशीन आदि चल सकें या बिजली उत्पन्न हो सके। हाँ, वे लोग सूर्य-रश्मियोंसे चूल्हेका काम लेनेमें समर्थ हो सके हैं।

एक चौखटेमें बहुतसे शीशे लगा दिये जाते हैं। यह चौखटा चर्खीपर चढ़ा रहता है, जो सूर्यकी गतिके अनुसार हिलाई-डुलाई जाती है। इन समस्त शीशेके टुकड़ोंका प्रतिबिम्ब एक ही स्थानपर पड़ता है। इस केन्द्रीभूत प्रतिबिम्बमें तेज़ गर्मी उत्पन्न हो जाती है। जहाँ यह प्रतिबिम्ब पड़ता है, वहाँ एक हलकी धातुका बर्तन लगा रहता है, जिसमें शीघ्र ही उबलनेवाला कोई तरल पदार्थ—जैसे, अमोनिया, सल्फर डी आक्साइड आदि—भरा रहता है। सूर्यकी गर्मीसे यही पदार्थ गर्म हो जाता है, और उसकी गर्मीकी सहायतासे अन्य काम लिए जा सकते हैं।

यहाँपर अमेरिकाके डाक्टर एबट नामक एक वैज्ञानिकके बनाये हुए चूल्हेका चित्र दिया जाता है।

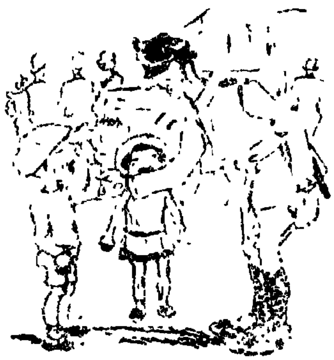


डा० एबटका बनाया हुआ 'भानु-ताप' चूल्हा

इस प्रकारका चूल्हा पहले एक भारतीय सज्जनने बनाया था, जो सन् १९१० की प्रयागकी प्रदर्शिनीमें प्रदर्शित किया गया था। वह 'भानु-ताप'के नामसे प्रसिद्ध था। वह बिलकुल इसी ढंगका था, केवल उसमें गर्मी एकत्रित करने वाला बर्तन नहीं था। उसमें केन्द्रीभूत प्रतिबिम्बकी गर्मीसेही भोजन इत्यादि तय्यार होता था।



मोटरवाला— 'दौड़कर ज़रा डाक्टरको तो बुला लाओ।"
देहाती—"मैं नहीं ला सकता।"
—"क्यों?"
—"डाक्टर तो आपके मोटरके नीचे पड़े हैं।"



"रोते क्यों हो?"
"भीड़में हमारे बाप कहीं खो गये!"
"क्या तुम्हें अपने घरका रास्ता नहीं मालूम?"
"हमें तो मालूम है—बापको नहीं मालूम।"



"कहिये, कोई विशेष राग सुनाऊँ?"
"नहीं, मेरी श्रीमती गूंगी और बहरी है।"



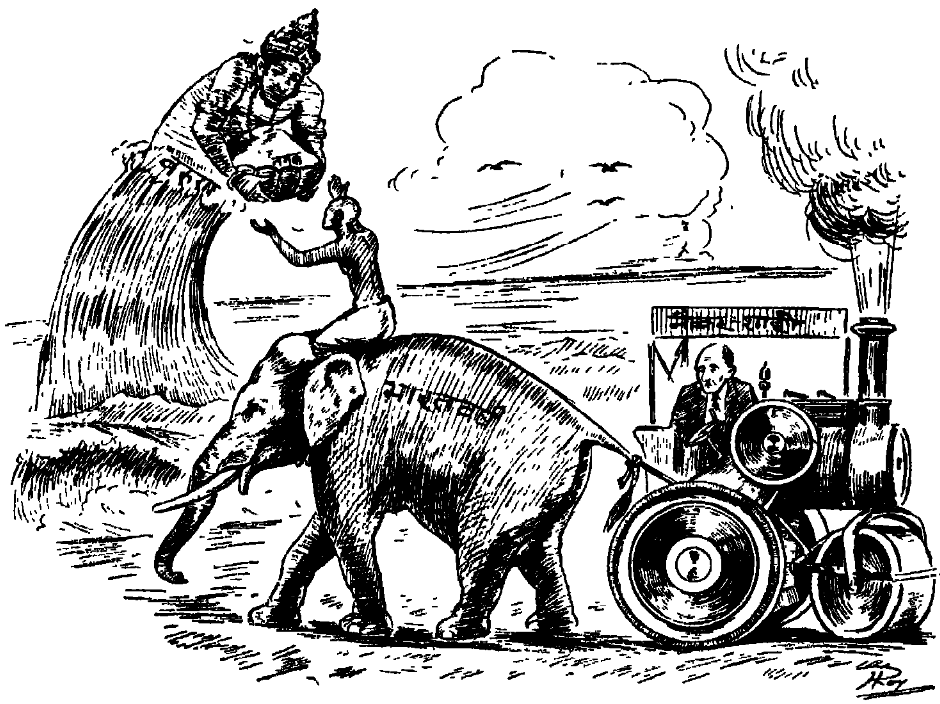
खरीददार मेम—"तुम्हारी दूकानमें जो कुछ था, सब दिखला चुके या अभी कुछ बाक़ी है?"

दूकानदार—"कुछ बाक़ी है। खातेमें आपके नाम कुछ रक़म बाक़ी लिखी है, उसे भी देख लीजिए।"



एक डाक्टर दूसरे डाक्टरसे, जिसका निदान उससे नहीं मिलता—"अच्छा, आप अपनी रायके अनुसार इलाज कीजिए, मगर शव-परीक्षा (पोस्ट मारटम) में मालूम हो जायगा कि मेरा निदान ही ठीक है।"

लवण-समस्या



वरुणदेव (समुद्र) भारतको नमक दे रहा है
और नौकरशाही उसमें बाधा डाल रही है !

सूखा पेड़

[लेखक—श्री 'केसरी']

प्रिय पादप ! सुन्दर उपवनमें था न तुम्हारा कोई सानी ।
हरे-भरे थे सौम्यमूर्ति ! सहृदय शीतल छायाके दानी ।
किन्तु हाय ! अवलोक आज तुमपर निष्ठुर विधिकी मनमानी ;
रो देता है हृदय, बरसता आँखोंसे करुणाका पानी ।
पतनोन्मुख कंकाल-मात्र अवशिष्ट तुम्हारी दुखद निशानी ;
सुना रही जगको उन्नत जीवनकी अन्तिम करुण कहानी ॥

× × × ×

उजड़े-से मैदान-मध्य एकान्त प्रकृतिकी रम्य कुटी-सी—
शीतल शान्तिमयी छाया तव, जनक-ललीकी पंचवटी-सी—
कहाँ ! आह ! अब, कितनी उष्मा शीतमयी ऋतुओंकी मारी ;
नित्य नवीन पीन हँसती कतनार डलियाँ प्यारी-प्यारी !
वे पल्लव सुकुमार श्याम भौंरे-से छोटे-बड़े सलौने ;
विहग-बालिके ! कहाँ तुम्हारे बचपनके प्रिय मंजु खिलौने ?
भूली-सी रवि-रश्मि बाल पाकर तब मजु प्रवाल-बिछौना,
ठहर तनिक अँगड़ाई लेती रचती चित्र विचित्र सलौना ॥
किन्तु निरंकुश देव ! न होगा यहाँ कभी वह स्वर्ण-सवेरा !
जा वसंत ! जा भूल समय वह, व्यर्थ यहाँ अब तेरा-डेरा ।
यहीं हरित शाखापर तेरी ही बैठे ऋतुपतिकी रानी—
पंचम स्वरमें कलित काकलीसे करती प्रियकी अगवानी ।
अलसाया-सा सान्ध्य अनिल अन्तिम मर्मर-ध्वनि कर सोता था,
यहीं सदा चिर विरही एक पपीहा 'पी' 'पी' कह रोता था ।
प्रात वियोग प्रदोष मिलन पक्षी-द्वयका सदैव होता था ;
यहीं सदा परिक्लान्त बटोही तनिक बैठ पथ-श्रम खोता था ।
यहीं पासकी बस्तीके आतप-आकुल कृषकोंकी टोली,
आकर ग्रीष्म-दुरन्त-दुपहरीमें गाती रागिनियाँ भोली ।
हुआ पराया किन्तु आज वह खग-समाज जो था कल अपना ।
हुआ हाय ! क्रीड़ा-कलाप वह, कृषकोंका भूला-सा सपना ।
कृषक छोकरी वह मराल छौनी-सी नव परिणीता बाला—
गूँथा करती जो बचपनमें यहीं सदा पत्तोंकी माला—
यहीं झूलने वह 'सावनमें' झूला ललक-भरी आवेगी ;
देख तुम्हें यों सखे ! हाय ! कितना दुख वह बाला पावेगी ।
पत्ता-पत्ता जिसे विटपवर ! तेरा बचपनमें था प्यारा ;
क्यों न गिरावे तेरी स्मृतिमें वह अविरल आँसूकी धारा ।

× × × ×

मन मसोस बूढ़े कहते—'झंखाड़ खड़ा हा ! कलका पौदा ।'
मूढ़ ! जगत् अनित्य नश्वर है, ज्यों बच्चोंका क्षणिक घरौंदा ।
कवि कहता 'कविते ! गाओ, गाओ सुयशीकी सुयश कहानी ।
अमर रहेगी विटप ! तुम्हारी नश्वर जगमें कीर्ति-निशानी ।'*

---

* यह 'सूखा पेड़' मुझे अत्यन्त प्रिय था । बचपनकी बेहोश घड़ियाँ बहुधा यहीं बीती थीं । गत वर्षकी गरमी भी इसीकी शीतल छायाके कारण अधिक कष्टप्रद न हुई । इस वर्ष 'वसंत'के आनेके पूर्व ही यह वृक्ष सहसा आप-से-आप सूख गया ! गाँवसे नजदीक मैदानमें स्थित होनेके कारण यहाँ सबका आना-जाना होता था । कालेजसे छुट्टी पाकर ग्रीष्मकी दुपहरी यहीं बितानेकी इच्छासे कितनी उत्कण्ठाके साथ मैं घर आता था, पर अब वह नहीं ! झंखाड़ !

—केसरी

हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें श्रीरामनरेश त्रिपाठीका खरगोश



'हिन्दी-लेखक कुल जमा ३०० शब्दोंके घेरेमें घूमते रहते हैं'— श्री त्रिपाठीजीकी इस युक्तिने साहित्य-सम्मेलनके दो प्रधान श्रीमान् महात्मा गान्धीजी तथा विद्यार्थीजीको चक्करमें डाल दिया है।

सम्पादकीय विचार

लिबरल-दल और सत्याग्रह-संग्राम

स्वर्गीय मि० गोखलेके जीवन-चरितमें हमने कहीं पढ़ा था कि जिस समय महात्मा गान्धी दक्षिण अफ्रिकामें अपना संग्राम चला रहे थे, उस समय मि० गोखले यहाँ भारतमें अत्यन्त चिन्तित रहते थे। वहाँ महात्माजीके जेल जानेपर यहाँ रातको मि० गोखलेको ठीक तरहसे नींद नहीं आती थी। एक बार दिल्लीमें वे रातके दो-तीन बजे जग रहे थे। उस समय उनके एक शिष्यने उनसे निवेदन किया—"आप इतनी देर तक जागकर क्या अपना स्वास्थ्य खराब कर लेंगे? आप सोते क्यों नहीं?" उन्होंने उत्तर दिया था—"मि० गान्धी दक्षिण अफ्रिकामें जेल भोग रहे हैं, मैं कैसे आरामकी नींद सोऊँ?" मि० गोखले सच्चे लिबरल थे। उनके हृदयमें देश-प्रेमकी अग्नि थी, विचारोंमें उदारता थी और वे अपनेसे अधिक गरम लोगोंको मूर्ख नहीं समझते थे। क्या आज नरम-दलवाले मि० गोखलेकी नीतिका पालन कर रहे हैं? श्रीयुत गोखलेकी भारत-सेवक-समिति द्वारा प्रकाशित 'सर्वेण्ट-आफ्-इण्डिया' के १३ मार्चके अग्रलेखको पढ़कर हमें इस बातमें आशंका होती है। लेखको पढ़कर यही निष्कर्ष निकलता है कि लेखक महोदय सत्याग्रहकी असफलता हृदयसे चाहते हैं। जितनी त्रुटियाँ निकाली जा सकती थीं, उतनी निकालकर ९॥ कालमका लम्बा लेख उन्होंने लिखा है। लेखक महाशय एक जगह लिखते हैं—

"It can be proved to demonstration that there are fewer Khaddar mad people in the country than before."

अर्थात्—'यह बात प्रत्यक्ष दिखलाई जा सकती है कि पहले देशमें जितने आदमी खादीके लिए पागल बने फिरते थे, उतने अब नहीं हैं।' मालूम नहीं लेखक महोदयने यह परिणाम कैसे और कहाँसे निकाला। यदि वे अखिल भारतीय चर्खा-संघकी रिपोर्ट ही देखनेका कष्ट उठाते, तो उन्हें इस बातका पता लग जाता कि १९२१ की अपेक्षा आज खादीका कम-से-कम बीस गुना अधिक प्रचार है।

अछूतोद्धार, देशी राज्योंमें कार्य इत्यादि आन्दोलनोंमें महात्माजी अथवा उनके अनुयायी काफ़ी साथ नहीं दे रहे हैं, यह भी अपराध उनपर लगाया गया है। महात्माजी इस समय अपनी सारी शक्तियोंका उपयोग ब्रिटिश-साम्राज्य-वादितासे लड़नेमें कर रहे हैं, और एक बुद्धिमान जनरलकी तरह वे उस शत्रुको, जो अनेक पापोंकी जड़ है, पराजित करना आवश्यक तथा उचित समझते हैं। इसके मुक़ाबलेमें देशी राज्योंका प्रश्न गौण है। 'सर्वेण्ट-आफ्-इण्डिया' के सम्पादक महोदयकी समझमें यह बात क्यों नहीं आती कि सत्याग्रहकी अग्नि जो आज देशमें व्याप्त होनेवाली है, उससे देशी राज्योंकी प्रजा कैसे बच सकती है? उदाहरणार्थ, गुजरात यदि देश-प्रेमकी अग्निसे प्रज्ज्वलित हो, तो बड़ौदा राज्यके निवासियोंका ख़ून ठंडा कैसे रह सकता है? मुख्य युद्धकी विजयका ज़बरदस्त प्रभाव छोटी-मोटी लड़ाइयोंपर पड़ेगा ही। रही अछूतोद्धारकी बात, सो क्या इस समय कोई भी ऐसा भारतीय नेता है, जिसने अछूतोद्धारके लिए महात्माजीसे अधिक कार्य किया हो?

आगे चलकर लेखक महोदय लिखते हैं :—

"In his effort to justify his action Mahatma Gandhi is perforce required to paint British rule in darker colours than is warranted by the facts of the case. He rests his justification mainly on economic grounds which it would be charitable to suppose he only half understands."

अर्थात्—'अपने कार्य (सत्याग्रह) के औचित्यको प्रमाणित करनेके लिए महात्मा गान्धीको ज़बरदस्ती ब्रिटिश-शासनके कारनामोंको और भी काला पोतना पड़ता है, जितने काले

वे कारनामे दर असल हैं नहीं। गान्धीजी अपने कथनका आधार मुख्यतया आर्थिक कारणोंपर रखते हैं। हम उदारता-पूर्वक माने लेते हैं कि गान्धीजी इन आर्थिक कारणोंको आधा-परधा समझते हैं।'

इसका अभिप्राय यही है कि गान्धीजी आर्थिक प्रश्नोंको आधा-परधा भी नहीं समझते। गान्धीजी सीधी राहके चले हुए आदमी हैं। जब वे ब्रिटिश शासनमें गुणोंका आधिक्य देखते थे, तब उसके लिए अनेक बार उन्होंने अपने जीवनको संकटमें डाल दिया था, और अब जब वे उसमें अवगुणोंकी प्रधानता देखते हैं, वे उससे जी-जानसे लड़नेके लिए तैयार हो गये हैं। आर्थिक प्रश्नोंको महात्मा गान्धीजी अधिक समझते हैं या 'सर्वेण्ट-आफ्-इण्डिया' के सुयोग्य लेखक, इस प्रश्नका फैसला समय ही करेगा। हमें आशंका केवल यही है कि ब्रिटिश शासनकी कालिमा कम करनेके उद्योगमें कहीं लिबरल लोग अपना मुँह काला न कर लें।

असहयोगके दिनोंमें अनेक लिबरल नेताओंने सरकारका साथ देकर अपनी पार्टीके पैरोंमें जो कुल्हाड़ी मारी थी, उससे वह पार्टी अब तक खड़ी नहीं हो सकी। आगे चलकर चुनावमें लिबरल-पार्टीकी जो हार हुई, उसका मुख्य कारण इस पार्टीकी वह अदूरदर्शिता-पूर्ण नीति ही थी।

लिबरल-दलके नेताओंको यह बात समझ लेनी चाहिए कि आखिरकार देशका शासन-सूत्र उन्हीं लोगोंके हाथमें आयगा, जो इस स्वाधीनता-संग्राममें सबसे आगे बढ़कर भाग लेंगे। आयरलैण्डके वर्तमान शासकोंमें अनेक ऐसे हैं, जिन्होंने स्वाधीनता-संग्राममें जेल भोगी थी। हम लिबरल नेताओंका ध्यान प्रिंस क्रोपाटकिनके निम्न-लिखित वाक्यकी ओर आकर्षित करते हैं :—

"जिस दिन काम करनेका समय आता है, जिस दिन सर्वसाधारण क्रान्तिके लिए धावा बोलते हैं, उस दिन उस पार्टीकी बात सबसे अधिक सुनी जाती है, जिसने सबसे अधिक हिम्मत और दुस्साहस दिखाया है। मगर जिस पार्टीमें इतना साहस नहीं कि वह अपने विचारोंको क्रान्तिकी तैयारीके ज़मानेमें क्रान्तिकारी कार्यों द्वारा प्रकट कर सके, जिस पार्टीमें इतनी शक्ति नहीं कि वह व्यक्तियोंको तथा जन-समूहको प्रोत्साहित कर सके तथा आत्म-त्यागके भावोंसे प्रेरित कर सके, जिस पार्टीमें यह ताक़त नहीं कि वह लोगोंमें अपने विचारोंको कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिए अदम्य इच्छा उत्पन्न कर सके, जो पार्टी यह नहीं जानती कि वह अपने झंडेको लोकप्रिय कैसे बनावे या अपनी इच्छाओंको किस प्रकार दूसरोंपर प्रकट करके समझा सके, ऐसी पार्टीको अपना कार्यक्रम पूरा करनेकी बहुत ही थोड़ी आशा है। देशके क्रियाशील दल उसे ढकेलकर एक ओर डाल देंगे।"

हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साथ गोरखपुरमें पत्रकार-सम्मेलनकी भी व्यवस्था की गई थी। उसका अधिवेशन ढंगके साथ नहीं हुआ, यह हम लोगोंके लिए—पत्रकारोंके लिए—लज्जाकी बात है। अनुभवसे यह सिद्ध हुआ है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी कार्रवाईके साथ-ही-साथ कोई

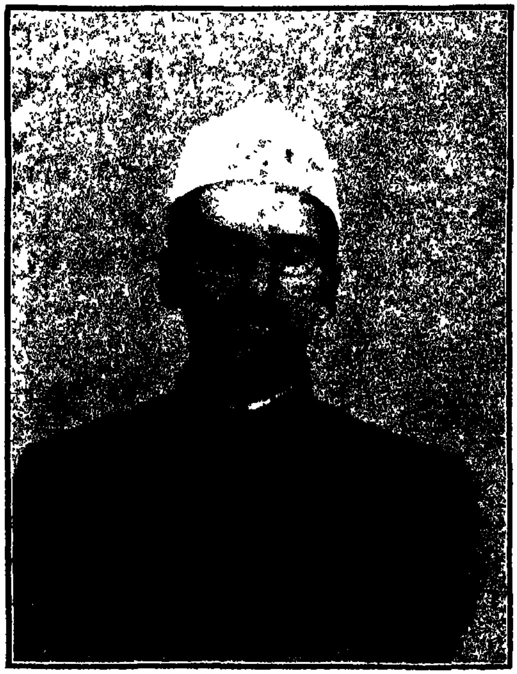


'श्रीकृष्ण-सन्देश'-सम्पादक पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे

भी दूसरा काम उचित रीतिसे नहीं हो सकता, इसलिए यह आवश्यक है कि पत्रकार-सम्मेलन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनके एक दिन पहले कर लिया जाय। गोरखपुरमें जिस समय पत्रकार-सम्मेलन हो रहा था, उसी समय हिन्दी-साहित्य-

सम्मेलनकी विषय-निर्धारिणी-समितिकी कार्रवाई हो रही थी, अतएव १५।२० पत्रकारोंसे अधिक वहाँ उपस्थित नहीं हो सके। यद्यपि सभापति महोदय श्री लक्ष्मणनारायणजी गर्देने अपना भाषण लिखकर न लानेकी भयंकर भूल की थी, (प्रचारकी उपेक्षा करना पत्रकारके लिए भयंकर भूल ही कहलायेगी), फिर भी जो कुछ उन्होंने कहा, उससे प्रकट होता था कि उन्होंने इस विषयपर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया है। यदि सभापति महोदय अपना लिखा हुआ भाषण लाते, तो आज वह सब पत्रोंमें प्रकाशित हो गया होता, और उनके वे उपयोगी विचार, जो उन्होंने हम इने-गिने लोगोंके सम्मुख प्रकट किये थे, साधारण जनता तक पहुँच गये होते।

प्रारम्भमें सभापतिजीने इस बातपर खेद प्रकट किया कि हिन्दी-पत्रकार सम्मेलनमें पत्रकारोंकी इतनी उपस्थिति है, और कहा—"इससे प्रतीत होता है कि अनेक पत्रकार हम लोगोंसे सहमत नहीं है और इस सम्मेलनकी आवश्यकताको अनुभव नहीं करते। साहित्य-सम्मेलनके साथ पत्रकार-सम्मेलन भी करनेसे साहित्य-सम्मेलनके कार्यमें बाधा पड़ती है, यह बात भी अनुभव होती है। फिर भी हम लोगोंको प्रति वर्ष कम-से-कम एकबार तो मिलकर अपने प्रश्नोंपर विचार कर लेना चाहिए। हिन्दी राष्ट्र-भाषा है, इसलिए उसके पत्रोंका महत्त्व भी अधिक होना चाहिए, पर हम देखते हैं कि हम लोग अपने गौरवको नहीं समझते।......यह तो आप जानते ही हैं कि हम सबको अंग्रेज़ी पत्र पढ़ने पड़ते हैं। अंग्रेज़ी पत्रोंमें कौनसी ऐसी बात है, जो हमारे यहाँ नहीं है? वही बात हम लोगोंको पैदा करनी चाहिए। यह प्रश्न ऐसा नहीं है, जिसका निर्णय एक-दो आदमी कर सकें, इसीके लिए संघकी आवश्यकता है। आपने शायद सुना होगा कि पूनाके 'केसरी' नामक पत्रने अपना एक विशेष संवाददाता मेसोपोटामिया और सीरिया आदिको भेजा है और उसकी मनोरंजक चिट्ठियाँ 'केसरी'में बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। हिन्दी-पत्रोंमें भी ऐसी चीज़ें प्रकाशित होनी चाहिए, जिनके पढ़नेके लिए अन्य भाषा-भाषियोंको हिन्दी-पत्रोंका आश्रय लेना पड़े। मुझे असहयोगके दिनोंकी एक बात याद है। उन दिनों प्रायः 'भारतमित्र'के किसी-किसी लेखका अनुवाद मद्राससे निकलनेवाले अंग्रेज़ीके पत्र 'स्वराज्य'में छपा करता था।



स्वर्गीय पं० नन्दकुमारदेव शर्मा

हम लोगोंने ऐसा प्रबन्ध किया था कि दूसरे पत्रोंमें छपनेसे एक दिन पहले कितने ही समाचार हमारे यहाँ छप जाते थे। अनेक काम ऐसे हैं, जिन्हें हम अकेले नहीं कर सकते, पर मिलकर कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, किसी एक हिन्दी-पत्रके लिए विदेशोंको अपना प्रतिनिधि भेजना कठिन होगा, पर कई पत्र मिलकर ऐसा आसानीके साथ कर सकते हैं। हमारे यहाँ सारा कार्य बड़े अनियमित ढंगसे हो रहा है। हमारे राष्ट्रपति श्री जवाहरलालजी नेहरूका भाषण हिन्दीमें हुआ था, पर वह 'आज' 'विश्वमित्र' और 'स्वतन्त्र' इन तीन पत्रोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें छपा था। अंग्रेज़ी पत्रोंमें जहाँ हमने उनका भाषण देखा, वही शब्द पाये, पर हिन्दी पत्रोंमें भिन्नता थी।.......नये शब्दोंके प्रयोगके विषयमें

भी हमारे यहाँ बड़ी गड़बड़ी है। 'सिविल डिसओबीडिएन्स' शब्दको ही लीजिए, कोई इसे 'भद्र अवज्ञा' कहता है तो कोई 'सविनय अवज्ञा', और कोई इसे 'सिविल नाफर्मानी' भी लिखते हैं। हम लोगोंको इस विषयमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। बतलाइये अंग्रेज़ीके शब्द 'Etra-territorial' के लिए हम क्या लिखें! अच्छा हो, यदि हिन्दी-पत्रकार मिलकर इस प्रकारके शब्दोंके उचित अनुवाद निर्धारित कर लें।······हम लोगोंका एक अपराध और भी है, वह यह कि हम लोग अपने बन्धुओंकी कुछ भी खोज-खबर नहीं लेते। उन्होंने हमारे देशके लिए क्या कार्य किया, उसकी चर्चा भी नहीं करते। स्वर्गीय वासुदेवजी मिश्रके साथ कई वर्ष तक काम करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था और हम कह सकते हैं कि उन्होंने हिन्दी पत्र-सम्पादन-कलाके लिए प्रशंसनीय कार्य किया। उनके स्वर्गवासके पश्चात् अधिकांश हिन्दी-पत्रोंमें उनके स्वर्गवासका समाचार भी नहीं प्रकाशित हुआ। यह हम लोगोंका छोटापन है।······एक बातकी ओर मैं आपका ध्यान और भी आकर्षित करना चाहता हूं, वह है सहकारी सम्पादकोंकी दुर्दशा। वेतन तथा छुट्टी इत्यादिके विषयमें उनको काफी शिकायत हैं। ये दूर होनी चाहिए। हमारे मालिकोंका बर्ताव भी कभी-कभी बड़ा विचित्र होता है: एक सम्पादकको अपने कर्तव्य-पालनके लिए साल-भरके कारावासका दण्ड मिला। सुना है कि पत्र-संचालक महोदयने उन्हें उन दिनोंका कुछ भी वेतन नहीं दिया! कम-से-कम इतना तो हम लोगोंको करना चाहिए कि हमारे भाई पत्रकारोंको जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, उनकी जाँच करें और यथा-सम्भव उनके दूर करनेका प्रयत्न करें।"

अन्तमें सभापति महोदयने कहा—"पत्रकार-समिति विशेष कार्य नहीं कर रही है, इसलिए कोई-कोई महानुभाव कहते हैं कि इसे तोड़ ही देना चाहिए। मेरी समझमें ऐसा करना अनुचित होगा। इसे तोड़ना तो ठीक नहीं। अवश्य ही यह दु:खकी बात है कि हमारे अनेक भाई पत्रकार इस समितिके कार्योंमें कोई दिलचस्पी नहीं लेते, पर यदि वे लोग, जो इसकी आवश्यकतामें विश्वास रखते हैं, इसके कार्यको लगनके साथ करते रहेंगे, तो एक समय ऐसा आयेगा, जब उन लोगोंको भी जो आज इसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, इसमें सम्मिलित होना ही पड़ेगा।

श्रीयुत विष्णुदत्तजी शुक्ल आगामी वर्षके लिए मन्त्री चुने गये। उनका पता है १२०।१, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।

हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलनके सभापतिके भाषणका सारांश भी आज २५ दिन बाद पहले-पहल एक मासिक पत्रमें छप रहा है! क्या यह बात हम लोगोंके लिए गौरव-जनक है?

सभापति महोदयने जो कुछ कहा, उससे प्रत्येक समझदार पत्रकार सहमत होगा। खासतौरसे उनकी यह खरी बात हमें बहुत सामयिक जँची, जिसमें उन्होंने पारस्परिक सहानुभूतिके अभावकी निन्दा की थी और अपने साथियोंके गुणोंकी क़द्र न करनेका दोषारोपण किया था। हम लोगोंका यह बहुत पुराना रोग है! हमें अच्छी तरह याद है कि स्वर्गीय रुद्रदत्त सम्पादकाचार्यकी मृत्युपर हिन्दीमें केवल एक पत्रको छोड़कर और किसी पत्रने विस्तृत लेख नहीं लिखा था, और वह पत्र था 'पाटलीपुत्र', जिसमें स्वर्गीय नन्दकुमार देव शर्माने अपने संस्मरण उनके विषयमें लिखे थे। अन्य दो-तीन पत्रोंमें दो-दो चार-चार लाइनमें उनके मृत्युपर खेद प्रकट करनेकी रस्म अदा कर दी गई थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वर्गीय रुद्रदत्तजीने ४०-४५ वर्ष हिन्दी-पत्रोंका सम्पादन किया था, और शायद ही कोई ऐसा प्रसिद्ध पत्र उन दिनों रहा हो, जिसका सम्पादन उन्होंने न किया हो। जब एक सम्पादकाचार्यकी यह उपेक्षा हुई, तो छुट-भाइयोंको पूछता ही कौन है! स्वर्गीय नन्दकुमारदेव शर्माके साथ भी वही बर्ताव हुआ। मध्यकालीन हिन्दी-जर्नेलिज्मका उनको बहुत अच्छा ज्ञान था। वे दर असल आधुनिक हिन्दी पत्रकारों और पुराने पत्रकारोंको जोड़नेवाले बीचकी कड़ी (Connecting link) थे। उनके स्वर्गवासपर 'अभ्युदय'ने तो एक अच्छी विस्तृत टिप्पणी लिखी थी, (उन दिनों स्वयं गर्देजी

'अभ्युदय'में काम करते थे), शेष पत्रोंमें 'प्रताप'को छोड़कर शायद शिष्टाचारकी रस्म भी पूरी नहीं की गई !

हिन्दीमें अनेक साधन-सम्पन्न प्रकाशक हैं। क्या कोई महानुभाव हिन्दी-पत्रकारोंके विस्तृत परिचय तथा चित्रोंसे युक्त एक पुस्तक भी नहीं प्रकाशित कर सकते ? हिन्दी-पत्रकारोंने राष्ट्र-भाषाके प्रचारके लिए जितना कार्य किया है, उतना दूसरे लोगोंने नहीं किया। उन्हींने साधारण जनतामें पुस्तक पढ़नेकी रुचि उत्पन्न की और उन्हींके तय्यार किये हुए क्षेत्रसे आज व्यापारी प्रकाशक खूब लाभ उठा रहे हैं। वास्तवमें ये प्रकाशक पत्रकारोंके ऋणी हैं। इस ऋणसे सर्वथा उऋण होना तो असम्भव है, पर इतना कार्य तो वे अवश्य कर सकते हैं। क्या वे इस ओर ध्यान देंगे ?

—

घासलेटी साहित्य और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने घासलेट-विरोधी प्रस्ताव पास करके हमारे बोझको हलका कर दिया है। गत पौने दो वर्षोंसे जो आन्दोलन इस बारेमें हो रहा था, उसके विषयमें यह एतराज़ किया जाता था कि यह व्यक्तिगत है। कई पत्र तो इस झगड़ेमें बिलकुल तटस्थ रहे थे, और एक दैनिक पत्रके सम्पादकसे जब प्रार्थना की गई कि आप इसपर कुछ लिखिये, तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि यह मामला अभी व्यक्तिगत है। हर्षकी बात है कि अब इस प्रकारका एतराज़ नहीं किया जा सकता। साहित्य-सम्मेलनके प्रस्तावमें पत्रकारोंसे अनुरोध किया गया है कि वे इस आन्दोलनको स्वयं उठावें। इस अनुरोधका पालन करना उनकी इच्छापर निर्भर है, किन्तु यह बात न भूलनी चाहिए कि अब यह किसी व्यक्ति-विशेषकी प्रार्थना नहीं है, यह हिन्दीकी सर्वमान्य और सर्वोच्च संस्थाका आदेश है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके एक भूतपूर्व सभापति महात्मा गान्धीजीने इस विषयपर जो अग्रलेख 'हिन्दी-नवजीवन'में लिखा है, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं। आशा है कि इससे हमारे पाठकोंको विश्वास हो जायगा कि 'विशाल-भारत'ने जो आन्दोलन उठाया था, वह नितान्त अनावश्यक नहीं था।

इस विषयमें हम इतना अधिक लिख चुके हैं कि अब अधिक लिखकर पिष्ट-पेषण नहीं करना चाहते। महात्माजीका यह लेख ही हमारी ओरसे अन्तिम कथन है, और जब तक कोई अनिवार्य आवश्यकता उपस्थित न हो, तब तक इस विषयपर हम मौन रहेंगे, और इस बातकी उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करेंगे कि हमारे सहयोगी अपनी सर्वमान्य संस्थाका आदेश कहाँ तक पालन करते हैं।

हिन्दी नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी ६, संवत् १९८६

गन्दा साहित्य

कोई देश और कोई भाषा गन्दे साहित्यसे मुक्त नहीं है। जब तक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनियामें रहेंगे, तब तक गन्दा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे। लेकिन जब ऐसे साहित्यका प्रचार प्रतिष्ठित माने जानेवाले अखबारोंके द्वारा होता है और उसका प्रचार कलाके नामसे या सेवाके नामसे किया जाता है, तब वह भयंकर स्वरूप धारण करता है। इस प्रकारका गन्दा साहित्य मुझे मारवाड़ी-समाजकी तरफसे मिला है, और प्रतिष्ठित मारवाड़ी लोगोंकी ओरसे प्रकाशित एक वक्तव्यकी प्रति भी मुझे भेजी गई है। इस वक्तव्यमें मारवाड़ी-समाजको आग्रह किया गया है, और बताया गया है कि ऐसे साहित्यका, जो कलाके नामसे, परन्तु केवल धन कमानेके लिए प्रकट होता है, समाजको बहिष्कार करना चाहिए। जिस पत्रको विशेषतया ध्यानमें रखकर यह वक्तव्य प्रकट किया है, वह 'चाँद' नामक मासिकका 'मारवाड़ी-अंक' है। मैं उसे पूरा पढ़ नहीं सकता और न पढ़नेकी इच्छा ही है, लेकिन जो कुछ मैं पढ़ सका हूँ, वह इतना गन्दा और बीभत्स है कि कोई भी मनुष्य, जिसके दिलमें विवेक है या समाजके हितका ज़रा भी ख़याल है, कभी ऐसी बातें प्रकाशित नहीं करेगा। सुधारके नामसे ऐसी चीज़ोंका प्रकट करना अनावश्यक और हानिकारक है।

'चाँद' के समान 'गन्दे गीत गानेवाले' लोग अखबार नहीं पढ़ा करते। पढ़नेवाले दो प्रकारके ही हो सकते हैं; एक पढ़े-लिखे कामुक लोग, जो अपनी वासनाको किसी-न-किसी प्रकार तृप्त करना चाहते हैं; दूसरे निर्दोष बुद्धि, जो आज तक व्यभिचारमें फँसे नहीं हैं; परन्तु जिनकी बुद्धि परिपक्व भी नहीं है, जो लालचमें पड़कर विकारवश हो सकते हैं। ऐसे लोगोंके लिए गन्दा साहित्य घातक है। यही सब लोगोंका अनुभव भी है। मुझे उम्मीद है कि प्रतिष्ठित मारवाड़ी सज्जनोंके वक्तव्यका असर 'चाँद' के सम्पादक इत्यादिपर होगा, वे अपने इस अंकको वापस ले लेंगे और दुबारा ऐसा गंदा साहित्य प्रकट न करनेकी कृपा करेंगे। इससे भी बढ़कर कर्त्तव्य तो इस बारेमें मारवाड़ी-समाजका और सर्वसाधारण समाजका है। वह ऐसा गन्दा साहित्य न कभी खरीदे और न पढ़े ही। हिन्दी-पत्रोंके सम्पादकोंके सरपर दोहरा बोझ है, क्योंकि हिन्दीको हम राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं, और इसलिए इस भाषाकी रक्षा करनेका विशेष धर्म उन्हें प्राप्त होता है। मेरे जैसा राष्ट्र-भाषाका पुजारी राष्ट्र-भाषामें उत्कृष्ट विचारोंको प्रकट करनेवाली पुस्तकोंकी ही प्रतीक्षा करेगा. इसलिए यदि सम्भव हो, तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको एक भाषा-समिति नियुक्त करनी चाहिए, जिसका धर्म प्रत्येक नई पुस्तककी भाषा, विचार आदिकी दृष्टिसे परीक्षा करना हो। इस परीक्षामें जो पुस्तकें सर्वोत्तम मानी जायँ और जो गन्दी ठहरें, समिति उनकी एक फेहरिस्त तैयार करे, और अच्छी पुस्तकोंका प्रचार तथा गन्दी पुस्तकोंका बहिष्कार करनेके लिए जनताको प्रेरित करे। ऐसी समिति तभी सफल हो सकती है, जब उसके सदस्य साहित्य-ज्ञान और साहित्य-सेवाके लिए अपने आपको अर्पित कर दें।

मोहनदास करमचन्द गान्धी

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

गोरखपुरमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जो अधिवेशन हुआ है, उसके विषयमें एक विस्तृत लेख हम इस अंकमें लिखना चाहते थे, पर कई कारणोंसे ऐसा नहीं कर सके। पाठक इसके लिए अगले अंककी प्रतीक्षा करें।

ईसाइयोंकी असहिष्णुता

सच्चे ईसाइयोंके प्रति हमारे हृदयमें किसी प्रकारका विद्वेष नहीं है, और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि ईसाई-मिशनरियोंसे हमें बहुत-कुछ सीखना है। उनकी धुन और लगन एक अनुकरणीय चीज़ है। यदि ईसाई-धर्मने साम्राज्यवादिताके साथ अपनेको सम्मिलित न किया होता, तो आज भारतीय समाजपर उसका कहीं अधिक प्रभाव होता; पर भारतमें ईसाई-धर्मकी नौका प्रायः गोरोंकी प्रभुता तथा ब्रिटेनकी साम्राज्यवादिताके खतरनाक भँवरमें घूमती रही है, और इसीलिए वह आगे नहीं बढ़ सकी। पहले ईसाइयोंने हिन्दीमें कई ऐसी भयंकर किताबें छपाई थीं, जिनमें हिन्दू-अवतारोंकी निन्दा की गई थी। मि० सी० ऐफ० ऐराडूज़, तथा अन्य सच्चे ईसाइयोंने इस प्रकारकी पुस्तकोंका घोर विरोध किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे किताबें बन्द कर दी गईं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि अब भी उस मनोवृत्तिका कुछ अंश बाकी है। काशीमें स्टेशनोंपर कुछ ईसाइन बुढ़ियां पैसे-पैसे दो-दो पैसेवाली किताबें बेचा करती हैं। गोरखपुर-सम्मेलनके लिए जाते हुए हमने एक बुढ़ियासे दस-बारह किताबें खरीद लीं, और उन्हें देखना प्रारम्भ किया। 'गुरुज्ञान' नामक पुस्तकपर 'पिलग्रिम्स-मिशन बनारस कैण्ट'की मुहर है। यह ट्रैक्ट 'एन० के० मुकर्जी, बी० ए०, सेक्रेटरी नॉर्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक-सोसाइटी, १८ क्लाइव रोड, इलाहाबाद' से एक पैसेमें मिल सकता है। 'गुरुज्ञान'में ६० प्रश्नोत्तर हैं। अन्तिम प्रश्न और उत्तर इस प्रकार है—

६० प्रश्न—कौनसे लोग नरकमें डाले जायँगे ?

उ०—लिखा है कि डरनेवाले और अविश्वासी और घिनौने। और हत्यारे, और छिनले, और टोन्हे, और मूरत-पूजनेवाले और सारे झूठे सब अपना-अपना कुभाग उस झीलमें, जो आग और गन्धकसे जल रही है, पावेंगे।

हमने उस बुढ़ियाको बुलाकर कहा—"देख बुढ़िया माई, हमारी वृद्धा माता मूरत-पूजनेवाली हैं। वे श्रद्धासे काशी-स्नान करने आती हैं। क्या आप उनसे यह कहोगी कि तुम नरकमें डाली जाओगी ? क्या ऐसा कहना ठीक है ?" बेचारी बुढ़िया सटपटा गई। बोली— 'बेटा, यह किताब मेरी लिखी हुई नहीं है। ईसाई होनेसे पहले मैं भी मूरत पूजती थी।

यह किताब किसी साधुकी लिखी हुई है।" हमने कहा—"किताब चाहे जिसकी लिखी हुई हो, पर ऐसी किताबका बेचना नामुनासिब है।"

नरककी परिभाषा इसी पुस्तकमें इस प्रकार लिखी है—"नरक आग और गन्धककी झील है कि जिसकी आग नहीं बुझती और जहाँ रोना और दाँत पीसना होगा।"

कलको यदि हिन्दू लोग भी ईसाइयोंका अनुकरण कर पैसे-पैसेवाले ट्रैक्ट बाँटने लगें, और उनमें यह लिखें कि सारे ईसाई 'कुम्भीपाक' और 'रौरव'में जायँगे, तो क्या यह अच्छी बात होगी? वैसे ही साधारण जनता, अन्ध-विश्वासोंके कूपमें गिरी हुई है, उसके ऊपरसे 'आग तथा गन्धकके झील' के जोड़नेकी कोई ज़रूरत नहीं है। इस प्रकारकी असहिष्णुताकी बातोंसे मूर्ति-पूजा तो दूर न होगी; हाँ, भारत-भूमि अवश्य ही नरक-तुल्य बन जावेगी, जहाँ जातीय विद्वेषकी आग न बुझेगी और जहाँ रोना तथा दाँत पीसना होगा।

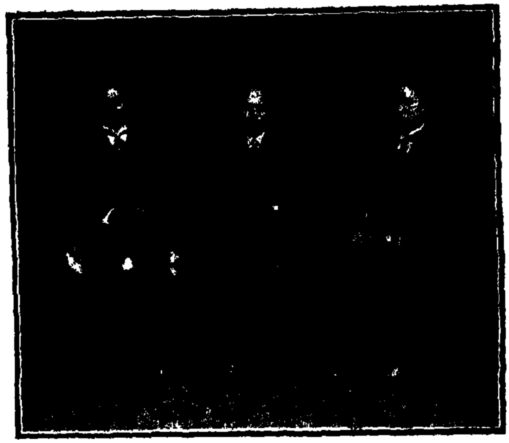
पिलग्रिम्स-मिशनसे हमारी प्रार्थना है कि वह इस प्रकारकी पुस्तकोंका प्रचार बन्द कर दे। इनसे ईसाई-धर्मके प्रचारमें उल्टी बाधा और पड़ेगी।

श्री जे० एम० सेन-गुप्तको दण्ड

बंगालके सुप्रसिद्ध नेता और कलकत्ता-कार्पोरेशनके मेयर श्रीयुत जे० एम० सेन-गुप्तको रंगूनके मैजिस्ट्रेटने राजद्रोहके अपराधमें दस दिनकी सादी क़ैदकी सज़ा दे दी। श्रीयुत सेन-गुप्त महोदय अस्वस्थताके कारण जलवायु परिवर्तनके लिए सिंगापुर गये थे। वहाँसे लौटते समय वे रंगूनमें उतरे थे। रंगूनके अधिवासियोंने उन्हें मानपत्र भेंट किया और वहाँ उन्होंने दो व्याख्यान दिये। उन्हीं व्याख्यानोंमें राजद्रोहकी गन्ध बताकर बर्मा-सरकारने उनपर मुक़दमा चलाया और मैजिस्ट्रेटने उन्हें उपर्युक्त सज़ा दी। श्री सेन-गुप्तने मुक़दमेमें किसी प्रकारका भाग लेनेसे साफ इनकार कर दिया। लाहौर कांग्रेसके बादसे सभी प्रान्तोंके अधिकारियोंने—जिनमें बर्माके गवर्नर साहब भी शामिल हैं—जो उद्गार प्रकट किये थे, उनसे श्री सेन-गुप्तकी गिरफ्तारी सरीखी कार्रवाइयोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। परन्तु उनकी गिरफ्तारी, मुक़दमा और सज़ा आदि सब बातें ऐसे नाटकीय ढंगसे की गई हैं, जिन्हें सुनकर बेपढ़े लिखे अज्ञान आदमी भी हँस पड़ते हैं। मालूम नहीं कि अधिकारीवर्ग कानून और शान्ति-रक्षाकी दुहाई देकर न्यायके नामपर यह हास्यास्पद नाटक क्यों रचा करते हैं।

फिजीमें सम्मिलित मताधिकारका प्रश्न

फिजी-प्रवासी भारतीयोंकी ओरसे जो तीन सदस्य कौन्सिलके लिए चुने गये थे—माननीय परमानन्द सिंह, माननीय रामचन्द्र महाराज और श्रीयुत विष्णुदेव—उन्होंने



बाईं ओरसे—१ माननीय परमानन्दसिंह, २ माननीय रामचन्द्र महाराज, ३ माननीय विष्णुदेव।

'सम्मिलित मताधिकार' के प्रश्नपर कौन्सिलसे त्याग-पत्र दे दिया है। उनके इस बुद्धिमत्तापूर्ण निश्चयपर हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। इससे भी अधिक गौरवकी बात यह है कि पुन: निर्वाचनके समय कोई भी भारतीय कौन्सिलके लिए खड़ा नहीं हुआ। इससे यह बात प्रमाणित हो गई कि सम्मिलित मताधिकारकी माँग सम्पूर्ण फिजी-प्रवासी भारतीय जनताकी थी।

आशा है कि फिजी-प्रवासी भारतीय इस एकताको क़ायम रखेंगे। पारस्परिक विद्रोहको बढ़ानेवाली बातें समाचारपत्रोंमें न छपनी चाहिए। 'पैसीफिक एज', 'फिजी-समाचार' तथा 'वैदिक सन्देश' के सम्पादकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे बड़ी सावधानीसे काम लें। एक दूसरेके प्रति सहिष्णु बनें। आपसकी फूटसे सारा मामला बिगड़ सकता है। इस सवालमें साम्प्रदायिकताका रंग तो बिलकुल न आने देना

चाहिए।"* यह सवाल हिन्दू-मुसलमानों या ईसाइयोंके भिन्न-भिन्न हितोंका नहीं है, यह फिजीके समस्त भारतीयोंके गौरवका प्रश्न है। हम लोग भारतवासी अपने प्रवासी भाइयोंसे यह आशा करते हैं कि इस लड़ाईमें वे उसी एकतासे काम लेंगे, जो उनके बन्धुओंने दक्षिण-अफ्रिकामें दिखलाई थी।

—

राष्ट्रीय महासभाकी अमेरिकन शाखाको दण्ड

'विशाल-भारत' में इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी अमेरिकन शाखाके प्रधान श्री शैलेन्द्रनाथ घोषके एक लेखके, जिसमें उन्होंने श्रीयुत सी० एफ० ऐण्डूजकी ईमानदारीपर आशंका की थी, उत्तरमें एक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी गई थी। श्रीयुत घोष महाशयके लेखको पढ़कर हमें उनकी गैर ज़िम्मेवारीका पता लग गया था, पर उस समय हमने यही लिखा था कि यहाँसे इतनी दूर रहनेके कारण श्रीयुत घोष महोदय मातृभूमिकी वास्तविक स्थिति समझनेमें असमर्थ हैं। अहमदाबादमें आल इंडिया कांग्रेस-कमेटीकी मीटिंगके अवसरपर कांग्रेसके प्रधान श्री जवाहरलालजी नेहरूने जो बातें अमेरिकन शाखाके विषयमें कहीं, वे वास्तवमें बड़ी खेदप्रद हैं। शाखाको जो सबसे बड़ा दण्ड दिया जा सकता था, दे दिया गया है, यानी शाखा तोड़ दी गई है। 'बॉम्बे-क्रानोकल'के एक विशेष संवाददाताने १८ ता० को न्यूयार्कसे निम्न-लिखित तार दिया—

"Mr. Ghose, President of the American Branch of the Congress, is delivering lectures in the large cities of America stating untenable facts and statistics which provoke ridicule. He repeats that Indians, though temporarily peaceful, are determined for a bloody revolution. This is evoking unfavourable Press comments and disgusting true friends of Mahatmaji and India."

इस तारसे श्रीयुत घोष महोदयकी नीति तथा मनोवृत्तिका अच्छी तरह पता लग सकता है। कांग्रेसने अपनी अमेरिकन शाखाको तोड़कर अपनी न्याय-प्रियताके साथ दूरदर्शिताका भी परिचय दिया है। श्रीयुत घोष महोदयसे हमारी यही प्रार्थना है कि भारतके विषयमें लिखते और बोलते समय वे अधिक सावधानीसे काम लें। उनकी बेसमझीसे मातृभूमिकी उल्टी हानि हो सकती है।

—

राजा महेन्द्रप्रतापका पत्र

श्रीमान् राजा महेन्द्रप्रताप काबुलसे अपने २१ फरवरीके पत्रमें लिखते हैं :—

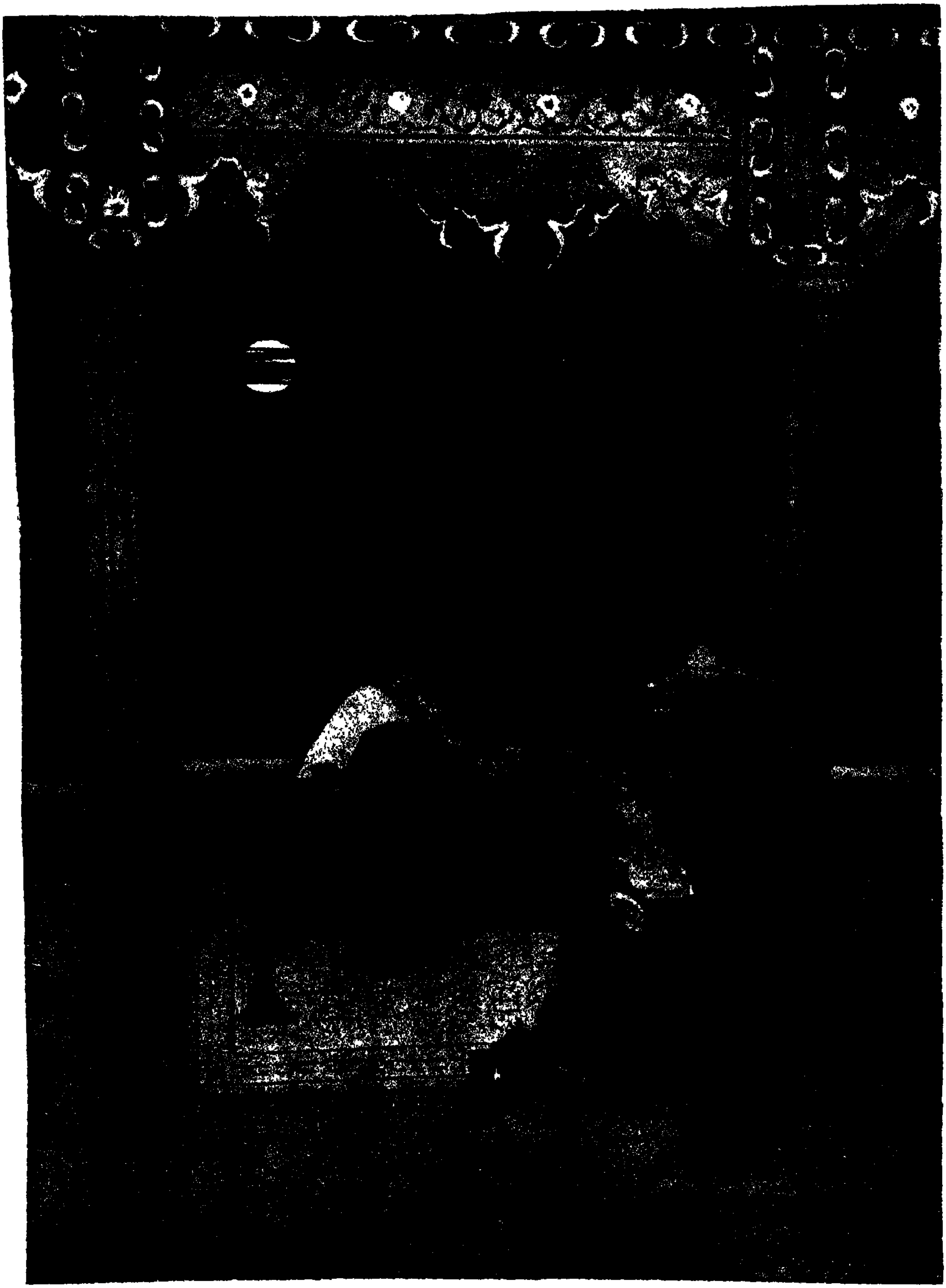
"प्रवासी-अंक पहुँचा। आपने भेजा या किसी और मित्रने—पर पहुँच गया, और मैं अनुगृहीत हुआ। आपने कृपा करके मेरा चित्र भी छापा है और कुछ मेरे सम्बन्धमें लिखा भी है। यह और भी कृपा की है। केवल आपकी जानकारी या सचाईके हितार्थ मुझे आज्ञा दें कि मैं इस विषयमें दो संशोधन करूँ। मैं सन् १९०४ में नहीं, जैसा कि वहाँ छप गया है, वरन् १९०७में पहली पृथ्वी-परिक्रमाके लिए निकला था, और ठीक चार मासमें लौट आया था। दूसरे यह चित्र जो आपने छापा है, बड़ा पुराना है। यह १९१८ में अबसे बारह वर्ष पहले, लिया गया था। आजकल मैं सीधा-सादा यात्री-भेषमें भ्रमण करता हूँ। वह ठाट-बाट उस समय कैसर जर्मनीसे मिलनेके लिए बनाना पड़ा था। मेरे मित्रों वा जर्मन अफसरोंने कहा था कि मुझे कैसरसे मिलनेके लिए अवश्य ही कुछ अच्छे कपड़े पहनने चाहिए। मेरे पास किसीका दिया एक बुखारी चोगा था। उसीको मैंने अपनी सादी वर्दीके ऊपर ओढ़ लिया और कैसरका दिया तमगा गलेमें लटका लिया। फिर जो सूरत बनी, चित्रकारने कागज़पर उतार ली। वह ही स्वांग-पूर्ण दृश्य है, जो 'विशाल-भारत'में निकला।

मैं बहुत शीघ्र जा रहा हूं। केवल उड़न-खटोलेकी बाट देख रहा हूं। ज्यों ही आ गया, त्यों ही रवाना हो जाऊंगा। आगेके लिए मेरा पता यह होगा—'C-o The American Express & Co., Newyork, U S.'

राम गुरु अल्लाहकी कृपासे और सब प्रकार सुखी हूं। सब ही मित्रोंकी सेवामें राम राम—सलाम—सत श्री अकाल!

प्रेमी—
महेन्द्रप्रताप
मनुष्य-जाति-सेवक।"

Edited, Printed & Published by Benarsi Das Chaturvedi, at the Pravasi Press, 120-2, Upper Circular Road, Calcutta.



शाहजहाँका अन्तिम काल

[चित्रकार, श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

विशाल-भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ३ खण्ड १ — अप्रैल, १९३०—वैशाख, १९८७ — अङ्क ४ पूर्णाङ्क २८

सत्याग्रह-संग्राम

—:०:—

अल्टीमेटम और युद्ध-घोषणा

गत ३१ दिसम्बरकी रातमें जिस क्षण घड़ीकी सुई बारहका घंटा बजा रही थी, उसी समय देशका निर्वाचित राष्ट्रपति देशकी स्वाधीनताकी घोषणा कर रहा था। एक ओर गुज़रे हुए वर्ष—सन् १९२९—का सिसक-सिसककर दम निकल रहा था, और दूसरी ओर देशकी सबसे महान् राष्ट्रीय सभा देशकी गुलामीका फातिहा पढ़ रही थी। एक तरफ नवीन आकांक्षाओं और नवीन उत्साहसे भरा हुआ नया वर्ष पदार्पण कर रहा था, तो दूसरी तरफ एक नवीन, स्वतन्त्र और आत्माभिमानी भारतवर्षका जन्म हो रहा था। लाहौरकी उस भयंकर शीतकालकी रात्रिमें, निस्तब्ध आकाशको भेदती हुई, स्वयंसेवकोंके बिगुलोंकी आवाज़ने इस नवीन भारतवर्षके जन्मका संवाद समस्त सुप्त संसारको पहुँचा दिया। स्वतन्त्रताकी घोषणा केवल स्वतन्त्रता ही की घोषणा नहीं थी, वह युद्धकी भी घोषणा थी। स्वाधीनताकी घोषणासे ही स्वाधीनता नहीं मिल जाती, उसके लिए युद्ध करना पड़ता है, और बलिदान करना पड़ता है।

सन् १९२८की कलकत्ता-कांग्रेसने ब्रिटिश सरकारको एक वर्षका अल्टीमेटम दिया था। उसने कहा था कि यदि ब्रिटिश सरकार एक वर्षके अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, तो वाह वाह, नहीं तो पूर्ण स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी जायगी। ब्रिटिश गवर्मेण्टने वायसरायके द्वारा एक घोषणा कराई कि सरकारका उद्देश्य भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य देना है; मगर वह कब देगी, सो इसके लिए अबसे लेकर क़यामत तकका समय पड़ा हुआ है! इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि युद्ध छेड़नेका दोष भारतीय कांग्रेसको नहीं दिया जा सकता। उसकी सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी ब्रिटिश अधिकारियोंपर है। कांग्रेसको युद्ध छेड़ने या गुलामीका मौरूसी पट्टा



महात्माजीकी रण-यात्रा
अपने उन्नासी अहिंसात्मक सैनिकोंके साथ महात्माजी यात्रा आरम्भ कर रहे हैं

सिखानेके सिवा और कोई चारा नहीं था। मजबूरन कांग्रेसने स्वतन्त्रताकी घोषणा और साथ ही युद्धकी भी घोषणा कर दी।

युद्ध छेड़ना निश्चित हो गया, परन्तु उसका परिचालन कौन करे ? युद्धका फील्डमार्शल कौन हो ? कांग्रेसने बहुत सोच-विचारकर साबरमतीके एक दुबले-पतले क्षीणकाय व्यक्तिको अपना सेना-नायक नियत किया। सन् १७७६ में अमेरिकन कांग्रेसने जो कार्य जार्ज वाशिंगटनके सिपुर्द किया था, सन् १९३० में भारतीय कांग्रेसने वही कार्य महात्मा गांधीके सिपुर्द किया। हालाँ कि वाशिंगटन और गांधीके उपायोंमें कुछ वैसा ही अन्तर है, जैसा ज़मीन और आस्मानमें है। वाशिंगटनकी तोप और तलवारोंमें वह शक्ति थी, जो लार्ड कार्नवालिसको बन्दी बना सकती थी ; मगर दूसरी ओर निहत्थे गांधीकी विनम्रतामें वह शक्ति है, जो लार्ड इरविनकी गर्दनको झुका देती है। उन्हें अपनी तोप-बन्दूकोंका भरोसा था और इन्हें अपनी आत्म-शक्तिका। इन्हें गर्व है, तो इस बातका—'झुकाती है हमारी आजिज़ी सरकशकी गर्दनको।'



अहमदाबादसे महात्माजी यात्राके लिए जा रहे हैं



वल्लभभाईकी गिरफ्तारीपर महात्माजी साबरमतीकी सभामें व्याख्यान दे रहे हैं,
सामने अब्बास तय्यबजी और पीछे महादेव भाई देसाई बैठे हैं

पहला वार

युद्ध अनिवार्य था। तय्यारियाँ हो रही थीं। कूचका दिन नियत हो गया था। इसी बीचमें सरकारने गुजरातके बेतिलकके राजा—सरदार वल्लभभाई पटेल—को गिरफ्तार करके तीन महीनेको जेलमें ठेल दिया। इस प्रकार युद्धमें पहला वार करनेका अपराध भी सरकार ही पर है। उसीने सरदारको गिरफ्तार करके युद्धका श्रीगणेश किया।

युद्ध-यात्रा

१२ मार्चके प्रातःकाल ४ बजे साबरमती-आश्रमकी घंटी बजी। आश्रमके सम्पूर्ण अधिवासियों और स्वाधीनताकी विजय-वाहिनीकी युद्ध-यात्राको देखनेके लिए एकत्रित जन-समुद्रमें, चेतनाकी लहर दौड़ गई। इसके पहले शाम ही से महात्माजीकी गिरफ्तारीकी खबर ज़ोरोंसे फैली हुई थी। लोगोंको चिन्ताके मारे रात भर नींद नहीं आई थी। उठते ही लोगोंने पहला सवाल यही पूछा—"बापू कुशलसे तो हैं ?"

६ बजे सबेरे ब्रह्ममुहूर्तमें सम्पूर्ण सेना अपने सेनापति-सहित यात्राके लिए निकल पड़ी। पंडितोंने मंत्रोच्चारण किया, बालाओंने सेनापतिके जाज्वल्यमान मस्तकको रोली और अक्षतसे चर्चित किया। यात्रा आरम्भ हो गई। आगे-आगे पैंतालीस सेर भारी, दुबला-पतला डेढ़ हड्डीका एक वृद्ध जा रहा था और उसके पीछे उन्यासी निहत्थे सैनिक। वे मुट्ठी-भर स्वयंसेवक संसारके सबसे बड़े साम्राज्य, पाशविक शक्तिकी मूर्तिमान उदाहरण ब्रिटिश सरकारसे लोहा लेनेके लिए जा रहे थे। उनकी सरल, शान्त और सौम्य मूर्ति देखने योग्य थी।

मोर्चेकी जगह साबरमतीसे ढाई सौ मील दूर थी, मगर



पैरमें चोट लग जानेसे स्वराज्य-सेनापति दो सैनिकोंके सहारे चल रहा है

फौज पैदल ही 'मार्च' करती थी। प्रत्येक गाँवमें इस फौजका स्वागत किया जाता था। गुजरात-विद्यापीठके विद्यार्थी इस फौजके लिए 'सफरमैन' का काम करते थे। वे उसके सैनिक पड़ावके लिए पाखाने बनाते थे, भोजनके लिए भट्ठे तैयार करते और पड़ावकी भूमिको पानीसे सींचते थे। आसपासके गाँवोंके लोग सेनापति 'बापू' के दर्शन लिए आकर एकत्रित होते थे। उनमें ६५ फी-सदीके लगभग पैदल ही बीसों मीलका सफर करके आते थे। इसका वृत्तान्त 'कर्मवीर' के प्रतिनिधिके मुखसे सुन लीजिए—

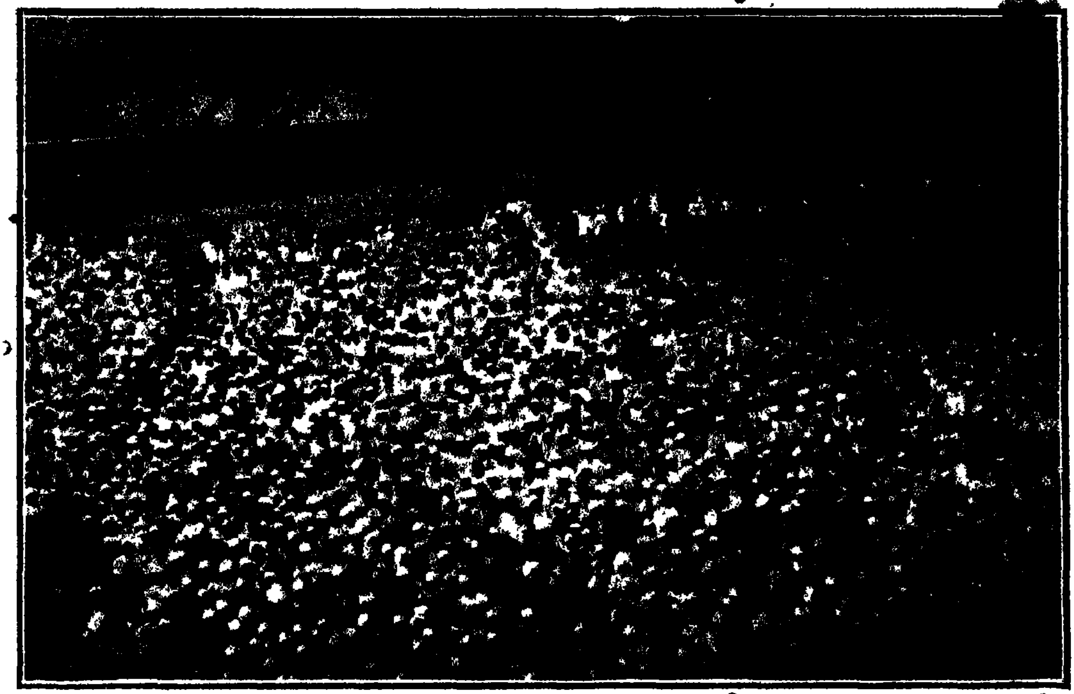
"समनी एक छोटासा गाँव है। आज शामको गान्धीजी और उनकी सेना यहाँ पहुँचनेवाली है। गान्धीजी 'बुवा' नामक गाँवसे यहाँ आयेंगे। रास्तेके गाँवोंमें लोगोंने सड़कें सींच रखी हैं, बिछायतें बिछा रखी हैं और हाथके कते हुए सूतकी मालाएँ तैयार कर रखी हैं।

सात बज गये, मगर अभी तक गान्धीजीके आनेका कोई चिह्न नहीं देख पड़ता। अब तो लोग बेचैन होने लगे। दस-दस, पाँच-पाँचकी टोली बनाकर वे उन रास्तोंकी ओर चल पड़े, जिन पथोंसे बापूके आनेकी उम्मीद थी। उस समय रास्तोंपर पुरुषों और स्त्रियोंकी भीड़ जम गई, और किटसन लैम्पोंकी क़तार अनेक रेलवे-स्टेशनोंका भ्रम पैदा करने लगी। जिस टोलीको समझाइये कि बापू आते ही होंगे, मत जाओ ; उसमेंसे ये वाक्य सुननेको मिलते— 'हमारा बापू दुबला-पतला है। कहीं वह बीमार न हो गया हो। कहीं उसे इन कंकड़ खन्दकोंमें चोट न आ गई हो। कहीं काँटा लगनेसे वह रास्ते ही में बैठ न गया हो। शायद इस पापी सरकारने उसे बुवासे चलते समय गिरफ्तार कर लिया हो।' इस तरह अगणित मुखोंमें अगणित बातें थीं, परन्तु रस तो वहाँ दो ही निवास कर रहे थे— करुणा और शान्त। इतने ही में सुदूर गाँवमें दूरसे एक लालटेन चलती हुई दिखाई दी। बहनोंने बच्चोंको गोदमें लिया और बापू तथा उनकी टोलीको 'बधावाने'— स्वागत करने—के लिए चल पड़ीं। लोग इतने बेचैन थे कि दूरसे आती हुई लालटेनको देखनेके लिए अपनी-अपनी लालटेनें लेकर झाड़ोंपर चढ़ गये! मानो गान्धीजीके आगमनपर वृक्षोंमें प्रकाशके फल फले हों, या अजातशत्रु भगवान गान्धीके स्वागतके लिए, आजकी नर-सेना वानर-सेना बनकर त्रेताके राम युगको दुहरानेके लिए तुल पड़ी है। एक किसानने मुझसे पूछा—'क्या तुमने बापूको देखा है?'

मैं—'हाँ।'

उसने मुझसे पूछा—'फिर तुमने उनको पैदल इतनी लम्बी यात्रा करनेके लिए रोका नहीं?'

एक दूसरे किसानने अपनी पगड़ी सँभालते हुए कहा— 'बापूको कौन रोक सके?'



नडियादमें 'बापू' को देखनेके लिए उत्सुक जन-समुद्र

एक किसान बोला—'बापू जलालपुर क्यों जाते हैं, यहीं मेरे गाँवके पास तो बहुत नमक बनता है। वहाँ ही क्यों नहीं जाते ? मेरे गाँवके लोग बापूके जाते ही उनके साथ 'मीठुँ'—नमक—बनाने लगेंगे।'

एक किसानने कहा—'अमे आड़ा पड़ी ज्याइशुं'—यानी हम औंधे पड़ जायँगे और बापूसे कहेंगे, अब तुम तकलीफ मत भोगो। तुम्हारी आज्ञासे सारा गुजरात जेल जानेके लिए प्रस्तुत है।

इतने ही में अँधेरी रातको चीरती हुई दूरसे आवाज़ आई—'आव्या—आयी गया।' एकने पुकारा—'बापू आवे छे—वधावी ले जो।' एक पास ही खड़ी हुई बहन समनीकी रेल सड़कपर बैठे हुए पुरुषोंको फटकारकर बोली—'सामैया ने चालो ने, शुं बेसवाने आया छो।'—स्वागतको चलो न, क्या बैठने आये थे। गरज़ यह कि गाँवकी वसुन्धरा लालटेनोंका लंगर लिए अपने बापूपर दीवानी होकर चल पड़ी, परन्तु संयम और शील देखना अभी बाक़ी था। राष्ट्रीय सैनिकोंका जत्था पास आते ही एक बार सबने जय-घोष किया, और फिर सेनासे दूर रहकर बड़े सम्मानसे चलने लगे। पुरुष-दल महात्माजीके त्याग, तपस्या और स्वतन्त्र भावनाके गीत गा रहे थे। जत्थेके आते ही समनी गाँवकी गुजराती किसान-महिलाओंने बापू और वल्लभभाईका गुण-संकीर्तन शुरू कर दिया। उस समय मेरा मन मुझसे पूछने लगा—'यह सुन्दर गीत और यह करुणा १२ मार्चसे २३ मार्चके बीच इन्हें कौन सिखा गया और कौन वल्लभभाई तकके नामके मोती इन किसानोंके स्मृति-पटलपर गूँथ गया !

सुद्दीसे समनीके लिए पक्की सड़क भी थी। अढ़ाई मील लम्बाई थी, परन्तु राष्ट्रीय सेना-नायक सेना लेकर कच्ची सड़कसे आये। दिनको मैं उस रास्तेको देख गया था। धूल, ऊँचे-नीचे गड्ढे, गरमीमें ज़मीनमें पड़ी हुई बड़ी दरारें



भारतका सबसे पवित्र पुरुष एक अछूत रमणीका भेंट किया हुआ माला ग्रहण कर रहा है



बारसदमें स्वराज्यका सेनानी

और काँटे, सब कुछ उस रास्तेमें थे। गुजराती किसानोंने राहके काँटे भरसक बीने थे, पर गड्ढोंका क्या होता! और बापू पक्की सड़कसे चलनेकी बात क्यों मान लेते? इस समय ६ बजेसे ६ बजे तक बापू और उनकी सेना पूरे नौ मील चलकर आई थी। सबसे आगे मुट्ठी-भर हड्डीवाले, एक स्वयंसेवकके कन्धेपर हाथ रखे, हाथमें अपने दुर्बल शरीरको सँभालनेकी लाठी लिए, खुला शिर, खुला बदन, केवल कमरमें खद्दरकी एक चिन्दी—एक छोटा सा टावेल घुटने तक पहने, धूलि-धूसरित बापू थे और तीन विद्वान स्वयंसेवक थे। वीर खड्ग-बहादुर भी इसी टोलीमें थे और बीमार थे।

उस समयके रण-घोषकी चर्चा भी करूँ? दो-दोकी कतारमें सारी सेना जा रही थी और एक ही रण-घोषणा थी—

'रघुपति राघव राजा राम।
पतित-पावन सीताराम॥'

इस सेनाने न केवल अपने हाथोंके हथियार ही छोड़ दिये थे, किन्तु मनके कलुषित शब्द और वाणीके तीखे वाक्य भी छोड़ दिये थे। और यह सेना जूझने जा रही थी एक साम्राज्यसे। इस रथ-शस्त्र-हीन सेनाको देखकर भगवान रामचन्द्रकी लंकापर चढ़ाईकी याद आ गई। यदि तुलसीदासजी आज हमारे पास समनी गाँवमें खड़े होते, तो उन्हें यह मान लेना पड़ता कि त्रेताके लंका-विजेता—राम—पर लिखी हुई उनकी ये चौपाइयाँ आजके लंका-विजेता—गान्धी—ही के लिए लिखी गई थीं। गोस्वामीजीने रामजीकी सेनाके वर्णनमें जो लिखा था, वह उस समय, जब विभीषण अधिक प्रीतिके कारण रामकी विजयमें रहनेवाले सन्देहको बर्दाश्त न कर श्री रामसे पूछते हैं—



खेड़ा जिलेमें बापूका उपदेश सुननेवाले

'रावण तो रथोंको लिए हुए है और आप रथ-हीन हैं। आपके पास तो अपने पैरोंकी रक्षा तकका साधन नहीं, और शत्रु तो बलवान योद्धा है। ऐसा प्रचण्ड शत्रु इस तरह रथ-हीन रहकर कैसे जीता जायगा?'

तुलसीदासजीकी इस प्रसंगकी चौपाइयाँ ये हैं—

'रावण रथी बिरथ रघुबीरा,
देखि बिभीषण भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति उर भा सन्देहा,
बन्दि चरण कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ पद नहिं पदत्राना,
केहि बिधि जितब बीर बलवाना।'

उस समय राम विभीषणसे कहते हैं—

'सुनहु सखा.........,
जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना।'

'सुनो भइया, जिससे विजय मिलती है, वह रथ तो मैं ले आया हूँ।' फिर अपना वह रथ इस प्रकार बताया—

'शौरज धर्म जाहि रथ-चाका,
सत्य-शील दृढ़ ध्वजा-पताका।
बल-बिवेक दम परहित घोरे,
क्षमा दया समता रजु जोरे।
ईश-भजन सारथी सुजाना,
बिरति चर्म सन्तोष कृपाना।
संयम, नियम, शिलीमुख नाना,
अमल-अचल मन तूण समाना।
दान परशु बुधि शक्ति प्रचण्डा,
वर-विज्ञान कठिन कोदण्डा।
कवच अभेद विप्र-पद-पूजा,
इहि सम बिजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके,
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।'

इस प्रकार यह विजयवाहिनी तारीख ५ अप्रेलको डांडीके युद्ध क्षेत्रमें जा पहुँची। दूसरे दिन नमक-क़ानूनपर कुठाराघात किया जानेको था। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन समुद्रके तटपर जो नमक फैला पड़ा है, उसे ही उठाकर क़ानून भंग किया जाय।

डांडी एक छोटासा गाँव है। वहाँकी जनसंख्या दो सौके लगभग होगी, पर ५ अप्रेलको वहाँकी आबादी बारह हज़ारसे ऊपर थी। उस दिन 'डांडी गाँव कृष्णका वृन्दावन, रामकी अयोध्या, या शिवजीकी काशीपुरी हो गया था। बाहरसे आये हुए मेहमानोंके आतिथ्यके लिए गाँवके



नर्मदापार



कई मीलकी यात्रा और ग्रामीणोंको उपदेश देनेके बाद 'बापू' विश्रामको जा रहे हैं



दरबार गोपालदासजी—संग्राममें गिरफ्तार होनेपर आपको दो वर्षकी कड़ी क़ैद और पाँच सौ रुपया जुरमाना हुआ है



सरदार वल्लभभाई पटेल
(सरकारने इन्हें गिरफ्तार करके युद्धका पहला वार किया है)

निरक्षर मल्लुओंने अपने झोंपड़े, स्कूलके अध्यापकोंने स्कूल और पोस्ट-मास्टरने पोस्ट-आफिस खाली कर दिया था।

३॥ बजे रातको जागनेकी घंटी बजी। वह बजी थी स्वयंसेवकोंके लिए, परन्तु आज तो सारे पड़ावके दर्शक स्वयंसेवकों जैसे सावधान हो रहे थे। सब जागे। प्रार्थना हुई। फिर ५॥ बजे स्वयंसेवकोंकी टोली दर्शकों-सहित समुद्र-स्नानको चली। उस समय यह सेना ऐसी मालूम होती थी, मानो भगवान रामचन्द्रकी सेना लंकाविजयके लिए समुद्रसे रास्ता माँग रही हो। लगभग दो सौ आदमी समुद्रमें कूद गये और स्नान करने लगे। उस समय सत्याग्रहियों और समुद्रमें अपनी तरंगोंको काबूमें रखने, गहराई क़ायम रखने और विशाल हृदयताके लिए मानो होड़ हो रही थी। आखिरमें विनोद और श्रद्धासे भीगे हुए कुछ स्वयंसेवकोंने अपने सेना-नायक महात्मा गान्धीसे समुद्र-स्नान करनेके विषयमें पूछा। महात्माजीने कहा—"हाँ, धर्म-युद्धका जो आरम्भ करना है। यह कार्य तो स्नान करके पवित्र होकर ही करना चाहिए।" यह कहकर वे अपने स्वास्थ्यकी मर्यादाका खयाल छोड़कर चल पड़े—तरुण सैनिकोंके साथ समुद्र-स्नानके लिए। इस समय बेचारा समुद्र जरूर कह उठा होगा कि न तो वह इतना विशाल है, न उतना गहरा, न उसके अन्तस्तलमें उतने मोती हैं, न उसकी लहरें उतनी काबूमें हैं, और न उसके हृदयमें उतनी ठंडक है, जितनी कि महात्मा गांधीमें है। पाठक! क्या आप जानना चाहते हैं कि हमारे मुट्ठी-भर हड्डियोंके महान् सेनानीका वेश समुद्र-स्नानके समय कैसा था? उस समयको आँखोंने देखा है, किन्तु उन्हें लिखना नहीं आता। महात्माजी समुद्र-तटपर आये। लंगोटी लगाई। खिलखिलाहट जारी थी। और एकदम दौड़कर समुद्रमें गोता लगाया। उस समय लोगोंकी हर्ष-ध्वनि और तालियोंकी गड़गड़ाहटने आसमान गुँजा दिया। ये तालियाँ उस समय तक बराबर बजती रहीं, जब तक महात्माजी समुद्रसे बाहर न निकल आये। इस तरह साम्राज्यसे लड़ने जाते हुए इस भारतीय सेनानायकका मानो समुद्रने अभिषेक कर दिया। अब भारतके गरीबोंके हृदय-सिंहासनका यह दुबला-पतला नायक रत्नाकरकी लहरों द्वारा अभिषिक्त हो गया। स्नानके पश्चात् स्वयंसेवकों समेत महात्माजी नमक उठानेके स्थलपर पहुँचे।

बूढ़े सेनापतिने नमकसे अपनी मुट्ठी भर ली। अनेकों फोटो कैमरोंके बटन 'क्लिक' कर उठे। बादमें स्वयंसेवकोंने नमक उठाना आरम्भ किया। दर्शक भला कब पीछे रहनेवाले थे। देखते ही देखते चौबीस हजार मुट्ठियोंमें नमक दिखाई पड़ने लगा।

लीजिए, संसारकी सबसे शक्तिशाली सरकारकी सत्ता चुटकियाँ बजाते शिथिल हो गई। क़ानूनका भूत उतर

गया, सज़ाका हौआ ग़ायब हो गया। नौकरशाही मुँह ताकती रह गई। समस्त देशमें नमक बनने लगा। सत्याग्रह-संग्राम शुरू हो गया।

मगर सरकार भी चुप बैठनेवाली नहीं थी। दूसरे ही दिन श्रीयुत मणिलाल कोठारी और श्रीयुत रामदासजी गान्धी पकड़ लिये गये और न्याय-नाटक करनेके बाद जेलको रवाना कर दिये गये।

बम्बईमें श्रीयुत जमनालालजी बजाज और श्रीयुत नारीमैन पकड़े गये। बजाजजीको दो वर्षकी कड़ी क़ैद और नारीमैनजीको एक मासकी सादी सज़ाका हुक्म दे दिया गया। सरकारने अब एक नई नीति ग्रहण की है, वह यह है कि स्वयंसेवकोंको न पकड़कर केवल लीडरोंको पकड़ा जाय। आरामें स्वामी भवानीदयालको ढाई वर्षकी सज़ा दे दी गई। आगरेमें श्रीकृष्णदत्त पालीवाल पकड़े गये। कानपुरमें श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' गिरफ्तार हुए और प्रयागमें राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरूको नैनीजेलमें धर घसीटा गया। श्री सम्पूर्णानन्दजीके भी पकड़े जानेकी खबर आई है।

बंगालने पहले नमक-क़ानूनको भंग किया, मगर उसपर सरकारने विशेष गिरफ्तारियाँ नहीं कीं। साथ ही बंगालने राजद्रोहके क़ानूनको भंग करना निश्चित किया। कलकत्तेके कालेज-स्क्वायरमें नियम-पूर्वक सभा की गई, जिसमें ज़ब्त पुस्तकोंका पाठ हुआ और वे बेंची गईं। पुलिसके लिए यह बहुत था। कलकत्तेके पुलिस-कमिश्नर अपनी फ़ौज लेकर पहुँच गये। उन्होंने गिरफ्तार तो कुल पाँच व्यक्तियोंको किया, परन्तु पचीसों आदमियोंकी खोपड़ियाँ डंडेसे तोड़ दीं। क़ानून और शान्तिके रक्षकोंकी पैशाचिकताका वह नग्न नृत्य था। दूसरे दिन बंगालके सुप्रसिद्ध नेता और कलकत्ता-कारपोरेशनके मेयर श्रीयुत जे० एम० सेन-गुप्त भी इसी क़ानूनको भंग करनेके अपराधमें गिरफ्तार किये गये और उन्हें छै मासके कठिन कारावासका दण्ड दिया गया।

तारीख १४ अप्रेलको पुलिसका फिर वही पैशाचिक नृत्य हुआ। कलकत्तेमें चार-पाँच स्थानोंमें सार्जेन्टोंने लाठियाँ



श्री जे० एम० सेन गुप्त
(राजद्रोहका क़ानून भंग करनेके अपराधमें इन्हें ६ महीनेकी कड़ी क़ैद हुई है)

बरसाईं। स्कूलके सुकुमार छात्रोंपर जिस अमानुषिकताके साथ सरकारकी लाडली पुलिसने हमला किया है, वही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वर्तमान सरकारमें आमूल परिवर्तनकी आवश्यकता है।

लड़ाईमें महिलाओंका स्थान

देशमें स्वाधीनता-संग्राम छिड़ा हुआ है। देशकी स्वतन्त्रता और सम्मानकी बाज़ी लगी हुई है। फिर भला यह कैसे सम्भव था कि देशका आधा अंग—हमारी माताएँ और बहनें—इस संग्रामसे अलग रहता। वे पुरुषोंके साथ बराबरीसे कंधा भिड़ाकर उनके सुख-दुःख बटानेके लिए उतावली हो उठीं। सेनापतिने बहुत सोच-विचारकर उन्हें भी संग्राममें सम्मिलित करनेका निश्चय किया। उन्हें शराबकी और विदेशी वस्त्रकी दूकानोंपर धरना देनेका कार्य सौंपा गया है। एक दृष्टिसे देखिये तो महिलाओंको जो कार्य सौंपा गया है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। नशेकी वस्तुओंने देशकी नैतिक नींवको खोखला कर दिया

है। न मालूम कितने घर इस नशेकी बदौलत रौरव बन गये हैं। मादक वस्तुओंका व्यवहार रुक जानेसे देशका नैतिक बल बढ़ेगा और साथ ही सरकारकी उससे होनेवाली आमदनीमें भी धक्का पहुँचेगा। विदेशी कपड़ेके बहिष्कार और खद्दरके प्रचारसे देशके सैकड़ों भूखों मरनेवाले बेकारोंको पेट-भर खानेको मिलने लगा। साथ ही लंकाशायरके मोटे मिलवालोंकी वृद्धि भी ठिकाने आ जायगी। इस प्रकार महिलाओंको जो काम सौंपा गया है, वह निर्माणात्मक है। देशकी महिलाएँ इस कार्यको पूरा करके अपने कल्याणी नामको सार्थक कर देंगी।

अग्नि-परीक्षा

"Beware when the great God lets loose a thinker on this planet. Then all things are at risk It is as when a conflegration has broken out in a great city and no one knows what is safe or where it will end."

—Emerson

सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक एमर्सनने एक जगह लिखा है—"खबरदार, उस समय जब कि परमात्मा इस भूमिपर किसी विचारकको भेजता है, उस समय सभी चीज़ें खतरेमें पड़ जाती हैं। उसी तरहका दृश्य उपस्थित होता है, जैसा किसी बड़े नगरमें आग लगनेपर होता है। उस समय यह कोई नहीं जानता कि कौन चीज़ बचेगी, और यह आग कहाँ जाकर खतम होगी।"

यह कथन महात्मा गान्धी तथा उनके आन्दोलनपर भलीभाँति चरितार्थ होता है। महात्मा गान्धी तपस्वी हैं, और उन्होंने अपने तपके बलसे ऐसा वायु-मंडल उपस्थित कर दिया है, जिसमें सभी समझदार आदमियोंकी अग्नि-परीक्षा हो रही है। बड़े-बड़े नेताओंके लिए यह परीक्षाका समय है। जनता इस बातको देख रही है कि उनमें कौन सच्चे देशभक्त हैं और कौन दूध पीनेवाले मजनूँ। षड्यंत्रोंमें विश्वास रखनेवाले क्रान्तिकारियोंकी परीक्षा हो रही है। देखना है कि वे इस समय अपनी हिंसा-नीतिका परित्याग कर वायु-मंडलको अपनी ओरसे अहिंसामय बनानेमें



सेठ जमनालाल बजाज
(जिन्हें दो वर्षकी कड़ी क़ैदकी सजा हुई है)

कहाँ तक सहायता पहुँचाते हैं। सर्वसाधारणके इम्तिहानका वक्त है। अब यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी कि लोग यों ही 'महात्मा गान्धीकी जय' चिल्लाते रहते हैं, या उनकी 'जय' करानेके लिए कुछ उद्योग भी करनेके

लिए उद्यत हैं। विद्यार्थियोंकी भी परीक्षा हो रही है। अब पता लगेगा कि देश-भक्तिका दावा करनेवाले इन विद्यार्थियोंको मातृभूमिकी स्वाधीनता अधिक प्यारी है, या यूनिवर्सिटीकी डिग्री। गरज़ यह कि सभीका इम्तिहान हो रहा है। गान्धीजीकी इस आगमें अनेक चीज़ जलकर भस्म हो जायँगी और अनेक सुवर्णकी तरह तपकर और भी सुन्दर निकल आयँगी।

परमात्मा करे कि हम लोग इस अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण होकर अपने तथा अपनी मातृभूमिके गौरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हों।

श्रीयुत सुन्दरलालजी

[लेखक :— बनारसीदास चतुर्वेदी]

बात पाँच-सात वर्ष पहलेकी है। आश्रममें दो तीन दिन रहनेके बाद साबरमती स्टेशनसे सुन्दरलालजी बम्बई जा रहे थे। गाड़ीमें अभी देर थी। पहले एक मालगाड़ी धीरे-धीरे निकली। उसकी मन्द-गतिको देखकर आपने कहा—

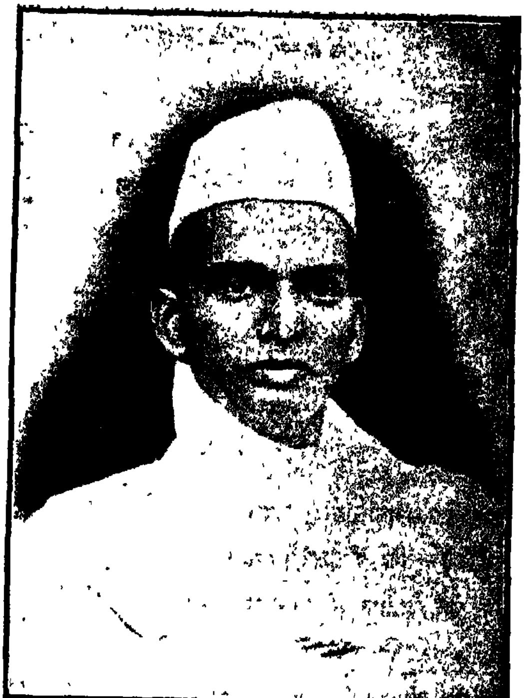
"मनमें आता है कि इसके नीचेसे निकल जावें। कोई मुश्किल बात नहीं है। ज़रासा टेढ़ा होकर तेज़ीके साथ चलनेसे कोई भी फुर्तीला आदमी सटसे उधर निकल सकता है।"

मैंने कहा—"इससे फायदा? ज़बर्दस्ती खतरेमें पड़नेकी ज़रूरत ही क्या है?" थोड़ी देर तक वाद-विवाद होता रहा। इतनेमें रेल आ गई और सुन्दरलालजी बम्बईको चल दिये। मैं आश्रमको लौट आया। बहुत-कुछ प्रयत्न करनेपर भी मैं उस आनन्दकी कल्पना नहीं कर सका, जो चलती हुई मालगाड़ीके नीचेसे 'सटसे उधर निकलने' में प्राप्त होगा।

बात एक मामूली-सी है, पर इससे सुन्दरलालजीकी मनोवृत्तिपर अवश्य ही कुछ प्रकाश पड़ता है। शायद माडरेटों और एक्सट्रीमिस्टोंमें मनोवृत्तिका ही अन्तर है। जहाँ माडरेट खतरेमें नहीं पड़ना चाहते और 'हाथ-पाँव बचाने' और 'मूजीको टरकाने' में विश्वास करते हैं, वहाँ एक्सट्रीमिस्ट जान-बूझकर आगके साथ खेलनेमें मज़ा लेते हैं। यह कमबख्त 'मूजी' हाथ-पाँव बचाते हुए भी 'टरक' सकता है या नहीं, यह प्रश्न ही दूसरा है।

सुन्दरलालजीको खतरोंमें पड़नेमें आनन्द आता है। सुन्दरलालजीके प्रारम्भिक जीवनके विषयमें हमें विशेष पता नहीं। इतना हम अवश्य जानते हैं कि वे मुज़फ्फ़रनगर ज़िलेके रहनेवाले हैं, और उन्होंने डी० ए० वी० कालेज लाहौरमें शिक्षा पाई थी। वहींसे शायद बी० ए० पास किया था। सुन्दरलालजीपर लाला लाजपतरायके व्यक्तित्वका ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा था, और लालाजी सुन्दरलालजी पर विशेष स्नेह भी रखते थे। सुन्दरलालजीने लालाजीको आदर्श नेता मानकर उनका अनुकरण प्रारम्भ किया। सुन्दरलालजीकी भाषणशैली लालाजीसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। जिन्होंने सुन्दरलालजीके भाषण सुने हैं, वे कह सकते हैं कि उनकी ज़बानमें गज़बका जादू है। सहस्रों आदमियोंकी सभाओंको प्रभावित करनेकी शक्ति उनमें विद्यमान है। क्रान्तिके दिनोंके लिए उनकी यह वाणी क्या-क्या करामात दिखला सकती है, इसका हम लोगोंमेंसे अधिकांश अनुमान भी नहीं कर सकते।

क़ानून पढ़नेके लिए सुन्दरलालजी प्रयाग आये थे। कालेजमें पढ़ते हुए प्रिन्सिपलसे आपकी गरम बहस हो जाया करती थी। वह आपको खतरनाक आदमी समझता था। ऊपरसे तो वह नाराज़ था, पर दिलमें आपके व्यक्तित्वकी धाक मानता था। राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण वे हिन्दू-बोर्डिंग-हाउससे निकाल दिये गये। अच्छा ही हुआ। 'मिस्टर सुन्दरलाल (भटनागर या सक्सेना?) बी० ए०,



श्रीयुत सुन्दरलालजी

एल-एल० बी०, वकील हाईकोर्ट इलाहाबाद' के बजाय देशको श्रीयुत सुन्दरलालजी मिल गये।

संयुक्त-प्रान्तके 'जब बड़े-बड़े नेता घोर माडरेट थे, उस समय सुन्दरलालजीने वहाँ उग्र राजनैतिक विचारोंका प्रचार करना प्रारम्भ किया था। नरम नेताओंकी बेजा नरमीने आपको कितना सन्तप्त किया, इस प्रश्नपर प्रकाश डालनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। यही कहना पर्याप्त होगा कि इन सन्तापोंने आपके विचारोंको और भी गरम कर दिया।

पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा, पर यह बात बिलकुल ठीक है कि सुन्दरलालजी स्वर्गीय मि० गोखलेका नाम बड़ी श्रद्धा तथा सम्मानके साथ स्मरण करते हैं। जो बातें सुन्दरलालजी उनके विषयमें सुनाते हैं, उनसे प्रतीत होता है कि स्वर्गीय मि० गोखलेके हृदयमें क्रान्तिकारी नवयुवकोंके प्रति कुछ कोमल भाव अवश्य थे। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई सम्पादक महोदय सुन्दरलालजीसे उनके राजनैतिक संस्मरण लिखा सकें।

संयुक्त-प्रान्तमें उग्र राजनैतिक विचारोंके प्रारम्भिक प्रचारकोंमें आपका स्थान अत्युच्च है। सन् १९१० में आपने 'कर्मयोगी' नामक साप्ताहिक पत्र निकालकर हिन्दी पत्रकार-कलामें एक प्रकारका युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया था। हिन्दीमें अनेक साप्ताहिक पत्र निकलनेपर भी 'कर्मयोगी' के मुकाबलेका और उस ढंगका दूसरा साप्ताहिक पत्र आज तक नहीं निकला। तीन-चार महीनेके अन्दर ही 'कर्मयोगी' छह हज़ार तक छपने लगा था, जो उस समयके देखे एक अत्यन्त उत्साहप्रद संख्या थी। वैसे आजकल भी यह बात आसान नहीं है। 'कर्मयोगी' सरकारकी आँखोंमें खटकने लगा, और नौकरशाहीने राजद्रोहका अपराध लगाकर उसे बन्द कर दिया। हिन्दी-पत्रकार-क्षेत्रमें उत्कट देश-प्रेम, निर्भीक स्वातन्त्र्य तथा उग्र राजनैतिक विचारोंके बीज बोनेवाले यदि 'हिन्दी-प्रदीप'-सम्पादक स्वर्गीय पं० बालकृष्णजी भट्ट कहे जायँ, तो इस पौधेको सींचनेवाले 'कर्मयोगी'-सम्पादक श्री सुन्दरलालजी कहे जायँगे। दोनोंका गुरु-शिष्य जैसा सम्बन्ध भी था। सुन्दरलालजीपर भट्टजीकी बड़ी कृपा थी।

सुन्दरलालजी समयपर काम करना जानते हैं और कुसमयपर चुप रहना भी जानते हैं। जब उन्होंने देखा कि वायु-मंडल उपयुक्त नहीं है और संयुक्त-प्रान्तकी जनता उनके गरम विचारोंके पीछे नहीं चल सकती, तो उन्होंने अज्ञातवास स्वीकार कर लिया और सोलनकी पहाड़ीपर स्वामी सोमेश्वरानन्दके रूपमें विचरने लगे! शायद उन्हीं दिनों उन्होंने ऐडवर्ड कार्पेन्टरकी 'Civilisation, its cause and cure' नामक सुप्रसिद्ध पुस्तकका इलाज किया था, जो 'सभ्यताकी बीमारी और उसका इलाज' नामसे छपी।

जब श्रीमती एनी बीसेन्टने होम-रूलका आन्दोलन खड़ा किया, तो सुन्दरलालजी अपने अज्ञातवाससे फिर कार्यक्षेत्रमें आये। उस समय प्रयागकी होम-रूल लीगके द्वारा आपने अच्छा कार्य किया। असहयोग-आन्दोलनमें जो महत्त्वपूर्ण

भाग आपने लिया, उसे हिन्दी पत्रोंके पाठक जानते ही हैं। नवयुवकोंपर जो अद्‌भुत प्रभाव आप डाल सकते हैं, उसकी प्रशंसा महात्मा गान्धीने अपने पत्र 'यंग इण्डिया'में की थी। इस बीच आपने 'भविष्य' नामक पत्र भी निकाला था, पर वह भी सरकारकी कृपासे बन्द कर देना पड़ा। मध्यप्रदेशके झण्डा-सत्याग्रहके सूत्रधार और सञ्चालकके रूपमें किये हुए आपके कार्यसे सर्वसाधारण परिचित ही है। स्वाधीनता-संग्राममें एक छोटे सिपाहीसे लेकर बड़े सेनापति तकका कार्य आप योग्यता-पूर्वक कर सकते हैं।

सुन्दरलालजी तथा अन्य राजनैतिक कार्यकर्ताओंकी मनोवृत्तिमें कुछ अन्तर अवश्य है। हमारे देशमें कितने ही लीडर ऐसे हैं, जो हर मौक़ेपर—चाहे देशकी परिस्थिति उनके विचारोंके अनुकूल हो, या प्रतिकूल—जनताके सम्मुख बने रहना चाहते हैं। सुन्दरलालजी इस नीतिके विरोधी हैं। गम्भीर उथल-पुथलके दिनोंमें ही उन्हें आनन्द आता है। स्वराज्य-पार्टीके निर्माणके विरुद्ध उन्होंने काफ़ी उद्योग किया था। कोकनाडा-कांग्रेसमें तो श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्तीको नेता बनाकर उन्होंने स्वराज्य-पार्टीको पराजित करनेका भी प्रयत्न किया, पर इस प्रयत्नमें असफल हुए और उसके बाद उन्होंने चुप्पी साध ली।

भारतीय राजनीतिके क्षेत्रमें स्वराज्य-पार्टीका दौर-दौरा रहा। कौन्सिलोंमें जाकर 'दुश्मनका किला तोड़ने'की और 'भीतरसे असहयोग' करनेकी आवाज़ बुलन्द की गई। सुन्दरलालजीने कान बन्द कर लिये। एक न सुनी। बड़े-बड़े अपरिवर्तनवादी नेता कौन्सिलोंमें जाना देशके लिए विघातक मानते हुए भी स्वराजिस्टोंको वोट दिलानेकी दौड़-धूपमें शरीक हुए! कोई नगरके गण्यमान्य साथियोंके दाबवको न रोक सका, तो कोई कांग्रेसकी इज्ज़तका ही खयाल करके कौन्सिलमें चला गया और किसी-किसीने यह कहकर मनको समझाया कि ग्राम-संगठनका कार्य कौन्सिलोंके द्वारा करेंगे। सुन्दरलालजीसे भी कहा गया कि चुनावमें स्वराजिस्टोंकी सहायताके लिए दौरा करो। आपने साफ इनकार कर दिया। कौन्सिलमें जाने तथा बाहर आने और फिर जानेके हास्योत्पादक नाटक होते रहे। जब कि कितने ही लीडराने-वतन 'क़ौमके ग़ममें डिनर खाते थे हुक्कामके साथ', उस समय सुन्दरलालजी ५१ नं०, चक मुहल्ला, प्रयागके एक प्राचीन कालीन मकानमें रहते हुए चरखा कातते थे, और 'भारतमें अंग्रज़ी-राज्य' नामक पुस्तक लिखते थे। इस समय देशमें पुनः संग्राम छिड़ गया है। रणभेरी बज गई है, लिहाज़ा सुन्दरलालजी आज फिर कार्यक्षेत्रमें कमर कसे दिखाई पड़ते हैं—कानपुरमें होनेवाली संयुक्त-प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेन्सकी बागडोर उनके हाथमें है।

श्रीयुत सुन्दरलालजीका सबसे बड़ा गुण यही है, और व्यावहारिक राजनीतिज्ञोंकी दृष्टिमें शायद सबसे बड़ी कमज़ोरी भी यही है—कि वे समझौता करना जानते ही नहीं। अपने विरोधीका दृष्टिकोण उन्हें दीखता ही नहीं। माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजीपर यह अपराध लगाया जाता है कि वे अपने विपक्षीके दृष्टिकोणसे उसके पक्षको देखते हैं, और इसीलिए उनके विरोधमें निर्बलता आ जाती है। सुन्दरलालजी पर यह अपराध कोई कदापि नहीं लगा सकता। विरोधी दलको छकानेमें आप कितने सिद्धहस्त हैं, इसके प्रमाण आप मध्यप्रदेशके दो-एक आनरेबुल मिनिस्टरोंसे ले सकते हैं। स्वर्गीय लालाजीने एक बार कहा था—"सुन्दरलाल, तुम कभी देशसे बाहर तो गये नहीं, पर यूरोपियन दलबन्दीके Party-Politics ढंगकी कार्रवाइयोंके तुम घर बैठे ही मास्टर बन गये हो।" किसी-किसीका यह मत है कि अपने विरोधियोंके प्रति बर्ताव करते हुए वे दलबन्दीके सभी प्रकारके दाव-पेचोंका प्रयोग करते हैं। स्वयं राजनीतिज्ञ न होनेके कारण हम इस कथनकी सत्यता अथवा असत्यताके विषयमें कुछ नहीं कह सकते।

सुन्दरलालजी दिमाग़के बड़े साफ़ हैं। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि बाह्य घटाटोपोंको चीरती हुई सीधी मूलपर पहुँचती है। संयुक्त-प्रान्तके एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक विद्यालयकी मैंने उनके सामने बहुत प्रशंसा की। सुनते रहे, फिर

बोले—"यह तो सब ठीक है, पर उक्त विद्यालयकी नींव तो अन्ध-विश्वास (Superstition) पर रखी हुई है। फिर भला वह संस्था कैसे अच्छी हो सकती है?" मैंने बहुत तर्क-वितर्क किया, पर उनका अन्तिम जवाब यही था—"जिसके मूलमें ही खराबी है, उसकी तारीफ़ मैं कैसे करूँ? समय आनेपर इस तरहकी संस्था देशका कभी साथ न देगी।"

साम्प्रदायिक कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंको आप देशके लिए अत्यन्त विघातक मानते हैं, और उनकी अपेक्षा गवर्मेण्ट कालेजोंको ही बेहतर समझते हैं। एक बार कायस्थ-पाठशालाके विद्यार्थी स्वजातीय संस्थामें कुछ भाषण देनेकी प्रार्थना करनेके लिए आपके पास गये थे। आपने साफ इनकार कर दिया। "हिन्दू-विश्वविद्यालयका आन्दोलन देशके लिए विघातक सिद्ध हुआ। उससे सार्वजनिक शिक्षाकी धारा जिसे मि० गोखले साधारण जनताकी ओर ले जाना चाहते थे, उल्टी हानिकारक दिशामें चली गई"—इत्यादि तर्क आप सुन्दरलालजीसे सुन सकते हैं। साम्प्रदायिकताके आप कट्टर दुश्मन हैं, और उसकी नींवपर खड़े सुन्दर-से-सुन्दर विशाल भवनको आप भयंकर मानते हैं।

हरएक आदमीकी एक-न-एक खास कमज़ोरी होती है। या यों कहिये कि जिस वस्तुसे जिसे अत्यधिक ममता हो, वही उसकी कमज़ोरी है। चरखा महात्माजीकी कमज़ोरी है, हिन्दू-विश्वविद्यालय पूज्य मालवीयजीकी कमज़ोरी है और 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' श्रीयुत सुन्दरलालजीकी ज़बर्दस्त कमज़ोरी है। कितने ही लोगोंका ऐसा कथन है कि मुसलमानोंके प्रति उनका काफी पक्षपात है। उनके कोई-कोई विरोधी तो यहाँ तक कहते हैं—"सुन्दरलालजीका सारा ऐतिहासिक ज्ञान इसी दोषके रंगसे रंजित हो गया है।" इसका जवाब वे यही देते हैं—"जो इतिहास आजकल पाये जाते हैं, वे ऐसे महानुभावोंके लिखे हुए हैं, जिनका स्वार्थ हिन्दू और मुसलमानोंमें विभिन्नता पैदा करनेमें था। अब राष्ट्रीय इतिहास दूसरी दृष्टिसे लिखे जाने चाहिए।"

इतिहास-शास्त्रके विशेषज्ञ न होनेसे इस प्रश्नपर अपनी सम्मति देनेमें हम असमर्थ हैं। मामूली पाठककी हैसियतसे इतना ज़रूर कह सकते हैं कि मुस्लिम संस्कृतिकी प्रशंसामें सुन्दरलालजी दक्षिणी ध्रुव तक जाते हैं, तो उसकी निन्दामें भाई परमानन्दजी उत्तरी ध्रुव तक। सत्य शायद इन दोनों स्थानोंके बीचों बीच है।

देशमें तरह-तरहके 'क्रान्तिकारी' हैं। कोई राजनैतिक मामलोंमें घोर क्रान्तिका कट्टर समर्थक है, तो कोई सामाजिक मामलोंमें गौड़ ब्राह्मणोंकी रोटी'से आगे नहीं बढ़ पाया। हिन्दू मुस्लिम एकतापर धारा-प्रवाह व्याख्यान देनेवाले कितने ही क्रान्तिकारी नेता मुसलमानके हाथका छुआ पानी नहीं पी सकते। सुन्दरलालजीको इस तरहके ढोंगोंसे घोर घृणा है। खुदा न ख्वास्ता कहीं सुन्दरलालजी किसी रेलवेके डिवीज़नल सुपरिन्टेन्डेन्ट बना दिये जायँ, तो दूसरे दिन ही रेलके स्टेशनोंपर निम्न-लिखित फरमान चिपका हुआ दीख पड़ेगा—

"यात्रियोंको आगाह किया जाता है कि पहली मईसे तमाम स्टेशनोंपर बिला किसी जात-पांतके भेदके इंडियन पानीका इन्तज़ाम किया जायगा। 'हिन्दू-पानी' और 'मुस्लिम-पानी'का प्रबन्ध तोड़ दिया जायगा। जो मुसाफिर इसे नापसन्द करें, वे या तो रेलका सफर करना छोड़ दें, या फिर घरसे पानीका इन्तज़ाम करके बैठें।"

सुन्दरलालजी किस धर्मके अनुयायी हैं और उनके धार्मिक विश्वास क्या हैं, संक्षेपमें यह बतलाना कठिन है। राष्ट्रीयता ही उनका धर्म है, इतना कहनेसे काम नहीं चल सकता। एक बात हम अच्छी तरह जानते हैं, वह यह कि मध्यकालीन सन्त लोगोंकी वाणियोंका सुन्दरलालजीपर ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा है। कबीरके तो वे अनन्य भक्त हैं।

"हिन्दू कहें राम मोहि प्यारा, तुरक कहें रहिमाना;
आपसमें दोऊ लरि-लरि मूए, भेद न काहू जाना।"

कबीरकी यह उक्ति आपको बहुत पसन्द है। अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'भारतमें अंग्रेज़ी राज्य' उन्होंने कबीरको ही

समर्पित की थी। आपका यह विश्वास है कि आगे चलकर कबीर आदि सन्त कवियोंके विचार भारतमें अधिकाधिक लोक-प्रिय होंगे। ये सन्त कवि शब्दाडम्बर-हीन भाषामें जो कुछ कहते हैं, वह सीधा जनताके हृदय तक पहुँच जाता है।

सुन्दरलालजी मामूली जनताकी मनोवृत्ति (Maas minded) को समझनेवाले नेता हैं। मध्यप्रदेशके किसी ग्रामका कोई अशिक्षित नवयुवक आपको अपनी पैदल यात्रामें कहीं मिला। वह सत्याग्रहमें एक बार जेल हो आया था, जिसके कारण उसके गाड़ी बैल बिक चुके थे। सुन्दरलालजीने उससे पूछा—"क्यों भाई, अबकी बार फिर मौक़ा आवे, तो जेल जाओगे?" उसने तुरन्त ही कहा—"हओ।" उसकी वह 'हओ' सुन्दरलालजी अब तक नहीं भूले। सच्चे क्रान्तिकारियोंकी तरह सुन्दरलालजीका भी यही विश्वास है कि साधारण जनता तक स्वाधीनताका सन्देश पहुँचाये बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। सुन्दरलालजी सहृदय हैं। अपने साथी कार्यकर्ताओंके प्रति उनका बन्धुभाव प्रसिद्ध है। यदि उनके पास पाँच पैसे हों और चार साथी, तो पैसे-पैसेके चने आपसमें बाँटकर वे आनन्दसे काम कर सकते हैं।

जीवनका लक्ष्य

कोरमकोर राजनैतिक स्वाधीनतासे सुन्दरलालजी सन्तुष्ट नहीं हो सकते। वे इससे कुछ अधिक चाहते हैं। आजसे साढ़े पाँच वर्ष पहले उन्होंने अपने एक पत्रमें मुझे लिखा था—

"····'अभी समय नहीं आया'की आवाज़ तो संसारके हर सुधारके विषयमें हमेशा उठती ही रहेगी, किन्तु मेरे दिलमें तो यह बात अधिकाधिक जमती ही जा रही है कि So called 'धार्मिक' परम्पराओं और धार्मिक आडम्बरपर हमला करनेकी भारतमें यदि कभी आवश्यकता थी, तो अब है, और यदि कभी उसका समय था, तो वह यह है। 'असत्यकी दीवालें' कभी भी मज़बूत नहीं हो सकतीं और सत्यके कुदालके सामने हरगिज़ देर तक नहीं ठहर सकतीं। यदि भारतको जीना है, तो सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह (Inter-marriage) दोनों ज़रूरी हैं, और जितनी जल्दी हम इस सचाईको जनताके कानों तक पहुँचा दें, उतना ही अच्छा है। मैं यह भी जानता हूँ कि spade को spade कहनेवालोंकी क़िस्मतमें सदासे martyrdom बदी रही है, किन्तु इसकी मुझे परवाह क्या? इसे तो मेरे जैसे सदासे मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च गौरव ही मानते आये हैं। मेरा नशा अभी तो गहरा ही होता जा रहा है, आगेकी कौन जाने। यदि जीता रहा और काम करनेकी शक्ति रही, तो वही आज़ादी, एक आज़ादीकी रट, राजनैतिक आज़ादी, धार्मिक आज़ादी, सामाजिक (Social) आज़ादी, रूढ़ियों और परम्पराओंसे आज़ादी—मेरे लिए तो देशके उद्धार और अपने जीवन-कर्तव्यका यही एक मार्ग है। अहिंसा और असहयोग दोनोंका मैं पूरा कायल ज़रूर हूँ, किन्तु मेरे लिए साधन साधन है, ध्येय ध्येय है।

सुन्दरलालजीका भविष्य

सुन्दरलालजीका भविष्य क्या होगा, यह बतलाना कठिन है। दिल्लीकी पार्लामेण्ट रोडपर मोटरकारमें जाते हुए मि० सुन्दरलाल एम० एल० ए० की कल्पना हमारे दिमाग़में नहीं आती। कण्टकाकीर्ण पथपर चलनेके अभ्यस्त कठोर चरणोंको वह कोमल मार्ग शायद ही पसन्द आवे। 'डोमीनियन स्टेटस' हो जानेपर वे पूर्ण-स्वाधीनताके पक्षमें लड़ेंगे, और पूर्ण-स्वाधीनता हो जानेपर धार्मिक परम्पराओं और आडम्बरोंके विरुद्ध। गरज़ यह कि लड़ते ही रहेंगे, लड़नेवालोंमें सदा आगे ही रहेंगे। एक बार न जाने किस विषयपर वार्तालाप हो रहा था। सुन्दरलालजीने कहा—"मुझे तो वह बात अच्छी लगती है। एक आदमी डूब रहा है। हम उधरसे जा रहे हैं। तैरना जानते हैं। कूद पड़े, निकाल दिया और बिना परिचय या बातचीतके चलते बने।" जब हमारे देशके कितने ही नवयुवक नेता स्वाधीनता-संग्राममें विजयी होकर देशके शासक होनेका सौभाग्यपूर्ण अवसर प्राप्त करेंगे—यह स्वाभाविक भी है और उचित भी—उस समय भी सुन्दरलालजी किसी-न-किसी क्रान्तिकारी लड़ाईमें व्यस्त होंगे और अपनेसे लड़ना, विदेशियोंसे लड़नेकी अपेक्षा कठिनतर होगा। सुन्दरलालजी सन्तुष्ट होकर बैठ रहनेवाले जीव नहीं हैं। संक्षेपमें यदि उनका परिचय दिया जाय, तो हम इतना कह सकते हैं कि 'सुन्दरलालजी बिना किसी लगालेसके खालिस क्रान्तिकारी हैं।'

चित्रकूट

(गताङ्कसे आगे)

[लेखक :— श्री मैथिलीशरण गुप्त]

"हा मातः, मुझको करो न यों अपराधी,
मैं सुन न सकूँगा बात और अब आधी।
कहती हो तुम क्यों अन्य-तुल्य यह बानी?
क्या राम तुम्हारा पुत्र नहीं वह मानी?
इस भाँति मनाकर हाय मुझे न रुठाओ,
जो उठूँ न मैं, क्यों तुम्हीं न आप उठाओ।

वे शैशवके दिन आज हमारे बीते,
माँके शिशु क्यों शिशु ही न रहे मन-चीते?
तुम रीझ-खीझकर कोप जनातीं मुझको,
हँस आप रुठातीं, आप मनातीं मुझको।
वे दिन बीते तुम जीर्ण दुःखकी मारी,
मैं बड़ा हुआ अब और साथ ही भारी।
अब उठा सकोगी तुम न तीनमें कोई",
"तुम हलके कब थे?" हँसी केकयी रोई।

"माँ अब भी तुमसे राम विनय चाहेगा?
अपने ऊपर क्या आप अद्रि ढाहेगा?
अब तो आज्ञाकी अम्ब, तुम्हारी बारी,
प्रस्तुत हूँ मैं भी धर्म धनुर्धृतिधारी।
जननीने मुझको जना, तुम्हींने पाला,
अपने साँचेमें आप यत्नसे ढाला।
सबके ऊपर आदेश तुम्हारा मैया,
मैं अनुचर पूत सपूत प्यारका भैया।

बनवास लिया है मान तुम्हारा शासन,
लूँगा न प्रजाका भार राज-सिंहासन?
पर यह पहला आदेश प्रथम हो पूरा,
वह तात-सत्य भी रहे न अम्ब, अधूरा।
जिसपर हैं अपने प्राण उन्होंने त्यागे,
मैं भी अपना व्रत-नियम निबाहूँ आगे।
निष्फल न गया माँ, यहाँ भरतका आना,
सिर-माथे मैंने वचन तुम्हारा माना।

सन्तुष्ट मुझे तुम देख रही हो वनमें,
सुख धन-धरतीमें नहीं, किन्तु निज मनमें।
यदि पूरा प्रत्यय न हो तुम्हें इस जनपर,
तो चढ़ सकते हैं राजदूत तो धनपर।"

"राघव, तेरे ही योग्य कथन है तेरा,
दृढ़ बाल हठी तू वही राम है मेरा।
देखें हम तेरा अवधि-मार्ग सब सहकर",
कौशल्या चुप हो गई आप यह कहकर।

ले एक साँस रह गई सुमित्रा भोली,
कैकेयी ही फिर रामचन्द्रसे बोली।
"पर मुझको तो परितोष नहीं है इससे,
हा! तब तक मैं क्या कहूँ-सुनूँगी किससे?"

"जीती है अब भी अम्ब, ऊर्मिला बेटी,
इन चरणोंकी चिर-काल रहूँ मैं चेटी।"
"रानी, तूने तो रुला दिया पहले ही,
यह कह काँटोंपर सुला दिया पहले ही।

आ, मेरी सबसे अधिक दुःखिनी, आ जा,
पिस मुझसे चंदन-लता मुझीपर छा जा।
हे वत्स, तुम्हें बनवास दिया मैंने ही,
अब उसका प्रत्याहार किया मैंने ही।"

पर रघुकुलमें जो वचन दिया जाता है,
लौटाकर वह कब कहाँ लिया जाता है?
क्यों व्यर्थ तुम्हारे प्राण खिन्न होते हैं,
वे प्रेम और कर्तव्य भिन्न होते हैं।

आने दो, निर्णय करें भरत ही सारा
मेरा अथवा है कथन यथार्थ तुम्हारा।
मेरी इनकी चिर-पंच रही तुम माता,
हम दोनोंके मध्यस्थ आज ये भ्राता।"

"हा आर्य ! भरतके लिए और था इतना ?"
"बस भाई, लो माँ, कहें और वे कितना ?"
"कहनेको तो है बहुत दु:खसे सुखसे,
पर आर्य, कहूँ तो कहूँ आज किस मुखसे ?
तब भी है तुमसे विनय, लौट घर जाओ",
"इस जाओका क्या अर्थ, मुझे बतलाओ ?"
"प्रभु, पूर्ण करूँगा यहाँ तुम्हारा व्रत मैं",
"पर क्या अयोग्य, असमर्थ और अनिरत मैं ?"
"यह सुनना भी है पाप, भिन्न हूँ क्या मैं ?"
"इस शंकासे भी नहीं खिन्न हूँ क्या मैं ?
हम एकात्मा हैं, तदपि भिन्न है काया",
"तो इस कायापर नहीं मुझे कुछ माया।
सड़ जाय पड़ी यह इसी उटजके आगे,
मिल जाँय तुम्हींमें प्राण आर्त अनुरागे।"
"पर मुझे प्रयोजन अभी अनुज इस तनका",
"तो भार उतारो तात तनिक इस जनका।
तुम निज विनोदमें व्यथा छिपा सकते हो,
करके इतना आयास नहीं थकते हो।
पर मैं कैसे, किस लिए सहूँ यह इतना ?"
"मुझ जैसे मेरे लिए तुम्हें यह कितना ?
शिष्टागम निष्फल नहीं कहीं होता है,
वनमें भी नागर भाव बीज बोता है।
कुछ देख रही है दूर दृष्टि मति मेरी,
क्या तुम्हें इष्ट है वीर, विफल गति मेरी।
तुमने मेरा आदेश सदासे माना,
हे तात, कहो क्यों आज व्यर्थ हठ ठाना ?
करनेमें निज कर्तव्य कुयश भी यश है।"
"हे आर्य, तुम्हारा भरत अतीव अवश है !
क्या कहूँ और क्या करूँ कि मैं पथ पाऊँ,
क्षण-भर ठहरो, मैं ठगा न सहसा जाऊँ।"
सन्नाटा-सा छा गया सभामें क्षण-भर,
हिल सका न मानो स्वयं काल भी कण भर।

जाबालि जरठको हुआ मौन दु:सह सा,
बोले वे स्वजटिल शीर्ष हुलाकर सहसा—
"ओहो ! मुझको कुछ नहीं समझ पड़ता है,
देनेको उलटा राज्य द्वन्द्व लड़ता है।
पितृ-वध तक उसके लिए लोग करते हैं",
"हे मुने, राज्यपर वही मर्त्य मरते हैं।"
"हे राम, त्यागकी वस्तु नहीं वह वैसी",
"पर मुने, भोगकी भी न समझिये ऐसी।"
"हे तरुण, तुम्हें संकोच और भय किसका ?"
"हे जरठ, नहीं इस समय आपको जिसका !"
"पशु-पक्षी तक हे वीर, स्वार्थ-लक्षी हैं";
"हे धीर, किन्तु मैं पशु न आप पक्षी हैं !"
"मतकी स्वतन्त्रता विशेषता आर्योंकी,
निज मतके ही अनुसार क्रिया कार्योंकी।
हे वत्स, विफल परलोक दृष्टि निज रोको ;"
"पर यही लोक है तात, आप अवलोको।"
"यह भी विनश्य है, इसीलिए हूँ कहता",
"क्या ?—हम रहते या राज्य हमारा रहता ?"
"मैं कहता हूँ सब भस्मशेष जब लोगो,
तब दु:ख छोड़कर क्यों न सौख्य ही भोगो ?"
"पर सौख्य कहाँ हे मुने, आप बतलावें ?"
"जन साधारण भी जहाँ मानते आवें।"
"पर साधारण जन आप न हमको जानें,
जन साधारणके लिए भले ही मानें।"
"यह भावुकता है।" "हमें इसीमें सुख है,
फिर पर-सुखमें क्यों चारुवाक्य, यह दुख है ?"
तब वामदेवने कहा—"धन्य भावुकता,
दे सकता उसका मूल्य कौन है चुकता ?
भावुक जनसे ही महत्कार्य होते हैं,
ज्ञानी संसार-असार मान रोते हैं।"
"किनसे विवाद हे आर्य, आप करते हैं ?"
बोले लक्ष्मण—"वे सौख्य खोज मरते हैं !

सुख मिले जहाँपर जिन्हें स्वाद वे चक्खें,
पर औरोंका भी ध्यान कृपा कर रक्खें।
शासन सबपर है इसे न कोई भूले,—
शासकपर भी, वह भी न फूलकर ऊले।"

हँसकर जाबालि वसिष्ठ—और सब हेरे,
मुसकाकर गुरुने कहा—"शिष्य हैं मेरे!
मन चाहे जैसे और परीक्षा लीजे,
आवश्यक हो तो स्वयं स्वदीक्षा दीजे।"

प्रभु बोले—"शिक्षा वस्तु सदैव अधूरी,
हे भरत, भद्र, हो बात तुम्हारी पूरी।"
"हे देव, विफल हो बार-बार भी, मनकी,
आशा अटकी है अभी यहाँ इस जनकी।

जब तक पितुराज्ञा आर्य यहाँपर पालें,
तबतक आर्या ही चलें,—स्वराज्य सँभालें।"
"भाई, अच्छा प्रस्ताव और क्या इससे?—
हमको तुमको सन्तोष सभीको जिससे।"

"पर मुझको भी हो तब न?" मैथिली बोलीं—
कुछ हुईं कुटिलसी सरल दृष्टियाँ भोलीं—
"कह चुके अभी मुनि—'सभी स्वार्थ ही देखें',
अपने मतमें वे यहाँ मुझीको लेखें!"

"भाभी, तुमपर है मुझे भरोसा दूना,
तुम पूर्ण करो निज भरत-मातृ-पद ऊना।
जो कोसलेश्वरी हाय वेश थे उनके?
मण्डन हैं अथवा चिह्न-शेष वे उनके?"

"देवर, न रुलाओ आह मुझे रोकर यों,
कातर होते हो तात, पुरुष होकर यों?
स्वयमेव राज्यका मूल्य जानते हो तुम,
क्यों उसी धूलमें मुझे सानते हो तुम?

मेरा मण्डन सिन्दूर-बिन्दु यह देखो,
सौ-सौ रत्नोंसे इसे अधिक तुम लेखो।
शत चन्द्र-हार उस एक अरुणके आगे
कब स्वयं प्रकृतिने नहीं स्वयं ही त्यागे?

इस निज सुहागकी सुप्रभात बेलामें,
जाग्रत जीवनकी खण्डमयी खेलामें,
मैं अम्बा-सम आशीष तुम्हें दूँ, आओ,
निज अग्रजसे भी शुभ्र सुयश तुम पाओ।"

"मैं अनुगृहीत हूँ अधिक कहूँ क्या देवी,
निज जन्म-जन्ममें रहूँ सदा पद-सेवी।
हे यशस्विनी, तुम मुझे मान्य हो यशसे,
पर लगें न मेरे वचन तुम्हें कर्कशसे।

तुमने मुझको यश दिया स्वयं श्रीमुखसे,
सुख दान करें अब आर्य बचा कर दुखसे।
हे राघवेन्द्र, यह दास सदा अनुयायी,
है बड़ी दण्डसे दया अन्तमें न्यायी।"

"क्या कुछ दिन तक भी राज्य भार है भाई?
सब जाग रहे हैं, अर्ध-रात्रि हो आई।"
"हे देव, राज्यके लिए नहीं रोता हूँ,
इन चरणोंपर ही, मैं अधीर होता हूँ।

प्रिय रहा तुम्हें यह दयाधृष्टलक्षण तो,
कर लेंगी प्रभु-पादुका राज्य रक्षण तो।
तो जैसी आज्ञा, आर्य सुखी हों वनमें,
जूझेगा दुखसे दास उदास भवनमें।

बस, मिलें पादुका मुझे, उन्हें ले जाऊँ,
बच उनके बलपर अवधि पार मैं पाऊँ।
हो जाय अवधि मय अवध अयोध्या अबसे,
मुख खोल नाथ, कुछ बोल सकूँ मैं सबसे।"

"रे भाई, तूने रुला दिया मुझको भी,
शंका थी तुझसे यही अपूर्व अलोभी।
था यही अभीप्सित तुझे अनुरागी,
तेरी आर्याके वचन सिद्ध हैं त्यागी।"

"अभिषेक अम्बु हो कहाँ अधिष्ठित, कहिये,
उसकी इच्छा है यहीं तीर्थ बन रहिये।
हम सब भी कर लें तनिक तपोवन यात्रा;"
"जैसी इच्छा, पर रहे नियत ही मात्रा।"

फिर सबने जय-जयकार किया मनमाना,
वंचित होना भी श्लाघ्य भरतका जाना।
पाया अपूर्व विश्राम साँस-सी लेकर,
गिरिने सेवा की शुद्ध अनिल-जल देकर।
मूँदे अनन्तने नयन-धार वह झाँकी,
शशि खिसक गया निश्चिन्त हँसी हँस बाँकी।
द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला,
हाटक-पट पहने दीख पड़ी गिरिमाला।
सिन्दूर चढ़ा आदर्श-दिनेश उदित था,
जन-जन अपनेको आप निहार मुदित था।
सुख लूट रहे थे अतिथि विचर कर गाकर,
"हम धन्य हुए इस पुण्य-भूमिपर आकर!"
यों ही लोगोंके मनो-मुकुल खिलते थे,
नव-नव मुनि-दर्शन, प्रकृति-दृश्य मिलते थे।
गुरु-जन समीप थे एक समय जब राघव,
लक्ष्मणसे बोली जनक-सुता साऽलाघव—
"हे तात, ताल-सम्पुटक तनिक ले लेना,
बहनोंको वन-उपहार मुझे है देना।"
"जो आज्ञा"—लक्ष्मण गये तुरन्त कुटीमें,
ज्यों घुसे सूर्य-कर-निकर सरोज-पुटीमें।

जाकर परन्तु जो वहाँ उन्होंने देखा,
तो दीख पड़ी कोणस्थ ऊर्मिला रेखा।
यह काया है या शेष उसीकी छाया,
क्षण-भर उनकी कुछ नहीं समझमें आया।
"मेरे उपवनके हरिण, आज वनचारी,
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें, तजो भय भारी।"
गिर पड़े दौड़ सौमित्रि प्रिया-पद-तलमें,
वह भींग उठी प्रिय-चरण धरे दृग-जलमें।
"वनमें तनिक तपस्या करके
बनने दो मुझको निज योग्य,
भाभीकी भगिनी, तुम मेरे
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।"
"हा स्वामी, कहना था क्या-क्या?
कह न सकी, कर्मोंका दोष!
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो
मुझे उसीमें है सन्तोष।"
एक घड़ी भी बीत न पाई,
बाहरसे कुछ वाणी आई।
सीता कहती थीं कि—"अरे रे,
आ पहुँचे पितृपद भी मेरे।"

(क्रमशः)



सबसे धनी दो राष्ट्रोंके विषयमें विचित्र संस्मरण

[लेखक :—श्री हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट्०]

संसारमें अमेरिकाके युक्तराष्ट्र सब देशोंसे अधिक समृद्धिशाली हैं। वहाँ दो हजारसे अधिक करोड़पति हैं, लखपती तो पचास हजारके क़रीब हैं, और किसी भी मज़दूरको दस रुपये रोज़से कम मजूरी नहीं मिलती। इस अलकापुरीमें—धनकुबेरोंके स्वर्गमें—यद्यपि ४० लाख आदमी बेकार हैं, लेकिन भूखा कोई नहीं मरता, बशर्ते वह खुद भूखा मरना न चाहे। जिसे काम नहीं है, वह आवारागर्दीमें पेट भर सकता है। लेखकका एक मित्र ज़ेकोस्लोवाकियासे अमेरिकाको भाग निकला, पास अधिक पैसा नहीं था। अमेरिका पहुँचनेके कुछ दिन बाद सब स्वाहा हो गया। अब क्या किया जाय? सामने अँधेरा सूझने लगा। अंग्रेज़ीका भी अधूरा ज्ञान था। न्यूयार्कके जर्मन-मुहल्लेके एक पार्कमें बेंचपर लेट गया। नज़र शून्यकी ओर, पेट सूना और दिमाग़ उससे भी अधिक खाली! घंटों इस हालतमें पड़े पड़े हो गये। शामको जब अँधेरा कुछ घनीभूत होने लगा, तो उसके कँधेपर किसीने ठेस मारी। देखता क्या है कि एक भीषणकाय किंभूत-किमाकार जीव खड़ा है। मित्र कुछ न समझा, लेटा ही रहा होगा, कोई भिखमंगा होगा! कोई डाकू!! मुझे इससे क्या, मेरी बलासे। मुझे यह भोजन थोड़े ही करवायगा, किन्तु फिर ठेस लगी और झटके अधिक ज़ोरसे। मित्रका कँधा कुछ दुखने लगा। वह भी तो बोहेमियाके पहाड़ी प्रदेशोंका था। क्षुधा और फलत: उससे पैदा हुई निर्बलतासे उसका शरीर जड़ हो रहा था, तो क्या हुआ। वह चट उठ बैठा और क्रोधमें उससे लड़नेको तैयार हो गया। ठीक ही है, 'क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति'। भूखे कमज़ोर आदमी क्रूर बन जाते हैं। सामने खड़ा हुआ प्रेत हँस पड़ा और तुरत बोल उठा—"हे जो! नो मनी।" "अरे जो! तुम्हारी जेब खाली है क्या?" फिर क्या था, हाथ मिल गये। भाईचारा हो गया, और दोनों इस धुनमें निकले कि 'येनकेन प्रकारेण उदरं परिपूरयेत्'। मित्र घुमक्कड़ बन गया। उसका पेशा हो गया युक्तराष्ट्रमें एक राष्ट्रसे दूसरेके चक्कर काटना और मिथ्या, चोरी, लूट-खसोट तथा मजबूरी हालतमें काम करके पेट पालना। इस प्रकार बेकार बोहेमियन—वहशीने ५०० डालर इकट्ठे किये और कालेजमें भर्ती हो गया। जब मुझे यह गुंडा बर्लिनमें मिला, तो वह पी-एच० डी०के लिए अपना निबन्ध समाप्त कर चुका था। अमेरिकाका एम० ए० तो हो ही गया था। सो अमेरिकाके बेकारोंका यह कार है। वहाँ 'भूखे भजन न होहिं गुपाला; ले यह कंठी, ले यह माला' कहनेकी किसीको आवश्यकता नहीं पड़ती, और न बाबा विश्वामित्रकी भाँति भूखकी यन्त्रणासे विकल होकर चांडालके घरसे कुत्ता चुरा, उसका मांस खाकर उस श्वपचकी गालियाँ सुननी पड़ती हैं। वहाँ अमेरिकाके खुदा 'सर्वशक्तिमान डालर'की भयंकर प्रचुरताने सबके सामने सुविधा रख दी है कि पेट-भर दूध मक्खन और रोटी खा ले। इसे प्राप्त करनेके उपाय, हाँ, भिन्न-भिन्न हैं। अस्तु। जिस देशमें उपवास रखना धर्म नहीं समझा जाता, वहाँ कौन कह सकता है कि राकफेलरके उपाय मेरे मित्रके उपायोंसे अच्छे हैं। दोनों ही अपनी उन्नति करनेके मार्ग पकड़ चल रहे हैं। हाँ, राकफेलरको 'सर्वे गुणा कांचनमाश्रयंते'—'धनको सब ही नित धन्य कहें' इस नीतिके अनुसार कोई दोष नहीं दे सकता। मेरा सुहृद अभी हालमें अमेरिकाके ...... विश्वविद्यालयमें अध्यापक नियुक्त हुआ है, इसलिए उसका दोष भी अब घट गया है। कलको उसका नाम फैल जायगा, तो उसका जीवन-चरित छापा जायगा, जिसमें उसके एक समयके दोष गुण समझे जायँगे। ऐसे चरित वहाँ रात-दिन छपते रहते हैं।

[२]

संसारका दूसरा सम्पत्तिशाली देश स्वेडन है। इस छोटेसे देशमें, जहाँकी आबादी साठ लाख है, पाँच सौ धनकुबेर हैं। लखपती न मालूम कितने हैं। मजूरकी यह हालत है कि अमेरिकाके युक्तराष्ट्रकी तरह अपनी मोटरकार रखता और अपने बंगलेमें रहता है। ऐश-आरामका यह ढंग कि संसारमें रेडियोका सबसे अधिक प्रचार इसी देशमें है। उत्तरी ध्रुवके पास ऊँचे-ऊँचे देवदारुके घने जंगलोंमें रहनेवाला किसान भी लंदन, बर्लिन और पारी (पेरिस) के बैंडकी तालमें अपनी प्रेयसीके साथ नाचता है। इस देशमें फ्रान्सकी भाँति बेकारी प्राय: नहीं है। इसपर खूबी यह है कि कोई मनुष्य—उसके पास कितना ही द्रव्य क्यों न हो—खाली तथा बेकार बैठना नहीं चाहता। इनकी सादगी और भलमनसाहत देखिए कि चाहे कोई भी इन्हें ठग सकता है, मगर ये ठगनेका माद्दा ही नहीं रखते। इन्हें देखकर, इनसे बातचीत कर, इनसे मिलकर इनके संघर्षमें आनेपर ठगों और धूर्तोंके विचार-प्रवाहमें परिवर्तन होनेकी तैयारी होने लगती है। आप इनके देशमें चले जाइये, भूखे कभी न मरेंगे। जब ये सुनते हैं कि संसारके किसी कोनेमें मनुष्यको भूख सता रही है, तो इनका कोमल और उदार हृदय फटने लगता है, और इनके देशसे वहाँको अवश्य सहायता पहुँचती है। आल्फ्रेड नोबुल इसी देशका था, इसने डाइनामाइट और तोपें बनाकर अपार सम्पत्ति जोड़ी, और सब रुपया जगत‍्में साहित्य तथा शान्तिकी उन्नतिके लिए समर्पण कर गया। नोबुल-पुरस्कार इसीकी उदारताका परिचायक है।

विएनामें मुझे एक स्वीडिश युवतीके साथ एक निमंत्रणमें जाना था। हम दोनों पैदल बुर्गरिंग पार कर रहे थे। इतनेमें एक लड़की हमारे पास आती है, और पूछती है—"क्या आप स्वेड हो?"

मैंने कहा—"हाँ, मेरी मित्र स्वेडनकी हैं, और मैं भारतका।"

हम रास्तेमें स्वेडिशमें बातें कर रहे थे, इसलिए उसने समझा कि हम स्वेडनके हैं। उसे स्वेडनमें दिलचस्पी क्यों? और वह भी इतनी उम्र कि बेजान-पहचानके इस घड़ल्लेसे पास आती है और उक्त सवाल करती है। तुरत ही स्वयं बोली—"क्षमा करना, मैंने ज़रूर ढिठाई की है। किन्तु मेरा प्रेम स्वेडन और वहाँके लोगोंके प्रति इतना प्रचंड है कि मैं अपने रोके न रुक सकी। मैं बहुत दूरसे आप लोगोंके पीछे-पीछे आ रही हूँ। अब तक हिम्मत न पड़ी। अब जी कड़ाकर, लाज त्यागकर हिम्मत बाँधी कि पूछ ही तो लूँ।

मेरी साथिनने बड़े अचरजमें आकर प्रश्न किया—"क्यों, तुमको मेरे देशसे इतनी मुहब्बत क्यों है?"

उसने उत्तर दिया—"मुझे स्वेडनने पाला पोषा है।"

मेरी साथिन बोली—"बस, अब चुप रहो, मैं समझ गई।"

मैं भी समझ गया, क्योंकि सन् १९२२ और २३ में मैंने देखा था कि बर्लिनमें मौतके बादल भूखके रूपमें मंडरा रहे थे। इसकी घन-घटाने सुकुमार बालक-बालिकाओंपर घोर कृष्णछाया डाल रखी थी। हम विदेशी दूध-मक्खन, चाप-कटलेट, राइन-वाइन और शेम्पेन उड़ा रहे थे। और अधिकांश विदेशी उस समय जर्मनीमें इसीलिए थे कि भारतमें अंग्रेज़ोंकी भाँति खाद्य तथा अन्य पदार्थोंका मूल्य चढ़ा दें, और जर्मनीके बाशिन्दोंको अप्रत्यक्ष-रूपसे भूखा मारें। बूढ़े और जवान किसी प्रकार काली रोटी और नकली मक्खन—मारजरीनसे पेटकी आग बुझा रहे थे, किन्तु बालक बालिकाएँ यदि इस अवस्थामें भरपेट न खा सकें, तो जीवन भर उनका स्वास्थ्य अपूर्ण रह जायगा। कुटपनके भूखे जवानीमें कितना ही भरपेट क्यों न खायें, फिर वे हृष्ट-पुष्ट नहीं बन सकते। इस बातको भलीभाँति समझनेवाले जर्मन निस्सहाय अवस्थामें अपने बाल-बच्चोंको क्षुधातुर अवस्थामें देख रहे थे, और दिल-ही-दिलमें पानीसे बाहर निकाली-गई मछलीकी नाईं तड़प रहे थे, लेकिन उनके हाथमें इसका कोई इलाज न था। आस्ट्रियामें भी यही हाल था।

इन शिशुओंकी यह दुर्दशा स्वेडनवाले न देख सके। उन्होंने अपने देशमें इन कुमार और कुमारियोंकी पूजा की। उन्हें वहांके मध्यवित्त और धनियोंने अपने-अपने परिवारमें रखा तथा इस प्रकार रखा कि मानो वे उनके अपने आत्मज हैं। इनका आपसमें प्रेम हो गया। वह विएनाकी लड़की भी उस समय स्वेडनके एक गांवमें एक परिवारमें ली गयी थी। दो साल यह वहां रही, और उसके साथ जो व्यवहार किया गया, उसने उसे खरीद लिया। नहीं तो विएनाकी लड़की दुनियांके किसी देश तथा शहरकी प्रशंसा नहीं कर सकती।

वर्तमान विएना यूरोपके अन्य नगरोंसे बहुत पिछड़ गया है। वहाँसे संस्कृति सरासर कपूरके समान उड़ रही है। वहाँकी शूद्रतंत्रतावादी सरकारने उन्हें वहाँसे भगानेकी क़सम खाई है, जो शिष्टाचार और सभ्यताके मूल स्रोत हैं। अर्थात् विएनाकी शासन-सभा शूद्रपंथी होनेके कारण वहाँसे ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको—उनकी प्रकृतिके प्रतिकूल नियम बनाकर—वहाँसे खदेड़ रही है, लेकिन इस हालतमें भी आप वहाँके मजूरोंसे बात कीजिए। वहाँके प्रोफेसरोंसे भेंट कीजिए। सब यही कहेंगे कि विएना सौन्दर्य और संस्कृतिमें पारीके अतिरिक्त सब नगरोंसे बढ़ा-चढ़ा है। इसपर वहाँकी महिलाएँ अपने नगरपर जो नाज़ करती हैं, उसकी कहाँ तुलना मिलेगी। इसलिए मैंने उस लड़कीसे कहा—"तुम्हारे विएना और वहाँके निवासियोंसे अधिक संस्कृत कौन पुरी तथा पौर हैं। तुम ग्योटेबौर्गकी तारीफके ऐसे पुल क्यों बाँधती हो?"

वह बोली—"नहीं, तुम नहीं जानते कि विएना और विएनीज़ ग्योटेबौर्ग और वहांके रहनेवालोंसे मुक़ाबला नहीं कर सकते। ओह! स्वेडन स्वर्ग है!'

अस्तु वह कन्या स्वेडनपर मुग्ध है। शीघ्र फिर वहाँ जानेवाली है। ग्योटेबौर्गसे उसे सदा पत्र मिलते हैं कि फिर यहाँ आओ। अभी दो वर्ष हुए थे, वहाँ वह हो आई है, इधर फिर उनका तक़ाज़ा हो रहा है। इसकी भी इच्छा है। इसने हम दोनोंको अपने घरमें चाय पीनेका निमंत्रण दिया और इससे स्वेडिश-भाषामें ही बातें हुईं। जब हम कुछ दिन बाद विएनाकी थियासाफिकल सोसाइटीके प्रधानके पास गये, तो उन्होंने कहा—"यूरोपमें स्वेडन और नारवे ही सभ्य हैं, सब और देश बर्बर और जंगली हैं। सभ्यता और संस्कृति उनमें देखनेको नहीं मिलती।"

मैंने उनसे कहा—"जब आप यूरपके विषयमें ऐसी सम्मति रखते हैं, तो जो अमेरिका कालोंको मनुष्य नहीं समझता, मध्य और दक्षिणी अमेरिकाको गुलाम बनानेकी चेष्टा कर रहा है, और सिवा धनके किसी दूसरे ईश्वरका भजन नहीं करता। उसको आप क्या समझते हैं?"

फ़ौरन वे बोल उठे—"वहाँ मनुष्य ही नहीं रहते।"*

मैं सोचने लगा—"कि कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः'

* पाठक इतना ध्यानमें रखें कि किसी भी जाति या देशमें सब बुरे या भले नहीं होते। बहुमतको देखकर उसे बुरा या भला कहा जाता है। —लेखक

'ऊँह'

[लेखक :—श्री मिर्ज़ा फरहतुल्लाबेग देहलवी]

ईश्वर इस 'ऊँह'से बचाए। जिसकी ज़बानपर आया, उसको तबाह किया; जिस घरमें घुसा, उसका सत्यानाश किया और जिस राष्ट्रमें फैला, उसमें गधेके हल चलवा दिये ! सबूत चाहिए तो संसारका इतिहास उठाकर देख लो, इस 'ऊँह'ने संसारके क्या-क्या रंग बदले हैं। जनरल 'ग्रूश'को नैपोलियन आज्ञा देता है कि अंग्रेज़ोंकी फ़ौजके पीछे अभी पहुँच जाओ और पौ फटनेसे पहले उसके पृष्ठभागपर दबाव डालो। सामनेसे मैं आक्रमण करता हूँ। 'ब्लूशर' के आनेसे पहले इस फ़ौजको रगड़ डालेंगे। जनरल 'ग्रूश' 'ऊँह' कर देता है। सबेरे नौ बजे 'ब्रेकफास्ट' (प्रातराश) से फारिग़ होकर रवाना होता है। 'वाटरलू' की लड़ाई न सिर्फ़ यूरोपका, बल्कि सारी दुनियाँका नकशा बदल देती है।

हिन्दोस्तानमें भी इस 'ऊँह'का कुछ कमज़ोर नहीं रहा है, 'नादिरशाह' चढ़ा चला आ रहा है। मोहम्मदशाह बादशाह रंगरलियाँ मना रहे हैं, पर्चा लगता है कि नादिर लाहौर तक आ गया। बादशाह सलामत 'ऊँह' कर देते हैं। लीजिए, इनकी एक 'ऊँह'से दिल्ली लुट जाती है, खज़ाना खाली हो जाता है।

मरहठे बढ़ते आ रहे हैं। दिल्लीपर क़ब्ज़ा करके 'गंजपुरा' लूट लेते हैं। अहमदशाह अबदालीको खबर होती है। वह बदला लेने चलता है। 'हुलकर' और 'सेंधिया' दोनों मिलकर 'भाऊ' को समझाते हैं कि तोपखाना यहीं छोड़ दो, हलके फुलके होकर मुक़ाबला करो। आमने-सामनेकी लड़ाई 'अबदाली' से मुश्किल है। 'भाऊ' 'ऊँह' कर देता है। इस 'ऊँह'का नतीजा यह निकलता है कि हिन्दोस्तानकी सल्तनतका जो ख़याल मरहठोंको था, वह पानीपतकी लड़ाईसे स्वप्न हो जाता है।

पहले तो जो कुछ था, वह था ; आजकल इस 'ऊँह'का बड़ा ज़ोर शोरा है। यही वजह है कि यहाँके इन्तज़ामका ऊँट किसी करवट नहीं बैठता, इधर प्रजाकी माँग पुकारपर गवर्मेन्टने 'ऊँह' की और इधर इस 'ऊँह'का जवाब बमसे मिला। ज़रा गवर्मेन्टके शासनपर प्रजाने 'ऊँह' की, और इस 'ऊँह' पर मशीनगनकी गोलियाँ बरस गईं। प्रजाकी हालत देखो तो यहाँ भी इस 'ऊँह'के नतीजे मौजूद हैं। मुसलमान-मुसलमानमें झगड़ा, हिन्दू हिन्दूमें झगड़ा, हिन्दू-मुसलमानमें झगड़ा, उत्तर-दक्खिनमें झगड़ा, पूरब-पच्छिममें झगड़ा, यहाँ तक कि ज़मीन-आसमानमें झगड़ा। अगर यहाँ 'ऊँह'का कुछ अरसे यों ही ज़ोर रहा, तो 'स्वराज्य' मिलना क्या 'गुलामी' भी नसीब होनी मुश्किल है।

देशके बाद अब सभाओंकी दशा देखो, तो वहाँ भी यही रंग दिखाई देगा। मेम्बर हैं कि बने-ठने, गद्देदार कुर्सियोंपर विराजमान हैं। स्पीकर (वक्ता) जोशमें बहकर कहींसे कहीं निकले जा रहे हैं। मेम्बरोंने थोड़ी देर यह असम्बद्ध भाषण सुना और 'ऊँह' कहकर आँखें बन्द कर लीं। लीजिए, इनके लिए तो सभाकी कार्रवाई समाप्त हो गई ! जो सदस्य ज़रा आँखें खोले बैठे हैं, वे ब्लाटिंगपर फूल-पत्ते या गधे और आदमियोंके चित्र बना रहे हैं। कोई इन भले-आदमियोंसे पूछे कि महाशय, यहाँ आप सोने और चित्र बनाने आये हैं, या राष्ट्रके लिए कुछ काम करने ? वोट लेनेका वक्त आया और उन्होंने बेसोचे-समझे पक्ष या विपक्षमें हाथ उठा दिये। उनको न यह मालूम करनेकी ज़रूरत कि इस विषयपर क्या विवाद हुआ और न यह जाननेकी आवश्यकता कि परिस्थितिके अनुसार समर्थन करना चाहिए या विरोध। यह तो सिर्फ़ 'ऊँह' करने और हाथ उठाने आये थे। इस कर्तव्यको पूरा कर दिया। अब सभावाले जानें, उनका काम जाने। सभाकी समाप्तिपर इन लोगोंसे पूछो तो निःसन्देह सबके सब 'ऊँह'से जवाब देंगे, जिसका अर्थ यह हुआ कि सभा व्यर्थ, वक्ता बेवकूफ़ और सुननेवाले गधे !

विद्यार्थियोंको देखो, तो 'ऊँह' का ज़ोर सबसे अधिक इन्हींमें पाओगे। साल-भर खेल-कूदमें गँवा दिया। परीक्षाका समय आया, तो 'ऊँह' कर दी, यानी कलसे पढ़ेंगे, आखिर यह 'ऊँह' यहाँ तक खींची कि परीक्षा आ गई। फेल हुए। फेल होनेपर भी 'ऊँह' कर दी। यह 'ऊँह' बहुत ही सारगर्भित है। इसका एक अर्थ तो यह है कि बाप जीते हैं, खाने-पीने और उड़ानेको मुफ्त मिलता है। अगर वह भी मर गये तो ज़ायदाद मौजूद है। क़र्ज़ा देनेको साहूकार तय्यार हैं। फिर पढ़-लिखकर अपना समय क्यों नष्ट करें। दूसरा मतलब यह है कि अभी हमारी उम्र ही क्या है, सिर्फ़ अठारह वर्षकी है। अगर मिडिलके इम्तहानमें दो चार बार फेल ही हो चुके हैं, तो क्या हर्ज है? तीससालकी उम्र तक भी इन्ट्रेन्स पास कर लिया, तो सिफ़ारिशके बलपर कहीं-न-कहीं चिपक ही जायँगे, या कमसे कम विलायत जानेका कर्ज़ा तो ज़रूर मिल जायगा, और ज़रा कोशिश की तो बादमें माफ़ भी हो सकेगा।

इस फेल होनेपर इधर इन्होंने 'ऊँह' की और उधर माँ-बापने 'ऊँह' की। इस दशामें माँ और बापकी 'ऊँह'का दूसरा अभिप्राय है, अर्थात् यह कि 'बच्चा' अभी फ़ेल हुआ है, दिल टूटा हुआ है। ज़रा कुछ कहा, तो कहीं ऐसा न हो कि रो-रोकर जान हलकान कर ले या कहीं जाकर डूब मरे। बस, इस 'ऊँह'ने 'साहबज़ादे'की शिक्षाकी इतिश्री कर दी।

घरवालीकी 'ऊँह' सबसे ज्यादा भयानक ऊँह होती है। किसी दासीपर रुष्ट हो रही हैं। वह बराबर जवाब दिये जाती है। यह 'ऊँह' करके चुप हो जाती हैं। लीजिए, नौकर शेर हो गये। घरका सारा प्रबन्ध अस्त-व्यस्त इनके अधिकार छिन गये। घरके शासनका सूत्र नौकरोंके हाथमें चला गया। कोई चीज़ चोरी हो गई। घरकी मालिकिनने इधर-उधर ढूंढ़ा। कुछ थोड़ा-बहुत हल्ला भी मचाया। आखिर 'ऊँह' करके बैठ गईं। अब क्या है, पिटारीमेंसे कत्था-छालियाँ गायब, कैशबक्समेंसे रुपये-पैसे गायब, सन्दूकोंमेंसे कपड़े गायब; शनैः शनैः सारे घरका सफ़ाया हो गया। बच्चोंने कोयलोंसे दीवारोंपर लकीरें खींचीं, दरवाज़ोंपर पेन्सिलसे कीड़े-मकोड़े बनाये। पहले तो श्रीमतीजी कुछ थोड़ी-बहुत बिगड़ीं, फिर 'ऊँह' करके चुप हो गईं। अब जाकर देखो, तो थोड़े दिनोंमें सारा मकान भाँति-भाँतिकी चित्रकारीसे 'अजन्ताकी गुफाओं'को मात कर रहा है!

अब रहे स्वामी, सो इनकी 'ऊँह' सबसे ज्यादा तेज़ है। श्रीमतीजी किसी बातपर बिगड़ीं, यह 'ऊँह' करके बाहर चले गये। अब न तो इनकी कोई प्रतिष्ठा नौकरोंमें रही और न श्रीमतीकी दृष्टिमें। रसोई बनानेवालीने पंद्रह दिनमें दस रुपयेकी लकड़ियाँ जला दीं। मालिकको क्रोध आया और क्यों न आता, परिश्रमकी कमाई इस तरह जलती देखकर क्यों दिल न जले! कुछ बड़बड़ाये, घरवालीकी तरफ़ सहायताकी दृष्टिसे देखा। उन्होंने 'ऊँह' कर दी। मिसरानीजी (रोटी बनानेवाली) ने यह रंग देख दूसरे पखवाड़ेमें बीस रुपयेकी लकड़ियाँ फूँक दीं।

पर यह बात भी है कि दम्पतीकी यह 'ऊँह' कभी-कभी वह काम कर जाती है, जो चाणक्य जैसे नीति-निपुण मन्त्री भी नहीं कर सकते। श्रीमतीको क्रोध आया। पतिने 'ऊँह' कर दी। चलो, लड़ाईका खातमा हुआ। पतिदेव किसी बातपर बिगड़े, देवीजीने 'ऊँह' कर दी, उनका क्रोध शान्त हो गया। यदि 'ऊँह'की जगह जवाब दिया जाता, तो पतिदेवको घर छोड़ना और श्रीमतीको अपने मायके जाना पड़ता। हिन्दोस्तानके बहुतसे घराने इस 'ऊँह' ही ने बचा रखे हैं।

प्रत्येक विषयके दो पक्ष होते हैं, जय या पराजय, और इन दोनों दशाओंमें 'ऊँह' हानिकारक सिद्ध होती है। पराजयपर जिसने 'ऊँह' की उसने मानो अपनी हारको हार ही न समझा। ऐसी दशामें वह अपनी दशा सुधारनेकी क्या चेष्टा करेगा? जिसने विजयपर 'ऊँह' की, उसने मानो अपने साहस और पराक्रमकी क़द्र नहीं की। वह आज नहीं डूबा, तो कल डूबेगा। दुनियाँमें वे लोग कुछ कर सकते हैं, जो जीतको जीत और हारको हार समझें। अब रहे वे 'ऊँह'वाले, जो बेपरवाही और उपेक्षासे विजय और पराजयको बराबर समझते हैं,

जिनकी दृष्टिमें हार और जीतमें कोई भेद ही नहीं, उनका बस, ईश्वर ही मालिक है।

यह उचित प्रतीत होता है कि अन्तमें इस 'ऊँह' के क्रमविकासपर भी कुछ प्रकाश डाला जाय, और यह बताया जाय कि यह पहले क्या था और क्या-से-क्या हो गया। हम लोग पुरुषार्थ-रहित प्रारब्धके अनुयायी हो गये हैं, और इस प्रारब्धवादसे हमको यह लाभ हुआ कि कोई जिम्मेदारी या उत्तरदायित्व हमपर बाकी नहीं रहा, इसलिये हमारी कोशिश हमेशा यह रही है कि इस भोगवाद या प्रारब्धके जितने विभाग बढ़ाये जा सकें, उतने बढ़ा दें। पहले हमने इस भोगवादको सन्तोष, ईश्वरकी मर्ज़ी और निरीहता इन तीन सीढ़ियों तक पहुँचाया था, पर जब इससे भी हमारी तृप्ति न हुई, तो चौथा दर्जा 'ऊँह' का निकाला। भोगवादके कैवल्यका यह अन्तिम सोपान है। हमारे साहसकी प्रशंसा करनी चाहिए कि हम इस आखिरी सीढ़ीको भी तय कर चुके हैं। अगर ज़मानेकी यही हालत रही, तो थोड़े दिनोंमें इस 'ऊँह'से भी कोई ऊँचा स्थान ढूँढ़कर वहाँ पहुँचनेकी कोशिश करेंगे, और ईश्वरने चाहा, तो सफल होंगे।

मेरी ओरसे कोई हिन्दोस्तानके लीडरोंको सुना दे कि स्वराज्य प्राप्त करना है, तो पहले अपने भाइयोंमेंसे इस 'ऊँह' को निकालो। यह कर सके, तो हिन्दुस्तान ही क्या सारा संसार तुम्हारा है। यह नहीं हो सकता, तो व्यर्थ चीख-चीखकर क्यों अपना गला फाड़ते हो। हम 'ऊँह' कर देंगे और तुम चीखते-चीखते मर जाओगे।

अनुवादक—काशीनाथ, काव्यतीर्थ

'दकिन पच' से अनुवादित

भरहुत

[लेखक :—श्री शारदाप्रसाद]

सन् १९१७ की बात है। दो जापानी सज्जन—श्रीयुत के० ओका सान और श्री० के० अराई सान—सतना आये, और मेरे पूज्य पिताजीने उन्हें अपने यहाँ ठहरा लिया। वे जापानी यात्री भरहुत देखने आये थे। यह जानकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि मेरे नगरके निकट ही एक ऐसा स्थान है, जिसकी कीर्ति सुनकर सहस्रों मील दूर जापान देशसे यात्रीगण आते हैं, और मैं वहाँका अधिवासी होकर भी उस स्थानका पता-ठिकाना क्या, नाम तक नहीं जानता! पहले-पहल उन्हीं जापानी सज्जनोंके साथ मैं भरहुत गया, परन्तु उस समय वहाँका महत्त्व न समझ सका। इसके बाद अनेकों बार भरहुत गया और अनेक सज्जनोंसे पूछ-ताछ भी की, परन्तु अज्ञान दूर न हुआ। पूरे आठ वर्षकी खोजके बाद अब इस प्राचीन स्थानका महत्त्व समझमें आया है। जैसे अज्ञानी जीव अपने आपको न पहचान कर भटकता फिरता है, वैसे ही प्राचीन भारतके उज्ज्वल इतिहासको न जाननेके कारण मैं भी भटकता फिरा। सच बात तो यह है कि इस समय भारत अतीतको भूला हुआ है। दुर्भाग्यवश उसके पूर्वजोंकी गौरवमय स्मृतिके चिह्न क्रमशः विलीन होते जा रहे हैं। इस समय यह बहुत आवश्यक है कि भारतके वर्तमान पुत्र अपने पूर्वजोंके इतिहासको जानें और उनके स्मृति-चिह्नोंकी रक्षा करें।

भरहुतके वर्तमान निवासियोंको वहाँके अतीत गौरवका पता नहीं है। हो भी कैसे, क्योंकि अब वहाँ कुछ विशेष बातें भी तो नहीं हैं। केवल दो-चार पत्थरके टुकड़े और थोड़ीसी मिट्टी पड़ी है। सन् १८७३ में जनरल कनिंघमको इस स्थानका पता लगा, और सन् १८७४ में उन्होंने खुदाई कराई। जो कुछ तोरण, स्तम्भ, सुची



भरहुतके स्तूप-स्थलकी वर्तमान अवस्था

(भगवान बुद्ध) ने माया द्वारा उसे अपने बाल, नाखून तथा दाँतके कुछ अंश दे दिये, तो उसने बागुड देशमें आकर अपना राज्य स्थापित किया, और वहीं इन पदार्थोंकी रक्षा तथा सम्मानके लिए उसने स्तूप निर्माण कराया। यह शाम्यक विहारके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान नामकरणके अनुसार भरहुत बर्मेमें और बघेलखंडमें स्थित है। सम्भव है कि बर्मे और बघेलखंड शब्दोंका विकास बागुड या बागड शब्दसे हुआ हो।

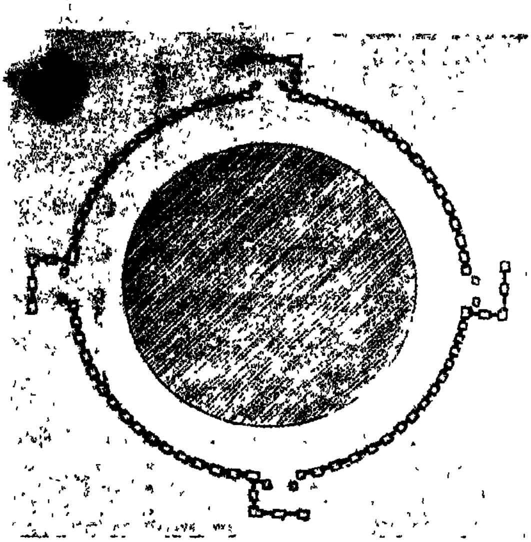
भरहुत-स्तूपके पूर्वी तोरणपर जो

और प्राचीन शिल्पके उत्कृष्ट नमूने वहाँ मिले, वे अब कलकत्तेके अजायबघरमें सुरक्षित हैं। विद्वानोंको भरहुतके महत्त्वका पता इन्हीं चिन्होंसे लगा है।

यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि इस स्थानका पुराना नाम क्या है। प्राचीन समयमें उज्जैन और भिलसासे एक सड़क पाटलीपुत्रको जाती थी। उज्जैन और भिलसासे यह सड़क पूर्वकी ओर भरहुत तक आती थी, और फिर वहाँसे उत्तरको कोशाम्बी और श्रावस्तीकी ओर घूम जाती थी। राजा प्रसेनजितके पुरोहित बावरीकी कथामें उज्जैनसे कोशाम्बी तक जिन नगरोंका नाम आता है, उनमें जनरल कनिंघमके मतानुसार बलसेवत वर्तमान भरहुतसे मेल खाता है। इन्हीं जनरल साहबका यह भी अनुमान है कि यवन (यूनानी) टालमीके प्रसिद्ध नकशेमें भरहुतका नाम बरदाओतिस (Bardaotis) लिखा है। कदाचित् इसी नामके आधारपर कोई-कोई वर्तमान लेखक इसका प्राचीन नाम बरदावती बतलाते हैं।

'तिब्बती दुल्वा'में लिखा है कि कपिलवस्तुसे शाम्यक नामक एक शाक्य निकाल दिया गया था। शाक्य मुनि

शिलालेख है, उसमें स्तूपका सुगन राज्यमें स्थित होना लिखा है। बादमें अवश्य ही यह स्थान गुप्त-साम्राज्यके अन्तर्गत हो गया था, परन्तु शीघ्र ही इस प्रदेशमें अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। कालान्तरमें यह प्रदेश महाराज हर्षवर्धनके साम्राज्यमें सम्मिलित हुआ। महाराज हर्षके पीछे मध्यदेशमें बाँधोगढ़के बघेल तथा खजुराहेके चन्देल बढ़े, और यह स्थान भी उन्हीं लोगोंके अधीन रहा होगा। जनरल कनिंघमको यहाँ एक विहारके भी खंडहर मिले थे, जिसमें बुद्ध भगवानकी एक बड़ी मूर्ति तथा अन्य छोटी बौद्ध मूर्तियाँ भी थीं। शिल्पके अनुसार ये मूर्तियाँ सन् १००० के बादकी ही हैं। इससे सिद्ध होता है कि हिन्दुओंके प्रभुत्वके समयमें भी बौद्धोंको अपने धर्माचरणमें कोई बाधा न पड़ी। हिन्दुओंने उन्हें फलने-फूलने दिया। मुसलमानोंके आगमनने ही भरहुतको भी निःशेष किया। अब स्तूप, विहार आदिके ईंट-पत्थर कुछ तो आसपासके गाँववाले उठा ले गये और जो कुछ बचा-खुचा था, वह जनरल कनिंघमकी कृपासे कलकत्ता-अजायबघरको चला गया। अब जनरल साहबके



भरहुत-स्तूपका नक्शा (कनिंघमके आधारपर)

उच्छिष्ट-स्वरूप कुछ पत्थरोंके टुकड़े, ईंट तथा मिट्टी ही वहां और बाकी है। अतीत गौरवकी याद दिलानेको यही क्या कम है, परन्तु खेद है कि आज इसका भी कोई रक्षक नहीं है।

भरहुत-स्तूपका व्यास अरसठ फीट था। इसके चारों ओर पक्के फर्शका १० फुट ४ इंच चौड़ा परिक्रमा-पथ था। इसके बाद प्रस्तर परिवेष्टनी थी। स्तूप १२ इंच लम्बी-चौड़ी और ३॥ इंच मोटी या इससे भी बड़ी ईंटोंका बना था। परिवेष्टनीमें चारों दिशाओंमें एक-एक द्वार था। एक द्वारसे दूसरे द्वारके बीच सोलह स्तम्भ थे। हर दो स्तम्भोंके बीच तीन सूची थीं, और खम्भोंके ऊपर दौड़ी हुई भारी पत्थरकी टोपी थी। परिवेष्टनी प्रत्येक द्वारके बाईं ओरसे उसके सामनेको घूम गई थी, इस प्रकार द्वारका सीधा मार्ग बन्द हो जाता था (नक्शा देखिये)। इन मोड़ोंको मिलाकर पूरी परिवेष्टनी एक बृहत् अपस्वस्तिका (उल्टी स्वस्तिका) के रूपकी थी। सूर्यकी गतिकी द्योतक हिन्दू स्वस्तिका सीधी होती है, और धर्मचक्र प्रवर्तन (चक्रकी गति) की द्योतक बौद्ध स्वस्तिका उल्टी होती है। हिन्दू इसे अपस्तिका कहते हैं। शायद इस स्थानपर इसे बौद्धस्वस्तिका कहना अधिक उत्तम होगा। भरहुत-स्तूपका नक्शा बौद्ध स्वतिकाके रूपका था।

परिवेष्टनीमें कुल ८० स्तम्भ थे। इनके अतिरिक्त चारों दिशाओंके चार द्वारोंकी शोभा बढ़ानेवाले बीस फीटसे अधिक ऊँचे चार तोरण थे। प्रत्येक खम्भा एक ही पत्थरका बना था—७ फीट १ इंच ऊँचा, १ फुट १०½ इंच चौड़ा तथा १ फुट २½ इंच मोटा था। प्रत्येक खम्भेकी मोटाईमें सूची धारण करनेको आँखें कटी थीं। फाटकके पास कोनेवाले खम्भोंकी चौड़ाई तथा मोटाई दोनों ही १ फुट १०॥ इंच थीं।

इन खम्भोंमें कुछपर मनुष्याकार देवी, देवता, यक्ष, नाग आदिकी मूर्तियाँ बनी थीं, और कुछपर ऊपर-नीचे अर्द्ध वृत्त तथा बीचमें पूर्ण वृत्तके भीतर ऐतिहासिक चित्र अथवा भगवान बुद्धके चरित्र-सम्बन्धी अथवा उनके पूर्व जन्मोंके जातकोंकी कथाओंके दृश्य अंकित थे। कुछ वृत्तोंमें सुन्दर कमल आदिके ही कलापूर्ण चित्र बने थे। कई खम्भोंके दृश्य वृत्तसे घिरे हुए भी नहीं थे। इन देवी, देवताओं तथा दृश्योंके वर्णनके लिए बहुत स्थानकी आवश्यकता है। यदि हो सका, तो फिर कभी मैं एक एक दृश्यपर एक-एक लेख 'विशाल-भारत'के पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करूँगा। जनरल कनिंघमको ८० खम्भोंमेंसे ४६ मिल गये थे।



परिवेष्टनीके स्तम्भका टुकड़ा (अधोभाग)

खम्भोंके बीचकी प्रत्येक सुची १ फुट ११½ इंच लम्बी, १ फुट १०½ इंच चौड़ी और ६ इंच मोटी थी। उनमें दोनों ओर गोल वृत्त बने थे। उन वृत्तोंमें भी खम्भोंके सदृश ही दृश्य थे, परन्तु उनमें जातक आदि कथाएँ यत्र-तत्र थीं। अधिकांशमें कमलोंके ही सुन्दर चित्र थे। २२८ सुचियोंमेंसे लगभग ८० का पता लग गया था। खम्भोंके ऊपरकी टोपीके पत्थर ७ फीट लम्बे १०½ इंच ऊँचे और १ फुट ८ इंच मोटे थे। यह एक दूसरेमें खुदे तथा छेदों द्वारा फँसाये हुए थे। हरएक खम्भेपर भी एक खुदा निकला था, जो टोपीके नीचेके भागमें स्थित छेदमें फँसा था। यह टोपी कुल ३३० फीट लम्बी थी। इसके ४० टुकड़ोंमें १६ मिल गये थे। इनमें भी भीतर-बाहर दोनों ही ओर बारीक कलाका काम था, जिनमें जातक आदिके दृश्य भी थे।

स्तूप और परिवेष्टनीके बीच १० फीट ४ इंच चौड़ा परिकमा-पथ था। इसपर चूनेका मोटा पलस्तर किया हुआ था। पथके बाहरी किनारेमें पत्थरकी गोल चीजें (पटियाँ) जड़ी थीं। खम्भोंके बीचकी ज़मीनमें भी यह पटियाँ थीं। खम्भोंका ज़मीनमें गड़ा रहनेवाला भाग बेगढ़ा था, और गड्ढेमें एक चौरस पत्थर रखकर उसपर खम्भे खड़े किये गये थे।

स्तम्भ तथा सुची आदिपर दाताके नाम अथवा दृश्यके वर्णनात्मक छोटे-छोटे वाक्य भी अंकित थे। उनके अक्षर मौर्य ब्राह्मी लिपिके हैं, और उनसे निश्चित होता है कि इस स्तूपका निर्माण ईसाके पूर्व २४० वर्षोंके बीचमें हुआ था। आजसे लगभग २१५० वर्ष पहले भरहुत समृद्धिशाली हो चुका था।



टोपीके पत्थरके टुकड़ेपर-का दृश्य

इस प्राचीन स्तूपकी वर्तमान दशाके विषयमें कुछ विशेष कहना अनावश्यक है। पाठकोंको इसका कुछ ज्ञान साथमें प्रकाशित चित्रोंसे हो जायगा। सन्तोषकी बात है कि कलकत्तेके डा० कालीदास नाग तथा महाबोधि सोसाइटीके मन्त्री मि० श्रीवर्धनका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है, और ये सज्जन इस प्राचीन स्मारकको पुनः हराभरा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। भरहुतका महत्त्व ऐतिहासिक ज्ञान तथा बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी है, और उपर्युक्त दोनों सज्जन ऐतिहासिक ज्ञान तथा बौद्धधर्मके प्रतिनिधि-स्वरूप इस काममें हाथ लगा रहे हैं। नागौद राज्यके अधिकारी महोदय भी भरहुत-संरक्षक-समितिकी सहायता करना स्वीकार कर चुके हैं। आशा है कि दानी सज्जनोंकी कृपासे अब शीघ्र ही संरक्षणका कार्य प्रारम्भ हो सकेगा।*

---

* इस लेखके लिखनेमें मुझे जनरल कनिंघम-कृत 'Stupa of Bharhut' से विशेष सहायता मिली है। —लेखक

बुद्धकी लंका-यात्राकी गाथा*

[लेखक :—श्री सेन्ट निहालसिंह]

(विशेषत: 'विशाल-भारत' के लिए लिखित)

(१)

लंकाके बौद्धोंकी दृष्टिमें लंका-द्वीप एक पवित्र भूमि है। गत सौ वर्षोंसे यहाँ यह कथा चली आती है कि यह द्वीप भगवान गौतम बुद्ध तथा उनके तीन पूर्वाधिकारियोंके आगमनसे पुनीत हो चुका है।

सीधे-सादे पुरुषोंके लिखे इतिहासके अनुसार केवल एक पुरुष—गौतम—को बोधिसत्त्व या पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है, परन्तु धार्मिक बौद्धोंका विश्वास है कि उनके अतिरिक्त अन्य सत्ताईस पुरुष भी उस दशाको प्राप्त कर चुके हैं, अर्थात् अब तक कुल अट्ठाइस बुद्ध हो चुके हैं।

लंकाके बौद्धोंका विश्वास है कि अन्तिम चार बुद्धोंने लंकाकी यात्रा की है। इतना ही नहीं, बल्कि उनका यह भी विश्वास है कि भावी बुद्ध-मैत्रेय भी उन्हीं लोगोंमें जन्म लेंगे।

(२)

इन चारों बुद्धोंकी कथा केवल मौखिक ही नहीं है। लंकाके प्राचीन और मध्यकालीन इतिहासों—जैसे महावंश, दीपवंश, राजावली, राजरत्नाकर, पूजावली, निकायसंग्रह आदि—में इसका लिखित उल्लेख भी मिलता है। उनके वृत्तान्तोंमें कुछ अन्तर अवश्य है। कुछ ग्रन्थोंमें यह वृत्तान्त बहुत थोड़ा है, कुछमें पूरा। भिन्न-भिन्न ग्रंथोंके विस्तृत वृत्तान्तोंमें भी छोटी-छोटी बातोंमें भिन्नता है, परन्तु मुख्य वृत्तान्त सभीमें एक-सा है। यह बात साफ़ मालूम हो जाती है कि इन समस्त वृत्तान्तोंका उद्गम एक ही है।

'महावंश'से यह बात प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती है कि जिस समयमें उसकी रचना हुई थी, उस समय बुद्धोंकी इन यात्राओंकी कथा मौखिक और लिखित दोनों रूपमें प्रचलित थी। उससे इस बातका भी पता चलता है कि इन यात्राओंका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ। उससे मालूम होता है कि ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीमें राजभिक्षु महिन्द—सम्राट् अशोकका पुत्र—लंका आया था। जब वह उस स्थानको देख रहा था, जहाँ बादमें 'महाविहार' बनाया गया, जो आजकल रुअनवेली दागब (रत्नावली चैत्य) कहलाता है, उस समय उसने बुद्धोंकी लंका-यात्राका वर्णन किया था। महिन्दको दिव्यदृष्टि प्राप्त थी, इसलिए कोई भी बात उसकी दृष्टिसे गुप्त नहीं थी।

इन यात्राओंकी गाथाएँ सचमुच बहुत पुरानी हैं। यह बात अब सिद्ध हो चुकी है कि महावंशका प्रथम भाग अबसे पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व लिखा गया था। उसमें इस बातका प्रमाण मौजूद है कि वह भी एक प्राचीन संस्करणके आधारपर लिखा गया था। 'दीपवंश'का प्रथम भाग भी कम-से-कम उतना ही प्राचीन है, जितना वर्तमान महावंशका पहला हिस्सा। सम्भव है कि यह उससे भी कहीं अधिक पुराना हो।

(३)

कहते हैं कि लंकाके सोलह स्थानोंको चार बुद्धोंमेंसे एक-न-एकने अपने आगमनसे पवित्र किया था। सिंहली बौद्ध उनमेंसे पन्द्रहका निश्चयपूर्वक पता बताते हैं। सोलहवाँ स्थान नागद्वीप कहा जाता है, जो जाफना-प्रायद्वीपके उत्तरी भागोंमें कहींपर है, और वहाँ केवल शैव तामिलोंकी ही बस्ती है।

ये पवित्र स्थान—जैसा कि मैं दूसरे लेखमें बताऊँगा—

* लेखककी लिखित आज्ञाके बिना कोई महाशय इस लेखको, भारत या उसके बाहर उद्धृत न करें और न इसका अनुवाद या तसवीर ही प्रकाशित करें। —लेखक



समनकूट या समन्तकूट, जो आजकल 'आदमकी चोटी' के नामसे प्रसिद्ध है। यहां गौतम बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रामें अपना चरण-चिह्न अंकित कर गये हैं। (कापी राइट)

समस्त लंकाद्वीप-भरमें फैले हैं। उन सब स्थानोंकी यात्रा पूरे लंका द्वीपकी यात्रा हो जाती है। जिस किसी व्यक्तिमें थोड़ी भी निरीक्षण-शक्ति है, वह इन स्थानोंकी यात्रा करके लंकाका भूगोल, वहाँके निवासियों और वहाँकी उपज आदिका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस तीर्थ-यात्रासे पुण्य तो मिलता ही है, पर उसके अलावा सांसारिक ज्ञान-लाभ भी कम नहीं होता।

तीर्थ-स्थानोंको दूर-दूर फैलाकर स्थापित करनेका विचार लंकाके बौद्धोंने निश्चय ही उन तीर्थोंके उत्पादक प्राचीन भारतीयोंसे ग्रहण किया है। हिन्दुओंके तीर्थोंमें बद्रीनाथ, केदारनाथ धाम देशके सुदूर उत्तरमें हिमालयपर है; सेतुबन्ध रामेश्वर एकदम दक्षिण भारतमें है; जगन्नाथपुरी ठेठ पूरबमें है और द्वारका एकदम पश्चिममें।

(४)

अन्तिम चार बुद्धोंकी लंका यात्राका वर्णन करनेके पूर्व यह बतला देना उचित है कि वे चारों बुद्ध वर्तमान कल्पमें ही उत्पन्न हुए थे। लंकाके बौद्धोंकी समझमें कल्पका क्या अर्थ होता है, इसके लिए मैंने एक बौद्धभिक्षुसे प्रश्न किया था। उस समय मैं पोलोन्नारुव (पुलस्त्यपुर) में जो मध्य कालमें लंकाकी राजधानी था—वट-दा-गा नामक छतहीन गोल मन्दिरकी चार मूर्तियाँ देख रहा था। उसने बतलाया कि वे चारों मूर्तियाँ, ककुसन्ध, कोनागमन, कस्सप और गौतम की हैं।

"कल्प"—उसने कहा—"ऐसी चीज़ है, जो आदमीकी समझमें नहीं आ सकता। यह समझ लो कि चार मील लम्बी, चार मील चौड़ी और चार मील ऊँची एक कठोर पत्थरकी शिला है, और प्रत्येक सौ-वर्षमें एक देवता उसपरसे निकलता है। देवताके निकलते समय उसके वस्त्र शिलापर लथरते चलते हैं। जितने दिनोंमें उस कपड़ेकी रगड़से वह शिला घिसकर एकदम समाप्त हो जायगी, उतने दिनमें भी एक कल्प समाप्त नहीं होगा।"

ज़रासा ठहरकर उस दयालु वृद्ध भिक्षुने फिर कहा—"या मान लो कि संसारमें जितने पत्थर हैं, तुम उन्हें तोड़-तोड़कर टुकड़े-टुकड़े करो; ऊँचे-नीचे जितने बड़े-छोटे पहाड़ हैं, सबको चूर चूर करके काली मिर्चके बराबर कर दो और फिर तुम उन्हें एक दो, तीन—करके गिनो। इस प्रकार सम्पूर्ण पत्थरोंकी गणना कर डालो, फिर भी एक कल्प पूरा न होगा।"

एक अन्य सिंहली विद्वानसे मुझे मालूम हुआ कि हिन्दुओंमें कल्प ब्रह्माका दिन कहलाता है। वह संसार एक सृष्टिसे प्रारम्भ होकर उसकी समाप्ति तक रहता है। साधारण गणनासे—जैसा कि सी० एम० फरनन्डो द्वारा अनुवादित 'निकाय संग्रह'के सम्पादक मुदालियार डब्ल्यू० एफ० गुणवर्धन बतलाते हैं—एक कल्प ४३२,०००,००० वर्षका होता है।

'राजावली'के अनुसार संसारकी उत्पत्तिका एक चक्कर 'महाभद्र कल्प' कहलाता है। इसके एक भागका नाम 'अन्त: कल्प' है। उनका कथन है कि पहले मनुष्यकी आयु दस वर्ष होती है, और वह धीरे-धीरे बढ़कर असंख्य हो जाती है। असंख्यकी गणना यह है कि एक लिखकर उसके आगे १४० शून्य रखनेसे जो संख्या बनेगी, वह असंख्य होगी। फिर मनुष्योंके पापोंके कारण वह घटकर पुन: दस वर्षकी हो जाती है। इन दोनों कालोंके बीचका समय 'अन्त: कल्प' है।

उस ग्रन्थकारके मतसे सूर्यने प्रथम समारके अन्त:कल्पमें ही प्रकाश फैलाया। वह 'चारों महाद्वीपोंके सचेतन पुरुषोंको, जो अन्धकारमें बैठे थे, प्रकाश देनेके लिए: पाँच सर्वज्ञ पुरुषोंको इस कल्पमें बुद्ध बनने योग्य बनानेके लिए तथा जो लोग नरकमें कष्ट भोगते हैं, उन्हें निर्वाणका सुख देनेके लिए प्रकट हुआ था।' उस ग्रन्थकारका कथन है कि उस ज़मानेमें—"प्रत्येक व्यक्ति असंख्य वर्षों तक जीवित रहता था। इस लेखके आगेके अंशोंको पढ़ते समय पाठकोंको 'कल्प'के विस्तारका ध्यान रखना चाहिए। एक बोधिसत्वके ज्ञान प्राप्त करनेके समयसे दूसरे बोधिसत्वके प्रकट होनेपर अनन्त वर्षोंका अन्तर होता है, अत: यह बात तो प्रकट ही है कि लंकामें एकके बाद दूसरे बुद्धोंकी यात्रामें इतना समय बीत चुका है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

(५)

हमारे कल्पके प्रथम बुद्ध ककुसंध—ओज-द्वीपमें दयाका प्रचार करनेके लिए आये थे। उस समय लंका 'ओज-द्वीप' कहलाती थी। उस समय देश-भरमें भयंकर ज्वर फैला हुआ था।

ककुसंध अपने चालीस सहस्र शिष्योंके साथ जम्बू-द्वीप (भारतवर्ष) से आकाशमें उड़कर लंका आये। वे देवकूट नामक पहाड़पर उतरे, जो ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान अनुराधापुरसे दूर नहीं था।

उस समय लंकाकी राजधानी कदम्ब नदीके तटपर, जो आजकल महा-ओया कहलाती है, स्थित थी। वह कदम्बके उस तटपर थी, जिसके सामने दूसरे तटपर बादमें अनुराधापुर स्थापित किया गया। उस समय अभय नामक राजा वहाँ राज करता था और राजधानी उसीके नामसे शायद अभयपुर या अभयनगरी कहलाती थी।

ओज-द्वीपके दुखी आदमियोंके कष्ट-निवारण करके ककुसंधने राजधानीमें राजा और प्रजाको उपदेश दिया। उनके उपदेशको सुनकर चालीस हज़ार आदमी उनके धर्ममें दीक्षित हो गये।

ककुसंध शीतल संध्यामें 'महातित्थ कुञ्ज' नामक उद्यानमें, जो उन्हें राजाने भेंट किया था, टहला करते थे। अनुराधापुरमें उसी स्थानपर आजकल कई पवित्र स्थान हैं, परन्तु वे सब प्राय: टूटी-फूटी दशामें हैं। उन्होंने एक स्थानको 'सिरस' वृक्ष, जिसके नीचे बैठकर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था, लगानेके लिए उपयुक्त समझा। उन्होंने उस जगह बैठकर तपस्या की और अपनी विचार-शक्तिसे भारतवर्षमें भिक्षुणी रुचिनन्दाको आज्ञा दी कि वह उस वृक्षकी दक्षिण शाखा लाकर उन्हें ओजद्वीपमें दे।

आकाश-मार्गसे उनकी आज्ञा पाकर भिक्षुणी तुरन्त ह



तिस्स महाराम। यह लंकाके सोलह तीर्थ-स्थानोंमेंसे एक प्रधान तीर्थ है।
(कापी राइट)

साथ देवताओंकी देख-रेखमें दैवी बलसे लंका-द्वीप जा पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने वह अमूल्य शाखा ककुसंधको दी। ककुसंधने उसे राजाको आरोपित करनेके लिए दिया।

सिंहली इतिहासोंके अनुसार उसके बाद ककुसंध ओज द्वीपमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको उपदेश देते फिरे, और उन्होंने हजारों मनुष्योंको अपने मतमें दीक्षित किया। जब वे भारतवर्षको लौटने लगे, तो उन्होंने भिक्षुणी रुचिनन्दा और उसकी पाँच सौ साथिन भिक्षुणियोंको तथा अपने शिष्य महादेव और एक सहस्र भिक्षुओंको लंका ही में रहने और बौद्धोंका एक सम्प्रदाय बनाकर अपने धर्मका उपदेश देनेकी आज्ञा दी। उन्होंने पूजाके लिए अपना जल पीनेका पात्र दे दिया। फिर आकाशमें उड़कर वे भारतवर्षको लौट गये।

(६)

जब हमारे कल्पके दूसरे बुद्ध—कोनागमन—इस द्वीपमें आये, तब यह वर द्वीप कहलाता था। उस समय वहाँ राजा समिद्ध राज करता था। उसकी राजधानी बद्धमान थी। यह बद्धमान और अनुराधापुर एक ही स्थान कहे जाते हैं।

भारतवर्षमें खेमवतीके राजा खेमको उस स्थानपर ले गई, जहाँ वह ज्ञान-वृक्ष उगता था। वहाँ उसने लाल संखियेसे पेड़की दक्षिण-शाखापर एक लकीर खींच दी। जब वह शाखा तनेसे पृथक् हो गई, तो उसने उसे एक सोनेके गमलेमें लगाया। तब वह भिक्षुणी उस वृक्ष और पांच सौ भिक्षुणियोंके

यह जानकर कि लंकामें बड़ा अकाल पड़ा है और उसके कारण लोग बड़े कष्टमें हैं, कोनागमन अपने तीस हजार शिष्योंके साथ आकाश-मार्गसे लंकामें आये। वे समनकूट (समन्तकूट) पर उतरे। इस समनकूट पर्वतको अब साधारणतः आदमकी चोटी कहते हैं। उनके आते ही सूखी भूमि मेहके पानीसे



अनुराधापुरके रुअनवेली दागब (रत्नावली विद्यालय)के चारों ओर तीर्थ-यात्री परिक्रमा कर रहे हैं। यह लंकाका एक प्रसिद्ध बौद्धतीर्थ है।
(कापी राइट)

प्लावित हो गई। उन्होंने तब धर्मका प्रचार किया और हज़ारों आदमियोंको दीक्षित किया।

उन्हें भी वही उद्यान भेंट किया गया, जो ककुसंधको दिया गया था, परन्तु इस बीचमें उसका नाम 'महानभ कुंज' हो गया था। कोनागमनने वहाँ एक उत्तम बारहदरी बनवाई। वे अपने शिष्योंके साथ कुछ समय तक उसमें बैठते रहे।

कोनागमन उस स्थानपर गये, जहाँ राजा अभयने उपर्युक्त लिखित सिरिसका पेड़ लगाया था, परन्तु उस समय वह वृक्ष नष्ट हो चुका था, इसलिए इस कल्पके इन दूसरे बुद्धने पुनः भारतवर्षमें भिक्षुणी कण्टकनन्दाको मन ही मनमें आज्ञा दी। कण्टकनन्दा उस आज्ञाको पालन करनेके लिए शोभावतीके राजा शोभयाको उस उदुम्बर (गूलर) वृक्षके पास ले गई, जिसके नीचे बैठकर कोनागमनने जीवन-मृत्युका ज्ञान प्राप्त किया था। वहाँसे उसने उस वृक्षकी शाखाको उसी भाँति लंकामें पहुँचाया, जैसे पहले रुचिनन्दा कर चुकी थी। वह शाखा 'महानाम कुंज'में बड़े समारोहके साथ आरोपित की गई।

कोनागमनने उन सब स्थानोंपर उपदेश देनेके बाद, जहाँ पहले बुद्ध उपदेश दे चुके थे, कण्टकनन्दा और उसकी पाँच सौ साथिन भिक्षुणियोंको तथा अपने शिष्य 'महासुम्ह' और एक हज़ार भिक्षुओंको लंकामें अपना मत प्रचार करनेकी आज्ञा दी। कोनागमनने लंकाके लोगोंको अपने स्मृति-चिह्नके रूपमें अपनी करधनी दे दी, तब वे अपने अनुचरोंके साथ वायु-मार्गसे भारतवर्ष लौट गये।

(७)

तीसरे बुद्ध—कस्सप—ने एक नाशकारी युद्धको रोकनेके लिए लंकाकी यात्रा की थी। उस समय लंका मन्द-द्वीप कहलाता



कल्याणी गंगाके तटपर एक मन्दिरके समीपका दृश्य
यह भी उन सोलह तीर्थ-स्थानोंमेंसे है जिन्हें गौतमने अपने आगमनसे पवित्र किया था
(कापी राइट)

था, और वह युद्ध महाराज जयन्त और उनके छोटे भाईके बीचमें ठना था। वह भी वायु-मार्गसे ही लंका गये थे।

कस्सपने शुभकूटपर उतरकर (इस पर्वतका स्थान अभी तक निश्चित नहीं हुआ है) आपने बीस हज़ार शिष्योंके साथ लोगोंको दर्शन दिये। लोग यह जानकर कि देवतागण उनकी सहायताको आये हैं, उनकी ओर दौड़ पड़े। युद्ध करनेवाले दोनों दल भी उन्हें अपनी-अपनी ओर लानेके लिए अनेक भेंट-पूजाके साथ जा पहुँचे।

राजा और उनके भाईने यह भारी हलचल देखकर युद्ध बन्द कर दिया, और वे स्वयं भी कस्सपकी सेवामें चले गये। उन्होंने महासागर-उपवनमें (पहलेका महातित्थ और महानाम कुंज उस समय महासागर-उपवन कहलाता था) निमन्त्रित किया और उनसे भेंट स्वीकार करनेकी प्रार्थना की।

इस कल्पके इन तृतीय बुद्धने भी अपने दो पूर्ववर्ती बुद्धोंकी भाँति सुधम्मा नामी भिक्षुणीको उस बरगदकी वृक्षकी दाहिनी शाखा लानेकी आज्ञा दी, जिसके नीचे बैठकर उन्होंने बोधि-ज्ञान प्राप्त किया था। सुधम्मा बाराणसीके राजा कीकीको उस स्थानपर ले गई। उस वृक्षकी शाखा काटकर सोनेके गमलेमें लगाई गई और पुन: महासागर-उद्यानमें ठीक उसी प्रकार ले जाकर आरोपित की गई, जैसे पहले दो बुद्धोंके समयमें हुआ था।

कस्सप भी लंकामें भिक्षुणियों और एक हज़ार भिक्षुओंके साथ अपने शिष्य सब्बनन्दको धर्म-प्रचारके लिए छोड़कर जम्बू-द्वीपको लौट आये। वे वहाँ अपना एक बरसाती कोट स्मारक-स्वरूप छोड़ आये थे।

(८)

इस कल्पके चौथे बुद्ध— गौतम— ने गयाजीमें ज्ञान प्राप्त करनेके नौ मास बाद इस द्वीपकी प्रथम यात्रा की थी। उस समय इस द्वीपका नाम लंकापुर था। उनके आनेका उद्देश्य लंकाको यक्षोंके हाथसे बचाना था। कहते हैं कि राम-रावण युद्धके बाद एक हज़ार आठ सौ चौवालीस वर्षों तक लंका इन यक्षोंके चंगुलमें फँसी रही। उन लोगोंने धार्मिक पुरुषोंको, जिन्होंने धर्मका प्रचार किया था और दागब बनाये थे, पीड़ित कर रखा था।

यक्ष लोग महानाग कुंज नामक एक बड़े भारी उद्यानमें दरबार लगाये हुए बैठे थे, उस समय गौतम वहाँ आकाशमें

उड़ते हुए पहुँचे। ऐसा अनुमान है कि यह महानाग-कुंज कैंडीनगरके उत्तर-पूर्वकी ओर २५ मील दूर महीयंगन (जो आजकल अलुत-नुवर कहलाता है) के समीप महावली गंगा (महावालुका गंगा) के तटपर था। उस उद्यानके ऊपर मध्य आकाशमें पहुँचकर गौतमने समस्त पृथ्वीपर भयंकर अन्धकार फैला दिया। उस घने अन्धकारमें वे ज्योतिके समान चमकते थे। उनके शरीरसे लाल, श्वेत और नील रश्मियाँ निकल रही थीं। एक अन्य कथनके अनुसार उन्होंने भयंकर आँधी, पानी, तूफान और वज्रपात आदि उत्पन्न किये। खैर, जो कुछ भी हो, यक्ष लोग इससे इतने भयभीत हो गये कि वे त्राहि-त्राहि पुकारने लगे।

गौतमने दयासे प्रेरित होकर कहा कि यदि यक्ष लोग उन्हें बैठनेका स्थान दें, तो वे उनके भय दूर कर दें। यह सुनकर यक्ष इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने गौतमसे समूचा द्वीप स्वीकार कर लेनेकी प्रार्थना की। यक्षोंके चित्तमें शान्ति स्थापित करनेके बाद उन्होंने उस स्थानपर, जो उनके बैठनेके लिए खाली कर दिया गया था, अपना आसन खोलकर दूर तक बिछा दिया। यह आसन शायद मृगचर्मका था। तुरन्त ही अग्निकी लपटोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया और यक्ष लोग भयभीत होकर उसे देखने लगे।

प्रभुने तब 'गिरि-द्वीप' या 'यक्षगिरि' को अपनी ओर आनेका इशारा किया। जब वह उनके समीप आ गया तब उन्होंने यक्षोंसे उसपर बैठनेको कहा। समस्त यक्ष उसपर बैठ गये। अब गौतमने उसे अपने पूर्व स्थानको लौटनेकी आज्ञा दी और वह सम्पूर्ण यक्षोंके साथ अपनी जगहको लौट गया। यक्षोंके दूर हो जानेपर उन्होंने अपना आसन लपेट लिया और देवताओंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। तब उन्होंने उपदेश देना आरम्भ किया। यक्षोंके भयसे छुटकारा पाकर सैकड़ों आदमी उनकी शरणमें आ गये।

जर्मन विद्वान प्रो० विल्टेल्म गीगरका मत है कि 'गिरिद्वीप' कोई टापू ही था, यह मानना आवश्यक नहीं है। आजकल 'द्वीप'का अर्थ पानीसे घिरी हुई भूमि है, परन्तु आरम्भमें इसका अर्थ कहीं अधिक विस्तृत था। वे समझते हैं कि सम्भव है, उस समय यक्ष लोग भागकर किसी पहाड़ी किलेमें चले गये हों।

इस मतका समर्थन लंकामें भारतीय औपनिवेशिकोंके आगमनकी कथासे भी होता है। ईसासे ५६३ वर्ष या ४८३ वर्ष पूर्व, जब बंगके राजाका पौत्र विजय अपने सात-सौ साथियों सहित आकर लंकाके पश्चिमी किनारेपर (वर्तमान पुत्तालमके समीप *) उतरा था, उस समय लंका यक्षोंके अधिकारमें थी। यक्षोंकी एक स्त्री कुवेणी उसपर मोहित हो गई और उसने विजयको ऐसे भेदकी बातें बतलाईं, जिनसे वह देश-भरका स्वामी हो गया।

'राजावली' का लेखक कहता है कि जिस समय बुद्धने यक्षोंको 'गिरि-द्वीप' या 'यक्ष-गिरि' पर निर्वासित किया था उस समय उनमेंसे कुछ "तम्मेना जंगल"के भीतर छिप गये थे। बादमें वे लगल्ल या लोगल्ल नामक स्थानको, जो कहीं पहाड़ी भागमें स्थित समझा जाता था, चले गये। वहाँ वे तब तक मौजूद थे, जब विजय लंकामें आया था।

जिस मनुष्यने यह कैफियत दी है या अपने समयकी प्रचलित कथाओंसे संग्रह की है, वह शायद बौद्ध होगा, परन्तु उसे इस बातका ध्यान नहीं रहा कि बुद्ध तो सर्वज्ञ कहे जाते थे, फिर भी उनकी दृष्टिसे ये सब बातें कैसे छिपी रहीं? खैर।

जब गौतम लंकामें थे, तब समनकूटके देवता महासुमनने उनसे प्रार्थना की कि वे उसे अपनी कोई ऐसी चीज़ दे दें, जिसकी, उनके चले जानेपर, वह पूजा कर सके। बुद्धने उसे अपने मुट्ठी-भर घनश्यामकेश दे दिये। वह स्वर्ण-पात्र, जिसमें महासुमनने वह केश रखे थे, उस स्थानपर रखा गया, जहाँ गौतम बैठते थे। फिर उसपर रंग-बिरंगे रत्नोंका इतना

* विजय किस स्थानपर उतरा था, इस बातमें मतभेद है। कुछ विद्वान कहते हैं कि वह पूर्वी तटपरमें वर्तमान अंकोमालीके आस-पास उतरा था, अन्य विद्वानोंका कथन है कि वह दक्षिणसे वर्तमान गालेके समीप उतरा था। राजावलीमें लिखा है कि उसने तम्मेन्न तोता नामक नगरमें भूमिपर पदार्पण किया था।



मिस्सक पर्वत (मिश्रक पर्वत) जो आजकल महिनतल (महिन्द-स्थल) कहलाता है। यहां ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीमें सम्राट अशोकका पुत्र महिन्द अन्य पांच भिक्षुओंके साथ आकर उतरा था। इस स्थानको भी गौतम बुद्धने अपने पदार्पणसे पवित्र किया था। (कापी राइट)

दो नाग सरदारोंमें, जो रिश्तेमें मामा-भानजे थे, होनेवाला था। वे लोग सर्पोंकी पूजा करते थे, इसीलिए नाग कहलाते थे। कुछ लोग कहते हैं कि उनका आधा शरीर मनुष्यका और आधा सर्पका होता था, इसीलिए वे नाग कहलाते थे।

'चुलोदरकी माता—महोदरकी छोटी बहन—की हाल ही में मृत्यु हुई थी। वह अपने पीछे एक आश्चर्यजनक रत्नोंका सिंहासन छोड़ गई थी। जब उसका विवाह नागराजके साथ कन्हवद्धमान पहाड़पर हुआ था, तब उसके पिताने वह सिंहासन उसे दहेजमें दिया था। इसी सिंहासनको पानेकी लालचमें उसके भाई और पुत्रने अपनी-अपनी सेनायें एकत्रित कीं थीं और अन्तिम साँस तक लड़नेको ठानी थी।

गौतमने दयासे द्रवित होकर इस युद्धको रोकनेके लिए लंकाकी यात्रा करना निश्चय किया। रण-भूमिके ऊपर, जहाँ नाग-सेनायें लड़नेको एकत्रित हुई थीं, आकाशमें अधर बैठकर गौतमने पृथ्वीपर भयंकर अंधकार और चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली ज्योति फैलाना आरम्भ किया।

बड़ा ढेर लगाया गया कि उसकी परिधि सात हाथ हो गई। तब उसपर एक नीलमका स्तूप बनाया गया। दूर-दूरके लोग वहाँ पूजाके लिए आते थे।

(६)

चार वर्ष बाद जब गौतम भारतवर्षमें कोशलकी राजधानी श्रावस्तीके समीप जेतवन नामक उद्यानमें बैठे थे, तब उन्हें अपनी दिव्यदृष्टिसे मालूम हो गया कि लंकामें एक भयंकर युद्ध होनेवाला है। यह युद्ध महोदर और चुलोदर नामक

जैसे ही योद्धाओंको बुद्धके आगमनकी बात ज्ञात हुई, वैसे ही वे उनके चरणोंपर गिरकर उनकी पूजा करने लगे। गौतमने नाग लोगोंको प्रेमके गुण बतलाये। मामा-भानजेमें शान्ति स्थापित हो गई, और उन्होंने वह सिंहासन बुद्धको भेंट कर दिया।

गौतम पृथ्वीपर उतरकर एकत्रित जन-समूहके बीचमें बैठ गये। नागराजने उन्हें और उनके साथियोंको भोजन

कराया। जो लोग वहाँ उपस्थित थे, वे सब बौद्धधर्ममें दीक्षित किये गये।

बुद्धकी इस यात्रामें समिद्धिसुमन नामक एक देव उनके साथ लंका गया था। अपने पूर्व जन्मोंमें वह लंकामें उत्पन्न हो चुका था, और पहले बुद्धोंके छोड़े हुए स्मृति-चिह्नोंका रखवाला भी रह चुका था। राजायतन जातिका पेड़, जो उसका निवास-स्थान था, जेतवनके फाटकके एक ओर खड़ा था। इसी जेतवनमें बुद्धने अपना अधिकांश समय बिताया था।

समिद्धिसुमन अपने साथ इस वृक्षको लंकामें लाया था और उसे भगवान् बुद्धके ऊपर छातेकी भाँति लेकर चलता था। अन्तमें वह वृक्ष उस स्थानपर, एक पवित्र स्मारकके रूपमें, लगा दिया गया, जहाँ बैठकर गौतमने नाग योद्धाओंको उपदेश दिया था। गौतमने वह रत्न-जड़ित सिंहासन भी लोगोंको पूजा करनेके लिए दे दिया।

गौतमकी यात्राकी समाप्तिपर वह देव लंकामें ही बना रहा। एक कथा है कि बादमें उसकी माता भी जेतवनसे उसके साथ रहनेके लिए भेज दी गई थी।

(१०)

उस समय पश्चिमी लंकामें कल्याणी नामक नगरमें राजा मणिअक्खिक—जो महोदरका चाचा था—राज करता था। जब पहली बार गौतम लंकाको यक्षोंसे मुक्त करनेके लिए गये थे, उस समय उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। बुद्धके ज्ञान प्राप्तिके आठवें वर्ष यह राजा मणिअक्खिक विहारमें आया, और उसने भगवान्‌को स्मरण दिलाया कि उनकी दूसरी यात्रामें उसने उनसे कल्याणी नगरीको अपने आगमनसे पवित्र करनेकी प्रार्थना की थी और बुद्धने मौन रहकर अपनी स्वीकृति भी प्रकट कर दी थी। अब उसने गौतमसे उस प्रार्थनाको पूरी करनेका निवेदन किया।

गौतमने अपने कपड़े पहने और भिक्षा-पात्र लेकर पाँच सौ भिक्षुओंके साथ बैशाखकी पूर्णिमाके दिन लंकाकी यात्रा की। कल्याणीमें—जो बड़ा सुन्दर और उत्तम देश था, जैसा कि उसके नामसे प्रकट है—आकर वे उस मूल्यवान सिंहासनपर बैठे, जो उन्हें नाग लोगोंने पहली यात्रामें भेंट किया था। उस समय वह सिंहासन एक सुन्दर रत्न-जड़ित शामियानेके नीचे रखा गया था। राजा और उनके अनुचरोंने उन्हें देव-दुर्लभ भोजन कराया।

भोजनके समाप्त होनेपर बुद्ध उठे और उन्होंने समनकूटकी यात्रा की। उसकी चोटीपर बुद्ध अपने चरण-चिह्न छोड़ गये।

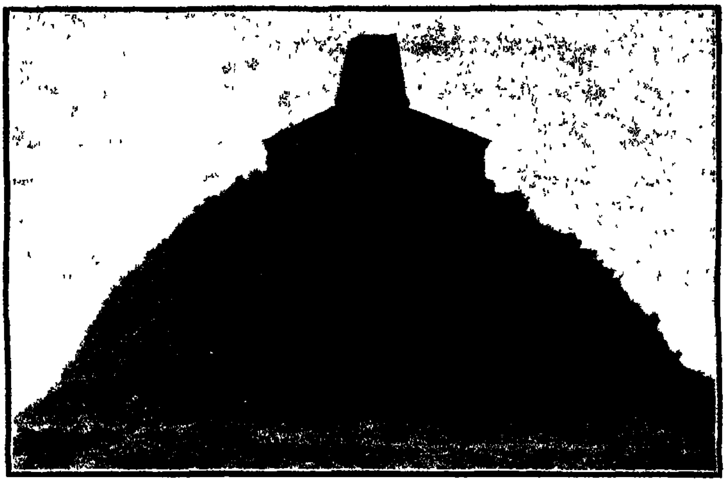
एक इतिहास—'पूजावली'—के अनुसार भगवान्‌ने अपना दाहिना चरण कल्याणी नदीमें—जो आजकल केलानी गंगा कहलाती है—रखा और उनका बायां चरण पर्वतकी चोटीपर स्थापित हुआ। जिन लोगोंका विश्वास है कि बुद्धसे कोई भी बात असम्भव नहीं थी, वे इस कथापर आसानीसे विश्वास कर लेते हैं, मगर समझदार पुजारी लोग इसे केवल कथा ही कथा बतलाते हैं।

दूसरी कथा है कि लंका एक स्त्रीके रूपमें थी। वह इस बातके लिए रोने लगी कि भगवान्‌ने उसके सिर—सामनकूट—पर अपना चरण-चिह्न मुद्रित नहीं किया, जैसा कि उससे वादा किया गया था। उसके दाहिने नेत्रसे जो अश्रुधारा बह निकली, वह महावली-गंगा है और बाईं आँखसे निकलनेवाली धारा केलानी-गंगा है। अन्तमें उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई।

आदमकी चोटीके नीचे समस्त दिन आराम करके भगवान दीघवापीको—जो वर्तमान बेट्टीकलोयके समीप है—रवाना हुए। वहाँसे वे अनुराधापुरके दक्षिणकी ओर महामेघवन नामक उद्यानको गये। यह वही उद्यान है, जो लगातार इस कल्पके तीनों पूर्ववर्ती बुद्धोंको दिया गया था। वहाँ उन्होंने एक स्थानपर बैठकर कुछ दिन तक तपस्या की। उसी स्थानपर बादमें अश्वत्थ-वृक्षकी दक्षिण शाखा लगाई गई थी, जिसके नीचे उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने उसके पश्चात् अन्य स्थानोंकी यात्रा की। इन स्थानोंपर बादकी

शताब्दियोंमें धार्मिक राजाओंने कई स्तूप बना दिये थे। अन्तमें वे मिस्सक पर्वत (मिश्रक) पर शिला-चैत्य नामक स्थानपर गये, जो आजकल मिहिनतल (महेन्द्र-स्थल) कहलाता है। इन सब स्थानोंको अपनी तपस्यासे पवित्र करके वे पुन: आकाश-मार्गसे जेतवनको लौट गये।

गौतमकी इस तृतीय यात्राका जो वृत्तान्त राजावलीमें दिया हुआ है, उसके अनुसार उन्होंने "यह यात्रा आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमाके दिन की थी। वे सोलह पवित्र स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानपर एक एक मिनट ठहरे थे।"



अनुराधापुरका जेतवन-आराम दागब, जिसे लोग भूलसे अभयगिरि कहा करते हैं। यहां गौतम बुद्धने तपस्या की थी। (कापी राइट)

ग्रन्थकारने इन सोलहों स्थानोंके नाम नहीं बतलाये हैं, परन्तु जैसा कि इस लेखके आरम्भमें बतलाया जा चुका है, इन सोलह स्थानोंमेंसे पन्द्रहका सन्तोषजनक—कम-से-कम धार्मिक विश्वास रखनेवालोंकी दृष्टिमें—पता लग गया है।

(११)

मुझे इन स्थानोंमेंसे अधिकांशकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनमेंसे कईको तो कई बार देखा है। मैंने इन स्थानोंपर स्थानीय लोगोंसे जहाँ तक सम्भव था, वहाँकी प्रचलित कथाएं संग्रह की हैं, और उन स्थानोंके फोटो भी खींचे हैं। मैं एक दूसरे लेखमें इन स्थानोंका विस्तृत वृत्तान्त दूँगा। यहाँपर मैं इन चारों बुद्धोंकी यात्राओंकी कुछ आम बातोंका ही वर्णन करूँगा।

(१) मौखिक तथा लिखित कथाओंसे यह प्रकट है कि इस कल्पके चारों बुद्ध दयाभावसे द्रवित होकर ही लंका आये थे। उन्होंने लंकाको बीमारी, अकाल, युद्ध और यक्षोंसे मुक्त करनेके लिए यात्राएँ की थीं।

(२) वे सब आकाश-मार्गसे आये थे।

(३) प्रत्येक बुद्धके साथ जो अनुचर आये थे, उनकी संख्या बराबर घटती गई। ककुसधके साथ उनकी संख्या चालीस हज़ार, कोनागमनके साथ तीस हज़ार, कस्सपके साथ बीस हज़ार, और गौतमके साथ केवल पाँच सौ थी।

(४) प्रत्येक बुद्ध अनुराधापुरके पासवाले कुंजकी यात्रा करना नहीं भूले, और प्रत्येकको उनके समकालीन नरेशोंने वही कुञ्ज भेंट किया।

(५) केवल गौतमको छोड़कर अन्य सब बुद्धोंने उन पेड़ोंकी शाखाएँ उस कुंजमें लगवाईं, जिनके नीचे उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। गौतमने भी वह स्थान निर्दिष्ट कर दिया था, जहाँ बादमें उस पीपलकी शाखा लगाई जाय, जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था।

(६) इन वृक्षोंकी शाखाओंके लानेकी आज्ञा विचार-शक्ति द्वारा भेजी गई थी।

(७) यह आज्ञा सदा भिक्षुणी ही को दी गई, भिक्षुको नहीं।

(८) प्रत्येक बार भिक्षुणियोंने इस आज्ञाको पूरा करनेके लिए भारतमें अपने सामयिक राजाओंकी सहायता ली।

(९) हमेशा बोधि-वृक्षकी दाहिनी शाखा ही लाई गई थी।

(१०) चारों बुद्धोंमें प्रत्येकने भारत लौटनेके पूर्व अपने स्मारक-स्वरूप कोई-न-कोई चीज़ लंकामें अवश्य ही छोड़ी थी।

(११) प्रथम तीन बुद्धोंने अपने मतके प्रचारके लिए अपने पीछे लंकामें भिक्षु और भिक्षुणी छोड़ी थीं।

इसमें दो बातें हमारे देशवासियोंके लिए विशेष ध्यान देने-योग्य हैं। पहली बात यह है कि अतीत कालमें भारत और लंकाका जो सम्पर्क रहा—जिसकी प्रतिध्वनि हमें सिंहली पुस्तकों और कथाओंमें मिलती है—वह बहुत पवित्र था। भारतवर्षके सुयोग्य पुत्र अपने पड़ोसियोंको जीतकर लूटने नहीं गये थे, बल्कि ग़रीबों और दीनोंकी सहायताके उच्च भावोंसे प्रेरित होकर ही लंका गये थे।

दूसरी बात यह है कि उस अतीतकालकी भारतीय समाजमें स्त्रियोंका स्थान बहुत ऊँचा—अकसर पुरुषोंसे भी ऊँचा—था।

हमें अपने पूर्वजोंके इन सुकृत्योंके लिए गर्व होना चाहिए। हमारे जिन भाइयोंमें विदेश जानेकी आन्तरिक इच्छा उत्पन्न होती है, उन्हें इन उदाहरणोंसे प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

दूसरा लेख अगले अंकमें प्रकाशित होगा।

जैसेकोतैसा

(गल्प)

"टन्-टन्-टन्, टन्-टन्-टन्, टन्-टन्-टन्।"

यह भटिण्डा जंक्शनसे १५ नं० अप् पंजाब ऐक्सप्रेसके छूटनेकी घण्टी थी। इंजिन सीटी दे रहा था। गार्डकी हरी झण्डी गाड़ीके दूसरे सिरेपर दाएँ-बाएँ हिल रही थी। खोन्चा बेचनेवाले आधे घंटेकी लगातार चीख़ पुकारके बाद गाड़ीके सेन्टरसे हटकर खड़े हो गये थे। फैशनेबिल जन्टिल्मेन जो गाड़ीके स्टेशनपर ठहरनेकी हालतमें नंगे सिर जेबोंमें हाथ डाले प्लेटफार्मपर मटरगश्तके अभ्यासी होते हैं, भागम् भाग अपने डिब्बोंमें घुस रहे थे। ट्रेन सहजमें सरकी और एक लुंगी बाँधे पठानका सुर्ख़ सफेद प्रभावशाली चेहरा फ़र्स्ट क्लासकी खिड़कीमें दिखाई दिया। उसने कमरेके चारों ओर निगाह दौड़ाई और यह इतमीनान करके कि दो सीट ख़ाली पड़ी हैं, फुटबोर्डपर सीधा खड़ा हो गया, सर्वेन्ट-क्लासकी तरफ़ मुँह करके रोबदार टोनमें कहा—"शेरगुल!"

उसी समय एक घबराई हुई-सी आवाज़ने जवाब दिया—"बले आक़ा!"—(हाँ मालिक!)

"सफ़र दराज़ अस्त—ज़िनहार अस्बाब निगह दारिए—असबाब, ग़ाफ़िल न शवी, फ़हमीदी?" (सफ़र लम्बा है, असबाबकी देख-भालमें ग़फ़लत न करना, समझे?)—

"बले आक़ा!" (बहुत अच्छा मालिक!)

पठानने चटखनी घुमाई, दरवाज़ा खोला और अन्दर दाखिल हुआ।

यह पैंतीस-चालीस सालका भारी-भरकम आदमी था। मोटी नोककी फूलदार पेशावरी जूती पाँवमें थी। लट्ठेकी शलवार, सफ़ेद बोसकीका लम्बा कुरता और स्याह सरजकी वास्कट, जिसपर सलमेका बढ़िया काम था, पहने हुए था। वह देखनेमें अच्छी पोशाकवाला आज़ाद सरहदी इलाक़ेका प्रतिष्ठित अफ़ग़ान मालूम होता था। नक़दीकी एक ख़ूबसूरत चमड़ेकी थैली उसके बाँई तरफ़ लटक रही थी। बग़लमें एक मोटा डंडा था, और बाएँ हाथमें मलमलका एक सफ़ेद रूमाल था, जिसमें आमोंकी गुठलियाँ बँधी मालूम होती थीं। बादको मालूम हुआ, वह इस्तंजेके ढेले थे। दाएँ हाथके अँगूठे और

दर्शनीके बीचमें फर्स्ट क्लासका टिकट था, जिसे मैंने उसके अन्दर दाखिल होते ही पहली निगाहमें देख लिया था।

कमरेमें कुल चार सीटें थीं, और दो मुसाफ़िर, एक मलिक (पठान) और दूसरा एक यूरोपियन, जिसकी वर्दी बता रही थी कि वह किसी फ़ौजका सेकेन्ड लेफ्टिनेन्ट है। मैं रोहतकसे उसके साथ सफ़र कर रहा था। वह शायद देहलीसे आ रहा था। मैंने उसे रास्तेमें बेहद मग़रूर (दुरभिमानी) और बद-मिज़ाज (क्रूर-स्वभाव) पाया। मेरे यह दरयाफ्त करनेपर कि वह कहाँ जायगा, उसने इस क़दर रुखाई और फीकेपनसे 'लाहौर केन्ट' जवाब दिया कि मुझे इसके साथ दुबारा बात करनेकी हिम्मत न हुई। वह एक पूर्णिण रोब-दाबके साथ पूरी दो सीटोंपर कब्ज़ा जमाये बैठा था। मेरे आनेपर उसने भौंओंको एक अजीब गर्वसे सिकोड़ा और उसके माथेपर बल पड़ गये। मैंने सोचा कि इसके बसमें हो तो मुझ जैसे काले आदमीको यह समूचा निगल जाय। मैं चुपचाप अपनी दासता-सूचक मनोवृत्तिका परिचय देता हुआ खिड़कियोंकी पासवाली सीटपर बैठ गया। मेरे और उसके बीचमें दो सीटें खाली थीं। मगर वह अपनी साथवाली सीटपर भी कब्ज़ा किये बैठा था। उसने जान-बूझकर अपने असबाबको बखेर रखा था। बिस्तर बन्द, छाता, ओवरकोट और दूसरी कई चीज़ें खूँटियोंपर लटक रहीं थीं। सूटकेस सीटके नीचे था। हैट, फलोंकी टोकरी, टिफन-बास्केट सामनेवाली सीटपर थे। खिड़कीके साथवाली सीटपर बिस्तर बिछाये अपने ज़ोममें वह फ़ील्ड मारशल 'किचनर' बना बैठा था।

नवागन्तुक पठानने अन्दर आते ही डंडा, रूमाल और सिरसे साफ़ा उतारकर इन्हीं सीटपर रख दिया, टिकट वास्कटकी जेबमें डाल लिया और बैठनेके साथ ही सिरके बालोंको दोनों हाथोंसे सुलझाते हुए ठंडी साँस भरी, जिससे मालूम पड़ता था कि उसे गाड़ी पकड़नेके लिए असाधारण दौड़-धूप करनी पड़ी है।

फ़ौजी अफ़सरकी हालत देखने लायक थी। वह उसकी तरफ़ अत्यन्त घृणा और तिरस्कारकी दृष्टिसे घूर रहा था। मुझे यक़ीन है कि अगर फर्स्ट क्लासका टिकट अन्दर दाखिल होते वक़्त अफ़ग़ानके हाथमें न होता, या उसकी वेष-भूषा या आकृति उच्चताकी सूचक न होती, तो उसने उसे गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दिया होता। अब भी वह केवल इसीलिए चुप था कि उसमें पठानके मुक़ाबलेका साहस नहीं था। नहीं तो उसकी चेष्टाएँ, निगाहें, चेहरेकी सुर्ख़ी, तबीयतकी बेचैनी साफ़ ज़ाहिर कर रही थी कि पठानके आनेने उसे 'कड़ाईका बैगन' बना दिया है। यहाँ तक तो ख़ैर वह सहन कर सकता था, पर उस नवागन्तुक पठानको, ईश्वर जाने, मधुमेहकी या बहुमूत्रकी बीमारी थी; वह हर पन्द्रह-बीस मिनटके बाद उठता, ट्वाइलट-रूममें घुस जाता और बाहर निकलता, और वह भी इस तरह दाहिने हाथसे कमरबन्द थामे होता और बाएँ हाथसे इस्तन्जेके ढेलेको उपयोगमें रखता और ग़ज़ब यह कि एक पाँव सीटपर रखकर फ़ौजी अफ़सरकी तरफ़ मुँह किये चार-चार पाँच-पाँच मिनट तक इसी हालतमें खड़ा रहता। मैं देख रहा था कि फ़ौजी अफ़सरके क्रोधका पारा सौसे ऊपर चढ़ रहा है, पर पठान था कि बिलकुल बेपरवाह। एक अजीब बेपरवाहीसे अपने उस शौच-क्रियाके पारायणका अनुष्ठान कर रहा था।

गाड़ी 'कोटकपूरा' और 'फ़रीदकोट'के बीचमें उड़ी जा रही थी। पठान यथापूर्व लघुशंकाके लिए गया। ज्यों ही उसने ट्वाइलेट-रूमका दरवाज़ा बन्द किया, फ़ौजी लपककर अपनी सीटसे उठा, मेरी आँखोंके सामने पठानकी पगड़ी और कुलाह उठाया और उसे चलती गाड़ीसे नीचे फेंक दिया। फिर चुपचाप अपनी सीटपर लम्बा हो गया, मानो कोई बात ही नहीं हुई। पठान पाँच-छः मिनटके बाद बाहर निकला, और आते ही भांप लिया कि उसकी पगड़ी और टोपी मौजूद नहीं है। उसने झुककर देखा कि कहीं गिरकर सीटके नीचे न जा पड़े हों, मगर वहाँ कुछ होता, तो मिलता। वह उठा और मेरी तरफ़ झुककर कहने लगा—"बाबू! हमारा दस्तार और कुलाह किधर है!"

मैंने आँखोंके इशारेसे बताया कि इस अफ़सरसे पूछो।

"हैलो"—उसने फ़ौजीकी तरफ़ देखकर कहा।

"हैलो"—फ़ौजीने नक़ल करते हुए जवाब दिया।

"हमारा दस्तार और कुलाह किधर गया ?"—पठानने पूछा।

"अम्—नहीं—जानटा"—उसने एक-एक लफ़्ज़पर ज़ोर डालते और बीचमें विराम देते हुए कहा।

उसका चेहरा नफ़रत और तिरस्कारके भावोंसे भरा था। वह अपने मनमें अपनी इस करतूतसे, जिसे वह उचित समझता था, प्रसन्न था, क्योंकि प्रसन्नता उसके मुखपर और आँखोंमें झलक रही थी। पठानने उसकी नीयतको पढ़ लिया और हक़ीक़तको मालूम कर लिया। मैंने अनुभव किया कि पठानकी निगाहें फ़ौजीके अन्तस्तल तक उतर गई हैं। पठानका चेहरा इस अपमान और मुठमर्दीपर लाल हो गया। मैंने सोचा कि वह इसका गला दबोचनेवाला है, पर आशाके विरुद्ध वह चुप हो गया। दो-एक मिनटके बाद ढेलेको बाहर फेंककर उसने इज़ारबन्द बाँधा, हाथ झाड़े और चुपचाप अपनी सीटपर बैठ गया। इस वक़्त रातके साढ़े चार बजे थे।

सुबह सवा पाँच बजे गाड़ी फ़िरोज़पुर छावनी पहुँचनेपर फ़ौजी अफ़सर उठा, बूट, लम्बी जुराबें, नेकर और सिर्फ़ कमीज़ पहने वह गाड़ीसे उतरकर रिफ़्रेशमेन्ट-रूममें जा घुसा। शायद वह ह्विस्की या चायका प्याला पीनेके लिए गया था, पठान उसे रिफ़्रेशमेन्ट रूमकी तरफ़ जाते हुए कनखियोंसे तकता रहा। जब वह अन्दर चला गया और दरवाज़ा उसके पीछे बन्द हो गया, तो पठान आहिस्तासे उठा, कमरेकी दो बत्तियोंमेंसे एक बुझा दी, फ़ौजीका सामान—ओवरकोट, छाता, हैट, बिस्तरबन्द, सूटकेस, टिफ़न-बास्केट, फूलदान, फलोंकी टोकरी, कम्बल और दूसरी कई चीज़ें—जिन सबकी क़ीमत उसकी पगड़ी और कुलाहसे सत्तर गुना ज़्यादा होगी—इकट्ठी करके उन्हें कम्बलमें बाँधा और ट्वाइलेट-रूममें घुसकर चटखनी चढ़ा ली। मैं हैरान था कि इसका क्या इरादा है, वह इन्हें चुराना चाहता है, या अन्दर जाकर इन चीज़ोंको दियासलाई दिखायेगा ?

फ़ौजी दस-बारह मिनटके बाद ऐन उस वक़्त आया, जब कि गाड़ी चलनेवाली थी, पर वह नशेमें मस्त था, उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। आते ही बिना इधर-उधर देखे सीटपर लेट गया और आँखें बन्द कर लीं। पठान अभी तक अन्दर था।

गाड़ी फ़ीरोज़पुर शहर कुछ मिनट ठहरी और चल पड़ी, मगर पठान बाहर न निकला। मैं बड़ी बेसब्रीसे नतीजेका इन्तज़ार कर रहा था। मेरी आँखें बराबर उसी ओर लगी हुई थीं। कृष्णपक्षकी अन्तिम तिथियाँ थीं। उस वक़्त चाँदकी पतली सी फाँक पूर्वके क्षितिजपर उदय हो रही थी। गाड़ी 'हुसैनीवाला'से आगे निकल गई और ज़मीन ढलवाँ होनी शुरू हो गई थी। रेतीली ज़मीन, सरकंडे और झाऊकी छोटी-छोटी झाड़ियोंने 'सतलज'के आनेकी सूचना दी। कुछ ही मिनटोंके बाद गाड़ी हेडवर्क्स 'गंडासिंहवाला'से (जहाँ इंजिनियरिंग-कलाने नदीको मुट्ठीमें ले रखा है) गुज़र रही थी। पुलके नीचे नदीका प्रवाह खम्भोंसे टकराता हुआ गर्जन-तर्जनके साथ झागके बादल उठाता हुआ बह रहा था। सहसा ट्वाइलेट-रूमकी खिड़की खुली और फ़ौजीके सामानकी गठरी एक बलशाली हाथने बाहर धकेली और उसे पूरी ताक़तसे हवामें फेंक दिया।

मैंने उसे चाँदके धुँधले प्रकाशमें एक-दो बार नदीकी ज़बरदस्त लहरोंपर उछलते देखा, फिर अँधेरे और पानीकी लहरोंमें आँखसे ओझल हो गई।

ट्वाइलेट-रूमका दरवाज़ा खुला और पठान विजेताके रूपमें मूँछोंपर ताव देता हुआ बाहर निकला। फ़ौजी बेख़बर सो रहा था।

पठान अपनी जगहपर बैठ गया और सीटके तख़्तेका सहारा लगाकर किसी गहरे विचारमें डूब गया।

मीलोंपर मील गुज़रते गये, कोई उल्लेख्य घटना न हुई। गाड़ी साढ़े आठ बजे लाहौर छावनी पहुँची, फ़ौजी बदस्तूर सो रहा था।

गाड़ी ठहरनेके एक मिनट बाद गार्डने अपनी अंगुलियोंकी कड़ियोंसे खिड़कीको खटखटाया और ऊँची आवाज़से—

'श्राहौर केन्ट फ़ीज़'—कहा। फ़ौजी उठकर बैठ गया, अंगड़ाई ली और खूँटियोंकी तरफ़ निगाह दौड़ाई। हैरान हुआ कि सामान किधर गया। सामने सीटपर निगाह डाली, तो सफ़ाई नज़र आई। नीचे झुककर सूटकेस देखा, तो नदारद! हैरानीसे इधर-उधर ताका, फिर पठानपर नज़र डाली, जो आँखें बन्द किये कुछ सोती-जागती हालतमें सीटके साथ पीठ लगाये बैठा था। सबसे आखिरमें मेरी तरफ़ देखा और पूछा—"हमारा सामान किधर गया?"

मैंने आँखोंके इशारेसे जवाब दिया कि इस पठानसे पूछो।

"हैलो!"—उसने पठानको सम्बोधन करते हुए कहा। इस कर्कश और अनभ्यस्त आवाज़पर पठानने अपनी आँखें खोलीं और फ़ौजीकी तरफ ध्यानसे देखा। "हैलो!"—उसने नक़ल करते हुए फ़ौरन जवाब दिया।

"हमारा सामान किधर गया?"

"तुम्हारा सामान?"—पठानने प्रश्न-सूचक स्वरमें कहा।

"यस, हमारा सामान—हमारा कोट, हमारा छाता—!"

"ओह, तुम्हारा ओवरकोट, तुम्हारा छाता?"

"यस यस—हमारा कम्बल, केस और बाक़ी सामान!" अंग्रेज़ने सामान मिलनेकी आशामें कुछ नरमीसे 'यस'को दोहराते हुए कहा।

'ओह, यह सारा चीज़ हमारा दस्तार और कुलाह लेने गया है। घबराओ मत, वह आ जायगा, मगर अकेला नहीं आ सकता, वह उन्हें ढूँढ़ता फिरता है।"

इस गुस्ताख़ीके जवाबपर, जिसमें साफ़ अपराधकी स्वीकृति पाई जाती थी, फ़ौजीका चेहरा गुस्सेसे तमतमा उठा, नथने फूल गये, आँखें सुर्ख हो गईं। मैंने देखा कि जोशसे उसका सारा शरीर काँपने लगा है।

"यू डैम—" उसके मुँहसे निकला।

पठान कूदकर खड़ा हो गया—"काफ़िर-बचा, तुक्मे-सग (कुत्तेका पिल्ला), गाली देता है!" यह कहकर उसने फ़ौरन हाथसे फ़ौजीकी गर्दन दबाई। वह अभी दूसरे हाथसे कोई आघात न करने पाया था कि फ़ौजीने दाहने हाथसे उसकी कलाई पकड़कर अपनी गर्दन छुड़ा ली और मुक्केके लिए उठे हुए उसके हाथको हवामें दबोच लिया। पठानने दोनों हाथोंका धक्का देकर उसे पीछेकी तरफ़ धकेला, अगर सीटका सहारा न होता, तो अंग्रेज़ ज़रूर गिर पड़ता। इसी धींगा-मुश्तीमें इनके हाथ एक दूसरेकी कमरेमें लिपट गये, और देखते-देखते बीचवाली सीटपर गुत्थम-गुत्था हो पड़े।

मुझे मामलेके इस हद तक पहुँचनेकी उम्मीद न थी। मैं बीच-बचावके लिए उठा साथ ही प्लेटफार्मपर सीटीकी आवाज़ सुनाई दी। मैं अभी बीच-बचाव करनेकी सोच ही रहा था कि दरवाज़ा खुला और बूढ़ा प्लेटफार्म-सारजेन्ट हाँपता हुआ अन्दर घुस आया। उसके पीछे एक टिकट-कलक्टर, फिर एक सिपाही और साथ ही सेकेन्ड गार्ड, जो इत्तिफ़ाक़से सामनेसे जा रहा था, दाखिल हुए।

"क्या बात है?"—सारजेन्टने पूछा।

"कुछ नहीं",—मैंने जवाब दिया—"इन दोनोंके दरमियान बातों-बातोंमें कुछ ग़लतफ़हमी हो गई है और आपसमें उलझ पड़े हैं।"

"छोड़ दो, खान! और आप भी हट जाँय साहब!"—अनुभवी पुलिस-अफ़सरने इन्हें अलग करते हुए नम्रतासे कहा, क्योंकि उसने फर्स्ट क्लासके कमरे और झगड़नेवाले मुसाफ़िरोंके ठाट-बाटको पहली नज़रमें ही भाँप लिया, और मेरे जवाबसे भी उसे तसल्ली हो गई थी कि पुलिसके हस्तक्षेप करने योग्य कोई दुर्घटना नहीं घटी है।

"ब गुज़ारीद आग़ा"—(माफ़ करो, आग़ा!) मैंने भी आगे बढ़कर ऐतबार जमाते हुए कहा—"ब गुज़ारीद, ईं चुनीं कारहा, शायाने-शाने-शुमा नेस्त"—(जाने दो, यह बात तुम्हारी शानके खिलाफ़ है)—

"छोड़ दो साहब, गाड़ी दो मिनटमें छूटनेवाली है"—सेकेन्ड गार्डने, साहब बहादुरकी तरफ़ देखकर कहा।

वह दोनों अलहदा हो गये। पठानने अपनी निगाहें, जो विजयके उल्लाससे सितारोंकी तरह चमक रहीं थीं, मेरी तरफ़ उठाईं और दाद चाही। मैंने आँखों ही आँखोंमें जवाब दिया। आत्माभिमानी पठान प्रसन्न था।

गाड़ी चलनेमें थोड़ा वक्त बाक़ी रह गया था। बेहद घबराहट और वक्तकी तंगीमें साहब बहादुरने बिस्तर लपेटा और बची-खुची चीज़ोंको इकट्ठा करके कुलीके हवाले किया, और उन्हीं कपड़ोंमें गाड़ीसे उतर गया। पठानकी विजयी निगाहें गेट तक उसका पीछा करती गईं। जब वह खिन्न दशामें सिर नीचा किये जल्दीसे वेटिंग-रूममें घुस गया, तो पठानने अपने सफल परिशोधकी प्रसन्नतामें सन्तोषकी साँस भरते हुए कहा—"बेईमान काफ़िर, हमारे साथ मखौल करता है।"

लाहौर स्टेशनपर मैं भी उतर गया, मगर रास्ते-भर मैं पठानके इस स्वात्माभिमान और साहसकी सराहना करता गया। मेरे दिलमें उसके लिए प्रतिष्ठा और सम्मानके भाव जाग्रत हो उठे। इस पठानके अन्दर एक स्वतन्त्र आत्मा थी। दाँतके बदले दाँत, आँखके बदले आँख, यह ईश्वरीय नियम है। यह ठीक है कि सभी फ़ौजी अफ़सर ऐसे उद्दण्ड और अक्खड़ नहीं होते, लेकिन अधिकांश फ़ौजी अफ़सर इतने बदमिज़ाज और उग्र होते हैं कि ईश्वर इनसे बचावे। ऐसे उद्दण्ड फ़ौजियोंका यही इलाज है, जो उस पठानने किया।*

अनुवादक :—काशीनाथ काव्यतीर्थ

* 'नैरंगे-ख़याल' (उर्दू) में प्रकाशित लेखका अनुवाद।

चार दिन

(कहानी)

मुझे याद है कि हम लोग किस तरह जंगलमें दौड़े थे, किस तरह गोलियाँ सनसना रही थीं, टूटी डालियाँ गिर रही थीं और हम लोग कैसे करीली झाड़ियोंको चीरते-फाड़ते आगे बढ़ रहे थे। जंगलके सिरेपर कोई लाल-लाल चीज़ दिखाई दी, जो इधर-उधर बड़ी तेज़ीसे दौड़ रही थी।

पहली कम्पनीका जोधा सिंह एकाएक ज़मीनपर बैठ गया। पहले मेरे मनमें एक बार यह बात दौड़ गई कि वह हमारे दलमें कैसे आ गया? मैंने उसकी ओर दृष्टि डाली, तो देखा कि वह अपनी भयभीत आँखें फाड़-फाड़कर मेरी ओर देख रहा है। उसके मुँहसे ख़ूनका पनाला बहने लगा। यह सब अच्छी तरह याद है। मुझे यह भी याद है कि जंगलके सिरेपर झाड़ियोंमें मैंने उसे भी देख लिया। वह एक लम्बा चौड़ा, मोटा तुर्क था। यद्यपि मैं दुबला और कमज़ोर था, फिर भी मैं सीधा उसके ऊपर दौड़ पड़ा। एक बड़े ज़ोरका धमाका हुआ। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि कोई बड़ी और भारी चीज़ मेरे पाससे सॉयसे निकल गई। मेरे कान झनझना उठे। मैंने समझा, वह मुझपर गोली चला रहा है, परन्तु एक भयभीत चिंघारके साथ उसने झाड़ियोंमें घुसनेकी कोशिश की। यदि वह चाहता, तो घूमकर झाड़ियोंके दूसरी ओर भाग जा सकता था, परन्तु वह इतना ज्यादा डर गया था कि उसके होश-हवास गुम हो गये, और वह उन्हीं कँटीली झाड़ियोंमें घुस पड़ा। एक ही वारमें मैंने उसके हाथसे बन्दूक गिरा दी और फिर अपनी पूरी संगीन उसके छातीमें भोंक दी। एक भयंकर गरज या चिंघारकी भाँति आवाज़ सुनाई दी। मैं फिर आगेकी ओर लपका। हमारे साथी 'हुर्रा, हुर्रा' चिल्ला रहे थे। वे गोलियाँ चलाते जाते थे और गिरते जाते थे। मुझे याद है कि जब मैं जंगलसे निकलकर खुले मैदानमें आया, तो मैंने कई गोलियाँ चलाई थीं। एकाएक 'हुर्रा'का शब्द बहुत ज़ोरका हो गया और हम सब आगेकी ओर झपटे। हमारे सब साथी तो अवश्य ही आगे बढ़ गये, क्योंकि मैं पीछे रह गया। यह बात बहुत विचित्र-सी

जान पड़ी, परन्तु यह तो और भी विचित्र समझाई पड़ा कि अचानक मेरे स्मृति-पटसे सभी बातें एकाएक ग़ायब हो गईं। बन्दूकोंकी आवाज़ और लोगोंकी चिल्लाहट एकदम शान्त हो गई, मुझे कुछ भी सुनाई न पड़ा। पहले तो कुछ नीला-नीला दिखाई पड़ा—शायद वह आसमान था—मगर फिर वह भी ग़ायब हो गया।

आजसे पहले, कभी भी, मेरी दशा ऐसी विचित्र नहीं हुई थी। मुझे मालूम हुआ कि मैं अपने पेटके बल पड़ा हूँ, और एक बालिश्त ज़मीनके टुकड़ेके सिवा कुछ भी नहीं देख सकता। घासकी दो-चार पत्तियाँ—जिनमेंसे एकपर एक चींटी ऊपरसे नीचेको उतर रही है और गत वर्षके सूखे हुए दो-चार पत्ते—बस, इस समय यही मेरा समूचा संसार है। यह सब भी मैं केवल अपनी एक आँखसे ही देख सकता हूँ, क्योंकि दूसरी आँखके आगे कोई बड़ी चीज़ अड़ी हुई है। वह शायद पेड़की डाली है, जिसके सहारे मेरा सर रखा हुआ है। मैं बड़ी बेचैनीमें हूँ। मैं चाहता हूँ कि थोड़ा इधर-उधर हिलूँ-डुलूँ, मगर समझमें नहीं आता कि मैं हिल-डुल क्यों नहीं सकता ? इसी प्रकार घड़ियाँ गुज़र रही हैं। मुझे झींगुरकी झनकार और मधुमक्खीकी भनभनाहट सुनाई देती है, और कुछ नहीं। अन्तमें कोशिश करके अपना दाहना हाथ शरीरके नीचेसे निकालता और ज़मीनपर दोनों हाथ टेककर घुटनेके बल बैठनेकी कोशिश करता हूँ। ऐसा मालूम हुआ कि कोई तेज़ चीज़ बिजलीकी तरह मेरे घुटनेसे लेकर सर तक छेदती हुई निकल गई हो। मैं फिर गिर पड़ता हूँ और फिर अंधकार तथा विस्मृतिका राज्य हो जाता है।

मैं जागा। ऐं, अब तो मुझे मेसोपोटामियाके नील-श्याम आकाशमें चमकते हुए तारे दिखाई देते हैं! क्या मैं अपने ख़ीमेमें नहीं हूँ ? मैंने ख़ीमा क्यों छोड़ा था ? मैं कुछ हिला, तो मुझे पैरोंमें असह्य पीड़ा मालूम हुई।

हाँ, मैं लड़ाईमें घायल हो गया हूँ, लेकिन ख़तरनाक या मामूली ? मैं उन स्थानोंको, जहाँ पीड़ा है, छूता हूँ। दोनों टाँगोंमें जमा हुआ ख़ून लिपटा है। उफ़, ओः! छूनेसे तो दर्द और भी बढ़ जाता है। यह दर्द दाँतके दर्दकी तरह एक-सा लगातार और आत्माको हनन करनेवाला है। मेरे कान झनाते हैं। मालूम होता है कि मेरा सर मन-भर भारी हो गया है। स्पष्टभावसे मुझे ज्ञात होता है कि मैं दोनों पैरोंसे घायल हुआ हूँ। लेकिन यह हुआ कैसे ? मुझे किसीने उठाया क्यों नहीं ? क्या तुर्कोंने हम लोगोंको पीट दिया ? अब मैं जो कुछ गुज़रा है, उसे याद करनेकी कोशिश करता हूँ। पहले कुछ धुँधला-सा याद पड़ता है, फिर धीरे-धीरे सब बातें साफ़-साफ़ याद आती हैं। मैं इस नतीजेपर पहुँचता हूँ कि हम लोग हारे नहीं हैं, क्योंकि मैं पहाड़ीकी चोटीपर एक खुले स्थानमें गिरा था। मुझे यह सचमुचमें याद नहीं था, लेकिन इतना याद था कि जब मैं उनके साथ नहीं दौड़ सका था और जब मुझे केवल एक नीले धब्बेके सिवा और कुछ दिखाई नहीं दिया था, उस समय वे सब कैसे आगेकी तरफ़ झपटे थे। हमारे छोटे कम्पनी-कप्तानने हमें पहले ही बता दिया था। उसने अपनी गूँजती हुई आवाज़से इशारा करके कहा था—"बहादुरो, हम लोगोंको वहाँ पहुँचना है।" हम लोग वहां पहुँच गये, अतः हम लोग हारे नहीं हैं, मगर फिर भी किसीने मुझे उठाया क्यों नहीं ? यह एक खुली जगह है। यहाँ सभी चीज़ें दिखाई देती हैं। मैं अकेला ही गिरनेवाला नहीं हो सकता, क्योंकि गोलियाँ बड़े ज़ोरोंमें चल रही थीं। ज़रा सर घुमाकर चारों ओर देखना चाहिए। अब यह आसान है, क्योंकि जब मुझे घासकी पत्तीपरसे चींटी उतरती दिखाई पड़ती थी। मैंने उठनेकी कोशिश की थी और उठकर गिर पड़ा था, तब मैं पहलेकी भांति ही औंधे मुँह नहीं गिरा था, बल्कि पीठके बल गिरा था। इसीलिए तो मुझे तारे दिखाई देते हैं।

मैं अपने शरीरको उठाकर बैठनेकी कोशिश करता हूँ। जब दोनों टाँगें घायल हों, तो यह बहुत मुश्किल है। निराशा पहलेकी अपेक्षा मुझे और भी व्याकुल कर देती है,

परन्तु अन्तमें मैं बैठ ही जाता हूँ। पीड़ाके मारे मेरी आँखोंसे आँसू निकलने लगते हैं। मेरे ऊपर नील-श्याम आकाशका एक टुकड़ा है, जिसमें एक चमकदार और कई छोटे-छोटे तारे चमक रहे हैं। मेरे चारों ओर लम्बी-लम्बी काली-काली कोई चीज़ है। ऐं, यह तो झाड़ियाँ हैं! अच्छा, मैं झाड़ियोंमें हूँ, इसीलिए उन लोगोंने मुझे नहीं देखा!

मेरे रोएँ खड़े हो गये।

मगर मैं झाड़ियोंमें कैसे आ गया! उन्होंने तो मुझे खुलेमें मारा था! शायद मैं घायल होनेके बाद दर्दसे बेसुध होकर यहाँ रेंगकर आ गया हूँगा। लेकिन कैसी विचित्र बात है कि उस समय तो मैं रेंगकर यहाँ तक आ गया, मगर अब हिल भी नहीं सकता! शायद तब मेरे एक ही ज़ख्म होगा। दूसरा झाड़ियोंमें आनेके बाद लगा हो।

पीलिमा मिश्रित लालिमा प्रकट हो रही है। चमकदार तारे मद्धिम हो रहे हैं। छोटे-छोटे तारोंमेंसे कुछ गायब हो रहे हैं—चन्द्रमा निकल रहा है। हिन्दुस्तानमें—घरपर इस वक्त कैसा सुन्दर होगा!

मुझे एक अजीब आवाज़-सी सुनाई देती है। ऐसा मालूम होता है कि कोई कराहता हो। क्या यहाँ मेरे पास कोई है? क्या मेरी तरह किसीकी टाँगें टूट गई हैं? या पेटमें गोली है? क्या मेरी तरह उसे भी लोग भूल गये हैं,? नहीं, यह कराहना तो बिलकुल ही पास सुनाई देता है, लेकिन यहाँ कोई और तो है नहीं। हे ईश्वर! यह तो मेरी ही आवाज़ है। यह मेरा ही दर्दनाक कराहना है। क्या सचमुचमें यह पीड़ा इतनी भयानक है कि कराहनेकी आवाज़ निकले? मैं समझता हूँ कि कुछ ऐसी ही है, लेकिन मैं उसे अच्छी तरह समझ नहीं सकता, क्योंकि मेरा दिमाग़ एकदम गड़बड़ है, और मेरा सर ऐसा भारी है, जैसे सीसा।

बेहतर है कि मैं लेट रहूँ और सो जाऊँ। निद्रा, निद्रा, निद्रा,''''''क्या मैं कभी इस निद्रासे जग भी सकूँगा। मगर न भी जग सकूँ, तो क्या हर्ज है?

ठीक उसी वक्त, जब मैं लेटनेके लिए तय्यार होता हूँ, चाँदकी एक पीली किरण मेरे चारों ओर उजाला कर देती है। मैं देखता हूँ कि मुझसे कुछ गज़के फासलेपर कोई बड़ी काली चीज़ पड़ी है। चाँदकी रोशनीमें उस काली चीज़पर कुछ छोटी-छोटी चमकदार चीज़ें झलझला उठती हैं। वे शायद बटन या कारतूस होंगे। वह या तो कोई लाश है या कोई घायल आदमी। होगा कुछ, मुझे पर्वाह नहीं है। मैं लेटूँगा'''''''''नहीं, यह असम्भव है। हमारे आदमी चले नहीं गये होंगे। वे यहीं हैं। उन्होंने तुर्कोंको हरा दिया है और इस स्थानपर कब्ज़ा कर लिया है, मगर मुझे उनकी आवाज़ क्यों नहीं सुन पड़ती? उनके कैम्पकी आगकी लकड़ियोंकी चटचटाहट भी नहीं सुनाई देती? निश्चय ही मैं इतना कमज़ोर हो गया हूँ कि उसे नहीं सुन सकता। वे लोग ज़रूर यहीं होंगे।

"बचाओ! बचाओ—!"

मेरे हृदयसे पागलोंकी भाँति यह रूखा चीत्कार ज़बर्दस्ती निकल पड़ता है, लेकिन उसका कोई जवाब नहीं मिलता। रातके सन्नाटेमें ज़ोरसे वह गूँजकर रह जाती है। फिर पूर्ण निस्तब्धता छा जाती है, केवल झींगुर पहलेकी भाँति अविराम गतिसे अपना शोर मचा रहे हैं। गोल मुखवाला चन्द्रमा करुण दृष्टिसे मेरी ओर देखता है।

अगर यह पासवाला आदमी घायल होता, तो इस चीत्कारसे अवश्य ही जग पड़ता। वह मुर्दा ही है। हमारा है या तुर्कोंका? रामका नाम लो, किसीका हो, इससे मतलब? निद्रा फिर एक बार मेरी जलती हुई आँखोंको बन्द कर देती है।

यद्यपि मैं कुछ देरसे जग रहा हूँ, मगर आँखें बन्द किये हुए पड़ा हूँ। मैं आँख खोलना नहीं चाहता, क्योंकि बन्द पलकों ही से मुझे धूपकी गर्मी मालूम पड़ रही है, और यदि मैं आँखें खोलूँगा, तो उनमें धूप लगेगी। इसके अलावा हिलना डुलना अच्छा भी नहीं है''''''। कल (उसे मैं कल ही समझता हूँ) मैं घायल हुआ था।

एक दिन बीत गया। और भी बीतेंगे और मैं मर जाऊँगा। क्या ही अच्छा हो कि दिमाग़ भी अपना काम बन्द कर दे, मगर उसे तो कोई चीज़ बन्द नहीं कर सकती। मेरे मस्तिष्कमें विचार और स्मृतियाँ-भरी हुई हैं। ख़ैर, यह बहुत देर तक नहीं रहेगा। शीघ्र ही सब ख़तम हो जायगा। कुछ भी बाक़ी न रहेगा। केवल अख़बारोंमें एक-दो लाइनोंका एक समाचार निकल जायगा कि लड़ाईमें हमारी हानि कम हुई, इतने सैनिक घायल हुए और एक सिपाही बहादुर सिंह मारा गया। नहीं, वे नाम भी नहीं देंगे। केवल यही लिख देंगे—'एक मरा'। केवल एक सिपाही—ठीक इसी तरह जैसे कोई कहे कि एक कुत्ता मर गया। मेरी आँखोंके सामने एक पुरानी घटनाकी तसवीर-सी आ खड़ी हुई। यह दृश्य मेरे जीवनकी एक बहुत पुरानी घटनाका है। कलकत्तेमें मैं सड़कपर जा रहा था, मगर सामने भीड़ देखकर रुक गया। देखा कि लोगोंका एक दल चुपचाप खड़ा एक सफ़ेद चीज़की ओर ताक रहा था। वह सफ़ेद चीज़ ख़ूनसे लथपथ थी और बड़ी बुरी तरह भूँक रही थी। वह एक छोटासा ख़ूबसूरत कुत्ता था, जो ट्रामसे कुचल गया था। वह मर रहा था—जैसे इस वक़्त मैं मर रहा हूँ। सामनेकी कोठीका पठान दरबान भीड़में घुस पड़ा और कुत्तेका कालर पकड़कर उठा ले गया। भीड़ छँट गई।

क्या मुझे भी कोई उठा ले जायगा? नहीं, यहीं पड़े-पड़े मृत्यु होगी। अच्छा, जीवन भी कितना सुन्दर है! उस दिन, जिस दिन कुत्तेकी दुर्घटना हुई थी, मैं कैसा सुखी था। चलता था, तो ऐसा मालूम होता था कि जैसे नशेमें मतवाला हूँ। मेरे प्रसन्न होनेका कारण भी था। ओह, स्मृतियो! मुझे छोड़ दो, मुझे मत सताओ। ओः! अतीतका वह सुख और आनन्द और वर्तमानकी यह भयंकर पीड़ा!······बेहतर है कि चुपचाप दर्द सहते हुए पड़े रहो। पुरानी बातोंकी याद ही क्यों करते हो? हाय, हृदयकी वेदना ज़ख़्मोंके दर्दसे कहीं ज़्यादा भयंकर है।

सूर्य तप रहा है, गर्मी बढ़ रही है। मैं अपनी आँखें खोलकर देखता हूँ। वही झाड़ियाँ हैं, वही आकाश है, मगर अब धूपका उजाला है। हाँ, मेरा पड़ोसी भी तो मौजूद है। अरे, यह तो किसी तुर्ककी लाश है। यह कितना भारी है। मैं पहचान गया, यह तो वही है!

मेरे सामने एक आदमी पड़ा है, जिसे मैंने मारा है। मैंने उसे क्यों मारा? वह यहाँ ख़ूनसे सना हुआ, मुर्दा पड़ा है। क़िस्मत उसे यहाँ क्यों लाई? वह कौन है? क्या मेरी भाँति उसके भी बूढ़ी माँ है? बहुत दिनों तक उसकी बूढ़ी मा अपने कच्चे झोंपड़ेके द्वारपर बैठकर, पूरबकी ओर ताकती हुई, उसका रास्ता देखती होगी। वह मनमें सोचती होगी कि उसका लाल, उसके बुढ़ापेकी लकड़ी, उसका अन्नदाता आता होगा। और मैं? मैं भी तो—मैं इस तुर्कका स्थान लेनेको तैयार हूँ। यह तुर्क कितना सुखी है। उसे न कुछ सुनाई देता है और न ज़ख़्मोंका दर्द ही मालूम होता है। उसे न तो मर्म-वेदना ही सताती है और न प्यास। मेरी संगीनने उसे बेध दिया है। उसकी छातीपर एक बड़ा-सा काला छेद है, जिसके चारों ओर ख़ून जमा है। यह मेरी करतूत है!

मैं यह नहीं चाहता था। जब मैं लड़नेके लिए चला था, मेरी कदापि यह इच्छा नहीं थी कि किसीको कष्ट पहुँचाऊँ। मुझे लोगोंको मारना पड़ेगा, यह बात उस समय मेरे ध्यान ही में नहीं आई थी। अपनी कल्पनामें मैंने केवल यही विचारा था कि मैं लड़ाईमें जाकर गोलियोंके सामने अपनी छाती कर दूँगा। यहाँ आकर मैंने किया भी वही।

और फिर? मैं मूर्ख हूँ, मूर्ख! लेकिन यह अभागा 'फलाहीन' मिस्री किसान (तुर्क मिस्र देशके सैनिककी वर्दी पहने था) तो मुझसे भी कम दोषी है। इस बेचारेने तो तब तक अंग्रेज़ों या मेसोपोटामियाका नाम भी न सुना होगा, जब तक यह अपने अन्य साथियोंके साथ जहाज़में भेड़की तरह भरकर क़ुस्तुनतुनिया न भेजा गया होगा। इसे जानेका हुक्म मिला और यह बेचारा चला आया। यदि

आनेसे इनकार करता, तो डंडोंकी मार खानी पड़ती या कोई पाशा उसे अपने 'रिवाल्वर'का शिकार बना डालता। इसने स्तम्बूलसे बग़दाद तक लम्बी-लम्बी कठिन 'मार्चें' की हैं। हम लोगोंने हमला किया, उन्होंने अपनेको बचाया, लेकिन यह देखकर कि हम लोग—भयंकर लोग—उनकी छर्रेवाली जर्मन रायफलों और मार्टिनी बन्दूकोंसे बिलकुल नहीं डरते और आगे बढ़ते ही जाते हैं, वह बेचारा डरके मारे घबरा गया।

जिस समय वह भागना चाहता था, उसी समय एक छोटासा आदमी—जिसे वह अपने मज़बूत हाथोंके एक तमाचेसे ही ढेर कर सकता था—उसकी ओर झपट पड़ा और उसने उसकी छातीमें अपनी संगीन भोंक दी। फिर भला, उसका क्या क़सूर ? यद्यपि मैंने ही उसे मारा है, फिर भी मेरा क्या क़सूर ? मैं कैसे दोषी हूँ ?

मुझे प्यास क्यों इतना अधिक सता रही है ? प्यास ! इस शब्दका क्या अर्थ होता है, इसे कौन जानता है ? यहाँ तक कि जब हम लोग बसरासे प्रतिदिन चालीस चालीस मीलकी मार्च करते थे, और गर्मीके मारे छायामें भी थर्मामीटरका पारा १०५ डिग्रीपर रहता था, उस समय भी मुझे प्यासकी ऐसी भयंकरता नहीं मालूम हुई थी। आह ! यदि इस वक्त कोई आकर एक घूंट पानी दे दे। हे दयामय ईश्वर ! दया करो ! अरे हाँ ! इस तुर्ककी बोतलमें पानी होगा। मुझे केवल उसके पास तक पहुँचना पड़ेगा, लेकिन वहां तक पहुँचना क्या आसान है ? जो कुछ हो, मैं उसके पास तक ज़रूर जाऊँगा।

मैं रेंगता हूँ। मेरे पैर घिसटते हैं। मेरी भुजाओंमें मुश्किलसे इतनी शक्ति है कि मैं हिल-डुल सकूँ। समस्त शरीर निर्जीव हो रहा है। लाश कोई बारह गजकी दूरीपर होगी, मगर मेरे लिए वह दूर है—बारह मीलसे भी अधिक दूर है। फिर भी मुझे रेंगना ही चाहिए। मेरा गला जल रहा है, मालूम होता है कि आगकी लपटसे झुलसा जा रहा हो। बिना पानीके लोग जल्द मरा करते हैं। फिर भी शायद—मैं रेंगता हूँ। मेरे पैर ज़मीनपर अटकते हैं। ज़रासा भी हिलने-डुलनेमें मर्मान्तक पीड़ा होती है। मैं कराहता हूँ, रोता हूँ, मगर फिर भी आगेकी ओर रेंगता हूँ। अन्तमें मैं उसके पास तक पहुँच जाता हूँ। वह उसकी बोतल है। उसमें पानी है—बहुतसा पानी है! वह आधीसे ज्यादा भरी है। यह पानी कई दिन तक—मेरी मृत्यु तक—काम देगा!

मेरे शिकार, तुमने मेरे प्राण बचा लिये! एक कोहनीपर भार देकर मैंने बोतलके तस्मेको खोलना शुरू किया। एकाएक मेरा बैलेन्स बिगड़ गया, मैं मुँहके बल अपने निर्जीव प्राण-रक्षककी छातीपर गिर पड़ा। उसके शरीरसे सड़ायँधकी कड़ी पहले ही से आ रही थी।

मैं पानी पीता हूँ। पानी गरम है, मगर है साफ़ सबसे बड़ी बात तो यह है कि बहुतसा है। अब तो मैं कई दिन तक जीवित रहूँगा। मुझे याद है कि मैंने 'वैद्यक-मंजरी'में पढ़ा था कि यदि आदमीको केवल पानी मिलता रहे, तो वह हफ्ते-भरसे अधिक जीवित रह सकता है। उसी किताबमें एक आदमीका किस्सा है, जिसने भूखे रहकर आत्म-हत्या करना चाही थी, मगर वह बहुत दिन तक जीवित रहा, क्योंकि वह पानी पीता था।

लेकिन इससे क्या ? यदि मैं पांच-छै दिन और भी जीवित रहा, तो उससे फ़ायदा ? हमारे आदमी सब चले गये। तुर्क भाग गये। यहां पास-पड़ोसमें कोई सड़क भी नहीं है। मैं वैसे भी मर जाऊँगा। केवल बात इतनी है कि तीन दिनकी तकलीफकी जगह मैं उसे हफ्ते-भरकी बना रहा हूँ। क्या यह अच्छा नहीं है कि शीघ्र ही इसका ख़ात्मा कर दूं ? मेरे पड़ोसीकी बन्दूक उसकी बग़लमें पड़ी है। बड़ी उमदा जर्मन बन्दूक है। मुझे केवल हाथ बढ़ाकर उठा लेना है, फिर एक बार धाँय—सब झंझट पार। मुट्ठी भर कार्तूस ज़मीनपर बिखरे पड़े हैं, जिन्हें व्यवहार करनेका उसे मौक़ा ही नहीं मिला। तो क्या मैं इन सबका ख़ात्मा कर दूं ? या अभी इन्तज़ार करूँ ? इन्तज़ार

काहेका ? बचनेका ? या मौतका ? क्या तब तक इन्तज़ार करूँ, जब तक तुर्क लोग आकर मेरी चटनी न बनाने लगें ? बेहतर है कि मैं ही क्यों न अपने हाथोंसे ही यह करूँ। नहीं, मुझे हिम्मत न हारना चाहिए। मैं अन्त तक—अपनी अन्तिम साँस तक—सामना करूँगा। एक बार वे मुझे देख लें, तो बस, मैं बच गया।

शायद मेरी हड्डियाँ न टूटी हों, मैं फिर अच्छा हो जाऊँ। मैं फिर अपना देश भारत वर्ष देखूँगा। मेरी माताको और मालतीको हे ईश्वर ! उन्हें मेरी सब सच्ची बातें न ज्ञात होने पावें। उन्हें यही समझने दो कि मैं सीधा-सीधा मारा गया। यदि उन्हें यह मालूम हो कि मैं दो, तीन, चार दिन तक ऐसा कष्ट भोगता रहा, तो उनकी क्या दशा होगी।

मेरा दिमाग़ चक्कर खाता है। अपने पड़ोसीके पास तककी यात्राने मुझे एकदम बेदम कर डाला। और अब यह भयंकर बदबू ! तुर्क एकदम काला पड़ गया है। कल परसों इसकी क्या दशा होगी ? मैं यहाँ केवल इसी कारणसे पड़ा हूँ कि मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि घसिटकर यहाँसे दूर हट सकूँ। थोड़ी देर सुस्तालूँ, फिर रेंगकर अपने पुराने स्थानपर चला जाऊँगा। सौभाग्यसे हवा उल्टी तरफसे आ रही है और बदबू मेरी ओरसे उसकी ओर जायगी। मैं यहां एकदम बेदम पड़ा हूं। धूपके मारे मुंह और हाथ जले जाते हैं। किसी तरह रात हो। मैं समझता हूं कि यह मेरी दूसरी रात होगी।

मेरे विचार धुँधले हो जाते हैं, मुझे नींद आ रही है।

मैं बहुत देर तक सोता रहा हूंगा, क्योंकि जब जागा तो देखा कि रात है। हरएक चीज़ वैसी ही है, जैसी थी। मेरे घावोंमें बड़ा दर्द हो रहा है। मेरा पड़ोसी वह पड़ा है—लम्बा-चौड़ा, पर एकदम निश्चल ! मैं अपनेको रोकता हूँ, फिर भी मुझे रह-रहकर बरबस उसीका ख़याल आता है। क्या यह सम्भव है कि मैंने अपने प्रिय बन्धु-बान्धवोंको छोड़ा, अपने देशको छोड़ा, हज़ारों मीलकी यात्रा करके इस लड़ाईमें शामिल हुआ, भूख सही, प्यास सही, सर्दीमें ठिठुरा, गर्मीसे जला, और इस समय यहाँ पड़ा हुआ इस असह्य वेदनाको सह रहा हूं। क्या यह सम्भव है कि यह सब केवल इसीलिए था कि यह बेचारा तुर्क अपने जीवनसे हाथ धो बैठे, लेकिन केवल इस ख़ून—हत्या—को छोड़कर मैंने अपने सैनिक उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए क्या किया ?

ख़ून ? ख़ूनी ?, कौन ? मैं !

जब मैंने लड़ाईमें भरती होनेका निश्चय किया था, उस समय मेरी माताने या मालतीने मुझे कितना रोका था। वे मेरे लिए कितना रोई थीं ! उस समय मैं अपने विचारोंमें इतना अन्धा हो गया था कि मैंने उनके आंसू देखे ही नहीं। मैंने यह समझा ही नहीं था (मगर अब समझ रहा हूँ) कि मैं अपने प्रियजनोंके लिए क्या करता हूं, लेकिन इन सब बातोंको अब याद करना व्यर्थ है। जो बीत गया, वह वापस नहीं आता। मेरे जान-पहचानवालोंने मेरी भरतीकी ख़बर सुनकर कैसा मुझसे ताज्जुब किया था। उन्होंने कहा था—"कैसा ख़ब्ती है, ऐसा काम ले रहा है, जिसे ख़ाक-धूल भी नहीं जानता।" मगर उन्होंने ऐसा क्यों कहा ? वे लोग अपनी राज-भक्ति और वीरत्वके विचारोंके सामने ऐसे शब्द मुँहसे कैसे निकाल सके ? उनकी नज़रोंमें तो मुझमें वीरता, राजभक्ति आदि गुण मौजूद थे, फिर मैं 'ख़ब्ती' था !

मैं घरसे लखनऊ छावनी गया था। उस समय मेरे कंधेपर फौजी झोला पड़ा था और अन्य सैनिक हथियारोंसे मैं लदा हुआ था। वहाँ और भी हज़ारों आदमियोंके साथ मुझे कुछ दिन तक ठहरना पड़ा था। उन हज़ारोंमें केवल, मेरे जैसे, दो-चार ही आदमी स्वयं अपनी इच्छासे भरती हुए थे। बाक़ी लोगोंका, यदि, बस चलता तो वे अपने घरपर ही बने रहते। ख़ैर, वे भी हम लोगों ही की भाँति आये, उन्होंने भी हज़ारों मीलकी यात्रा की और हमारी ही तरह या हमसे भी अच्छी तरह लड़े। यद्यपि वे सब अपनी अपनी ड्यूटी करते हैं, फिर भी यदि उन्हें इजाज़त मिल जाय, तो वे उसे छोड़-छाड़कर अपने घर चले जायँ।

सवेरेकी तेज़ हवा चलने लगी। झाड़ियाँ हिलती हैं। एक उनींदी चिड़िया उड़ जाती है। तारे मद्धिम पड़ रहे हैं। काले आकाशमें पीलिमा आ रही है। आसमान रुईके मुलायम गालोंके समान बादलोंसे भर रहा है। पृथ्वीसे भूरे रंगका कोहरा-सा उठ रहा है। यह मेरे तीसरे दिनका आरम्भ है। तीसरा दिन काहेका? जीवनका? या वेदनाका?

यह तीसरा दिन है—अभी और कितने दिन होंगे? जो कुछ हो, मगर अधिक नहीं होंगे। मैं बहुत कमज़ोर हूँ और इस योग्य नहीं हूँ कि लाशसे दूर हट सकूँ। खैर, जल्द ही हम दोनों एक-से हो जायँगे। फिर एक दूसरेको बुरे न मालूम होंगे।

प्यास लगी है, पानी पीना चाहिए। मैं दिनमें तीन बार—सुबह, दोपहर और शामको पानी पीऊँगा।

सूरज उठ आया। काली-कटीली झाड़ियोंकी डालियोंके बीचसे उसकी बड़ी थाली खूनके समान लाल दिखाई देती है। मालूम होता है कि दिन खूब गरम होगा। पड़ोसीजी! तुम्हारी क्या हालत होगी? अभीसे दुर्गन्ध महाभयानक है।

बेशक, इसकी दशा तो भीषण है। उसके बाल गिर रहे हैं। उसकी खाल पीली पड़ गई है। उसका चेहरा पीला पड़ गया है। उसके ऊपर उसकी खाल इतनी तन गई है कि वह कानोंके नीचे फट गई है। उसके घुटनोंपर फ़ौजी पट्टी बँधी है, मगर फिर भी वे फूलकर कुप्पा हो रहे हैं। उसके शरीरपर कीड़े-मकोड़े रेंग रहे हैं। उसके कोटके बटनोंके दरम्यान बड़े-बड़े फफोले-से पड़ गये हैं। वह इतना ज्यादा फूल गया है कि पहाड़-सा दिखाई देता है। आज सूर्य उसकी क्या दशा करेगा?

अब उसके पास लेटना असह्य है। जैसे बने, मुझे यहाँसे दूर रेंगना ही पड़ेगा, लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? अभी तक मेरे हाथमें इतनी शक्ति है कि मैं उससे उठाकर बोतल खोल सकता हूँ और पानी पी सकता हूँ, मगर भला मैं अपने निर्जीव शरीरको हिला-डुला सकता हूँ? फिर भी मैं यहाँसे खिसकूँगा, चाहे एक बारमें बहुत थोड़ा—घंटेमें आधा गज़ ही—रेंग सकूँ, मगर हटूँगा ज़रूर।

सवेरेका सम्पूर्ण समय इस स्थान-परिवर्तन ही में बीत गया। दर्द बड़ा खराब है, मगर अब उससे क्या होता है? अब तो याद भी नहीं है—वास्तवमें अब मैं कल्पना भी नहीं कर सकता—कि अच्छेमें कैसा मालूम होता था। अब मैं वेदनाका आदी हो रहा हूँ। लाशसे मैं सचमुचमें कोई बारह गज़ दूर हट गया हूँ। अब मैं फिर अपनी पुरानी जगहपर आ गया, मगर हाय, ताज़ी हवाका सुख अधिक देर तक न मिल सका। सड़ती हुई लाशसे दस-बारह गज़की दूरीकी हवा ताज़ी नहीं कही जा सकती, उसपर भी हवाका रुख बदल गया। अब वह लाशकी ओरसे मेरी ओर सड़ी बदबू ला रही है। बदबू इतनी तेज़ है कि मेरा जी मचलाने लगा। मेरा खाली पेट ज़ोरसे सिकुड़ता है, जिससे बड़ा दर्द मालूम होता है। ऐसा जान पड़ता है कि पेटके भीतर जो कुछ भी है सब निकल पड़ेगा। बदबूदार ज़हरीली हवा ठीक मेरे चेहरेपर आकर लगती है। हाय, अब तो धीरज नहीं रहता। मैं रोता हूँ।

मैं एकदम शक्तिहीन बेहोश पड़ा हूँ। ऐं, एकाएक यह क्या? क्या यह मेरे रोगी दिमाग़की खराबी है? मुझे मालूम पड़ता है, जैसे कुछ आवाज़ सुनाई देती हो। नहीं—हाँ, हाँ, मुझे आदमियोंकी बोली और घोड़ेकी टापोंकी आवाज़ सुनाई देती है। मैं प्रायः चिल्ला उठता हूँ, मगर फिर मैं अपनेको रोकता हूँ। अगर वे तुर्क हुए, तो? हाँ, अगर वे तुर्क हुए तो कैसी बीतेगी? अभी तक जितना कष्ट है, उससे और न मालूम कितनी भयंकर पीड़ा वे लोग देंगे। इसके विचार-मात्रसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वे मेरी ज़ख़्मी टाँगकी खाल उधेड़ कर भूनेंगे, मगर अगर इतना ही हो तब भी ग़नीमत है, वे सब बड़े बेढब हैं, न मालूम क्या-क्या करेंगे। क्या यहाँ पड़े-पड़े मरनेकी अपेक्षा उनके हाथों मरना अच्छा न होगा?

मगर, यदि वे अपने हों? आह, यह कमबख्त झाड़ियाँ

मुझे चारों ओरसे क्यों घेरे हैं ? मैं इनके मारे कुछ देख भी नहीं सकता। केवल एक जगहसे, जहाँ डालियोंमें थोड़ीसी साँस है, मुझे दूरकी एक छोटी घाटी दिखाई देती है। इसमें एक चश्मा है, जहाँ हम लोगोंने लड़ाईके पहले पानी पिया था। हाँ, वहीं चश्मेपर पुलका काम देनेके लिए एक बड़े भारी पत्थरकी पटिया आरपार रखी है। उनके घोड़े उस पटियापर होकर ज़रूर ही निकलेंगे। अब तो आवाज़ भी धीमी पड़ गई। मैं पहचान नहीं सकता कि वे कौन भाषा बोल रहे हैं। हे ईश्वर, क्या मेरे कान भी खता करने लगे। यदि वे हमारे ही लोग हैं—मैं चिल्लाऊँगा। चश्मेके पाससे भी वे मेरी पुकार सुन लेंगे। लुटेरे बद्दुओंके हाथमें पड़नेकी बनिस्बत इन तुर्क सिपाहियोंके हाथमें पड़ना अच्छा है।

उन्हें आनेमें देर क्यों हो रही है ? मैं तो इन्तज़ारके मारे परेशान हूँ। मुझे अब बदबू भी नहीं मालूम होती, यद्यपि वह जैसी-की-तैसी बनी है।

एकाएक चश्मेके पुलपर पठान सवार दिखाई देते हैं। खाकी वर्दियाँ, झब्बेदार कुलाह और भाले—सब दिखाई देते हैं। वे लगभग आधा दस्ता हैं। आगे-आगे एक काली दाढ़ीवाला अफ़सर अपने शानदार घोड़ेपर सवार आ रहा है। जैसे ही उसने झरनेको पार किया, वैसे ही उसने अपनी ज़ीनपर पीछेकी ओर घूमकर फ़ौजी हुक्म दिया—

"ट्रॉट मार्च।" (दुलकी चलो)

"रुको, रुको, ईश्वरके लिए मुझे बचाओ! भाई, मुझे बचाओ!"—मैं चिल्लाया।

पर घोड़ोंकी टापोंकी आवाज़, तलवारोंकी खड़खड़ाहट, और पठानोंकी गुलगपाड़ेकी बातचीतके हल्ले-गुल्लेमें मेरी रूखी आवाज़ डूब गई। वे मेरी पुकार नहीं सुनते। हायरे बदक़िस्मती! मेरी तमाम ताक़त खतम हो गई, मैं ज़मीनमें मुँह छिपाकर रोता हूँ। बोतल उलट गई उससे पानी बहने लगा। पानी—जो इस समय मेरा जीवन है, मेरी मुक्तिका एकमात्र साधन है और मौतसे बचनेका एकमात्र सहारा है—बहा जा रहा है, और मैं उसे देखता ही नहीं हूँ! मैंने तब देखा, जब केवल आधा गिलास बचा होगा, बाकी सब सूखी—प्यासी—मिट्टीने सोख लिया।

इस भयावनी घटनाके बाद मेरे ऊपर जो बेसुधी छाई, उसका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ! मैं एकदम निश्चेष्ट अर्धनिमीलित आँखोंसे पड़ा हूँ। हवा बराबर रुख बदल रही है। कभी एकदम साफ़ ताज़ी हवाका झोंका आ जाता है और कभी सड़ी बदबूकी लपट। मेरे पड़ोसीकी दशा आज दिन ऐसी भयानक हो गई है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। अब उसका चेहरा बाक़ी नहीं है! हड्डी परसे मांस सब ग़ायब हो गया। अब उसके मांसहीन दाँत निकले हुए चेहरेपर एक भयंकर स्थायी हँसी मालूम होती है। यद्यपि मैंने पहले भी कई नर-मुंडोंको अपने हाथमें लिया है। उन्हें अच्छी तरह देखा है, मगर इसकी इस भयंकर हँसीसे मैं भयभीत हो रहा हूँ। मैंने कंकाल भी देखे हैं, मगर, चमकदार बटनवाली फ़ौजी वर्दी पहने हुए कंकालको देखकर शरीर काँप उठता है। मैंने मनमें विचार किया—"युद्ध इसीका नाम है! और यह लाश उसका चिह्न है!"

सूर्य बड़ी तेज़ीसे तप रहा है। मेरे हाथ और चेहरा बहुत पहले ही झुलस चुके हैं। मैंने जितना पानी बाकी था, एक-एक बूँद पी डाला। प्याससे मैं बेइन्तहा परेशान था। मैंने सोचा कि ज़रासा एक घूँट पानी पी लूँ किन्तु मुँहसे बोतल लगाते ही जितना पानी बाकी था, सब एक ही घूँटमें हो गया। हाय, जब पठान मेरे समीप थे, तब मैं क्यों नहीं चिल्लाया? अगर वे तुर्क भी होते, तो इससे तो अच्छा ही होता। तुर्क लोग घंटा दो घंटा मुझे तकलीफ दे लेते, मगर इस दशामें नहीं मालूम कितनी देर तक यहाँ पड़ा-पड़ा भोगा करूँगा।

माँ, मेरी प्यारी माँ! मेरी दशा सुनकर तुम अपने सफ़ेद बालोंको नोचोगी, छाती कूटोगी, दीवारसे अपना सिर पटकोगी। तुम उस घड़ीको कोसोगी, जिसमें तुमने मुझे जन्म दिया था। तुम इस कम्बख्त संसारको कोसोगी; जिसने

मनुष्य-जातिको पीड़ा पहुँचानेके लिए युद्धका आविष्कार किया है।

मगर तुम और मालती शायद कभी मेरे कष्टोंकी कथा न सुनोगी। मा, तुम्हें अन्तिम प्रणाम है, प्राणप्यारी पत्नी तुम्हें अन्तिम प्यार। हाय, यह सब कैसा कठोर, कैसा भयंकर है। मेरा कलेजा निकला पड़ता है।

फिर उसी सफेद छोटे कुत्तेका ध्यान आता है। दरबानमें रत्ती-भर भी दया नहीं थी। उसने उसका सर बड़े ज़ोरोंसे दीवारमें खींच मारा और उसे नालीमें—जहाँ कूड़ा-करकट फेंका जाता था—फेंक दिया, मगर उस समय भी वह जिन्दा था! वह दिन-भर वहीं पड़ा भोगता रहा, मगर मैं कैसा कमबख्त हूँ कि तीन दिनसे पड़ा भोग रहा हूँ! कल चौथा दिन होगा, फिर पांचवा, फिर छठा—। मौत तू कहाँ है? आकर मुझे ले जा।

मगर न मौत आती है और न मुझे ले जाती है। मैं यहाँ भयंकर धूपमें पड़ा हूँ। जलते हुए गलेको तर करनेके लिए एक घूँट पानी भी नहीं है। सड़ी हुई लाश भी अपनी छूत मुझ तक फैला रही है। अब तो वह सड़ायनका एक ढेर-मात्र है। कीड़ोंके झुंड-के-झुंड उससे चिपट रहे हैं। जब वे उसे पूरा खाकर खतम कर देंगे और हड्डी तथा वर्दीके सिवा और कुछ बाक़ी न रह जायगा, तब मेरा नम्बर आयगा। फिर मैं भी ऐसा ही हो जाऊँगा!

इसी तरह दिन बीतता है, रात बीतती है। हर चीज़ वैसी ही है, जैसी थी। सुबह होता है, मगर कोई अन्तर नहीं है। धीरे-धीरे दिन चढ़ता है, झाड़ियाँ हिलती हैं और एक दूसरेसे रगड़ती हैं। उनमेंसे ऐसी खरखराहटकी आवाज़ निकलती है, मानो वे कह रही हैं—"तुम मरोगे, तुम मरोगे, तुम मरोगे!"

सामनेकी झाड़ियाँ मानो उनका जवाब देती हैं—"तुम न देखोगी, तुम न देखोगी, तुम न देखोगी।"

"तुम उन्हें यहाँ न देख सकोगे।"—किसीने मेरे पास ज़ोरसे कहा।

मैं चौंककर होशमें आ गया।

हमारी फ़ौजका सूबेदार कीरतसिंह झाड़ियोंके बीचसे मुझे देख रहा है।

उसने पुकारकर कहा—"फाँवड़ेवालो, देखो यहाँपर भी दो मुर्दे हैं; एक हमारा, एक ग़नीमका।"

मैं चिल्लाकर कहना चाहता हूँ—"फाँवड़ेवालोंको मत बुलाओ, मुझे न दफ़नाओ, मैं अभी जिन्दा हूँ।" मगर मेरे सूखे होठोंसे एक कराहनेकी आवाज़के सिवा कुछ नहीं निकलता।

"हे भगवान, क्या यह मुमकिन है कि यह अब तक ज़िन्दा है। यह तो बहादुर सिंह है। यारो, जल्दी करो। ये हज़रत अभी ज़िन्दा हैं। डाक्टरको जल्द लाओ।"

एक ही क्षण बाद पानी, शराब और कुछ अन्य चीज़ें मेरे मुँहमें डाली जाती हैं, और फिर भी मुझे सब अंधेरा मालूम होता है।

स्ट्रेचर (डोली) के हिलने-डुलनेमें बड़ी सुरीली आवाज़ निकल रही है। इस आवाज़से मुझे आराम मालूम होता है। मैं एक क्षणमें जग उठता हूँ और दूसरे क्षण फिर बेहोश हो जाता हूँ। मेरे जख्मोंपर पट्टी बँधी है, इसलिए अब उनमें दर्द नहीं होता। मेरे शरीर-भरमें ऐसी प्रसन्नता छाई है, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

"रुको! उतरो! डोली-बरदारो, चलो! डोली उठाओ, और जाओ!" यह सब हुक्म हमारा रेडक्रास अफसर आत्माराम दे रहा है। आत्माराम दुबला, लम्बा और दयालु आदमी है। वह इतना लम्बा है कि यद्यपि मैं स्ट्रेचरमें लोगोंके कँधोंपर रखा हुआ चल रहा हूँ, फिर भी यदि मैं उनकी ओर दृष्टि फेरता हूँ, तो उसका सिर और कंधा दिखाई देता है।

"आत्माराम!"—मैंने धीरेसे कहा।

"क्या है दोस्त!"—आत्मारामने मेरी ओर झुककर कहा।

"आत्माराम, डाक्टरने तुमसे क्या कहा है? क्या मैं जल्द मर जाऊँगा?"

"बेवकूफ़ीकी बात है बहादुर सिंह। तुम मरोगे नहीं। तुम्हारी सब हड्डियाँ साबित हैं। तुम किस्मतवर हो, न तो तुम्हारी हड्डी ही टूटी है और न कोई खास रग ही फटी है, मगर ये साढ़े तीन दिन तुम ज़िन्दा कैसे रहे? तुमने क्या खाया?"

"कुछ नहीं।"

"और पानी?"

"मैंने तुर्ककी पानीकी बोतल ले ली थी। आत्माराम मैं अधिक बात नहीं कर सकता। बादमें—"

"बहुत अच्छा। ईश्वर तुम्हें आराम करे। अब तुम फिर सो जाओ।"

फिर नींद और बेहोशी।

डिवीज़नल अस्पतालमें मेरी नींद खुली। डाक्टर और नर्सें मुझे घेरे हुए हैं। डाक्टरोंमें मैं लाहौरके एक प्रसिद्ध सर्जनको पहचान सकता हूँ। वह मेरी टाँगोंके ऊपर झुका हुआ है। थोड़ी देरके लिए मेरी टाँगोंकी दुरुस्ती करके उसने मेरी ओर देखा और कहा—"तुम अपने सौभाग्यपर ईश्वरको धन्यवाद दो। हमें तुम्हारा एक पैर अलग कर देना पड़ा है, मगर यह कोई बात नहीं। क्या तुम अब बातचीत कर सकते हो?"

"हाँ।"

मैंने उन्हें सब पूरा क़िस्सा बताया, जिसे मैंने यहाँ लिखा है। *

* एक रशियन कहानी।

औद्योगिक स्वतन्त्रताके लिए ब्रिटिश मज़दूरोंका युद्ध

[लेखक :—श्री विलफ्रेड वेलॉक, एम० पी०]

(विशेषतः 'विशाल-भारत' के लिए)

संसारमें इधर-उधर जानेसे मुझे मालूम हुआ कि बहुतसे देशोंमें यह धारणा फैली हुई है कि आजकल ब्रिटिश मज़दूरोंको जो औद्योगिक स्वतन्त्रता प्राप्त है, वह उन्हें आसानीसे मिल गई है। लोग समझते हैं कि ब्रिटेनके पूँजीपति तथा अन्य लोग—जिनके हाथमें राजनैतिक और औद्योगिक शक्ति है—अन्य देशोंके इसी श्रेणीके लोगोंकी अपेक्षा अधिक उदार और समझदार हैं। मुझे तो इस बातमें बड़ा सन्देह है, मगर हाँ, इस बातमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आजकल इंग्लैण्डके मज़दूरोंको जो कुछ स्वतन्त्रता, जीवनका उच्च स्टैण्डर्ड और आर्थिक-सुरक्षा प्राप्त है, वह सब बड़ी लम्बी और कठोर लड़ाईके बाद—बड़े कड़ुवे संघर्ष और मनुष्योंको जितने प्रकारकी सज़ाएँ ज्ञात हैं, उन सबके भुगतनेके बाद मिले हैं।

अभी कुछ वर्ष पूर्व तक—जब तक अमेरिका इस विषयमें अग्रणी नहीं हुआ था—इस देशके मज़दूरोंके जीवनका स्टैण्डर्ड संसार-भरके देशोंके मज़दूरोंकी अपेक्षा ऊँचा था। ट्रेड यूनियनमें सम्मिलित होनेकी स्वतन्त्रता भी इस देशमें अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक प्राप्त थी, लेकिन उसके साथ यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि वर्तमान युगके औद्योगिकवाद या उद्योग-धंधोंको बहुत बड़े पैमानेपर चलानेमें ग्रेट-ब्रिटेन और सब राष्ट्रोंमें अग्रणी रहा है।

यदि कोई यह सोचता हो कि ब्रिटिश मज़दूरोंको उपर्युक्त अधिकार बिना कठिन लड़ाई-भिड़ाई ही के मिल गये हैं, तो वह बड़ी ग़लतीपर है। ट्रेड-यूनियनोंमें सम्मिलित होनेका क़ानूनी अधिकार अबसे सौ वर्ष पूर्व ही प्राप्त हो चुका था। यद्यपि ट्रेड-यूनियन बनानेका क़ानूनी अधिकार प्राप्त हो चुका था, फिर भी उस दिनसे आज तक देशमें एक भी ट्रेड-यूनियन ऐसी नहीं है, जिसे अपने

अस्तित्वके लिए भयंकर युद्ध न करना पड़ा हो; जिसे पूँजीपतियोंने अदालतों, अखबारों और पादरियोंकी सहायतासे अनेकों बार छिन्न-भिन्न न किया हो। यहाँ तक कि महान् शक्तिशाली ट्रेड-यूनियनोंको भी—जैसे इंग्लैण्डकी माइनर्स फेडरेशन, जिसके सदस्योंकी संख्या दस लाखसे अधिक है—हालमें अपने अस्तित्वके लिए भयंकर लड़ाई लड़नी पड़ी है। छोटी ट्रेड-यूनियनोंकी बात ही छोड़िये। उन बेचारियोंको अपना जीवन क़ायम रखनेमें बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण है मालिकोंकी धमकी और जीविका हरणकी नीति। ये दोनों प्रकारके अत्याचार देशमें सभी कहीं—इस ज़िलेमें भी, जहाँ बैठकर मैं यह लेख लिख रहा हूँ—प्रचलित हैं। इनमें वे ही मज़दूर विजय प्राप्त करते हैं, जिनमें अदम्य साहस और दृढ़ निश्चय तथा लगन है और जो अपने औद्योगिक पूर्वजोंके संघर्षोंसे भली-भाँति परिचित हैं।

इन महान् और ज्वलन्त संघर्षों तथा लड़ाइयोंमें एक बात बहुत मार्केकी और सन्तोषजनक है। वह यह कि इस युद्धके समस्त वीर योद्धा मज़दूर-श्रेणी ही के व्यक्ति थे। वे ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें दरिद्रता, अत्याचारों और सब प्रकारकी अन्य बुराइयोंका सामना करना पड़ा था, परन्तु जो स्वतन्त्रताके नामपर तथा अपने सिद्धान्तों और अधिकारोंकी रक्षाके लिए दृढ़ता-पूर्वक डटे रहे। आज देश-भरमें उनका नाम आदरसे लिया जाता है। प्रत्येक ट्रेड-यूनियनमें उसके निजी वीरताका इतिहास और अपने वीरोंकी सूची मौजूद है। उनकी वीरताका इतिहास ही ट्रेड-यूनियनोंकी आत्माको जीवित रखनेके लिए काफ़ी है। उनमेंसे कई एकका इतिहास तो देशके बाहर—विदेशोंमें भी प्रसिद्ध है।

अबसे एक सौ वर्ष पूर्व कोयलेकी खानोंके मज़दूर बारह शिलिंग प्रति सप्ताह मज़दूरी पाते थे। उन्हें दिनमें बारह घंटा काम करना पड़ता था। देशके कुछ भागोंमें—जैसे, डरहमका ज़िला—उन्हें सालाना ठेकेपर रहना पड़ता था। अर्थात् उन्हें किसी खास खानमें साल-भर तक लगातार काम करना पड़ता था, चाहे काम हो या न हो। उनकी मज़दूरीकी भी गारंटी नहीं की जाती थी। अबसे ठीक एक सौ वर्ष पूर्व, इस दशामें परिवर्तन करनेके लिए अनेकों हड़तालें हुईं। उन्हीं हड़तालोंके फल-स्वरूप मज़दूरोंमें संगठन हुआ और एक शक्तिशाली ट्रेड-यूनियन स्थापित हुई; परन्तु इस फलकी प्राप्तिमें मज़दूरोंसे जेलें भर गई थीं। उदाहरणके लिए, सन् १८३१ में टामी हेपबर्न नामक एक खानके मज़दूरने अत्यन्त साहस करके डरहम ज़िलेके खानोंमें मज़दूरोंका संगठन किया और कई बड़ी-बड़ी हड़तालें कराईं! अन्तमें वह अपने काममें सफल भी हुआ। प्रथम वर्षके आखिरमें उसकी ट्रेड-यूनियनके कोषमें ३२, ५८१ पौंड (लगभग ५ लाख रुपये) थे। यह रुपए यूनियनके सदस्योंने ६ आने प्रति सप्ताहके हिसाबसे चन्दा देकर एकत्रित किये थे। अब जुल्म आरम्भ हुए। खानोंके मालिकोंने ट्रेड यूनियनोंके सदस्योंको काम देनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने हड़ताल या झगड़ोंके समय विशेष पुलिसका बन्दोबस्त किया और हड़तालियोंकी हिम्मत तोड़नेके लिए सरकारसे फ़ौजें बुलाईं। इसके बाद नये-नये बहाने ढूँढ़कर अदालतोंकी मददसे ट्रेड यूनियनें कुचली गईं! अदालतोंके मैजिस्ट्रेट या तो स्वयं खानोंके मालिक थे, या ज़मींदार या उन लोगोंके मित्र, अतः खानोंके मालिकोंको उनकी सहायता प्राप्त करना मुश्किल नहीं था।

खानोंके मालिक मज़दूरोंको दबानेके लिए कैसे-कैसे उपायोंका अवलम्बन करते थे, यह बात लार्ड लन्दनडरीके—जो स्वयं कोयलोंकी खानोंके स्वामी थे—एक पत्रसे प्रत्यक्ष हो जायगी। यह पत्र उन्होंने सन् १८४४ की हड़तालके समय लिखा था।

उस पत्रमें लिखा था,—"अपने सीहैमके क़स्बेके तमाम व्यापारियों और दूकानदारोंको लार्ड लन्दनडरी एक बार पुनः चेतावनी देते हैं कि वे लोग हड़ताली मज़दूरों या ट्रेडयूनियनके सदस्योंको कोई चीज़ उधार न दें। लार्ड साहबके कारिन्दे और सरदार ऐसे मज़दूरोंकी पहचान करेंगे और फिर उन्हें

कभी लार्ड साहबकी खानोंमें काम न मिलेगा। दूकानदारोंको भी इस बातका नियम रखना चाहिए कि मज़दूरोंको उधार देनेवालोंसे लार्ड साहबके बड़े कारखानेमें, कोई भी सामान कभी न खरीदा जायगा और वे उन दूकानदारोंकी बिक्रीको हर तरहसे रोकेंगे।.......क्योंकि यह बात किसी प्रकार भी उचित या न्यायसंगत नहीं है कि लार्ड साहब ही के क़स्बेके दूकानदार इन मतवाले मज़दूरोंसे मिलकर इस पागलपनकी हड़तालको जारी रखें। दूकानदार मज़दूरोंकी मदद करके उनकी दुर्दशाको और भी बढ़ायेंगे, साथ ही उनके मालिकोंके साथ भी मूर्खतापूर्ण झगड़ा मोल लेंगे।''

यह धनिकोंकी तानाशाहीका एक उदाहरण है। अबसे लगभग सौ वर्ष पूर्व ऐसी बातें बहुत-साधारण थीं। हाँ, आजकल अवश्य ही कोई इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। उस समयकी उस बर्बर दशामें और आजकी दशामें जो अन्तर दिखाई देता है, उसका श्रेय ट्रेड-यूनियनके आन्दोलनकर्ताओंको है। इन आन्दोलनकारियोंने लार्ड लन्दनडरीके समान ज़मींदारों और खानके मालिकोंका सामना करनेके लिए न मालूम कितने अत्याचार और जेलें भोगीं थीं। इन्हीं सबका नतीजा है कि आज इंग्लैण्डके हाउस-आफ्-कामन्समें तीस सदस्य खानोंके मज़दूर हैं। उनके एक प्रधान आधुनिक नेता श्री राबर्ट स्माइलने हाल ही में पार्लमिन्टसे अवसर ग्रहण किया है।

सन् १८३४ में डेसेक्सके छै कृषि-मज़दूरोंपर जो ज़ुल्म हुए थे, उनका भी नमूना देखिये। ये छै मज़दूर 'टॉलपुडलके शहीद' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इस देशके मज़दूरोंमें आज तक उनकी स्मृति पवित्र मानी जाती है। इस देशकी कृषिके इतिहासमें उनकी कथा सबसे अधिक करुणाजनक है। इस कथासे यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि सौ वर्ष पूर्व इन मज़दूरोंको उनका उचित वेतन न मिलने देनेके लिए तत्कालीन ज़मींदारों और मैजिस्ट्रेटोंने कैसा षड्यन्त्र रचा था। टॉलपुडलके मज़दूरोंने अपनी ही श्रेणीके एक नेता जार्ज लवलेसके नेतृत्वमें ज़मींदारों और किसानोंसे प्रार्थना की कि उनकी मज़दूरी बढ़ा दी जाय। इसपर मज़दूरों और उनके मालिकोंमें, गांवके समस्त लोगोंके सामने, यह समझौता हो गया कि पड़ोसके ज़िलेमें जो मज़दूरी मिलती है, इन मज़दूरोंको भी वही मिलेगी। इस समझौतेके अनुसार मज़दूरोंकी मज़दूरी ६ शिलिंग प्रति सप्ताहसे बढ़कर १० शिलिंग प्रतिसप्ताह होनी चाहिये थी, परन्तु मालिकोंने अपना वचन भंग कर दिया। यही नहीं, बल्कि उल्टे उन्होंने मज़दूरी घटाकर ८ शिलिंग प्रति सप्ताह कर दी। इसपर स्थानीय मैजिस्ट्रेटोंके सभापतिसे अपील की गई। मैजिस्ट्रेट साहबने फ़ैसला किया कि मज़दूरोंको उतनी ही मज़दूरी पर काम करना चाहिए, जितनी उनके मालिक देनेको राज़ी हों! जिस शख्शने पहले उन्हें सहायता देनेका वादा किया था, वही अब उनके खिलाफ हो गया। मालिकोंने मज़दूरी और भी घटाकर ७ शिलिंग प्रतिसप्ताह कर दी। इसके बाद कैसी बीती, उसका वर्णन लवलेसके, जो वेसलेयनका पादरी और बड़ी हिम्मतका आदमी था, ही शब्दोंमें सुन लीजिए :—''मज़दूरोंने अब यह सलाह की कि इस दशामें क्या करना चाहिए, क्योंकि वे जानते थे कि इतनी थोड़ी मज़दूरीमें कोई भी व्यक्ति ईमानदारीसे गुज़र नहीं कर सकता। मैंने समय-समयपर औद्योगिक समितियों (ट्रेड यूनियन) के वृत्तान्त सुने थे, वे मैंने उन्हें कह सुनाये। वे लोग इस प्रकारकी समिति बनानेके लिए प्रसन्नतासे राज़ी हो गये। उस समय तो कुछ नहीं हुआ, परन्तु २१ फरवरी सन् १८३४ को मैजिस्ट्रेटकी ओरसे जगह-जगह नोटिस चिपकाये गये कि जो कोई उस यूनियनमें शामिल होगा, उसे सात वर्ष काले पानीकी सज़ा होगी!''

कुछ सप्ताह बाद जार्ज लवलेस और उसके पांच साथी गिरफ्तार कर लिए गये। अब इस बातकी कोशिश होने लगी कि वे सब एक दूसरेके खिलाफ़ गवाही दें, मगर यह चेष्टा व्यर्थ हुई। उनके चाल-चलनके विरुद्ध

कुछ भी सबूत न मिल सका, बल्कि उल्टा यह सिद्ध हो गया कि वे लोग ईमानदार व्यक्ति हैं; मगर जज साहबने फ़ैसला दिया कि—"यदि इस प्रकारकी समितियाँ क़ायम रहेंगी, तो वे मालिकोंका सत्यानाश कर देंगी और देशके व्यापार तथा सम्पत्तिको चौपट कर देंगी।"

मगर यूनियन पूरी तौरसे क़ानूनकी सीमाके भीतर थी। इसलिए जज साहबने फरमाया कि उन लोगोंपर बगावतका मुक़द्दमा चलाया जाय। जार्ज लवलेसने अपने वीरतापूर्ण बयानमें कहा था—"माईलार्ड, हम लोगोंने यदि कोई क़ानून भंग किया है, तो वह जान-बूझकर नहीं किया है। हमने किसी भी व्यक्तिके नाम, चरित्र, सम्पत्ति या देहको कोई हानि नहीं पहुँचाई है। हम लोगोंने केवल अपनी और अपने स्त्री-बच्चोंकी रक्षाके लिए एका किया है।"

मगर ज़मींदारोंकी एक तुच्छ जूरीने उन्हें दोषी बतलाया, और जज साहबने फरमाया—तुम लोगोंने कोई जुर्म नहीं किया है और न मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि तुम लोगोंका इरादा जुर्म करनेका था, मगर इसलिए कि जिसमें औरोंको सबक मिले, मैं यह अपना कर्तव्य समझता हूँ कि तुम लोगोंमेंसे हर एकको सात-सात वर्ष निर्वासनकी सज़ा दूँ।"

उन लोगोंको हथकड़ियाँ पहना दी गई और पोर्ट्समाउथमें ले जाकर वे जहाज़पर लाद दिये गये। इन लोगोंकी सज़ासे उस समयसे सब भले आदमी सिहर उठे थे। उस समय प्रधान मंत्री लार्ड मेलबोर्नके हाथमें गवर्मेन्टका शासन-सूत्र था। पहले तो गवर्मेन्ट निश्चल रही। 'लंदन-टाइम्स' ने यह कहकर कि मज़दूरोंका संगठन एक खासी बला हो रही है, जजकी करतूतका समर्थन किया, परन्तु अन्तमें लोकमतके दबावसे सरकारको झुकना पड़ा, और लवलेस उसके साथी पुनः इंग्लैन्ड लाये गये। फिर भी वे सन् १८३७ से पहले घर नहीं पहुँच सके। आज़ादीका सिपाही लवलेस किस मिट्टीका बना था, यह बात उसकी निम्न-लिखित पंक्तियोंसे जो उसने सज़ा पानेके बाद जेल जाते समय उपस्थित भीड़को सम्बोधित करके कही थीं, प्रकट होती है।

God is our guide ! no swords we draw,
We kindle not war's battle fires ;
By reason, union. justice, law
We claim the birthright of our sires,
We raise the watchword liberty,
We will, we will, we will be free."

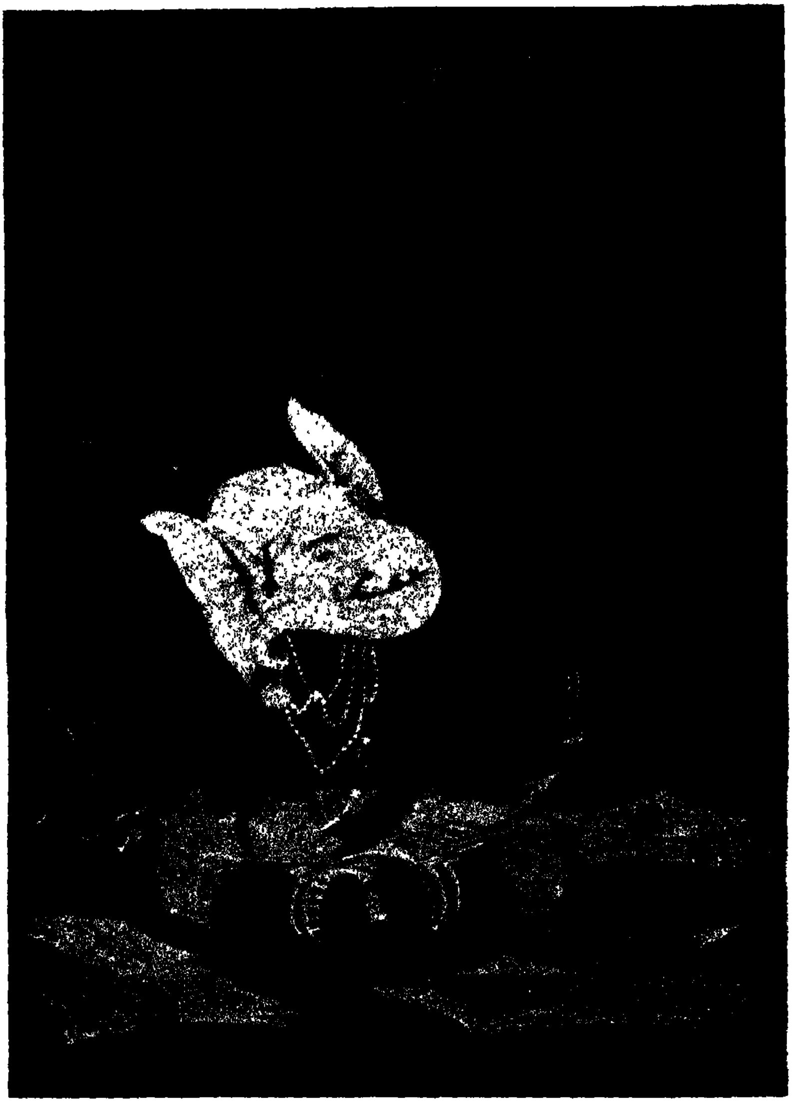
अर्थात्—

ईश हमारा पथ-दर्शक है! नहीं खींचते हम तलवार।
हम सुलगाते नहीं युद्धकी नाशक लपटें धूँआधार॥
तर्क, एकता, न्याय नियम ही है अपना केवल आधार।
जिनके द्वारा हम पुरखोंका लेंगे जन्मसिद्ध अधिकार॥
हम 'स्वतन्त्रता'का करते हैं, भैरव-रव गम्भीर-निनाद।
होंगे, होंगे हम अवश्य ही, होंगे पृथ्वी पर आज़ाद॥

ऐसे ही तरीक़ोंसे मज़दूर संघोंका निर्माण हुआ है। जब तक ऐसे दृढ़ पुरुष उपलब्ध होते हैं, तभी तक स्वतंत्रता सुरक्षित रहती है। स्वतंत्रताके लिए अविश्रान्त चौकसीकी आवश्यकता है।

कुछ महीने पूर्व इंग्लैण्डकी ट्रेड-यूनियन कांग्रेसका इकसठवाँ अधिवेशन बेल्फास्टमें हुआ था। कांग्रेसमें छह सौ प्रतिनिधि पधारे थे, जो चालीस लाख सदस्योंके प्रतिनिधि थे। अबसे ३६ वर्ष पूर्व भी बेल्फास्टमें इस कांग्रेसका अधिवेशन हुआ था, परन्तु उस समय सदस्योंकी संख्या नौ लाख ही थी।

सन् १८२४ में पहले-पहल ट्रेड यूनियन-सम्बन्धी क़ानूनका बना था। उस समय मज़दूरोंको अपना संगठन करने और उसके लिए चन्दा एकत्रित करनेका अधिकार प्राप्त हुआ था। उससे पहले जो लोग मज़दूरोंकी दशा सुधारनेका आन्दोलन करते थे, उन्हें षड्यन्त्रकारी कहकर सज़ा दे दी जाती थी। मसलन सन् १८३५ की १२ वीं अप्रेलको ठेकेपर काम करनेवाले नौ दर्ज़ियोंपर ओल्ड बेलीकी अदालतमें मुक़द्दमा चलाया गया था। उनपर यह जुर्म लगाया गया कि उन्होंने षड्यन्त्र करके 'अपना वेतन बढ़वाने और



श्री गणेशजी

('महाभारत' लिख रहे हैं)

[चित्रकार—स्व० सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय

कामके घंटे कम करानेकी कोशिश की।' बस, इसी जुर्मपर उन्हें दंडित करके न्यूगेट-जेलको भेज दिया गया था!

ट्रेड-यूनियनके नियमोंमें तबसे समय-समयपर भिन्न-भिन्न उन्नतियां होती रहीं। जैसे सन् १६१३ में एक क़ानून बनाया गया, जिससे ट्रेड-यूनियनोंको इस बातका अधिकार प्राप्त हुआ कि वे अपने फंडको राजनैतिक बातोंमें—जैसे, पार्लामेंटके चुनावके लिए सदस्योंको खड़ा करने या राजनैतिक साहित्य उत्पन्न करने आदिमें—व्यय कर सकती हैं, मगर उसमें शर्त यह है कि यूनियनके अधिकांश सदस्य उसके लिए राज़ी हों।

आजकलके मज़दूर दिनमें आठ घंटा काम करते हैं और पहलेकी अपेक्षा कहीं ऊँचा वेतन पाते हैं। उनकी नौकरी भी पहलेकी अपेक्षा सुरक्षित है। मगर हमें यह याद रखना चाहिए कि उनकी इन तमाम सुविधाओंके लिए, अनेक वीरात्माओंको बड़ी मँहगी क़ीमत देनी पड़ी है।

पटियाला-नरेशके विरुद्ध भयंकर दोषारोपण

[लेखक :—श्री ब्रजमोहन वर्मा]

हम लोग—ब्रिटिश-भारत-निवासी—एक पराधीन जाति हैं। आजकल समस्त भारतीय अपनी पराधीनता और गुलामीका रोना रो रहे हैं। हिमालयसे कुमारी अन्तरीप तक सभी हिन्दुस्तानी अपनी बेबसीको महसूस करके आज़ादीके लिए आवाज़ उठा रहे हैं। जब हम लोगोंकी दशा ऐसी करुणाजनक हो रही है, तब हमारे देशी राज्योंकी मूक प्रजाकी दशा कैसी करुणाजनक होगी, इसका अनुमान आसानीसे किया जा सकता है।

संसारमें आजकल बीसवीं सदी है। चारों ओर ज्ञान-विज्ञानका उजाला है, सहिष्णुता एवं भ्रातृत्व-भावका प्रसार है और लोक-तन्त्रवाद—डिमाक्रेसी—का दौर-दौरा है। दुनियाँसे शख्सी हुकूमत निःशेष-प्राय हो चुकी है—पृथ्वीके परदेसे राज-तन्त्रवाद धीरे-धीरे उड़ा जा रहा है। ज़ारशाही और क़ैसरी सल्तनत अब इतिहासके पृष्ठोंपर ही देखनेको मिल सकती है, परन्तु इस नये ज़मानेमें, जनसत्तावादके इस नवीन युगमें भी, भारतीय रियासतोंमें अब तक सत्रहवीं शताब्दी ही बनी हुई है। इन रियासतोंके निवासियोंको अब भी नादिरशाहीका सामना करना पड़ता है। वहाँ अब तक कभी-कभी तैमूरी हुकूमतकी पुनरावृत्ति होती रहती है।

हमारी देशी रियासतोंके अनेक नरेश उच्छृंखल, असहिष्णु, अन्यायी और चरित्रहीन हैं। उनमेंसे अनेकोंकी क्रूरताके वृत्तान्त सुनकर मनुष्यता सिहर उठेगी। श्री पी० एल० चदगरकी पुस्तक 'ब्रिटिश संरक्षणमें भारतीय राज्य' की भूमिकामें कर्नल वेजवुडने लिखा है :—

''भारतका यह भाग अठ्ठारहवीं शताब्दीके जर्मनीके समान है। यहाँ एक ओर अनेक छोटे-छोटे रजवाड़े हैं, जिन्हें अबाधित अधिकार प्राप्त हैं और दूसरी ओर कष्टसहिष्णु किसान हैं। ग्रेट-ब्रिटेनकी शक्तिशाली भुजाएं इन रजवाड़ोंकी रक्षा करती हैं और उन्हें अक्षुण्ण रखती हैं। फल यह है कि उन्होंने सदाके लिए गुलामी स्थापित कर रखी है, जो वर्तमान लोक-तन्त्रवादके लिए बड़ा भारी कलंक है।''

इन देशी नरेशोंके अत्याचारोंकी कथाएं कभी-कभी ब्रिटिश भारतके समाचारपत्रोंमें प्रकाश पा जाती हैं। रियासतके निवासी खुल्लमखुल्ला इन अत्याचारोंका विरोध नहीं कर सकते। यदि वे अपने अत्याचारी प्रभुओंके विरुद्ध ज़बान हिलायें, तो उनके जान-मालकी खैर नहीं। वे बेचारे, जहाँ तक मनुष्यसे सम्भव है वहाँ तक, ज़ुल्मोंको चुपचाप सहते रहते हैं, परन्तु जब अमानुषिकता सहिष्णुताकी सीमाको पार कर जाती है, तब वे भी जानको हथेलीपर रखकर अपने



पटियाला-नरेश हिज हाइनेस महाराजा भूपेन्द्रसिंह
(जिनके विरुद्ध भयंकर इल्ज़ाम लगाये गये हैं)



डाक्टर बख्शीशसिंह
(कहा जाता है कि ये महाराज पटियालाके बम फैक्टरीके इन्चार्ज थे और इनकी स्त्री विचित्र कुँवरको महाराजने लापता कर दिया)

मालिकोंकी खुल्लमखुल्ला शिकायत करनेके लिए मजबूर होते हैं। अभी हालमें पटियाला राज्यकी प्रजाके कुछ साहसी व्यक्तियोंने पटियाला-नरेशके अत्याचारोंके विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। पटियालाके दस आदमियोंने वायसरायके पास एक मेमोरियल भेजकर अपने कष्टोंको निवेदन किया था।

मामूली तौरसे इस प्रकारके प्रार्थनापत्रोंपर ब्रिटिश सरकार बहुत कम ध्यान देती है, और यदि वह कभी ध्यान भी देती है, तो उसकी मशीन बहुत धीमी चलती है। उसे कोई कार्रवाई करनेमें महीनों और वर्षों लग जाते हैं। अन्तमें पटियाला-नरेशके विरुद्ध लगाये गये इल्ज़ामोंकी जाँचके लिए 'भारतीय रियासती प्रजा-कान्फ्रेन्स' ने एक कमेटी नियत की। कमेटीने हाल ही में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। रिपोर्टमें पटियाला नरेशके अत्याचारोंका ऐसा रोमांचकारी वर्णन है कि जिसे पढ़कर क्रूरसे क्रूर मनुष्यका भी कलेजा काँप उठेगा।

जाँच-कमेटीमें निम्न-लिखित सज्जन थे :—

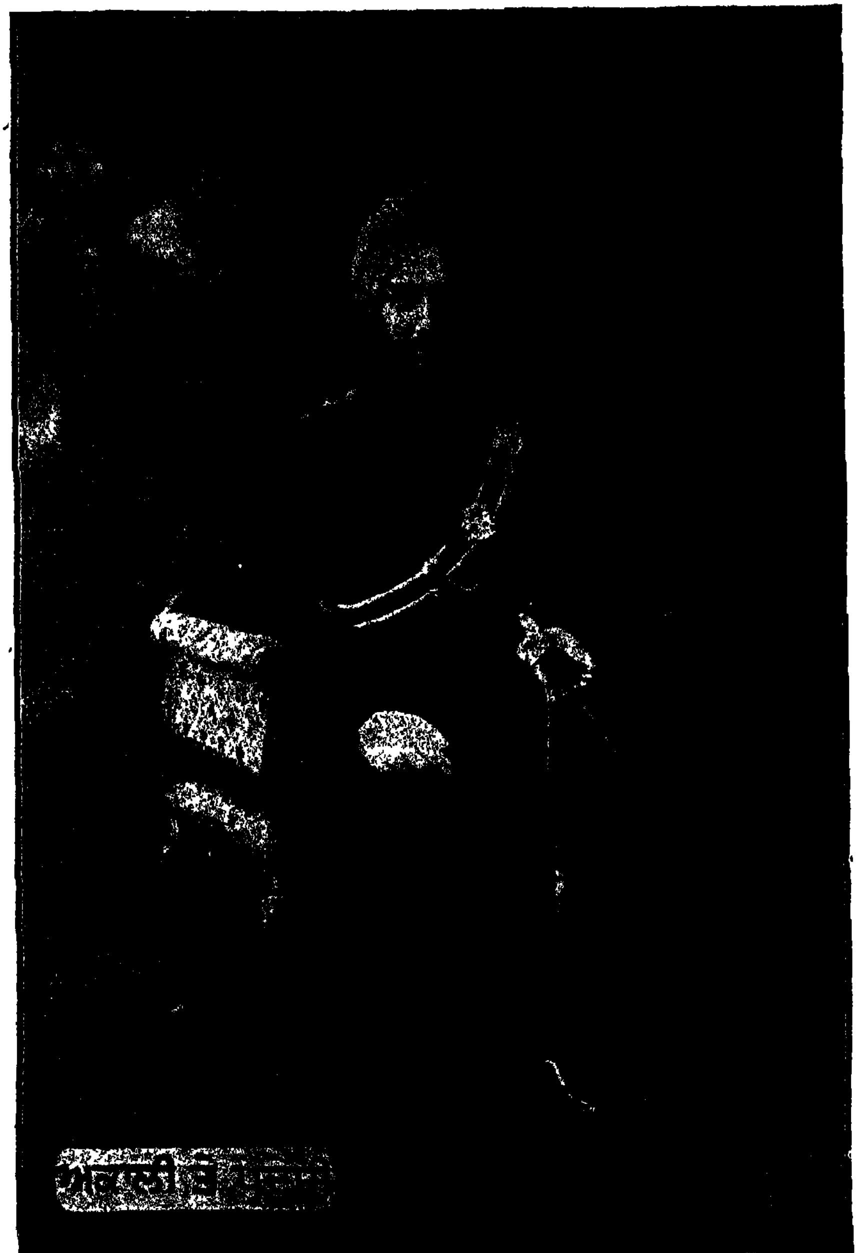
१. श्री अमृतलाल वी० ठक्कर, मेम्बर सर्वेन्ट-आफ़ इंडिया सोसाइटी, सभापति भील-सेवा-मंडल, भूतपूर्व सभापति काठियावाड़-स्टेट-पीपुल-कान्फ्रेन्स, भूतपूर्व सभापति भावनगर-स्टेट-पीपुल-कान्फ्रेन्स।

२. श्री लक्ष्मीदास रावजी तैयरसी, मेम्बर बम्बई-कार्पोरेशन, भूतपूर्व सभापति कच्छ-स्टेट-पीपुल-कान्फ्रेन्स, भूतपूर्व सभापति इंडियन मरचेन्ट-चेम्बर ऐण्ड ब्यूरो।

३. श्री अमृतलाल डी० शेठ, भूतपूर्व मेम्बर बम्बई-लेजिस्लेटिव कौन्सिल, सम्पादक 'सौराष्ट्र', सभापति राजपूताना-स्टेट्स्-पीपुलस्-कान्फ्रेन्स, सभापति धांधुका-ताल्लुका-बोर्ड।

४. प्रोफेसर जी० आर० अभयंकर, पूना-कालेजके कान्स्टी-ट्यूशनल लाके प्रोफेसर, प्रधान मन्त्री इंडियन स्टेट्स्-पीपुलस् कान्फ्रेन्स, भूतपूर्व सभापति दक्षिण-स्टेट्स-पीपुलस्-कान्फ्रेन्स, सभापति मिराज-स्टेट-पीपुलस् कान्फ्रेंस।

कमेटीके सब सदस्य देशके गणमान्य कार्यकर्ता हैं। उनके चरित्र, ईमानदारी और सदाशयताके विरुद्ध कोई एक अक्षर भी नहीं कह सकता।



सरदार नानकसिंह, पटियालाके भूतपूर्व सी० आई० डी० सुपरिन्टेन्डेन्ट
(जो आजकल लालसिंहके हत्याके सम्बन्धमें जेलमें सड़ रहे हैं)

"कमेटीके सदस्योंमेंसे कोई भी पटियाला राज्यका रहनेवाला नहीं है। उनमेंसे किसीका कोई मित्र या रिश्तेदार भी पटियालाका निवासी नहीं है, और न वे पटियालाके किसी निवासी या स्वयं महाराजको ही जानते हैं। उन्होंने बिलकुल निःस्वार्थ भावसे प्रेरित होकर ही यह काम किया है।"

कमेटीके उपर्युक्त कथनसे यह बात निर्विवाद हो जाती है कि कमेटीके सदस्योंको पटियाला-नरेशसे कोई शत्रुता नहीं थी, और उन्हें बदनाम करनेमें उनका कोई स्वार्थ भी नहीं था।

कमेटीकी रिपोर्ट और गवाहोंके बयानोंमें ऐसी भयंकर घटनाएँ वर्णित हैं, जिनके आगे नरक या अहन्नुमके दृश्य भी मलिन पड़ जायँगे। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ये घटनाएँ सत्य हैं? कमेटीके सामने बयान और गवाही देनेवाले व्यक्ति मामूली औसत दर्जेकी समझके भारतीय हैं। उनमें कोई विशेष प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति नहीं है। यदि ये घटनाएँ बिलकुल झूठ या केवल कोरी कल्पना मात्र हैं, तो उनके आविष्कारके लिए असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्कोंकी ज़रूरत है, परन्तु इन ग्रामीण गवाहोंमें उस प्रतिभाका कहीं नामोनिशान भी नहीं मालूम पड़ता।

कमेटीकी जाँच एक तरफा है। गवाहोंसे जिरह किये बिना उनके लगाये हुए आक्षेपोंका सत्यासत्य निर्णय नहीं किया जा सका, और जांच कमेटीमें दूसरा पक्ष—पटियाला-नरेशका पक्ष—उपस्थित नहीं था। इसलिए कमेटीने लिखा है—"अधिकसे अधिक हमारी जाँचके सम्बन्धमें यह बात कही जा सकती है कि यह जाँच पुलिसकी तहकीक़ातके समान है। किसी साधारण व्यक्तिके खिलाफ़ यदि कोई दोष लगाया जाता है, तो पुलिस अपराधीकी अनुपस्थिति ही में जाँच कर लेती है, और यदि उसे अपनी जाँचमें ऐसा सबूत मिल जाता है जिससे प्रथम दृष्टिमें मुक़दमा सत्य-सा दिखाई दे, तो वह मैजिस्ट्रेटी तहक़ीक़ातके लिए मुक़दमेका चालान कर देती है। तब मैजिस्ट्रेट बाक़ायदा तहक़ीक़ात करता है। हमारी स्थिति भी ठीक इसी प्रकारकी है। हमारे पास पटियाला-नरेशके खिलाफ शिकायत आई। हमने महाराजकी अनुपस्थितिमें जाँच की और फल-स्वरूप उनके विरुद्ध लगाये गये इल्ज़ामोंपर अपनी सम्मति प्रकट करते हैं।

"वायसरायको भेजे-गये मेमोरियलमें वर्णन किया-हुआ एक भी इल्ज़ाम ऐसा नहीं है, जिसे हम लोगोंने ग़लत या द्वेषपूर्ण पाया हो। स्वभावतः हमारा क्षेत्र बहुत संकुचित था, परन्तु उस संकुचित क्षेत्रमें भी जो कुछ हमें मिला, वह सब मेमोरियलके इल्ज़ामोंका समर्थन करता है। सच तो यह है कि कुछ बातोंमें हमें जो मसाला प्राप्त हुआ है, वह अन्तिम फ़ैसला देनेके लिए भी काफ़ी है।"

कमेटीके सामने महाराज पटियालाके खिलाफ निम्न-लिखित बारह इल्ज़ाम लगाये गये हैं—

१ लालसिंहकी हत्या।

२ पटियाला राज्यके बहादुरगढ़ नामक क़िलेमें बम-फैक्टरी खोलना और चलाना।

३ बिचित्र कुँवर, उसके पुत्र और कन्याका गायब करना।

४ सरदार अमरसिंहकी स्त्रीको रखना और नहीं छोड़ना।

५ सरदार हरचन्द सिंहको ग़ैरक़ानूनी तरीक़ेसे गिरफ्तार करके क़ैद करना और उनकी बीस लाख रुपयेकी जायदाद ज़ब्त कर लेना।

६ झूठे मुक़दमे बनाना।

७ अमानुषिक अत्याचार, ग़ैरक़ानूनी गिरफ्तारियाँ और सज़ाएं तथा सम्पत्तिकी मनमानी ज़ब्ती।

८ महाराजके शिकारका सत्यानाशी फल।

९ बेगार और रसदके अत्याचार।

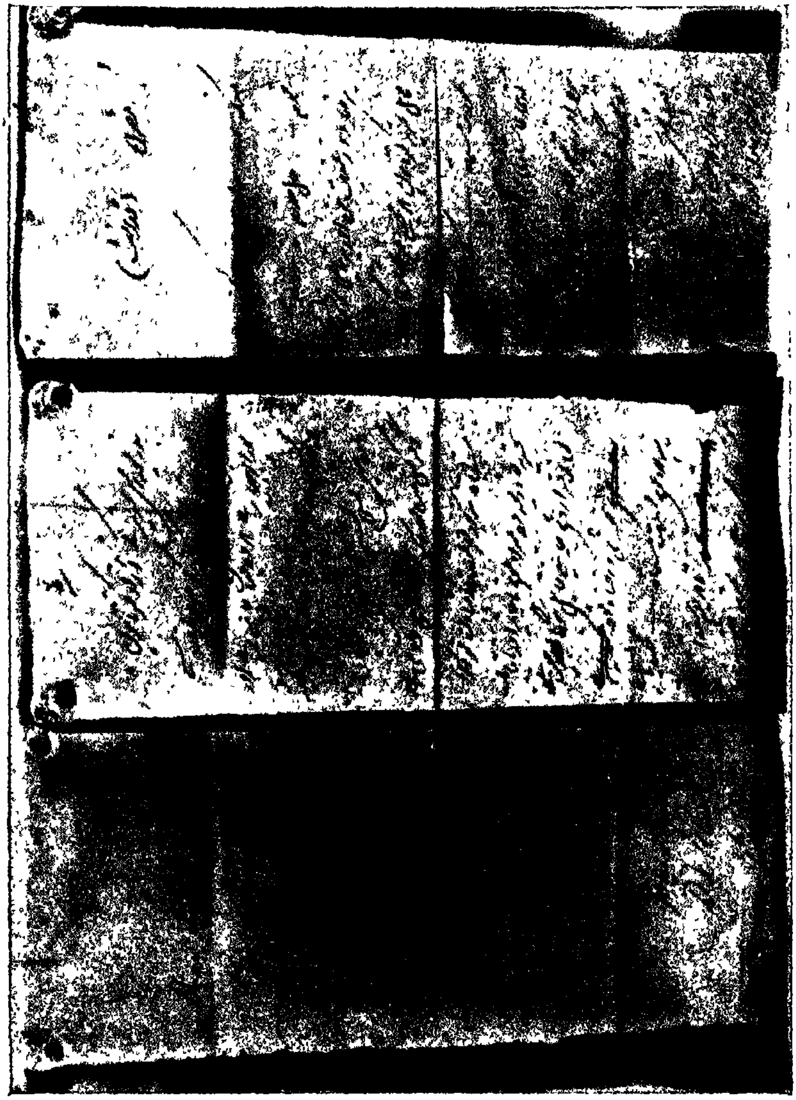
१० वार-लोनके रुपयेका न लौटाना।

११ मालगुज़ारी और आबपाशीकी शिकायतें।

१२ पब्लिक कामोंके लिए एकत्र किये-गये धनका ग़बन।

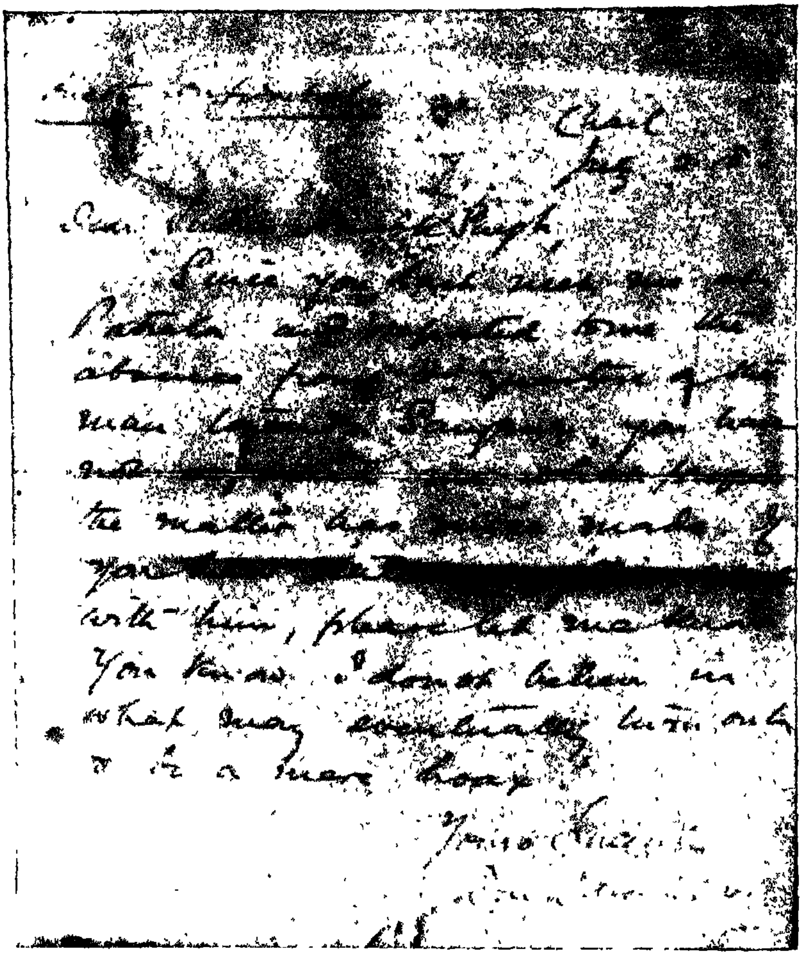
इनमें पहला इल्ज़ाम—लालसिंहकी हत्या—बड़ा भयानक है। इसके सम्बन्धमें रिपोर्टमें लिखा है—

"सरदार लालसिंहने, जो महाराजके चचेरे ससुर थे, एक



तलाकनामा

(कहा जाता है कि इस पर ज्याफिआन कौनने अपने हाथसे लिखकर नार्लसिंहने दिखानेके लिए दिया था)



मर दयाकिशन कौलका पत्र—सरदार नानकसिंहके नाम
(कहा जाता है कि यह पत्र लालसिंहके ख़ूनके सम्बन्धमें लिखा गया था)

सुन्दरी स्त्री—दिलीप कुंवर—से विवाह किया। महाराजने उस स्त्रीको देखा और कि प्रेममें फँसकर उसे महलोंमें रख लिया। महाराजने भरसक सरदार लालसिंहपर इस बातका दबाव डाला कि वह अपनी पत्नीको तलाक़ दे दे, मगर लालसिंहने इनकार कर दिया। इस बीचमें वह स्त्री बराबर महलोंमें रही और महाराजसे उसके दो कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं। उसे केवल एक या दो बार अपने पतिसे भेंट करनेकी इजाज़त दी गई। फिर महाराजने उससे गुप्त रूपसे विवाह कर लिया। लालसिंहने अब ब्रिटिश सरकारके पास पहुँचनेका इरादा किया। इससे महाराज एकदम घबरा गये। उन्होंने अपने सी० आई० डी० के सुपरिन्टेन्डेन्ट सरदार नानकसिंहसे लालसिंहको ख़तम कर देनेके लिए कहा, और इस कामके लिए उन्हें रुपया भी दिया। चूंकि नानकसिंह इस कामको पूरा नहीं कर सके, इसलिए शीघ्र ही यमदूतसिंह नामक एक बदनाम निर्वासितकी सेवाएँ प्राप्त की गईं। ऐसा प्रकट होता है कि इस बातका प्रबन्ध किया गया था कि हत्या उस समय की जाय, जब महाराज विलायतमें हों। फिर हत्याका प्लाट रचा गया, और एक

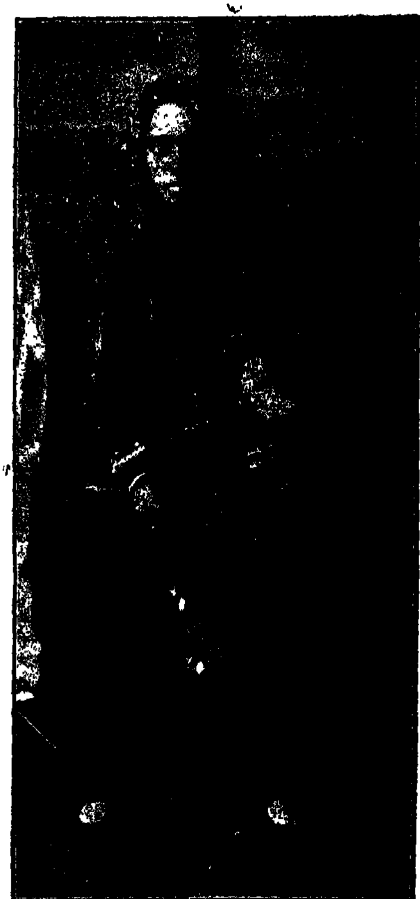
असफल प्रयत्नके बाद सरदार लालसिंहका खूनकर डाला गया, जब इस हत्याकी खबर विलायतमें महाराजके पास पहुँची तब उन्होंने अपने आदमियोंको ग्यारह सौ रुपयेके उपहार भेंट किये। कुछ समय बिता देनेके बाद महाराजने दिलीप कुँवरसे खुल्लमखुल्ला विवाह कर लिया और आजकल यही स्त्री हर हाईनेस दि महारानी दिलीप कुँवर कही जाती है।"

रिपोर्टमें इस इल्ज़ामके समर्थनमें गवाहियाँ और बयान दर्ज हैं। इस खूनके सम्बन्धमें सरदार नानकसिंह, यमदूरसिंह तथा अन्य व्यक्तियोंको सज़ाएँ मिली थीं, मगर "यमदूरसिंह छोड़ दिया गया और उसे अपनी सम्पत्ति भोगनेकी इजाज़त मिल गई। बादमें वह पटियालामें महाराजका प्रियपात्र हो रहा है।" सर दयाकिशन कौल उस समय पटियालाके दीवान थे। सरदार नानकसिंहने वायसरायके पास जो मेमोरियल भेजा है, उसमें लिखा है—"इस प्रार्थीके पास ऐसी चिट्ठी-पत्री मौजूद थी, जिससे लालसिंहकी हत्याके सम्बन्धमें सर दयाकिशन कौल और हिज़ हाइनेस (पटियाला-नरेश) दोनों ही पर दोषारोपण हो सकता था। इस बातसे डरकर कि प्रार्थी कहीं उसको पब्लिकमें प्रकाशित न कर दे, (उन्होंने यह) इन्तज़ाम किया कि आपके (इस) प्रार्थीको ऐसा दंड मिले, जिससे वह अपनी बाकी ज़िन्दगी-भर जेलमें रहे, और इस प्रकार वह इस कलुषित करतूतको प्रकट करनेसे रोका जाय।"

यहाँ एक कागज़की तसवीर प्रकाशित की जाती है। कहा जाता है कि यह त्यागपत्र (तलाक़नामा) सर दयाकिशन कौलके हाथका लिखा हुआ है, जो लालसिंहसे लिखानेके लिए दिया गया था।

बम बनानेके सम्बन्धमें रिपोर्टमें लिखा है :—

"महाराज नाभाके खिलाफ झूठा सबूत बनानेके लिए महाराज पटियालाने अपनी रियासतके बहादुरगढ़के क़िलेमें एक बाक़ायदा बम-फैक्टरी खोली थी। इस कामके लिए दो बंगाली लगाये गये थे। फैक्टरीका चार्ज डाक्टर बख्शीश सिंहके सिपुर्द था। डाक्टर बख्शीश सिंहका कथन है कि फैक्टरीने १५१६ बम बनाये। उन्होंने इस बातका हिसाब भी दिया है कि महाराजके हुकमसे वे बम किस प्रकार खर्च हुए।"



डाक्टर बख्शीश सिंहकी स्त्री विचित्र कुँवर
(कहते हैं कि इसपर महा अमानुषिक अत्याचार किये गये और अन्तमें मार डाली गई)

इस इल्ज़ामके समर्थनमें डाक्टर बख्शीश सिंहका बयान और हल्फिया गवाही तथा सरदार प्रतापसिंह और भाई रामसिंहके बयान दिये गये हैं।

महाराजके खिलाफ़ एक इल्ज़ाम डाक्टर बख्शीश सिंहकी पत्नी विचित्र कुँवर और उसके पुत्र और कन्याके गायब करनेका भी है। इस विषयमें रिपोर्टमें लिखा है :—

"विचित्र कुँवर डाक्टर बखशीस सिंहकी पत्नी थी। जब बखशीस सिंहने पटियालाको छोड़ा, तब अपने पीछे अपनी पत्नी, लड़की और लड़केको भी पटियालामें छोड़ दिया था।



सरदार हरचन्दसिंह
(इनकी बीस लाखकी सम्पत्ति ज़ब्तकर ली गई और ये जेलमें ठूँस दिये गये)

आज वे सब गायब हो गये।...उनका लड़का अन्तिम बार महाराजके मोतीबाग़ महलमें देखा गया था, मगर उसका पता लगानेके लिए उसके पिताके सब प्रयत्न निष्फल हुए।"

इस सम्बन्धमें बख्शीश सिंहका कथन है :—

"मेरी पत्नी विचित्र कुंवरसे कहा गया कि वह ऐसा बयान दे दे कि मैंने यह सब नाभाके कहनेसे और उनके लिए किया है। मेरी स्त्रीने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया। इसपर महाराजके हुक्मसे बिजला सिंह और उसके दलवालोंने उसपर प्रत्येक प्रकारका अत्याचार किया।

"उसके हाथ चारपाईके पायोंके नीचे दबा दिये गये और चारपाईपर बिजला सिंह बैठ गया। उसके बाल कमरेके किवाड़ोंमें दबाकर उसे खींचा गया। उसे नंगा करके बुरी तरह पीटा गया। उसका छोटा बच्चा उसीकी आँखोंके सामने लटका दिया गया और उसपर सगीनों और बन्दूकोंसे हमला किया गया। उसपर इस प्रकारके अत्याचार किये गये।

"अन्तिम मौक़ेपर बहादुरगढ़के क़िलेके राजमहलमें मेरी स्त्री एक पेड़के नीचे नंगी की गई और बालोंके सहारे उसी पेड़में लटका दी गई। उसका बच्चा भी उसके सामने ही लटकाया गया। वहाँ महाराजा सर दयाकिशन कौल, रामसिंह, मेहर सिंह, और बिजला सिंह मौजूद थे। उसके दोनों हाथ भी फैलाकर क्रूसकी भाँति लाठोंसे बाँध दिये गये थे। उसकी दोनों टाँगोंके बीचमें भी एक लाठी रखी गई थी। तब महाराजने पूछा—अब तुम्हारा पंथ (धर्म) कहाँ है? तुम्हारे महाराज नाभा कहाँ है, और तुम्हारी ब्रिटिश सरकार कहाँ है? मैं भूपेन्द्रसिंह हूँ! मेरा हुक्म मानो या मरो।' मेरी पत्नीने कहा—मैं एक साधारण औरत और यह एक साधारण बच्चा आपके क़ब्ज़ेमें हैं। आप बड़े भारी महाराज हैं। हम असहाय जीवोंको मारनेमें क्या बहादुरी है?' तब महाराजने हुक्म दिया कि उसके गोली मार दो। मेहर सिंह वहाँ मौजूद था। उसने बन्दूक़ उठाकर उसे गोली मारकर ठंडा कर दिया। मेरा बच्चा रो रहा था। तब वह उतार दिया गया।

× × ×

बिजला सिंहकी स्त्रीने मेरी छोटी लड़कीका गला दबाकर उसे मार डाला।"

बीबी विचित्र कुँवरके सम्बन्धमें भाई मेहर सिंहका बयान है—

'चार-पाँच दिनके बाद महाराज क़िलेमें आये, और उन्होंने बिजला सिंहको विचित्र कुँवरसे डाक्टरकी छिपाई हुई चीज़ोंके सम्बन्धमें पूछनेको कहा। उसी दिनसे बीबी विचित्र कुँवर बुरी तरह पीटी जाने लगी। उसपर ऐसी निर्लज्जतासे अत्याचार किया जाता था कि उसके कपड़े उतार



रिडसिंह
(कहते हैं कि इनपर पटियाला पुलिसने ऐसे अत्याचार किये और ऐसी पीड़ायें दीं जो शैतान भी नहीं दे सकता)

लिये जाते थे। वह नंगी कर दी जाती थी और बालोंके सहारे छतसे लटका दी जाती थी। इसके अलावा उसके गुप्त अंगोंमें मिर्चें भर दी जाती थीं और महाराजके हुक्मसे बहुतोंने उसपर बलात्कार किया।······वह गर्भवती थी और उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। कुछ दिन बाद वह बीमार पड़ गई।······बिजला सिंहने महाराजको खबर दी कि डाक्टर बखशीस सिंहकी पत्नी बीमार है। महाराजने जवाब दिया कि वे अपनी हिदायतें देकर डाक्टरको भेज देंगे। दूसरे दिन डाक्टर बालमुकुन्द मोटरमें आये और उसे दवा दे गये। जब उसे दवा दी गई, तो उसने उसे जहर बताकर पीनेसे इनकार किया। दूसरे दिन महाराजके हुक्मसे बिजला सिंहने ज़बरदस्ती उसके मुँहमें दवा उँडेल दी, और उससे उसकी मृत्यु हो गई। जब महाराजको उसकी मृत्युकी खबर दी गई, तो उन्होंने हुक्म दिया कि उसकी लाश क़िलेके भीतर ही जला दी जाय, जिससे किसीको पता न लगे। तदनुसार लाश जला डाली गई, और राखको सुन्दर सिंहने उठाकर क़िलेकी खाईमें फेंक दिया।'

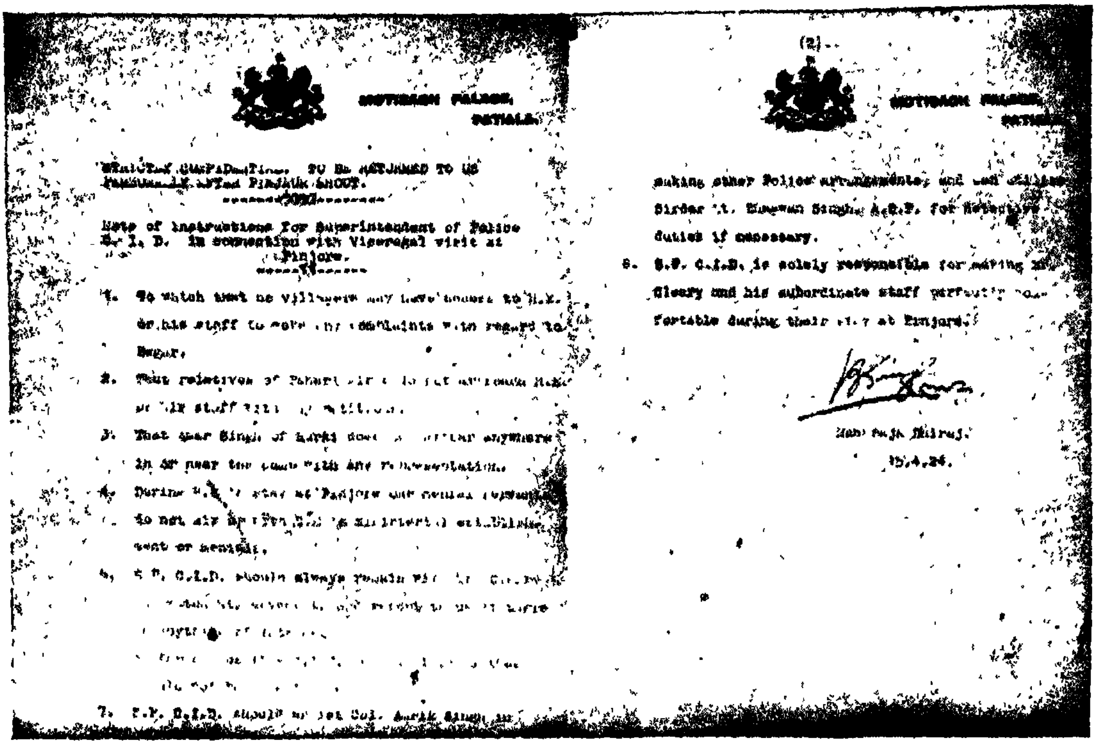
तीसरे इल्ज़ामके सम्बन्धमें रिपोर्टमें लिखा है :—

"महाराज सरदार अमर सिंहकी स्त्रीपर, जो अपने मायके पटियाले आई हुई थी, मोहित हो गये, इसलिए वह स्त्री पिछले १८ वर्षसे महलोंमें रख ली गई है, जहाँ उसके एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न हुई।······अमर सिंह पर मुक़दमे चलाकर उन्हें बराबर तंग किया जा रहा है।······आज भी उनके खिलाफ़ एक मुक़दमा चलाया गया है, और वे जेलमें ठूँस दिये गये हैं।"

कहते हैं कि सरदार अमर सिंहने ब्रिटिश अधिकारियोंको सहायताके लिए अपील की, मगर पंजाब-सरकार और भारत-सरकारने उन्हें जवाब दिया कि वे महाराजसे बीस हज़ार रुपये लेकर अपनी स्त्रीपर दावा त्याग दें। यदि यह कथन सत्य है, तो निस्सन्देह ब्रिटिश अधिकारियोंके लिए यह बड़ी लज्जाकी बात है कि वे महाराजकी पापलीलाओंको अपरोक्ष रूपसे प्रोत्साहन देते रहे हैं।

पाँचवें दोषके सम्बन्धमें रिपोर्टका कथन है :—

"सरदार हरचन्द सिंह पटियालाके एक बहुत बड़े जागीरदारों और इज़्ज़तदारोंमेंसे हैं। वे बहुत दिनों तक महाराजके ए० डी० सी० भी रह चुके हैं। उनकी स्त्रीको महलोंसे बार-बार निमन्त्रण दिया गया, मगर उन्होंने अपनी



MOTIBAGH PALACE,
PATIALA.

STRICTLY CONFIDENTIAL. TO BE RETURNED TO US [illegible]
[illegible]

Note of instructions for Superintendent of Police C. I. D. in connection with Viceregal visit at Pinjore.

1. To watch that no villagers may have access to H.E. or his staff to make any complaints with regard to Begar.
2. That relatives of Pahari [illegible] H.E. or his staff [illegible].
3. That [illegible] Singh of [illegible] does [illegible] anywhere in or near the camp with any representation.
4. During H.E.'s stay at Pinjore [illegible] sent or [illegible].
5. S. P. C.I.D. should always remain [illegible]
[illegible]
7. S.P. C.I.D. should [illegible] Col. [illegible] Singh [illegible]

(2)

MOTIBAGH PALACE,
PATIALA.

making other Police arrangements, and [illegible] Sirdar Lt. [illegible] Singh, A.S.P. for Detective duties if necessary.

8. S.P. C.I.D. is solely responsible for making Mr. Cleary and his subordinate staff perfectly comfortable during their stay at Pinjore.

[signature]

Maharaja Dhiraj.

15.4.26.

महाराजके हस्ताक्षर सहित गुप्त पत्र
जो उन्होंने वायसरायके पटियाला आगमनके समय अपने पुलिस अफसरोंके नाम भेजा था।

पत्नीको भेजना उचित नहीं समझा।···हरचन्द सिंह गिरफ्तार कर लिये गये, और आजकल पटियाला जेलमें हैं। उनकी बीस लाख रुपयेकी क़ीमतकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। उनके स्त्री-बच्चोंको नितान्त निर्धन अवस्थामें निकाल दिया गया। उनकी स्त्रीको जूता पहनने तकका हुक्म नहीं मिला!''

सातवें इल्ज़ामके सम्बन्धमें कमेटीके सामने विश्वेदार रिद्धसिंहने बयान दिया कि उसपर बड़ा अमानुषिक अत्याचार किया गया। कम-से-कम पचासों आदमियोंने इस बातको स्वीकार किया कि रिद्धसिंहपर जो कुछ बीता था, वह उन्होंने अपनी आँखोंसे देखा था। उन सबने एक स्वरसे बड़े करुण और द्रावक ढंगसे बताया कि पटियाला-पुलिसने रिद्धसिंहके साथ जो कुछ किया, वह शैतान भी नहीं कर सकता।

कुछ समय पूर्व वायसराय लार्ड इरविन पटियाला राज्यमें शिकारके लिए गये थे। कहते हैं कि उस समय महाराज पटियालाने अपने पुलिस अफसरोंके नाम एक गुप्त चिट्ठी लिखी थी। उसकी तसवीर यहाँ प्रकाशित की जाती है। उसकी कुछ हिदायतें यह हैं :—

१. ध्यान रखो कि कोई ग्रामीण वायसराय या उनके स्टाफके पास पहुँचकर बेगार आदिकी शिकायत न कर सके।

२. पहाड़ी लड़कियोंके सम्बन्धी वायसराय या उनके स्टाफके पास पहुँचकर कोई अर्जी न दे सकें।

३. सरकीका अमरसिंह कोई अर्ज़ी लेकर कैम्पके समीप न पहुँच सके।



पटियालाके मज़लूम

पटियालेके दस प्रतिनिधि-निवासियोंने वायसरायको जो मेमोरियल भेजा है, उसमें महाराजके विरुद्ध व्यभिचार, ग़बन, ख़ून और हत्याएँ करवाना, बम बनवाना, अत्याचार करना आदि अनेक इल्ज़ाम लगाये गये हैं। महाराजके व्यभिचार और पापाचारकी कथाएँ a, b से आरम्भ हुई हैं और z पर जाकर खतम हुई हैं। उनमेंसे कुछ भी बानगी देखिए :—

"(i) महाराजने अपनी एक सौतेली माता—पूर्व महाराजकी युवती रानी—से व्यभिचारका प्रस्ताव किया। रानीने महाराजके इन पापपूर्ण इरादोंकी शिकायत ब्रिटिश सरकारसे की। पोलिटिकल एजेन्टके हस्तक्षेपपर रानीको ब्रिटिश भारतमें रहनेकी आज्ञा दी गई, लेकिन फिर भी महाराजके नौकर उसे तंग करते रहे। महाराजके पापपूर्ण प्रस्ताव तब जाकर बन्द हुए, जब ब्रिटिश अधिकारियोंने अभागी रानीकी रक्षाके लिए एक ब्रिटिश गारदका पहरा नियुक्त किया।

(k) अनवर नामक एक मुसलमान तवायफ महाराजकी रखैल थी। महाराजने उससे विवाह करना चाहा, परन्तु उसके माता-पिताने अपनी कन्याको महाराजसे ब्याहनेसे इनकार कर दिया। तवायफ महलोंमें रोक रखी गई, जहाँ अन्तमें वह क़ैदमें मर गई!

(l) इसी प्रकार एक दूसरी तवायफ गुलज़ान भी महाराजकी क़ैदमें मरी!

(m) महाराजने अब तक एक और मुसलमान तवायफ अमीरजानको क़िलेमें रोक रखा है······और उसके माता पिताके प्रतिवादपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

(n) कुछ भलेमानुस मुसलमानोंका एक डेपुटेशन फुलकियाँ स्टेट्सके पोलिटिकल एजंटके पास गया था, और उनसे प्रार्थना की थी कि वे हस्तक्षेप करके उन मुसलमान स्त्रियोंको छुटकारा दिलावें, जिन्हें महाराजने ज़बर्दस्ती व्यभिचारके लिए रोक रखा है।

(o) कुछ समय पूर्व महाराजने रियासतके एक ग़रीब किसानकी स्त्री केसरको ज़बर्दस्ती हरण कर लिया। किसानको अपनी स्त्रीके मूल्य-स्वरूप १००००) दिये गये और यह धमकी दी दी गई कि यदि वह आगे कभी अपनी पत्नीका दावा करेगा, तो मार डाला जायगा। यह सच्ची बात है कि कुछ समय बाद महाराजने केसरसे विवाह कर लिया और ब्रिटिश-सरकारसे भी यह कहा कि वह केसरकी सन्तानको क़ानूनन महाराजकी सन्तान माने।

(p) शिमलाके पासकी एक रियासतके एक बनियाँ दूकानदारकी लड़कीको महाराजने ज़बर्दस्ती उड़ा लिया। वह आजकल महलमें है। कहा जाता है कि बनियेकी शिकायतको ब्रिटिश अधिकारियोंने यह कहकर खारिज़ कर दिया कि उसे महाराजने उसकी लड़कीके मूल्य-स्वरूप एक लम्बी रक़म दे दी है।

(५) जब महाराजके बुलानेपर अलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी पटियाला गई थी, तब महाराजने उसकी एक ऐक्ट्रेस मिसेज जोहरासे व्यभिचारका प्रस्ताव किया था। कम्पनीके मालिक और एक्ट्रेसके पतिको अपनी रक्षाके लिए पोलिटिकल एजेंटकी शरण लेनी पड़ी, क्योंकि महाराजके हाथों उनका जीवन और इज्जत खतरेमें थी।

(६) चार राजपूत लड़कियोंको महाराजने पापाचार-पूर्ण जीवन व्यतीत करनेपर मजबूर किया। उन्होंने महलसे भागनेकी कोशिश की। जब वे महलकी दीवारपरसे उतर रही थीं, तब पुलिसने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उनके तथा जो लोग वहाँ जमा हो गये थे, उनके प्रतिवाद करनेपर भी वे फिरसे महलमें भेज दी गईं। उसी दिन ये चारों अभागी लड़कियाँ महलमें जिन्दा जला दी गईं और उनका कोई निशान बाकी न रहा।"

× × × ×

इस प्रकार रिपोर्टमें महाराजके विरुद्ध अनेक भयंकर दोष लगाये गये हैं। ये इल्ज़ाम सच भी हो सकते हैं और झूठ भी। महाराज पटियालाके हितकी दृष्टिसे, ब्रिटिश सरकारकी इज्जत और न्यायप्रियताकी दृष्टिसे, और पटियालाकी प्रजाके हितकी दृष्टिसे यह बहुत ज़रूरी है कि इन सब इल्ज़ामोंपर खुल्लमखुल्ला और निष्पक्ष जाँच की जाय, और अपराधियोंको कड़े-से-कड़ा दंड दिया जाय।

हालमें अखबारोंमें यह अफ़वाह उड़ी थी कि शायद पटियाला-नरेशको भी चुपचाप गद्दी त्याग देनेकी सलाह दी जा रही है। देशी नरेशोंके पापोंका भंडाफोड़ होनेपर उन्हें मोटी पेन्शनपर गद्दी त्याग देनेकी नीति बड़ी घातक है। इससे इन धनी अपराधियोंका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, उलटे उनके सरसे उत्तरदायित्वका बोझ उतर जाता है और वे निर्द्वन्द होकर पुनः अपनी ऐय्याशीमें डूब जाते हैं, इसलिए सभीके हितकी दृष्टिसे यह आवश्यक है कि सरकार इस विषयकी एक निष्पक्ष जाँच करे।

फास्ट

[लेखक :—श्री तुर्गनेव]

(गताङ्कसे आगे)

उसकी माँ मैडम अल्टसव एक अजीब औरत थी। उसमें चरित्रबल, दृढ़ इच्छा शक्ति एवं चित्तकी एकाग्रता जैसे गुणोंका समावेश था। उसका मुखपर बड़ा प्रभाव था। मैं उसे देखते ही फौरन उससे भय खाने लगा गया और उसे आदरकी दृष्टिसे देखने लगा। उसका हरएक काम किसी एक सिद्धान्तको लेकर होता था। उसने अपनी कन्याको भी एक सिद्धान्तके आधारपर ही शिक्षा दी थी, यद्यपि उसकी स्वतंत्रतामें उसने कभी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। उसकी लड़की उसे प्यार करती थी और आँख मूँदकर उसपर विश्वास रखती थी। उसकी माँ (मैडम अल्टसव) यदि उसे कोई कोई पुस्तक पढ़नेके लिए देती और सिर्फ इतना ही कहती कि "अमुक पृष्ठ मत पढ़ो" तो उस पृष्ठको कौन कहे वह उसके पहलेके पृष्ठको भी छोड़ जाती और वर्जित पृष्ठकी तरफ तो कभी भूलकर भी नहीं देखती। परन्तु मैडम अल्टसवमें भी कुछ सनक पाई जाती थी। उदाहरणके लिए, उसे इस प्रकारके प्रत्येक विषयमें भय मालूम पड़ता था, जिसका मनुष्यकी कल्पना-शक्तिपर प्रभाव पड़े। यही कारण था कि उसकी लड़की यद्यपि १७ वर्षकी हो गई थी, तो भी उसने एक भी उपन्यास या कविता नहीं पढ़ी थी। भूगोल, इतिहास, यहाँ तक कि प्राकृतिक विज्ञानमें भी उसका ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा था कि मुझे उसके सामने लज्जित होना पड़ता था, यद्यपि मैं एक विश्वविद्यालयका

ग्रेजुएट था और सो भी साधारण ग्रेजुएट नहीं, बल्कि, जैसा कि तुम जानते हो, प्रथम श्रेणीका ग्रेजुएट। मैं मैडम अल्टसवके साथ उसकी सनकके सम्बन्धमें तर्क-वितर्क किया करता था, यद्यपि उसे बातचीतमें लगाना एक कठिन काम था। वह बहुत मौन रहा करती थी। वह सिर्फ अपना सिर हिला दिया करती थी।

आखिर एकदिन उसने मुझसे कहा,—"तुम मुझसे कहते हो कि कविता पढ़ना लाभदायक और साथ ही आनन्दजनक भी है। मेरे विचारमें प्रत्येक व्यक्तिको अपने जीवनके प्रारम्भमें ही दोनोंमेंसे एक चीज़को चुन लेना चाहिए—या तो 'उपयोगी'को अथवा 'आनन्दप्रद' को—और उसपर अन्त तक क़ायम रहना चाहिए। किसी समयमें मैंने भी इन दोनों विषयोंको अपने जीवनमें संयुक्त करनेकी कोशिश की थी, किन्तु ऐसा करना मुझे असम्भव मालूम पड़ता है और इसका परिणाम यह होता है कि या तो जीवन नष्ट हो जाता है या वीभत्स बन जाता है।

सचमुच वह स्त्री एक आश्चर्यजनक जीव थी। उसका स्वभाव सरल एवं गर्वयुक्त था। जिसमें उसकी धर्मान्धता एवं अन्ध-विश्वासका भी कुछ समावेश पाया जाता था। एक दिन उसने मुझसे कहा—"मैं जीवनसे भय करती हूँ।" वस्तवमें वह जीवनसे भयभीत थी। जिन रहस्यपूर्ण शक्तियोंके आधारपर जीवन निर्भर करता है और जो किसी-किसी मौक़ेपर एकाएक प्रकट हो जाती हैं, उन शक्तियोंसे ही उसे भय हो रहा था। जो इन शक्तियोंके चंगुलमें फँस गया, बस, उसकी शामत ही समझिए। मैडम अल्टसवके लिए तो ये शक्तियाँ भयानक रूपमें प्रकट हुई थीं। उसकी माता, स्वामी और पिताकी मृत्युके सम्बन्धमें तो खयाल करो। इस प्रकारकी विपत्तियाँ किसी भी मनुष्यको अत्यन्त त्रस्त बनानेके लिए काफ़ी थीं। मैंने कभी उसे मुसकिराते नहीं देखा। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो उसने अपनेको किसी तालेमें बन्द करके उसकी ताली पानीमें फेंक दी हो। उसे अपने जीवनमें बहुत शोक सहना पड़ा था, और इस शोकमें उसका हाथ बँटानेवाला भी कोई नहीं था, इसलिए वह इस शोकको बराबर अपने हृदयके अन्दर ही छिपाये रहती थी। अपने भावोंको प्रकट नहीं होने देनेकी कलामें उसने अपनेको इतना निपुण बना लिया था कि उसे अपनी कन्याके प्रति अपना उत्कट अनुराग व्यक्त करनेमें भी संकोच मालूम पड़ता था। मेरे सामने उसने एक बार भी अपनी कन्याका चुम्बन नहीं किया और न उसे कोई प्यारका नाम लेकर पुकारा ही। वह बराबर अपनी लड़कीको 'वीरा' कहकर पुकारा करती थी। मुझे उसका एक कथन याद है। मैंने एक बार उससे कहा था—"आधुनिककालके हम सभी लोगोंके जीवनका प्रायः आधा हिस्सा ठोकरें खाकर टूटा हुआ होता है।" इसपर वह बोल उठी—"जीवनका अर्द्धभाग टूटा होना अच्छा नहीं, या तो कोई बिलकुल ही चकनाचूर हो जाय, अथवा जिस ढंगसे जीवन चले, चलने दें।"

मैडम अल्टसवसे बहुत कम आदमी मिलने आया करते थे, किन्तु मैं अकसर उससे मिलने जाता था। मुझे यह बात गुप्तरूपसे ज्ञात थी कि उसकी मुझपर कृपादृष्टि थी, और मैं भी सचमुच वीरा नीकलवनाको बहुत चाहता था। हम दोनों एक साथ मिलकर वार्तालाप किया करते और घूमा करते थे। उसकी माँ हमारे लिए बाधक नहीं होती थी। वीरा नीकल वना अपनी माँसे अलग होना नहीं चाहती थी। मैं भी उसके साथ एकान्तमें बातें करनेके लिए उत्कण्ठित नहीं रहता था। वीरा नीकलवनामें मनमें सोचते हुए मुँहसे बड़बड़ानेकी एक अजीब आदत थी। वह रातको सोते हुएमें अपने दिनके उन खयालातोंको, जो उसके दिलपर जम जाते थे, बड़बड़ाया करती थी। एक दिन मेरी ओर ध्यान-पूर्वक देखती हुई और अपनी सदाकी आदतके अनुसार धीरेसे, अपने हाथके सहारे झुकी हुई, वह मुझसे बोली—"ऐसा मुझे मालूम पड़ता है कि अमुक व्यक्ति एक भला आदमी है, किन्तु उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता।" हम दोनोंके बीच अत्यन्त मैत्री

एवं शान्तिपूर्ण सम्बन्ध था। सिर्फ एक बार मुझे ऐसा खयाल हुआ कि मैंने उसकी उज्ज्वल आँखोंकी गहराईके अन्दरमें कुछ ऐसा अनोखा भाव पाया, जो एक प्रकारका करुणामिश्रित कोमल भाव था। किन्तु शायद यह मेरी भूल थी।

इधर समय बीतता जा रहा था, और अब वह वक्त आ गया था, जब कि मैं अपने जानेकी तैयारी कर लूँ, परन्तु इस समय भी मैंने अपना जाना टाल दिया। कभी कभी जब मैं यह सोचता था और इस बातका अनुभव करता था कि शीघ्र ही मुझे इस सुन्दरी बालिकासे—जिसे मैं इतना चाहने लग गया था—बिलग होना पड़ेगा, तो मेरा हृदय खिन्न हो उठता था। बर्लिनमें मेरे लिए अब कोई आकर्षक शक्ति नहीं रह गई थी। मुझमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि मैं मेरे दिलके अन्दर जो भावना काम कर रही थी, उसे स्वीकार कर लूँ। सचमुच ही यह बात मेरी समझमें नहीं आती थी कि मेरे अन्दर क्या बीत रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता था, मानो मेरे अन्तरात्माके ऊपर मेघका आवरण पड़ गया हो। आखिर एक दिन प्रातःकाल अचानक मुझे सारी बातें स्पष्टरूपसे जान पड़ने लगीं। "अब अधिक भटकनेकी क्या ज़रूरत? वहाँ ऐसा रखा ही क्या है, जिसके लिए कोशिश करता रहूँ? क्योंकि किसी भी हालतमें मैं मैं सत्य तक तो पहुँच ही नहीं सकूँगा। क्या इससे यह अच्छा नहीं है कि मैं यहाँ ठहर जाऊँ और विवाह कर लूँ?" ज़रा यह खयाल तो करो कि उन दिनों विवाहकी भावना मेरे लिए भयप्रद नहीं थी? उसके विपरीत मैं इस खयालसे प्रसन्न हो उठता था! इतना ही नहीं, बल्कि उस दिन मैंने अपनी अभिलाषाएँ सिर्फ वीरा नीकलवनासे ही प्रकट नहीं की, जैसा कि स्वभावतः लोग अनुमान करेंगे, बल्कि उसकी मा मैडम अल्टसवसे भी। यह सुनकर वह वृद्धा स्त्री मेरी ओर देखने लगी।

उसने कहा—"नहीं, पहले बर्लिन जाकर अपनेको खूब फेरफार कर संयमित कर लो। तुम भले आदमी तो हो, परन्तु वीराके लिए तुम्हारे जैसे स्वामीकी आवश्यकता नहीं।"

मैंने लज्जासे सिर झुका लिया, और इससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात जो तुम्हें मालूम होगी, वह यह थी कि मेरा मन मैडम अल्टसवकी बातकी गवाही दे रहा था।

मैंने संक्षेपमें सीधे-सादे ढंगपर इस प्रसंगका वर्णन किया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम किसी ऐसी बातकी परवाह नहीं करते, जो घुमा-फिराकर कही गई हो। बर्लिन पहुँचकर मैं बहुत जल्दी वीरा नीकलवनाको भूल गया।

इतना मैं ज़रूर मानूँगा कि आज एकाएक उसके बारेमें सुनकर मैं उत्तेजित हुए बिना नहीं रहा। मेरे दिलपर यह खयाल जम गया है कि वीरा मेरे इतने पासमें रहती है। वह मेरे पड़ोसकी रहनेवाली है, और दो-एक दिनके अन्दर ही मैं उसे देखूँगा। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो मेरी आँखोंके सामने अतीत काल पृथ्वीके गर्भसे एकाएक प्रकट हुआ हो और मेरे दिलके ऊपर आकर बैठ गया हो। प्रेमकविने मुझे सूचित किया—"मैं इसी उद्देश्यसे मिलने आ रहा हूँ कि जिससे हम दोनोंका पूर्वका परिचय फिर नया हो जाय, और इसके लिए मैं अपने घरपर आपके यथासम्भव शीघ्र ही आनेकी बाट जोहता रहूँगा।" उसने अपने विषयमें मुझे बतलाया कि वह घुड़सवार फौजमें भर्ती था, और उसने लेफ्टिनेन्टके पदसे अवकाश ग्रहण किया था। मेरे रहनेके स्थानसे लगभग ६ मीलकी दूरीपर उसने एक जमींदारी खरीद ली थी, और उसका यह इरादा था कि उसके प्रबन्धमें ही वह अपने समयको व्यतीत करे। उसने यह भी बतलाया कि उसके तीन सन्तान थीं, जिनमें दो तो मर चुकी हैं, सिर्फ एक पाँच वर्षकी लड़की बची हुई है।

मैंने पूछा—"क्या तुम्हारी स्त्रीको मेरी याद है?"

"हाँ, उसे तुम्हारी याद है।" उसने थोड़ी हिचकिचाहटके साथ उत्तर दिया। "इसमें सन्देह नहीं कि उन दिनों वह

निरी बालिका थी, किन्तु उसकी माँ तुम्हारी बराबर तारीफ़ किया करती थी, और तुम जानते ही हो कि उसके लिए उसकी माँका एक-एक शब्द कितना मूल्यवान है।"

मुझे मेडम अल्टसवके वे शब्द याद पड़ गये कि मैं उसकी वीराके उपयुक्त पात्र नहीं हूं। मैंने प्रेमकविकी ओर तिरछी निगाहसे देखते हुए मनमें कहा—"मैं अनुमान करता हूं कि तुम उसके उपयुक्त पात्र थे।" उसने कई घण्टे मेरे साथ बिताये। वह एक बड़ा ही भला और अच्छा आदमी है। नम्रताके साथ बातें करता है। मेरी ओर बड़ी भलमनसाहतके साथ देखा करता है। कोई भी आदमी उसे चाहे बिना नहीं रह सकता, परन्तु उस समयमें, जब हम दोनोंने उसे विद्यालयमें देखा था, उसकी बौद्धिक शक्तियोंका अधिक विकास नहीं हुआ है। सम्भवतः कल मैं उससे जाकर अवश्य मिलूंगा। मुझे यह जाननेका बड़ा कुतूहल है कि वीरा नीकलवना इस समय कैसी हो गई है। तुम्हारे जैसे दुखी लोग मेरे इस पत्रको पढ़नेपर बहुत सम्भव है कि हँस पड़ें, परन्तु फिर भी मैं तुम्हें लिखकर बतलाऊँगा कि उस स्त्रीका मुझपर कैसा असर पड़ रहा है। अच्छा, इस समय विदा ग्रहण करता हूँ। मेरे दूसरे पत्रकी प्रतीक्षा करो।

तीसरा पत्र

प्यारे दोस्त ! मैं वीरा नीकलवनाके घरपर गया था। मैंने उसे देखा। सबसे पहले तो मुझे तुमसे एक आश्चर्यजनक बात यह कहनी है, चाहे इस बातपर तुम विश्वास करो या नहीं, जैसी तुम्हारी मर्ज़ी, कि उसके चेहरेमें या स्वरूपमें कदाचित् ही कोई परिवर्तन हुआ है। जिस समय वह मुझसे मिलने आई, मैं ताज्जुबमें आकर चिल्लासा उठा, 'अरे ! यह तो १७ वर्षकी छोटी बालिका जैसी मालूम पड़ती है।' सिर्फ़ उसकी आँखें छोटी लड़की जैसी नहीं मालूम पड़ती थीं, किन्तु उसकी आँखें तो लड़कपनमें भी कभी एक बालिका जैसी नहीं दीखती थीं। उस समय भी उसकी आँखें बिलकुल स्वच्छ थीं।

किन्तु अब भी उसमें वही धीरता, वही गम्भीरता, वही कण्ठस्वर—सब कुछ वैसे ही मौजूद हैं। उसकी भौंहोंपर ज़रा भी शिकन नहीं मालूम होती, मानो इतने दिनों तक वह बर्फ़से ढककर रखी गई हो। तिसपर भी उसकी अवस्था इस समय २८ वर्षकी है और तीन सन्तान हो चुकी हैं। यह बात तो समझसे भी बाहर है। ऐसा मत खयाल करो कि चूँकि मैं उसे पहलेसे ही चाहता था, इसलिए मैं बढ़ा-चढ़ाकर उसकी तारीफ कर रहा हूं। यह बात नहीं है, बल्कि इसके विपरीत मैं उसमें किसी प्रकारके परिवर्तनका जो अभाव पाता हूं, वह मुझे पसन्द नहीं। २८ वर्षकी स्त्रीको जो पत्नी और माताके पदको प्राप्त कर चुकी है, एक छोटी लड़कीके सदृश नहीं होना चाहिए। उसे जीवनसे कुछ शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उसने मेरा हार्दिक स्वागत किया, किन्तु प्रेमकवि तो मेरे आगमनकी खुशीमें आपेसे बाहर हो रहा था। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह किसी ऐसे आदमीकी तलाशमें हो, जो इस अवसरपर उसके साथ खूब आनन्द मनाये।

उसका घर बहुत आरामप्रद और साफ-सुथरा है। वीराकी पोशाक भी एक बालिका जैसी ही थी ; बिलकुल सफ़ेद रंगकी, जिसमें नीले रंगकी पट्टी लगी हुई थी और गलेमें एक पतली सोनेकी चैन लटक रही थी। उसकी लड़की भी बड़ी सुन्दर है, पर वह अपनी माँ जैसी बिलकुल नहीं है। उसे देखनेसे उसकी दादी याद आ जाती है। मुलाक़ाती कमरेमें एक सोफाके ठीक ऊपर एक अजीब औरतकी तसबीर टंगी हुई है, जो इस लड़कीकी शकल सूरतसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। उस कमरेमें प्रवेश करते ही मेरी नज़र उस तसबीरपर जा पड़ी। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह मेरी ओर उत्कण्ठा-पूर्वक टकटकी लगाये हुए देख रही हो। फिर हम लोग वहीं बैठ गये। पुराने ज़मानेकी बातें होने लगीं, और क्रमशः हम लोग बातचीत करनेमें ग़र्क हो गये। मैं बराबर मेडम अल्टसवकी धुँधली तसबीरकी ओर देख रहा था। वीरा नीकलवना उस तसबीरके ठीक नीचे बैठी हुई थी। यह स्थान उसे बहुत प्रिय है।

एक बातसे मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। भला, सोचो तो सही, अब तक वीरा नीकलवनाने एक भी उपन्यास या कविता अथवा किसी भी प्रकारकी कोई कल्पित रचना—जैसा कि वह इन विषयोंको कहा करती है—नहीं पढ़ी है !

मानव-बुद्धिके सर्वोच्च आनन्दके प्रति इस प्रकारकी समझमें न आनेवाली उदासीनता देखकर मैं कुढ़ गया। एक समझदार—जहाँ तक मैं विचार कर सकता हूँ—और भले बुरेकी पहचान करनेवाली स्त्रीके लिए इस प्रकारका भाव सर्वथा असम्य है।

'क्या तुमने यह सिद्धान्त कर लिया है कि इस प्रकारकी पुस्तकें कभी भी नहीं पढ़ोगी ?'' मैंने पूछा।

''मुझे कभी पढ़नेका संयोग ही नहीं हुआ,'' उसने उत्तर दिया--'या यों कहिये कि मुझे कभी समय भी नहीं मिला।''

'समय ही नहीं मिला।' तुम्हारी यह बात सुनकर तो मुझे आश्चर्य होता है। फिर मैं प्रेमकविको सबोधन करते हुए कहने लगा — 'मैं तो समझता था कि तुमने अपनी स्त्रीमें कविता पढ़नेकी रुचि अवश्य उत्पन्न की होगी।''

'यदि मैं ऐसा कर सकता, तो मुझे बड़ी खुशी होती।'' इस प्रकार प्रेमकविने कहना शुरू ही किया था कि बीच ही में बात काटकर वीरा नीकलवना बोल उठी—''बहाना मत करो; तुममें तो खुद भी कविताके प्रति कोई विशेष प्रेम नहीं है।''

''कविता, हाँ कविता, तो नहीं,'' वह कहने लगा—''मुझे कवितासे तो विशेष प्रेम नहीं है, पर उपन्यास···''

''परन्तु तुम करते क्या हो, संध्याका समय तुम किस प्रकार बिताते हो ?'' मैं पूछ बैठा, ''तुम ताश खेला करते हो ?''

''हाँ, कभी हम खेला करते हैं।'' वीराने उत्तर दिया। 'परन्तु इसके सिवा और भी बहुत-कुछ हमें करना पड़ता है। हम पढ़ती भी हैं। कविताके अतिरिक्त अन्य विषयकी अच्छी पुस्तकें भी तो पढ़नेके लिए हैं।''

''तुम कविताके इतने विरुद्ध क्यों हो ?''

''मैं इसके विरुद्ध नहीं हूँ। बचपनसे ही इस प्रकारकी कल्पित रचनाओंके पढ़नेकी मैं आदी नहीं हूँ। मेरी माँकी ऐसी ही इच्छा थी, और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, मेरी यह धारणा दृढ़ होती जाती है कि जो कुछ मेरा माँने किया और जो कुछ उसने कहा, सब ठीक था—शास्त्र-वचन जैसा अलीक था।''

''अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा, परन्तु मैं तुमसे इस विषयमें सहमत नहीं हो सकता। मुझे यह निश्चय है कि तुम एक अत्यन्त विशुद्ध एवं अत्यन्त समुचित आनन्दसे व्यर्थ ही अपनेको वञ्चित कर रही हो। मैं समझता हूँ कि तुम संगीत और चित्रकारके विरुद्ध नहीं हो तो फिर कविताके ही विरुद्ध क्यों ?''

''मैं इसके विरुद्ध नहीं हूँ। मैंने इस विषयके सम्बन्धमें कभी कुछ जानती ही नहीं, बस, इतना ही मुझे कहना है।''

''खैर, यह काम मेरे जिम्मे रहा। मैं अनुमान करता हूँ कि तुम्हारी माँने कभी तुम्हें कल्पना तथा कविता-विषयक कलाके ज्ञानमें आजीवन वंचित रखनेकी इच्छा न की होगी ?''

''नहीं, जब मेरा विवाह हो गया, तो मेरी माँने मेरे ऊपर किसी तरहकी रुकावट नहीं रहने दी; किन्तु जिसे तुम उपन्यास कहते हो, उस विषयको पढ़नेका मेरे दिलमें कभी खयाल ही पैदा नहीं हुआ।''

मैंने विस्मयमें आकर वीरा नीकलवनाके इस कथनको सुना। मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

वह गम्भीर चितवनसे मेरी ओर देख रही थी। चिड़ियाँ जब भयभीत हो जाती हैं, तब इसी प्रकार देखा करती हैं।

''अच्छा, मैं तुम्हें एक पुस्तक दूँगा।'' मैंने कहा। उस समय मेरे ध्यानमें 'फास्ट' पुस्तकका खयाल आया, जिसे हाल ही में मैंने फिरसे पढ़ना शुरू किया था।

वीरा नीकलवनाने एक हल्की साँस ली।

उसने कुछ डरते हुए स्वरमें पूछा—"वह पुस्तक जार्जेस सेंडकी तो नहीं है?"

"ओह! तब तो तुमने उसके विषयमें सुना है। अच्छा, यदि मान लो कि वही हो, तो इसमें हर्ज ही क्या है?... किन्तु नहीं, मैं तुम्हें एक दूसरे लेखककी पुस्तक दूँगा। तुम जर्मन-भाषा भूली तो नहीं हो?"

"नहीं।"

"वह तो एक जर्मनके सदृश ही जर्मन-भाषा बोलती है।"—प्रेमकविने कहा।

"हाँ, यह तो बहुत अच्छा है। मैं तुम्हें वह पुस्तक लाकर दूँगा, और तब तुम देखना कि कैसी आश्चर्यजनक वस्तु मैं लाता हूं।"

"बहुत अच्छा, देखा जायगा, किन्तु अब हम बग़ीचेमें चलें, नहीं तो नटाशा चुप नहीं रह सकेगी।"

उसने एक बालकोंकी टोपी जैसी गोल पुआलकी टोपी अपने सरपर रख ली। वह टोपी ठीक वैसी थी, जैसी कि उसकी लड़की पहने हुई थी, सिर्फ़ क़दमें कुछ बड़ी थी। फिर हम लोग बाग़में गये। मैं उसके बगलसे होकर चल रहा था। ताजी हवामें नीबूके घने वृक्षकी छायामें मुझे उसका चेहरा इतना मनोहर मालूम पड़ता था, जैसा कि इससे पहले मैंने कभी नहीं देखा था। विशेषकर जब वह कुछ मुड़कर पीछेकी ओर सर करके अपनी टोपीके अगले भागके अन्दरसे मुझे देखने लगती थी, तब तो मुझे उसका चेहरा और भी हृदयग्राही प्रतीत होता था।

यदि हम दोनोंके पीछे प्रेमकवि नहीं चलता होता, और वह छोटी लड़की हमारे सामनेमें नहीं उछलती होती, तो मैं निश्चय ही अपनेको ३५ वर्षकी अवस्थाके बदले २३ वर्षका नवयुवक ख़याल करता। इसके साथ ही मुझे इस बातका भी ख़याल आता कि मैं बर्लिनके लिए रवाना होनेवाला ही हूं। विशेषकर वह बग़ीचा, जिसमें हम लोग घूम रहे थे, मैडम अल्टसनकी ज़मींदारीके बग़ीचेसे बहुत कुछ मिलता-जुलता था। मैं वीरा नीकलवनासे अपने भावोंको प्रकट किये बिना नहीं रह सका।

उसने उत्तर दिया—"हरएक आदमी मुझसे यही कहता है कि बाहरसे मुझमें बहुत कम परिवर्तन हुआ है।"

"यद्यपि भीतरसे भी मैं सचमुच वैसी ही बनी हुई हूँ, जैसी कि मैं पहले थी!"

फिर हम लोग एक छोटेसे चीनी ढंगके बने हुए ग्रीष्म-गृहमें आये।

वीराने कहा—"ओसिन आवेकामें इस प्रकारका ग्रीष्म-गृह हम लोगोंके पास नहीं था। यह इस तरह नीचेकी ओर झुका हुआ और बदरंग मालूम पड़ता है, इस बातका ख़याल आप न कीजिए, इसके भीतर बड़ी सुन्दरता और बहुत ठंडक है।"

हम लोग उस घरके भीतर गये। मैंने चारों तरफ़ देखकर कहा—"वीरा, मेरी तुमसे एक प्रार्थना है। तुम यहाँ एक मेज और कुछ कुर्सियाँ तो मँगवाओ। यहाँ तो सचमुच बड़ा सुखप्रद मालूम पड़ता है। मैं तुम्हें यहाँ गेटेका 'फ़ास्ट' पढ़कर सुनाऊँगा। यह वही पुस्तक है, जिसे पढ़कर मैं तुम्हें सुनाना चाहता हूँ।"

"हाँ, यहाँ मक्खियाँ भी नहीं हैं।"—उसने सिर्फ़ इतना ही कहा—"तुम फिर आओगे कब?"

"परसों।"

"बहुत अच्छा।"

"मैं इसके लिए प्रबन्ध कर दूँगी।"

नटाशा भी हम लोगोंके साथ इस ग्रीष्म-गृहमें आई थी। वह एकाएक चीख उठी और बिलकुल भयभीत-सी होकर पीछेकी ओर उछल पड़ी।

"क्यों, हुआ क्या?"—वीराने पूछा।

उस घरके कोनेकी ओर इशारा करती हुई उस छोटी लड़कीने कहा—"ओ माँ, देख तो वह मकड़ी कितनी भयानक है।" वीराने उस मकानके कोनेकी ओर देखा, एक मोटी-सी मकड़ी दीवालपर धीरे-धीरे रेंग रही थी।

मैंने कहा—"उसे देखकर डरती क्यों है? वह काटेगी नहीं।"

इतना कहकर मेरे मना करनेके पहले ही उसने उस भयानक जन्तुको अपने हाथसे उठा लिया और उसे हाथपर चलने दिया, और इसके बाद फिर उसे दूर फेंक दिया।

"सचमुच, तुम बहादुर हो।"—मैंने ज़ोरसे कहा।

"इसमें बहादुरी क्या है? यह कोई विषैली मकड़ी नहीं थी।"

"तुम तो भौतिक विज्ञानमें पहले जैसी ही निपुण मालूम पड़ती हो, किन्तु मैं तो इसे हाथपर नहीं रख सकता था।"

"इसमें डरनेकी कोई बात नहीं है।"—फिर उसने दोहराया।

नटाशा हम दोनोंकी तरफ चुपचाप देखकर हँस पड़ी।

"तुम्हारी माँसे यह कितनी मिलती है!"—मैंने कहा।

"हाँ"—वीराने आनन्दसे मुसकराते हुए उत्तर दिया—"मेरे लिए यह बड़ी ही आनन्दकी बात है। ईश्वर करे, यह सब बातोंमें अपनी नानीके समान हो, सिर्फ चेहरेमें ही नहीं।"

इसके बाद हम लोगोंको भोजनके लिए बुलावा हुआ। भोजन कर चुकनेके बाद मैं चला गया।

रहस्य—भोजन बहुत अच्छा था, और वह भलीभाँति बनाया गया था। यह बात यहाँ तुम्हारे जैसे भोजनभट्टके लिए लिखना ज़रूरी है! कल मैं उन लोगोंके पास 'फास्ट' लेकर पहुँचूगा। मुझे भय है कि शायद प्राचीन गेटेको और मुझे वहाँ पूर्ण सफलता नहीं मिलेगी। मैं तुम्हें इस विषयमें ठीक-ठीक फिर लिखूँगा। अच्छा, इन सब कार्रवाइयोंके सम्बन्धमें तुम्हारा क्या खयाल है? यही न कि उस स्त्रीका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा है, मैं उसके प्रेममें फँसने जा रहा हूँ, इत्यादि-इत्यादि?

प्यारे छोकरे! यह सब फिजूलकी बात है। हरएक बातकी कोई सीमा होती है। मैं काफ़ी मूर्ख बन चुका हूं, अब अधिक बननेकी ज़रूरत नहीं है। मेरी जैसी उम्रमें अब कोई नये सिरेसे जीवन आरम्भ नहीं कर सकता। इसके सिवा मैंने इस प्रकारकी स्त्रियोंकी कभी परवाह नहीं की। हाँ, अगर तुम सच्ची पूछो तो, सुन्दर स्त्रियोंकी मैंने ज़रूर पर्वाह की थी!

मन-भावनी मनोहर रमणी-रत्नोंकी कर याद।
कम्पित होता हृदय आज मम मनमें बढ़े विषाद॥

हाँ, एक बात मैं हर-हालतमें माननेके लिए तय्यार हूँ, यानी इस प्रकारके पड़ोसीको पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मुझे इस बातकी खुशी है कि मुझे ऐसे बुद्धिमान, सरल और तेजस्वी प्राणीको देखनेका मौक़ा मिलता है। इसके बाद क्या होगा, इस सम्बन्धमें तुम फिर मुझसे उचित समयपर सुनोगे। तुम्हारा—

चौथा पत्र

२० जून, १८५०

प्रिय मित्र,

पुस्तकका पढ़ना कल हुआ था। किस तरहसे हुआ, सो भी सुन लो। पहले तो तुम्हें मैं यह जता देना चाहता हूँ कि जितनी आशा नहीं थी, उससे कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई। यहाँ तक कि उस सफलताको व्यक्त करनेके लिए 'सफलता' शब्द उपयुक्त नहीं जँचता।

हाँ, तो सुनो। मैं भोजनके समय वहाँ पहुँचा। हम लोग कुल छः आदमी भोजनके लिए बैठे—वीरा, प्रेमकवि, उसकी छोटी कन्या, अध्यापिका, मैं और एक बूढ़ा जर्मन, जो दालचीनीके रंगका फ्राक कोट पहने हुआ था। उसकी दाढ़ी-मूछें बिलकुल सफाचट थीं, और चेहरा बहुत ही सच्चा और सुशील मालूम पड़ता था। वह पोपले मुँहसे मुसकराता था। उसके पाससे कॉफीकी गन्ध आती थी, जैसी कि सभी बुड्ढे जर्मनोंके शरीरसे एक प्रकारकी विलक्षण गन्ध आती है। मेरा उस वृद्ध जर्मनसे परिचय कराया गया। उसका नाम शिमल था, जो शिक्षकका काम करता था और प्रेमकविके पड़ोसीके यहाँ रहा करता था। वीराका उसपर स्नेह था, और उसने उसे पुस्तक पढ़ी जाते समय उपस्थित रहनेके लिए आमन्त्रित किया था। हम लोग देर तक भोजन करते रहे।

फिर बहुत देर तक टेबिलके समीप बैठे रहे और बादमें घूमने चले गये। ऋतु बड़ी सुहावनी थी। सुबह वर्षा हो गई थी, और हवा बड़े जोरोंसे सनसनाहटके साथ चल रही थी, किन्तु सन्ध्या होते-होते फिर एकदम शान्ति छा गई थी। हम लोग बाहर खुले मैदानमें आये। मैदानके ऊपर ठीक गुलाबी रंगका बादल ऊँचे आकाशमें छाया हुआ था और उसपर भूरे रंगकी लकीरें धुआँ जैसी फैली हुई थीं। उस बादलके किनारेसे एक छोटासा टिमटिमाता हुआ तारा कभी दीखता था और कभी आँखसे ओझल हो जाता था। इससे कुछ दूरपर नीले रंगके आकाशमें—जिसमें कुछ हलकी-सी लाली मिली हुई थी—दूजका चन्द्रमा मन्द प्रकाशसे चमक रहा था। मैंने वीराका ध्यान इस मेघकी ओर आकर्षित किया।

"हाँ"—"वीराने कहा—यह मेघ तो सचमुच सुन्दर है, किन्तु ज़रा उस ओर तो देखो।"

मैंने घूमकर देखा। एक विस्तृत घनघोर काले रंगका तूफानी बादल डूबते हुए सूर्यको छिपाकर ऊपर आकाशमें फैल रहा था।

बादलका वह टुकड़ा ताज जैसा ऊपरकी ओर उठ रहा था, और ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो घना गट्ठर ऊपर आकाशकी ओर फैलाकर फेंका गया हो। उस बादलके चारों ओर बैंगनी रंगकी चमकीली कोर-जैसी लगी हुई थी, और उसके एक स्थानपर ठीक बीचमें उस विशाल मेघमण्डलसे बाहर निकलकर वह इस प्रकार चमक रहा था, जैसा कि जलते हुए ज्वालामुखीके मुँहमें आग दीखती है।

"आँधी आई।"—प्रेमकविने कहा।

परन्तु असली विषयको छोड़कर मैं किधर भटका जा रहा हूँ। मैं अपने पिछले पत्रमें एक यह बात कहना भूल गया था कि जब मैं प्रेमकविके यहाँसे अपने घर वापस लौटा, तो मुझे इस बातका खेद हुआ कि मैंने फास्टका क्यों ज़िक्र किया। अगर जर्मन-भाषाका ही कोई ग्रन्थ पढ़ना था, तो शुरूमें शिलरके किसी ग्रन्थका पढ़ा जाना ही अच्छा होता। मुझे विशेषकर 'फास्ट'के प्रथम दृश्यके सम्बन्धमें आशंका हो रही थी। मैं Mephistopheles के विषयमें भी निश्चिन्त नहीं था, किन्तु मुझपर तो 'फास्ट'का जादू छाया हुआ था, और दूसरा ऐसा कोई विषय नहीं था, जिसे मैं इतनी दिलचस्पीके साथ पढ़ सकता। उस समय अँधेरी रात घिरती आ रही थी, जब हम लोगोंने उस ग्रीष्म-भवनके भीतर प्रवेश किया। एक दिन, पहलेसे ही वह कमरा हम लोगोंके लिए तय्यार कराया गया था। दरवाज़ेके ठीक दूसरी ओर एक छोटे कोचके सामने एक गोल मेज कपड़ेसे ढकी हुई रखी थी। उसके चारों तरफ आराम-कुर्सियाँ आदि रखी हुई थीं, और उस टेबिलके ऊपर एक लैम्प जल रहा था। मैं उस कोचपर बैठ गया और पुस्तकको बाहर निकाला। वीरा भी दरवाज़ेके पास कुछ दूरीपर एक आराम कुर्सीपर जमकर बैठ गई। अँधेरेमें दरवाज़ेसे होकर बबूलकी हरी शाखा उस लैम्पके प्रकाशमें धीरेसे हिलती हुई दीख पड़ रही थी। समय-समयपर शीतल-मन्द-सुगन्ध पवनका झोका उस कमरेमें आ जाया करता था। प्रेमकवि मेरे समीप टेबिलपर बैठ गया और वह जर्मन उसके बगलमें। अध्यापिका नटेशाके साथ उस घरमें ही रह गई थी। मैंने भूमिकाके रूपमें एक संक्षिप्त भाषण किया। मैंने डाक्टर फास्टकी पुरानी कहानीसे शुरू किया। मेफिस्टोफीलीज़का आशय समझाया। कविशिरोमणि गेटेका भी कुछ हाल बतलाया और साथ ही यह भी उन लोगोंसे कह दिया कि जो स्थल उन्हें अस्पष्ट मालूम पड़े, वहीं मुझे रोक दें। इसके बाद मैंने अपना गला साफ किया। प्रेमकविने मुझसे पूछा—"कहिये तो आपके लिए कुछ शर्बत मँगाऊँ?"

ऐसा मालूम पड़ता था कि यह प्रश्न करके उसके मनको बहुत कुछ सन्तोष प्रतीत हो रहा था।

मैंने कहा—"धन्यवाद, इसकी ज़रूरत नहीं।" इसके बाद बिलकुल सन्नाटा छा गया। मैंने बिना ऊपर आँख उठाये ही पढ़ना शुरू किया। उस वक्त मैं मनमें ज़रा घबड़ाया हुआ था। मेरा कलेजा धक-धक करता था और स्वर

कौंधता था। मेरे इस प्रकार पढ़नेपर सबसे पहले उस जर्मनने सहानुभूति-सूचक शब्द कहे। मेरे पढ़ते समय एक वही व्यक्ति था जो बीच बीचमें कुछ कहकर शान्ति भंग किया करता था। 'आश्चर्य! वाह वाह! क्या कहा है!!' आदि शब्दोंको वह बारबार दुहराता था, और इसके साथ ही साथ समय-समयपर यह कहता जाता था—'ओह! यह तो कमाल कर दिया है!' जहाँ तक मैं देख सकता था, मुझे ऐसा मालूम हुआ, प्रेमकवि तंग आ रहा था। वह जर्मन-भाषा अच्छी तरह नहीं जानता था, और यह बात तो वह स्वयं ही स्वीकार कर चुका था कि उसे कविताके प्रति रुचि नहीं, किन्तु यह उसकी अपनी ही करनी थी। मैंने भोजनके समय इस बातका इशारा कर देना चाहा था कि पुस्तक पढ़े जाते समय उसका उपस्थित रहना आवश्यक नहीं है, किन्तु इस प्रकार उससे कह देनेमें मुझे कुछ झिझक भी मालूम हुई। वीरा ज़रा भी इधर-उधर हिले बिना बैठी रही। दो-चार मैंने चुपकेसे उसकी ओर नज़र डाली थी। उसकी आँखें टकटकी लगाये ठीक मेरे ऊपर गड़ी हुई थीं। उसका चेहरा मुझे पीला-सा मालूम पड़ा। 'फास्ट'के ग्रेचनके साथ प्रथम मिलनके बाद वह आराम-कुर्सीपर आगेकी ओर झुक गई, अपने दोनों हाथोंकी हथेली बन्द कर लीं और इस अवस्थामें ही अन्तकाल तक निश्चल रूपमें बैठी रही। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि प्रेमकवि बिलकुल ही तंग आ गया है। पहले तो इससे मुझे कुछ निरुत्साह-सा हुआ, किन्तु फिर क्रमश: मैं उसे भूल गया और उत्साहके साथ जोशमें आकर पढ़ने लगा। मैं सिर्फ वीराके लिए ही पढ़ रहा था। मेरे अन्त:करणमें कोई कह रहा था कि 'फास्ट'का उसपर असर पड़ रहा है। पढ़ना समाप्त होनेपर और पुस्तकका अन्तिम अध्याय सुन लेनेपर उस जर्मनने बड़े ही अनुभूति-सूचक शब्दोंमें आलोचना करते हुए कहा—"भगवन्! यह कितना सुन्दर है?" प्रेमकवि दिखावटी आनन्दातिरेकमें उछल पड़ा, गहरी साँस छोड़ी और कहा—"आपने हम लोगोंका जो मनोरंजन किया है उसके लिये हमारे धन्यवाद स्वीकार कीजिये।" किन्तु मैंने उसके धन्यवादका कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने वीराकी तरफ देखा। मैं उसकी सम्मति जानना चाहता था। वह अपने स्थानसे उठी और दरवाजेकी तरफ़ गई और वहाँ एक क्षण तक ठहरकर धीरेसे बगीचेमें बाहर चली गई। मैं भी उसके पीछे पीछे दौड़ा। वह मुझसे कई कदम आगे थी। उसके वस्त्र अन्धकारमें एक श्वेत चिह्नकी तरह दीख पड़ते थे। मैंने उसे पुकार कर कहा—"अजी! यह तो बताओ कि आपको यह पुस्तक पसन्द आई या नहीं?"

वह रुक गई।

"क्या तुम यह पुस्तक मेरे पास छोड़ सकते हो?"

"वीरा, यह पुस्तक आपकी भेंट है, आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा करें।"

"धन्यवाद" कहकर वह वहाँसे ग़ायब हो गई। इसके बाद प्रेमकवि और वह जर्मन मेरे पास आये।

प्रेमकविने कहा—"बड़ी गर्मी है। दम-सा घुटा जाता है। मेरी पत्नी कहाँ गई?"

मैंने जवाब दिया—"मेरा खयाल है कि वह घर गई।"

उसने कहा—"मैं समझता हूँ कि अब ब्यालूका वक्त होनेमें देर नहीं है।"—कुछ देर ठहरकर वह फिर बोला—"आप भी ख़ूब पढ़ते हैं, इस कलामें निपुण हैं।"

मैंने कहा—'मेरा खयाल है कि वीरा नीकलयवनाने 'फास्ट'को पसन्द किया।" '

"इसमें भी कोई शक है?"—प्रेमकविने कहा।

"इसमें क्या शक है?"—शिमलने भी उसके सुरमें सुर मिलाते हुए कहा।

हम लोग घरके अन्दर गये।

"तुम्हारी मालिकिन कहाँ है?"—प्रेमकविने एक गृह-सेविकासे पूछा, जो उस समय हम लोगोंके सामने आ पहुँची थी।

"वह अपने सोनेके कमरेमें गई हैं।"

प्रेमकवि उसके सोनेके कमरेमें चला गया।

मैं शिमलेके साथ बाहर चबूतरेपर चला गया। उस बुड्ढेने आकाशकी ओर अपनी आँखें उठाईं।

"आकाशमें कितने नक्षत्र हैं?"—उसने नसकी एक चुटकी लेते हुए धीरेसे कहा—"और ये नक्षत्र सब पृथक्-पृथक् लोक हैं।" इतना और कहकर उसने फिर दूसरी चुटकी ली।

मैंने उसके इस कथनका उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा, और सिर्फ ऊपरकी ओर चुपचाप देखता रहा। किसी रहस्यपूर्ण अनिश्चित बातके भारसे मेरा हृदय दबासा जा रहा था। मुझे ऐसा खयाल होता था, मानो तारागण हमारी ओर बड़ी गम्भीरता-पूर्वक देख रहे हों। पाँच मिनटके बाद प्रेमकवि वहाँ आया और हम लोगोंको भोजनके कमरेमें

आनेके लिए कहा। वीरा इसके बाद तुरन्त ही वहाँ पहुँची। हम सब वहाँ बैठ गये।

"ज़रा वीराको तो देखो।"—प्रेमकविने मुझसे कहा।

मैंने उसी ओर नज़र डाली।

"उसके चहरेपर आपको कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती?"

मुझे उसकी मुखाकृतिमें कुछ परिवर्त्तन तो ज़रूर दीख पड़ा, परन्तु मैंने, न मालूम क्यों, उसे उत्तर दिया—"नहीं, ज़रा भी नहीं।"

"उसकी आँखें लाल हो गई हैं।"—प्रेमकवि कहता गया। मैं चुपचाप सुन रहा था।

"ज़रा खयाल तो करो, मैं जब सीढ़ीसे होकर ऊपर आपके पास गया, तो मैंने श्रीमतीजीको रोते हुए पाया। आपका यह रोना बहुत दिनोंके बाद देखा गया है। मैं तुम्हें बता सकता हूँ कि इससे पहले आप उस समय रोई थी, जब कि हमारा बच्चा सशा जाता रहा था! देखिये तो आपने अपने 'फास्ट' द्वारा श्रीमतीजीकी क्या दशा कर डाली है।" प्रेमकविने मुसकराते हुए कहा।

मैंने कहना शुरू किया—"देखो वीरा नीकलवना, मैंने पहले ही कहा था। मैंने ऐसी आशा नहीं की थी।"

उसने बीच ही में टोककर कहा—"ईश्वर ही जान सकता है कि तुम्हारा कथन ठीक है या नहीं। शायद यही कारण था कि मेरी माँने मुझे इस प्रकारकी पुस्तकें पढ़नेसे मना किया था। वह जानती थी……"—इतना कहकर वीरा नीकलवना चुप हो गई।

"वह क्या जानती थी?" मैंने पूछा—"मुझे बताओ।"

"क्यों बताऊँ? मैं खुद ही इस बातके लिए लज्जित हूँ कि मैं किस लिए रो रही थी? लेकिन इस सम्बन्धमें हम लोग पीछे बात करेंगे। उस पुस्तकमें ऐसी बहुतसी बातें थीं, जिन्हें मैं नहीं समझ सकी।"

"तो पढ़ते समय तुमने मुझे रोका क्यों नहीं?"

"मैं उन सब शब्दोंको और उनके अर्थको तो समझ गई थी, किन्तु"—इतना कहकर वह अपना पूरा वाक्य समाप्त किये बिना ही स्वप्न जैसी दशामें देखने लगी। उसी समय बागीचेसे पत्तोंकी खड़खड़ाहट और तेज़ हवाकी अचानक सनसनाहट जैसी आवाज़ सुन पड़ी। वीरा चकित-सी होकर खुली हुई खिड़कीकी तरफ़ देखने लगी।

"मैंने तुमसे कहा था न कि आँधी आयगी!"—प्रेमकविने ज़ोरसे कहा—"परन्तु इस तरह टुक टकटकी लगाकर क्या देख रही हो, वीरा?"

उसने बिना कुछ बोले ही प्रेमकविकी ओर देखा। बहुत दूरमें बिजलीकी चमकके धुँधले प्रकाशने उसकी निष्कम्प मुखाकृतिपर एक रहस्यपूर्ण प्रकाश डाला।

"यह सब तुम्हारे फास्टके ही कारण हुआ है।"—प्रेमकविने फिर कहा—"भोजनके बाद हम सबको एक दूसरेसे पृथक् हो जाना चाहिए।"—"क्यों, कहिये महाशय शिमख ठीक है न?"

"पठन-पाठनका रसास्वादन करनेके बाद शारीरिक विश्राम जितना ही उपकारी है, उतना ही लाभप्रद भी है।"—उस दयालु-हृदय जर्मनने उत्तर दिया, और फिर एक गिलास शराब पी ली।

भोजनके बाद फौरन हम लोग एक दूसरेसे अलग हो गये। मैंने वीरासे विदा ग्रहण करते हुए उससे हाथ मिलाया। हाथ ठंढा था। जो कमरा मुझे सोनेके लिए दिया गया था, उसमें मैं गया और पोशाक बदलकर बिछौनेपर जानेके पहले मैं बहुत देर तक खिड़कीके पास खड़ा रहा। प्रेमकविकी भविष्यवाणी पूर्ण हुई। आँधी पास आ पहुँची और प्रचण्डरूपमें चलने लगी। आँधीका गर्जन तथा वर्षाके गिरनेका शब्द सुनाई देने लगा। मैं यह दृश्य देखने लगा कि झीलके ऊपर पासमें ही बना हुआ गिरजाघर बिजलीकी हरएक चमकमें कैसा दीख पड़ रहा था। एक क्षणमें तो वह दृश्य ऐसा मालूम पड़ता था, मानो श्वेत भूमिपर कोई काली चीज़ पड़ी हुई हो, और दूसरे ही क्षण वह दृश्य बदलकर ऐसा मालूम होता था, मानो काले भूमितलपर कोई सफेद चीज़ रखी हुई हो। फिर इसके बाद वह दृश्य अन्धकारमें बिलकुल विलीन हो जाता था। यद्यपि मेरी दृष्टि तो इस दृश्यकी ओर थी, पर मेरे विचार उस समय कहीं और ही जा रहे थे। मैं वीराके विषयमें सोच रहा था कि वह स्वयं 'फास्ट' पढ़नेके बाद मुझसे क्या कहेगी। मुझे उसके आँसुओंका ख्याल हो आया, और इसके साथ-साथ यह भी स्मरण हो आया कि उसने किस प्रकार ध्यान-पूर्वक मुझे पढ़ते सुना था।

[क्रमशः ।

गोरखपुर हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके लिए

पूज्य पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदीका सन्देश

प्रार्थना

मैं ५ वर्ष का था जब मुझे देवनागरी लिपि का प्रथमाभ्यास कराया गया था। तब से अब तक उसी लिपि में हिन्दी लिखने में मेरा अधिकांश समय व्यतीत हुआ। मैं इस बात का पक्षपाती हूँ कि इस लिपि और इस भाषा से मेरा प्रेम ही नहीं, इन दोनों पर मेरी परम श्रद्धा है। मेरी सम्मति तो यह है कि भारत की प्राचीन सभ्यता का जितने स्वाभिमान से जीते हैं उन सब को इस लिपि और इस भाषा पर श्रद्धा होनी चाहिए।

हिन्दी-साहित्य की सेवा करने वालों के लिए सम्मेलन का सभापति होना बड़े ही गौरव की बात है। इस दशा में मुझे यह पद ग्रहण

भार देने का आयोजन किया गया। परन्तु मुझ असमर्थ ने अपने को उसका पात्र न समझा। कारण और कुछ नहीं, केवल यह कि मुझ में इस पद के लिए आवश्यक काम करने की शक्ति नहीं। और, जो काम मैं अपनी तरह से कर नहीं सकता उसका भार लेने के लिए तैयार हो जाना मेरी आत्मा के सिद्धान्त के विरुद्ध है। इस विषय में मुझ से और बाबा राघवदासजी से बहुत कुछ वार्तालाप हुआ है। आशा है, वे मेरे पूर्वोक्त कारण की यथार्थता का स्वीकार कर देने की अवश्य कृपा करेंगे।

बाबाजी की आज्ञा से मुझे सम्मेलन के कार्यकर्ताओं से

प्रार्थना के रूप में, कुछ निवेदन
करना है। वह ~~इस~~ इस प्रकार :—

सम्मेलन, चंदे से कुछ रुपया
एकत्र करे। इतना, जितने से कई सौ
रुपये महीने की आमदनी हो। फिर
वह अपने प्रयाग के प्रधान दफ्तर में
कुछ योग्य कर्मचारी रक्खे। साहित्य
की शाखाओं के अनुसार प्रत्येक
शाखा के लिए एक एक सभापति
और एक एक मंत्री अलग अलग
नियत करे। मंत्री वेतनभोगी हो।
सभापति ऐसा हो जो सम्मेलन
के काम के लिए कुछ समय
दे सके। प्रत्येक शाखा-समिति
के दस बीस, जितने मिल सकें,
ऐसे सदस्य नियत करे जो

4 उस आयोग से सम्बन्ध रखने-
वाली कुछ उपयोगिनी पुस्तकें
तैयार करें। वे तैयार हो जाने
पर सभापति उनकी उपयोगिता
की जांच करें। जो ठीक उतरें
उन्हें सम्मेलन के प्रधान कार्यालय
को वे भेज दें। इसी प्रकार
सभी आयोगों की पुस्तकें बन
जावेंगी। लिखने वालों
को यथाशक्ति पुरस्कार दिया जाय।
निश्चय प्रधान सभापति और
सम्मेलन की कार्य समिति के
सदस्य अनुमान से करें।

प्रधान सभापति कुछ से
कुछ कहीं, के एक एक
काम की निगरानी आदि के लिए
सम्मेलन में पधारें।

वार्षिक सम्मेलन में

५ नौकरी किंतु पुस्तकें भेजनी
जायें। और बनाना जाय कि
हाल में इतना खास हुआ।

यह क्रम हर साल
जारी रहे। यदि लेखक अपनी
पुस्तकें स्वयं प्रकाशित करना
चाहें तो कर सकें। उनका
सम्मेलन उनका प्रकाशन करे
और उनकी बिक्री से लाभ
उठावे। कभी वह नाम न
सम्मेलन अपना निजी का
प्रेस करके प्रकाशन के
हिसाब को उपरोक्त बना
जाय और जरूरतों से
अलग उन्हीं जिन पुस्तकें
प्रकाशित करे तथा हिन्दी साहित्य
की उन्नति के नई नई योजनायें हाथ में
लावे। इति शम
१०-१०-२८ महावीरप्रसाद द्विवेदी

'सिन्दूर-वाला'

[लेखक :— श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र]

एक

चैतकी फसल बोकर निधिराम कलकत्ते आता, और वर्षा शुरू होते ही देश लौट जाता। इन छै महीनोंमें मैं रोज़ देखता कि एकचक्षु निधिराम पाठक सिरपर लाल रंगकी एक छोटीसी टीनकी पेटी लादे आवाज़ लगाता जा रहा है—"चीना सिन्दू-र ल्यो, चीना सिन्दू-ऊ-र!" और उसके पीछे नंग-धड़ंगे लड़कोंके झुंड-के-झुंड वृन्दावन-लेनकी नींदसे अलसाती-हुई दुपहरीको सहसा चौंका कर चिल्ला रहे हैं—"काना झींगूर ल्यो, काना झींगू-ऊ-र!" कब और किस छन्द-रसिक शिशु-कविने सिन्दूर बेचनेवाले निधिरामके लिए यह अपूर्व स्तुतिवाणी पहले-पहले अपने श्रीकण्ठसे निकाली थी, इसे कोई नहीं जानता। शायद स्वयं कविको भी इस बातकी सुधि नहीं, लेकिन बहुत दिनोंसे हर साल नये-नये शिशु-कण्ठ एक ही भाषामें—एक ही वाणीमें—निधिरामका स्वागत करते आ रहे थे। इस असुन्दर कुरूप स्वागतके लिए निधिराम कभी भी किसी दिन गुस्सा नहीं हुआ, बल्कि देखा गया है कि प्रत्युत्तरमें झींगुर जैसी आवाज़ देकर उसने अपने बच्चे-साथियोंको उलटा खुश किया है।

बीस वर्षसे इसी तरह चला आ रहा था। यकायक एक दिन इस नियमका व्यतिक्रम देखकर निधिरामको बड़ा आश्चर्य हुआ। गलीमें एक जगह कुछ बच्चे इकट्ठे होकर खेल रहे थे। निधिरामने वहाँ आकर ऊँचे स्वरमें आवाज़ दी—"चीना सिन्दू-र ल्यो, चीना सिन्दू-ऊ-र!"

दूरसे दो-एक कण्ठसे परिचित प्रतिध्वनि सुनाई तो दी, लेकिन रोजकी तरह वह जमी नहीं ठीकसे।

बच्चोंका झुण्ड किसी एकको घेरकर बड़ी सावधानी और विस्मयके साथ चुपचाप खड़ा हुआ उसकी बातें सुन रहा था। निधिराम पास आकर खड़ा हो गया। बात कह रही थी एक लड़की। अपनी नीलाम्बरी साड़ीका आँचल कमरसे लपेटकर हाथ हिलाती हुई वह इस बातको प्रमाणित कर रही थी कि कानेको काना और लंगड़े-लूलेको लंगड़ा नहीं कहना चाहिए, और अगर कोई कहेगा, तो उसके साथ वक्ताकी ज़िन्दगी-भरके लिए छुट्टी (शायद असहयोग?) हो जायगी; और गुड्डा-गुड़ियोंके ब्याहमें वह उसे कभी भी न्योता न देगी। समाज-च्युति-(या जाति-बहिष्कार)-के इस कठोर दण्डके डरसे, परिचित कण्ठ-ध्वनि सुनकर भी, बच्चोंका झुण्ड आज चुप था,—निधिराम इस बातको समझ गया और वक्ताको एक बार खूब गौरसे देख वह चुपचाप वहाँसे चल दिया।

शामको लौटते वक्त गलीकी मोड़पर नीले मकानके दरवाज़ेपर दुपहरीकी शिशु-सभाकी इस नेत्रीके साथ निधिरामका साक्षात-परिचय हुआ। निधिरामको देखते ही बिना कुछ भूमिकाके बालिकाने कहा—"तुमने पहले जनममें कानेको काना कहा होगा, क्यों सिन्दूरवाले?"

यह कहनेकी कोई खास ज़रूरत तो नहीं कि पहले जन्मकी बात निधिरामको बिलकुल भी याद न थी, लेकिन फिर भी इस नवागता बालिकाके साथ बातचीतका सिलसिला जमानेके लिए उसने कहा—"हाँ, लच्छिमी माँ!" (हाँ, रानी बिटिया)

"माँ कहती थी कि इसीसे इस जनममें तुम काने हुए हो, ठीक है न?"—कहकर उसने एक प्रचण्ड अभिशाप-वाणी मुँहसे निकाली—"शान्ति, हुकमा, ईसुरी, मोती—सब कोई उस जनममें काने होंगे! तुम्हें चिढ़ाते हैं न?"

निधिरामने दाँतों तले जीभ दबाकर कहा—"ऐसी बात नहीं कहते लच्छिमी-बिटिया!"

अब तो 'लच्छिमी माँ'ने उग्र रूप धारण कर लिया,

बोली—"कहूँगी, हजार बार कहूँगी। वे तुमसे काना क्यों कहते हैं?" कहकर ज़रा थम गई; फिर पूछने लगी—तुम ब्राह्मन हो?"

निधिरामने कहा—"हाँ।"

प्रश्न करनेवालीकी आँखोंमें सन्देह झलकने लगा, कह उठी—"देखूँ जनेऊ?"

निधिरामने फटी मिरजईके भीतरसे मैला जनेऊ निकालकर दिखाया। बालिकाने कहा—"कल रधियाके लड़केके साथ मेरी लड़कीका ब्याह होगा। तुम मन्तर पढ़ दोगे?"

निधिरामने उसी क्षण पौरोहित्य स्वीकार कर लिया, कहा—"पढ़ दूँगा।"

"लेकिन हम लोग ग़रीब आदमी हैं, दच्छिना नहीं दे सकेंगे, समझे?"—बड़ी गंभीरताके साथ बालिका कहने लगी—"इसके और पीले हाथ कर दें, सोई छुट्टी है। उन दोनोंको तो किसी तरह ब्याह-व्यूह दिया है। मइया! लड़के-वाले पाल-पोसकर बड़ा करना बड़ा मुशकिल काम है।" * इतना कहकर अपना गुड्डा-गुड़ियोंका डब्बा उठा लाई, और सिन्दूर-वालेके हाथमें देकर बोली—"देखो तो सही, बिटियाका मेरीका मुँह सूख गया है—मारे घामके। अब इसे पानीमें नहलाकर छाँहमें रखना होगा, नहीं तो मुहल्लेके लोग इसका मुँह देखते वक़्त नाक-मुँह सिकोड़ेंगे,—कहेंगे, अच्छी नहीं है।"

इतनेमें भीतरसे बुलाहट हुई—"सरसुती?"

"उँह, मेरी मैया! घड़ी-भर अपने लड़के-बालोंके दुख-सुखकी बातें भी कर लूँ, सो भी नहीं।" कहकर बालिका खड़ी हो गई। गुड्डा-गुड़ियोंका बकस उसके हाथमें देकर निधिरामने कहा—"तो चलता हूँ अब, लच्छिमी बेटी!"

"मैं लच्छिमी नहीं हूँ—सरस्वती हूँ सरस्वती! मुझे मा सरस्वती कहा करो, समझे?"—इतना कहकर बालिका भीतर चली गई।

निधिरामके साथ सरस्वतीके परिचयका सूत्रपात हुआ इस तरह।

दो

यह बातूनी लड़की निधिरामको सहसा बहुत अच्छी लगी। धीरे-धीरे, कालीघाटके खिलौने, लाखकी चूड़ियाँ, जरीदार कपड़ोंके दो-एक टुकड़े निधिरामकी पेटीमें जगह पाकर अन्तमें सरस्वतीके खिलौनोंके बीच आश्रय पाने लगे। प्रतिदिनके आनन्द-शून्य लगातार एक-सी खरीद-बिक्रीके बीचमें इस लड़कीके साथ दो घड़ी बातचीत करके निधिरामको बड़ा आनन्द मिलता; कभी-कभी उसने उस नीले मकानके जंगलेके बाहर चबूतरेपर बैठकर सिन्दूरकी पेटी अपनी गोदमें रखे, सरस्वतीके साथ उसके बाल-बच्चोंके सुख-दुखकी बातें करते-करते घंटों बिता दिये हैं।

दूसरे मुहल्लेमें जाकर फेरी करनेसे चार-छै पैसेका रोज़गार होता; इस बातका बीच-बीचमें उसे खयाल भी हुआ है, लेकिन फिर भी वह अपनी प्रगल्भा बान्धवीकी बातोंका मोह छोड़कर उठकर जा नहीं सका है,—ऐसी दशामें, जब कि वह समझता था कि उसकी बातें बिलकुल निरर्थक फिजूल हैं और कभी भी—निधिरामके भी—किसी काम नहीं आ सकतीं।

वर्षाके अन्तमें निधिराम देश चला गया।

अबकी बार देशमें एक तरहकी घातक बीमारीका दौर-दौरा हुआ। उसके आक्रमणसे निधिरामको भी छुटकारा न मिला। छै-सात महीने बीमारी पाकर, एक दिन, माह-फागुनकी दुपहरीमें निधिरामने अपनी सिन्दूरकी लाल पेटी सिरपर लादे सरस्वतीके मकानके सामने आकर आवाज़ दी—"चीना सिन्दू-र लेउ, चीना सिन्दू-ऊ-र!"

पहलेकी भाँति कोई धम्म-धूम करके उतरकर दरवाज़ा खोलकर बाहर नहीं निकला। दूसरी बार आवाज़ देनेपर

* मा'की बातको बेटीने किस तरह ज्यों-की-त्यों हिरदेमें रख लिया है, ज़रा देखिये तो सही।

नीचेके कमरेका एक जंगला खुल गया। जंगलेके भीतर सरस्वतीको देख, भर-मुँह हँसकर निधिरामने पूछा—"इस बूढ़ेको अभी तक भूली नहीं हो, सरसुती-बेटी ?"

सरस्वतीने गरदन हिलाकर जवाब दिया—नहीं। निधिरामको बड़ा आश्चर्य हुआ, सरस्वती तो बिना बातचीतके रहनेवाली नहीं। पूछा—"तुम्हारे लड़के-बाले सब अच्छी तरहसे हैं न, बिटिया ?" अब सरस्वती बोली—"वे सब मैंने रखियाको दे दिये हैं।" इसके बाद और कोई प्रश्न करनेका सूत्र निधिरामको ढूँढ़े न मिला। कुछ देर ठहरकर, बहुत सोच-विचारके बाद उसने कहा—"एक बार बाहर आओगी बेटी ?"

सरसुती कुछ बोली नहीं ; पीछेसे उसका छोटा भइया बोल उठा—"अम्माने कहा है, जीजी अब बाहर नहीं निकलेगी। जीजी बड़ी हो गई है न।"

—अच्छा ! इसीसे !

अब कहीं निधिरामकी निगाहमें सरस्वतीका परिवर्तन ठीक तौरसे आया। साल-भरसे उसने सरस्वतीको नहीं देखा है, परन्तु एक साल पहले देश जाते समय जिस बातूल चंचल लड़कीसे उसने विदा ली थी, उसमें और इसमें ज़मीन आसमानका फ़र्क़ है। निधिराम इससे किस भाषामें—किस विषयमें—बातचीत करे, यकायक उसकी कुछ समझमें न आया। ज़रा इधर-उधर करके, घरसे जो वह नयापटाली गुड़ * लाया था, उसकी पोटली जंगलेके सींकचों में से सरस्वतीके हाथमें देकर बोला—"देशसे लाया हूं सरसुती माँ, ले आओ इसे।" इसके बाद अपने घर-सम्बन्धी दो-एक असम्बद्ध बात कहकर निधिराम चला गया। अपने गाँवके कारीगरसे वह विचित्र रंगके लकड़ीके खिलौने बनवा लाया था, उनको पेटीसे निकालनेका तो मौक़ा ही न मिला।

दूसरे दिन निधिराम अपनी शोनकी पेटी सिरपर लिये नीले मकानके जंगलेके सामने आ खड़ा हुआ। नीचेके कमरेमें एक बड़ी चौकीपर बैठी सरस्वती पढ़ रही थी। निधिरामने कोमल स्वरसे पूछा—"क्या पढ़ रही हो, सरसुती माँ ?"

सरसुतीने मुँह उठाकर निधिरामको देखकर हँसते हुए कहा—"कथामाला।"—दूसरे क्षणमें ही पूछ बैठी—"माँने पूछा है, गुड़के दाम कितने हैं ?"

इस प्रश्नको सुनकर निधिराम ठिठक-सा गया ; फिर सूखे मुँहसे बोला—"नानाजीसे कहना, सरसुती मा, मेरे घरका बना हुआ गुड़ है, पैसे नहीं लगे।"

सरसुतीने कहा—"अच्छा।"

इसके बाद, दो दिन तक उस रास्तेमें निधिराम दिखाई न दिया। तीसरे दिन, दोपहरको वह अपने नियमानुसार नीले मकानके जंगलेके सामने आकर खड़ा हो गया, बोला—"सरसुती बेटी !"

सरसुती सिलेट परसे मुँह उठाकर एकदम पूछ बैठी—"दो दिन आये क्यों नहीं थे ?"

निधिरामके चेहरेपर आनन्दोल्लासकी लालियाँ दौड़ उठीं।—तो सरसुतीने उसकी याद की है ! अनुपस्थितिका एक झूठा बहाना बताकर निधिरामने बड़ी सावधानीके साथ कोमल स्वरमें कहा—"सरसुती मा ! एक पुस्तक लाया हूँ, पढ़ोगी ?"—कहकर सींकचोंमेंसे एक कृत्तिवास-कृत जिल्ददार रामायण—चारों ओर ताककर—सरस्वतीकी चौकीपर रख दी।

सरस्वतीने उसे पास बुलाकर पूछा—"तसवीरें हैं इसमें ?"

निधिराम मुसकराकर कहा—"बहुत ! राम, रावण, हनूमान—सबकी तसवीर ! मैं पढ़ना नहीं जानता, सरसुती, पहले तुम पढ़ लो, फिर मुझे पढ़कर सुनाना।"

सरस्वतीने कहा—"अच्छा। फिर तुम कब आओगे तो ?"

---

* पटाली गुड़—ताड़के रसका बना हुआ थालीके आकारका जमा हुआ गुड़, जो खानेमें बहुत ही स्वादिष्ट और सुगन्ध-युक्त होता है।

निधिराम एक उज्ज्वल आनन्द-हास्यके साथ आनेका वादा करके चला गया।

× × ×

सरस्वती रामायण पढ़ती और निधिराम अपनी सिन्दूरकी पेटी गोदमें रखके खिड़कीके पास चबूतरेपर बैठा हुआ सुनता। बीचमें जो एक ईंटकी दीवालका व्यवधान था, श्रोता और पाठिका—किसीको भी उस बातकी सुधि न रहती।

सहसा एक दिन वह व्यवधान बढ़ गया।

पाठ जब अयोध्याकाण्ड तक आगे बढ़ चुका था, तब एक दिन निधिरामने आकर देखा कि नीचेके उस कमरेमें उस चौकीपर सरसुतीके बदले दो भले आदमी साफ़-सुथरे बिछौनेपर बैठे हुए हुक्का पी रहे हैं। निधिरामने आवाज़ दी—"चीना सिन्दू—र लो—चीना सिन्दू—ऊ-र।

दुमँज़िलेकी एक खिड़की खुल गई। सरस्वतीने जंगलेमें खड़े होकर बायाँ हाथ मुँहपर रखकर और दाहना हाथ हिलाकर इशारा किया कि वह आज पढ़ेगी नहीं।

निधिराम जिस रास्तेसे आया था, उसी रास्तेसे लौट गया। गलीकी मोड़पर सरस्वतीकी सहेली राधारानी उर्फ़ रधियाने निधिरामको समाचार दिया—सरस्वतीका जल्दी ब्याह होनेवाला है, और आज उसे वे देखने आये हैं।

सरसुती-माँका ब्याह! फिर सासके घर! कितनी दूर है वह! निधिरामने फिरकर दूसे एक बार नीले मकानके दुमँज़िलेकी बन्द खिड़कीकी ओर देखा, फिर धीरे-धीरे मन्द गतिसे चला गया।

तीन-चार दिन अपनी कोठरीमें ही बिताकर फिर उसी पेटीको सिरपर लादे उसी गलीकी मोड़पर आकर निधिरामने एक दिन आवाज़ दी—"चीना सिन्दू—र लो, चीना सिन्दू—ऊ-र।"

उस दिन नीले मकानके दरवाज़ेपर नौबत बज रही थी। निधिराम बहुत देर तक बाट देखता रहा—ऊपरके खुले जंगलेके पास आकर आज भी कोई खड़ा हो; लेकिन आज कोई न आया।

× × ×

दूसरे दिनसे फिर पहलेके नियमानुसार निधिरामकी आवाज़ गलीमें सर्वत्र गूँजने लगी, सिर्फ़ नीले मकानके सामनेसे चुपचाप निकल जाता,—हज़ार कोशिश करनेपर भी उसकी ज़ुबानसे एक लफ़्ज़ नहीं निकलता।

तीन

रोज़की तरह उस दिन भी निधिराम चुपचाप चला जा रहा था; इसी समय नीले मकानके जंगलमेंसे एक बच्चेने आवाज़ दी—"ओ सिन्दूरवाले! ठहरो, जीजी बुला रही है।"

मारे ख़ुशीके निधिरामका कलेजा उछल उठा। मुँह फेरते ही उसने देखा कि नीचेके जंगलमें सरस्वती खड़ी है। निधिराम मारे आनन्दके गद्गद् कण्ठसे कह उठा—'कब आई सरसुती? मुझे तो मालूम ही नहीं, इसीसे—"

सरस्वतीने संक्षेपमें कहा—'आज।"

इसके बाद निधिराम अपने आप ही घंटे-भर तक न जाने क्या-क्या बातें करता रहा। अन्तमें बोला—"तुम अपनी सिन्दूरकी डिबिया तो ले आओ, सरसुती-माँ! बहुत बढ़िया सिन्दूर है।"

उस दिन तो सरस्वतीकी सोनेकी डिबिया ऊपर तक सिन्दूरसे ख़ूब भरकर निधिराम घर चला गया। उसके बाद फिर धीरे धीरे विचित्र रंगकी काठकी डिबियोंमें सिन्दूरका उपहार आना शुरू हुआ। साथ:ही पांवके महावरसे लेकर माथेकी बेंदी तक सुहागकी सभी चीज़ें दिखाई देने लगीं।

अबकी बार बरसातमें निधिराम देश नहीं गया।

क्वारमें दुर्गा-पूजाके पहले सरस्वती जिस दिन सासके घर गई, निधिराम भी उसी दिन देश चला गया। वर्षाके दिनोंमें घर न आनेके कारण निधिरामकी आर्थिक हानि हुई, और इसलिए उसकी स्त्रीसे लेकर छोटे बच्चे तकने उसे काफ़ी फटकार बताई; लेकिन आर्थिक हानिकी उस बड़ी रक़मने उसे ज़रा भी विचलित न किया।

फागुनकी बयार चल रही है। पेड़ोंकी डालियोंमें मानो किसीने हरा रंग पोत दिया हो।

निधिराम कलकत्ते आया।

सरस्वती ससुरालसे वापस आई है या नहीं, उसे कुछ खबर नहीं। नीले मकानके सामने खड़े होकर उसने आवाज़ लगाई—"सिन्दू-र लो, चीना सिन्दू-ऊ-र।"

कोई जवाब न मिला। निधिराम उसी गलीसे लौट गया; मगर, फिर न जाने क्या सोचकर वापस आया और ऊँचे स्वरसे कहने लगा—"सिन्दू-र लो, चीना सिन्दू-ऊ-र।"

बहुत ही धीमी पैरोंकी आहट मानो सुनाई पड़ी। निधिराम काँपते हुए कलेजेसे जंगलेके पास आकर प्रतीक्षामें खड़ा हो गया। जंगला खोलकर सरस्वतीके छोटे भइयाने कहा—"तुमको इस गलीसे आनेके लिए माँने मना कर दिया है, सिन्दूरवाले!"

अनजानमें कोई कसूर हो गया होगा, इस सोचमें निधिरामका मुँह सूख गया। हिचक-हिचककर उसने कहा—"कि-यों?"

इतनेमें दरवाज़ा खुला। दरवाज़ेपर आ खड़ी हुई उदास चेहरा लिये सफेद कपड़े पहने सरस्वती!—देहपर एक भी गहना न था—सुहागका एक चिह्न तक नहीं!

निधिराम चौंक उठा। उसके बाद सिरकी पेटी ज़मीनपर रखकर, उसपर बैठकर, अर्थ-हीन उद्भ्रान्त दृष्टिसे सामनेकी ओर देखता रह गया।

नीले मकानका दरवाज़ा बन्द हो गया।

होश आनेपर, निधिराम जब वापस आने लगा, तब उसके सिरकी पेटी बीस मन भारी हो गई थी।

इसके बाद, फिर सात-आठ दिन तक उस गलीमें निधिरामको किसीने देखा नहीं। आखिर एक दिन सहसा परिचित कण्ठस्वर सुनकर जंगला खुला। निधिरामकी मूर्ति आँखों तले पड़ी। सिन्दूरकी पेटीकी जगह उसके सिरपर एक बड़ा-भारी फलका डला था। उसके भारी बोझसे झुका हुआ वृद्ध निधिराम पाठक पसीनेसे तराबोर होकर नीले मकानके सामनेसे गलीके रास्तेपर आवाज़ देता आ रहा है—"फल लो मा, पके-ए—फल!"

—धन्यकुमार जैन

रूसी उपन्यासकार तुर्गनेव

[लेखक :—बनारसीदास चतुर्वेदी]

जिन रशियन लेखकोंकी प्रतिभाके कारण रूसी साहित्य संसारकी अन्य भाषा-भाषियोंके आदरका पात्र बना है, उनमें टाल्सटाय, तुर्गनेव, डोस्टोवस्की, गार्की और चीहोवके नाम विशेषतः उल्लेख-योग्य हैं। इनमें टाल्सटायके अनेक ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद हो चुका है, और हिन्दी-भाषा-भाषी उनसे काफी परिचित भी हैं। उनके कई जीवन-चरित भी देशी भाषाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। डोस्टोवस्कीका भी कोई उपन्यास हिन्दीमें अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुका है। गार्की तथा चीहोवकी एकआध कहानी कहीं छपी हमने देखी है, पर तुर्गनेवकी ओर हिन्दी-जनताका ध्यान अभी नहीं गया है। हिन्दी-भाषा-भाषियोंका कर्तव्य है कि जहाँ वे मौलिक ग्रन्थोंसे अपने साहित्यके भंडारकी पूर्ति करें, वहाँ साथ-ही-साथ संसारके साहित्यके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद भी हिन्दीमें प्रकाशित करें। जगतके उन महारथियोंमें—जिनके ग्रन्थ केवल एक प्रान्त या एक देशके लिए ही निर्मित नहीं होते, बल्कि जिनके भाव समुद्रों वनों और महाद्वीपोंकी दूरीको चीरते हुए प्रत्येक सहृदय मनुष्यके अन्तस्तल तक पहुँचनेकी शक्ति रखते हैं—तुर्गनेवकी गणना निस्संकोच की जा सकती है।

तुर्गनेवका जन्म २८ अक्टूबर सन् १८१८ में

आर्येल नामक स्थानमें हुआ था। उनकी माताका नाम वार्वरा पैट्रोवना और पिताका नाम सेर्गिएवच तुर्गनेव था। माताके यहाँ काफी धन-सम्पत्ति थी। हजारों एकड़ भूमि और पाँच हजार दास-दासी थे। पिताका शरीर गठा हुआ था, कंधे चौड़े, और वे लम्बे कदके फौजी आदमी थे। माता भोग-विलासप्रिय और सदा अस्वस्थ रहनेवाली थी। तुर्गनेवके शरीरका गठन अपने पिताके तुल्य था, पर स्वास्थ्यपर माताकी अस्वस्थताका जबर्दस्त प्रभाव पड़ा था।

चार वर्षकी उम्रमें तुर्गनेवको अपने माता-पिताके साथ जर्मनी, फ्रान्स और स्वीट्ज़रलैण्ड आदि देशोंकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नौ वर्षकी अवस्था तक तुर्गनेवको ग्राम्य जीवन व्यतीत करना पड़ा। माता-पिताकी ज़मींदारी थी, सैकड़ों दास-दासियाँ थीं और सुखके साधनोंकी कोई कमी नहीं थी। आस-पासका प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर था। घरसे निकलकर वह खेतों तथा उपवनोंकी सैर किया करता था। कहीं गिलहरियोंको एक डालसे दूसरी डालपर उछलते देखता, तो कहीं सुन्दर पुष्पोंकी सुगन्ध लेता। कभी तालाबमें मछलियोंको अपने हाथसे आटा खिलाता, तो कभी नावमें बैठकर सरोवरकी सैर करता। भाँति-भाँतिके पक्षियोंका मधुर कलरव उसके कानोंको प्रिय हो गया था, और नाना प्रकारके वृक्षोंसे मानो उसने मैत्री स्थापित कर ली थी। बाल्यावस्थाके संस्कार जीवन-भर रहते हैं। तुर्गनेवके उपन्यासोंमें प्राकृतिक दृश्योंका जो मनोहर वर्णन स्थान-स्थानपर मिलता है, उसके मूलमें बाल्यावस्थाके संस्कार ही थे।

माता-पिताका जीवन

तुर्गनेवके माता-पिताका कोई आदर्श जीवन नहीं था। दास-दासियोंकी भरमार थी। अतिथियोंका आवागमन रहता था। दैनिक कार्यक्रम असंयमी ज़मींदारोंकी तरहका था। प्रातःकाल लोमड़ीके शिकारमें बीतता, दोपहरको डटकर भोजन और विश्राम होता और सन्ध्याके समय घरपर ही नाटक या नाच होता। पिताजी विशेष चरित्रवान व्यक्ति नहीं थे। कम-से-कम वे एक-पत्नी-व्रतके तो क़ायल नहीं थे, और अनेक दासियोंसे उनके अनुचित सम्बन्धकी बात कही जाती है। आदमी सीधे-सादे और लापर्वाह थे। चूँकि उन्होंने एक धनाढ्य लड़कीसे विवाह किया था, इसलिए अपनी पत्नीका रौब आपपर ग़ालिब रहता था। तुर्गनेवकी माताका स्वभाव बहुत ही खराब था। दयाका तो उनमें लेश नहीं था। ज़रासे अपराधपर दास-दासियोंको कोड़े लगवाना उनके लिए मामूली-सी बात थी। कहा जाता है कि एक बार दो किसानोंको उसने साइबेरिया भेजे जानेकी (जो कालेपानीके समान भयंकर दंड था) सज़ा दी थी। उन बेचारोंका अपराध केवल इतना ही था कि जिस समय वह बग़ीचेमें टहलने आई थी, उस समय कार्यमें व्यस्त होनेके कारण वे उसे सलाम करना भूल गये थे! एक बार तुर्गनेवके बड़े भाईके किसी अपराधपर तुर्गनेवकी माताने अपने हाथसे उसके चूतड़ोंपर दस कोड़े जमाये, और स्वयं इस भयंकर कार्यको करते हुए बेहोश-सी हो गई। वह बच्चा नंगे-बदन खड़ा हुआ काँप रहा था। माँकी यह दशा देखकर वह अपना रोना बन्दकर चिल्लाने लगा—"अरे! अम्माको पानी लाओ, पानी लाओ।"

तुर्गनेवने बड़े होनेपर एक बार कहा था—"यदि मुझसे छोटासा भी कोई कसूर बन जाता, तो पहले तो मेरे शिक्षक मुझे डाँट-फटकार बताते, उसके बाद मुझपर कोड़े पड़ते। खाना बन्द कर दिया जाता और मुझे बग़ीचेमें भूखे घूमना पड़ता। आँसू बह-बहकर मेरे मुँहमें आते, और उनका नमकीन स्वाद लेकर मैं अपनेको सन्तुष्ट कर लेता।" माताकी यह कठोरता तुर्गनेवको जीवन-भर नहीं भूली। तुर्गनेवने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू'* में जिस क्रूर-स्वभाव स्त्रीका चित्र खींचा है, वह सम्भवतः उनकी माताका ही चरित्र-चित्रण है।

एक बार तो माताके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर तुर्गनेवने

* तुर्गनेवकी इस कहानीका अनुवाद 'विशाल-भारत' के १९२८ के अक्टूबर और नवम्बरके अंकोंमें प्रकाशित हो चुका है।—लेखक

उसके विरुद्ध भागनेका विचार कर लिया था। यही नहीं, बल्कि एक रातको बारह बजे वे घरसे चल भी दिये थे, पर जर्मन पढ़ानेवाले शिक्षकने उन्हें घरसे बाहर जाते देख लिया और समझा-बुझाकर रोक लिया। माताके अत्याचारोंका बालक तुर्गनेवके स्वभावपर बड़ा असर पड़ा। उसके पेटमें धड़का बैठ गया। स्वतंत्र-रूपसे कार्य करनेकी प्रवृत्ति जाती रही। तुर्गनेवमें अपने अधिकारोंके लिए लड़ने-झगड़नेके साहसका जो अभाव था, उसका मूल कारण यही था कि बाल्यावस्थामें अपनी माताके अत्याचारोंको देखते-देखते उनकी इच्छा शक्ति निर्बल हो गई थी।

बाल्यावस्थामें भी तुर्गनेवमें चीज़ोंके सौन्दर्य अथवा कुरूपताको जाँच करनेका गुण दृष्टिगोचर होता था। एक बार राज घरानेकी एक बुढ़िया तुर्गनेवकी मातासे मिलने आई। माताने बड़े डरते हुए अपना बालक उनकी गोदमें दिया। थोड़ी देर तक उस बुढ़ियाकी शकल-सूरत देखकर तुर्गनेवने कहा—"तुम तो बिलकुल बंदरिया हो।" बात सोलह आना ठीक थी। उस वक्त तो तुर्गनेवकी माता चुप रही, पर पीछे उसने खूब कोड़े जमाये।

एक बार कोई फर्स्ट-क्लास कहानी-लेखक तुर्गनेवके घरपर पधारे। बालक तुर्गनेवने अब तक रशियन भाषाके किसी लेखकके दर्शन नहीं किये थे। माताने कहा—"अच्छा, इस कहानीको पढ़कर सुनाओ तो सही।" कहानी उन्हीं लेखक महोदयकी थी। तुर्गनेवने कहानी तो पढ़कर सुना दी। फिर आप लेखक महाशयके मुँहपर ही बोले—"आपकी कहानी अच्छी तो हैं, पर क्राइलोवकी कहानियाँ आपसे अच्छी होती हैं।" इस समालोचना-प्रवृत्तिका दुष्परिणाम तुर्गनेवकी पीठको भोगना पड़ा, जिसकी याद उन्हें बहुत दिनों तक रही। बड़े होनेपर एक बार तुर्गनेवने कहा था—"उस कहानी लेखकके मुँहपर ही इस तरहकी सच बात कह देनेकी वजहसे मेरी माँ बहुत ही नाराज़ हो गई, और मुझे इतने अधिक कोड़े लगाये कि अपनी मातृ-भाषाके लेखककी प्रथम भेंटको मैं ज़िन्दगी-भर भूल नहीं सकता।"

जिस तरह आजकल हिन्दुस्तानमें बड़े-बड़े शिक्षितोंके कुटुम्बोंमें अंग्रेज़ीपनकी बू घुस आती है, उसी प्रकार उन दिनों रूसमें फ्रेंच भाषाकी इज्ज़त थी। रूसी भाषाको स्वयं रशियन लोग गँवारू भाषा समझते थे। तुर्गनेवको बाल्य अवस्थामें फ्रेंच तथा जर्मन भाषाका अभ्यास कराया गया था। तुर्गनेवने रशियन भाषा अपने दास-दासियोंके संसर्गसे ही सीखी। शायद किसी नौकरने ही उन्हें रूसी भाषा लिखना-पढ़ना सिखलाया। आठ वर्षकी उम्रमें अपने एक नौकरके लड़केके साथ आपने घरकी पुरानी अलमारीमेंसे रशियन भाषाकी कविताकी कुछ किताबें चुराकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था।

शिक्षा

नौ वर्षकी उम्रमें तुर्गनेवके माता-पिता मास्को चले आये और वहाँ वे एक छात्रालयमें भर्ती करा दिये गये। यहींपर सन् १८२६ में इन्होंने अंग्रेज़ी-भाषाका अध्ययन प्रारम्भ किया। आगे चलकर अंग्रेज़ी-भाषाके ज्ञानके कारण उन्हें शेक्सपियर, शेली, कीट्स और बाइरन इत्यादि कवियोंकी कविताका आनन्द लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद घरपर ही पढ़कर उन्होंने मास्को-विश्वविद्यालयकी मेट्रिककी परीक्षा दी। उस समय उनकी उम्र १४ वर्ष थी। इसके बाद वे विश्व-विद्यालयमें भर्ती हुए। वहाँ उनका मुख्य विषय था इतिहास और दर्शनशास्त्र। संयुक्त-राज्य अमेरिकाके प्रति उनके हृदयमें विशेष प्रेम था, इसलिए साथके लड़के उन्हें मज़ाक़में 'अमेरिकन' कहा करते थे। इसके बाद वे सेन्ट-पीटर्सबर्गके विश्वविद्यालयमें भर्ती हुए। इन्हीं दिनों उनके पिताकी मृत्यु हो गई। उस समय उनकी माता इटलीमें स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिए गई हुई थी।

दास-दासियोंके संगका कुप्रभाव

दास-दासियोंसे जहाँ तुर्गनेवको रशियन-भाषाका ज्ञान प्राप्त हुआ, वहाँ उन्हें दुश्चरित्रताकी शिक्षा भी इन्हीं दास-दासियोंने दी। बड़े घरोंके लड़कोंको नौकर-चाकर ही अक्सर बदचलन

बना देते हैं। तुर्गनेवके असंयमित जीवनका कारण वे ही हुए। तुर्गनेवके चरित-लेखकने उनकी यौवनावस्थाके अनेक चासलेटी किस्से लिखे हैं, जिन्हें यहां उद्धृत करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुर्गनेवने विवाह नहीं किया, और अपने जीवन-भर वे प्रेममें ही फँसते रहे—कभी किसी दासीसे प्रेम किया, तो कभी किसी विवाहिता स्त्रीसे, और कभी किसी ऐक्ट्रेस या नटीसे ही! आगे चलकर तुर्गनेवके जीवनमें जो निराशाके दृश्य देखनेमें आते हैं, उनका मुख्य कारण यही संयम-हीनता ही प्रतीत होती है। इस विषयपर हम अधिक नहीं लिखना चाहते। केवल एक पत्रका, जो तुर्गनेवने एक नवयुवक साहित्य-सेवीको लिखा था, कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

"बड़े खेदकी बात है कि तुम किसी एक लड़कीके ही प्रेममें उन्मत्त हो गये हो। यदि किसी ऐसी लड़कीसे, जो स्वभावमें बिलकुल विपरीत हो, विवाह हो जाय, तो इससे लेखकको कुछ मसाला मिल भी सकता है, पर विवाह करके निश्चिन्ताईसे वैवाहिक जीवन व्यतीत करनेमें कुछ मज़ा नहीं है। कलाकी उन्नतिके लिए कामेच्छाका तृप्त करना उतना आवश्यक नहीं है, जितना भिन्न-भिन्न स्थानोंसे रस ग्रहण करना। कम-से-कम मुझे तो लिखनेमें तभी आनन्द आता है, जब किसीसे प्रेम-सम्बन्ध चलता रहे; खास तौरसे किसी विवाहिता स्त्रीसे, जो अपनेको संयमित रख सके और अपना प्रबन्ध भी आप कर सके।"

तुर्गनेवके इस सिद्धान्तका अनुगमन भिन्न-भिन्न देशोंके भिन्न-भिन्न लेखकोंने किया है। हमने सुना है कि हिन्दीमें भी एकआध ऐसे लेखक उत्पन्न हो गये हैं, जो इस प्रकारके विचार रखते हैं, पर निःसन्देह यह मार्ग पतनका है। शक्ति संयममें है, असंयममें नहीं। जो लोग महापुरुषोंके दुर्गुणोंकी नकल करके स्वयं महापुरुष बनना चाहते हैं, वे वास्तवमें अपनेको गड्ढेमें गिराते हैं।

सेन्ट-पीटर्सबर्गके विश्वविद्यालयमें पढ़नेके कुछ वर्ष बाद तुर्गनेव बर्लिन (जर्मनी) में पढ़नेके लिए गये। तीन वर्ष तक वहाँ रहकर आपने बर्लिन-विश्वविद्यालयसे मैट्रिककी परीक्षा पास की, और फिर दर्शनशास्त्र पढ़ना शुरू किया। यहींपर उनकी मुलाकात सुप्रसिद्ध अराजकवादी बाकूनिनसे हुई, और दोनोंमें घनिष्ठ मित्रता भी हो गई।

दर्शनशास्त्रकी परीक्षामें वे बड़ी योग्यता-पूर्वक पास तो हो गये, पर उनका मन पढ़नेमें लगता नहीं था। उनकी माता यह चाहती थी कि मेरा लड़का भी एम० ए० पास हो जाय, पर तुर्गनेवकी रुचि डिग्रियोंकी ओर बिलकुल नहीं थी। घरसे माताके पाससे जो रुपया आता था, वे उसे नाटक देखनेमें उड़ा दिया करते थे और अपने मित्र बाकूनिनके कर्ज़दारोंको भी दे दिया करते थे। बर्लिनमें तुर्गनेव कभी किसी प्रसिद्ध साहित्यिक-क्लबमें बातचीत करते हुए पाये जाते थे, तो कभी किसी प्रसिद्ध ऐक्ट्रेसके साथ भोजन करते हुए!

तुर्गनेवने सत्रह-अठारह वर्षकी उम्रमें कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। पहले तो उनकी माता इससे बड़ी प्रसन्न हुई और अपने लड़केको बड़ी बधाई भी दी, पर पीछे जब तुर्गनेवने उससे कहा—"मेरी किताबकी आलोचना हुई है," तो वह रोने लगी और बोली—"यह बुरी बात है। कहाँ ऊँचे खानदानके बेटा तुम, और कहाँ वह पुरोहितका छोकरा, जिसने तुम्हारी किताबके बारेमें लिखा है!" तुर्गनेवकी माताकी समझमें लेखकका पेशा कोई बहुत सम्मानप्रद नहीं था। वह कहा करती थी कि लेखककी वृत्ति भले-आदमियोंके लायक नहीं है।

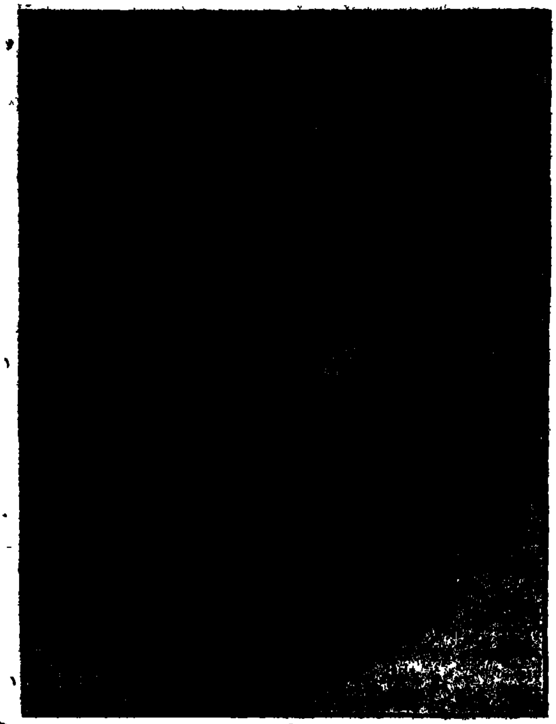
प्रथम पुस्तक

तुर्गनेवकी प्रथम पुस्तक 'एक शिकारीका भ्रमण-वृत्तान्त' में रूसके ग्राम्य जीवनके दृश्य बड़ी करुणाजनक भाषामें दिखलाये गये थे। इसमें दास-वासियोंकी दुर्दशाका चित्र छोटी-छोटी कहानियों द्वारा ऐसी सहृदयताके साथ खींचा गया था कि उन्हें पढ़कर जनताका हृदय द्रवित हो गया। रूसके ज़ारसे लेकर साधारण पाठकों तकने इस पुस्तकको पढ़ा और गुलामोंकी दशापर चार आँसू बहाये। इसमें सन्देह

नहीं कि वहाँकी दासत्व-प्रथाको बन्द करानेमें इस पुस्तकने बड़ी मदद दी थी। तुर्गनेवने एक बार कहा था—"खुद रूसी सम्राट् एलेक्जेण्डरने यह खबर मेरे पास भिजवाई थी कि दासत्व-प्रथाको बन्द करनेमें अन्य कारणोंके साथ एक कारण मेरी पुस्तक 'एक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त' का पढ़ना भी था।" इस पुस्तकने रूसी साहित्य-संसारमें उनकी धाक जमा दी और उनके उत्साहको दुगुना कर दिया। इस पुस्तककी कहानियाँ पत्रोंमें पहले अलग-अलग प्रकाशित हुई थीं।

सरकारका कोप

सन् १८५२में सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी गोगलका स्वर्गवास हो गया। उनके विषयमें तुर्गनेवने सेण्ट-पीटर्सबर्गके किसी पत्रके लिए एक लेख लिखा, पर सरकारी सेन्सरने इस लेखको अस्वीकृत करके छपनेसे रोक दिया। तुर्गनेवने उसी लेखको मास्को भेज दिया। मास्कोके सरकारी सेन्सरने उसे पास कर दिया। उसे इस बातका पता नहीं था कि यह लेख सेण्ट-पीटर्सबर्गके सेन्सर द्वारा अस्वीकृत हो चुका है। मास्कोमें जब यह लेख प्रकाशित हुआ, तो पुलिसको बड़ा क्रोध आया। मामला रूसी ज़ारके कानों तक पहुँचा। उन्होंने हुक्म निकाल दिया कि तुर्गनेवको पकड़कर जेलमें ठेल दिया जाय। तुर्गनेवको कारावासका दण्ड मिला। इससे उनकी लोक-प्रियता बढ़ गई। जहाँ देखो, वहाँ सड़कपर, बाज़ारमें, होटलोंमें और घर-घरमें तुर्गनेवकी चर्चा होने लगी। जिस जेलमें उन्हें रखा गया था, उसकी सड़कपर तुर्गनेवके मित्रोंकी गाड़ियोंका ताँता लगा रहता था। कितनी ही युवतियाँ और युवक जेलखानेमें तुर्गनेवके दर्शनके लिए गये। यहीं जेलमें ही तुर्गनेवने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू' लिखी थी, जिसे कार्लाइलने संसारकी सबसे अधिक करुणाजनक कहानी बतलाया था। तुर्गनेवको एक महीनेके जेलखानेके बाद रूसी ज़ारने हुक्म दिया—"वे अपने ग्राममें अपनी ही कोठीमें नज़रबन्द किये जायँ और इनपर पुलिसकी निगरानी रखी जाय।" तुर्गनेव इस प्रकार अपने घरपर ही क़ैद कर दिये गये। उन्होंने अपने किसी मित्रको एक पत्रमें लिखा था—"मैं अभी, पूर्णतया मृत अवस्थाको प्राप्त नहीं हुआ, पर जैसी गम्भीर शान्तिमें



तुर्गनेव

मुझे यहाँ रहना पड़ता है उससे मैं अनुमान कर सकता हूँ कि क़बरमें कैसी शान्ति रहती होगी।"

तुर्गनेवके अन्य ग्रन्थ

तुर्गनेवने जितने ग्रन्थ प्रकाशित किये, उन सबका अंग्रेज़ीमें अनुवाद हो गया है, और यह ग्रन्थमाला William Heinemann लन्दनसे ४०-४५ रुपयेमें मिल सकती है। अंग्रेज़ीमें अनुवादित ग्रन्थोंके नाम ये हैं :—

(1) 'Rudin'
(2) 'A House of Gentlefolk'
(3) 'On the eve'
(4) 'Fathers and children'
(5) 'Smoke'
(6) 'Virgin soil'
(7) 'A sportsman's sketches'

इत्यादि। ये सब ग्रन्थ सत्रह भागोंमें प्रकाशित हुए हैं। इनमें ११-१४ भाग पढ़नेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। उपन्यास तथा गल्पोंकी रचनाके विषयमें हमारा ज्ञान न कुछके बराबर है, और हमने इस प्रकारका साहित्य पढ़ा भी बहुत कम है, फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि मानव-स्वभावकी भिन्न-भिन्न दशाओंका चित्रण करनेमें जिस हद तक तुर्गनेव सफल हुए हैं, उस हद तक पहुँचना किसी भी अच्छे-से-अच्छे लेखकके लिए अत्यन्त कठिन है। उन्नीसवीं शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारोंमें उनकी गणना की जाती है, और किसी-किसीका तो यह भी मत है कि उस शताब्दीके सर्वोत्तम कलाकारका पद तुर्गनेवको ही मिलना चाहिए।

तुर्गनेवमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनकी रचनाओंको पढ़ते हुए कभी जी नहीं उकताता। वह अनावश्यक विवरणोंसे अपने पृष्ठोंको नहीं भरते। विक्टर ह्यूगोके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'ला मिज़रेबिल्स' को पढ़ते समय बीच-बीचमें कभी लम्बे-लम्बे वृत्तान्तोंसे तबीयत ऊब जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य घटना-सूत्र हमारे हाथसे छूट गया। तुर्गनेवमें बड़ा भारी गुण यह है कि उनकी रचनाएँ पाठकके हृदयको इतना अधिक आकृष्ट कर लेती हैं कि वह उनको बिना समाप्त किये छोड़ नहीं सकता। तुर्गनेव न कभी कोई भद्दी बात कहते हैं और न कोई अनावश्यक प्रसंग ही लाते हैं। शान्त समुद्रमें जब कोई जहाज़ बिना हिले-डुले चला जा रहा हो, तो उस अवसरपर जहाज़के यात्रियोंको जो सुख होता है, वही सुख तुर्गनेवकी रचनाओंमें है। तुर्गनेवके ग्रन्थोंको पढ़ना मानो एक अत्यन्त सभ्य महापुरुषसे वार्तालाप करना है। एक निपुण चित्रकारकी भाँति वे एकके बाद एक सुन्दर-से-सुन्दर चित्र खींचते जाते हैं, और दर्शक उन्हें देखकर 'वाह' 'वाह' कहने लगता है। तुर्गनेवने अपने समयके स्वदेशवासी रशियन युवकों तथा युवतियोंके मनोभावोंका विश्लेषण बड़ी खूबीसे किया है, और उन्हें पढ़कर तत्कालीन रूसी जीवनका चित्र हृदय-पटलपर खिंच आता है। तुर्गनेव करुण-रसके लिखनेमें सिद्धहस्त थे, और विषादकी एक हृदयवेधक रेखा उनकी सम्पूर्ण रचनाओंमें चित्रित दीख पड़ती है। जनता हमारे ग्रन्थोंको पढ़कर प्रसन्न होगी या नाराज़, यह खयाल तुर्गनेवके दिमाग़में कभी नहीं आया और इसी कारण जो कुछ उन्होंने लिखा है उसमें स्थायित्व है।

जब तुर्गनेवका उपन्यास 'पिता और पुत्र' (Fathers and children) प्रकाशित हुआ था, तो रूसी नवयुवक-समाजमें एक प्रकारकी हलचल सी मच गई थी। रूसमें उस समय नवयुवकोंका एक दल बन गया था, जो 'निहिलिस्ट' कहलाते थे। ये लोग दम्भ और पाखण्डके विरोधी थे, 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' की नीतिके प्रति इन्होंने विद्रोहका झंडा खड़ा कर दिया था, और झूठे शिष्टाचारोंको तिलाँजलि दे दी थी। दासत्व शृंखलाओंको तोड़ डालनेके लिए क्रान्तिके प्रारम्भमें उत्पन्न हुए नवयुवकोंके हृदयमें जो बेचैनी हुआ करती है, वही बेचैनी इन 'निहिलिस्ट' लोगोंमें थी। तुर्गनेवके उपन्यास 'पिता और पुत्र' 'Fathers and children' में मुख्यनायक 'बेज़ेरोव' निहिलिस्टका जो चित्र खींचा गया था, वह नवयुवकोंको बहुत बुरा जँचा और उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो तुर्गनेवने उनका मज़ाक उड़ाया है। इससे तुर्गनेवकी लोक-प्रियताको बड़ा धक्का लगा। युवक-समाज हर जगह उनकी निन्दा करने लगा, पर तुर्गनेव एक सच्चे कलाकारकी तरह अपने मतपर अटल रहे। उन्होंने कहा भी था—"बेज़ेरोवके चरित्र-चित्रणमें मीठी मीठी बातें कहकर मैं आसानीके साथ रूसी नवयुवकोंको अपने पक्षमें ला सकता था, पर मैंने ऐसा करना अनुचित समझा।" तुर्गनेवके इस कार्यसे हमें यही शिक्षा मिल सकती है कि सच्चे कलाकारको कभी—'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै' के सिद्धान्तका अनुकरण न करना चाहिए। कलाकारकी अटल श्रद्धा अपनी कलाके प्रति ही होना चाहिए। आज जो उसकी निन्दा करते हैं, कल वे ही उसकी प्रशंसा करने लगेंगे।

तुर्गनेवकी रचनाओंपर उनके व्यक्तित्वकी गहरी छाप पड़ी हुई है, और ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह गम्भीर अनुभवके बाद और अपने सुसंस्कृत हृदयसे। कहीं उन्होंने लेक्चर झाड़नेका प्रयत्न नहीं किया, जैसा कि नवयुवक उपन्यास लेखक प्रायः किया करते हैं, और न कहीं उपदेशक बननेकी चेष्टा की। यदि आप कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, तो उन चरित्रोंसे करें, जिनका वर्णन उपन्यासोंमें आया है। तुर्गनेवने जिन पात्रोंकी रचना की है, उनके साथ उन्होंने वैसे ही प्रेमका और गम्भीरतापूर्ण बर्ताव किया है, जैसे कोई अपने पुत्र-पुत्रियोंसे करता है। क्या मजाल कि एक भी भद्दा शब्द उनके मुखसे निकल जाय। अपनी संस्कृति द्वारा तुर्गनेव संसारके बड़े-बड़े उपन्यास-लेखकोंसे आगे बढ़ जाते हैं।

क्रान्तिकारियोंसे संसर्ग

यद्यपि तुर्गनेवके उपन्यास 'पिता और पुत्र' के कारण उनके और क्रान्तिकारी नवयुवकोंके बीचमें गलतफ़हमीकी एक दीवालसी खड़ी हो गई थी, पर तुर्गनेवके हृदयमें अत्याचारके इन विरोधियोंके प्रति सम्मान ही रहा। तुर्गनेवके जीवनके बहुतसे वर्ष स्वदेशसे बाहर जर्मनी अथवा फ्रान्समें बीते, और वहाँ उन्हें रूससे भागे हुए क्रान्तिारियोंसे मिलनेके काफ़ी अवसर मिले। तुर्गनेव स्वयं खून-खच्चरके विरोधी थे, पर वे उन नवयुवकोंके, जो अपनी जान हथेलीपर लिए फिरते थे, साहसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते थे। जितने भी क्रान्तिकारी उन्हें मिल सकते, उनसे वे अवश्य मिले थे। यही नहीं, वे रुपये-पैसेसे उनकी मदद भी करते थे। कम-से-कम तीन साल तक उन्होंने अनेवासे निकलनेवाले एक क्रान्तिकारी पत्रको ५०० फ्रांककी वार्षिक सहायता दी थी। जिस समय रूसी क्रान्तिकारी प्रिन्स कोपाटकिन जेलसे भागकर यूरोप चले आये थे, उस समय तुर्गनेवने एक प्रस्ताव किया था कि इस सुअवसरपर उन्हें एक भोज देना चाहिए।

प्रिन्स कोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमें लिखा है—

"मेरे मित्र पी० एल० लेवरोफसे तुर्गनेवने कहा, मुझे कोपाटकिनसे मिलाओ। मेरे रूसके जेलखानेसे सही-सलामत भाग निकलनेके उपलक्ष्यमें उन्होंने मुझे भोज भी दिया, जिसमें थोड़ेसे मित्र लोग एकत्रित हुए थे। मैंने बड़ी श्रद्धापूर्वक तुर्गनेवके कमरेमें पैर रखा, क्योंकि मैं उन्हें अपना पूज्य मानता था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त' द्वारा रूसकी दासत्व-प्रथाके दोषोंका भंडाफोड़ करके मातृभूमिकी बड़ी सेवा की थी। रूसी स्त्रियोंका चरित्र-चित्रण करनेमें तो उन्होंने कमाल कर दिखलाया है। रूसी स्त्री-समाजके हृदय और मस्तिष्कमें कौन-कौन अद्भुत शक्तियाँ छिपी हुई हैं और वे पुरुषोंको कितना अधिक प्रोत्साहित कर सकती हैं, यह बात उन्होंने अपने उपन्यासोंमें अच्छी तरह दर्शा दी है। मुझपर और मेरे साथी सहस्रों ही रूसी नवयुवकोंपर उनके उपन्यासोंमें वर्णित रूसी स्त्रियोंके चरित्रोंका जो अमिट प्रभाव पड़ा है वह स्त्रियोंके अधिकारोंपर लिखे हुए अच्छे-से-अच्छे लेखोंका भी नहीं पड़ सकता था।······ एक बार तुर्गनेवने मुझसे पूछा था—'तुम मिश्किन नामक अराजकवादीको जानते हो? मैं उसके बारेमें पूरा-पूरा हाल जानना चाहता हूँ। वह एक आदमी था, जिसमें निराशावादका नामोनिशान नहीं था।' मिश्किनपर रूसी सरकारने सन् १८७८ में मुकद्दमा चलाया था। हमारे साथी अराजकवादियोंमें उसका व्यक्तित्व बड़ा ज़बरदस्त था। उन्नीसवीं शताब्दीके औपन्यासिकोंमें कलाकी दृष्टिसे इतनी अधिक श्रेष्ठता किसीने प्रदर्शित नहीं की, जितनी तुर्गनेवने। उनकी गद्य हम रूसी आदमियोंके लिए सुन्दर-से-सुन्दर संगीतकी अपेक्षा भी अधिक मधुर तथा कर्णप्रिय है।"

कहा जाता है कि तुर्गनेवने अपने पास उन रूसी क्रान्तिकारियोंके चित्रोंका संग्रह कर रखा था, जिन्हें ज़ारकी सरकारने फाँसीपर लटका दिया था।

साहित्य-सेवियोंको प्रोत्साहन

तुर्गनेवके जीवनमें सबसे सुन्दर बात हमें उनकी साहित्य-सेवियोंकी सहायता करनेकी प्रवृत्ति प्रतीत होती है। कितने

ही नवयुवक-लेखकोंको प्रोत्साहित करके उन्होंने आदमी बना दिया। वे अपने साथी लेखकोंकी कीर्तिके लिए भरपूर प्रयत्न करते थे, और कभी-कभी तो इसके वास्ते उन्हें अपनी गाँठसे भी बहुत-कुछ खर्च करना पड़ता था; कभी किसी लेखकका विदेशी पुस्तक-प्रकाशकोंसे परिचय कराते थे, तो कभी किसीकी पुस्तककी भूमिका लिखते थे। कभी अनुवाद करते थे और कभी मित्रोंके किये हुए अनुवादोंका संशोधन करते थे। अनेकों ग्रन्थकारोंको उन्होंने इस उम्मेदपर कि आगे चलकर इनकी पुस्तक बिकनेपर हमारे रुपये वापस मिल जायँगे, बहुत-सा रुपया उधार दे दिया था। ग्रन्थकारोंके साथ उनकी इतनी अधिक व्यापक सहानुभूति थी कि वे न केवल रूसी साहित्य-सेवियोंकी ही, बल्कि फ्रेंच और जर्मन साहित्य-सेवियोंकी भी उसी निःस्वार्थ भावसे सहायता करते थे। यूरोपकी भिन्न भिन्न भाषाके लेखकों और भिन्न-भिन्न देशोंके प्रकाशकोंमें वे एक प्रकारके अन्तर्राष्ट्रीय अवैतनिक दलाल बन गये थे; यही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो अपनी गाँठसे पैसा खर्च करके वे यह काम किया करते थे। उनकी उस निःस्वार्थ सेवाका कारण यही था कि वे सच्चे साहित्य-प्रेमी थे, हृदयके उदार थे, और ईर्ष्या तो उनके स्वभावको छू भी नहीं गई थी। इसके सिवा एक बात और थी, वह यह कि उनके मुँहसे किसीको 'ना' नहीं निकलती थी। फ्रेंच लेखक मोपसाँको उन्होंने बहुत-कुछ सहायता दी थी। उन्होंने किसी फ्रेंच लेखककी फ़रासीसी पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें कराया, और उसका स्वयं ही संशोधन किया। जब कोई रूसी प्रकाशक उस पुस्तकको छापनेके लिए राज़ी न हुआ, तो आपने ग्रन्थकार महोदयको अपने पाससे एक हज़ार फ्रांक दे दिये। किसी-किसी लेखकको वे बड़े विचित्र ढंगसे मदद देते थे। वे उनके लेखको किसी पत्रके पास भेजते और उस पत्रके सम्पादकको अपने पाससे रुपये भी भेज देते और यह कह देते कि यह लेखक महोदयको पत्रकी ओरसे पुरस्कारके रूपमें भेज दिये जायँ। एक फ्रेंच लेखक बड़े कष्टमें थे। आपने उनकी पुस्तकका अनुवाद रशियन भाषामें किया, और जो कुछ रुपया पुरस्कारमें मिला, उसे लेखकको दे दिया।

यदि हमारी मातृभाषाके धुरन्धर साहित्य-सेवी तुर्गनेवके इस गुणका अनुकरण करें, तो नवयुवक लेखकोंको बड़ा भारी सहारा मिल सकता है।

तुर्गनेव और टाल्सटाय

तुर्गनेव और टाल्सटायके स्वभावमें बड़ा अन्तर था। तुर्गनेवके लिए सर्वोच्च वस्तु कला थी, टाल्सटायके लिए जीवन सुधार। महाकवि अकबरके शब्दोंमें—"सख़ुन उनसे सँवरता है, सख़ुनसे मैं सँवरता हूँ" वाली बात थी। अपने युवावस्थामें टाल्सटायका जीवन भी बहुत काफ़ी असंयमी रहा था, पर पीछे उन्होंने अपनेको बड़ी ख़ूबीसे सम्हाला। तुर्गनेवका जीवन शाहाना ढगका ही रहा। तुर्गनेव उम्रमें टाल्सटायसे बड़े थे। युवावस्थामें टाल्सटायके जीवनपर भी तुर्गनेवकी रचनाओंका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। ख़ुद अपने लड़कोंको टाल्सटायने यही सलाह दी थी कि तुम तुर्गनेवके उपन्यास पढ़ो, उनसे बढ़िया किसी दूसरी चीज़की मैं सिफारिश नहीं कर सकता। तुर्गनेव भी टाल्सटायके बड़े प्रशंसक थे, पर इन दोनोंके बीच मित्रताका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। दूरसे तो वे एक दूसरेके प्रति प्रेम रख सकते थे, पर मुलाक़ात होते ही दोनोंमें झगड़ा हो जाता था। इस झगड़ेका कारण दोनोंकी प्रकृतिकी भिन्नताके सिवा टाल्सटायका झक्कीपन भी था। युवावस्थामें टाल्सटायके स्वभावमें एक बड़ी त्रुटि यह थी कि वे बैठे ठाले दूसरोंसे झगड़ा मोल लिया करते थे। टाल्सटाय तथा तुर्गनेव दोनोंके जीवन-चरितोंमें इन झगड़ोंका विस्तृत वृत्तान्त पाया जाता है, पर अन्तिमदिनोंमें दोनोंमें फिर मेल हो गया था। जब तुर्गनेव पेरिसमें मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए थे, टाल्सटायने उन्हें निम्न-लिखित पत्र भेजा था :—

आपकी बीमारीकी ख़बरसे मुझे बड़ी व्याकुलता हुई। जब मैंने सुना कि आपकी बीमारी भयंकर है, तब मेरी समझमें यह बात आई कि कितनी अधिक आपके प्रति मेरी श्रद्धा है।

यदि आपकी मृत्यु मेरे सामने हुई तो मुझे बड़ा ही दुःख होगा। शायद मैं ऐसी बातें अपनी मानसिक बीमारीके कारण ही सोचता होऊँ या सम्भवतः वे डाक्टर ही, जो तुम्हारी बीमारीको भयंकर बतलाते हैं, झूठ बोलते हों। परमात्मा करे कि हम लोग फिर एक दूसरेको मिल सकें। जब पहले-पहल मैंने आपकी भयंकर बीमारीका वृत्तान्त सुना, तो मैंने आपके पास पेरिस आनेका विचार किया। आप स्वयं लिख सकें, तो स्वयं, नहीं तो किसी दूसरेसे ही अपनी बीमारीका पूरा-पूरा हाल लिखाके भेजना। मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा। प्यारे तुर्गनेव! मेरे पुराने मित्र, मैं यहाँसे तुम्हारा आलिंगन करता हूँ।"

जब यह चिट्ठी तुर्गनेवके पास पहुँची, उस समय वे अत्यन्त निर्बल हो गये थे। बस, दिन गिन रहे थे। फिर भी उन्होंने काँपते हुए हाथसे पैंसिल पकड़कर नीचे लिखी चिट्ठी टाल्सटायको लिखी :—

"प्यारे लिओ निकोलेविच,*

मैंने तुम्हें बहुत दिनोंसे कोई चिट्ठी नहीं भेजी क्योंकि मैं बीमार रहा हूँ, और सच बात तो यह है कि मैं अपनी मृत्यु-शय्यापर लेटा हुआ हूँ। अब मुझे आराम हो नहीं सकता, इसलिए इस बारेमें खयाल करना ही फिजूल है। बस, मैं एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ, वह यह कि मैं इस बातमें अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ कि मैं तुम्हारा समकालीन रहा। आज मैं एक आखिरी प्रार्थना तुमसे करूँगा। मेरे मित्र, तुम अपने साहित्यिक कार्यको फिरसे हाथमें ले लो। तुम्हारी यह प्रतिभा उसी परमात्माकी देन है जो संसारकी सभी वस्तुओंका स्रोत है। यदि मुझे कोई यह विश्वास दिलासके कि मेरी प्रार्थनाका तुम पर प्रभाव पड़ा, तो न जाने मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता होगी।

मैं तो अब खतम हो चुका। डाक्टरोंको तो अब तक इस बातका भी पता नहीं लग सका कि मुझे बीमारी क्या है। न चल-फिर सकता हूँ, न खा सकता हूँ और न सो सकता हूँ। इन बातोंके लिखनेमें भी मुझे थकावट आती है। मेरे मित्र! रूस देशके महान् लेखक, तुम मेरी इस अन्तिम प्रार्थनाको स्वीकार करो। इस चिट्ठीकी पहुँच देना। आओ, आज एकबार फिर तुमसे, तुम्हारी पत्नीसे और तुम्हारे घरवालोंसे हृदयसे लगाकर मिल लूँ। अब नहीं लिख सकता! थक गया।"

रूसके दो सर्वश्रेष्ठ साहित्य-रथियोंके ये पत्र वास्तवमें बड़े हृदयवेधक हैं। सच्चे साहित्यिक ही इनके करुणरसका मूल्य समझ सकते हैं।

तुर्गनेवका स्वभाव

तुर्गनेव स्वभावके बड़े नरम थे। हुक्म चलाना तो आप जानते ही नहीं थे। एक बार बड़े जरूरी कामसे आपको अपने एक मित्रके यहाँ जानेकी आवश्यकता हुई। आपने गाड़ीवानसे कहा—"गाड़ी तय्यार करो।" गाड़ी तय्यार हुई। तुर्गनेव उसमें बैठ गये। थोड़ी दूर चलकर गाड़ी अकस्मात खड़ी हो गई! तुर्गनेव चक्करमें पड़े कि मामला क्या है। गाड़ीके भीतरसे सिर निकालकर देखा तो हजरत कोचवान गाड़ीके ऊपर बैठे हुए अपने एक साथीसे ताश खेल रहे हैं! तुर्गनेवने यह दृश्य देखकर झट अपना सिर गाड़ीमें भीतर कर लिया। ताशका खेल यथापूर्व चलता रहा। जब खेल खतम हुआ, तब गाड़ी वहाँसे चली।

तुर्गनेवकी रचनाओंमें उनके कोमल हृदयकी झलक स्पष्टतया दीख पड़ती है।

तुर्गनेवके स्वभावमें क्रियाशीलताकी अपेक्षा करुणा-मिश्रित निराशाका प्राबल्य था। वे आराम-पसन्द विचारक थे, उच्चकोटिके कलाकार थे, पर कर्मयोगी नहीं थे। हाँ, कर्मयोगियोंके लिए उनके हृदयमें अत्यन्त श्रद्धा अवश्य थी। किसी प्रकारकी भी कट्टरताको वे बहुत नापसन्द करते थे। अलौकिक बातोंमें उनका विश्वास नहीं था। मानुषिकतामें उनकी श्रद्धा थी और दूसरोंकी मानुषिक कमजोरियोंके प्रति वे सहिष्णु थे। टाल्सटायने एक बार कहा था—

* टाल्सटायका नाम।

"तुर्गनेवने अपने ग्रन्थोंमें अपना हृदय खोलकर रख दिया है" उनके स्वभावको समझनेके लिये उनके ग्रन्थोंका पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

रंग-रूप

प्रिन्स क्रोपाटकिन लिखते हैं—"तुर्गनेव शरीरके लम्बे-चौड़े और क़दके ऊँचे थे। सिर कोमल भूरे बालोंसे लदा रहता था और देखनेमें बड़े सुन्दर प्रतीत होते थे। आँखोंसे बुद्धिमत्ता चमकती थी और उनमें कुछ हास्यकी भी झलक प्रतीत होती थी। उनके रंग ढंगमें बनावटका नामोनिशान नहीं था। उनके विशाल मस्तिष्कसे प्रतीत होता था कि उनकी दिमाग़ी ताक़त काफ़ी विकसित हो चुकी है। उनकी मृत्युके बाद जब उनका दिमाग़ तोला गया, तो वह उन सब दिमाग़ोंसे, जिनकी तोल तब तक हो चुकी थी, वह इतना अधिक भारी निकला कि तोलनेवालोंको अपनी तराज़ूपर ही आशंका होने लगी! उन्होंने फिर दूसरी तराज़ूपर उसे तोला, फिर भी वह उतना ही यानी सबसे भारी निकला।"

तुर्गनेवके अन्तिम दिवस और मृत्यु

तुर्गनेवके अन्तिम दिवस बड़े कष्टप्रद सिद्ध हुए। उनके कई मित्र उनसे पहले चल बसे थे। स्वयं उन्हें लम्बी बीमारी भुगतनी पड़ी। महीनों तक खाटपर पड़े रहकर मृत्युकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, पर उन्होंने अपनी परोपकारिता और सहृदयता मरते दम तक न छोड़ी। जब उनके बचनेकी कोई उम्मेद नहीं थी, एक नवयुवक लेखक उनके पास पहुँचा। आपने उसी समय उसकी पुस्तककी सिफ़ारिशमें एक चिट्ठी किसी प्रकाशकको लिखा दी और कहा—"इस चिट्ठीके साथ अपनी किताब भेज दो, छप जायगी।"

तुर्गनेवकी भयंकर बीमारीकी खबरें पेरिससे रूसको बराबर जाती थीं, और वहाँके निवासियोंके हृदयमें उनके लिए बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई थी।

सितम्बर सन् १८८३ में रूसका यह महान् लेखक इस संसारसे विदा हो गया। संसारकी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें अनेक उपन्यास लेखक हुए हैं और होंगे, पर मानवी भावोंका ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण करनेवाले प्रतिभाशाली औपन्यासिक विरले ही होंगे। सच्चा कलाकार किसे कहते हैं और उपन्यास किस चीज़का नाम है, यदि आप यह जानना चाहते हैं, तो तुर्गनेवके ग्रन्थोंको पढ़िये।*

* हर्षकी बात है कि तुर्गनेवके प्रति हिन्दी-जनताका ध्यान कुछ-कुछ आकर्षित हो रहा है। श्री कृष्णानन्दजी गुप्त (चिरगांव, झांसी) ने उनकी दो पुस्तकोंका अनुवाद कर लिया है। कलकत्तेके 'लोकमान्य' नामक पत्रमें तुर्गनेवका एक उपन्यास (विद्रोही) धारावाहिक रूपसे निकल रहा है। इसका अनुवाद श्री मदनलाल चतुर्वेदीने किया है। 'विशाल-भारत'में हम उनके 'फास्ट'का अनुवाद क्रमशः प्रकाशित कर ही रहे हैं। आवश्यकता इस बातका है कि कोई उत्तम प्रकाशक इन सब ग्रन्थोंको सुन्दररूपमें पुस्तकाकार छापे। ऐसे अवसर पर जब कि संसारके एक सर्वश्रेष्ठ कलाकारकी आत्मा हमारी मातृभाषाके मन्दिरके द्वारपर खड़ी हो हमें यथोचित शानके साथ उसका सम्मान करना चाहिये।

अशोक

सम्राट् या भिक्षु?

[लेखक :— श्री लक्ष्मीनाथ मिश्र, एम०ए०]

सम्राट् अशोककी जीवन-सम्बन्धी घटनाओंमें उसका बौद्धधर्म ग्रहण करना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यद्यपि कुछ विद्वान् लोग अब भी इस बातको माननेमें आपत्ति करते हैं कि वह बौद्धधर्मका अनुयायी हुआ। (१) किन्तु ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है, और उनकी शंकाओंका समाधान भी सुविख्यात विद्वानों द्वारा अकाट्य प्रमाणोंसे किया गया है। (२) यहाँपर यह दिखलानेकी आवश्यकता नहीं कि किन प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि अशोक बौद्धधर्मावलम्बी था। यहाँपर उसकी एक दूसरी घटनापर, जो बौद्धधर्मसे सम्बन्ध

1. Rev. Heras—The Vedic Magazine for May 1927.

2 B. M. Baruwa The Religion of Asoka, Mahabodhi Pamphlet Series No 7,

रखती है और जिसके विषयमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है, विचार करना है।

इतिहासकारोंने प्रायः अशोकके लिए यह कहा है कि उसने बौद्ध-भिक्षुका जीवन बिताया। अब यह देखना है कि इस कथनमें कहाँ तक सत्यता है। जिस कारणसे विद्वान लोग अशोकका भिक्षु-जीवनमें प्रवेश बतलाते हैं, वह यह है कि अशोकने प्रथम लघु शिलालेखमें अपने बौद्धधर्म ग्रहणके सम्बन्धमें कुछ लिखा है उसीका विद्वानोंने कुछ मनमाना अर्थ लगाकर यह सिद्ध किया है कि अशोकने भिक्षुका जीवन निर्वाह किया। प्रथम लघु शिलालेखमें अशोकने इस प्रकार कहा है :—"ढाई वर्षसे अधिक हुआ, जब मैं उपासक हुआ, पर मैंने अधिक उद्योग नहीं किया, किन्तु एक वर्षसे अधिक हुआ जबसे मैंने संघको स्वीकार किया, तबसे मैंने अच्छी तरह उद्योग किया है।" जिस पदके अर्थ लगानेमें खींचातानी हुई है, वह है—'संघ उपगते', 'संघ उपेते' अथवा 'संघे उपयीते'। भिन्न-भिन्न विद्वानोंने भिन्न-भिन्न अर्थ इसके किये हैं। ब्यूलर (Buhler) साहब तथा कर्न (Kern) साहबने यह अर्थ लगाया है कि अशोक राज्य-पाट छोड़कर भिक्षुओंकी भाँति संघमें रहने लगा। उनके अनुसार सम्राट् और भिक्षुका जीवन एक ही साथ होना असम्भव है। स्मिथ (V. A. Smith) साहबका कहना है कि अशोकने राज्यासन नहीं छोड़ा, किन्तु राजा होनेके साथ ही साथ वह भिक्षु-जीवन भी बिताता था। (१) अपने पक्षके समर्थनमें उन्होंने चीनी यात्री इत्सिंग (I-tsing) के, जो भारतवर्षमें ईस्वी सातवीं शताब्दीमें आया था, भारत-भ्रमणके वर्णनसे यह दिखलाया है कि जब वह भारतमें आया था, तो उसने अशोककी बनी हुई मूर्ति देखी थी, जो भिक्षुके वेषमें थी। स्मिथ साहबका कहना है कि इत्सिंगके लिये यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी, क्योंकि स्वयं उसके देश चीनमें भी Kas-tsuwu-ti (alias Hsiao-yen), जिसका राज्य-काल ई० सन् ५०२-४९ तक था, सम्राट् होनेके साथ-ही-साथ संन्यासीका जीवन व्यतीत करता था। स्मिथ साहबने बारहवीं शताब्दीके गुजरातके जैन राजा कुमारपालका भी वृत्तान्त दिया है। डाक्टर डी० आर० भण्डारकर साहब इस रायसे सहमत नहीं हैं। उनका यह मत है कि अशोक भिक्षु नहीं हुआ, किन्तु उसका भिक्षुगतिक का स्थान था। विनय-पिठक में भिक्षुगतिकका वर्णन आया है। उसके अनुसार भिक्षुगतिक उन लोगोंको कहते थे, जिन्हें भिक्षुओंके साथ संघमें रहनेकी अनुज्ञा थी। न तो उन्हें उपासक ही कह सकते थे और न भिक्षु ही, किन्तु उनका स्थान इन दोनोंके मध्यमें था। इस प्रकार भंडारकर साहबने यह दिखलाया है कि संघमें रहकर भिक्षुके वेषमें भी अशोक राज्यकार्य सम्पादन करता था। उन्होंने केवल अनुमान-मात्रसे ही अशोकका भिक्षु-गतिक होना सिद्ध किया है; इसके समर्थनमें अच्छे प्रमाण नहीं दिये हैं। 'संघ उपगते'का अर्थ उन्होंने यह किया है कि 'मैं संघके साथ रहता हूँ'। (१) मि० सेनार्ट इसका यह अर्थ निकालते हैं कि मैं संघके सदस्योंके पास उपस्थित हुआ। डाक्टर बेनीमाधव बरुआका यह मत है कि अशोक भिक्षु या भिक्षु गतिक कुछ भी नहीं हुआ, किन्तु उसने सदा गृहस्थ-जीवन बिताते हुए राज्य-धर्मका पालन किया। (२) उनका कथन है कि यदि अशोक कभी भिक्षु हुआ होता, तो वह स्पष्ट शब्दोंमें इस बातको कह देता, गोलमाल शब्दोंमें कहनेकी कोई आवश्यकता न थी। संघे उपयाते का यह अर्थ नहीं है कि अशोक संघमें भिक्षु बनकर प्रविष्ट हुआ। भिक्षु-गतिक होना भी ठीक नहीं जँचता, क्योंकि भिक्षुगतिक भी एक प्रकारका संन्यासी है जो संसारके सब सम्बन्ध तोड़ कर निर्वाण प्राप्तिके लिए उद्योग करता है।

प्रायः विद्वानोंने 'संघ उपगते' का अर्थ संघमें प्रवेश

1. V. A. Smith, Asoka, pp. 36-37.

1. D. R. Bhandarkar, Asoka, pp 79, 80.

2. B. M. Baruwa, Asoka Edicts in New Light, pp. 93-64

हुआ' अथवा 'संघमें सम्मिलित हुआ' किया है। संघमें प्रविष्ट या सम्मिलित होनेका अर्थ यह समझा जाता है कि घर-बार त्याग कर संन्यास धारणकर भिक्षुओंके वेषमें रहना। इसी कारणसे यह कहा जाता है कि सम्राट् अशोकने भी घर छोड़कर भिक्षुरूप धारण किया। कुछ विद्वानोंका कहना है कि वह केवल संघमें निरीक्षणार्थ गया और फिर आपने राजमहलको वापस गया।

इस प्रकारके विवादका कारण यही मालूम होता है कि विद्वानोंने उप+गम्+क्त=उपगतके ठीक ठीक अर्थ नहीं लगाये। अमरकोष, तृतीय अध्याय श्लो० १०८ में उपगत शब्दके अर्थ अंगीकारके दिये हैं। यथा :—

"ऊरीकृतमुररीकृतमंगीकृतमाश्रुतं प्रतिज्ञातम्। संगीर्ण—
विदित संश्रुत समाहितोपश्रुतोपगतम्॥"

यदि हम उपगतका अर्थ 'अंगीकृतं'से करें, तो अशोकका वास्तविक अभिप्राय समझनेमें बिलकुल ही भ्रम नहीं रह जाता। संघको उसने अंगीकार किया इसका यह तात्पर्य है कि उसने संघके अधिकारोंको अपने लिए भी स्वीकार किया, अर्थात् वह संघकी आज्ञाओंका पालन करनेवाला हो गया; अथवा यों कहिए कि अब वह बौद्धधर्मका पूर्णरूपसे अनुयायी हो गया। जैसा कि अशोकने स्वयं कहा है कि वह पहले बौद्ध-धर्मका उपासक-मात्र था, अर्थात् उस धर्मके प्रति उसका अनुराग, श्रद्धा और सहानुभूति थी, किन्तु प्रकटरूपसे नियमानुसार उस धर्ममें दीक्षित नहीं हुआ था। एक वर्षसे कुछ अधिक समय पश्चात् उसका विश्वास उस धर्ममें और भी अधिक दृढ़ हो गया, तो अब उसने यह आवश्यक समझा कि प्रकटरूपसे बौद्धधर्ममें दीक्षा ले, इसलिए उसने अपने पुरातन ब्राह्मण धर्मको त्यागकर निश्चित रूपसे बौद्धधर्मको ग्रहण किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अशोकके बौद्धधर्म ग्रहण करनेमें दो अवस्थाएं उपस्थित हुईं, पहली अवस्था उस समय उपस्थित हुई, जब वह बौद्धधर्मका उपासक बना। कलिंग-युद्धकी भीषण और नारकीय हत्याने ही अशोकके चित्तमें आन्दोलन मचा दिया। तुरन्त ही उसी समयसे उसकी मनोवृत्ति अहिंसात्मक रूपमें परिवर्तित हुई। बौद्धधर्म ही अहिंसाके सिद्धान्तमें उस समय बहुत बढ़ा-चढ़ा था, अतएव अशोकका ध्यान उसी धर्मकी ओर आकृष्ट हुआ। उसी समयसे उस धर्मके प्रति उसका अनुराग उत्पन्न हुआ। उसी समयके विषयमें अशोकने अपनेको उपासक होना कहा है। दूसरी अवस्था उस समय हुई, जब उसने प्रगटरूपसे बौद्धधर्म ग्रहण किया और संघकी अधीनता स्वीकार की। वास्तवमें नियमानुसार बौद्धधर्मावलम्बी वह इसी समयसे हुआ, और तभीसे बौद्ध-धर्म प्रचारमें उद्योग करने लगा, यहाँ तक कि उसने अपने जीवनका यही उद्देश्य रखा कि मनुष्योंमें धर्मका प्रचार हो। भारतवर्षके इतिहासमें विशाल भारत का वास्तविक निर्माण करनेवाला प्रथम पुरुष अशोक ही था; बुद्ध भगवान्‌ने तो केवल नींव डाली थी। इस प्रकारकी उसके धर्म-परिवर्तनकी दो अवस्थाओंका पता केवल उसके धर्म-लेखोंसे ही नहीं चलता, वरन् पाली और संस्कृत भाषाओंकी बौद्धधर्म-सम्बन्धी दन्तकथाओंसे भी विदित होता है। पाली भाषाकी कथाओंसे यह प्रकट होता है कि पहली अवस्था उस समय उपस्थित हुई, जब सम्राट् अशोकसे बौद्ध-भिक्षु निग्रोधसे भेंट हुई। निग्रोधके शील-स्वभावसे राजा बहुत प्रभावित हुआ, और उसके अप्पमादवग्ग सुनानेपर राजाकी बौद्ध धर्मपर श्रद्धा उत्पन्न हुई, और भगवान् बुद्धके प्रति उसका अनुराग बढ़ा। दूसरी अवस्था उस समय हुई, जब कि निग्रोधने संघके ३२ पुरोहितोंको बुलाकर राजमहलमें उसके सम्मुख उपस्थित कर दिया। राजाने उनका यथोचित स्वागत किया। अशोकके चित्तपर उनका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसने ब्राह्मण-धर्म त्यागकर बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया। संस्कृत ग्रन्थ दिव्यावदान से भी यह पता लगता है कि प्रथम अवस्था उस समय प्रारम्भ हुई, जब संयोगसे अशोककी बौद्धभिक्षु बालपण्डित या समुद्रसे भेंट हुई। भिक्षुकी आध्यात्मिक शक्ति देखकर अशोक बड़ा चकित हुआ और उसी समयसे बौद्धधर्मका प्रशंसक हो गया। दूसरी अवस्था उस समय प्रारम्भ हुई जब अशोकका बौद्ध-संघके

अन्य सदस्योंसे सम्मिलन हुआ। इसी अवस्थामें उसकी उपगुप्तसे भेंट हुई, जिसे उसने अपना गुरु बनाया। हुयनच्चांगके वर्णनानुसार उपगुप्तने ही अशोकको बौद्धधर्म ग्रहण कराया।

इस प्रकार हम देख चुके कि अशोकके बौद्धधर्म स्वीकार करनेमें दो अवस्थाओंकि उपस्थित होनेके विषयमें दन्तकथा और शिलालेख—दोनों एक मत हैं। इस भिन्नता प्रसंग कि अशोक भिक्षु हुआ था, न तो दन्तकथाओंमें मिलता है और न शिलालेखोंमें। इसके विपरीत अशोकके धर्म-लेखोंमें इस बातके अनेकों प्रमाण विद्यमान् हैं कि वह सदा गृहस्थ राजा ही रहा और उसने संन्यास कभी नहीं धारण किया। धर्म-लेखोंमें अनेकों बार उसने अपने लिए 'राजा' शब्दका प्रयोग किया है, यथा 'देवानं पियो पियदसि राजा', अपने राज्य, राजकर्मचारियों तथा अन्य राज्यकार्योंके सम्बन्धमें बहुधा उसने उल्लेख किया है, किन्तु किसी एक स्थानपर भी अपने लिए भिक्षु या भिक्षु-सम्बन्धी अन्य शब्दका प्रयोग नहीं किया है। यहाँ तक कि भाब्रू-शिलालेखमें भी—जहाँ अशोकने संघको अभिवादन-पूर्वक सम्बोधन किया है—बुद्ध, धर्म और संघ—इन त्रिरत्नोंका तथा बौद्धधर्मके सात ग्रंथोंका उल्लेख किया है। अपनेको मगधका राजा (लाजा मागधे) ही लिखा है। यदि अशोक भिक्षु हुआ होता, तो कमसे कम भाब्रू-शिलालेखमें, जो उसके बौद्ध होनेका बड़ा भारी प्रमाण है, अपनेको भिक्षु अवश्य लिखता।

अशोकके गृहस्थ होनेका प्रमाण उसके धार्मिक सिद्धान्तोंसे भी मिलता है। उसने अनेकों बार यह कहा है कि यदि लोग उसके बतलाये हुए धर्मोपदेशोंपर आचरण करेंगे, तो स्वर्ग प्राप्त करेंगे। अर्थात् स्वर्ग-सुख को ही उसने धर्मपालनका अन्तिम फल माना है, किन्तु बौद्धधर्मके अनुसार स्वर्ग-सुख गृहस्थोंका निर्दिष्ट फल है। सबसे बड़ा फल निर्वाण पद है, जो भिक्षु-जीवन-निर्वाहसे ही प्राप्त हो सकता है। अशोकने निर्वाण पदका बिलकुल ही उल्लेख नहीं किया, अतः यह परिणाम निकलता है कि अशोकने गृहस्थोंके जीवनको ही सम्मुख रखकर उसे सफल बनानेका प्रयत्न किया। अधार्मिक मार्गका कहीं भी प्रसंग नहीं आया, इससे स्पष्ट है कि अशोकने गृहस्थ-जीवन ही व्यतीत किया। माता-पिता तथा गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करना; मित्र, सम्बन्धी तथा वृद्धोंका आदर-सत्कार करना; ब्राह्मण और श्रमणोंको दान देना तथा दास और सेवकोंके प्रति उचित व्यवहार करना अशोकके मुख्य धार्मिक सिद्धान्त थे। बौद्ध-ग्रंथोंमें गृहस्थोंके लिए मुख्य उपयोगी ग्रंथ सिगालोवाद सुत्त है। गृहस्थोंके परमोपयोगी होनेके कारण ही इसको गिहि-विनय भी कहते हैं। इस ग्रंथमें गृहस्थका मुख्य धर्म यह कहा गया है कि माता, पिता, गुरु, सन्तान, मित्र, जाति, सम्बन्धी, सेवक, दास, ब्राह्मण और यतीका आदर-सत्कार करे। अशोकके धार्मिक सिद्धान्तों तथा सिगालोवाद सुत्त में बतलाये गये उपदेशोंमें कितनी समानता है।

इसके अतिरिक्त अशोकने धर्म-प्रचार-कार्यमें जो अद्भुत सफलता स्वदेश तथा विदेशोंमें प्राप्त की, वह यदि अशोक केवल भिक्षु होकर प्राप्त करना चाहता, तो असम्भव था। उसके व्यक्तित्वके साथ-साथ राजकीय शक्तियोंका होना आवश्यक था। उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंसे भी यह स्पष्ट होता है कि यदि वह भिक्षु होता, तो उसका उतना प्रभाव नहीं पड़ सकता था। विदेशोंमें उचित मान और आदर प्राप्त करनेके लिए प्रबल राज्यशक्ति होनी चाहिए। भिक्षु-राजाकी शक्ति कहाँ तक प्रबल हो सकती है! विदेशी आक्रमणोंसे बचाना भिक्षु-राजाके लिए असम्भव है।

इन सब बातोंपर ध्यान देनेसे यह परिणाम अनिवार्य है कि अशोक सदा गृहस्थ सम्राट् रहा और संसार त्यागकर भिक्षु-जीवन उसने कदापि ग्रहण नहीं किया।*

* लेखककी शीघ्र प्रकाशित होनेवाली 'अशोक' नामक पुस्तकसे उद्धृत।

महात्मा गान्धी और आधुनिक सभ्यता

[लेखक—श्रीयुत सी० एफ० ऐण्ड्रूज]

[आजसे कई वर्ष पहले एक अंग्रेजी मासिक पत्रमें किसी लेखक महोदयने एक लेख महात्मा गान्धीके स्वराज्य-सम्बन्धी विचारोंका मजाक उड़ाते हुए लिखा था। लेखक महोदयने अपने लेखमें प्रश्न किया था—"किस प्रकारका स्वराज्य श्रीमान गान्धीजी हमें देंगे, और उनके दिये हुए स्वराज्यके अधीन हमें किस तरहका जीवन व्यतीत करना पड़ेगा ?" फिर लेखकने स्वयं ही उत्तर दिया था—"श्रीमान् गान्धीजीके स्वराज्यमें न तो मोटरकार होंगी, न वायुयान होंगे। फौज, रेल, डाक्टर और वकील कुछ नहीं होंगे। गान्धीजीने सभ्यतासे पूरी-पूरी शत्रुता करनेकी मानो कसम ही खाली है, और वे उन सब भोग-विलासोंके शत्रु हैं, जो सभ्यताके कारण हमें प्राप्त होते हैं।"

इस लेखका जो उत्तर श्रीयुत सी० एफ० ऐण्ड्रूजने दिया था; उसका अनुवाद यहाँ दिया जाता है। आशा है कि इस अवसरपर, जब कि महात्माजी स्वराज्यके लिए अपना अन्तिम प्रयत्न कर रहे हैं, मि० ऐण्ड्रूजका यह लेख सामयिक और उपदेश-प्रद सिद्ध होगा।

—सम्पादक]

क्या हमने कभी थोड़ी देरके लिए ठहर कर यह भी सोचा है कि अल्प-संख्यक मनुष्योंके मोटरकार आदिके सुखों तथा भोग-विलासोंका परिणाम बहुसंख्यक मनुष्योंके लिए क्या होगा ? गान्धीजी एक दो बार नहीं, बल्कि बीसियों बार यह बतला चुके हैं कि हमारे बड़े-बड़े आधुनिक नगरोंमें निर्धनता, पाप और दुःखोंका कैसा भयंकर साम्राज्य स्थापित है। धनवान और शिक्षित अपने लिए अलग स्थान लेकर जितना ही भोग-विलास-युक्त जीवन व्यतीत करते हैं, दूसरी ओर निर्धनोंको उतनी ही दुर्दशापूर्ण ज़िन्दगी बितानी पड़ती है। आधुनिक सभ्यताका अर्थ पूरी तौरसे समझनेके लिए हमें बड़े बड़े नगरोंके गन्दे मुहल्लोंकी ओर जाना पड़ेगा।

गान्धीजीने अपने जीवनका एक बड़ा भाग निजी अनुभवसे इन गन्दे मुहल्लोंके विषयमें पूरा-पूरा हाल जाननेमें व्यतीत किया है। गरीब आदमी हमेशासे महात्माजीके मित्र रहे हैं। महात्माजी निर्धन आदमियोंके साथ निर्धनोंकी भाँति ही रहे हैं, और उनके घरपर निर्धनोंका स्वागत बराबर हुआ है। गन्दे मुहल्लोंमें गरीब आदमी किस तरह रहते हैं, और जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त उन्हें कैसा दुःखमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है, यह सब महात्मा गान्धीको अच्छी तरह मालूम है। यह ज़िन्दगी उनके लिए एक खुली हुई किताबके समान है, जिसे वे ओरसे छोर तक पढ़ गये हैं।

मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे महात्माजीको दक्षिण-अफ्रिकाके दरबन नगरमें सैकड़ों गरीब शर्तबँधे स्त्री-पुरुषों और बच्चोंके साथ रहते हुए देखा है। अगर महात्माजी इन शर्तबँधे मज़दूरोंकी मदद न करते, तो इन्हें गन्नेके खेतोंपर अत्यल्प वेतनपर कठिन काम करना पड़ता, और कोठियोंके हिस्सेदार सैकड़ों कोस दूर अपने घरपर मोटरकार आदिके मज़े उड़ाते। भूखे रहकर गुलामोंकी तरह मेहनत तो करते ये शर्तबँधे मज़दूर और घर बैठे आनन्द करते कोठियोंके मालिक! मैं स्वयं गान्धीजीके साथ प्रिटोरियाके इंडियन लोकेशन (हिन्दुस्तानी बस्ती)में रह चुका हूँ, और दक्षिण-अफ्रिकाके अन्य स्थानोंमें भी, जहाँ हिन्दुस्तानी धोबी और कुँजड़े धनाढ्य गोरोंसे दूर अछूत जातियोंकी तरह रहते हैं, मेरा और गान्धीजीका साथ हो चुका है। प्रिटोरिया आदि नगरोंमें एक ओर तो धनाढ्य गोरे अपने आलीशान मकानोंमें रहते हैं, और दूसरी ओर हिन्दुस्तानी चायवालोंकी तरह नगरोंसे दूर डाल दिये गये हैं! गान्धीजी अफ्रिकाके इन निर्धन हिन्दुस्तानियोंके जीवनसे भलीभाँति परिचित हैं, और यहाँ भारतवर्षमें आनेके बाद भी उन्होंने अहमदाबादकी

मिलोंके मजदूरोंके लिए तथा चम्पारन और खेड़ाके अत्याचार-पीड़ित ग्रामीण मनुष्योंके बीचमें अथक परिश्रम किया है। गरीब आदमियोंके जीवनका महात्मा गान्धीको पूरा-पूरा अनुभव है। इस अनुभवको प्राप्त करनेका केवल एक ही मार्ग है, यानी गरीबोंकी तरह ही स्वयं अपना जीवन व्यतीत करें और मज़दूरोंकी तरह खुद महनत करें। इसी ढंगसे महात्माजीको उपर्युक्त अनुभव हुआ है।

हम लोग, जिन्हें इस प्रकारके जीवन व्यतीत करनेका अवसर नहीं मिला, भले ही मोटरकारोंमें बैठे हुए घूमते फिरें, अथवा आधुनिक सभ्यताके सब आनन्द-विलासोंका अनुभव करते रहें, लेकिन संसार-भरके गरीब आदमी बार-बार यही सवाल कर रहे हैं—"हम गरीब आदमी भूखों क्यों मरें? धनवानोंके भोग-विलासोंके साधनोंका दाम हम क्यों दें? हम तो खानों, मिलों और कारखानोंमें मेहनत करते-करते मरें, और फिर भी हमें पेट-भर खानेको न मिले, लेकिन मालिक लोग घर बैठे हमारे परिश्रमसे लाखों रुपयेके मुनाफ़े करते रहें, यह कहाँका न्याय है?"

इन सवालोंका जवाब देना पड़ेगा। महात्मा गान्धी सोलह आना गरीबोंके साथ हैं। यही कारण है कि गरीब आदमियोंने अपने अन्त:करणसे उन्हें अपना मित्र और रक्षक मान लिया है।

अपने अभिप्रायको पूर्णतया स्पष्ट करनेके लिए मैं फिर एक बात दुहरा देना चाहता हूँ। आधुनिक संसारके बड़े-बड़े नगरोंमें जो गन्दे मुहल्ले पाये जाते हैं, जिन मुहल्लोंमें निर्धनता, गन्दगी और रोगोंका साम्राज्य होता है, वे सब वर्तमान सभ्यताके प्रकाशमय चित्रका छायामय भाग हैं। वर्तमान सभ्यताका प्रकाशमय भाग हमें धनाढ्योंके भोग-विलासोंमें दीख पड़ता है और छायामय भाग भूखों मरनेवाले निर्धनोंकी गन्दी बस्तियोंमें। पूँजीकी प्रथाके वे अनिवार्य परिणाम हैं। जब तक पूँजीकी यह प्रथा, जिसका नामधारी वर्तमान 'सभ्यता'से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जारी रहेगी, तब तक निर्धनोंकी रोगाक्रान्त गन्दी बस्तियाँ भी जारी रहेंगी। आधुनिक 'सभ्यता' पर स्पष्टतया और खुल्लमखुल्ला यही इलज़ाम लगाया जाता है। इस इलज़ामके लगानेवाले केवल रस्किन या टाल्सटायकी तरहके महापुरुष ही नहीं हैं, बल्कि पाश्चात्य जगतके बड़े-से-बड़े वर्तमान विचारक भी—जैसे, रोमाँ रोलाँ, क्रोपाटकिन, ऐच० जी० वेल्स और अनातोले फ्राँस—आधुनिक सभ्यतापर इसी प्रकारका दोषारोपण करते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक सभ्यताको दोषी कहनेवाले ये महापुरुष किसी एक कोटिके नहीं हैं, बल्कि उनकी विचारदृष्टि और स्वभाविक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न हैं, तथापि इस बातमें ये सब एकमत हैं।

अब हम लोग ठीक तरहसे इतिहासको पढ़ना सीख गये हैं। अब हम समझ गये हैं कि इतिहासके अध्ययनका अर्थ यह नहीं है कि हम युद्धोंका वृत्तान्त जान लें अथवा शासकोंकी पीढ़ियोंके नाम याद कर लें, बल्कि इतिहासका अध्ययन साधारण मनुष्योंके जीवनका अध्ययन है। ज्यों-ज्यों हम इस दृष्टिसे इतिहासका अध्ययन करते जाते हैं त्यों-त्यों धीरे-धीरे यह बात हमारी समझमें आती जाती है कि पूँजीवालोंकी आधुनिक सभ्यताका जन्म वर्तमान कालमें नहीं हुआ है, बल्कि इस सभ्यताका, जो आजकल सम्पूर्ण संसारको अस्तव्यस्त कर रही है, प्रारम्भ बहुत पहले हो चुका था। कितनी ही बार पहले भी यह सभ्यता संसारमें चक्कर लगा चुकी है और अपनी शान जमा चुकी है। जिस प्रकार समय-समयपर कोई विशेष रोग भूमंडलपर अपना सत्यानाशी चक्कर लगा जाते हैं और अपने पीछे खंडहर, मृत्यु और नाशके चिह्न छोड़ जाते हैं, उसी प्रकार आधुनिक सभ्यता भी पहले कई बार अपने चक्र चला चुकी है और अपना वैभव दिखा चुकी है।

प्राचीन कालमें मिस्र देशके निवासियोंकी एक 'सभ्यता' थी। इस 'सभ्यता'ने भी अल्पसंख्यक धनाढ्य मनुष्योंके लिए तो ऐशो-आरामके सब सामान इकट्ठे कर दिये थे, लेकिन बहुसंख्यक प्रजाका खून और पसीना एक कर दिया था। उस समय एक मनुष्य, जो अपने निर्धन भाइयोंसे प्रेम करता

था, जिसके शासकोंके क्रोधकी कुछ भी पर्वाह न करता हुआ दुःखित गरीबोंका पक्ष लेकर खड़ा हो गया। इस मनुष्यका नाम था मूसा। मूसाने धनवान राज्याधिकारियोंका पक्ष न लेकर अत्याचार-पीड़ित हिब्रू लोगोंकी तरफ़दारी की।

अब एक दूसरा उदाहरण लीजिए। रोमन साम्राज्यके पतनका कारण यही हुआ कि उसमें गरीब आदमियोंपर अत्याचार किये गये थे। मिश्र और बेबीलोनके साम्राज्योंकी भाँति रोमन साम्राज्यकी भी नींव असंख्य गुलामोंके खून और आँसुओंके आधारपर रखी गई थी। रोमन साम्राज्यमें अल्पसंख्यक धनाढ्य लोगोंको भोग-विलासके सब साधन प्राप्त थे। उनके भवन विशाल थे, स्नानागार संगमरमरके बने हुए थे और गुलाम उनकी खिदमत करनेके लिए हमेशा खड़े रहते थे, लेकिन बेचारे गरीब आदमियोंको पेट भरना मुश्किल हो जाता था। प्राचीन रोमके लखपती-करोड़पति पोम्पियाई तथा हरकुलेनियम इत्यादि नगरोंमें तथा समुद्रके किनारे अपने महल बनाकर रहते थे और संसारके सम्मुख अपने वैभवका प्रदर्शन करते थे, लेकिन एक सीधा-सादा किसान जूडाके सुदूर प्रान्तमें निवास करता था। उसने गरीबोंका खून चूसनेवाली इस सभ्यताको अपनी आँखोंसे देखा था। इस किसानका नाम था—ईसा। ईसाने इन बड़े-बड़े नगरोंको देखकर कहा था—"ऐ बैथसदा और केपरनामके नगरो! तुम्हारा सत्यानाश हो। अपने आकाशचुम्बी भवनोंके साथ तुम अपना सर उठाये हुए हो, समय आयेगा, जब तुम नरकके रसातलमें ढकेल दिये जाओगे।"

संगमरमर और सुवर्णसे परिपूर्ण इन वैभवशाली नगरोंकी ओरसे मुँह मोड़कर क्राइस्टने गरीब आदमियोंको शान्ति और सहानुभूतिका सन्देश देते हुए कहा—"ऐ मजदूरी करनेवालो और बोझा उठानेवालो! तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हें शान्ति दूँगा।"

प्रभु क्राइस्टका यह सन्देश सांसारिक वैभवकी प्राप्तिके लिए नहीं था, बल्कि आध्यात्मिक आनन्दकी प्राप्तिके लिए था। क्राइस्टने अपने शिष्योंसे कहा था—"तुम परमात्माकी सेवा करना सीखो, लक्ष्मीके उपासक मत बनो। तुम्हारा आराध्यदेव तो विश्वपति ईश्वर है, धनपति कुबेर नहीं। वैभवशाली नगरोंकी शान-शौकत और ऐशो-आरामसे दूर रहो।"

क्राइस्टने मनुष्यतापूर्ण जीवनका निम्न-लिखित आदर्श अपने शिष्योंके सम्मुख रखा था—

"जो परमात्मा खेतोंको मनोहर हरी-भरी घाससे परिपूर्ण करता है, वही तेरे लिए वस्त्रका प्रबन्ध करेगा। तू इस बातकी चिन्ता न कर कि हमें खाने-पीनेके लिए कहाँसे आयेगा और हमारे लिए कपड़े कहाँसे आयँगे। सबसे प्रथम तू परमात्माके राज्यकी और उसके धर्मकी चिन्ता कर, अन्य सब साधन तुझे अपने आप प्राप्त हो जायँगे।" इन शब्दोंको कहे आज सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये। रोमन साम्राज्य धूलमें मिल गया। उसके बड़े-बड़े सम्राटोंके नाम तक लोग आज भूल गये, लेकिन नज़ारथके उस एक बढ़ईका नाम आज संसार-व्यापी हो गया है। ईसाका नाम भला कौन नहीं जानता?

आगे चलिये और कुस्तुनतुनियाके रूमी साम्राज्यपर दृष्टि डालिये। उसके विशाल नगरोंके दर्शन कीजिए। एक ओर आपको लक्ष्मीका साम्राज्य देख पड़ेगा, तो दूसरी ओर गुलाम मज़दूरोंके कष्ट। इन दोनोंने उसके हृदयको फोड़ेकी तरह चूस डाला था। इस शान-शौकतसे अपनी निगाह दूर हटाकर उसे अरबके रेगिस्तानकी ओर लाइये। वहाँ स्वतन्त्र वायुमण्डलमें दुनियाके ऐशो-आरामसे अलग-अलग गरीबीके साथ आप हजरत मुहम्मदको रहते हुए देखेंगे। लोग इस बातपर ताज्जुब करते हैं कि अरबके निवासियोंने सीरिया और मिश्रको किस खूबी और तेज़ीके साथ फतह किया। वे आगे बढ़ते गये और समुद्रकी तरह अपने सामनेकी चीज़ोंपर विजय प्राप्त करते गये। लोगोंको उनकी इस आकस्मिक विजयपर आश्चर्य होता है, लेकिन इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। अरबके निवासियोंकी सफलताकी कुंजी यही थी कि उनकी जिन्दगी बड़ी सादी थी, तकलीफ़को वे बड़ी खुशीके साथ सह सकते

थे, एक खुदापर वे ईमान लाये हुए थे और हममज़हब आदमियोंको अपना भाई समझते थे। कभी तरक्कीकी शान और गुलामी उनको छू भी नहीं गई थी। इसी वजहसे उनकी फ़तह हुई, लेकिन उन्होंने अपने विरोधियोंपर केवल विजय ही प्राप्त नहीं की, बल्कि उनका उद्धार भी किया। •

हम अपनी आँखोंके सामने उस समयका दृश्य उपस्थित कर सकते हैं, जब हज़रत मुहम्मद अबूबकरके साथ एक गुफामें बैठे हुए थे। कोई मनुष्य उनका सहायक नहीं था और किसीसे कुछ भी मदद मिलनेकी आशा भी नहीं थी। उस समय हज़रत मुहम्मदसे अबूबकरने कहा—"हम दोनों अकेले हैं।" मुहम्मद साहबने कहा—"नहीं, हम दोनों अकेले नहीं हैं, तीसरा परमात्मा भी हमारा साथी है।"

मुहम्मद साहबके कहनेका मतलब यह था कि दुनयवी दौलतमें आदमीकी असली ताक़त नहीं है, बल्कि वह खुदाके खयाल और उसकी मेहरबानीमें है। सांसारिक सुख-साधनोंसे विहीन परमात्माकी सेवा ही सच्चा धन है, यही सच्चा वैभव है, बाह्य धन-वैभव इसके सामने कुछ भी नहीं।

जो लोग आधुनिक सभ्यताके ऐशो-आरामको ज़रूरी समझते हैं और जिनका खयाल है कि बिना इन सुख-साधनोंके हमारी ज़िन्दगी कुत्तोंकी-सी हो जायगी, वे भला उस स्वतन्त्रतापूर्ण वायु-मण्डलका क्या अनुभव कर सकते हैं, जो कि बाह्य सुख-साधनोंको तिलांजलि दे देनेपर स्वतन्त्र आत्माओंको प्राप्त होता है! वृक्षके नीचे महात्मा बुद्धका आत्म-त्याग, गुफामें हज़रत मुहम्मदका ईमान—ये दोनों आनन्दपूर्ण विजयके दृष्टान्त हैं। इन दृष्टान्तोंसे उन आध्यात्मिक शक्तियोंका परिचय मिलता है, जो साधारण मनुष्य-समुदायमें अभी तक विकसित नहीं हुई। इनसे उत्पन्न होनेवाला बल और प्रेरणा अमूल्य है, और महात्मा गान्धी इन आध्यात्मिक शक्तियोंके प्रभावको बड़े विचित्र और अपूर्व ढंगसे हमारे सम्मुख प्रकट कर रहे हैं।

उनके शब्दोंमें प्रभु ईसा मसीहके निम्न-लिखित शब्दोंके साथ आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है—

"तुम विश्वपति परमात्मा और धनपति कुबेर—दोनोंकी सेवा एक साथ नहीं कर सकते।"

"परमात्मा हमारे साथ है।"

"सबसे प्रथम तुम परमात्माके राज्यकी चिन्ता करो।"

यही अनन्त सत्य है। भिन्न-भिन्न युगोंमें महान् आत्माएँ अवतीर्ण होकर इसीकी घोषणा करती हैं। इस अनन्त सत्यकी संजीवनी शक्ति द्वारा ही मनुष्योंमें परमात्मापर विश्वास हो जाता है।

जिन लोगोंने संसारके सब धन-वैभव एवं सुख-साधनोंको छोड़कर सत्यका अनुसरण किया है, उन्हें लोग अक्सर 'पागल' कहते रहे हैं। ऐशो-आराम-पसन्द दुनियाँकी निगाहमें वे बिलकुल 'मूर्ख' हैं, परन्तु उनको मूर्ख बतलाना मानो उस बुद्धिमान परमात्माकी बुद्धिमत्ताको 'मूर्खता' बतलाना है, जिसने अपनेको चतुर समझनेवाले अभिमानी मनुष्योंके अभिमानको धूलमें मिला दिया है। ऐसे मनुष्योंको 'निर्बल' बतलाना, मानो उस शक्तिशाली परमात्माकी शक्तिको 'निर्बल' बतलाना है। महात्माओं और नबीरसूलोंके बाबत ही यह लिखा गया है—"वे परमात्मापर विश्वास करते थे, और परमात्मामें ही उनकी शक्तिका स्रोत था, वे मानो निराकार परमात्माके दर्शन करते थे।"

केवल शब्दोंसे नहीं, बल्कि कार्योंसे गान्धीजी मनुष्योंके हृदयमें इसी परमात्माके विश्वासका भाव उत्पन्न कर रहे हैं, और भारतवर्षका हृदय उनके सन्देशको समझ गया है।

इसलिए नबी मूसा, हज़रत मुहम्मद, भगवान बुद्ध अथवा प्रभु क्राइस्टकी तरहके किसी व्यक्तिकी बातोंको 'पागलपन' समझकर तिरस्कार करनेके पूर्व हमें खूब सोच-विचार लेना चाहिए। हमको यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि इतिहासने यह सिद्धकर दिखाया है कि इन लोगोंके 'पागलपन' का नाम ही 'वास्तविक सचाई' है।

आज प्राच्य और पाश्चात्य जगत्से हमारे कानोंमें एक ध्वनि निरन्तर रूपसे आ रही है। यह ध्वनि हमें यही

सन्देश सुना रही है कि अत्याचार-पीड़ित ग़रीब आदमियोंके दासत्वकी नींवपर यदि रोमन सभ्यताकी तरहकी कोई दूसरी सभ्यता स्थापित करोगे, तो उसका भी पतन वैसा ही भयंकर होगा, जैसा रोमन सभ्यताका हुआ था। यह ध्वनि हमें भविष्यद्वाणीके रूपमें यही बतला रही है कि हमें दृढ़ निश्चय-पूर्वक अपने गला घोंटनेवाले, अस्वाभाविक और कृत्रिम वायुमण्डलसे निकलकर रेगिस्तानके उस स्वतन्त्र वायु-मण्डलमें प्रवेश करना चाहिए जहाँ हज़रत मुहम्मद तथा उनके प्रारम्भिक अनुयायियोंकी सादगी और विश्वासका जन्म हुआ था। हमें गैलाइलीके उन विस्तृत क्षेत्र और उन्मुक्त आकाशकी ओर जाना चाहिए, जहाँ प्रभु क्राइस्टने अपने प्राथमिक शिष्योंको ईश्वरीय प्रेमका उपदेश दिया था। हमें अपना जीवन उन प्राचीन भारतीय आश्रमोंके जीवनके ढाँचेपर ढालना चाहिए, जहाँ ऋषि मुनि अपनी आत्माका सच्चा अनुभव प्राप्त करते थे। हमें अपना पग बौद्ध संन्यासियोंके उन विहारोंकी ओर बढ़ाना चाहिए, जहाँ मनुष्योंको अपकारके बदलेमें उपकार करने तथा प्राणि मात्रपर दया करनेका उपदेश दिया जाता था।

जो महानुभाव मानव-जातिके प्रश्नोंपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करते हैं और जो इतिहाससे शिक्षा ग्रहणकर मानव-जातिके भविष्यका अनुमान करते हैं, वे अब शुष्क 'सभ्यता' और अतीत साम्राज्योंकी ओरसे अपनी प्रवृत्तिको हटा रहे हैं। वे इस सभ्यता तथा साम्राज्यवादके बाह्य वैभवोंको नाशवान समझने लगे हैं। उन्होंने गत संसार-व्यापी महायुद्धके भयंकर परिणामोंसे यही उपदेश ग्रहण किया है कि जिस बनावटी व्यवस्थाके द्वारा अमीर-ग़रीबोंपर अत्याचार कर सकते हैं और बलवान् निर्बलोंको लूट सकते हैं, उस व्यवस्थासे अन्तमें सरलता, सौन्दर्य और सत्यका नाश ही होता है। इस व्यवस्थासे धूर्त धनाढ्य राष्ट्रोंको अथवा व्यक्तियोंको तो ऐशो-आराम प्राप्त होते हैं, लेकिन बहुसंख्यक मनुष्योंके जीवनकी स्वाभाविकता और सादगी नष्ट हो जाती है। सभ्यताके इन भोग-विलासोंकी प्राप्तिके लिए मानव-समाजका कितना अनिष्ट किया जाता है!

वर्तमान पूँजीमूलक व्यवस्था अतीत साम्राज्योंकी व्यवस्थाकी कोरमकोर नक़ल है। इस व्यवस्थासे ग़रीबोंका नाश होना और निर्बल राष्ट्रोंका लूटा जाना अनिवार्य है। मानव-समाजके प्रश्नोंपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करनेवाले महानुभाव इस 'व्यवस्था' के आदर्शोंसे तंग आ गये हैं और वे इसे तिलांजलि देनेके लिए तय्यार हो रहे हैं। परमात्मामें पूर्ण विश्वास करते हुए और उसीको सब शक्तियोंका आदि स्थान समझते हुए, वे अब ऐसे उपायोंकी तलाशमें हैं, जिनसे जगत्-भरमें विश्व-बन्धुत्वकी स्थापना हो। ये विचारशील मनुष्य अब इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि इस विश्व-बन्धुत्वके स्थापित करनेके लिए सबसे पहला साधन यही है कि प्रकृतिकी गोदमें प्राचीन ढंगका स्वाभाविक जीवन व्यतीत किया जावे। वे लोग अब धन, शक्ति और साम्राज्योंके झूठे झगड़ोंको छोड़कर उसी स्वाभाविक जीवनमें प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

गान्धीजी भारतके सर्वसाधारणमें नवीन जीवनका सञ्चार करनेमें समर्थ हुए हैं, इसके कारण क्या-क्या हैं? इसका कारण यही है, कि गान्धीजीने उन्नतिके उस मूल मन्त्रको समझ लिया है, जिसे पश्चिमके इतिहासज्ञ, राजनीतिज्ञ और विचारक अब धीरे-धीरे पहचान रहे हैं। गान्धीजीने 'साम्राज्य' और 'सभ्यता' के झूठे झगड़ोंको निर्भयता-पूर्वक लात मार दी है। उन्होंने प्रकृतिके निकट स्वाभाविक मानवी जीवनकी सादगी और सौन्दर्यको संसारके निकट फिरसे प्रकट कर दिया है। इन्हीं कारणोंसे भारतके जन-समुदायमें महात्माजी नवीन आशाका संचार कर सके हैं।

प्राचीन कालमें भारतके निवासी यही स्वाभाविक सादा जीवन व्यतीत करते थे। असंख्य पीढ़ियोंसे यही उनका सर्वोत्तम ख़ज़ाना था। इस सादे जीवनसे उन्हें प्रेम था, और इसीमें वे सुखी थे। कई बार उनके देशपर आक्रमण हुए, लेकिन इन आक्रमणोंके बाद वे वे वही अपना शान्तिमय जीवन व्यतीत करने लगते थे। अपने देशकी प्रत्येक नदी, झील और पर्वतको वे

भक्ति और प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे। अपनी जन्मभूमिकी मिट्टीको भी वे अत्यन्त पवित्र समझते थे। कितने ही साम्राज्य उनके देशमें स्थापित हुए और नष्ट हो गये, लेकिन उनका जीवन पहलेकी भाँति सादा ही बना रहा। इन साम्राज्योंके हानिकारक परिणामोंके दूर होते ही उनके जीवनकी मनोहर सादगी भी लौट आती थी, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यने उनके जीवनको जितना अस्त-व्यस्त और छिन्न-भिन्न कर दिया है, उतना किसी भी साम्राज्यने नहीं किया था। इस साम्राज्यने भारतीय जीवनकी सादगी और सौन्दर्यके कोमल स्थानोंपर ही कुठाराघात किया है, इसीलिए जिस प्रकार गान्धीजी हाथसे सूत कातने और कपड़ा बुननेकी कलाके मशीन द्वारा नाश किये जानेका घोर विरोध कर रहे हैं, उसी प्रकार वे प्राचीन भारतके सादा जीवनके आधुनिक बनावटी सभ्यता द्वारा नष्ट होनेके भी घोर विरोधी हैं।

पाठक जानते हैं कि कालिदासने 'शकुन्तला' नाटकमें आश्रम-जीवनका कैसा मनोहर चित्र खींचा है, और जर्मन-कवि गेटेने उसकी कैसी प्रशंसा की है। भगवान् रामचन्द्रके वनवासके वृत्तान्त पढ़नेसे हमें यह बात स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है कि वनके बीच आश्रमका स्वाभाविक जीवन भारतवासियोंको कितना प्यारा है।

अब गान्धीजीके आदर्शोंकी ओर आइये। गान्धीजीके आदर्शोंको समझनेका सर्वोत्तम मार्ग यही है कि हम उनके कार्योंपर एक दृष्टि डालें। गान्धीजी स्वयं कर्मवीर हैं। मानव-जीवनके परिवर्तनकी वे कोरमकोर कल्पना ही नहीं करते, बल्कि वे अपने कार्यों द्वारा मानव-जीवनको बदलनेकी चेष्टा भी करते हैं। जब तक वे अपने आदर्शोंको कार्यरूपमें परिणत नहीं कर लेते, तब तक वे विश्राम नहीं करते। कई बार आश्रम स्थापित करके उन्होंने अपने आदर्शोंका जीता-जागता चित्र संसारके सामने उपस्थित कर दिया है। यदि हम यह जानना चाहें कि गान्धीजी 'आधुनिक सभ्यता'का इतना घोर विरोध किस अभिप्रायसे करते हैं, तो हमें उनके द्वारा स्थापित आश्रमोंके जीवनको देखना पड़ेगा।

सबसे पहले गान्धीजीने जोहान्सबर्गसे २१ मीलकी दूरीपर 'टाल्सटाय-फार्म' नामक आश्रमकी स्थापना की थी। जैसा कि इस आश्रम नामसे ही प्रकट होता है। इस आश्रमके निवासियोंके सामने वही आदर्श था, जो टाल्सटायने अपने ग्रन्थोंमें प्रकट किया है। गान्धीजीके जर्मन मित्र केलनबेकसे, जो इस आश्रममें रहते थे, मैंने इस आश्रमके जीवन-विषयमें बहुतसी बातें सुनी थीं। वस्तुतः यह जीवन सादगी और उच्च विचारोंसे परिपूर्ण था। वर्तमान युगमें इससे पूर्व शायद ही कभी दक्षिण-अफ्रिकामें इस प्रकारका सादा जीवन व्यतीत करनेके लिए ऐसे आश्रमकी स्थापना की गई हो। जब गान्धीजी युवावस्थामें थे और पूर्णतया स्वस्थ थे, उस समय वे जोहान्सबर्गमें एक बड़े मकानमें रहते थे और बैरिस्टरी करते थे। उस समय उन्होंने खूब रुपया भी कमाया था। आधुनिक नागरिक जीवन और नामधारी 'सभ्यता' से वे भलीभाँति परिचित हो चुके थे। अपने अनुभवसे वे समझ गये थे कि शहरोंकी ज़िन्दगी खोखली और निरर्थक है और वह अपने हिन्दू-आदर्शोंके विरुद्ध है। सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात गान्धीजीके टाल्सटाय-फार्ममें यह थी कि वहाँ गान्धीजी तथा उनके साथी भी, जो सुशिक्षित थे और पहले आराम-पसन्द थे, अपने हाथोंसे फावड़ा चलाते, हल चलाते और खेत जोतते थे। दिनमें खूब परिश्रम करनेके बाद जब वे भोजन करते थे, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। अन्य सुख-साधनोंके साथ वे रेलकी यात्राको भी नापसन्द करते थे। मि० केलनबेकने मुझे कितनी ही बार इस आश्रमका वृत्तान्त सुनाया था। वे कहते थे—"हम लोग दिन-भरमें कभी-कभी टाल्सटाय-फार्मसे जोहान्सबर्गको पैदल जाकर वापस लौट आते थे। रातको दो बजे हम लोग उठते और ठंडके समय तारागण-पूर्ण आकाशके नीचे बड़े उत्साहके साथ जोहान्सबर्गके लिए खुले मैदानमें चल देते

थे। शारीरिक कष्ट सहनेमें गान्धीजी हम सबको मात कर देते थे।

अब गान्धीजीके दूसरे आश्रमकी ओर आइये। नेटालमें गान्धीजीने एक फीनिक्स आश्रम स्थापित किया था। इस आश्रममें जितने दिन व्यतीत करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, उन्हें मैं अपने जीवनके सर्वोत्तम दिन समझता हूँ, और उन दिनोंकी याद मुझे बार-बार आया करती है। फीनिक्स-आश्रम डरबन नगरसे सोलह मीलकी दूरीपर स्थित है। समुद्र यहाँसे बहुत दूर नहीं है और पहाड़ भी यहाँके निकट ही है। इस आश्रममें कुछ सादा मकान बने हुए हैं, चारों ओर खेतीके लिए ज़मीन है और बीचके कमरेमें उत्तम पुस्तकोंकी एक लाइब्रेरी है।

इस कमरेमें ही आश्रमके निवासी पूजा-पाठ करते हैं। एक छोटी-सी नदीके किनारे एक हैन्ड-प्रेस भी है। यह तो हुआ फीनिक्स-आश्रमका बाह्य रूप, लेकिन इस आश्रमकी जिस वस्तुने मेरे हृदयको मोहित कर लिया था, वह थी वहाँके जीवनकी आन्तरिक शान्ति। इसी कारणसे मुझे शान्ति-निकेतन-आश्रम भी प्रिय है। फीनिक्स-आश्रमका एक सुन्दर दृश्य अब भी मेरी आँखोंके सामने आ जाता है। रात्रिका समय था, हम लोग भोजन कर चुके थे। हम सब गान्धीजीके चारों ओर बैठे हुए थे। गान्धीजीके पास एक मुसलमान लड़का था, जिसे वे अपने लड़केकी तरह प्रेम करते थे। पास ही अफ्रिकाकी जंगली जातिकी एक ज़ूलू लड़की थी, जो फीनिक्स-आश्रमको अपना घर समझती थी। महात्माजीके जर्मन मित्र मिस्टर केलनबेक दो हिन्दुस्तानी लड़कोंको लिए हुए बैठे थे। महात्माजीने ईश्वरोपासना प्रारम्भ की। पहले उन्होंने परमात्माके प्रेमके विषयमें कुछ गुजराती पद्य पढ़े। फिर उन्होंने इन पद्योंका अंग्रेज़ीमें भावार्थ कहा। तत्पश्चात् बच्चोंने कुछ गुजराती भजन गाये। तदनन्तर हम सबने मिलकर अन्तमें "Lead Kindly light" (हे प्रकाशमय ईश्वर! तू कृपाकर हमें सत्य मार्ग दिखला) गीत गाया। इसके बाद हम लोग विश्राम करनेके लिए अलग-अलग हो गये।

नेटालके गिरजाघरोंमें मुझे कई बार जाना पड़ा था। यदि वह जंगली जातिकी ज़ूलू लड़की इन गिरजाघरोंमें जाती, तो वह वहाँसे घृणा-पूर्वक निकाल दी जाती, क्योंकि वह गोरी जातिकी नहीं थी, लेकिन फीनिक्स-आश्रम शान्ति और प्रेमका स्थान था। वहाँ काले गोरेका भेद नहीं था। वर्णभेद और धार्मिक विभिन्नताका वहाँ नामोनिशान नहीं था। सम्पूर्ण मानव-समाज वहाँ एक था।

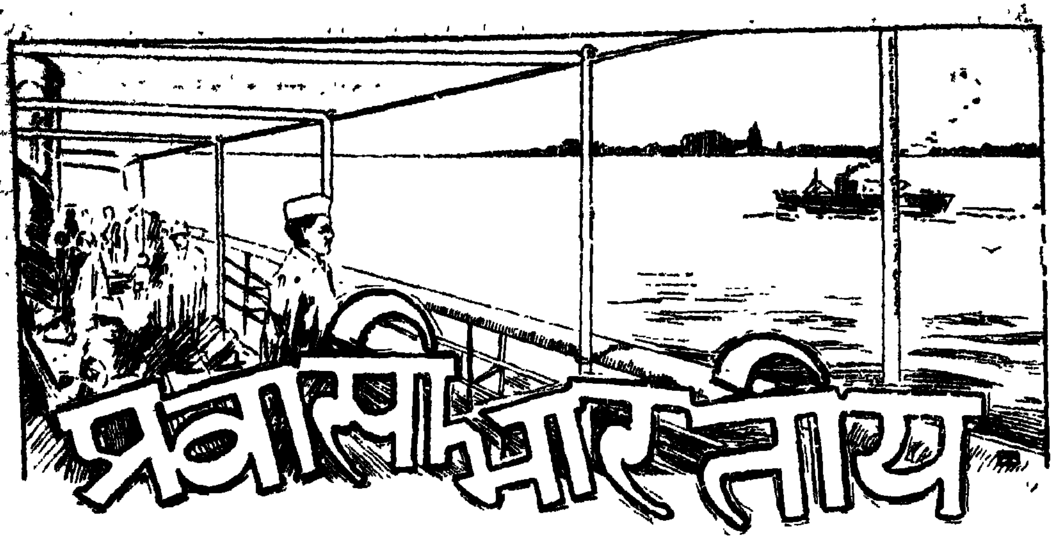
अब महात्माजीके तृतीय आश्रम (सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती) की तरफ़ चलिए। यह आश्रम अहमदाबाद नगरके निकट ही साबरमती नदीके किनारेपर है। एक ओर तो अहमदाबादके कल कारखाने हैं, जहाँ धुआँ भाफ और गन्दगीकी भरमार है, और दूसरी ओर स्वच्छ शुद्ध सत्याग्रह-आश्रम है। एक ओर कल-कारखानोंमें काम करनेवाले मज़दूर अप्राकृतिक और नीरस ज़िन्दगी बिताते हैं और दूसरी ओर सत्याग्रह-आश्रमके निवासी सुन्दर साबरमती नदीके किनारे चर्खा चलाते और कपड़ा बुनते हुए आनन्द-पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। कहाँ तो कल-कारखानोंकी गन्दगी और कहाँ आश्रमकी शुद्धता! इस सत्याग्रह-आश्रममें भी रहनेका सौभाग्य मुझे कितने ही बार प्राप्त हो चुका है। जब महात्माजीने टाल्सटाय-फार्म स्थापित किया था, तबसे लेकर अब तक उनके आदर्शोंका विकास किस प्रकार हुआ है, यह जानना कोई कठिन बात नहीं है। साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रमको देखकर हम इस विकासको भलीभाँति समझ सकते हैं। साबरमती-आश्रमका मुख्य कार्यक्रम तो शायद सूत कातना और कपड़े बुनना हो गया है, लेकिन वहाँ कृषिको भी उपेक्षा की दृष्टिसे नहीं देखा जाता। थोड़ी बहुत खेती भी की जाती है। मातृभाषा गुजराती और राष्ट्र-भाषा हिन्दीके अध्ययनमें बहुतसा वक्त बीतता है। दैनिक उपासनाके समय गीताके दो-चार पद्य अवश्य पढ़े जाते हैं। यद्यपि साबरमती-आश्रमका प्राकृतिक दृश्य टाल्सटाय-फार्म और फीनिक्स-आश्रमके दृश्यसे भिन्न है, लेकिन भीतरी स्पिरिट—आन्तरिक भाव—

समान ही है। विश्वप्रेम, सादगीमें विश्वास, श्रमका महत्व, प्रकृतिके निकट निवास, और भोग-विलाससे घृणा—ये मुख्य बातें महात्माजीके सब आश्रमोंमें समान रूपसे पाई जाती हैं। जो बातें मनुष्योंमें भेद डालनेवाली और विश्व-बन्धुत्वके मार्गमें बाधक हैं, उनके लिए गान्धीजीके आश्रममें स्थान नहीं।

गान्धीजीके आश्रमोंका जीवन अत्यन्त मानुषिक और शिष्टतापूर्ण है। जो लोग उसे यती संन्यासी जैसा जीवन समझते हैं, वे भूल करते हैं। यती शब्दका जो संकुचित अभिप्राय लोगोंने समझ रखा है, उस अभिप्रायसे यह जीवन यती-जीवन नहीं है। छोटे-छोटे बच्चोंको परमात्माने यह विचित्र शक्ति दी है कि वे शीघ्र ही बड़ी उम्रके आदमियोंके दिलको पहचान लेते हैं। वे फौरन ही यह बात जान लेते हैं कि मनुष्योंके हृदयमें बाल्य-स्वभावकी मात्रा है या नहीं। मैंने प्रायः यह दृश्य देखा है कि सब छोटे-छोटे बच्चे घेरकर महात्मा गान्धीके चारों ओर बैठे हुए हैं, खूब खिल खिलाकर हँस रहे हैं और ऊधम मचा रहे हैं, और महात्माजी स्वयं बच्चोंके साथ बच्चोंकी तरह खेलनेमें मगन हैं। यह दृश्य घोर यती लोगोंके जीवनका दृश्य नहीं है, न यह अराजकवादियोंके जीवनका दृश्य है, और न यह विकृत मस्तिष्क मनुष्य द्वारा आविष्कृत किसी अमानुषिक व्यवस्थाका दृश्य है। इस दृश्यमें स्वाभाविकता है, मानुषिकता है और शुद्ध आनन्द है।

मैं गान्धीजीके मतका अन्ध-विश्वासी अनुयायी नहीं हूँ, और न मैं उनके सब सिद्धान्तोंसे सहमत हूँ—जैसे आजीवन ब्रह्मचर्य, विवाह होनेपर भी गार्हस्थ्य जीवनसे अलग रहना और शपथ-पूर्वक व्रत ग्रहण करना। मैं बराबर गान्धीजीके सिद्धान्तोंकी आलोचना करता रहा हूँ। कई सिद्धान्तोंपर मेरी उनकी राय नहीं मिली। इनके विषयमें मैंने उनसे घंटों तक बहस की है, पर अन्तमें गान्धीजीने मुझसे यही कहा है—"तुम मेरे अभिप्रायको नहीं समझ सके।" गान्धीजीका अन्ध-विश्वासी अनुयायी न होनेके कारण मैं और भी अधिक दृढ़ता-पूर्वक यह कह सकता हूँ कि गान्धीजीके हृदयमें छोटे बच्चोंके लिए जो शुद्ध प्रेम है (जिस प्रेमको बच्चे अन्तःकरणसे पहचानते हैं और उन्हें प्रेम करते हैं), वह प्रेम ही प्रकाश्यरूपसे यह बात सिद्ध करता है कि गान्धीजीके जीवनका लक्ष्य आनन्द है, कष्ट नहीं,—वह विधेयात्मक है, निषेधात्मक नहीं। वह क्रियात्मक है, विनाशात्मक नहीं। मानव-समाजमें एक नवीन जीवन संचार करनेवाला है, न किसी स्वप्नदर्शीका निरर्थक स्वप्न।

लेकिन गान्धीजीके आदर्शोंकी कुंजी पानेके लिए आपको स्वयं आडम्बर-हीन सादा जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। आत्म-त्याग करनेके लिए तय्यार होना पड़ेगा। इसके लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं है। नान्यः पन्थः विद्यते।



प्रथम प्रवासी-परिषद्के प्रधानका अभिभाषण

[श्रीयुत भवानीदयाल संन्यासी]

मित्रो !

आप महानुभावोंने इस प्रथम प्रवासी-परिषद्के प्रधानके आसनपर बैठाकर मुझे जो सम्मान प्रदान किया है, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए यदि मैं समस्त विश्वकोषोंके पन्ने उलट डालूँ, तो भी मुझे सन्देह है कि मैं उपयुक्त शब्द न पा सकूँगा। आपकी आज्ञासे मैं इस आसनपर बैठ तो गया, किन्तु अपनी अयोग्यताका खयाल करके काँप रहा हूँ। जब मैं इस सत्यका अनुभव करता हूँ कि इस आसनपर महात्मा गान्धी, माननीय श्रीनिवास शास्त्री, श्रीमती सरोजनी देवी, साधु ऐण्ड्रूज़ इत्यादि—जिन्होंने अर्वाचीन विशाल भारतके निर्माणमें अपने जीवनका सर्वोत्तम भाग लगाया है—बैठनेके अधिकारी हैं, तब तो मेरे आश्चर्य और विस्मयकी सीमा नहीं रहती कि आपने क्यों और कैसे मेरे जैसे एक तुच्छ व्यक्तिको इस आसनपर बैठानेका संकल्प कर लिया। जहाँ तक मेरा खयाल है, आपने यही सोचा होगा कि उक्त महानुभाव इस समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्योंमें व्यस्त हैं, अतएव उनकी एकाग्रतामें बाधा न डालकर किसी मामूली आदमीसे ही काम चला लेना ठीक होगा, किन्तु फिर भी आपको मुझसे कहीं अधिक योग्य, अनुभवी और प्रवीण व्यक्ति मिल सकते थे। मैंने आपके आदेशके सामने शीश तो झुका दिया, किन्तु इस पद-प्रतिष्ठाके अनुकूल कार्य मुझसे हो सकेगा या नहीं, इसमें मुझे स्वयं सन्देह है। केवल आपकी सहायता, सहानुभूति और शुभ-कामनासे सम्भव है कि इस परिषद्का बेड़ा पार लग जाय। जिस प्रकार आपने मुझे इस आसनपर बैठाकर आदर प्रदान किया है, आशा है कि उसी प्रकार प्रवासी भारतीयोंकी जटिल और गम्भीर समस्याओंके सुलझानेमें सहयोग-दान भी देंगे।

प्रवासी-परिषद्

सन् १८३४ में पहले-पहल भारतीय मजदूर शर्तबन्दीके बन्धनमें बँधकर उपनिवेशोंमें गये—आगामी सन् १९३४ में प्रवासके पूरे सौ साल हो जायँगे, किन्तु इस एक शताब्दीके मध्यमें कभी इस देशमें प्रवासी-परिषद्की आयोजना नहीं हुई! इसे हम प्रवासियोंके दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहें? जब कभी किसी उपनिवेशसे प्रवासी भारतीयोंके आर्तनादकी आवाज़ भारत तक पहुँची, तब इधर-उधर दो-चार विरोधकी सभाएँ हो गईं और बस। यद्यपि कांग्रेस, हिन्दू-महासभा और आर्यसमाजकी वेदियोंसे प्रवासियोंकी कुछ न कुछ चर्चा बराबर होती आई है और अब भी होती है, किन्तु प्रवासी-परिषद्की आयोजना इससे पहले कभी नहीं की गई थी, इसलिए इसका कुछ महत्त्व अवश्य है। आज वर्षोंसे प्रवासियोंके कुछ शुभ-चिन्तक ऐसी परिषद्की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे, लेकिन इस सम्बन्धमें कोई व्यावहारिक कार्य नहीं हो पाया। आजसे तीन वर्ष

पूर्व मित्रवर पं० बनारसीदास चतुर्वेदीने प्रवासी-परिषद्‌की चर्चा चलाई थी। इस विषयपर उन्होंने साधु सी० एफ० ऐण्ड्रूज़, डाक्टर एस० के० दत्त, पं० हृदयनाथ कुँजरू, श्रीयुत के० टी० पाल इत्यादि सज्जनोंसे लिखा-पढ़ी और बातचीत भी की थी, और 'लीडर' आदि पत्रोंमें लेख भी लिखे थे। सभीने प्रवासी-परिषद्‌के प्रस्तावको पसन्द किया था, किन्तु खेदकी बात है कि यह विचार कार्यरूपमें परिणत नहीं हो पाया। इसलिए इस अवसरपर हम गुरुकुल-रजत-जयन्तीके सूत्रधारोंका आभार माने बिना नहीं रह सकते कि जिनके उद्योगसे इस कार्यका श्रीगणेश हुआ है।

पुण्य-स्मृतियोंपर श्रद्धांजलि

अन्य विषयोंकी चर्चा करनेसे पहले हम अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि उन महान् आत्माओंकी पुण्य-स्मृतियोंपर श्रद्धाकी अंजलि चढ़ावें, जो आज इस संसारमें नहीं हैं, किन्तु जिनकी अमर-कथाएँ हमें दुर्दिनमें, दुर्बलतामें, विपदमें, विषादमें सदा उत्साह देतीं और मार्ग दिखाती रहेंगी। ऐसे महापुरुषोंमें मैं सबसे पहले न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडेका नाम लूँगा। उनके हृदयमें उस समय प्रवासियोंके लिए प्रेम, करुणा और ममत्वकी अटूट धारा बह रही थी, जिस समय देश-भरमें इस प्रश्नके महत्वको समझनेवाले इने-गिने ही व्यक्ति थे। इसके बाद बिना किसी हिचकिचाहटके राजर्षि गोपालकृष्ण गोखलेका नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने अपने हृदयका शोणित दान देकर दीन-हीन प्रवासियोंकी सहायता और रक्षा की थी। इस देशमें गोखलेसे बढ़कर प्रवासियोंका हितचिन्तक दूसरा कोई नहीं हुआ। जब कभी विशाल भारतका इतिहास लिखा जायगा, तो गोखलेका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित होगा। सर हेनरी काटन और रेवरेन्ड डोकका स्मरण आते ही हमारा हृदय भर आता है, जो अंग्रेज़ होते हुए भी अंग्रेज़ोंके अन्यायके विरुद्ध जीवन-भर आवाज़ उठाते रहे और प्रवासी भारतीयोंकी सेवा एवं सहायतासे कभी विमुख नहीं हुए। ऐसा कौन कृतघ्न होगा, जो काका रुस्तमजी पारसीको विस्मरण कर सके ? काकाजीने अपने जीवनमें प्रवासी भाइयोंकी अधिकार-रक्षाके लिए अनेक बार कारावासका कष्ट तो भोगा ही, साथ ही इस लोकसे विदा होते समय भी वे अपनी आधी सम्पत्ति प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारार्थ दान कर गये। भाई मगनलाल गान्धीने जिस लगन और तत्परतासे प्रवासी भारतीयोंकी सेवा की थी, दक्षिण-अफ्रिकाका इतिहास उसका साक्षी है। इस अवसरपर भला हम पं० गोविन्दसहाय शर्माको कैसे भूल सकते हैं, जो अपने दोनों पुत्रोंकी मृत्युकी असह्य व्यथासे व्यथित होते हुए भी प्रवासी भारतीयोंके हितार्थ समुद्र-पार फिजी तक दौड़ लगा आये। वहाँके भारतीयोंके सम्बन्धमें शर्माजीने अपने अन्य साथियोंके साथ जो सच्ची रिपोर्ट लिखी थी, वह प्रकाशित नहीं होने पाई—भारत-सरकारके पक्षपातकी भट्टीमें पड़कर भस्म हो गई। अन्तमें हम कुमारी वलिअम्मा, हरबत सिंह, नारायण स्वामी, नागापन, सुम्भाई इत्यादिका स्मरण किये बिना नहीं रह सकते, जो या तो मज़दूर थे अथवा मज़दूरोंकी सन्तान, और जिन्होंने दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्राममें अपने पवित्र जीवनका बलिदान चढ़ाया था।

विशाल भारत

विशाल भारतको हम दो भागोंमें विभक्त करते हैं—प्राचीन और अर्वाचीन। जहाँ बौद्ध-कालीन और उससे भी पूर्वके भारतीयोंने जावा, सुमात्रा, बाली, लम्बक, कम्बोडिया, सिंहल, श्याम आदि देशोंमें पहुँचकर सद्धर्म्म और सदाचारका प्रचार किया था, उसे हम प्राचीन विशाल भारत कह सकते हैं। उस युगमें केवल ऐसे ही आदमी भारतसे बाहर गये थे, जो सर्व-गुण निधान विद्वान् थे, सात्त्विक वृत्तिके धर्माचार्य थे, धुरन्धर राजनीतिज्ञ थे और वाणिज्य-कुशल वैश्य थे। इनके द्वारा विदेशोंमें आर्य-संस्कृति और आर्य-सभ्यताका प्रचार और विस्तार हुआ था। पर अर्वाचीन विशाल भारतका निर्माण दूसरे ही ढंगसे हुआ है। जब संसारसे गुलामीकी प्रथा उठा दी गई, तब सन् १८३४ में उसका पुनर्जन्म भारतवर्षमें शर्तबन्दीकी प्रथा (Indenture System) के रूपमें हुआ। भारतसे मारिशस, नेटाल, ट्रिनीडाड, डमरारा, जमैका, सुरीनाम, फिजी आदि उपनिवेशोंको केवल शूद्र (मज़दूर) ही भेजे जाने लगे, और वह भी दासताकी कठोर बेड़ीमें बाँधकर। इनकी प्रवास-कहानी बहुत लम्बी और दुखदाई है। यह प्रथा भारतवर्षके लिए कलंक-स्वरूप थी—इससे संसारमें भारतकी बड़ी अपकीर्ति हुई। मातृभूमिके मस्तकसे इस दागको मिटानेके लिए जिन महाभागोंने भगीरथ प्रयत्न किया और अन्तत: अपने उद्योगमें सफल हुए, उनमें राजर्षि गोखले, साधु ऐण्ड्रूज़, स्वर्गीय पियर्सन, माननीय पण्डित मदनमोहन

[illegible], [illegible] अर्डन, डाक्टर मणिलाल, पं० तोताराम सनाढ्य, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी इत्यादिके नाम सदैव आदरके साथ स्मरण किये जायँगे। आज उपनिवेशोंमें हमारे भाई कुली-कबाड़ीके रूपमें नहीं, किन्तु स्वतन्त्ररूपसे विचर रहे हैं। अब मैं इसी अर्वाचीन विशाल भारतके प्रवासियोंकी धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी और आर्थिक अवस्थाकी ओर आप महानुभावोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

धार्मिक अवस्था

शर्तबन्दीकी प्रथा ही इतनी बुरी थी कि उसके चक्करमें पड़कर प्रवासी भारतीयोंके धार्मिक विश्वास ढीले पड़ गये। अर्द्ध-शताब्दी पहलेका सनातनधर्म भी उनके समुद्र-पार विदेश जानेके मार्गमें बाधक था। डिपूमें भात खाते ही और जहाज़पर बैठते ही उनकी यह धारणा हो जाती थी कि बस, अब धर्म हुआ—जाति गई। उपनिवेशोंमें पहुँचकर उनकी यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती थी कि भारतसे बाहर हिन्दू-धर्मका पालन हो ही नहीं सकता। यह विश्वास ही उनके पतनका कारण हुआ। उनमें उच्छृंखलता पैदा हो गई—धर्मका भय जाता रहा। वे लोग हिन्दू तो बने रहे, लेकिन हिन्दू-धर्मकी सारी विशेषताओंको भूल गये। हिन्दुओंके त्योहार, जो जातीय जीवनका मुख्य चिह्न हैं, विस्मृतिके गर्भमें छिप गये। कौन त्योहार कब आता है और कब जाता है, इसका कहीं कुछ पता ही नहीं था। हिन्दुओंका मुख्य त्योहार मुहर्रम बन गया! इस अवसरपर लोग खूब शराब पीकर नाचते-गाते और खुशियाँ मनाते थे! हिन्दुओंके घर ताज़िये बनते, उनकी औरतें मर्सिया गातीं और शीरीनी, पंजे तथा मलीदे चढ़ातीं थीं। मज़ा तो यह था कि ताज़ियेके दायें-बायें या आगे-पीछेका झगड़ा उठाकर हिन्दू लोग आपसमें लड़ भी पड़ते, लाठियाँ चलतीं और किसानोंके सिर फूटते। इस विषयपर महामति महादेव गोविन्द रानाडेने अपनी पुस्तक 'Essays on Economics' में लिखा है—"सन् १८८४में ट्रिनीडाडके भारतीयोंमें एक भारी झगड़ा हो गया। इस झगड़ेमें बारह हज़ार मज़दूरोंने भाग लिया था। पुलिसको गोली चलाकर झगड़ा शान्त करना पड़ा। बारह आदमी मारे गये और चार सौ घायल हुए। जाँच करनेपर मालूम हुआ कि ट्रिनीडाडमें जितने भारतीय रहते हैं, उनमें पाँचवें हिस्सेसे भी कम मुसलमान हैं, बाकी हिन्दू हैं। हिन्दुओंने ताज़िये निकालनेका बड़ा प्रबन्ध किया था। कुछ मुसलमानोंने सरकारसे प्रार्थना की थी कि धार्मिक दृष्टिसे हिन्दू लोगोंके इस अनुचित कार्यको रोका जावे। उधर हिन्दू यह दावा कर रहे थे कि ताज़िये निकालना उनका अपना धार्मिक त्योहार है! इसी बातपर यह भयंकर झगड़ा हो गया था।" केवल ट्रिनीडाड ही क्यों, सच बात तो यह है कि लगभग सभी उपनिवेशोंके हिन्दू ताज़ियापरस्त बन गये थे।

हिन्दुओंके लिए मृतक-दाहकी भी कोई व्यवस्था नहीं थी। विवश होकर उन्हें कब्रमें मुर्दे गाड़नेकी रीति स्वीकार करनी पड़ी। आज भी कई उपनिवेशोंमें यही प्रथा चली आ रही है, और हिन्दुओंके मुर्दे जलानेके बजाय दफनाये ही जाते हैं। इसके अतिरिक्त, शर्तबन्दीके युगमें सौ मर्दोंके पीछे सिर्फ तीस ही औरतें भेजी जाती थीं। इससे अगर अनाचार और दुराचार फैला, स्त्रियोंके लिए मार-काट हुई और कुछ लोग अपनी प्रेमिकाओं अथवा चरित्रहीन औरतोंको मारकर फाँसीपर चढ़ गये, तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है?

इस भयंकर स्थितिमें रहते हुए भी प्रवासी हिन्दुओंने अपने धर्मकी जो कुछ रक्षा की है, वह कुछ कम प्रशंसनीय नहीं है। उस युगमें भी जहाँ कहीं तुलसीकृत रामायणका पाठ होता अथवा सत्यनारायणकी कथा होती, वहाँ सैकड़ों प्रवासी भाई बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे सुननेके लिए इकट्ठे हो जाते थे। कुछ लोग हनुमानजीको रोट और लाल लँगोट भी चढ़ाया करते थे। हिन्दुस्तानसे गये हुए आदमी तो किसी प्रकार अपने जीवनकी किश्तीको ठेलठाल कर लिए जा रहे थे, किन्तु उनकी जो सन्तान हुई और उनमेंसे जिनको शिक्षा मिली, वे हिन्दुओंकी पुरानी सड़ी-गली रूढ़ियोंके विरुद्ध बग़ावत कर बैठे। वे ऐसे धर्मकी खोज करने लगे, जो तर्कसे सिद्ध, विज्ञानके अनुकूल और उनकी आत्माके लिए शान्ति-दायक हो। यहाँ हम आपको पादरी बर्टन साहबके

'Fiji of To-day' नामक ग्रन्थसे एक दृष्टान्त सुनाना चाहते हैं, जिससे आपको पता लग जायगा कि प्रवासी बच्चे धर्मके विषयमें कैसी छान-बीन करते हैं। "रविवारके दिन एक मिस साहबा कुछ हिन्दुस्तानी बच्चोंको ईसाई-धर्मकी शिक्षा दे रही थीं। क्लासमें एक चित्र लटक रहा था, जिसमें इब्राहीम अपने पुत्रको परमात्माके सामने बलि चढ़ाता हुआ दिखलाया गया था। वह ईसाई-मिस लड़कोंको यह कथा समझा रही थी कि बीचमें ही छेदी नामका एक लड़का बोल उठा—'मिस साहबा, पादरी साहब तो कहते हैं कि ईश्वर भला है, तो फिर ईश्वरने इब्राहीमको अपने लड़केका बलिदान चढ़ानेके लिए जो आज्ञा दी, यह बात तो कोई भलाई की नहीं है।' मिस साहबाने कहा—'हाँ छेदी, ईश्वर भला है, लेकिन बात यह है कि उसने इब्राहीमके विश्वासकी जाँच करनेके लिए ऐसी आज्ञा दी थी।' छेदीने कहा—'लेकिन आप तो कहती थीं कि ईश्वर सब बातोंको जानता है और हम सबके दिलके विचारोंको जान सकता है, इसलिए वह बिना आज्ञा दिये ही यह जान सकता था कि इब्राहीमका विश्वास कैसा है, तो फिर उसे आज्ञा देनेकी क्या ज़रूरत पड़ी थी? मैं इन सब बातोंपर विश्वास नहीं करता।'...."

ऐसे तर्कशील प्रवासी बच्चोंको हिन्दुओंकी पुरानी प्रथाओं और रूढ़ियोंसे कैसे आत्म-तुष्टि हो सकती थी? अतएव बहुतसे युवक तो और कहीं आश्रय न पाकर प्रभु ईसा मसीहकी शरणमें जाने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि ईसाइयोंके धर्मानुराग, अपना मत फैलानेका उत्साह, गिरे हुए प्राणियोंके उठानेकी लगन, रोगियोंकी सेवा-सुश्रूषाके भाव, महिलाओंके साथ शिष्टतापूर्ण व्यवहार इत्यादि सद्गुण ऐसे हैं, जिनकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करनी पड़ती है। मुसलमानोंका भाई-चारा भी कुछ कम तारीफ़की चीज़ नहीं है, किन्तु इन लोगोंमें एक बड़ा भारी दुर्गुण भी है और वह यह कि वे लोग धर्मके साथ ही साथ हिन्दुस्तानकी संस्कृति, सभ्यता और साहित्यको भी तिलाञ्जलि दे बैठते हैं, और सब विषयोंमें विदेशियोंके चाल-चलनपर चलनेमें अपना गौरव समझने लगते हैं। आज जहाँ कोई ईसाई या मुसलमान हुआ, बस, कल ही से वह काशी और प्रयागसे घृणा करने लगेगा। यह मनोवृत्ति राष्ट्रीयताके लिए घातक है। धर्म बदलनेसे देश नहीं बदलता, पूर्वज नहीं बदल जाते, इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

इस स्थितिमें कौन प्रवासी हिन्दुओंका ईसाई और मुसलमान होना पसन्द करेगा? हिन्दुस्तानमें आर्यसमाज एक ऐसी जीवित-जाग्रत संस्था है, जो भारतके पुरातन वैदिक धर्मके प्रचार और आर्य-संस्कृतिकी रक्षामें कटिबद्ध है। इस समाजके प्रचारकोंने प्रवासी हिन्दुओंमें भी आर्य-धर्म-प्रचार और नवजीवन संचार करनेके लिए प्रशंसनीय प्रयास किया है। मोरिशसमें स्वामी स्वतन्त्रानन्द, डाक्टर भारद्वाजजी, स्वामी मंगलानन्द पुरी, स्वामी विज्ञानानन्द इत्यादि; पूर्व-अफ्रिकामें आचार्य रामदेवजी, पं० चमूपति एम०ए०, पं० ऋषिराम बी० ए०, स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा, पं० बुद्धदेव, श्रीमती शन्नोदेवी इत्यादि; फिजीमें पं० गोपेन्द्र नारायणजी पथिक पं० अमीचन्दजी विद्यालंकार, पं० श्रीकृष्ण शर्मा आर्य-मिशनरी, ठाकुर सरदारसिंहजी, ठाकुर कुन्दन सिंहजी इत्यादि और दक्षिण-अफ्रिकामें भाई परमानन्दजी, स्वामी शंकरानन्दजी, पं० ईश्वरदत्त विद्यालंकार, लाला कर्मचन्दजी, ठाकुर प्रवीणसिंह, डाक्टर भगतराम इत्यादिने हिन्दुओंमें अपनी-अपनी योग्यतानुसार वैदिक धर्मका प्रचार किया है, एतदर्थ प्रवासी भाई उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। हाल ही में महता जैमिनीजी ट्रिनीडाड, डमरारा और सुरीनामके प्रवासी हिन्दुओंको वैदिक धर्मका सन्देश सुनाकर लौटे हैं।

यदि उपनिवेशोंमें जाकर आर्य-प्रचारकोंने काम न किया होता, तो आज प्रवासी हिन्दुओंका बेड़ा किस घाटपर जाकर लगा होता, यह कहना कठिन है। आज प्रवासी भाई अपने धर्मपर कैसे दृढ़ हो रहे हैं, यह साधु एण्डूजके शब्दोंमें सुन लीजिए—"पृथ्वीके हर भागमें मुझे ऐसे आदमी मिले, जिन्होंने ऋषि दयानन्दके जीवनसे ईश्वरीय प्रेरणा ग्रहण की है। मैंने इन प्रवासी भाइयोंसे स्वयं बातचीत की है और अपने अनुभवसे

दिखाता है। इस पत्र द्वारा मैं साक्षी देना चाहता हूँ कि उनका धर्म उनके लिए एक जीता-जागता ईश्वरीय ज्ञान रहा है। अपने देशसे सहस्रों मील दूर रहकर इन युवक और युवतियोंने अपने धर्मको नहीं भुलाया और अगणित प्रलोभनोंके बीचमें रहते हुए भी अपने धर्मकी रक्षा की है, यह मुझको एक विचित्र बात प्रतीत हुई।"

इस समय आप किसी भी उपनिवेशमें जाइये, आपको आर्यसमाज और आर्य-पुरुष अवश्य मिलेंगे। मारिशसमें अनेक समाज हैं, परोपकारिणी और आर्य-प्रतिनिधि सभाएँ हैं, आर्यसमाजकी ओरसे 'आर्य-वीर' और 'आर्य-पत्रिका' नामक दो साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। पोर्टलुइसमें दयानन्द-धर्मशाला है और अनेक उपदेशक प्रचारका कार्य कर रहे हैं। यह सब होते हुए भी वहाँ दलबन्दीकी सृष्टि हो गई है। एक दल दूसरे दलपर अपशब्दोंकी वृष्टि कर रहा है। यह प्रवृत्ति आर्यसमाजके भविष्यके लिए हानिकारक है। किसी प्रभावशाली आर्य-नेताको वहाँ जाकर इस कलहाग्निको शान्त कर आना चाहिए। फिजीके मुख्य-मुख्य नगरों और गाँवोंमें आर्यसमाजकी स्थापना हो गई है, आर्य-प्रतिनिधि-सभा भी बन गई है। फिजीका गुरुकुल अच्छी तरह चल रहा है, और 'वैदिक सन्देश' नामक मासिक पत्र भी निकलने लगा है। केनियाके नैरोबी और मोम्बासा आदि नगरोंमें आर्यसमाज कार्य कर रहा है। नैरोबीका आर्य-मन्दिर तो अपने ढंगका एक ही है। युगाण्डा-प्रदेशके कम्पाला, जिंजा आदि शहरोंमें आर्यसमाज कायम हो गया है। टांगानिक्याके मुख्य नगर दारएस्लाममें और जंजिबारमें आर्यसमाजके दुमंजिला सुन्दर, भव्य और दर्शनीय मन्दिर बन गये हैं। नेटालके कई स्थानोंपर आर्यसमाजकी स्थापना हो चुकी है। आर्य-प्रतिनिधि-सभाका काम भी साधारणतया चल ही रहा है। नेटालमें एक आर्य-अनाथालय है, जो वहाँकी आर्य-युवक-सभाकी कृति है। इस आश्रममें सभी सम्प्रदाय और जातिके अनाथोंको आश्रय मिलता है। नेटालके जेलखानोंमें ईसाई प्रचारकोंके साथ आर्योपदेशकोंको भी जाने और कैदियोंमें धर्म-प्रचार करनेके लिए सरकारी आज्ञा मिल गई है।

आर्यसमाजके प्रचारकोंके उद्योगसे हिन्दू नवयुवकोंमें वैदिक धर्मपर भक्ति, सन्ध्या-हवनमें श्रद्धा, त्योहारोंपर निष्ठा, अपनी सभ्यतापर अभिमान, हिन्दी-भाषाकी ओर रुचि, सभा-संगठनसे प्रेम और मातृ-भूमिके उज्ज्वल भविष्यमें अटल विश्वास उत्पन्न हो गया है। उपनिवेशोंके जो हिन्दू अर्द्ध-मुसलमानी और अर्द्ध-क्रिस्तानी रस्म-रिवाजके शिकार बने हुए थे, उनमें स्वधर्मानुराग भरकर अपने पैरोंपर खड़ा कर देना कोई सहज काम नहीं था। आर्य-प्रचारकोंने इस कार्यको सुचारु रूपसे करते हुए वस्तुतः प्रवासी हिन्दुओंकी बहुत बड़ी सेवा की है।'

अब तक उपनिवेशोंमें आर्यसमाजके प्रचारका जो ढंग रहा है, वह अतीत समयकी आवश्यकताके अनुसार उचित ही कहा जा सकता है, परन्तु अब वह वक्त आ गया है कि प्रचारकी पुरानी पद्धतिमें परिवर्तन किया जाय। जो लोग व्यक्तिगत रूपसे उपनिवेशोंमें जाकर प्रचार-कार्य करते हैं, हम उनके उत्साहकी सराहना भले ही करें किन्तु इस ढंगको हम पसन्द नहीं करते। ईसाई मिशनरियोंकी भाँति हमारा कार्य भी संगठित रूपसे होना चाहिए। विदेशोंमें प्रचारका सारा सूत्र एक-मात्र सार्वदेशिक सभाके अधीन होना चाहिए। जो प्रचारक उपनिवेशोंमें जाना चाहें, वे सार्वदेशिक सभासे अधिकार-पत्र लेकर जावें। ऐसा नियम बन जानेपर जो लोग स्वतन्त्र-रूपसे वहाँ जा पहुँचे, प्रवासी भाइयोंकी ओरसे उनकी उपेक्षा ही होनी चाहिए। मैं कई ऐसे उपदेशकोंको जानता हूँ, जिन्होंने उपनिवेशोंमें जाकर आर्यसमाजकी प्रतिष्ठामें बट्टा लगाया है।

सार्वदेशिक सभा ही उपनिवेशोंमें वैदिक धर्म-प्रचारका कार्य ठीक ढंगसे कर सकती है। इस मदमें उसके पास कुछ धन भी जमा है। सभाके दो-चार प्रचारकोंको सदा विशाल भारतका पर्यटन करते रहना चाहिए। वे

प्रचारक ऐसे हों, जो प्रवासी भारतीयोंके आपत्की अन्धकारमयी रजनीमें दीप-स्तम्भका काम कर सकें। उनका हृदय विशाल और उनकी वाणी मधुर होनी चाहिए। जो अंग्रेज़ी और हिन्दीमें धाराप्रवाह वक्तृता दे सकते हों और जो साम्प्रदायिक संकीर्णताको नफ़रतकी निगाहसे देखते हों, ऐसे उपदेशक उपनिवेशोंके लिए कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। खंडनकी खँजड़ी बजानेवाले प्रचारक प्रवासियोंपर दूर ही से दया बनाये रखें; उनके आनेसे आर्यसमाजका गौरव बढ़ेगा तो नहीं, घटेगा अवश्य।

भारतीय आर्यसमाजमें कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो यह भूल जाते हैं कि प्रवासी भारतीयोंके प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है। वे अमेरिकामें डंका बजाने, यूरोपमें झंडा फहराने और अरबमें आर्य-मन्दिर बनानेका स्वप्न देखा करते हैं। उनकी इस उमंग और तरंगपर बधाई है, किन्तु मैं तो यही प्रार्थना करूँगा, कि पहले घरमें चिराग जला लीजिए—फिर मस्जिद या गिरजेमें जलाइयेगा। इस समय सबसे अधिक प्रचारकी आवश्यकता है डमरारा, सुरीनाम, ट्रिनीडाड और जमैकामें। एक प्रत्यक्ष-दर्शीने जमैकाके विषयमें मेरे पास एक पत्र लिखा था—"यहाँ हिन्दू-धर्मके प्रचारका कोई प्रबन्ध नहीं है। प्रायः सभी नवयुवक ईसाई हो गये हैं। अन्य धर्मोंके विषयमें वे कुछ जानते ही नहीं। अधिकांश भारतीय घरोंमें केवल प्रभु मसीहके सिवाय और किसीके चित्र नहीं दिखाई देते।" लगभग यही अवस्था डमरारा, ट्रिनीडाड और सुरीनामकी भी हो रही है। ज़रूरत इस बातकी है कि अमेरिका और यूरोपके पहले इन लाखों प्रवासी भारतीयोंकी सुधि ली जाय।

शिक्षा-सम्बन्धी अवस्था

प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारका प्रश्न बड़े महत्त्वका है, और किसी भी दृष्टिसे इस प्रश्नकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कानपुर-कांग्रेसकी विषय-निर्धारिणी-समितिमें इस आशयका एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया था कि एक ऐसा कमीशन चुना जाय, जो भिन्न-भिन्न उपनिवेशोंके भारतीयोंकी शिक्षा-सम्बन्धी अवस्थाकी जाँच करे, किन्तु वह प्रस्ताव लड़ाईमें ही पड़ा रह गया। इस परिषद्में इस विषयपर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ना बहुत ज़रूरी है, इसलिए सबसे पहले हम यह देखेंगे कि इस समय किस उपनिवेशमें भारतीयोंकी शिक्षाकी क्या अवस्था है।

सन १८३८ से मारिशस-द्वीपमें भारतीयोंका आना शुरू हुआ, और इस समय उनकी संख्या २,६४,६२७ है। पहले वहाँके रायल कालेजमें भारतीय विद्यार्थियोंका प्रवेश वर्जित था, किन्तु सन् १८५२ के बाद यह रुकावट दूर कर दी गई। सन १८५७ में भारतीय विद्यार्थियोंको अनिवार्य शिक्षा देनेकी चर्चा चली थी, किन्तु विधि-विडम्बनासे वह बात त्रिशंकुकी भाँति अधरमें ही लटकती रह गई। सन् १८८१ में ४० हज़ार बच्चे पढ़ने-योग्य थे, जिनमें केवल एक ही हज़ार किसी प्रकार स्कूलोंमें पहुँच पाये थे। सन् १९०६ में जो रायल कमीशन बैठा था, उसकी रिपोर्टमें साफ़ लिखा है कि सन् १९०८ में मारिशसमें विद्यार्थियोंकी संख्या १८५८५ थी, जिनमें एक तिहाईसे भी कम हिन्दुस्तानी थे। सन् १९२१ में ६ से १६ साल तककी उम्रके लगभग २० हज़ार लड़के थे, जिनमें केवल तीन ही हज़ार शिक्षा पाते थे। शिक्षा-योग्य कन्याओंकी संख्या लगभग पन्द्रह हज़ार थी, जिनमें पाँच सौसे अधिक स्कूलोंमें नहीं जाती थी। मारिशसमें कुल १६२ प्रारम्भिक पाठशालाएँ हैं। इनमें पचीस हज़ार विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा पाते हैं। शिक्षा-कार्यमें वहाँकी सरकार हर साल दस लाख रुपये खर्च करती है, किन्तु संख्यामें अधिक होते हुए भी शिक्षामें हिन्दुस्तानी सबसे पिछड़े हुए हैं। सन् १९२१ में वहाँके कालेजमें ३४० विद्यार्थी थे, उनमें भारतीय केवल ११० थे। स्कूलोंमें केवल फ्रेंच और अंग्रेज़ीकी पढ़ाई होती है। आर्यसमाज तथा अन्य हिन्दू संस्थाओं द्वारा अब हिन्दी-प्रचारका थोड़ा बहुत काम शुरू हो गया है।

डमरारा (ब्रिटिश-गायना) में सन् १८३८ में पहले-

पहले हिन्दुस्तानी मजदूर गये। इस समय उनकी संख्या ३,२४,४२६ है। कुल आबादीके लिहाजसे ४५ प्रतिशत भारतीय हैं; किन्तु शिक्षामें वे सब जातियोंसे गिरे हुए हैं। सन् १९२६ में हिन्दुस्तानियोंके ८,७१५ लड़के और ३,३१२ लड़कियाँ—कुल १२,०२७ बच्चे शिक्षा पाते थे। इसके मुकाबलेमें गैर-भारतीयोंके २६,८१० बच्चोंको शिक्षा मिलती थी। हाँ, वहाँके ६६ पाठशालाओंको हिन्दी पढ़ानेके लिए सरकारी सहायता मिली है, यह अवश्य मार्केकी बात है; किन्तु अध्यापक कहाँ मिलेंगे, यह भी एक विचारणीय विषय है। सन् १९२४ में जहाँ केवल ३७ पुरुष और ६ स्त्री—कुल ४३ भारतीय शिक्षक थे, वहाँ गैर-भारतीय अध्यापकोंकी संख्या ११७६ थी। इस हालतमें ६६ पाठशालाओंमें हिन्दीकी पढ़ाई किस प्रकार होती होगी, यह बात हमारी समझमें बिलकुल नहीं आती।

ट्रिनीडाडमें भारतीयोंकी संख्या १,२१,४२० है। सन् १९२३ में ट्रिनीडाडके सरकारी स्कूलोंमें ११२८ बालक और ३६३ बालिकाएँ—कुल १४९३ और इमदादी स्कूलोंमें ९०४९ लड़के और ३३२९ लड़कियाँ—कुल १२३७८ भारतीय विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। इस प्रकार उपनिवेश-भरमें कुल १३,८३१ बच्चोंको विद्याध्ययनकी व्यवस्था है, शेष बच्चे अविद्याके अन्धकारमें भटक रहे हैं। इमदादी स्कूल मिशनरियों द्वारा संचालित होते हैं, जिनका भारतीय संस्कृतिसे कोई वास्ता ही नहीं है।

जमैकाकी तो बात ही न पूछिये। वहाँ १८,४०१ हिन्दुस्तानी हैं। इनकी दशा सबसे अधिक शोचनीय है। यहाँके भारतीय जानते ही नहीं कि शिक्षा किस बलाका नाम है। जमैकाकी राजधानी किंग्सटन है, किन्तु इस नगरमें ढूँढ़नेपर भी आपको दो-चार शिक्षित भारतवासी नहीं मिलेंगे। हिन्दुस्तानियोंके लिए जो इनी-गिनी ग्राममात्रकी पाठशालाएँ हैं भी, उनमें अध्यापक सब-के-सब बीओ हैं। भारतसे उनका सम्बन्ध बिलकुल टूट गया है। जो दो-चार पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी मिलते भी हैं, वे सब अपनेको भारतीय कहनेमें लजाते और सकुचाते हैं! एकने तो यहाँ तक घोषित कर दिया है कि हम भारतीय वंशके नहीं हैं। वे शिक्षामें इतने पिछड़े हुए हैं कि उन्होंने यह दावा ही छोड़ दिया है कि उनका भी कोई देश या राष्ट्र भी है।

सुरीनाम (डच गायना) में सन् १८७३ में भारतीयोंका प्रथम प्रवेश हुआ और इस समय उनकी संख्या ३४,९५७ है। यहाँकी सरकार कुछ पाठशालाओंमें भारतीयोंको उनकी भाषामें शिक्षा देती है। अब यह विचार होने लगा है कि हिन्दुस्तानी भाषाकी पढ़ाई बन्द कर दी जाय। यदि ऐसा हुआ, तो भारतीयोंकी महती हानि होगी। यहाँ भी पढ़ाईकी कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है। प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षाका बड़ा अभाव है।

फिजी-द्वीपमें सन् १८७९ में पहले-पहल भारतीय मजदूरोंका जाना प्रारम्भ हुआ और इस समय उनकी संख्या लगभग ६८,००० तक पहुँच गई है। करीब ३६ साल तक अर्थात् सन् १९१६ से पूर्व वहाँकी सरकारने भारतीय शिक्षाकी ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं दिया! जब ईसाई मिशनरियोंने हिन्दुस्तानियोंमें शिक्षा-प्रचारका कार्य आरम्भ किया और स्वयं भारतीयोंने भी अपने पैरों खड़े होनेका संकल्प किया, तब सरकारकी आँखें खुलीं। सन् १९१६ में सरकारकी ओरसे शिक्षा-बोर्ड (Board of Education) कायम हुआ। सन् १९१७में संख्याके विचारसे १½ फी सदी भारतीय स्कूलोंमें पहुँचे थे। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि अभी हालतक फिजीमें भारतीय शिक्षाकी कैसी बुरी अवस्था थी। फिजी-प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारके लिए आर्यसमाजने जो कार्य किया है, वह स्तुत्य है। सन् १९२६ में फिजीमें भारतीयोंके लिए केवल एक सरकारी, ९ इमदादी, ६ वर्नाक्यूलर इमदादी और २० खानगी पाठशालाएँ थीं। इस समय लगभग दो हजार भारतीय बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अध्यापकोंमें १५ यूरोपियन हैं, ७५ फिजियन और ५० हिन्दुस्तानी। फिजीमें कुछ विद्यार्थी न्यूजीलैण्ड,

आस्ट्रेलिया और भारतमें भी शिक्षा पा रहे हैं। सन् १९२६ में सरकारने एक शिक्षा-कमीशन भी बैठाया था। कमीशनकी एक अच्छी रिपोर्ट भी निकली थी किन्तु उसके अनुसार अब तक काम कुछ नहीं हुआ है।

अब नेटालकी अवस्थापर एक दृष्टि डालिए। वहाँ भारतीयोंकी संख्या १,४१,३३६ है। वहाँका शिक्षा-सम्बन्धी इतिहास भी बहुत बड़ा है। हम यहाँ केवल वर्तमान अवस्थापर ही कुछ प्रकाश डालेंगे। सन् १९२७ में ३२ हजार भारतीय लड़के स्कूल जाने योग्य थे, उनमेंसे केवल एक चौथाई अर्थात् ७८२८ बालक और १६४७ बालिकाएँ शिक्षा पाती थीं। नेटालमें कुल ६ सरकारी और ४४ इमदादी पाठशालाएँ थीं, जिनमें ३१ का संचालन मिशनरियों द्वारा होता था। यद्यपि नेटालमें यूरोपियन भारतीयोंसे संख्यामें कम हैं, किन्तु उनके बच्चोंके लिये १६० सरकारी और इमदादी पाठशालाएँ थीं। सन् १९२७ में जहाँ यूनियन सरकारकी ओरसे यूरोपियन बच्चोंकी शिक्षाके लिए ३,५०,५७३ पौण्डकी सहायता मिली वहाँ नेटालकी प्रान्तिक सरकारने अपने कोषसे ७०,१२८ पौण्ड मिलाकर कुल ४,२०,७०१ पौण्ड इस मदमें खर्च किया, किन्तु उसी साल भारतीय बालकोंकी शिक्षाके लिए यूनियन सरकारसे ३८,९८५ पौण्डकी सहायता मिली थी, जिसमेंसे केवल २८,४२६ पौण्ड खर्च करके शेष १०,५५६ पौण्ड बचा लिया गया और इस धनको अन्य मदमें खर्च कर दिया गया। केपटाउन-अग्रिमेन्टके अनुसार सन १९२८में भारतीय शिक्षा-कमीशन बैठा, और उसकी जाँचके बाद अब सरकारने इस ओर कुछ अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया है। पिछले साल भारतीय शिक्षाके मदमें लगभग ५० हजार पौण्ड खर्च किया गया। नेटालमें भारतीयोंकी लगभग ५० खानगी पाठशालाएँ भी हैं। इसके अतिरिक्त स्वर्गीय काका रुस्तमजी पारसीने एक ट्रस्ट बनाकर ४५,००० पौण्ड उसके सुपुर्द कर दिया था। इस रकमसे दो हजार पौण्ड सालाना आमदनी होती है और वह सब केवल शिक्षाके कार्यमें ही खर्च होता है। पिछले वर्ष डरबनमें शास्त्री-कालेजकी भी स्थापना हो गई है, जो माननीय श्रीनिवास शास्त्रीकी अमर कृति है। इसकी इमारतमें लगभग बीस हजार पौण्ड व्यय हुआ है। इसमें जहाँ बालकोंको मैट्रिक तककी शिक्षा दी जायगी, वहाँ अध्यापक भी तैयार किये जायँगे।

ये हैं वे मुख्य-मुख्य उपनिवेश, जहाँ भारतीय शर्तबन्द मजदूरके रूपमें गये थे। करीब एक सदी हो गई किन्तु उनकी शिक्षा-सम्बन्धी अवस्थामें जैसी होनी चाहिए वैसी उन्नति नहीं हुई। मातृभूमि अपनी इन प्रवासी सन्तानोंकी उपेक्षा नहीं कर सकती। यहाँसे कुछ ऐसे शिक्षकोंको बाहर जाना चाहिए, जो अन्य खटपटमें न पड़कर केवल विद्या-प्रचारमें ही अपनी सारी शक्ति खर्च करें। इस बातका पूर्ण उद्योग होना चाहिये कि प्रवासी भारतीय अपनी मातृभाषा न भूलने पावें। भाषा ही राष्ट्रीय जीवनकी जड़ है। यदि किसी जातिकी अपनी भाषा लुप्त हो जाय, तो जातीय जीवनका दीपक बुझे बिना नहीं रह सकता। जातिके व्यक्तियोंकी आकृति चाहे न बदले, किन्तु आत्माका रूप अवश्य बदल जायगा।

भारतकी अनेक शिक्षा-संस्थाओंको प्रवासी भारतीयोंसे लाखों रुपये दान-स्वरूप मिले हैं और मिलते रहते हैं, किन्तु इस सहायताके बदलेमें प्रवासी विद्यार्थियोंके लिए इन संस्थाओंमें क्या विशेष व्यवस्था हुई है, यह बताना कठिन है। दयानन्द-शताब्दीके समय इसी पवित्र भूमिमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि प्रत्येक आर्यसामाजिक संस्था एक या दो प्रवासी विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देनेका प्रबन्ध करे, किन्तु जहाँ तक मेरा खयाल है कि गुरुकुल वृन्दावन, कन्या-महाविद्यालय जालन्धर और दयानन्द कालेजके सिवाय अन्य संस्थाएँ इस ओरसे बिलकुल उदासीन ही रही हैं। गुरुकुल वृन्दावनके कार्यकर्ताओंने इस विषयमें जो कार्य किया किया है, उसकी हमें प्रशंसा करनी पड़ेगी। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि इस महत्त्वपूर्ण कार्यका श्रेय अधिकांशमें गुरुकुल वृन्दावनके भूतपूर्व शिक्षक श्री गोपेन्द्र

...वालोंको अधिक तथा म० श्रीरामजीको मिलना चाहिए। ...बाज़ार देहलीके आर्यसमाजकी ओरसे अवश्य दो प्रवासी विद्यार्थियोंको दस-दस रुपयेकी छात्रवृत्तियाँ मिलती थीं। हम उक्त स्वीकृत प्रस्तावकी ओर पुनः आर्यसंस्थाओं और आर्यजनताका ध्यान आकर्षित करते हैं।

प्रवासी भाइयोंको भी अब अपने पैरोंपर खड़ा होनेका उद्योग करना चाहिए। फिजीवालोंने कुछ लड़के और लड़कियोंको भारतमें शिक्षार्थ भेजकर बड़ी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ताका कार्य किया है। ये ही शिक्षित होकर वहाँ लौटनेपर अध्यापकों और उपदेशकोंके अभावकी पूर्ति करेंगे और उनकी सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी। अन्य उपनिवेशके प्रवासी भाइयोंको भी फिजीवालोंका अनुकरण करना चाहिए।

अन्तमें एक बात और। शिक्षा-कार्यमें समस्त प्रवासी भाइयोंको मिल-जुलकर काम करना चाहिए। आर्यसमाज और ईसाई मिशन यदि सहयोग-पूर्वक काम करें, तो बड़ी आसानीसे प्रवासी भारतीयोंकी शिक्षा-सम्बन्धी अवस्था सुधर सकती है।

सामाजिक अवस्था

प्रवासी भारतीयोंका एक नया समाज बन गया है, और इस समाजमें हिन्दू, मुसलमान और ईसाईका कोई भेद-भाव नहीं है। सब सम्प्रदायोंके मनुष्य एक ही मेजपर बैठकर भोजन कर लेते हैं और एक दूसरेकी ग़मी और शादीमें शरीक होते हैं। हिन्दुओंमें तो परस्पर ऊँच-नीच या छूत-अछूतका कोई भेद रह ही नहीं गया है—सब एकाकार हो गये हैं। शर्तबन्दीकी प्रथामें जहाँ अनेक बुराइयाँ थीं, वहाँ उसकी वजहसे एक भलाई तो अवश्य हुई है कि जात-पाँतका ढकोसला और छुआछूतका बखेड़ा प्रवासी हिन्दुओंसे अलग हो गया है। शर्तबन्दीके प्रथम युगमें ही ब्राह्मणसे लेकर शूद्र तकमें परस्पर रोटी-बेटीका व्यवहार जारी हो गया था। फिजीमें यह समाज तो इतना आगे बढ़ गया है कि कहीं-कहीं हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों तकमें परस्पर बेटीका व्यवहार हो जाता है। कभी-कभी कुछ लोगोंके सिरपर ब्राह्मण-मण्डल या क्षत्रिय सभा बनानेकी धुन सवार हो जाती है, लेकिन ऐसी संकुचित संस्थाएँ उपनिवेशोंमें पनपने नहीं पातीं—जलके बुदबुदेकी भाँति दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाती हैं। प्रवासी भाइयोंको चाहिए कि वे भारतके दुर्गुणोंका अनुकरण न करें। जो जात-पाँत और छुआछूत भारतकी यश-चन्द्रिकामें कलंक राहु बना हुआ है, उससे एक बार छुटकारा पाकर फिर उसको अपनानेकी चेष्टा करना ऐसी भयकर भूल है, जिसके लिये एक दिन पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

यहाँ हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हिन्दी-भाषी और मद्रासियोंसे गुजराती हिन्दुओंकी अवस्था भिन्न है। उनका समाज अलग ही है और भारतसे उस समाजका सम्बन्ध दृढ़ है। दक्षिण अफ्रिकामें हज़ारों गुजराती हैं। फिजी, डमरारा, मारिशस और ट्रिनीडाडमें भी कुछ गुजराती पहुँच गये हैं। पूर्व अफ्रिकाके केनियामें २६,७,५६, युगाण्डामें ५,६०४, टाँगानिकामें ८,४११, जंजिबारमें १२,८४१, रोडेसियामें १३०० भारतीय बसते हैं। इनमें अधिकांश गुजराती हैं और शेष पंजाबी। पोर्तगीज़ पूर्व-अफ्रिकामें—जिसमें लौरेन्को मार्किस, बेरा, मोज़म्बीक इत्यादि प्रान्त शामिल हैं—४,८३७ ब्रिटिश-भारतीय और ३,११३ पोर्तगीज़ भारतीय रहते हैं। इनमें काठियावाड़ियोंकी तादाद अधिक है। इन गुजराती भाइयोंका घरबार और परिवार भारतमें है—बहुत-थोड़े बाल-बच्चोंके साथ बाहर गये हुए हैं। इनका समाज अन्य प्रवासी हिन्दू-समाजसे बिलकुल अलग ही दिखाई देता है। ये केवल कमाने-खानेकी गरज़से उपनिवेशोंमें गये हुए हैं, और अवसर मिलते ही भारतवर्ष लौट आते हैं।

इसी प्रकार आस्ट्रेलियामें २,०००, कनाडामें १२००, और न्यूज़ीलैण्डमें ६०० हिन्दुस्तानी हैं, जिनमें पंजाबियोंकी संख्या अधिक है। कुछ गुजराती भी हैं। पहले तो वहाँके भारतीय अपनी स्त्री तकको स्वदेशसे नहीं ले जा सकते थे,

किन्तु इम्पीरियल-कान्फ्रेंसमें यह रुकावट दूर कर दी गई। आस्ट्रेलियामें कई भारतीयोंने यूरोपियन लेडियोंसे शादी कर ली है और पूरे आस्ट्रेलियन बन गये हैं। पोर्तगीज पूर्व-अफ्रिकामें कुछ हिन्दुओंने वहाँकी हबशी औरतोंसे सम्बन्ध जोड़ लिया है, किन्तु इन औरतोंसे जो बच्चे पैदा होते हैं, उन्हें वे मुसलमानोंको सौंप आते हैं। बिरादरीके भयसे ही वे ऐसा पाप कमाते हैं। इस ओर हिन्दू-सुधारकोंको ध्यान देना चाहिए।

वास्तवमें उपनिवेशोंमें एक नवीन भारतीय समाजकी सृष्टि हो गई है। यह समाज बड़ा उदार है। इसमें न जात-पाँतका प्रपंच है, न छूआछूतका रोग है, न पर्दा है, न विधवा-विवाहमें रुकावट है और न रूढ़ियोंका साम्राज्य है। आर्यसमाजके लिए यह क्षेत्र बड़ा ही उपयुक्त है—थोड़े ही परिश्रमसे वह इस समाजको आदर्श-समाज बना सकता है। मोम्बासा और दरबनकी सोशल सर्विस-लोग जिस ढंगसे सेवा-कार्य कर रही है, वह प्रशंसनीय है। भारतसे ऐसे ही समाज-सुधारकोंको वहाँ जाना चाहिए जो प्रवासी हिन्दुओंको प्राचीन रूढ़ियोंके साथ-साथ पश्चिमीय प्रवृतिकी ओरसे भी हटाकर भारतीय संस्कृतिकी ओर झुकावें।

आर्थिक व्यवस्था

प्रवासी भारतीयोंको हम तीन भागोंमें बाँट सकते हैं—व्यापारी, किसान और मजदूर। व्यापारियोंकी दशा सामान्यतया सर्वत्र अच्छी है। संसारके सभी देशों और उपनिवेशोंमें भारतीय व्यापारी फैले हुए हैं। उनमें कई तो ऐसे हैं, जो संसारके किसी भी जातिके व्यापारियोंके मुक़ाबलेमें ठहर सकते हैं। बड़े-बड़े किसानोंकी अवस्था भी सन्तोषजनक है। मारिशसमें गन्नेकी खेती ४० फी-सदी भारतीय किसानोंके क़ब्ज़ेमें है। ट्रिनीडाडमें एक लाख एकड़ ज़मीनके मालिक हिन्दुस्तानी हैं। नेटालमें फी १२५ एकड़में एक एकड़ ज़मीन भारतीयोंके हिस्सेमें पड़ती है। मज़दूरोंकी दो श्रेणी हैं—एक शिल्पी (Skilled) और दूसरी अशिल्पी (Unskilled)। इन मज़दूरोंकी दशा कहीं कुछ अच्छी है और कहीं बिलकुल बुरी। नेटाल, मारिशस, ट्रिनीडाड, जमैका, फिजी, सुरीनाम, डमरारा आदि उपनिवेशोंमें भारतीय मज़दूरोंकी ही संख्या अधिक है। सीलोनमें ८,२०,०००, ब्रिटिश-मलायामें ६,६००००, हांगकांगमें २५५६, शीलांगमें ३३२, जिब्राल्टरमें ५०, निगेरियामें १००, न्यासालेण्डमें ५१५, बसूटोलेण्डमें १७६, स्वाजीलेण्डमें ७, मेडागास्करमें ५,२७२, रियूनियनमें २,१९४ और डच-ईस्ट-इंडीजमें ५०,००० भारतीयोंका प्रवास है, किन्तु इनमें मुट्ठी-भर आदमियोंको छोड़कर शेष सभी मजदूर हैं।

अशिल्पी मज़दूरोंको किसी प्रकार एड़ी-चोटीका पसीना बहाकर पेट भर लेनेमें अधिक दिक़्क़त नहीं होती, किन्तु शिल्पी भारतीयोंपर कई उपनिवेशोंमें बड़ी आफ़त है। गोरे मज़दूर भारतीय शिल्पियोंका अस्तित्व ही मिटानेपर तुले हुए हैं। दक्षिण-अफ्रिकामें गोरोंने अपने मज़दूर-संघ (Trade unions) बना लिए हैं। इन संघोंमें भारतीयोंका प्रवेश वर्जित है। सरकारने भी Minimum Wages Act पास कर दिया है, जिससे भारतीय शिल्पियोंकी हालत और भी बुरी हो गई है। नेटालके भारतीय मज़दूर अब जाग रहे हैं। उन्होंने भी भिन्न-भिन्न धन्धेवालोंके संघ बनाने शुरू कर दिये हैं। नेटाल-वर्कर्स-कांग्रेसकी भी स्थापना हो गई है। अन्य उपनिवेशोंमें भी भारतीय-मज़दूरोंकी दशा अच्छी नहीं है। प्रत्येक उपनिवेशमें हिन्दुस्तानी कामदारोंके संघ बनने चाहिए, किन्तु इस संगठनको राजनैतिक झमेलोंसे बिलकुल अलग ही रखना चाहिए।

राजनैतिक अवस्था

प्रवासी भारतीयोंकी राजनैतिक अवस्थाके विषयमें क्या कहें? इसका संक्षेपमें वर्णन करनेके लिए भी घंटों चाहिए, किन्तु मैं अब अधिक समय नष्ट करना नहीं चाहता, केवल सामयिक स्थितिका ही सिंहावलोकन करना पर्याप्त होगा। मारिशसकी अवस्थाका पता इसीसे लग सकता है कि ९० सालके बाद अब वहाँके केवल दो-तीन भारतीय—आनरेबुल तिलक सिंह, आनरेबुल धनपत लाला आदि—मारिशसकी कौन्सिलमें पहुँच पाये हैं, किन्तु इन अल्प-संख्यक भारतीय सदस्योंकी आवाज़में इतना बल कहाँ कि वे वहाँकी राजनैतिक अवस्थामें कोई ख़ास उलट-फेर करा सकें। डमराराकी हालत यह है कि सन १९२६ में कुल १६६५ भारतीय वोटर थे और इसी साल पहले-पहल एक हिन्दुस्तानी—बैरिस्टर लक्खू के० सी०—वहाँके Combined Court के मेम्बर चुने गये हैं और इसके बाद पुनर्निर्वाचन द्वारा एक दूसरा भारतीय Court of Policy का सदस्य बना। इस प्रकार ८८ वर्षके बाद वहाँके दो भारतीय धारा-सभामें प्रवेश कर पाये हैं। वहाँकी 'ब्रिटिश-गायना ईस्ट इण्डियन ऐसोसिएशन' प्रवासी

भारतीयोंके हितार्थ आन्दोलन करती रहती है। मारिशससे 'मारिशस-मित्र' नामका एक दैनिक पत्र निकलता है, जो वहाँकी राजनैतिक स्थितिपर थोड़ा-बहुत प्रकाश डालता रहता है।

ट्रिनीडाडकी कौन्सिलमें आनरेबुल रेवरेण्ड सी० डी० लाला और शायद एक और भारतीय चुने गये हैं। ट्रिनीडाडमें भी ईस्ट इण्डियन नेशनल कांग्रेस है। 'ईस्ट इण्डियन पेट्रियट' नामक एक मासिक पत्र भी निकलता था, किन्तु वह बन्द हो गया। जमैका और सुरीनाममें भारतीयोंकी राजनैतिक स्थिति कुछ है ही नहीं। दक्षिण-अफ्रिकाकी हालत तो और भी बुरी है। सन १८९६ में ही वहाँके भारतीयोंसे राजनैतिक मताधिकार छीन लिया गया था, और हाल ही में म्युनिसिपल मताधिकारपर भी चौका फिर गया है। जब भारतीयोंको वोट देने तकका अधिकार नहीं है, तब फिर पार्लामेंट और कौन्सिलोंमें पहुँचना तो दूरकी बात है। नेटाल इण्डियन कांग्रेस, 'ट्रान्सवाल इण्डियन कांग्रेस' और 'केप ब्रिटिश इण्डियन कौन्सिलके' योगसे 'साउथ अफ्रिकन इण्डियन कांग्रेस'का संगठन हो गया है। 'इण्डियन ओपिनियन', 'इण्डियन व्यूज़' और 'अफ्रिकन क्रॉनिकल' नामक तीन साप्ताहिक भारतीय पत्र निकलते हैं—इनमें 'इण्डियन ओपिनियन' ही सर्वोपरि राजनैतिक पत्र है।

आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूज़ीलैण्डके भारतीयोंकी राजनैतिक स्थिति शनैः शनैः सुधर रही है। माननीय श्रीनिवास शास्त्री, श्री विजयराघवाचार्य, दीवान बहादुर रंगाचारियर, श्रीनटेशन आदिकी यात्राओंसे वहाँके भारतीयोंकी स्थिति सुधरनेमें सहायता मिली है। इन प्रदेशोंमें नवीन भारतीयोंका प्रवेश वर्जित है और जो हैं भी उनकी संख्या नगण्य है। वैनकोवरसे 'इण्डिया ऐण्ड कनाडा' नामक एक मासिक पत्र भी निकलता है। सीलोनकी कौन्सिलमें एक या दो भारतीय मेम्बर हैं। सन १९२४ में मलायाकी कौन्सिलमें एक भारतीय स्वर्गीय पी० के० नाम्बयर नियुक्त हुए थे, और आज उस पदपर आनरेबुल अब्दुल क़ादिर विराज रहे हैं। 'फेडरल-कौन्सिल'के लिए गत वर्ष आनरेबल वीरस्वामी मनोनीत कर लिए गये थे।

पिछले वर्षोंमें केनियाकी व्यवस्थापक सभामें चार और वहाँकी कार्यकारिणी (Executive) कौन्सिलमें एक भारतीयको स्थान मिला था। वहाँ जातिगत निर्वाचनकी प्रथा प्रचलित है, जिसके विरोधमें भारतीयोंने ज़बर्दस्त आन्दोलन उठाया है। गत वर्ष श्रीयुत जे० बी० पंड्याके नेतृत्वमें पूर्व-अफ्रिकाके भाइयोंका एक डेपुटेशन भारत आया था। फिजीमें भी यही झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। पहले तो वहाँकी सरकारने फिजी-कौन्सिलमें श्री बद्री महाराजको मेम्बर मनोनीत कर लिया था, किन्तु पिछले वर्ष वहाँ निर्वाचनकी प्रथा चलाई गई है और जातिगत प्रतिनिधित्वका प्रवेश किया गया है। भारतीयोंने कौन्सिलमें पहुँचकर इस पद्धतिकी निन्दा की और इसके विरोधमें तीनों भारतीय मेम्बर कौन्सिलसे बाहर निकल आये। इस सत्साहसपर मैं आनरेबुल विष्णुदेव, आनरेबुल परमानन्दसिंह और आनरेबुल रामचन्द्रजीको बधाई दिये बिना नहीं रह सकता। मुझे आशा है कि फिजीकी जनता इन साहसी नेताओंका साथ देगी। पूर्व-अफ्रिकाकी राजनैतिक प्रगतिको 'केनिया डेली मेल', 'टांगानिका ओपिनियन', 'टांगानिका हेराल्ड', 'जंजिबार समाचार', 'जंजिबार टायम्स' और 'डेमोक्रेट' आदि पत्र अच्छी सहायता पहुँचा रहे हैं। फिजीमें 'फिजी-समाचार' राष्ट्रीय जीवनकी रक्षा करनेमें कटिबद्ध है, और वहाँ 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' भी स्थापित हो गई है।

इस सम्बन्धमें भारतीय इण्डियन नेशनल कांग्रेसका कुछ विशेष कर्तव्य है। सत्यके विचारसे हमें यह स्वीकार करना ही चाहिए कि राष्ट्रीय महासभा प्रवासी भारतीयोंको समय-समयपर बराबर सहायता करती रही है, किन्तु संगठित ढंगसे अब तक कुछ काम नहीं हुआ है। वर्षोंकी माथापच्चीके बाद सन १९२५ की कानपुर-कांग्रेसमें एक प्रवासी-विभाग खोलनेका निश्चय हुआ था। तीन सालके बाद सन १९२८ में कलकत्ता-कांग्रेसमें उसी प्रस्तावकी पुनरावृत्ति की गई। अब एक वैदेशिक-विभाग खुल तो गया है, किन्तु इस विभागकी कार्रवाई विशेष-व्यापक और सन्तोषजनक नहीं है। राष्ट्रपतिकी हैसियतसे पं० जवाहरलाल नेहरूने लाहौर-कांग्रेसमें स्पष्ट कह दिया है कि हम प्रवासी भारतीयोंको भूले तो नहीं हैं, किन्तु उनके उद्धारका एकमात्र उपाय है भारतकी स्वाधीनता। यह बात अंकगणितकी भाँति सत्य है, किन्तु यह समझना भी भूल होगी कि स्वराज्य प्राप्त हो जानेपर प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न तुरन्त हल हो जायगा। भिन्न-भिन्न उपनिवेशोंमें प्रवासी भाइयोंकी स्थिति ऐसी नहीं है कि स्वराज मिलने तक उसकी उपेक्षा की जा सके। भारतकी स्वाधीनता और विशाल भारतके निर्माणका काम साथ-साथ होना चाहिए।

इस प्रसंगमें हम धर्म-प्रचारकोंसे भी कुछ प्रार्थना करेंगे।

सभी सम्प्रदायोंके उपदेशक उपनिवेशोंमें जायँ, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। वे वहाँ जाकर अपने-अपने धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करें, समाज-सुधार और शिक्षा-प्रचारका काम करें, किन्तु वे वहाँके राजनैतिक मामलोंमें टाँग अड़ानेसे बाज़ आवें। इस सम्बन्धमें एक ही उदाहरण काफ़ी होगा। फिजीमें जहाँ एक ओर जातिगत प्रतिनिधित्वके प्रश्नपर भारतीय और यूरोपियनोंमें झगड़ा चल रहा है, वहाँ दूसरी ओर मुस्लिम लीग यह प्रस्ताव पास करती है कि फिजीके मुसलमानोंको जातिगत प्रतिनिधित्वका अधिकार मिलना चाहिए! यह प्रवृत्ति कैसी भयंकर है और प्रवासी भारतीयोंके भविष्यके लिए कैसी घातक, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। इन धार्मिक संस्थाओं और धर्माचार्योंका राजनैतिक मामलोंमें दख़ल न देना ही श्रेयस्कर है। मेरा किसी मत विशेषसे विद्वेष नहीं है; यही प्रार्थना मैं हिन्दू, आर्य और क्रिश्चियन प्रचारकोंसे भी करूँगा।

एक बात और। हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि कुछ ऐसे भी प्रवासी भारतीय हैं, जिनपर हमारी मातृभूमि अभिमान कर सकती है किन्तु देशकी पराधीनताके कारण आज वे मातृभूमिके दर्शनोंसे वंचित हो गये हैं। राजा महेन्द्रप्रताप काबुलमें, लाला हरदयाल स्वीडेनमें, श्री रासबिहारी बोस जापानमें और डाक्टर तारकनाथ दास अमेरिकामें पड़े हुए हैं। डाक्टर सुधीन्द्र बोस, जो आयोवा यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर हैं, बड़ी कठिनाइयोंसे छः मासके लिए स्वदेश आने पाये थे। प्रोफेसर खानखोजे अमेरिकाकी एक रियासतमें कृषि-मन्त्रीके पद तक पहुँच सकते हैं, किन्तु मातृभूमिका दरवाज़ा उनके लिए बन्द है! स्वाधीन मातृभूमि ही अपने इन अमर-पुत्रोंको अपनी गोदमें आश्रय दे सकती है, अतएव भारतीयों और प्रवासियों सभीको मिलकर भारतकी स्वाधीनताके लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

लौटे हुए प्रवासी

प्रवासी भारतीयोंको उपनिवेशोंमें मातृभूमिको आते समय जहाज़ोंपर जो कष्ट होता है वह वर्णनातीत है। वे भेड़-बकरियोंसे भी बुरी हालतमें जहाज़ोंमें ठूस दिये जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे अफ्रिकाके यात्रियोंने स्टीमरवालोंके व्यवहारके विरुद्ध आन्दोलन उठाया है। गत अक्तूबरमें जब हम लोग 'कारागोला' जहाज़से भारत आ रहे थे, तबसे इस आन्दोलनने और भी ज़ोर पकड़ा है। मैंने यात्रियोंकी ओरसे इस दुर्व्यवहारका तीव्र प्रतिवाद किया था। सरकारकी ओरसे जाँच भी हुई थी। इसके बाद ईस्ट अफ्रिकन इण्डियन कांग्रेसमें इस विषयपर एक प्रस्ताव भी पास हुआ। बम्बईकी 'इण्डियन इम्पिरियल सिटीज़नशिप एसोसियेशन' और 'पैसिंजर रिलीफ़ एसोसियेशन'ने भी इस आन्दोलनमें पूरा योग दिया। 'ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेविगेशन कम्पनी'का आसन डोला और उसकी ओरसे यह आश्वासन दिया गया है कि भविष्यमें यात्रियोंके आरामका पूरा ख़याल रखा जायगा, किन्तु डमरारा, ट्रिनीडाड, जमैका, सुरीनाम और फिजीके प्रवासी भाई जैसे जहाज़ोंपर और जैसी मुसीबतें झेलते हुए आते हैं, उसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। पार साल 'सतलज' जहाजपर ३३ आदमियोंकी मृत्यु हो गई थी। इस साल जब कि यह जहाज़ वेस्ट-इण्डीज़के प्रवासी भारतीयोंको लेकर ४८ दिनोंमें कलकत्ता पहुँचा, तो ४४ आदमी बीचमें ही मर चुके थे और बहुतसे असाध्य रूपसे बीमार थे! हमने तुरन्त भारत-सरकारका ध्यान इस घटनाकी ओर आकर्षित किया। एक जाँच-कमेटी बनाई तो गई, किन्तु वह इतनी देरसे कि तब तक 'सतलज' फिजीको रवाना हो चुका था! मुझे भी इस कमेटीका एक मेम्बर चुना गया था, किन्तु मैंने ऐसी स्थितिमें कमेटीमें बैठना उचित नहीं समझा। इस विषयपर भारतमें घोर आन्दोलन होना चाहिए।

जो प्रवासी भाई मातृभूमिके मोहमें पड़कर उपनिवेशोंसे आये हैं, उनकी यहाँ बड़ी दुर्दशा हो रही है। दक्षिण-अफ्रिकाकी सरकार तो फी आदमी बीस पौण्ड इनाम देकर प्रवासी भारतीयोंको देश छोड़नेके लिए प्रोत्साहित कर रही है। वे लावारिस मालकी तरह इधर-उधर पड़े हुए हैं—कोई उनकी खोज-खबर लेनेवाला नहीं है। कांग्रेसने इनकी दशाकी जाँचके लिए एक कमेटी बनाई थी, किन्तु इस कमेटीने अपना काम अधूरा ही छोड़ दिया! सरकार इनकी ओरसे प्रायः लापर्वाह है। हाँ, दक्षिण-अफ्रिकासे लौटनेवालोंके लिए मदरास-प्रान्तमें ज़रूर कुछ काम सरकारकी ओरसे हो रहा है, पर वह पर्याप्त नहीं है। इनके प्रति हिन्दू-समाजका व्यवहार तो और भी निष्ठुरता-पूर्ण है। वे धर्म-भ्रष्ट समझे जाते हैं, जातिच्युत किये जाते हैं, और गाँवोंमें नहीं बसने पाते। वे तिरस्कृत और अपमानित होकर मटियाबुर्ज तथा ऐसी ही जगहोंमें नरकवास कर रहे हैं। हिन्दू-जातिको चाहिए कि उनके साथ सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार करे। वे

अमुक-भावसे अपना बना-बनाया घर उजाड़कर आपके ममत्वके मोहमें पड़कर यहाँ आ जाते हैं, किन्तु जब आपकी ओरसे उनका तिरस्कार और अपमान होता है, तब उनके हृदयपर कैसी चोट पहुँचती होगी, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। हिन्दू महासभामें इस आशयका एक प्रस्ताव पास हुआ था कि इन लौटे हुए प्रवासियोंको उनकी जातिमें मिलानेके लिए पूर्ण प्रयत्न किया जाय, किन्तु वह प्रस्ताव केवल फाइलकी शोभा बढ़ानेमें ही काम आ रहा है। आर्यसमाज भी इस ओरसे उदासीन है। मैंने स्वदेश लौटकर पहला कार्य यही किया कि इन्हीं लौटे हुए प्रवासियोंकी दशाकी जाँच की। चार हजार मीलसे अधिककी मैंने यात्रा की और सैकड़ों लौटे हुए प्रवासियोंसे मुलाक़ात की। मैंने अपनी कच्ची रिपोर्ट प्रकाशित कर दी है, जिसमें मैंने भारत-सरकारसे अनुरोध किया है कि वह एक जाँच-कमीशन बैठावे और इन भाइयोंको सहायता पहुँचानेकी चेष्टा करे। यदि सरकारने ऐसा न किया, तो मैं शीघ्र ही अपनी पक्की और पूरी रिपोर्ट प्रकाशित कर दूँगा।

एक बात प्रवासी भाइयोंसे भी कह देना चाहता हूँ। अगर आप मातृभूमिके दर्शनके लिए आना चाहते हैं, तो खुशीसे आवें और यहाँसे अपना सम्बन्ध बनाये रखें, किन्तु स्थायीरूपसे हिन्दुस्तानमें बसनेके विचारसे आपको कदापि नहीं आना चाहिए। जो भाई यहाँ आ गये हैं उनकी हालत इतनी खराब है कि वह बयानसे बाहर है। उनके एक-एक दिन एक-एक युगकी भाँति बीत रहे हैं। उपनिवेशोंकी यादमें औरतें छटपटा रही हैं और छोटे-छोटे बच्चे तड़प रहे हैं। सैकड़ों आदमी इस आशामें बैठे हुए हैं कि कब सरकारी जहाज़ मिले और कब वे यहाँसे चले जावें। ऐसी हालतमें अगर आप बाल-बच्चोंके साथ यहाँ बसनेकी गरज़से आवेंगे, तो आपको भी एक दिन घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

प्रवासियोंका भविष्य

चाहे किसी भी प्रकारसे क्यों न हो, इस समय संसारके भिन्न-भिन्न देशों और उपनिवेशोंमें पचीस लाख भारतीय जा बसे हैं, जिन्हें हम प्रवासीके नामसे पुकारते हैं। उन्होंने केवल एक सदीमें कल्पनातीत उन्नति कर ली है। उनमें कई तो ऐसे रत्न हैं जिनपर मातृभूमि अभिमानसे मस्तक ऊँचा कर सकती है। धर्मकी ओर उनकी श्रद्धा निरन्तर बढ़ती जाती है, समाज-सुधारके क्षेत्रमें वे उत्साह-पूर्वक अग्रसर हो रहे हैं, उनकी आर्थिक अवस्था भी शनैः शनैः सुधर रही है, शिक्षाकी ओर उनकी अभिरुचि तीव्र-गतिसे बढ़ रही है और राजनैतिक मामलोंमें भी वे आगे बढ़ रहे हैं। उनमें कई कौन्सिलोंके मेम्बर हैं, पूँजीपति व्यापारी हैं, वकील हैं, बैरिस्टर हैं, एडीटर हैं, डाक्टर हैं, प्रोफेसर हैं, और वास्तवमें उनका भविष्य उज्ज्वल और मंगलमय है।

यह ध्यान रहे कि ये प्रवासी भारतीय विदेशोंमें भारतवर्षके प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। उनके आचार-विचार और व्यवहारको देखकर ही संसारके लोग भारतवर्षके सम्बन्धमें अपनी धारणा बनाते हैं। अतएव ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि ये प्रवासी भाई महान हिन्दुस्तानके योग्य प्रतिनिधि सिद्ध हों और संसारमें भारतकी यश पताका फहराते रहें।

अन्तमें मुझे दो-तीन बातें और कहनी हैं; एक तो आजकल जो कुछ कार्य भारतमें प्रवासी भारतीयोंके लिए हो रहा है, उसके विषयमें और दूसरे मातृभूमिके स्वाधीनता-संग्राम तथा प्रवासी भारतीयोंके कर्तव्यके विषयमें।

सबसे पहले हमें राजर्षि गोखलेकी भारत-सेवक-समितिको धन्यवाद देना चाहिए, जिसके प्रधान माननीय श्रीनिवास शास्त्री तथा जिसके सदस्य पंडित हृदयनाथ कुँजरू, श्रीयुत कोदण्डराव श्री० एस० जी० वजे और पंडित वेंकटेशनारायण तिवारीने प्रवासी भारतीयोंके लिए बहुत-कुछ कार्य किया है और करते रहते हैं। प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न दलबन्दीका प्रश्न नहीं है और इसके लिए हमें सभी दलोंसे मिलकर काम करना चाहिए। राजनैतिक वर्ग-भेद इस क्षेत्रके लिए विघातक होगा। विलायतमें मि० पोलक हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी कार्य कर ही रहे हैं।

हर्षकी बात है कि हमारी राष्ट्रीय महासभाका

ध्यान भी इस प्रश्नकी ओर अब अधिकाधिक आकृष्ट हो रहा है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहनेके कारण से ही कांग्रेसके अधिकारी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके, यह बात मैं स्वीकार करता हूँ, फिर भी नम्रतापूर्वक इतना निवेदन मैं अवश्य करूँगा कि हमारी राष्ट्रीय महासभा इस कार्यको और भी व्यापक ढंगसे कर सकती है।

बम्बईकी 'इम्पीरियल इंडियन सिटीज़नशिप ऐसोसियेशन' भी कुछ-न-कुछ कार्य इस विषयमें बराबर करती रहती है, यद्यपि उसकी कार्य-पद्धतिमें संशोधन तथा परिवर्द्धनकी काफ़ी गुंजाइश है। भारतीय पत्रोंमें मदरासका 'हिन्दू', प्रयागका 'लीडर' बम्बईके 'डेली मेल' तथा 'क्रॉनिकल', तथा कलकत्तेके 'माडर्न-रिव्यू' और 'विशाल-भारत' हमारे प्रश्नोंकी ओर खास तौरसे ध्यान देते रहे हैं, और इन पत्रोंके सम्पादकोंके हम कृतज्ञ हैं।

प्रवासी भारतीयोंके लिए भारतमें क्या-क्या उद्योग होना चाहिए, इस विषयको मैं जान-बूझकर अछूता ही छोड़े देता हूँ, क्योंकि मैं इस महत्त्वपूर्ण विषयपर इस परिषद्‌में आपके साथ मिलकर विचार करना चाहता हूँ। अन्तमें एक बात और स्पष्ट कर दूँ। मैंने अपने भाषणमें धार्मिक स्थितिका ज़िक्र करते हुए मुख्यतया आर्यसमाजके कार्यका ही वर्णन किया है। इसका मतलब हर्गिज़ नहीं है कि मैं सनातनधर्मियों, ईसाइयों अथवा मुसलमानोंका विरोधी हूँ। जिस महापुरुषको मैं प्रेमका अवतार और सहृदयताकी साक्षात् मूर्ति मानता हूँ और जिन्हें मैं अपने पितृ-तुल्य समझता हूँ, वह एक ईसाई हैं यानी दीनबन्धु सी० एफ़० ऐण्ड्रूज़। मुसलमान भाइयोंमें भी मेरे कितने मित्र हैं। यह सब होते हुए भी मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आर्य-संस्कृति ही प्रवासी भारतीयोंका उद्धार कर सकती है। मैं उन महानुभावोंमें से नहीं हूँ, जो अपनेको 'आर्य' कहनेमें संकोच करते हैं। मेरी यह धारणा है कि आर्य संस्कृतिका संसारके लिए एक महत्त्वपूर्ण-सन्देश है। मैं विशेषतः दो महापुरुषोंको विशाल भारतका निर्माता मानता हूँ। एक तो महात्मा गान्धी और दूसरे महर्षि दयानन्द। पहलेने यदि वर्तमान विशाल भारतको राजनैतिक रूप दिया है, तो दूसरा उसका सांस्कृतिक निर्माता है। विशाल भारतके सांस्कृतिक निर्माता ऋषि दयानन्दके सन्देशको दक्षिण-अफ्रिकामें फैलानेके लिए जो यत्किंचित सेवा मुझसे बन पड़ी, मैंने की थी, और उसके साथ-ही-साथ दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्राममें भी अपनी क्षुद्र बुद्धि तथा तुच्छ शक्तिके अनुसार भाग लिया था। यद्यपि आज मेरे जीवनकी वह चिरसंगिनि— जिसने उस संग्राममें मेरा साथ दिया था—इस संसारमें नहीं है, फिर भी उसकी आत्मा स्वर्गसे देखेगी कि मैं इस संग्राममें भी अपनी शक्तिके अनुसार भाग लूँगा।

प्रवासी भारतीयोंसे इस अवसरपर क्या कहूँ? महात्मा गान्धी आज भारतीय स्वाधीनताकी अन्तिम लड़ाई लड़ने जा रहे हैं। औपनिवेशिक भाई यह बात अभिमानके साथ कह सकते हैं कि स्वाधीनता-संग्रामके उस महान् सेनापतिके जीवनका सर्वश्रेष्ठ समय उन्हींके बीचमें व्यतीत हुआ था और जिस अस्त्रका वे प्रयोग कर रहे हैं, उसकी प्रथम परीक्षा वहीं हुई थी ; पर इस उचित अभिमानके साथ प्रवासी भारतीयोंका कुछ कर्तव्य भी है। प्रत्येक प्रवासी भाईको मातृभूमिकी स्वाधीनताके इस यज्ञमें भाग लेना चाहिए। जो जिस तरहसे कर सके, इसकी सफलताके लिए उद्योग करे। प्रवासी भारतीयोंके भाग्यका मातृभूमिकी स्वाधीनतासे अटूट सम्बन्ध है। परमात्मा भारतको स्वाधीन करे, जिससे वह विशाल भारतका निर्माण करता हुआ अखिल संसारको सुख और शान्तिका सन्देश दे और फिर उस महान् पदको प्राप्त करे, जो उसे पहले प्राप्त था।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

—————:०:—————

'मुसकान'— यह पुस्तक उपन्यास-रत्नमालाका दूसरा रत्न है। प्रकाशक साहित्य मन्दिर, दारागंज, प्रयाग। लेखक पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी। छपाई-सफाई उत्तम है, सुन्दर जिल्द है, पृष्ठ-संख्या १११ और मूल्य एक रुपया दो आना है।

इस उपन्यासका प्लाट यह है। ललिता नामक एक विधवा युवती किसी युवकके प्रेम-पाशमें पड़कर गर्भवती हो गई। 'उन राक्षसोंने जो मनुष्यका नाम कलंकित करते हैं', उसकी नवजात बालिकाका गला घोंट डाला, और स्वयं उसे माघ-मेलेके अवसरपर गंगा-स्नानके बहाने प्रयाग लाकर छोड़ दिया। निराशापूर्ण परिस्थितिमें प्राण देनेके लिए ललिता जमनाजीमें कूद पड़ी। उस समय वहाँ ऐलिस नामक क्रिश्चियन लड़की खड़ी थी, पर तैरना नहीं जानती थी। उसने विजयसिंह नामक नवयुवकको, जो संयोगसे वहाँ पहुँच गया था, प्रार्थना करके उस डूबती हुई लड़कीको निकलवा लिया। ललिताके हृदयमें विजयसिंहके लिए प्रेम हो गया, पर वह जानती थी कि एलिसके हृदयमें भी विजयसिंहके प्रति प्रेम है। इससे ललिता बड़े धर्म-संकटमें पड़ी। विजयसिंह देशभक्त युवक थे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक कोई ऐसी लड़की न मिलेगी, जो मेरे उद्देशमें पूर्णतया सहायक हो, तब तक मैं विवाह न करूँगा। उन्होंने एलिससे कहा भी था—"यदि मेरी उद्देश्य-पूर्तिमें सहायता देने और इस क्षेत्रमें आगे बढ़नेमें प्रोत्साहित करनेवाला साथी मुझे मिल जाय, तो मैं ब्याह कर सकता हूँ, पर एलिस, तुम जानती हो, साथीकी परीक्षा लिए बिना यह सौदा हो नहीं सकता।" नाहरसिंह नामक एक डाकू विजयसिंहको एक झूठे अपराधमें फँसाकर अपने साथ ही हवा खिलाना चाहता था। एलिसने उस डाकूकी पिस्तौलसे हत्या कर डाली और स्वयं काले-पानीकी सज़ा पाई, पर यह मामला शायद कुछ सन्दिग्ध ही रहा कि पिस्तौल किसने चलाई थी। खैर, एलिस अण्डमन टापूको भेज दी गई। इधर ललिता बनारस चली आई और अध्यापकीका काम करते हुए बुनानालेमें रहने लगी। वहाँ उसने एक देशद्रोही बंगाली विद्यार्थीके गोली मार दी और अदालतमें अपना अपराध स्वीकार करते हुए यह भी कह दिया कि नाहरसिंह डाकूकी हत्या भी मैंने ही की थी। नतीजा यह हुआ कि एलिसकी काले-पानीकी सज़ा रद कर दी गई और ललिताको फाँसीका हुक्म हुआ। जिस दिन ललिताको फाँसी हुई, उसी दिन एलिस कालेपानीसे लौटी, और विजय तथा एलिस दोनों उसके अन्तिम संस्कारमें सम्मिलित हुए। इसके बाद एलिसकी शुद्धि कर ली गई और उसका नाम इन्दिरा रख दिया गया। इन्दिराका विवाह विजयसिंहके साथ हो गया। कहानीका यही प्लाट है, जिसके आधारपर लेखक महोदयने अपना उपन्यास-रूपी भवन तय्यार किया है।

प्रारम्भमें यह बात हम सहर्ष स्वीकार करेंगे कि श्रीयुत वाजपेयीजी भाषा अच्छी लिखते हैं, विचार तो उनके देशभक्ति पूर्ण हैं ही, और साथ ही उनमें यह गुण भी है कि वे पाठकोंके हृदयमें उत्सुकता उत्पन्न कर सकते हैं। यदि किसी उपन्यास-लेखककी सफलताके लिए केवल ये गुण ही पर्याप्त समझे जायँ, तो निःसन्देह वाजपेयीजी सफल औपन्यासिक कहे जा सकते हैं, पर मानव-समाजके हृदयकी गहराई तक पहुँचने और मनोभावोंके चित्रण करनेमें, जो सफल उपन्यास-लेखकोंका सबसे बड़ा गुण है, वाजपेयीजीको सफलता नहीं मिलती। उनके निर्माण किये हुए पात्र काठके खिलौनेकी तरह हैं, जिनकी डोरी वाजपेयीजीने अपने हाथमें रखी है और जिन्हें वे अपनी इच्छानुसार उठा-बिठा देते हैं। विचित्र घटनाएँ कराके साधारण पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया जा सकता है और उनके मनमें उत्सुकता भी कायम रखी जा सकती है, पर उच्चकोटिके औपन्यासिक, जो मनोविज्ञानके ज्ञाता हैं, इस

बातोंका आश्रय नहीं लेते। 'मुसकान'के लेखक महोदय जादूगरकी तरह थोड़े समयमें तड़ाक-भड़ाक सारा खेल दिखा देना चाहते हैं। १११ पृष्ठोंमें लेखक महोदयने इतनी दुर्घटनाएँ कर डाली हैं :—

(१) ललिताकी बच्चीका गला घोंटना
(२) ललिताका आत्म-घातके लिए जमनाजीमें डूबना
(३) नाहरसिंहका पिस्तौलसे मारा जाना
(४) एलिसको कालापानी
(५) देशद्रोही छात्रका ललिताकी गोलीसे मारा जाना
(६) ललिताको फाँसी

यदि कोई पुस्तक अपने लेखककी मनोवृत्तिकी सूचक कही जा सकती है, तो हमें खेद-पूर्वक कहना पड़ेगा कि वाजपेयीजीमें हिंसकप्रवृत्ति बड़े ज़ोरोंके साथ बढ़ रही है, और यह बात दारागंजके लिए, जहाँ अनेक साहित्य-सेवी रहते हैं, खतरनाक है। हमें याद है कि अपने पहले उपन्यासमें भी उन्होंने एक आदमीकी नाक कटवा दी थी, और उस कृतिका नाम रखा था 'मीठी चुटकी'! वाजपेयीजीने ललिता द्वारा एक बंगाली छात्रका ख़ून करा दिया है। उसका क्या अपराध था, यह उन्होंने नहीं बतलाया। बस इतना कह कर कि वह 'देशद्रोही' था, सन्तोष कर लिया है। पुस्तकमें इस विषयमें केवल इतना लिखा है—इनमें दो-तीन छात्र भी रहते हैं। वे सब हिन्दू-विश्वविद्यालयके विद्यार्थी हैं। इनमें दो बंगाली हैं, एक बिहारी। जो दो बंगाली साथ-साथ रहते हैं, उनमें देशकी समस्याओंपर प्राय: विवाद हुआ करता है। कभी-कभी रात-रात-भर विवाद होता रहता है।" बस, इतने ही अपराधपर प्राणदण्ड दिला देना लेखक महोदयकी न्यायप्रियता प्रकट नहीं करता। बात शायद यह थी कि कुल जमा १११ पृष्ठके चित्रपटपर वाजपेयीजीको अनेक चित्र खींचने थे, इसलिए जल्दी-जल्दीमें उन्होंने कितने स्थल बिलकुल संक्षिप्त कर दिये।

लेखक महोदयने जो उपदेश पाठकोंके हृदयपर अंकित करने चाहे हैं, उनसे किसी देशभक्तको ऐतराज़ नहीं हो सकता। हाँ, हिंसा-अहिंसाका प्रश्न अवश्य विवादग्रस्त है। पर हमारा ऐतराज़ यह है कि सनसनी-अंगेज़ घटनाओंकी ओर यदि साधारण जनताकी रुचि बढ़ती गई, तो फिर इसका असर उनकी मनोवृत्तिपर अच्छा नहीं पड़ सकता। फिर गम्भीर मनोभावोंके विश्लेषणके प्रति वे उदासीन ही रहेंगे। दो-तीन स्थलोंपर वाजपेयीजीने मनोभावोंका विश्लेषण करनेका प्रयत्न किया है और उनका 'हृदयसे' शीर्षक अध्याय बहुत अच्छा है, पर खेद है कि ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहाँ हमें वाजपेयीजी द्वारा निर्मित पात्रोंके अन्तस्तल तक पहुँचनेका मौक़ा मिलता है।* हमें यह बात खेद-पूर्वक कहनी पड़ेगी कि वाजपेयी द्वारा निर्मित इन पात्रोंका जीवन पाठकोंकी स्मृतिमें उतना ही स्थायी होगा, जितना ललिताकी कन्याका जीवन। वाजपेयीजीके विजयकी देशभक्तिको हम अनुकरणीय समझते हैं और उनकी एलिसके प्रेमको प्रशंसनीय। हम लेखकसे इस बातमें सहमत हैं कि ललितापर व्यभिचारका दोषारोपण करके पापी ठहराना किसी हृदयहीन आदमीका ही कार्य हो सकता है, पर इस विषयमें सबसे बड़ी शिकायत हमें लेखक महोदयसे ही है। कवर पेजके ऊपर एक स्त्री मुस्कराती हुई खड़ी है, और अपने दोनों हाथोंको उठाये हुए उनमें 'मुसकान'का विज्ञापन लिए हुए है! पुस्तकमें एक अध्याय मुसकानके नामसे है। जहाँ ललिताको फाँसी दी जा चुकी है और उसका शव पड़ा हुआ है उस स्थलका वर्णन करते हुए लेखक महोदय लिखते हैं :—

'सब लोग ललिताके शवको देख रहे थे। कांग्रेस कमेटीके सेक्रेटरी मि० रफ़ीक़ अहमदने कहा—"देखिये, विजय बाबू, गौरसे देखिये, मुखपर कैसी मुसकराहट छाई हुई है!"

ललिताकी उस गम्भीर 'मुसकराहट'का, जिसके ऊपर पुस्तकका नाम ही 'मुसकान' रखा गया है, इस तरह व्यापारके लिए दुरुपयोग करना वास्तवमें 'कलाका व्यभिचार है'। ललिताका 'व्यभिचार' क्षन्तव्य हो सकता है, पर उसके नामपर किया हुआ कलाका यह 'व्यभिचार' बिलकुल अक्षन्तव्य है।

जैसा कि हमने प्रारम्भमें लिखा है, वाजपेयीजी अपने पाठकोंमें उत्सुकता उत्पन्न कर सकते हैं, इसीलिए उनका 'मुसकान' भी मनोरंजक है। आशा है कि प्रयत्न करते-करते वे अच्छे औपन्यासिक बन जायँगे—"करत-करत अभ्यासके लेखक बनें महान्।"

—सम्पादक

* सारी बातें संक्षेपमें तड़ाक-भड़ाक होनेके कारण हम उनके पात्रोंसे काफ़ी परिचित नहीं होने पाते।

'बाल-रवीन्द्रनाथ' — ८० पृष्ठकी यह पुस्तक श्री यामिनीकान्त द्वारा लिखित, बंगला पुस्तकका हिन्दी-अनुवाद है, और इंडियन प्रेस प्रयागने इसे प्रकाशित किया है। वहींसे आठ आनेमें मिल सकती है।

पुस्तकको हमने आदिसे अन्त तक पढ़ा है, और जिस उद्देश्यसे यह लिखी गई है, उसकी हम प्रशंसा करते हैं। शान्तिनिकेतनमें चौदह महीने तक रहनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हो चुका है, इसलिए इस पुस्तकके शान्तिनिकेतन-सम्बन्धी अध्यायके विषयमें कुछ कहनेका अधिकार भी हमें है। शान्तिनिकेतन गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथकी प्रतिभाकी जीती-जागती मूर्ति है। अतएव उसका वर्णन इस पुस्तकमें कुछ विस्तार-पूर्वक होना चाहिए था। जो वर्णन लेखक महोदयने दिया है, वह 'अप-टू-डेट' नहीं है, और कहीं-कहीं तो गलत भी है। साथ ही श्रीनिकेतनका भी, जो शान्तिनिकेतनका एक महत्त्वपूर्ण भाग है, कुछ वृत्तान्त होना चाहिए था।

पुस्तकके अन्य अध्यायोंके विषयमें हमें केवल इतना ही कहना है कि उनसे कविवरके विषयमें बालकोंको मोटी-मोटी बातें अवश्य ज्ञात हो जायँगी, पर बालक उनको कितने दिन स्मरण रख सकेंगे, यह प्रश्न ही दूसरा है। इस दृष्टिसे पुस्तक सरलतर भाषामें और छोटे-छोटे मनोरंजक किस्से कहानियोंके साथ लिखी जानी चाहिए थी। कविवरके आत्म-चरितके कितने ही वृत्तान्त बड़े मनोरंजक हैं और उन्हें इस पुस्तकमें उद्धृत करनेकी आवश्यकता थी। 'बड़े दादा' की भी दो-चार बातें आ जातीं, तो अच्छा होता। पुस्तकके अगले संस्करणके लिए हमारे निम्न-लिखित प्रस्ताव हैं।

(१) भाषा सरल की जावे। कठिन प्रसंग बिलकुल उड़ा दिये जायँ। इस समय पुस्तक पढ़ते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह बंगला पुस्तकका अनुवाद है। अच्छे अनुवादमें ऐसा न होगा।

(२) कविवरकी कुछ कविताओंको हिन्दीमें पद्यानुवादके साथ उद्धृत किया जावे।

(३) श्रीनिकेतनका सचित्र संक्षिप्त परिचय रहे।

(४) कविवरकी कौन कौनसी पुस्तक हिन्दीमें अनुवाद हो चुकी है, उसका नाम तथा पता भी रहे।

अनुवादका संशोधन किसी ऐसे हिन्दी-लेखकसे कराना चाहिए, जिसे शान्तिनिकेतनका साक्षात परिचय हो। इससे पुस्तकमें सजीवता आ जायगी। उदाहरणके लिए हम शान्तिनिकेतनके हिन्दी-अध्यापक श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'का नाम पेश कर सकते हैं। बालकोंके लिए लिखी हुई प्रत्येक पुस्तकमें लेखकको अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। इसी कारण हमने उपर्युक्त प्रस्ताव उपस्थित किये हैं। आशा है कि उनपर विचार किया जायगा।

—सम्पादक

× × ×

'अमर शहीद यतीन्द्र अथवा अनशनकी आग' - लेखक श्री मंगलदेव शर्मा 'जर्नलिस्ट'। प्रकाशक, राष्ट्र-भारती मण्डल, प्रयाग। पृष्ठ संख्या ११४। मूल्य दस आने।

श्री मंगलदेव शर्मा युक्तप्रान्तके तपे हुए युवकोंमें-से हैं। आप लगभग पन्द्रह वर्षसे राजनैतिक क्षेत्रमें हैं और कई प्रमुख समाचारपत्रोंके सम्पादन-विभागमें काम कर चुके हैं। सन् १९२२-२३ में आप जेल यात्रा भी कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें आपने शहीद यतीन्द्रनाथ दासके पुण्य चरित्रका विशद वर्णन किया है। उनका बाल्यकाल, उनकी सार्वजनिक सेवाएँ, गिरफ्तारियाँ, पहला अनशन तथा लाहौरके मुक़दमेमें गिरफ्तारी और अनशन आदिका पूरा हाल बड़ी सजीव भाषामें लिखा गया है। साथ ही प्रसंग वश सरदार भगतसिंह तथा श्री बटुकेश्वरदत्तका बड़ा रोचक चरित्र-चित्रण भी है। कांग्रेसकी सहानुभूति, सरकारकी चालें, जेल कमेटी, असेम्बलीकी बहस आदिका पूरा विवरण है और अनशनकारियोंकी सूची भी दी है। लाहौर और कलकत्तेके जलूसोंका भी वर्णन है। सारांश यह कि इस सम्बन्धका कोई भी विषय छूटने नहीं पाया। प्रस्तावना-लेखक पंजाबके कर्मवीर डाक्टर आलम हैं। पुस्तक चार चित्रोंसे युक्त और सुन्दर मुख पृष्ठसे सुसज्जित है। इस सम्बन्धकी इससे अच्छी पुस्तक अब तक हमारे देखनेमें नहीं आई।

—ठाकुरप्रसाद शर्मा

चित्र-संग्रह

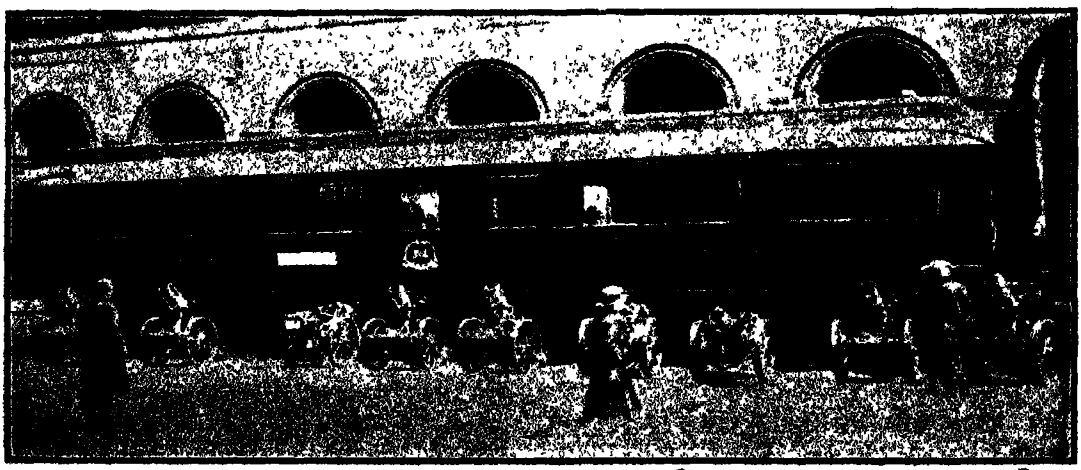
गत महायुद्धकी समाप्ति

सन् १९१८ की आठवीं नवम्बरका दिन था। यूरोपियन महायुद्धके चार वर्षसे अधिक खून-खराबी और सत्यानासीसे दुनिया ऊब गई थी। एक ओर अंग्रेज़, फ्रेंच, अमेरिकन, इटालियन, सर्वियन, रुमानियन आदि सेनाएँ थीं, और दूसरी ओर जर्मन, आस्ट्रियन, बल्गेरियन और तुर्क



सेनापति हिंडनवर्ग और लूडनडर्फके साथ कैसर विलियम युद्धके अन्तिम दिनोंमें युद्ध-क्षेत्रका नक्शा देख रहे हैं

फौजें। मित्र-राष्ट्रोंने जर्मनी और आस्ट्रिया आदिके चारों ओर ऐसा कठिन आर्थिक घेरा डाल रखा था कि उन बेचारोंके भूखों मरनेकी नौबत आ गई थी। जर्मनीमें प्रजा भी अपने शासक केसरके विरुद्ध हो रही थी। अन्तमें केसरको सिंहासन छोड़ना पड़ा और जर्मन-प्रजाने शान्ति-स्थापनकी इच्छासे कुछ दूत क्षणिक संधिकी बातचीतके लिए भेजे। मित्र-राष्ट्रोंकी बन आई। उनके सेनापति फरासीसी जनरल फाशने केम्पियनके जंगलमें जाकर एक स्थानपर अपनी रेलगाड़ीपर खड़े होकर शान्ति-इच्छुक जर्मनोंको क्षणिक संधिकी सर्तें सुनाईं। शर्तें सुनकर जर्मन लोग काँप उठे। उन बेचारोंके मुख पीले पड़ गये। उनके नेताके आँखोंमें पानी भर आया। जनरल फाशने कहा—"आप लोग इन शर्त्तोंपर विचार करके देख लीजिए। मैं आप लोगोंको बहत्तर घण्टेका समय देता हूँ, उसके बाद आपका उत्तर सुनूँगा।" जर्मनोंने उत्तर दिया—"मार्शल, ईश्वरके लिए बहत्तर घण्टेकी देर न कीजिये, आज ही युद्ध बन्द कर दीजिए। हमारी फौजें उच्छृंखल हो रही हैं और बोल्शेविक भूत हमारे दरवाज़ेपर खड़ा है। यदि शान्ति स्थापनमें देर हुई, तो यह भूत हमारी छातीको रौंदता हुआ



इसी गाड़ीपर खड़े होकर मार्शल फाशने जर्मनोंको क्षणिक सन्धिकी शर्तें सुनाई थीं



जर्मनीके स्वर्गीय राष्ट्रीय नेता गुस्तव स्ट्रेसमैन



जर्मन प्रजातन्त्रोंकी दसवीं वर्ष-गांठके उत्सवमें प्रेसीडेन्ट हिंडनबर्ग

फ्रान्समें आ पहुँचेगा।" मार्शल फाशने कठोर स्वरमें उत्तर दिया—"आपकी फौजोंकी क्या दशा है, यह मैं नहीं जानना चाहता। हाँ, मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरी फौजोंके सामने क्या है। हमारे लिए इस वक्त आक्रमण बन्द कर देना असम्भव है, बल्कि मैं हुक्म देता हूँ कि हमारी फौजें दुगुने ज़ोरसे दुश्मनोंपर हमला करके उनका पीछा करें।"

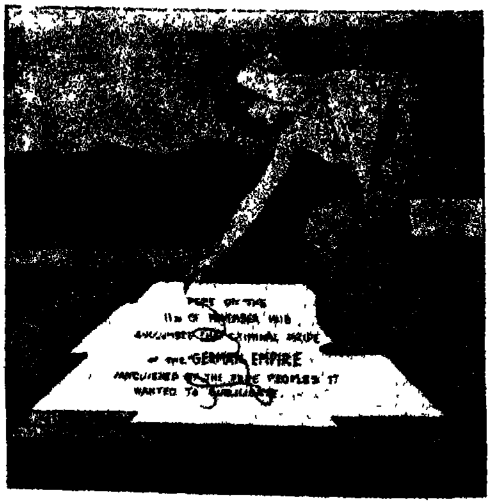
तीन दिन—बहत्तर घंटे—बाद पेरिसके इफेल-टावरमें बेतारके तारसे खबर आई कि जर्मनीने क्षणिक संधिकी सब शर्तें स्वीकार कर लीं।

जर्मनीकी बादमें क्या दशा हुई, यह संसारको विदित है। कैसरका राज खतम हो गया। जर्मनीमें प्रजातन्त्र-शासन स्थापित हुआ। आजकल प्रेसीडेन्ट हिंडनबर्ग—जो कैसरके समय उनके प्रधान सेनापति थे—जर्मन-प्रजातन्त्रके राष्ट्रपति हैं। हाल ही में जर्मनीके एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता गुस्तव स्ट्रेसमैनका देहान्त हो गया है। स्ट्रेसमैन प्रजातन्त्र जर्मनीके एक प्रधान माने जाते थे।

यहाँपर कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। पहले चित्रमें भूतपूर्व जर्मन कैसर युद्धके अन्तिम दिनोंमें अपने सेनापतियों हिंडनबर्ग और लुडनडर्फके साथ चिन्तित भावसे युद्ध-क्षेत्रका नक्शा देख रहे हैं।

दूसरा चित्र उस रेलगाड़ीके डिब्बेका है, जिस परसे मार्शल फाशने जर्मनोंको क्षणिक संधिकी शर्तें सुनाई थीं।

तीसरा चित्र जर्मनीके स्वर्गीय राष्ट्रीय नेता गुस्तव स्ट्रेसमैनका है और चौथे चित्रमें कैसरके भूतपूर्व सेनापति और जर्मनीके वर्तमान राष्ट्रपति हिंडनबर्ग जर्मन प्रजातन्त्रकी दसवीं वर्ष-गांठके उत्सवमें जाते दिखाये गये हैं।



जर्मनीका मिथ्या कलंक

गत महायुद्धके समयमें मित्र-राष्ट्रोंने संसारकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए जर्मनीके विरुद्ध बड़ा भयंकर प्रोपेगेंडा किया था। उन्होंने उसके खिलाफ हज़ारों झूठे दोष लगाये और अनेक बेसिर-पैरकी बातें फैलाईं। कहते हैं कि इन झूठी बातोंको तय्यार करनेके लिए मित्र-राष्ट्रोंने एक अलग मुहकमा ही खोल रखा था! अब युद्धको समाप्त हुए कई वर्ष हो चुके हैं। युद्धकी कटुता और शत्रुओंके प्रति द्वेष धीरे-धीरे कम हो रहा है। अब मित्र-राष्ट्रोंके उत्तरदायी राजनीतज्ञ भी स्वीकार करने लगे हैं कि यथार्थमें जर्मनीके विरुद्ध अनेक झूठे कलंक लगाये गये थे। यहाँ एक कार्टून प्रकाशित किया जाता है, इस कार्टूनमें इतिहासकी देवी जर्मनीके कलंकोंपर 'झूठ'का शब्द लिख रही है।

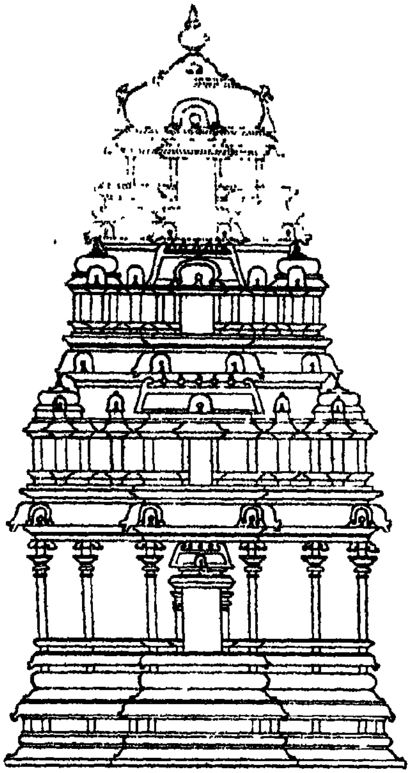
—

विशाल भारत

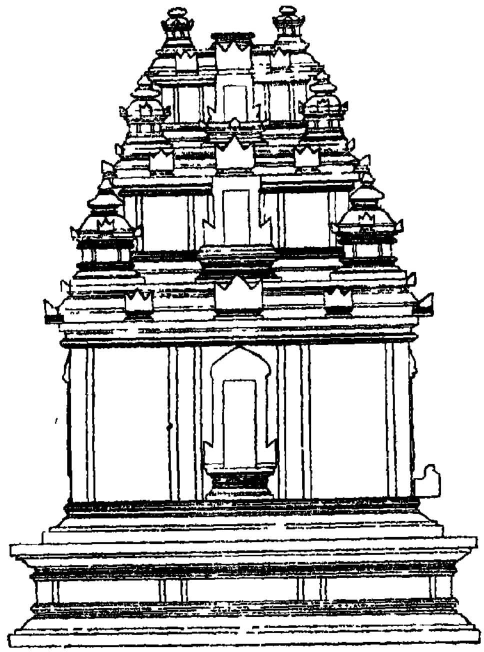
प्राचीन कालमें विशाल भारत बहुत विस्तृत था। एशियाके दक्षिण-पूर्वमें जो असंख्य द्वीप फैले हुए हैं, उनमेंसे अनेकोंमें प्राचीन भारतके पुत्रोंने जाकर ज्ञानका प्रकाश फैलाया था। उनमें उन्होंने अपनी संस्कृति स्थापित की थी और वहाँके निवासियोंको अपना धर्म प्रदान किया था। समयके फेरसे और भारतीयोंकी गलतीसे उन स्थानोंसे हमारा संस्कृति-साम्राज्य नष्ट हो गया। वहाँकी जातियोंमें से अनेक भारतीय संस्कृतिको छोड़कर पुनः बर्बरतामें डूब गईं, परन्तु अब भी इन द्वीपोंमें सैकड़ों ऐसे चिह्न मौजूद हैं, जो हमारे प्राचीन सम्बन्धका ज़ोरदार प्रमाण देते हैं। सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, बाली आदि द्वीपोंमें भारतीय उपनिवेशों उनकी सभ्यता, कला, धर्म इत्यादिके अनेक चिह्न मिलते हैं। यहाँ सुमात्रा, जावा और बोर्नियोके कुछ चित्र दिये जाते हैं। जावा द्वीपके एक मन्दिर और दक्षिण-भारतके तामिलनाडूके एक मन्दिरकी गठनके चित्र भी प्रकाशित किये जाते हैं। देखिये, इन दोनोंकी गठनमें कितना अधिक सादृश है।



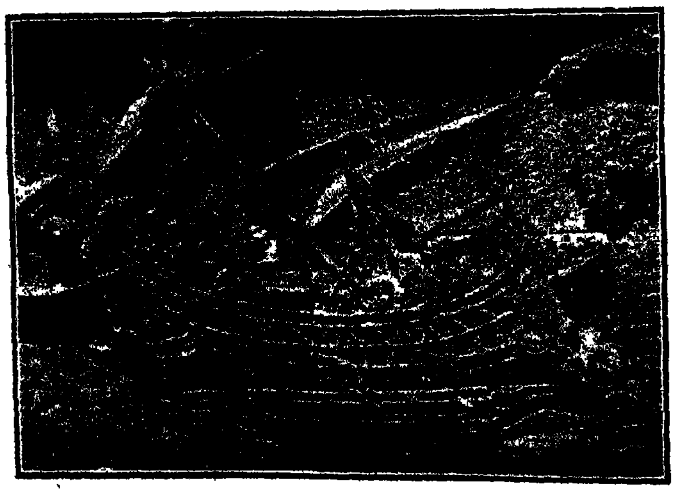
बोर्नियो द्वीपमें निकली हुई एक प्राचीन बुद्ध-मूर्ति
(यह मूर्ति तांबेकी बनी हुई है)



दक्षिण भारत—तामिल नाड्—के एक प्राचीन मन्दिरकी गठन प्रणाली



जावा द्वीपके एक मन्दिरकी गठन-प्रणाली
(देखिये, इन दोनों मन्दिरोंकी गठन-प्रणालीयोंमें कितना अधिक सादृश है)



जावाद्वीपके बर-बूदर नामक विहारकी दीवारपर अंकित नौका



सुमात्राका आदिम निवासी—एक तोमड़ी बजा रहा है



अंगोला (पश्चिमी अफ्रिका) की एक सवारी

वाहन और उनकी तेजी

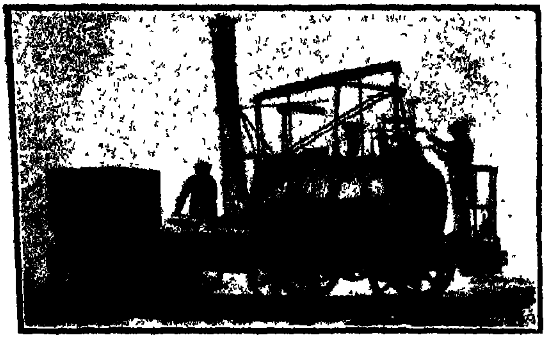
ईश्वरने सृष्टिके आदिमें मनुष्योंको इधरसे उधर जानेमें केवल पैर ही दिये थे। उन्हींके सहारे मनुष्य चलते-फिरते थे, मगर हजरते-इंसानको इन बातोंसे सन्तोष कहाँ? उनमेंसे कुछको स्वयं अपने पैरों चलना नागवार मालूम होने लगा अथवा बीमारी और रोगने उन्हें चलने-फिरनेसे मजबूर कर दिया। तब उन्होंने अपने भाइयोंके ऊपर लदकर चलना शुरू किया। फल यह हुआ कि डोली, पालकी, डांडी, तामनाद, आदि चीजोंका आविष्कार हुआ। इनमेंसे कुछ अब तक—इस बीसवीं शताब्दीमें भी!—संसारमें प्रचलित हैं।

इस प्रकारकी एक सवारीकी तसवीर यहाँ दी जाती है। यह पश्चिमी अफ्रिकाके 'अंगोला' नामक स्थानमें चलती है। देखिए, इस सवारीमें हमारी पालकीकी तरह आदमीको टांग फैलानेकी काफी जगह रहती है। इसे दो आदमी कँधोंपर लटकाकर चलते हैं।

आदमियोंपर चढ़नेके बाद लोगोंको जानवरोंपर सवारी करनेकी सूझी, इसलिए उन्होंने धीरे-धीरे जानवरोंको पालतू बनाना आरम्भ किया। बैल, घोड़ा, हाथी, ऊँट, भैंसा, गधा आदि जानवर काममें लाये जाने लगे। पहियोंके आविष्कारके बाद इन जानवरोंको गाड़ियोंमें जोता जाना शुरू हुआ। इन गाड़ियोंमें इतने भिन्न-भिन्न प्रकारकी सवारियाँ निकाली गईं, जिनका कोई हिसाब नहीं है। आजकल मशीनके युगमें जानवरोंकी गाड़ियोंकी पूँछ कम हो रही है, फिर भी बहुतसे लोग अब तक जोड़ी जुती हुई लैंडो गाड़ियोंको—जिनपर चमचमाती वर्दी पहने हुए साईस खड़े रहते हैं और एक आदमी बिगुल बजाता हुआ चलता है—बहुत शानदार सवारी समझते हैं। यहाँ एक इस प्रकारकी गाड़ीकी तसवीर दी जाती।

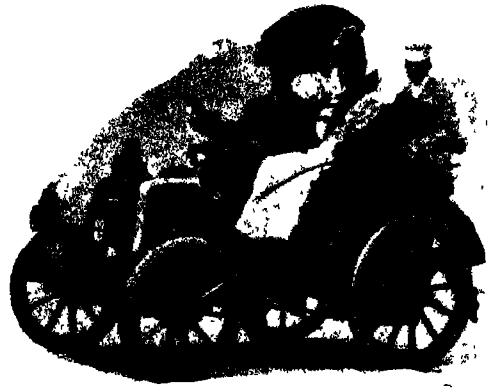


एक शानदार जोड़ी जुती हुई लैंडो-गाड़ी



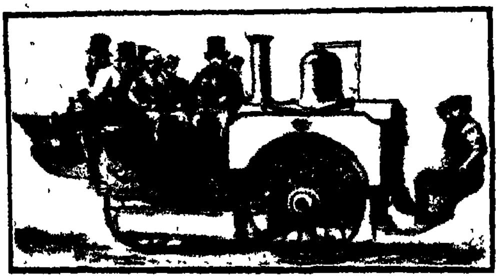
स्टीफन्सका बनाया हुआ सर्वप्रथम रेल-इंजिन

इसके बाद मैशीनका युग आरम्भ हुआ। आज कल लोग इस्पातके घोड़ेपर सवार, भापका चाबुक फटकारते हुए घंटेमें ६० मीलकी स्पीडमें भागते चले जाते हैं! सबमें पहले उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भिक भागमें स्टीम इंजिनका आविष्कार स्टीफन्स नामक एक अंग्रेजने किया था। यहाँपर स्टीफन्सके बनाये हुए इंजिनकी तसवीर दी जाती है। यह उस समयमें घंटेमें छै-सात मील चलता था।



पेरिसका एक पुराना फैशनेबिल मोटरकार

है। अपने समयमें यह पेरिसमें सबसे फैशनेबिल सवारी समझी जाती थी।



बिना पटरीके चलनेवाला तीन पहियेका एक पुराना इंजिन

इंजिनके आविष्कारके बाद लोगोंको यह शिकायत रही कि इंजिन केवल लोहेकी पटरीपर ही चल सकता है, मामूली सड़कोंपर नहीं। इस शिकायतको दूर करनेके लिए भी चेष्टाएँ होने लगीं। यहाँ एक इंजिनकी तसवीर दी जाती है। यह सन् १८६२ में बनाया गया था। इसमें तीन पहिये थे, और यह बिना पटरीके मामूली सड़कपर चल सकता था।

फिर वर्तमान ज़माना—मोटरका युग—आया। आजकल मोटरकारोंमें इतनी उन्नति हो चुकी है कि उनकी चाल दो-सौ मील प्रति घंटेसे भी अधिक पहुँच गई है। आरम्भमें ये मोटर जिस रूपके बने थे, उन्हें देखकर हँसी आती है। यहाँ एक पुराने मोटरकी तसवीर दी जाती



विक्टोरियाके ज़मानेका एक हाउस-बोट

जहाँ स्थलके वाहनोंमें इतनी उन्नति हुई, वहाँ जलके वाहनोंमें भी इससे कम रद्दो-बदल नहीं हुए। वहाँ भी क्रमशः मनुष्यकी बाहुशक्ति, हवाकी शक्ति और मशीनकी शक्तिसे काम लिया गया। आजकल मशीनकी शक्ति ही प्रधान हो रही है। फिर भी बाहुबल एकदम गायब नहीं हो गया है। यहाँ विक्टोरियाके ज़मानेके एक हाउस-बोटका चित्र दिया जाता है।

नमक सत्याग्रह

सत्याग्रह-संग्रामके सम्बन्धमें एक लेख इस अङ्कके आदिमें दिया जा चुका है। यहाँ इस संग्रामके सम्बन्धमें कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।



गुजरातके धुलेरा नामक स्थानमें प्राकृतिक नमकका बड़ा भारी भण्डार है। महात्मा गांधीके नमक सत्याग्रह करनेकी बात सुनकर सरकार भाड़ेके मजदूरोंको लगाकर उस नमकपर मिट्टी डलवा रही है और इस प्रकार देशकी सम्पत्ति बरबाद कराई जा रही है।



महात्माजीकी गिरफ्तारीकी झूठी अफवाह सुनकर जलालपुरसे लेकर नवसारी और डांडी तक उमड़े हुए जन-समुदायका एक दृश्य



गुजरातीके सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'सौराष्ट्र'के सम्पादक और महात्माजीके अनुचर श्री अमृतलाल सेठ गिरफ्तार होनेके पूर्व साल्ट अफसरसे बातचीत कर रहे हैं।

सम्पादकीय विचार

आत्म-घातका मार्ग

स्वर्गीय मि० गोखले द्वारा स्थापित भारत-सेवक-समितिके हेडक्वार्टर पूनासे एक साप्ताहिक पत्र निकलता है, जिसका नाम है 'सर्वेण्ट आफ् इण्डिया'। इसके सम्पादक श्रीयुत एस० जी० वझे हैं, जिनसे हमारा घनिष्ठ परिचय है और इसे हम अपना सौभाग्य समझते हैं। मि० वझेकी योग्यता, ईमानदारी और देशभक्तिमें हम आशंका नहीं करते, पर साथ ही हमें यह कहना पड़ता है कि वे सर्वसाधारण (masses) की मनोवृत्तिको समझनेमें बड़ी भूल करते हैं। 'सर्वेण्ट आफ् इण्डिया' के एक सम्पादकीय लेखका ज़िक्र हमने 'विशाल-भारत' के पिछले अंकमें किया था। इस बार उनके १० अप्रेलके 'नमक-करका सत्याग्रह' (Salt Satyagrah) शीर्षक लेखके विषयमें हमें फिर लिखना पड़ता है। लेखके अन्तमें आपने लिखा है :—

"Liberal can not afford to take up an attitude of benevolent neutrality towards civil disobedience, but must frankly oppose it."

अर्थात्—"उदार-दलके लोग सत्याग्रहके आन्दोलनके विषयमें सहानुभूति-पूर्ण निष्पक्ष भावसे चुप नहीं बैठ सकते। इसका खुल्लमखुल्ला विरोध करना उनका कर्तव्य है।"

जिस मनुष्य या जिस दलको ईमानदारीके साथ जो कुछ अपना कर्तव्य जँचे, उसे अवश्यमेव खुल्लमखुल्ला करना चाहिए। इसमें तो किसीको ऐतराज़ नहीं हो सकता। इस विषयमें लिबरल लोगोंसे झगड़ा करना व्यर्थ है। लिबरल-दलवाले अपनेको

व्यावहारिक राजनीतिज्ञ समझते हैं, अतएव इसी दृष्टिसे इस प्रश्नपर विचार करना है।

पहला प्रश्न तो यह है कि क्या लिबरल लोगोंके पीछे जनताकी कुछ शक्ति भी है, जिससे उनके किये-हुए विरोधमें कुछ बल हो? यह बात नि:सन्देह कही जा सकती है कि जनता लिबरल लोगोंके साथ ५ फी-सदी भी नहीं है। तो फिर उनके किये-हुए विरोधका फल ही क्या होगा? एक चिड़िया होती है, जिसका नाम हमें इस समय याद नहीं पड़ता, जो इस डरसे ऊपरको टाँग उठाकर सोती है कि कहीं रातको आसमान गिर न पड़े! जो लिबरल लोग इस समय यह समझते हैं कि उनके विरोधसे सत्याग्रह-आन्दोलनपर कुछ असर पड़ेगा, वे उस चिड़ियासे ज्यादा बुद्धिमान् नहीं हैं।

स्वाधीनताके लिए पशु-पक्षियों तकमें प्रबल प्रेरणा होती है, मानव-समाजके विषयमें कहना ही क्या है। सदियोंकी गुलामीके बाद भारतकी आत्मा अब जाग्रत हो रही है। गुलामीकी बेड़ियोंको तोड़कर भारतीय अब स्वाधीन होना चाहते हैं। उनकी नस-नसमें मातृभूमिकी दासत्व-शृंखला तोड़नेके लिए जोश समाया हुआ है। वे इस बातको देख चुके हैं कि प्रार्थना-पत्रों तथा कौन्सिलोंकी स्पीचोंसे कुछ होता-जाता नहीं। गवर्मेण्टके कानपर उनसे जूँ भी नहीं रेंगती। लिबरलोंके सभी नरम उपायोंके निष्फल होनेके बाद साधारण जनताने अब सत्याग्रहके लिए कमर कस ली है। यदि इस अवसरपर लिबरल लोग कुछ सहायता नहीं दे सकते, तो कम-से-कम इतना तो कर सकते हैं कि चुपचाप बैठे रहें, पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह सीधी सादी बात भी उनकी अक्कमें नहीं आ सकती। सच बात तो यह है कि लिबरल-दलकी नौका सदा शान्त समुद्रमें चलती रही है, और उसने शायद ही कभी तूफानका मुक़ाबला किया हो। इस समय, जब कि भारतके राजनैतिक समुद्रमें तूफान आया हुआ है और ब्रिटिश साम्राज्यका जहाज़ सत्याग्रहकी चट्टानसे चकनाचूर होनेके खतरेमें है, लिबरल लोग अपनी छोटी सी नाव लेकर उसे बचानेकी फ़िक्र कर रहे हैं। उधर विलायतके मज़दूर-दलके १४ सदस्य तो अपनी व्यक्तिगत सहानुभूति महात्मा गान्धीके साथ दिखला रहे हैं, और इधर लिबरल लोग कहते हैं— "इस मौक़ेपर हम चुपचाप नहीं बैठ सकते, सत्याग्रहका विरोध ज़रूर ही करेंगे।" परिणाम यह होगा कि साम्राज्यवादिताके जहाज़के साथ-ही साथ लिबरल लोग भी अपनी नौका डुबो देंगे।

लिबरलोंकी लोकप्रियता वैसे ही काफी घटी हुई है। लिबरल दलके बड़ेसे बड़े नेता कांग्रेसके दूसरे नम्बरके नेताओंके मुक़ाबलेमें चुनावमें सफल नहीं हो सकते। देशी भाषाओंके पत्रोंके पढ़नेवाली भारतीय जनता लिबरल-दलमें कुछ भी सहानुभूति नहीं रखती, और देशी भाषाओंमें लिबरल दलके विचारोंके दस-बीस पत्र भी नहीं हैं; और जो हैं, उनका विशेष प्रभाव नहीं। जो कुछ थोड़ी-बहुत इज्ज़त लोगोंके दिलमें लिबरल लोगोंके लिए बनी हुई है, वह मि० गोखलेकी भारत-सेवक-समितिके समाज-सेवाके कार्योंके कारण है, अथवा मि० चिन्तामणि जैसे सुयोग्य आदमियोंकी वजहसे है, जो समय-समयपर सरकारका करारा विरोध करते रहे हैं। यदि लिबरल लोगोंने 'सर्वेण्ट-आफ़-इण्डिया' के सम्पादकके मतानुसार सत्याग्रहका विरोध किया तो उसका परिणाम यह होगा कि श्रीयुत चिन्तामणि और पं० हृदयनाथ कुँजरू जैसे सुयोग्य लिबरलोंकी भी शक्ति घट जायगी और देश उनकी उपयोगी सेवाओंसे अधिकांशमें वंचित हो जावेगा। लिबरलोंको यह बात याद रखनी चाहिए कि सर्वसाधारणकी स्मरण-शक्ति कितनी ही खराब क्यों न हो, पर वह उस आघातको कभी नहीं भूलेगी, जो घोर सकटके समय उसपर किया जावे। जब माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजी सरकारकी ओरसे आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा न्यूज़ीलैण्डकी यात्राके लिए गये थे, तो न्यूज़ीलैण्डमें व्याख्यान देते हुए उन्होंने कह दिया था— "महात्मा गान्धीजीका मुकदमा और उसका फैसला ब्रिटिश न्यायका आदर्श नमूना था।" पिछले चुनावमें जब श्रीयुत हृदयनाथ कुँजरू एसेम्बलीके लिए खड़े हुए, तो साधारण

जनतामें शास्त्रीजीके इस वाक्यका प्रयोग उनके विरुद्ध कितने ही स्थानोंमें किया गया था। यदि लिबरल लोगोंने इस संकटपूर्ण अवसरपर सत्याग्रहका विरोध करनेकी मूर्खता की, तो इसमें सन्देह नहीं कि वे अपनी भयंकर हानि करेंगे। इस मार्गका अनुसरण करना उनके लिए आत्म-घातके समान होगा।

—

पत्रकार कला और नवयुवक

अनेक हिन्दी-भाषा-भाषी नवयुवक पत्रकार बनना चाहते हैं, और प्रायः पत्र-सम्पादकोंके पास ऐसे नवयुवकोंकी चिट्ठियाँ आया करती हैं, जो पत्रकार बननेके इच्छुक हैं, पर जिन्हें कोई पथ-प्रदर्शक नहीं मिलता। हिन्दी-पत्र-सम्पादक कार्य-भारसे प्रायः अत्यन्त ग्रस्त रहते हैं, और उनके पास इतना समय नहीं रहता कि इन नवयुवकोंको पत्रकार-कलाकी कुछ शिक्षा दे सकें। शिक्षा देना तो दूर रहा, उचित परामर्श भी इन नवयुवकोंको नहीं मिल पाता। पत्र-सम्पादनका हमें दो ढाई वर्षसे अधिकका अनुभव नहीं है; इसलिए इस विषयमें अधिकार-पूर्वक सलाह देना तो हमारे लिए नितान्त धृष्टताकी बात होगी, फिर भी पत्रकारोंके क्षेत्रमें आनेके इच्छुक नवयुवकोंकी सेवामें हम दो-चार बातें निवेदन कर देना चाहते हैं।

हमारी समझमें इन नवयुवकोंके लिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि वे किसी विशेष विषयका गम्भीर अध्ययन करें। वह ज़माना कभीका चला गया, जब एक आदमी अनेक विषयोंका विशेषज्ञ होनेका दावा कर सकता था। ज्ञान-विज्ञानकी अब इतनी अधिक उन्नति हो चुकी है कि किसी एक विषयका विशेषज्ञ होना भी अब अत्यन्त कठिन हो गया है। अब यदि आप किसी विषयकी एक शाखामें ही विशेषज्ञ हो जावें, तो भी बड़ी बात है। उन नवयुवकोंसे, जो पत्रकार-क्षेत्रमें आना चाहते हैं, हम यही निवेदन करेंगे कि किसी विषयके विशेषज्ञ बनें। एक बार किसी बड़े सम्पादकके पास एक नवयुवकने जाकर यह प्रश्न किया था कि इस क्षेत्रमें हम कैसे प्रवेश करें। उन्होंने उत्तर दिया—"तुम कोई एक विषय ले लो। मान लो तुमने 'आलू' विषय ले लिया। आलुओंके विषयमें जो साहित्य निकला हो, उसका अध्ययन करो, जो इस विषयमें विशेष बातें जानते हों, उनसे मिलो और दिन-रात आलुओंकी ही चिन्तामें लगे रहो। कभी लिखना हो, तो आलुओंके विषयपर लिखो; बोलना हो, तो इसी विषयपर बोलो। गरज़ यह कि 'आलूमय' हो जाओ। कभी ऐसा समय आयगा, जब कि आलुओंकी उपयोगिताको जनता समझेगी और तभी तुम्हारी पूछ होने लगेगी।"

हमारे नवयुवकोंको भी कोई-न-कोई एक विषय ले लेना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ विषयोंको लीजिये,—

(१) ग्राम-संगठन
(२) किसान-आन्दोलन
(३) मज़दूर-आन्दोलन
(४) समाज-सेवा
(५) म्यूनिसिपेलिटी और उनके कर्तव्य
(६) जनताका स्वास्थ्य
(७) क्षय रोग और उसके दूर करनेके उपाय
(८) बच्चोंका पालन-पोषण
(९) स्त्री-शिक्षा
(१०) प्राथमिक शिक्षा
(११) वयस्कों या बड़ी उम्रवालोंकी शिक्षा
(१२) ग्रामोंके उद्योग-धंधे
(१३) विधवाओंका प्रश्न
(१४) हिन्दू, मुस्लिम, पारसी और ईसाइयोंकी संस्कृति।
(१५) प्रवासी भारतीय
(१६) संसारकी भिन्न-भिन्न जातियोंका संसर्ग और जातीय विद्वेषका प्रश्न

इनके सिवा अन्य विषयोंके नाम भी लिये जा सकते हैं। भारतमें सर्वसाधारणकी सेवाके लिए जितना विस्तृत

क्षेत्र है, उतना संसारके शायद ही किसी देशमें हो। जितना दुःख, जितनी निर्धनता और जितना अज्ञान इस देशमें है, उतना शायद ही किसी दूसरे देशमें होगा। ऊपर लिखे हुए प्रत्येक विषयके लिए बीसियों नवयुवकोंकी आवश्यकता है। अकेले ग्राम-संगठनके कार्यमें ही सहस्रों नवयुवक लग सकते हैं। विषय ऐसा लेना चाहिए, जो सामयिक हो और भविष्यमें जिसके उपयोगी होनेकी विशेष सम्भावना हो। ग्राम-संगठन, मजूर-आन्दोलन इत्यादि ऐसे विषय हैं।

लिखनेका उद्देश्य आखिर यही है न कि हमारे लेख पढ़कर सर्वसाधारणका जीवन अधिक सुखी हो, उनको सुन्दर सात्विक मानसिक भोजन मिले, उनकी रुचि परिष्कृत हो और वे अपने कुटुम्ब तथा समाज और देशके लिए उपयोगी बन सकें?—कोरमकोर कागज़ रंगनेसे तो कुछ फायदा नहीं है। भिन्न-भिन्न विषयोंपर निरुद्देश्य लेख लिखनेसे क्या प्रयोजन है? हमारे नवयुवकोंमें कार्यके 'विस्तार'के प्रति जितना प्रेम है, उतना उसकी 'गहराई'के प्रति नहीं है। एक ही आदमी चुंगीका मेम्बर भी बनना चाहता है, पत्रकारीमें भी टाँग अड़ाता है, हिन्दू-महासभाका भी कार्यकर्ता है और आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीका सदस्य बननेकी आकांक्षा भी रखता है! इसका परिणाम यह होता है कि वह कोई भी कार्य सफलता-पूर्वक नहीं कर सकता। जो नवयुवक यह सोचते हैं कि भिन्न-भिन्न विषयोंपर लिखनेसे हमारा नाम बार-बार समाचारपत्रोंमें छप जायगा और हम प्रसिद्ध लेखक बन जायँगे, वे बड़ी गलती करते हैं। दुनियामें सैकड़ों ही ऐसे लेखक हुए हैं, जिन्होंने पचासों किताबें लिखी थीं, पर जिनकी एक भी पुस्तक आज जीवित नहीं है। हिन्दीमें भी 'पौन सौ' पुस्तकोंके लेखक विद्यमान हैं, पर जिनकी एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है, जो पचीस वर्ष बाद किसी पुस्तक-विक्रेताकी दुकानपर मिल सके। समय थोड़ा है और काम बहुत करनेके लिए पड़ा हुआ है। हर विषयमें दखल देनेकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि आदमी एक विषय लेकर बैठ जाय और दिन-रात उसीका अध्ययन और चिन्तन करे, पर इस मार्गपर चलनेके लिए नवयुवक लेखकोंको धैर्य धारण करना पड़ेगा। 'काता और ले दौड़े' की नीतिको तिलांजलि देनी होगी।

× × ×

लाखों ही बच्चे हिन्दुस्तानमें प्रतिवर्ष इसलिए मर जाते हैं कि उनकी माताओंको बच्चोंके पालन-पोषणके विषयकी मामूली बातोंका भी ज्ञान नहीं है। अनेक बीमारियाँ लाखों ही माताओंके नैनोंके तारों दुलारोंको उनकी गोदसे छीन लिये जाती हैं। भला, क्या कोई विषय child-welfare से अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकता है? क्यों न हमारे सैकड़ों नवयुवक इस विषयके अध्ययनमें अपना जीवन लगा दें? यदि कोई शिक्षित नवयुवक दस-पन्द्रह वर्ष तक ग्रामोंमें खादी-प्रचार करनेके बाद भारतीय ग्राम्य-जीवनके विषयमें कोई पुस्तक लिखेगा, तो उसकी पुस्तक समाज तथा साहित्य दोनोंके लिए अधिक उपयोगी होगी और उसमें स्थायित्व भी अधिक होगा। वयस्कोंमें शिक्षा-प्रचार (Adult Education) का विषय ऐसा है, जिसका महत्त्व अधिकाधिक बढ़ेगा। स्वराज्य मिलते ही सबसे पहला काम जो भारतीय नेता अपने हाथमें लेंगे, वह होगा 'सर्वसाधारणमें शिक्षा-प्रचार'। यदि कोई नवयुवक अभीसे इस विषयका अध्ययन प्रारम्भ कर दे, तो पाँच-सात वर्ष बाद वह समाजके लिए एक उपयोगी आदमी सिद्ध होगा। इसी प्रकार अनेक विषय हैं। प्रत्येक नवयुवक-लेखकको अपनी रुचिके अनुकूल कोई एक विषय चुन लेना चाहिए। प्रभावशाली पत्रकार बननेका हमें तो यही सर्वोत्तम मार्ग प्रतीत होता है। ज़माना आजकल विशेषज्ञताका है, और बिना किसी विषयके विशेषज्ञ बने किसीकी पूछ नहीं हो सकती।

—

कलकत्ता-विश्वविद्यालयके हिन्दी-परीक्षार्थी

हिन्दी-भाषा सीखनेमें सबसे बड़ी कठिनाई जो अन्य भाषा-भाषियोंको पड़ती है, वह लिंग-भेद-विषयक है। किसी

बंगाली या गुजरातीके लिए हिन्दीके स्त्री लिंग और पुलिंगमें भेद करना बड़ा कठिन हो जाता है। पर बंगालियों और गुजरातियोंकी बात जाने दीजिए, स्वयं हिन्दी-भाषा-भाषी छात्र भी, जो बंगाल गुजरात इत्यादिमें बस गये हैं, इस विषयमें बड़ी भयंकर भूल करते हैं। 'ने' का प्रयोग हिन्दीकी बड़ी भारी विशेषता है, परन्तु जिन प्रादेशिक भाषाओंमें 'ने' अथवा कर्मणि प्रयोग नहीं है, उनको इसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाई होती है। बंगाली और आन्ध्र-निवासी 'ने' के प्रयोगसे बड़े हैरान रहते हैं। यही क्यों, जब हिन्दी-भाषा-भाषी और विशेषकर यूनिवर्सिटीकी परीक्षा पास किये हुए लोग भी 'ने' के प्रयोगमें फेल हो जाते हैं, तो औरोंकी बात ही क्या है। उसका कारण व्याकरणकी और शिक्षकों तथा विद्यार्थियोंका दुर्लक्ष्य ही है ? आजकल जब कि हम अन्य प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा प्रचारके लिए इतने चिन्तित जान पड़ते हैं, तो हमारा कर्तव्य है कि इस ओर ध्यान दें। यदि हमें प्रचार करना है तो शुद्ध हिन्दीका प्रचार करना चाहिए। कलकत्ता-विश्वविद्यालयके अधिकारियोंसे इस विषयमें अनुरोध करना हमारा कर्तव्य है। बड़ी भारी भूल यह हो रही है कि विश्वविद्यालयोंमें हिन्दी-व्याकरणकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। यदि मैट्रिक, इण्टरमीडिएट तथा बी० ए० के छात्रोंको हिन्दी-व्याकरणकी ओर ध्यान देनेके लिए किसी प्रकार प्रेरित किया जा सके, तो यह दोष दूर हो सकता है।

इसका सीधा-सादा उपाय यह है कि हिन्दी परीक्षाओंके प्रश्नपत्रोंमें सैकड़ा पीछे २० नम्बर व्याकरणके लिए रखे जायँ। जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दी है, उनमें स्थित विश्वविद्यालयोंके हिन्दी-प्रश्नपत्रोंके लिए २० फी-सदी नम्बर व्याकरणको देना भले ही बहुत अधिक प्रतीत हो, पर बंगालके लिए यह अधिक नहीं है। यदि बी० ए० के विद्यार्थियोंको भी शुद्ध हिन्दी लिखना और बोलना न आया, तो फिर इस पढ़ाईसे फायदा ही क्या हुआ!

आशा है कि कलकत्ता-विश्वविद्यालयके अधिकारी इस आवश्यक प्रश्नकी ओर ध्यान देंगे।

महिला-विद्यापीठ प्रयाग

हमारे देशमें सेवाके अनेक कार्यक्षेत्र उपस्थित हैं। उनमें किसका महत्त्व कम है, किसका अधिक, यह निर्णय करना कठिन है। यह प्रश्न तो अपनी-अपनी रुचि और समयकी आवश्यकतापर निर्भर है; फिर भी इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि अपनी माताओं, बहनों और कन्याओंको सुशिक्षित बनाना एक ऐसा पवित्र कार्य है, जो प्रत्येक मनुष्यकी सहानुभूति और सहायताका पात्र है। राष्ट्रीय शिक्षाके विशेषज्ञ आचार्य ए० टी० गिडवानी प्रायः कहा करते हैं कि लड़कियोंकी शिक्षाका महत्त्व लड़कोंकी शिक्षाकी अपेक्षा कहीं अधिक है, इसलिए लड़कोंकी प्राथमिक शिक्षाको निःशुल्क तथा अनिवार्य करनेके पहले हमें लड़कियोंकी शिक्षाको अनिवार्य और फ्री करनेकी ज़रूरत है। यदि मूलमें ही सुधार हो जाय, तो फिर शाखा-प्रशाखोंको ठीक करनेमें देर न लगेगी। यदि हमारी माताएँ, बहनें तथा पुत्रियाँ शिक्षित हो जायँ, तो फिर सामाजिक दशाका सुधार सरल हो जायगा, इसलिए देशकी प्रत्येक कन्या-पाठशाला देव-मन्दिरके समान पूज्य स्थान है। जिसके सामने हमें श्रद्धा-पूर्वक सर नवाना चाहिए। इसी दृष्टिसे हम प्रयागकी महिला-विद्यापीठको देशकी एक अत्यन्त लाभदायक तथा होनहार संस्था समझते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके परीक्षा-विभागकी प्रशंसा 'विशाल-भारत' में कई बार की जा चुकी है, क्योंकि इस विभागने साधारण जनतामें साहित्यिक रुचि उत्पन्न करनेके लिए बड़ा प्रयत्न किया है, पर सम्मेलनके परीक्षा-विभागसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रयागकी महिला विद्यापीठका है। हमें इस बातके लिए सचमुच लज्जा है कि हम अपने प्रान्तकी एक ऐसी उपयोगी संस्थाका परिचय अब तक 'विशाल भारत' के पाठकोंको न दे सके। विद्यापीठके विषयमें विस्तृत लेख तो हम किसी अगले अंकमें प्रकाशित करेंगे, इस समय दो-चार बातें उसके बारेमें सुना देना चाहते हैं।

अभी तक विद्यापीठ एक परीक्षा-समितिके रूपमें कार्य करती रही है। उसके द्वारा तीन परीक्षाओंका संचालन होता है—विद्याविनोदिनी, विदुषी और सरस्वती। ये क्रमशः हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षाके समान हैं, यद्यपि लड़कियोंकी पढ़ाईका कोर्स लड़कोंके पाठ्यक्रमकी अपेक्षा सरल रखा गया है। अब तक ३२१ स्त्रियोंने विद्याविनोदिनीका पूरा कोर्स, ६१ स्त्रियोंने विदुषीका और २ स्त्रियोंने सरस्वतीका पूरा कोर्स पास किया है। विद्यापीठके परीक्षा-केन्द्र संयुक्त-प्रान्तके अनेक नगरोंमें तो हैं ही; पर पंजाबके अमृतसर, लुधियाना, फीरोज़पुर, इत्यादिमें; दिल्लीमें; बिहारके छपरा, मुज़फ्फरपुर, आरा, भागलपुर इत्यादिमें; मध्यप्रान्तके नागपुर तथा बैतूलमें; जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर आदि अनेक देशी राज्योंमें तथा कलकत्ता, गौहाटी, रंगून और नैरोबी (पूर्व-अफ्रिका) में भी है। इससे विद्यापीठके व्यापक कार्यक्षेत्रका अनुमान किया जा सकता है।

विद्यापीठके पंच-वार्षिक विवरणमें लिखा है—

"परीक्षार्थिनियाँ समाजकी प्रत्येक श्रेणीमें से आती हैं, जिनमें बाँसवाड़ेके राज्य घरानेसे लेकर ग़रीब विधवा तक शामिल हैं, जो अपने निर्वाहके लिए अध्यापिकाका काम करती हैं। केवल स्कूलों और कालेजोंकी लड़कियोंने ही नहीं, किन्तु अधिक आयुवाली स्त्रियोंने भी, जिनका देशी भाषामें उच्च परीक्षाएं न होनेके कारण आगे पढ़नेका विचार नहीं था, हमारी परीक्षाओंसे लाभ उठाया है। एक ही परीक्षामें बैठनेवाली अध्यापिकाओं और शिष्याओं तथा माताओं और पुत्रियोंकी काफ़ी संख्या है, और एक बार तो हमारी परीक्षामें नानी, माता और पुत्री साथ बैठी थीं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि यह एक अध्यापिकाओंका परिवार था।

कुछ उच्च जातियोंकी विधवाओंने, जो अपनी आजीविका पर्देमें बैठकर और सीकर अथवा दूसरेके लिए रसोई बनाकर कमाती थीं, हमारी दी हुई सुविधाओंसे लाभ उठाया है, अपने घरका दैनिक कार्य करते हुए अध्ययन किया है, हमारी परीक्षाएँ पास की हैं और चालीस-पचास रुपये मासिक कमा रही हैं। उन्होंने अपनी आर्थिक अवस्था सुधार ली है और अब अपने सम्बन्धियोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करतीं। विद्यापीठने असहाय स्त्रियोंको आर्थिक संकटसे छुटकारेका मार्ग बतला दिया है। इसने स्त्रियों और पुरुषोंमें गृह-प्रबन्ध और आरोग्य-शास्त्र विषयक पुस्तकोंकी माँग उत्पन्न करके हिन्दीमें उनके लिखे जानेमें प्रोत्साहन दिया है। विद्यापीठमें इसकी विद्याविनोदिनियों, विदुषियों और नौकरीकी इच्छा करनेवाली शिक्षिता स्त्रियोंका रजिस्टर रहता है और देशी राज्यों, स्थानीय बोर्डों और सब प्रकारके स्कूलोंके लिए इन्सपेक्ट्रेस और अध्यापिकाएँ देता रहा है।" इस अवतरणसे विद्यापीठकी उपयोगिता स्पष्ट है।

अभी उस दिन विद्यापीठके संचालक श्रीयुत संगमलालजी अग्रवाल तथा उसके रजिस्ट्रार श्री रामेश्वरप्रसाद जी से बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

उक्त दोनों महानुभावोंसे यह जानकर हमें हार्दिक हर्ष हुआ कि अब महिला-विद्यापीठके संचालक अपने कार्यक्षेत्रको और भी अधिक बढ़ाना चाहते हैं। उन्होंने प्रयागमें अध्यापिकाएँ तय्यार करनेके लिए एक विद्यालय खोलनेका निश्चय कर लिया है। चूँकि विद्यापीठके पास पन्द्रह-बीस हज़ारकी लागतका निजका मकान है, इसलिए स्थानका प्रश्न तो हल ही समझिये, पर स्थानके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंके लिए धनकी आवश्यकता पड़ेगी। हम लोग चाहते हैं कि नगर-नगरमें और ग्राम-ग्राममें कन्या-पाठशालाएँ स्थापित हों, पर अध्यापिकाओंकी कमीके कारण यह योजना आगे नहीं बढ़ सकती। यदि महिला-विद्यापीठको अपने उद्देश्यमें सफलता मिली, तो थोड़े वर्षोंमें ही यह कठिनाई दूर हो जायगी और हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंके नगरोंकी कन्या पाठशालाओंको विदुषी-परीक्षा पास अनेक अध्यापिकाएँ मिलने लगेंगी।

विद्यापीठका पाठ्यक्रम खूब सोच-समझकर बनाया गया है। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंकी कन्या-पाठशालाओंको चाहिए कि यथासम्भव इस पाठ्य क्रमका अनुसरण करें। विद्यापीठके रजिस्ट्रारसे यह जानकर हमें खेद हुआ कि कहीं-कहीं कन्या-पाठशालाओंमें अंग्रेज़ीपर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा है, और उसकी पढ़ाई बहुत छोटे दर्जोंसे ही प्रारम्भ की जाने लगी है। लोगोंके दिलमें यह इच्छा उत्कट रूपसे जाग्रत प्रतीत होती है कि हमारी लड़की अंग्रेज़ीमें नाम लिख लें। अँग्रेज़ीकी पढ़ाई-लिखाई तो कुछ हो नहीं पाती, हाँ, नाम लिखना वे ज़रूर सीख जाती हैं। गुलाम-मनोवृत्तिका यह भी एक नमूना है। अंग्रेज़ीकी उपयोगिताको हम स्वीकार करते हैं, फिर भी इस नाम-मात्रकी पढ़ाईको हम हानिकारक ही समझते हैं। यह कुप्रवृत्ति रोकी जानी चाहिए। अपनी मातृभाषामें प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद, उन लड़कियोंको जो अंग्रेज़ी पढ़ना चाहती हैं, अंग्रेज़ी पढ़ाना चाहिये, पर छोटी-छोटी लड़कियोंके सिरपर 'सी+ए+टी=कैट, कैट माने बिल्ली, और डी+ओ+जी=डॉग, डॉग माने कुत्ते'का बोझ डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं। यदि महिला-विद्यापीठके संस्थापक श्रीयुत संगमलालजी अथवा उसके रजिस्ट्रार श्री० रामेश्वरप्रसादजी एक बार हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंका चक्कर लगा आवें, और भिन्न-भिन्न स्थानोंकी कन्या-पाठशालाओंका निरीक्षण कर आवें, तो बहुत-कुछ काम हो सकता है।

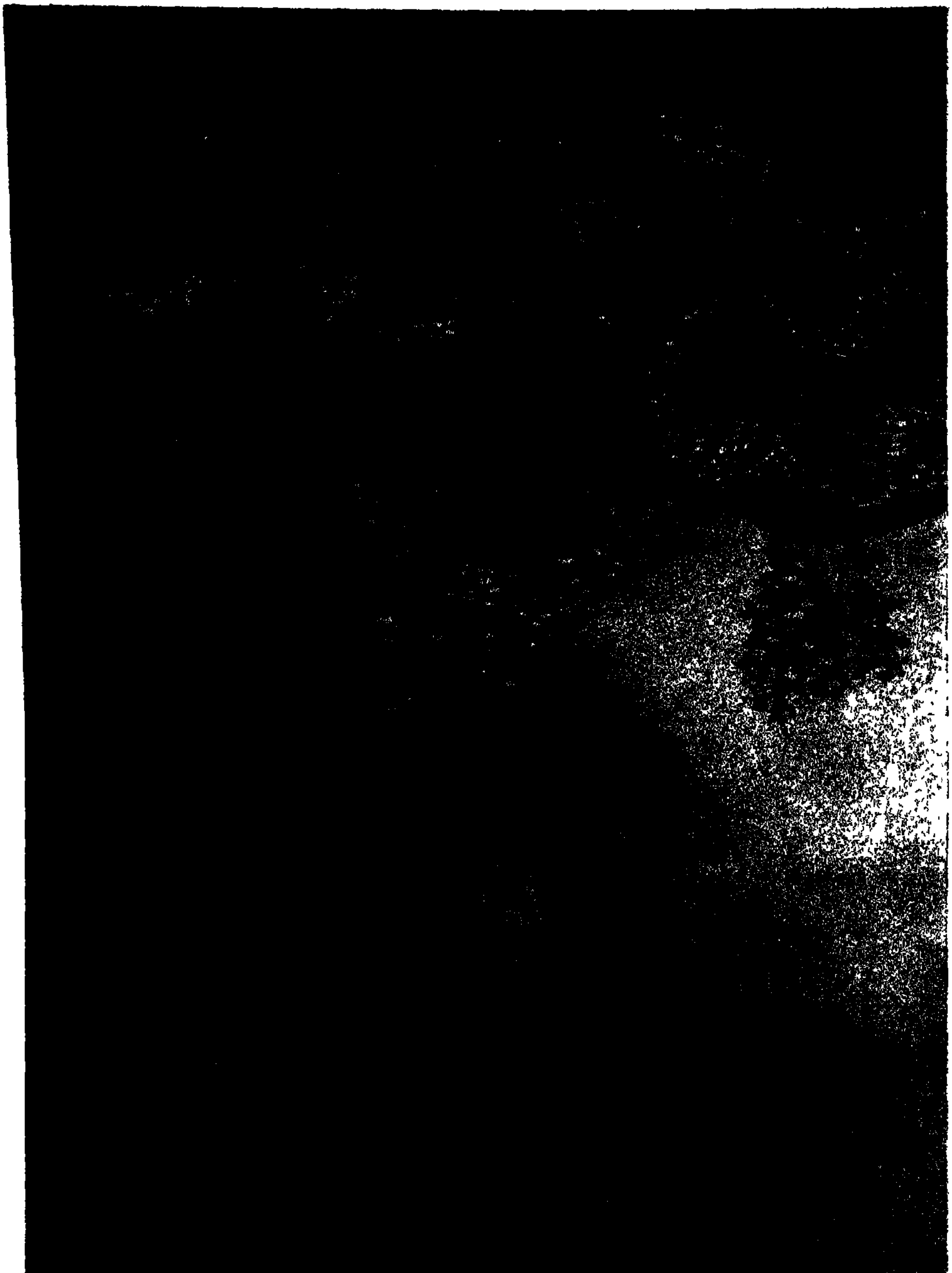
महिला-विद्यापीठका भविष्य तभी उज्ज्वल होगा, जब उसे अपना पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता मिलें। अकेले श्री संगमलालजी इस बोझको, जो बराबर बढ़ रहा है, कहाँ तक उठा सकते हैं? जो प्रान्त श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन, श्री जवाहरलालजी नेहरू, श्री सुन्दरलालजी तथा श्री गणेशशंकरजी जैसे निःस्वार्थ कार्यकर्ताओंको जन्म दे सकता है, उसे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं।

—

प्रवासी-परिषद्

वृन्दावन गुरुकुलकी रजत-जयन्तीके अवसरपर प्रवासी-परिषद्की भी आयोजना की गई है। उसके सभापति स्वामी भवानीदयालजी संन्यासीको सरकारने ढाई वर्षके लिए अपना अतिथि बना लिया है। यद्यपि सरकारकी इस कारवाईसे प्रवासी-परिषद्की बड़ी भारी हानि हुई है, तथापि हम इस अवसरपर खेद प्रकट नहीं कर सकते। श्री भवानीदयालजीको हम हार्दिक बधाई देते हैं। आजसे अठारह वर्ष पूर्व दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्राममें भी उन्होंने भाग लिया था और अपनी धर्मपत्नी स्व० जगरानी देवी तथा छोटे बच्चेके साथ जेलकी यात्रा की थी। फिर भला, इस महत्त्वपूर्ण अवसरपर वे कैसे रुक सकते थे! प्रवासी-परिषद्की इस हानिसे देशका लाभ ही हुआ है, इसलिए प्रवासी भारतीयोंको और प्रवासी-परिषद्के संयोजकोंको सन्तोषके साथ अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

Edited, Printed & Published by Benarsi Das Chaturvedi, at the Pravasi Press,
120-2, Upper Circular Road, Calcutta.



पियाऊ

[चित्रकार—श्री नन्दलाल बोस]

विशाल-भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ३ खण्ड १ | मई, १९३०; जेठ, १९८७ | अङ्क ५ पूर्णाङ्क २९

देश-दर्शन

[लेखक :—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय]

कारागार में महात्मा गांधी

महात्मा गांधी गिरफ़्तार होंगे—सभीका ऐसा अनुमान था, फिर चाहे उसमें विलम्ब हो अथवा शीघ्रता। अब तक सरकारने उन्हें क्यों नहीं गिरफ़्तार किया, इस विषयमें लोग तरह-तरहके अनुमान करते हैं, परन्तु विलम्बका असली कारण क्या है, शायद बड़े लाट भी नहीं बता सकेंगे। ब्रिटिश सरकार कोई एक आदमी तो है नहीं, बहुत आदमियोंकी समष्टि है। ये सब आदमी ठीक एक ही कारणसे इतने दिनों तक गांधीजीके गिरफ़्तार करनेके विरोधी रहे हों, ऐसा भी नहीं मालूम होता।

भारत और विलायतके अंग्रेज़ोंके अख़बारोंसे पहले-पहल साधारणतः ऐसी ही धारणा प्रकट हुई थी कि गान्धीजीका समुद्रके किनारे नमक बनाने जाना प्रहसन-मात्र है, शीघ्र ही वह समाप्त हो जायगा, गांधीजीको गिरफ़्तार करना मानो उसे कृत्रिम उपायसे और भी कुछ दिन जीवित रखना है। ब्रिटिश सरकारकी धारणा भी शायद ऐसी ही थी। सम्भवतः शीघ्र ही यह धारणा बदल गई। सरकारी लोगोंने जब देखा कि गांधीजीके दलमें आदमियोंकी संख्या नितान्त कम नहीं है, तब शायद एक-एक प्रान्त और स्थानके नेताओंको गिरफ्तार करके महात्माजीको उनकी सहायतासे वंचित रखनेकी नीति अख़्तियार की गई। ऐसा भी हो सकता है कि देशमें लड़ाई-दंगा या अशान्ति पैदा न होने तक सरकार प्रतीक्षा कर रही थी। कारण, कहीं भी कोई खास अशान्ति या उपद्रव न होनेपर भी गांधीजीको गिरफ्तार करनेसे अन्य-

संसारका लोकमत ब्रिटिश सरकारके विरुद्धमें जायगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि भारत-सरकारने विलायती गवर्मेन्टके आदेशसे गांधीजीको गिरफ्तार किया हो, और विलायती गवर्मेन्टने इंग्लैण्डके बहुतसे लोगोंके चीत्कारको रोकनेके लिए ऐसा आदेश दिया हो। यह सब अनुमान ही हैं। गांधीजीको इतने दिन गिरफ्तार न करनेका असली कारण किसी गैर-सरकारीके जाननेकी बात नहीं है। उपद्रव, अशान्ति इत्यादि जो कुछ हो रहा है, ब्रिटिश-पक्षकी तरफसे उसे साक्षात् या परोक्ष भावसे गांधीजीके क़ानून-लंघन-प्रचेष्टाके साथ जोड़नेकी कोशिश स्वाभाविक ही है, परन्तु हम उन सबका कारण और ही कुछ समझते हैं।

बहुतसे सम्पादक तथा अन्य लोग कहते हैं कि गांधीजीको क़ैद करके सरकारने बड़ी भूल की है, उसमें सरकारका अनिष्ट होगा, इत्यादि। सरकार गैर-सरकारी लोगोंकी सलाह या राय तभी लेती है, जब वह उसकी रायके साथ मिलती और उसके उद्देश साधनके अनुकूल होती है। इसलिए हम सरकारको सलाह देना नहीं चाहते। बिना मांगे सरकारको सलाह देनेकी प्रवृत्ति भी हमारी नहीं है। सरकारने अगर भूल की होगी, तो खुद ही वह उसे समझ जायगी। देशी अख़बार गैर-सरकारी लोकमतके गठनमें कुछ सहायता पहुंचाया करते हैं, इसलिए हम जो कुछ लिख रहे हैं, वह अपने देशवासी गैर-सरकारी लोगोंके लिए है।

उनमें जो देशके हित-अहितकी चिन्ता करते हैं वे सभी सोच रहे हैं कि गांधीजीके क़ैद हो जानेसे उनके द्वारा छेड़ा हुआ स्वाधीनता-आन्दोलन क्या मन्द पड़ जायगा या थम जायगा? भविष्यके गर्भमें क्या छिपा हुआ है, मालूम नहीं, लेकिन गांधीजीके पकड़े जानेके बाद ही देख रहे हैं कि उनके अनुयायियोंके दलमें नये लोग शामिल हो रहे हैं। जो लोग पहले शामिल नहीं हुए थे, उनमेंसे भी बहुतसे शामिल हो रहे हैं। बीस हज़ार, पचास हज़ार, एक लाख और पाँच लाख लोगोंकी सभा और जुलूसके समाचार अख़बारोंमें निकल रहे हैं। निरुपद्रव क़ानून-लंघकोंकी गिरफ्तारी और जेल जानेके अनेक समाचार भी पूर्ववत् अनेक पत्रोंमें निकल रहे हैं। कांग्रेसके जो सब प्रधान कार्यकर्ता अभी तक जेल नहीं गये हैं, वे महात्मा गांधी-द्वारा प्रवर्तित उपायोंपर चलनेके अलावा और भी क्या-क्या करेंगे, उसका निश्चय कर रहे हैं, इसलिए गांधी-पत्नी श्रीमती कस्तूर बाने पतिके कारारुद्ध होनेके बाद जो कहा है कि गांधीजीको कर्मक्षेत्रसे हटा लेनेसे, भारतको स्वाधीन करनेके लिए उन्होंने जो महान् कार्य शुरू किया है, उसमें कोई बाधा न आयेगी, यह बात फिलहाल तो सत्य मालूम होती है। उत्तेजना कुछ घट जानेसे महात्माजीके अनुयायियोंकी कर्मनिष्ठा, घटेगी या नहीं, यह बात समयपर समझमें आयेगी। वस्तुतः गांधीजीको गिरफ्तार करके सरकारने स्वाधीनता-आन्दोलनकी व्यापकता, गम्भीरता और शक्ति प्रमाणित करनेके लिए भारतवर्षके गैर सरकारी लोगोंको प्रकारान्तरसे आह्वान किया है। भारतीय गैर-सरकारी लोगोंका कार्यगत जवाब इतिहासके पन्नोंपर लिखा रहेगा।

गांधीजीको पकड़नेका ढंग

गांधीजीको रातके बारह बजेके बाद गिरफ्तार करनेके लिये जिम्मेदार बम्बईके सरकारी लोगोंने बहुत ही सावधानीसे काम लिया था, इसलिए उनकी तारीफ़ की जा सकती है; परन्तु गांधीजी चोर नहीं हैं, भागनेकी कोशिश वे न करते। कोई भी उन्हें पुलिसके हाथसे छीन लेनेकी कोशिश न करता, कोई करता, तो वे ही सबसे पहले उसमें बाधा देते, इसलिए एक क्षीणकाय वृद्ध अहिंसाव्रती साधु व्यक्तिको पकड़नेके लिए इतनी तैयारियाँ देखकर सरकारी अफ़सरोंके प्रति हृदयमें श्रद्धाका भाव नहीं आता। महात्माजीकी नींदमें बाधा डालनेकी ऐसी कोई ख़ास ज़रूरत नहीं थी। दिनमें उन्हें गिरफ्तार करनेसे स्थानीय जनताकी कुछ भीड़

ज़रूर जमा हो जाती, लेकिन सरकारी मोटर-गाड़ीके साथ वे दौड़ नहीं सकते थे।

गांधीजीको गिरफ्तार करनेकी इन तैयारियोंसे तो यही मालूम होता है कि मनुष्यकी चारित्रिक शक्ति बृहत् साम्राज्यके प्रतिनिधियोंके मनमें भी आशंकाका उद्रेक कर सकती है।

—

महात्माजीके विरुद्ध 'रेगूलेशन' का प्रयोग

'रेगूलेशन' नामकी कुछ उप धाराएँ हैं, जिन्हें ठीक क़ानून नहीं कहा जा सकता। उनके अनुसार किसी अदालतमें विचार नहीं होता—बिना विचारके दण्ड दिया जाता है। बीस वर्षसे और भी पहले बंगालमें ऐसी एक उप-धारा (सन् १८१८ ई०के तीन नम्बर रेगूलेशन) के अनुसार अश्विनीकुमार दत्त, कृष्णकुमार मित्र आदिको निर्वासन और क़ैदकी सज़ा दी गई थी। महात्मा गान्धीको सन् १८२७ ई०के २५ नम्बर रेगूलेशनके अनुसार क़ैद किया गया है।

एक सौ तीन वर्ष पहले युद्धमें जो सब अस्त्र काममें आते थे, अब कोई भी सभ्य जाति उस तरहकी तोप, बन्दूक, बारूद गोला-गोली लेकर युद्ध नहीं करती; आदमी मारनेके नये-नये अस्त्र और उपाय निर्मित और आविष्कृत होते आ रहे हैं। परन्तु महात्मा गान्धीने जो अहिंसामय स्वाधीनता-संग्राम शुरू किया है, उसके विरुद्ध ब्रिटिश गैवर्मेन्टको एक सौ वर्षका पुराना जंग-लगा अस्त्र अस्त्राघातके रूपमें काममें लाना पड़ा। राजनीति-कुशल ब्रिटिश जातिकी उद्भावनी शक्ति इस अवसरपर नया कोई उपाय आविष्कार नहीं कर सकी। इसके मानी यह होते हैं कि एक सौ तीन वर्ष पहले भारतमें किसी-किसी अवस्थामें ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी जिस तरीक़ेको अख़्तियार करती या करनेका संकल्प करती थी, आज एक सौ तीन वर्ष बाद भी कम्पनीकी उत्तराधिकारिणी ब्रिटिश गवर्मेन्टकी रायमें भारतकी अवस्था कुछ-कुछ उसीके समान होनेसे पुराने उपायका सहारा लिया जा रहा है। तो फिर कहना चाहिए कि अंग्रेज़ों द्वारा एक सौ तीन वर्षकी अविराम अविश्राम भारत-हितैषणा और हित चेष्टा होते रहनेपर भी भारत सन् १८२७ ई० में जैसा था, सन् १९३० में भी राष्ट्रीय मामलोंमें मूलतः ठीक वैसा ही है। एक शताब्दी बाद भी यदि भारत सन्तुष्ट, शान्त और ठंडा न हुआ हो, तो उसके इलाजके लिए ब्रिटिश-जाति अपनी ज्ञान-बुद्धिके अनुसार औषध-प्रयोग अवश्य ही करेगी; परन्तु देशको वे शान्त नहीं कर सके हैं, इस अकृतकार्यताको क्या वे नहीं स्वीकार करेंगे?

देश ठीक है, सिर्फ़ गान्धी और उन जैसे कुछ व्यक्ति ऊधम मचा रहे हैं, यह कहनेसे नहीं चलेगा। अगर यही बात होती, तो समाचारपत्र रोकनेका कड़ा हुक्म और बंगालमें बिना विचारके गिरफ्तारी और क़ैद करनेका हुक्म जारी न होता, पब्लिक सभाओंके अधिवेशन और जुलूस निकालनेकी बहुत जगह मनाही नहीं होती, अनगिनत स्थानोंमें पुलिसको लाठी और बन्दूक इस्तेमाल नहीं करनी पड़ती। हो सकता है कि भारतीय जो शान्त नहीं हुए, यह केवल उनकी मानसिक व्याधिका ही फल है, मगर फिर भी, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि विलायती राजनीतिक चिकित्सा-शास्त्रने इस व्याधिके आगे हार मानी है। इसलिए अब ब्रिटिश जातिको विचारकर देखना चाहिए कि एक सौ वर्ष पहलेका निदान और औषध अब प्रयोग करने लायक़ है या नहीं।

सन् १८२७ के २५ नम्बर रेगूलेशनके हेतुवादमें लिखा है:—

"Whereas reasons of State embracing the due maintenance of the alliances formed by the British Government with foreign Powers, the preservation of tranquillity in the territory of Indian Princes entitled to its protection and the security of the British Dominions from foreign hostility and internal commotoin, occasionally rendered it necessary to place under personal restraint individuals against whom there may not be sufficient ground to institute any judicial proceedings or when such proceedings may not be adapted to the nature of the case or may for some other reasons be unadvisable or improper..."

परराष्ट्रके साथ ब्रिटिश गवर्मेन्टकी मित्रता क़ायम रखनेके लिए, भारतीय देशी राज्योंमें शान्त भावोंकी रक्षाके लिए, अथवा भारतको विदेशी शत्रुतासे बचानेके लिए गांधीजीके

विरुद्ध उप-आईन (रेगुलेशन) का प्रयोग नहीं हुआ है, कहा जा सकता है कि 'इन्टरनल' यानी भीतरी 'कमोशन' से देशकी रक्षा करनेके लिए गांधीजीको क़ैद रखा गया है। इसलिए यहाँ हमें 'कमोशन'के मानी समझनेकी कोशिश करनी होगी। अंग्रेज़ी शब्दकोशमें इसके मानी agitation, tumult, riot, violence, insurrection इत्यादि लिखा है। साधारण आन्दोलन और जनसाधारणके चांचल्य इत्यादिको दमन करनेके लिए यह रेगुलेशन मौजूद था, ऐसा विश्वास करना हो, तो यह मान लेना पड़ता है कि हम लोग साधारण क़ानूनके राज्यमें नहीं बस रहे हैं। गांधीजीकी युद्धयात्रा गत मार्च महीनेमें प्रारम्भ हुई थी। उसके बाद जो कुछ लड़ाई दंगे हुए हैं, उससे कहीं ज्यादा और बहुत सांघातिक दंगे-हंगामे पहले भी हो चुके हैं, और हालके दंगे आदिके साथ तो गांधीजीका साक्षात् या परोक्ष किसी भी प्रकारका योग नहीं है। उस समय ऐसा रेगूलेशन काममें नहीं लाया गया। चटगाँवमें जो कुछ हुआ है, उसके साथ गांधीजीका किसी प्रकार योगकी कल्पना पागलके सिवा और कोई नहीं कर सकता, और चटगांवकी घटना मोपला-विद्रोहके समान विद्रोह भी नहीं है। मोपला-विद्रोहके लिए विद्रोहियोंको मुक़दमा होनेके बाद सज़ा दी गई थी—किसी रेगुलेशनके अनुसार नहीं। अतएव गांधीजीके लिए रेगूलेशनका ठीक प्रयोग नहीं होता।

कैसे आदमियोंके विरुद्ध इस रेगुलेशनका प्रयोग किया जाना चाहिए, इसपर भी विचार कर लें। जिनपर अदालतमें मुक़दमा चलानेके लिए काफ़ी प्रमाणादि नहीं हैं, ऐसे ही लोग इस रेगुलेशनके अनुसार क़ैद किये जा सकते हैं; परन्तु गांधीजी ऐसे आदमियोंमेंसे नहीं हैं। उन्होंने प्रकट रूपसे नमक क़ानून तोड़ा है, और जिस बातके लिए अन्य अनेक बच्चा और सम्पादक जेल भुगत रहे हैं, ऐसी बहुतसी बातें उन्होंने कही और लिखी हैं। प्रमाणोंकी भी कोई कमी नहीं रहती, कारण वे कुछ भी इनकार नहीं करते। हेतुवादमें इसके बाद जो कुछ लिखा गया है, उसके मानी ये होते हैं कि ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीके ज़मानेमें हिन्दुस्तानका शासकवर्ग जिसे पकड़ना चाहता था, उसीको बिना मुक़दमा चलाये क़ैद रख सकता था। *

परन्तु आज साधारणतः लोगोंमें ऐसा विश्वास पाया जाता है कि ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीके ज़मानेसे अब भारतीयोंका व्यक्तिगत अधिकार कहीं बढ़ गया है। यह सच है या झूठ ?

गांधीजीको रेगूलेशनके अनुसार क़ैद रखनेके कुछ सहज-बोध्य कारणोंका हम अनुमान कर सकते हैं। राजनैतिक अपराधमें अभियुक्त साधारण लोग और छोटे-छोटे नेताओंके विचारके समयमें भी बहुत जगह अदालतमें और उसके बाहर जनताका समारोह कोलाहल, और उपद्रव मार-पीट होते देखा गया है। गांधीजीपर मामला चलनेसे बहुत ज्यादा तादादमें यह हो सकता था। सरकारने कौशलसे अपनेको उस झंझटसे बचा लिया, मगर पहलेहीसे इसका अच्छा इन्तज़ाम हो जाय, तो कोलाहल आदि रोका जा सकता है। और महज़ इसलिए कि गवर्मेन्टको इन्तज़ाम करनेका कष्ट स्वीकार करना पड़ेगा, साधारण क़ानूनके अनुसार विचारकी रीतको तिलाञ्जलि देना उचित नहीं। गांधीजीको 'रेगुलेशन'के अनुसार क़ैद करनेका दूसरा कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि क़ानूनके अनुसार जिस किसी भी अभियोगमें उनका विचार होता, उसमें उन्हें अनिर्दिष्ट—थोड़े या लम्बे—समयके लिए ही क़ैद रखा जा सकता था; अनिर्दिष्ट समयके लिए जेलमें नहीं रखा जा सकता, लेकिन 'रेगुलेशन'के अनुसार सरकार उन्हें अपनी ख़ुशीके अनुसार जब तक चाहे, क़ैद रख सकती है। इस अनुमानके गुरुत्वको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

परन्तु गुरुतम कारण शायद राजपुरुषोंमें आत्म-विश्वासका अभाव है। प्रकट अदालतमें गांधीजीका मामला चलानेसे

---

* शब्द ये हैं :—

"...or when such (judicial) proceeding may not be adapted to the nature of the case or may for some other reason be unadvisable or improper."

महात्माजी भी सरकारके विरुद्ध स्पष्ट भाषामें अपना वक्तव्य कहनेसे बाज न आते, और उस हालतमें उनका कथन समस्त सभ्य-संसारमें सर्वत्र पहुँचता और श्रद्धाके साथ सुना जाता। महात्माजीके सत्य वाक्य रूपी अस्त्रका बार-बार सामना करनेका साहस शायद राजपुरुषोंको नहीं हुआ।

—

गांधीजीकी गिरफ्तारीमें सरकारकी कैफियत

बम्बई-सरकारने गांधीजीको क्यों गिरफ्तार किया, इसके कुछ कारण दिखाये हैं। यदि उन कारणोंके ढकोसलेको प्रमाणित किया जाय, तो उससे कोई लाभ नहीं होगा; क्योंकि हमारी युक्तिके अनुसार काम करनेके लिए सरकारको मजबूर करनेका कोई उपाय नहीं है। फिर भी बम्बई-सरकारकी कैफियत जान लेना अच्छा है। पहला कारण यह बताया गया है :—

"The campaign of civil disobedience, of which Mr. Gandhi has been the chief instigator and leader, has resulted in widespread defiances of law and order and in grave disturbances of the public peace in every part of India. Professedly non-violet, it has inevitably, like every similar movement in the past, led to acts of violence, which have as the days pass become more frequent. While Mr. Gandhi has continued the depl re these outbreaks of violence, his protests against the condust of his unruly followers have become weaker and weaker, and it is evident that he in no longer able to control them."

भारतकी वर्तमान अवस्थाका जो वर्णन और कारण-व्याख्या ऊपरके उद्धृत वाक्योंमें की गई है, उसमें थोड़ासा सत्य रहनेपर भी कुल-जमा वह यथार्थ और ठीक नहीं है। गांधीजीकी असामरिक क़ानून-लंघन-(सविनय क़ानून-भंग)-युद्ध यात्राके फल-स्वरूप एक क़ानून (नमक-क़ानून) को सभी प्रान्तोंके लोग 'डिफाई' अर्थात् भंग कर रहे हैं, यह बात सच है कि गांधीजीका उद्देश ही यही था कि लोग वैसा करें। परन्तु देशमें जितने तरहके उपद्रव, उच्छृङ्खलता और दंगे-हंगामे हो रहे हैं, साक्षात् या परोक्षभावसे गांधीजीका आन्दोलन उसके लिए जिम्मेदार है, यह सच नहीं है।

यह जानी हुई बात है कि भारतके सभी लोग राजनीति-क्षेत्रमें अहिंसामें विश्वास रखनेवाले नहीं हैं। बहुतोंका खयाल है कि बल-प्रयोगके बिना भारत स्वाधीन नहीं हो सकता। लाहौरमें कांग्रेसके गत अधिवेशनमें, बड़े लाटकी ट्रेनको बमसे उड़ा देनेकी चेष्टाकी निन्दाका जो प्रस्ताव पेश हुआ था, उसपर तर्क-वितर्क होते समय तथा अन्य तर्क-वितर्कके समय भी यह बात सबके समझमें आ गई थी कि कांग्रेसके सदस्योंमें भी बहुतसे ऐसे आदमी हैं, जो बाहुबल और अस्त्र-बलपर विश्वास रखते हैं, लेकिन उस प्रस्तावके बहुमतसे पास होनेसे अहिंसाके मार्गको ही कांग्रेसका अनुमोदित मार्ग समझना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक संस्थाका बहुमत जो हो, उसको संस्थाका मत समझना होगा, यही नियम है। अहिंसा उपायसे पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त करना कांग्रेसका उद्देश है—इसे सब कोई जानते हैं।

ऐसे लोगोंमें, जो कांग्रेसमें शामिल नहीं हैं, और कांग्रेसके सदस्योंमें भी, बाहुबल और अस्त्र बलपर विश्वास रखनेवाले आदमी हैं इसीलिए गांधीजीने असामरिक निरस्त्र क़ानूनभंग-आन्दोलन चलाया है। यह बात उनकी बड़े लाटको लिखी हुई पहली चिट्ठीमें है :—

"भले ही आज वह असंगठित और उपेक्षणीय हो, फिर भी, दिनों-दिन उसका बल बढ़ता जा रहा है, और वह प्रभावशाली बन रहा है। उस दलका और मेरा ध्येय तो एक ही है, पर मुझे यकीन है कि हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको जिस आजादीकी ज़रूरत है, वह इसके दिलाये नहीं मिल सकती। अलावा इसके, मेरा यह विश्वास दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है कि शुद्ध अहिंसाके सिवा और किसी भी तरीक़ेसे ब्रिटिश सरकारकी यह संगठित हिंसा रुकाई नहीं जा सकेगी।"'ब्रिटिश सल्तनतकी संगठित हिंसा-शक्ति और देशके हिंसक दलकी असंगठित हिंसा-शक्तिके मुक़ाबलेमें इस ज़बरदस्त अहिंसक शक्तिको खड़ा करनेका मेरा इरादा है।"

देशमें उपद्रव, मार पीट, और खून-खराबी ग़ैर-सरकारी और सरकारी दोनों तरहके लोगों द्वारा हो रही है। न तो सब ग़ैर-सरकारी लोग ही कर रहे हैं, और न सब सरकारी लोग ही। जो ग़ैर-सरकारी लोग ऐसा कर रहे हैं वे

गांधीजीके दलके नमक-क़ानून-भंग करनेवालोंमें से नहीं हैं। एक भी जगह उन्होंने भ्रतताथी होकर मार-पीट की हो, ऐसा समाचार कहीं नहीं पढ़ा; बल्कि ऐसी ख़बरें तो देनिक अख़बारोंमें रोज़मर्रा प्रकाशित हुई हैं कि उन्होंने बदला लेनेकी कोशिश न करके मार-पीटको ही सहन किया है।

जिन ग़ैर-सरकारी लोगोंने उपद्रव किया है, उनमें कुछ लोग शायद बहुबल और अस्त्र-बलपर विश्वास रखनेवालोंमें से होंगे, कुछ लूट-खसोटको अच्छा समझनेवाले गुंडा-श्रेणीके लोग होंगे, कुछ पुलिसके उत्तेजक गुप्तचरोंका होना भी असम्भव नहीं, कुछ कौतूहल दर्शक होंगे—इन्हीं सबोंने सरकारी आदमियोंके उपद्रवसे उत्तेजित होकर शान्ति भंग की होगी। इन समस्त श्रेणियोंके लोगोंके दुष्कार्यके लिए साक्षात् या परोक्ष भावसे गांधीजीको ज़िम्मेदार बनाना युक्ति-संगत और न्याय-संगत नहीं है। ये सब दुष्कार्य गांधीजीके आन्दोलनका फल हैं, ऐसा समझना भी भ्रम है। जब वे विख्यात नहीं हुए थे, भारतीय राजनीति-क्षेत्रमें जब उनका आविर्भाव भी नहीं हुआ था, उस समय, बीस या उससे भी अधिक वर्ष पहलेसे, इस प्रकारके तरह-तरहके उपद्रव होते आ रहे हैं! गांधीजीका आन्दोलन तब न रहनेपर भी यदि वे सब उपद्रव हो सकते थे, तो अब यह नहीं कहा जा सकता कि वैसे उपद्रवोंका कारण गांधी-आन्दोलन ही है। जो-जो घटनाएं एक ही समयमें होती हैं, अथवा जो जो घटनाएँ एकके बाद एक हुआ करती हैं, उनमें कार्य-कारणका सम्बन्ध होगा ही, ऐसा समझना भूल है। संस्कृतमें 'काकतालीय न्याय' नामक एक प्रवाद है। यह पाश्चात्य तर्कशास्त्रके "Post hoc ergo propter hoc" "इसके बाद हुआ, इसलिए इसके कारण हुआ"—इस भ्रान्त सिद्धान्तके समान है। एक कौआ ताड़ वृक्षपर बैठा, बैठते ही एक पका ताल टूटकर ज़मीनपर गिर पड़ा। इससे ऐसा सिद्धान्त कर लेना कि कौएका बैठना ही ताल गिरनेका कारण है, भूल है; क्योंकि कौआ न भी बैठता, तो भी पका ताल तो टूटकर ज़मीनपर गिरता ही।

हमारा ऐसा विश्वास है कि गांधी-आन्दोलन शुरू न भी होता, तो भी अनेक तरहके उपद्रव होते, सम्भव है कि और भी अधिकतासे होते। महात्माजीने अपना आन्दोलन शुरू किया है सरकारी और ग़ैर-सरकारी बल-प्रयोग-नीतिका प्रतिरोध करनेके लिए। वायसरायको लिखी हुई उनकी चिट्ठीमें ही है—"ब्रिटिश सल्तनतकी संगठित हिंसा-शक्ति और देशके हिंसक दलकी असंगठित हिंसा-शक्तिके मुक़ाबलेमें इस ज़बरदस्त अहिंसक शक्तिको खड़ा करनेका मेरा इरादा है।"

ग़ैर-सरकारी लोग बल प्रयोगकी नीतिके पक्षपाती हैं, सम्भवत: उनमेंसे बहुतसे गांधी-आन्दोलनका फल क्या होता है, उसे देखनेके लिए निष्क्रिय बैठे हैं, उनमेंसे सिर्फ़ कोई-कोई अपनी नीतिके अनुसार अभीसे ही अपना काम कर रहे हैं, परन्तु अनेक स्थानोंसे दैनिक पत्रोंमें आये दिन प्रकाशित समाचारोंसे मालूम होता है कि पुलिसवालोंने निरुपद्रव नमक-क़ानून भंग करनेवालों और दर्शकोंपर लाठी चलाई है। सरकारकी ओरसे इन सब समाचारोंका प्रतिवाद नहीं किया गया। सिर्फ़ एक बम्बईके पुलिस-कमिश्नरने अपने इलाक़ेमें ऐसी मारपीट करनेके विरुद्ध अपनी राय ज़ाहिर की थी—ऐसा किसी पत्रमें पढ़ा था। शासकोंमेंसे और किसी सरकारी आदमीने ऐसी राय ज़ाहिर की हो, या मार-पीट न करनेके लिए पुलिसवालोंको आज्ञा दी हो, ऐसा तो कहीं भी कुछ नहीं पढ़ा। हाँ, यह ठीक है कि पुलिसके सभी लोग ज़ालिम नहीं हैं, ऐसा कहनेका हमारा अभिप्राय भी नहीं है। जहाँ-जहाँ पुलिसवालोंने निरुपद्रव जनतापर लाठी चलाई है, वहाँ यह काम उन्होंने भारत-सरकार या प्रान्तीय सरकारके हुक्मसे किया हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। कारण, ऐसा हुक्म हमारे देखनेमें नहीं आया और न ऐसी किसी आज्ञाके अस्तित्वसे हम वाक़िफ़ ही हैं। हम तो केवल सिद्धान्तके तौरपर यह कह रहे हैं कि जगह-जगह नमक-क़ानून-भंग करनेवालोंपर पुलिसकी तरफ़से मार पड़ी है, ऐसे अनेक समाचार हमने दैनिक पत्रोंमें पढ़े हैं। निरुपद्रव या सविनय क़ानूनभंग करनेवालोंको गिरफ़्तार करनेका ही

पुलिसको अधिकार है, मारने-पीटनेका क़ानूनन अधिकार उसे नहीं है।

सरकारकी ओरसे कहा जा सकता है कि गांधी-आन्दोलनने ऐसा एक उत्तेजनामय वातावरण पैदा कर दिया है जो उपद्रव, उच्छृंखलता और दंगा-हंगामेके अनुकूल है। इस युक्तिके विषयमें हम दो बात कहना चाहते हैं। गांधीजीने जब अहिंसात्मक-असहयोग-आन्दोलन चलाया था, तब उसके फलस्वरूप राजनीतिक हत्याएँ और उस श्रेणीके अपराध बहुत घट गये थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। वर्तमान आन्दोलन भी अहिंसामूलक है। इसके द्वारा भी हिंस्र बल-प्रयोग-नीति कुछ रुकी है, यद्यपि वह पूर्णतया रुकी नहीं है। दूसरी बात यह है कि आज जो राजनैतिक वातावरण चल रहा है, उसपर धीरतासे विचार करनेसे सरकार खुद उसके लिए अपनी जिम्मेदारी समझ सकती है। बहुतसे सरकारी लोगोंके आचरणमें यदि लोगोंकी ऐसी धारणा हो जाय कि गवर्मेन्टकी रायमें बल-प्रयोग ही चरम और श्रेष्ठ उपाय है और इसलिए अगर कुछ अदूरदर्शी और असात्विक प्रकृतिके लोग उन सरकारी आदमियोंके दृष्टान्तका अनुसरण करें, तो क्या वह अत्यन्त आश्चर्यकी बात होगी? अनुनय-विनय, आवेदन-निवेदन, प्रतिवाद-अनुरोध, युक्ति-तर्क आदिकी व्यर्थता देखकर एक तरफ जैसे गांधीजी और उनके अनुयायी लोग अहिंसात्मक-आन्दोलन कर रहे हैं, वैसे ही दूसरी ओर अस्त्र-बलपर विश्वास रखनेवाले अपने विश्वासके अनुसार काम कर रहे हैं; यह क्या असम्भव बात है?

अगर गवर्मेन्ट शान्तिके मार्गको श्रेष्ठ मानती है, तो, हमारी समझसे, गांधीजीको सरकारका मित्र ही समझना चाहिए।

हम पहले ही कह चुके हैं और दिखा चुके हैं कि गांधीजीके अनुयायी 'अनरूली' या उच्छृंखल नहीं हैं, अतएव, वे अपने उच्छृंखल अनुयायियोंपर शासन नहीं कर रहे हैं, या करनेमें असमर्थ हैं, यह दोषारोपण न्याय-संगत नहीं है, परन्तु यदि वे (अनुयायी) वैसे होते, तो, एक ओर जैसे सरकारको उनपर दोष मढ़नेका अधिकार होता है, वैसे ही दूसरी ओर पुलिसवालोंमें जो उच्छृंखल और जुल्म करनेवाले हैं, उनपर भी शासन या नियन्त्रण रखनेका उसका कर्तव्य होता है। गांधीजीके अनुयायियोंके जिन सब सत्य या असत्य दोषोंके लिए सरकार गांधीजीको दोष दे रही है, वे सब दोष बहुतसे सरकारी आदमियोंके विरुद्ध रातदिन अखबारोंमें निकलते रहनेपर भी सरकारका प्रतिवाद या प्रतिकार कुछ भी न करना संगत आचरण नहीं है। भारत-सरकार या कोई प्रान्तीय सरकार यदि निरुपद्रव भाव और अवस्थाको अच्छा समझती है, तो स्पष्ट भाषामें सरकारी ज़ालिम लोगोंके व्यवहारपर तिरस्कार-पत्र निकालना, अथवा ऐसे जुल्मोंके विषयमें जाँच-कमेटी बैठाना, या कम-से-कम जुल्मके समाचारोंका प्रतिवाद करना भी सरकारका कर्तव्य है। ऐसा कुछ न करनेपर भी गांधीजीके अनुयायी जुल्मोंको सहते ही रहेंगे, और साथ ही उत्तेजना-परायण अन्य लोग भी ज़ालिम सरकारी लोगोंके दृष्टान्तका अनुसरण नहीं करेंगे, ऐसी आशा करना सरकारी लोगोंके लिए युक्ति-विरुद्ध है।

बम्बई-सरकारने गांधीजीके अनुयायियोंके दोषोंका ही उल्लेख किया है—मगर अहिंसा-भाव और सहिष्णुता भी तो उन लोगोंने दिखाई है, वे अगर सहिष्णु न होते तो खून-खराबी और भी ज्यादा होती—बम्बई-सरकारने इस बातको क्यों नहीं विचारा—क्यों नहीं स्वीकार किया?

—

महात्माजीको क़ैद करनेका परिणाम

साधारण मनुष्य जैसे अमर नहीं है, असाधारण मनुष्य भी उसी तरह मृत्युके अधीन हैं। वे साधारण लोगोंको उपदेश और उत्साह देने तथा उन्हें चलानेके लिए हमेशा जीवित नहीं रहते। उनकी मृत्युके बाद उनके जीवन-चरित्र विचार और कार्यके प्रभावको मनुष्य अनुभव करता है और

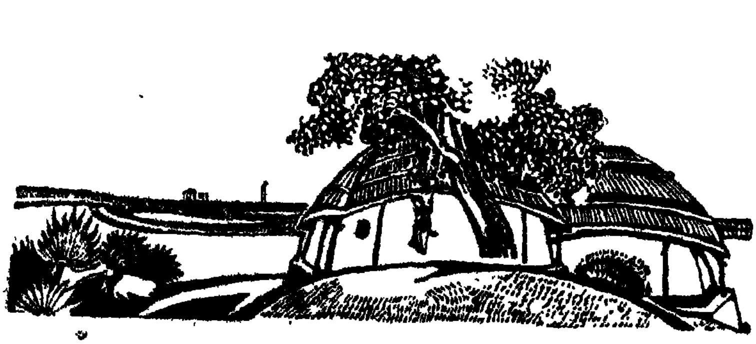
उसके अनुसार चलता है। असाधारण मनुष्योंमें जिन गुण और शक्तियोंका परिचय मिलता है, साधारण मनुष्योंमें भी वे मौजूद हैं ; हाँ, यह हो सकता है कि वह उतनी विकसित अवस्थामें न हों। महापुरुषोंके जीवनके प्रभावसे वे सब बातें विकसित हो सकती हैं।

अतीत कालके महापुरुषोंकी मृत्यु होनेपर भी उनकी शक्ति और प्रभावका लोप नहीं हुआ है। महापुरुषोंकी शक्ति और प्रभावको मृत्यु जब नष्ट नहीं कर सकती, तो यह निश्चित है कि कारावास भी उसका ह्रास या विनाश नहीं कर सकता। इसलिए, महात्मा गांधीके क़ैद हो जानेसे उनके जीवनके सुप्रभाव और सुफलसे भारत तथा और-और देश वञ्चित नहीं रहेंगे। उनके द्वारा चला हुआ आन्दोलन उनके व्यक्तिगत परिचालनसे वंचित तो होगा, लेकिन अन्य नेताओंमें भी बुद्धि और स्वतंत्र योग्यता है। अतएव भारतीयोंका स्वाधीनता-संग्राम कर्णधार-विहीन नहीं हो सकता। महात्माजीका मानव-प्रेम और अहिंसात्मक-भाव भी उनके अनुयायियोंमेंसे बहुतोंमें और बहुतायतसे मौजूद है।

महात्माजीको क़ैद करनेसे सरकारको क्या सुविधा या असुविधा होगी, यह हमारे सोचनेकी या कहनेकी बात नहीं है। परन्तु सरकारी आदमियोंने अगर सोचा हो कि महात्माजीको क़ैदकर लेनेसे ही आन्दोलन थम जायगा, और देशमें शान्ति और सन्तोषका आविर्भाव होगा, तो उसे हम उनका भ्रम ही समझेंगे।

महात्माजीको क़ैद हुई, इससे उनके चित्तमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं हुआ। हम भी दुःखित, चिन्तित, उत्तेजित या क्रुद्ध नहीं हुए। अगर होते, तो भी गवर्मेन्टके कार्यका प्रतिवाद न करते ; कारण प्रतिवाद करना निष्फल और असमर्थका छद्मवेशी क्रन्दन मात्र है।

गान्धीजीके गिरफ्तार होनेके पहले और बादमें सरकारी और ग़ैर-सरकारी लोगों द्वारा जो कुछ उपद्रव हुआ है, यह अत्यन्त क्षोभकी बात है। शासन और पुलिस विभागके सरकारी लोगोंपर गान्धीजीके उपदेश और चरित्रका प्रभाव कुछ है या नहीं, मालूम नहीं, लेकिन ग़ैर-सरकारी अनेक लोगोंपर है। यह प्रभाव मनुष्यको अहिंसा-परायण बनाता है। स्वदेशवासियोंके साथ स्वेच्छा और स्वतन्त्रतासे मिल जुलकर काम करने तथा उन्हें उत्साह और उपदेश देने, अनुप्राणित और तिरस्कृत करनेका मौका अब गांधीजीको न मिलनेकी वजहसे अगर वह प्रभाव मन्द पड़ गया और उसके परिणाम-स्वरूप पाशविक बलपर विश्वास रखनेवालोंकी पुष्टि और कमेटस' बढ़ी, तो यह बड़े दुःखका विषय होगा।



सत्याग्रह-संग्राम

परशुधर

दो हजार वर्ष पहलेकी बात है। यूनानी सम्राट् सिकन्दरकी चढ़ाईने देशमें उथल-पुथल मचा दी थी। सिकन्दर तो लूट-पाटकर लौट गया, परन्तु उसके उपनायक देशकी स्वतन्त्रताको मसलनेके लिए राहुकी भाँति पंजाब और अफगानिस्तानमें पैर फैला रहे थे। विदेशी प्रभाव दिनों दिन बढ़ रहा था। मगधका राजा नन्द भोग-विलास और दास-दासियोंसे हँसी-मज़ाक करनेमें व्यस्त था। देशके भयकर खतरेकी ओर ध्यान देनेकी उसे फुरसत ही न थी।

तक्षशिलाका एक साहसी ब्राह्मण जीविकाके लिए पाटलिपुत्र आया। नगरके समीप कुशोंके काँटोंने उसके पैरोंमें गड़कर उसकी यात्रामें व्याघात पहुँचाया। ब्राह्मणका क्रोध भड़क उठा। 'ये कमबख्त काँटे किसीके काम नहीं आते। न तो जानवर ही इन्हें खाते हैं, और न ये मनुष्योंके ही किसी उपयोगमें आते हैं। हाँ ये लोगोंके पैरोंमें छिदकर उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं और उनके मार्गमें रुकावट डालते हैं। इनका तो नाश होना ही चाहिए। इन्हें काट फेंकना आवश्यक है; परन्तु एक बार काट फेंकनेपर ये पुन: हरे होकर बढ़ जायँगे, अस्तु इन्हें जड़-मूलसे नष्ट करना—और ऐसा नष्ट करना, जिससे उनकी जड़ फिर कभी हरी न हो सके—जरूरी है।' दृढ़प्रतिज्ञ ब्राह्मणने उन कंटकोंको नष्ट करनेका प्रण किया। दोपहरकी कड़ी धूपमें पसीनेसे लथपथ होते हुए भी वह एक हाथसे कांटोंको उखाड़ता और दूसरे हाथसे उनकी जड़ोंमें मठा पिला, उन्हें सदाके लिए जलाकर भस्मीभूत करता था। इसी दृढ़निश्चयी ब्राह्मणने देशके सैकड़ों कंटकोंको समूल नष्ट करके देशका उद्धार किया था। उसकी कथाएँ भारतीय और यूनानी इतिहासोंके पृष्ठोंपर आज तक अंकित हैं। उसका नाम ब्रह्मगुप्त या चाणक्य था।

आज भी देशको अनेक कंटकोंका सामना करना है। ये कंटक देशके शरीरको ही नहीं, बल्कि उसकी अन्तरात्मा तकको विद्ध किये हुए हैं। उन्होंने उसके नैतिक बल, शारीरिक शक्ति और आर्थिक समृद्धिको जर्जरित कर दिया है। इन कंटकोंमें दरिद्रता, छुआछूतका रोग, मद्य-सेवन और राजनैतिक दासता आदि हैं। सौभाग्यसे आज देशमें एक ऐसा व्यक्ति मौजूद है, जिसकी आत्मा मौर्यकालीन ब्राह्मणकी आत्मासे अधिक बलवान, अधिक दृढ़, अधिक उग्र और अधिक पवित्र है और जो अपनी पवित्रताकी अग्निमें मानव-मात्रकी कालिमाको भस्म कर देनेको तुला है। मौर्य-युगका ब्राह्मण नीतिका महान आचार्य था, परन्तु आजका महापुरुष सत्यकी पारदर्शी मूर्ति है। चाणक्य सभी उपायोंको—साम, दाम, दंड, भेद—काममें लाता था। गांधीजी सत्य—केवल सत्यकी आँचसे बड़े-बड़े पत्थरोंको पिघलाकर पानी कर देते हैं।



बापू साइकिलपर!

आजकलके इस महान् व्यक्तिने देखा कि मद्यपानने इसकी भयंकर दरिद्रताको और.. भी विकराल बना दिया है। उसने सैकड़ों गृहस्थोंके शान्तिपूर्ण घरोंके स्वर्गीय माधुर्यको नष्ट करके उन्हें अविराम कलहका केन्द्र बना डाला है। उसने सैकड़ों भोलेभाले बच्चोंका भोजन, वधुओंके सौभाग्यके आभूषण, वृद्ध पिताकी जीवन-भरकी बचत और नवयुवकोंके हाड़तोड़ परिश्रमकी गाढ़ी कमाई पानीकी तरह बहा दी है। इस दुर्व्यसनने सबसे अधिक हानि हमारे अन्नदाता, मातृभूमिके प्राण, देशके दरिद्रनारायण किसानोंको पहुँचाई है। इस दुर्दशाको देखकर महापुरुषका हृदय उद्वेलित हो उठा। उसने इस ज़हरीले जलके खिलाफ़ जेहाद बोल दिया। देशका कोमल अंग—हमारी मातायें और बहनें इस कामके लिए अग्रसर हो गईं, परन्तु महापुरुषने देखा कि केवल मद्यकी दूकानोंपर धरना देने ही से काम नहीं चलेगा। यह तो ऐसी भयंकर वस्तु है, जो सदाके लिए



नवसारीका सेन्ट्रल कैम्प



सत्याग्रही कैम्पमें महात्माजी 'यंग इंडिया' लिख रहे हैं।

जड़मूलसे नष्ट कर देनी चाहिए। देशके अधिकांश मद्य-सेवी ताड़ी पिया करते हैं, इसलिए यदि ताड़के वृक्ष ही नष्ट कर दिये जायँ तो ताड़ी कहाँसे आयगी? न रहेगा बाँस, न बाजेगी बाँसुरी। बस, सेनापतिने ताड़के पेड़ काटनेकी आज्ञा दे दी।

गुजरातमें दनादन ताड़वृक्ष काटे जाने लगे। ग्राम-ग्राममें कुल्हाड़ा बजने लगा। फूलसे सुकुमार सत्याग्रही बालक ताड़की कठोर लकड़ीपर पिल पड़े। सुकोमल विट्ठल भी उनमें था। वह भी एक बड़े ताड़को काट रहा था। काटते-काटते, पेड़ प्रायः समूचा कट चुका था, केवल तनेका ज़रासा हिस्सा अब तक जड़से संलग्न था। एकाएक पेड़ टूटकर विट्ठलके ऊपर आ गिरा। बालक उस दैत्याकार वृक्षके नीचे दब गया। वह अस्पताल पहुँचाया गया। वहां उसकी एक टाँग काटनी पड़ी परन्तु दूसरे दिन उसका जीवन-दीप बुझ गया! एक और पवित्र एवं निष्पाप आत्मा मदिराकी वेदीपर बलिदान हो गई!

इस घटनासे सेनापतिका सात्विक क्रोध उमड़ पड़ा। उसने स्वयं ताड़ काटनेका निश्चय किया। जिस समय अहिंसाका यह पुजारी, शान्तिका यह अनन्य उपासक, संसारकी यह पवित्र आत्मा हाथमें परशु धारण करके ताड़ काटनेके

लिए चली थी, उस समय देवतागण भी आकाशसे झाँकने लगे होंगे। उस समय ताड़-वृक्षोंको भी अपने अस्तित्वपर



नवसारीके समीप फौजी शिविरमें कमैंडर-इन-चीफका क्वार्टर !

क्रोध हो उठा होगा। यदि डाक्टर जगदीशचन्द्र बोस उन वृक्षोंके भावोंका विश्लेषण करनेमें समर्थ होते, तो वे देखते कि वे वृक्ष लज्जा और हर्षसे शराबोर हैं—लज्जा अपनी दुष्कृतिपर, जिसने देशको इतनी अधिक हानि पहुँचाई है, और हर्ष इस बातपर कि वे संसारके सबसे पवित्र व्यक्तिकी कुल्हाड़ीसे काटे जायँगे ! सेनापतिकी कुल्हाड़ी देखकर बेचारे किसान लज्जासे ज़मीनमें गड़ गये। उनका पूज्य स्वयं पेड़ काटने जाय और वे चुपचाप बैठे रहें ? दलके दल लोग अपने-अपने ग्रामोंके ताड़कासुरोंका सहार करने लगे। केवल सूरत ज़िलेमें पचीस हज़ारसे ऊपर ताड़-वृक्ष धराशायी कर दिये गये।

लवण-चोर

धारसनामें सरकारका एक नमकका, गोला है जहाँ हज़ारों मन नमक तय्यार होता है। सरकारका कथन है कि वह गोला सरकारी नहीं है, वह व्यवसाइयोंकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। सरकारका कथन ठीक है, परन्तु उसी हद तक, जिस हद तक उस सासका कथन ठीक था, जिसने अपनी बहूसे कहा था—"बेटा, घर-द्वार, माल असबाब सब तुम्हारा है, मगर देहलीपर पैर मत रखना !" सेनापतिने इस नमकके गोलेपर अधिकार जमाना निश्चय किया। उन्होंने अपने इरादेकी घोषणा कर दी और श्रीमान वायसरायको इस बातकी सूचना भी दे दी। मालूम होने लगा कि द्वापरका माखन-चोर आज लवण-चोर बनकर उतरा है। द्वापरके माखन-चोरने बाल्यकालमें अनेक माखन-लीलाएँ की थीं, आधुनिक लवण-चोर अपनी इस वृद्धावस्थामें अनेकों लवण-लीलाएँ कर रहा है। माखन चोरकी माखन-लीलाएँ बहुधा बाल-सुलभ कौतुक-मात्र थीं, परन्तु लवण-चोरकी लवण-लीलाएँ देशके जीवन-मरणकी समस्याएँ हैं।

मुक्त बन्दी

संग्राम चल रहा था। काश्मीरसे कुमारी अन्तरीप तक और सिन्धसे सदिया तक मोर्चे लिए जा रहे थे। इतने ही में गुजरातके करादी नामक ग्राममें एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना घटी।

रातको बारह बजे थे। सेनापति 'यंग इंडिया'के लिए लेख लिखकर थोड़ी ही देर पहले सोया था। स्वयंसेवक भी थककर सोये हुए थे। इतनेमें एकाएक दो मोटर-लारियाँ छावनीके दरवाज़ेपर आकर रुकीं, और दो दर्जन सशस्त्र सिपाहियोंने आकर सेनापतिकी चारपाई घेर ली। चारपाई तक पहुँचनेमें सिपाहियोंने राहमें पड़े हुए स्वयंसेवकोंको उठा दिया। सिपाहियोंके साथ सूरतका ज़िला-मैजिस्ट्रेट और दो पुलिस-अफ़सर थे। तीनों अफ़सरोंके हाथोंमें पिस्तौलें थीं और सिपाहियोंके हाथोंमें बन्दूकें। अफ़सरने सेनापतिके मुखपर टार्च लाइटका प्रकाश फेंककर उन्हें जगा दिया। टार्चके प्रकाशमें पुलिस अफ़सरका चेहरा देखकर सेनापति हँस दिया। पुलिस-अफ़सर भी हँस दिया।

सेनापतिने पूछा—"क्या आप मुझे चाहते हैं।"

"हाँ।"

इतनेहीमें मैजिस्ट्रेटने पूछा—"क्या आप ही मोहनदास कर्मचन्द गांधी हैं ?"

"हाँ।"



सेनापतिके उत्तराधिकारी और जेल-यात्री श्री अब्बास तय्यबजी

"मैं सूरतका मैजिस्ट्रेट हूँ।"

"क्या आपके पास वारंट है?"

"हाँ।"

"क्या मैं अभी चलूँ?"

मैजिस्ट्रेट असमंजसमें पड़ गया, रुककर बोला—"न – नहीं।"

"तो मुझे ज़रा मंजन कर लेने दीजिए।"

महात्माने मंजन करना शुरू किया, साथ ही आवाज़ दी—"कान्ति बिस्तर बांधो। देखो, यह पत्र वायसरायको भेजना है। 'यंग इंडिया'का इतना काम पूरा करना है। बस।" फिर मैजिस्ट्रेटकी ओर देखकर—"क्या आप वारंट पढ़नेका कष्ट उठाएँगे।"

मैजिस्ट्रेटने चौंककर मुहर लगे हुए लिफाफेसे वारंट निकालकर पढ़ा, जिसमें लिखा था कि मोहनदास कर्मचन्द गान्धीके कार्योंको सरकार खतरनाक समझती है, इसलिए वह उन्हें सन् १८२७के रेगुलेशनकी २५ वीं धाराके अनुसार नज़रबन्द रखनेका हुक्म देती है।

महात्माजीने कहा—"तो नमक-कानून नहीं है?"

चारों ओर बन्दूकधारी घेरे खड़े थे। नाके-नाकेपर पुलिस थी, जो ग्रामवासियोंको छावनीके अन्दर आनेसे रोकती थी। पशु-बलके प्रतिनिधि अहिंसाके देवदूतको ले जानेके लिए उपस्थित थे। इस देवदूतके लिए सिपाहियोंके हृदयकी श्रद्धा उनकी जीविकाकी चिन्ता और फौजी अनुशासनका बाँध तोड़कर निकलनेकी चेष्टा कर रही थी। सिपाहीगण महात्माके दर्शनके लिए उनकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। अफसरने डपटकर हुक्म दिया—"Faces back" (मुँह फेर लो)। सिपाहियोंने पुनः मुंह घुमा लिए, परन्तु फिर भी वे आँख बचाकर कनखियोंसे देखते जाते थे। मंजन समाप्त हो गया। बन्दी

चलनेको प्रस्तुत हो गया। इतनेमें उसने मैजिस्ट्रेटसे पुनः कहा—"क्या मैं पाँच मिनटके लिए प्रार्थना कर सकता हूँ ?"



पुलिसमैन तय्यार हो रहे हैं

मैजिस्ट्रेट असमंजसमें पड़ गया, परन्तु उसे इतनी हिम्मत न हुई कि वह संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुषकी बात टाल देता। उसे 'हाँ' कहना पड़ा। गायनाचार्य पंडित खरेने इकतारा सम्हाला और अर्ध-रात्रिके निस्तब्ध अन्धकार तथा घातक बन्दूकोंके घेरेको चीरती हुई उनके गानेकी आवाज़ सुनाई देने लगी—

"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोक मां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच-काछ मन निश्चल राखे, धनि-धनि जननी तेनी रे।
समदृष्टिने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धनपर नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
राम नाम शुँ ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वण लोभीने कपट-रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नर सैंयो तेनुं दरशन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे।"

× × ×

रात्रिके उस सन्नाटेमें स्वर-लहरी गूँज रही थी। संसारकी सर्वश्रेष्ठ आत्मा निमीलित नेत्रोंसे परमात्माके ध्यानमें तन्मय खड़ी थी। पशुबलके अनुचर धुकधुकाते हृदयसे मजबूर होकर किसी प्रकार इस पवित्र आवाज़को सुन रहे थे। मालूम पड़ता था कि इकतारेके तारसे, सिपाहियोंकी बन्दूकोंकी नालोंसे, लोगोंके श्वाससे, निस्तब्ध अन्धकारसे और श्रोताओंकी हृतन्त्रीके तारोंसे रह-रहकर एक ही प्रतिध्वनि निकल रही थी—'जे पीर पराई जाणे रे।'

प्रार्थना समाप्त हुई। अफ़सरोंका संकट टला। राष्ट्रीय सैनिकोंने अपने सेनापतिसे सप्रेम विदा ली। बन्दी लारीमें बिठाया गया। काली रक्त-पिपासु बन्दूकोंके बीचमें अहिंसाकी ज्योति चल दी।

महात्माजी बहुत छिपाकर यरवादा-जेल पहुँचा दिये गये, और फिर वहाँसे पुरन्दर पहुँचाये गये—उस पुरन्दरमें जो मुग़ल-साम्राज्यके विनाशक वीरवर शिवाजीकी क्रीड़ा-स्थल था।

महात्माजीके शरीरको गिरफ्तार करके क्या सरकारने अक़्लमन्दी की ? इस प्रश्नका जवाब प्रोफेसर गिलबर्ट मरेके निम्न-लिखित वाक्यसे मिल जायगा :—

"Persons in power should be very careful how they deal with a man who cares nothing for sensual pleasure, nothing for riches, nothing for comfort or praise or promotion, but is simply determined to do what he believes to be right. He is a dangerous and uncomfortable enemy because his body, which you can always conquer, gives you so little purchase upon his soul."

—Prof. Gilbert Murray.

अर्थात्—"जो मनुष्य इन्द्रिय-सुखोंकी रत्ती-भर भी परवा नहीं करता, जो धन-सम्पत्तिकी तिलमात्र इच्छा नहीं रखता, जिसे प्रशंसा, बड़प्पन या शारीरिक सुखोंकी अणुमात्र चिन्ता नहीं है, बल्कि जो केवल उन बातोंको पूरा करनेके लिए दृढ़ता-पूर्वक तुला रहता है, जिन्हें वह न्याय-पूर्ण और उचित समझता है—ऐसे पुरुषके साथ व्यवहार करते हुए सत्ताधारी व्यक्तियोंको सावधान रहना चाहिए। ऐसा व्यक्ति बड़ा ही खतरनाक और कष्टप्रद शत्रु होता है, क्योंकि आप उसके शरीरपर भले ही विजय प्राप्त कर लें—जो आसानीसे की जा सकती है—पर आप उसकी आत्माका क्षुद्रांश भी नहीं खरीद सकते।"

देशके सैकड़ों विद्वान् और बुद्धिमान नेता तथा सहस्रों स्वयंसेवक जेलोंमें बन्द थे ही, देशका राष्ट्रपति क़ैदी था और अब राष्ट्रका हृदय-सम्राट् और सेनापति भी बन्दी बना दिया गया, परन्तु इससे क्या? श्रीयुत *शान्तिप्रिय द्विवेदीके* शब्दोंमें :—

मुक्त बन्दी

बन्धन, उसको क्या बन्धन?—तन-मन जिसका सकल समाज।
अरे, उसे तो बाँधे है बस इन झोंपड़ियोंकी ही लाज।
आज करोड़ोंके प्राणोंमें करता है जो निशिदिन राज,—
कौन उसे बाँधेगा? वह तो है सिरताजोंका सिरताज।
भुवन-भुवनमें एक उसीके तो सब दुहराते हैं गान—
किसे-किसे तू बाँधेगा ओ मदमाते पशुबल नादान!
चाह रहे हैं भारत-भूके कण-कण भी होना आज़ाद!
विटप-विटपमें यही प्रतिध्वनि, बाँधेगा कैसे सैय्याद!
बन्द रहे वह वृद्ध तपस्वी चाहे जेलोंमें ही आज—
किन्तु, पवनकी मुक्त साँसमें गूँजेगी उसकी आवाज।

डांडीमें सत्याग्रह-शिविर

[लेखक :— श्री मदनमोहन चतुर्वेदी]

डांडीकी यात्रा चिरस्मरणीय रहेगी। ज्यों-ज्यों हम लोग डांडीके निकट पहुँचते गये, त्यों-त्यों हमारे विचार, रहन-सहन इत्यादिमें भी परिवर्तन होने लगा। तीर्थराज प्रयागके निकट पहुँचनेपर धार्मिक यात्रियोंके मनमें श्रद्धा तथा उत्कण्ठाके जैसे भाव उत्पन्न होते हैं, वैसे ही भाव हम लोगोंके हृदयमें उठ रहे थे।

३० मार्च सन् १९३०को अर्थात् यात्राके उन्नीसवें दिन महगाँवसे यात्रा तथा यात्रियोंका रूप पलटने लगा। महापुरुषका तो कुछ कहना ही नहीं था। बाहरी चटक-मटक, गैसकी बत्तियोंका प्रकाश इत्यादि आँखोंसे लड़ने लगे। नमककी बातचीत ताक़पर रख दी गई। अब तो चर्चा यह होने लगी कि गाँववालोंका हमारे लिए इतना कष्ट तथा खर्च उठाना कहाँ तक ठीक है। जिस गाँवमें एक लालटेन नहीं निकले, उस गाँवके लोग हमारे लिए गैसकी बत्ती जलावें? जिस

गाँवमें शाक तक नहीं होता, उस गाँवके लोग बाहरसे हमारे लिए शाक-भाजी इत्यादिका इन्तजाम करें ? हमारे लिए



गांधीजी श्री अब्बास तैयबजीके साथ डांडीमें भोजन कर रहे हैं।

शर्मकी बात है। बस, सूचना दे दी गई कि अबसे गाँवकी सभा इत्यादिमें एक भी गैसकी बत्ती न हो। भोजनके लिए वे ही चीजें हों, जो गाँवमें उत्पन्न होती हों।

बीसवें दिन देलादमें यह सूचना दी गई कि मसालें प्रयोगमें लाई जायँ। बस, उसी शामसे रास्तेमें मसालें नज़र आने लगीं। चर्खेके बजाय तकलीपर कातना दिन-ब-दिन बढ़ने लगा। सब यात्री तकलीपर ही यज्ञ पूरा करने लगे। देशकी दरिद्रताके दर्शन दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होने लगे।

यह केवल यात्रा ही न थी, किन्तु इसके साथ एक भीष्म-प्रतिज्ञा भी थी। यात्रियोंने स्वराज्य-संन्यासकी प्रतिज्ञा ली थी। अर्थात् जब तक स्वराज्य न ले लेंगे, आश्रम या अपने-अपने घर वापस न लौटेंगे ! यात्राके दृश्य देखकर रामायणकी कथा याद आ जाती थी। यात्राके दृश्य देखकर तुलसीदासजीके वर्णन आँखोंके सामने मँडराने लगते थे। बजाय सरयूके साबरमती पार की, उसके बाद महानद, नर्मदा, तापती इत्यादि पार कीं। महानद पार करनेका दृश्य तो अद्भुत ही था। रातका समय था। चाँद निकल रहा था। नावें खूब तेज़ीके साथ चल रही थीं। सत्याग्रही भजन गा रहे थे। इससे भी अच्छा दृश्य क़रीब तीन मील



नमक क़ानून तोड़नेवाले--श्री कानू देसाई द्वारा अंकित चित्रसे

कीचड़में पैदल चलनेका था। सरदार झंडा लिये हुए आगे-आगे थे और पीछे-पीछे सेना। सैनिक आग्रह कर रहे हैं, "बापूजी, आप कहना मानें, पैदल न चलें। हम हाथोंपर उठाकर ले चलेंगे।" इसपर हरएकको मुसकराकर जवाब देते —"मैं तुमसे आगे चल रहा हूँ, कमज़ोर क्यों समझते हो ?" इसी प्रकार क़रीब दो मील चलनेके बाद मल्लाह आये, और उन्होंने हठ किया कि हम लोग आपको पैदल न चलने देंगे। आखिर वे लोग अपने हठमें सफल हुए और महात्माजीको हाथोंपर बैठाकर ले चले, लेकिन बापूजीको बेचारे मल्लाहोंपर रहम आया और पूछने लगे,--"कितनी दूर और जाना है ?"

उत्तर मिला—"बस, सामने।"

इसपर मैंने कहा—"बापूजी, क्या चन्द्रमा तक ?"



डांडीका दृश्य—श्री कानू देसाई द्वारा अंकित चित्रसे डांडीमें

"नहीं, उससे भी दूर सूर्यलोक तक, पर बेचारे मल्लाहोंको तो बख़्शो।"



स्वयंसेवक तय्यार हो रहे हैं
श्री कानू देसाई द्वारा अंकित चित्रसे

बापूजीको इस बातकी चिन्ता थी कि बेचारे मल्लाहोंको कष्ट न हो। नर्मदा पार करनेकी शोभा श्रीमती कस्तूर बाके आनेसे और भी बढ़ गई थी। नदीके दूसरे तटके समीप हम लोग नावसे उतर कर घुटने-घुटने पानीमें चलकर पार हो गये, पर नावोंके मालिकने—जो एक मुसलमान भाई था—पूज्य बापूजी और 'बा'को पैदल न चलने दिया और इन दोनोंको एक छोटीसी किश्तीमें बिठाकर किनारे-किनारे ले चला। हम लोगोंकी भीड़ किनारे-किनारे ज़मीनपर चलती थी और बापूजीकी किश्ती साथ-साथ पानीमें। नावके किनारे लगनेकी जगह ठीक न होनेके कारण प्रार्थना करीब दस मिनट बाद ७-५० मिनटपर हुई।



खादी पहने दो फ्रेंच पत्रकार जो यात्रामें साथ चले थे

ग्रामीणोंकी श्रद्धाका तो वर्णन करना असम्भव है। चारों ओरसे स्त्री, पुरुष, युवक और बच्चे बापूके दर्शनके लिए दौड़कर आते और भक्तिसे हाथ जोड़कर खड़े हो जाते थे। वे श्रद्धा और प्रेममें इतने तन्मय हो जाते थे कि हम लोगोंके आगे निकल जानेपर भी उन्हें हाथ अलग करनेका ध्यान ही नहीं आता था। आख़िर पचीसवें दिन क़रीब तीन फरलांग कीचमें चलकर ता० ५ अप्रेल '३०को सवेरे साढ़े सात बजे डांडी पहुँचे। सबने कीचके मोजे पहिन लिये थे। हमारा सरदार भी इनसे वंचित न रहा। कुछ सैनिकोंने आगे बढ़कर पैर धोये। जब सरदारसे प्रार्थना की गई कि पैर धोकर चप्पल पहन लीजिए, उन्होंने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"मलमलके समान मुलायम मिट्टीमें चप्पलका क्या काम ?"

ता० ५—४—३०

डांडीमें डेरा खजूरके पत्तोंसे छाये हुए छापरेमें पड़ा। यह छापरा करीब सौ वर्ग-फीट था। सामान रखनेकी देर थी कि सैनिकगण समुद्र देखनेको चल दिये।

डेरेसे समुद्र करीब एक फरलांगकी दूरीपर है। हम लोगोंको इतनी ही दूरमें कितने ही खड्डे मिले, जिनमें नमक जमा हुआ था। सैनिक परस्पर एक दूसरेसे हर्षके साथ ज़ोर-ज़ोरसे कहते थे—"कान्ति भाई, जुओ आ केटलो सरस मीठूं छे!" "रसिक भाई, जुओ, जुओ!" "पृथ्वीराज आ जुओ!" नमकमें कोई भी हाथ न लगा सकता था, क्योंकि सरदारका हुक्म ही ऐसा था। केवल दूसरे दिनके लिए सैनिकोंने अपने-अपने लिए नमक चुननेकी जगह चुन ली। जब और सैनिक इधर-उधर घूमते थे, मैं नमक बनानेके लिए जगह निश्चित कर रहा था और बर्तन इत्यादिका इन्तज़ाम कर रहा था क्योंकि नमक बनाने और बनवानेका काम मुझे ही सौंपा गया था। मैंने करीब दो घंटेमें सब ठीक-ठाक कर लिया। इस समय तक और सैनिक भी घूम-घामकर लौट आये थे। सैनिकोंके कपड़े रास्तेकी कीचसे लस गये थे। इसलिए सबने खूब कपड़े धोये और स्नान किया। भोजनका समय भी हो गया था। सबने भोजन किये। भोजनके बाद मैं तो बापूजीसे बातचीत करने चला गया और बाकी लोगोंने यज्ञ आरम्भ किया। सन्ध्याकी प्रार्थनाके समय संग्रामके प्रथम दिनका प्रोग्राम सुनाया गया। रात-भर हम लोगोंके पकड़े जानेकी गर्म खबरें आती रहीं। सबको पूर्ण विश्वास दिलाया जाता था कि बापूजी सुबह ६॥ बजे नमक-क़ानून भंग करनेके पहले ही पकड़ लिये जायँगे, पर हम लोग ऐसी खबरोंके आदी हो गये थे। पहले साबरमतीमें ही बहुत पक्की खबर थी कि बापूजी तथा सैनिकोंको यात्राके लिए रवाना ही नहीं होने दिया जायगा। आश्रम ही क़ैदखाना बना दिया जायगा। इसके बाद नादियाद, आनन्द, बोरसद, जम्बूसर, भरोंच इत्यादिमें भी इसी तरहकी खबरें ज़ोर पकड़ती रहीं। बोरसद और नादियादके भाषण तो सोनेके अक्षरोंमें लिखे जानेके योग्य हैं। सरदारके वे शब्द आज भी कानोंमें गूंज रहे हैं—"राजद्रोह मेरा धर्म है। जो मेरा धर्म है वह सरकारके प्रति गुनाह है।" ऐसे खुले भाषणोंपर भी सरकारकी हिम्मत हमारे सरदारपर हाथ उठानेकी न हुई। इस कारण ऐसी खबरोंका मूल्य हमारे सामने कुछ न रहा।

डांडीमें राष्ट्रीय सप्ताहका पहला दिन

ता० ६–४–३०

आजका प्रातःकाल चिरस्मरणीय था। प्रतिदिनकी भाँति आज भी ४-२० मिनटपर प्रार्थना हुई। प्रार्थनाके बाद महात्माजीका प्रवचन हुआ। उन्होंने समयकी गंभीरतासे वायुमंडल भर दिया, हरएकको अपने कर्तव्यका पूर्ण दर्शन करा दिया। असलमें राष्ट्रीय सप्ताहका पहला दिन आजसे शुरू हुआ। रात्रिके निश्चयानुसार सब सैनिक 'सत्याग्रही' के पीछे पीछे पौने ६ बजे समुद्र-स्नानके लिए रवाना हुए। ठीक ६ बजे लंगोट बांधकर, चश्मा उतारकर सीना आगे निकाले हुए, उत्साह और निश्चयसे परिपूर्ण सरदार समुद्रकी तरफ़ लपका। हरएक क़दम उसके अनुपम साहसका साक्षी था। समुद्रमें भी उतना ही जोश दीख रहा था। लहरें खूब उठ रही थीं। बूढ़ा सरदार आगे बढ़ता था, पर लहरें पीछे धकेलती थीं। वे घोर घोषणा करती थीं—"हमारे तटवर्ती पूज्य देशको बंधनसे मुक्त करनेके लिए अपना जन्म अर्पण करनेवाले बुड्ढे और सच्चे सरदार, तू हमारा आशीर्वाद ले। तेरी विजय अवश्य होगी।" इधर इन लहरोंकी घोषणा हृदयको हिम्मतसे भर रही थी, उधर हम लोग अपने सरदारको मलमलकर स्नान करा रहे थे और उसके वचनोंका मधुर पान कर रहे थे।

पन्द्रह मिनटके अन्दर स्नान समाप्त हुआ। सरदारने उस महान कार्यके लिए कदम उठाया, जिसके लिए पच्चीस दिनकी यात्रा की थी। ठीक ६॥ बजे थे। सबके हृदय एक अजीब आनन्दका अनुभव करने लगे। एक भी पुलिसका आदमी नज़र नहीं आता था, और न पानीके नलोंका—जिनसे कि हम लोगोंपर हमला करनेकी अफ़वाह थी—कहीं नामो-निशान था। इधर हर्ष और उत्साहमें मन गोते लगा रहा था, उधर झटसे बापूजी झुके और गड्ढेमेंसे नमक उठा लिया। बस, क़ानून भंग हो गया। इसके बाद हम लोग सब नमक चुनने लगे। पिछले दिनकी चुनी हुई जगहोंका तो किसीको ध्यान भी न रहा। करीब'''मन

नमक इकट्ठा किया गया। सरदार तो क़ानून भंग करके अपने निवास-स्थानपर चला गया और वहां महमानों तथा अख़बार-वालोंसे बातचीत करने लगा। हम लोग नमक इकट्ठा करनेमें डेढ़ घंटे मशगूल रहे। मेरा काम अब शुरू हुआ। समुद्रका जल मँगवाकर एक तरफ़ प्रयोग और दूसरी तरफ़ नमक बनानेकी क्रिया चालू करवाई। प्रयोग इत्यादि बारह बजे तक जारी रहा। बारह बजे सब लोग भोजन करने गये। उपवासके कारण भोजन केवल एक ही वक्त करना था। दोपहरमें चर्खा-यज्ञ किया। ४ बजे एक बड़ी सभा हुई। सरदारका यह व्याख्यान आज तकके भाषणोंका निचोड़ था। तकली चलाना, मदिरा तथा विदेशी वस्त्रका बहिष्कार, नमक-क़ानूनका भंग करना इत्यादि सभी विषयोंकी चर्चा इस व्याख्यानमें की गई। सभा समाप्त होनेपर हम लोग नमक बेचने लगे। सबको एक-एक चम्मच नमक दिया। जिसकी मर्जीमें जो आया, उसने उतना दिया। इस प्रकार १०॥।≈) मिले। साढ़े सात बजे सन्ध्याकी प्रार्थनाके बाद आराम किया।

दूसरा दिन

७–४–३०

प्रार्थना और नाश्तेके बाद फिर नमक उठाने, समुद्रका पानी लाने इत्यादिका काम शुरू हो गया। मैं प्रयोग करनेमें लग गया। दोपहर तक यही काम जारी रहा। बापूजीको ख़बर लगी कि आटमें सत्याग्रहियोंपर अत्याचार हो रहा है। सुनते ही वे श्रीमती सरोजनी देवी और अब्बास तय्यबजीको साथ लेकर आट गये। मौनव्रतके कारण बापू बोले तो नहीं, पर लिखकर आशा दिलाई कि कल हम आवेंगे। तत्पश्चात् तय्यबजी तथा श्रीमती सरोजनी देवीके व्याख्यान हुए।

यह करते समय सेठ जमनालाल बजाजकी गिरफ्तारीका तार आया। बाहरके लोगोंकी गिरफ्तारीके तारोंकी रोज़ भरमार रहती थी। तार देखकर हँसी आती थी कि देखो, सरकारकी कमज़ोरी कि हमारे ऊपर हाथ उठानेकी हिम्मत ही नहीं पड़ती। सोमवार होनेके कारण हमारे सरदारका तो मौन दिवस था, पर श्रीमती सरोजिनी नायडू और अब्बास तय्यबजीके भाषण सभामें हुए। दोनोंने बापूजीसे सहयोग और पूर्ण सहानुभूति दिखाई, और स्वराज्य मिलनेकी पूरी आशा दिलाई।

तीसरा दिन

८–४–३०

प्रार्थना, कलेवा इत्यादि करनेके पश्चात् रोज़का काम शुरू हुआ। एक टोली नमक बीनने गई, दूसरी टोली नमक साफ़ करनेमें लग गई और तीसरी टोली नमक बाँटनेके लिए गांवोंको रवाना हुई। चार बजे एक सभा हुई। पूज्य बापूजीने नमकका महत्त्व समझाया और गाँववालोंसे निडर होकर इस्तेमालके लिए नमक लानेको कहा। सबसे सैनिक बननेकी अपील की। शामको मैंने श्रीमती सरोजनी देवी और अब्बास तय्यबजीको साफ़ किया हुआ नमक दिखलाया। नमक देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए।

आज दिन-भर तारोंकी भरमार रही। कभी किसी भाईकी गिरफ्तारीकी ख़बर आती थी, कभी किसी भाईको ६ महीनेकी सख़्त सज़ा की। इन ख़बरोंको सुनकर सरदार टूटे दाँतोंके बीचमें हंस देता था। यह हंसी गम्भीर एवं अर्थप्रद थी। इस मीठी मुसकराहटके बाद एकदम विचार होने लगते थे कि अब किसकी बारी है। कौन सरदारी लेगा, इसलिए नहीं कि सैनिक कम थे, पर इसलिये कि उनकी बहुतायत थी। एक जेल जाता था, अनेक उसकी जगह खड़े हो जाते थे। ऐसे वायु-मण्डलमें अनोखा आनन्द था।

चौथा दिन

९–४–३०

बाकी काम तो बदस्तूर चला, केवल एक बात दुःखप्रद हुई। सुबह हम लोग एक नमकका खेत देख आये थे। वहां खूब मोटा और साफ़ नमक जमा हुआ था। क़रीब पचास-साठ मन बना-बनाया नमक मिलनेकी उम्मेद थी।

दो बजे सब लोगोंने उस नमकके खेतके लिए प्रस्थान किया। बड़ी कड़ी धूप थी। चील अंडे छोड़ती थीं।

खेत करीब तीन मीलकी दूरीपर था। नमक लानेकी उमंगमें धूपका खयाल भी न होता था। खुले मैदानमें सफेद वस्त्र पहने सैनिकोंके बिखरे हुए झुंड चले आ रहे थे, दाएँ, बाएँ, सामने और पीछे जल-ही-जल दिखाई देता था। दाएँ तो समुद्र था, पर बाकी तीन दिशाओंमें जलका दिखाई देना आश्चर्यजनक था। एक क्षण सोचा और बात मेरी समझमें आ गई। यह मृग-जल था। मृग-जल देखनेका मेरे लिए यह प्रथम अवसर था। करीब एक घंटेमें उस स्थलपर पहुँचे, खेत पहचानमें न आता था। कुछ शंका होने लगी। सुबह तो सफ़ेद ज़मीन देखी थी, अब उस जगह गीली मिट्टी पड़ी हुई थी! एक सैनिकने ज़मीनसे मिट्टी उठाई। नीचे नमक दिखाई देने लगा। ओह हो! सरकारके किरायेके टट्टुओंका यह काम था। गौरसे चारों तरफ देखनेपर मोटरके पहियोंके निशान भी नज़र आये। सरकारी आदमियोंने हमारे ऊपर क्रोध करके बेचारी प्रकृतिकी मेहनतको मिट्टीमें मिलाकर अपना क्रोध उतारा था! ठीक कहा है—

"कछु बसाय नहिं सबलसों, करै निबलसों जोर।"

"यदि तुम्हें अपना कर्त्तव्य निभाना था तो हम लोगोंको नमक उठानेसे रोकते, बजाय इसके कि प्रकृतिके परिश्रमको नष्ट करते। यदि तुम्हारी नज़रमें गुनहगार हैं, तो हम हैं। हमें नष्ट करो। जैसे मनुष्य तथा पशु-जीवनको क़ायम रखनेके लिए कुदरतने हवा और पानी दिया है, उसी प्रकार नमक भी है। ऐसी नियामतको, जिसे क़ुदरतने एक कंगाल देशके जीवन-आधारके लिए उत्पन्न की है, देश ही के पैसेसे नष्ट करना असभ्यता ही नहीं, बेक़ानियत भी है। प्रकृति अथवा नमक बेचारेने क्या पाप किया है?" इत्यादि विचार मनमें उठ रहे थे। चित्तको बड़ा दुःख हुआ, पर नमक तो हमें लाना ही था। थोड़ी देर इधर-उधर घूमे और दूसरा खेत मिल गया। वहाँसे नमक उठा लाये। ऐसा मालूम होता है, सरकारके जासूस हमेशा हमारे पीछे रहते हैं। जहाँ हम जाते हैं, उसका वे ध्यान रखते हैं। दूसरे दिन इस खेतका भी वही हाल हुआ। चूँकि दिन-भर इस प्रकार घूमते-फिरते बीतता था, इसलिए चरखा-यज्ञ करनेमें बड़ी मुश्किल पड़ी थी। दूसरे दिनका पता न था कि कैसे बीतेगा। इस कारण मैंने सोचा कि दूसरे दिनका यज्ञ रातमें ही कर लूँ, तो अच्छा होगा, अतएव मैं छप्परके बाहर बैठकर कातने लगा। कातनेमें बहुत आनन्द आ रहा था। कातते-कातते ग्यारह बज गये। सुबह चार बजे उठना था, इसलिए सोनेके लिए लेट गया। निद्रादेवीका आवाहन कर ही रहा था कि मोटरके आनेकी आवाज़ आई, लेकिन सुनी अनसुनी कर दी। दो-तीन मिनट बाद, आवाज़ आई—"कोई जागो छे?" (कोई जागता है?)

मैं झट उठा और पूछा—"केम, कौन छे?"

उत्तर मिला—"कलियानजी भाई।"

मैंने कहा—"कहिये, क्या खबर है?"

उत्तर मिला—"भाई, खबर क्या है, सब लोगोंको जगा दो। बापूजी आज पकड़े जानेवाले हैं। नौसारी स्टेशनपर सब तैयारियाँ हैं। कमिश्नर, कलक्टर, पुलिस इत्यादि सब तैयार हैं। दो बजे पकड़ने आवेंगे।"

इधर मैं सैनिकोंको उठाने लगा, उधर वे बापूजीके पास चले गये। पहले तो किसी सैनिकको विश्वास नहीं हुआ। पर जब मैंने सब हाल बताया, तो सब लोग बापूजीके डेरेको चल दिये। वहाँ जाकर सब शान्ति-पूर्वक बैठ गये, और बापूजीके सन्देशका इन्तज़ार करने लगे। कलियानजी भाईने बापूजीको उठाया और खबर सुनाई। उन्होंने विश्वास नहीं किया, फिर भी मिठूबेन पेटिट इत्यादिके आग्रहसे वे छोटे-छोटे सन्देश तथा पत्र लिखने लगे। करीब अढ़ाई बजे रात तक यह काम जारी रहा। उसके बाद बापूजीको नींद आने लगी। कारण कि दोपहरमें भीमरा जानेसे थकावट बहुत थी, 'Blood pressure' की भी शिकायत थी। सब लोग सो गये।

सुबह चार बजे उठे। इस तरह पाँचवाँ दिन शुरू हो

गया। प्रार्थना हुई। पूज्य बापूजीने सबको सावधान कर दिया और कहा—"समयके लिए तैयार रहना। परीक्षामें सफल होना...इत्यादि।" प्रार्थनाके बाद मैंने मिठूबेनसे बातचीत की। उससे मालूम हुआ कि केवल सरदार ही नहीं, बल्कि सब सैनिक पकड़े जानेवाले हैं।

यह सुनकर मैंने एक पत्र और एक तार अपने मित्र चतुर्भुजनारायण अग्रवाल-(मैनपुरी)के लिए लिखकर दे दिया। उनसे मैंने कहा कि यदि हम लोग पकड़े जायँ तो यह तार भेज दीजियेगा, परन्तु वह अवसर आया ही नहीं।

रातकी नींद आँखोंमें भरी थी, इस कारण नमक बेचने तो नहीं गये, पर उठाने ज़रूर गये। कलवाला नमक बरबाद कर दिया गया था, इसलिए तीसरी जगह ढूँढ़कर नमक लाये, और फिर दोपहरमें आराम किया। शामको महाराष्ट्रसे सैनिकोंकी माँगका तार आया। महाराष्ट्री सैनिक सब जमा हुए और उन्होंने बापूजीसे कहा—"जहाँ आप भेजेंगे, हम जानेको तैयार हैं। हमारी अपनी इच्छा कुछ नहीं है, आपकी आज्ञा ही हमारी इच्छा है।" पर बापूजीका कहना था—"यदि तुम जाना चाहो, तो मैं खुशीसे आशीर्वाद देकर भेजनेको तैयार हूँ।" ऐसी दशामें कुछ निर्णय हो ही नहीं सकता था। आज देवीदासकी गिरफ्तारीका भी तार मिला।

छठा दिन

११–४–३०

आज दिन-भर रोजके प्रोग्राममें निकल गया। सिवा कुछ तारोंके कोई नई बात नहीं हुई। तार तो बराबर आते ही जाते थे। आज क़रीब बीस मन नमक बनाया और बेचा गया।

इसी प्रकार सातवाँ दिन आया। बापूजी सुबहकी प्रार्थनामें न थे। इधर-उधर गाँवोंका दौरा जारी था। आसपासके गाँवोंमें नमक काफ़ी बँट चुका था, इसलिए नमक बनाना कम किया और सैनिकोंकी शक्ति दूसरी ओर लगाई गई, ५० सैनिकोंकी टोली ग्रामोंको गई। वहाँ ७५ ताड़के पेड़ काटे गये। इसप्रकार मदिरा-बहिष्कारके कार्यमें मदद की। दिन-भर इन्हीं गाँवोंमें बिताये। क़रीब पाँच बजे सब वापस लौट आये।

जब वापस आये तो देखा कि श्रीमती जानकी बहन बजाज और कमला बाई इत्यादि आई हुई हैं। उनसे सेठजीका समाचार पूछा। मालूम हुआ कि सेठजीको सख्त सजा होनेके कारण न तो चरखा, तकली इत्यादि ही लेने दिया है, और न धार्मिक पुस्तकें। गीता, कुरान, बाइबिल इत्यादि सब भेजी गई थीं, पर जेलरने वापिस करवा दीं! फिलहाल काम सुतली लपेटनेका दिया गया है।

कल राष्ट्रीय सप्ताहका अन्तिम दिवस होगा, इसलिए खुराकमें भी कुछ फेर-फार करनेका था। राष्ट्रीय सप्ताहमें चना और मुरमुरा खानेका निश्चय किया था। बापूजीने मुझसे पूछा—"चने और मुरमुरेसे तुम्हें कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई?" मुझे तो कोई तकलीफ़ हुई नहीं थी, इसलिए वैसा ही मैंने उत्तर दे दिया। उन्होंने कहा—"जिनको ये अनुकूल पड़ गये हैं, वे इन्हें जारी रख सकते हैं। इनपर प्रयोग जारी रखना अच्छा है।"

आठवाँ दिन

१३–४–३०

यह राष्ट्रीय सप्ताहका आखिरी दिन था। जिस प्रकार उपवासके साथ सप्ताह शुरू किया था, उसी प्रकार उपवासके साथ इसका अन्तिम दिन मनाया गया। सुबहमें थोड़ा नमक बना। बादमें कातनेका काम शुरू किया। एक चरखा तो चौबीस घंटे चला और तीन बारह घंटे। बाक़ी सैनिक भी तकली या चरखेपर यज्ञ करते रहे। तीसरे पहर साढ़े तीन बजे छावनीमें स्त्रियोंकी सभा हुई। बापूजी बहनोंको मदिरा तथा विदेशी वस्त्र-बहिष्कारका काम सौंपा, और इसी भाँति प्रस्ताव पास हुए।

शामको हम लोगोंकी सभा हुई, उसमें भोजन-परिवर्तन पर विचार हुआ कि कलसे केवल एक फेर-फार करना चाहिए। सिर्फ़ दोपहरको चने और मुरमुरेके बजाय खिचड़ी या दाल-चावल कर लिये जायँ, बाकी शामको चने-मुरमुरे ही ठीक हैं। इसके अलावा जो लोग तीनों दफे चना-मुरमुरा खाना चाहें, वे उन्हें जारी रख सकते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय सप्ताह समाप्त हुआ।

× × ×

डांडीमें रहना १६ ता० तक हुआ, बाकी दिन नमक बनाते और चरखा कातते रहे। कुछ सैनिक इधर-उधर भेजे गये। कल जवाहरलालजीके पकड़े जानेकी खबर आई। कल १६ को स्त्रियोंकी सभा होनेवाली है। कल शामको ही हमारे डेरे भी यहांसे उठ जानेवाले हैं। कल हम लोग कराडीके लिए रवाना होंगे।

साकेत

वैतालीय वृत्त

[लेखक :—श्री मैथिलीशरण गुप्त]

(गताङ्कसे आगे)

चिर काल रसाल ही रहा
जिस भावज्ञ कवीन्द्रका कहा
जय हो उस कालिदासकी—
कविता-केलि-कला-विलासकी !

निशि है ; उस पार कोक है,
हत कोकी इस पार, शोक है।
शत सागर वीचियाँ वहाँ
मिलते हा—रव बीचमें जहाँ !

लहरें उठतीं, लपेटतीं,
धर नीचे कितना थपेड़तीं ;
पर ऊपर एक चालसे,
स्थिर नक्षत्र अदृष्ट-जालसे !

तममें क्षिति-लोक लुप्त यों
अलि नीलोत्पलमें प्रसुप्त ज्यों ;
हिम-बिन्दु-मयी, गली ढली,
उसके ऊपर है नभ:

निज स्वप्न-निमग्न भोग है,
रखता शान्त सुषुप्ति योग है।
थक तन्द्रित राग-रोग है,
अब जो जाग्रत है वियोग है !

जलसे तट है सटा पड़ा,
तटके ऊपर अट्ट है खड़ा।
खिड़की पर उर्मिला खड़ी,
मुँह खोटा, अँखियाँ बड़ी-बड़ी !

कृश देह, विभा भरी-भरी,
धृति सूखी, स्मृति ही हरी-हरी।
उड़तीं अलकें अटालिनी
अपनेको प्रिय-पाद-मार्जिनी !

सजनी चुप पार्श्वमें हुई,
अथवा देह स्वयं द्विधा हुई !
तब बोल उठी वियोगिनी,
जिसके सम्मुख तुच्छ योगिनी।

"तम फूट पड़ा, नहीं अटा,
यह ब्रह्माण्ड फटा फटा फटा !
किस कानन-कोणमें, इला,
निज आलोक समाधि निश्चला।

सखि, देख दिगन्त है खुला,
तम है किन्तु प्रकाशसे धुला !
यह तारक जो रचे बचे,
निशिमें वासर-बीज-से बचे !

निज वासर क्या न आयँगे ?
दृग क्या देख उन्हें न पायँगे ?
जब लौं प्रिय लौट आयँगे
यह तारे मुँद तो न जायँगे ?

अलि, मैं बलि ; ठीक बात है—
"कल होगा दिन आज रात है।"
उडु-बीज न हृष्टियाँ चुगें
सविता और शशी उगें उगें।

तब ऊपर दृष्टि क्यों करूँ,
यह नीचे सरयू, इसे भरूँ।
इसका जल कर्णमें भरूँ,
जल क्या है, बस डूब ही मरूँ !

अटको मत, बात थी भरी,
भरती हूँ कब मैं मरी मरी।
मुझको वह डूबना कहाँ?
बस यों ही यह ऊबना यहाँ!

शिशु ज्यों विधि है खिला रहा,
ध्रुव विश्वास सुधा पिला रहा।
वह लोभ मुझे हिला रहा,
प्रियका ध्यान यहाँ जिला रहा।

विकराल अराल काल है,
करमें जाल लिये विशाल है।
पर दाहक ग्राह है यहाँ,
करती चर्वण चाह है यहाँ।

भयमें मत आप पैठ जा,
सखि बैठें हम, नंक बैठ जा।
यह गन्ध नहीं बिखरता,
वन—सोता वन—पार्श्व फेरता।

सुनसान सभी सपाट हैं,
अब सूने सब घाट-बाट हैं।
जड़-चेतन एक हो रहे,
हम जागें, सब ओर सो रहे!

निधि निर्जनमें निहारती,
अपने ऊपर रत्न वारती,
कितनी सुविशाल सृष्टि है,
जितनी हा लघु लोक दृष्टि है!

तम भूतल व्याप्त है बना,
नभ है भूमि-वितान-सा तना।
वह पावक सुप्त राखमें,
अब तो हैं जल-वायु साखमें।

सरयू अब शान्ति पा रही,
अब भी सागर ओर आ रही।
सखि री, अभिसार है यही,
जनका जीवन-हार है यही।

सरयू, रघुराज वंश की,
रविके उज्ज्वल उच्च अंशकी,
सुन, तू चिर काल संगिनी,
अयि साकेत-निकेत-अंगिनी!

इस सत्कुलकी परम्परा,
जिससे धन्य ससागरा धरा,
जिसका सुर-लोक भी ऋणी
उसकी तू ध्रुव सत्य-साक्षिणी।

किसका वह तीर है भला,
जिससे मानव-धर्म है चला?
पहले वह है यहीं पला,
सरयू, तू मनु-कीर्ति-मंगला!

रथ-वाहन इन्द्र, आप था,
कितना तेज तथा प्रताप था!
यश गाकर दव नारियाँ
कहती हैं—बलि और वारियाँ!

किसने निज पुत्र भी तजा,
किसने यों कृतकृत्य की प्रजा!
किसने शत यज्ञ हैं किये—
पदवी वासवकी बिना लिये!

सुन, हैं कहते कृती कवि—
मिलती सागरको न जान्हवी,
करते सरयू-सखा नहीं
निज भागीरथ यत्न जो कहीं।

किसने मख विश्वजित् किया?
रख मृत्पात्र सभी लुटा दिया,—
न-न, बेच दिया स्वगात्र ही,
रख दानव्रत-मान मात्र ही!

जिसका गत यों महान है,
सबके सम्मुख वर्तमान है,
कलसे यह आज चौगुना,
उसका हो सुभविष्य सौगुना।

जिनका वशमें भविष्य है,
श्रुति-द्रष्टा ऋषि-वृन्द शिष्य है,
जनकाख्य उन्हीं विदेहकी,
दुहिता मैं, प्रिय सर्व गेहकी।
वह मैं इस वंशकी बधू,
यह सम्बन्ध अहा अहा मधु!
पद देकर जो मुझे मिला,
सुकृती थे विधि और ऊर्मिला।
पर हा! सुन सृष्टि मौन है,
मुझ-सा दुर्विध आज कौन है?
सरयू, वह दुःख क्या कहूँ,
अपनी ही करनी, न क्यों सहूँ?
कहलाकर दिव्य सम्पदा,
हम चारों सुखसे पलीं सदा।
मुझको अति प्यारसे पिता
कहते थे निज साम संहिता।
कुछ चंचल मैं सदा रही,
फिरती थी तुझ-सी यहीं-वहीं।
इस कारण उर्मिला हुई,
गतिमें मैं अति दुर्मिला हुई।
नचती श्रुतकीर्ति ताण्डवी,
नदि, देती करताल माण्डवी।
भरती स्वर ऊर्मिला सजा,
गढ़ती गीत गभीर अग्रजा।
सरयू, बिसरा विवेक है,
फिर भी तू सुन एक टेक है,—

गीत

मुझसे समभाग छाँट ले,
पुतली, जी उठ जीव बाँट ले!
अपना कह आप मोल तू,
स्वपदोंसे उठ, खेल, डोल तू,
कुछ तो कह नेक बोल तू,
यह निर्जीव समाधि खोल तू।
पुचकार मुझे कि डाँट ले,
पुतली, जी उठ, जीव बाँट ले!
सुन-देख, स्वकर्ण-वृष्टि है;
कितनी कूजित-कान्त सृष्टि है।
मुझमें यह हार्द हृष्टि है,
सुखकी आंगनमें सुवृष्टि है।
अपना रस आप आँट ले,
पुतली, जी उठ, जीव बाँट ले!
फिरती सब घूम चौकमें,
गिरती थीं हम झूम चौकमें,
मचती वह धूम चौकमें,
नचती मां तक चूम चौकमें!
दिखला कर दृश्य हाथसे,
कहती वे निज मग्न नाथसे—
"यह लो, अब तो बनी भली
घरकी ही यह नाट्य-मण्डली!"
कर छोड़, शरीर तोलके,
हम लेतीं मिचकी किलोलके
कहतीं तब त्रस्त धात्रियाँ—
"गुणको छोड़ बनो न पात्रियाँ!"
तटिनी हम क्या कहें भला
निज विद्या, कर-कण्ठकी कला?
वह बोध पयोधि मूर्ति है,
फिर भी क्या घट-तृप्ति-पूर्ति है?
मिथिलापुर धन्य धामकी
सरिता है कमला सुनामकी।
वह भी बस स्वानुकूल थी,
रखती प्लावित मोद-मूल थी।
तुझमें बहु वारि-चक्र हैं,
कितने कच्छप और नक्र हैं।

वह तो चिर काल बालिका,
लघु मीना, लघु वीचि-मालिका।
बहु मीन समीप डोलते,
हमको घेर मराल बोलते।
सब प्रत्ययके अधीन हैं
खग हैं या मृग हैं कि मीन हैं।
वह सैकत शिल्प-युक्तियाँ,
वह मुक्ताधिक शंख-शुक्तियाँ,
सब छूट गईं वहीं वहीं;
सखियाँ भी ससुराल जा रहीं!
कमला-तट वाटिका बड़ी,
जिसमें हैं सर कूप बावड़ी।
मणि-मन्दिरमें महासती,
गिरिजा हैमवती विराजती।
विहगावलि नित्य कूजती,
जननी पावन मूर्ति पूजती।
मिलता सबको प्रसाद था,
वह था जो सुख और स्वाद था।
यह यौवन आप भोग है,
सुखका शैशव-संग योग है।
वह शैशव हा गया गया,
अब तो यौवन-भोग है नया!
तितली उड़ नित्य नाचती,
सुमनोंके सब वर्ण जाँचती।
जड़ पुष्प उसे निहारते,
निज सर्वस्व सदैव वारते।
यदि, तू खिलती हुई कली,
उड़ जाता अब है कहीं अली,
उड़ आ सकती स्वयं नहीं,
सुखका तो फिर पार था कहीं?

अब भी वह वाटिका वहीं,
पर बैठी यह ऊर्मिला यहाँ।
करुणाकृति माँ बिसूरती,
गिरिजा भी बन मूर्ति घूरती।
सुनती कितने प्रसंग मैं,
कर देती कुछ रंग-भंग मैं।
सुनती नर-वृत्त मोद से,
सुनती देव-कथा विनोदसे।
शिविकी न दधीचिकी व्यथा,
कहती हो किस शक्रकी कथा!
यदि दानव एक भी मिला,
समझो तो सुर-मन्त्र ही किला!!
अमरों पर देख टिप्पणी,
कहतीं "नास्तिक" खीझ माँ भणी।
हँस मैं कहती—प्रसाद दो,
तज दूँ तो यह नास्तिवाद दो!
पितृ-पूजन आप ठानतीं,
सुर ही पूज्य तथापि मानतीं।
कहतीं तब माँ दया-भरी,
"वह तेरे पितृ-देव हैं अरी।
सुन, मैं पति-देव-सेविनी,
तब तेरी प्रिय मातृ-देविनी।"
कहतीं तब यों ममाग्रजा—
"तुम देवाधिक हो प्रजा-व्रजा!"
नर हों, सुर हों, सुरारि हों,
विधि हों, माधव हों, पुरारि हों,
सरयू, यह राज-नन्दिनी
सबकी सुन्दर भाव-वन्दिनी।

(क्रमशः)

क्षय-कीटाणु

[लेखक :— डा० शंकरलाल गुप्त, एम-बी, बी-एस]

क्षय रोग एक ऐसा सार्वदेशिक और सार्वकालिक रोग है, जिससे सभी लोग भलीभाँति परिचित हैं। पश्चिमी चिकित्सा-साहित्यके अवलोकनसे यह विदित होता है कि कुछ प्राचीन और मध्यकालीन चिकित्सक क्षय-रोगको संक्रामक रोग (छुतैली बीमारी) मानते थे। सन् १८६५ में सबसे पहले डाक्टर विलेमिनने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया था कि क्षयी मनुष्यके कफका टीका लगानेसे पशुओंमें क्षय-रोग उत्पन्न किया जा सकता है, परन्तु उस समय इस बातका ज्ञान न था कि क्षयी मनुष्यके कफमें ऐसी कौनसी वस्तु है जिसके संक्रमणसे क्षयी मनुष्यसे पशुओंमें रोग उत्पन्न हो जाता है। सन् १८८२ में जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर रौबर्ड कौकने सर्वप्रथम इस बातका पता लगाया था और प्रयोग द्वारा सिद्ध किया था कि क्षय रोग एक प्रकारके कीटाणुओंसे होता है। क्षय-कीटाणु एक प्रकारके सूक्ष्म वनस्पति होते हैं, जिनको देखनेके लिए खुर्दबीन (Microscope) की सहायता लेनी पड़ती है, क्योंकि बिना इस यंत्रकी सहायताके हम उन्हें देख नहीं सकते।

क्षय-कीटाणुओंका आकार और परिमाण

क्षय-कीटाणुओंका आकार एक बहुत छोटी और पतली सींकका-सा होता है, इसलिए उन्हें क्षय-शलाकाणु भी कहते हैं। ये प्रायः बिलकुल सीधे होते हैं, परन्तु कभी-कभी वे कुछ टेढ़े भी दिखाई देते हैं। साधारणतः उनकी लम्बाई $\frac{१}{२५०००}$ इंचके लगभग होती है और चौड़ाई लम्बाईका दसवाँ भाग होती है। क्षयीके कफमें वे एक या दो-दो अथवा अनेक एक साथ पड़े दिखाई देते हैं। अणुवीक्षण-यंत्रसे देखनेसे उनका आकार कई सौ गुना बड़ा दिखाई देने लगता है, और इसीलिए वे हमें दिखाई देने लगते हैं। उनके आकार और परिमाणमें कभी-कभी कुछ अन्तर भी हो जाता है। एक प्रकारका स्निग्ध पदार्थ उनके शरीरको आच्छादित किये रहता है, जिससे उनकी बड़ी रक्षा होती है। उनमें चलने-फिरनेकी शक्ति नहीं होती। एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुँचनेकी लिए उन्हें किसी दूसरी वस्तुका सहारा लेना पड़ता है।

कीटाणुओंके रंगनेकी विधि

क्षय-कीटाणु वर्ण-हीन और अत्यन्त छोटे होनेके कारण अणुवीक्षण यंत्रसे भी कठिनाईसे दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त श्लेष्मादिमें जहाँ वे पाये जाते हैं, वहाँ उन्हींके आकारके अन्य जातियोंके कीटाणु भी पाये जाते हैं। इस लिए उनको पहचानना और भी कठिन हो जाता है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए कीटाणु-शास्त्रवेत्ताओंने क्षय-कीटाणुओंके रंगनेकी एक विशेष विधि निकाली है, जिससे इनको पहचाननेमें बड़ी सुविधा होती है। जिस रोगीके कफमें यह देखना हो कि क्षय-कीटाणु हैं या नहीं, उसके कफका एक अंश लेकर एक काँचकी पट्टीपर फैलाकर एक जाला-सा बना लिया जाता है। इस काँचकी पट्टीको अंग्रेजीमें स्लाइड (Slide) कहते हैं। यह तीन इंच लम्बी एक इंच चौड़ी और लगभग १।२० इंच तक मोटी होती है।

जब कफका जाला सूखकर तैयार हो जाता है, तो काँचकी पट्टीको थोड़ासा गरम करते हैं, ताकि कफ-जाला जमकर पट्टीपर चिपक जाय और पानी डालनेसे न छूटे। अधिक गरम करनेसे कफ, जाला जल जाता है और खराब हो जाता है।

इसके बाद कार्बल फुक्सिन (Carbol Fuchsin) नामक एक प्रकारके लाल रंगसे उस कफ-जालको रंगते हैं। पट्टीपर यथेष्ट रंग डालकर कफ-जालाको ढक देते हैं और नीचेसे एक स्प्रिट-लैम्प (Sprit lamp) से इतना गरम करते हैं कि रंगमें से भाप निकलने लगे। अधिक गरम

करनेसे रंग उबलने लगता है और सब परिश्रम नष्ट हो जाता है, इसलिए अधिक गरम नहीं करना चाहिए। गरम करनेसे रंग शीघ्र और अच्छा चढ़ता है। यदि रंग कम होने लगे तो और डाल देते हैं। इसी प्रकार लगभग पाँच या छह मिनट तक ठहरनेके बाद रंगको फेंककर पट्टीको पानीसे धो डालते हैं। धोनेके उपरान्त हलके गंधकाम्ल (गन्धकका तेज़ाब शुद्ध १ भाग + पानी ४ भाग) में उसको थोड़ी देर तक डाले रहते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि गंधकाम्लसे कफ-जालका सब लाल रंग छूट जाता है, केवल क्षय-कीटाणुओंका रंग नहीं छूटता, इसलिए इनको 'अम्लात्यक्त वर्ण (acidfast) अर्थात् तेज़ाबसे न छूटनेवाले रंगके कीटाणु' भी कहते हैं। गंधकाम्लसे निकालकर और स्वच्छ पानीसे धोकर उस कफ-जालको फिर 'मेथ्लिन् ब्लू' (Methylene Blue) नामक एक प्रकारके नीले रंगसे रंगते हैं। इस रंगको केवल एक मिनट तक कफ-जालपर छोड़नेसे पर्याप्त रंग चढ़ जाता है। परिणाम यह होता है कि उस कफके अन्य सब पदार्थ तो नीलवर्ण हो जाते हैं, केवल क्षय-कीटाणु ही लाल वर्णके रहते हैं, इसलिए अब उस पट्टीको पानीमें धोकर और सुखाकर अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखते हैं, तो नील पदार्थोंके बीच जगह-जगहपर रक्त-वर्णके क्षय-शलाकाणु दिखाई देते हैं। और वर्णभेदके कारण आसानीसे पहचाने जा सकते हैं। (देखो—चित्र नं० १)

क्षय-कीटाणुओंके उगानेकी विधि

क्षय-रोगीके कफमें क्षय-कीटाणुओंके अतिरिक्त अन्य कीटाणु भी होते हैं, और ये सब-के-सब श्लेष्मादि पदार्थोंमें सम्मिलित रहते हैं। क्षय-कीटाणुओंके सम्बन्धमें पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उनको अन्य कीटाणुओं और अन्य पदार्थोंसे पृथक् करनेकी आवश्यकता होती है। अन्य वनस्पतियोंकी भाँति क्षय-कीटाणुओंको भी रोगीके कफसे बीजारोपण करके उगाया जा सकता है। उनके पोषण और वृद्धिके लिए भिन्न-भिन्न पदार्थोंकी आवश्यकता होती है, उन सबको एकत्र करके कृत्रिम क्षेत्र या माध्यम (Artificial culture medium) तय्यार किये जाते हैं। और इन माध्यमोंमें कफका एक अंश लेकर कीटाणुओंका बीजारोपण किया जाता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकोंने क्षय-कीटाणुओंको पृथक् करनेकी और उगानेकी भिन्न-भिन्न विधियाँ निकालीं हैं, और अनेक प्रकारके कृत्रिम माध्यम (Artificial culture media) भी तय्यार किये हैं, जिनमें ये कीटाणु उगाये जा सकते हैं। बीजारोपणके दस दिन पश्चात् कीटाणुओंकी वृद्धि प्रकट होने लगती है, और एक मासमें उस माध्यममें बोये हुए क्षय-कीटाणुसे सन्तान उत्पन्न होकर अनेक कीटाणु उपनिवेश बन जाते हैं, जो धुंधले काँचके रंगके बिन्दुसे दिखाई पड़ते हैं। (देखो—चित्र नं० २)

क्षय-कीटाणु दो से पाँच प्रतिशत ग्लिसरीन-(2 p.c. to 5 p.c. Glycerine)-मिश्रित रक्त वारि, अंडा, आगर (Agar) और आलूके बने हुए माध्यमोंमें भलीभाँति उगते हैं। इनकी वृद्धिके लिए आक्सिजन वाष्पका होना अनिवार्य है। यह ३८° शतांश (Centigrade) से ४२° शतांश ताप-परिमाण (टेम्परेचर) पर अच्छे उगते हैं।

क्षय-कीटाणुओंके अनुकूल और प्रतिकूल अवस्था

क्षय कीटाणुओंकी वृद्धिके लिए एक विशेष ताप-परिमाणकी आवश्यकता होती है। स्वस्थ मनुष्यके शरीरका ताप-परिमाण (३७°—३८° शतांश) ही उनके लिए सर्वश्रेष्ठ होता है। अधिक गरमी कीटाणुओंके लिए हानिकारक होती है। ६०° शतांशके तापपर वे आधे घंटेमें, ७०° शतांशके तापपर १५ मिनटमें और ८०° शतांशके तापपर ५ मिनटमें मर जाते हैं। उबलते हुए पानीमें, जिसका ताप-परिमाण १००° शतांश होता है, वे केवल दो ही मिनटमें मर जाते हैं; परन्तु जब वे कफमें मिले रहते हैं, तो उनके मरनेमें कुछ अधिक समय लगता है। इसी प्रकार जब वे दूधमें मिले होते हैं, तो और भी देरमें मरते हैं, विशेषकर जब दूध एक खुले बर्तनमें गरम किया जाता है; क्योंकि दूधके ऊपर जो मलाईकी चादर जम जाती है, उससे उनकी अधिक रक्षा होती है, परन्तु यह देखा गया है कि चाहे कीटाणु किसी

भी अवस्थामें क्यों न हों, ५ मिनट तक पानीमें उबालनेपर अवश्य मर जाते हैं।

गरमीकी अपेक्षा शीतसे उनको कम हानि पहुँचती है। अधिक शीतसे उनकी वृद्धि रुक जाती है और विषैलापन (रोगोत्पादक शक्ति) कम हो जाता है, परन्तु इससे वे मरते नहीं। शीतके कम होते ही वे पुनः उत्तेजित हो उठते हैं और उनकी वृद्धि होने लग जाती है।

मक्खनमें क्षय-कीटाणु बहुत समय तक जीवित बने रहते हैं, और इसी प्रकार गीले कफमें भी वे बहुत समय तक जीवित रहते हैं और जब कफ सूखकर धूलमें मिल जाता है, तब भी कई दिन तक जीवित बने रहते हैं।

सूर्य-प्रकाश इन कीटाणुओंके लिए अत्यन्त हानिकर होता है। तेज़ धूपमें वे पाँच या छे घंटेमें मर जाते हैं, और साधारण सूर्य-प्रकाशमें भी वे अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। अँधेरी कोठरियोंमें, जहाँ सूर्य-प्रकाश नहीं पहुँच पाता वे महीनों तक जीवित और विषैले बने रहते हैं। इससे यह स्वतः प्रकट होता है कि सूर्य-प्रकाश इन कीटाणुओंसे मनुष्यकी बहुत-कुछ रक्षा करता है, परन्तु मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण इससे पूरा लाभ नहीं उठाता और प्रकृतिके नियमकी अवहेलना कर प्रकाश-विहीन मकानोंमें रहता है, फलतः उसको प्रकृतिकी ओरसे क्षय-रोगरूपी दण्ड मिलता है।

ऐसे अनेक रासायनिक पदार्थ हैं जो शरीरके बाहर क्षय-कीटाणुओंको क्षण-भरमें नष्ट कर सकते हैं, परन्तु अभी तक ऐसा कोई भी रस नहीं निकला है जो शरीरके अन्दर इन कीटाणुओंको मार सके और साथ ही शरीरपर उसका कोई हानिकारक प्रभाव न हो।

क्षय-कीटाणुओंकी आयु

शरीरके बाहर क्षय-कीटाणु बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि सूर्यके प्रकाश इत्यादिसे शीघ्र उनका नाश हो जाता है। कृत्रिम माध्यमोंमें उगाकर यह देखा गया है कि वे डेढ़ वर्षसे अधिक जीवित नहीं रह सकते, परन्तु शरीरके अन्दर वे वर्षों तक जीवित रहते हैं। साथ-ही-साथ यह भी निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि शरीरके अन्दर वे कितने समय तक जीवित रह सकते हैं।

क्षय-कीटाणुओंमें सन्तानोत्पत्ति

क्षय-कीटाणुओंमें सन्तानोत्पत्तिका ढंग बड़ा ही विचित्र होता है। एक कीटाणु जब खा-पीकर पुष्ट हो जाता है, तो उसके अपने-आप दो टुकड़े हो जाते हैं, जिनके दो पृथक्-पृथक् कीटाणु बन जाते हैं। इनकी वृद्धि इतनी शीघ्रतासे होती है कि दिन-रातमें एकसे लाखों कीटाणु बन जाते हैं। क्षय-कीटाणु केवल शरीरके अन्दर ही पुष्ट और फलीभूत होते हैं। शरीरके बाहर इनकी वृद्धि नहीं हो सकती, इसलिए इनको 'परोपजीवी' (Parasite) कीटाणु कहते हैं।

क्षय-कीटाणुओंकी जातियाँ

जाति-भेदसे क्षय-कीटाणु तीन प्रकारके होते हैं—(१) मनुष्य-क्षय-कीटाणु, (२) पशु-क्षय-कीटाणु और (३) पक्षी-क्षय-कीटाणु। मनुष्य-क्षय-कीटाणु क्षयी मनुष्योंमें पाये जाते हैं और केवल मानव-जातिमें ही क्षय उत्पन्न कर सकते हैं। पशु क्षय-कीटाणु क्षयी पशुओंके शरीरमें पाये जाते हैं, और साधारणतः पशुओंमें ही क्षय उत्पन्न करते हैं, परन्तु कभी-कभी वे मनुष्योंमें भी क्षयका कारण होते हैं। पशु-क्षय-कीटाणुओंका क्षय मनुष्योंमें क्षयी पशुओंका माँस खानेसे अथवा उनका दूध पीनेसे होता है। इस प्रकारका क्षय बहुधा बाल्यावस्थामें ही होता है और मनुष्य-क्षय-कीटाणुओंकी अपेक्षा हलका होता है। पशु-क्षय-कीटाणुओंसे प्रायः लसिका-ग्रंथियों (Lymphglands) में, अस्थियोंमें और जोड़ोंमें क्षय होता है, परन्तु फेफड़ोंका क्षय बहुत कम होता है। पक्षी-क्षय-कीटाणुओंके क्षयी पक्षियोंके शरीरमें पाये जाते हैं। उनसे केवल पक्षियोंमें ही क्षय रोग होता है। पशुओं और मनुष्योंमें कीटाणु रोग उत्पन्न नहीं कर सकते।

इन तीनों जातियोंके कीटाणुओंके आकार, परिमाण और उगानेकी विधिमें बहुत थोड़ा अन्तर होता है, इसलिए इनके पारस्परिक भेदको केवल विशेषज्ञ ही जान सकते हैं। मनुष्य-क्षय-कीटाणु और पशु-क्षय-कीटाणुमें तो इतना कम

चित्र नं० १



खुर्दबीन द्वारा प्रदर्शित क्षय रोगीका कफ
नीले रंगे हुए कफमें लाल सूक्ष्म चिह्न क्षय-कीटाणु सूचित करते हैं

चित्र नं० २



क्षय-कीटाणुओंके उगानेकी विधि
सफेद चिह्न कृत्रिम माध्यममें उगे हुए क्षय-कीटाणुओंके उपनिवेश सूचित करते हैं

स्थानपर प्रदाह और समस्त शरीरमें आलस्य, हड़फूटन और हरारत उत्पन्न हो जाती है। इन्हीं प्रयोगोंके आधारपर क्षय-रोगकी परीक्षा और उपचारमें यक्ष्मिनका उपयोग आरम्भ किया गया था।

क्षय-कीटाणुओंके उत्पत्ति-स्थान

क्षय-कीटाणुओंके प्रधान उत्पत्ति-स्थान क्षयी होते हैं। क्षयीके कफमें करोड़ों कीटाणु प्रतिदिन उसके शरीरसे बाहर निकलते हैं। कार्नेटने यह अनुमान किया था कि एक दिनमें एक क्षय-रोगी लगभग सात अरब, बीस करोड़ कीटाणु अपने शरीरसे बाहर निकालता है। इसके अतिरिक्त रोगके स्थानानुसार रोगीके मल, मूत्र और पीव इत्यादिमें भी क्षय-कीटाणु रोगीके शरीरसे बाहर निकलते हैं। क्षयी पशुका मांस खानेसे और क्षयी-पशुका दूध पीनेसे क्षय कीटाणु मनुष्य-शरीर तक पहुँचते हैं।

मनुष्य-शरीरमें क्षय-कीटाणुओंके प्रवेश-मार्ग

उपर्युक्त स्थानोंसे आकर मनुष्य-शरीरमें प्रवेश करनेके क्षय-कीटाणुओंके निम्न-लिखित मार्ग होते हैं—(१) त्वचा-मार्ग, (२) श्वास मार्ग, (३) अन्न-मार्ग, (४) रक्त-मार्ग, (५) वीर्य-मार्ग और (६) डिम्ब तथा जरायु-मार्ग।

त्वचा-मार्ग—क्षय-कीटाणुओंकी सर्वव्यापकतापर विचार करनेसे तो यह अनुमान होता है कि मनुष्यके शरीरमें प्रवेश होनेका मुख्य और सुगम मार्ग त्वचा ही है, परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। यदि ऐसा होता, तो आज कदाचित् ही कोई भाग्यशाली पुरुष दिखाई पड़ता, जो क्षय-रोगसे बचा होता, क्योंकि क्षय-कीटाणुओंका त्वचा तक पहुँचना अत्यन्त सरल है। सैकड़ों तरहसे कीटाणुओंका त्वचासे स्पर्श हो सकता है—जैसे, दरवाज़ा, रोगीके बर्तन, रुपये-पैसे, किताब, समाचारपत्र इत्यादि छूनेसे और हाथ मिलनेसे—डाक्टर पामरने ऐसे साधनोंकी गणना करके ११६की संख्या बताई है; जो किसी दशामें पूर्ण नहीं कही जा सकती; परन्तु ईश्वरकी महान् कृपासे क्षय-कीटाणुओंमें त्वचाको बेधनेकी शक्ति नहीं होती। भग्न त्वचा और आघातोंसे शरीरमें वह अवश्य घुस सकते हैं। इसके अनेक उदाहरण भी पाये जाते हैं—जैसे, मुसलमान और यहूदी बच्चोंमें खतनाके समय अस्वच्छतासे, डाक्टरोंमें चीड़-फाड़ करते समय उँगली इत्यादि कट जानेसे, व्यवसाइयोंमें क्षयी पशुओंको काटते समय चोट लग जानेसे, कर्णवेधनमें दूषित सुई चुभनेसे और थूकदानके टूटकर चोट लग जानेसे क्षय संक्रमण होते देखा गया है। इसके अतिरिक्त प्रयोग-शालामें पशुओंके शरीरमें त्वचा बेधकर क्षय-कीटाणुओंके शरीरमें प्रविष्टकर क्षय-रोग उत्पन्न किया जाता है।

मनुष्यकी त्वचामें क्षय-कीटाणुओंके आक्रमण रोकनेकी यथेष्ट स्वाभाविक शक्ति होती है। त्वचाके रोग-क्षम (Immuno) होनेका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि शरीरके अन्य भागोंकी अपेक्षा त्वचाका क्षय बहुत कम होता है, और जब कभी होता भी है, तो बहुत हलका और त्वचा ही में परिमित रहता है, अधिक फैलता नहीं; क्योंकि त्वचामें ये (क्षय-कीटाणु) न तो पुष्ट ही होने पाते हैं और न इनकी वृद्धि ही होने पाती है। जहाँ तक ज्ञात हुआ है उससे यह कहा जा सकता है कि त्वचा-मार्गसे क्षय-कीटाणु स्वतः बहुत कम शरीरमें प्रवेश कर पाते हैं, इसलिए क्षयोत्पत्तिमें त्वचा-मार्ग कीटाणु-प्रवेशका प्रमुख मार्ग नहीं कहा जा सकता।

श्वास-मार्ग—क्षय-कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश होनेका यह सर्वप्रधान मार्ग समझा जाता है। प्राचीन कालसे ही लोग श्वास-मार्गको प्रधान मार्ग मानते हैं, परन्तु सबसे पहले यह कॉक और उनके शिष्य कॉर्नेटका ही काम था कि उन्होंने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि सूखे हुए कफसे मिश्रित धूल श्वासके साथ अन्दर जानेसे 'गिनी पिग' पशुओंमें क्षय-रोग हो जाता है। उन्होंने इस बातको इस प्रकार सिद्ध किया था कि एक कमरेमें एक कालीन बिछाकर और उसपर सूखा हुआ क्षय-रोगीका कफ डालकर 'गिनी पिग' पशुओंको उस कालीनपर रखा था। जब कालीनपर झाड़ू लगती थी, तो कफ-मिश्रित धूल हवामें

उड़कर श्वासके साथ उन पशुओंके फेफड़ोंमें पहुँचती थी। ऐसा करनेसे पशुओंमें क्षय-रोग उत्पन्न हो जाता था। इसी प्रकारके अन्य वैज्ञानिकोंने भी अनेक प्रयोग-सिद्ध प्रमाण एकत्रित किये हैं, जिनसे यह स्पष्ट-रूपसे सिद्ध होता है कि कफ-मिश्रित धूल श्वासके साथ अन्दर जानेसे क्षय-रोग उत्पन्न हो सकता है।

सूर्य-प्रकाशसे खुले हुए स्थानोंमें क्षय-कीटाणु शीघ्र मर जाते हैं, इसीलिए उनके इस प्रकार अधिक विस्तृत होनेमें रुकावट पड़ती है। सूर्यके प्रकाशकी कमीसे बहुतेरा क्षय-रोग फैल सकता है, क्योंकि साधारणतः क्षय-रोगी ऐसे घरोंमें रहते हैं, जहाँ सूर्य-प्रकाश बहुत कम पहुँचता है, और इसीलिए क्षय-कीटाणु बहुत दिनों तक जीवित बने रहते हैं।

इसके अतिरिक्त क्षय-रोगीके बोलने, खाँसने और छींकनेमें जो कफकी फुहार बाहर निकलती है, उस फुहारमें जो क्षय-कीटाणु मिले रहते हैं, वे निकटस्थ मनुष्योंके श्वासके साथ उनके शरीरमें प्रवेश करते हैं। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि रोगीके कफके कणोंमें, जो इस प्रकार बाहर निकलते हैं, क्षय-कीटाणु होते हैं। यदि रोगीके खाँसते समय काँचकी पट्टी उनके सामने रख दी जाय, तो एक गज़ दूर तक रखी हुई पट्टीपर क्षय-कीटाणु पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि यदि 'गिनी पिग' पशुओंको सामने खड़ा करके क्षय-रोगी लगातार खाँसे, तो उनमेंसे बहुतसे पशुओंको क्षयरोग हो जाता है। मनुष्योंमें भी इस प्रकारके कई एक उदाहरण पाये जाते हैं। हेम्बर्गर (Hambergur) ने एक पागल लड़केको तीन क्षयी लड़कियोंके साथ एक कमरेमें रख दिया था। लड़केके पागल होनेके कारण तीनों लड़कियाँ उससे बचती रहती थीं, इसलिए वह लड़का सात महीने तक क्षय-संक्रमणसे बचा रहा। इसके प्रतिकूल एक रोगीके साथ एक कमरेमें चार लड़कोंको रखा गया। एक मासके भीतर उन चारोंको क्षय-संक्रमण हो गया। इसी प्रकारका प्रयोग न्यूयार्क नगरके एक शिशु-आश्रममें किया गया था, जिसमें एक क्षय पीड़ित उपचारिकासे अनेक शिशुओंको क्षय-संक्रमण हो गया था। इसी प्रकारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कफकी फुहारसे क्षय संक्रमण होता है। कुछ लोगोंका मत है कि श्वास-मार्गसे क्षय-संक्रमण होनेमें धूलकी अपेक्षा कफकी फुहारका महत्त्व अधिक है।

श्वास-मार्गसे क्षय-कीटाणुओंके प्रवेशमें प्राकृतिक रुकावटें

त्वचाकी भाँति श्वास-मार्गमें भी कीटाणुओंके प्रवेश होनेमें भी कुछ प्राकृतिक रुकावटें होती हैं, जिनके कारण कीटाणुओंका फेफड़ों तक पहुँचना कठिन हो जाता है। सर्वप्रथम नाक, मुँह और कण्ठ छन्नीका काम करते हैं। श्वास-वायुमें जो धूल इत्यादि हानिकारक पदार्थ होते हैं, इन्हीं स्थानोंमें रुक जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्वास मार्गकी श्लेष्म-कला (Mucous membrane) में लोमश सेलें (Ciliated cells) होती हैं, जिनके लोमोंकी गति बाहरकी ओर होती है; क्योंकि श्लेष्म एक चिकना और चिपकनेवाला पदार्थ होता है, इसलिए धूल और कीटाणु इत्यादि उसमें चिपक जाते हैं, और फिर वह कलाकी सेलोंकी लोम गतिसे बाहर निकाल दिया जाता है। आवश्यकता होनेपर श्लेष्मके बाहर निकलनेमें खाँसनेसे भी बड़ी सहायता मिलती है।

इतनेपर भी जब कुछ कीटाणु फेफड़ों तक पहुँच जाते हैं, तो उनके किसी स्थानपर जमनेसे पहले ही लसिका कण (Lymphocytes) या तो उनको नष्ट कर देते हैं, या पकड़कर लसिका ग्रन्थियोंमें ले जाते हैं, जहाँपर वे कैद हो जाते हैं। इन ग्रन्थियोंमें वर्षों तक क्षय-कीटाणु जीवितावस्थामें बन्द पड़े रहते हैं और अवसर पाकर फिर उत्तेजित होकर क्षय-रोग उत्पन्न करते हैं। कीटाणुओंके इस प्रकार शरीरकी लसिका ग्रन्थियोंमें बन्द पड़े रहनेको गुप्त-क्षयका एक रूप समझना चाहिए।

अन्न-मार्ग—यह मार्ग भी क्षय कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश होनेका एक मुख्य मार्ग है। दूषित खाना, पानी, दूध इत्यादिके प्रयोगसे कीटाणु बड़ी सरलतासे शरीरमें प्रवेश कर सकते हैं और करते हैं।

दूध दो प्रकारसे क्षय-कीटाणुओंसे दूषित होता है; पहला, दूधवाले पशुके क्षयी होनेसे, और दूसरा शुद्ध दूधके दुहे जानेके अनन्तर उसपर मक्खियोंके बैठने या क्षयी मनुष्यके छूनेसे। मक्खियाँ जब क्षय-रोगीके कफ या मलपर बैठती हैं, तो वह (कफ या मल) उनके पैर और मुंहमें लग जाता है। फिर जब वे मक्खियाँ खुले दूधपर उड़कर बैठती हैं, तब कफ और मलके कण दूधमें मिल जाते हैं। इसी प्रकार खानेकी किसी भी वस्तुको मक्खियाँ दूषित कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, क्षय-रोगीके छूनेसे और उसके साथ या उसके बर्तनोंमें खानेसे भी खाद्य-पदार्थ दूषित हो जाते हैं।

अन्न मार्गमें दो प्रधान स्थान हैं, जहाँसे क्षय-कीटाणु शरीरमें प्रवेश करते हैं; पहला उर्ध्वभाग (मुख-कण्ठ इत्यादि) और दूसरा अधोभाग (अँतड़ियाँ इत्यादि)। जब क्षय-कीटाणु मुख अथवा कण्ठकी श्लेष्म-कलासे प्रवेश करते हैं, तो पहले ग्रीवाकी लसिका ग्रन्थियोंमें पहुँचते हैं, जो कभी-कभी कुपित होकर बड़ी हो जाती हैं। गर्दनकी इन बढ़ी हुई ग्रंथियोंको 'कण्ठमाला' रोग कहते हैं। ग्रीवाकी ग्रंथियोंसे क्षय-कीटाणु वक्ष-स्थलकी ग्रथियोंमें पहुँचते हैं, और वहाँसे फेफड़ोंमें पहुँच जाते हैं।

जब क्षय-कीटाणु अँतड़ियोंसे प्रवेश करते हैं, तो पहले अन्तधरा-कला (Mesentry) अर्थात् आँतोंकी झिल्लीकी ग्रंथियोंमें पहुँचते हैं, जो कभी बढ़ जाती है और उनके बढ़ जानेसे उदरकी झिल्लियोंका क्षय हो जाता है, जिसको अंग्रेज़ीमें 'ऐब्डामिनल ट्यूबर्क्यूलोसिस्' (Abdominal Tuberculosis) कहते हैं। इन ग्रन्थियोंसे लसिका द्वारा लसिका महाशिरासे होते हुए कीटाणु फेफड़ोंमें पहुँच जाते हैं।

अन्न-मार्गमें स्वाभाविक रुकावट

स्वस्थ श्लेष्मकलाको चीरकर शरीरमें प्रवेश करनेकी शक्ति क्षय-कीटाणुओंमें नहीं होती, परन्तु अन्न-मार्गकी सम्पूर्ण कलाका सदैव अभग्नावस्थामें रहना असम्भव है, अतएव कीटाणुओंको कहीं-न-कहीं प्रवेश करनेका अवसर मिल ही जाता है। त्वचाकी भाँति अन्न-मार्गकी श्लेष्म-कलामें भी क्षय-कीटाणुओंके रोकनेकी कुछ स्वाभाविक शक्ति होती है। यही कारण है कि श्लेष्म-कलाका क्षय बहुत कम होता है।

अन्न-मार्गके पाचक रसोंमें क्षय-कीटाणुओंके नाश करनेकी और उनकी रोगोत्पादक शक्ति कम करनेकी शक्ति होती है। जब कीटाणुओंकी संख्या कम होती है, तो पाचक रसोंसे उनका पूर्णतया नाश हो जाता है। खाने-पीनेके पदार्थोंके दूषित होनेकी अधिक सम्भावनापर ध्यान देते हुए इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि इतनी रुकावटोंके होते हुए भी अन्न-मार्ग क्षय-कीटाणुओंके शरीर-प्रवेशका एक मुख्य मार्ग है। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि क्षय-कीटाणुओंके प्रविष्ट होनेमें श्वास-मार्गकी अपेक्षा अन्न-मार्गका महत्त्व अधिक होता है।

रक्त-मार्ग—श्वास-मार्ग और अन्न-मार्गकी स्वाभाविक रुकावटोंपर विचार करते हुए कुछ लोगोंका मत है कि क्षय-कीटाणु चाहे जहाँसे प्रविष्ट हों, रक्त द्वारा ही एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचते हैं। रक्त शरीरमें पहुँचता है। जहाँ कहीं अनुकूल स्थान होता है, क्षय-कीटाणु वहीं स्थित होकर रोग उत्पन्न करते हैं।

इसके पक्षमें यह कहा जा सकता है कि कमसे कम जोड़ और हड्डियोंका क्षय तो केवल रक्त-मार्गसे ही हो सकता है, क्योंकि वहाँ तक पहुँचनेके लिए कीटाणुओंको और दूसरा कोई मार्ग नहीं होता, क्योंकि समस्त शरीरके रक्तका संशोधन फेफड़ोंमें ही होता है, इसलिए जो क्षय-कीटाणु किसी भी स्थानसे रक्तमें प्रविष्ट होते हैं, सर्वप्रथम फेफड़ोंमें पहुँचते हैं और वहाँपर रोक लिए जाते हैं, इसलिए फेफड़ोंका क्षय बहुत होता है।

शुक्र-मार्ग—पुरुषकी जननेन्द्रियोंमें भी क्षय-रोग होता है, और इस प्रकारके क्षयी पुरुषके वीर्यमें कभी-कभी क्षय-कीटाणु भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, पशुओंमें कई एक ऐसे प्रयोग-सिद्ध प्रमाण भी पाये जाते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि दूषित वीर्यसे गर्भ दूषित होकर क्षयी सन्तान उत्पन्न होती है। उपर्युक्त प्रमाणोंसे अनुमान होता है कि मनुष्योंमें भी क्षयी पिताके दूषित वीर्यसे सन्तानको क्षय हो सकता है परन्तु ऐसे प्रमाण बहुत कम पाये जाते हैं। इसके विपरीत यह ज्ञात हुआ है कि बालकोंमें सहज क्षय बहुत कम पाया जाता है, अतएव इस समय इस विषयपर न्यायदृष्टिसे केवल यही कहा जा सकता है कि शुक्र-मार्गसे क्षयका होना सम्भव तो है, पर वास्तवमें न होनेके ही बराबर है।

डिम्ब तथा जरायु-मार्ग—जितनी कम सम्भावना वीर्यसे क्षय होनेकी होती है, उतनी ही कम सम्भावना डिम्ब-मार्गसे होनेकी होती है, परन्तु क्षयी माताकी जरायुमें कभी-कभी क्षय-कीटाणु पाये जाते हैं और जरायुका क्षय भी होता है। परन्तु जरायु द्वारा दूषित गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह प्रायः मरी हुई होती है, और जब कभी जीवित सन्तान भी उत्पन्न हो जाती है, तो थोड़े ही दिनोंमें मर जाती हैं, इसलिए जरायु द्वारा भी क्षय-रोगका होना बहुत कम सम्भव है।

क्षय कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश होनेके मार्गोंके सम्बन्धमें जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इन कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश होनेके केवल दो ही प्रमुख मार्ग होते हैं; पहला श्वास मार्ग और दूसरा अन्न-मार्ग।



जेल और उनका नैतिक प्रभाव

[*लेखक :—-प्रिन्स क्रोपाटकिन*]

[स्वर्गीय यतीन्द्रनाथ दास और पुंगी विजयके बलिदानने आजकल समस्त भारतवासियोंका ध्यान जेलखाने और क़ैदियोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारकी ओर आकर्षित कर दिया है। केवल भारतवर्ष ही में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण संसारमें जेलखानोंकी व्यवस्था सन्तोष-जनक नहीं कही जा सकती। बहुतसे विचारशील व्यक्ति जेलखानेकी पद्धति ही को दूषित समझते हैं। इन जेलखानोंका प्रभाव नैतिक अपराधोंके अपराधियोंपर तो जैसा पड़ता है, वैसा पड़ता ही है, परन्तु राजनैतिक क़ैदियोंपर—जिनका मन एकदम स्वच्छ है, जिनपर किसी प्रकारके पापकी कलुषित छाया नहीं है, जिनके अपराधमें किसी प्रकारके व्यक्तिगत स्वार्थकी बू नहीं है और जो केवल अपने सिद्धान्तोंके कारण अथवा शासकवर्गकी नादिरशाहीके विरुद्ध आवाज उठानेके कारण ही अपनी स्वतन्त्रतासे वंचित किये जाते हैं—उनका प्रभाव बड़ा भयंकर होता है। पराधीन देशोंमें तो यह भयंकरता चरमसीमाको पहुँच जाती है। भारतवर्षके समस्त राजनैतिक क़ैदियोंने जेलके दुर्व्यवहारोंके सम्बन्धमें एक सुरसे शिकायत की है। वर्षोंकी हाय-तोबा और दो-दो बलिदानोंके बाद सरकार बहादुरका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है, और उसने जेलके नियमोंमें कुछ परिवर्तन भी किया है। जेलखाने और क़ैदियोंपर उनका नैतिक प्रभाव क्या पड़ता है, इस विषयपर रूसी वैज्ञानिक और क्रान्तिकारी प्रिन्स क्रोपाटकिनके विचार यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं। प्रिन्स क्रोपाटकिन स्वयं भुक्तभोगी थे। उन्हें रूसकी तथा फ्रान्सकी जेलोंका व्यक्तिगत अनुभव था, इसलिए उनके विचार एक अनुभवी वैज्ञानिकके विचार कहे जा सकते हैं। —सम्पादक]

संसारमें आर्थिक समस्या और राज-समस्याके बाद जो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, वह है समाज-विरोधी कार्योंका नियन्त्रण। न्याय करनेका सिद्धान्त ही सदा अधिकारों और सुविधाओंको उत्पन्न करनेवाला रहा है, क्योंकि उसकी बुनियाद ही संगठित अधिकारोंके ठोस पत्थरपर स्थिर है, इसलिए जो लोग समाजके विरुद्ध कार्य करते हैं, उनके साथ क्या करना चाहिए? यह एक ऐसी समस्या है, जिसके अन्तर्गत राज्य और शासनकी सम्पूर्ण महान् समस्या छिपी हुई है।

अब वह समय आ गया है, जब यह प्रश्न उठाया जाय कि क्या मृत्यु दण्ड देना या जेलखानेकी सज़ा देना उचित है? सज़ा देनेके दो उद्देश्य होते हैं—एक तो समाज-विरोधी कार्योंका रोकना, दूसरे अपराधीका सुधार करना। क्या वर्तमान दण्ड पद्धतिसे इन दोनों उद्देश्योंकी सिद्धि होती है?

ये प्रश्न बड़े गहन हैं। इन प्रश्नोंके उत्तरपर न केवल लाखों अभागे क़ैदियोंका सुख-दुःख और उन अभागोंके केवल स्त्री-बच्चोंका ही सुख-दुःख निर्भर करता है, बल्कि समस्त मानव-समाजका सुख-दुःख भी इसी उत्तरपर निर्भर है। किसी एक व्यक्तिके साथ जो कुछ अन्याय किया जाता है, अन्तमें सम्पूर्ण मानव-समाजको उसका अनुभव करना पड़ता है।

मुझे फ्रान्समें दो जेलखानों और रूसमें कई जेलखानोंकी जानकारी प्राप्त करनेका मौक़ा मिला है। जीवनकी अनेक परिस्थितियोंके चक्करमें पड़कर मुझे दण्ड-विधानकी सम्पूर्ण समस्याका अध्ययन करना पड़ा है, अतः मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं खुल्लमखुल्ला संसारको यह बता दूँ कि जेलखाने क्या हैं? यह ज़रूरी मालूम पड़ता है कि मैं उनके सम्बन्धमें अपने निरीक्षण और उन निरीक्षणोंके परिणाम संसारके सामने प्रकट कर दूँ।

जेलखाने अपराधोंके स्कूल हैं

जो व्यक्ति एक बार जेल हो आता है, वह फिर लौटकर पुनः वहीं पहुँच जाता है। यह बात अवश्यम्भावी है। सरकारी आँकड़े इसे सिद्ध करते हैं। फ्रान्सके फौजदारी शासनकी वार्षिक रिपोर्ट उठाकर देख लीजिए। आपको मालूम हो जायगा कि जूरी द्वारा सज़ा पाये हुए व्यक्तियोंमेंसे आधे और पुलिसकोर्टमें मामूली जुर्मोंके लिए सज़ा पानेवाले

व्यक्तियोंमें ३ लोगोंको उनके अपराधकी शिक्षा जेलखानेमें मिली है।

जिन लोगोंपर खूनके मुक़दमे चलते हैं, उनमेंसे आधे तथा चोरीके मुजरिमोंमें दो-तिहाई दूसरी बारके अपराधी होते हैं। सेन्ट्रल जेलोंसे—जो क़ैदियोंको सुधार करनेवाली संस्थाएँ समझी जाती हैं—जो क़ैदी रिहाई पाते हैं, उनमेंसे एक-तिहाई छूटनेके बारह महीनेके भीतर ही फिर लौटकर जेल पहुँच जाते हैं।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है, वह यह कि एक क़ैदी जब दूसरी बार जेल पहुँचता है, तो उसका अपराध उसके पहले अपराधसे अधिक गुरुतर होता है। यदि पहले उसे मामूली उठाईगीरीके लिए सज़ा मिलती है, तो दूसरी बार वह अधिक साहसपूर्ण चोरीके लिए पकड़ा जाता है। यदि पहली बार वह साधारण मार-पीटके लिए जेल जाता है, तो दूसरी बार वह खूनके अपराधमें हाज़िर किया जाता है। अपराध-तत्त्वके समस्त लेखक इस विषयपर सहमत हैं। यूरोपमें पुराने अपराधियोंकी समस्या एक महत्त्वपूर्ण समस्या बन गई है। आप जानते हैं कि फ्रान्स इस समस्याको कैसे हल करता है? वह उन्हें पश्चिमी अफ्रिकाके केयन नामक कालेपानीमें भेजकर उनका एक दम अस्तित्व मिटा देता है। केयनमें ये क़ैदी बुखारसे पीड़ित होकर मर जाते हैं! जहाज़-यात्रा ही में कितनों ही की जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है।

जेलखानोंकी निस्सारता

आज तक जेलखानोंमें जितने सुधार किये गये हैं, भिन्न-भिन्न जेल-प्रणालियोंके जितने प्रयोग किये गये हैं, उन सबके होते हुए भी उनका फल एक ही निकला है। आप लोग दण्ड देनेका चाहे जो तरीक़ा अख्तियार करें, मगर मौजूदा क़ानूनोंके खिलाफ़ जुर्मोंकी संख्या न तो घटती है और न बढ़ती है। इसमें कोड़ोंकी मारकी सज़ा और इटलीमें मृत्युका दण्ड उठा दिया गया, मगर उन दोनों स्थानोंमें हत्याओंकी संख्या ज्यों-की-त्यों बनी है। जजोंकी निर्दयता बढ़े या घटे, दण्ड-विधानमें जो चाहे परिवर्तन हो, मगर जुर्म कहे जानेवाले कामोंकी संख्या एकसी बनी रहती है। उसमें जो परिवर्तन होता है, वह कुछ अन्य कारणोंसे होता है, जिनका मैं आगे चलकर वर्णन करूँगा। दूसरी ओर जेलखानेके शासनमें चाहे जितने परिवर्तन किये जायँ, मगर दूसरी बार जुर्म करनेवालोंकी समस्या भी नहीं घटती। वह तो अवश्यम्भावी है। वह ज़रूर ही होकर रहेगी। कारण यह है कि जिन गुणोंके द्वारा मनुष्य-समाजमें रहनेके योग्य बनता है, जेलखाना उन समस्त गुणोंको एकदम नष्ट कर देता है। क़ैदखाना मनुष्यको एक ऐसा जीव बना देता है, जो अपने जीवनके अन्तिम काल तक बारम्बार इसी जीवित क़ब्रिस्तानमें लौटकर पहुँच जाता है। 'दण्ड-विषयक प्रणालीको सुधारनेके लिए क्या करना चाहिए?' इस प्रश्नका केवल एक ही जवाब हो सकता है, और वह है—'कुछ नहीं।' क़ैदखानेमें कुछ सुधार हो ही नहीं सकता। केवल कुछ महत्त्वहीन सुधारोंको छोड़कर जेलखानोंकी कुछ भी उन्नति नहीं की जा सकती। उसके लिए तो केवल एक ही उपाय है—वह है जेलखानोंको नष्ट कर देना।

मैं तो यह प्रस्ताव करूँगा कि प्रत्येक जेलखानेका इंचार्ज एक-एक पेस्टालोज्ज़ी मुक़र्रर कर दिया जाय। पेस्टालोज्ज़ी एक मशहूर स्विस-शिक्षक था। वह घरसे निकाले हुए आवारा लड़कोंको लेकर पालता था और उन्हें शिक्षा देकर उत्तम नागरिक बना देता था। मैं तो यह भी कहूँगा कि आजकलके जेलके पहरेदारोंमें भूतपूर्व सैनिक और पुलिसमैन हुआ करते हैं। इनको अलग करके उनके स्थानमें साठ पेस्टालोज्ज़ी नियत कर दिये जायँ। यह महान् स्विस-शिक्षक तो निश्चय ही जेलका पहरेदार बननेसे इनकार कर देगा, क्योंकि जेलोंका आधारभूत सिद्धान्त ही ग़लत है। वह लोगोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लेता है। जब तक आप लोगोंकी स्वतन्त्रता हरण करते रहेंगे, तब तक आप उनका सुधार नहीं कर सकते। आप केवल 'पुराने पापी' अपराधियों ही की सृष्टि करते रहेंगे। मैं यह बात आगे सिद्ध करूँगा।

अपराधीगण जेलके भीतर और बाहर

पहली बात तो यही ले लीजिए कि कोई भी अपराधी यह माननेके लिए तैयार नहीं है कि उसे जो सज़ा मिली है, वह न्यायोचित है। केवल यह बात ही हमारी न्याय-प्रणालीको कलंकित सिद्ध करती है। जेलमें किसी क़ैदी या किसी बड़े भारी जुआचोरसे बात कीजिये। वह कहेगा—"हम लोग छोटे-छोटे जुआचोर पकड़कर यहाँ भेज दिये जाते हैं, परन्तु बड़े-बड़े जुआचोर मजेमें स्वतंत्र घूमते हैं, और साधारण जनता उनकी इज्ज़त करती है।" आप जानते हैं कि बहुतसी ऐसी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ मौजूद हैं, जो केवल ग़रीबोंका आखिरी पैसा लूटनेके लिए ही बनी हैं, और जिनके संस्थापकगण क़ानूनके फन्देसे बचते हुए इन ग़रीबोंके पैसेको लूटकर अलग हो जाते हैं। आप ऐसी कम्पनियोंके लिए क्या जवाब देंगे? शेयर निकालनेवाली अनेकों कम्पनियों, उनके झूठे नोटिसों और भारी जुआचोरियोंकी बातें हम सब जानते हैं। ऐसी दशामें हम लोग क़ैदीको इसके सिवा क्या जवाब दे सकते हैं कि वह सच कहता है?

अथवा एक दूसरे आदमीको ले लीजिये। उसने पैसोंकी एक गुल्लक चुराई है। वह कहेगा—"मैं काफ़ी चालाक न था; बस, इतनी ही बात थी।" आप उसके इस कथनका क्या जवाब देंगे? क्योंकि आप जानते हैं कि अनेकों बड़ी-बड़ी जगहोंमें कैसे-कैसे काण्ड हुआ करते हैं। बड़े-बड़े भयंकर काण्डोंका भंडाफोड़ होनेपर आप देखते हैं कि बड़े-बड़े अपराधी भी अकसर 'निरपराध' कहकर छूट जाते हैं। हम लोगोंने कितने बार क़ैदियोंको यह कहते सुना होगा—"बड़े चोर तो वे हैं, जिन्होंने हम लोगोंको यहाँ क़ैद कर रखा है, हम लोग तो छोटे चोर हैं।" जब आप यह जानते हैं कि बड़े-बड़े व्यापारों और अन्य आर्थिक मामलोंमें बड़ी-बड़ी जुआचोरियाँ हुआ करती हैं। जब आप यह जानते हैं कि धनी समाजका केवल-मात्र आधार प्रत्येक सम्भव उपायसे 'हाय पैसा, हाय पैसा' चिल्लाना है; तब भला बताइये कि आप क़ैदियोंके उपर्युक्त कथनमें मीन-मेष कैसे कर सकते हैं? संसारमें ईमानदार (धनिकोंकी परिभाषाके अनुसार ईमानदार) और अपराधी लोग रोज़ ही हज़ारों संशयात्मक व्यापार किया करते हैं। यदि आप उन सब व्यापारोंकी परीक्षा करेंगे, तो आपको विश्वास हो जायगा कि जेलखाने अपराधियोंके लिए नहीं हैं, बल्कि वे मूर्खोंके लिए हैं। चालाक अपराधी सदा क़ानूनकी गिरफ्तके बाहर रहकर मज़ा किया करते हैं, मगर बेचारे कम चालाक लोग क़ानूनके पंजेमें फँसकर जेलकी हवा खा जाते हैं। यह तो हुई जेलके बाहरकी दशा। अब रही जेलके भीतरकी दशा, सो उसके लिए अधिक कहना फ़िज़ूल है। हम लोग अच्छी तरह जानते हैं कि वह कैसी है। चाहे खानेके सम्बन्धमें हो, चाहे रिआयतोंके सम्बन्धमें हो, अमेरिकासे एशिया तक आपको क़ैदी लोग यही एक बात कहते हुए मिलेंगे—"सबसे बड़े चोट्टे हम लोग नहीं हैं; बल्कि वे हैं, जिन्होंने हमें यहाँ क़ैद कर रखा है।"

जेलखानेकी मेहनत

बेकारीके दुष्परिणामोंको सभी जानते हैं। कामसे मनुष्यको आराम मिलता है, लेकिन काम काम भी तो भिन्न प्रकारके होते हैं। एक तो स्वतन्त्र आदमीका काम होता है, जिसे वह अपने व्यक्तित्वका अंश समझता है, और दूसरा एक गुलामका काम होता है, जो उसकी आत्माका पतन करता है। क़ैदी लोग जो काम करते हैं, वह अनिच्छा-पूर्वक किया जाता है। वह केवल और अधिक दण्डके डरसे किया जाता है। वे लोग जो काम करते हैं, उसमें उनके मस्तिष्ककी शक्तिका उपयोग नहीं होता, इसलिए उस काममें उन्हें कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता। इसके अलावा उनकी मेहनतकी जो मज़दूरी उन्हें मिलती है, वह भी इतनी कम कि जिससे उनके काम भी उन्हें एक प्रकारका दण्ड दिखलाई देता है।

मेरे अराजकतावादी (अनार्किस्ट) मित्र क्रैवूके जेलखानेमें

सीपके बटन बनाते थे। उन्हें दस घंटेकी कठिन मेहनतकी मजदूरी बारह सेन्ट मिलती थी। इस बारह सेन्टमेंसे भी चार सेन्ट सरकार अपने पास जमा कर लेती थी। इस कठिन मेहनत और तुच्छ वेतनको देखकर आप उन अभागे क़ैदियोंकी निराशाका सहज ही अनुमान कर सकते हैं। हफ्ते-भरके हाड़ तोड़ परिश्रमके बाद जब उन्हें ३६ सेन्ट वेतन मिलता है, तो उनका यह कहना बिलकुल ठीक है कि 'वे लोग, जिन्होंने हमें यहाँ—जेलमें—बन्द कर रखा हैं, असली चोट्टे हैं, हम लोग नहीं।'

सामाजिक सम्पर्क तोड़ देनेका फल

जेलके क़ैदीका समस्त बाहरी संसारके जीवनसे सम्बन्ध टूट जाता है। ऐसी दशामें उसमें सर्वसाधारणकी भलाईके निमित्त कार्य करनेकी प्रेरणा कैसे उत्पन्न हो सकती है? जिन लोगोंने जेलखानेकी पद्धति बनाई है, उन्होंने अपनी निर्दयताको सुन्दर रूप देनेके लिए क़ैदीका समाजसे सब सम्पर्क तोड़ दिया है। इंग्लैण्डमें क़ैदीके स्त्री-बच्चे उसे तीन मासमें एक बार देख सकते हैं। उन्हें जिस प्रकार पत्र लिखनेकी इजाज़त है, वह एकदम बेहूदा है। समय समयपर अधिकारीवर्ग मानव-स्वभावकी भी उपेक्षा करके क़ैदियोंको चिट्ठीकी जगह केवल एक छपे हुए फार्मपर ही दस्तख़त करनेकी इजाज़त देते हैं। किसी क़ैदीपर यदि कोई सबसे उत्तम प्रभाव पड़ सकता है, यदि कोई चीज़ उसके जीवनके अन्धकारमें प्रकाशकी किरण ला सकती है, तो वह है जीवनका कोमल अंश, वह उसके सगे-सम्बन्धियोंका प्रेम है, और हमारी मौजूदा जेल-प्रणालीमें इसीको बाक़ायदा रोका जाता है।

क़ैदीका जीवन शुष्क जीवन है। उसका स्रोत सदा एक-सा बहा करता है। उसमें न तो उत्साह और उच्छ्वास होता है और न भाव-तरंग। उसके हृदयकी समस्त कोमल वृत्तियाँ शीघ्र ही बेकार हो जाती हैं। दस्तकारीगर जो अपने कामसे बड़ा प्रेम रखते थे, उन्हें जेलमें रहकर अपने काममें कोई मज़ा नहीं आता। उनकी शारीरिक शक्ति भी धीरे-धीरे ग़ायब हो जाती है।

उनके दिमाग़में किसी बातपर लगातार ध्यान देनेकी शक्ति नहीं रह जाती। जेलमें रहकर क़ैदीका विचार उतनी तेज़ीसे नहीं दौड़ता; कम-से-कम वह अब किसी चीज़पर देर तक जम नहीं सकता। उनके विचारोंकी गम्भीरता जाती रहती है। मेरी समझमें स्नायुविक शक्तिके ह्रासका सबसे बड़ा कारण विभिन्नताकी कमी है। साधारण जीवनमें हमारे दिमाग़पर प्रतिदिन हज़ारों प्रकारकी आवाज़ों और रंगोंकी छाप पड़ा करती है। हज़ारों छोटी-छोटी बातें हमारी चेतनापर प्रभाव डालकर मस्तिष्ककी शक्तिको बल प्रदान करती रहती हैं, परन्तु क़ैदीके दिमाग़में आघात करनेके लिए ये कुछ भी नहीं होतीं। उसके हृदयपर छाप डालनेवाली बातें दो-चार ही होती हैं, जो सदा एक ही सी हुआ करती हैं।

इच्छा-शक्तिका सिद्धान्त

जेलोंमें अध:पतनका एक और भी कारण है। हमारे माने हुए नैतिक नियमोंके उल्लंघनका एक प्रधान कारण कहा जा सकता है—इच्छा-शक्तिकी कमी। जेलके अधिवासियोंमें अधिकांश वे लोग हैं, जिनमें इतनी दृढ़ इच्छा-शक्ति नहीं थी कि वे अपने लोभको संवरण कर सकते, अथवा जो अपने क्षणिक आवेशको रोक सकते। जेलखानोंमें, मठोंके (Convent) समान मनुष्यकी इच्छा-शक्तिको मार देनेका प्रत्येक प्रयत्न किया जाता है। उसे किसी भी बातमें निर्वाचनकी स्वतन्त्रता नहीं है। जिन अवसरोंपर वह अपनी इच्छा-शक्तिका उपयोग कर सकता है, वे बहुत कम और बहुत क्षणिक होते हैं। उसका समस्त जीवन पहले ही से क़ानून-क़ायदोंसे जकड़ा होता है। उसे उनकी धारके साथ बहना पड़ता है। उसे कठोर दण्डके भयसे आज्ञाका पालन करना पड़ता है।

ऐसी दशामें जेलखाने आनेके पूर्व क़ैदीमें थोड़ी-बहुत जो कुछ इच्छा-शक्ति होती है, वहाँ पहुँचकर वह भी ग़ायब

हो जाती है। जब वह जेलकी दीवारोंसे छूटकर स्वतन्त्र होगा और जीवनके अनेक प्रलोभन जादूकी भाँति उसके सामने आकर उपस्थित होंगे, तब भला उसमें वह शक्ति कहाँसे आयगी, जो उसे उन प्रलोभनोंको रोक सके ? यदि कोई व्यक्ति वर्षों तक अपने नियन्त्रण करनेवालोंके हाथका खिलौना रहा है और उसकी तमाम अन्तःशक्ति नष्ट कर दी गई है, तो किसी आवेशयुक्त क्षणमें उसमें वह शक्ति कहाँसे आयगी, जो उसे रोक सके ? मेरी समझमें केवल यही बात ही हमारे सम्पूर्ण दण्ड-विधानका—जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके अपहरणपर स्थित है—सबसे भयंकर कलंक है।

सभी जेलोंका एक ही सार है—यानी व्यक्तिगत इच्छाको दबा देना। इसका आरम्भ कैसे हुआ, यह बात आसानीसे समझमें आ सकती है। इसका उत्थान अधिकारियोंकी इस इच्छासे हुआ है कि कम-से-कम पहरेदारोंके द्वारा अधिकसे अधिक क़ैदियोंकी देखभाल की जा सके। जेलके अधिकारियोंका आदर्श यह है कि केवल एक पहरेदारके द्वारा बिजलीका बटन दबाते ही हज़ारों चलती-फिरती मशीनें उठें, काम करें, खायें-पियें और सो रहें। फिर बजटमें भी तो किफ़ायत होनी चाहिए, मगर इस बातपर कोई भी ध्यान नहीं देता कि जेलसे निकलनेपर वे लोग जो मशीन बना डाले जाते हैं, उस ढंगके मनुष्य नहीं रह जाते, जैसा समाज चाहता है। जब कोई क़ैदी जेलसे छूटकर आता है, तो पुराने साथी उसकी राह देखते हुए मिलते हैं। वे उसे बन्धु-भावसे अपनाते हैं और वह पुनः उसी धारामें पड़ जाता है, जिसमें बहकर पहली बार जेलखाने पहुँचा था। छूटे हुए क़ैदियोंकी रक्षाके लिए जो संस्थाएँ होती हैं, वे कुछ नहीं कर सकतीं।

क़ैदीके पुराने साथी उसके लौटनेपर उसका जैसा स्वागत करते हैं और रक्षा-संस्थाओंके उदारहृदय लोग उसका जैसा स्वागत करते हैं—इन दोनोंमें भी बड़ा-भारी अन्तर है! भला, बताइये कि इन दोनोंमें से कौन उसे अपने घरपर निमन्त्रित करके कहेगा—"लो, यह रहनेके लिए कमरा है और यह काम है। तुम हमारे साथ एक मेज़पर बैठो और कुटुम्बीकी भाँति रहो।" जेलसे छूटा हुआ व्यक्ति मित्रतासे बढ़ाये हुए हाथको खोजता हुआ आता है, मगर समाज—जिसने उसे भरसक अपना शत्रु बनाया है और जिसने उसमें जेलके तमाम दोष उत्पन्न कर दिये हैं—उसे दुत्कार देता है। वह उसे ताड़ित करके (सज़ा देकर) पुनः अपराधी बना देता है।

जेलके कपड़ों और पाबन्दियोंका प्रभाव

अच्छे वस्त्रोंका जो प्रभाव पड़ता है, उसे सब जानते हैं। यदि किसी जानवरको कोई चीज़ हास्यास्पद बना देती है, तो उसे भी अपने सजातीयोंके सामने उपस्थित होनेमें लज्जा आती है। यदि किसी बिल्लीको कोई काला और पीला रंग दे, तो वह अन्य बिल्लियोंके साथ मिलने-जुलनेका साहस न करेगी, लेकिन मनुष्य जिन क़ैदियोंको सुधारनेका ढोंग करता है, उन्हें पागलोंके-से कपड़े पहननेको देता है।

अपने सम्पूर्ण बन्दी-जीवनमें क़ैदियोंके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है, जिसके प्रति उसके मनमें घृणा हो। जिन आदरसूचक बातोंके मनुष्य-मात्र अधिकारी हैं, उनमेंसे एक भी क़ैदीके प्रति प्रदर्शित नहीं की जातीं। वह तो एक वस्तुके—एक नम्बरके—समान है। उसके साथ नम्बर पड़ी हुई चीज़के समान व्यवहार किया जाता है। मनुष्यकी सबसे महान् मानवी इच्छा है किसी दूसरे मनुष्यसे बात करना। यदि क़ैदी अपनी इस इच्छाको पूरी करता है, तो वह जेलके नियमोंको भंग करता है। जेल जानेके पहले चाहे उसने कभी झूठ न बोला हो या कभी धोखा न दिया हो, पर जेलमें आकर वह इतना अधिक झूठ बोलना और धोखा देना सीख जाता है कि वे उसके स्वभावके अंश हो जाते हैं।

जो लोग इस झूठ और दग़ाबाज़ीके लिए तय्यार नहीं होते, उनके ऊपर बुरी बीतती है। यदि कोई व्यक्ति खाना-तलाशीको अपमान-जनक समझता है, यदि किसी आदमीको जेलका भोजन बेस्वाद लगता है, यदि उसे पहरेदारोंका तम्बाकू चुराकर बेचना बुरा मालूम होता है,

यदि वह अपनी रोटी अपने साथीको बाँट देता है, यदि उसमें अभी इतना आत्म-सम्मान बाक़ी है कि उसे अपमानपर क्रोध आ जाय, यदि उसमें इतनी ईमानदारी है कि वह नीचतापूर्ण षड्यन्त्रोंके प्रति विद्रोह कर सके, तो उसके लिए जेलख़ाना नरक बन जाता है। वह या तो काल-कोठरीमें सड़नेके लिए भेज दिया जायगा, अन्यथा उसपर उसकी शक्तिसे अधिक काम लाद दिया जायगा। जेलके नियमोंकी पाबन्दीमें ज़रासी भी भूल होनेसे उसे कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जायगी, और एक सज़ाके बाद दूसरी सज़ा मिलती जायँगी। अकसर अत्याचारोंके मारे उसे पागल हो जाना पड़ता है। यदि वह जीता-जागता जेलख़ानेसे बाहर निकल आवे, तो समझ लीजिये कि वह बड़ा क़िस्मतवर है।

जेलख़ानेके पहरेदार

अख़बारोंमें यह लिख देना कि जेलख़ानेके पहरेदारोंपर कड़ी निगाह रखनी चाहिए और जेलर लोग भले आदमियोंमेंसे चुने जाने चाहिये—यह सब बहुत आसान है। आदर्श शासन-पद्धतियोंके काल्पनिक विधान बनानेसे बढ़कर आसान कोई बात नहीं है, लेकिन आदमी आदमी ही रहेगा—चाहे पहरेदार हो या क़ैदी। जब इन पहरेदारोंको अपना सम्पूर्ण जीवन इस कृत्रिम परिस्थितिमें बितानेके लिए बाध्य होना पड़ता है, तो उन्हें उसका फल भी भुगतना पड़ता है। वे भड़भड़िया हो जाते हैं। केवल मठोंको छोड़कर और कहीं भी ओछे षड्यन्त्रोंकी ऐसी अधिकता नहीं रहती, जैसी जेलोंमें। संसारमें और कहीं भी कलंककी बातों और झूठे क़िस्सोंका इतना विकाश नहीं होता, जितना जेलके पहरेदारोंमें।

आप यदि किसी व्यक्तिको कोई शासन-अधिकार दें, तो वह अधिकार उसे पतित किये बिना नहीं रह सकता। वह व्यक्ति उस अधिकारका दुरुपयोग करेगा। यदि उसका कार्य-क्षेत्र संकुचित हुआ, तो वह अपने अधिकारका दुरुपयोग करनेमें और भी कम कुण्ठित होगा और वह अपनी शक्तिको और भी अधिक समझेगा। पहरेदारोंको अपने दुश्मनोंके बीचमें रहना पड़ता है, अतः वे दयालुताके आदर्श नहीं बन सकते। क़ैदियोंके गुटके विरोधमें जेलरोंका गुट हुआ करता है! जेलकी संस्था ही ऐसी है, जो उन्हें ओछे स्वभावका नीच अत्याचारी बना देती है। यदि आप उनके स्थानमें पेस्टोलोज़्ज़ीको भी नियत कर दें, तो वह भी थोड़े दिन बाद जेलका पहरेदार ही बन जायगा।

क़ैदीके मनमें समाजके प्रति विद्वेषके भाव शीघ्र ही जाग्रत हो जाते हैं। वह उन लोगोंको—जो उसे पीड़ित करते हैं—घृणा करनेका आदी हो जाता है। वह संसारको दो भागोंमें विभाजित कर देता है। एकमें वह स्वयं अपनेको और अपने साथियोंको समझता है, और दूसरेमें वह तमाम बाहरी दुनियाको समझता है। जेलके पहरेदारों और उसके अफ़सरोंको वह दूसरे भागका प्रतिनिधि समझता है। संसारके समस्त मनुष्योंके ख़िलाफ़—जो कोई भी जेलका कपड़ा नहीं पहनता, उसके ख़िलाफ़—क़ैदियोंका एक गुट बन जाता है। वह समझता है कि वे सब उसके शत्रु हैं, और उन शत्रुओंको धोखा देनेके लिए जो कुछ भी किया जाय, उचित है।

जैसे ही क़ैदी जेलसे छूटकर आता है, वैसे ही वह अपने उपर्युक्त सिद्धान्तको कार्यमें परिणत करने लगता है। पहले तो उसने बिना समझे-बूझे अपराध किया था, मगर अब अपराध करना उसका सिद्धान्त बन जाता है। प्रसिद्ध लेखक ज़ोलाके शब्दोंमें उसकी एक यही धारणा होती है—"ये ईमानदार आदमी कैसे बदमाश हैं।"

यदि क़ैदियोंपर पड़नेवाले जेलके समस्त प्रभावोंपर हम विचार करें, तो हमें यह निश्चय हो जायगा कि वे प्रभाव मनुष्यको अधिकाधिक सामाजिक जीवनके अयोग्य बनाते हैं। दूसरी ओर इन प्रभावोंमेंसे कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसकी नैतिक वृत्तियोंको ऊपर उठा सके, या उसके जीवनमें उच्चभाव भर सके। इसके अलावा हम यह भी देख चुके हैं कि वे प्रभाव उसके अन्य अपराध करनेसे भी

नहीं रोक सकते, इसलिए जिन उद्देश्योंके लिए वे उपाय बनाये गये हैं, उनमें से वे एकको भी पूरा नहीं करते।

कैदियोंके साथ क्या करना चाहिए ?

इसलिए अब यह सवाल उठाना चाहिए कि—"जो लोग क़ानून-भंग करते हैं, उनके साथ क्या करना चाहिए ?" क़ानूनसे मेरा मतलब किताबी क़ानूनोंसे नहीं है। वे तो एक दुखदायी—अतीत दुखदायी भूतकालकी कष्टप्रद विरासत हैं। क़ानूनसे मेरा मतलब उन नैतिक सिद्धान्तोंसे है, जो हम लोगोंमेंसे प्रत्येकके हृदयपर अंकित हैं।

एक समय था, जब वैद्यक या डाक्टरीका उद्देश्य केवल दवा देना-मात्र था। वैद्योंने अंधेरेमें टटोल-टटोलकर अपने अनुभवसे कुछ औषधियाँ जान ली थीं। वे केवल उन्हींको देना जानते थे, मगर आजकल वैद्योंका दृष्टिकोण एकदम बदल गया है। आजकल उनका उद्देश्य केवल रोगोंको अच्छा करना ही नहीं है, बल्कि रोगोंको होनेसे रोकना है। आजकल सफाई ही सबसे अच्छी दवा समझी जाती है।

हम लोग अब तक जिसे अपराध कहते हैं, हमारी सन्तान उसे आगे चलकर 'सामाजिक व्याधि' के नामसे पुकारेगी। हमें इस सामाजिक व्याधिके लिए भी वही करना पड़ेगा, जो हम शारीरिक व्याधिके लिए करते रहे हैं। इस रोगको होनेसे रोकना ही उसका सर्वश्रेष्ठ इलाज है। समस्त आधुनिक चिन्ताशील व्यक्ति जिन्होंने 'अपराधों'पर विचार किया है, इसी परिणामपर पहुँचे हैं। इन व्यक्तियोंके प्रकाशित किये हुए समस्त ग्रन्थोंमें इस बातका पूरा मसाला मौजूद है कि हम लोगोंको उन लोगोंके प्रति—जिन्हें समाजने अब तक बड़ी कायरतासे पंगु बना रखा है, क़ैद कर रखा है या फाँसीपर लटका दिया है—एक नवीन भाव ग्रहण करना चाहिए।

अपराधोंका कारण

समाज-विरोधी कार्योंके—जो अपराधके नामसे पुकारे जाते हैं—होनेके कारण तीन प्रधान श्रेणियोंके होते हैं। वे श्रेणियाँ सामाजिक, शरीर-धर्म-सम्बन्धी और भौतिक हैं। इनमें से मैं पहले अन्तिम कारणपर विचार करूँगा। यद्यपि इन कारणोंका ज्ञान लोगोंको कम है, लेकिन उनके प्रभावमें कोई सन्देह नहीं है।

भौतिक कारण

जब हमारा कोई मित्र चिट्ठी लिखकर उसपर पता लिखे बिना ही उसे डाकखानेमें डाल देता है, तो हम कहते हैं, यह एक दुर्घटना है। यह तो ऐसी बात हुई जिसका पहले कभी ख़याल ही नहीं किया था। मगर असली बात यह है कि मानव-समाजमें ये दुर्घटनाएँ, ये अप्रत्याशित बातें वैसे ही नियमित रूपमें हुआ करती हैं, जैसे वे घटनाएँ, जिनका बहुत पहलेसे सोच-विचार किया जाता है। डाकमें छोड़े जानेवाले बिना पता लिखे हुए पत्रोंकी संख्या प्रतिवर्ष नियमित रूपसे ऐसी एकसी रहती है, जिसे देखकर आश्चर्य होगा। उनकी संख्यामें प्रतिवर्ष कुछ थोड़ी-बहुत घटी-बढ़ी हो सकती है, लेकिन यह घटा-बढ़ी बहुत ही थोड़ी होती है। इसका कारण लोगोंका भुलक्कड़पन है। यद्यपि यह भुलक्कड़पन एक अनिश्चित-सी बात जान पड़ती है, लेकिन दर असल वह भी ऐसे ही कड़े नियमोंके अधीन है, जैसे ग्रहोंकी चाल।

यही बात प्रतिवर्ष होनेवाली हत्याओंके लिए भी लागू है। पिछले वर्षके आँकड़ोंको लेकर कोई भी व्यक्ति यह भविष्य-वाणी कर सकता है कि यूरोपके फ़लाँ देशमें इस वर्ष लगभग इतनी हत्याएँ होंगी। यह भविष्यवाणी आश्चर्यजनक रीतिसे ठीक होती है।

हमारे कर्मोंपर भौतिक कारणोंका क्या प्रभाव पड़ता है, इसका पूर्ण विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ है, मगर यह मालूम हो गया है कि गर्मीमें मार-पीट आदिके मामले अधिक होते हैं और जाड़ेमें सम्पत्तिके विरुद्ध अपराधोंकी संख्या अधिक रहती है। प्रोफेसर इनरिको फेरीने ग्राफ-पेपरपर अपराधोंकी संख्याकी वक्र रेखा खींची है। यदि आप उस रेखाका टेम्परेचरकी वक्र-रेखाके साथ मिलान करें, तो यह साफ दिखाई दे जायगा कि अपराधोंकी वक्र-रेखा टेम्परेचरकी वक्र-रेखाके साथ उठती-गिरती है। तब आपको यह

मालूम हो जायगा कि मनुष्य कितना अधिक मशीनके समान है। मनुष्य अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्तिका गर्व किया करता है। पर वह टेम्परेचरकी घटा-बढ़ी आँधी-पानी तथा अन्य भौतिक बातोंपर कितना अधिक निर्भर करती है! जब ऋतु अच्छी हो, फसल भी भरपूर हुई हो और गाँववाले मजेमें हों, तो वे अपने झगड़ोंको मिटानेके लिए छुरीकी शरण कम लेंगे, परन्तु जब ऋतु अच्छी न हो और फसल खराब हो, तो उस समय गाँववाले चिन्तित होते हैं और उनके झगड़ोंका रूप अधिक भयंकर हो जाता है।

शरीर-धर्म-सम्बन्धी कारण

शरीर-धर्म-सम्बन्धी कारण—जो मस्तिष्ककी बनावट, पाचन-शक्ति और स्नायु प्रणालीपर निर्भर करते हैं—निश्चय ही भौतिक कारणोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पैतृक शक्तियों और शारीरिक संगठनका हमारे कर्मोंपर क्या प्रभाव पड़ता है, इस बातकी बड़ी खोजपूर्ण जाँच हो चुकी है, इसलिए हम इनके महत्त्वका काफी सही अन्दाज़ लगा सकते हैं।

सेसारे लोम्ब्रोसोका कथन है कि जेल-अधिवासियोंमें अधिकांशके मस्तिष्ककी बनावटमें कुछ दोष होता है। इस बातको हम तभी स्वीकार कर सकते हैं, जब हम जेलमें मरनेवालोंके दिमागों और जेलके बाहर दरिद्रतामें बुरी तरह जीवन व्यतीत करके मरनेवालोंके दिमागोंकी तुलना करें। उसने यह दिखलाया है कि निर्दयता-पूर्ण हत्या करनेवाले वे व्यक्ति होते हैं, जिनके दिमागोंमें कोई बड़ा दोष होता है। उसके इस कथनसे हम सहमत हैं, क्योंकि यह बात निरीक्षण द्वारा सिद्ध हो चुकी है, मगर जब लोम्ब्रोसो यह कहता है कि समाजको अधिकार है कि वह इन दोषपूर्ण मस्तिष्कवालोंके विरुद्ध कार्रवाई करे, तब हम उसका कथन माननेको तय्यार नहीं हैं। समाजको इस बातका कोई अधिकार नहीं है कि वह इन रोगी मस्तिष्क-वालोंको नष्ट कर दे। हम मानते हैं कि जो लोग ये क्रूर अपराध किया करते हैं, वे करीब-करीब दुर्बुद्धि—सिड़ी-से—होते हैं। मगर सभी सिड़ी तो खूनी नहीं होते।

राजमहलोंसे लेकर पागलखानों तक अनेकों कुटुम्बोंमें आपको सिड़ी लोग मिलेंगे, जिनमें वे सब लक्षण मौजूद हैं जो लोम्ब्रोसोके अनुसार 'अपराधी सनकियों' में विशेषतासे पाये जाते हैं। उनमें और फांसीपर चढ़नेवालोंमें यदि अन्तर है, तो केवल उस वातावरणका जिसमें वे रहते हैं। दिमागी बीमारियाँ निश्चय ही हत्या करनेकी प्रवृत्तिको उकसा सकती हैं, मगर यह अवश्यम्भावी नहीं है कि वे ऐसा करें ही। प्रत्येक बात उन परिस्थितियोंपर निर्भर करती है, जिनमें मानसिक रोगीको रहना पड़ता है।

इस सम्बन्धमें जितने तथ्य एकत्रित हो चुके हैं, उनसे प्रत्येक समझदार आदमी यह आसानीसे देख सकता है कि जिन लोगोंके साथ अपराधीकी भाँति व्यवहार होता है उनमेंसे अधिकांश किसी न किसी रोगसे पीड़ित हैं। इसलिए ज़रूरत इस बातकी है कि होशियारीसे उनका रोग दूर करके उन्हें अच्छा करनेकी कोशिश की जाय, न कि उन्हें जेलखानेमें—जहाँ उनका रोग और भी बढ़ जाता है—ठेल दिया जाय।

अगर हम लोग स्वयं अपने ही विचारोंका कड़ा विश्लेषण करें, तो हम देखेंगे कि समय-समयपर हमारे दिमागोंमें ऐसे अनेक विचार बिजलीकी तेज़ीसे दौड़ जाया करते हैं, जिनमें दुष्कर्मोंकी नींव डालनेवाले कीटाणु छिपे रहते हैं। साधारणतः हम लोग इन विचारोंको दुतकार देते हैं, लेकिन यदि हम ऐसी परिस्थितिमें हों, जिनमें इन विचारोंको अनुकूल प्रोत्साहन मिले, अथवा यदि हमारे अन्य भाव—जैसे प्रेम, दया, भ्रातृत्व-भाव आदि—इन क्रूर विचारोंका प्रतिकार न करें, तो ये विचार भी अन्तमें हमें अपराधोंमें ला घसीटेंगे। संक्षेपमें यही कहना चाहिए कि लोगोंको जेल पहुँचानेमें शरीर-धर्म-सम्बन्धी कारणोंका महत्त्वपूर्ण हाथ है, परन्तु यदि ठीक तौरसे देखिये, तो मालूम होगा कि ये कारण अपराधोंके कारण नहीं हैं।

मस्तिष्कके इन विकारोंकी शुरुआत हम सबमें पाई जाती है। हममेंसे अधिकांशको इस प्रकारका कोई-न-कोई रोग होता है, मगर जब तक बाहरी परिस्थितियाँ उसमें इन

रोगोंको बुराईकी ओर नहीं फेर देतीं, तब तक हम लोग जुर्म नहीं करते।

सामाजिक कारण

जब भौतिक कारण हमारे कर्मोंपर इतना ज़ोरदार प्रभाव डालते हैं और जब शरीर-धर्म सम्बन्धी कारण अकसर हमारे समाज-विरोधी कर्मोंके कारण हुआ करते हैं, तब यह बात सहजमें ही समझी जा सकती है कि हमारे अपराधोंके सम्बन्धमें सामाजिक कारणोंका कितना शक्तिशाली प्रभाव होगा। हमारे समयके सबसे अधिक दूरदर्शी और बुद्धि-सम्पन्न मस्तिष्कवाले महानुभव यह घोषित करते हैं कि प्रत्येक समाज-विरोधी अपराधके लिए सम्पूर्ण समाज दोषी है। यदि हमारे वीरों और प्रतिभाशाली व्यक्तियोंकी प्रतिभामें हमारा हिस्सा है, तो हमारे खूनियोंके दुष्कर्मोंमें भी हमारा भाग है। हमारे अपराधी जैसे हैं, उन्हें हम लोगों ही ने वैसा बनाया है।

सालके साल सहस्रों बालक हमारे बड़े शहरोंकी नैतिक तथा सांसारिक गन्दगीमें पलते हैं। उनका पालन-पोषण उन लोगोंके बीचमें होता है, जिन्हें रोज़ कुँआ खोदकर पानी पीना पड़ता है, और इसी कारण उनका नैतिक पतन हो चुका है। इन बच्चोंने कभी यह नहीं जाना कि अपना घर कैसा होता है। यदि आज वे किसी टूटे-फूटे झोंपड़ेमें हैं, तो कल सड़कपर पड़े दिखाई देंगे। जब हम देखते हैं कि बच्चोंकी इतनी बड़ी संख्या ऐसी बुरी दशामें पलती है, तो आश्चर्य इस बातका होना चाहिए कि उनमेंसे इतने थोड़े ही लोग क्यों डाकू और हत्यारे होते हैं। मुझे तो मानव-मात्रमें सामाजिक भावोंकी गहराई देखकर ताज्जुब होता है। खराब-से-खराब मुहल्लोंमें भी आपको मित्रताके भाव दिखाई देंगे। यदि यह न होता तो समाजके खिलाफ़ जेहाद बोलनेवालोंकी संख्या बहुत अधिक होती। यदि लोगोंमें मित्रताके भाव न होते, यदि उनमें हिंसाके प्रति विरोधी प्रवृत्ति न होती, तो हमारे शहरोंके बड़े-बड़े महलोंका एक पत्थर भी साबित न बचता।

यह तो हुई समाजकी निम्नतम सीढ़ीकी बात, परन्तु अब यह देखिये कि सड़कपर चलनेवाले वे समाजके समाजकी सबसे ऊपरवाली सीढ़ीपर क्या देखते हैं! उन्हें वहाँ संवेदनाशून्य और मूर्खतापूर्ण अय्याशी, सजी हुई दूकानें, धनका प्रदर्शन करनेवाला साहित्य, सम्पत्तिकी तृषा उत्पन्न करनेवाली धनकी उपासना और दूसरोंके मत्थे आनन्दसे मज़ा करनेकी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। वहाँका मूल मन्त्र है—"धनवान् बनो। तुम्हारे मार्गमें जो कुछ रुकावट डाले उसे नष्ट कर दो। जिन उपायोंसे जेल जाना पड़े, केवल उन उपायोंको छोड़कर, इसके लिए तुम जो उपाय चाहो, काममें लाओ।" शारीरिक मेहनतसे वे यहाँ तक घृणा करते हैं कि अधिकसे अधिक वे जमनास्टिक कर लेंगे या टेनिस खेल लेंगे, मगर फावड़ा या आरा छूना उन्हें गुनाह है। उनमें कठोर मेहनती भुजाएँ निम्नताका चिह्न समझी जाती हैं और रेशमी पोशाक उच्चताकी निशानी मानी जाती है।

स्वयं समाज रोज़ ही ऐसे लोगोंको उत्पन्न किया करता है, जो ईमानदारीसे परिश्रम करके जीवन बितानेके योग्य नहीं हैं और जिनमें समाज-विरोधी वासनाएँ भरी रहती हैं। जब उनके दुष्कर्मोंके साथ उन्हें आर्थिक सफलता भी प्राप्त हो जाती है, तो यही समाज उनकी प्रशंसाके गीत गाता है। और जब ये लोग 'सफल' नहीं होते, तो उन्हें जेल भेज देता है। जब सामाजिक क्रान्ति श्रम और पूँजीके पारस्परिक सम्बन्धको बदल देगी, जब काहिलोंका नाम न रह जायगा, जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी प्रवृत्तिके अनुसार सार्वजनिक भलाईके लिए काम किया करेगा, जब प्रत्येक बालकको उसकी आत्मा और मस्तिष्कके विकासके साथ-साथ हाथसे काम करना भी सिखाया जायगा, तब हमें जेलखानों, जल्लादों और जजोंकी ज़रूरत न रह जायगी।

मनुष्य तो अपने चारों ओरकी परिस्थितियोंका—जिनमें वह बढ़ता है और अपना जीवन व्यतीत करता है—फल हुआ करता है। यदि वह अपनेको सम्पूर्ण समाजका अंश समझनेका आदी हो जाय, यदि वह यह समझने लगे कि अगर वह किसीको कुछ हानि पहुँचायेगा, तो उस हानिका असर

अन्तमें ढंगपर भी पड़ेगा, तो नैतिक सिद्धान्तोंका उल्लंघन करनेवाले कार्योंकी संख्या बहुत कम रह जाय।

आजकल जितने कार्य अपराध कहकर दण्डनीय समझे जाते हैं, उनमें से दो-तिहाई सम्पत्तिके विरुद्ध होते हैं। यदि लोगोंको प्राइवेट सम्पत्ति रखनेका अधिकार उठा दिया जाय, तो वे गायब हो जायँ। अब रहे व्यक्तियोंके शरीरपर होनेवाले अत्याचार। सो यह सिद्ध हो चुका है कि लोगोंमें जैसे-जैसे सामाजिक भाव बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे वे भी घटते जाते हैं। यदि हम इन अपराधोंके फलपर आघात करनेके बजाय उनके कारणों—उनकी जड़—पर ही हमला करें, तो वे भी एकदम गायब हो जायँगे।

अपराधियोंको कैसे अच्छा किया जाय ?

अब तक दण्डकी संस्थाएँ—जो वकीलोंको इतनी प्यारी हैं—चार सिद्धान्तोंके मेलपर निर्भर थीं; पहला बाइबिलके बदला लेनेके सिद्धान्त, दूसरा मध्यकालीन शैतानका विश्वास, तीसरा आधुनिक वकीलोंकी डर उत्पन्न करनेकी नीति और चौथा सज़ाके द्वारा अपराधोंको रोकनेका विचार।

मैं यह नहीं कहता कि जेलखाने तोड़कर उनके स्थानमें पागलखाने बना दिये जायँ। ऐसी दुष्ट बात मेरे हृदयसे बहुत दूर है। पागलखाना भी तो एक तरहका जेलखाना है। कुछ उदार विचारवाले लोग कहते हैं कि जेलखानोंको ही क़ायम रखना ही चाहिए, मगर उनमें डाक्टरों और शिक्षकोंको नियत कर देना चाहिए। मेरे विचार उनके इस सिद्धान्तसे भी बहुत दूर हैं। असलमें क़ैदियोंको समाजमें आजकल जिस चीज़का अभाव है, वह है उनकी सहायताके लिए बढ़ाया हुआ हाथ। उन्हें समाजमें कोई ऐसा नहीं मिलता, जो बाल्यावस्थासे ही सरलता-पूर्वक मित्रताका हाथ बढ़ाकर उनकी उच्च मानसिक वृत्तियों और आत्माको विकसित करनेमें सहायता दे। शरीरकी बनावटमें दोष होनेके कारण या ख़राब सामाजिक दशाओंके कारण—जिन्हें स्वयं समाज लाखों आदमियोंके लिए उत्पन्न किया करता है—लोगोंकी इन उच्च मानसिक वृत्तियोंके स्वाभाविक विकासमें व्याघात पहुँचता है, और इसीलिए वे लोग अपराधी हो जाते हैं लेकिन यदि किसी व्यक्तिकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छीन ली जाय और उसे किसी भी कामको पसन्द करने या न करनेका अधिकार न रह जाय, तो वह अपने मस्तिष्क और हृदयकी उच्च वृत्तियोंको इस्तेमाल नहीं कर सकता। उनके लिए डाक्टरोंवाला जेलखाना या पागलखाना मौजूदा जेलोंसे भी ख़राब होगा। मनुष्योंकी उन बीमारियोंका—जिन्हें हम अपराध कहा करते हैं—केवल-मात्र इलाज मानवी बन्धुत्व भाव और स्वतन्त्रता है।

निःसन्देह प्रत्येक समाजमें—चाहे वह कैसी ही उत्तमतासे संगठित क्यों न हो—ऐसे मनुष्य अवश्य ही मिलेंगे, जो आसानीसे आवेशमें आ जायँगे और जो समय-समयपर समाज-विरोधी कार्य भी कर डालेंगे, लेकिन इसे रोकनेके लिए ज़रूरत है तो इस बात की कि उनके आवेशको स्वस्थकर राहपर लगाया जाय, वे उसे दूसरे ढंगपर निकाल सकें।

आजकल हम लोग बड़ा एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं। प्राइवेट सम्पति-प्रणालीने हमारे पारस्परिक सम्बन्धोंमें एक आत्मरत व्यक्तिवाद उत्पन्न कर दिया है। हम एक दूसरेको बहुत कम जानते हैं। हमें एक दूसरेके सम्पर्कमें आनेके मौक़े बहुत कम मिलते हैं। किन्तु हम देख चुके हैं कि इतिहासमें समष्टिवादी जीवनके उदाहरण—जिनमें लोग एक दूसरेसे अधिकसे अधिक घनिष्ठतासे बँधते हैं—मौजूद हैं, जैसे, चीनका 'सम्मिलित कुटुम्ब' या कृषक-संघ। वे लोग एक दूसरेको सचमुच जानते हैं। परिस्थितियोंके दबावसे उन्हें एक दूसरेको सांसारिक और नैतिक सहायता देनी ही पड़ती है।

आदि कालमें कौटुम्बिक जीवन समिष्टिवादके ढंगका था। वह अब लोप हो गया है। अब उसके स्थानमें एक नये कौटुम्बिक जीवनका प्रादुर्भाव होगा, जो समान आकांक्षाओं-वाले आदमियोंका कुटुम्ब होगा।

इस कुटुम्बमें लोगोंको मजबूरन एक दूसरेको जानना पड़ेगा, एक दूसरेकी सहायता करनी पड़ेगी और प्रत्येक

अवसरपर उन्हें एक दूसरेको नैतिक सहारा देना पड़ेगा। इस पारस्परिक अवलम्बनसे अधिकांश समाज-विरोधी कार्य—जिन्हें हम आज देखते हैं—रुक जायँगे।

लेकिन यह कहा जा सकता है कि फिर भी समाजमें बहुतसे लोग ऐसे बने ही रहेंगे—आप चाहें तो उन्हें रोगी कह सकते हैं—जो समाजके लिए खतरनाक होंगे। क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम लोग उनसे छुटकारा पा लें, या कम-से-कम उन्हें औरोंको हानि पहुँचानेसे रोकें?

कोई भी समाज—चाहे कितना ही कम समझ क्यों न हो—इस ऐसे ऊट-पटाँग समाधानको मंजूर नहीं करेगा। उसका कारण भी सुन लीजिए। पुराने ज़मानेमें यह समझा जाता था कि पागलोंपर शैतान आता था; इसलिए उनके साथ उसीके अनुसार वर्ताव भी किया जाता था। वे लोग जंगली पशुओंकी भाँति जंजीरोंमें जकड़कर अस्तबलकी दीवारोंमें बाँध दिये जाते थे। मगर महान् क्रान्तिकारी पाइनेलने उनकी जंज़ीरें खोलकर उनके साथ भाईकी भाँति व्यवहार करनेकी चेष्टा की। पागलोंके रक्षकोंने कहा—"वे सब तुम्हें निगल जायँगे।" मगर पाइनेलने उनकी बातोंकी परवा न की और साहस-पूर्वक इन पागलोंको अपनाया। फल यह हुआ कि वे लोग, जो पहले जानवर समझे जाते थे, वे सब पाइनेलके चारों ओर आकर एकत्रित होने लगे। इस प्रकार उन लोगोंने अपने व्यवहारसे यह सिद्ध कर दिया कि चाहे मनुष्यकी बुद्धि रोगसे आच्छादित क्यों न हो गई हो, फिर भी मानव-स्वभावके उत्तम अंशोंपर विश्वास करना ठीक है। इसके बाद ही पाइनेलका आन्दोलन सफल हो गया, और तभीसे पागलोंको जंज़ीरमें बाँधना बन्द हो गया।

इसके बाद बेल्जियमके घील नामक एक छोटे ग्रामके किसानोंने कुछ और भी अच्छी बात निकाली। उन्होंने कहा—"तुम लोग अपने पागलोंको हमारे यहाँ भेज दो। हम उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे देंगे।" उन्होंने उन्हें अपने कुटुम्बोंमें शामिल कर लिया और उन्हें अपनी मेज़पर स्थान दिया। वे मौक़े-मौक़ेपर उन्हें अपने खेत जोतनेमें साथ ले जाने लगे और नाच-तमाशेमें उन्हें सम्मिलित करने लगे। उनका कथन था—"हम लोगोंके साथ खाओ, पियो और नाच-तमाशेमें सम्मिलित हो। तुम्हारी तबीयत चाहे, तो काम करो, या मैदानमें दौड़ लगाओ। जो चाहो करो, तुम एकदम स्वतन्त्र हो।" बस, बेलजियमके किसानोंका यही सिद्धान्त और यही प्रणाली थी।

मैं यह आरम्भ-कालकी बात कहता हूँ। आजकल तो घीलमें पागलोंका इलाज एक खासा पेशा हो गया है। जब कोई बात पैसेके लिए पेशा बना डाली जाती है, तब उसमें कोई तत्त्व नहीं रह जाता। इस स्वतन्त्रताने जादू-जैसा असर किया। पागल लोग अच्छे हो गये। यहाँ तक कि उन लोगोंका जिनका विकार असाध्य था, व्यवहार भी मधुर हो गया और वे कुटुम्बके अन्य व्यक्तियोंकी भाँति शासन माननेके योग्य हो गये। रुग्ण मस्तिष्क तो सदा अस्वाभाविक रीतिसे काम करता था, मगर उन लोगोंका हृदय ठीक था। वे लोग कहने लगे कि यह एकदम जादूकी भाँति था। लोग कहने लगे कि रोगियोंका रोग-मोचन एक देवी और देवताकी कृपासे शान्त हुआ था, मगर असलमें देवी स्वतन्त्रता देवी थी और देवता था, खेतोंका काम और भाईचारेका व्यवहार था।

माड्स्ले कहता है—"पागलपन और अपराधके बीचमें एक विस्तृत क्षेत्र है। इस क्षेत्रके एक सिरेपर स्वतन्त्रता और बन्धुभावने अपना जादू कर दिखाया है, अतः उसके दूसरे सिरेपर भी वे वैसा ही कर दिखायेंगे।

परिणाम

जेलखाने समाज-विरोधी कर्मोंको होनेसे नहीं रोक सकते वे उन कार्योंकी संख्यामें वृद्धि करते हैं। वे जेलखाने उन लोगोंका, जो उनमें जाते हैं, कोई सुधार नहीं कर सकते। जेलोंमें चाहे जितना सुधार किया जाय, वे सदा क़ैदखाने ही रहेंगे। उनका वातावरण मठोंकी भाँति कृत्रिम ही रहेगा, और वे क़ैदियोंको उत्तरोत्तर सामाजिक जीवनके अयोग्य बनाते

रहेंगे। जेलखाने अपने उद्देश्यको पूरा नहीं करते। वे समाजका पतन करते हैं। उनका नाम ही मिटा देना चाहिए। वे पाखण्डपूर्ण उदारता-मिश्रित बर्बरताके अवशेष हैं।

जेलखाने मनुष्यकी मक्कारी और कायरताके कीर्तिस्तम्भ हैं। क्रान्तिका सबसे पहला कर्तव्य इन जेलोंको तोड़ना होगा। स्वतन्त्र आदमियोंमें—जिन्हें पारस्परिक सहायता देनेकी स्वाभाविक शिक्षा मिल चुकी है—तथा समतापूर्ण समाजमें, समाज-विरोधी कार्योंसे डरनेकी आवश्यकता ही रह जायगी। बहुत बड़ी संख्यामें इन कार्योंके होनेका कोई कारण ही न रह जायगा। जो थोड़े-बहुत कार्य बच रहेंगे, वे आरम्भ ही में दबा दिये जायँगे।

कुछ लोगोंमें बुराइयोंकी ओर प्रवृत्ति होती है। क्रान्तिके पश्चात वर्तमान समाज उन्हें हम लोगोंके सिपुर्द कर देगा। तब यह हमारा काम होगा कि हम उन्हें अपनी उन प्रवृत्तियोंका व्यवहार करनेसे रोकें। यह देखा जा चुका है कि यदि समाजके सब लोग ऐसे अपराध करनेवालोंके विरुद्ध सगठित हो जायँ तो ये अपराध आसानीसे रोक जा सकते हैं।

यदि इन मामलोंमें हम लोग सफल न हों, तब भी बन्धुभाव और नैतिक सहायता ही उनके सुधारके क्रियात्मक उपाय रहेंगे।

यह कोई काल्पनिक बात नहीं है। इक्का दुक्का लोग इसे करके दिखा चुके हैं। उस समय यह एक आम बात हो जायगी। वर्तमान नरक-प्रणालीकी अपेक्षा जो नये अपराधोंके लिए बड़ी उपजाऊ भूमि है—ये उपाय समाज-विरोधी कार्योंसे समाजकी रक्षा करनेमें कहीं अधिक शक्तिशाली होंगे।

इम्पीरियल प्रिफरेन्स

[लेखक :—अध्यापक शंकरसहाय सक्सेना, एम०ए०, बी०काम., विशारद]

आजकल ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इंगलैण्डकी शक्तिको भविष्यमें अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए दत्तचित हैं, विशेषकर यूरोपीय महायुद्धके बादसे उनकी समस्त शक्तियाँ इसी ओर झुक पड़ी हैं। अब ब्रिटेन इस बातका अनुभव करने लग गया है कि निकट भविष्यमें संसारकी समस्त शक्तियाँ उसके विरुद्ध काम करेंगी। अब उसे इस बातकी चिन्ता है कि उस समय वह किस प्रकार अपने विशाल साम्राज्यको तथा अपने बढ़े हुए व्यापारको बनाये रख सकेगा। यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि बीसवीं शताब्दीमें वही देश शक्तिशाली तथा उन्नत हो सकता है, जिसका व्यापार उन्नत हो। प्रत्येक देश चाहता है कि वह अपने कारखानोंमें वस्तुओंको बनाकर दूसरे देशोंमें बेचे। वैसे तो यह व्यक्तिगत व्यापारियोंका निजी कार्य है, परन्तु प्रत्येक देशकी सरकारें भी असंख्य धन व्यय करके अपने व्यापारियोंके लिए अच्छा क्षेत्र क्यों उत्पन्न कर रही हैं? संसारमें आज युद्धकी इतनी भयंकर आकांक्षा क्यों है? प्रत्येक बलवान राष्ट्र युद्ध-सामग्री बटोरनेमें पागल-सा क्यों दृष्टिगोचर हो रहा है? गत यूरोपीय महायुद्धके होनेका कारण क्या था? इन सब प्रश्नोंका उत्तर केवल यही है कि प्रत्येक देश निर्बल देशोंको अपना व्यापारिक क्षेत्र बनाकर उनका धन चूसना चाहता है। ग्रेट-ब्रिटेनकी महान् शक्ति अपूर्व वैभव तथा प्रतिष्ठा केवल व्यापारके उत्तम क्षेत्र हाथमें होनेपर ही अवलम्बित है। भारतवर्ष, प्रशान्त सागर द्वीप-समूह, आस्ट्रेलिया, मिस्र सुदान, दक्षिण-अफ्रिका तथा कनाडा इत्यादि देश इंगलैण्डके पुतलीघरोंके बने हुए मालकी खपतके केन्द्र हैं। परन्तु इनमें सबसे बड़ा केन्द्र भारतवर्ष ही है। यदि आज ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भारतको स्वराज्य देनेमें हिचकते हैं, यदि वे स्वतन्त्रता-संग्रामको कुचल डालनेका प्रयत्न करते हैं, तो केवल इसलिये कि उनके विचारमें भारतके स्वतन्त्र हो जानेपर वह ब्रिटेनके पुतलीघरोंका व्यापारिक क्षेत्र नहीं रहेगा। बहुतसे प्रतिष्ठित राज-कर्मचारियोंने तथा पत्र-सम्पादकोंने तो यह स्पष्ट कह दिया है कि ब्रिटेन भारतके क्षेत्रको कदापि नहीं छोड़ सकता, और भारतकी स्वतन्त्रताके

साथ-साथ यह क्षेत्र भी हाथसे निकल जायगा। यदि कभी ऐसा हो गया, तो ब्रिटेनके उद्योग-धन्धोंका पतन अवश्यम्भावी है। ब्रिटेनकी इस नीतिमें कोई विशेषता नहीं है। संयुक्तराज्य अमेरिकाके पूँजीपति दक्षिण-अमेरिकाको अपने मालकी खपतका क्षेत्र बना रहे हैं, और उस क्षेत्रपर एकाधिपत्य जमानेके लिए ही वे बार-बार कहते हैं—"अमरीका अमेरिकन लोगोंके लिए है (America for Americans)।" संयुक्तराज्य अमेरिकाकी सरकार यूरोपियन तथा अन्य देशोंके दक्षिण-अमेरिकाके सम्बन्धको बहुत सतर्क होकर देखती है। कारण यह है कि वहाँका व्यापारीवर्ग यह चाहता है कि दक्षिण-अमेरिकाका क्षेत्र हमारे हाथसे न निकल जाय। पश्चिमी औद्योगिक देशोंने एक अप्राकृतिक आर्थिक स्थिति उत्पन्न कर ली है, अर्थात् वे स्वयं अपने लिए खाद्य-पदार्थ उत्पन्न नहीं करते, वे अपने उपनिवेशोंकी प्रजासे यह काम लेते हैं और स्वयं पक्के मालको वहाँ बेचते हैं।

यह तो प्रथम ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष ग्रेट-ब्रिटेनके वैभव तथा आर्थिक उन्नतिका मुख्य कारण है, परन्तु महायुद्धके उपरान्त ग्रेट-ब्रिटेनकी समझमें यह बात भलीभाँति बैठ गई है कि यदि अपने उपनिवेशों और विशेषकर भारतवर्षमें उसने संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी, जापान आदिको अधिकार कर लेने दिया, तो फिर आर्थिक दृष्टिसे उसका पतन होना प्रारम्भ हो जायगा। वास्तवमें यह है भी सत्य। जर्मनी, अमेरिका तथा जापान अब ग्रेट-ब्रिटेनको व्यापारकी प्रतिस्पर्धामें संसारके केन्द्रोंसे निकाल रहे हैं। यदि भारतवर्षके वैदेशिक व्यापारके अंकोंपर दृष्टि डाली जाय, तो यह बात स्पष्ट मालूम हो जायगी कि महायुद्धके उपरान्त संयुक्तराज्य और जापानका भारतसे व्यापार बहुत-कुछ बढ़ गया है, और ग्रेट-ब्रिटेनका व्यापार कुछ कम हो गया है। गत महायुद्धके कारण जर्मनीका व्यापार बिलकुल नष्ट हो चुका था, परन्तु जर्मनी तो विज्ञानका केन्द्र है, उसने तुरन्त ही हाथ-पैर फैलाना आरम्भ कर दिया। इस समय वह जिस शीघ्रतासे अपने सस्ते और टिकाऊ मालको संसारके बाज़ारोंमें भेज रहा है, उससे तो यही ज्ञात होता है कि थोड़े ही समयमें वह फिर अपनी पुरानी स्थितिपर पहुँच जायगा। इन सब बातोंको देखकर ग्रेट-ब्रिटेन चौंक पड़ा है। उसने विचार किया है कि यदि इतने बड़े साम्राज्यको व्यापारिक केन्द्र बना लिया जाय और साम्राज्यके बाहरके देशोंको साम्राज्यमें व्यापारकी सुविधाएँ ही न दी जायँ, अथवा उनके मार्गमें रुकावटें डाली जायँ, तो फिर ग्रेट-ब्रिटेनको किसीका भय नहीं रह जाता। ब्रिटिश-साम्राज्यके उपनिवेश कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थ यथेष्ट परिमाणमें उत्पन्न करते हैं, और यदि कोई देश प्रतिद्वन्द्वता न कर सके, तो ब्रिटेनके कारखानोंके बने हुए मालको भी उनमें बड़ी सरलतासे खपाया जा सकता है। बस, इसी ध्येयको लेकर इम्पीरियल प्रिफरेंसका आन्दोलन आरम्भ किया गया है। वास्तवमें इम्पीरियल प्रिफरेंसका विचार तो पहलेसे ही हो रहा था। सन् १९०२ में उपनिवेशोंकी जो कान्फ्रेन्स हुई थी, उसमें इस आशयका प्रस्ताव भी पास हो गया था। यद्यपि ग्रेट-ब्रिटेनकी सरकार इस विचारसे सहमत अवश्य थी, परन्तु अबाध्य व्यापार (free trade) की नीतिके अनुसार इंग्लैण्ड तब तक अपने उपनिवेशोंको लाभ नहीं पहुँचा सकता था, जब तक वह साम्राज्यसे बाहरके मालपर कर न लगावे। इस कारण उस समय ग्रेट-ब्रिटेनने उसको स्वीकार नहीं किया था, यद्यपि कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्डके उपनिवेश आपसमें एक दूसरेके मालपर तथा ग्रेट-ब्रिटेनके मालपर कम टैक्स लगाने लगे थे। दक्षिण-अफ्रिका भी सहमत हो गया। यह परिस्थिति युद्धके पूर्वकी है, परन्तु यूरोपीय महायुद्धके पश्चात् ग्रेट-ब्रिटेनकी भी आँखें खुलीं और उसे साम्राज्यके व्यापारिक संगठन करनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इसी विचारको कार्यरूपमें लानेके लिए सन् १९१७ की साम्राज्य-युद्ध-परिषद्में इस आशयका एक प्रस्ताव भी पास किया गया—"अब वह समय आ गया है, जब साम्राज्यको खाद्य पदार्थों, कच्चे माल तथा मुख्य-मुख्य उद्योग-धन्धोंके लिए

बाहरी देशोंपर अवलम्बित न रहकर स्वावलम्बी बनना चाहिए। इस विचारको दृष्टिमें रखती हुई यह परिषद् यह प्रस्ताव करती है 'कि साम्राज्यका प्रत्येक देश साम्राज्यान्तर्गत अन्य देशोंके बने हुए मालको अधिक सुविधाएँ दे।''

ग्रेट-ब्रिटेनने भी अपने उपनिवेशोंके मालपर करका पाँचवा भाग कम कर दिया, और यह आन्दोलन इस वेगसे आगे बढ़ा कि लगभग सभी उपनिवेशोंने इसको स्वीकार कर लिया। यदि देखा जाय, तो इस आन्दोलनसे ग्रेट-ब्रिटेनका सबसे अधिक लाभ है, क्योंकि इसके द्वारा तमाम साम्राज्य उसके लिए सुरक्षित केन्द्र बन जायगा। साथ ही साथ वे उपनिवेश, जो इस आन्दोलनमें आगे बढ़ आये, वे भी इस आन्दोलनसे लाभ उठा सकते हैं। पहली बात तो यह है कि कनाडा, न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण-अफ्रिका ग्रेट-ब्रिटेनका ही विस्तृत स्वरूप है। दूसरे इन उपनिवेशोंका व्यापार अधिकतर साम्राज्यके ही देशोंसे है, परन्तु भारतवर्षकी स्थिति बिलकुल भिन्न है। भारतवर्षमें जो माल बाहरसे आता है, उसका दो-तिहाई ब्रिटिश-साम्राज्यसे आता है, और जो माल बाहर जाता है, उसका एक-तिहाई ब्रिटिश-साम्राज्यमें जाता है। दूसरी विशेष बात हमारे व्यापारकी यह है कि हम बाहरसे तो पक्का माल मँगाते हैं, परन्तु बाहरको अधिकतर कच्चा माल ही भेजते हैं। यद्यपि अब धीरे-धीरे कुछ पक्का माल भी बाहर जाने लगा है, परन्तु अभी ३० प्रतिशत ही पक्का माल बाहर जाता है। यह समस्त पक्का माल ब्रिटिश-साम्राज्यके बाहर जाता है; यदि इम्पीरियल प्रिफरेंसका सिद्धान्त भारतवर्ष भी मान ले, तो उसको कितनी आर्थिक क्षति उठानी पड़ेगी, इसपर बहुत कम लोगोंने विचार किया है। भारतवर्ष ब्रिटिश-साम्राज्यके अन्तर्गत बने हुए मालको दो प्रकारसे सुविधा दे सकता है। एक तो ब्रिटिश-साम्राज्यके मालपर कर घटाकर और विदेशोंके मालपर पहले जितना कर लगाकर; दूसरे ब्रिटिश-साम्राज्यके मालपर उतना ही कर रहने देकर और विदेशोंके मालपर कर बढ़ाकर ब्रिटिश-साम्राज्यको व्यापारिक सुविधा दी जा सकती है। यदि ब्रिटिश-साम्राज्यके मालपर साधारण करसे कम टैक्स लिया गया, तो देशके उद्योग-धन्धोंको बाहरका सस्ता माल नष्ट कर देगा। यदि ब्रिटिश-साम्राज्यके मालपर साधारण कर लगाकर और विदेशोंके मालपर अधिक कर लगाया जाय, तो ब्रिटिश व्यापारी अपने मालको उन्हीं दामोंपर बेचेंगे जिन दामोंपर विदेशी व्यापारी बेचेंगे। अर्थात् यदि एक रुपयेकी चीजपर साम्राज्यके देशोंसे एक आना कर लिया जावे और विदेशोंसे दो आना, तो ब्रिटिश-व्यापारी उसी चीजको एक रुपया दो आनामें बेचेंगे, क्योंकि विदेशके व्यापारी तो इससे कममें बेच ही नहीं सकते। फल यह होगा कि जो वस्तु पहले भारतीय जनताको एक रुपया और एक आनामें मिलती थी, अब एक रुपया दो आनामें मिलेगी और जो एक आना भारतीय जनता अधिक देगी, वह ब्रिटिश व्यापारीकी जेबमें चला जायगा। भारतीय जनता इतनी धनी नहीं है कि वह इस प्रकार आर्थिक हानि उठा सके। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि उसमें तो बदला भी मिलेगा, क्योंकि जब भारतीय व्यापारी अपना माल ब्रिटिश साम्राज्यको भेजेंगे, तो उन्हें भी तो कम कर देना होगा, और इस प्रकार वे लाभ उठा सकेंगे। इम्पीरियल प्रिफरेंसके समर्थक इसी बातको बहुत दुहराते हैं। उसका उत्तर तो मैं तभी दे चुका हूँ, जब मैंने कहा था कि भारत दो-तिहाई माल तो ब्रिटिश-साम्राज्यसे खरीदता है और केवल एक-तिहाई बचता है। अस्तु यदि लाभ हुआ भी तो केवल एक-तिहाईपर ही हो सकता है, परन्तु हानि दो-तिहाईपर उठानी पड़ेगी। यदि वास्तवमें देखा जाय, तो उस तिहाई मालपर भी हमें कोई लाभ नहीं होगा। कारण यह है कि भारतवर्ष तो कच्चा माल अथवा खाद्य-पदार्थ ही बाहर भेजता है, और संसारके औद्योगिक देश भारतवर्षके कच्चे मालके लिए उत्सुक रहते हैं। ब्रिटिश-साम्राज्यमें और विदेशोंमें भी भोज्य पदार्थ और कच्चे मालपर कोई कर नहीं लगता, और

यदि लगता भी है, तो बहुत कम। ऐसी दशामें उस एक तिहाई मालपर भी भारतको क्या लाभ होगा ? उसके अतिरिक्त एक भयंकर हानि अवश्य होगी, और वह होगी विदेशोंका प्रतिशोध। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि दो-तिहाई माल हमारा ब्रिटिश साम्राज्यके बाहर जाता है, और जो कुछ थोड़ा सूती कपड़ा तथा पक्का माल भाग्यवश यहाँसे बाहर जाता भी है, तो वह ब्रिटिश-साम्राज्यके बाहर ही जाता है। ऐसी दशामें यदि भारतवर्षमें सरकार विदेशोंके मालपर अधिक कर लगायगी, तो उनकी सरकार भी हमारे मालपर अधिक कर लगानेसे क्यों चूकेगी ? फल यह होगा कि हमारे उन व्यापारिक क्षेत्रोंको दूसरे देश छीन लेंगे, और हमारा व्यापार ठंडा हो जायगा। सन् १९२६ में इस विषयपर जाँच करनेके लिए जो 'फिसकल कमीशन' बिठाया गया था, उसने भी इन्हीं बातोंपर विचार करके बहुमतसे यह सम्मति दी थी कि भारतवर्ष स्वयं बिना क्षति उठाये इस आन्दोलनमें सम्मिलित नहीं हो सकता। फिर भी बहुमतने यह इच्छा अवश्य प्रकट की थी कि यदि कोई ऐसी वस्तु हो कि जिसपर सुविधा देनेमें भारतवर्षको अधिक हानि न होती हो अथवा बहुत समय तक हानि न होनेकी सम्भावना हो, तो उसपर विचार अवश्य किया जाय, क्योंकि भारतवर्षको ग्रेट-ब्रिटेन तथा उपनिवेशोंसे सहानुभूत दिखानेका यह अच्छा अवसर मिलेगा। बहुमतने यह भी सम्मति दी थी कि जब कोई ऐसी सुविधा देनेका प्रश्न हो, तब लेजिस्लेटिव एसेम्बलीसे उसपर राय ली जाय। यदि एसेम्बली सहमत न हो, तो वह सुविधा न दी जाय, परन्तु न्यूनमतने बहुमतसे भिन्न राय दी है। उन्होंने लिखा है कि इम्पीरियल प्रिफरेंसका सिद्धान्त तो बिलकुल भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, और हमसे जो यह कहा जाता है कि आस्ट्रेलिया, कनाडा और दक्षिण-अफ्रिकाने भारतीय मालपर कुछ सुविधाएँ दे दी हैं, इसलिए हमें भी उस प्रश्नपर विचार करना चाहिए, यह भी ठीक नहीं, क्योंकि इन सुविधाओंसे उन उपनिवेशोंको आर्थिक हानि नहीं उठानी पड़ती। परन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो राजनैतिक है। जब तक इन उपनिवेशोंमें भारतीय अपमानित किये और सताये जायँगे, तब तक भारत कभी भी उनसे मित्रताका व्यवहार नहीं कर सकता। अन्तमें उन्होंने लिखा है कि यदि इतना होते हुए भी ब्रिटिश साम्राज्यको व्यापारिक सुविधा देनेका प्रश्न आ जाय, तो एसेम्बलीके निर्वाचित सदस्योंको ही उसपर विचार करनेका अधिकार हो। न्यून मतवालोंका कथन कितना सच्चा और महत्त्वपूर्ण था, इसका अनुमान हम लोग आज—जब कि 'टेरिफ-बिल' सरकारी वोटोंके कारण एसेम्बलीमें पास किया गया है—भलीभाँति कर सकते हैं। किन्तु सरकारने तो बहुमतको ही स्वीकार किया था। ऊपर लिखे विवरणसे यह स्पष्ट ही होगा कि इम्पीरियल प्रिफरेंससे देशको आर्थिक हानि है। यद्यपि भारतीय सरकार इतना विरोध होते हुए इम्पीरियल प्रिफरेंसकी नीतिको स्वीकार तो न कर सकी, परन्तु टेरिफ-बिलको पास करके उसने देशके ऊपर इम्पीरियल प्रिफरेंसका बोझ लाद ही दिया! अब लंकाशायर भारतके व्यापारसे खूब लाभ उठायगा, क्योंकि जापान अब उसकी प्रतिद्वन्द्विता न कर सकेगा, और साथ-ही-साथ भारतीय जनताको अधिक मूल्य देकर वस्त्र खरीदने होंगे। महामना मालवीयजीने तथा बिड़लाजीने एसेम्बलीमें उस बिलका घोर विरोध किया था। उससे सरकारकी नीतिका भण्डाफोड़ तो अवश्य हुआ, परन्तु और कुछ न हो सका। वास्तविक विरोध तो इस बिलका स्वदेशी आन्दोलन करने तथा विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करनेसे ही हो सकेगा।

आज संसार-भरके देशोंको अपने उद्योग-धन्धोंके उन्नत करनेकी तथा अपने मालकी खपतके लिए क्षेत्रोंकी आवश्यकता है, क्योंकि औद्योगिक उन्नतिसे ही देश सम्पत्तिशाली हो सकता है। वर्तमान राजनैतिक शक्ति केवल आर्थिक स्थितिपर ही अवलम्बित है। यदि आज ग्रेट-ब्रिटेन सम्पत्तिशाली है, तो संसारमें उसीकी तूती बोल रही है। यदि आज

आपसमें आर्थिक उन्नति कर ली है, तो एशियाका यह देश भी यूरोपके देशोंमें आतंक जमाये है, परन्तु निर्धन भारत, संसारके सामने निर्बल तथा असभ्य कहा जाता है। क्योंकि हम निर्धन हैं। आज हमारी निर्धनता ही हमारे लिए कलंक हो गई है। निर्धनताको दूर करनेकी केवल एक ही रीति है, और वह है औद्योगिक उन्नति। यदि सरकार हमारे उद्योग-धन्धोंको सहायता नहीं देती, तो हम ही क्यों न यह प्रण कर लें कि हम स्वदेशी वस्तुको ही उपयोगमें लायेंगे। क्या भारतीय जनता इस प्रश्नपर विचार करेगी?

संघराज शरणंकर

[लेखक:—एक भारतीय बौद्ध भिक्षु]

यदि पूछा जाय कि लंकाके वर्तमान इतिहासमें सबसे बड़ा महापुरुष कौन हुआ है? तो इस प्रश्नका उत्तर यही दिया जा सकता है कि संघराज शरणंकर। वर्तमान लंकाने संघराज शरणंकरसे बढ़कर पूज्य तथा गौरवशाली दूसरा कोई पुत्र-रत्न पैदा नहीं किया।

केन्डी नगर लंकाकी राजधानी है। इस नगरसे कोई १५ मील दूर तमपन ज़िलेके वेलिविट ग्राममें सन् १६८६ के पौष मासके कृष्ण-पक्षकी सप्तमीके दिन बालक शरणंकरका जन्म हुआ था। उसके पिता मुदलियर * थे, और बड़े भाई मुदियंसे*के नामसे प्रसिद्ध थे। यदि शरणंकर भी साधारण बालक होता, तो वह अपने परिवारके अन्य लोगोंकी भाँति भी किसी-न-किसी सरकारी धन्धेमें लग जाता। उन दिनों देशकी जैसी अवस्था थी, उसे देखते हुए यह अधिक सम्भव भी था, लेकिन यदि देशके दुर्भाग्यसे कहीं ऐसा हुआ होता तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आज लंका-वासियोंका धर्म बौद्धधर्म न होकर कुछ और ही होता।

कई पीढ़ियोंसे भिक्षु-संघका ह्रास होते-होते उसकी दशा इतनी खराब हो गई थी कि राजा विमलधर द्वितीयके समय लंकामें पाँच उपसम्पन्न भिक्षुओंका मिलना भी कठिन हो गया। राजा विमलधरने दूत भेजकर ब्रह्माके अरकान राज्यसे कुछ भिक्षुओंको बुलवाया और अपनी संरक्षतामें ऊँचे-ऊँचे कुलोंके लगभग एक सौ श्रामणेरोंकी उपसम्पदा कराई। कुछ दिनोंके लिए देशमें धार्मिक उत्साह बढ़ने लगा, परन्तु विमलधर द्वितीयका पुत्र उतना योग्य न निकला। उसने अपने पिताकी समस्त कृतिपर पानी फेर दिया। उसके राज्यमें भिक्षुओंकी दशा फिर एक बार पहलेकी-सी हो गई। गृहस्थोंमें जो बौद्धधर्मका ज्ञान फैलने लगा था, वह रुक गया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि राजा विमलधरने जिन एक सौ भिक्षुओंकी उपसम्पदा कराई थी, उनमेंसे एक सूर्य-गोडस्थविरके पास सोलह वर्षके बालक शरणंकरने अपनी प्रव्रज्या ग्रहण की।

संघमें प्रविष्ट होते ही शरणंकरने देखा कि संघ अन्दरसे बिलकुल खोखला हो गया है। जिन लोगों पर—भिक्षुओंपर—धर्मकी रक्षाका भार है, वे पड़े-पड़े चैनकी बंसी बजाते हैं। भिक्षुओं और गृहस्थोंमें केवल रंगे कपड़ेका भेद है। न तो गृहस्थ भिक्षुओंकी आवश्यकता ही पूरी करते हैं, और न भिक्षु उनसे किसी प्रकारकी आशा ही रखते हैं। यह देखकर शरणङ्करको दुःख हुआ, परन्तु वह हताश नहीं हुआ। उसने एक वीरकी भाँति संघको सुधारनेका निश्चय किया। पचास वर्षसे अधिक समय तक शरणङ्कर इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिए कार्य करता रहा। अन्तमें हजारों बाधाओंका सामना कर चुकनेपर उसे सफलता मिली। शरणङ्कर बड़ा उत्साही पुरुष था, लेकिन इस महान् कार्यकी सिद्धिके लिए उत्साहके अतिरिक्त और भी बहुतसे गुणोंकी आवश्यकता थी।

---

* 'मुदलियर' और 'मुदलियसे' दो सिंहाली राजकीय उपाधियाँ हैं।

शरणङ्करने देखा कि सबसे पहली आवश्यकता 'ज्ञान-संचय' है। बस, वह इसीके लिए जुट पड़ा। भिक्षुओंमें उस समय शिक्षाके विषयमें इतनी लापरवाही थी कि श्रामणेर शरणङ्करको पाली व्याकरण तक पढ़ानेके लिए कोई न मिलता था। पर शरणङ्करने हिम्मत न हारी। वह बराबर पाली-व्याकरण पढ़नेके लिए गुरुकी खोज करता रहा। उसे पता लगा कि 'लुवके रालहामी' नामके एक सज्जनको पाली-व्याकरणका कुछ ज्ञान है। लेकिन वह उन दिनों किसी राजकीय अपराधके कारण नज़रबन्द था। शरणङ्करने इसी सज्जनसे पाली व्याकरण पढ़नेकी ठानी, परन्तु नज़रबन्द आदमीसे सम्बन्ध कैसा जोड़ा जाय? 'लुवके रालहामी' अपने गाँवके पासके एक विहारमें प्रतिदिन पूजाके लिए आया करता था। विहारके पास ही एक गुफा थी। शरणङ्कर अपने एक साथीको लेकर उस गुफामें जा छिपा, और जिस समय वह 'लुवके रालहामी' पूजा करनेके लिए आया, शरणङ्करने गुफासे बाहर निकलकर उससे मुलाकात की। शरणङ्करका अभिप्राय जानकर क़ैदी बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने शरणङ्करको पाली-व्याकरण पढ़ाना स्वीकार कर लिया। क़ैदीका पाली-व्याकरणका अपना ज्ञान भी कुछ अधिक न था। शरणङ्करने क़ैदीसे व्याकरणके 'सुबन्त' प्रकरणके अतिरिक्त 'सतिपट्ठान सुत्त' सीखना और अध्ययन करना आरम्भ किया। क़ैदीसे शरणङ्कर जो कुछ पढ़ता था, वही वह प्रतिदिन अपने साथीको पढ़ाता था। इसी प्रकार कुछ दिन तक पढ़ने-पढ़ानेके बाद शरणङ्करने एक नये गुरुकी खोज की। उसने 'अत्थदस्सी' नामक एक स्थविरके पास पढ़ना आरम्भ किया। इस वृद्ध संन्यासीके पास भी शरणङ्करको सिखाने योग्य कुछ अधिक न था। शरणङ्करने स्वाध्यायका आश्रय लिया और अपने अविश्रान्त परिश्रमसे थोड़े ही कालमें पाली, सिंहाली और संस्कृतका अच्छा ज्ञाता हो गया। आजकल लंका द्वीपमें प्राचीन भाषाओंके शिक्षणका जो इतना प्रचार है, उसका श्रीगणेश इसी महापुरुषने किया था।

'ज्ञान-प्राप्ति'ने शरणङ्करके निश्चयोंको और भी दृढ़ कर दिया। अब उसने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए निश्चितरूपसे कुछ-न-कुछ ठोस कार्य करना आवश्यक समझा। 'सिठिना-मलुवे' आदि तीन शिष्योंको लेकर सप्त-कोरले ज़िलेके रिदि (रजत) विहारको अपना केन्द्र बनाया। सप्त-कोरले ज़िलेमें और उसके बाहर उसने धर्म-प्रचार और शिक्षा-प्रचारका कार्य आरम्भ किया। अन्य भिक्षुओंके आराम-तलब जीवनके विरुद्ध उसने अपने और अपने साथियोंके जीवनको तपस्याका आदर्श बनाया। अपने लिए तो उसने यह नियम बना लिया था कि सिवा उस भोजनके जो लोग उसके भिक्षाटनके समय उसके पात्रमें डाल दें, वह और किसी चीज़को ग्रहण न करेगा। उसने अपने इस व्रतको आजीवन निभाया। शरणङ्कर और उनके साथियोंके प्रचारसे लोगोंकी आँखें खुलीं। अनेक उत्साही लोगोंने शरणङ्करके हाथसे दीक्षा ग्रहण करनी चाही। स्वयं अनुपसम्पन्न होनेके कारण वह औरोंको प्रव्रजित न कर सकता था। उसने 'शीलवत्' नामसे एक नया संगठन आरम्भ किया। 'शीलवतों'में और साधारण प्रव्रजित श्रामणेरोंमें केवल इतना भेद था कि 'शीलवत्' अपनेको केवल दस शीलोंके लिए ही ज़िम्मेदार समझते थे, वर्ना वह साधारण श्रामणेरोंकी तरह ही सिर मुँड़ाते और पीले वस्त्र पहनते थे। उनका तपस्यामय जीवन अपने आचार्यके समान था।

शरणंकरके प्रभावसे केन्द्रोंके मठाधीशोंका आसन डोल उठा। उन्होंने देखा कि अनेक लोग उनका शिष्यत्व छोड़ छाड़कर शरणंकरकी शरण लेने लगे। यह देखकर उनसे न रहा गया। उन्होंने राजाको उसकाना आरम्भ किया। इधर शरणंकर भी झुकनेवाला पुरुष न था। उसने अपने कार्यकी गति तीव्र आरम्भ कर दी। शरणंकरके शिष्योंने मठाधीशोंका 'बड़प्पन' स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। यहाँ तक कि उनका आतिथ्य करनेमें भी वे अपनी हेठी समझने लगे। दोनों ओरसे तनातनी शुरू हुई। धार्मिक गद्दियोंके मालिकोंका राज-दरबारमें अच्छा प्रभाव था। उन्होंने शरणंकर और उसके साथियोंके विरुद्ध अदालतकी शरण ली। मुकद्दमा

भक्तां। न्यायाधीशोंने न्यायका पक्ष न लेकर मठाधीशोंका पक्ष लिया। 'शीलवतों' को आज्ञा हुई कि वे अपने सिरपर कपड़ा बाँधें और श्रामणेरोंका आदर किया करें। न्यायके इस 'नाटक' में शरणंकरकी हार हुई सही, लेकिन उसके उत्साहमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आई। उसने फिर द्विगुण उत्साहके साथ अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिससे विरोधियोंका सब विरोध मट्टीमें मिल गया और लोगोंने समझ लिया कि बुद्धधर्मका सर्वश्रेष्ठ प्रचारक यदि कोई है, तो शरणंकर है।

समाचार फैला कि विदेशसे एक उपसम्पन्न भिक्षु लंकामें आया है। राजाने बड़े सत्कारसे उसे बुला भेजा, लेकिन जब वह राज-दरबारमें आया, तो पता लगा कि वह एक अबौद्ध हिन्दू संन्यासी है। राजाने इस संस्कृतज्ञ संन्यासीपर प्रभाव जमानेके लिए उसकी उपस्थितिमें एक धार्मिक प्रवचनका प्रबन्ध किया। कैन्डीके प्रधान नायकोंको निमन्त्रित किया। आगन्तुककी उपस्थितिमें धर्मोपदेश देनेका किसीको साहस न हुआ। राजाको शरणंकरकी याद दिलाई गई। 'बौद्धधर्म'के नामको कलंकसे बचानेके लिए राजाने शरणंकरके पास निमन्त्रण भेजा, जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस समय लोगोंके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि शरणंकरने नियत-समयपर धर्मासनपर बैठ पहले पाली सूत्रका पाठ किया, फिर सिंहल परिवर्तन किया और उसके बाद आगन्तुकके लिए संस्कृतमें ऐसे सुन्दर ढंगसे व्याख्याकी कि संन्यासी प्रसन्न हो गया। तीनों भाषाओंपर शरणंकरका समान अधिकार और उसके साथ धार्मिक ज्ञान देख राजा बड़ा सन्तुष्ट हुआ। विरोधियोंका विरोध सदाके लिए ढीला पड़ गया। उस समय शरणंकरकी आयु तीस वर्षकी थी।

अब तो दिन प्रतिदिन शरणंकरकी शक्ति बढ़ने लगी। अनेक लोग उसके अनुयायी हो चले। इस समय शरणंकरका मुख्य ध्यान देशको शिक्षित करनेकी ओर था। पुस्तकोंके अभावमें यह कार्य कैसे हो? शरणंकरने अपनी देख रेखमें सभी आवश्यक पुस्तकोंकी नक़ल करानी शुरू की। इस समय लंकामें जो हस्त-लिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमेंसे अधिकांश शरणंकरकी इस योजनाके ही फल हैं।

शिष्योंकी संख्या अधिक हो जानेसे उसका बहुतसा समय शिष्योंकी शिक्षा-दीक्षामें ही व्यय होने लगा। फिर भी उसने धर्म-प्रचारके कार्यमें कमी न होने दी। जहाँ-जहाँ वह अथवा उसके शिष्य गये, वहाँ वहांके लोग एक बार फिर नये सिरेसे समझने लगे कि उनका देश 'बौद्ध देश' है।

उसके सामने अनेक बाधाएँ थीं, लेकिन शरणंकरने उन्हें एक हद तक पार कर लिया था। इस समय वह बौद्ध धर्मके सबसे बड़े विद्वान् और प्रधान नेता थे। राजा और प्रजा—दोनों उनके पक्षमें थे और मुक़ाबलेपर कोई विरोधी भी न था। यदि शरणंकर केवल महत्वाकांक्षाका पुजारी ही होता, तो अब उसे कुछ करने-धरनेकी ज़रूरत न थी, लेकिन शरणंकर तो लंकामें बौद्ध-संघकी स्थापना करके ही चैन लेना चाहता था। लंकामें उस समय उपसम्पदा* संस्कार करनेके लिए पाँच भिक्षु मिलने कठिन थे। किस अन्य देशसे 'उपसम्पदा' लाई जाय, इस विषयमें किसीको कुछ मालूम न था। पहले आस्ता और स्यामके साथ लंकाका अच्छा सम्बन्ध था, लेकिन पुर्तगीज़ों और डचोंके आक्रमणोंके समय यह सम्बन्ध टूट गया। अब स्याम और बरमाकी राजनैतिक तथा धार्मिक दशाके विषयमें किसीको कुछ मालूम न था। अंधेरेमें मार्ग बनानेका कार्य था। शरणंकरने अपने शेष जीवनको इसी कार्यमें लगाया और उसे सफल करके दिखा दिया।

शरणंकरने सबसे पहले डच-गवर्मेन्टसे सहायताकी याचना की। उक्त गवर्नमैंटकी ओरसे एक दूत स्याम भेजा गया, परन्तु वह जाकर लौट आया। यह धार्मिक कार्य एक डच दूतके हाथों होनेको न था। सिंहल-नरेश श्री वीरपराक्रमका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए उसने 'सद्धर्म सारार्थ संग्रह' नामक पुस्तक लिखकर राजाको भेंट की। राजाने

* 'बौद्ध-भिक्षु की उपसम्पदा' शीर्षक लेख 'विशाल-भारत'के अगस्त १९२९के अंकमें प्रकाशित हो चुका है।

प्रसन्न होकर उसे एक हाथी भेंट किया। परन्तु शरणंकरको हाथीसे क्या काम? उसने इनकार कर दिया। शरणंकर चाहते थे कि राजा विदेशसे 'उपसम्पदा' लानेमें उनकी सहायता करे। राजा शरणंकरकी इस विशाल योजनाके अनुसार तो कार्य न कर सका। हाँ, उसने इतना अवश्य किया कि 'नियमकोड'में एक कालेज स्थापित कर शरणंकरको उसका प्रधानाचार्य बना दिया। शरणंकर वहाँ कई वर्ष रहा।

श्री वीरपराक्रमकी मृत्युके बाद श्रीविजयसिंह सिंहासनारूढ़ हुए। उनके राज्यकालमें विदेशसे 'उपसम्पदा' लानेका प्रयत्न किया गया। पाँच 'शीलवतों' को पुनः गृहस्थियोंके वस्त्र पहनाकर दो राजदूतोंके साथ स्याम भेजा गया। मार्गमें जहाज़ टूट गया। जहाज़के यात्रियोंमेंसे कई लोग मर गये। जो बचे वे बड़ी कठिनाईसे हंसवती (पेगु) पहुँचे। वहाँ उन्हें चोरोंके हाथों घायल होना पड़ा। इन सारी मुसीबतोंको पार करके दो सज्जन किसी-न-किसी प्रकार लंका वापस पहुँच सके। इन्हींसे यह सारी विपत-कहानी मालूम हुई। इस प्रयत्नके विफल हो जानेसे स्वभावतः ही शरणंकरको बड़ा दुःख हुआ, लेकिन वह महापुरुष प्रथम प्रयत्नकी विफलतासे ही निराश होनेवाला नहीं था।

एक बार फिर राजाकी ओरसे तीन राज-दरबारियों और शरणंकरके पाँच शिष्योंका एक दल स्याम भेजा गया। जाते समय मार्गमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं हुई। स्याम-नरेशने दलका स्वागत किया और स्यामी उपसम्पन्न भिक्षुओंको लंका भेजना स्वीकार किया। इसी बीचमें लंकाके श्री विजयराजसिंहकी मृत्युका समाचार पहुँचा। स्याम-नरेशने स्यामी भिक्षुओंको भेजनेका विचार छोड़ दिया, और कहा कि जबतक इस सम्बन्धमें नये राजाका विचार ज्ञात नहीं होता, मैं भिक्षु-संघ नहीं भेज सकता। दल वापिस लौट पड़ा। मार्गमें कई एक ऐसी आपत्तियाँ पड़ीं, जिनसे दलके सदस्योंमेंसे केवल एक सज्जन 'विलबेगेदर' को छोड़ बाकी सब मर गये! इस सदस्यने ही आकर यह सब वृत्तान्त कहा। अपने धार्मिक विश्वासोंके कारण न मालूम कितने लोगोंने इस प्रकार अपने प्राणोंकी आहुति दी है। काश! कि हम उन लोगोंके नाम भी स्मरण रख सकें।

श्री विजयराज सिंहके बाद कीर्ति श्री राजसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। यह नरेश आरम्भसे ही अपनी प्रजाके धार्मिक कल्याणके इच्छुक थे। उन्होंने सच्चे दिलसे शरणंकरकी योजनाका समर्थन किया। फिर एक बार एक दल स्याम भेजा गया। इस दलके एक सज्जन तो वही 'विलबेगेदर' थे जो पहली यात्रामें बड़ी कठिनाईसे अपने प्राण बचाकर लाये थे। स्याम-नरेशने दलका स्वागत किया। इस दलकी यात्राका वर्णन अनेक रोमांचकारी घटनाओंसे पूर्ण है। आजकल एक देशसे दूसरे देशकी यात्रा मामूली बात हो गई है। इस समय हम नहीं समझ सकते कि उन लोगोंको किन-किन आपत्तियोंका सामना करना पड़ा होगा। खैर, शरणंकरका स्यामसे भिक्षु-संघ लानेका यह आखिरी प्रयत्न सफल हुआ। स्याम-नरेशने लंकामें उपसम्पदा स्थापित करनेके लिए उपाली स्थविरकी अध्यक्षतामें भिक्षुओंकी एक पर्याप्त संख्या भेजी।

जिस समय कैन्डीमें यह समाचार फैला कि स्यामसे भिक्षु-संघ-सहित राजदूत लौट आये, लोगोंमें प्रसन्नताकी एक लहर दौड़ गई। राजकीय ढंगसे भिक्षु-संघका स्वागत किया गया। बड़े-बड़े विहारोंके मठाधीश स्यामी भिक्षुओंके स्वागतके लिए आगे बढ़े। शरणंकर उनमेंसे एक थे। स्यामी भिक्षुओंने सर्वप्रथम शरणंकरके विषयमें पूछा। कैन्डीमें जिस जगह यह भिक्षु ठहराये गये थे, उस विहारका नाम 'मलवत्त-विहार' है। यहाँ पहुँचकर उपाली स्थविरने बड़ी तत्परतासे सिंहली भिक्षुओंकी उपसम्पदाकी तय्यारी शुरू की। अन्तमें वह दिन आ पहुँचा, जिस दिनकी प्रतीक्षामें एक वीर आत्माने अपना सर्वस्व जीवन लगा दिया था। एसल (जुलाई-अगस्त) मासकी पूर्णिमाको शरणंकर और उनके साथ पाँच प्रधान भिक्षुओंका उपसम्पदा-संस्कार हुआ। अगले महीने और कई सौ श्रामणेर उपसम्पन्न किये गये।

इस प्रकार शरणंकरकी संघ सुधार-सम्बन्धी विशाल योजना सफल हुई। जातीय धर्मकी ज्योति बुझते-बुझते बच गई। लंका फिर नये सिरेसे बौद्ध देश कहलानेका अधिकारी हुआ।

उपसम्पदाके समय शरणंकरकी आयु ४५ वर्षकी थी। स्यामी मिशनके साथ आये हुए राजदूतोंको केन्डी दरबारकी ओरसे बहुतसे मूल्यवान् उपहारोंके साथ स्याम वापस भेज दिया गया। मिशनके भिक्षु-सभासद् कई वर्षों तक लंकामें रहे। केन्डी-नरेशने शरणंकरको संघ-राजके रूपमें स्वीकार किया, और इसके बादसे शरणंकर संघराज शरणंकरके नामसे प्रसिद्ध हुए। शायद ही कभी सिंहल जातिने किसी एक मनुष्यका ऐसा सत्कार किया हो, जैसा उसने शरणंकरका उस समय किया था, जब कीर्ति श्री राजसिंहने 'मलवत्त-विहार' में भिक्षु-संघके बीच विराजमान शरणंकरको 'संघराज'का आसन समर्पित किया।

ख्याति और सत्कारके शिखरपर चढ़कर भी संघराज शरणंकरने अपने सरल तपस्वी जीवनको वैसा ही बनाये रखा। उनका स्वर्गवास ६१ वर्षकी आयुमें हुआ। एसल (जुलाई-अगस्त) मासकी पूर्णिमाके दिन संघ-राजका चित्त खराब हुआ। वह अपने कमरेमें जा लेटे। तबीयत अधिक बिगड़ती देखकर सब लोग समीप इकट्ठे हो गये। राजा और उसके अमात्य भी आ पहुँचे। संघराजने धर्मानुश्रवण करनेकी इच्छा प्रकट की। गुणरत्न नामके प्रसिद्ध धर्मवक्ता पाली-सूत्रका पाठ करने लगे। सूत्रको ध्यान-पूर्वक सुनते-सुनते संघ-राजने इस नश्वर देहको छोड़ दिया! इस प्रकार वर्तमान लंकाके सबसे बड़े महापुरुषकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

उनकी समाधिपर बना हुआ संघराज-चैत्य आज भी हमें उनके गुणोंका स्मरण कराता है।*

* श्री० डी० बी० जयतिलकके तीस वर्ष पुराने लेखकी सहायतासे।

कायरता

[लेखक :—श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक]

ठाकुर रिपुदमन सिंह कड़ककर बोले—"तुम हमारे गाँवमें बग़ावत फैलानेकी कोशिश कर रहे हो, क्यों?"

संध्याका समय है। देहाती ढंगके एक विशाल भवनके प्रांगणमें एक ओर एक बड़ा तख्त बिछा हुआ है। तख्तपर गाव-तकियेके सहारे ठाकुर रिपुदमन सिंह बैठे हुए हैं, सामने हुक्का रखा हुआ है। रिपुदमन सिंहकी वयस ४५ वर्षके लगभग है। मूंछ तथा सिरके बाल खिचड़ी हो चले हैं, परन्तु चेहरेपर अब भी सुर्खी है। उनके आसपास कुर्सियों तथा मोढ़ोंपर चार-पाँच अन्य व्यक्ति बैठे हैं। एक ओर ज़मीनपर दो पासी मोटे लठ सामने रक्खे हुए बैठे हैं। ठाकुरके तख्तके सामने एक दुबला-पतला व्यक्ति खद्दरके वस्त्र धारण किये खड़ा हुआ है।

ठाकुरकी बात सुनकर उसने नम्रता-पूर्वक कहा—"यह आपसे किसने कहा कि मैं बग़ावत फैला रहा हूँ। मैं तो केवल यह कहता हूँ कि खद्दर पहनो, विदेशी वस्त्रका बायकाट करो। इसे बग़ावत फैलाना तो कहते नहीं।"

ठाकुर साहब बोले—"सरकारके खिलाफ़ जो बात है, वही बग़ावत फैलानेवाली है।"

—"परन्तु मेरी समझमें नहीं आता कि इसमें सरकारके खिलाफ़ कौनसी बात है।"—खद्दरधारी व्यक्तिने कहा—"यह तो हमारे अपने घरकी बात है—हम चाहे खद्दर पहनें, चाहे कुछ करें।"

ठाकुर साहब कुछ मुलायम पड़कर बोले—"जिसे पहनना होगा, वह अपना पहनेगा, तुम्हें ये बातें कहनेकी कौन ज़रूरत है?"

—"ज़रूरत केवल इसलिए है कि विदेशी कपड़ेसे हानि है और खद्दरसे लाभ।"

—"तो अपना हानि-लाभ सब समझते हैं, तुम्हारे बतानेकी आवश्यकता नहीं है।"

—"नहीं समझते, इसीलिए तो कहनेकी आवश्यकता पड़ती है।"

—"हाँ, तुम्हारे कहनेसे नहीं समझते।"

—"अपराध क्षमा कीजिएगा, आप ही नहीं समझते।"

ठाकुर साहबको पुनः क्रोध आया, कर्कश स्वरमें बोले—"मैं क्या नहीं समझता ?"

—"खद्दर और स्वदेशीका लाभ तथा विदेशीसे हानि।" खद्दर धारी व्यक्तिने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

—"सो मैं समझता हूं, तुम मुझे क्या समझाओगे। खद्दर पहननेसे अंग्रेज़ी-राज्य नहीं हट सकता—समझे ? अंग्रेज़ी राज्य हटानेके लिए हथियारों और फौज-फाटेकी ज़रूरत है—चर्खांके तकुवासे सरकार डरनेवाली नहीं है।"

ठाकुर साहबने अन्तिम वाक्य तर्जनी उँगली नचाते हुए मुँह बनाकर इस प्रकार कहा कि खद्दरधारी व्यक्तिके सिवा अन्य सब व्यक्ति मुस्कराये।

खद्दरधारी व्यक्ति बोला—"हथियार और फौज़-फाटा है कहाँ ?"

—"अब यह तुम्हीं सोचो, जो सुराज (स्वराज्य) खातिर बौराये फिर रहे हो।"

—"स्वराज्यकी इच्छा करना तो प्रत्येक भारतीयका कर्त्तव्य है।"

—"हाँ, परन्तु कोरी इच्छासे काम नहीं चलता।"

—"इसीलिए तो विदेशीका बायकाट करना आवश्यक है।"

—"परन्तु उससे होगा क्या ?"

—"अंग्रेज़ोंको नुकसान पहुंचेगा।"

—"पहुंचा है ! और पहुंचेगा भी तो क्या होगा ? क्या अंग्रेज़ बहादुर यह कह देंगे कि अच्छा भाई सुराज ले लो—हमें नुकसान न पहुंचाओ ?"

इसपर पुनः सब लोग हँस पड़े—केवल खद्दरधारी व्यक्ति गम्भीर खड़ा रहा।

खद्दरधारी व्यक्ति बोला—"यह न कह देंगे, तो कुछ तो चेत होगा ही।

—"हुआ है ! टोटकोंसे गाजें नहीं टलतीं।"

—"यह टोटका नहीं है ठाकुर साहब। यह महामन्त्र है।"

—"महामन्त्र है, तो तुम सुराज ले लो, लेकिन दया करके हमारा गाँव बचाये रहो। हम खामखाह सरकारको नाराज़ नहीं करना चाहते।"

—"तो इसमें आपको तो कोई हानि है नहीं। यदि कुछ होगा, तो मुझे ही होगा।"

—"ज़मींदार तो हम हैं। सरकार यह न सोचेगी कि इनकी भी कुछ लगावट है ? हम न चाहें, तो कैसे हो सकता है।"

"आपसे कोई सरकारी आदमी पूछे, तो आप यह कह सकते हैं कि जब लोग सरकारकी नहीं मानते, तो हमारी कैसे मान सकते हैं।"

ठाकुर साहब भृकुटी चढ़ाकर बोले—"ख़ैर, आप हमें सलाह मत दीजिए। हम आपसे सलाह नहीं पूछते हैं, और यह भी हम कहे देते हैं कि हमारी ज़मींदारीमें रहना है, तो सीधी तरह रहो, नहीं तो अब कहीं दूसरी जगह चले जाओ, समझे ? जो उपद्रव करोगे, तो ठीक न होगा।"

इतना सुनकर खद्दरधारी व्यक्ति चुपचाप उनके सामनेसे चला गया।

उसके चले जानेके पश्चात् ठाकुर साहब अन्य लोगोंकी ओर देखकर बोले—"कलका लौंडा, हमें उपदेश देने चला है।"

एक व्यक्ति बोला—"इन्हें भी शहरकी हवा लगी है।"

दूसरा बोला—"हवा लगी है, तो ठीक भी कर दिये जायँगे। घरमें भूँजी भाँग नहीं, चले हैं सरकार बहादुरसे मोर्चा लेने !"

ठाकुर साहब बोले—"पगला गये हैं। अपना बनता-बिगड़ता नहीं सूझ पड़ता। अभी जेलखाने भेज दिये जायँ, तो बाल-बच्चे भूखों मर जायँ, दाना तक न मिले। यह काम बड़े आदमियोंका है, जिनको भगवानने चार पैसे दिये हैं—वह करें तो ठीक है। कुछ ऊँच-नीच हो जाय, तो यह फिकर तो नहीं है कि बाल-बच्चे कहाँसे खायँगे।"

उपस्थित व्यक्ति बोले—"यही बात है !"

एक वृद्ध महोदय बोले—"तुलसीदासजीने कहा है—'समरथको नहिं दोष गुसाँई।' सो जो समरथ हैं, उन्हें सब शोभा देता है। हम लोग काहेमें हैं। सबेरेसे शाम

तक खून-पसीना एक करते हैं, तब तो पेट भरने भरको भोजन मिलता है। हम लोग सरकार बहादुरका सामना कैसे कर सकते हैं?"

—"अरे भाई, सरकार बहादुरका सामना इस समय भूमण्डलपर कोई नहीं कर सकता। कुछ दिल्लगी थोड़ा ही है। जिनके राज्यमें सूर्य अस्त नहीं होता, उनका मुक़ाबला क्या हँसी-खेल है।"—ठाकुर साहबने कहा।

एक अन्य महाशय बोले—"जर्मनीने किया तो था—फिर क्या हुआ? और जब कि जर्मनी भी कोई गड़बड़ नहीं था।"

—"कौन! जर्मनी ऐसा कारीगर देश तो दुनियांके पर्देपर नहीं है। कैसी-कैसी चीज़ें बनाकर भेजता है कि अक़ल हैरान रह जाती है।"

—"आखिर वह भी परास्त हो गया है।"

—"और क्या! अंग्रेज़ बहादुरका अक़बाल बड़ा बुलन्द है।"

—"सो उस सरकारको लोग चर्खेसे भगाना चाहते हैं!"

—"खोटे दिन आये हैं—और क्या है। जब दिन खोटे आते हैं, तो मति भ्रष्ट हो जाती है।"

[२]

ठाकुर रिपुदमन सिंह एक बड़े ज़मींदार हैं। जिस गांवमें वह रहते हैं, वह गाँव पूरा उनका है। उसके अतिरिक्त आसपासके दस-बारह ग्रामोंमें उनके हिस्से हैं। अपनी कुल ज़मींदारीसे ठाकुर साहबको आठ-दस हज़ार रुपये वार्षिककी आय है। उनके दो पुत्र हैं; एककी वयस २१ वर्षके लगभग तथा दूसरेकी दस वर्षके लगभग है। दो कन्याएँ हैं, पत्नी है तथा एक विधवा भगिनी है। बड़ा लड़का एफ० ए० पास कर चुका है और अब उसने पढ़ना छोड़ दिया है। छोटा लड़का पढ़ रहा है। बड़े लड़केका नाम मनमोहन सिंह है। मनमोहन सिंह राष्ट्रीय विचारोंका नवयुवक है, परन्तु पिताके आगे उसके विचारोंका कोई मूल्य नहीं है।

मनमोहन सिंह हवा खानेके बाद घरकी ओर लौट रहे थे, इसी समय वही खद्दरधारी व्यक्ति उन्हें एक ओर जाता दिखाई पड़ा। मनमोहन सिंहने उसे देखते ही पुकारा—"पाठकजी! पाठकजी!" पाठकजीने घूमकर देखा और मनमोहन सिंहको देखते ही लौट पड़े और लपककर उनके पास पहुँचे। मनमोहन सिंहने पूछा—"कहो, किधर जा रहे हो?"

पाठकजीने उत्तर दिया—"बड़े ठाकुर साहबने बुलवाया था, उन्हींके पाससे आ रहा हूं।"

मनमोहन सिंहने उत्सुक होकर पूछा—"अच्छा, क्यों बुलवाया था?"

—"कहते थे तुम गांवमें बग़ावत फैला रहे हो!"

—"अच्छा!"

—"हाँ, मैंने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु वह तो आवश्यकतासे अधिक राजभक्त हैं। स्वदेशी तथा खद्दर-प्रचार तकको राजद्रोह समझते हैं।"

मनमोहन सिंह मौन होकर विचार-मग्न हो गये। पाठकजी बोले—"बताइये, ऐसी दशामें यहाँ कांग्रेस-प्रचार कैसे हो सकता है?"

मनमोहन सिंह एक दीर्घ-निःश्वास छोड़कर बोले—"हाँ, ऐसी दशामें तो बड़ा कठिन है।"

—"अन्तमें उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि यहाँ रहना है तो सीधी तरह रहो, नहीं कहीं अन्यत्र चले जाओ। यहाँ रहकर ये बातें करोगे, तो ठीक न होगा।"

—"अच्छा, यहां तक कह गये?"—मनमोहन सिंहने आश्चर्यान्वित होकर पूछा।

—"जी, हाँ।"

—"तब तो मामला बेढब है।"

—"और क्या।"

—"जान पड़ता है, किसीने कान भरे हैं।"

—"जो कुछ हो, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि वह इन बातोंके विरुद्ध आरम्भसे हैं।"

—"विरुद्ध तो हैं ही। उनके विरोधके कारण मेरा साहस नहीं पड़ता कि मैं कुछ कहूं, परन्तु उनसे शिकायत किसीने अवश्य की है।"

—"शिकायत तो की होगी, यह निश्चय है।"

—"तो फिर अब क्या करोगे?"

—"जैसी सलाह दीजिए। मैं तो आपके बलपर ही यह सब खेल खेल रहा हूं।"

—"इस गाँवमें कांग्रेस-कमेटी तो अवश्य स्थापित होनी चाहिये।"

—"कैसे हो सकती है, जब बड़े ठाकुरके ऐसे विचार हैं।

हाँ, यदि आप खुलकर मैदानमें आवें, तो सम्भव है, कुछ हो जाय। मुझको तो वह दबा सकते हैं, परन्तु आपको नहीं दबा सकते।"

—"नहीं, यह बात तो नहीं है। मुझे तो वह तुमसे अधिक दबा सकते हैं; क्योंकि मैं तो पूर्णतया उनपर निर्भर हूँ, तुम फिर भी स्वतन्त्र हो।"

—"स्वतन्त्र क्या हूँ। उनके गाँवमें रहता हूँ। उनकी ज़मीनमें खेती करता हूँ। ऐसी दशामें स्वतन्त्रता कहाँ रही।"

—"तुम्हें भय किस बातका है?"

—"मुझे अपने व्यक्तित्वका भय नहीं है। मुझे चाहे वह जेल भेज दें, चाहे पिटवा लें—मैं सब सहन करनेको तैयार हूँ, परन्तु मेरे बाल-बच्चोंको बैठनेका ठिकाना और पेट-भर भोजन मिलना चाहिए। बस, मैं और कुछ नहीं चाहता। यदि इसका प्रबन्ध हो जाय, तो मैं एक बेर ठाकुरको आनन्द दिखा दूं।"

—"क्या आनन्द दिखा दोगे?"—मनमोहन सिंहने पूछा।

—"इस गाँवमें कांग्रेस कमेटीकी स्थापना करके दिखा दूंगा।"

—"अच्छा!"

—"जी हाँ!"

—"परन्तु जब तक गाँवके अन्य लोग तुम्हारा साथ न देंगे, तब तक तुम अकेले क्या कर लोगे?"

—"यही तो मुख्य कार्य है। गाँवके अन्य लोगोंको साथमें लेनेका प्रयत्न करूँगा।"

—"एक सहायता तो मैं दे सकता हूँ।"

—"कौनसी?" पाठकजीने उत्सुक होकर पूछा।

—"तुम्हारे परिवारके भरण-पोषणका भार मैं अपने ऊपर ले सकता हूँ।"

—"तब तो यह बहुत बड़ी सहायता है।"

—"परन्तु मैं प्रकट रूपसे नहीं, गुप्तरूपसे सहायता दे सकता हूँ।"

—"हाँ, हाँ, मैं समझ गया। खैर, वह तो तय हो गया, अब उनके रहनेका प्रश्न उठता है।"

—"रहनेके लिए चिन्ता क्यों करते हो, वह तुम्हें गाँवसे थोड़े ही निकाल सकते हैं।"

—"गाँवसे नहीं निकालेंगे, तो अनेक प्रकारके झगड़े लगायँगे।"

—"सो तो तुम सब सहन करनेको तैयार हो, अभी कह चुके हो।"

—"हाँ तैयार तो अवश्य हूँ।"

—"तो बस, फिर उसकी क्या चिन्ता है।"

—"खैर, देखा जायगा। न होगा, तो मैं अपने परिवारको अपनी ससुराल भेज दूँगा और यहाँ अकेला रहकर काम करूँगा।"

—"हाँ, यह भी ठीक है।"

—"अच्छी बात है। मैं अपना काम जारी रखूंगा, परन्तु आप भी कुछ सहयोग करते तो अच्छा था।"

—"सहयोग मैं करूँगा अवश्य, पर अभी नहीं, आगे चलकर। जब मैं समझ लूंगा कि पूर्णतया प्रकटरूपसे सहयोग कर सकता हूँ, तभी सहयोग करूँगा।"

—"अच्छी बात है। तो अब जाता हूँ। आप भी घर जायँगे न?"

—"हाँ, घर ही जाता हूँ।"

[३]

ठाकुर रिपुदमन सिंहने भ्रुकुटी चढ़ाकर कहा—"पाठकजीकी शामत आई है।"

उपस्थित व्यक्तियोंमेंसे एक बोला—"सरकार, बाल-बच्चे तो उन्होंने दूसरे गाँवमें भेज दिये हैं—अकेले हैं; सो मनमानी करते फिरते हैं।"

—"क्या मनमानी करते हैं?" ठाकुर साहबने पूछा।

—"लोगोंको भड़काते हैं कि तुम लोग ज़मींदारसे क्यों डरते हो, ज़मींदार तुम्हारा क्या कर लेंगे?

—"अच्छा!"

—"जी हाँ। रातको गाँवके बाहर दस-बीस आदमी जमा करते हैं और लेक्चर देते हैं।"

—"कौन-कौन आदमी वहाँ जाते हैं, नाम बताओ?" ठाकुरने पूछा।

—"अब सरकार नाम क्या बतावें, बैठे-बिठाये बैर कौन मोल ले।"

—"इसमें बैर मोल लेनेकी कोई बात नहीं है, तुम बेखटके बताओ।"

—"एक तो बिन्दा महाराज हैं।"

—"अच्छा ?"

—"और कालिका सिंह, पुत्तान महाराज, मनसाराम—यही सब लोग हैं।"

ठाकुरने गुड़ैतकी ओर देखकर कहा—"मैकुआ !"

मैकुआ खड़ा हो गया। ठाकुर बोले—"जाओ, बिन्दा महाराज, पुत्तान महाराज और जिनके-जिनके नाम अभी इन्होंने लिये हैं, उन्हें बुला लाओ।"

—"बहुत अच्छा सरकार !" कहकर गुड़ैतने अपना मोटा लठ सँभाला और चल दिया।

उसके चले जानेके पश्चात् ठाकुर बोले—"पाठकजीको मैंने जेल न दिखलाया, तो नाम नहीं। वह भी क्या याद करेंगे कि किसीसे पाला पड़ा था। ले बताओ, हमारी बदनामी करानेका काम करते हैं? हाकिम लोग सुनेंगे, तो समझेंगे कि इन्हींकी शहसे यह सब हो रहा है।"

—"सो तो हई है। बदनामी तो आपकी अवश्य होगी।" एक वृद्ध महाशय बोले।

—"खाली बदनामी ही नहीं, आपकी ओरसे हाकिमोंका ख़याल ख़राब हो जायगा।"

ठाकुर साहब बोले—"अभी तो जब हम जाते हैं, कलक्टर साहब हाथ मिलाते हैं, कुर्सी देते हैं; ये समाचार सुनकर फिर भला वह हमसे बात करेंगे?"

—"बात करना तो दूर रहा, आपके दुश्मन हो जायँगे।" एक अन्य व्यक्तिने कहा।

—"हमारी सलाह तो यह है कि थानेमें रपट लिखा दी जाय कि पाठकजी गाँवमें बग़ावत फैलाते हैं।" उन वृद्ध महाशयने कहा।

—"हाँ, बाबा यह तुमने ठीक सोची; ऐसा ज़रूर होना चाहिए। इससे ठाकुर साहबपर कोई इलजाम नहीं आवेगा।" एक नवयुवक बोला।

ठाकुर साहब सिर हिलाते हुए बोले—"यह युक्ति ठीक है। रपट लिखवा देना चाहिए।"

यही बातें हो रही थीं कि मैकू गुड़ैत चार आदमियोंको साथ लिये आ पहुँचा।

ठाकुर साहब उन व्यक्तियोंको देखकर बोले—"आइये !"

सब कुर्सी तथा मोढ़ोंपर बैठ गये। कुछ क्षणों तक मौन रहकर ठाकुर साहब बोले—"आपको मालूम है कि पाठकजी बड़ा उपद्रव कर रहे हैं?"

नवागन्तुक चारों व्यक्तियोंने परस्पर एक दूसरेकी ओर देखा। तत्पश्चात् उनमेंसे एक बोला—"ठाकुर साहब, उपद्रव तो वह कुछ भी नहीं मचा रहे हैं। आपसे यह किसने कहा ?"

—"किसीने कहा हो, पर बात ठीक है।"

—"हम कैसे कहें कि बात ठीक है। पाठकजी बेचारे तो बहुत ही सज्जन पुरुष हैं।"

ठाकुर साहब कर्कश स्वरमें बोले—"उस बदमाश लफंगेको आप सज्जन पुरुष कहते हैं। सज्जन पुरुष ऐसे ही होते हैं? और आप लोग तो ऐसा कहेंगे ही, आख़िर आप लोग भी तो उसीके साथी हैं।"

—"सरकार आप मालिक हैं - चाहे जो कुछ कहें, परन्तु पाठकजी कोई बुरा काम नहीं करते और न हम लोग।"

—"रातमें गाँवके बाहर जमा होकर आप लोग क्या करते हैं?"

—"बातचीत किया करते हैं।"

—"क्या बातचीत करते हो ?"

—"पाठकजी उपदेश और व्याख्यान दिया करते हैं, वह सुना करते हैं।"

ठाकुर साहब घृणासे हँसकर बोले—"आप लोग बुड्ढे हो गये, सारा संसार देख डाला, आपको वह कलका लौंडा उपदेश देता है! और आप सुनते हैं! बड़े ताज्जुबकी बात है।"

—"उपदेश सुनना कोई बुरा काम तो है नहीं।"

—"बुरा काम नहीं है, तो रातमें चोरीसे गाँवके बाहर क्यों जाते हो? दिन-दिहाड़े गाँवके अन्दर सुना करो।"

इसपर चारों व्यक्ति मौन रहे, कुछ उत्तर न दिया।

ठाकुर साहब बोले—"देखिये, मैं आप लोगोंको समझाये देता हूँ कि उसकी बातोंमें मत आइये, नहीं तो नुकसान उठाइयेगा। और रहा वह, सो उसका इलाज तो मैं बहुत जल्द कराये देता हूँ। जाता कहाँ है। मेरा नाम रिपुदमन सिंह है। शत्रुका दमन करना ही मेरा काम है। जाइये! इतने ही के लिए बुलाया था।" चारों व्यक्ति उठकर चले गये।



हलायुध

[चित्रकार—श्री प्रमोदकुमार चटर्जी]

उनके आनेके पश्चात् ठाकुरने कहा — —"पहले पाठकजीका इलाज हो जाय, तब इनकी ख़बर ली जायगी।"

वृद्ध महाशय बोले—"इनकी ख़बर लेनेकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। पाठकजीका इलाज होते ही ये सब अपने आप ठंडे हो जायँगे।"

—"यह भी ठीक है। मुखिया तो वही है।"

—"आप उसका इलाज सबसे पहले कीजिए।"

—"अभी लो! अरे, लाना हो कलम, दावात, काग़ज़— मैं अभी रपट लिखकर थाने भेजता हूं।"

[४]

पाठकजी मनमोहन सिंहसे बोले—"बड़े ठाकुरने थानेमें रिपोर्ट कर दी है, और मैंने यह भी सुना है कि आज रातमें पुलिस आवेगी।"

मनमोहन सिंहने पूछा—"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

—"थानेके एक कान्स्टेबिलसे मालूम हुआ है।"

—"अच्छा! उसने तुम्हें कैसे बता दिया?"

—"वह मेरा नातेदार है। यह बात बहुत कम लोग जानते है।"

—"तब ठीक है। तो फिर क्या करोगे?

—"जो नित्य करते हैं वही करेंगे।"

—"गाँवमें तो किसीको पुलिसके आनेकी ख़बर होगी नहीं।"

—"नहीं, होगी भी तो केवल बड़े ठाकुरको।"

—"ख़ैर, उनको ख़बर होनेसे कोई हानि नहीं हो सकती। मैं यह सोच रहा था कि जो कहीं गांवमें ख़बर लग गई, तो डरके मारे लोग जमा न होंगे।"

—"नहीं, सो तो किसीको मालूम नहीं है—लोग आवेंगे।"

—"अच्छी बात है, तो एक युक्ति मैंने सोची है।"

—"क्या?"

मनमोहन सिंहने इधर-उधर देखकर पाठकजीके कानमें कुछ कहा। पाठकजी आश्चर्यसे मनमोहन सिंहको देखकर बोले— "अच्छी बात है—जैसा आप उचित समझें।"

—"बस, यही उचित है। आज ही सब झगड़ा समाप्त हो जायगा।"

—"बड़ी प्रसन्नताकी बात है।"

—"तो बस, जाओ सब ठीक-ठाक रखना।"

"अच्छी बात है।" कहकर पाठकजी चल दिये।

शामको साढ़े सात बजेके पश्चात् अंधकार हो जानेपर एक सब-इन्स्पेक्टर चार कान्स्टेबिलों-सहित चुपकेसे ठाकुर साहबके यहाँ आकर बैठ गये। सब-इन्स्पेक्टरने ठाकुर साहबसे पूछा—"कहिये, वे लोग कहाँ जमा होते हैं?"

ठाकुर साहबने कहा—"गाँवके बाहर एक पुराना मन्दिर है, उसीमें जमा होते हैं।

—"वहाँ वे क्या करते हैं?" सब-इन्स्पेक्टरने पूछा।

—"कुछ भी करते हों! आप तो उनपर सरकारके खिलाफ़ बग़ावत फैलानेका इल्ज़ाम लगाकर गिरफ्तार कीजिएगा। गवाहियाँ मैं जुटा दूँगा।"

—"आपने रिपोर्टमें तो रामेश्वरप्रसाद पाठकका नाम लिखा था।"

—"हाँ, वही तो यह सब करता है, उसीको गिरफ्तार कीजिएगा।"

—"हाँ, उसीको गिरफ्तार किया जायगा। सबको तो गिरफ्तार भी नहीं कर सकते।"

—"उसको गिरफ्तार करनेसे ही सब काम बन जायगा।"

—"तो किस समय चलना होगा?"

—"बस, थोड़ी देरमें चले आइयेगा, मैं आदमी साथ कर दूँगा।"

आठ बजेके लगभग इन्सपेक्टर साहब चले। ठाकुर साहबने रास्ता बतानेके लिए अपना गुड़ैत साथ कर दिया। गांवके बाहर पहुंचकर इन्सपेक्टरने कुछ दूरपर एक मन्दिरमें चिराग़ जलता हुआ देखा। गुड़ैतने कहा—"वह मन्दिर है, वहीं सब जमा होंगे।"

इन्सपेक्टरने गुड़ैतसे कहा—"अच्छा, तुम यहीं ठहरो।"

यह कहकर वह मन्दिरकी ओर चला। मन्दिरके द्वारपर पहुंचकर उसने कान्स्टेबिलोंको द्वारपर खड़ा कर दिया और स्वयं भीतर घुस गया।

भीतर पन्द्रह-बीस आदमी जमा थे। इन्सपेक्टरको देखते ही सब घबराकर खड़े हो गये।

इन्सपेक्टरने पूछा—"रामेश्वर पाठक किसका नाम है?"

—"कहिये, क्या काम है। जो कुछ कहना हो, मुझसे

कहिये।"—यह कहकर एक व्यक्ति आगे बढ़ा। इन्सपेक्टर चिराग़के क्षीण आलोकमें उस व्यक्तिको ध्यानपूर्वक देखकर बोला—"अरे आप हैं! वह पाठक कहाँ है?"

—"पाठक-वाठक यहाँ कोई नहीं है, मैं हूँ। यदि आप गिरफ्तार करना चाहें, तो मुझे गिरफ्तार कीजिए।"

—"नहीं, ठाकुर साहब, मैं आपको गिरफ्तार करने नहीं आया, मैं पाठककी तलाशमें हूँ।"

—"वह तो नहीं हैं।"

—"आप यहाँ क्या कर रहे हैं?"

—"आज हम लोगोंने इस गाँवमें कांग्रेस-कमेटीकी स्थापना की है।"

—"अच्छा!"

—"कांग्रेस-कमेटी क़ायम करना तो कोई जुर्म है नहीं?"

—"जी नहीं! मगर आपके लायक़ यह काम नहीं है।"

—"ख़ैर, यह एक बहस-तलब बात है।"

—"अच्छा, आप मेरे साथ चलिये।"

—"चलिये!"

इन्सपेक्टर साहब छोटे ठाकुर अर्थात् मनमोहन सिंहको साथ लेकर चले। पीछे-पीछे सब लोग 'महात्मा गान्धीकी जय' बोलते हुए जा रहे थे।

इधर ठाकुर साहब बैठे कह रहे थे—"आज उस पाठकको पता चलेगा कि रिपुदमन सिंह कितना शक्तिशाली है।" इसी समय इन्सपेक्टर मनमोहन सिंहको लेकर उनके सामने पहुँचा। ठाकुर साहब मनमोहन सिंहको इन्सपेक्टरके साथ देखकर चकराये और शीघ्रता-पूर्वक बोले—"कहिये, वह पाठक मिला?"

—"जी नहीं! वहाँ वह नहीं था, यह छोटे ठाकुर थे।"

ठाकुरके मुँहसे "अच्छा!" निकला और चेहरा फक़ हो गया।

इन्सपेक्टरने कहा—"इन्होंने आज गाँववालोंकी मीटिंग करके कांग्रेस-कमेटी क़ायम की है।"

ठाकुर साहब शीघ्रता-पूर्वक बोले—"कांग्रेस-कमेटी क़ायम करना तो कोई बुरी बात है नहीं, क्यों दारोगाजी?"

दारोगाजी ठाकुर साहबकी झेंप्लाहट देखकर हँस पड़े और बोले "जी नहीं, उस वक़्त तक बुरी बात नहीं है, जब तक कि उसके ज़रियेसे गवर्मेन्टके ख़िलाफ़ कोई काम न किया जाय।"

—"सो तो नहीं होने पायेगा, यह आप इतमीनान रखिये। मेरे रहते ऐसा कभी न होने पायेगा। आप खड़े क्यों हैं, बैठ जाइये।"

—"नहीं, अब इजाज़त दीजिए, मुफ़्तमें परेशानी हुई, नतीजा कुछ न निकला।"

—"इसके लिए मैं मुआफ़ी चाहता हूँ। बैठिये, खाना खाकर जाइयेगा!"

—"नहीं, अब इजाज़त दीजिए!

—"सो नहीं होगा, खाना तो आपको खाना ही पड़ेगा।"

"अच्छी बात है, जैसी आपकी मर्ज़ी।" कहकर दारोगाजी कुर्सीपर बैठ गये।

फास्ट

[लेखक :—श्री तुर्गनेव]

(गताङ्कसे आगे)

आँधीको गुज़रे बहुत देर हो चुकी थी। तारे आकाशमें उग आये थे और चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। एक प्रकारकी चिड़िया, जिसे मैं नहीं पहचानता था, विभिन्न स्वरोंमें गा रही थी, और कभी-कभी एक ही शब्दको बह बार-बार दुहरा दिया करती थी। उस गम्भीर सन्नाटेमें उसका स्पष्ट एकाकी शब्द विस्मयजनक मालूम पड़ता था। उस समय तक भी मैं बिछौनेपर सोने नहीं गया था।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं सबसे पहले मुलाक़ाती कमरेमें जा पहुँचा। मैं श्रीमती अल्टसवकी तसवीरके सामने खड़ा था। 'अहा!' व्यंग्यपूर्ण विजयकी एक शुभ

भावनाके साथ मैंने विचार किया—'आखिर मैंने तुम्हारी लड़कीको एक वर्जित पुस्तक पढ़कर सुना ही तो दी!' उसी दम मैंने खयाल किया—तुमने शायद देखा होगा कि किसी तसवीरकी आँखें हमेशा उस आदमीपर सीधी गड़ी हुई मालूम होती हैं, जो आमने-सामने होकर उस तसवीरको देखता है, परन्तु उस समय मुझे निश्चय ही ऐसा खयाल हुआ कि उस चित्रमें चित्रित वह वृद्धा की अपनी आँखोंको घुमाकर मेरी ओर घृणाकी दृष्टिसे देख रही है।

मैं घूमकर खिड़कीके पास गया और वहाँ वीरा नीकलवनाको पाया। कांधेपर एक छोटीसी छतरी और सिरपर एक हल्का सफेद रूमाल रखे हुए वह टहल रही थी। मैं फ़ौरन बाहर चला गया और उससे 'गुड मार्निंग' कहा।

उसने कहा—"मैं रात-भर सोई नहीं, मेरा सर दुख रहा है, इसीलिए मैं बाहर हवामें चली आई, जिससे मेरा सिर-दर्द दूर हो जाय।"

"क्या यह कलके पढ़नेका नतीजा तो नहीं है?"—मैंने पूछा।

"ज़रूर मैं इस प्रकार पढ़नेकी अभ्यस्त नहीं हूँ। तुम्हारी पुस्तकमें कुछ ऐसी बातें हैं, जो मेरे दिमाग़से बाहर ही नहीं निकलतीं। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो वे खयालात मेरे सरको चकरा रहे हों।"—ऐसा कहकर उसने अपने ललाटपर हाथको रखा।

मैंने कहा—"यह तो खूब रही! परन्तु मैं तुमसे जो एक बात कहना चाहता हूँ और जो मुझे पसन्द नहीं है, वह यह है कि कहीं ऐसा न हो कि इस अनिद्रा और सिर-दर्दके कारण तुम इस प्रकारके विषयोंके पठन-पाठनसे विमुख हो जाओ।"

"क्या तुम ऐसा खयाल करते हो?"—यह कहकर वह बनचमेलीकी एक टहनी तोड़ती हुई आगे बढ़ी।—"ईश्वर ही जानता है? मैं खयाल करती हूँ कि एक बार जिसने इस पथपर पाँव रखा, फिर उसके लिए वापस लौटना असम्भव है।" यह कहकर उसने एकाएक उस टहनीको फेंक दिया।

"आओ, हम सब इस लता-कुंजमें बैठ जायँ"—वह कहने लगी—"परन्तु कृपया उस पुस्तकके सम्बन्धमें मुझे याद मत दिलाना, जब तक कि मैं स्वयं उसके विषयमें चर्चा न करूँ।" (वह 'फास्ट' पुस्तकका नाम तक लेनेसे डरती थी!)

हम सब उस लता-कुंजमें गये और वहीं बैठ गये।

"मैं तुमसे 'फास्ट' पुस्तककी चर्चा नहीं करूँगा"—मैंने कहना शुरू किया—"परन्तु मैं तुम्हें बधाई देता हूँ और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं तुम्हारे सौभाग्यपर ईर्षा करता हूँ।"

"तुम मेरे ऊपर ईर्षा करते हो।"

"हाँ, तुम्हें इस समय मैं जैसा समझ रहा हूँ और तुम्हारी जैसी आत्मा है, उससे मैं जानता हूँ कि तुम्हारे भाग्यमें इस प्रकारके बहुतसे आनन्दोपभोग बदे हैं। गेटेके सिवा और भी बहुतसे महाकवि हैं—शेक्सपीअर, शिलर आदि और हम लोगोंके अपने कवि पुशकिन। इन कवियोंके विषयमें भी तुम्हें जानना चाहिए।"

वह कुछ बोली नहीं और अपनी छतरीसे बालूमें लकीर खींचने लगी।

ओ, मेरे दोस्त, सीमन निकोलेच! उस घड़ी यदि तुम उसे देख पाते, वह कितनी सुन्दर मालूम पड़ती थी। चेहरा इतना उज्ज्वल कि आर पार देख लो। आगेकी ओर कुछ झुकी हुई थकी-सी और भीतरसे कुछ घबराई हुई होनेपर भी वह आकाश जैसी शान्त मालूम पड़ती थी। मैंने उससे बातें कीं, बहुत देर तक सम्भाषणका आनन्द उठाया और फिर बातें करना बन्द करके मैं चुपचाप बैठ गया और उसे देखने लगा। उसने अपनी आँखें ऊपर नहीं उठाईं और पहलेके समान ही अपनी छतरीसे बालूमें लकीरें खींचती और मिटाती रही। एकाएक हमें किसी लड़केके जल्दी-जल्दी आनेकी आहट जैसी सुन पड़ी। नटशा उस कुंजमें दौड़ती हुई आ पहुँची। वीरा नीकलवना सीधी होकर उठ बैठी, और फिर उसने मुझे

आश्चर्यमें डालते हुए अपनी उस लड़कीका करुणाके आवेशमें आकर गाढ़ालिंगन किया। उसका यह आचरण एक बिलकुल नई बात थी। इसके बाद प्रेम कवि वहाँ आ पहुँचा। बूढ़ा श्रीमल जो अपने समयका बड़ा पाबन्द था, प्रातःकालसे पूर्व ही वहाँसे चला गया था, ताकि पढ़ना न छूटने पावे। हम लोग प्रातःकालीन चाय पीने चले गये। किन्तु इस समय मैं थक गया हूँ। अब इस पत्रको समाप्त करना बहुत ज़रूरी है। यह निश्चय है कि मेरा यह पत्र तुम्हें मूर्खतापूर्ण और भ्रान्तिमय मालूम पड़ेगा। मैं खूब ही घबराया हुआ जैसा अनुभव करता हूँ। इस समय मैं आपेसे बाहर हो रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि इस समय मेरा क्या हाल है। मेरे दिमाग़में हमेशा एक छोटा कमरा, उसकी सादी दीवालें, एक लैम्प, एक खुली खिड़की, रातकी ताज़गी और सुगन्ध, वहाँ दरवाज़ेके पास एक यौवनपूर्ण चेहरा और हलकी सफेद पोशाकें—ये सब चीज़ें घुसी रहती हैं। अब मैं समझ रहा हूँ कि पहले मैंने उसके साथ क्यों विवाह करना चाहा था। अब मुझे मालूम पड़ता है कि बर्लिनमें ठहरनेके विषयमें मैं उतना मूर्ख नहीं था, जितना कि मैंने अब तक अपनेको मान रखा था। हाँ, सिमन निकोलेच, तुम्हारे मित्रके मनकी अजीब दशा हो रही है। मैं जानता हूँ कि यह सब कुछ गुज़र जायगा'''और अगर यह नहीं भी गुज़रे, तो इससे होगा ही क्या? यह नहीं गुज़रेगा, बस, इतना ही न? किन्तु किसी भी दशामें मैं अपने आपसे पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। पहली बात तो यह है कि मैंने बड़े मज़ेके साथ एक आनन्दप्रद सन्ध्या व्यतीत की, एक लाभ तो यह हुआ और दूसरे यदि मैंने वीरा नीकलवनाकी आत्माको जाग्रत कर दिया है, तो इसके लिए मुझे कौन दोषी ठहरा सकता है? बूढ़ी अल्टसव इस समय दीवालपर गड़ी हुई है और वहीं वह आरामसे बनी रहे। बेचारी बुढ़िया कहीं की! मैं उसके जीवनकी सभी बातोंसे परिचित नहीं हूँ, किन्तु इतना मैं ज़रूर जानता हूँ कि वह अपने बापके घरसे भाग गई थी। वह अपनी लड़कीको हिफ़ाज़तसे रखना चाहती थी।''''''

अच्छा, हम देख लेंगे।

अब मैं अपनी लेखनीको विश्राम देता हूँ। तुम्हारे जैसे ताना मारनेवाले आदमीसे मैं यही प्रार्थना करूँगा कि तुम मेरे विषयमें चाहे जैसा खयाल करो, किन्तु पत्रमें मुझपर चुटकी न लेना। हम और तुम पुराने दोस्त हैं, इसलिए एक दूसरेको माफ कर देना चाहिए।

अच्छा, विदा होता हूँ।

तुम्हारा—

....

पाँचवाँ पत्र

जुलाई २६, सन् १८५०

प्रिय सिमन निकोलेच,

मैं समझता हूँ कि एक माससे अधिक हुआ, जब कि मैंने तुम्हें पत्र लिखा था। इस अरसेमें मुझे बहुत कुछ लिखनेको था, किन्तु आलस्यवश मैं नहीं लिख सका। सच बात तो यह है कि इधर मैंने कदाचित् ही कभी तुम्हारा खयाल किया हो। तुम्हारे अन्तिम पत्रसे मुझे पता लगता है कि तुम मेरे विषयमें कुछ नतीजा निकाल बैठे हो, यह नतीजा मेरी समझमें अन्याययुक्त है, या यों कहिये कि पूर्णतया न्याययुक्त नहीं है। तुम्हारा खयाल है कि मैं वीराके प्रेममें फँस गया हूँ (मुझे उसे वीरा नीकलवना कहकर सम्बोधन करना अच्छा नहीं लगता), किन्तु यह खयाल तुम्हारा ग़लत है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं उसे बहुधा देखा करता हूँ, और सचमुच उसे चाहता भी बहुत हूँ, परन्तु कौन ऐसा है जो उसे नहीं चाहेगा? क्या ही अच्छा होता यदि तुम यहाँ मेरे स्थानपर होते।

वह एक उत्कृष्ट प्राणी है। उसका सत्वरशील अन्तरज्ञान और उसके साथ-साथ बालोचित अनुभवहीनता, उसकी स्पष्ट सहज बुद्धि, सौन्दर्यके प्रति स्वाभाविक भावमग्नता, महत् एवं सत्यके प्रति अनवरत चेष्टाशीलता तथा प्रत्येक वस्तुकी—यहाँ तक कि खोटी और उपहास-योग्य वस्तुकी—भी समझनेकी शक्ति, उसकी स्त्रियोचित कोमल मोहकता—जो देव-दूतकी तरह उनकी रक्षा करती रहती है—किन्तु स्वयं

शब्दाडम्बरसे क्या लाभ? इस मासमें हम दोनोंने एक साथ मिलकर बहुत-कुछ पढ़ा है, बहुत-कुछ बातचीत भी की है। उसके साथ पढ़नेमें मुझे इतना आनन्द मिलता है, जितना पहले मैंने कभी अनुभव नहीं किया था। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो हमें किसी नई दुनियाका पता लग रहा हो। वह किसी विषयको लेकर आनन्दातिरेकमें विह्वल नहीं हो जाती. किसी विषयकी प्रचंडता उसे पसन्द नहीं आती। जब किसी वस्तुको वह चाहती है, तो उसका सम्पूर्ण शरीर स्निग्ध रूपमें उद्भासित हो उठता है और उसका मुखमण्डल बड़ा ही सुन्दर एवं भव्य रूप धारण कर लेता है। अपने लुटपनसे ही छल क्या वस्तु है, यह कभी उसने जाना ही नहीं। उसे सत्य बोलनेका ही अभ्यास है, सत्य ही उसके जीवनकी साँस है। इसी प्रकार कवितामें भी जो सत्य है, उसे वह फौरन स्वाभाविक समझकर ताड़ जाती है और बिना किसी प्रयत्न या प्रयासके वह परिचित व्यक्तिकी तरह उसे पहचान लेती है। बड़े सौभाग्यसे ही किसीको ऐसा आनन्दप्रद स्वभाव मिलता है। उसके इस गुणके लिए उसकी माँकी तारीफ़ करनी चाहिए। वीराको देखकर कितनी ही बार मैंने सोचा है कि गेटेने ठीक ही कहा है कि 'भले लोग अपने गूढ़ प्रयत्नमें भी इस बातका हमेशा अनुभव करते रहते हैं कि सन्मार्ग किस ओर है।'

एक ही बात ऐसी है, जिससे मुझे बहुत तंग होना पड़ता है—यानी उसके स्वामीकी निकटमें ही निरन्तर उपस्थिति। (कृपया मेरी बातपर व्यर्थ ही मत हँस पड़ना और हमारी विशुद्ध मैत्रीके सम्बन्धमें किसी प्रकारका कलुषित भाव अपने विचारमें भी न लाना)। पतिदेवमें कविता समझनेकी उतनी ही योग्यता है, जितनी मुझमें बाँसुरी बजानेकी, किन्तु इस विषयमें वह अपनी स्त्रीसे पीछे रहना नहीं चाहता और वह अपनेको उन्नतिशील भी बनाना चाहता है। पर कभी-कभी तो वीरा मुझे खुद ही अधीर बना देती है। अचानक उसकी मनोवृत्ति बदल जाती है, उस समय वह न तो कुछ पढ़ेगी और न किसीसे कुछ बातचीत करेगी। वह कसीदा काढ़ने लगती है, अपनी लड़की नटशाको प्यार करने लगती है, या गृह-रक्षिकाके साथ काममें संलग्न हो जाती है। फौरन दौड़कर रसोईघरमें चली जाती है या सिर्फ हाथ समेटकर बैठ जाती है और खिड़कीके बाहर देखने लगती है, या परिचारिकाके साथ मज़ाक करने लगती है। मैंने यह ध्यान-पूर्वक देखा है कि ऐसे अवसरोंपर उसे तंग करना ठीक नहीं। इससे अच्छा है कि जब तक वह अपने मिज़ाजमें नहीं आ जाय, बातचीत या कोई पुस्तक पढ़ना शुरू नहीं कर दे, तब तकके लिए प्रतीक्षा की जाय। उसमें स्वतन्त्रता बहुत कुछ है, और इसकी मुझे खुशी है। क्या तुम्हें याद है कि हम लोगोंकी जवानीके दिनोंमें युवती बालिकाएँ कभी-कभी किसी व्यक्तिकी कही हुई बातोंको दुहराया करती थीं, और यह दुहराना किस प्रकार होता है, इसे वे खूब अच्छी तरह जानती थीं। जिस व्यक्तिके शब्दोंको वे दुहराती थीं, वह अपने शब्दकी प्रतिध्वनि सुनकर आनन्दके मारे फूला नहीं समाता था और इससे सम्भवतः प्रभावित भी बहुत हो जाता था, जब तक कि उसे इस बातका अनुभव नहीं हो जाता था कि इस प्रकार दुहरानेका अभिप्राय क्या है। किन्तु इस स्त्रीके साथ यह बात नहीं है। वह खुद विचार करती है और सिर्फ विश्वासपर किसी बातको नहीं मान लेती। 'यह बात किसी प्रामाणिक अधिकारीकी कही हुई है', यह कहकर उसे भयभीत नहीं किया जा सकता। पहले वह तर्क-वितर्क करना आरम्भ नहीं करती, किन्तु तर्क-वितर्क करनेमें वह परास्त भी नहीं होती। हम दोनोंने अनेक बार 'फाउस्ट' के सम्बन्धमें वाद-विवाद किया है। आश्चर्य तो यह है कि जीवनके विषयमें वह खुद कुछ भी नहीं कहना चाहती। मैं उसके विषयमें जो कुछ उससे कहता हूँ, उसे वह ध्यान-पूर्वक सुना करती है। मेफिस्टो फीलीज़ उसे एक शैतानके रूपमें नहीं, बल्कि 'एक ऐसी चीज़के रूपमें जो प्रत्येक मनुष्यमें पाई जा सकती है', भयभीत करता है।

ये शब्द खुद उसके ही हैं। मैंने उसे यह विश्वास दिलाना शुरू किया है कि 'यह चीज़' वही है, जिसे हम

चिन्तना Reflection कहते हैं ; किन्तु जर्मन-भाषामें इस शब्दका जो अर्थ समझा जाता है, उस अर्थमें यह इस शब्दको नहीं समझती। वह सिर्फ फ्रेंच भाषाके Reflexion शब्दको जानती है, और इसे ही लाभप्रद समझा करती है। हम लोगोंका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही बढ़िया है। एक दृष्टिसे मैं कह सकता हूँ कि मेरा उसके ऊपर बहुत प्रभाव है, और ऐसा प्रतीत होता है, मानों मैं उसे शिक्षा दे रहा हूँ, किन्तु उसके साथ-साथ वह भी, यद्यपि वह खुद इससे अवगत नहीं है, अनेक प्रकारोंसे मुझमें सुधार कर रही है। उदाहरणार्थ, अभी हाल ही में मुझे उसकी बदौलत यह पता चला है कि बहुतसी उत्तम एवं सुप्रसिद्ध काव्य-रचनाओंमें भी काव्यके हृदिगत लक्षण एवं अलंकार आदि कितनी अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। जिस बातको सुनकर उसपर कुछ भी असर नहीं पड़ता, उसके विषयमें मुझे खुद शक होने लगता है। हाँ, मैं पहलेसे अधिक अच्छा और गम्भीर बन गया हूँ। उसके पास रहकर और उसे बराबर देखते हुए कोई पहले जैसा नहीं रह सकता। तुम पूछोगे कि आखिर इन सब बातोंका परिणाम क्या होगा ? मैं तो सचमुच विश्वास करता हूँ कि कुछ नहीं। मैं सितम्बर तक यहाँ रहकर आनन्द-पूर्वक अपना समय व्यतीत करूँगा और उसके बाद चला आऊँगा। प्रारम्भके कई महीनोंमें जीवन मुझे अन्धकारपूर्ण और सुनसान मालूम पड़ेगा, किन्तु क्रमशः मैं इसका अभ्यस्त हो जाऊँगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि एक पुरुष और एक नवयुवती स्त्रीके बीच किसी भी प्रकारका सम्बन्ध कितना खतरनाक है, किस प्रकार अदृश्यरूपमें एक भावनाके बाद दूसरी भावना आती रहती है। यदि मुझे इस बातका निश्चय नहीं होता कि हम दोनों पूर्णतया स्थिरचित्त और निश्चिन्त हैं, तो अवश्य मुझमें इतनी शक्ति अवश्य है कि मैं इस सम्बन्धको तोड़ देता। यह सच है कि एक दिन हम दोनोंके बीच एक विलक्षण बात हो गई। मैं नहीं जानता कि किस प्रकार या किस कारणसे—मुझे स्मरण है कि मैं 'ओनेजिन' पढ़ रहा था—मैंने उसका हाथ चूम लिया। वह मुझसे कुछ दूर हट गई। मेरी ओर टकटकी बाँधकर देखने लगी। (इस प्रकारकी चितवन मैंने उसके सिवा और कभी नहीं देखी है; उसकी इस चितवनमें स्वप्नशीलता और तन्मयतापूर्ण ध्यान है और उसके साथ-साथ एक प्रकारकी कठोरता भी है)। और एकाएक चौंककर वह वहाँसे उठी और चली गई। मैं उस दिन उसके साथ अकेले रहनेमें कृतकार्य न हो सका। वह मुझे टालकर चार घंटे तक स्वामी, धाय और शिक्षिकाके साथ ताश खेलती रही। दूसरे दिन उसने मुझसे बगीचेमें टहलनेका प्रस्ताव किया।

हम सब बगीचेमें टहलते हुए झील तक गये। अचानक वह मेरी ओर मुड़े बिना ही धीरेसे मेरे कानके पास आकर बोली—"कृपया फिर वैसा मत करना।" इतना कहकर वह फौरन मुझसे दूसरी बातके सम्बन्धमें कहने लगी। मैं बहुत लज्जित हो गया।

मुझे यह बात कबूल करनी चाहिए कि उसकी मूर्त्ति मेरे मनसे कभी जाती नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि मैं यह भी कहूँगा कि सचमुच मैंने तुम्हारे पास इसी उद्देश्यसे पत्र लिखना शुरू कर दिया है कि जिसमें मुझे उसके सम्बन्धमें सोचने और बातचीत करनेका मौका मिले। मैं अपने घोड़ेके पाँवकी आहट और उसकी हिनहिनाहट सुन रहा हूँ, मेरी गाड़ी तैयार हो रही है। मैं उन लोगोंसे मिलने जा रहा हूँ। जब मैं अपनी गाड़ीमें सवार होता हूँ, तो अब मेरा कोचवान मुझसे यह नहीं पूछता कि कहाँ ले चलूँ। वह सीधे प्रम कविके घरकी तरफ गाड़ी ले चलता है। उनके गाँवसे डेढ़ मीलकी दूरीपर, जहाँसे एकाएक सड़क मुड़ जाती है, उन लोगोंका घर एक सनोबरके पेड़की झाड़ीके पीछेसे नजर आने लगता है। दूरसे ही उस घरकी खिड़कियोंकी झिलमिलाहट जब-जब मुझे मालूम पड़ती है, तभी मेरा हृदय आनन्दसे चहचहा उठता है। शीमलने (वह बुड्ढा निर्दोष आदमी जो समय-समयपर

उन लोगोंसे मिलने आया करता है, राजकुमार एच० उनसे एक ही बार मिलने आये हैं, इसे ईश्वरकी कृपा समझिये)। नम्रता-युक्त गम्भीरताके साथ, जो उसका विशेष गुण है, उस घरको—जहाँ वीरा रहा करती है—दिखलाते हुए बहुत ठीक कहा था—"यह शान्तिका वासस्थल है। इस घरमें शान्तिका देवदूत वास करता है।

"लेकर मुझे शरणमें अपनी देवो कुछ आनन्द।
हृत्कम्पन हो रहा अभी तक वह हो जावे बन्द॥
सन्तापोंसे तप्त आत्मा लगा रही है आस।
शीतल छाँह मिले यदि उसको तो पावे उल्लास॥"

किन्तु अब इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी ज़रूरत नहीं, अन्यथा तुम मेरे बारेमें न मालूम कितनी तरहकी बातें सोचने लगोगे। आगामी पत्र तकके लिए—यद्यपि मुझे आश्चर्य मालूम हो रहा है कि आगे मैं फिर तुम्हें क्या लिखूँगा—मेरा प्रणाम स्वीकार करो। इस प्रसंगमें तुम्हें यह भी बताये देता हूँ कि वीरा चलते समय मुझसे कभी प्रणाम नहीं कहती, बल्कि वह हमेशा यही कहा करती है—"अच्छा अब विदा।" उसके इस प्रकार कहनेके ढंगको मैं अत्यधिक पसन्द करता हूँ। तुम्हारा—

पुनश्च—मुझे यह स्मरण नहीं है कि मैंने तुम्हें यह बतलाया है या नहीं कि वीरा इस बातको जानती है कि मैं पहले उससे विवाह करना चाहता था।

छठा पत्र

१० अगस्त १८५०

मैं समझता हूँ कि तुम मुझसे ऐसे पत्रकी आशा कर रहे हो, जिसमें या तो निराशा अथवा परमानन्दका समावेश पाया जाय, किन्तु इन दोनोंमें एक भी बात नहीं है। मेरा यह पत्र भी पहलेके किसी पत्रके समान ही होगा। कोई नई बात नहीं हुई है और मैं ख़याल करता हूँ कि किसी नई बातके होनेकी सम्भावना भी नहीं है। उस दिन हम लोग एक नावपर सवार होकर झीलमें गये थे। मैं तुमसे इस नौका-विहारके सम्बन्धमें कहूँगा। हम लोग कुल तीन आदमी थे—वीरा, शीमल और मैं। मैं नहीं जानता कि किस कारण वह इस बुड्ढे आदमीको अक्सर बुलाया करती है। मुझे मालूम हुआ है कि राजकुमार एच० इस बातसे नाराज़ भी हैं कि यह जर्मन अपने अध्यापन-कार्यकी उपेक्षा करता है, यद्यपि इस अवसरपर उसका साथ रहना हम लोगोंके लिये आनन्ददायक था। प्रेम कवि हम लोगोंके साथ नहीं आया था। उसके सरमें दर्द था। मौसम बहुत ही सुन्दर और मनोहर था। बड़े-बड़े सफ़ेद बादल नीले आकाशमें खंड-खंड जैसे फैले हुए प्रतीत हो रहे थे। जिधर देखो, उधर ही चमचमाहट नज़र आती थी—वृक्षोंकी सनसनाहट, पानीका किनारेमें छपछपाना, तरंगोंपर सुनहले लच्छोंका बनना और बिगड़ना, ताज़गी और प्रकाश। पहले मैंने और उस जर्मनने मिलकर डाँड़े चलाईं। इसके बाद हमने पतवार बाँधकर हवामें छोड़ दी। किश्तीका किनारा पानीमें डूब-सा गया और पतवारके साथ पानीके छपकनेकी आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। वह पतवारके पास बैठ गई और किश्ती खेने लगी। उसने अपने सरपर एक रूमाल बाँध लिया था। वह टोपी पहन भी तो नहीं सकती थी। उसके घुँघराले बाल उसके सरपर बँधे हुए रूमालके अन्दरसे निकलकर इधर-उधर हवामें उड़ रहे थे। वह अपने छोटे हाथमें ज़ोरसे पतवार पकड़े हुई थी और पानीके छींटे समय-समयपर उड़कर उसके चेहरेपर पड़ते थे, उससे वह मुसकरा देती थी। मैं नावके अन्दर उसके पाँवके पास ही सिकुड़कर बैठा हुआ था। वह जर्मन सिगार निकालकर पीने लगा और मनोहर स्वरमें गाने लगा। उसने कई तरहके गान गाये। पहले तो उसने कुछ पुराने ढंगके गाने गाये, फिर 'प्रेमकी वर्णमाला' गाई, जिसके पद्योंके प्रारम्भमें 'अ आ इ ई' से लेकर 'क्ष त्र ज्ञ' तक आते थे। वीरा उसके गानको सुनकर हँस पड़ी और उसकी ओर इशारा करके अपनी उँगलियोंको हिलाने लगी।

मैंने कहा—"जहाँ तक मैं विचार कर सकता हूँ

मुझे मालूम होता है कि मिस्टर शीमल अपने ज़मानेमें एक ज़बरदस्त आदमी रहे होंगे।"

"हाँ, ज़रूर, हरएक काममें मैं भी अपना विशेष भाग ले सकता था।" मि० शीमलने रोबके साथ जवाब दिया। उसने सिगारके जले हुए हिस्सेकी राख अपने खुले हाथपर झाड़ी और अपने मुखके एक कोनेमें दाँतोंके बीच सिगारको दबाये हुए वह तमाखूकी झोलीको अपने हाथसे टटोलने लगा। फिर इसी अवस्थामें उसने कहना शुरू किया—"जब मैं विद्यार्थी था, अहा, हा, हा?" बस, इतना कहकर वह चुप हो गया। उसका यह "अहा, हा, हा" कहना भी बड़ा विलक्षण था। वीराने उससे विद्यार्थियोंके कुछ गीत गानेकी प्रार्थना की। उसने उसकी प्रार्थनापर गाना गाकर सुना दिया, पर गानके अन्तिम चरणपर पहुँचपर उसकी दम टूट गई। इस प्रकार वह बराबर प्रफुल्ल रहकर दूसरोंको भी हँसाता रहा। इस समय तक हवा ज़ोरसे बहने लग गई थी, पानीके ऊपर उठनेवाली लहरें भी पहलेकी अपेक्षा काफी विस्तृत होने लगी थीं और नाव कुछ-कुछ एक तरफ झुक-सी गई थी। हमारे चारों तरफ पानीके ऊपर जलपक्षी इधर-उधर उड़ रहे थे। हम लोगोंने पतवार ढीलाकर दिया और नावको हवाके अनुकूल चलने दिया। अचानक आँधीका एक झोंका आ पहुँचा, जिससे हम लोगोंको पतवार ठीक करनेका समय नहीं मिला। पानीकी एक लहर नावके किनारेके ऊपर थपेड़ा मारकर चली गई, जिससे नावके अन्दर बहुतसा पानी चला आया। इस अवसरपर उस जर्मनने साहस दिखलाते हुए मेरे हाथसे रस्सी छीन ली और पतवारको यह कहते हुए ठीक कर दिया—"So macht man is Kuxhaven" शायद वीरा बहुत डर गई थी, क्योंकि उसका चेहरा पीला पड़ गया था, किन्तु जैसा कि उसका तरीक़ा है, वह एक शब्द भी नहीं बोली और अपने कपड़ेके नीचेके हिस्सेको उठाकर नावके बीचकी लकड़ीपर पाँव रख दिया। इसी समय मुझे एकाएक गेटेकी कविता याद आ गई। (कुछ समयसे मैं गेटेकी कवितामें बिलकुल पर्क हो रहा था)। तुमको वह कविता याद होगी?

"जल तरंगके ऊपर देखो तारागण करते हैं नृत्य" मैंने इस पदको ज़ोरसे दुहराया। जब मैं कविताकी इस पंक्तिपर पहुँचा—"मेरी आँखोंकी पुतरी तुम नीचे देख रही क्या आज?" वीराने अपनी आँखें कुछ ऊपरकी ओर उठाईं (मैं उससे कुछ नीचेपर बैठा हुआ था और उसकी दृष्टि मेरे ऊपर गड़ी हुई थी) और हवासे अपनी आँखोंको फेरती हुई बड़ी देर तक सुदूरकी ओर देखती रही।

एक क्षणके बाद ही एक हल्की-सी वर्षा होने लगी। पानीकी बूँदे पटपटाकर पानीके ऊपर बुलबुलेके रूपमें प्रकट होने लगीं। मैंने वीराको अपना ओवर-कोट दिया, जिसे उसने अपने कंधोंके ऊपर रख लिया।

हम लोग किनारेपर पहुँचे—घाटपर नहीं—और वहाँसे टहलते हुए घर गये। मैंने अपनी बाँहका उसे सहारा दिया। मुझे ऐसा मालूम पड़ रहा था कि मैं उससे कुछ कहना चाहता था, किन्तु मैंने कुछ कहा नहीं, यद्यपि मुझे इतना याद है कि मैंने उससे पूछा था—"जब तुम घरपर रहती हो, तब तुम हमेशा अपनी माँकी तसवीरके नीचे उस तरह क्यों बैठी रहती हो, जैसे कि एक छोटी चिड़िया अपनी माँके डैनेके नीचे बैठा करती है?"

तुम्हारी यह उपमा बहुत ही यथार्थ है।"—उसने उत्तर दिया—"मैं अपनी माँके डैनेके अन्दरसे कभी बाहर निकलना नहीं चाहती।"

मैंने पूछा—"क्या तुम स्वतन्त्र होकर विचरण करना पसन्द नहीं करोगी।" मेरे इस प्रश्नका उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मैं नहीं जानता कि मैंने क्यों इस यात्रा-प्रसंगका यहाँपर वर्णन किया है। शायद इसका कारण यह हो सकता है कि पिछले दिनोंमें जो बातें हुई हैं उनमें यह घटना मेरी स्मृतिमें एक अत्यन्त समुज्ज्वल वस्तुके रूपमें वर्तमान है, यद्यपि वस्तुतः इसे कोई घटना कैसे कह सकता है? मुझे इससे इतने सुखका अनुभव हुआ और हृदयमें इतनी अनिर्वचनीय प्रसन्नता मालूम पड़ी कि मेरी आँखोंसे हल्के

आनन्दाश्रुके बिन्दु क़रीब-क़रीब टपकने लगे। अहा! सोचो तो कि इसके दूसरे दिन, जब कि मैं उद्यानमें लता-कुंजके पास टहल रहा था, एकाएक मुझे किसी स्त्रीकी आनन्ददायिनी संगीतमयी कण्ठध्वनि सुन पड़ी। मैंने झाँककर लता-कुंजमें देखा, तो वहाँ वीराको पाया। "शाबाश!" मैं चिल्ला उठा—"मुझे यह मालूम नहीं था कि तुम्हारी कण्ठध्वनि इतनी मधुर है।" वह थोड़ी लज्जित-सी हो गई और कुछ बोली नहीं।

मुझे इस बातका विश्वास है कि अभी तक किसीको इस बातका आभास नहीं मिला है कि उसका गला इतना अच्छा है। उसके अन्दर न मालूम कितनी अलभ्य सम्पत्तिके खजाने छिपे हुए पड़े हैं! वह खुद भी अपनेको नहीं जानती। क्या मेरा यह कथन ठीक नहीं है कि आजकलके ज़मानेमें ऐसी स्त्री बिरली ही पाई जाती है।

१२ अगस्त

कल हम लोगोंमें बड़ा ही आश्चर्यजनक वार्तालाप हुआ था। पहले हमने भूत-प्रेतादिका विषय छेड़ा। ज़रा खयाल तो करो कि वह भूत-प्रेतादिमें विश्वास करती है, और इस विश्वासके लिए उसके निजके कारण भी हैं। प्रेम कविने—जो वहाँ बैठा हुआ था—अपनी आँखें नीची कर लीं और अपना सर हिलाया, मानो वह उसके कथनका समर्थन कर रहा हो। मैंने उससे सवालपर सवाल करना शुरू कर दिया, किन्तु मुझे शीघ्र ही ऐसा मालूम होने लगा कि इस विषयकी बातचीत उसे पसन्द नहीं आ रही है। फिर हमने कल्पना और उसकी शक्तिके सम्बन्धमें बातें करना शुरू किया। मैंने उन लोगोंसे कहा कि युवावस्थामें मैं सुखके विषयके अनेक स्वप्न देखा करता था। (इस प्रकारके स्वप्न ऐसे ही लोग विशेषतः देखा करते हैं, जिन्हें अपने जीवनमें कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है या नहीं हो रहा है)। मेरा एक स्वप्न यह था कि मैं उस आनन्दके सम्बन्धमें सोचा करता था, जो मुझे उस स्त्रीके साथ, जिससे मैं प्रेम करूँ, कुछ सप्ताह वेनिसमें बितानेमें प्राप्त होगा। मैं बहुधा इस विषयपर, विशेषतः रातमें, इतना अधिक सोचा करता था कि धीरे-धीरे मेरे मनमें उसकी पूरी तसवीर गढ़ गई, जिसे मैं, चाहे जब, अपने नेत्रोंके सम्मुख बुला सकता था। इसके लिए मुझे सिर्फ़ आँखें बन्द कर लेनी पड़ती थीं। उस समयमें जो कुछ कल्पना किया करता था, वह यह थी—"रात्रिका समय है, रजनीपति अपनी स्निग्ध और उज्ज्वल चन्द्रिका छिटका रहे हैं। सुगन्ध चली आ रही है। किसकी? नीबूकी? नहीं, रजनीगन्धाकी। दूर-दूर तक जल दिखाई पड़ रहा है। जैतूनके वृक्षोंसे भरा हुआ एक विस्तृत द्वीप है। उस द्वीपके ऊपर तट-प्रदेशके निकट एक प्रस्तर-निर्मित भवन है और उसकी खिड़कियाँ खुली हुई हैं। किसी अज्ञात स्थानसे संगीत-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। घरके अन्दर काली पत्तियोंवाले वृक्ष हैं और अर्द्ध-छायान्वित दीपका प्रकाश; एक खिड़कीसे एक भारी मखमलका लबादा, जिसके किनारोंपर सुनहला काम है और जिसका एक छोर पानीकी ओर लटक रहा है, उस लबादेके ऊपर अपनी बाँहोंको रखे हुए हम दोनों (स्त्री-पुरुष) दूर दृष्टि किये हुए वेनिसके दृश्य देख रहे हैं।" ये सब दृश्य मेरे मानस-क्षेत्रमें इतने स्पष्ट रूपमें उदित होते गये, मानो मैंने इन सब दृश्योंको स्वयं अपनी आँखोंसे देखा हो। उसने मेरी इन बे-सिर-पैरकी बातोंको ध्यान-पूर्वक सुना और कहा—"मैं भी बहुधा स्वप्न देखा करती हूँ, किन्तु मेरे दिवा-स्वप्न अन्य प्रकारके होते हैं। मुझे स्वप्नमें ऐसा खयाल आता है, मानो मैं अफ्रिकाके रेगिस्तानमें किसी अनुसन्धान-कारीके साथ विचरण कर रही हूँ, अथवा बर्फ जमे हुए उत्तरी सागरमें फ्रैंकलिनका पता लगा रही हूँ।"

उसने उन सब कठिनाइयोंकी कल्पना स्पष्ट कर रखी थी, जो उसे सहन करनी पड़ेंगी और जिन मुसीबतोंका सामना करना पड़ेगा।

"तुमने तो यात्रा-विषयक बहुतसी पुस्तकें पढ़ी हैं?" उसके स्वामीने कहा।

उसने उत्तर दिया—"शायद, किन्तु यदि मनुष्यके

लिए स्वप्न देखना अनिवार्य ही है, जो फिर ऐसे विषयका ही स्वप्न क्यों देखा जाय जो अप्राप्य हो ?"

मैंने उसके उत्तरमें कहा—"क्यों, अप्राप्य वस्तुका स्वप्न देखनेमें क्या हर्ज है ? बेचारी अप्राप्य वस्तुने क्या अपराध किया है, जो उसे तुम इतना निन्दनीय समझती हो ?"

वीराने उत्तर दिया—"मैंने यह नहीं कहा था, मेरे कथनका अभिप्राय यह था कि अपने सम्बन्धमें और अपने सुखके सम्बन्धमें स्वप्न देखनेकी क्या आवश्यकता है ? उस विषयका विचार करना ही व्यर्थ है, वह तो मिलनेवाला नहीं। फिर उसके पीछे पड़नेसे क्या लाभ ? यह तो स्वास्थ्यके सदृश है। जब तक तुम स्वास्थ्यके विषयमें चिन्ता नहीं करते, तब तक वह तुम्हारे पास मौजूद है।"

उसके इन शब्दोंको सुनकर मैं चकित हो गया। मेरी इस बातको तुम ठीक मान लो कि इस स्त्रीकी आत्मा महान् है। इस प्रकार वार्तालापके प्रसंगमें हम वेनिसको छोड़कर इटली और वहाँके निवासियोंपर जा पहुँचे। प्रेमकवि वहाँसे चला गया, और वहाँ रह गये सिर्फ हम दोनों—वीरा और मैं।

मैंने कहा—"तुम्हारी नसोंमें इटलीका रक्त भी प्रवाहित है।"

उसने कहा—"हाँ" और फिर बोली—"क्या मैं तुम्हें अपनी नानीका चित्र दिखलाऊँ ?"

मैंने कहा—"ज़रूर।"

वह अपनी बैठकके कमरेमें चली गई और सोनेका एक बड़ासा तुकमा ले आई। उस तुकमेको खोलनेपर मैंने मैडम अल्टसवके पिता और उसकी स्त्रीके छोटे-छोटे चित्र बहुत ही उमदा तरीकेसे रंगे हुए देखे। उसकी वह स्त्री अलबानोकी एक किसान औरत थी। वीराके नाना और उनकी लड़कीके चेहरेमें समानता देखकर मैं चकित रह गया। सिर्फ उसकी रूपरेखा कुछ अधिक कठोर, तीक्ष्ण एवं कठिन जान पड़ती थी। उसकी छोटी-छोटी पीले रंगकी आँखोंमें एक प्रकारके दुराग्रहकी झलक मालूम पड़ रही थी। उस इटली देशवासिनी स्त्रीका चेहरा एक पूर्ण प्रस्फुटित गुलाब-फूल जैसा खुला हुआ और कामुकता-पूर्ण जान पड़ता था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी और चंचल थीं। उसके लाल होठोंपर शान्त मुसकान शोभा दे रही थी।

उसके कोमल कामुक नथने काँप जैसे रहे थे, मानो अभी हाल ही में उनका चुम्बन किया गया हो। उसके भरे हुए कपोल उसकी स्वस्थता, रक्तोष्णता, विकसित यौवन और स्त्रियोचित शक्तिकी शोभासे कान्तिमान मालूम पड़ रहे थे। उसकी भौंहें ऐसी मालूम पड़ रही थीं, मानो कभी उसने चिन्ता ही न की हो। यह अच्छा ही हुआ कि इस स्त्रीका चित्र उसकी इटालियन पोशाकमें चित्रित किया गया। चित्रकारने उसके बालोंपर एक अंगूरलता खींच दी थी। उसका केश-समूह बिलकुल काला चमकीला तथा उज्ज्वल था। प्रकाशसे युक्त था। उसका यह अलंकार उसके मुखमण्डलके भावसे आश्चर्यजनक रूपमें मेल खाता था। क्या तुम यह कह सकते हो कि उसका चेहरा देखकर मुझे किसकी याद आ गई ? वही मेरी मेनन लसकोट, जिसका चित्र काले रंगके चौखटोंमें मेरे यहाँ टँगा हुआ है। उस चित्रको देखनेसे मुझे सबसे बढ़कर आश्चर्यजनक बात जो मालूम हुई, वह यह थी कि यद्यपि वीराके चेहरेकी रूपरेखाएँ संपूर्णतया विभिन्न थीं, तथापि कभी-कभी उस मुसकराहट और चितवनकी झलक उसमें दीख पड़ती थी। हाँ, तो मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि वीरामें जो शक्तियाँ छिपी हुई हैं, उन्हें न तो खुद वह ही जानती है और न कोई दूसरा···।

इसी प्रसंगमें मैं तुमसे यह कहे देता हूँ कि श्रीमती अल्टसवने अपनी कन्याके विवाहके पूर्व अपने समस्त जीवनके सम्बन्धमें, अपनी माताकी मृत्युके सम्बन्धमें तथा और इसी तरहकी अन्य बातें अपनी प्रशंसाके खयालसे उसे बता दी थीं। वीराने अपने दादा लडनवके विषयमें जो कुछ सुना था, उसका उसपर विशेष रूपसे प्रभाव पड़ा। शायद

इसीसे वह भूत-प्रेतादिमें विश्वास रखती है। क्या ही आश्चर्यजनक बात है ! वह स्वयं इतनी पवित्र और उज्ज्वल होनेपर भी प्रत्येक काली और अन्धकारावृत वस्तुको देखकर डर जाती है और उसमें विश्वास करती है।

बस, आज इतना ही काफ़ी है। किन्तु मैंने यह सब लिखा ही क्यों ? किन्तु अब लिखा ही गया है, तो तुम्हारे पास इसे भेजना ही ठीक होगा।

तुम्हारा—

....

सातवाँ पत्र

२२ अगस्त, १८५०

अपने पिछले पत्र लिखनेके दस दिन बाद आज मैं फिर यह चिट्ठी लिखने बैठा हूँ।······ओ मेरे प्यारे दोस्त, अब अधिक समय तक मैं अपनी भावनाएँ तुमसे छिपाकर नहीं रख सकता।······मैं कितना दुःखी हूँ ! मैं उसे कितना प्रेम करता हूँ ! तुम खयाल कर सकते हो कि इस घातक शब्दको लिखते हुए मैं कितनी कटुताका अनुभव कर रहा हूँ। शब्द-मात्रसे मुझे कँपकँपी आ जाती है। मैं बालक नहीं हूँ और अब युवक भी नहीं रहा। मैं अब उस अवस्थामें भी नहीं हूँ, जब कि दूसरेको धोखा देना असम्भव-सा होता है, किन्तु अपने-आपको धोखा देनेमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। मैं सब कुछ जानता हूँ, और साफ़-साफ़ देखता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि मेरी अवस्था इस समय लगभग ४० वर्षकी है। वीरा दूसरेकी स्त्री है। वह अपने पतिको प्यार करती है। मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि जिस दुःखमयी भावनाने मेरे ऊपर अपना अधिकार कर लिया है, उसका परिणाम गुप्त-वेदना और जीवन-शक्तिके सर्वनाशके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। मैं यह सब कुछ जानता हूँ, मैं किसी बातकी आशा नहीं करता और न किसी वस्तुकी अभिलाषा ही रखता हूँ; किन्तु बावजूद इन सब बातोंके मेरी हालत खराब ही है। अबसे एक मास पहलेसे ही मैं यह अनुभव करने लगा था कि मेरे लिए वीरामें जो आकर्षण है, वह दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। इससे कुछ-कुछ मुझे कष्ट भी मालूम हुआ और आनन्द भी। मैं स्वप्नमें भी इस बातका खयाल नहीं कर सकता था कि मेरे जीवनमें प्रत्येक वस्तुकी इस प्रकार पुनरावृत्ति होगी, और जैसा तुम समझ सकते हो कि इन सब वस्तुओंकी पुनरावृत्तिकी उसी तरह आशा नहीं की जा सकती थी, जिस तरह यौवनके पुनरागमन की। मैं क्या कह रहा हूँ ? मैंने इस बार जैसा कभी प्रेम नहीं किया था, नहीं, कभी नहीं। मैनन लसकोट, फ्रिटिलियस ये ही सब मेरी प्रेम-मूर्तियाँ थीं। इन मूर्तियोंको सहजमें ही भंग किया जा सकता है, किन्तु अब मुझे इस बातका पता लगा है कि किसी स्त्रीसे प्रेम करना किसे कहते हैं। इस विषयकी चर्चा करनेमें भी मुझे लज्जा मालूम पड़ती है, किन्तु बात ऐसी ही है। मैं लज्जित हूँ। किसी भी दृष्टिसे देखो, प्रेम स्वार्थमय है। मेरी जैसी अवस्थामें स्वार्थवादी होना उचित भी नहीं है। सैंतीस वर्षकी अवस्थामें किसीको स्वार्थमय जीवन व्यतीत न करना चाहिए। जीवनका कोई विशेष उद्देश्य होना चाहिए। संसारमें अपने लिए एक कर्तव्य निश्चित कर लेना चाहिए। मैंने अपने जीवनका एक लक्ष्य निश्चित करके कार्य आरम्भ भी कर दिया था, पर सारा मामला गड़बड़ हो गया, मानो आँधीने आकर सारी चीज़ें तितर-बितर कर दी हों। अब मैं उन बातोंका, जो मैंने तुम्हें अपने प्रथम पत्रमें लिखी थीं, मतलब समझ रहा हूँ। अब यह बात भी मेरी अकलमें आ रही है कि किस बातके अनुभवसे मैं वञ्चित रह गया। कितना अचानक यह आघात मेरे ऊपर पड़ा है। मैं हतबुद्धि-सा होकर भविष्यकी ओर देख रहा हूँ। मेरी आँखोंके सामने एक काला पर्दा पड़ा हुआ है। मेरा हृदय भय और शैथिल्यसे परिपूर्ण है। मैं अपनेको नियन्त्रित कर सकता हूँ। मैं सिर्फ़ दूसरोंके सामने ही नहीं, बल्कि एकान्तमें भी बाहरसे शान्त देख पड़ता हूँ। मैं एक बालक जैसा अनाप-शनाप नहीं बक सकता, किन्तु मेरे हृदयमें प्रेम-कीटका प्रवेश हो गया है, और वह कीड़ा हृदयको अहर्निश काट कर खा रहा है। मालूम नहीं, इसका अन्त

किस तरह होगा। अब तक तो यह हालत रही थी कि उससे जुदा होते ही मुझे बेचैनी और कष्ट होता था और उससे मिलते ही तुरन्त शान्ति प्राप्त हो जाती थी, किन्तु अब तो उसके साथ रहनेपर भी मुझे चैन नहीं मिलता, और खासकर यही बात मेरे लिए भयका कारण है। ओ मेरे मित्र अपने आँसुओंपर लज्जित होना और उन्हें छिपाना कितना कठिन है! रोना तो सिर्फ युवकोंके लिए है, युवकोंको ही आँसू शोभा देते हैं...... ।

मैं इस पत्रको फिर पढ़ नहीं सकता। यह दिलकी आहकी तरह कलेजा काढ़कर अनिच्छा-पूर्वक लिखा गया है। मैं कुछ अधिक इसमें जोड़ नहीं सकता और कुछ कह नहीं सकता। मुझे समय दो, मैं खुद होशमें आ जाऊँगा और फिर अपनी खोई हुई आत्माको प्राप्त करूँगा। उस समय मैं तुम्हारे साथ एक मनुष्यकी भाँति बातें करूँगा, किन्तु इस समय तो मैं एक बातके लिए तरस रहा हूँ, वह यह कि तुम्हारी गोदीमें अपना सर रख दूँ। मैं अपने निश्चित उद्देश्यसे नीचे गिर गया हूँ। न मालूम मेरे भाग्यमें क्या बदा है! मैं अपने मनमें विचार किया कि वर्ष डेढ़ वर्षके बाद मेरे ये पश्चात्ताप और शोकोद्गार मुझे कितने उपहासास्पद और नागवार मालूम पड़ेंगे। अच्छा, प्रणाम।

तुम्हारा—

....

क्रमशः]

गोंडोंके 'बड़ा देव'

[लेखक :—श्री शारदाप्रसाद]

मध्य-भारतके दुर्गम दुरूह जंगलोंमें देशके प्राचीनतम इतिहासकी न मालूम कितनी वस्तुएँ छिपी पड़ी हैं। 'विशाल-भारत' के फरवरी सन् १९३० के अंकमें 'भुमराका शिव-मन्दिर' शीर्षक एक लेखमें मैं इसी प्रकारके एक प्राचीन स्थानका वर्णन कर चुका हूँ। वह मन्दिर ऐसे घनघोर चिह्नहीन जंगलमें है, जहाँ पहुँचना दुस्तर है। दो विफल प्रयत्नोंके बाद मैं तीसरे उद्योगमें भुमरा तक पहुँच सका था। दूसरे उद्योगमें मैं यद्यपि भुमरा तक तो नहीं पहुँच सका, परन्तु एक और स्थान 'अमलियासेह' देखनेका मौक़ा मुझे मिल गया था।

मध्य-भारतमें परसमनिया जंगल काफ़ी विकट जगल है। वहाँ शेर, चीते आदि हिंस्र पशु सानन्द विचरा करते हैं, इसलिए बिना किसी बड़े भारी आयोजनके वहाँ जाना बहुत कठिन है। साधारण अकेले-दुकेले यात्रियोंका जंगलके हृदय तक पहुँचना बहुत मुश्किल होता है। हाँ, सालमें जब दो-एक बार मध्य-भारतके नरेश शिकारके लिए अपने अनुचरोंके साथ इस जगलमें आते हैं, तब उनके साथ जाना कुछ सुगम हो जाता है। गत वर्ष जब श्रीमान् राजासाहब बहादुर नागौदका शिकार-कैम्प परसमनिया गया था, तब मैंने भी भुमराकी यात्राका निश्चय किया था, परन्तु एक दिनकी देर हो जानेसे मुझे निराश लौटना पड़ा।

दूसरी बार गत जून मासमें मैंने श्री लाल साहबके शिकार-कैम्पके साथ भुमरा जानेकी कोशिश की, मगर लाल साहब और उनके अनुचर शिकारमें इतने व्यस्त थे कि मुझे भुमरा तक जानेके लिए कोई शिकारी साथी न मिल सका। अन्तमें मेरे आग्रहपर लाल साहबने मुझे अमलियासेह दिखला देनेकी आज्ञा दी। अस्तु, एक शिकारी पथ-प्रदर्शकको साथ लेकर मोटरको जंगलकी हवा खिलाने लगा। रास्ता एकदम जंगली था। कहीं-कहीं तो बैलगाड़ीका अस्पष्ट डर्रा था और कहीं-कहीं वह भी नहीं।

अगल-बगलके काँटों, नीचेके गड्ढों और टीलों तथा ऊपरके पेड़ोंकी डालोंको बचाते हुए किसी प्रकार लगभग

६ मील रास्ता ते किया, मगर आगे तो रास्तेका नाम ही नहीं था। मनुष्यके चलनेकी पगडंडीका चिह्न तक नदारद



अमलियानालेके 'बड़ा देव'

था। फिर भी हम लोग मोटर लिये धीरे-धीरे चले ही गये और कुल सात मील चलकर ठिकानेपर पहुँचे।

यद्यपि सात मील जगह, वह भी मोटरपर, कुछ अधिक नहीं होती, मगर इस सघन जंगलमें वह भी एक खासी समस्या थी। स्थान एकदम जंगली और अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ था। थोड़ी दूर पैदल जाकर हम लोग अमलिया-नालेमें पहुँचे। नाला सूखा पड़ा था। उसके तलकी चट्टानोंका विकराल रूप दिखाई पड़ता था। मैं सोचने लगा कि बरसातमें इस नालेका जल इन्हीं ऊँची-नीची चट्टानोंपर कैसा कूदता-फाँदता हाहाकार करता होगा। इतने ही में शिकारीने कोनेमें एक छोटीसी कन्दरा दिखाई। उसके भीतर 'बड़ा देव' विराजमान थे। अन्दर घुसनेपर देखा कि उस कन्दरामें इतना स्थान है, जिसमें दो आदमी किसी प्रकार समा जायँ। विश्वकर्माके बनाये हुए इस प्राकृतिक मन्दिरमें तीन पूर्ण तथा पाँच खंडित—कुल आठ—'बड़ा देव' वास करते हैं। 'बड़ा देव' भारतके आदिम अनार्य निवासी गोंडोंके आराध्यदेव हैं। हिन्दुओंके तेतीस कोटि देवताओंमें इनकी गणना नहीं है। अपने अद्भुत आकारके घोड़ोंपर सवार ये देवगण यहाँ विराजमान थे। सुना है कि वे कभी-कभी घूमने भी जाया करते हैं, इसीलिए इस कन्दरामें कभी छै कभी सात और कभी-कभी आठ मूर्तियाँ तक मिलती हैं। एक स्थानमें रहते-रहते जब देवोंका मन ऊब जाता है, तब वे कन्दरा भी परिवर्तन कर देते हैं। आजकलके वैज्ञानिक तो यही कहेंगे कि यह कार्य उनके भक्त गोंडों द्वारा ही सम्पन्न होता होगा, परन्तु उनके उपासकोंका विश्वास है कि देव स्वयं ही ऐसा किया करते हैं। हमारे पथ-प्रदर्शक शिकारीका भी यही मत था।

ऐसी ही एक कन्दरामें एक बार साँप तथा साँपके अंडे देखे थे, इस कारण वहाँ देर तक ठहरना उचित न था, अतः हम लोग तीन देवों-सहित बाहर निकल आये। मित्रोंको भी देव-दर्शन करानेका पुण्य लूटनेकी अभिलाषासे देवोंको चट्टानपर रखकर उनकी फोटो उतारी, और पुनः उन्हें उनके मन्दिरमें विराजमान कर दिया।

जेठकी तपती हुई दुपहरी थी। प्याससे गला सूख रहा था और नाला सूखा था। शिकारीने कहा कि पानी नीचे है। नीचे उतरे, तो क्या देखते हैं कि दो-चार चट्टानोंके बीचसे एक छोटा मार्ग-सा बन गया है, उसमेंसे पानीकी पतली धार निकल रही है। जल बड़ा शीतल था और एक छोटे स्वाभाविक कुंडमें गिर रहा था। इसी स्रोतके जलसे नालेका अधोभाग सजल हो चला था। साथमें प्रकाशित चित्रमें देखिये, टोपवाले सज्जनके पैरके नीचेसे पानीकी पतली धार गिर रही है। 'बड़ा देव' के फोटो ग्रुप तथा इस चित्रसे पाठकोंको नालेके ऊँचे-नीचे तलका भी कुछ आभास मिलेगा। यह स्थान बहुत ठंढा था। शिकारीने बतलाया कि आजकल व्याघ्रदेव ऐसे ही शीतल स्थानोंमें लेटकर दोपहरी बिताते हैं। एक बार खयाल आया कि अपने किसी हताहत बन्धुका बदला लेनेके विचारसे कोई महोदय प्रकट न हो जायँ, पर यह सोचकर मनको शान्त कर लिया कि मनुष्यकी गन्ध उन्हें पसन्द नहीं है और इस कारण उनके इधर पधारनेकी सम्भावना बहुत कम है।

अब इस जीवनमें 'बड़ा देव'के दर्शन पुनः होंगे या नहीं, इसका ठिकाना नहीं है। एक तो उस स्थान तक पहुँचना ही कठिन है, और यदि पहुँचे भी तो वे वहाँ मिलें या न

मिलें ! सुनते हैं कि गोंड अपने देवोंको ऐसे स्थानमें छिपा कर रखते हैं, जहाँ कोई आसानीसे पहुँच न सके। स्वयं प्रकारके कोई चिह्न नहीं थे। देवका दूसरा नाम 'बूढ़ा देव' भी है।

अब एक देवमूर्तिके आकार-प्रकारका ब्योरेवार वर्णन सुन लीजिये। देव अश्वारूढ़ हैं। अश्व-सहित मूर्ति तेरह इंच



अमलिया-सेहका जल-स्रोत



'बड़ा देव'

गोंडोंमें ही सबको इन स्थानोंका पता नहीं रहता। केवल जातिके बड़े-बूढ़े पंडोंको ही ये स्थान विदित होते हैं। पूजा करनेके लिए वे आवश्यकतानुसार देवको अपने गाँवमें ले जाते हैं और फिर वहीं छिपा कर रख आते हैं। यह पूजा नित्य नहीं होती। वह सामयिक अथवा नैमित्तिक होती है। वर्षमें कुछ निर्दिष्ट समयोंपर अथवा बीमारी आदिका प्रकोप होनेपर, विपत्ति दूर करनेके लिए इनकी पूजा होती है। यदि गोंडोंको मालूम हो जाता है कि दूसरोंने उस स्थानको जान लिया है, तो वे स्थान-परिवर्तन कर देते हैं। अमलियासेहकी जिस कन्दरामें मुझे ये देव मिले थे, उसमें वहाँ उनकी पूजा होनेके कोई चिह्न नहीं थे। गोंडोंकी पूजा भी हिन्दुओंसे भिन्न प्रकारकी होती होगी, क्योंकि देवोंके शरीरपर चन्दन, अक्षत, पुष्प हल्दी, रोली आदि किसी

ऊँची, तेरह इंच लम्बी और साढ़े चार इंच चौड़ी है। अश्व डेढ़ इंच मोटी पटियापर खड़ा है। इस प्रकार कुल उँचाई साढ़े चौदह इंच है। घोड़ेकी टाँग बहुत भद्दी बनी हैं। वे गोल-गोल गढ़ दी गई हैं और घोड़ेकी अपेक्षा हाथीके पैरसे ज्यादा मिलती-जुलती हैं। घोड़ेका शरीर बहुत लम्बा है और उसमें कुछ ऐसा झुकाव आया है कि मालूम होता है कि वह देवके बोझके कारण दबा जा रहा है और चपटा हुआ जाता है। घोड़ेका सिर बहुत-कुछ स्वाभाविक बना है। नाक मुँह आदि भी ठीक बने हैं। हाँ, कान ज्यादे चौड़े हैं, तथा समूचा सिर शरीरके अनुपातसे कुछ ज्यादा लम्बा है। शायद यह घोड़के महत्त्व-प्रदर्शन हेतु हो। घोड़ेपर ज़ीन नहीं है, बल्कि देशी काठीका पलँचा कसा है। पलँचेकी किनारेदार झूल बहुत अच्छी आई है।

लगाम गांठी, लरीदार और सुन्दर है। पीछेकी ओर ति-लरी चौड़ी दुमची भी लगी हुई है। दुमचीसे दोनों ओरके पुट्ठोंपर एक-एक लम्बी चँवरकी-सी लटकन लटक रही है।

देव काठीपर बैठे हैं। दाहने हाथमें चाबुक है और बायेंमें लगाम। बुन्देलखंडी जूते-युक्त पैर रकाबमें पड़े हुए हैं। चाबुककी मूठ बहुत लम्बी और काफी मोटी है। बाँई ओर काठीमें एक लम्बी-चौड़ी दोधारी तलवार खोंसी हुई है। देवका शरीर सुडौल है। जंघाएँ खूब भारी हैं। हाथ आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े बना दिये गये हैं, दाहना हाथ छोटा है और बाँया हाथ उससे बहुत लम्बा। कमरबन्दमें दाहनी ओर एक कटार खोंसी हुई है, जो शरीरकी गोलाईके अनुसार लचक गई है। देवके हाथोंमें कड़ा तथा बाजूबन्द और गलेमें कंठा है। शरीरके हिसाबसे सिर बड़ा है और गर्दन ऊंची और मोटी है। ठोड़ी इकहरी है, मुह बन्द, ओंठ नीचेका मोटा और ऊपरका पतला, नाक बड़ी, आँख बड़ी बड़ी और मूंछे लम्बी लकीर-सी हैं। माथा कम चौड़ा है, भौंहे ज्यादा ऊँचाईपर हैं और सिरपर एक अजीब टोपी है। कान बहुत चौड़े और बड़े हैं तथा कर्णफूलसे सुशोभित हैं। बालोंका खत लम्बा और अधोभागमें चौड़ा है। दाढ़ी साफ मुंड़ी हुई है। पीछेकी ओर टोपीके नीचे बड़े जूड़ेकी-सी चोटी है। कारीगर मूर्तिपर कपड़ोंके स्पष्ट चिह्न दिखला नहीं सका, फिर भी यह भासित होता है कि देव वस्त्रहीन नहीं हैं। देवके चेहरेका भाव शान्त और निश्चिन्त-सा है, मानो कह रहे हैं—''कुछ परवाह नहीं।'' देव अश्वारूढ़ अवश्य हैं और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित भी हैं, परन्तु सम्पूर्ण मूर्तिका भाव एक रणोन्मत्त योद्धाका-सा नहीं है। किसी साधारण कार्यपर जानेवाले गाँवके भले आदमीका-सा रूप है। ऐसा भास होता है कि देव क्रमशः गाँव-गाँव घूमकर अपने उपासकोंकी रक्षा किया करते हैं, और इस शुभ कार्यके लिए आपका वाहन एक फीलपाँव घोड़ा है।

मुझे अब तक कई अजायबघर देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मगर उनमें किसीमें भी 'बड़ा देव' उपनाम 'बूढ़ा देव' की मूर्ति मैंने नहीं देखी। सुना है कि नागपुरके अजायबघरमें कुछ मूर्तियाँ हैं। यदि कभी वहाँ इन मूर्तियोंको देखनेका मौक़ा मिला, तो यह विचार किया जा सकेगा कि भिन्न स्थानोंकी मूर्तियोंमें कला-सम्बन्धी कोई भेद हैं या नहीं। अमलिया-सेहकी कुल मूर्तियोंकी कला एक ही थी।

चरखे और खद्दरपर कुछ आपत्तियाँ

[लेखक :— श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार]

चरखे और खद्दरके बारेमें जो शंकाएँ की जाती हैं, उनमेंसे ये मुख्य हैं। (१) मिलके कपड़ेके मुक़ाबलेमें खद्दर मँहगा और कम टिकाऊ होता है। (२) खद्दर कभी भी भारतके कपड़ोंकी कुल माँगको पूरा नहीं कर सकता। (३) उससे इतना कम मुनाफा होता है कि कोई इसका व्यापार नहीं करेगा।

हम इन शंकाओंपर क्रमशः विचार करेंगे। पहली आपत्ति, जो मुख्य आपत्ति है, खद्दरके टिकाऊपनपर और खद्दरके मँहगे होनेपर की जाती है। इसपर विचार करते हुए हमें ध्यान रखना चाहिए कि खद्दर दो प्रकारका है और उसके पहननेवाले भी दो प्रकारके हैं। प्रथम तो वह खद्दर जो गाँवोंमें बहुत प्राचीन कालसे बुना जाता है और कम्पनीके अत्याचारोंका भी जिसपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। यह खद्दर उन हाथोंसे तय्यार होता है, जिन्हें माताकी गोदमें थपकीके साथ-साथ चरखा चलाना सिखाया जाता है। इसे पहनते भी गाँवके लोग ही हैं। सन् १९२१ से पहले तक तो शायद ही यह बाजारमें बिकने आया हो। सन् १९२१ के बादसे ज़रूर ही बहुत थोड़ी मात्रामें यह खद्दर भी बाज़ारमें आता है। बात यह है कि यह तो घरकी ज़रूरतके लिए ही बुना जाता है। इसके टिकाऊपन और सस्ते होनेके बारेमें तो किसीको

भी आशंका न होनी चाहिए। मैंने गाजीवाला, शामपुर और कांगड़ीके ग्रामीणोंसे खूब पूछा है कि वे जो खद्दर और मिलका कपड़ा पहनते हैं, उनमें कौनसा अधिक टिकाऊ और सस्ता है। इस प्रश्नका सबने एक ही उत्तर दिया है कि खद्दर ही सस्ता और टिकाऊ होता है। यदि खद्दर दस महीने चलता है, तो मिलका कपड़ा छह महीनेसे अधिक नहीं ठहरता। गांवोंके विषयमें सबको यही अनुभव होगा। कांगड़ी ग्राममें पिछले साल सन् १९२७ में २२९) का मिलका कपड़ा खरीदा गया। इसकी औसत दर।-) प्रति गज़ थी, पर गाँवका बना खद्दर इससे सस्ता पड़ता है। उतने ही अर्ज और अधिक टिकाऊ खद्दरके दाम बहुत सस्ते पड़ते हैं। बेकारीके समयमें स्त्रियां कपासको ओट और कात लेती हैं। पर जो ग्रामीण स्त्रियां बेकारीके समय रूईको चुनकर जमा करती हैं, वे तो और भी अधिक सस्ता खद्दर तैयार करती हैं। सब हालतोंमें साढ़े चार आना प्रति गज़में मंहगा खद्दर तयार नहीं होता। यहाँ मैं भिन्न-भिन्न प्रकारसे कपड़ेकी दर निकालनेका प्रयत्न करूँगा।

(१) जो रूई मोल लेते हैं, उनका व्यय इस प्रकार होगा :—

१० आना	१ सेर रूईका दाम १ रु० की १॥ सेरकी दरसे
३ आना	१ सेर रूईकी पिंजाई
८ आना	१ सेर रूईकी कताई
१६ आना	१ सेर रूईकी बुनाई
३७ आना	१ सेर कपड़ा

एक सेर कपड़ेका मतलब है आठ गज़ कपड़ा। इस प्रकार ४.६२ आने प्रति गज खद्दर पड़ा।

(२) जो सूत मोल लेते हैं :-

१६ आने	१४ छटांक सूत
१४ आने	बुनाई
३० आने	१४ छटांक कपड़ा

इसका मतलब हुआ ३० आनेमें ७ गज कपड़ा तैयार हुआ, अर्थात् ४.२८ आने प्रति गज खद्दर। यदि १) का १२६ छटांक सूत लिया जाय, तो ४.६६ आने प्रति गज खद्दर पड़ेगा।

(३) जो कपास मोल लेते हैं :—

८)	१ मन कपास, रुपये धड़ीकी। दरसे इसमेंसे १२ सेर रूई निकलेगी। ओटा खुद है।
२)	पिंजाई १२ सेर रूईकी
६)	कताई ॥) सेरकी दरसे
१२)	बुनाई १) सेरकी दर
२८)	१२ सेर कपड़ा

२॥) से कुछ अधिकके बिनौले* प्राप्त होंगे। यह रकम निकालकर २५॥) का १२×८ गज़ कपड़ा बना। अर्थात ४.७५ आने प्रति गज़ खद्दर पड़ा।

(४) यदि कताईकी मज़दूरी न लगाई जाय, तो ३.७५ आने प्रति गज पड़ेगा। १९॥) का १२×८ गज़ कपड़ा।

(५) और यदि कपास भी बेकारीके समयमें चुनी जाय, तो ११॥) का १२×८ गज़ कपड़ा बनेगा और १.९१ आने प्रति गज़ कपड़ा पड़ेगा।

ये सब दरें कांगड़ी ग्राम या पासके गांवोंकी मानी गई हैं यद्यपि ये दर ८० तोलेके एक सेरके हिसाबसे हैं, पर यहांपर ८८ तोलेके सेरके हिसाबको ही माना है। इस गाँवकी कताई और बुनाईकी हालतका इसीसे पता लगा सकता है कि सब दरें तौलके हिसाबसे हैं। यदि ये दरें लम्बाईके हिसाबसे हों, तो यहांकी कताई और बुनाईमें बहुत उन्नति हो सकेगी।

लोगोंसे पूछनेपर मालूम हुआ है कि मिलके कपड़े फ़ैशनके कारण पहने जाते हैं, न कि सस्ते होनेके कारण। विवाहमें फ़ैशनके ही कारण वे लोग भी जो हमेशा खद्दर पहनते हैं, मिलके कपड़ेको ही काममें लाते हैं। मिलका कपड़ा प्रायः विवाह, दहेज़ आदिके ही काम आता है। यदि हाथकी कताई और बुनाईपर और ध्यान दिया जाय, तो इस इलाकेमें इसकी उन्नतिकी बहुत आशा है। अब भी किसी प्रकारका खद्दर।-) प्रति गज़की दरसे मँहगा नहीं है। यदि इन कातनेवालों और बुनकरोंको हमेशा काम रहे, तो दरमें और भी कमी आ जायगी। अन्य स्थानोंमें जहां बुनकरोंका लगातार काम दिया गया है, उनकी दरमें प्रत्यक्ष फर्क आया है। (१)

सूतका नम्बर	पहलेकी बुनाईकी दर	अबकी बुनाईकी दर
१६	५ आना	३ आना
१२	३ आना	२ आना ३ पाई
१८	२ आना	१ आना ३ पाई

* बिनौलेकी दर है ८६ रुपयेमें दो धड़ी।

(१) Economies of Khaddar. P 183

यदि कत्तैयों और बुनकरोंको यह विश्वास दिला दिया जाय कि उनका बुना कपड़ा हमेशा खरीद लिया जायगा, तो इस दिशामें काफ़ी उन्नति हो सकती है।

रही बात दूसरे प्रकारके खद्दरकी। इसके सूतको कातनेवाले अभी इस कामके लिए नौसिखिया हैं, पर तो भी बड़ी खूबीके साथ उन्नति कर रहे हैं। सन् १९२४ में अखिल भारत चरखा-संघका सूत ८ या १० नम्बरका होता था, पर सन् १९२७ में १६ अंकका सूत था। इस प्रकार सूतका नम्बर बढ़ रहा है।

सत्याग्रह-आश्रमकी एक जाँचके परिणामसे पता लगता है कि वहाँपर १० सप्ताहमें चरखेके सूतकी मज़बूती और बारीकी मिलके सूतके बराबर ही नहीं हो गई, बल्कि उससे बढ़ भी गई। वहाँ पहले सप्ताहमें एक सौ कातनेवालोंमें से केवल ३६ ही काम चलाने लायक सूत यानी ५० प्रति शतक जाँचका सूत कात सके थे। उनमें तीन आदमियोंका ही सूत ७० प्रति शत जाँचसे अच्छा निकला। चौथे सप्ताहमें ६४ कातनेवालोंका सूत ५० प्रति शत जाँचसे अच्छा निकला, २३ का ६० प्रति शत, २ का ७० प्रति शत और एकका ८० प्रति शतसे भी अच्छा निकला। नवें सप्ताहमें १११ कातनेवालोंमेंसे १०४ ने ५० प्रतिशत जाँचसे अच्छा काता, ३० ने ६० प्रतिशत, १७ ने ८० प्रतिशत, ४ ने ९० प्रतिशत और २ ने १०० प्रतिशत जाँचसे अच्छा काता। यहाँपर यह भी ध्यान देना चाहिए कि इसी जाँचके अनुसार २० अंकका सूत कैलिको मिल (अहमदाबाद) का ९० प्रतिशत, शाहपुर मिल (अहमदाबाद) का ८५ प्रतिशत और कमर्शियल मिल (अहमदाबाद) का ६९ प्रतिशत अच्छा उतरा था।

बात यह है कि मिलका तकुआ चरखेके तकुएका मुक़ाबला कर ही नहीं सकता। मिलके तकुएसे रुईके रेशे टूट जाते हैं, और झटकेसे कच्चे हो जाते हैं। यही कारण है कि जहाँ देशी कपाससे चरखेका तकुआ ४० या ५० अंकका सूत मज़ेमें कात सकता है, वहाँ इसी अंकका सूत कातनेके लिए मिलके तकुएपर विदेशी रुई लगानी पड़ती है। बुनाईमें भी हाथके करघेपर इच्छा-पूर्वक नक्शे आदि बनाये जा सकते हैं, पर मिलके करघेपर ऐसा नहीं हो सकता। हाथके करघेका तो साना १३ या १४ मक़ाका होता है, पर मिलके करघेका ५०० मक़ासे कमका नहीं, इसीलिए मज़बूती बातोंमें मनुष्यको अंत. असोस कर रह जाना पड़ता है।

महँगीका प्रश्न प्रायः उठाया जाता है। यद्यपि नया खद्दर अभी मिलके कपड़ेसे कुछ महँगा है, पर तो भी खद्दरके दामोंमें लगातार कमी आ रही है, जब कि सन् १९१३-१४ में विदेशोंसे आये हुए कपड़ेका दाम सन् १९२३ की अपेक्षा आधा था। नीचेका कोष्ठक इस बातको स्पष्ट करेगा।

(यह अंक 'Economic Condition in India'—p. 198 में से लिये हैं।)

प्रकार	१९१३-१४	१५-१६	१९-२०	२०-२१	२१-२२	२२-२३
	आ.पा.	आ.पा.	आ.पा.	आ.पा.	आ.पा.	आ.पा.
भूरा	=)८	।=)६	।=)९	।≈)४	।-)८	।-)३
सफेद	=)११	।≈)४	।≈)११	॥)४	।=)७	।=)६
रंगीन आदि	।≈)५	॥)६	॥-)१०	॥≈)४	॥)९	॥)३

दुर्भाग्यसे इन्हीं सालोंके खद्दरके दाम नहीं मिल सके हैं, पर इतना निश्चित है कि खद्दरके दामोंमें बहुत कमी आ रही है और साथ ही उसकी मज़बूती और बारीकी भी बढ़ रही है।

'विशाल-भारत' से मैं कुछ अंक देता हूं, जिनसे पता लगेगा कि खद्दरके दाम घट रहे हैं।

प्रान्त	१९२३ की कीमत	१९२७ की कीमत
आन्ध्र—	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
३६' फी-गज़	— ।≈) —	— ।-) ६
५०' " "	— ॥=) —	— ॥-) —
बंगाल खादी प्रतिष्ठान—		
४ गज ४४'	२ ॥।) —	१ ॥।) —
पंजाब—		
२७' फी-गज़	— ।=) ९	— ।) ९
तामिल प्रान्त—		
५०' फी-गज़	— ॥।) —	— ॥-) —
३६' फी-गज़	— ॥-) ६	— ॥) ६

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि गाँवोंमें बननेवाला खद्दर तो मिलकी अपेक्षा सस्ता और टिकाऊ तो होता ही है, पर नवीन खद्दर भी शीघ्र टिकाऊपने और सस्ते होनेमें मिलके कपड़ेका मुक़ाबला कर सकेगा।

जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं कि मिल-पद्धतिसे कुछ अनुत्पादक व्यय होते हैं, वैसे ही कपड़ेकी मिलमें भी अनुत्पादक व्यय होता है। नीचे लिखी बातोंसे यह स्पष्ट हो जायगा कि कुछ कपड़ेकी मिलोंके कारण कितना बिल्कुल

व्यय होता है, जो यदि मिलके स्थानपर हाथकी कताई-बुनाईसे बने कपड़ेपर नहीं होगा--

खर्चकी मद	खर्चकी रकम रुपएमें	हाथकी कताईमें कितने सैकड़ा घट सकता है
१ मिलके सूतको और कपड़ेको भेजनेमें भाड़ा, बीमा और लिखाईके खर्च	३५० लाख	५० P. c
२ रुईकी बीस लाख गाँठोंको मिल तक पहुँचाने बीमा कराने और लिखाईका व्यय	४५० लाख	५० P. c.
३ मिलके सामान कलपुर्जों के मँगवानेका खर्च	इसमें उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, अतः सन् १९१७-२१ तककी प्रति वर्षकी औसत थी ५० लाख	१०० P. c
४ भारतमें रुईपरका कर (जो उठा लिया गया)	२१० लाख	१०० P. c.
५ आमदनीपर साधारण और असाधारण कर	५० लाख	१०० P. c.
६ स्थानीय और चुंगीके कर	१२ लाख	७५ P. c.
७ म्युनिसपल कर और पानीका कर	१५ लाख	१०० P. c.
८ खोजन खर्च	७० लाख	१०० P. c

इन सबोंके कारण मिलके कपड़ेमें मँहगी हो, तो कोई हैरानीकी बात नहीं। फिर यदि भारतके २२ करोड़ ४० लाख किसानोंके घरमें चरखा चलने लगे, तो मिलोंका दिवाला बोल जाय। हम आगे देखेंगे कि एक माता सालमें इतना सूत कात लेती है कि फिर मिलके कपड़ोंकी ज़रूरत ही नहीं रहती। मँहगी और टिकाऊपनपर विचार करते हुए हमें एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि हम आठ सालके व्यवसायका ८३ सालके व्यवसायके साथ मुकाबला कर रहे हैं। यह तो मैं पहले लिखा चुका हूँ कि गाँवोंके घरोंमें बना खद्दर बाज़ारमें नहीं बिकता। बाज़ारमें तो बिकता है उन नौसिखुए हाथोंसे बना हुआ जिन्होंने सन् १९२१ आन्दोलनमें चरखा चलाना प्रारम्भ किया था। इस खद्दरकी तुलना मिलके कपड़ेसे की जाती है, जब कि मिलको बने ८३ साल हो चुके। एक तरफ तो ८३ सालका पुराना व्यवसाय अपनी रक्षाके लिए संरक्षण चाहता है और दूसरी तरफ आठ सालके नव व्यवसायके साथ उसकी तुलना की जाती है। यह उचित है या नहीं, यह लिखनेकी ज़रूरत नहीं। जब हम हाथकी कताई-बुनाईको भी ८३ साल हो जायँ, तब देखना है कि यह कितनी उन्नतावस्थामें होगी। पुरानी हाथकी कताई यदि इतनी उन्नत हो सकती थी कि आज तक संसारको मिलें उसका मुकाबला नहीं कर सकीं, तो कुछ असंभव नहीं कि ये नए हाथ भी जब पुराने हो जायँगे तो कुछ चमत्कार दिखायेंगे।

(२) दूसरा सवाल है कि भारतकी कुल माँगको क्या खद्दर पूरी कर सकता है? आजसे कुछ साल पहले भारत अपनी ही नहीं, बल्कि संसारके अन्य देशोंकी भी माँग पूरी करता था। आज भी कुल कपड़ेकी माँगका ⅓ भाग करघेपर बुने कपड़ों द्वारा पूरा होता है! पहले कहा जा चुका है कि आज भी ६० लाख आदमी करघेपर काम करते हैं, अर्थात् २० लाख करघे हैं।

खद्दरकी उत्पत्ति प्रति वर्ष बढ़ रही है। बिक्री भी इसीके अनुसार बढ़ रही है। पिछले चार वर्षोंमें इस प्रकार खादीकी उत्पत्ति और बिक्री हुई—

सन्	उत्पत्ति	बिक्री
१९२४	६४६३४८	१९७६४११
१९२४-२५	१९०३०२४	३३६१०६१
१९२५-२६	२३७६६७०	२८९९१४३
१९२६-२७	२४०६३७०	३३४८७९४

यह उत्पत्ति और बिक्री तो केवल अ० भा० च० संघ के निरीक्षणमें हुई। गाँवोंमें घर-चरखेसे कितनी उत्पत्ति हुई, उसकी तो गणना ही नहीं गई। यदि एक स्त्री १ घन्टेमें ४०० गज़ सूत काते (१२ अंकका), तो ४ घंटेके दिन, २५ दिनके महीने और १० महीनेके सालमें वह ४×२५×१०×४००=४०००० गज़ सूत कात लेगी। यह २० सेर सूत हुआ। इससे १ सेरमें ८ गज़के हिसाबसे १६० गज़ कपड़ा बुना जा सकता है। 'ग्रैंबेल्यर गाज़ियन' के संवाददाताके प्रति भारतीय कपड़ेकी वार्षिक औसत १६

गज़ कताई की, महात्मा गांधीजीने अपने लेखोंमें १४ गज़ मानी है, श्री राजेन्द्रप्रसादजीने ११ गज़ ही मानी है और मगन काकाने भी १४ गज़ ही मानी है; पर मैं यदि १५ गज़ भी मान लूं तो भी १० आदमियोंके लायक सूत एक स्त्री फुरसतके समय कात सकती है। मैंने ४०० गज़ १ घन्टेमें बहुत कम अनुमान लगाया है। साधारण तौरपर इससे अधिक ही काता जाता है। ४ घन्टे तो एक स्त्री बखूबी समय निकाल सकती है। फिर सर्दियोंमें तो रातको भी काता ही जाता है। इस प्रकार यदि पाँच आदमियोंका एक परिवार माना जाय, तो एक-आध परिवार चरखा चलाए बिना भी बड़े मौजसे निर्वाह कर सकते हैं।

हम पहले देख आये हैं कि प्रत्येक भारतीयकी औसत आमदनी ५०) से अधिक नहीं है। इस ५०) में २४) की वृद्धि बहुत है।

(३) इस चरखेसे इतनी कम आमदनी होती है कि इसे कातेगा कौन? भारतमें स्त्रियाँ तो इसे अब भी कातती हैं। वे लोग भी इसे कातेंगे, जो बेकार हैं। उनके लिए चरखेका एक आना भी बहुत मूल्यवाला है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि अकाल पीड़ितोंने इसे स्वीकार किया है, वैसे ही और भी बेकार इसे धीरे-धीरे स्वीकार कर रहे हैं। अखिल भारतीय चरखा-संघकी रिपोर्ट इस समय मेरे पास नहीं है, नहीं तो मैं ठीक-ठीक बतला देता कि प्रति वर्ष किस प्रकार कातनेवालोंकी संख्या बढ़ रही है। मैं 'विशाल-भारत' में से ही गणना देता हूं, जिससे उपर्युक्त कथन सत्य सिद्ध होगा—

सन्	कातनेवाले	बुननेवाले
१९२५-२६	४२९५९	३४८७
१९२६-२७	८३३३९	५१९३

गाँवोंके बुनने और कातनेवालोंके अंक तो इसमें हैं ही नहीं। खैर, यह तो सिद्ध ही है कि चरखा ही एक-मात्र भारतकी बेकारी और उससे उत्पन्न ग़रीबीकी दवा है। इससे सबको फ़ायदा है। उपभोक्ता, उत्पादक, व्यवसायपति (चूंकि किसानोंकी क्रय-शक्ति बढ़ेगी), किसान आदि सबको फ़ायदा ही फ़ायदा है, नुकसान नहीं।

यदि एक आदमी १ घण्टा प्रति दिन सूत काते—जो किसीके लिए भी कठिन नहीं है—तो वह सालमें २५ दिनके महीने और १० महीनेके सालमें ४०० गज़ प्रति घन्टेकी चालसे २५×१०×४००=१००००० गज़ सूत कातेगा। यदि यह १२ अंकका हो, तो इससे ४० गज़ कपड़ा बनेगा। यह क्या कम फ़ायदा है? अन्तमें श्री स्लैडरके उद्धरणके साथ मैं इस निबन्धको समाप्त करता हूं—

"यदि सारा भारतवर्ष निश्चय कर ले कि भारतीय हाथसे बुने और हाथसे कते कपड़ोंको छोड़कर अन्य किसी कपड़ेको न पहनेंगे, तो सालके उन कई महीनोंमें भी—जिनमें या तो किसान सर्वथा काम बन्द कर देते हैं, या थोड़े ही किसानोंकी कामपर ज़रूरत होती है—गाँवोंमें काम होगा। यह व्यर्थ खोया जानेवाला समय उत्पादक हो जायगा। बहुतसे आदमी जो कौंकण और दक्षिणको छोड़कर बम्बईमें काम करने जाते हैं, वहाँ एक कमरेके कोनेमें परिवारके साथ रहते हैं, और अपने बच्चोंको उत्पन्न होते ही मरते हुए देखते हैं, अब वे अपने स्थानपर खुशीसे रह सकेंगे। और चूंकि किसी गाँवकी उत्पत्ति मुख्यतया सबसे अधिक कामके दो तीन सप्ताहोंमें मज़दूरोंके मिलनेपर निर्भर है, अतः अनाजकी कुल उत्पत्ति भी बढ़ेगी, और इस प्रकार वास्तवमें देशकी समृद्धि बढ़ेगी।"

अप्टन सिनक्लेयर

[लेखक :—श्री कृष्णानन्द गुप्त]

अप्टन सिनक्लेयर

आप इंग्लैण्ड, फ्रान्स और रूसके अनेक प्रतिभाशाली लेखकों और नाटककारोंसे परिचित होंगे। आप शायद बर्नर्ड शा, रोमाँरोलाँ और गाल्सवर्दी आदिको जानते हैं, पर क्या आपने कभी अप्टन सिनक्लेयरका भी नाम सुना है? मेरा विश्वास है कि आपमेंसे बहुतोंने यह नाम नहीं सुना होगा। यदि यह ठीक है, तो आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अप्टन सिनक्लेयर अमेरिकाका एक महान् और क्षमताशाली लेखक है। उतना ही महान् और क्षमताशाली, जितना कि यूरोप अथवा अमेरिकाके अन्य लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक। अमेरिकाका प्रत्येक शिक्षित नागरिक उसे जानता है, वहाँका प्रत्येक पत्र-सम्पादक उसकी शक्तिके सामने अपना मस्तक झुकाता है और उसकी लेखनीका लोहा मानता है। उसकी लेखनीमें ऐसा ओज है, ऐसी निर्भीकता है और सत्यका ऐसा खरापन है कि उसके नामसे बड़े-बड़े पत्र-सम्पादकोंके सिंहासन डोलते हैं। हिन्दी जनता ऐसे लेखकसे परिचित नहीं है, यह सचमुच खेदकी बात है। इसके लिए आप किसे दोषी ठहरायेंगे? देशी पत्रोंको? अथवा विलायती अखबारोंको? आपको यह जानकर सन्तोष होगा कि इसमें देशी पत्रोंका तनिक भी दोष नहीं है। दोष है विलायती अखबारोंका, जिनपर हमारे देशके पत्रकार विदेशी साहित्य और समाचारोंके लिए सोलहों आने अवलम्बित हैं। इन विलायती अखबारोंने अप्टन सिनक्लेयर और हमारे बीचमें कंकरीटकी ऐसी ठोस दीवार खड़ी कर रखी है कि जिसमें होकर उसके नामकी गन्ध भी हम तक नहीं पहुँच सकती। विलायतके अखबार अप्टन सिनक्लेयरके नामसे उतने ही दूर रहते हैं, जितना कि कोई अनुभवी डाक्टर छूतकी बीमारीसे! वहाँके अखबारोंमें अप्टन सिनक्लेयर नाम नहीं छपता! छपता भी है, तो उसे बदनाम करनेके लिए, उसकी खिल्लियाँ उड़ानेके लिए और सर्वसाधारणकी दृष्टिमें उसे नीच, बेईमान, देशद्रोही और प्रजाके हितोंका घातक सिद्ध करनेके लिए! इंग्लैण्ड और अमेरिकाके समाचारपत्र (दो-चारको छोड़कर) उसके निबन्धों और लेखोंको स्थान नहीं देते। अमेरिकाके आधुनिक साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐतिहासिक ग्रन्थों अथवा सामयिक निबन्धोंमें उसका नामोल्लेख नहीं होता। वहाँके पुस्तक-प्रकाशक उसके ग्रन्थोंका प्रकाशन नहीं करते। अप्टन सिनक्लेयर अपने उपन्यासों और नाटकोंको स्वयं ही प्रकाशित करता है और उन्हें स्वयं ही बेचता है। विलायतके समाचारपत्र भूलसे भी उसकी रचनाओंका उल्लेख नहीं करते, और यदि करते भी हैं तो यह बतानेके लिए कि अप्टन सिनक्लेयरका अमुक उपन्यास ऐसा गन्दा, ऐसा घृणित, ऐसा विषैला और ऐसा बदबूदार है कि कोई भला आदमी उसे हाथसे छूना भी पसन्द नहीं करेगा। अमेरिकाके एक प्रसिद्ध व्यापारी पत्रने उसके एक प्रसिद्ध उपन्यास 'जंगल' (Jungle) के बारेमें ठीक यही शब्द लिखे थे। यूरोपमें उसकी लाखों प्रतियाँ छप चुकी हैं और वहाँकी सत्रह भाषाओंमें उसका अनुवाद भी निकल गया है, बल्कि वहाँके अनेक निष्पक्ष समालोचकों और कलाविदोंने उसे बीसवीं सदीकी महान् रचना कहा है, परन्तु अमेरिकाके एक भी पत्रने 'जंगल' के लिए इस विशेषणका उपयोग नहीं किया। दो-एकको छोड़कर सभीने उसे अपठनीय बताया। सभीने जी-जानसे इस बातकी कोशिश की कि 'जंगल' के पृष्ठों द्वारा सभ्य जगत अप्टन सिनक्लेयरकी सच्ची प्रतिमूर्तिको न देख पावे। वे लोग किसी प्रकार भी उसकी प्रशंसा नहीं करना चाहते, और न उसकी प्रखर प्रतिभाका कायल ही होना चाहते हैं। एक ब्रेंडे 'Main currents in 19th Century Literature'

नामक ग्रन्थके रचयिता और प्रसिद्ध समालोचक डा० जार्ज ब्रैंडीज़ अमेरिका गये। वहाँ रिपोर्टरोंसे भेंट करते समय आपने कहा कि मैं यहाँ केवल तीन उपन्यास-लेखकोंके ग्रन्थ पठनीय समझता हूँ—फ्रैंक नारिस, जैक लंडन और अप्टन सिनक्लेयर। इस संवादको प्रकाशित करते समय अमेरिकाके अखबारोंने अप्टन सिनक्लेयरका नाम ही उड़ा दिया! एकको छोड़कर सभी पत्रोंने लिखा कि डा० ब्रैंडीज़की सम्मतिमें अमेरिकाके केवल दो ही उपन्यास-लेखक पठनीय हैं, फ्रैंक नारिस और जैक लंडन। डा० ब्रैंडीज़ इस घटनासे बड़े विस्मित हुए, और उन्होंने अप्टन सिनक्लेयरसे इसका कारण पूछा। सिनक्लेयरने जब वजह बताई तब डा० ब्रैंडीज़ उसके एक उपन्यास 'King Coal' की भूमिका लिखनेके लिए तैयार हो गये। भूमिकामें उन्होंने 'King Coal' के रचयिताकी जो प्रशंसा की है, वह अमेरिकाके अन्य किसी लेखकको आज तक प्राप्त नहीं हुई होगी। परन्तु क्या इस प्रशंसाका अमेरिकाके समालोचकोंपर कोई प्रभाव पड़ा? क्या उनकी मनोवृत्तिमें कोई परिवर्तन हुआ? रत्ती-भर भी नहीं। आप पूछेंगे, आखिर अप्टन सिनक्लेयरने ऐसा कौनसा अपराध किया है, जिसकी वजहसे अमेरिकाके समाचारपत्रों और समालोचकोंने साहित्य-जगत्से उसके नामका ऐसा सम्पूर्ण और व्यापक बहिष्कार कर रखा है? उसका अपराध केवल यह है कि वह सत्यका पुजारी है। सामाजिक विशृंखलताके लिए उसके हृदयमें दर्द है। वह अन्याय और अत्याचारसे प्रपीड़ित श्रमजीवियोंका शुभचिन्तक है। वह पूँजीवादका, धनसत्ताका और आर्थिक दासताका कट्टर विरोधी है। एक शब्दमें—वह साम्यवादी है! अब आप समझ गये होंगे कि यूरोपके पत्रोंमें उसके ग्रन्थोंकी चर्चा क्यों नहीं होती। वहाँके पुस्तक-विक्रेता उसके उपन्यास क्यों नहीं बेचते। हिन्दुस्तानके सब प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेताओंसे पूछ देखिए, आपको अप्टन सिनक्लेयरके अधिकांश ग्रन्थ नहीं मिलेंगे। कम-से-कम उनके सूचीपत्रोंमें उसके ग्रन्थोंका उल्लेख होते नहीं देखा गया। मेरे एक श्रद्धेय मित्रने, जो कि अप्टन सिनक्लेयरके बड़े भक्त हैं, उसके ग्रन्थोंको सीधा अमेरिकासे लेखकको लिखकर मँगाया है।

अमेरिकाके इस शक्तिशाली लेखकसे मेरा सर्वप्रथम परिचय हुआ उसके एक छोटेसे एकाङ्की नाटक द्वारा। उसे पढ़कर मैं क्षण-भरके लिए सन्नाटेमें आ गया और सोचने लगा कि अमेरिका अथवा इंग्लैंडका यह कौनसा लेखक है, जिसकी लेखनीमें ऐसा ज़ोर है और जो पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा मशीनोंके इस फैले हुए जालपर ऐसे निर्मम और भयानक रूपसे आक्रमण कर रहा है। नाटकमें एक सच्ची घटनाका उल्लेख है। एक मजदूर है। वह किसी लोहेके कारखानेमें नौकर था। एक दफ़े काम करते समय किसी मशीनमें उसके पैर फँस गये। अब क्या हो? पैर निकालनेके लिए मशीनके पुर्ज़ोंको अलग करना ज़रूरी था, पर ऐसा करनेमें फैक्टरीके मालिकोंके कई हज़ार डालरोंपर पानी फिर जाता। लिहाज़ा उन्होंने मजदूरके पैरोंपरसे मशीन चला दी। उसके पैर कट गये, और मिल-मालिकोंने क्षति-पूर्ति-स्वरूप उसे सौ डालर देकर छुट्टी पाई। इस रोमांचकर घटनाको पढ़कर पत्थरका कलेजा भी दहल जायगा। मेरे एक सहृदय मित्र तो इसे सुन भी नहीं सके। नाटककी स्मृति मेरे हृदयमें वैसी ही ताज़ी है, परन्तु उस समय मैंने लेखककी असाधारण वर्णना-शक्तिका विशेष अनुभव नहीं किया था। संभव है, यह बात उसके व्यक्तित्व और उसकी अन्य रचनाओंसे परिचित न होनेके कारण हुई हो, परन्तु जब मैंने उसका 'Jungle' पढ़ा, 'King Coal' पढ़ा, 'Prince Hagen' पढ़ा, 'Brass check' पढ़ा, 'Hell' पढ़ा और अब जब आजकल 'Oil' पढ़ रहा हूँ, तब मेरी यह निश्चित धारणा हो गई है कि अप्टन सिनक्लेयरकी जोड़का लेखक अमेरिकामें शायद ही कोई और हो।

अप्टन सिनक्लेयरका जन्म सन् १८७८ में बाल्टीमोरमें हुआ था। उसके माता-पिता बहुत ग़रीब थे। वह पहले एक सार्वजनिक स्कूलमें भर्ती हुआ, फिर न्यूयार्कके कालेजमें गया। वहाँ उसने केवल उन विषयोंको

पढ़ा, जिनमें उसका मन लगा, और जिनमें उसका मन नहीं लगा उनको छोड़ दिया।

वर्षके अन्तमें वह कालेजमें कई महीने अनुपस्थित रहा। इस बीचमें वह घरपर रहा। यहां उसने अपना समय नष्ट नहीं किया। वह पढ़ता रहा, परन्तु पढ़नेकी कोई शृंखला नहीं थी। जो हाथमें आया, वही पढ़ डाला। ईसा, हैमलेट और शेलीने उसे बहुत प्रभावित किया। उसने कार्लाइल, ब्राउनिंग, मिल्टन और गेटेका भी अध्ययन किया। टेनीसन भी पढ़ा, परन्तु वह उसे अधिक पसन्द नहीं आया। शेली और शेक्सपियरके बाद उसे आर्नेल्ड पसन्द था। थैकरे अब भी उसके मस्तिष्कमें घूमा करता है। फ्रेंच पढ़नेके पहले उसने जर्मन भाषाका अध्ययन किया। यही कारण है कि फ्रेंच साहित्यका उसपर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी ज़ोलासे उसने बहुत-कुछ सीखा। कम-से-कम वह इस फ्रेंच लेखककी वर्णनशैली और यथार्थवादितासे बहुत उद्बोधित हुआ है। अपने उपन्यास 'जंगल' के सम्बन्धमें उसने स्वयं लिखा है—"मैंने शेलीकी आत्माको ज़ोलाके रूपमें रखनेका प्रयत्न किया है।"

उसने लेटिन और ग्रीक नहीं पढ़ी। कालेजमें उसने लेटिनका पाँच वर्ष और ग्रीकका तीन वर्ष अभ्यास किया, पर दोनों उसके लिए लोहेके चने साबित हुईं। वह कोषमें किसी शब्दको जितनी बार देखता, उतनी ही बार उसे भूल जाता। कालेजों और स्कूलोंमें भाषाओंकी शिक्षण-पद्धतिकी उपयोग-हीनतापर उसने बहुत कुछ लिखा है। वह जब कालेजसे बाहर निकल कर आया, तब उसने डेढ़ महीनेमें फ्रेंच और एक महीनेमें जर्मन भाषा सीख ली।

लड़कपनमें उसे 'न्यूयार्क सन' और 'ईवनिंग पोस्ट' पढ़नेका बड़ा शौक था। उसकी पहली कहानी पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें प्रकाशित हुई। इसके एक साल बाद उसे 'ईवनिंग पोस्ट' के दफ्तरमें रिपोर्टरकी जगह मिली। वहाँ एक सप्ताह काम करके उसने नौकरी छोड़ दी। समाचारपत्रके आफिसका उसका यह प्रथम और अन्तिम अनुभव था।

उसने पत्रोंके लिए मज़ाक और चुटकुले लिखना शुरू किया। इनके लिए उसे काफी पुरस्कार मिलता। फिर कुछ सनसनीदार उपन्यास लिखे, जिनके द्वारा उसने खासी रक़म पैदा की। उसे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता कि इन सस्ती और निकम्मी रचनाओंसे भी धनोपार्जन किया जा सकता है। सम्पादकोंने उसे वजह बताई कि जनता ऐसी ही वस्तु चाहती है। इस उत्तरको सुनकर युवक सिनक्लेयर सोचता—"तो क्या यह सम्पादकोंका दोष नहीं है कि वे जनताको श्रेष्ठ वस्तु देनेका प्रयत्न नहीं करते?"

सिनक्लेयरके विचारोंका क्रमविकास कैसे हुआ? उसने वर्तमान युगके पूँजीवाद और व्यापारवादके संघर्षकी बुराइयोंका अनुभव कैसे किया? श्रमजीवियों और कृषकोंपर होनेवाले अन्याय और अत्याचारोंके विरुद्ध उसके हृदयमें विद्रोहकी वह चिनगारी कहाँसे आई, जिसका परिचय हमें 'जंगल' के पन्ने-पन्नेमें मिलता है? इसका उत्तर स्वयं लेखकने इस प्रकार दिया है—

"ईसाई-धर्मके सिद्धान्त ही मुझे साम्यवादकी ओर खींच ले गये। मैंने देखा कि जो अपनेको ईसाका अनुयायी बताते हैं, वे न तो उसके पथपर चलते हैं और न उसके उपदेशोंको समझते हैं। मैंने उसके पथपर चलना और उसके उपदेशोंको समझना चाहा। इस प्रकार एक ओर तो ईसाके ईश्वरत्वपर मेरा अविश्वास बढ़ उठा, दूसरी ओर उसके उपदेशोंके मानवी पहलूको समझने और अमलमें लानेकी इच्छा बलवती हो उठी। मैंने 'आर्थर स्टर्लिंग' (Arthur stirling) और 'प्रिन्स हेगन' (Prince Hagen) नामक पुस्तकें लिखीं। दोनों साम्यवाद-सम्बन्धी रचनाएँ हैं, और उस समय लिखी गई थीं, जब किसी साम्यवादीसे मेरी भेंट नहीं हुई थी। मेरी धारणा थी कि इन पुस्तकोंमें मैंने जो विचार प्रकट किये हैं, उनको मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। बीस वर्षकी अवस्थामें ही इनकी मेरे हृदयपर पूरी छाप पड़ चुकी थी। बादमें मुझे मालूम हुआ कि लोग तो इन्हें पहलेसे ही जानते हैं।

"जब मैं अठारह वर्षका था, मुझे ऐसा जान पड़ा कि मुझपर कोई भूत सवार है। दिन रात लिखा करता। यहाँ तक कि मैंने अपने शरीरको सुखा डाला। इसके पहले एक दफे मुझे सितार सीखनेकी धुन समाई। रोज़ दस घंटे अभ्यास करता। तीन-चार वर्ष तक यही हाल रहा। इसके बाद मेरा विवाह हुआ। तब सितार छूट गया, और ऐसा काम करनेकी फ़िक्र हुई, जिससे कुछ रुपया मिले।

"पन्द्रह वर्षकी अवस्थासे मैं लेखन-कार्य द्वारा अपना जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ। बीस वर्षके होनेपर (उस समय मेरा विवाह हो चुका था) कोई ठोस चीज़ लिखनेका विचार मनमें उत्पन्न हुआ। मैंने प्रहसन, कहानी और हास्य-विनोद लिखना छोड़ दिया। कालेजमें इन्हींकी सहायतासे मैंने पढ़ाईका खर्च चलाया था।

"बीससे छब्बीस तक मुझे एक प्रकारसे भूखों मरना पड़ा। इस बीचमें मैंने जो उपन्यास लिखे, उनसे अधिक आय नहीं हुई। न्यूयार्कमें अकेले रहते समय १८ डालर (१ डालर=लगभग ३ रुपया) में महीने-भर गुज़र करता था, और जब देहातमें कुटुम्बके साथ रहता, तब ३० डालरमें सब काम चलता। वास्तवमें यही होता। मुझे मजबूर होकर ऐसा करना पड़ता था। इसीलिए निर्धनतापर मुझे इतना आक्रोश है। लोग मुझे बातोंमें नहीं भुला सकते।

"जब मुझे कोई अपने मनका विषय लिखनेको मिल जाता, तब मैं न दिन देखता, न रात। मतलब यह कि जो कुछ लिखता, वह प्रतिक्षण मेरे मस्तिष्कमें घूमता रहता—मैं सोते समय भी सोचता रहता—मेरी धारणा शक्ति खूब प्रबल थी। जब तक सारे पन्ने मस्तिष्कमें लिपिबद्ध न कर लेता तब तक कुछ लिखने न बैठता। घूमते समय भी उनपर अविराम विचार करता रहता। वे मेरे मस्तिष्कमें अंकित हो जाते—सब दृश्य, सब विषय।

"बूचड़खानोंमें मुझे एक विवाहोत्सवमें सम्मिलित होना पड़ा। मैं दिन-भर बैठा रहा, और वहीं 'जंगल'का प्रथम दृश्य पूरेका पूरा मेरे मस्तिष्कमें चित्रित हो गया—मैंने उसे वहीं लिख डाला, अर्थात् अपनी स्मृतिमें। मैंने कभी नोट नहीं लिखे, किन्तु दो महीनेके उपरान्त जब मैं घर पहुँचा, तो मैंने उस दृश्यको यथावत् लिख डाला, शायद ही कहीं एक आध वाक्यका अन्तर पड़ा हो। मैं अब भी ऐसा कर सकता हूँ।"

लड़कपनसे ही सिनक्लेयरको असत्यसे चिढ़ रही है। अन्यायसे वह सदैव घृणा करता रहा है। जीवनमें जब कभी उसे इनका सामना करना पड़ा, उसका सर्वांग आवेश और उत्तेजनासे प्रज्ज्वलित हो उठता। वह आजीवन इनका कारण खोजता रहा। संसारमें इतना झूठ और फ़रेब क्यों है? समाचारपत्रोंमें इनकी विशेष रूपसे पैठ है। ऐसा क्यों है? इनसे किस प्रकार बचा जावे? समाचारपत्रोंने कभी यह जाननेकी कोशिश क्यों नहीं की? युवक सिनक्लेयरने मनोयोग-पूर्वक जितना ही इस प्रश्नपर विचार किया, अखबारोंपरसे उतनी ही उसकी श्रद्धा उठती गई।

उसने अखबारके दफ्तरमें नौकरी नहीं की। उसके कई सगे-सम्बन्धी ऊँची नौकरियोंपर थे। वे प्रभावशाली और धनी थे। यदि सिनक्लेयर चाहता, तो उनकी सहायतासे अपनी उन्नतिका मार्ग शीघ्र ही प्रशस्त कर लेता, परन्तु उसे यह पसन्द नहीं था। यदि व्यापार करता तो अमेरिका जैसे देशमें अपने अध्यवसायके बलसे थोड़े दिनोंमें ही धनकुबेर बन जाता, परन्तु उसकी तृषित आत्मा जिन आदर्शोंकी प्यासी थी, क्या व्यापारमें उनके दर्शन होते? उसने व्यापारका भी इरादा छोड़ दिया।

अपने जीवनको स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यतीत करनेके उद्देश्यसे उसने कनाडाके निर्जन-प्रदेशमें जाकर शरण ली। वहाँ एक कुटीमें बैठकर उसने एक उपन्यास लिखा। वह उसकी अप्रौढ़ रचना थी, परन्तु उसमें एक नवीन आदर्शकी अभिव्यंजना थी, और लेखकका विश्वास था कि वह संसारको सत्य और न्यायके पथपर अग्रसर करेगा। वह अपनी

पुस्तकको प्रकाशकोंके निकट ले गया। एक-एक करके सबने उसे अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उसकी श्रेष्ठताको स्वीकार किया, परन्तु 'खपत नहीं होगी', न छापनेका यही कारण बताया। लेखकको यह अत्यन्त असंगत और आश्चर्यजनक जान पड़ा। प्रकाशकोंकी परीक्षाकी कसौटी यह नहीं थी कि पुस्तकका दृष्टिकोण विस्तृत है या नहीं, उसमें सत्य और सुन्दरका दिग्दर्शन है या नहीं, अथवा उसमें कोई भाव-गाम्भीर्य या उच्चादर्श है या नहीं, अपितु यह थी कि 'उसकी बिक्री होगी या नहीं!'

लेखकने थोड़ी पूँजी एकत्र करके स्वयं ही अपनी पुस्तकको प्रकाशित किया और उसे स्वयं ही दुनियाके सामने यह कहनेके लिए मजबूर होना पड़ा—देखिए, कैसी बढ़िया चीज़ है!

इस पुस्तकको उसने सब पत्रोंके पास समालोचनार्थ भेजा। दो-चारने किताबका ज़िक्र किया, परन्तु यह किसीने नहीं लिखा कि उसमें है क्या।

लेखकको साहित्य-जगतमें—जहाँ उसके शब्दोंमें 'विचारोंका क्रय-विक्रय होता है'—नित्य नये अनुभव होने लगे। वह गम्भीर और सारगर्भित चीज़ लिखना चाहता था, परन्तु प्रकाशक कहते कि उसकी खपत नहीं होगी। वह समालोचक बनना चाहता था, परन्तु उसे मालूम हुआ कि धोखेबाज़ी ही सफलताका एकमात्र साधन है। 'इंडिपेन्डेन्ट' अथवा 'लिटरेरी डाइजेस्ट' पत्र उसे पाँच-छ: पुस्तकें पढ़नेको देते। युवक उन्हें पढ़कर अपनी निष्पक्ष राय देता। वह लिखता कि उनमें कोई खूबी नहीं। इसपर सम्पादक महोदयका उत्तर आता कि पुस्तकोंकी आलोचना लिखनेकी ज़रूरत नहीं। लेखकको अपने परिश्रमके लिए कुछ भी न मिलता। इसके विपरीत यदि वह किसी पुस्तककी लम्बी-चौड़ी आलोचना लिखता और उसे अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण और उपादेय बताता, तो सम्पादक महोदय उसे प्रकाशित कर देते और लेखकको खासा पुरस्कार भी देते।

यह सब देखकर सिनक्लेयरको बड़ी निराशा हुई। उसे साहित्यकी इस दुनियामें सर्वत्र बेईमानी, धोखेबाज़ी और दूकानदारी नज़र आई। उसने देखा कि लोग साहित्य और समाज-सेवाकी ओटमें केवल धन कमाते हैं। उससे यह नहीं देखा गया। वह पुन: न्यूयार्क छोड़कर एकान्तमें चला गया। वहाँ उसने एक नाटक लिखा, जिसमें रौप्य-देवताके क्रीडास्थल न्यूयार्कके प्रति उसने अपने हृदयका समस्त क्षोभ और असन्तोष प्रकट किया है। नाटकका नाम है 'प्रिन्स हेगन' (Prince Hagen)। इसे उसने 'अटलान्टिक मंथली' अख़बारमें छपने भेजा। सम्पादकका पत्र मिला कि वह एक उत्कृष्ट रचना है और छपेगी। नवयुवक लेखक मनमें फूला नहीं समाया। पर इसके बाद ही एक दूसरा पत्र आया, जिसमें लिखा था कि 'अटलान्टिक'के सम्पादकीय विभागके अन्य सदस्योंने पुस्तक पढ़ी, किन्तु खेद है कि वे लोग उसे प्रधान-सम्पादकके दृष्टिकोणसे नहीं देख सके। लिखा था—"क्या करें! हमारे सम्पादकीय विभागके आदमी बड़े ज़िद्दी और दक़ियानूसी ख़यालातके हैं।"

मतलब यह कि 'अटलान्टिक'ने सिनक्लेयरकी रचनाको प्रकाशित नहीं किया, और वजह यह थी कि वह न्यूयार्कके धन-कुबेरोंके ख़िलाफ़ लिखी गई थी।

अपने इन कटु अनुभवोंको सिनक्लेयरने 'दी जर्नल आफ् आर्थर स्टर्लिंग' नामक पुस्तकमें लिपिबद्ध किया। इसमें एक नवयुवक कविकी दु:खान्त आत्म-कहानी है, जो समालोचकोंकी उपेक्षासे निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। जनताके सामने यह पुस्तक एक सच्ची डायरीके रूपमें रखी गई। पुस्तकने साहित्य जगतमें हलचल मचा दी। सभीने उसे सत्यके रूपमें ग्रहण किया। सिनक्लेयर उस पुस्तककी ओटमें बैठा शैतानकी हँसी हँस रहा था। वास्तवमें वह खुश था। बादमें जब रहस्यका भंडाफोड़ हुआ, तब अनेक समालोचक और पत्रकार लोहूका घूँट पीकर रह गये, और उनमेंसे दो-तीनने तो अब तक लेखकको क्षमाके योग्य नहीं समझा है। न्यूयार्कका 'ईवनिंग पोस्ट' अख़बार मौक़े-बेमौक़े अब भी यह लिखनेसे नहीं चूकता कि मिस्टर लेखकने

ऐसी शरारत की है, वह कदापि जनताका विश्वास पात्र नहीं बन सकता। वास्तवमें अप्टन सिनक्लेयरने किसी दुरभिसन्धि-वश ऐसा नहीं किया था। वह केवल उसका एक प्रयोग था, जिससे उसने बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण की। इस घटनाके सम्बन्धमें स्वयं सिनक्लेयरने लिखा है—"जब आलोचकोंकी स्वयं ही यह राय है कि 'कलामें व्यक्तित्व और सनसनीके बिना प्रेम और सौन्दर्य नहीं देखा जाता', तब यदि मैंने जनताको इन दोनोंका दर्शन करानेके लिए व्यक्तित्व और सनसनीसे काम लिया, तो कौनसा बड़ा भारी अपराध कर डाला ?"

इसके बाद सिनक्लेयरने 'मैनेसस' (Manasas) नामक उपन्यास लिखा। इसमें लेखकने अपने देशवासियोंको यह बतानेका प्रयत्न किया कि वे क्यासे क्या हो गये हैं और अब किधर बहे जा रहे हैं। अमेरिकाकी जनताने इस पुस्तकको पढ़नेकी ज़रूरत नहीं समझी, और न वहांके समाचारपत्रोंने इसकी कोई चर्चा ही करनी चाही। लेखक इससे निराश और हतोत्साह नहीं हुआ। अन्याय और असत्यके विरुद्ध उसने अपनी लड़ाई जारी रखी। उसने अब कोई ऐसी चीज़ लिखनी चाही, जिसमें अमेरिकाकी फैक्टरियों, मिलों और कारखानोंमें काम करनेवाली लाखों-करोड़ों अध-नंगी और अध-भूखी आत्माओंका आर्तनाद व्याप्त हो। उसने वही करना शुरू किया। न्यूयार्कमें एक 'बीफ-ट्रस्ट' है। उसके अधीन कई बूचड़खाने हैं। बड़े-बड़े पूंजीपति इनके मालिक हैं। इन बूचड़खानोंकी भीतरी अवस्था बड़ी भयानक और वहां काम करनेवाले मज़दूरोंकी दशा उससे भी अधिक रोमांचकर है। सिनक्लेयर इन बूचड़खानोंमें गया। वहां मज़दूरोंके बीचमें वह डेढ़ महीने रहा और घर आकर उसने 'जंगल' (Jungle) लिखा।

अब तक अमेरिकाके अखबार सिनक्लेयरकी रचनाओंका केवल मज़ाक उड़ाते रहे। वह अखबारोंके लिए खिलवाड़की चीज़ था—निरा छोकड़ा और सनकी कवि। उसे लेकर वे अपने पाठकोंका खूब मनोविनोद करते थे, और पाठक भी इससे प्रसन्न ही होते हैं। परन्तु अब अखबारोंसे अप्टन सिनक्लेयरकी सच्ची लड़ाई शुरू हुई। लेखकने इस बार सामाजिक बुराइयोंके विरोधके लिए कविताके कोमल अस्त्रको अनुपयुक्त समझकर वर्तमान युगके वास्तविक तथ्योंका तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिया था। 'जंगल' धारावाहिक रूपमें प्रकाशित होने लगा। इस उपन्यासमें लेखकने अमेरिकाके बूचड़खानोंका ऐसा भीषण, ऐसा बीभत्स और ऐसा रोमांचकर वर्णन किया है कि पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, हृदय त्रस्त हो जाता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम नरकमें ही घूम रहे हैं। वास्तवमें इस पुस्तकके कुछ स्थल तो ऐसे हैं कि उनके सामने दान्ते और मधुसूदनका नरक भी फीका पड़ जाता है। पुस्तकके प्रकाशित होते ही अमेरिका-भरमें सनसनी फैल गई। सिनक्लेयरके विरुद्ध विरोधका तूफान उठ खड़ा हुआ। 'बीफ-ट्रस्ट'के सदस्य और बूचड़खानेके मालिक क्रोध और प्रतिहिंसाकी आगसे जल उठे। यदि उनका वश चलता तो वे सिनक्लेयरको कच्चा ही खा जाते। उनकी तरफ़से अखबारोंमें सिनक्लेयरके विरुद्ध मनमाना विष उगल डाला गया। लोगोंने उसे झूठा और बेईमान साबित करनेकी कोशिश की और उसकी पुस्तकको महज़ सनसनीदार और अतिशयोक्तिपूर्ण बताया गया। पुस्तकके विषयने राजनैतिक विवादका रूप धारण कर लिया। प्रेसीडेन्ट रूज़बेल्टके पास तारपर तार दौड़ने लगे। सिनक्लेयरको सब ओर विरोध-ही-विरोध दृष्टिगत हुआ। उसने अखबारोंको चुनौती दी की कि उसके उपन्यासमें बूचड़खानों तथा वहांके मज़दूरोंका जो वर्णन है, उसे असत्य अथवा अतिरंजित प्रमाणित करनेके लिए उनके निकट यदि कोई सबूत हो तो पेश करें। इसपर कई अखबारोंने तथा स्वयं अमेरिकाकी सरकारने जांच-कमेटियां बैठाने तथा बूचड़खानोंकी आभ्यन्तरिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अपने-अपने प्रतिनिधि भेजनेका स्वांग रचा। विजय अन्तमें अप्टन सिनक्लेयरकी हुई और वह सत्यकी विजय थी।

'जंगल'की ही कोटिके दो उपन्यास और हैं—'किंग कोल' (King Coal) और 'ऑयल' (Oil)। 'जंगल'की भांति ये दोनों साम्यवादी रचनाएँ हैं। 'किंग कोल' में कोलोरेडोके अन्तर्गत कोयलेकी खानोंका रहस्योद्घाटन है और 'ऑयल' में दक्षिणी कैलीफोर्नियाके मिट्टीके तेलके व्यापारकी अवस्थाका चित्र खींचा गया है। यूरोपकी विद्वन्मण्डलीने इन तीनों उपन्यासोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक योयान बोइयरने 'ऑयल'के सम्बन्धमें लिखा है—

"This novel is created by a great poet, a great artist and a great heart." अर्थात्—"यह उपन्यास एक महान् कवि, महान् कलाकार और महान् हृदयकी रचना है।" 'जंगल' और 'किंग कोल' के सम्बन्धमें भी यही कहा जा सकता है। तीनोंकी वर्णन-शैली सजीव और आकर्षक है। तीनों सत्य और अनुभूतिसे ओतप्रोत हैं। तीनोंका दृष्टिकोण विशाल और उद्देश्य महान् है, परन्तु इनमें 'जंगल' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वर्तमान युगकी व्यावसायिक दासताको दूर करनेके लिए इस उपन्यासने अमेरिकामें वही काम किया है, जो 'टाम काकाकी कुटिया' (Uncle Tom's Cabin) ने दास-व्यवसायके मूलोच्छेदनके लिए किया था।

अप्टन सिनक्लेयरकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी है। वह सब कुछ लिख सकता है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, प्रहसन—सभी कुछ। उसने एक नाटक 'हेल' (नरक) की चर्चा करते हुए श्रद्धेय श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थीने मुझसे कहा था—"ओफ़! ग़ज़बकी चीज़ है। कितनी ज़ोरदार! हिन्दीमें उसका अनुवाद हो ही नहीं सकता!"

अप्टन सिनक्लेयर अपने ढंगका एक ही समालोचक भी है। उसकी आलोचना बड़ी मार्मिक किन्तु सहानुभूति-पूर्ण होती है। वह स्वयं अपनेको भी बहुत निष्पक्ष और खरी दृष्टिसे देखता है। वास्तवमें उस जैसे व्यक्तिकी प्रतिभाको सीमित करना हमारी धृष्टता है।

सिनक्लेयर उपवास-चिकित्साका पक्षपाती है। उसने स्वयं इससे आरोग्य-लाभ किया है। अपने उपवास-चिकित्सा सम्बन्धी अनुभवोंको लेकर उसने एक पुस्तक भी लिखी है। हिन्दीमें शायद कहीं उसका उल्लेख हुआ है।

सिनक्लेयर बाल-विवाहका हिमायती है, परन्तु युवावस्थाके पहले सहवास और सन्तानोत्पत्तिको वह बुरा समझता है। वास्तवमें बाल विवाहसे उसका तात्पर्य 'Trial Marriage' से है; इसलिए ज़रूरत पड़नेपर वह तलाक़को भी अनुचित नहीं समझता है।

साम्यवादमें उसका पूरा विश्वास है। साम्यवादसे उसका मतलब यह है कि सम्पत्तिपर किसी व्यक्ति-विशेषका अधिकार न होकर समाजका अधिकार होना चाहिए। सिनक्लेयर स्वाधीन-चिन्ताका पक्षपाती है, और ज़रूरत पड़नेपर अपने विचारोंको अकसर बदल देता है।

हमें इस बातका खेद है कि हम अपने पाठकोंको सिनक्लेयरका चित्र भेंट नहीं कर सके। उसके किसी ग्रन्थमें उसका चित्र नहीं है। हमने चित्रके लिए उनको एक पत्र भी लिखा, परन्तु उत्तर नहीं मिला। सम्भव है, पत्र न पहुँचा हो।

इस महान् लेखकका पता है—

UPTON SINCLAIR
Station B.
Long Beach,
California

टामस ए० एडिसन

[लेखक :— डा० सुधीन्द्र बोस, एम० ए०, पी-एच० डी०]

अभी कुछ समय पूर्व अमेरिकाने टामस ए० एडिसन द्वारा आविष्कृत बिजलीके लेम्पकी अर्ध-शताब्दी मनाई थी। बिजलीकी रोशनीके लिए संसार सबसे ज्यादा एडिसनका ऋणी है। बिजलीके लैम्पकी अर्ध-शताब्दी केवल लैम्प ही की अर्ध-शताब्दी नहीं थी, बल्कि प्रकाशकी रजत-जयन्ती थी।

सन् १८७६ में अमेरिकाकी न्यू जरसी रियासतके मेनलो-पार्कमें एक नन्हींसी प्रयोगशालामें एडिसनने बिजलीके लेम्पका आविष्कार किया था। इस समय टामस एलवा एडिसनकी आयु ८२ वर्षकी है। इस वृद्धावस्थामें वह बहुत शान्तिपूर्वक अबसे पचास वर्ष पूर्वके उस दिनकी याद किया करता है, जिस दिन उसने बिजलीके तापसे प्रकाश देनेवाले लेम्पका आविष्कार किया था। एडिसन ही उसका विधाता था। इस बुड्ढे आविष्कारककी तनदुरुस्ती अब भी बड़ी अच्छी है। वह इस जयन्तीके उत्सवके महत्त्वको समझता है, और जो सम्मान उसे प्राप्त हुआ है, उसका आनन्द उठाता है।

अमेरिकाके समस्त समाचारपत्र एडिसनकी अत्यधिक प्रशंसासे गूँज रहे हैं। कोई कहता है—"एडिसन वह पुरुष है, जिसने संसारको प्रकाशपूर्ण कर दिया है।" कोई उसे 'देशका और संसारका महान् वृद्ध पुरुष' कहता है। कोई उसे 'प्रजातन्त्रका महान् वैज्ञानिक उपकारक' बतलाता है और कोई उसे 'अमेरिकाकी उत्तमताका उत्कृष्ट चिह्न' समझता है।

अबसे केवल दो पीढ़ी पूर्व संसार बिजलीके लेम्पका नाम भी नहीं जानता था। बिजलीके लेम्पको एडिसनने बनाया था, परन्तु यह तो एडिसनकी कृतिका एक भाग-मात्र है। उससे पहले इस सम्बन्धका कोई और उदाहरण भी मौजूद नहीं था, जो उसके पथ-प्रदर्शकका काम देता, मगर फिर भी एडिसनने अपने दिमागसे न केवल बिजलीका लैम्प ही निकाला, बल्कि बिजली उत्पन्न करने और उसको वितरण करनेकी पूरी प्रणाली भी सोच निकाली, इसीलिए आज समस्त संसार टामस ए० एडिसनकी अभ्यर्थनामें लगा हुआ है।

व्यक्तिगत रूपमें एडिसनका जो सम्मान किया गया है, उसमें अमेरिकन प्रजातन्त्रके राष्ट्रपति मि० हर्बर्ट हूवरकी प्रशंसा विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने व्याख्यानको आरम्भ करते हुए कहा—"आजकल संसारमें प्रकाशका परिमाण पहलेकी अपेक्षा हजार गुनासे अधिक बढ़ गया है। इस वृद्धिके उपलक्ष्यमें खुशी मानना सर्वथा उचित है, क्योंकि अन्धकार मानव-जातिके कार्य-क्षेत्रको संकुचित करता है।" उन्होंने यह भी कहा—'संगठित प्रयोगशालाके द्वारा आधुनिक ढंगसे आविष्कार करनेमें अग्रणी होनेका श्रेय भी एडिसन ही को है। विज्ञान और उसकी व्यावहारिक उपयोगिताकी खोजने हमारी उन्नतिको बहुत प्रेरणा दी है।"

प्रेसीडेन्ट हूवर स्वयं भी इंजीनियर हैं और उनमें संगठन करनेका गुण भी है, इसलिए उनपर एडिसनकी इस जयन्तीका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने हँसीके ढंगपर कुछ बातें कही थीं, जो उस अवसरके लिए बहुत उपयुक्त थीं। उदाहरणके लिए भला इससे अधिक कोई और क्या कह सकता है—

"जिस समय एडिसनने बिजलीके लेम्पका आविष्कार किया था, उस समय उन्होंने केवल यही विचार किया होगा कि थोड़े खर्चपर अधिक परिमाणमें साधारण रोशनी उत्पन्न की जाय। मेरे विचारमें तो उनकी सबसे बड़ी आकांक्षा यह थी कि एक ऐसी चीज़ निकाली जाय, जिससे मानव-जाति रोज़-रोज़ तेलके लैम्पोंको पोंछने, शमादानोंको साफ करने और लालटेनोंको इधर-से-उधर लादे-लादे घूमनेकी बलासे बच जायँ।

"बिजलीका लैम्प अगणित तरीकोंसे व्यवहार होता है।

इसकी बदौलत हम लोग कई वर्ष तक चश्मेके व्यवहारसे बचे रहते हैं। इसने पलंगपर लेटकर पढ़ना बहुत आरामदे बना दिया है। केवल एक बटनको दबाकर हम लोग चोरोंको स्तम्भित कर सकते हैं। पहले ज़मानेमें जो भूतप्रेत अँधेरे कोनोंमें तथा चारपाईके नीचे छिपे रहते थे, बिजलीकी बत्तीने उन्हें वहाँसे निकाल बाहर किया है। अनेकों दुष्कर्म जो रातके अंधकारमें हुआ करते हैं, उन्हें इसने बहुत दूर तक खदेड़ दिया है। बिजलीके लैम्पके सहारे डाक्टरगण हमारे शरीरके भीतर झाँक सकते हैं। शरीरमें दर्द या पीड़ा होनेसे यह गर्म पानीकी बोतलके स्थानमें इस्तेमाल किया जा सकता है। इसकी बदौलत हमारे शहर और कस्बे—जिनमें वे चाहे कितनी ही बुरे क्यों न हों—रातमें चमाचम दीखने लगते हैं।

"बिजलीके लैम्पोंने अपनी अनेकों उपयोगिताओंसे हमारे काम-काजी जीवनके घंटोंको बढ़ा दिया है; इसने हमारे डर घटाये हैं। बिजलीकी बत्तीने अन्धकारके स्थानमें चहल-पहल उत्पन्न कर दी है, हमारे परिश्रमको हल्का कर दिया है और हमें टेलीफोनकी किताबके टाइप पढ़ने योग्य बनाया है।"

इसके अतिरिक्त संसारके अनेक भागोंसे वैज्ञानिकों, राजनैतिक अधिकारियों, व्यापारी महारथियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और सब प्रकारके उपाधिधारियोंने एडिसनको प्रशंसासूचक अगणित सन्देश भेजे हैं। परन्तु जयन्तीके अवसरपर 'रिलेटिविटी'के सिद्धान्तके पिता प्रोफेसर अलबर्ट ईन्स्टीनने रेडियोके द्वारा जो सन्देश भेजा था, उसे सुनकर मैं रोमांचित हो उठा था। प्रोफेसर ईन्स्टीन बर्लिनके एक ब्राडकास्टिंग स्टूडियोसे तीन मिनट तक जर्मन भाषामें बोले थे। उनके जर्मन सन्देशका हिन्दीमें यह अनुवाद है—

"पिछले पचास वर्षोंमें संसारके शिल्पज्ञानके प्रतिभाशाली आचार्योंने—जिनमें आप सबसे अधिक सफल पुरुष हैं—मानव-जातिके सामने एक नई परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। अभी तक मानव-समाज अपनेको इस परिस्थितिके अनुकूल बनानेमें सफल नहीं हुआ है।



पहला बिजलीका लैम्प चालीस घंटे तक जलता रहा और एडिसन उसे बैठा देखता रहा।

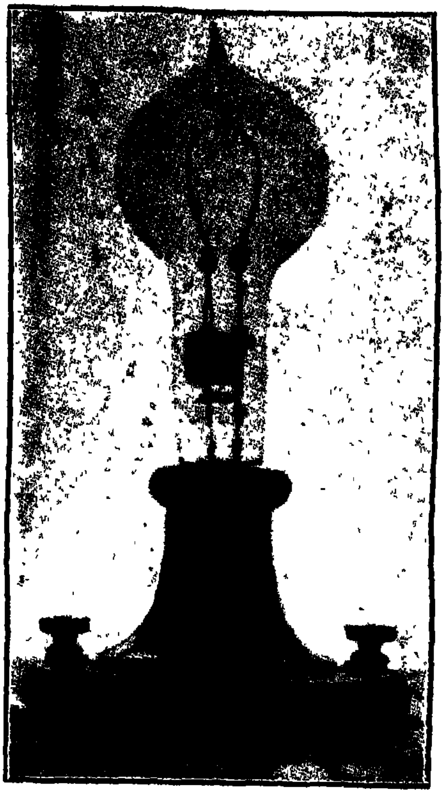
"आज मनुष्यको अपना जीवन क़ायम रखनेके लिए जिन पदार्थोंकी आवश्यकता है, उन्हें पानेके हेतु उसे उतना शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, जितना पहले करना पड़ता था। अब मनुष्यको मोटरका या गुलामका काम नहीं करना पड़ता।

"हमारे आगामी पौधके क्रियात्मक-प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही मनुष्य-जातिके नेता होंगे। उनका यह कर्तव्य होगा कि वे हमारे ज्ञान-विज्ञानकी उपयोगिताको युद्धके नाशक मार्गसे हटाकर उसे मानव-समाजकी सेवा, उसकी आर्थिक उन्नति और उसके उद्धारमें लगावें।"

इस महान् जयन्तीमें मिस्टर एडिसनने थोड़ा ही भाग लिया। उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकाश करनेके लिए एक संक्षेप-सी वक्तृता दी थी। मैंने उनकी वक्तृता रेडियोमें सुनी थी। उससे यह मालूम होता था कि वे जयन्तीके लम्बे प्रोग्रामके कारण कुछ थक-से गये हैं। हृदयावेग आधिक्यसे उनकी आवाज़ काँप रही थी। उन्होंने कहा—

"मुझसे बतलाया गया है कि आज मेरी आवाज़ पृथ्वीके चारों कोनोंमें पहुँचेगी। आप लोगोंने मुझपर जो कृपा प्रकट की है, उसके लिए धन्यवाद देने और अपनी कृतज्ञता

प्रकट करनेके लिए यह मेरे वास्ते अपूर्व अवसर है। मैं आप लोगोंको अपने हृदयके अन्तस्तलसे धन्यवाद देता हूँ।



एडिसन द्वारा आविष्कृत बिजलीका पहला लैम्प

"आजकी अविस्मरणीय रात्रिमें आप लोग जो मेरे प्रति सम्मान प्रदर्शित कर रहे हैं, यदि वह केवल मेरे लिए होता तो मैं बड़ी मुश्किलमें पड़ जाता, मगर मैं जानता हूं कि यह सम्मान केवल मेरे लिए नहीं है, बल्कि उस समस्त विचारशील और वैज्ञानिक समुदायके लिए है जिसने भूत कालमें विज्ञानकी उन्नति की है और जो अब भी उसी कार्यमें लगा हुआ है। इन लोगोंके बिना मेरा काम बिलकुल ही व्यर्थ होता।

"यदि मैंने लोगोंको और अधिक उद्योग करनेके लिए थोड़ा भी उत्साहित किया है, यदि हमारे कामसे मानव-जातिके ज्ञानके क्षेत्रमें थोड़ासा भी विस्तार हुआ है, यदि उससे मनुष्यके सुखमें किंचित मात्र भी वृद्धि हुई है, तो मुझे बहुत सन्तोष है।"

अबसे पचास वर्ष पूर्व २१ अक्टूबरके दिन हफ्तोंके अथक अविराम प्रयोगोंके बाद टामस एडिसनने बिजलीका पहला लैम्प बनाया था। उसने काँचके एक बल्बको निःशून्य करके उसके भीतर सीनेवाले सूतके 'कार्बनाइज्ड' (कोयलेमें परिणत किये हुए) तारोंको भरकर बन्द कर दिया। इन तारोंमें बिजलीकी धाराके प्रवेश करनेसे वे उत्तप्त होकर चमाचम प्रकाश करने लगे। उसका बनाया हुआ वह लैम्प चालीस घंटे तक तेज़ीसे चमकता रहा। इस प्रयोगमें जितने दिन लगे थे उनमें एडिसन एक खुरदरी बेंचपर सोता रहा। तकियेके स्थानमें वह एक छोटासा बक्स रख लिया करता था। कई वर्षोंके बाद एडिसनने बताया था—"हममें से कोई भी सोनेके लिए नहीं जा सका, हम लोग बैठकर उत्सुकता और बढ़ते हुए उल्लाससे चुपचाप देखते थे।"

अर्ध-शताब्दी पहले बिजलीके लैम्पकी सम्भावनामें किसीको विश्वास न था। यूरोप और अमेरिकाके अगणित और प्रामाणिक वैज्ञानिकोंने—जिनमें अंग्रेज़ विज्ञानवेत्ता टिंडलके सदृश विद्वान भी शामिल हैं—बिजलीकी रोशनीको मृग-तृष्णा कहकर घोषित कर दिया था। बिजलीकी बत्तीका आविष्कार करके एडिसन सचमुच 'जादूगर' बनगया, और तबसे वह बराबर जादूगर ही बना हुआ है।

जैसा कि एक लेखकने बतलाया है, एडिसनने केवल बिजलीका लैम्प ही नहीं निकाला, बिजलीके लैम्पमें जो तार होते हैं, उन्हें अधिक मज़बूत और उपयोगी बनानेके लिए उसने ६ हज़ार भिन्न-भिन्न पदार्थोंपर प्रयोग किये। यही नहीं, बल्कि उसने एक नये ढंगका शक्तिशाली डाइनमो निकाला, बिजलीके एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाने तथा उसके वितरणकी प्रणाली बनाई, उसकी नापके लिए मीटर और लैम्पोंके लगानेके लिए Sockets तक बनाये।

एडिसनका पहला लैम्प सचमुचमें अलादीनका चिराग सिद्ध हुआ। कितने आनन्दकी बात है कि एडिसनने अपने

जीवनमें ही अपनी आँखोंसे यह देख लिया कि बिजलीने शहरों, ग्रामों, खेतों, मकानों और उद्योग धन्धोंमें कितना परिवर्तन कर दिया है। उसके कार्बनके तारोंसे वास्तवमें विद्युत युग निर्माण हो गया है।

दुनियांमें अनेकों महान आविष्कारक और खोज करनेवाले हो गये हैं, मगर संसारने एडिसनके समान व्यावहारिक प्रतिभा-सम्पन्न दूसरा व्यक्ति नहीं देखा। एडिसनका असली महत्त्व इस बातमें है कि वह वैज्ञानिक आविष्कारोंको मानव-समाजकी आवश्यकताके अनुकूल बना देता है।

इस प्रसिद्ध आविष्कारकर्ताने हमारे घरोंके आराम और आनन्द बढ़ाने तथा संसारमें बिजलीकी क्षमता सिद्ध करनेमें शायद सबसे अधिक प्रयत्न किया है।

अमेरिकाके 'हू'ज़हू' (परिचय-पुस्तक) में एडिसनकी शिक्षाके सम्बन्धमें केवल इतना ही लिखा है---'उसने अपनी मातासे कुछ शिक्षा पाई थी।' उसके बाद आनरेरी डिग्रियोंकी लम्बी लिस्ट दी हुई है। एडिसन न तो किसी यूनिवर्सिटीका ग्रेजुएट ही है, और न उसने हाई स्कूल तककी शिक्षा ही पाई है।

हमारे आधुनिक जीवनपर प्रत्यक्षरूप प्रभाव डालनेवाले एडिसनके आविष्कारोंमें बिजलीकी लैम्प एक है। उसने एक हज़ारसे अधिक आविष्कारोंका पेटेन्ट कराया है। एडिसनकी प्रधान कृतियोंमें टाइप-राइटरका काम देने लायक सबसे पहला नमूना, बिजलीका लैम्प, बिजलीकी रेल, सिनेमाका कैमरा, माइक्रोफोन (जिससे सूक्ष्म आवाज़ सुनाई देती है), मेगाफोन (आवाज़ बढ़ानेवाला यन्त्र), स्टोरेज बैटरी, टाकिंग सिनेमा और इलेक्ट्रिक बल्ब, जो बेतारके तारकी एक आवश्यक चीज़ है, हैं। यद्यपि एडिसनने अपने जीवनमें सर्वसाधारणकी भलाईके लिए अनेक उपयोगी वस्तुएँ निकाली हैं, परन्तु बिजलीकी बत्तीके लिए लोग उसे सबसे अधिक स्मरण करेंगे।

हमारे आधुनिक जीवन-निर्वाहके ढंगमें किसी भी आदमीने इतना परिवर्तन नहीं किया---किन्हीं सौ आदमियोंने भी इतना परिवर्तन नहीं किया। निःसन्देह एडिसनके पहले और भी दो अमेरिकनोंने विज्ञानके मार्गको प्रकाशित किया था। उससे

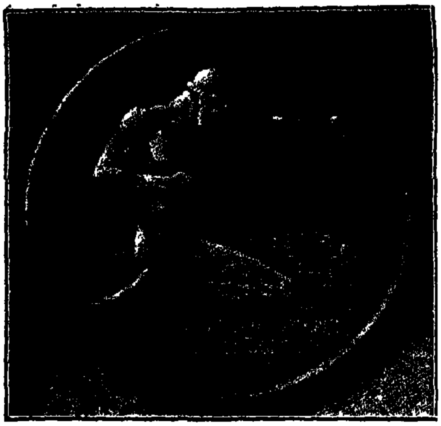


एडिसनका बनाया हुआ प्रथम ग्रामोफोन
(यह पहले लंदनके साउथ किंगस्टनके साइन्स म्यूजियममें रखा था, मगर बादमें ब्रिटिश सरकारने इसे एडिसनको सौंप दिया)

पहले फ्रेंकलिनने अपनी पतंग उड़ाई थी और मोर्सने बिजलीके तारोंसे सन्देश पहुंचाया था।

इन आरम्भिक बातोंके पूरी हो जानेपर एडिसनके लिए रंगमंच ठीक हो गया, और उसने भी यह सिद्ध कर दिया कि वह उस पार्टके उपयुक्त भी है।

एडिसनकी जीवन-कथा एक उत्कृष्ट कहानीकी भाँति है। वह सन् १८४७ में पैदा हुआ था। बचपनमें ही वह एक अलौकिक बालक प्रतीत होता था। छुटपनसे ही उसे खोज करनेकी आदत थी। वह सदा नये-नये प्रयोग किया करता था। एक बार उसने देखा कि एक बतख अण्डोंपर बैठकर उन्हें से रही है। वह उसे रोज़ बड़ी सावधानीसे देखता था और उसकी उन्नतिको हृदयंगम करता जाता था। अन्तमें उसने देखा कि उन अण्डोंसे छोटी-छोटी बतखें निकल आईं। वह चुपकेसे खलियानमें निकल गया और वहाँ उसने कई अण्डे एकत्रित किये। जब कुछ समय तक एडिसन नहीं आया और घरवालोंने उसकी खोज की, तो देखा कि वह चुपचाप अण्डोंपर बैठा हुआ है। नतीजा केवल इतना ही हुआ कि उसके कपड़े खराब हो गये। तब उसे यह ज्ञात हुआ कि केवल परिन्दे ही अण्डेके तरीक़ेसे अपनी सन्तानको उत्पन्न कर सकते हैं।




अमेरिकन कांग्रेसने एडिसनको राष्ट्रकी ओरसे एक पदक अर्पण किया है, उसकी दोनों दिशायें।

यह बात बड़ी आश्चर्यप्रद मालूम होगी कि एडिसनने स्कूलमें केवल तीन महीने ही शिक्षा पाई थी, और उसमें भी वह दर्जेमें सबसे फिसड्डी रहा करता था।

शिक्षक उसे 'ऊसर' कहा करते थे, और वह कभी कुछ सीख सकेगा, इस बातकी उन्होंने उम्मीद छोड़ दी थी।

शिक्षकोंकी इन बातोंसे उसकी माताके स्वाभिमानको आघात पहुँचा। वह स्वयं अध्यापिका थी, अतः उसने एडिसनको स्कूलसे हटाकर उसे स्वयं अपने ढंगसे शिक्षा देना तथा उसकी पाठ्य-पुस्तकोंके निर्वाचनमें सहायता देना निश्चित किया। अब एडिसनको स्वयं अपना मार्ग बनाना पड़ा। इसके बादसे उसने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया, वह स्वयं पुस्तकें पढ़ पढ़कर प्राप्त किया। वह पब्लिक लाइब्रेरीको हमेशा जाया करता था। अपने जीवनका जो भी क्षण वह बचा सकता था, उसे वह लाइब्रेरीमें व्यतीत करता था। वहाँ वह किसी भी विभागमें जाकर एक सिरेसे एकके बाद दूसरी आलमारीकी पुस्तकें पढ़ा करता था, चाहे वे पुस्तकें किसी भी विषयकी हों। इन्हीं पुस्तकोंकी छान-बीन करके उसने अपने प्रयोगोंके लिए विचार एकत्रित किये थे।

अमेरिकन रेलोंका यह दस्तूर है कि यदि कोई आदमी रेलगाड़ीपर कुछ चीज़ बेचना चाहे, तो रेलवेसे उसे लैसन्स लेना होता है। बारह वर्षकी उम्रमें एडिसनने ट्रेनपर समाचारपत्र बेचनेका लैसन्स लिया; और वह अखबार बेचने लगा। उस समय वह ग़रीब था और उसे अपने घरकी छोटी प्रयोगशालामें कुछ रासायनिक चीज़ोंके खरीदनेके लिए पैसेकी ज़रूरत थी। इस कामसे उसे रासायनिक चीज़ोंके लिए पैसा प्राप्त होने लगा। थोड़े ही दिन बाद वह अपनी प्रयोगशालाको रेलके असबाबवाले डब्बेमें उठा ले गया। जितनी देरमें ट्रेन एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशनको जाती थी, उतनी देर वह चलती रेलपर प्रयोग किया करता था।

जिस गाड़ीपर वह 'अखबारवाला' बनकर जाता था, उसपर उसने केवल अपनी प्रयोगशाला ही स्थापित नहीं की थी, बल्कि एक छोटासा हैंड प्रेस रखकर वह एक अखबार भी निकालता था। शायद संसारमें वही एक ऐसा अखबार था, जो चलती रेलपर लिखा और प्रकाशित किया जाता था! वह उसे 'वीकली हैराल्ड'के नामसे पुकारता था। उसने उसका दाम छै पैसे रखा था, और उसका दावा था कि उसका प्रकाशन चार सौ प्रतियाँ प्रति अंक था। एडिसन बड़ा कामकाजी युवक था।

एक दिन उसके कुछ रासायनिक पदार्थ गाड़ीके फर्शपर गिर पड़े, जिससे गाड़ीमें आग लग गई। इसपर बालक एडिसनपर—जो भविष्यमें बिजलीकी बत्ती और सैकड़ों अन्य वस्तुओंका आविष्कार करनेवाला था—गाड़ीके गार्डका क्रोध

समझ पड़ा। पुरुसेल गार्डने उसकी प्रयोगशाला और प्रेसको मय उनके मालिकके गाड़ीके बाहर फेंक दिया। उसने एडिसनकी कनपट्टीपर ऐसे ज़ोरका तमाचा मारा कि वह सदाके लिए ऊँचा सुनने लगा।

उस प्रसिद्ध तमाचेने एडिसनको जन्म-भरके लिए करीब-करीब बहरा बना दिया। अनेकों वर्ष बाद एक अन्य बहरे सज्जनने एडिसनसे कहा कि वह बिजलीका कोई ऐसा यन्त्र क्यों नहीं निकालता जिससे बहरोंको सुनाई पड़ने लगे। इसपर एडिसनने जवाब दिया—"फ़ुरसत नहीं—दूसरोंकी बातें सुननेमें न मालूम कितना समय बरबाद हो जाता है। अगर मेरे पास वैसा कोई यन्त्र हो, तो मेरी स्त्री हर समय मुझसे बात ही किया करे। मुझे ऐसे यन्त्रकी ज़रूरत नहीं है।"

जब एडिसनका अख़बार बेचनेका काम छिन गया, तब उसे किसी और कामकी तलाश हुई। उसने एक स्टेशन मास्टरके बच्चेको एक ट्रेनसे कुचलनेसे बचाया था, उसके इनाम-स्वरूप उसे ट्रेन डिस्पैचरका काम मिला। उसने बहुत शीघ्र ही तारका काम सीख लिया और उसमें दक्ष हो गया। इसी कामके सम्बन्धमें उसे बिजलीके प्रयोग करने पड़े थे, जिन्होंने उसके भावी आविष्कारोंका बीजारोपण किया, इसी समय उसने अपने आप काम करनेवाले तारका आविष्कार किया था।

बिजलीके लैम्पका जादूगर धीरे-धीरे लम्बे मार्गको पार करके लड़कपनकी ग़रीबीसे बढ़कर प्रौढ़ावस्थामें प्रतिभाशाली और महान् हो गया। उसका जीवन अविश्रान्त और कठिन परिश्रमसे पूर्ण है, और उसमें उसने अनेक प्रसिद्ध सफलताएँ भी प्राप्त की हैं। उसने अपने आविष्कारोंसे उन्नतिके मार्गको उज्ज्वल बना दिया है।

कई वर्ष हुए एडिसनने अपने एक मित्रसे कहा था—"मुझे इतना अधिक कार्य करना है और जीवन इतना छोटा है, इसलिए मैं हर बातमें जल्दबाज़ी करता हूँ।" एडिसनने अपनी जल्दबाज़ीकी आदत बराबर क़ायम रखी। ८२ वर्षकी वृद्धावस्थामें भी वह अब तक सोलह, अट्ठारह घन्टे प्रति दिन कार्य करता है। काम करनेमें वह पूरा देत्य है। यह वृद्ध आविष्कारक अब तक अपनेको भूत कालका व्यक्ति नहीं समझता। उसकी दृष्टि नवयुवकोंकी भाँति सदा आगेकी ओर रहती है। वह मानव-जातिके आरामके लिए जो कुछ कर चुका है, उसपर ध्यान नहीं देता। उसका ध्यान सदा इस बातपर रहता है कि भविष्यमें क्या-क्या करना है। टामस एल्वा एडिसन निःसन्देह आज आविष्कार-संसारका सम्राट् है, और युगयुगान्तर तक उसका नाम अमर रहेगा।

अमेरिकन लोग एडिसनका जितना सम्मान करते हैं, उतना वे बहुत कम वैज्ञानिकोंका करते होंगे। एडिसन इस बातमें बहुत भाग्यशाली है कि उसके नामको चिरस्मरणीय बनानेके लिए उसके पास हेनरी फोर्डके समान मित्र मौजूद है। हेनरी फोर्ड और एडिसनके अन्य प्रशंसकोंको धन्यवाद है कि उन्होंने एडिसनकी ज़िन्दगी ही में उसका नाम चिरस्मरणीय करनेका उपाय कर दिया है। एडिसनको अपनी क़बपर फूल चढ़वाने और अपने सम्मानमें बिजलीकी बत्तियाँ जलवानेके लिए मृत्यु तक नहीं ठहरना पड़ा।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध मोटर बनानेवाले और अरबपति धनकुबेर हेनरी फोर्डने मिशीगन रियासतके डियरबार्न स्थानमें फोर्ड-म्यूज़ियम नामक एक अजायबघर खोला है, जिसमें वर्तमान युगका पूर्वकालिक दृश्य दिखाया गया है। इस अजायबघरमें अमेरिकाके वे सब यन्त्र और मेहनतके औज़ार रखे हैं, जो गोरोंने अमेरिकामें क़दम रखनेके दिनसे लेकर अब तक इस्तेमाल किये हैं। यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि इस अजायबघरका एक बड़ा अंश केवल टामस एल्वा एडिसन और उसकी कृतियोंसे सम्बन्ध रखता है।

एडिसनकी पुरानी प्रयोगशाला जिसमें पहले बिजलीके लैम्पका और उससे दो वर्ष पूर्व फोनोग्राफका आविष्कार हुआ था, मेनलो-पार्कके गाँवसे उठाकर डियरबार्नमें रख दी गई है। मेनलो-पार्कमें एडिसनकी प्रयोगशाला जिस इमारतमें थी,

डियरबार्नमें वही इमारत लाकर रखी गई है। उसमें एडिसनका कारखाना ठीक उसी तरह सजाया गया है, जैसा वह बिजलीके लैम्पके जन्म कालमें था। इस महान् आविष्कारककी काम करनेकी मेजें, अलमारियाँ, खराद, मशीनें और अन्य औज़ार बिलकुल उसी तरह रखे गये हैं, जैसे वे अबसे पचास वर्ष पहले थे। यहाँ तक कि इस बिल्डिंग और आसपासकी भूमिमें मिट्टी भी वही है, जो मेनलो-पार्कमें थी। मिस्टर फोर्डने मेनलो-पार्कसे सात गाड़ियाँ भरकर मिट्टी भी मँगवाकर डियरबार्नमें बिछवाई है, जिससे पैरके नीचेकी धूल भी असली हो। यह फोर्ड ही के समान प्रतिभाशाली और धनसम्पन्न व्यक्तिका काम था कि उसने एडिसनके स्मारकके लिए यहाँ तक किया। उसने एडिसनकी आरम्भिक चेष्टाओंसे लेकर अब तककी जितनी स्मारक चीजें प्राप्त हो सकती थीं, उन्हें लेकर डियरबार्नमें रख दिया है।

एडिसनके बिजलीके लैम्पकी रजत जयन्तीके साथ-साथ एडिसन-स्कूल-आफ-टेकनालोजी (औद्योगिक स्कूल) का भी उद्घाटन संस्कार हुआ। इस स्कूलको फोर्डने अपने मित्रके स्मरणार्थ स्थापित किया है। स्कूलका उद्देश शिक्षा और वैज्ञानिक खोजोंका प्रसार करना है।

एडिसनकी जयन्तीका जो उत्सव डियरबार्न-पार्कमें मनाया गया था, उसमें अमेरिका और यूरोपके अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्ति उपस्थित थे। प्रेसीडेन्ट हूवर और उनकी धर्मपत्नी भी सुदूर वाशिंगटनसे लम्बी यात्रा करके एडिसनका सम्मान करनेके लिए डियरबार्नमें उपस्थित हुए थे। प्रेसीडेन्ट हूवरने प्रजातन्त्रके प्रेसीडेन्ट होनेके बाद यह पहली लम्बी यात्रा की थी। उन्होंने एडिसनके प्रति व्यक्तिगत सम्मान प्रदर्शित करनेके साथ ही इस बातपर ज़ोर दिया कि अमेरिकाको अपनी प्रयोगशालाओं—सिद्धान्तिक और क्रियाशील विज्ञान सम्बन्धी दोनों प्रकारकी प्रयोगशालाओंको—और अधिक उदारता पूर्वक चलाना चाहिए। उन्होंने कहा—"हमारे वैज्ञानिक और हमारे आविष्कारक देशकी अमूल्य निधि है। संसारकी कोई भी धनराशि उनके लिए थोड़ी है।"

मैं सोचता हूँ कि भारतवर्षके कितने वायसरायोंने केवल श्री जगदीशचन्द्र बोसके सम्मानार्थ दिल्लीसे कलकत्तेकी बोस-इन्स्टीट्यूटकी यात्रा की है और उन लोगोंने इस महान् विज्ञानाचार्यको उसके महान् कार्यमें कितनी सहायता दी है?





प्रथम प्रवासी-परिषद्

प्राचीन कालका भारतीय प्रवास सांस्कृतिक कारणोंसे प्रेरित था और वर्तमान कालका आर्थिक कारणोंसे। पहले हमारे पूर्वजोंने भारतीय सभ्यता और संस्कृतिका प्रचार करनेके लिए विदेशोंकी यात्रा की थी, और इस जमानेमें हम कुलीगीरी करनेके लिए टापुओंको गये अथवा भेजे गये। सन् १८३४ में पहले-पहल भारतीय शर्त-बन्दीकी गुलामीकी प्रथामें उपनिवेशोंको भेजे गये थे। चार वर्ष बाद इसे पूरे सौ वर्ष हो जायँगे। इन सौ वर्षोंके भारतीय प्रवासका इतिहास हमारी मातृभूमिकी दासता और उसके अपमानका इतिहास है, पर कभी-कभी बुराइयोंसे कोई अच्छी बात भी निकल आती है। शर्त-बन्दीकी कुली-प्रथासे जहाँ अनेक हानियाँ हुईं, उनके साथ-साथ एक लाभ भी हुआ, वह यह कि लाखों ही भारतीय संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें जा बसे, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने विशाल भारतकी नींव डाली। मातृभूमि समय-समयपर इन प्रवासी सन्तानोंके लिए चिन्तित रही है, और उसने उनकी सहायताके लिए बहुत-कुछ उद्योग भी किया है, पर सुसंगठितरूपसे उनके लिए कोई कार्य नहीं हुआ। हमारे नेता स्वदेशके कार्योंमें इतने अधिक व्यस्त रहे हैं कि उन्हें प्रवासी भारतीयोंकी चिन्ता करनेके लिए विशेष अवकाश ही नहीं मिला, पर जिस तरह माता अपने सबसे छोटे बच्चेको और भी अधिक प्रेम करती है, उसी तरह भारत माताको इस नवीन भारतीय समाजकी, जिसका निर्माण उपनिवेशोंमें हो रहा है, और भी अधिक चिन्ता करनी चाहिए।

आजसे पाँच-छह वर्ष पहले इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर मैंने प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंमें रुचि रखनेवाले कितने ही आदमियोंसे पत्र-व्यवहार किया था। डा० ऐस० के० दत्त (जो फिजी, आस्ट्रेलिया आदिकी यात्रा कर आये हैं), मि० के० टी० पाल (सेक्रेटरी वाइ० एम० सी० ए०), पं० हृदयनाथ कुँजरू, श्री रामदेव चोखानी आदि कई महानुभावोंसे इस विषयमें मैंने लिखा-पढ़ी की थी। सभी सज्जनोंने प्रवासी-परिषद्की आयोजनाको पसन्द किया था, पर संगठन-शक्तिके अभावके कारण मैं इस विषयमें कुछ अधिक न कर सका और यह विचार जहाँका तहाँ पड़ा रहा। प्रवासी भारतीयोंको गुरुकुल (वृन्दावन) की रजत-जयन्तीके संयोजकोंका कृतज्ञ होना चाहिए कि जिन्होंने प्रवासी-परिषद् सम्बन्धी हमारे स्वप्नको कार्यरूपमें परिणत कर दिखाया।

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी इस परिषद्के प्रधान निर्वाचित हुए थे। भवानीदयालजीमें सबसे बड़ा गुण यही है कि वे वक्तपर अपना काम तय्यार करके मुस्तैद रहते हैं। उन्होंने अपना हिन्दी-भाषण लिखकर उसके अंग्रेज़ी अनुवादके साथ मेरे पास भेज दिया, और फिर स्वयं सत्याग्रह-संग्रामकी तय्यारीमें जुट गये। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि सन् १९१३ के दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रह-संग्राममें भी श्रीयुत भवानीदयालजीने काफ़ी भाग लिया था और अपनी स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती जगरानी देवी तथा छोटे बच्चेके साथ जेल भी गये थे। भला, इस अवसरपर वे कैसे चुप रह सकते थे! शाहाबाद (आरा) की डिस्ट्रिक्ट-कांग्रेस-कमेटीके प्रधानकी हैसियतसे उन्होंने अपने ज़िलेमें दौरा करना प्रारम्भ किया। श्री भवानीदयालजी अच्छे लेखक होनेके साथ-ही-साथ प्रभावशाली वक्ता भी हैं, इसलिए ज़िलेमें उनके व्याख्यानोंका ज़बरदस्त असर पड़ा। बिहार-सरकार इस पुराने दक्षिण-अफ्रिकन सत्याग्रहीकी कार्रवाइयोंसे घबड़ा गई और उसने भवानीदयालजीको दो वर्षकी सादी क़ैद तथा तीन सौ रुपये जुर्मानेका दण्ड देकर जेलमें ठेल दिया। भवानीदयालजीने मुझे तार द्वारा आज्ञा दी कि प्रवासी-परिषद्का कार्य बन्द न होना चाहिए, जैसे बने उसे पूरा करना। तदनुसार गत १८ अप्रेलको वृन्दावनमें प्रवासी-परिषद्की रस्म अदा कर दी गई।

रजत-जयन्तीके कारण श्रोताओंकी संख्या तो काफ़ी थी, पर उनमें कितने महानुभावोंको प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंके प्रति रुचि थी, यह बतलाना कठिन है। प्रवासी परिषद्की कार्रवाई दो-ढाई घंटेमें समाप्त हो गई। उपस्थित जनताने जितनी शान्ति-पूर्वक वक्ताओंके भाषणोंको सुना, उससे प्रतीत होता था कि वे प्रवासी भारतीयोंके विषयमें कुछ जाननेके लिए उत्सुक अवश्य हैं। स्वामी भवानीदयालजीका भाषण 'विशाल-भारत' के १४ पृष्ठोंका था। मैंने उसके आवश्यक अंश पढ़ सुनाये। तारीख़ों तथा अंकोंको मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया था, क्योंकि उनसे जनताकी तबीयतके ऊब जानेकी आशंका थी। स्वामीजीका भाषण 'विशाल-भारत' के पिछले अंकमें प्रकाशित हो चुका है।

इस अवसरपर अनेक सज्जनोंके सन्देश तार अथवा चिट्ठियों द्वारा आये थे, जिनमें कुछके नाम यहाँ दिये जाते हैं :—

राजा महेन्द्र प्रताप (काबुल, अफ़ग़ानिस्तान), मि॰ पोलक (सेक्रेटरी, इण्डियन् ओवरसीज़ ऐसोसियेशन, लन्दन), मि॰ डी॰ जी॰ सत्यदेव (सेक्रेटरी, आर्य-प्रतिनिधि-सभा, नेटाल), मि॰ दलजीतलाल (सेक्रेटरी, आर्य-प्रतिनिधि-सभा, मारीशस), कुमारी धर्मदेवी (सेक्रेटरी, स्त्री-आर्यसमाज, पीटर मेरिट्सबर्ग), सेक्रेटरी आर्यसमाज डरबन, सेक्रेटरी रामायण-सभा न्यूकैसिल (नेटाल), सेक्रेटरी युवक-मण्डल सी-काउ-लेक, सेक्रेटरी आर्य-युवक-समाज डरबन, मि॰ विष्णुदेव और आर॰ परमेश्वर फिजी-द्वीप, तथा मि॰ सी॰ रामटहल, मि॰ ग़रीब खुश्याल और मि॰ एस॰ एल॰ सिंह दक्षिण-अफ्रिका।

इनमें राजा महेन्द्र प्रतापजीका सन्देश ज्यों का त्यों यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"मान्यवर मित्र सरस्वतीयुक्त श्रीरामजी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन, प्रेम अर्पण! आपने अथवा आपके हमारे किसी कृपालु मित्रने यहाँ मेरे पास प्रथम प्रवासी-परिषद्का सन्देश भेजा है। गुरुकुलकी रजत-जयन्ती वा परिषद्का समाचार सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। मेरी ओरसे बधाई स्वीकृत करें। उस छपे विज्ञापन या निमन्त्रणकी आज्ञानुसार मैं यहाँ अपनी कुछ सम्मति भेंट करता हूँ। मेरा विचार है कि मनुष्य-समूहोंका लोक-परलोक जाना किन्हीं प्रकृतिके नियमानुसार होता है। हमारे भाइयोंने वनस्पति-विद्याके सम्बन्धमें पढ़ा ही होगा कि किस प्रकार अनेक कीट वा मक्खी इधर-उधर फिरतीं तथा एक फूलसे दूसरे फूलों तक फूलका रस ले जाती हुईं, वृक्ष वा बूटोंकी वृद्धिका कारण बनती हैं। मेरा विचार है कि ठीक इसी प्रकार मनुष्य-समूह रोटीकी खोजमें घूमते, अनेक नवीन जातियोंकी स्थापना करते, और मनुष्य-समाजको हरा-भरा रखते हैं। इस क्रियामें जो

[illegible] होती है अथवा किन्हीं व्यक्तियोंको कष्ट पहुँचता है, वह केवल मूर्खताका फल है। पुराने अथवा समय विशेषके अँधेरेमें मनुष्य आवश्यक विवाहके पीछे भी रक्त बहाता दिखाई पड़ता है। परन्तु अब जब हम जगतव्यापक नियमोंको कुछ अधिक अध्ययन कर सकते हैं, आवश्यक समूहोंके भ्रमवश उसके काँटे निकाल केवल मनुष्य-जातिका उद्धार ही करना चाहिए। मेरी आशा है कि हमारे भारतीय भ्रातृगण, जो भी देश-विदेश गये हुए हैं अथवा आगे जावेंगे, वह अन्य जातियोंसे प्रेमपूर्वक मिलकर नवीन या और भी नवीन समाजकी रचना करेंगे। हमको कदापि किसी विचार-विशेषको दूसरोंके सर थोपना अपना जीवन-कर्तव्य नहीं समझना चाहिए। जीवनकी धारा बह रही है जैसे स्त्री-पुरुष, नर-मादाके जोड़े मिलते सन्तान उत्पन्न करते चले जाते हैं, इसी प्रकार विचार-विचार एकत्रित होते ही नवीन विचार प्रकट होते रहते हैं। जीवनका उद्देश्य यह नहीं है कि जीवनकी धाराको ही समाप्त कर दें। जीवनका उद्देश्य यह है कि हम जीवनसे आनन्द लूटते जीवनको और भी आनन्दमय बनावें। यह वह आनन्द नहीं जो झूठी रीतियोंसे क्षणमात्रका तो हर्ष और फिर दुःखका सामना। सच्चा आनन्द वही है जिसमें हमको और हमारे पड़ोसियोंको स्थायी सुख प्राप्त हो। मैं विश्वास रखता हूँ कि हमारे हिन्दुस्तानी भाई—देश-विदेश जानेवाले—अफ्रिका या अन्य द्वीप निवासियोंके प्रति अपने स्वाभाविक कर्तव्यको समझेंगे और उन जन-समूहोंमें अधिक या और भी अधिक सच्चे आनन्दकी नींव डालेंगे। वह उनके साथ विवाहका नाता स्थापित करने—नवीन बिरादरी रचने—का उद्योग करेंगे जिससे कि इन समस्त दक्षिणी उपनिवेशोंमें शीघ्र ही उन्नति होवे, सभी वहां हिल-मिलकर सुख-पूर्वक रह सकें और विद्या प्राप्त करते हुए किसी बातमें, किसी भी जन-समूहसे पीछे न रहें। पीछे रह जाना स्वयं पाप है। पीछे रह जाना मानो गढ़ेमें गिरना है और गढ़ेमें सदा मोरीका पानी जमा होता है! हमारी हार्दिक इच्छा होनी चाहिए कि हमारी मनुष्य-जातिका प्रत्येक भाग ऊँचेसे ऊँची उन्नति करता हुआ सबके साथ सुख-पूर्वक आरोग्य रहे।

परिषद्‌में कई प्रस्ताव पास हुए। वे निम्न-लिखित हैं :—

(१) यह प्रवासी-परिषद् अपने निर्वाचित सभापति स्वामी भवानीदयालजी संन्यासीको स्वाधीनता संग्राममें भाग लेने और उसके कारण सरकारके अतिथि बननेपर बधाई देती है।

(२) क—यह परिषद् केनिया तथा फिजी प्रवासी भारतीयोंके सम्मिलित मताधिकार-सम्बन्धी आन्दोलनका समर्थन करती है।

ख—यह परिषद् फिजीके उन तीनों निर्वाचित भारतीय सदस्योंको हार्दिक बधाई देती है, जिन्होंने सम्मिलित मताधिकारके प्रश्नपर कौन्सिलका परित्याग कर दिया।

ग—यह परिषद् श्री सेन्ट निहालसिंहका, जो सीलोन-प्रवासी भारतीयोंके अधिकारोंके लिए आन्दोलन कर रहे हैं, हार्दिक अभिनन्दन करती है।

(३) यह परिषद उपनिवेशोंमें भारतीय संस्कृतिके प्रचारको आवश्यक समझती है, और भारतीय जनतासे यह अनुरोध करती है कि वह इसके लिए उद्योग करे।

(४) यह परिषद् भारतकी शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंसे प्रार्थना करती है कि वे औपनिवेशिक विद्यार्थियोंको अपने अपने यहाँ विशेष सुविधाएँ प्रदान करें।

(५) यह परिषद् भारतको लौटनेकी इच्छा रखनेवाले प्रवासी भाइयोंको सावधान करती है कि उन्हें यहाँ आकर अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा, और साथ ही उन्हें बतला देना चाहती है कि देशकी वर्तमान परिस्थितिमें उनका स्थायीरूपसे बसनेके लिए यहाँ आना खतरेसे खाली नहीं है।

(६) परिषद् जहाजी कम्पनियोंके उस निर्दयता-पूर्ण व्यवहारकी घोर निन्दा करती, है जो डेक पसैंजरोंके साथ

किया जाता है, और साथ ही इस विषयमें भारत-सरकारकी उपेक्षा-नीतिको भी निन्दनीय समझती है।

(७) यह परिषद् भारतमें लौटे हुए प्रवासी भाइयों, प्रवासी विद्यार्थियों तथा इस विषयमें रुचि रखनेवाले सज्जनोंसे अनुरोध करती है कि वे ऐसे उपाय निकालें, जिससे आपसमें सहानुभूतिका दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो सके।

इनमें प्रथम प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किया गया था, द्वितीय श्रीकृष्ण शर्माजी द्वारा, जो फिजीमें तीन वर्ष तक आर्यसमाजका प्रचार कर आये हैं, और तृतीय प्रस्तावपर श्री स्वामी शंकरानन्दजी और स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजीके भाषण हुए थे। चतुर्थ प्रस्तावको श्रीयुत बी० डी० लक्ष्मण (विद्यार्थी डी० ए० वी० कालेज, देहरादून) ने रखा था। यह फिजीसे भारतमें विद्याध्ययन करनेके लिये आये हुए हैं। इस प्रस्तावका समर्थन तथा अनुमोदन सार्वदेशिक सभाके प्रधान नारायण स्वामीजीने तथा गुरुकुल-वृन्दावनके मुख्याधिष्ठाता श्रीरामजीने किया था। पाँचवां, छठवां और सातवां प्रस्ताव सभापति द्वारा रखे गये थे।

प्रस्तावोंके पास हो जानेके बाद सभापतिने अपने अन्तिम भाषणमें उपनिवेशोंमें आर्यसमाजके शिक्षा-सम्बन्धी कार्यकी प्रशंसाकी और कहा—"मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि आर्यसमाजके-प्रचारकोंमें उस धुन तथा लगनका अभाव है, जो प्राचीन बौद्ध-प्रचारकोंमें पाई जाती थी और आजकल अनेक क्रिश्चियन मिशनरियोंमें पाई जाती है। क्या आप आर्यसमाजमें एक भी ऐसे प्रचारकका नाम बतला सकते हैं, जो 'आस्ट्रेलेशियन मैथोडिस्ट मिशन'के सेक्रेटरी रेवरेण्ड जे० डब्ल्यू० बर्टनकी तरह काम करता हो? वे एक वर्ष फिजी जाते हैं, दूसरे वर्ष पापुआ द्वीप, तीसरे वर्ष उत्तरी आस्ट्रेलिया, चौथे वर्ष इंग्लैण्ड और पाँचवे वर्ष भारतकी यात्रा किया करते हैं। मैथोडिस्ट मिशनरियों द्वारा जहाँ-जहाँ कार्य हो रहा है, उसका वे निरीक्षण करते हैं। पिछली बार जब वे भारत आये थे, उनसे मिलनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। ५५ वर्षके होते हुए भी वे नवयुवक हैं। उनकी कार्यशीलताको देखकर मैंने दिलमें सोचा कि वह दिन कब आवेगा जब हमारे प्रचारक भी इसी धुन तथा लगनसे काम करेंगे।

एक प्रार्थना इस अवसरपर मैं और भी करूँगा, वह यह कि जो प्रचारक भारतवर्षसे विदेशोंको जायँ, वे कृपाकर वहाँ साम्प्रदायिकता (Communalism) का प्रचार न करें। साम्प्रदायिकता प्रवासी भारतीयोंके हितोंके लिए विघातक सिद्ध होगी।" अन्तमें सभापतिने गुरुकुल रजत-जयन्तीके संयोजकोंको धन्यवाद दिया, जिनकी कृपासे प्रवासी-परिषद् करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

प्रवासी-परिषद्के अवसरपर जो चिट्ठियाँ आई थीं, उनकी आवश्यक बातें यहाँ दी जाती हैं।

श्रीयुत सहदेव हेमराजने (वाका, मारीशससे) लिखा था—

"चाहे हम सीनियर केम्ब्रिज-परीक्षा पास कर लें अथवा बेरिस्टर भी हो जायँ, पर उच्च सरकारी पद हमें नहीं मिल सकते। हमारे बच्चोंके लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। छठवीं श्रेणी पास करनेके बाद कितने ही बच्चे मारे-मारे फिरते हैं। मातृ भाषाकी पढ़ाईके विषयमें क्या कहा जाय! पहले तो जब हम ज़ोरदार माँग पेश करते हैं तब यही जवाब मिलता है कि सरकारी खजानेमें पैसा नहीं, जिससे प्रबन्ध किया जा सके, और जब कभी प्रबन्ध किया भी जाता है तो पचासों विद्यार्थियोंकी पढ़ाईके लिए एकाध शिक्षक रख दिया जाता है, जो अपना कार्य सन्तोषजनक रीतिसे कदापि नहीं कर सकता। लड़कियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध और भी त्रुटिपूर्ण है। जो ईसाई नहीं उनकी लड़कियोंको शिक्षा मिलना अत्यन्त कठिन है।

हम यदि भारत वर्षसे कोई माल मँगावें तो हमें ६ सैकड़ा फ़ी भरनी पड़ती है और विलायतसे मँगावें तो एक सैकड़ा। यह तो यहाँका न्याय है! हमारी स्त्री जातिके सुधारके लिये एक उपदेशिकाकी बड़ी आवश्यकता है, पर आजतक कोई उपदेशिका यहां नहीं पधारी। निस्स्वार्थ लीडरोंका

नहीं अभाव है; यदि कोई लीडर महानुभाव हैं भी तो वे धनाभिमानी हैं, जो अपने सांसारिक स्वार्थमें फँसे हैं और गरीबोंकी ओर जिनका कुछ भी ध्यान नहीं है।"

श्री ... कालाजी मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा मारीशसने लिखा था:—यहांकी आर्थिक दशा इस समय अति शोचनीय है, कारण कि यहांकी जीवन-वृत्ति एक मात्र गन्नेकी खेतीपर निर्भर है। जहां गन्ना १५) से लेकर ५०) ६०) टन तक बिकय होता था, वहाँ गतवर्ष केवल दस रुपया टन बिक्रय हुआ है। मूल्य गिर जानेसे अवस्था बहुत बुरी हो गई है।

"सरकारी प्राइमरी स्कूलोंमें निःशुल्क पढ़ाई होती है। उच्च शिक्षाके लिए रायल-कालेजमें प्रबन्ध है। जिन्हें छात्रवृत्ति नहीं मिलती, उन्हें फीस देकर पढ़ना होता है। अल्पसंख्यक सरकारी स्कूलोंमें रोज़ आध-घंटे मातृभाषा हिन्दी पढ़ाई जाती है, जो कि नहींके तुल्य है। अंग्रेजी तथा फ्रेंचके मुक़ाबले उसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। हिन्दी-भाषाकी कोई वार्षिक परीक्षा नहीं होती। कुछ आर्यसमाजोंने अपने-अपने यहाँ रात्रि-पाठशाला स्थापित करके हिन्दी-भाषा पढ़ानेका प्रबन्ध किया है। कुँवर महाराजसिंहने, जो भारत-सरकारकी ओरसे कमिश्नर नियुक्त होकर यहाँ आये थे, अपनी रिपोर्टमें हिन्दी-भाषाकी पढ़ाईपर बहुत ज़ोर दिया था, पर उनकी रिपोर्टपर उचित ध्यान नहीं दिया गया। रायल कालेजमें पहले मातृभाषाका एक अध्यापक था, अब वह भी नहीं है।"

"यहाँकी सामाजिक अवस्था इस प्रकार है। अन्तर्जातीय विवाह स्वतंत्रतापूर्वक यानी इच्छानुसार होते हैं। विधवा विवाहके लिए कोई रुकावट नहीं है, प्रत्येक जातिमें होता है। सरकारकी ओरसे नियुक्त पण्डितों द्वारा 'सिविलमैरिज' भी होती हैं। आयुके लिए भी कुछ ठीक व्यवस्था है। सत्रह वर्षकी लड़की और अठारह वर्षके लड़केकी 'सिविल मैरिज' माता-पिताके राज़ीनामेसे हो सकती है। अठारह और इक्कीस वर्षकी आयु उपरान्त किसीके राज़ीनामेकी आवश्यकता नहीं......जबसे आर्यसमाजका प्रचार हुआ है, तबसे धार्मिक अवस्था कुछ सुधर गई है, और अब तक बहुत काफ़ी सुधर गई होती यदि स्वयं आर्यसमाजियोंमें वैमनस्य तथा फूटकी आग न धधक उठती। आपसकी इस फूटके कारण जनता आर्यसमाजसे कुछ-कुछ घृणा करने लगी है।

विशेष आवश्यकता उस बातकी है कि—

(१) सरकारी प्राइमरी स्कूलोंमें हमारी मातृभाषाकी पढ़ाईका प्रबन्ध कराया जावे।

(२) हमारे त्यौहारोंके अवसरपर छुट्टी मिला करे।

(३) भारतवर्षकी सभाएँ यदि कोई उपदेशक साधु संन्यासी भेजें तो पूरी जाँच पड़तालके बाद केवल ऐसे आदमियोंको भेजें जो पक्षपात-रहित निस्स्वार्थ तथा शुद्ध आचरणवाले हों।

(४) एक योग्य उपदेशक अथवा साधु-संन्यासीकी हमें बड़ी आवश्यकता है, जो यहाँ आकर हमारे आपसके झगड़े मिटा दे और फिर हमें सुसंगठित कर दे। उनमें अंग्रेज़ी भाषाकी लियाक़त अवश्य होनी चाहिये।"

आर्य-प्रतिनिधि-सभा नेटालने प्रवासी-परिषद्में उपस्थित करनेके लिए तीन प्रस्ताव भेजे थे।

पहला प्रस्ताव था आर्य-विवाह-बिलके समर्थनमें, दूसरा था धर्म-प्रचारार्थ जो ट्रेक्ट यहाँ छपते हैं उनको विदेशोंमें भेजनेके लिए और तीसरेमें आर्य-नेताओंसे यह प्रार्थना की गई थी कि वे नेटालमें वैदिक धर्म प्रचारार्थ एक-न-एक उपदेशक निरन्तर भेजते रहें।

फिजीसे एक सज्जनने लिखा था :—

"यहाँ पधारते ही गवर्नर साहब सर मर्चीसन फ्लेचरने यहाँ एक कान्फ्रेंस की। यह गवर्नमेण्ट हाउसपर हुई थी। इस कान्फ्रेंसके लिए निम्नलिखित सज्जनोंको निमंत्रण दिया गया था :—

श्रीयुत विष्णुदेव, मि० जानग्रान्ट, श्रीरामचन्द्र महाराज मि० परमानन्दसिंह, मि० शिवा भाई पटेल, मि० अम्बालाल पटेल, मि० सहोदरसिंह, डाक्टर सगायम, और मौलवी अब्दुलकरीम।

श्रीयुत अम्बालाल पटेलने गवर्नरके सम्मुख भारतीयोंके पक्षकी बातें रक्खीं। जब गवर्नर साहबने देखा कि अन्य सब लोग अपनी-अपनी बातपर दृढ़ हैं और वे साम्प्रदायिक मताधिकार बिलकुल नहीं चाहते, तो गवर्नर साहब मौलवी अब्दुल करीमकी ओर मुड़े। गवर्नर साहबने कहा—"मैं अपने सीलोनके अनुभवसे कह सकता हूँ (गवर्नर साहब सीलोनसे यहाँ पधारे हैं) कि मुसलमान लोग बड़े भलेमानस होते हैं। सीलोनमें साम्प्रदायिक मताधिकारकी जगह सब हिन्दुस्तानियोंके लिए सम्मिलित मताधिकारकी आयोजना की जा रही है, पर वहाँके मुसलमानोंको यह बात नापसंद है, वे अपने प्रतिनिधि अलग चाहते हैं। कहिये मौलवी अब्दुलकरीम साहब! फिजीके लिए आप क्या चाहते हैं?" "मौलवी साहबने जवाब दिया—"सीलोनकी बाबत मुझे कुछ भी हाल मालूम नहीं, इसलिए वहाँके बारेमें तो मैं कुछ कह नहीं सकता, लेकिन फिजीके लिए तो कामन-वोटकी जरूरत है।" तब गवर्नर साहबने पूछा—"आपकी बात ठीक है या सीलोनके मुसलमानोंकी?" मौलवी अब्दुल करीम अपनी बातपर डटे रहे और उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों गवर्नरका मुसलमानोंको फोड़नेका यह प्रयत्न निष्फल गया, पर पीछे हम लोगोंकी यह आशा-निराशामें परिणत हो गई। गवर्नर साहबकी जादूकी लकड़ी काम कर गई। जब कान्फ्रेंस खतम हुई तो गवर्नरने कहा कि आप लोग अपनी सम्मति लिखकर सेक्रेटरी इण्डियन एफेयर्सके मार्फत हमारे पास भेज दें। दूसरे दिन एक मेमोरियल तैयार किया गया। जब यह मेमोरियल मौलवी अब्दुलकरीमके पास दस्तखतके लिए भेजा गया तो आपने जवाब दिया—"मैं तो अब मुसलमानोंके लिए अलग सीटके वास्ते माँग पेश करूँगा" ऐसा प्रतीत होता है कि जब मुसलमानोंको गवर्नरकी कान्फ्रेंसकी बातें मालूम हुईं तो उन्होंने मौलवी अब्दुलकरीमको डाँट-फटकार बतलाई कि जब गवर्नर साहब मुसलमानोंके ऊपर इतने मेहरबान थे, तो तुमने अलग सीट लेनेसे क्यों इन्कार कर दिया? नतीजा इसका यह हुआ है कि मुसलमान लोग अपना मेमोरियल अलग ही भेज रहे हैं, जिसमें वे मुसलमानोंके लिए अलग सीट दिये जानेपर ज़ोर देंगे।... सारी घटना बड़ी हृदयवेधक है। गवर्नर साहब हम लोगोंकी आपसकी फूटसे फायदा उठाना चाहते हैं, और यूरोपियन लोग यह आशा लगाये बैठे हैं कि किसी तरह हिन्दुस्तानी लोग आपसमें लड़-झगड़कर अपना मामला कमज़ोर कर लें। गवर्नर साहबके* मुखसे चापलूसीके चार शब्द सुनकर मुसलमान लोग धोखेमें आ गये हैं और यह बात उनकी समझमें नहीं आती कि सरकार इस मौकेपर भेदनीतिसे काम ले रही है।"

रामाज्ञा सभा, न्यूकैसिल (नेटाल) के प्रधान तथा मंत्रीके पत्रका सारांश यह था कि प्रवासी-नवयुवकोंमें मातृभाषा तथा धर्मके प्रति अनुरागकी कमी है और यदि यही दशा जारी रही तो भय है कि निकट भविष्यमें धर्मका नामोनिशान मिट जायगा। अन्तमें यह प्रार्थना की गई थी कि कोई उपदेशक भारतसे नेटालको भेजा जावे, जो स्वामी भवानीदयालजीके खाली स्थानकी पूर्ति करे।

श्रीयुत सत्यदेवजीने दरबनसे अपने पत्रमें लिखा था:—

"आर्य-संस्कृतिकी मान-मर्यादा रखनेके लिए यहाँ लगातार प्रचारकोंका आना आवश्यक है। एक जावे तो दूसरा आवे।......मुझे स्मरण है कि ऋषि दयानन्दकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर यह निश्चित हुआ था कि आर्यसमाजके विद्यालय या गुरुकुल प्रवासी बच्चोंको मुफ्तमें पढ़ायेंगे। यह मुझे ठीकसे याद नहीं है कि बच्चोंको केवल मुफ्तमें शिक्षा दी जावेगी और उनके भोजन इत्यादिका व्यय परिवारोंको देना पड़ेगा अथवा सब कुछ मुफ्तमें होगा। यदि औपनिवेशिक संस्थाएँ कुछ बच्चोंकी सारी पढ़ाईका बोझ अपने सिरपर ले लें और वे बच्चे पढ़ाई समाप्त करके उपनिवेशोंमें लौटनेपर आर्यसमाजका काम करें, तो इस प्रकार बड़ा उपयोगी कार्य हो सकता है......जो प्रचारक यहाँ आवें, वे खास तौरपर यहाँ प्रचार-कार्य करनेके लिए ही आवें। रुपया चन्दा करनेके लिए कोई भी डेपूटेशन आर्यसमाजकी

छोड़के वहाँ न आवे। अगर कोई प्रभावशाली प्रचारक एक वर्ष भी वहाँ रहकर काम करें, तो वहाँ आर्य-मन्दिरकी स्थापना हो सकती है।''''''यदि सम्भव हो तो वहाँ गुरुकुलकी एक शाखा स्थापित कर देनी चाहिए।''

श्रीयुत एस० एस० सिंहने अपने पत्रमें यह लिखा था कि भारत-सरकारसे अनुरोध करना चाहिए कि वह दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए भारतीयोंको ऐसा काम दिलावे जो उनके मुआफ़िक हो।

श्री सी० रामदहलने सिडनहम (नेटाल) से लिखा था :—' उपनिवेशोंमें पैदा हुए प्रवासी नवयुवकोंमें यह भाव उत्पन्न हो जाता है कि जो कुछ है वह पाश्चात्य सभ्यतामें ही है, भारतीय सभ्यतामें यदि कुछ है भी तो वह बहुत नीचे दर्जेका है। आवश्यकता इस बातकी है कि आपकी परिषद् भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्राचीन भारतीय सभ्यता, धर्म, दर्शन तथा कलाके विषयमें पामफ्लेट छपा-छपाकर उपनिवेशोंमें वितरण करनेके लिए भेजे।''

इस प्रकार इस परिषद्के द्वारा कुछ चर्चा उपनिवेशोंमें और थोड़ी-सी भारतवर्षमें भी हो गई। एक लाभ यह भी हुआ कि हमें भारतमें पढ़नेवाले २०-२२ प्रवासी विद्यार्थियोंसे मिलनेका अवसर प्राप्त हो गया। दो-तीन विद्यार्थियोंने भोजन, दवा-दारू इत्यादिके विषयमें कुछ शिकायतें भी कीं। इनको हम अभी 'विशाल-भारत' में नहीं छापना चाहते, क्योंकि हमें पूर्ण आशा है कि अधिकारी लोग इन शिकायतोंको अवश्य दूर कर देंगे। जिन-जिन शिक्षण-संस्थाओंमें प्रवासी विद्यार्थी पढ़ते हैं, उनके अधिकारियोंसे हमारा नम्रतापूर्ण निवेदन है कि वे प्रवासी विद्यार्थियोंके साथ सहृदयतापूर्ण व्यवहार करें और उनके लिए यहाँ भारतीय विद्यार्थियोंकी अपेक्षा कुछ विशेष सुविधाओंका प्रबन्ध करें। स्वयं भारतीय विद्यार्थी समझदार हैं और वे अपने इन भाइयोंकी विशेष सुविधाओंको देखकर कुछ ईर्षा न करेंगे। प्रवासी विद्यार्थियोंका भारतमें आनेका जो क्रम आरम्भ हुआ है, यह वास्तवमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अदूरदर्शी लोग इसके महत्त्वकी कल्पना भी नहीं कर सकते। सच पूछो तो यह विशाल भारतमें भारतीय संस्कृतिकी नींव डालनेका कार्य है। लगभग हज़ार वर्ष तक सन् ६०० से लेकर १६०० तक सांस्कृतिक विशाल भारतके निर्माणका कार्य बिलकुल बन्द रहा। अब फिर इसका प्रारम्भ हुआ है। यदि किसी हृदयहीन मुख्याधिष्ठाता या अदूरदर्शी प्रिन्सीपलके अज्ञानसे यह क्रम बन्द हो गया, तो इसका पाप उन संस्थाओंके सिरपर पड़ेगा। जो लोग अपनी आँखोंके तारे दुलारे बच्चोंको सहस्रों मील दूर भेजते है, उनके हृदयमें किसी भी प्रकारकी आशंका उन बच्चोंके स्वास्थ्य इत्यादिके विषयमें न उठनी चाहिए। हमें अपने हृदयपर हाथ रखकर विचार करना चाहिए कि यदि हमारे बच्चे ६-७ हज़ार मील दूरपर पढ़ रहे हों तो उनके विषयमें हम कितने चिन्तित होंगे। प्रवासी विद्यार्थियोंको क्या-क्या विशेष सुविधाएँ होनी चाहिए इस विषयमें हम उन विद्यार्थियोंसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं और उनके उत्तर आनेपर लिखेंगे।

हमें यह कहना पड़ेगा कि प्रवासी-परिषद्का प्रथम अधिवेशन विशेष सफल नहीं हो सका। स्वामी भवानीदयालजीकी अनुपस्थितिके कारण उसका गौरव बिना दूल्हेकी बरातके बराबर रह गया। सभा-सोसाइटियोंमें प्रधानका काम करनेके लिए जिस चातुर्यकी आवश्यकता है, उसका इन पंक्तियोंके लेखकमें प्राय: अभाव होनेके कारण प्रवासी परिषद्को यथोचित सफलता न मिली, फिर भी हमें निराश होनेकी आवश्यकता नहीं। यदि हम लोग, जो भारतीयोंके विषयमें रुचि रखते हैं धुनके साथ कार्य करते रहे तो कभी आगे चलकर प्रवासी परिषद् वास्तवमें एक उपयोगी वस्तु बन जावेगी।

काकी

[लेखक:—श्री सियारामशरण गुप्त]

उस दिन बड़े सवेरे जब श्यामूकी नींद खुली, तब उसने देखा, घर-भरमें कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी—उमा—एक कम्बलपर नीचेसे ऊपर तक एक कपड़ा ओढ़े हुए जमीनपर सो रही है, और घरके सब लोग उसे घेरकर बड़े करुण-स्वरमें विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमाको श्मशान ले जानेके लिए उठाने लगे, तब श्यामूने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगोंके हाथोंसे छूटकर वह उमाके ऊपर जा गिरा, बोला—"काकी तो सो रही हैं। उन्हें इस तरह बाँधकर कहाँ उठा लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूँगा।"

लोगोंने बड़ी कठिनतासे उसे हटा पाया। काकीके अग्नि-संस्कारमें भी वह न जा सका। एक दासी राम राम करके उसे घरपर ही सँभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनोंने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामाके यहाँ गई है, परन्तु असत्यके आवरणमें सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका। आसपासके अन्य अबोध बालकोंके मुँहसे वह प्रकट ही हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर रामके यहाँ ही चली गई है।

काकीके लिए कई दिन तक लगातार रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया, परन्तु शोक शान्त न हो सका। जिस तरह वर्षाके अनन्तर एक ही दो दिनमें पृथ्वीके ऊपरका पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु बहुत भीतर तक उसकी आर्द्रता अनेक दिनोंतक बनी रहती है, उसी प्रकार वह शोक उसके अन्तस्तलमें जाकर बस गया। वह प्रायः अकेला बैठा-बैठा शून्य मनसे आकाशकी ओर ताका करता।

एक दिन उसने ऊपर पतंग उड़ती देखी। न जाने क्या सोचकर उसका हृदय एकदम खिल उठा। विश्वेश्वरके पास जाकर बोला—"काका, मुझे एक पतंग मँगा दो अभी मँगा दो।"

पत्नीकी मृत्युके बादसे विश्वेश्वर बहुत अन्यमनस्कसे रहते थे। "अच्छा मँगा दूँगा" कहकर वे उदासभावसे बाहर चले गये।"

श्यामू पतंगके लिए बहुत उत्कण्ठित हो उठा। एक जगह खूँटीपर विश्वेश्वरका कोट टँगा हुआ था। इधर-उधर देखकर उसने उसके पास एक स्टूल सरकाकर रखा और चढ़कर कोटकी जेबें टटोलीं। उनमेंसे एक चवन्नीका आविष्कार करके वह तुरन्त वहाँसे भाग गया।

सुखिया दासीका लड़का—भोला—श्यामूका समवयस्क साथी था। श्यामूने उसे चवन्नी देकर कहा—अपनी जीजीसे कहकर गुपचुप एक पतंग और डोर मँगा दो। देखो, खूब अकेलेमें लाना, कोई जान न पावे।

पतंग आई। एक अँधेरे घरमें उसमें डोर बाँधी जाने लगी। श्यामूने धीरेसे कहा—"भोला, किसीसे न कहे, तो एक बात कहूँ।

भोलाने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, किसीसे न कहूँगा।"

श्यामूने रहस्य खोला, कहा—"मैं यह पतंग ऊपर रामके यहाँ भेजूँगा। इसे पकड़कर काकी नीचे उतरेंगी। मैं लिखना नहीं जानता, नहीं तो इस पर उनका नाम लिख देता।

भोला श्यामूसे अधिक समझदार था। उसने कहा—"बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनता है। यह डोर पतली है। इसे पकड़कर काकी उतर नहीं सकती। इसके टूट जानेका डर है। पतंगमें मोटी रस्सी हो, तो सब ठीक हो जाय।"

श्यामू गम्भीर हो गया। मतलब यह, बात लाख रुपयेकी सुझाई गई है, परन्तु कठिनता यह थी कि मोटी

रस्सी कैसे मँगाई जाय। पासमें दाम है नहीं, और घरके जो आदमी उसकी काकीको बिना दया-मायाके जला आये हैं, वे इस कामके लिए उसे कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामूको चिन्ताके मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

पहले दिनकी ही तरकीबसे दूसरे दिन फिर उसने विश्वेश्वरके कोटसे एक रुपया निकाला। ले जाकर भोलाको दिया और कहा—"देख भोला, किसीको मालूम न होने पावे। अच्छी-अच्छी दो रस्सियाँ मँगा दे। एक ओछी पड़ेगी। जवाहिर भैयासे एक कागज पर 'काकी' भी लिखवा लाना। नाम लिखा रहेगा तो पतंग ठीक उन्हींके पास पहुँच जायगी।"

दो घंटे बाद प्रफुल्ल मनसे श्यामू और भोला अँधेरी कोठरीमें बैठे-बैठे पतंगमें रस्सी बाँध रहे थे। अकस्मात् शुभ कार्यमें विघ्नकी तरह, उग्र मूर्ति धारण किये हुए विश्वेश्वर वहाँ आ घुसे। भोला और श्यामूको धमकाकर बोले—"तुमने हमारे कोटसे रुपया निकाला है?"

भोला सकपकाकर एक ही डाँटमें मुखबिर बन गया! बोला—"श्यामू भैयाने रस्सी और पतंगके लिए निकाला था।"

विश्वेश्वरने श्यामूको दो तमाचे जड़कर कहा—"चोरी सीखकर जेल जायगा? अच्छा तुझे आज अच्छी तरह समझाता हूँ"—कहकर दो तमाचे और जड़कर पतंग फाड़ डाली। अब रस्सियोंकी ओर देखकर उन्होंने पूछा—"ये किसने मँगाई?"

भोलाने कहा—"इन्होंने मँगाई थी। कहते थे, इससे पतंग तानकर काकीको रामके यहाँसे उतारेंगे।"

विश्वेश्वर हतबुद्धि होकर खड़े रह गये। उन्होंने फटी हुई पतंग उठाकर देखी। उसपर एक कागज चिपका था, जिसपर लिखा हुआ था—"काकी।"

पश्चिमी लंकाके प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान

[लेखक :— श्रीयुत सेंट निहालसिंह]

(विशेषत: 'विशाल-भारत' के लिए)

(१)

हमारे जिन देशवासियोंने अतीत कालमें भारतवर्षके दक्षिण-पूर्वके देशोंमें उपनिवेश बसाये थे, उनका सौन्दर्यपर विशेष ध्यान था। उन्होंने अपने शिविर स्थापित करनेके लिए रमणीक स्थान चुने थे और उन्हें कवितामय सुन्दर नाम प्रदान किये थे। लंकाका पश्चिमी भाग उनकी इस प्रतिभाका अच्छा परिचायक है।

लंका-द्वीपका एक सबसे बड़ी नदी मुहवल इसकी वर्तमान राजधानी कोलम्बोके उत्तरी उपकूलके समीप समुद्रमें गिरती है। मुहानेके समीप उसके किनारे बहुत चौड़े और घनी लताओं एव बेलबूटोंसे आच्छादित हैं। लंकामें सालमें दो बार वर्षा होती है, जिससे पेड़-पूर्वोंके उगनेमें बड़ी सहायता मिलती है। बरसातमें इस नदीका पानी कुछ लाल मटमैला रंग धारण कर लेता है, क्योंकि वह अपने उद्गम-स्थान—समन्तकूट पर्वतसे बहुतसी लाल मिट्टी बहा लाती है। छोटी-छोटी नावें, जिनमें चौकोर पाल फरफराते हैं, नदीके सुरम्य दृश्यको और भी चित्रमय बना देती हैं। इन नावोंको देखकर भारतके पश्चिमी समुद्र-तटकी 'बढ़ओं' की याद आ जाती है।

यहाँके अधिवासियोंमें सबसे बड़ा भाग सिंहली लोगोंका है, जो अपनेको 'वंग' देशसे आये हुए भारतीय आर्योंकी सन्तान कहते हैं। वे इस नदीको 'केलानी गंगा' के नामसे पुकारते हैं। 'केलानी' संस्कृतकी कल्याणीका अपभ्रंश है। यह तो सभी जानते हैं कि कल्याणीका अर्थ सुन्दरी और मंगलकारिणी होता है। इस नदी और उसकी हरियाली आच्छादित घाटीके लिए इससे अच्छा और कोई नाम नहीं हो



वैशाखी पूर्णिमाके दिन केलानिया (कल्याणी) मन्दिरका दृश्य

सकता था। निःसन्देह यह स्थान उष्ण-देशीय सौन्दर्यका नमूना है।

(२)

आजकल कोई भी जीवित मनुष्य यह नहीं कह सकता कि केलानी गंगाके तटपर भारतीय उपनिवेशका श्रीगणेश कब हुआ था। लंकाके इस भागमें सिंहालियोंके आगमनके पूर्व भी मानव-जीवनके एक या अधिक केन्द्र इस नदीके पास पड़ोसमें अवश्य ही रहे होंगे।

कुछ प्रचलित कथाओंसे यह आभास मिलता है कि आरम्भमें भारतीय औपनिवेशिकोंकी धारा इस ओर भी बही होगी। सहस्रों वर्ष पहले उत्तरी भारतके आर्यों और लंकाके इस भागके निवासियोंमें बड़ी भारी लड़ाई हुई थी। रामायणकी कथा तो सभी जानते हैं। लंकामें प्रचलित कथाओंमें भी इस लड़ाईकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

लंकाके इस भागमें, बिभीषणकी पूजा युग-युगान्तरसे चली आती है। यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि बिभीषण रावणका धर्मात्मा भाई और भगवान रामचन्द्रका भक्त तथा मित्र था। कथा है कि लंकाका राजा होनेके बाद बिभीषण द्वीपके इस भागमें रहा था। यहाँ एक मन्दिरमें उसकी प्रतिमा स्थापित है, जहाँ प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री दर्शनार्थ आते हैं।

(३)

ऐसा समझा जाता है कि गौतम बुद्धने बोधिसत्वकी प्राप्तिके नवें वर्षमें कल्याणी प्रान्तकी यात्रा की थी। उस समय यह नाग लोगोंके अधिकारमें था। यह नाग-जाति शायद सर्प-पूजक थी। कुछ विद्वानोंके मतानुसार वह सामुद्रिक जाति थी।

उस समय नागराज मणिअक्खिक यहाँका राजा था। उसने बुद्धकी पहली यात्रामें बौद्धधर्म ग्रहण किया था। उसने श्रावस्ती (गोंडा ज़िलेके वर्तमान बलरामपुरके समीप) में जेतवनकी तीर्थयात्रा की थी और भगवान बुद्धको पुनः लंका-यात्रा करनेके लिए प्रेरित किया था।

बुद्ध भगवानकी इस यात्राका वृत्तान्त 'विशाल-भारत'के

अप्रेल मासके अंकमें प्रकाशित हो चुका है, अतः उसे यहाँ दुहराना व्यर्थ है।

(४)

कल्याणी गंगाके दोनों तटोंपर—जिन्हें गौतम बुद्धने स्वयं उपस्थित होकर पवित्र किया था—एक-एक मन्दिर है। कहा जाता है कि दाहने तटका मन्दिर बाएँ तटके मन्दिरसे प्राचीन है, मगर वह कब बना था, इस बातको कोई भी निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता। सम्भव है कि यह वही विहार है, जिसे 'महावंश', 'राजावली' आदि सिंहल ग्रन्थोंके अनुसार यत्थल तिस्सने ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीमें बनाया था। यह यत्थल तिस्स अनुराधापुरके नरेश देवनाम पिय तिस्सका—जो ईसासे २४७ वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था और जो अशोकका समकालीन था—भतीजा था। सिंहली ऐतिहासिक बतलाते हैं कि यत्थल तिस्सने कलानिया (कल्याणी) नगर बसाकर वहाँ एक विहार निर्माण किया था, और वहाँ वह राज करता था। सम्भव है कि इतिहासकारोंने ग़लतीसे 'पुन: निर्माण' को 'निर्माण' लिख दिया हो, क्योंकि इस प्रकारकी ग़लतियाँ उन्होंने और कई जगह भी की हैं।



कल्याणी गंगाके बायीं ओरसे मन्दिरका साधारण दृश्य

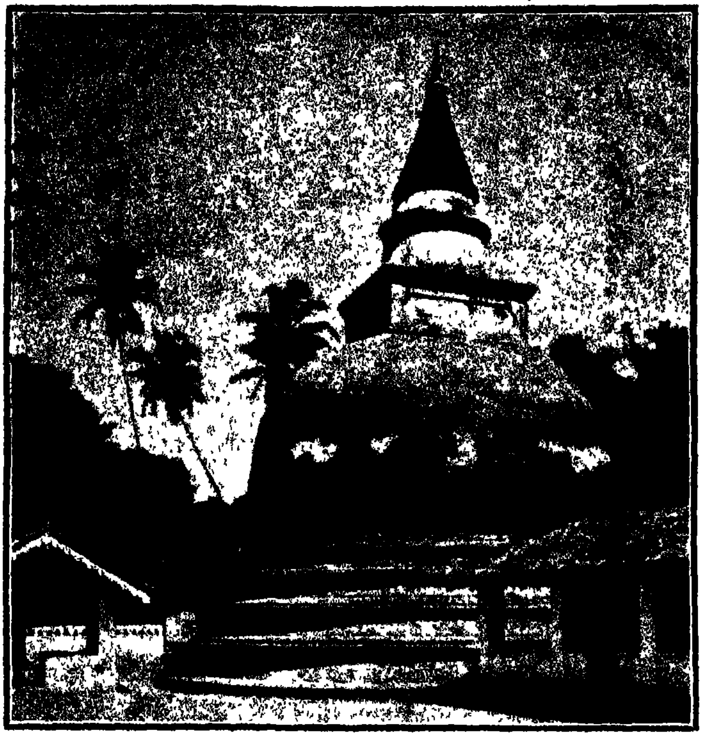
कल्याणी गंगाके बाएँ तटके मन्दिरके निर्माण कालमें बहुत थोड़ा संशय है। उसीके समीप एक शिलालेख मिला है, जिससे प्रकट होता है कि वह राजा कीर्तिश्री मेघवनके समयका है, जो ईसाकी चौथी शताब्दीके मध्य भागमें वह राज करता था।

स्तूपके दोनों ओर जो इमारतें हैं, वे आधुनिक हैं। उनमेंसे कुछ तो पुरानी इमारतोंके स्थानपर या उनकी ही नींवपर, उनके नष्ट हो जानेके बाद बनी हैं। उनका वर्णन करनेके पूर्व यह आवश्यक है कि यत्थल तिस्सके बादसे कल्याणी जिन-जिन परिवर्तनोंसे गुज़री है, उसका कुछ वर्णन करूँ।

(५)

केलानी तिस्स यत्थल तिस्सका दूसरा पुत्र और कल्याणी-प्रान्तका शासक था। वह अपने दुष्कर्मोंसे देवताओंका क्रोध-भाजन बन गया। उसका छोटा भाई उसकी रानीके प्रेममें फँस गया। रानी भी उसे दूषित प्रेमका प्रतिदान देने लगी। केलानी तिस्सको भाईपर सन्देह हुआ। उसके सिखलानेसे एक अछूत जातीय पुरुषने भरे दरबारमें सबके सामने कहा कि 'एक बड़े भाईके साथ उसका एक रहता है जो मुझसे भी अधिक छोटा भाई नीच जातिका है।' यह बात दरबारियोंसे पहेलीके रूपमें कही गई थी, मगर ऐय्य तिस्सका दोषी हृदय तुरन्त ही उसका मतलब समझ गया। दंडके डरसे वह मलायाको भाग गया।

वह बड़ा चालाक था। उसने वहाँसे अपनी प्रेमिकाको एक पत्र लिखा, मगर उसमें नीचे किसीका नाम नहीं लिखा। उसने उस चिट्ठीमें कल्याणी-विहारके महायाजकके अक्षरोंकी नक़ल की थी। उसका दूत पीत वस्त्र धारणकर अन्य याजकोंके साथ राजमहलमें भोजनके लिए गया। वहाँ मौक़ा देखकर उसने धीरेसे वह पत्र रानीके समीप डाल दिया।



कल्याणी गंगाके बायें तटका मन्दिर

सन्देहसे राजाके कान बहुत सतर्क हो गये थे। उन्होंने ताड़-पत्रके गिरनेकी आवाज़ तुरन्त ही सुन ली। गुस्सेमें आकर उसने रानी और दूत—दोनोंको नदीमें डुबवा दिया। ऐसे महायाजकके पापका विश्वास हो गया, और उसने उन्हें तेलके कड़ाहमें बिठाकर नीचेसे आग जलवा दी। लोगोंको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कड़ाहका तेल गर्म ही नहीं हुआ, बल्कि वह गहरे कुएँके जलके समान ठंडा रहा।

सात दिन बाद महायाजकको स्मरण आया कि पूर्व जन्ममें जब वह गड़रिया था, तब उसने दूधमें उबाल कर एक कीड़ेकी हत्याकी थी। इस पर तेल उबलने लगा और वह जल गया।

इस निर्दोष और पवित्र मनुष्यकी हत्यापर लंकाके रक्षक देवताओंको बहुत कष्ट हुए। उन्होंने समुद्रको भूमिपर चढ़नेकी आज्ञा दी। फल यह हुआ कि द्वीपका १/१६ भाग समुद्रके गर्भमें विलीन हो गया। कहते हैं कि इस बाढ़में एक लाख बन्दरगाह, नौसौ पचहत्तर मछुओंके ग्राम और चार सौ पचहत्तर मोती निकालनेवालोंके पुरवे डूब गये। किनारेके नगरोंमें केवल मनार और कटुपितिमंडप ही बच रहे।

इस दुर्घटनाको सुनकर राजाने अपनी कुमारी कन्या शुद्धदेवीको—जो विहार महादेवीकीके नामसे प्रसिद्ध है, वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके, एक नौकापर बिठाकर समुद्रमें छोड़ दिया। नौकाके ऊपर एक लेख बाँध दिया गया, जिसका अर्थ यह था कि नौकापर राजा केलानीतिस्सकी कन्या है, जो समुद्रके लिए बलि दी गई है।

कई दिन तक इधर-उधर बहनेके बाद उस नौकाको मागम (महागम) के तटके समीप जो लंकाके दक्षिण भागमें है, मछुओंने देखा। वहाँका राजा उस राजकुमारीको देखकर मोहित हो गया और उसने उसे नौकासे उतारकर अपनी पटरानी बनाया। उसने उस स्थानपर एक विहार बनवाया और राजकुमारीको बड़ी धूमधामसे मगमा नगरको ले गया।

इसी बीचमें केलानी तिस्स हाथीपर चढ़कर समुद्रके किनारे जो हानि हुई थी, उसे देखने गया ; परन्तु समुद्रकी भयावनी लहरोंने उसे और उसके हाथीको बहाकर नरकमें फेंक दिया, जहाँ वह अब तक कष्ट पा रहा है।

तूफानके बाद जो लोग बच रहे थे उन्होंने देखा कि समुद्र जो पहले कल्याणी नदीसे २८ मील दूर था, अब केवल चार मील दूर रह गया है, आजकल केलानियाके राजमहाविहारसे हिन्द महासागर सीधे मार्गसे चार-पाँच मील दूर है।

(६)

सिंहली इतिहासोंमें जो वर्णन मिलता है, उससे ज्ञात होता है इस जल-प्रलयके समय ही दक्षिणके तामिलोंने पहली बार लंकापर आक्रमण किया था। बादमें समय-समयपर तामिलोंके और भी हमले होते रहे।

कल्याणी समुद्रके तटपर बड़ी उर्वरा घाटीमें स्थित और धन-समृद्धिसे भरी हुई थी, इसलिए वह इन हमलोंसे अछूती नहीं बची। अब तक कोई ऐसा वर्णन नहीं मिला, जिससे उसकी अवस्थाओंपर प्रकाश पड़ता, परन्तु अपरोक्षरूपसे यह यह मालूम होता है कि लंकाके अन्य भागोंके समान पश्चिमी तटके इस छोटे राज्यका भी उत्थान-पतन होता रहा है।

उदाहरणके लिए महावंश और प्रीतिडक-मण्डपके एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि सन् ११८७ से ११९६ तक राजा कीर्तिनिश्शक मल्ल लंकामें राज करता था। वह कलिंगके ओक्कवंशका—जो सूर्यवंशकी एक शाखा थी—था। उसने कल्याणीकी यात्रा की थी, और उसीकी आज्ञानुसार वहाँके पुराने मन्दिरोंका पुन: निर्माण हुआ था।

विजयबाहु द्वितीयने भी—जो जम्बूद्रोणिमें सन् १२२० से १२२४ तक राज करता रहा था—कल्याणीकी यात्रा की थी। तामिलोंने कल्याणीके जिस चैत्यको नष्ट कर दिया था, उसने उसे फिरसे बनाया और उसपर एक स्वर्णशिखर तथा पूरबकी ओर एक तोरण भी निर्मित कराया था। साथ ही उसने प्रतिमा-भवन नगरका परकोटा तथा वहाँकी अन्य सभी इमारतोंकी मरम्मत कराई थी।

'निकाय-संग्रह' से मालूम होता है कि अगली शताब्दीके मध्यभाग तक कल्याणी सुख-समृद्धिके शिखरपर रही। निकाय-संग्रहके लेखकके अनुसार—जो अपने समयका लंकाका सबसे बड़ा विद्वान् था—"कल्याणीके चारों ओर एक परकोटा था, जो चकवाल पर्वतके समान था। उसमें राजसी महलोंकी पंक्तियाँ थीं। इन महलोंका चूना हिमाच्छादित कैलाश पर्वतके समान शुभ्र था। उनकी दीवारें, स्तम्भ, सीढ़ियाँ और चित्रकारी बड़ी सुन्दर थी। शहरमें जहाँपर बोधिवृक्ष था, उसके प्रांगणके चारों ओर भव्य-विहार, प्रतिमालय, सुन्दर पथ और तोरणोंकी पंक्तियाँ थीं। शहरमें चौड़ी सड़कोंका जाल बिछा था। ये सड़कें दो मुख्य राज-पथोंसे सम्बन्धित थीं। उनमें सब देशोंके लोगोंकी भीड़ जमा रहती थी। नगर सब प्रकारकी सम्पत्तिसे भरपूर था।"

(७)

कल्याणीके इस वर्णनकी पुष्टि 'महावंश'से भी होती है। उसमें विक्रमबाहु तृतीयके—जिन्होंने सन् १३५७ से १३७५ तक गमपोल नगरीमें राज किया था—वृत्तान्तमें कल्याणीका प्राय: वैसा ही वर्णन दिया है, जैसा कि 'निकाय-संग्रह'में है।

कल्याणी केवल तीर्थ-स्थान ही नहीं था। उसकी गणना स्वास्थ्यप्रद स्थानोंमें भी थी। राजा भुवनाक बाहु सप्तम, जो सन् १५१६ में गद्दीपर बैठा था, कल्याणीमें अपना स्वास्थ्य सुधारनेके लिए कुछ दिन तक रहा था। वह कल्याणी-गंगाके तटपर अपने महलमें रहता था। वहींपर एक दिन जब वह खिड़कीसे झांक रहा था, तब पोर्चुगीज़ वायसराय डान अल्फांसो डीनरोन्हाके एक गुलामने उसे गोली मार दी थी, जिससे वह मर गया था। इस बातका पता नहीं लग सका कि उसने अचानक धोखेसे ऐसा किया, या अपने मालिककी आज्ञानुसार।

पोर्चुगीज़ लोग सोलहवीं शताब्दीमें रोज़गार करनेके लिए लंका आये थे। उन्होंने यहाँ आकर देखा कि राजवंशमें फूट पड़ी है और लोग असंगठित हैं। बस, उन्होंने षड्यन्त्र शुरू कर दिये, और थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने द्वीपमें काफी राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर ली। पहले भुवनाक बाहुके भाई मायादुन्नने और फिर उसके लड़के राजसिंह प्रथमने पोर्चुगीज़ोंका वीरतापूर्वक विरोध किया, मगर वे असफल हुए और पोर्चुगीज़ लोग तमाम समुद्री भागके मालिक हो गये। इस स्थानपर इन सब बातोंका विस्तृत वर्णन देनेकी आवश्यकता नहीं है।



जब कोई पर्व नहीं होता तो मन्दिर प्रायः सुनसान-सा रहता है

सन् १५७४ में जब पोर्चुगीज़ लोग मायादुन्नसे लड़ रहे थे, तब उन्होंने अनेक तीर्थ स्थानोंको नष्ट कर दिया था। उनमें केलानिया या कल्याणी भी था। चारों ओरके बौद्ध लोग अपने तीर्थोंकी दुर्दशा देखकर स्तम्भित हो गये, और उनकी रक्षाके लिए दौड़ पड़े, परन्तु संगठन और आधुनिक हथियारोंकी कमीके कारण वे विदेशी आक्रमणकारियोंके सम्मुख खड़े न हो सके।

(८)

अबसे डेढ़ सौ वर्ष पूर्व एक प्रतिभाशाली बौद्ध-भिक्षु बुद्धरक्खितने अपने अन्य दो साथियों-सहित इन तीर्थ-स्थानोंके पुनरुद्धारका उद्योग किया। उस समय देश डच लोगोंके हाथमें था। डच लोग यद्यपि अपना धर्म फैलानेके लिए सब प्रकारके उपायोंका उपयोग कर रहे थे, मगर उन्होंने इस पुनरुद्धारके कार्यमें हस्तक्षेप नहीं किया।

उस समय ज़माना बहुत ख़राब था। धार्मिक स्वतन्त्रताका पता ही नहीं था। बौद्ध और हिन्दू दोनोंको ईसाई बननेका बहाना करना सुविधा-जनक मालूम होता था। गैर-ईसाई धर्मोंकी सार्वजनिक उपासनाका अन्त हो चुका था।

ऐसी दशामें यदि कल्याणीके तीर्थोंके समान पवित्र स्थानोंपर उनके अनुकूल भवन नहीं बन सके, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो इस बातका है कि पुनरुद्धारका जो कार्य शुरू किया गया था, वह समय पाकर पूरा हो गया। इन भिक्षुओंका नाम लंकाके इतिहासमें सदा अमर रहेगा।

सिंहली राजाओंने इन तीर्थोंके साथ जो भूमि लगा दी थी, उसे पोर्चुगीज़ोंने ज़ब्त कर लिया था वह तबसे अब तक फिर कभी नहीं प्राप्त हो सकी। इस समय विहारके अधिकारमें केवल चार एकड़ भूमि है।

(९)

कल्याणी गंगाके दाहने तटपर जो मन्दिर है, वह एक ऊँचे, परन्तु कृत्रिम टीलेपर बना है। वह नदीसे कोई तीन सौ गज़ दूर है। उसके दोनों पार्श्वोंसे एक-एक ढलुवाँ रास्ता टीलेके ऊपर तक गया है, मगर तीर्थ-यात्री ज़्यादातर सामनेकी ओरसे जाते हैं, जहाँ एक पतली-सी सीढ़ी ऊपर तक गई है। सीढ़ीके ऊपर कुछ भद्दी-सी एक तिहरी महराब है।

दाहनी ओर एक स्तूप है। लोगोंकी धारणा है कि जब यहाँके राजा मणिमक्खिकके निमन्त्रणपर गौतम बुद्ध यहाँ आकर आकाशसे उतरे थे, उस समय जहाँपर सुनहरे चँदोवेके नीचे रत्नजड़ित सिंहासनपर बैठे थे, ठीक उसी स्थानपर यह स्तूप बना है। प्रसिद्ध तामिल महाकाव्य 'मणिमेखला'के अनुसार—जो ईसाकी दूसरी शताब्दीमें रची गयी थी—"इस ज्योतिर्मय रत्नजड़ित सिंहासनको देवराज इन्द्रने समुद्र-परिवेष्टित भूमि 'मणिपल्लवम'में रखा था। वह तीन हाथ ऊँचा और नौ हाथ लम्बा चौड़ा था। यह बुद्धासन स्फटिकमणिका बना था। इसमें यह गुण था कि यह देखनेवालोंको उनके पूर्व जन्मोंका हाल बता देता था।"



केलानियाके समीप विद्यालङ्कार कालेज, जहां बौद्धभिक्षुओंको सिंहली, पाली और संस्कृतकी शिक्षा दी जाती है

स्तूप समय-समयपर हल्के नीले रंगसे पोत दिया जाता है। सूर्यकी किरणों जब उसपर पड़ती हैं, तो उसमेंसे ऐसी चमक निकलती है, जिससे आँखें चौंधिया जाती हैं।

स्तूपके बाईं ओर दो आयताकार हॉल हैं। उनमें एक दूसरेसे रास्ता है। बाहरी हॉलकी दाहनी दीवारसे लगी हुई राजा मणिमक्खिककी एक भीमकाय मूर्ति है। उसके दोनों पार्श्वोंमें एक एक नाग-कन्याका चित्र बना है। भीतरी भागके द्वारपर दो विशालकाय रक्षकोंकी मूर्तियाँ खड़ी हैं। भीतरी घरके पीछेकी दीवारपर मूर्तियोंकी लाइनकी लाइन खड़ी है। इन प्रतिमाओंमें मुख्य प्रतिमा लेटे हुए बुद्धकी है, जो अठारह हाथ लम्बी है। इस मूर्तिके सिरहानेकी ओर दो बैठे हुए पत्थरके बुद्धों और दो खड़े हुए लकड़ीके बुद्धोंकी मूर्तियाँ हैं। पैरके आगे लंकाके रक्षक देवताओंकी वृहदाकार मूर्तियाँ हैं। दीवार और छतपर चमकदार रंगोंमें बुद्धकी जातक-कथाओंके दृश्य अंकित हैं।

(१०)

मन्दिरसे कुछ गज़ हटकर अपेक्षाकृत कुछ नीचे धरातलपर एक और आयताकार भवन है। इसके एक भागमें विभीषणका मन्दिर है। यात्रीगण बरामदेसे होकर एक खाली घरमें प्रवेश करते हैं, जिसमें एक काठकी भद्दी चौकी



श्री एम० धर्मरक्षित
(श्रीकल्याणी राज महाविहारके प्रधान आचार्य)

पड़ी रहती है। इस चौकीपर लोग त्योहारके दिन भेंट-पूजा चढ़ाया करते हैं।

मन्दिरका 'कपूराल' (पुजारी) दरवाजा खोलकर पर्देको थोड़ासा खिसका देता है, जिससे भक्त लोग इस पुण्यात्मा राजाके दर्शन करते हैं। मूर्तिका लम्बा-चौड़ा आकार-प्रकार विभीषणके राक्षसवंशके अनुकूल ही है। हाँ, मूर्तिमें राक्षसोंकी दुष्टताके चिह्न नहीं हैं।

पुजारीने मुझसे बतलाया कि वह अनेक पीढ़ियोंसे इस पदपर है। एक पर्वकी चढ़ौती देखकर यह अनुमान होता है कि साल-भरमें चढ़ौतीकी खासी रकम हो जाती होगी।

नदीके दूसरी ओरका मन्दिर तटसे कोई डेढ़ सौ गज़के फ़ासलेपर है, लेकिन या तो वह बड़ी बुरी तरह नष्ट कर दिया गया था, या उसे बनानेमें पूरा उद्योग नहीं किया गया, अथवा इसलिए कि वह गौतम बुद्धकी उपस्थितिसे पवित्र नहीं हुआ है—चाहे जिस कारणसे भी हो, इस मंदिरमें न तो पुरातत्त्वकी ही वैसी झलक है और न कारीगरी ही की। पर धार्मिक जनताके लिए तो इमारतकी कमीसे कुछ मतलब नहीं होता, वह तो वहाँ पूजाके उद्देश्यसे जाती है, न कि सैर करनेके लिए।

मन्दिरके चारों ओरकी दीवार पुन: होशियारीसे बनाई गई है, किन्तु कह नहीं सकते कि वह पुरानी दीवार ही की बुनियादपर है या नई बुनियादपर। दीवारके भीतर थोड़ी ही जगह है। जब बौद्धधर्म लंकाका राजधर्म था और राजा लोगोंकी धार्मिक उदारता बढ़ी हुई थी, उस समय यह स्थान भी निश्चय ही अबसे कहीं अधिक विस्तृत रहा होगा।

(११)

जब मैं इस पवित्र स्थानमें प्रवेश करने लगा, तब मेरा ध्यान फाटकके समीप दीवारपर लगे हुए एक शिलालेखकी ओर आकर्षित हुआ। मेरे पथ-प्रदर्शकने, जो यहाँके विहारके महायाजकका शिष्य था, मुझे बताया कि वह शिलालेख राजा कीर्तिश्री मेघवनकी आज्ञानुसार लिखा और यहाँ लगाया गया था। राजा कीर्तिश्रीने अनुराधापुरमें सन् ३६२ ईस्वीसे ३८९ तक राज किया था। सरकारी पुरातत्त्व-विभागकी खोजसे भी इस कथनकी पुष्टि होती है।

अहातेके ठीक केन्द्र-स्थानपर स्तूप स्थित है। वह प्राय: फिरसे पूरा बना दिया गया है। मैंने देखा कि स्तूपकी तलेटीके समीपकी चौकी भूमिपर कुछ टाइल्स लगाये गये हैं, जो इस ढंगके हैं, जैसे यूरोपियन लोग अपने गुस्लखानोंमें लगाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि सम्पूर्ण भवनको इसी ढंगसे सजानेका विचार है। लोगोंकी यह श्रद्धा नि:सन्देह सराहनीय है, पर उनकी रुचि बहुत पतित है। मुझे यह देखकर बड़ा दु:ख हुआ कि जिस जातिमें कलाके ऐसे सुन्दर-सुन्दर पदार्थ उत्पन्न करनेकी प्रतिभा थी, जिन्हें दो हज़ार वर्ष बाद भी देखकर लोग चकित रह जाते हैं, उस जातिमें समझकी इतनी कमी है।

स्तूपके समीप दो छोटी-छोटी भद्दी इमारतें हालमें बनाई गई हैं।

(१२)

यहाँके एक गण्यमान्य धनी बौद्ध-परिवारने नदीके दाहनी ओरवाले मन्दिरकी मरम्मत कराने, उसमें सुधार कराने और बढ़ानेका काम हाथमें लिया है। उन्होंने उन्नतिका एक लम्बा-चौड़ा प्रोग्राम बनाया है। उसमें लागत भी गहरी लगेगी। उन लोगोंका अन्दाज़ है कि तीन लाख रुपयेमें सब काम हो जायगा, किन्तु मैं समझता हूँ कि अन्तमें दस लाख रुपयेके लगभग जायँगे।

इमारत बनाने और मरम्मत करनेका काम एक इंजीनियरिंग कम्पनीकी देख-रेखमें हो रहा है। उस कम्पनीके हिस्सेदार मि० एच० एच० रीडने मुझे मोटरपर ले जाकर सब काम-काज दिखलाया। वहाँ मुझसे 'सीलोन डेली न्यूज़', 'सीलोन आबज़र्वर' तथा लंकाके अन्य दो पत्रोंके प्रधान मालिक मि० डी० आर० विजयवर्द्धनेसे भेंट हुई। इन्हींकी माता श्रीमती डी० पी० विजयवर्द्धने इस मन्दिरके पुनरुद्धारका काम करा रही हैं।

इस मन्दिरके दो भवनोंका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूँ। उन्हीं दोनों भवनोंके आगे एक बिलकुल नया बहिर्भाग बनाया जा रहा है, जिससे इमारत शानदार मालूम होने लगे। भवनोंकी दीवारोंपर नया पलस्तर किया जा रहा है। मन्दिरकी बुनियाद रद्दी बनी हुई थी और उसका मसाला झर-झरकर गिरने लगा था, इसलिए वह कंकरीटसे मज़बूत की जा रही है। बाहरी भवनसे भीतरी भवनको जानेवाला द्वार चौड़ा किया जा रहा है। इन भवनोंकी छत भी दो-तीन फ़ीट ऊँची कर दी जायगी, जिससे वे भव्य दिखाई देने लगें। बाईं ओर एक और नया भवन भी जोड़ दिया जायगा।

मि० रीडने मुझे बतलाया कि इन सब परिवर्तनोंको करनेमें इस बातकी विशेष सावधानी रखी जायगी कि दीवारों और छतोंपर बने हुए चित्र सुरक्षित रहें।

इन दोनों भवनोंके पीछे एक बिलकुल नई इमारत ५० फीट लम्बी और ७० फीट ऊँची बनाई जायगी। यह नई इमारत पुराने भवनोंसे एक दालानके द्वारा संलग्न रहेगी। इस इमारतके मध्यभागमें देवस्थान और पार्श्वोंमें पुजारियोंके रहनेके कमरे होंगे। देवस्थान् बीस फीट लम्बा और बीस फीट चौड़ा चौकोर होगा। उसमें आठ ठोस खम्भे अठारह फीट ऊँचे हैं। ये खम्भे साढ़े तीन फीट ऊँची कुर्सीपर अवलम्बित हैं। देवस्थानकी दीवारोंमें खम्भोंकी ऊँचाई तक संगमरमर जड़ा जायगा। उससे ऊपर छत तक—जो पिरेमिडके आकारकी होगी—चूनेका पलस्तर होगा। बुद्ध भगवानकी बैठी हुई पत्थरकी प्रतिमा, जो आजकल द्वार-मण्डपमें है, यहाँ लाकर स्थापित की जायगी।

छतके पीछेकी दीवार ऊंची करके उसमें शीशे लगा दिये जायंगे, जिससे इस पवित्र स्थानमें गिरजाघरोंकी भाँति सूर्यका धुंधला प्रकाश आया करेगा। इसके अतिरिक्त गुप्त स्थानोंमें बिजलीके लैम्प भी इस प्रकार लगाये जायंगे, जिनसे इसी प्रकारका प्रकाश हो सके।

इमारतमें लकड़ीका काम सिंहली कारीगर कर रहे हैं, संगतराशीका काम दक्षिण भारतके कारीगरोंको सुपुर्द किया गया है और लकड़ी और पत्थरकी सजावटके लिए प्राचीन डिज़ाइन और ऐतिहासिक कला व्यवहार की जा रही है।

विजयवर्द्धने वंशने इस इमारतके बहिर्भागके लिए पोलोन्नरुवके थूपारामका आकार पसन्द किया है, जो मेरी समझमें ठीक नहीं हुआ, क्योंकि थूपाराम एक ठोस बैठी हुई-सी इमारत है, जिसमें ऊँचाई और भव्यता नहीं है। यदि पोलोन्नरुवसे ही कोई आकार चुनना था तो लंकातिलककी बनावट पसन्द की जा सकती थी। वह मेरी. समझमें भव्य और शानदार बिल्डिंग है, और उसका ढाँचा इस कामके बहुत उपयुक्त होता।

मि० रीडने बताया कि उन्होंने उस डिज़ाइनमें काफी रद्दोबदल करनेका प्रयत्न किया है, और जब इमारतपर अठपहलू छत—जो कैन्डीके दन्त-मन्दिरके पुस्तकालयके सदृश होगी—पड़ जायगी, तब वह भी ऊंची और भव्य दिखाई पड़ने लगेगी।

अन्तमें बननेपर मन्दिर कैसा दिखाई देगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। मगर बौद्ध लोग अब अपने देवस्थानोंका पुनरुद्धार करने और उन्हें कलापूर्ण सुन्दर ढगसे बनानेकी आवश्यकताको समझने लगे हैं। यह बात बहुत प्रशंसनीय है।

(१२)

केलानिया या कल्याणीको देखनेका सबसे बढ़िया समय निश्चय ही वैशाखी पूर्णिमा है। धार्मिक बौद्धोंकी गणनानुसार उसी दिन ईसासे ६२३ वर्ष पूर्व कपिलवस्तुमें भगवान गौतम बुद्धका जन्म हुआ था, लेकिन कुछ विद्वान् उनकी जन्म-तिथि उससे ६० वर्ष बाद बतलाते हैं। पैंतीस वर्ष बाद इसी वैशाखी पूर्णिमाको बोधिवृक्षके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, और अस्सी वर्ष बाद इसी वैशाखी पूर्णिमाको वर्तमान गोरखपुरसे सैंतीस मील दूर कुसीनार नामक स्थानमें उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। लंकाके बौद्धोंका विश्वास है कि बोधिसत्व प्राप्त करनेके आठ वर्ष बाद इसी वैशाखी पूर्णिमाके दिन बुद्धने कल्याणीकी यात्रा की थी, इसीलिए इस दिन कल्याणीकी यात्राका बड़ा माहात्म्य है।

जैसे ही वैशाखी पूर्णिमा नज़दीक आती-जाती है, वैसे ही चारों ओरसे तीर्थयात्री कल्याणीकी ओर आने लगते हैं। मन्दिरकी ओर जानेवाली सड़कोंपर प्रत्येक तरहकी सवारियोंका ताँता बँधा रहता है। भीड़के इन्तज़ामके लिए जगह-जगहपर पुलिस कान्स्टेबिल खड़े कर दिये जाते हैं। तेजसे तेज़ मोटरको भी उस लाइनमें पड़कर उसी मन्दगतिसे चलना पड़ता है।

जैसे-जैसे आप मन्दिरके समीप पहुँचते जायँगे वैसे-वैसे आपको सब प्रकारके भिखारियों, फेरीवालों और दूकानदारोंकी

अधिकता मिलती जायगी। लोगोंके घरोंके दरवाजोंपर छोटी-छोटी दूकान खुल जाती हैं, जिनमें पान, सुपारी और शरबत आदि उचित मूल्यपर बिकता है। सड़कके दोनों ओर कुम्हारोंकी दूकान होती हैं, जिनमें मिट्टीके खिलौने, लैम्प, दीए आदि रहते हैं।

मन्दिरके ठीक आगे छोटी-छोटी दूकानें होती हैं, जो फूलोंके बोझसे लदी रहती हैं। मोमबत्तियां, धूप, सुगन्धित पदार्थ और नारियल आदि बहुत परिमाणमें मौजूद रहते हैं। इन पदार्थोंसे न केवल देवताओंकी ही पूजा होती है, वरन मनुष्योंका अन्तस्तल भी प्रफुल्लित हो जाता है। वहाँ सब प्रकारका भोजन भी बिकता है।

पुरुषों, स्त्रियों और बालकोंकी अटूट पंक्तियाँ दर्शनके लिए मन्दिरकी सीढ़ियोंपर चढ़तीं और दर्शन करके उतरती दिखाई देती हैं। कुछ यात्री नदी किनारे जाकर वहाँ अच्छी तरह हाथ-पैर और मुँह धोते हैं। अन्य लोग मन्दिरके फाटकके भीतर सीढ़ियोंके समीपके कुएँपर स्नान कर लेते हैं। जो लोग 'सिक्षा ग्रहण' करते हैं और व्रत रखते हैं, वे श्वेत वस्त्र धारण किये रहते हैं। अन्य लोग रंग-बिरंगे कपड़े पहनते हैं। पुरानी चालके यात्री नंगे पैर आते हैं, परन्तु जिन्हें अंगरेजियतकी हवा लग चुकी है वे जूता पहनकर आते हैं और किसी सुविधा-जनक स्थानमें जूता खोलकर मोजा पहने हुए दर्शनको जाते हैं। भीड़ इतनी घनी होती है कि उसे चीरकर देवस्थान तक पहुँचना कठिन है। अन्य महीनोंकी पूर्णिमाको भी ऐसा ही दृश्य दिखाई देता है, किन्तु वैशाखी पूर्णिमासे कुछ कम।

आजकल मन्दिर बन रहा है, इसलिए मैंने देखा कि सैकड़ों यात्री एक-एक आनेमें एक-एक ईंट खरीदकर उसे बड़े भक्ति-भावसे इमारतके पास रख देते हैं। इस प्रकारसे कोई पचास हजार रुपया बिल्डिंग-फण्डमें एकत्रित हो चुका है।

कुछ यात्री इधरके मन्दिरमें पूजा करके नावपर नदीके उस पार जाते हैं और वहाँके स्तूपकी पूजा करते हैं।

हालमें यह आन्दोलन उठाया गया है कि जनवरी मासकी पूर्णिमापर केलानियामें एक जुलूस (पेराहेरा) निकाला जाय, जो तीन दिन तक रहे। इस प्रकार पहला जुलूस अबसे पाँच वर्ष पूर्व निकला था। पिछली जनवरीमें जो जुलूस निकला था, उसमें बड़ी भीड़ एकत्रित हुई थी। भिन्न-भिन्न स्थानोंके लोग जुलूस बनाकर सजे-बजे हाथियों और कैन्डीके 'राक्षसनर्तकों'के साथ पैदल चलकर केलानिया आये थे। उन सबने एकत्रित होकर तीन दिन तक प्रतिदिन जुलूस निकाले। ये जुलूस मन्दिरकी परिक्रमा करके आसपासके दो-एक ग्रामोंमें घूमते थे और आधी रात तक वापस आ जाते थे।

आगे-आगे नाचनेवाले और गानेवाले ढोल, तासे, शंख, बाँसुरी, भेरी आदि बाजे बजाते चलते थे। उनके पीछे एक बड़े दाँतवाले हाथीपर पवित्र स्मारक रखा जाता था। उस हाथीके अगल-बगल दो अन्य हाथी उसकी रक्षा करते चलते थे। मुख्य हाथीके ठीक आगे तीन बौद्ध पुजारी चलते थे, जो उस पवित्र स्मारकके संरक्षक हैं। उनके घुटे हुए सरके ऊपर एक बड़ा-भारी छत्र रहता है। उनके पीछे एक अन्य छत्रके नीचे दो और पुजारी थे। उनके पीछे चाबुकबरदार चलते थे, जो एक विचित्र प्रकारके चाबुकको फटकारकर पिस्तौल छूटनेकी-सी आवाज करते थे। लोग बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहने थे। उनमेंसे अनेक पुरानी सिंहली पोशाक पहने हाथोंमें झंडे, पालकियाँ, फूल या अन्य धार्मिक चिह्न लिये थे। बीच-बीचमें नाचते-कूदते और अनेकों तरहकी भाव-भंगियाँ दिखलाते थे। ऐसे अवसरोंके उपयुक्त नाच-कूद और भाव-भंगियाँ यहाँ अतीत कालसे चली आती हैं।

इस वर्ष पेराहेराकी अन्तिम रात्रिमें पचीस हाथी थे। उनके गलेमें बँधी हुई घंटियोंकी आवाज, लोगोंके मुखोंसे निकलनेवाली 'साधु-साधु' की आवाज तथा अन्य

घण्टोंकी आवाजसे मिलकर एक अजीब सनसनी पैदा करती थी।

किसी समय कल्याणी शिक्षाके लिए प्रसिद्ध थी, लेकिन जहाँ तक मुझे मालूम है, आजकल वहाँके राज-महाविहारमें इस विषयमें कुछ विशेष कार्य नहीं हो रहा है। सौभाग्यसे कल्याणीके समीप ही एक कालेज मौजूद है, जो भिक्षुओंको शिक्षा देकर उनके उच्च पदके योग्य बनाता है।

इस संस्थाको कोलम्बोसे दस मील दूर रत्मालना नामक ग्रामके रहनेवाले श्री धर्मालोकने सन् १८७५ में स्थापित किया था। धर्मालोक स्वयं बड़ा विद्वान् और प्रतिभाशाली याजक था, और उसे अपने शिष्य श्री धर्मारामसे भी बड़ी सहायता मिली थी। इन दोनोंने कल्याणीके समीप यह कालेज स्थापित करके ज्ञानके दीपकको पुनः प्रज्ज्वलित किया, जो पोर्तगीज़ोंके समयसे बुझ गया था।

इस कालेजके वर्तमान प्रधान श्री धर्मानन्द इस संस्थामें सन् १८८४ में पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें प्रविष्ट हुए थे। उस समय उन्होंने अपने ग्रामके ईसाई स्कूलमें कुछ थोड़ीसी शिक्षा पाई थी, परन्तु अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, ग्राहक स्मरण-शक्ति और परिश्रमसे वे शीघ्र ही श्री धर्मारामके प्रिय शिष्य हो गये। आज उन्हें पाली और संस्कृतके महान पण्डित होनेका सम्मान प्राप्त है, जो सर्वथा उचित है।

कल्याणीके विद्यालंकार कालेजके महायाजक उतने ही दयालु हृदय हैं, जितने वे विद्वान हैं। हाल ही में एक अवसरपर जब मैं वहाँ गया था, तब उन्होंने अपने कई मूल्यवान घंटे व्यय करके मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया था और मुझे कालेजकी पढ़ाई और बौद्धधर्मके पुनरुद्धारकी अनेक बातें बताई थीं।

मेरी इस बातचीतमें भिक्षु आनन्द दुभाषियेका काम करते थे। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आनन्द महाशय मेरी ही तरह पंजाबी हैं। उन्होंने बहुत थोड़े समयमें सिंहली भाषाका अभ्यास कर लिया है और पालीके अध्ययनमें भी काफ़ी अग्रसर हो गये हैं। मुझे आशा है कि कुछ वर्षों बाद वे लंका और भारतवर्षके संस्कृति सम्बन्धको दृढ़ करनेमें प्रधान भाग लेंगे।

इस सम्बन्धमें मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि इस कालेजमें संस्कृतके प्रोफ़ेसर पंडित के० ए० भट्ट भी दक्षिण-पश्चिम-भारतके रहनेवाले हमारे ही देशवासी हैं। एक और वयस्क भिक्षु धर्मरत्न भी कुछ दिन तक भारतवर्षमें रह चुके हैं। अनेक बौद्ध याजकगण भारतवर्षका नाम ऐसी श्रद्धा-भक्तिसे लेते हैं, जिसे सुनकर मेरा गला भर आता है। सौभाग्यसे इनमें अभी तक अनेक सिंहली राजनीतिज्ञोंकी भाँति भारत-विरोधी भाव नहीं आ पाये हैं।

काउन्ट टालसटाय

[लेखक :—रायबहादुर श्री खड्गजीत मिश्र, एडवोकेट]

संसारमें ऐसे मनुष्य विरले ही होते हैं, जो धन-वैभवमें जन्म पाकर और सम्पत्तिका सुख प्राप्त होनेपर भी अपने जीवनको परोपकार और धर्ममें व्यतीत करते हैं। भारतमें ऐसे भगवान गौतम बुद्ध, महर्षि भर्तृहरि आदि अनेक पुरुषोंने राज-पाट त्यागकर सात्विक जीवन व्यतीत किया था। भर्तृहरि केवल कोरे बाबाजी नहीं थे, वरन् वे बड़े साहित्यिक भी थे। उन्होंने नीति, शृंगार तथा वैराग्यशतक बनाये, जिनका एक-एक श्लोक एक-एक अमूल्य रत्न है और उपदेश तथा ज्ञानसे भरा हुआ है। हालमें रूसमें ऐसे ही महात्मा टालसटाय हुए हैं, जिनका वृत्तान्त आज यहाँ दिया जाता है।

टालसटायका जन्म २८ अगस्त सन् १८२८ को हुआ था।

उनके माता-पिता दोनों ही बहुत ऊँचे खानदानके थे। उन्हें शिक्षा भी ऊँचे दरजेकी दी गई थी। कज़ान-विश्वविद्यालयमें उन्होंने बाईस वर्षकी अवस्था तक शिक्षा पाई थी। उसके बाद वे स्वयं अपनी रुचिसे फौजमें भरती हो गये।

एक मरतबा जब वे लड़ाईमें लगे थे, एक ऐसा मौका आकर पड़ा, जब उनके प्राण जानेमें कुछ देर बाकी न थी, परन्तु अपने भाग्यवश या यह कहना अनुचित न होगा कि संसारके सौभाग्यसे वे मृत्युसे बच गये। उनके दोस्त साडोटाटरने अपना घोड़ा उन्हें दे दिया और कहा—"भाग जाओ, नहीं हम दोनों दुश्मनोंके हाथसे पकड़े जायँगे और मारे जायँगे।" परन्तु उन्होंने अपने दोस्तकी इस कृपाको यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि यह सर्वथा अनुचित है कि एक मित्रकी जान संकटमें डालकर कोई अपनी जान बचावे। यह समझाये जानेपर कि मित्रकी कृपासे दिये हुए घोड़ेको स्वीकार न करनेसे दोनों ही के प्राण जानेकी आशंका है, टाल्सटायने उसे स्वीकार कर लिया।

उनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर गवर्मेन्टने उन्हें एक ही वर्षकी नौकरीके बाद सेवास्टापोल बुला लिया, जहाँ उस समयमें एक बहुत बड़ा युद्ध छिड़ा हुआ था। सेवास्टापोलमें टाल्सटायको संग्रामके भयंकर दृश्य, मनुष्योंकी क्रूरता, शत्रुओंका अमानुषिक व्यवहार, ईश्वरदत्त जीवनकी तुच्छता, अस्पतालोंकी बेरहमी आदि देखनेका अवसर प्राप्त हुआ। इन क्रूर दृश्योंको देखकर टाल्सटायके हृदयमें युद्धके प्रति बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई। कलिंगके भीषण युद्धने सम्राट् अशोकके हृदयपर जो प्रभाव डाला था, सेवास्टापोलके युद्धने वही प्रभाव टाल्सटायके हृदयपर भी डाला। उन्होंने सेवास्टापोलके मुहासिरेका हाल एक किताबमें लिखा है, जिसका नाम है 'सीज़-आफ़्-सेवास्टोपोल'। वहींसे उनके धर्म-सम्बन्धी विचारोंमें परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। वे ईसाई ज़रूर थे, परन्तु वे आजकलके साम्राज्यवादी खूँख्वार ईसाई नहीं थे। अपने मज़हबको ईसा मसीहके सिद्धान्तके आधारपर इस तरह वर्णन करते थे—

"Religion of Jesus but purified from dogma and mysticism, a practical religion not promising bliss in future but giving happiness on earth. To work conscientiously for the union of mankind by religion."

अर्थात्—"हम ईसा मसीहके धर्मको मानते हैं, परन्तु उन बातोंको नहीं मानते जो बिना प्रमाणके मान ली गई हैं; न उन बातोंको मानते हैं, जो गूढ़ रहस्ययुक्त हैं। हमारा धर्म इस संसारके कामका है, जो इस जीवनको आनन्दमय बनाता है, न कि भविष्यके सुखकी प्रतीक्षा करता है। हमारा यह सिद्धान्त है कि धर्मके द्वारा मनुष्य-मात्रमें एकता स्थापित की जाय।"

रूसमें ज़ारशाहीका दौरदौरा था। 'सीज़-आफ़्-सेवास्टापोल'में टाल्सटायने जो विचार प्रकट किये, उनसे गवर्मेन्ट बहुत असन्तुष्ट हुई। उन्होंने अपनी पुस्तकमें सरकारकी युद्ध-नीतिकी निन्दा की, और स्वतन्त्र धार्मिक विचार प्रकट किये। यह दोनों बातें सरकारको अप्रिय मालूम हुईं। फल यह हुआ कि उनकी तरक़्क़ी बन्द कर दी गई।

परन्तु स्वतन्त्रताके प्रेमियोंपर धनके हानि-लाभका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा करता। तरक़्क़ी मिले या न मिले, उनको इसकी किंचित्मात्र चिन्ता नहीं हुई। सरकारी अन्यायोंसे असन्तुष्ट होकर उन्होंने सन् १८५६ में स्वयं ही अपने पदसे इस्तीफ़ा दे दिया और अपना समय लिखने-पढ़नेमें व्यतीत करने लगे। सन् १८५६ से सन् १८६१ तक उन्होंने अनेक अच्छे-अच्छे ग्रन्थ रचे, जिनमें कई महत्त्व-पूर्ण, उपदेशप्रद उपन्यास हैं। उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—

The Snowstorm	(1856)
Polikreshka	(1860)
Two Hussars	(1856)
Three Deaths	(1858)
Family Happiness	(1859)
Childhood, Boyhood & Youth	(1852-57)

इस अन्तिम पुस्तकमें उन्होंने अपने घरानेका हाल देकर अपनी शिक्षा आदिका वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त

'A Raid', 'The wood felling', 'Squire's morning' इन तीनों ग्रन्थोंमें उन्होंने अपनी फ़ौजी योग्यताका पूरा परिचय दिया है। यह तीनों पुस्तकें सन् १८५२ में रची गई थीं।

टाल्सटायकी डायरी पढ़नेसे मालूम होता है कि उनके मानसमें कैसे-कैसे विचार और संकल्प-विकल्प पैदा होते थे। उस ज़मानेमें प्राय: सभी सम्भ्रान्त व्यक्ति एक समाज-सा बनाकर अपना समय अधिकतर क्लबोंमें व्यतीत करते थे, जैसा कि अब भी देखनेमें आता है। सोसाइटी या क्लब-लाइफ मनुष्यके जीवनका एक आधार और फ़ैशन-सा बन रहा था। जिधर दृष्टि उठाकर देखिये, उधर ही मनुष्य अपना समय और द्रव्य स्त्रियों, शराब, ताश, जुए या इसी क़िस्मके और खेल-तमाशोंमें बरबाद करते दिखाई पड़ते थे। स्वभावत: टाल्सटायके चित्तमें यह कल्पना उठती थी कि सांसारिक सुख इन्हीं बातोंमें प्राप्त हो सकता है। कभी-कभी उनके मनमें भी इच्छा उत्पन्न होती थी कि वे भी इस विषयमें अनुभव प्राप्त करें, पर साथ-ही-साथ उनका अन्त:करण उन्हें यह समझाता हुआ मालूम पड़ता था कि ये सब दुर्व्यसन हैं और इनमें पड़ना अपनी आत्माको कलुषित करना है। ये धर्म और ईश्वरके विरुद्ध हैं। उनकी डायरीके पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस धर्म और अधर्मके संग्राममें अन्तमें सदैव धर्मकी ही विजय होती थी। टाल्सटायने एक बहुत अमूल्य ग्रंथ लिखा है, जिसका नाम है 'The Light that shines in Darkness' (अँधेरेमें उजाला)। टाल्सटाय बड़े बारबाश आदमी थे। उन्हें इस बातका बड़ा शौक़ था कि दोस्तोंको अपने यहाँ निमंत्रित करके उन्हें खिलावें-पिलावें और साहित्यिक चर्चा करें। वे इसमें अपना बहुतसा समय लगाते थे। सन् १८५८ में आप एक स्थानपर स्थिररूपसे रहने लगे, और अपना अधिकांश समय अपनी जायदादकी देखभाल और इन्तज़ाममें लगाने लगे। इस कामसे जो समय बचता था, उसमें वे शिकार खेलते या नाच कराते थे।

इसी समय उन्हें सार्वजनिक कार्योंका भी चस्का लगा और वे बहुत-कुछ पब्लिकका काम करने लगे। उनके मनमें यह बात बैठ गई कि सार्वजनिक कार्योंमें शिक्षा देना या दिलाना ही सबसे मुख्य कार्य है। उन्होंने लगन और परिश्रमसे कई ग्रामीण पाठशालाएँ स्थापित कीं। स्कूलोंकी शिक्षाके विषयमें भी टाल्सटायके विचार बिलकुल नये और स्वतंत्र थे। आप कहते थे कि शिक्षकोंको यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि लड़कोंसे कहें कि यहाँ बैठो, इस समय जाओ, यह विषय पढ़ो। असलमें इसका उल्टा होना चाहिए। अर्थात् बच्चे जब पसन्द करें तब स्कूल आवें। वे जहाँ चाहें, वहाँ बैठें और जब उनकी तबियत हो, अध्यापकके लेक्चरको सुनें। अध्यापकोंको अपना अधिकार शान्ति-पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उनके अधिकार और वर्तावमें ऐसा आकर्षण होना चाहिये, जिससे लड़कोंकी रुचि पढ़नेकी तरफ़ बढ़े, उनमें प्रेरणा उत्पन्न हो, वे सांसारिक जीवन, साहित्य, कला और प्राकृतिक बातोंको जाननेके लिए उत्सुक हों और उनके चित्तमें किताबोंसे स्नेह पैदा करा दिया जाय। टाल्सटायका कथन था कि बालकोंको जो शिक्षा दी जाय, वह मजबूर करके न दी जाय।

काश्तकार, श्रमजीवी और गाँवके रहनेवालोंसे टाल्सटायको बड़ा प्रेम था। वे उनसे मिलना बहुत पसन्द करते थे। हमेशा उनकी तरफ़दारी करनेको तैयार रहते और उनके क्लेश दूर करके उनके जीवनको सुधारनेकी कोशिश किया करते थे। ज़मींदारके मुक़ाबलेमें वे उन लोगोंका सदा पक्ष लेते थे। इस सम्बन्धमें उन्होंने बहुत दिनों तक एक अख़बार भी निकाला था।

चौंतीस वर्षकी आयुमें टाल्सटायने एक अठारह वर्षीया युवतीसे विवाह कर लिया। इसी वर्ष उनका स्कूल-सम्बन्धी काम ख़तम हो गया। उन्होंने पब्लिक कामोंसे छुट्टी लेकर (साइबेरियाके मैदान) का रास्ता लिया। उनका विचार था कि थोड़े दिन पशु-जीवन—(Animal life) में बितावें।

टाल्सटायका यह विचार सांसारिक झगड़ोंके कारण पैदा हुआ था, परन्तु उनके समान मनीषी व्यक्तियोंका यह एकान्तवास अधिक काल तक स्थिर नहीं रह सकता था। समारामें लगातार तीन वर्ष तक दुर्भिक्ष पड़ा। लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। टाल्सटाय अपना एकान्तवास छोड़कर वहाँ चले गये, और वहाँके लोगोंकी सब प्रकारसे सहायता करने लगे। उन्होंने इसके लिए धनिकोंसे एक उत्तेजनापूर्ण अपील प्रकाशित की, और दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्योंके लिए बीस लाख 'रूबल' इकट्ठे किये। आध्यात्मिक विचारशील विद्वान होते हुए भी टाल्सटायको अपने सम्बन्धियोंसे बड़ा स्नेह था। सन् १८६० में इनके भाई निकोलायका देहान्त हो गया। उसपर उन्हें इतना दुःख हुआ कि वे आत्म-घात करनेपर उतारू हो गये और बहुत समझाने-बुझानेपर रुके।

डाक्टर सोपिनहौरके ग्रंथोंमें टाल्सटायकी बड़ी रुचि थी। वे उन्हींको बहुत पढ़ते थे, उनके विषयमें वे बारबार कहा करते थे—

"He has given me such moral joys as I have never known before." अर्थात्—"उनसे मुझे वह आध्यात्मिक सुख मिला है, जो कभी पहले नसीब नहीं हुआ।"

सन् १८८६ में आपने एक किताब लिखी, जिसका नाम है 'What then must we do?' ('तब हम क्या करें?') इसमें शिक्षित समाजपर बड़े आक्षेप किये गये हैं। इसमें आपने दिखाया है कि आजकलकी सभ्यतामें स्वार्थ भरा हुआ है। मनुष्य उस स्वार्थको पूरा करनेके लिए बड़े-बड़े छल, कपट, फरेब, दम्भ आदि रचता है, झूठ बोलता है, दगा करता है, बनावटें करता है। जो सभ्यता इन पापोंसे भरी हुई है, वह ईश्वरसे विमुख है। उससे कल्याण हो ही नहीं सकता। बड़े-बड़े ज़मींदार, ओहदेदार, धनिक आदि सब छोटे-छोटे सीधे-सादे किसानोंको लूट-खसोटकर अपना वैभव बनाते हैं। जो मनुष्य जितना अधिक रुपया खर्च करता है, उतना ही कम काम करता है, और वह अपना काम दूसरोंसे लेता है। जो स्वयं कम करता है, वह काम अधिक करता है। वह बेचारा अपना काम करता है और दूसरोंका काम भी। धन ही पापका मूल कारण है। इसीके लिए संग्राम ठाने जाते हैं, आदमी मारे जाते हैं, सल्तनतें बरबाद हो जाती हैं और जाल बनाये जाते हैं। धन ही के लिए अदालतोंमें रोज़ झगड़े मचते हैं और कितने लोग जेल जाते हैं। उन्होंने यह भी दिखाया है कि काम करनेवाले तो दुःख उठाते हैं और अनेक प्रकारके क्लेश सहते हैं, पर धनी लोग उन्हीं गरीब काम करनेवालोंकी बदौलत मौज उड़ाते और संसारमें सुख भोगते हैं।

जो विचार बहुधा मनुष्योंमें अपनी इज़्ज़त और बड़प्पनके पाये जाते हैं, वे टाल्सटायमें छू भी नहीं गये थे। रूसमें जूरी होना एक बड़ी इज़्ज़तकी बात समझी जाती थी, परन्तु सरकारने जब उन्हें जूरी बनानेका प्रस्ताव किया, तो उन्होंने उसे साफ़ इनकार कर दिया। मध्यम श्रेणीके कारतकार और मज़दूर जो काम करते हैं, उनके करनेमें उन्हें किंचितमात्र भी संकोच नहीं होता था। वे अपने हाथसे हल चलाते थे, बूट बनाते थे, लकड़ी चीरते थे खादकी गाड़ियाँ हाँकते थे और बहुधा अपना समय तथा धन गरीबों एवं मुहताजोंके दुःख दूर करनेमें लगाते थे।

सन् १८८६ में टाल्सटाय बहुत बीमार पड़े। जीनेकी कोई आशा न रही, मगर बहुत दिन बीमार रहनेके बाद चंगे हो गये। चंगे होनेपर उन्होंने लिखने-पढ़नेका काम शुरू कर दिया। उस वक्त उन्होंने तीन ग्रंथ लिखे—

'The death of Ivan Ilyitch, Ivan the fool & The power of Darkness.'

इन तीनों ग्रंथोंमें ज्ञान और अध्यात्म कूट-कूटकर भरा है। कहीं-कहींपर समाजकी स्थितिपर बड़ी तेज़ चुटकियाँ ली गई हैं। एक स्थानपर उन्होंने बीमार और उसकी तीमारदारीका एक विचित्र खाका खींचा है। डाक्टरोंका आना, मरीज़को देखना, फ़ीसकी फ़िक्र, चारों तरफ़से मित्रों और बन्धुओंका मरीज़को घेरे रहना आदिका खूब वर्णन किया है। मज़ाक़-भरे

शब्दोंमें यह भी दिखाया है कि यद्यपि लोग ऊपरी भावसे मरीज़की सेवा और शुश्रूषामें तत्पर रहते हैं, पर मरीज़के ज़्यादा दिन तक बीमार रहनेसे उसकी तीमारदारी करना अपने लिए बन्धन समझने लगते हैं, और यह चाहने लगते हैं कि या तो मरीज़ जल्दीसे चंगा हो जाय, तो उनको पुरस्कार मिले और अपना एहसान जतानेका अवसर प्राप्त हो, अथवा मरीज़का खात्मा ही जल्द हो जाय, तो तीमारदारीके कष्टसे छुट्टी मिले। कोई-कोई—विशेषकर वे जो मरीज़के वारिस होते हैं, या जिनको मरीजकी मृत्युके पश्चात् कुछ प्राप्तिकी आशा होती है, वे तो मरीज़की आरोग्यताकी अपेक्षा उसका मर जाना ही बेहतर समझते हैं!

'Krentzer Sonata' नामक पुस्तक सन् १८८६ में लिखी गई थी। मिल्टन आदि महाकवियोंने जैसे शब्दोंमें स्त्रियोंसे घृणा प्रकट की है, वैसे ही कठोर शब्दोंमें टाल्सटायने भी इस ग्रन्थमें औरतोंसे घृणा प्रकट की है। उनका मत है कि संसारमें पाप लानेका मार्ग औरतें ही हैं। वे ही अधिकतर पापोंकी जड़ हैं। वे यह भी मानते थे कि स्त्रियोंमें पतिव्रत-धर्म होना प्रायः असम्भव है; वह केवल एक कल्पना या बहाना-मात्र ही है।

सन् १८८६ में टाल्सटायने एक किताब लिखी, जिसका नाम था 'Fruits of Culture,' इस पुस्तकमें शिक्षित समाज—प्रोफेसर, डाक्टर, ज़मींदार बेरिस्टर, इत्यादिका खूब मज़ाक़ उड़ाया गया है तथा फ़ैशनवाली स्त्रियोंका बहुत बुरी तरहसे खाका खींचा गया है। उनकी रायमें ये लोग बनते बहुत हैं। कोई आध्यात्मिक विद्या जाननेका दावा रखता है, कोई योग, कोई वेदान्त कोई ज्योतिष और कोई साहित्य आदिका अद्वितीय विद्वान, बनता है, मगर टाल्सटायकी रायमें वे लोग सब ढोंगी होते हैं।

७८ वर्षकी अवस्थामें टाल्सटायने एक किताब लिखी। उसमें शेक्सपियरके नाटकोंकी समालोचना की गई है। उस किताबका नाम है 'Shakespear and the Drama' इस किताबकी रचना और उसे पढ़नेसे यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि टाल्सटायको साहित्यसे कितना अधिक प्रेम था।

टाल्सटायके राजनैतिक विचार बिलकुल स्वच्छन्द और स्वतन्त्रतापूर्ण थे। वे उन्हें निर्भीक होकर प्रकाशित करते थे। वे यह साबित करते थे कि टैक्स लगाना, मालगुज़ारी लेना, ज़मीन ज़ब्त कर लेना आदि सख्त क़ानून गवर्मेन्ट इस कारणसे पास कर लेती है कि उसकी ताक़त प्रजाकी ताक़तके मुक़ाबलेमें ज़्यादा है। वे कहते थे—

"The cruel, coarse, stupid & deceitful Russian Government is such because the society it rules is morally weak,"

अर्थात्—"रूसकी सरकार निर्दयी, बदज़ात, मूर्ख और दग़ाबाज़ है। वह इसलिए ऐसी है कि जिस समाजपर वह शासन करती है, उस समाजमें नैतिक कमज़ोरी है।

सन् १९०२ में टाल्सटायने 'The address to the Czar and his assistants' ('ज़ार और उनके सहकारियोंके नाम पत्र') लिखा। उसमें उन्होंने प्रमाणों द्वारा यह बात दिखाई थी कि जो अधिकार बड़े-बड़े शिक्षित और धनी आदमियोंको प्राप्त हैं, वे सब किसानों और काश्तकारोंको भी मिलने चाहिए, तथा जिन क़ानूनोंसे किसानोंपर सख्ती होती है और वे तंग होते हैं, वे सब क़ानून रद्द हो जाने चाहिए। शिक्षाका अधिक प्रबन्ध होना चाहिए।

सन् १९१० में टाल्सटाय और उनकी पत्नीमें कुछ अनबन हो गई। तब उन्होंने रूसको छोड़ देनेका विचार किया, और एक डाक्टर पियाकोवेस्कीको साथ लेकर चल दिये। रास्तेमें बीमार पड़ गये। उसी सन्‌में ही उन्होंने एक और किताब लिखी थी, जिसका नाम है 'Three days in a village' ('एक ग्राममें तीन दिवस')।

धर्मके सम्बन्धमें टाल्सटायके विचार बहुत उत्तम थे। वे अपना सिद्धान्त इस तरह बताते हैं:—

"A man must live gladly and to do so must renounce all pleasures of life."

अर्थात—"आदमीको प्रसन्नतासे रहना चाहिए, मगर ऐसा करनेके लिए यह जरूरी है कि वह जीवनके समस्त ऐशो-आरामको छोड़ दे।"

'मेरा धर्म' ('My Religion') नामक किताबमें उन्होंने पाँच बातोंका निषेध किया है :—

1. Don't be angry. (क्रोध मत करो)
2. Don't lust. (व्यभिचार मत करो)
3. Don't bind yourself by oaths. (शपथ मत खाओ)
4. Be good to the just & to the unjust (न्यायी और अन्यायी दोनोंके प्रति नेकीका बर्ताव करो)
5. Resist not him that is evil. (जो बुरा है, उसका मुक़ाबला मत करो)

एक हफ्ता बीमार रहनेके बाद ७ नवम्बर सन् १६१० को टाल्सटायका देहान्त हो गया।

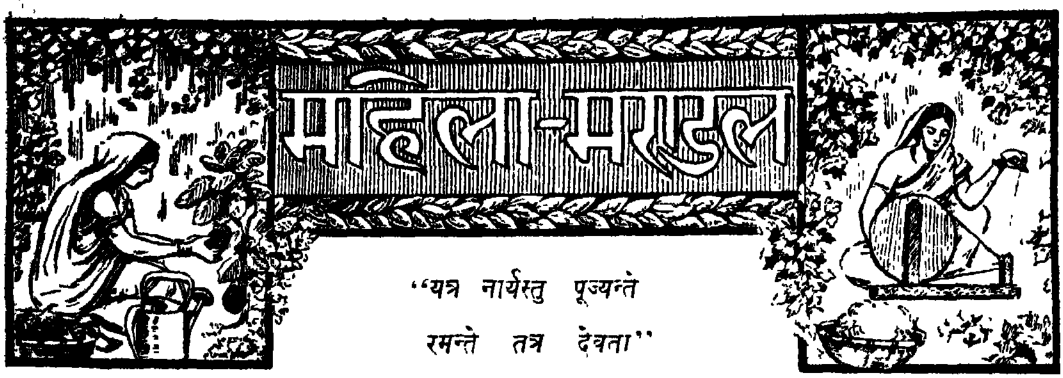
जिन पुस्तकोंका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उनके अतिरिक्त टाल्सटायने और भी अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं।

टाल्सटायके स्वभावका मुख्य गुण शान्ति-प्रियता थी, जो उनके रूपसे ही टपकती थी। उनका दूसरा गुण यह था कि वे आडम्बर रहित सच्ची और साफ़ बात कह देते थे। किसानोंपर बड़ी दया और सहानुभूति रखते थे और उनके लिए काम किया करते थे। टाल्सटायकी शक्ल-सूरतके सम्बन्धमें एक बार एक समालोचकने लिखा था—"किसानों जैसा उनका चेहरा था, नाक चौड़ी थी और चमड़ा शीत और आतपसे पका हुआ था।" इतने बड़े धुरन्धर विद्वान, पण्डित और आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उन्होंने किसानोंके लिए 'ए० बी० सी० प्राइमर' नामक एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें किसानोंके लिए छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी गई हैं। उनका मन साधारण पुरुषों और साधारण बातोंमें अधिक लगता था, और वे बड़े आदमियोंसे दूर रहते थे। उन्होंने लिखा है—"मुझे तब बड़ा आनन्द आता है, जब मैं चारों तरफ़ प्रकृतिसे घिरा रहता हूँ और जब मैं स्वयं प्रकृतिका अंश बन जाता हूँ। मुझे बड़े-बड़े शान-शौक़तके दृश्य अच्छे नहीं मालूम होते।"

टाल्सटायके लेखोंमें एक बड़ी खास बात यह है कि उनके कहानी लिखनेका ढंग अनूठा है। वे कहानी लिखते-लिखते मर्मकी बड़ी-बड़ी बातों और अध्यात्मके गूढ़ सिद्धान्तोंको सरलतासे हल कर देते हैं, फिर भी उनकी भाषा अत्यन्त सरल रहती है। उनकी कहानियोंके पात्र साधारण मनुष्य होते हैं। उनका घटनाचक्र दिन-रातकी घटनाओंपर अवलम्बित होता है। उनकी बातें कहींसे अस्वाभाविक या प्रसंग-रहित नहीं होतीं, और न वे किसी पात्रके मुखसे धर्मके लम्बे-चौड़े व्याख्यान ही दिलाते हैं। एक समालोचक उनके 'युद्ध और शान्ति' नामक ग्रन्थको होमरके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इलियड' से भी उत्तम बतलाते हुए कहता है—"जहाँ तक उदारता और सार्वभौमिकताका सम्बन्ध है, 'युद्ध और शान्ति' से तुलना करनेवाला आधुनिक साहित्यमें कोई भी ग्रन्थ नहीं है। मानवी व्यवहारोंकी पेचीदगी और दूरदर्शिताका वर्णन करनेमें यह ग्रन्थ 'इलियड'से भी बढ़ा-चढ़ा है।"

टाल्सटायके उपन्यासोंका आनन्द पढ़नेसे ही प्राप्त हो सकता है। श्री प्रेमचन्दजीने उनकी इक्कीस कहानियोंका हिन्दीमें अनुवाद करके हिन्दी-साहित्यका उपकार किया है।

टाल्सटायके लिखे ग्रन्थोंकी संख्या बहुत है। पचाससे अधिक ग्रन्थ तो उनके जीवन ही में छप चुके थे और कुछ ग्रन्थ उनकी मृत्युके पश्चात् प्रकाशित हुए हैं। जो कोई भी विषय वे उठाते थे, वह उनकी लेखनीसे मानो जीवित हो उठता था।



"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवता"

'कृष्णाभाविनी नारी-शिक्षा-मन्दिर'

कलकत्तेसे चौबीस मील दूर गंगाके किनारे चन्द्रनगर नामक एक कस्बा है। यह कस्बा फ्रेंच लोगोंके अधिकारमें है। यहाँ गत चार वर्षोंसे 'कृष्णभाविनी नारी-शिक्षा-मन्दिर' नामक एक विद्यालय स्थापित है। थोड़े दिन हुए जब इस शिक्षा-मन्दिरका चतुर्थ वार्षिक उत्सव श्रीमती कामिनी रायकी अध्यक्षतामें मनाया था। अध्यक्षाने अपने भाषणमें कहा—"प्रकृत-शिक्षा केवल पढ़ना-लिखाना सीख लेने या स्मरणशक्ति बढ़ा लेने अथवा किसी विशेष विषयका ज्ञान प्राप्त कर लेने ही का नाम नहीं है। वास्तविक शिक्षा गठन-मूलक होती है, और उसका प्रभाव बड़ा व्यापक होता है। मनुष्यकी स्वाभाविक शक्तियोंका अनुशीलन, उनका यथाविधि परिचालन, उत्कर्ष और विकास अथवा संक्षेपमें चित्र और चरित्र-गठनका नाम ही असली शिक्षा है।''''''यह प्रश्न अकसर



'कृष्णभाविनी नारी-शिक्षा-मन्दिर'का चतुर्थ वार्षिकोत्सव



सभानेत्री श्रीमती कमिनी राय और मन्दिरकी शिक्षिकाएँ



शिक्षा-मन्दिरकी छात्राओंका संगीत

उठाया जाता है कि स्त्रियोंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए ! यह प्रश्न क्यों नहीं उठाया जाता कि पुरुषोंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए ! मेरी समझमें शिक्षाका लक्ष्य मनुष्यत्वका विकास करना और ज्ञानके द्वारा, सुरुचिके द्वारा, आत्म-संयम एवं पुण्याचरणके द्वारा सत्यम् शिवम् सुन्दरम्की प्रतिष्ठा तथा पूजन करना है। पुरुषों और स्त्रियों—दोनोंकी शिक्षाका अन्तिम उद्देश्य यही है।

इस शिक्षा-मन्दिरमें छात्राओंकी पढ़ाई-लिखाईके अतिरिक्त संगीत और दस्तकारी आदिकी भी शिक्षा दी जाती है। लड़कियोंके बनाये हुए कुछ कारीगरीके चित्र बड़े सुन्दर हैं। कलकत्तेकी 'यूनिवर्सिटी-इन्स्टीट्यूट'में जो कला-प्रदर्शिनी हुई थी, उसमें वे प्रदर्शित किये गये थे। यहाँपर इस सम्बन्धके कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।



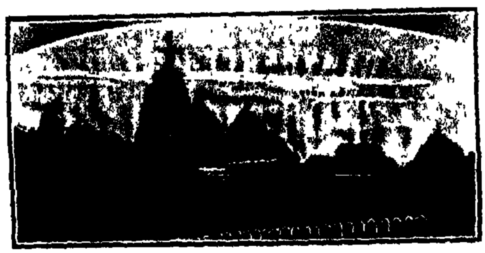
रेशम और जरीका बनाया हुआ श्रीकृष्णका चित्र



रेशमपर सुई द्वारा बनाया हुआ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरका चित्र



मछलीके छिलकेका बनाया हुआ लोमड़ी और अंगूरका चित्र



साटनपर रेशमके सूतसे बनाया हुआ पुरीके मन्दिरका चित्र

--

महिलाओंकी शिल्प-प्रदर्शिनी

कलकत्तेमें गत चार वर्षोंसे महिला-शिल्प-प्रदर्शिनी नामक एक प्रदर्शिनी होती है। यह नारी-शिक्षा-समितिकी देख-रेखमें की जाती है, और उसका उद्देश्य महिलाओंके हाथके बने हुए पदार्थोंको प्रदर्शित करके स्त्री-शिक्षाके क्षेत्रको विस्तृत और लोकप्रिय बनाना है। इस प्रदर्शिनीमें चरखेका कता हुआ सूत, महिलाओं द्वारा निर्मित सूती और रेशमी कपड़े, दर्जीका काम, कार्पेट बुनना, सुईका काम,



श्रीमती सुनाजिनी देवी

गुड़िया बनाना, मिट्टीके खिलौने, नारियलकी मिठाई, चटनी, अचार, मुरब्बे आदि प्रदर्शित किये गये थे। इस वर्ष प्रदर्शिनका पारितोषिक वितरण श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी धर्मपत्नी श्रीमती सुलाजिनी देवीने किया था।

इस समय नारी-शिक्षा-समितीके शिल्प-विद्यालयमें पचहत्तर छात्राओंको बिना फीस उपर्युक्त सब कार्योंकी शिक्षा दी जाती है। छात्राओंकी बनाई हुई वस्तुओंकी बिक्रीके लिए एक को-आपरेटिव-सोसाइटी बनाई गई है, जिसकी रजिस्ट्री हो चुकी है।

इस शिक्षासे हमारी पुत्रियाँ गृहस्थ जीवनमें पदार्पण करनेके पश्चात् सुगृहिणी और सुमाताएँ बनेंगी। साथ ही यदि आवश्यकता होगी तो वे अपनी मेहनतसे अपनी जीविका भी उपार्जन करनेमें समर्थ हो सकेंगी।

—

पुरुष स्त्रियोंकी समता

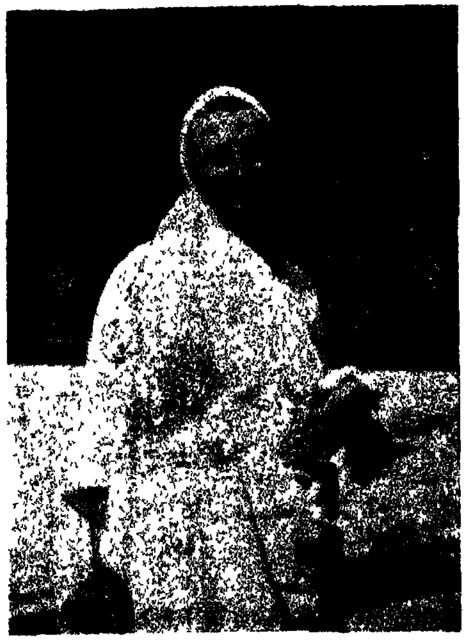
आजकल समताका युग है। स्त्रियाँ पुरुषोंकी हर बातमें बराबरी करने लगी हैं। यूरोप और अमेरिकामें, पुरुषोंके प्रत्येक पेशे और काममें—यहाँ तक कि पुलिस और फौजमें भी—स्त्रियाँ घुस पड़ी हैं। स्त्रियोंकी इस संसार-व्यापी जागृतिमें भला यह कब सम्भव था कि भारतीय महिलाएँ पीछे रह जातीं। वे भी खुले मैदानमें आकर पुरुषोंकी बराबरी करने लगी हैं। विद्याके क्षेत्रमें वे पुरुषोंके साथ यूनिवर्सिटीकी डिग्रियोंके लिए प्रतियोगिता करती हैं और कभी-कभी उनसे बाज़ी भी मार ले जाती हैं। देशकी



बांकुड़ा ज़िलेके बेतुड़ ग्रामकी कुछ सत्याग्रही महिलाएँ



कलकत्तेमें स्त्रियोंकी मीटिंग



अंग्रेज महिला कुमारी मीराबाई (स्लेड)

अनेक म्यूनिसिपैलिटियोंमें महिला सदस्याएँ मौजूद हैं। एक भारतीय और एक यूरोपियन महिलाको भारतकी महान् राष्ट्रीय महासभाकी सभानेत्री होनेका भी सम्मान प्राप्त हो चुका है, पर हमारी महिलाओंकी इतने ही से सन्तुष्टि नहीं हुई। जब महात्माजीने सत्याग्रह संग्राम छेड़ा, तो वे भी इस समरमें पुरुषोंके साथ बराबरीसे कूदनेको उतावली हो उठीं और अन्तमें वे महात्माजीकी आज्ञासे युद्धमें



मिस मिठूबहन पेटिट तथा कुछ अन्य महिलाएं महात्माजीके साथ एक मीटिंगमें जा रही हैं



फीरोजाबाद जिला आगरेकी एक ७० वर्षीया स्वयंसेविका


कलकत्तेकी महिला स्वयंसेविकाएँ जुलूस निकाल रही हैं


श्रीमती निस्तारिणी देवी कलकत्तेमें एक सभामें व्याख्यान दे रही हैं

शामिल हो गईं। आजकल देशके प्रत्येक भागमें भारतीय महिलाएँ पुरुषोंके समान कार्यमें लगी हुई हैं। यहाँ इस सम्बन्धके कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।


मेरठके नौचन्दीके मेलेपर महिला स्वयंसेविकाओंका एक दल, जिसने विलायती वस्त्रके बहिष्कारके लिए बड़ा काम किया



कलकत्तेकी महिलाओंकी एक सभा

श्रीमती शन्नोदेवी

पंजाबके जालन्धर नगरमें कन्या-महाविद्यालय नामक एक सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था है। उसकी शिक्षिका श्रीमती शन्नोदेवीने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे विद्यालयके लिए जब तक एक लाख रुपयेका चन्दा न कर लेंगी, तब तक लौटकर जालन्धर न जायँगी। इसके लिए वे भारतवर्षके भिन्न-भिन्न नगरोंमें घूमती फिरीं, परन्तु महीनोंकी यात्राके पश्चात् भी वे पैंसठ हज़ार रुपयेसे अधिक एकत्र न कर सकीं। इसपर वे समुद्र-यात्रा करके अफ्रिका गईं, और वहाँ केवल टांगानिक्या प्रान्तसे ही पैंतीस हज़ार चन्दा करके ले आईं। टांगानिक्याके प्रवासी भाइयोंने मुक्त-हस्तसे उन्हें दान दिया। यही नहीं, उनके साहसपर प्रसन्न होकर कुछ अंग्रेजोंने भी चन्दा दिया।

प्रसन्नताकी बात है कि हमारे देशकी महिलाएं स्वयं ही अब स्त्री-शिक्षाके मामलेमें अगुआ हो रही हैं, साथ ही उनमें दृढ़ता, साहस और उत्साह भी बढ़ रहा है।

—

कलकत्ता-यूनिवर्सिटीकी प्रथम महिला फेलो

श्रीमती पी० के० रायको कलकत्ता-यूनिवर्सिटीने अपना फेलो नियत किया है। वे ही पहली महिला हैं, जिन्हें कलकत्ता यूनिवर्सिटीने यह सम्मान प्रदान किया है।

श्रीमती राय स्वर्गीय दुर्गामोहनकी पुत्री, स्वर्गीय एस० आर० दासकी भगिनी और देशबन्धु दासकी चचेरी बहन हैं। उन्होंने अपनी बहन लेडी जगदीशचन्द्र बोसकी सहायतासे कलकत्तेमें स्त्री-शिक्षा-प्रचारके लिए जितना काम किया है, बंगालकी किसी भी महिलाने उतना नहीं किया। वे डाक्टर पी० के० रायकी धर्मपत्नी हैं, जो पहले कलकत्तेके प्रेसीडेन्सी कालेजके प्रिन्सिपल रह चुके हैं।

गत २२ मार्चको जब सिनेटकी मीटिंगमें वे पहले-पहल उपस्थित हुईं, तब वाइस-चान्सलरने उनका स्वागत किया।



श्रीमती पी० के० राय



श्रीमती कस्तूर बा

चित्र-संग्रह

जापानका प्राचीन और नवीन नृत्य

जापानके जनसाधारणमें तिथि-त्यौहारों और आनन्द-उत्सवोंपर नृत्य करना सदासे प्रचलित रहा है। जीवन यात्रामें फँसे हुए देहातोंके रहनेवालोंको सुदूर शहरोंमें जाकर नाच-तमाशा देखनेका अवसर बहुत कम मिलता है, इसलिए



मल्पशीरी-चोका नृत्य

वे लोग तिथि-त्यौहारोंपर नाना प्रकारके नृत्य करके अपने मनोरंजनकी सामग्री इकट्ठी करते हैं। इन सब प्रकारके नृत्योंमें 'कागूरा' नामक नृत्य सबसे पुराना है। उत्सवके दिन गांववाले ग्राम-देवताके मन्दिरके सामने इकट्ठे होकर नृत्य करते थे। यह नृत्य देवभक्तिसे प्रेरित होकर किया जाता था, इसलिए इसके लिए कोई पेशेवर लोग नहीं होते थे, किन्तु जापानके देहातोंमें शिन्तो धर्मका प्रभाव कम होनेके साथ-ही-साथ 'कागूरा' नाचका चलन भी कम हो गया है। आजकल अनेक शिक्षित जापानी इस बातकी चेष्टा कर रहे हैं कि यह नाच फिरसे प्रचलित हो जाय।

आजकल जापानमें नृत्य-कलाके पुनरुद्धारकी जो चेष्टा हो रही है, वह यूरोपियन प्रभावके कारण हो रही है। गत यूरोपियन युद्धके बाद बहुतसे अमेरिकन पेशेवर नर्तक और नर्तकियाँ जापान गईं और उन्होंने वहां अपनी कला दिखाई। उनके नृत्योंको देखकर जापानके भद्र समाजमें नृत्यके लिए फिरसे उत्साह जाग्रत हो गया है, परन्तु वहां नृत्यके इस पुनरुत्थानमें यूरोपकी प्रसिद्ध नर्तकियों—जैसे, आना पेवलोवा, रुथ सेन्टडेनिस, ला अर्जेन्टिना आदि—का प्रभाव खूब दिखाई पड़ता है।

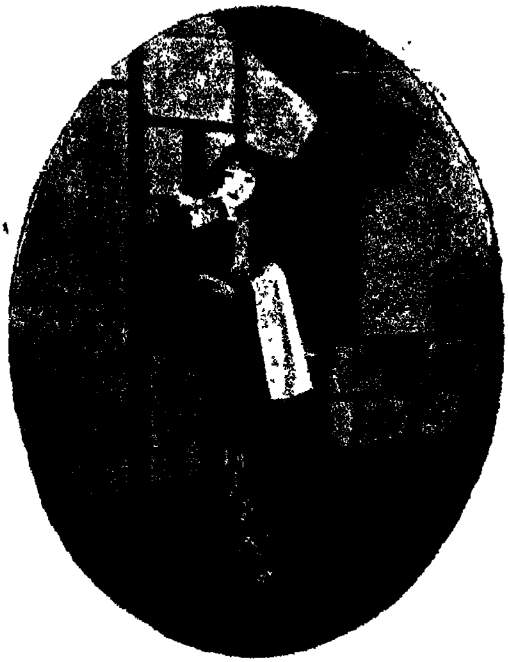


आधुनिक जापानकी बालिका नर्तकी फूजिमा शिजू एक नाटकमें नृत्य कर रही है



जापानका प्रसिद्ध नर्तक उनोये किकुगोरो

जापानमें न केवल यूरोपियन नृत्यका ही प्रभाव पड़ा है, बल्कि वहाँ यूरोपियन संगीतका प्रभाव भी बहुत अधिक है। बहुतसे लोग नवीनताकी झोंकमें खालिस यूरोपियन संगीतके



जापानी नर्तकी ईशी-ई-कोनामी नृत्यमें 'चीनकी पुतली' नामक कलापूर्ण नृत्य

प्रचारकी चेष्टा कर रहे हैं। इसे देखकर जापानी कलाके शुभचिन्तक अनेक व्यक्ति कहते हैं कि विदेशी नृत्य और संगीत जापानी प्रकृतिके साथ मेल नहीं खा सकता। जापानके लिए वहींके नृत्य और संगीतको समयानुसार परिवर्तन करके ठीक करना होगा। वे लोग जापानी और यूरोपियन आदर्शोंको मिलाकर एक नवीन, सुन्दर और जापानी प्रकृतिके अनुकूल कला उत्पन्न करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

—

आलू और विलायती बैंगन एक ही पेड़पर !

लीजिए, एक महाशयने बीस वर्षके प्रयोगोंके बाद एक ऐसा विचित्र पेड़ बना डाला है, जिसकी डालियोंमें विलायती बैंगन (टोमैटो) फलते हैं और जड़ोंमें आलू पैदा होते हैं। अमेरिकाके वोरसेस्टर नामक स्थानके एक बागमें मिस्टर आस्कर सोडर होम नामक एक प्रधान माली हैं। उसने बीस वर्षकी परीक्षा और प्रयोगके बाद इस वृक्षको तय्यार किया है। उसका कथन है कि टोमैटोकी जड़ आलूकी जड़से अधिक शक्तिशाली होती है। उसके कथनकी पुष्टि इस वृक्षसे हो जाती है, क्योंकि यह कमज़ोर नहीं है। इस दोगले वृक्षको यदि सहारा मिले तो यह दस फीट तक ऊँचा चला जाता है,

और उसमें साधारण वृक्षकी अपेक्षा टोमेटों भी बहुत फलते हैं।



पेड़ जिसमें टोमैटो और आलू—दोनों पैदा होते हैं। जरा पेड़की ऊँचाई देखिये। वह अपने उत्पादक सोडरहोमसे भी ऊंचा—१० फीटका है

सोडर होम इस विचित्र वृक्षको इस तरह तय्यार करता है। वह पहले एक गमलेमें एक आलूको बोता है, जिसमें कमसे कम दो आँखें हों और दूसरे गमलेमें टोमैटो। जब दोनोंमें चौथाई इंच व्यासके पौधे फूट आते हैं, तब वह दोनोंकी तिरछी क़लम काट लेता है और दोनोंको सटाकर डोरेसे बांध देता है। इस बातकी खास सावधानी रखी जाती है कि वह सूख न जाय।

सोडर होमका विचार है कि अब कुम्हड़ेके पेड़में खीरा पैदा करे। वह इसके लिए प्रयोग कर रहा है।

—

छाता बेचनेवाली मशीन

आप शहरमें घूमनेके लिए बाहर निकले। रास्तेमें मेघराज बरस पड़े, तो आसानीसे घर लौटना मुहाल है। जर्मनीके बर्लिन नगरने इस दिक़्क़तको हल करनेके लिए एक छाता बेचनेवाली मशीन निकाली है। सड़कपर जगह जगहपर यह मेशीनें



बर्लिनकी छाता बेचनेवाली मशीन

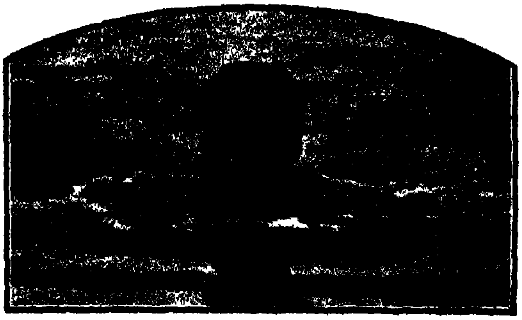
खड़ी हैं। अगर पानी बरसने लगे, तो आप इस मशीनमें एक अठन्नी डालकर हैंडिल पकड़कर खींच लीजिए। भीतरसे एक काम चलाऊ छाता निकल पड़ेगा। इस छातेमें ऊपर मोमी काग़ज़ और भीतर काठका हैंडिल होता है। यह दो-एक बार काम दे सकता है।

—

प्रसिद्ध जापानी तैराक

इस बीसवीं शताब्दीके आरम्भसे संसारके सब राष्ट्रोंने मिलकर मानवी स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिए 'ओलम्पिक गेम्स'का संगठन किया है। 'ओलम्पिक गेम्स' में सभी पुरुषोचित और स्वास्थ्यवर्द्धक खेल-कूद—जैसे, दौड़ना, कूदना, हाई-जम्प, लांग-जम्प, बोझ उठाना, तैरना आदि

सम्मिलित हैं। इन खेलोंकी प्रतियोगिता प्रति वर्ष यूरोपके किसी नगरमें हुआ करती है। वहाँ प्रति वर्ष प्रत्येक



प्रसिद्ध जापानी तैराक वाई सुरूटा

देशसे प्रत्येक खेलके सर्वोत्कृष्ट खिलाड़ी आ-आकर अपना करतब दिखाया करते हैं। वहाँ बाज़ी मारनेवाले खिलाड़ी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और सम्मानके भागी होते हैं। कुछ दिनोंसे भारतवर्ष भी इन खेलोंमें सम्मिलित होने लगा है।

जापानने सन् १६१२ में स्टाकहोमके 'ओलम्पिक गेम्स' में सबसे पहले भाग लिया था। उस वर्ष जापानी खिलाड़ियोंका जो डेपूटेशन वहाँ गया था, उसमें पाँच व्यक्ति थे। उनमेंसे केवल एक व्यक्ति एक दौड़में दूसरा स्थान प्राप्त कर सका था। बस, उस वर्ष उनकी कृति इतने ही पर समाप्त हो गई। इसके बाद महायुद्धके कारण यह खेल आठ वर्ष तक स्थगित रहे। सन् १६२० में जब वे फिर शुरू हुए, तब जापानियोंने फिर तेरह खिलाड़ी भेजे, परन्तु इस बार जापानियोंको बहुत निराश होना पड़ा। उनके सब खिलाड़ी हार गये। केवल दो टेनिसके खिलाड़ी जीत तो न सके, पर अन्त तक (Runners up) पहुँच गये।

परन्तु इस निराशासे उनके उत्साहमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई। वे लगातार कोशिश करते रहे और गत वर्ष उनके एक खिलाड़ी सुरूटाने तैरनेमें सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। वह छातीके बल दो सौ मीटरकी तैराईमें प्रथम हुआ। उसने केवल प्रथम स्थान ही अधिकृत नहीं किया, बल्कि उसने ओलम्पिक खेलोंमें तैराईका 'रिकर्ड' भी तोड़ दिया। उसने दो सौ मीटरकी लम्बाई केवल २ मिनट ४८.८ सेकेन्डमें तैरकर पार की। अब तक ओलम्पिक खेलोंमें कोई भी खिलाड़ी इतनी शीघ्रतासे इतनी दूरीको तैरकर पार नहीं कर सका है।

जंगली हाथियोंको पकड़ना

भारतवर्षकी जंगली पहाड़ियोंमें जंगली हाथियोंको पकड़ना संसारके बड़े मुश्किल कार्योंमें है। पालतू हाथी इन जंगली हाथियोंको फुसलाकर अपने झुण्डमें ले आते हैं, जहाँ वे बड़े मोटे-मोटे रस्सोंमें बाँधकर क़ैद कर लिए जाते हैं। यह मज़बूत रस्से सनके होते हैं। वे मशीनके बने नहीं होते, बल्कि देहाती भारतीय ही स्वयं उन्हें बना लेते हैं। इनमें एक-एक रस्सा छै-छै मन तक भारी होता है। यहाँपर इन जानवरोंकी कुछ फोटो प्रकाशित की जाती हैं। ये फोटो बहुत पाससे ली गई हैं।



छुटकारेकी व्यर्थ चेष्टा



देखिए ये हजरत कैदसे छुटकारा पानेके लिए अपनी अन्तिम शक्ति खर्च कर रहे हैं।



गिरफ्तार होनेके बाद कैदी हाथी पहले बार स्नानके लिए ले जाया जा रहा है। यह तो सभी जानते हैं कि हाथी नहाना बहुत पसन्द करता है। वह तैरता भी खूब है! कभीकभी उसका सारा शरीर पानीके नीचे डूबा रहता है, केवल सूंडका थोड़ासा अगलाभाग ऊपर रहता है, जिससे वह साँस लिया करता है।



छूट भागनेकी कोशिशमें यह नौजवान महाशय रस्सेमें बुरी तरह उलझ गये हैं।

निशा

[लेखक :—श्री बालकृष्ण राव]

(१)

शान्तिकी मंजु मनोहर मूर्ति,
अलौकिक आभामयी अनूप।
प्रकाशित कर नभमें नक्षत्र,
निशे, कर जगका सुन्दर रूप।

(२)

देख तुझको, आता राकेश,
विहँसता, मिलनेको सस्नेह।
जलज करने लगते हैं प्रेम,
छिपाते उरमें अलिकी देह।

(३)

व्यग्र, व्याकुल वसुधाको नित्य,
शान्तिका देती शुभ उपदेश।
देव-लोकोंकी वस्तु पवित्र,
निशे! क्या तेरे अनुपम वेष।

(४)

छिपा मुँह तेरी गोदी बीच,
बहाते दीन अश्रु दो-चार।
निशे, क्या तू बनती पावन,
स्पर्श कर यह पुनीत जलधार।

(५)

ठहर, क्षण-भर तू और ठहर,
दिवसका मत कर आवाहन।
लिपटकर तुझसे रो लूँ और,
शान्त तुझ-सा हो जावे मन।

❀❀
❀

सम्पादकीय विचार

१९२१ और १९३०

जिस समय सन् १९२१ में महात्मा गान्धीने चौरी-चौराकी दुर्घटनाके बाद सत्याग्रह-संग्रामको स्थगित किया था, उस समय कितने ही नेताओंका यह खयाल था कि महात्माजीने बड़ी ज़बरदस्त ग़लती की है। कोई कहते थे कि अब बीसियों वर्षोंके लिए मामला टल गया, किसी-किसीका कहना था कि अब वह विद्युत्मय वायुमण्डल फिर वापस नहीं आवेगा, और कितने ही महानुभाव ऐसे भी थे जो महात्माजीके सिरपर सारा दोष अर्पण करके अपनी बुद्धिमत्ताका परिचय दे रहे थे; पर महात्माजी अपने निन्दकों तथा आलोचकोंके कथनकी चिन्ता न करते हुए अपने अभीष्ट मार्गपर बराबर बढ़ते चले गये और दस वर्षकी घोर तपस्याके बाद उन्होंने ऐसा वायुमण्डल उपस्थित कर दिया है, जिसमें सन् १९२१ की अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह और जोश है। सन् १९२१ का आन्दोलन जितनी गहराई तक पहुँचा था, उससे कहीं अधिक गम्भीर वर्तमान आन्दोलन है। ग्रामीण जनता इस आन्दोलनकी ओर जितनी अधिक प्रवृत्त हो रही है, उतनी अधिक वह भारतके अर्वाचीन इतिहासमें कभी भी नहीं हुई थी। अब यह आन्दोलन केवल अल्पसंख्यक पढ़े-लिखे आदमियोंका नहीं रहा। आप ग्रामवासियोंसे बातचीत कीजिए, तो आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि वे बड़ी उत्सुकताके साथ देशकी घटनाओंका अध्ययन कर रहे हैं और कभी-कभी तो वे ऐसे सवाल कर बैठते हैं कि उनका जवाब देना अपनेको शिक्षित कहनेवाले आदमियोंके लिए भी अत्यन्त कठिन हो जाता है।

सरकारपर अविश्वास

एक बात विशेषत: उल्लेख-योग्य है, वह यह कि सरकारके प्रति अविश्वासकी मात्रा अत्यन्त अधिक बढ़ गई है, और 'प्रेस-ऐक्ट' तथा 'सेन्सरशिप'ने इसे बढ़ानेमें और भी मदद दी है। साधारण जनताके हृदयमें अब यह विश्वास घर करता जाता है कि सरकारकी प्रत्येक बात अविश्वसनीय है। यह बात सरकारकी सत्ताके लिए घातक है, पर अधिकारियोंने इसकी भयंकरताका ठीक-ठीक अनुमान नहीं किया। जनताके हृदय तथा आत्मापरसे सरकारी शासन उठ गया है और नैतिक जगतमें सरकारकी बातकी कोई क़द्र नहीं रही। सरकारको यह बात समझ लेनी चाहिए कि पाशविक बलके भरोसे बहुत दिन तक शासन नहीं किया जा सकता।

क्या आन्दोलन असफल होगा?

सरकार और उसके हिमायती यह आशा लगाये बैठे हुए हैं कि यह आन्दोलन क्षणिक उफानकी तरह जहाँका तहाँ बैठ जावेगा। ऐसा समझना भारी भूल है। यदि सरकारी अधिकारी अपने मस्तिष्कको शान्त रख सकते और पुलिस तथा फ़ौजवाले अपनी उद्दण्डताओंसे बाज़ आते तो आन्दोलनके पनपनेमें जरूर देर लगती; बन्द तो वह तब भी नहीं होता, पर अब तो पुलिसकी डंडेबाज़ीने इस आन्दोलनकी नींव और भी गहरी कर दी है। सत्याग्रह-संग्रामका यह अटल नियम है कि अत्याचारियोंके अत्याचार ज्यों-ज्यों बढ़ते जायँगे, त्यों-त्यों संग्राम सफलताकी ओर अग्रसर होता जायगा। सरकार आन्दोलनकारियोंके शरीरपर अपना अधिकार जमा सकती है, उनकी आत्मा और हृदय तो सदा स्वतन्त्र रहेंगे। विचार केवल लेखों तथा लेक्चरों द्वारा ही प्रकट नहीं होते, उनमें बेतारके तारकी तरह क्षण-भरमें हज़ारों मील चलनेकी ताकत रहती है। थोड़ी देरके लिए भले ही ऊपरसे ऐसा प्रतीत हो कि सारा मामला ठंडा पड़ गया है, पर सुप्त ज्वालामुखीकी तरह ये विचार संग्रहीत शक्ति द्वारा काफ़ी प्रबल होकर उमड़ पड़ेंगे, और उनको रोकना तूफ़ानको रोकनेके समान असम्भव हो जायगा।

आन्दोलन तथा बाहरी दुनिया

पाशविक युद्धोंमें जैसे प्रायः दूसरे देशोंसे धन-जनकी सहायता मिलती है, उसी प्रकार सत्याग्रह-संग्राममें अन्य देशोंकी न्याय-प्रिय प्रजासे नैतिक बल प्राप्त होता है। गोला-बारूदकी अपेक्षा हम इसे कहीं अधिक मूल्यवान वस्तु समझते हैं और सरकार भी इससे कहीं अधिक डरती है। पाशविक बलसे ब्रिटिश सरकारको भय नहीं होता, उसका कारण यह है कि सरकारके पास पाशविक बलकी कमी नहीं है, पर इस बातसे सरकारको अवश्य चिन्ता होती है कि संसारके सभ्य देशोंकी सहानुभूति भारतके साथ बढ़ रही है। यूरोपीय तथा अमेरिकन पत्रोंमें भारतकी जितनी अधिक चर्चा आज हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी, और इस बातसे ब्रिटिश अधिकारी चिन्तित अवश्य प्रतीत होते हैं। 'हिन्दू' (मदरास) के लन्दन-स्थित विशेष संवाददाताका निम्न-लिखित तार उल्लेख-योग्य है :—

"मि० मैकडोनेल्डके पास १०२ अमेरिकन पादरियोंके, जो ईसाई मतके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके हैं, हस्ताक्षरोंसे युक्त एक तार आया है, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया है कि वे गान्धीजी तथा भारतीय जनतासे समझौता कर लें। ब्रिटेन, भारत तथा संसारके हितके लिए यह आवश्यक है कि यह संग्राम आगे न बढ़ने दिया जाय, क्योंकि यदि ऐसा हुआ, तो यह सम्पूर्ण मनुष्य-जातिके लिए एक बड़ी दुर्घटनाका कारण होगा।" हस्ताक्षर करनेवाले तारमें लिखते हैं—"हम इस बातपर विश्वास करनेके लिए तैयार नहीं हैं कि मि० मैकडोनेल्डके लिए—जो स्वाधीनता, जनसत्तावाद तथा भ्रातृत्वके सिद्धान्तके प्रतिनिधि हैं—यह असम्भव है कि वे उन आध्यात्मिक आदर्शोंके साक्षात् स्वरूप गान्धीजीसे समझौता करें।"

अमेरिका तथा अन्य देशोंमें महात्माजीके व्यक्तित्वके प्रति जो असाधारण सम्मान पाया जाता है, वह हमारे संग्रामके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। यदि ब्रिटेनके शासक कुछ डरते हैं, तो इस बातसे कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत्में उनका मुँह काला न हो।

संग्राम कब तक जारी रहेगा ?

यह भविष्यवाणी करना कठिन ही है कि यह संग्राम कब तक जारी रहेगा। ब्रिटिश जातिको जब तक यह विश्वास न हो जायगा कि अब स्वराज्य दिये बिना काम नहीं चल सकता, तब तक वह कुछ नहीं देनेकी। इस विश्वासके हृदयमें पैठनेमें जितनी देर है, उतनी ही देर संग्रामके समाप्त होनेमें है; पर अभी यह बात न तो भारत-सरकारकी समझमें आई है, और न ब्रिटेनके अधिकारियोंकी। इस समय सरकारके सबसे बड़े शत्रु वे हैं, जो उसे यह सुझाते हैं कि यह आन्दोलन अपने आप बैठ जायगा। वर्तमान परिस्थिति यह है कि सरकारके पक्षपातियोंका पक्ष बिलकुल निर्बल हो गया है, और उसके विरोधियोंकी संख्या बढ़ रही है। लिबरल लोग भी अब यह समझ गये हैं कि सन् १९२१ की तरह अबकी बार सरकारका समर्थन करना उनके लिए अत्यन्त विघातक होगा। प्रान्तीय कौन्सिलसे श्री वेंकटेशनारायण तिवारीका और असेम्बलीसे पं० हृदयनाथ कुंजरूका त्यागपत्र देना, वास्तवमें गम्भीर अर्थ रखता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस 'भारत-सेवक-समिति' के वे दोनों सज्जन सदस्य हैं, उसका मुखपत्र 'सर्वेन्ट-आफ्-इंडिया' सत्याग्रह-संग्रामका घोर विरोधी है। जो लोग अब भी कौन्सिलोंका मोह नहीं छोड़ सकते, उन्हें यह बात ध्यानमें रख लेनी चाहिये कि भविष्यमें उन्हें कौन्सिलोंका सदस्य बनना यदि असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो जायगा। आखिर उन्हें कौन्सिलोंसे वियोग सहना ही पड़ेगा—"अन्त हु तोहि तजैंगे······क्यों न तजे अब ही ते, मन पछितैहो औसर बीते" वाली बात शायद उन्हींके लिए कही गई है।

ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका यह अनुमान कि वे माडरेट नेताओंकी खुशामद करके उन्हें अपने पक्षमें ला सकते हैं, भ्रमात्मक सिद्ध होगा। "चढ़ जा बचा सूली पे, भली करेंगे राम"—प्राचीन कालमें यह वाक्य किसी साम्राज्यवादी साधुने अपने भोले शिष्यसे कहा होगा, और यह खयाल करना कि माडरेट लोग इसका अर्थ नहीं समझ सकते, उनका अपमान करना होगा।

तो फिर क्या होगा

'डीक' इत्यादि माडरेट पत्र ब्रिटिश मालके बायकाटका ज़ोरोंसे प्रतिपादन कर रहे हैं। बायकाटका यह आन्दोलन दृढ़ता-पूर्वक अग्रसर हो रहा है। खादीकी इतनी अधिक माँग बढ़ गई है कि वह पूरी नहीं हो पाती। विदेशी सिगरेटोंका तो बहिष्कार बिना विशेष प्रयत्नके ही सफल हो रहा है। ब्रिटिश दवाइयोंका बहिष्कार भी बराबर जारी है। इस प्रकार ब्रिटेनकी जेबपर ज़बरदस्त चोट पहुँचाई जा रही है। यह आर्थिक दबाव बिना अपना असर डाले नहीं रह सकता। सरकारसे जो लोग सहयोग कर भी रहे हैं, वे भी अपने मन-ही-मनमें लज्जित हो रहे हैं। सन् १९२१की अमन-सभाओंकी बढ़न शान्ति-सभाका जन्म मरे हुए बच्चोंकी उत्पत्तिसे अधिक महत्त्व नहीं रखता। सरकारकी सहायता करते हुए जी-हुज़ूरोंके दिलमें भी एक प्रकारका संकोच हो रहा है। राष्ट्रीयताके जो भाव सन् १९२१में शहरों तक ही परिमित रहे थे, अब अपनी सीमा पारकर ग्रामों तक पहुँच गये हैं। आजसे ४८ वर्ष पहले सर जॉन सीलीने अपनी पुस्तक (Expansion of England) 'इंग्लैण्डका साम्राज्य-विस्तार' नामक पुस्तकमें लिखा था—

"Now if the feeling of a common nationality began to exist there only feebly, if without inspiring any active desire to drive out the foreigner, it only created a notion that it was shameful to assist him in maintaining his dominion, from that day almost our Empire will cease to exist."

अर्थात्—"जिस दिन भारतीयोंके हृदयमें राष्ट्रीयताका भाव जाग्रत हो जायगा—चाहे वह दृढ़ भले ही न हो—और यह भाव विदेशियोंको निकाल बाहर करनेके लिए क्रियात्मक रूपसे भारतीयोंको प्रेरित भले ही न करे, पर उनके दिलमें सिर्फ यह ख़याल पैदा कर दे कि विदेशियोंके कार्यमें सहायता करना जिससे वह भारतपर अपना आधिपत्य क़ायम रख सकें, लज्जाजनक कार्य है, बस, उसी दिनसे हमारे साम्राज्यका अन्त समझना चाहिए।"

राष्ट्रीयताका यह भाव, जो अब तक शिक्षित जनता तक ही परिमित था, अब ग्रामोंको तक व्यापक हो गया है, और ब्रिटिश साम्राज्यके लिए यही सबसे बड़ा ख़तरा है।

समझौतेका प्रयत्न

वर्तमान परिस्थिति बहुत दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती, सरकारको समझौता करना ही पड़ेगा। समझौतेकी शर्तें क्या होंगी, यह आन्दोलनकी प्रगतिपर निर्भर है। अभी 'इण्डियन डेली मेल' के सम्पादक मि० विलसनने श्रीमान् विट्ठलभाई पटेलसे बातचीत की थी, और उसका विवरण ६ मईके अंकमें प्रकाशित हुआ था। वह इस प्रकार है :—

"ऐसा प्रतीत होता है कि त्यागपत्र देनेके पूर्व मि० पटेलकी लार्ड इरविनसे जो बातचीत हुई है, वह बड़ी मित्रता-युक्त थी। दोनों महानुभावोंमें इस बातपर वाद-विवाद हुआ कि कांग्रेस-लीडरोंको क्या शर्तें स्वीकार होंगी। मि० पटेलने कहा कि वैदेशिक नीति, देशीराज्य और फौज (Foreign policy, the Indian princes and the army) इनको छोड़कर बाक़ी सब मामलोंमें पूर्ण स्वाधीनता दे दी जाय। वायसरायने प्रस्ताव किया कि इनके सिवा 'Law and order' (शान्ति तथा क़ानून) के विषयमें भी गवर्नर-जनरलके लिए कुछ अधिकार रक्षित होने चाहिए, और इसके साथ-ही-साथ अल्प-संख्यक समुदायोंके हितोंकी रक्षाका सवाल भी गवर्नर-जनरलके अधीन रहना चाहिए। मि० पटेल इस बातचीतसे प्रसन्न होकर अपने घर वापस आये, और उन्हें इस बातकी आशा हो गई कि अब किसी न किसी तरह समझौता हो ही जायगा। इसके बाद वे वायसरायसे एक बार और भी मिले, जिससे सारी बात बिलकुल निश्चित हो जावे। इतनेमें यह बात अन्य सरकारी अधिकारियोंमें किसी तरह फूट निकली कि 'वायसराय कमज़ोर पड़ रहे हैं।' बस, फिर क्या था, नौकरशाहीने अपनी सारी भारत-विरोधी शक्ति लगा दी और वायसराय अपनी बातपर डटे नहीं रह सके। इसके बाद समझौतेकी कोई बातचीत

नहीं हो सकी। सुना है कि मि० पटेलने वायसरायकी बातचीत पं० मोतीलालजीसे भी कही थी, और वे इन शर्तोंपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करनेके लिए तैयार थे।"

इन बातोंसे, जो अन्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित नहीं हुईं, समझौतेकी शर्तोंका कुछ अनुमान किया जा सकता है। यदि आन्दोलन ठीक तरह न चल सका, तब तो मामला बीसियों वर्षके लिए टल जायगा, पर यदि आन्दोलन ढंगसे चलता रहा, तो ब्रिटिश-सरकारको झुकना पड़ेगा।

अन्तिम अवसर

मि० पटेलने अपने व्याख्यानमें कहा है—"Now or never" अर्थात् यदि अब स्वराज्य न मिला, तो फिर कभी न मिलेगा। महात्माजीके सुपुत्र मणिलालजी गान्धीने भी कहा है—"यदि आन्दोलन असफल हुआ, तो महात्माजीको हम लोग जेलसे छुड़ा न सकेंगे, और छुड़ा भी लिया तो फिर हम उन्हें जीवित न देख सकेंगे।"

भारतीय जनतासे अन्तमें यही कहना है कि आन्दोलन बराबर जारी रहना चाहिए। महात्माजीका व्यक्तित्व, जो हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है, फिर हमें कहाँ मिल सकता है? ऐसे ऐतिहासिक अवसर राष्ट्रोंके जीवनमें कभी-कभी ही आया करते हैं—

"अबकी चढ़ी कमान ना जाने फिर कब चढ़े?"

प्रेस-ऐक्ट और उसका परिणाम

प्रेस-ऐक्टको पहलेसे भी अधिक भयंकर रूपमें पुनर्जीवित करके भारत-सरकारने अपनी उस घबराहटका परिचय दिया है, जो उसे सत्याग्रह संग्रामके कारण हो रही है। यह नया क़ानून, जो आर्डिनेन्सके रूपमें प्रकाशित हुआ है, इतना अधिक व्यापक है कि इसके अनुसार चाहे जिस पत्रको चाहे जब बन्द किया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि पत्रोंसे आन्दोलनको सहायता अवश्य मिलती है, पर अब यह आन्दोलन उन लोगों तक पहुँच चुका है, जिनके लिए ब्रिटिश-शासनके डेढ़ सौ वर्ष तक भारतमें रहनेके बाद भी 'काला अक्षर भैंस बराबर' है। अब ग्रामवासियोंके पास कोई खबरें नहीं पहुँचेंगी, तो वे अफवाहोंको ही सच मान लेंगे, और इन अफवाहोंके द्वारा सरकारका जितना अहित होगा उतना शायद पत्रों द्वारा कदापि न होता। उदाहरणके लिए कानपुरके 'प्रताप' पत्रको लीजिए। संयुक्त-प्रान्तके सैकड़ों ही ग्राम ऐसे होंगे, जहाँ 'प्रताप' को छोड़कर दूसरा कोई पत्र नहीं पहुँचता। अब तक 'प्रताप' द्वारा उन ग्रामोंके वासियोंको देशकी स्थितिके सच्चे समाचार मिलते रहते थे। अब 'प्रताप' का प्रकाशन स्थगित हो जानेसे ग्रामोंमें सच्चे समाचारोंका पहुँचना ही रुक जायगा। परिणाम यह होगा कि आसपासके नगरोंसे नाना प्रकारकी अफवाहें उन ग्रामों तक पहुँचेंगी और उन अफवाहोंको दूर करनेका सरकारके पास कोई साधन नहीं। सरकार अपना पत्र निकालनेसे रही—यदि वह कोई पत्र निकाले भी, तो उसकी बातोंपर लोग विश्वास कब करेंगे? कलकत्तेमें स्वयं हमने देखा है कि ऐसी ऊटपटांग अफवाहें उड़ती रहीं कि जिनका कुछ ठिकाना नहीं। फिर भी कितने ही लोग उनपर विश्वास करते रहे हैं! जब उनसे कहा जाता कि यह खबर तो बिलकुल निराधार मालूम होती है, तो उसका जवाब यही मिलता था—"अखबार तो सरकारने सब बन्द कर दिये हैं, इसलिए तुम यह कैसे कह सकते हो कि खबर झूठी है?" 'स्टेट्समैन' तथा 'बंगाली' जैसे पत्रोंपर जनताका विश्वास नहीं। कितने ही स्थानोंपर लोगोंने हाथसे लिखकर या टाइप करके मन-मानी बातें चिपका दीं और झुंडके झुंड आदमी उनको बड़ी उत्सुकताके साथ पढ़ते हुए दीख पड़ने लगे। सबसे आश्चर्यकी बात यह थी कि उनमेंसे अधिकांश इन बातोंपर विश्वास भी करते थे। जब कलकत्ते जैसे महानगरके आदमियोंका, जिनके लिए समाचारपत्र पढ़ना नित्य-नैमित्तिक कार्योंकी तरह आवश्यक है, यह हाल है, तो गाँववालोंका कहना ही क्या है। इन ग्रामोंमें जो अफवाहें फैल रही होंगी, उनका क्या ठिकाना।

पुराना प्रेस-ऐक्ट सप्रू-कमेटीकी सिफारिशोंके द्वारा रद्द किया गया था। इस कमेटीने अपनी सिफारिशमें लिखा

था—"जहाँ एक राजद्रोह-प्रचार करने, सरकारकी बातोंको जनताके सम्मुख कुछका कुछ करके फैलाने, छोटी-छोटी बातोंको बढ़ाकर कहने, इशारों द्वारा सरकारपर अन्यायका इल्जाम लगाने तथा जातीय विद्वेष फैलानेका सवाल है, यह प्रेस-ऐक्ट इन बातोंको रोकनेमें व्यवहारतः कुछ भी सफल नहीं हुआ। हम देखते हैं कि समाचारपत्रोंका एक समूह इस समय भी सरकारका उतना ही अधिक विरोधी है, जितना वह पहले था, और वह ऐसे सिद्धान्तोंका प्रचार करता है, जिससे सरकारके प्रति अथवा किसी जाति-विशेषके प्रति जनताके हृदयमें घृणा उत्पन्न हो। प्रेस-ऐक्टके जन्मके पहले जिस प्रकार वह इन बातोंका प्रचार करता था, उसी प्रकार अब भी करता है। प्रेस-ऐक्ट उन्हें रोक नहीं सकता।"

कमेटीने लिखा था—"जिस उद्देश्यसे यह ऐक्ट बनाया गया था, उसकी पूर्तिमें यह पूर्णतया सफल नहीं हुआ।"

आगे चलकर इस कमेटीने लिखा था—"अब उग्रकोटिका राजद्रोह तो जितना वक्ताओं द्वारा फैलाया जाता है और इधरसे उधर घूमनेवाले प्रचारकों द्वारा, उतना समाचारपत्रों द्वारा नहीं फैलाया जाता, और कोई भी प्रेस-ऐक्ट इन राजद्रोहात्मक कार्रवाइयोंको नहीं रोक सकता।" *

अन्तमें कमेटीने लिखा था—"It would be in the interests of the administration that it should be repealed" अर्थात्—"खुद शासकोंके हितके लिए यह आवश्यक है कि प्रेस-ऐक्ट रद्द कर दिया जाय।"

इन बातोंसे, जो हमने पहली मईके 'पीपुल' नामक पत्रसे उद्धृत की हैं, यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि सरकारने अपने सम्पूर्ण पुराने अनुभवोंको ताकपर रखकर फिर यह प्रयोग प्रारम्भ किया है, पर इसमें भी सरकारको सफलता नहीं मिलनेकी।

* "The more direct and violent forms of sedition are now disseminated more from the platform and through the agency of itinerary propagandists than by the press, and no press law can be effective for the repression of such activities."

जमानतका प्रश्न

जिन पत्रोंसे ज़मानत माँगी जाय, उन्हें ज़मानत देनी चाहिए या नहीं? पिछले दिनोंमें यह प्रश्न सम्पादकों तथा पत्र-संचालकोंके सम्मुख बराबर रहा है और कितने ही संचालकोंने उसका निर्णय व्यक्तिगत रूपसे कर भी लिया है। हिन्दी-पत्रोंमें भी 'स्वतंत्र', विश्वमित्र', 'आज', 'प्रताप' इत्यादिने ज़मानत न देकर पत्रका प्रकाशन स्थगित कर देना ही उचित समझा है, और उनके इस सत्साहसकी हमें प्रशंसा ही करनी चाहिए, पर बम्बईके पत्रकार-सम्मेलनने इस विषयमें जो प्रस्ताव पास किया है, वह इससे भिन्न है। वह प्रस्ताव यह है कि जो लोग ज़मानत देकर पत्र चलाना चाहें, वे पहली बार ज़मानत दे दें, और उसके ज़ब्त होनेपर पत्र बन्द कर दें।

किसी पत्रमें जो लेख, कार्टून इत्यादि प्रकाशित होते हैं, उनका चुनाव मुख्यतया सम्पादकपर ही निर्भर है, और पत्रके एक साथ बन्द कर देनेसे सम्पादकके सिवा बीसियों अन्य आदमी बेकार हो जाते हैं। यदि अकेले पत्रकार, जो दूसरोंको बराबर उपदेश दिया करते हैं, कष्ट उठावें, तब तो कोई चिन्ताकी बात नहीं। जब स्वाधीनता-संग्राममें हमारे सहस्रों भाई-बहन जुटे हुए हैं, तब हम लोगोंको भी कष्ट सहन करनेके लिए बराबर तय्यार रहना चाहिए, पर इस ऐक्टके सबसे अधिक शिकार होते हैं कम्पोज़ीटर प्रूफरीडर, मशीन-मैन इत्यादि। यद्यपि इतने बड़े संग्राममें यह अनिवार्य है कि सहस्रों ऐसे आदमियोंको भी, जो त्याग तथा तप नहीं करना चाहते, ऐसा करनेके लिए मजबूर होना पड़े, पर हमारा प्रयत्न यही होना चाहिए कि जो-कुछ हम निर्णय करें, उसमें इन लोगोंकी सहानुभूति अपने साथ रखें।

हमारी समझमें जब ज़मानतका प्रश्न उपस्थित हो, तो प्रेस-संचालकोंका कर्तव्य है कि प्रेसमें काम करनेवाले सभी आदमियोंसे सलाह लें, क्योंकि प्रेस द्वारा सम्पत्तिके उपार्जनमें उनका भी ज़बरदस्त हाथ है।

हम मानते हैं कि सबसे अच्छी बात तो यही है कि ज़मानत माँगनेपर प्रेस बन्द कर दिया जाय और प्रेसके कर्मचारियोंकी अधिकसे अधिक संख्या सत्याग्रह संग्राममें सम्मिलित हो; परन्तु यदि यह न हो सके, तो ज़मानत देकर पत्र निकालनेमें हमें तो कोई देशद्रोह, बेईमानी या नीचता नहीं दीखती।

कांग्रेस-वर्किंग-कमेटी और भारतीय समाचारपत्र

कांग्रेसकी वर्किंग-कमेटीने प्रेस-आर्डिनेन्सके विषयमें निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया है :—

"यह कमेटी उस प्रेस-आर्डिनेन्सको, जिसे गवर्नर-जनरलने जारी किया है, सभ्यतापर भयंकर आघात समझती है, और उन समाचारपत्रोंकी क़द्र करती है, जिन्होंने इस ग़ैर-क़ानूनी क़ानूनकी आज्ञाको माननेसे इनकार कर दिया है। यह कमेटी उन भारतीय समाचारपत्रोंसे जिनका प्रकाशन अब तक बन्द नहीं हुआ है अथवा जो बन्द होनेके बाद फिर निकलने लगे हैं, अनुरोध करती है कि वे अपना प्रकाशन बन्द कर दें, और सर्वसाधारणसे अनुरोध करती है कि वे उन एंग्लो-इण्डियन तथा भारतीय पत्रोंका बायकाट करें, जो अब तक निकल रहे हैं।"

एक ओर तो वर्किंग-कमेटीका यह प्रस्ताव है और दूसरी ओर जर्नेलिस्ट ऐसोसिएशनका वह निश्चय। इससे राष्ट्रीय समाचारपत्रोंके संचालक बड़ी दुविधामें पड़ जायँगे। किसकी बात मानी जावे? जर्नेलिस्ट-ऐसोसिएशनकी या वर्किंग-कमेटीकी?

शायद वर्किंग-कमेटीने कुछ जल्दबाज़ीसे काम लिया है। जर्नेलिस्ट-ऐसोसिएशनका कर्तव्य है कि वह इस विषयमें श्री पंडित मोतीलालजी नेहरूसे लिखा-पढ़ी करे।

पत्रकारोंकी परिस्थिति

प्रेस-आर्डिनेन्सका पत्रकारोंकी स्थितिपर भयंकर प्रभाव पड़ा है, और कितने ही पत्रकार बेकार हो गये हैं। बेकारीके कष्टोंको भुक्तभोगी ही जानते हैं। घर बैठे हुए लेख लिखकर हमारे जैसे साधारण कोटिके हिन्दी-पत्रकार अपनी जीविका नहीं चला सकते, यह हमने स्वयं प्रयोग करके देखा था। यद्यपि हमें अपने प्रयोगमें हिन्दीके कई पत्रोंसे—'माधुरी', 'प्रताप' तथा 'आज' इत्यादिसे—सहायता मिली थी और अंग्रेज़ीके 'लीडर' से भी नियमितरूपसे सहायता मिलती रही, फिर भी उससे गुज़र नहीं हो सकी। 'प्रताप' से विपद्ग्रस्त कार्यकर्ताओंको बराबर कुछ न कुछ सहायता मिलती रहती है, पर उसका कारण श्री विद्यार्थीजीकी सहृदयता है। बहुत कम पत्र-संचालक ऐसे हैं, जिन्होंने यह नियम बना लिया हो कि इतना रुपया वर्ष-भरमें हम लेखोंके पुरस्कारके लिए रखेंगे। जब 'लीडर' को घाटा रहता था, तब भी वह छे-सात हज़ार रुपये वार्षिक इस मदमें खर्च किया करता था, और कभी-कभी तो उसकी यह रक़म दस हज़ार तक पहुँच जाती थी। हिन्दी-पत्रोंको भी कुछ रकम, चाहे वह ५०) महीने ही हो, इस मदके लिए रखनी चाहिए। हम ऐसे पत्र-संचालकोंको जानते हैं, जो अपने पत्रके दस-बारह हज़ारसे ऊपर ग्राहक बतलाते हैं, पर जो पत्रकारोंको पुरस्कार देनेके लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करते! यदि यही नीति जारी रही, तो स्वतन्त्र लेखन-कला (Freelance journalism) का हमारे यहाँ विकास ही नहीं होगा। जिन पत्रकारोंके कठिन परिश्रमकी सहायतासे पत्र-संचालक अपनी स्थिति बनाते हैं, उनकी सहायताके प्रश्नको इस तरह उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना वास्तवमें निन्दनीय है। यद्यपि हम पत्र-संचालकोंको लेखकोंको पुरस्कार देनेके लिए बाध्य नहीं कर सकते, तथापि उन्हें इस प्रश्नपर नैतिक दृष्टिसे विचार करना चाहिए। कोई भी संस्था अनीति तथा कृतघ्नताके आधारपर बहुत दिनों तक नहीं चल सकती। जिसके साथ आप अन्याय करेंगे, उसके हृद्गत भाव आपके लिए अन्तमें विघातक सिद्ध होंगे।

हिन्दी-पत्र-संचालकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे एक निश्चित रक़म लेखोंके पुरस्कारके लिए रखें। स्वयं उनके पत्रोंके हितकी दृष्टिसे यह कार्य आवश्यक है।

सत्याग्रह-संग्राम और प्रवासी भारतीय

वर्तमान स्वाधीनता-संग्राममें प्रवासी भारतीयोंका क्या कर्तव्य है? यह प्रश्न विचारणीय है। माननीय श्रीनिवास शास्त्री तथा मि० पोलकके मतानुसार उन्हें पूर्ण

स्वाधीनता तथा सविनय क़ानून-भंग जैसे आन्दोलनोंसे तटस्थ रहना चाहिए। प्रवासी भारतीयोंको अपने प्रश्नोंके लिए बारबार भारत-सरकारसे अनुनय-विनय करनी पड़ती है, और उन्हें प्राय: यह बात दुहरानी पड़ती है कि 'ब्रिटिश साम्राज्यके नागरिकके अधिकार हमें मिलने चाहिए। इसके अतिरिक्त भारतके सभी राजनैतिक दलोंके आदमियोंसे उन्हें सहायता मिलती है। इन्हीं बातोंपर ख़याल करते हुए हमने भी 'माडर्न-रिव्यू' में कुछ महीने पहले यह लिखा था कि प्रवासी भारतीयोंको वर्तमान आन्दोलनके केवल विशेष-विशेष भागोंके लिए ही सहायता देनी चाहिए और 'सविनय क़ानून-भंग' जैसे आन्दोलनके विषयमें तटस्थ रहना चाहिए, पर अब हम समझते हैं कि पहले हमने जो-कुछ लिखा था, वह भ्रमात्मक था और इस संकटके समयमें इस प्रकारका भेद करना अनुचित होगा। प्रवासी भारतीयोंको चाहिए कि मातृभूमिके स्वाधीनता-संग्राममें निसंकोच भरपूर सहायता दें। श्री भवानीदयालजीके निम्न-लिखित वाक्यसे हम सर्वथा सहमत हैं—

"प्रवासी भारतीयोंसे इस अवसरपर क्या कहूँ? महात्मा गांधी आज भारतीय स्वाधीनताकी अन्तिम लड़ाई लड़ने जा रहे हैं। औपनिवेशिक भाई यह बात अभिमानके साथ कह सकते हैं कि स्वाधीनता-संग्रामके उस महान् सेनापतिके जीवनका सर्वश्रेष्ठ समय उन्हींके बीचमें व्यतीत हुआ था, और जिस अस्त्रका वे प्रयोग कर रहे हैं, उसकी प्रथम परीक्षा वहीं हुई थी; पर इस उचित अभिमानके साथ प्रवासी भारतीयोंका कुछ कर्तव्य भी है। प्रत्येक प्रवासी भाईको मातृभूमिकी स्वाधीनताके इस यज्ञमें भाग लेना चाहिए। जो जिस तरहसे कर सके, इसकी सफलताके लिए उद्योग करे। प्रवासी भारतीयोंके भाग्यका मातृभूमिकी स्वाधीनतासे अटूट सम्बन्ध है। परमात्मा भारतको स्वाधीन करे, जिससे वह विशाल भारतका निर्माण करता हुआ अखिल संसारको सुख और शान्तिका सन्देश दे और फिर उस महान् पदको प्राप्त करे, जो उसे पहले प्राप्त था।"

पटियालाकी जाँच

आख़िर पटियालाके महाराज इस बातके लिए राज़ी हो गये कि उनके कारनामोंकी जाँच की जाय, पर जाँचका जो तरीक़ा रखा गया है, वह बड़ा विचित्र है। जाँचके विषयमें स्वयं महाराजने लार्ड इर्विनको लिखा था कि उनके मामलेकी जाँच करनेके लिए आनरेबिल मि० जे० ए० ओ० फिट्ज़ पैट्रिक, ए० जी० जी० पंजाब स्टेट्सकी नियुक्ति की जावे। लार्ड इर्विनने इस प्रस्तावको स्वीकृत करके इन्हीं सज्जनकी नियुक्ति कर दी है। मि० फिट्ज़ पैट्रिककी योग्यता अथवा अयोग्यताके विषयमें हमें कुछ भी ज्ञात नहीं। बहुत सम्भव है कि वे अत्यन्त न्यायप्रिय व्यक्ति हों और वे इस मामलेमें इंसाफ करें, पर नियुक्तिका यह तरीक़ा वास्तवमें आपत्तिजनक है। जिसके अपराधोंकी जाँच होनेवाली है, यदि वही अपने आप जजके नामका प्रस्ताव भी करे, तो इससे उन लोगोंके हृदयमें, जो अपनेको अत्याचार-पीड़ित समझते हैं, श्रद्धा तथा विश्वासका भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है, वह यह कि जाँचकी सारी कार्रवाई पर्देके भीतर होगी। पटियाला-महाराजने अपने पत्रमें लिखा है—"कुछ लोगोंने मिलकर हमारी बदनामी करनेका बीड़ा उठा लिया है। हमारे पास सब क़ागज़-पत्र मौजूद हैं, जिनसे यह बात सिद्ध हो जावेगी।" यदि यह कथन ठीक है, तो फिर इस मामलेकी खुली जाँच करनेमें पटियाला-महाराजको क्या ऐतराज़ हो सकता था?

हमारी समझमें सरकारकी यह जाँच-प्रणाली दोष-युक्त है, और उससे जनता असन्तुष्ट ही रहेगी।

—

श्री भवानीदयालजी संन्यासी और लौटे हुए भारतीयोंकी जाँच

स्वामी भवानीदयालजीके भारतीय तथा औपनिवेशिक मित्र यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि हज़ारीबाग सेन्ट्रल जेलमें उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है, और उनका वज़न भी दो-ढाई सेर बढ़ गया है। पाठक यह जानते हैं कि सबसे पहला कार्य जो भवानीदयालजीने भारतमें आकर किया था, वह था लौटे हुए भारतीयोंकी अवस्थाकी जाँच। जाँचका कार्य विधिवत् समाप्त करके और अपनी रिपोर्ट हिन्दीमें लिखकर उन्होंने मेरे पास भेज दी थी। अंग्रेज़ीमें अनुवाद करनेका काम मेरे जिम्मे था, इस बीचमें माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके अनुरोधसे रिपोर्टका प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ा है। शास्त्रीजीने एक पत्र द्वारा भवानीदयालजीको यह सन्देश भिजवाया था कि अगर आपकी रिपोर्ट प्रकाशित होगी, तो उससे केपटाउनके समझौतेपर ख़राब असर पड़ेगा। भवानीदयालजीने शास्त्रीजीकी आज्ञाको मानकर मुझे यह आदेश भेजा है कि रिपोर्ट अभी न छपाई जावे, इसलिए जो महानुभाव रिपोर्टकी प्रतीक्षा कर रहे हों, उनसे हम क्षमाप्रार्थी हैं।

आर्यसमाज और सत्याग्रह-संग्राम

आचार्य रामदेवजीने हमारे पास एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशनार्थ भेजा है, जिसका एक आवश्यक अंश हम यहां उद्धृत करते हैं :—

पूर्ण-स्वराज्यका आन्दोलन आज देशमें पूरे यौवनपर है। महात्मा गान्धीके दिव्य नेतृत्वमें विदेशी सरकारसे मोर्चा लेनेके लिए सत्याग्रहका धर्मयुद्ध जारी कर दिया गया है। इस समय नमक-करके विरोधमें देशकी शक्ति लगी हुई है। महात्मा गान्धीका कहना है कि विदेशी सरकारने भारतपर जो बड़े-बड़े अत्याचार किये हैं, इनमें नमक-कर सबसे बड़ा है। लोगोंने नमक-करकी बुराई और अन्यायको आज जाकर गम्भीरतासे अनुभव किया है, परन्तु ऋषि दयानन्दसे उस समय, जब कि स्वनामधन्य महात्मा गान्धीका जन्म भी न हुआ था, नमक-करके विरोधमें आवाज उठाई थी। इसी तरह जंगलातके करका भी उन्होंने विरोध किया था और शराबका कर अबसे चार गुना कर देनेकी सलाह दी थी। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाशके प्रथम संस्करणमें लिखा है—"परन्तु मेरी बुद्धिमें गुण इन बातोंमें नहीं देख पड़ते हैं, इससे इन बातोंको मैं लिखता हूँ। एक तो यह बात है कि नोन और पौनरोटी (जंगलात) में जो कर लिया जाता है वह मुझे अच्छा नहीं मालूम देता, क्योंकि नोनके बिना दरिद्रका भी निर्वाह नहीं होता। किन्तु सबको नोन आवश्यक होता है और वे मजूरी-मेहनतसे जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं, इनके ऊपर भी यह नोन दण्ड-तुल्य रहता है। इससे दरिद्रोंको क्लेश पहुँचता है। इससे ऐसा होय कि मद्य, अफ़ीम, गाँजा, भाँग इनके ऊपर चौगुना कर स्थापना होय तो अच्छी बात है, क्योंकि नशादिकोंका छूटना ही अच्छा है और जो मद्यादिक बिलकुल छूट जायँ, तो मनुष्यका बड़ा भाग्य है, क्योंकि नशासे किसीको कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु रोग निवृत्तिके वास्ते औषधार्थ तो मद्यादिकोंकी प्रवृत्ति रहना चाहिए, क्योंकि बहुतसे ऐसे रोग हैं, जिनके मद्यादिक ही निवृत्ति-कारक औषध हैं। वैद्यक-शास्त्रकी रीतिसे उन रोगोंकी निवृत्ति हो सकती है, तो उनको ग्रहण करे, जब तक रोग न छूटे। फिर रोगके छूटनेसे पीछे मद्यादिकोंको कभी ग्रहण न करें, क्योंकि जितने नशा करनेवाले पदार्थ हैं, वे सब बुद्ध्यादिकोंके नाशक हैं, इससे इनके ऊपर ही कर लगाना चाहिए और लवणादिकोंके ऊपर न चाहिए। पौनरोटीसे भी ग़रीब लोगोंको बहुत क्लेश होता है क्योंकि ग़रीब लोग कहींसे घास छेदन करके ले आवें वा लकड़ीका भार। उनके ऊपर कौड़ियोंके लगनेसे उनको अवश्य क्लेश होता होगा। इससे पौनरोटीका जो कर स्थापन करना, सो भी हमारी समझमें अच्छा नहीं।" (सत्यार्थ-प्रकाश, प्रथम संस्करण, समुल्लास ११, पृष्ठ सं० ३८४-८५)

इन सब बातोंके लिखनेसे मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि ऋषि दयानन्द इस युगमें स्वाधीनताका स्वप्न लेनेवाले प्रथम महापुरुष थे। इसलिए ऋषिके प्रत्येक भक्त और अनुयायीका यह पवित्र कर्तव्य है कि वह उनके पद-चिन्होंका अनुसरण करके वर्तमान स्वराज्य-आन्दोलनमें पूर्ण भाग लें। मुझे विश्वास है कि व्यक्तिगत रूपसे अधिकांश आर्यसमाजी भाई इस धर्म-युद्धमें सम्मिलित होंगे। मेरे पास अनेक आर्यभाइयोंके इस सम्बन्धमें जो पत्र आये हैं, उससे विदित होता है कि वे लोग इस युद्धमें सामूहिक रूपसे सम्मिलित होनेके लिए परम उत्सुक हैं। परन्तु मेरी रायमें जहाँ प्रत्येक आर्यसमाजीका कर्तव्य इस धर्मयुद्धमें शामिल होना है, वहाँ आर्यसमाजको सामूहिक रूपसे इस राजनीतिक युद्धमें शामिल होनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानन्दका रूप केवल आर्यसमाज तक ही सीमित नहीं है। वे जहाँ एक ओर आर्यसमाजकी स्थापना करनेवाले थे, वहाँ वे नव-भारतके निर्माता भी थे। आर्यसमाज धार्मिक संस्था है। वह अन्तर्राष्ट्रीय है, एक देशीय नहीं, परन्तु वह आर्य भाई बड़ा भारी पाप करेगा, वह बिलकुल गुमराह रहेगा, जो इस अन्तर्राष्ट्रीयताके नामपर भारतकी इस स्वाधीनताकी लड़ाईको उपेक्षा या अवज्ञाके साथ देखेगा। भारत इस समय पराधीन है, इस देवभूमिको पराधीनताकी शृंखलाओंसे मुक्त करना प्रत्येक आर्यका परम धर्म है।

आशा कि आर्यसमाज इस संग्राममें पूर्ण शक्तिके साथ भाग लेगा। आर्यसमाज सदासे ही देशोद्धारके आन्दोलनोंमें अग्रसर रहता है और इस अवसरपर उसका पिछड़ना सचमुच दुःख तथा आश्चर्यकी बात होगी।

महात्माजीका गीतानुवाद

बहुत दिनोंसे इस बातकी चर्चा थी कि महात्मा गांधी श्रीमद्भगवद्गीताका एक अनुवाद कर रहे हैं। हमें यह कहते हर्ष होता है कि वह गुजराती अनुवाद अनासक्तियोगके नामसे 'नवजीवन' कार्यालय अहमदाबादसे निकला है और उसका हिन्दी अनुवाद शुद्ध-खादी-भण्डार, १३२।१ हरिसन रोड कलकत्ताने प्रकाशित किया है।

महात्माजीने अपने अनुवादके सम्बन्धमें सबसे खास बात यह कही है कि मेरी जानकारीमें और किसी अनुवादके लिए अनुवादकका आचारके प्रयत्नका दावा नहीं है, पर मेरा इस अनुवादके पीछे अड़तीस वर्षके आचारके प्रयत्नका दावा है।" इससे अधिक विशेषता और क्या होगी ? इस पुस्तकका दाम दो आना रखा गया है, जो बहुत ही सस्ता है। 'विशाल-भारत'के प्रत्येक पाठकसे हमारा अनुरोध है कि वह इस अनुवादकी अनेक प्रतियाँ लेकर वितरण करे।

विदेशी वस्त्रोंका बायकाट

कांग्रेसकी वर्किंग-कमेटीने यह प्रस्ताव पास किया है कि विदेशी वस्त्रोंके बायकाटका आन्दोलन ज़ोरोंके साथ चलाया जाय, जो माल आया हुआ पड़ा है, उसकी बिक्री रोकी जावे, आगे आनेवाले मालके आर्डर रद्द कराये जावें और भविष्यमें विदेशी मालके लिये आर्डर न जाने दिये जायँ। विदेशी वस्त्र बेचनेवाले दूकानोंकी पिकेटिंग शुरू कर देनेके लिये भी कांग्रेस-कमेटियोंको आज्ञा दी गई है। हर्षकी बात है कि वर्किंग कमेटीने पूज्य मालवीयजीकी उस समझौतेकी नीतिको अस्वीकार कर दिया है, जिसके अनुसार विदेशी वस्त्र बेचनेवाले तीन महीने या ६ महीनेके लिये विदेशी वस्त्र न मँगानेकी प्रतिज्ञा कर दिया करते थे और इस प्रकार पिकेटिंगके संकटसे बच जाते थे। जिस शीघ्रताके साथ विदेशी मालके वे व्यापारी इस प्रकारके समझौतेके लिये राज़ी हो जाते थे उससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि इस मामलेमें भी वे दुकानदारीसे काम ले रहे हैं। इस विषयपर टिप्पणी करते हुए महात्माजीने लिखा था :—

"इसमें बनियापनके भाव बहुत प्रबल हैं। विदेशी वस्त्रके व्यापारियोंने जो रुख अख़्तियार किया है, वह इस भावका सूचक है। वे विदेशी वस्त्रके व्यापारको इस शर्तपर छोड़ना चाहते हैं कि उन्हें कोई नुकसान न हो—घटी न सहनी पड़े। लेकिन देशभक्ति और बनियापनकी कभी पटी नहीं। हिन्दोस्तानके भाइयों और बहनोंसे इस समय तो यह आशा की जाती है कि वे स्व० दत्तात्रेयकी तरह मौतका मुकाबला करें, श्री कछालियाकी तरह अनिवार्य दिवालेको सहें, स्व० गोपबन्धुदास और उनके-से कई दूसरे धूल-भरे हीरोंकी तरह गरीबीको गले लगायें और स्व० विट्ठलभाई लल्लू भाईकी विधवा पत्नीकी तरह अपने प्रियसे प्रिय सम्बन्धियोंके वियोगका स्वागत करें। अतएव विदेशी वस्त्रके व्यापारियोंकी नुकसानसे बचनेकी यह वृत्ति मेरे विचारसे उनमें देशभक्तिके अभावकी सूचक है।

बायकाटका प्रभाव विलायतमें खूब पड़ रहा है। दिल्लीके एक व्यापारीने, जो विदेशी माल मँगाया करते हैं, १७ मईके लीडरमें एक चिट्ठी छपाई है जिसमें वे लिखते हैं—"विलायतसे जो चिट्ठियाँ प्राइवेट लोगोंसे आ रही हैं उनसे प्रकट होता है कि विदेशी वस्त्र बहिष्कार आन्दोलनका वहाँ काफी असर पड़ रहा है।" मेनचेस्टरके एक फर्मके अधिकारी अपनी १६ ता० के पत्रमें लिखते हैं—कपड़े बनानेवालोंके लिये यहाँ कार्यकी कमी है इसलिए वे सस्ते दरपर माल बेचनेके लिये तैयार हैं, नहीं तो उन्हें अपनी मिलें ही बन्द कर देनी पड़ेंगी और एक बार बन्द होनेपर फिर वे कभी नहीं खुलनेकी।"

दूसरी फर्मवाले लिखते हैं—"भारतवर्षसे अब कपड़ेकी माँग क़रीब-क़रीब रुक गई है।"

तीसरी फर्मवालोंकी चिट्ठी बड़ी करुणाजनक है। वे लिखते हैं :—"हम इस बातके लिए अत्यन्त चिन्तित हैं कि आप हमारा नाम तथा पता न भूल जावें। इस संकटके बाद कभी न कभी तो आशाजनक दिन आवेगा, इसलिए इस समय हम केवल यही प्रार्थना करते हैं कि आप उस वक्त हमारी याद कर लें और तब आप हमें पूर्ण सहयोग करनेके लिए उद्यत पावेंगे।"

इन पत्रोंसे स्पष्ट है कि बायकाटका आन्दोलन अपना रंग दिखला रहा है।

इस आन्दोलनमें किसी प्रकारकी शिथिलता न आनी चाहिए। जितना लाभदायक प्रभाव इस आन्दोलनका पड़ेगा, उतना किसी दूसरी वस्तुका नहीं पड़ सकता।

—

'विशाल भारत'के प्रेमियोंके सेवामें निवेदन

हमें यह लिखते हुए हर्ष है कि 'विशाल-भारत'के ग्राहकोंकी सन्तोषजनक रीतिसे बढ़ती है और यदि यही क्रम जारी रहा तो इस वर्षके अन्त तक 'विशाल भारत' अपने पैरों खड़ा हो जावेगा। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हम अपनी ओरसे काफ़ी परिश्रम कर रहे हैं और 'विशाल भारत' के प्रत्येक प्रेमीसे प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे पास ऐसे पाँच-सात सज्जनोंके नाम तथा पते भेज दें, जिनको हम 'विशाल-भारत' का नमूना भेज सकें। इतना ध्यान रहे कि केवल उन्हीं महानुभावोंके नाम भेजने चाहिये जिनके ग्राहक बननेकी सम्भावना हो।

Edited, Printed & Published by Benarsi Das Chaturvedi, at the Pravasi Press,
120-2, Upper Circular Road, Calcutta.

विशाल-भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ३ खण्ड १ | जून, १९३० ; असाढ़, १९८७ | अङ्क ६ पूर्णाङ्क ३०

महाराष्ट्र देश और मराठा जाति

[लेखक :—सर यदुनाथ सरकार]

सन् १९११ की मर्दुमशुमारीसे मालूम होता है कि सारे भारतके ३१ करोड़ लोगोंमें-से लगभग दो करोड़ नर-नारी मराठी भाषा बोलते हैं। इनमेंसे एक करोड़से कुछ अधिक बम्बई इलाक़ेमें, क़रीब आधे करोड़ मध्यप्रदेश और बरारमें और बत्तीस लाख निज़ामके राज्यमें रहते हैं। सिन्धको छोड़ बम्बईका प्रान्त जितना बचता है, उसके आधे बाशिन्दोंकी और मध्यप्रदेशके एक-तिहाई लोगोंकी एवं निज़ाम-राज्यके एक तिहाई लोगोंकी मातृ-भाषा मराठी है। यह भाषा दिनपर दिन फैलती जा रही है। इसका कारण यही है कि मराठी साहित्य बढ़ा-चढ़ा है एवं बढ़ रहा है, और मराठा-जाति भी तेज़ और उन्नतिशील है।

खास महाराष्ट्र देश कहनेसे दक्षिण-भारतकी ऊँची ज़मीनका पश्चिम-प्रान्तका क़रीब अट्ठाईस हज़ार वर्गमीलका स्थान समझा जाता था। अर्थात् नासिक, पूना और सतारा ये तीनों ज़िले और अहमदनगर तथा शोलापुर ज़िलेका कुछ हिस्सा ; उत्तरमें ताप्ती नदीसे लेकर दक्षिणमें कृष्णा नदीकी पहली शाखा वर्णा नदी तक ; पूर्वमें सीना नदीसे लेकर पश्चिमकी ओर सह्याद्रि (पश्चिमघाट) के पहाड़ तक। सह्याद्रि पार होकर अरब-समुद्र तक फैली हुई जो लम्बी ज़मीन है, उसके उत्तरके आधे हिस्सेको कोंकण कहते हैं और उसके दक्षिणके भागको कनाड़ा और मलाबार कहते हैं। इसी कोंकण-प्रदेशके थाना, कोलाबा और रत्नागिरि नामके तीन ज़िले और इन्हीं ज़िलोंसे लगा हुआ सामन्तवाड़ी नामका देशी राज्य क़रीब दस हज़ार वर्गमीलका है। यद्यपि बहुतेरे लोग आजकल मराठी बोलते हैं, परन्तु ये सब लोग जातिके मराठा नहीं हैं।

खेती-बारी और ज़मीनकी हालत

महाराष्ट्र देशमें पानी ठिकानेसे नहीं बरसता है और कम बरसता है, इसी कारण यहाँ अन्न कम उपजता है। किसान साल-भर मेहनत करके किसी तरह पेट भरने मात्रके लिए फसल तैयार करता है। किसी-किसी साल इतनी भी फसल तैयार नहीं होती। जो सूखी पहाड़ी ज़मीन है, वहाँ धान नहीं पैदा होता और जौ और गेहूँ भी बहुत कम होता है। इस देशकी खास फ़सल एवं साधारण लोगोंके खानेकी चीज़ें केवल जुआर, बाजरा और भुट्टा है। कभी-कभी पानी न पड़नेके कारण इन सब पेड़ोंके सूख जानेसे ज़मीनका ऊपरी भाग जलकर धूलके रंग-सा हो जाता है, कोई भी चीज़ हरी नहीं बचती और अनगिनती औरत-मर्द एवं गाय-बछड़े खाने बिना मर जाते हैं। इसी कारण हम लोग दक्षिणमें अकाल पड़नेकी बातें बहुत सुनते हैं।

यह देश पहाड़ और जंगलसे ढका हुआ है। यहाँ उपज कम होनेसे लोगोंकी संख्या भी बहुत कम है। उत्तर-दक्षिणमें सह्याद्रि पहाड़की चोटी आसमान तक खड़ी होकर समुद्रके तरफ़ आनेका रास्ता रोक रही है। इसी सह्याद्रिके पूरबकी ओर बहुतसी शाखाएँ निकली हुई हैं। इस प्रकार यह देश अनेक छोटे-छोटे हिस्सोंमें बँटा है। हरएक हिस्सेके तीन ओर पहाड़ोंकी दीवारें हैं और बीचमें पूरबकी ओर मुँह करके तेज़ बहनेवाली एक पुरानी नदी है। इन्हीं टुकड़े-टुकड़े हुए ज़िलोंमें मराठे लोग एकान्तवास करते थे। बाहर संसारमें क्या हो रहा है, उसकी वे कुछ खबर नहीं रखते थे। कारण इसका यही था कि इन लोगोंके पास न धन-धान्य था, न वैसा कुछ कारीगरीका पेशा था, न व्यापारियोंका सुभाव था और न राजधानियोंके मनको खींचनेवाली बड़ी-बड़ी राजधानी थी; परन्तु भारतके पश्चिम समुद्रके बन्दरों तक पहुँचनेके लिए इसी देशको पारकर जाना पड़ता था।

पहाड़ी क़िले

इस एकान्तवासके कारण मराठा-जाति आपसे आप स्वाधीनता-प्रिय हुई और अपनी जातिके विशेषत्वकी रक्षा कर सकी। इस देशमें स्वयं प्रकृति देवीने अनेक पहाड़ी क़िले तैयार कर दिये हैं। उन्हींमें आश्रय लेकर मराठे सहजमें बहुत दिन तक अपनी रक्षा कर सकते और बहुतसे चढ़ाई करनेवालोंको बाधा दे सकते थे। आखिरकार इनके थकेमांदे शत्रुको खिन्न होकर लौट जाना पड़ता था।

पश्चिमघाट श्रेणीके अनेक पहाड़की चोटियोंका प्रदेश समतल और आस-पास बहुत दूर तक ढलवाँ है, परन्तु इनके ऊपर बहुतसे झरने हैं। पहलेके ज़मानेमें इन पहाड़ोंसे ट्रेप (Trap) पत्थरके गिरनेसे बहुत बड़ा ब्यासल्ट (Basalt)—खड़ी दीवार अथवा स्तूपाकार बाहर निकला है। वह फोड़ा या खोदा नहीं जा सकता। पहाड़की चोटीपर पहुँचनेके लिए पहाड़में सीढ़ी काटनेसे और रास्ता रोकनेके लिए दो-चार दरवाज़े बनाने ही से एक-एक अलग-अलग क़िले तैयार हो जाते हैं, इसमें कोई खास मेहनत करनेकी या धन खर्च करनेकी ज़रूरत नहीं है। इस प्रकारके क़िलेमें रहकर पाँच सौ सैनिक बीस हजार शत्रुओंको बहुत दिन तक रोके रख सकते हैं। ऐसे अनगिनती क़िलोंसे देश भरा हुआ है, इस कारण तोपके बिना महाराष्ट्र देशको जीतना साध्य नहीं है।

इस जातिकी मेहनत और सीधा-सादापन

जिस देशकी यह दशा है, वहाँ कोई भी आलसी नहीं रह सकता। पुराने महाराष्ट्र देशमें कोई भी बेकार नहीं रहता था। कोई भी दूसरेकी कमाईके ऊपर जीवन बसर नहीं करता था। यहाँ तक कि गाँवका ज़मींदार (पटेल या प्रधान) भी सरकारी काम करनेके बाद अपना अन्न आप उपार्जन करता था। देशमें धनियोंकी संख्या बहुत कम थी और वे भी कारोबार करनेवालोंमें से होते थे। ज़मींदारोंकी जो बड़ाई होती थी, वह उतनी नकद जमाके लिए नहीं, जितनी अन्न और सैन्य-संग्रहके लिए होती थी।

इस तरहके समाजमें हरएक स्त्री-पुरुषको शारीरिक परिश्रम किये बिना चारा नहीं है, यहाँ कोई भी शौकीन या नाज़ुक नहीं रह सकता। प्रकृति देवीके कठोर शासनमें सबको किसी प्रकार सादे ढंगसे जीवन-निर्वाह करना पड़ता था,

इसीलिए उन लोगोंके बीच भोग-विलास तो दूर रहा, एकाग्र-चित्तसे उपार्जित ज्ञान, बारीक कारीगरी, यहाँ तक कि सभ्यता भी असंभव थी। उत्तर-भारतमें मराठोंकी प्रधानताके समय इन विजेता मराठोंके व्यवहारको देखनेसे वे घमंडी, ज़बर्दस्ती बढ़े हुए, असभ्य और सभ्यताहीन, यहाँ तक कि जंगली मालूम होते थे।

उन लोगोंके बड़े लोग भी बारीक कारीगरी, हिलमिल कर रहने और भलमनसाहत पर बहुत कम ध्यान देते थे। सच है, अठारहवीं शताब्दीमें भारतके बहुतसे प्रान्तोंमें मराठे राज करते थे, परन्तु उन लोगोंने कोई अच्छी इमारत, सुन्दर चित्र या कामदानी किताब तैयार नहीं कराई।

मराठोंका जातीय चरित्र

महाराष्ट्र देश सूखा और स्वास्थ्यकर है। इस प्रकारकी जल-वायुका गुण भी कम नहीं है। इसी कठोर जीवनके कारण मराठोंके स्वभावमें अपने आपपर भरोसा रखना, साहस, मेहनत, ढोंग-रहित सीधा-सादा व्यवहार, समाजमें सबके साथ एकसा बर्ताव और हरएक आदमीको अपनी इज्ज़तका खयाल तथा स्वाधीन रहनेकी इच्छा इत्यादि बड़े-बड़े गुण उत्पन्न हुए थे। सातवीं ईस्वीमें चीनके यात्री हुयानूत्सुयाङ्गने अपनी आँखों मराठोंको इस प्रकार देखा था—"इस देशके रहनेवाले तेज़ और लड़ाकू हैं, वे उपकारको कभी नहीं भूलते और अपकार करनेवालेसे उसका बदला लेना चाहते हैं। कोई तकलीफ़में हो और मदद चाहे, तो वे अपना त्याग करना मंज़ूर करते हैं और अपमान करनेवालेको बिना मारे नहीं छोड़ते हैं। बदला लेनेके पहले वे शत्रुको चेतावनी देते हैं।"

जिस समय यह बौद्ध यात्री भारतमें आया, उस समय मराठे दाक्षिणात्यके मध्य-भागमें खूब फैले हुए और धन-जन-पूर्ण राजके अधिकारी थे। उसके बाद चौदहवीं ईस्वीमें मुसलमानोंकी विजयके कारण वे लोग स्वराज्य खोकर दाक्षिणात्यके पश्चिमके पहाड़ों और जंगलोंमें रहने लगे। इस प्रकार ग़रीबीकी हालतमें वे एक कोनेमें पड़े रहे। इस निर्जन प्रदेशके जंगल, ऊसर ज़मीन और जंगली जानवरोंके साथ लड़ते-झगड़ते धीरे-धीरे वे लोग सभ्यता और उदारता खो बैठे सही, परन्तु साथ ही उनमें साहस, होशियारी और कष्ट सहन करनेकी काफ़ी शक्ति आ गई। मराठी सेना साहसी, तकलीफ़ बर्दाश्त करनेवाली और परिश्रमी होती है। रातको चुपचाप छापा मारना, शत्रुके लिए जाल फैलाकर छिपा रहना, अफ़सरका मुँह न ताकते हुए अपनी बुद्धिके बलपर तकलीफ़से बचना और लड़ाईकी चाल बदलनेके साथ-साथ पैंतरा बदलनेकी खूबी आदि—एक साथ इतने गुण केवल अफ़ग़ान और मराठा-जातिको छोड़ एशिया महादेश-भरमें और किसी दूसरी जातिमें नहीं पाये जाते।

सामाजिक समान-भाव

धनी और सभ्य समाजमें जिस तरह नाना प्रकारका जात-पाँतका बखेड़ा और ऊँच-नीचका भेद है, सोलहवीं शताब्दीके सीधे-सादे ग़रीब मराठोंके बीच वैसा कुछ नहीं था। वहाँ धनीका मान या पद दरिद्रसे बहुत ऊँचा नहीं था। ग़रीबसे ग़रीब आदमी भी लड़ाकेका और खेतीका काम करता था, इसलिए वह भी बराबर इज्ज़तका हक़दार समझा जाता था। इतना तो ज़रूर था कि वे आगरे और दिल्लीके अकर्मण्य भिखमंगोंके या पराये मत्थे खानेवाले खुशामदी टट्टुओंके घृणित जीवन व्यतीत करनेसे बचे रहते थे, क्योंकि इस देशमें ऐसे आदमियोंको खिलाने-पिलानेवाला कोई न था। पुरानी चाल और ग़रीबीके कारण मराठा-समाजमें औरतें न घूँघट डालती थीं और न अन्तःपुरमें ही रहती थीं। स्त्रियोंके स्वाधीन होनेका फल यह हुआ कि महाराष्ट्रमें जातीय शक्ति खूब बढ़ गई और सामाजिक जीवन अधिक पवित्र और सरस हो गया। इस देशके इतिहासमें बहुतसी काम करनेवाली बहादुर औरतोंके दृष्टान्त पाये जाते हैं। केवल वे ही वंश जो क्षत्रिय होनेका दावा रखते थे, अपनी स्त्रियोंको घरके भीतर परदेमें रखते थे। इसके सिवा ब्राह्मणोंके घरकी स्त्रियाँ भी परदेमें नहीं रहती थीं, यहाँ तक कि बहुतसी तो घोड़ेपर चढ़नेमें उस्ताद थीं।

वैष्णव धर्मने भी इस समाजकी समानताको बढ़ाया। ब्राह्मण लोग शास्त्र-ग्रन्थोंको अपने हाथमें रखकर धर्म-संसारके प्रभु हो बैठे थे सही, परन्तु नये-नये जन-धर्म खड़े हुए, और देशमें लाखों नर-नारियोंको सिखलाया कि आदमी अच्छे चाल-चलनके बलसे ही पवित्र होता है—जन्मके ज़ोरसे नहीं। सिर्फ क्रिया-कर्म करनेसे मुक्ति नहीं होती, मुक्ति होती है भीतरी भक्ति-भावसे। इन सब नये धर्मोंने भेद-बुद्धिकी जड़ काट दी। उनका मुख्य स्थान था इस देशका प्रधान तीर्थ—पंढरपुर। जिन साधु और सुधारकोंने इस भक्ति-मन्त्रसे देशवासियोंमें नया प्राण डाला, उनमें बहुतसे अशिक्षित और कम दरजा—दर्ज़ी, बढ़ई, कुम्हार, माली, मोदी, हज्जाम, यहाँ तक कि मेहतर—भी थे। आज तक भी वे लोग महाराष्ट्रमें भक्तोंके दिलको वश किये बैठे हैं। तीर्थ-तीर्थमें सालाना मेलेके दिन अगणित संख्यामें इकट्ठे होकर मराठे अपनी जातीय एकता और हिन्दू-धर्मकी एकप्राणताका अनुभव करते थे। जाति-भेद गायब नहीं हुआ सही, परन्तु गाँव-गाँवमें, ज़िले-ज़िलेमें भेद-बुद्धि कम होने लगी थी।

साधारण लोगोंका साहित्य और भाषा

मराठोंका जन-साहित्य भी इस जातीय एकता-बन्धनमें सहायक हुआ। तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित और मोरोपन्त प्रभृति सन्त कवियोंके सरल मातृ-भाषामें रचित गीत और नीति-वचन घर-घर पहुँचे। "दक्षिण देश और कोंकणके हरएक शहर और गाँवमें, खासकर बरसातके समय, धार्मिक मराठा गृहस्थ घरके बाल-बच्चे और बन्धुवर्ग-सहित भक्ति-भावसे श्रीधर कविकी 'पोथी' का पाठ सुनते हैं। बीच-बीचमें कोई हँसता है, तो कोई दुःखकी साँस लेता है और कोई रोता है। जब चरम करुणरसका वर्णन आता है और श्रोता एक साथ दुःखसे रो उठते हैं, तब तो पढ़नेवालेकी आवाज़ भी नहीं सुन पड़ती।" [एकवार्थ]

"पुरानी मराठी कवितामें गम्भीर अर्थवाले लम्बे-लम्बे सुन्दर पद नहीं थे। मनको उछालनेवाली वीणाकी झनकार नहीं थी, बातोंका दाव-पेंच नहीं था, अलबत्ता जनसाधारणका प्रिय पद्य था 'पोंवाड़ा' अर्थात् 'कथा'। इसीसे जातीयताका भाव जाग उठा है। दाक्षिणात्यकी समतल भूमि, सह्याद्रिकी गहरी तराई, पहाड़की ऊँची चोटियों और गाँव-गाँवमें दरिद्र 'गोन्धाली' (चारण) घूमते हैं। आजकल भी उन्हीं पुराने ज़मानेकी घटनाओंको लेकर—उनके पुरखोंने हथियारके ज़ोरसे सारे भारतको जीता था, परन्तु आखिरमें समुद्र-पारसे आये हुए विदेशियोंसे हारकर तितर-बितर हो अपने देशको भाग आये थे—'कथा' और 'कहानी' कहते हैं। गाँवके लोग भीड़ लगाकर इस कहानीको सुनते हैं। कभी तो तन्मय होकर चुप हो रहते हैं और कभी आनन्दके उल्लासमें उन्मत्त हो जाते हैं।" [एकवार्थ]

मराठा जनसाधारणकी भाषा आडम्बरशून्य, कर्कश, और निरी काम-काजकी भाषा है। इसमें उर्दूकी कोमलता, शब्द-रचनाका दाव-पेंच, भाव-प्रकाशकी विचित्रता, सभ्यता और अमीरी कुछ भी नहीं है। मराठा स्वाधीनता, समानता और प्रजातंत्र-प्रिय थे, इस बातका प्रमाण उनकी भाषामें पाया जाता है। उनकी भाषामें 'आप' कह करके कोई किसीको नहीं पुकारता था—सब-के-सब 'तुम' कहकर पुकारते थे।

इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दीके बीचोबीच देखा गया कि महाराष्ट्रकी भाषा, धर्म, विचार और जीवनमें एक आश्चर्य-जनक एकता और समानताकी सृष्टि हुई थी। केवल राष्ट्रीय एकताकी कमी थी, उसे भी पूरा कर दिया शिवाजीने। उन्होंने ही पहले-पहल जातीय स्वराज्य स्थापित किया; उन्होंने दिल्लीपर चढ़ाई करनेवालोंको अपने देशसे निकाल बाहर करनेके लिए जिस युद्धका सूत्रपात* किया था, उसीने उनके नाती पोतेके समय तक देहके रक्तदानसे मराठा-मिलनको गूँथ दिया। अन्तमें पेशवा लोगोंके राजत्वके समयमें सारे भारतके राज-राजेश्वर (सम्राट्) होनेके उद्योगवश जो जातीय गौरवका ज्ञान, जातीय ऐश्वर्य, तथा जातीय उत्साह जाग उठा, उसने शिवाजीके व्रतको पूर्ण कर दिया। कितनी जातियाँ एक साँचेमें ढलकर राष्ट्र-संघ (Nation) गठित होनेके रास्तेपर आईं। भारतके और किसी प्रदेशमें ऐसी बात नहीं हुई।

खेतिहर और लड़ाकू जाति

'मराठा' कहनेसे बाहरके लोग यही नेशन या जन-संघ समझते हैं, परन्तु महाराष्ट्रमें इस शब्दका अर्थ एक विशेष जाति है, समग्र महाराष्ट्रवासी नेशन नहीं। इसी मराठा-जाति तथा उनके नज़दीकी कुटुम्ब कुनबी-जातिके बहुतसे लोग खेतिहर, सिपाही या चौकीदारीका काम करते हैं। सन् १९११ सालमें मराठा-जाति गिनतीमें पचास लाख और कुनबी लोग पचीस लाख थे। इन्हीं दो जातियोंको लेकर शिवाजीकी सेना तैयार की गई थी, यद्यपि अफ़सरोंमें बहुतसे ब्राह्मण और कायस्थ भी थे।

"मराठा (अर्थात् खेतिहर) जाति सीधी-सादी, खुले दिलकी, स्वाधीन बुद्धिवाली, उदार और भली होती है। यह भलाई करनेवालोंका विश्वास करती है, बहादुर और बुद्धिमान् होती है, बीती हुई बड़ाईको याद करके घमण्डके मारे फूल जाती है। ये लोग मुर्गी और मांस खाते हैं, शराब और ताड़ी पीते हैं (परन्तु नशेबाज़ नहीं होते)। बम्बई-प्रान्तके रत्नागिरि ज़िलेके मराठा-जातिके जितने लोग फौजमें भर्ती होते हैं, उतने और किसी जातिके नहीं होते। बहुतसे पुलिस या हरकारेका काम करते हैं। मराठे कुनबियोंकी तरह शान्त और भलेमानस होते हैं, क्रोधी बिलकुल नहीं होते, बल्कि अधिकतर साहसी और रहमदिल होते हैं। ये कम खरचू, नम्र, और धर्मात्मा होते हैं। सब-के-सब कुनबी आजकल खेती करनेवाले हो गये हैं। वे दृढ़, शान्त, मेहनती, क़ायदेसे चलनेवाले, देव-देवीके भक्त और चोरी-डकैती या अन्य अपराधोंसे रहित होते हैं। उनकी औरतें भी मर्दोंकी तरह मज़बूत और कष्ट सहनेवाली होती हैं। इन लोगोंमें विधवा-विवाहकी प्रथा है।" (बम्बे गज़ेटियर)

यहाँ तक तो मराठोंके गुणकी बात हुई, अब उनके कुछ दोषोंको भी सुनिए—

मराठोंके चरित्रका दोष

मराठोंकी राजशक्ति विदेशकी लूटके बलपर जीवित थी। मालिकका व्यवहार नौकरोंके बर्तावको देखकर मालूम होता है। शिवाजीके जीवनकालमें भी उनके ब्राह्मण अफ़सर घूस माँगते और वसूल करते थे।

मराठे लोग अपने शासनकी नींव सुदृढ़ आर्थिक आधारपर नहीं रख सके, इसीसे उनका राज अधिक दिनों तक नहीं टिक सका। इस जातिमें एक भी आदमी बड़ा महाजन, बनिया, कारोबार चलानेवाला, यहाँ तक कि सरदार ठेकेदार तक नहीं हुआ। मराठा राजशक्तिकी खास चूक थी धनके बन्दोबस्त करनेकी कमज़ोरी। इनके राजा हमेशा कर्ज़दार रहते थे। वक्तपर और अच्छी तरहसे राजका खर्च चलाना और राज-काजकी बागडोरको ठीक रखना उन सबोंके लिए असंभव था।

परन्तु आजकलके मराठा एक बेजोड़ धनके धनी हैं। सिर्फ़ तीन पुश्त आगे उनकी जाति सैकड़ों लड़ाईके मैदानोंमें मौतके सामने पड़ी थी, राजकालके दूत-कर्म और सन्धिके विचार तथा षड्यन्त्रके जालमें लिप्त थी, मालगुज़ारी और आमद-खर्चका हिसाब ठीक करती थी, साम्राज्यकी अनेक बातोंकी चिन्ता करनेको मजबूर थी। उन लोगोंने भारतके जिस इतिहासकी सृष्टि की है, हम लोग आज उसी भारतके बाशिन्दे हैं। इन सब कीर्तियोंकी याद आनेपर मराठोंके हृदयमें अवर्णनीय तेजका संचार होता है। तीव्र बुद्धि, धैर्य, श्रमशीलता, सीधा-सादा चाल-चलन, मनुष्य-जीवनके ऊँचे आदर्शके अनुसरण करनेकी प्रबल इच्छा, जो उचित समझते हैं, उसे करेंगे ही, ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा, त्यागकी अभिलाषा, चरित्र-बलकी दृढ़ता और सामाजिक एवं राष्ट्रीय समानतामें विश्वास—इन सब गुणोंमें मराठोंके मध्यम श्रेणीके लोग भारतकी किसी दूसरी जातिसे कम नहीं हैं, बल्कि अनेक बातोंमें बढ़े-चढ़े हैं। अहा! इसके साथ-साथ उन लोगोंमें यदि अंग्रेज़ोंकी तरह संगठन और प्रबन्ध करनेकी चतुराई, एक साथ काम करनेकी शक्ति, लोगोंसे काम लेने और उनको वशमें रखनेकी ताक़त, दूरदृष्टि, और अपार विषय-बुद्धि (Common Sense) रहती, तो आज भारतके इतिहासका स्वरूप दूसरा ही होता।

[सुयोग्य लेखकका यह लेख बहुत थोड़े संशोधनके बाद उन्हींकी भाषामें ज्योंका त्यों दिया जाता है।—सम्पादक]

एडवर्ड कार्पेन्टरका आत्म-चरित

[लेखक :—- बनारसीदास चतुर्वेदी]

आत्म-चरित बहुतोंने लिखे हैं, पर अब तक जो दो-चार हमारे देखनेमें आये हैं, उनमें महात्मा गान्धी, प्रिन्स क्रोपाटकिन और एडवर्ड कार्पेन्टरके आत्म-चरित उल्लेख-योग्य तथा पठनीय हैं। आत्मिक विकासकी दृष्टिसे गान्धीजीका, राजनैतिक दृष्टिसे और रूसकी तत्कालीन दशा जाननेके लिए क्रोपाटकिनका और साहित्यिक दृष्टिसे कार्पेन्टरका आत्म-चरित पढ़ा जाना चाहिए। पहले दोके विषयमें 'विशाल-भारत' के पाठक कुछ-कुछ जानते ही हैं, एडवर्ड कार्पेन्टरके बारेमें भी पार्लामेण्टके मेम्बर मि० विलफ्रेड वेलाकका एक लेख 'विशाल-भारत' में छप चुका है। इस लेखमें उनके आत्म-चरितके कुछ अंश दिये जायँगे।

एडवर्ड कार्पेण्टर कोई मामूली साहित्यिक नहीं थे। उन्होंने बीसियों किताबें तथा पचासों ही महत्त्वपूर्ण पेमफ्लेट तथा लेख लिखे थे, और उनकी पुस्तक-पुस्तिकाओंके अनुवाद जर्मन, इटेलियन, फ्रेंच, डच, रशियन, बलगेरियन, स्पेनिश, जापानी, स्वीडिश तथा नार्वेजियन भाषामें हुए थे। उनकी एक किताबका अनुवाद हिन्दीमें भी हुआ था। * एडवर्ड कार्पेन्टरका आत्म-चरित 'My days and Dreams' 'मेरे दिन और मेरे स्वप्न' के नामसे प्रकाशित हुआ था, और वह George Allen and Unwin Limited, London से ८½ शिलिंगमें मिल सकता है।

एडवर्ड कार्पेण्टरके माता-पिता काफ़ी धनाढ्य थे। उन्हें किसी चीज़की कमी नहीं थी, पर एडवर्ड कार्पेन्टरकी बाल्यावस्थाकी स्मृतियाँ मधुर नहीं थीं। उसका एक कारण था, वह यह कि उन दिनों अंग्रेज़ी समाजमें कृत्रिमताका प्राबल्य था, बाहरी बातोंकी ओर बहुत ज्याद: ध्यान दिया जाता था और सहृदयता तथा भावुकताको घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। कार्पेन्टर बाल्यावस्थासे ही भावुक थे, और उन्हें सदा इस बातका डर लगा रहता था कि कहीं हम किसी सामाजिक नियमका उल्लंघन तो नहीं कर रहे हैं। कार्पेन्टरके माता-पिता बड़े भलेमानस थे, पर वे भी परिस्थिति तथा सामाजिक नियमोंके दास थे, और उन नियमोंको तोड़नेकी हिम्मत उनमें नहीं थी। शिष्टाचारके नियमोंकी पाबन्दीकी ओर लोगोंका बहुत ज्याद: ख़याल था, सदाचारकी ओर कम। कार्पेन्टर लिखते हैं :—

"हमारे पास ही एक युवक पादरी रहता था। बाल खूब सम्हालके रखता था, बड़े कोमल उसके बाल थे, दाढ़ी भी सफाचट मुँड़ी हुई रखता था, शिष्टाचारके नियमोंका बड़ा पाबन्द था और लोग उसकी बड़ी तारीफ़ करते थे। वे कहते थे—'आदमी हो, तो ऐसा। कैसे अदब क़ायदेसे रहता है और कैसे अच्छे धार्मिक व्याख्यान देता है।' बेचारा दिमागका कुछ कमज़ोर था, पर मैं उन दिनों उस युवक पादरीको, जिनका नाम मि० केस था, एक आदर्श व्यक्ति माना करता था और मन-ही-मनमें कहा करता था—'अहा! मि० केस तुम बड़े ही सौभाग्यशाली हो! क्या ही अच्छा हो, यदि बड़े होनेपर मैं भी तुम्हारी तरहका ही आदमी बन सकूँ।' उस समय मेरी उम्र चौदह वर्षकी थी, और सम्भवत: मि० केसके दृष्टान्तको देखकर ही मेरे हृदयमें पादरी बननेकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। शायद 'धर्म' के प्रति मेरे हृदयमें 'घातक' रुचि बाल्यावस्थासे ही थी। इसका एक क़िस्सा सुन लीजिए। रातको जब कभी मेरी नींद खुल जाती, तो मैं दिलमें सोचता कि अगर इस घरमें आग लग जाय, तो मैं क्या करूँ। उस समय मेरे मनमें यही आता था कि किसी तरह अपनी

---

* 'Civilization : its cause and cure' का अनुवाद 'सभ्यता महामारी और उसका इलाज' के नामसे श्रीयुत [illegible]जीने किया था। यह ग्रन्थ हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी कलकत्तासे मिल सकता है।

प्रार्थनाकी पुस्तकको आगमें जलनेसे बचाना मेरा प्रथम धर्म है। कल्पना करता कि घरमें आग लग गई है, मैं बड़ी वीरतापूर्वक झपटकर अपनी माँके कमरेमें जाता हूँ और उस पवित्र धर्म-ग्रन्थको उठाकर धुआँ तथा लपटोंके बीचमेंसे निकलता हुआ सड़कपर आता हूँ। अपनी माता तथा बहनोंको आगमेंसे बचानेका मुझे खयाल भी नहीं आता था, बजाय उनके धर्म-पुस्तक बचानेकी सूझती थी! अब मैं सोचता हूँ कि मेरे स्वभावकी वह क्या ही भयंकर त्रुटि थी और मेरी पढ़ाई कैसी दोषपूर्ण रही होगी!"

आगे चलकर जिस स्वाधीनताके साथ एडवर्ड कार्पेण्टरने सामाजिक रूढ़ियोंका विरोध और उलंघन किया और जो स्वाभाविक स्वतन्त्रापूर्ण जीवन व्यतीत किया, वह उनके बाल्यावस्थाके कृत्रिम जीवनकी प्रतिक्रियाका परिणाम था। बाल्यावस्थामें १९-२० वर्षकी उम्र तक एक भी आदमी ऐसा नहीं था, जो कार्पेण्टरसे अपने मनकी बात कहता और जिससे कार्पेण्टर अपने मनकी बात कह सकते। उस समयकी यदि कुछ आनन्दप्रद स्मृतियाँ कार्पेण्टरको थीं, तो वे अपने भाई-बहनोंके साथ खेलनेकी।

स्कूलमें

कार्पेण्टर लिखते हैं—"मेरा यह अनुभव है और सम्भवत: सबका यही अनुभव होगा कि लड़का स्कूलमें जो-कुछ पढ़ता है, उसका भावी जीवनपर विशेष स्थायी असर नहीं पड़ता। दस वर्षकी उम्रमें मैं ब्राइटन-कालेजमें भर्ती हुआ। उसके पहले मेरी बहनने मुझे थोड़ीसी लैटिन भाषाका व्याकरण सिखला दिया था। मेरा बड़ा भाई चार्ली पहलेसे ही इस विद्यालयमें पढ़ता था। वह बड़ा होशियार लड़का था और विद्यालयमें सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। पढ़ाई-लिखाई और खेल-कूद इत्यादिमें भी उसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। सब इनाम वही मार ले जाता था, सभी लड़के उसे प्रेम करते थे। वह बड़ा हँसमुख था और हँसी-मज़ाक भी खूब करता था। किसीके प्रति उसके हृदयमें ईर्ष्या नहीं थी, और कोई भी उससे ईर्ष्या नहीं करता था। १९-२० वर्षकी उम्रमें वह आई०सी०एस०की परीक्षा पास करके हिन्दुस्तानको चला गया। वहाँ फतेहपुर, सहारनपुर इत्यादिमें रहा, फिर इलाहाबादमें सेटिलमेण्ट-आफिसर नियुक्त किया गया। इसके बाद वह जबलपुर और नागपुरमें कमिश्नर रहा। नागपुरमें शिकारके लिए जाते समय एक दुर्घटनासे उसकी मृत्यु हो गई।"

स्कूलमें जो शिक्षक महोदय कार्पेण्टरको रेखागणित पढ़ाते थे, उनका नाम न्यूटन था। कार्पेण्टरके हृदयमें यह दृढ़ विश्वास था कि यही सर आइज़क न्यूटन हैं!

मूर्ख लड़केसे छेड़छाड़

कार्पेण्टर लिखते हैं—"विद्यार्थी-जीवनमें मैंने कोई बड़ी बहादुरीका काम किया हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। हाँ, उस समयकी कुछ क्षुद्रतापूर्ण बातें ज़रूर याद पड़ती हैं।

एक तो मैं फ्रेंच पढ़ानेवाले मास्टरको चिढ़ाया करता था और दूसरे एक मूर्ख लड़केको तंग किया करता था। वह लड़का बड़े कमज़ोर दिमागका था और कुछ भी पढ़-लिख नहीं सकता था। उसके सिवा उसके शरीरसे एक विचित्र प्रकारकी दुर्गन्ध भी निकलती थी। कभी तो मेरे मनमें उसके ऊपर क्रोध आता और कभी रहम। कभी तो उसकी कमज़ोरी देखकर मेरे हृदयमें उसके प्रति सहानुभूतिके भाव उत्पन्न होते थे और कभी उसकी दुर्गन्ध तथा मूर्खताके कारण उसके ऊपर बहुत गुस्सा आता था और उसे चपतानेका कोई-न कोई कारण मैं ढूँढ़ निकाला करता था। उसे मारकर मुझे बड़ा पछतावा होता, रातको नींद नहीं आती और पड़ा-पड़ा सोचा करता कि इस पापका प्रायश्चित्त कैसे करूँ, पर सवेरा होते ही उसे देखकर फिर मेरे मनमें चिढ़चिढ़ाहट उत्पन्न हो जाती। इस प्रकार मेरे लिए वह लड़का बड़े कष्टका कारण बन गया था। यह घटना मैंने यह बतलानेके लिए वर्णन की है कि प्राय: लड़कोंके हृदयमें कुरूप चीज़ोंके लिए हार्दिक कुरुचि होती है, और यही उनकी बेरहमीका कारण बन जाती है, पर ज्यों-ज्यों लड़कोंमें समझ और सहानुभूति आती जाती है, त्यों-त्यों उनका जंगलीपन दूर होता जाता है। ज्यों-ज्यों मैं बड़ा होता गया, मेरा स्वभाव भी बदलने लगा। अब मैं बड़े लड़कोंके

मुहल्लेके छोटे लड़कोंको बचाने लगा। एक दिन दो मूर्ख लड़कोंके लिए बावलरसे झगड़ पड़ा। एक बार एक ग़रीब आदमी बहुतसा बोझ लिए आ रहा था, मैंने उसे बोझ सम्हालनेमें मदद दी। इतनेमें मेरे शिक्षक वही 'सर आइज़क न्यूटन' उधरसे आ निकले, और बोले—"That's right, my boy" (बहुत ठीक, बच्चे)। यह बात सुनकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। उस समय मैं अपने मनमें कुछ शर्मिन्दा हो रहा था। मुझे डर था कि कहीं मास्टर साहब इसके लिए मुझे डाँट न बतावें, पर उन्होंने मेरी हिम्मत बढ़ाई, और इस कार्यके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मुझे केवल यही एक मौक़ा याद पड़ता है, जब किसी अध्यापकने चरित्र-निर्माणमें मेरी मदद की हो। मास्टर लोग उन दिनों विद्यार्थियोंके छिपे हुए गुणोंके विकासके लिए भी प्रयत्न नहीं करते थे।

१८–१६ वर्षकी उम्रमें कार्पेन्टरने विद्यालय छोड़ दिया। इस बीचमें उन्होंने सिवाय रेखागणित और बीजगणितके कुछ भी न सीखा। खेलमें क्रिकेट उन्हें नापसन्द था। खड़े खड़े आप कुछ सोचा करते थे और इतनेमें 'कैच' निकल जाता था! पर हाकी और फुटबालका उन्हें शौक था। कार्पेन्टरको अपने विद्यार्थी-जीवनकी कई बातें याद थीं, और उन्हें वे महत्त्वपूर्ण समझते थे। पहली बात तो यह थी कि दस वर्षकी उम्रमें उनके मनमें पियानो बाजा बजाना सीखनेके लिए उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन दिनों लड़कोंके लिए गान-विद्या ठीक नहीं समझी जाती थी। इसके सिवा कार्पेन्टरके छः बहनें थीं, जिन्हें जबर्दस्ती गाना सीखना पड़ता था, चाहे वह उन्हें पसन्द आता था या नहीं! जब लड़कियाँ गाना सीखतीं, तब शिक्षक महोदय कार्पेन्टरको टरका देते थे। कार्पेण्टरकी माताने रहम करके उन्हें थोड़ा बहुत गाना सिखलाया। गान-विद्यासे कार्पेण्टरको जीवन-भर प्रेम रहा।

दूसरी बात यह थी कि कार्पेन्टरके बड़े भाईके कुछ रासायनिक पदार्थ कार्पेन्टरके हाथ लग गये थे और उससे वे अपनी प्रयोगशालामें नाना प्रकारके आविष्कार किया करते थे, पर इन आविष्कारोंका परिणाम हुआ करता था ख़राब धुआँ और उससे भी ख़राब सिरका दर्द! कार्पेण्टर लिखते हैं—"कभी-कभी मैं लेक्चर भी दिया करता था, पर मुश्किल यह थी कि श्रोतागण बड़ी कठिनाईसे एकत्रित हो पाते थे। घरवालोंकी बड़ी ख़ुशामद करनी पड़ती थी, तब कहीं वे मेरा व्याख्यान सुननेको राज़ी होते थे। लेक्चर तो मेरा छोटा-सा होता था, पर उससे धुआँ और धड़ाकेका खतरा बड़ा रहता था। जितना आनन्द मुझे इन प्रयोगों तथा लेक्चरोंमें आता था, उतना स्कूलकी पढ़ाईमें नहीं।"

कार्पेण्टर लिखते हैं:—"बाल्यावस्थाकी तीसरी बात जिसकी मुझे सुखद स्मृति है, वह थी प्रकृतिका संसर्ग। नित्यप्रतिके कृत्रिम सामाजिक जीवनसे बचनेके लिए मैं समुद्र-तटकी ओर चला जाया करता था और वहाँ लहरोंकी गम्भीर गर्जना सुना करता था। हमारे नगरके निकट कुछ 'downs' पहाड़ी घाटियाँ भी थीं, और उनमें भटकनेमें मुझे बड़ा आनन्द आता था। पास ही लार्क चिड़िया बोलती थी, ऊपर बादल इधर-से-उधर जाते हुए दीख पड़ते थे, शहदकी मक्खियाँ फूलोंसे रस लेती हुई दीख पड़ती थीं और कभी कोई रंग-बिरंगी तितली अपनी अनोखी छटा दिखला जाती थी।

बाज़ारके ऊधमसे बिलकुल दूर यहाँ शान्तिमय स्थानमें मैं अपना समय गुज़ारा करता था। मेरे आसपासका सामाजिक जीवन शुष्क था और उसमें स्नेहका कहीं नामो-निशान नहीं था।"

माताकी स्मृति

"अपनी माताके जीवनके विषयमें मैं क्या लिखूँ? उनके स्नेहपूर्ण नेत्रोंमें दुःखकी रेखा दीख पड़ती थी, पर वे अपना दुःख बोलकर किसीसे कहती न थीं। मेरी माँके एक बहन थी, और उसने एक पुरुषसे, जो समाजमें पतित समझा जाता था, विवाह करके मेरी नानीको अत्यन्त नाराज़ कर दिया। नानीने उससे सारा सम्बन्ध छोड़ दिया। लोगोंने कहा—'उसे क्षमा कर दो' पर नानीने उसे क्षमा नहीं किया।

आखिर विवाहके थोड़े दिनों बाद ही मेरी मौसी मर गई। अपनी बहनकी इस मृत्युसे मेरी माताको बड़ी हार्दिक वेदना हुई, पर माता इस दुःखके बोझको अपने हृदयमें रखे रही, किसीपर प्रकट नहीं किया। मेरी माताका सारा जीवन आत्म-त्यागका जीवन था। पहले तो वह अपने माता-पिताकी सेवामें तन-मनसे लगी रही, फिर अपने पतिकी सेवामें और उसके बाद अपने बाल-बच्चोंके पालन-पोषणमें। उसने कभी विश्राम नहीं किया। दिन-रात वह काममें लगी ही रहती थी। आठ-नौ बच्चोंको देख-भाल करना, मेरे पिताजीके आरामका खयाल रखना और घरका सारा इन्तज़ाम करना आसान काम नहीं था। खुद बड़ी कमज़ोरी थी, पर फिर भी बिना काम किये उसे चैन नहीं पड़ता था। मेरे पिताजी बहुत निर्बल हो गये, तो उनके लिए एक शिक्षा-प्राप्त नर्सकी ज़रूरत पड़ी। उस समय मेरी माताको अपने ऊपर बड़ी निराशा उत्पन्न हुई। वह कहती थी—'अब तो मैं दुनियामें किसी कामकी नहीं रही।' मैंने दो बार उसे इन घातक शब्दोंको कहते सुना। इसके थोड़े दिनों बाद थोड़ीसी खाँसीसे ही उसके प्राणपखेरू उड़ गये! कमज़ोर तो पहलेसे ही थी, इसलिए एक धक्का जीवन-तन्तुके टूटनेके लिए काफ़ी हुआ। उसकी मृत्यु भी वैसी ही वीरतापूर्ण हुई जैसा उसका जीवन था। मरते समय उसने सबको—बच्चों और नौकरों तकको, बुलाकर अपनी आँखोंसे देखा, और मुसकराते हुए कहा—'तुम सब मेरे सामने मौजूद हो, सब ठीक है, बस।'

यही उसके शान्तिमय अन्तिम शब्द थे। उसके चेहरेपर अब भी मुसकराहट थी। मेरे पिताजीको, जो अपने जीवन-भर या तो व्यापारमें लगे रहे या दर्शन शास्त्रकी पढ़ाईमें, कभी निजी घरेलू कार्योंकी ओर ध्यान देनेका अवसर ही नहीं मिला। मेरी माताकी मृत्युके कारण मानो वे एक स्वप्नसे जाग्रत हो गये। अब उन्हें मालूम हुआ कि कितनी भयंकर हानि उनकी हुई है। पिताजीको बड़ी मदद मिलती रही मेरी माताकी अचूक सेवासे। पहलेसे ही सोच सोचकर सब काम वह ठीक रखती थी, जिससे पिताजीको अपने कार्यमें कोई अड़चन नहीं पड़ती थी। पिताजीको कभी खयाल भी नहीं आया कि उनका जीवन ऐसी सरलतापूर्वक कैसे निर्वाह हो रहा है। माताकी मृत्युके बाद अकस्मात् एक साथ उन्हें पता लगा कि उन्हें जीवनशक्तिकी दाता कौन थी? पर अब क्या हो सकता था। वे अब कहते थे—'कमर टूट गई, क्या करें कमर टूट गई।' वे ८३ वर्षके हो चुके थे, वैसे ही कमज़ोर थे, उमरका तक़ाज़ा था, माताकी मृत्युसे वे और भी निर्बल हो गये और साल-भर बाद सन् १८८२ में उनका भी स्वर्गवास हो गया।·········

अन्य गुणोंके साथ एक गुण मेरी मातामें और भी था, जो आजकलकी औरतोंमें प्रायः नहीं पाया जाता, वह यह कि मेरी माँ अपने नौकर-चाकरोंका भी बहुत खयाल रखती थी। और भी जो कोई उसकी सहायताकी याचना करने आता, तो वह भी कभी निराश न जाता। जानवरोंके प्रति भी उसके हृदयमें प्रेम था, खास तौरसे कुत्तों और घोड़ोंकी देख-भाल वह बड़े स्नेहसे करती थी। बग़ीचेमें काम करना उसे बड़ा प्रिय था। यदि वह अपनी स्वाभाविक इच्छाके अनुसार रह सकती, तो वह अपने लिए ग्राम्य जीवन पसन्द करती, पर उसकी इस इच्छाकी भी पूर्ति न हो सकी!"

केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयमें अध्ययन

"लगभग बीस वर्षकी उमरमें मैं केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयमें भर्ती हुआ। पढ़ाई-लिखाई तो वहाँ नामको ही होती थी, खेल-कूदमें सारा वक्त जाता था। नाव खेनेका लगभग सभी लड़कोंको शौक़ था और यही उनका मुख्य कार्य था। मैंने भी यही कार्यक्रम अपने लिए स्वीकार कर लिया। दिन-भर नाव खेया करता। नाविकोंकी अटपटी बोली भी मैंने सीख ली और बोट-क्लबका सेक्रेटरी भी बना दिया गया। दो वर्ष इसी नाविक-जीवनमें व्यतीत किये, फिर उस जल-व्यापारमें मन न लगा। तबीयत ऊब गई। तंग आ गया। इसके सिवा अब मेरा ध्यान पढ़ाईकी ओर भी लगा, और ये दोनों काम साथ-साथ नहीं हो सकते थे। गणितकी ओर

मेरी रुचि थी। प्राइवेट ट्यूटर रखके मैंने गणितकी सर्वोच्च परीक्षा पास कर ली।"

जिन दिनों कार्पेन्टर केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयमें गणितकी सर्वोच्च परीक्षाकी तय्यारी कर रहे थे, उन्हीं दिनों उन्हें कविता करनेका शौक़ हुआ, और वे कभी नदी-तटपर, तो कभी उद्यानमें बैठकर कविता करने लगे।

पादरीगीरीका काम

जून सन् १८७० में कार्पेन्टरने पादरीगीरीका काम लिया, पर शीघ्र ही उन्हें यह मालूम हो गया कि उन्होंने बड़ी ग़लती की है। वे लिखते हैं—"यदि पादरीगीरीके कार्यके प्रति मेरे हृदयमें कुछ श्रद्धा थी, तो वह भीतरी दृश्यकी एक झलक देखकर बिलकुल जाती रही। उस नागरिक समाजका भयंकर दुमयबीपन, व्यापारियों तथा दुकानदारोंका रविवारको अच्छी-से-अच्छी पोशाक पहन कर आना, उनकी क्षुद्रताएँ और पाखंड, गिरजा घरके बाजोंका बेसुरा राग, गिरजेके बाहरकी अशिष्टताएँ और भीतर पहुँचते ही सन्तों जैसा चेहरा, गानेवालोंका खोखला स्वर—इन सबको देखकर जो कुछ थोड़ीसी श्रद्धा मेरे मनमें इस कार्यके प्रति थी वह भी जाती रही।" किसी तरह वे आठ-दस महीने तक पादरीका काम करते रहे, पर उनका मन इसमें बिलकुल नहीं लगता था। मई सन् १८७१ में आप बीमार पड़ गये और पादरीगीरीके कामसे पिंड छुड़ाकर घर भाग आये।

कार्पेन्टरके कुछ साहित्यिक मित्र बड़े मौजी आदमी थे। उन लोगोंकी एक समिति थी, और वे सब साथ बैठकर कभी कोई ग्रन्थ पढ़ा करते थे, तो कभी हँसी-मज़ाक किया करते थे। उनके साथी क्लिफर्डने एक तुकबन्दी की थी, जिसमें ईसाइयोंके 'पिता-पुत्र-पवित्रात्मा'के सिद्धान्तका मज़ाक उड़ाया गया था। वह यह थी—

"O Father, son and Holy Ghost,
We wonder which we hate the most;
Be Hell, which they prepared before,
Their dwelling now and ever more."

अर्थात्—'पिता, पुत्र, पवित्र आत्मा किससे घृणा विशेष,
पूर्ण घृणाके अधिकारी हो, हमें न संशय लेश।
किया नरक तैयार सबोंके लिए तुम्हींने खास,
अभी और चिरकाल तलक हो वहीं तुम्हारा वास।

साहित्यिक कार्यका प्रारम्भ

सन् १८६८ में कार्पेन्टरने वाल्ट ह्विटमैन नामक अमेरिकन लेखक और कविकी कविताओंकी एक पुस्तक पढ़ी और उसका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। सन् १८७३ में कार्पेन्टरने अपनी कविताओंका संग्रह किया और उसे कई प्रकाशकोंके पास ले गये, पर कोई छापनेके लिए तैयार न हुआ। आखिरकार आपने स्वयं ही उसे छपानेका निश्चय किया और अपने पाससे दाम खर्चकर उसे छपाया। पुस्तककी कुल जमा दस-बीस प्रतियाँ बिकीं और सो भी कार्पेन्टरके मित्रोंने खरीदीं। इसके बाद पुस्तक जहांकी तहां पड़ी रही।

जीवनमें परिवर्तन

केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयमें पढ़ते समय ही कार्पेन्टरको अपने आसपासके वायुमण्डलसे घृणा उत्पन्न हो गई। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो हम किसी ऐसी दुनियामें आ पड़े हैं, जिसके और हमारे बीचमें सहानुभूति तथा प्रेमका बिलकुल सम्बन्ध नहीं है। बड़े दिनके सप्ताहमें जिस तरह केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके विद्यार्थी शराबकी बोतलोंकी बोतलें उड़ाते थे, उसे देखकर भी कार्पेन्टरके मनमें बड़ी घृणा उत्पन्न होती थी। जो नवयुवक विश्वविद्यालयमें पढ़ते थे, उनके आदर्शोंमें और कार्पेन्टरके आदर्शोंमें ज़मीन-आसमानका अन्तर था। अच्छी-अच्छी पोशाकें पहने हुए वे आदर्शहीन नवयुवक घूमा करते थे, और उनके चरित्र वैसे ही थे, जैसे मुलम्मा की हुई कोई धातु।

जनसाधारणमें शिक्षा-प्रचार

उन दिनों यूनिवर्सिटीकी ओरसे सर्वसाधारणमें शिक्षा-प्रचारके लिए 'विश्वविद्यालयकी व्यापक व्याख्यानमाला' (University Extension Lectures)का प्रबन्ध किया

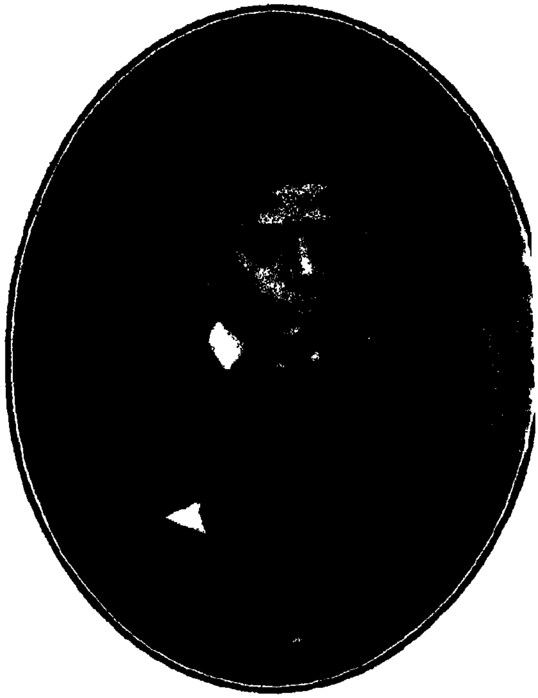
गया था। कार्पेन्टरने यह सोचकर कि चलो इस ढंगसे हम इंग्लैण्डके मामूली आदमियों, किसानों तथा मज़दूरोंके संसर्गमें आ सकेंगे, यह कार्य स्वीकार कर लिया। उनका विषय था 'ज्योतिर्विज्ञान'। कार्पेन्टरको इस विषयका जो ज्ञान था, वह उन्होंने पुस्तकोंसे ही ग्रहण किया था। अपनी देख-भाल तथा अनुभवका भाग उसमें बहुत कम था, और उनके श्रोतागणोंमें अधिकांश संख्या लड़कियोंकी हुआ करती थी, जिनमें कितनी ही ऐसी होती थीं जिन्हें घरपर कोई काम करनेके लिए नहीं था। उनके साथ कुछ क्लर्क और कभी-कभी दो-चार मज़दूर भी व्याख्यान सुननेके लिए आ जाया करते थे। विलायतमें आकाश प्राय: मेघाच्छन्न रहता है, इसलिए सर्वसाधारणको ग्रह-उपग्रह दिखाना भी कार्पेन्टरके लिये कठिन हो जाता था। कितनी ही बार ऐसा हुआ कि कार्पेन्टर अपने विद्यार्थियोंको ग्रह दिखानेके लिए मैदानमें ले गये और ग्रह महोदय छिप गये !

एक व्याख्यानका ज़िक्र करते हुए कार्पेन्टर लिखते हैं—

"एक बार मेरा व्याख्यान एक छोटेसे स्थानपर होनेवाला था। जिस मकानमें व्याख्यानका प्रबन्ध किया गया था, वह पहले नाटक-घर रह चुका था और अब उसे एक नाटक-कम्पनीने किरायेपर ले रखा था। यह कम्पनी दो-तीन दिन बाद आनेवाली थी, पर उसके पर्दे वगैरः उस मकानमें गड़ गये थे, और नाटक-कम्पनीके खेलोंके विज्ञापन भी बँट गये थे। मैंने व्याख्यान देना शुरू किया। इतनेमें एक मोटा-ताज़ा मज़दूर जो शायद किसी खानमें काम करता था, आकर एक कुर्सीपर डट गया। उसने समझा था कि कोई नाटक होगा। बड़ी देरतक तो वह चुपचाप बैठा सुनता रहा, पर पीछे उसका धीरज छूट गया और वह बोला :—

"Look 'ere. I' ve been sittin'. 'ere 'alf an hour—and I haven't understood a word of what you 've been saying, and I don't believe you do neither."

अर्थात् "सुनो, मैं यहाँ आध घंटेसे बैठा हूँ, और जो कुछ तुमने कहा, उसमें से एक शब्द भी नहीं समझा और मेरा तो ऐसा यकीन है कि तुम भी इसमें खाक धूल नहीं समझते।" उस विचारेके साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति थी



एडवर्ड कार्पेन्टर (१३ वर्षकी अवस्थामें)

वह नाटक देखनेके लिए आया था और कहाँका मारा कहाँ आ फँसा, पर मेरे श्रोतागण उसके दृष्टिकोणको नहीं समझ सके। सब-के-सब उठ खड़े हुए। झगड़ा होते-होते बचा। अन्तमें वह आदमी "कौन यहाँ वक्त खराब करे।" कहकर हमारे प्रति और हमारे ज्योतिर्विज्ञानके प्रति घृणा प्रकट करता हुआ चला गया।"

अमरीका यात्रा

सन् १८७७ में कार्पेन्टरने अमेरिका यात्रा की, और वहाँ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध आदमियोंके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त किया। खासतौरसे उन्हें वाल्ट ह्विटमैनसे मिलना था, जिनके ग्रन्थोंको वे कई वर्षसे पढ़ रहे थे और जिनके विचारोंने उनके मस्तिष्कमें क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। उन्होंने अपनी इस यात्राका विवरण 'Days With Walt Whitman' नामक पुस्तकमें किया है। आप सुप्रसिद्ध दार्शनिक एमर्सनसे

...उन दिनों काफ़ी बूढ़े हो चुके थे, पर ...चुस्ती थी। एमर्सनके साथ आप ... टहले और बाहर घूमने भी गये। अपना पुस्तकालय भी उन्होंने कार्पेन्टरको दिखलाया। अपनी पुस्तकोंको वे प्रेमसे हाथमें लेते थे, मानो किसी बच्चेको पुचकार रहे हों, और उन्होंने उपनिषदोंके अनुवाद कार्पेन्टरको दिखलाये। और भी कितने ही प्रसिद्ध आदमियोंसे उनकी मुलाक़ात हुई, पर जो प्रभाव उनपर ह्विटमैनके व्यक्तित्वका पड़ा, उतना किसी दूसरेका नहीं। कार्पेन्टर लिखते हैं कि अमेरिका-भरमें यदि कोई चीज़ ह्विटमैनके व्यक्तित्वका मुक़ाबला कर सकती थी, तो वह था नायगराका जल प्रपात!

[क्रमश:

दुहिताके शोकमें

[लेखक :—श्री शम्भूदयाल सक्सेना]

(१)

मैंने कहा, सुनापर तुमने—
किस दिन मेरे प्राण!
मन्द-स्पन्दित दीपकका जब,
होता था निर्वाण।

(२)

अब प्राचीर तिमिरकी उठकर,
खड़ी हुई सब ओर;
पृथ्वीसे नभ तक दिगन्तमें,
जिसका ओर न छोर।

(३)

दृश्य अदृश्य हो गये सारे,
नहीं किरण तक एक;
क्यों तोड़ोगे, रहने दो वह—
अपनी निष्ठुर टेक।

(४)

अन्धकारमें सोने दो, मेरी—
बच्ची को मौन;
चिर निद्राके पास स्नेहका,
कहो मूल्य ही कौन?

(५)

जन्म लिया, पर पा न सकी—
आजन्म पिताका प्यार:
वंचित शिशुके लिए तुम्हारा,
यह निष्फल उपहार!

(६)

नीले होठोंपर रखते अब,
सजल स्नेहकी छाप;
जीवनमें क्यों छिपा लिया था,
मधुर-भाव चुपचाप?

(७)

सदा सभीत रही जो लखकर,
वक्र तुम्हारी दृष्टि;
अश्रु-वृष्टि अब कर न सकेगी,
प्रियतम! उसकी सृष्टि!

'सेब'

[लेखक :— श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र]

सोमवारको सवेरे उठते ही छै बरसके लड़के बुधुआने अपने सोते हुए पिताके कानमें कहा—"बापजी, आज सोमवार है—आज लाओगे बापजी ?"

नटवरने फटी चटाईपर करवट बदलकर सोता-नींदीमें कहा—"लायेंगे।"

बच्चेका सारा चेहरा मारे खुशीके हँसीसे भर गया। झटपट उठकर वह बाहर दौड़ा चला गया, और अपने बराबरके बड़े बाबूके लड़के श्रीकान्तको पुकारकर बोला—"आज हमारे बापजी लायेंगे—देखना सामको !"

पिता-पुत्रके इस गुप्त परामर्शका विषय था एक सेब। उस दिन श्रीकान्त सड़कपर खड़ा-खड़ा एक लाल रंगके फलपर बड़े उत्साहसे दाँत गड़ा रहा था। बुधुआ बहुत देर तक दरवाज़ेके फटे टाटके परदेमें-से श्रीकान्तकी इस भोजन-लीलाको देखता रहा। फिर अन्तमें जब अपने लालचको सम्हालना उसके लिए दुःसाध्य हो गया, तो उसने बाहर आकर कहा—"तू क्या खा रहा है—सिरीकान्त ?"

श्रीकान्तने निर्विकार-चित्तसे उत्तर दिया—"सेब।"

बुधुआ बोला—"नैक मुझे खा लेने दे भइया।"

श्रीकान्तने फलके बाक़ी हिस्सेको झटपट मुँहमें डालकर कहा, "ऊँ-हुँक् !" उसके बाद चबाना खतम करके बोला—'मेरे बाबू लाये हैं, तेरे बाबू क्यों नहीं ला देते रे तुझे ?"

साढ़े-बाईस रुपये तनख्वाह पानेवाले मामूली क्लर्कका लड़का पाँच-सौ रुपये तनख्वाह-वालेके लड़केके इस जटिल प्रश्नका कुछ उत्तर न दे सका। वह अपना रोना-सा चेहरा लेकर पिताके पास पहुँचा। नटवर उस वक्त अपनी फटी कमीज़पर तह किया हुआ मैला दुपट्टा डालकर नौ-बजेकी गाड़ी पकड़नेके लिए रवाना हो रहे थे, उनके सामने आकर बुधुआने कहा—"बापजी, मुझे एक सेब ला देना !"

"अच्छा"—कहकर नटवर चल दिया।

शामकी गाड़ीसे, दिया-बत्ती जले, नटवर जब आफिससे घर लौट रहे थे, तो रास्तेमें चौराहेपर उन्हें बुधुआ मिला। और दिन तो बुधुआकी अब तक एक नींद हो आती। आज सेबके लालचसे वह सोया नहीं। माँ उसे जबरन बिछौनेपर सुला गई थीं, लेकिन ज्यों ही रेलकी सीटी उसके कानमें पड़ी, वह सोनेका बहाना छोड़कर, डरते-डरते रसोई-घरकी ओर देखकर, चल दिया स्टेशनकी तरफ़। पिताको देखते ही दाहना हाथ पसारकर बोला—"बापजी, मेरा सेब ?"

नटवरने कहा—"अरे ! भूल आया बेटा, कल ला देंगे—अच्छा।"

क्षणमें बुधुआका मुँह इतना-सा रह गया। एक छोटी-सी उसास लेकर उसने कहा—"अच्छा।"

नटवरने सच्ची बात नहीं कही। रास्तेमें मेवा-वालेकी दूकान देखकर बुधुआकी फ़रमाइश याद आई तो थी, लेकिन जेबमें एक भी पैसा न था। दरवान रामशरण सिंहसे क्या चार आने पैसे उधार नहीं मिल सकते थे, लेकिन कल चार आने कहाँसे जुटेंगे, उन्हें नहीं मालूम था। सिर्फ निराश पुत्रको तसल्ली देनेके लिए फिर उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि कल देंगे।

दूसरे दिन भी, बुधुआने सारा दिन सन्ध्याकी प्रतीक्षामें बिता दिया। आज तो सेब आ ही जायगा, इसमें उसे रंचमात्र भी सन्देह न था। बाहरके दरवाज़ेके पास वह खड़ा था, दूरसे पिताको देखते ही दौड़कर उसने 'बापजी'का हाथ पकड़कर कहा—"बापजी, सेब दो।"

नटवरने एक क्षणके लिए मुँह बनाया, फिर जेबमें हाथ डालनेके साथ ही बोल उठे—"अरे, कहाँ गया ! कहीं गिर गया मालूम होता है। हाँ, गिर ही गया कहीं !"—इसके सिवा कोई उपाय न था बुधुआको बहलानेका ! लेकिन इस

दुःखका अभिनय करते हुए नटवरकी आँखोंमें आँसू भर आये।

बुधुआने 'बापजी' का हाथ छोड़ दिया। उसके बाद साथ छोड़कर कुछ दूर आगे बढ़ गया, फिर लौटकर बोला—"ऐं बापजी, कितना बड़ा था वो ?"

नटवरने उँगलियोंको फैलाकर एक कल्पित नाप दिखा दिया।

बुधुआने कहा—"ओः, खूब बड़ा था बापजी ! ऐं बापजी, फिर कल लाओगे ?"

परसों सोमवार वेतन मिलनेका दिन है। नटवरने कहा—"कल नहीं बेटा, सोमवारको ला देंगे, अच्छा।"

बुधुआने प्रश्न किया—"सोमवार कब है बापजी ?"

"कलका दिन छोड़कर परसों सोमवार है। दो ला देंगे।"

बुधआ फूला न समाया, बोला—"उतने ही बड़े लाल-लाल लाना, बापजी।"

नटवरने कहा—"अच्छा।"

बुधआ नाचता हुआ घरके आँगनमें पहुँचा, बोला—"मा, बापजी मुझे दो सेब ला देंगे कलकत्तासे, हाँ ! खूब बड़े-बड़े !"

रसोई-घरसे बुधआकी माने पतिकी ओर निहारकर कहा—"देखा ! अभी मिले नहीं सो तो यह हाल है, मिलनेपर न-जाने क्या करेगा लल्लू !"

बड़ाबाज़ारके चौराहेपर एक मेवाफरोश काबुलीकी दूकानपर जाकर नटवरने छाँट-छाँटकर बड़े-बड़े दो सेब अलग निकाल लिये, और उनका मोल तय करके दूकानदारसे कहा—"ये दोनों अलग रख देना, आफिससे लौटते वक्त लेता जाऊँगा।"

सेब दोनों दूकानके बढ़िया-से-बढ़िया सेबोंमें से थे। बहुत दिनोंसे चाहे हुए दोनों फल जब वह बच्चेके हाथोंमें देगा और उससे बच्चेका चेहरा मारे खुशीके खिल उठेगा, तबकी कल्पना करके नटवरका सूखा हुआ चेहरा मारे खुशीके चमक उठा।

तीन बजते ही, नटवर उठकर तनख्वाहका बिल लेने बड़े बाबूके कमरेकी ओर चल दिया। बड़े बाबूने बिल उठाकर नटवरके सामने पटक दिया। बिल देखते ही नटवरकी छातीमें धक्का बैठ गया। बिलके एक किनारेपर, पूरा काम न करनेके बहानेसे, नटवर दत्तकी तनखा देना स्थगित रखनेका हुक्म लिखा हुआ था। लाल पेन्सिलके इन अंगरेज़ी हरूफोंने मानो हथौड़ोंसे उसकी पसलियोंको एकदम चकनाचूर कर डाला। कुछ देर चुप रहकर नटवरने रुँधे हुए गलेसे कहा—"बड़े बाबू,—"

बड़े बाबूने कहा—"भई मैं कुछ नहीं कर सकता ! साहब बड़ा कड़ा आदमी है, तुम तो जानते ही हो ? साहबके पास जाओ आप।"

बिल उठाकर नटवर ज़मीन-आसमानकी सोचता हुआ बड़े साहबके दरवाज़ेके पास जाकर खड़ा हो गया। चपरासीके ज़रिये खबर पहुँचानेपर भीतरसे हुक्म आया—"कम इन।" नटवरने लम्बी सलाम ठोंककर कहा—"हुज़ूर, मेरी तनखा—"

साहब उस समय वालंटेयरको अपनी पत्नीके लिए आगामी बड़े दिनका उपहार भेजनेकी तैयारीमें लगे हुए थे, पूरी बात सुननेको उनके पास वक्त कहाँ था ? अंग्रेज़ीमें कहा—"नहीं हो सकता। कामसे जी चुरानेवालेके लिए यहाँ माफ़ी नहीं है। जाओ।"

नटवरके भीतरके आँसू बाहर निकल आये, रो उठा। बोला—"हुज़ूर, कल ही सब दिन रात तक मेहनत करके सब काम पूरा कर दूँगा।"

साहबने चिट्ठीपर-से कलम उठाकर कहा—"तो परसों तनख्वाह मिल जायगी।"

"हुज़ूर, एक रुपया, कम-से-कम आठ आने पैसे मिलनेका हुक्म—"

"नाट ए फार्दिंग ! जाओ"—कहकर फलोंकी दो टोकरियाँ टेबिलपर रखकर उनपर लेबिल लगा दिये—"फार हैरी", "फार नेली।" हैरी साहबका लड़का है और नेली लड़की;

दोनों उस समय हवा बदलनेके लिए माके साथ वालटेयर गये हुए थे।

एक गहरी साँस लेकर नटवर बाहर चला आया; और बिल बड़े बाबूके हाथमें देकर कहा—"कुछ नहीं हुआ।"

एक बार सोचा कि बड़े बाबूसे एक रुपया उधार ले ले, लेकिन सहसा मानो सारे संसारपर उसे कैसी एक घृणा-सी हो गई, इच्छाको कार्यरूपमें परिणत करनेकी प्रवृत्ति न हुई। रास्ते-भर सिर्फ बुधुआकी ही बात याद आने लगी। कल इतवार था, सारे दिन बुधुआ उन्हें अपने वादेकी याद दिलाता रहा है। वह बेचारा आज तमाम दिन राह देखता रहा होगा—'बापजी' सेब लाते होंगे। अब तक अवश्य ही वह स्टेशनकी सड़कपर खड़ा-खड़ा प्रतीक्षा कर रहा होगा। पिताको देखते ही मारे ख़ुशीके, फूलके, बड़ी आशासे दौड़ा आयेगा,—उसके बाद ?

सोचते-सोचते नटवर कब बऊबाज़ारके चौराहेपर आ पहुंचा, उसे ज़रा भी ख़याल न था। अकस्मात एक 'झाँका-मुटिया' (बोझ उठानेवाले मजदूर) का धक्का लगा, तब होश आया कि बऊबाज़ार आ गया। सड़कके किनारे चौराहेपर वह दूकान थी—मेवावालेकी। नटवर धीरे-धीरे रास्ता पार होकर उस दूकानके सामने जाकर खड़ा हो गया—बड़े ग़ौरसे उन सेबोंको देखता रह गया। बुधुआकी बात याद आई, ऐसा मालुम हुआ कि जैसे एक नंग-धड़ंग बच्चा बड़े उछाहसे हाथ फैलाकर उनकी तरफ देखकर कह रहा है—"बापजी, सेब !"

भावोंके आवेशमें स्वप्नाविष्टकी तरह नटवरने सेब दोनों उठा लिये।

क्षण-भर बाद ही किसीने आकर उसकी कलाई पकड़ ली और लगा चिल्लाने—"चोर ! चोर !!"

उसके बाद और कुछ याद नहीं पड़ता। जब होश आया, तो नटवरने अपनेको थानेकी हवालातमें पाया।

क़रीब पाँच बजेसे बुधुआ स्टेशनके रास्तेमें खड़ा था। साढ़े पाँच बजेकी गाड़ी भक-भक करती हुई स्टेशनमें घुसी। अब तो मारे ख़ुशीके बच्चेका दिल बाग़-बाग़ हो गया। उसके बाद जब मुसाफिर लोग रास्तेसे चलने लगे, तब तो वह अधीर हो उठा। प्रतिक्षण एक-एक क़दम आगे बढ़ने लगा। प्रत्येक दूरका मनुष्य उसे 'बापजी' सा दीखने लगा, बड़े आग्रहसे आगे बढ़कर पथिकके मुँहकी ओर ताककर फिर वह हताश हो पीछे हट आता था।

इसी तरह एक घंटा बीत गया, और अन्तमें जब रास्तेमें चलनेवाला कोई न रहा, तब अपना-सा मुँह लेकर वह घर लौट आया। मासे बोला—"बापजी आये नहीं अम्मा। बापजी जब आ जायँ, तब तू मुझे जगा देगी—ए अम्मा ?"

इसके बाद नौ बजेकी गाड़ी थी। आज तनख़्वाह मिलनेका दिन है; शायद चीज़-वस्त ख़रीदने-लानेमें देर हो गई होगी, यह सोचकर हेमवतीने कहा—"अच्छा, तू सो जा, जगा दूँगी।"

रातको जब बुधुआ स्वप्न देख रहा था कि उसके फटे कुरतेकी दोनों जेबें सेबोंसे भरी फूल उठी हैं, तब दरोगा-साहब रिपोर्ट लिखना ख़तम करके नटवर दत्तको चोरीके अपराधमें कोर्टमें हाज़िर होनेका आर्डर लिख रहे थे।

—धन्यकुमार जैन

तुम और, और मैं और

[लेखक :—'एक भारतीय आत्मा']

तुम बाहरके विस्तृतपर दीवानेसे हो दिन-रात,
मैं आत्म-निवेदनसे कूजित कर पाता प्राण-प्रभात।
तुम औरोंको आदर्श-दानपर हो हर दिन तैयार,
मैं अन्तरतम-वासी अपराधीपर अर्पित लाचार।
तुमने माधवको जगतीमें हमझूम करते देखा,
किन्तु यशोदा दीवानीने माधव-मुख जग देखा।
कैसे वीणाके तार मिलें ?
तुम और, और मैं और,
कैसे बलिके व्यापार मिलें ?
तुम और, और मैं और।

जीवनमें आग लगा डालूं ? हँसकर कलिंगड़ा गाऊं ?
मेरा अन्तरयामी कहता है, मैं मलार बरसाऊँ।
प्रभु-गर्भ-मयी वाणीको किसके हखपर खींचू-तानूँ ?
हरिका भोजन केहरिको दूँ ? प्यारे, मैं कैसे मानूं ?
बलिसे खालीकर बढ़ा चुका दम्भी लाखोंका कोष,
अब तो माधवपर चढ़नेदो, संचित प्राणोंका कोष।
तुम जीते, मैं हारा भाई,
तुम और, और मैं और,
मत रूठे हृदय-देव मेरा,
तुम और, और मैं और।

तुम जगा रहे, विस्तृत हरिको, आकर गृह-कलह मचाने,
बहके, भटके, बदनाम विश्व-स्वामीको पथपर लाने।
मैं काले अन्तस्तलके काली मर्दनके चरणोंमें,—
कहता हूँ—बसी बजा, गूँथ अर्पणके उपकरणोंमें।
मन चाहा स्वर कैसे छेड़ूँ, निर्दय पानेको त्राण,
जो धुनपर अर्पित हो न सकें, किस कीमतके वे प्राण।
डूबा हूँ, किसको तैराऊं ?
तुम और! और मैं और,
मैं अपना हृदय वेध पाऊं ;
तुम और, और मैं और।

'अपने अन्तरपर ठोकर दू ?' अज़माना है बेकार,
अपने 'ही' तक अपनी ठोकर, कैसे पहुचेगी यार !
यह भला किया, अपनी ठोकरसे मुझको किया पवित्र,
बस बना रहे मेरे जी पर, तेरी ठोकरका चित्र।
निश्चयपर आत्म-समर्पणका बल दे प्रताड़ना तेरी,
धुँधली थी, उजली दीख पड़े, अब माधव मूरत मेरी।
अपमान व्यथितके ज्ञान बनो,
तुम और, और मैं और,
मुझसे जीवन मत बोल उठे,—
तुम और, और मैं और।

देश-दर्शन

[लेखक :— श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय]

साइमन-रिपोर्ट प्रकाशन या मज़ाक ?

भिन्न-भिन्न देशोंके लोग वहाँकी सरकारके कभी गुण और कभी दोष गाया करते हैं, और कभी-कभी एक ही समयमें किसी दलके लोग सरकारकी प्रशंसा करते हैं और किसी दलके लोग निन्दा। शासकगण जनताकी भलाई करते हैं या बुराई, यही उस प्रशंसा और निन्दाका विषय होता है; मगर किसी देशकी सरकार भी मज़ाक करती है, यह बात सुननेमें नहीं आती। वास्तवमें सरकारके लिए मज़ाक करना उचित भी नहीं है; मगर फिर भी किसी-किसी देशमें—कमसे कम हमारे देशमें—सरकार बहादुर कभी-कभी ऐसा काम भी कर डालती है कि मूलमें जिसका उद्देश्य मज़ाक करना न होनेपर भी जो मज़ाक सरीखा ही दीखता है।

ताज़ीरात-हिन्दकी राजद्रोह-विषयक धारा ऐसी है कि अदालत चाहे, तो छातीके बल रेंगनेवालोंके सिवा, अन्य किसी भी समाचारपत्रके सम्पादकको दण्ड दे सकती है—देती नहीं यह उसकी मेहरबानी है। ऐसे कानूनके रहते हुए भी ऊपरसे कईएक आर्डिनेन्स जारी किये गये हैं, अतएव अच्छे उद्देशसे और जी खोलकर भारतमें अंग्रेज़ी शासनकी समालोचना करना बहुत ही खतरनाक है।

ऐसी अवस्थामें सरकारने साइमन-कमीशनकी रिपोर्टका पहला वाल्यूम छापकर सम्पादकोंके पास भेजा है—उनकी राय जाननेके लिए। हमें भी एसोसियेटेड प्रेसकी मार्फत ६ जूनके तीसरे पहर उसके खुले पन्ने मिले हैं—उसके साथके नक्शे वगैरह नहीं मिले। इसकी ठीक समालोचना तो, सरकार जब तक ताज़ीरात-हिन्दकी राजद्रोह विषयक धारा और प्रेस-आर्डिनेन्स रद नहीं करती, हो नहीं सकती। और, सरकार सम्पादकों और सर्वसाधारणकी असली राय जानना चाहती ही है। सरकारका अभिप्राय मज़ाक करना न होनेपर भी वस्तुतः यह मज़ाक नहीं, तो और क्या है?

साइमन-कमीशन-रिपोर्टका सार

ऐसोसियेटेड-प्रेसने ६ जूनको साइमन-कमीशनकी रिपोर्टका एक संक्षिप्त सार भी उन पन्नोंके साथ सम्पादकोंको बाँटा है। वही सब पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है। यह 'संक्षिप्त सार' लन्दनसे बनकर आया है। इससे रिपोर्टके सम्बन्धमें ठीक धारणा नहीं होती। इसे सरकारी प्रोपेगेण्डा कहना चाहिए।

दो बारमें प्रकाशित करनेका कारण

रीति तो यही है कि ऐसे कमीशनकी पूरी रिपोर्ट एक साथ ही प्रकाशित की जाय, लेकिन यहाँपर उस नियमका उल्लंघन किया गया है। उसका मामूली कारण यह बताया गया है कि पूरी रिपोर्ट एक साथ निकालनेसे लोग पहलेसे ही इस बातका आन्दोलन करने लग जायँगे कि कमीशनने भारतमें कैसा शासन चलानेके लिए अपनी राय दी है और जनताको अपना शासन आप करनेका कहाँ तक अधिकार देनेको कहा है; और भारतकी पहलेकी और आधुनिक राजनैतिक, सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा अन्यान्य जिन अवस्थाओंके लिए कमीशनने अपने जो प्रस्ताव निश्चित किये हैं, लोग उन्हें पढ़ेंगे ही नहीं—उसपर विचार ही नहीं करेंगे। कमीशन चाहता है कि पहले इस बातपर विचार हो जाना चाहिए कि पहले खण्डमें भारतके विषयमें जो कुछ लिखा गया है, वह उचित और निरपेक्ष है या नहीं। वह अगर न्याय्य और पक्षपात-शून्य समझा गया, तो भारतीय उनकी रिपोर्टके दूसरे खण्डमें लिखित प्रस्तावोंके अनुसार शासन-विधिकी

समीचीनता और आवश्यकता समझ सकेंगे---ऐसी उनकी धारणा है।

उनका असल मतलब क्या है, सो तो वे ही जानें। हमारा अनुमान है, उन्होंने पहले खण्डमें भारतका जो विवरण दिया है, उसे कोई उचित और पक्षपात-शून्य समझ लें और भारतकी भावी शासन-विधिमें हिन्दुस्तानियोंको वे थोड़ा-बहुत अधिकार दे भी दें, तो वह काफ़ी दिया गया समझा जायगा। असलमें रिपोर्ट भारतीयोंके लिए नहीं लिखी गई, ऐसा मालूम होता है। अधिकांश भारतीय इसे उचित और निरपेक्ष नहीं समझेंगे। रिपोर्टके इस पहले खण्डमें---भारतको स्व-शासन (स्वराज) अभी क्यों नहीं दिया जा सकता और भविष्यमें देना हो तो बहुत पीछे क्रमशः थोड़ा-थोड़ा करके क्यों दिया जाना चाहिए, इन्हीं सब बातोंके 'कारण' कौशलपूर्वक दिखलाये गये हैं। कहीं-कहीं बीच-बीचमें भारतीयोंकी प्रशंसा और योग्यताकी भी चर्चा की गई है। ऐसा न किया गया होता, तो लोग तुरन्त ही रिपोर्टको पक्षपात-पूर्ण समझ लेते; मगर दूसरे पक्षकी बातें भी इस ढंगसे लिखी गई हैं---स्व-शासनका अधिकार भारतको अभी तुरन्त ही क्यों नहीं मिलना चाहिए, यह बात ऐसी खूबीके साथ बतलाई गई है कि भारतीयोंके पक्षमें जो कुछ कहा गया है, उसका मूल्य ही नष्ट हो जाता है।

साइमन-रिपोर्टका पहला भाग

रिपोर्टके इस पहले भागमें जो कुछ लिखा गया है, उसके लिए इतने लाख रुपये खर्च करके कमीशनके सदस्योंको समुद्र-यात्राका कष्ट सहकर भारत आकर भारत-भ्रमण करनेकी कोई खास ज़रूरत नहीं थी। जो सरकारी काग़ज़ात और रिपोर्ट पहलेसे ही मौजूद थे, उन्हींको पढ़कर इसका अधिक अंश और आवश्यक अंश लिखा जा सकता था।

साइमन-कमीशनने अपनी रिपोर्टमें जिन-जिन अवस्थाओं और कारणोंका उल्लेख करके भारतके लिए स्व-शासनकी व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन समस्या साबित करनेकी कोशिश की है। वे अवस्थाएँ और कारण कुछ नये आविष्कार नहीं हैं। हमारे राष्ट्रीय शासन (जातीय कर्तृत्व) पानेके विरोधी लोग बहुत दिनोंसे ये बातें कहते आ रहे हैं। उन्हीं बातोंको सात-सयाने साइमनने भाषा बदलकर दुहरा दिया है। पराधीन जातिका यह दुर्भाग्य है कि जिन आपत्तियोंका जवाब बहुत बार दिया गया है---हमीने कमसे कम पन्द्रह वर्ष पहले बार-बार दिया है---वे ही बार-बार अकाट्य युक्तिके रूपमें उठाकर सामने रखी जाती हैं। उन सब आपत्तियोंका खण्डन है ही नहीं, या हुआ नहीं, इसलिए हमें स्वराज नहीं मिल रहा, सो बात नहीं। अबतक स्वराज्य-प्राप्तिके लिए एकतासे उत्पन्न संघबद्ध शक्ति हमारी ओरसे अच्छी तरह प्रयुक्त नहीं हुई, इसीलिए हमारी दुर्दशाका अन्त नहीं हुआ।

संसारके कोई भी दो देश ठीक एक-से नहीं हैं, उनकी अवस्था और इतिहास ठीक एक तरहके नहीं हैं। फिर भी भारतको पराधीन अवस्थामें रखनेका औचित्य प्रमाणित करनेके लिए जिन-जिन अवस्थाओं और कारणोंका उल्लेख किया जाता है, ठीक उसी तरहकी या उसके समान अवस्था मौजूद होते हुए भी अन्य कोई-कोई देश स्वाधीन हैं, यह बार-बार दिखलाया गया है। ऐसा होते हुए भी फिरसे उसे दिखलाना पड़ेगा, लेकिन इसके लिए साइमन-रिपोर्टके इस पहले भागके बराबर या उससे भी बड़ी एक किताब लिखनी पड़ेगी। सो इतना अभी अवकाश नहीं। लिखकर प्रकाशित करनेपर और उसकी प्रत्येक बातकी सत्यताका प्रमाण सुविदित और पदस्थ अंग्रेज़ों द्वारा लिखित बे-ज़ब्त किताब आदिसे उद्धृत होनेपर भी, इस बातकी कोई गारन्टी नहीं दे सकता कि वह ज़ब्त नहीं की जायगी।

रिपोर्टका दूसरा भाग २४ जूनको प्रकाशित होगा। पहले भागमें इस बातकी भरसक सावधानी रखी गई है कि कहीं कोई बात इशारेमें भी ऐसी प्रकट न हो जाय कि दूसरे भागमें साइमन सात-सयानोंने भारतके ललाटपर कैसी शासन-विधिका क्या चिट्ठा लिखा है। फिर भी यह

बात समझमें आ रही है कि उनके प्रस्ताव भारतीयोंकी मांगोंके अनुकूल न होंगे। इसके दो-एक प्रमाण आगे दिये जाते हैं।

हमारा राष्ट्रीय भविष्य शीघ्र ही कैसा होना चाहिए, इस बातके निर्णय करनेका हमें कोई अधिकार नहीं, न योग्यता है; वह अधिकार और योग्यता तो ब्रिटिश जाति और पार्लामेन्टको ही है। हम अपना हित समझनेमें असमर्थ हैं, ब्रिटिश लोग ही उसे समझ सकते हैं; हम भारतके राष्ट्रीय भविष्यके सम्बन्धमें पक्षपातशून्य कुछ नहीं कह सकते, ब्रिटिश ही कह सकते हैं,—इस प्रकारकी घोषित धारणाके वशीभूत होकर ब्रिटिश गवर्मेन्टने खालिश श्वेतकाय कमीशन नियुक्त किया था, सात सफेदोंके साथ एक भी काला आदमी नहीं रखा। भारतीयोंने इस नीतिका पूरी तरह विरोध करके साइमन-कमीशनके साथ असहयोग किया था, इसलिए, उसकी रिपोर्टमें चाहे जो लिखा हो, उसके द्वारा राष्ट्रप्रेमी भारतीयोंको नहीं चलाया जा सकता। वे भारतका भविष्य भारतमें ही गढ़नेमें जुट गये हैं, नींव पड़ रही है।

भारतीय राष्ट्रवादियोंकी (नेशनलिस्टोंकी) मांग यह है कि इस देशमें शीघ्र ही कनाडाके समान स्व-शासन-विधिका प्रचलन हो। मुसलमानोंमें से अधिकांश और मद्रासी अब्राह्मण दल साम्प्रदायिक चुनाव चाहते हैं, यह ठीक है; मगर वे भी तो कनाडा जैसा अधिकार भारतके लिए चाहते हैं। कांग्रेस तो पूर्ण-स्वाधीनता ही चाहती है, मगर हम यहाँ सबसे छोटी मांगका ही उल्लेख करते हैं। साइमन सात-सयानोंने भारतके लिए उसका समर्थन नहीं किया है, इस बातका संकेत रिपोर्टके पहले हिस्सेमें जगह-जगह मिलता है। एकका यहां उल्लेख किया जाता है।

—

राष्ट्रीय मामलोंमें क्रमविकास

रिपोर्टके ४०१ पृष्ठपर लिखा है :—

"Indian political thought finds it tempting to foreshorten history, and is unwilling to wait for the final stage of a prolonged evolution. It is impatient of the doctrine of gradualness."

अर्थात्—"भारतके राष्ट्रीय विचारवाले इतिहासका चित्र क्रम-संहार रीतिसे खींचनेके लोभमें पड़ते हैं (यानी जिस प्रक्रियाकी परिणति लम्बे समयमें हुई है, उसे थोड़े समयमें हुई बतलानेके लोभको वे सम्हाल नहीं सकते), और वे दीर्घकाल-व्यापी क्रमविकासकी अन्तिम अवस्थाके लिए धीरज रखनेमें अनिच्छुक हैं। वे क्रमिकता-नीतिके विषयमें अधीर हैं।"

इस जगह लेखकने खुद ही एक बड़ी भारी भूल की है। जिस चीज़के क्रमविकास होनेमें जितना समय लगता है, उसके सीखनेमें उतना समय नहीं लगता। मानव-जातिने इस्पातके अस्त्र बनाना एक दिनमें नहीं सीखा, यह सच है। प्राचीन प्रस्तरास्त्र, नवीन प्रस्तरास्त्र, हड्डीके अस्त्र, कांस धातुके अस्त्र इत्यादि हज़ारों वर्ष व्यापी नाना युगोंके बाद मनुष्यने इस्पात लोहेके अस्त्र बनाना शुरू किया था, परन्तु इस समय असभ्य या सभ्य जातिका कोई आदमी अगर चाकू बनाना चाहे, तो उसे हज़ारों वर्ष पत्थर, हाड़ आदिके हथियार बनाकर उसके बाद इस्पातका चाकू बनानेकी सलाह कोई अहमक भी न देगा। स्टीम-इंजिनकी शुरूआत हुई ईसासे १३० वर्ष पहले—अलेकज़ेन्ड्रियाके हीरोके समयमें। उसके अठारह शताब्दी बाद सेवारी (ई० सन् १६९६), उसके कितने ही वर्ष बाद न्यूकोमेन (ई० सन् १७०५) और भी पचास वर्ष बाद वाट (ई० सन् १७६३)—इस प्रकार अनेक व्यक्तियोंने उसकी उन्नति करके उसे वर्तमान अवस्था तक पहुँचाया है। लेकिन अब अगर कोई स्टीम इंजिन बनाना सीखना चाहे, तो उसे दो हज़ार वर्ष ऐप्रेन्टिसी (उम्मेदवारी) नहीं करनी होगी।

भारतके राष्ट्रीय शासनके विरोधी अवश्य ही राष्ट्रीय मामलोंमें क्रमिकता-नीतिका समर्थन करते हैं। यह उचित सीमाके भीतर सत्य भी है, परन्तु वे जिस अर्थमें सत्य समझते हैं, उस अर्थमें सत्य नहीं है; इंग्लैंडकी

जन-प्रतिनिधि सभा (हाउस-आफ़-कामन्स) द्वारा देशकी शासन-प्रणालीको मौजूदा हालत तक पहुँचानेमें डेढ़ हजार वर्ष लगे होंगे, परन्तु अन्य देशोंने थोड़े ही समयमें उसे अपना कर और सीखकर अपने काममें लगाया है। गत शताब्दीके मध्य-भागमें जापानियोंने एक आध वर्षमें ही उसे जापानमें चला दिया, अमेरिकनोंने फिलपाइन-द्वीप-समूह पर अधिकार करनेके बाद बीस ही वर्षमें अधिवासियोंको समस्त भीतरी मामलोंके विषयमें अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि-सभा प्रदान की। हिन्दुस्तान लगभग दो सौ वर्ष अंग्रेज़ोंके अधीन रहकर भी उसे नहीं पा सकता, यह बड़ी ही विलक्षण युक्ति है। अमेरिकाके हबशी १८६३ ई० तक गुलाम थे, और उनकी उत्पत्ति अफ्रिकाकी असभ्य जातिसे है। वे गुलामीसे मुक्त होकर ही अमेरिकाकी प्रतिनिधितन्त्र-शासन प्रणालीमें वोट देनेका अधिकार पा गये हैं। भारतकी सभ्यता बहुत प्राचीन है और प्राचीन कालमें भी भारतवर्षमें प्रतिनिधि-निर्वाचन-प्रथा और प्रतिनिधि तन्त्र-शासन प्रणाली भिन्न-भिन्न युगों और स्थानोंमें प्रचलित थी।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे क्रम-विकासकी दुहाई देकर हमारी मांगोंको इस तरह उड़ा देनेकी कोशिश करना अयौक्तिक मालूम होगी।

—

देशकी रक्षा-सम्बन्धी आपत्ति

भारत जब तक अपनी रक्षा अपनी सेनाके बलपर नहीं कर सकता, तब तक उसे स्व-शासन-अधिकार नहीं मिलना चाहिए, यह एक पुरानी ब्रिटिश आपत्ति है। इसके उत्तरमें कहा गया है कि कनाडा, आस्ट्रेलिया आदिको जब स्व-शासन-अधिकार मिला था, तब उनमें आत्म-रक्षाकी शक्ति नहीं थी, अब भी पूरी शक्ति नहीं है। साइमन-रिपोर्टके मामूली तौरपर यह मान लेनेपर भी और भारतीय सैनिक या हिन्दुस्तानी सिपाही बहुत अच्छे योद्धा हैं, इस बातको मौन-द्वारा स्वीकार कर लेनेपर भी, उसका कहना है कि भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमाकी विपद्-आशंका और उससे आत्म-रक्षाकी समस्या जैसी समस्या अन्य किसी भी स्व-शासक डोमीनियनके लिए नहीं है। यह सच है, किन्तु भारतका जनबल तथा अन्य प्रकारका सामर्थ्य भी उन सब स्व-शासक देशोंकी अपेक्षा कहीं ज्यादा है। इसके बाद साइमनोंने और एक आपत्ति खड़ी की है। उनका कहना है कि भारतकी सेना मुख्यतः पंजाब, नेपाल और महाराष्ट्रसे एकत्रित की जाती है, देशके अधिकांश प्रान्तोंसे कोई सेना नहीं मिलती; ऐसी हालत यूरोपके किसी भी देशमें नहीं है, वहाँके सब देशोंके सभी प्रान्तोंसे सेना मिलती है; भारत-रक्षाकी सुव्यवस्था तभी हो सकती है, जब सब प्रान्तोंसे अच्छी सेना मिल सके।

इसके उत्तरमें भारतके राष्ट्रवादियोंका कहना है कि ब्रिटिश कूटनीति शिक्षामें आगे बढ़े हुए और अपने देशको समझनेमें कुछ जाग्रत प्रान्तोंसे जान-बूझकर सेना नहीं लेती। प्रत्युत्तरमें साइमन-रिपोर्ट कहती है कि गत महायुद्धके समय तो सभी प्रान्तोंसे सैनिक मांगे और लिये गये थे, किन्तु उस समय भी पंजाबने सबसे ज़्यादा सेना दी थी, बंगाल आदि प्रान्तोंने बहुत कम। इस तथ्य और युक्तिका जो जवाब दिया गया है, उस सम्बन्धमें मौन रहकर रिपोर्टने बुद्धिमानीका ही काम किया है। अंग्रेज़ी राज्यकी स्थापना और विस्तारके इतिहाससे मालूम होता है कि जब क्लाइव आदि साम्राज्य-स्थापकोंने युद्ध किया था, तब सिख, गुरखा, पठान, राजपूत, मराठा और गढ़वाली सेना लेकर नहीं किया था, और उस समय उन्हें पानेका उपाय भी नहीं था। मद्रासी, बंगाली और भोजपुरी सैनिक ही ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापनामें मुख्य-रूपमें काम आये थे। उसके बाद जैसे-जैसे अंग्रेज़ी राज्यका विस्तार होने लगा, लोग आधुनिक शिक्षाके विस्तारके साथ-साथ अंग्रेज़ी-शासनका मर्म समझने लगे। साथ ही उन सब प्रान्तोंसे सैनिकोंका लेना बन्द होता गया, जिनमें अंग्रेज़ी राज्य अधिक समयसे स्थायी है, और नये जीते हुए प्रदेश, देशीराज्य, उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश

और नेपालसे सेना संग्रह करनेकी नीति अधिकतर काममें लाई जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि भारतके अधिकांश प्रान्तोंमें सेनामें भरती होनेकी इच्छा और प्रथा लुप्त हो गई। इसके लुप्त होनेके बाद, अंग्रेज़ोंको गत महायुद्धके समय अपनी संकटावस्थामें भारतके सब प्रान्तोंसे सेना माँगनेपर अगर काफ़ी नहीं मिली, तो इसमें किसका दोष?

अगर सब प्रान्तोंसे सैनिक इकट्ठे करनेकी वास्तविक इच्छा हो, तो सब प्रान्तोंमें युद्धविद्या सिखानेकी—कमसे कम कालेज और विश्वविद्यालयोंके छात्रोंको सिखानेकी—व्यवस्था क्यों नहीं की जाती?

कुछ भी हो, रिपोर्टमें इसके बाद कहा गया है कि केवल कुछ प्रान्तोंसे सैनिक लिये जानेपर भी भारतके अ-योद्धा प्रान्तोंमें जो करोड़ों आदमी शान्तिसे रह रहे हैं, अर्थात् योद्धा जातियोंके सैनिकों द्वारा उनपर आक्रमण और अत्याचार नहीं हो रहा, इसका कारण यह है कि उनके नायक अफसर लोग अंग्रेज़ हैं, और इसके सिवा गोरी फ़ौज भी है। पहले कोई-कोई अंग्रेज़ असभ्य भाषामें काल्पनिक सिख या राजपूत सैनिकोंके मुँहसे जो बात कहला लिया करते थे, साइमन-रिपोर्टमें इस जगह सभ्य और प्रच्छन्न भाषामें वही बात कही गई है। (पृष्ठ ९६-९८)

यह मानना चाहिये कि जब तक संसारमें युद्धकी प्रथा क़ायम रहेगी, तब तक हिन्दुस्तानमें भी सेना रखनेकी आवश्यकता बनी रहेगी। साथ ही इस सेनामें भारतके सब प्रान्तोंसे सैनिक लिये जाने चाहिए, यह भी मानना पड़ेगा। गत महायुद्धके समय भारतके जिन प्रान्तोंसे सैनिक चाहनेपर भी सरकारको काफी सैनिक नहीं मिले, इसका प्रधान कारण हम ऊपर कह चुके हैं। दूसरा कारण यह है कि जिन प्रान्तोंमें शिक्षाका प्रचार अधिक है और लोगोंकी कुछ आमदनी ज्यादा है, वहाँके लोग अंग्रेज़ोंके हुक्मसे अंग्रेज़ोंके मतलब साधनेके लिए युद्ध करके मरना नहीं चाहते। सैनिकोंका जितना वेतन है और उनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है उससे भी वे सन्तुष्ट नहीं। देशमें स्वराज्य-स्थापित देशकी रक्षाके लिए युद्ध करनेवाले लोग उचित वेतनपर—अंग्रेज़ जिसकी सबसे अधिक निन्दा करते हैं, उस बंगालसे भी—मिल सकते हैं।

अंग्रेज़ सेना-नायक और गोरी फ़ौजके रहनेके कारण ही फौज अ-योद्धा या असाहसी प्रान्तोंपर आक्रमण नहीं करती, यह बात सच नहीं है। कोई ज़माना था, जब इंग्लैण्ड नामका छोटासा देश सात राज्योंमें विभक्त था और वे परस्पर एक दूसरेसे लड़ा करते थे। स्काटलैण्ड और इंग्लैण्ड परस्पर एक दूसरेपर हमला किया करते थे। अब वह ज़माना नहीं रहा। पहले भारतमें भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें युद्ध होता था, इसलिए अब भी या निकट-भविष्यमें भी होगा, ऐसा समझना भूल है। अगर यह सच है, तो इंग्लैण्ड जो भारतको सभ्य बनानेका दावा करता है, वह एकदम झूठ है। भारतीय योद्धा जातियाँ यहांकी अ-योद्धा जातियोंकी अवज्ञा करती हैं, यह अंग्रेज़ोंकी अपनी कल्पना है, और इसे वे अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए बढ़ाया करते हैं। गांधीजी अ-योद्धा वणिक जातिके हैं। उनके नेतृत्वको मानकर भारतके योद्धा और अ-योद्धा सभी जाति और धर्मके लोग सिर्फ मौखिक और काग़ज़ी आन्दोलन नहीं कर रहे हैं, बल्कि प्राण दे रहे हैं, अकथ्य और दु:सह मार तथा अत्याचारोंको असाधारण साहसके साथ हँसते हुए सह रहे हैं और असाधारण संयम और नियमोंकी पाबन्दी कर रहे हैं। योद्धा सैनिकोंमें साहस और कष्टसहिष्णुता आदि जितने भी गुण होते हैं, वे गान्धी-आन्दोलनके सत्याग्रहियोंके इन सब गुणोंसे कुछ ज्यादा नहीं हैं। 'बनिया' गांधीके नेतृत्वमें अहिंसात्मक संग्राममें यदि भारतीय योद्धा और अ-योद्धा सभी जातियोंके लोग प्राण दे सकते हैं और दु:सह दु:ख सह सकते हैं, तो भारतके भावी स्वराज्यके ज़मानेमें ज़रूरत पड़नेपर योद्धा और अ-योद्धा सभी जातियोंके सैनिक सम्मिलित रूपसे योद्धा और अ-योद्धा जातियोंके नायकोंकी अधीनतामें अवश्य ही देशकी

रखनेके लिए दृढ़ता और वीरताके साथ सशस्त्र युद्ध भी कर सकते हैं।

और भी बहुतसी बातें

रिपोर्टमें और भी बहुतसी बातें कही गई हैं, जैसे ग्रामोंकी अवस्था, 'स्वभावसिद्ध नेता', हिन्दू-मुसलमानोंका मेल, नारियोंकी अवस्था इत्यादि। कहा गया है कि ग्रामोंकी आर्थिक उन्नति (rural prosperity) में वृद्धि हुई है। यह सच नहीं है। स्थानाभावके कारण विशेषज्ञ अंग्रेज़ और भारतीयोंकी सम्मतियाँ अभी नहीं दी जा सकतीं। फिर भी, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है कि ग्रामोंमें बेकारी और ग़रीबी कम नहीं है। इसके जो कारण दिखाये गये हैं, उसमें शिक्षाकी कमीका उल्लेख ही नहीं है और न ग्रामोंके ख़राब स्वास्थ्यका ही ज़िक्र किया गया है।

रिपोर्टमें ज़मींदार आदिको जनताका स्वाभाविक नेता बतलाया गया है। किसी ज़मानेमें होंगे, लेकिन अब तो नहीं दिखाई देते।

लिखा है कि हिन्दू मुसलमान दोनों सम्प्रदायोंके उदार (अहिंसा-सम्पन्न) लोग आपसमें मेल रखनेकी कोशिश करते रहते हैं, लेकिन लाट साहबोंके दो-एक धर्मोपदेशके सिवा सरकारने स्वयंत: क्या कोशिश की है, इसका कोई उल्लेख नहीं। 'Religious zeal' दिखाई देनेपर दोनों पक्षोंके दलबन्दी चलानेवाले लोग मौक़ा पाकर इससे लाभ उठाते हैं, रिपोर्टमें यह बात लिखी गई है, मगर बहुतसे सरकारी आदमी भी ऐसे मौक़ोंपर काम बनाते हैं, इस बातका कोई उल्लेख नहीं। साइमन सात-सवारोंका मत है कि साम्प्रदायिक निर्वाचन-नीति और भारत-शासनकी नई स्कीमसे हिन्दू-मुसलिम विरोध नहीं बढ़ा, लेकिन यह बात ठीक नहीं। दोनों सम्प्रदायोंके मनोमालिन्यके अन्य कारण भी और हो सकते हैं, मगर नई स्कीम भी एक कारण है।

जिन विभिन्न नारियोंने स्त्री-समाजकी उन्नतिके लिए उद्योग किया है, उनकी कुछ तुली' हुई प्रशंसा की गई है, लेकिन सरकार जो शुरूसे स्त्री-शिक्षाके लिए रुपया देनेवाली कंजूसी करती आई है, इस बातका कोई उल्लेख नहीं। यह कह देना कि स्त्री-शिक्षाकी कमीका कारण कुछ सामाजिक प्रथाएँ हैं, काफ़ी सत्य नहीं है।

कमीशनको बड़ा दुःख है कि वक्ता और लेखकगण पुलिसपर वाक्यवाण चलाया करते हैं—उन्हें निशाना बनाते हैं। इसके विरोधमें सबूत देते हैं कि जब कभी किसी जगहसे थाना उठा लेनेकी बात छिड़ती है, तो आसपासके लोग उसे न उठानेकी दरख़्वास्त पेश करते हैं। इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है? लोग चोर-बदमाशोंके उपद्रवसे बचनेकी आशासे ऐसा करते हैं—रक्षा करना ही पुलिसका काम है। और प्रत्येक थानेका प्रत्येक पुलिस-कर्मचारी अत्याचारी और रिश्वतख़ोर है, यह भी कोई नहीं कहता; परन्तु कमीशन या और कोई कुछ भी क्यों न कहे, जिनकी सत्यवादितामें रंचमात्र भी सन्देह नहीं ऐसे प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध बहुत लोगोंने पुलिसके अत्याचार अपनी आँखों देखकर उसे भारतके सब प्रदेशोंके बड़े-बड़े अख़बारोंमें प्रकट किया है। इसलिए पुलिसवाले सब जगह हमेशा देवताओंके समान आचरण करते हैं, इस बातपर भारतवासी विश्वास नहीं कर सकते।

रिपोर्टके आख़ीरमें (पृष्ठ १०४) देशके लोगोंमें राजनैतिक जागृति कितनी हो पाई है, इस बातका एक अन्दाज़ देनेकी कोशिश की गई है। कमीशनकी रायमें उसकी सीमा बहुत ही संकीर्ण है, परन्तु आजकल जिस किसी भी प्रान्तके गाँवोंमें जाकर देखनेसे उनका भ्रम दूर हो सकता है। सरकारकी रायमें यह जागरण बुरे दर्जेका हो सकता है, परन्तु हम पूछते हैं कि राजनीतिके विषयमें ग्रामीण जनता अगर बिलकुल ही अचेत रहती, तो गाँवों तक राजनैतिक कारणसे गिरफ़्तारियाँ और मारना-पीटना क्यों जारी है?

—

भारतमें स्वदेशी

बड़े मँझले छोटे सभी लाट-साहब स्वदेशीकी उन्नतिकी कामना प्रकट करते रहते हैं, परन्तु पार्लामेन्टमें भारत-मन्त्री वेजवुड बेनको याद दिलाई गई है कि वे एक ब्रिटिश नागरिक हैं और उन्हें भारतमें लंकाशायरके कपड़ोंकी खपतकी रक्षा और वृद्धिकी व्यवस्था करनी होगी। लंकाशायरका व्यवसाय केवल मशीन और नैपुण्यकी श्रेष्ठताके द्वारा ही प्रतिष्ठित हो, सो बात नहीं, बल्कि भारतके बने कपड़ोंपर ज़्यादासे ज़्यादा कर (टैक्स) लगाकर और विलायतमें उसका व्यवहार क़ानूनन रुकवाकर तब कहीं विलायतके कपास-शिल्पकी प्रतिष्ठा करनी पड़ी थी।

भारतमें विदेशी कपड़ेका बहिष्कार क़ानूनसे नहीं किया गया। कानून बनानेकी शक्ति भारतीयोंमें नहीं है। इसकी कोशिश खासकर बेचनेवालों और खरीदनेवालोंको समझा-बुझाकर की जा रही है। कहीं भी भय-प्रदर्शन या बल-प्रयोग नहीं हुआ, इस बातको कहनेके लिए हम संवाद इकट्ठे नहीं कर सके हैं, और न सरकारी या ग़ैर-सरकारी किसी भी व्यक्तिमें यह क्षमता है कि वह इकट्ठे कर सके, परन्तु सर्वत्र या अधिकांश स्थानोंमें विदेशी कपड़ेका बहिष्कार भय-प्रदर्शन और बल-प्रयोगसे कराया जाता है—यह सत्य नहीं है। प्रमाणित करनेकी शक्ति गवर्मेन्टमें भी नहीं है। फिर भी इस असत्य बहानेसे आर्डिनेन्स जारी किये गये हैं।

—

दमन-नीतिका फल

सरकारने जिस तरहकी दमन-नीति अख्तियार की है, उसका फल क्या होगा, नहीं कह सकते। जेल जानेका भय बिलकुल जाता रहा, बहुतसे तो इसे गौरव समझते हैं। मारका भय भी जा रहा है। गोली खाकर मरनेका भय भी पहले जैसा नहीं रहा, अतएव दमन-नीति—कमसे कम गुजरातमें—शीघ्र या विलम्बसे सफल होती नहीं दिखाई देती। अगर हो भी, तो उससे यह नहीं माना जा सकता कि सभ्य सरकारका कर्तव्य समाप्त हो गया। जनताकी तेजस्विता और मानसिक शक्तिको अक्षुण्ण रखकर उन्हें मनुष्योचित सब अधिकार देकर जो सरकार देशमें शान्ति और शृंखला क़ायम रख सकती है, वही सरकार वास्तवमें प्रशंसा-योग्य है। जनप्राणी-हीन सुनसान मरुभूमिमें एक तरहकी शान्ति और शृंखला है, श्मशान और क़ब्रिस्तानमें उसी तरहकी निरुपद्रव अवस्था है, भयभीत त्रस्त आतंकग्रस्त लुप्ततेज मनुष्योंके अध्युषित देशकी शान्ति और शृंखला ठीक उसी प्रकारकी है। ब्रिटिश गवर्मेन्ट विचार कर देखे, तो वह शीघ्र ही समझ सकती है कि इस तरहकी शान्ति वांछनीय नहीं है।

अतएव 'प्रेस्टिज'पर जान देनेवाली ब्रिटिश गवर्मेन्ट अगर शान्ति और शृंखला क़ायम रखनेके अन्य उपाय—जैसे सर्वसाधारणके राष्ट्रीय अधिकारको स्वीकार करना—अख्तियार करे, तो वह ब्रिटेन और भारत दोनोंके लिए अच्छा और कल्याणकर होगा।

किसी भी देशकी मित्रता अनादरकी वस्तु नहीं। भारत जैसे विशाल और महान देशकी मित्रता तो अनादरकी वस्तु हो ही नहीं सकती। अगर भारत ब्रिटिश-साम्राज्यके बाहर भी चला जाय, तो भी इस मित्रताका आत्मिक और मानसिक तथा वाणिज्य-सम्बन्धी मूल्य तो रहेगा ही। इसलिए इस मित्रताको असम्भव करते जाना उचित नहीं है। भारत स्वराज्य प्राप्त करेगा ही—कोई भी उसे रोक नहीं सकता। जो उसमें विलम्ब या बाधा डालना चाहते हैं, वे अपने विचारके अनुसार चलेंगे। परन्तु ऐसी कोई बात करना उनके लिए अच्छा नहीं है, जिससे भारतके हृदयपर स्थायी अपमान-रेखा अंकित हो जाय और ब्रिटेनके साथ उसकी मित्रता असम्भव हो जाय।

—

भारत-मन्त्रीका भाषण

गत २६ मईको पार्लमेन्टमें भारतके सम्बन्धमें जो वाद-विवाद हुआ था, भारत-मन्त्री मि० वेजउड बेनने उसपर बड़ा लम्बा-चौड़ा एक भाषण दिया है। उसमें कुछ मामूली ऊँची बोलियोंको दुहराया गया है और भारतके वाणिज्य, जल-सेचन (आबपाशी), श्रमिक समस्या, मालगुज़ारी, चुंगी, रेलवे आदिके विषयमें ऐसी बहुतसी बातें कही हैं, जिनमें कुछ सत्य, कुछ अर्द्धसत्य और कुछ ऐसा सत्य है, जिससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। जो लोग छै हज़ार मील दूर बैठकर सिर्फ यहाँके सरकारी कर्मचारियों-द्वारा भेजे हुए वर्णन और समाचार पढ़कर भारतका उज्ज्वल चित्र खींचा करते हैं, उनकी बातोंका प्रतिवाद और समालोचना करनेसे उनकी अज्ञता दूर नहीं होगी। कारण, हमारी बात उनके कानों तक पहुँचेगी नहीं, और पहुँचनेपर भी वे उसपर अविश्वास करेंगे। हम जो कुछ लिखते हैं, उसे अगर स्वदेशवासी ही पढ़ें और विश्वास करें, तो यही हमारे लिए सन्तोषकी बात होनी चाहिए।

भारत-सचिवने अपने भाषणके शुरुआतमें कहा है कि हिन्दुस्तानके अधिकांश लोग—यहाँ तक कि नगरोंके लोग भी—दिनों दिन सुश्रृंखल और सुप्रतिष्ठित गवर्मेन्टकी हितैषणाके अधीन अपने-अपने कामसे लगे हुए हैं। इसमें आपेक्षिक सत्य है। भारतके सब लोगोंपर या अधिकांश लोगोंपर पुलिसकी लाठी नहीं पड़ रही है, यह अवश्य ही सच बात है; परन्तु भारत-सचिवने जो कहा है, वैसा कहनेसे लोगोंकी जो धारणा होती है, वह सच नहीं है। इतिहासमें हम अनेक देशोंमें विदेशी शत्रुओं-द्वारा आक्रमण और उपद्रव होनेका वर्णन पढ़ते हैं। उन सब देशोंके भी सब या अधिकांश लोग मार नहीं खाते। कहनेका मतलब यह कि भारतके लोग शान्तिसे सुखसे निरुद्वेग जीवन बिता रहे हैं, यह सच नहीं है। उसके बाद भारत-मन्त्री कहते हैं कि यद्यपि राष्ट्रीय कार्य-सम्पादनका यन्त्र (Governmental machine) सम्भवतः ब्रिटिश हाथका बना हुआ है, फिर भी यह अब बहुत अधिक परिमाणमें भारतीयोंके हाथोंसे चल रहा है, सिर्फ उच्च पदोंपर नहीं, किन्तु सम्पूर्णरूपसे निम्न-पदोंपर। वक्ताका मतलब यह है कि भारत कार्यतः देशी लोगों द्वारा शासित होता है। भारतकी सरकारी कठपुतलियोंमें अधिकांश देशी लोग हैं तो सही, लेकिन जो तार हिलाकर उन कठपुतलियोंको नचाते हैं, वे ब्रिटिश हैं—उच्चतम पदपर अधिष्ठित भारतीय भी उस तारके हिलानेके अनुसार नाचते हैं।

कुमुदिनी

(उपन्यास)

[लेखक :—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

[४६]

मकानके सामने आते ही पालकीके दरवाजेको ज़रा सा खिसकाकर कुमुदने ऊपरकी ओर देखा। विप्रदास रोज़ इस समय सड़कके किनारेवाले बरामदेमें बैठकर अखबार देखा करते थे; मगर आज देखा तो वहाँ कोई नहीं! 'आज कुमुद आनेवाली है', यह खबर यहाँ भेजी ही नहीं गई थी। पालकीके साथ महाराजा साहबके चपरासदार दरबानको देखकर यहाँके दरबान घबरा-से गये, चौकन्ने हो गये समझ गये कि 'बहनजी' आई हैं। सहन पार करके पालकी अन्त:पुरकी ओर जा रही थी। कुमुदने बीच ही में रुकवा ली, और फुर्तीसे उतरकर वह जल्दी-जल्दी बाहरकी सीढ़ियोंपर से ऊपर चढ़ी चली गई। वह चाहती है कि और किसीके देखनेसे पहले ही—सबसे पहले—भइयासे उसकी भेंट हो। वह निश्चय-पूर्वक जानती थी कि बाहरके आराम कमरेमें ही रोगीके रहनेकी व्यवस्था की गई होगी। वहाँके जंगलेमें से बगीचेकी गुंजा, कचनार और पीपलके पेड़का एक कुंज समूह दीख पड़ता है। सबेरेकी घाम पेड़-पत्तियोंके भीतर होकर इसी कमरेमें पहले दिखाई देती है। विप्रदासको यही कमरा पसन्द है।

कुमुदके, जीनेके पास पहुँचते ही सबसे पहले टौम कुत्ता दौड़ा आया, और उसके ऊपर सामनेके दो पैर जमानेकी कोशिश करता हुआ, पूँछ हिलाता हुआ, अपनी भाषामें न जाने क्या-क्या कहने लगा—कुमुदको उसने तंग कर डाला। टौम भी उछलता-कूदता-बोलता हुआ कुमुदके साथ चला। विप्रदास एक तह करके रखे जानेवाले कोचपर अधलेटी हालतमें पड़े थे—घुटनों तक छींटकी फर्द पड़ी हुई है, दाहने हाथमें एक किताब है और वह हाथ बिस्तरपर शिथिल पड़ा हुआ है, मानो थककर कुछ ही देर पहले पढ़ना बन्द किया हो। चायका प्याला और प्लेट बगलसे ज़मीनपर पड़ी हुई है, जिसमें थोड़ीसी खाई हुई रोटी बच रही है। सिरहानेके पास दीवालमें लगे हुए 'सेल्फ' पर किताबें उलटी-पुलटी बे-सिलसिलेसे पड़ी हैं। रातको जो लैम्प जला था, वह धुएँसे काला होकर अभी तक एक कोनेमें पड़ा हुआ है।

कुमुद विप्रदासके चेहरेकी तरफ़ देखकर चौंक पड़ी। भइयाकी ऐसी विवर्ण रुग्न-मूर्ति तो उसने कभी नहीं देखी। तबके विप्रदास और अबके विप्रदास—दोनोंमें मानो कई युगोंका फ़र्क है। भइयाके पैरों तले सिर रखकर कुमुद रोने लगी।

"अरे, कुमुद. आ गई तू! आ, यहाँ आ!"—कहकर विप्रदासने उसे पासमें खींच लिया। यद्यपि चिट्ठीमें विप्रदासने उसे आनेकी एक तरहसे मनाई की थी, फिर भी उन्हें आशा थी कि कुमुद आयेगी। जब देखा कि कुमुद आ सकी है, तो उन्होंने समझा कि शायद अब कोई बाधा नहीं रही—कुमुदके लिए उसकी घर-गिरस्ती अब सहज हो गई है। कुमुदको लिवानेके लिए इनकी तरफ़से ही प्रस्ताव, पालकी और आदमी भेजनेकी व्यवस्था होनी चाहिए थी—नियम तो ऐसा ही है—लेकिन ऐसा न होनेपर भी कुमुद चली आई, विप्रदासने इससे उसकी जितनी स्वाधीनताकी कल्पना कर ली, उतनी उन्होंने मधुसूदनके घर कभी भी किसी हालतमें प्रत्याशा नहीं की थी।

कुमुदने दोनों हाथोंसे विप्रदासके बिखरे हुए बालोंको ज़रा सम्हालते हुए कहा—"भइया, तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है!"

"मेरा चेहरा अच्छा हो, इधर ऐसी तो कोई घटना हुई नहीं—लेकिन तेरी यह क्या हालत हो गई ? बिलकुल झुक पड़ गई है।"

इतनेमें खबर पाकर क्षेमा-बुआ आ पहुँचीं। साथ ही दरवाज़ेके पास नौकर-नौकरानियोंकी भीड़ जमा हो गई। क्षेमा-बुआको प्रणाम करते ही बुआने उसे छातीसे चिपटाकर माथा चूमा। नौकर-नौकरानियोंने आकर पैर छुए। सबके साथ कुशल-सम्भाषण हो जानेके बाद कुमुदिनीने कहा—"बुआ, भइयाका चेहरा बहुत खराब हो गया है।"

"यों ही थोड़े ही हो गया है ! तुम्हारे हाथकी सेवा न मिलनेसे उनकी देह किसी भी तरह सुधरना ही नहीं चाहती। कितने दिनोंका अभ्यास है, कोई ठीक है !"

विप्रदासने कहा—"बुआ, कुमुदको खानेके लिए न कहोगी ?"

"खायगी नहीं तो क्या ! उसकी भी कहनी पड़ेगी क्या ? पालकीवालों और दरबान वगैरह सबको बिठा आई हूँ, जाऊँ, उन्हें खवाआऊँ। तब तक तुम दोनों बैठे बातें करो, मैं आती हूँ।"

विप्रदासने क्षेमा-बुआको इशारेसे पास बुलाकर उनके कानमें कुछ कह दिया। कुमुदने समझा कि उसकी ससुरालसे आये हुए आदमियोंकी किस ढंगसे विदा की जायगी, उसीका परामर्श किया गया है। इस परामर्शमें कुमुद आज दूसरे पक्षकी हो गई है। उसकी कोई राय ही नहीं। यह उसे ज़रा भी अच्छा न लगा। कुमुद भी इसका बदला लेनेपर उतारू हो गई। इस घरमें उसका जो चिरकालसे स्थान चला आया है, उसपर उसने दुबारा दखलका काम शुरू कर दिया।

पहले तो भइयाके खानसामा गोकुलको फुस-फुस करके कुछ हुक्म दिया, फिर लगी अपने मनका-सा घर सजाने। ट्रेड, प्याला, लैम्प, सोडा-वाटरकी खाली बोतल, फटी बेंतकी चौकी, मैले तौलिये और बनियाइनें—एक तरफसे सब हटाकर बरामदेमें रख दिया। शेल्फपर किताबें ठीकसे सजा दीं, भइयाके हाथके पास एक तिपाई सरका कर रख दी और उसपर सजा दीं पढ़नेकी किताबें, क़लमदान, ब्लाटिंग-पैड, पीनेके पानीकी काँचकी सुराही और गिलास, छोटासा एक शीशा, कंघी और ब्रुश।

इतनेमें गोकुल एक पीतलके 'जग' में गरम पानी, पीतलकी एक चिलमची और साफ तौलिया ले आया और बेंतके मूढ़ेपर रख दिया। भइयाकी सम्मतिकी ज़रा भी प्रतीक्षा न करके कुमुदने गरम पानीमें तौलिया भिगोकर उनका मुँह-हाथ अंगोछकर बाल काढ़ दिये, विप्रदासने शिशुकी तरह चुपचाप सह लिया। कब कौनसी दवा पिलाना और पथ्यके नियम सब जानकर वह इस तरह मुस्तैद हो कर बैठी कि मानो उसके जीवनमें और कहीं भी कोई दायित्व नहीं है।

विप्रदास मन-ही-मन सोचने लगे—इसका क्या अर्थ ? सोचा था—मिलने आई है, फिर चली जायगी, लेकिन लक्षण तो ऐसे नहीं दिखाई देते। विप्रदास जानना चाहते हैं कि ससुरालमें कुमुदका सम्बन्ध कैसा और कहाँ तक पहुँचा; मगर साफ-साफ पूछनेमें उन्हें संकोच मालूम हो रहा है। कुमुद अपने ही मुँहसे सुनायगी, इस आशामें रहे। सिर्फ आहिस्तेसे एक बार पूछा—"आज तुझे जाना कब होगा ?"

कुमुदने कहा—"आज नहीं जाना होगा मुझे।"

विप्रदासने विस्मित हो कर पूछा—"इससे तेरे ससुराल-वालोंको कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

"नहीं तो, मेरे पतिकी सम्मति है।"

विप्रदास चुप बने रहे। कुमुद घरके एक कोनेमें टेबिलपर एक चादर बिछाकर उसपर दवाकी शीशी, बोतलें आदि ठीक ढंगसे सजकर रखने लगी। थोड़ी देर बाद विप्रदासने पूछा—"तो क्या तुझे कल जाना पड़ेगा ?"

"नहीं तो, अभी तो मैं कुछ दिन तुम्हारे पास रहूँगी।"

टौम कुत्ता कोचके नीचे शान्त होकर निद्रा देवीकी साधनामें नियुक्त था, कुमुदने उसपर लाड़ करके उसके प्रीति-उच्छ्वासको असंयत कर दिया। उसने उछलकर कुमुदकी

गोदके ऊपर दोनों पैर उठाकर अपनी भाषामें ऊँचे स्वरमें आलापना शुरू कर दिया। विप्रदासने समझ लिया कि कुमुदने बकाबक कोई गोलमालकी सृष्टि करके उसके पीछे अपनी आड़ कर ली है।

कुछ देर बाद कुत्तेके साथ खेलना बन्द करके कुमुदने मुँह उठाकर कहा—"भइया, तुम्हारा बार्ली पीनेका वक्त हो गया, ले आऊँ?"

"नहीं, वक्त नहीं हुआ"—कहकर इशारा करके कुमुदको खाटके पास चौकीपर बिठा लिया। अपने हाथपर उसका हाथ लेकर कहा—"कुमुद, मुझसे तू खोलकर कह, कैसे चल रहा है तेरे यहाँ?"

तुरत ही कुमुद कुछ कह न सकी। सिर नीचा किये बैठी रही; देखते-देखते चेहरा हो गया सुर्ख, बचपनकी तरह भइयाके प्रशस्त वक्षस्थलपर मुँह रखकर रो उठी; बोली—"भइया, मैंने सब-का-सब गलत समझा, मैं कुछ जानती नहीं थी।"

विप्रदास कोई बात न कहकर, लम्बी साँस भरकर, चुपचाप बैठे-बैठे सोचते रहे। यह बात तो वे उस विवाहके अनुष्ठानके आरम्भमें ही समझ गये थे कि मधुसूदन उन लोगोंसे बिलकुल अलग दूसरी ही दुनियाँका आदमी है। उसीके विषम विद्वेषसे ही, मालूम होता है, उनका शरीर किसी भी तरह स्वस्थ नहीं हो रहा है। इस विद्वेषके स्थूल हस्तावलेपसे कुमुदके उद्धार करनेका तो कोई उपाय नहीं है। सबसे ज्यादा मुश्किल यह है कि इस आदमीके हाथ अबसे उनकी सम्पत्ति रहनमें पड़ी है। इस अपमानित सम्बन्धकी मार कुमुदको भी सता रही है। इतने दिनों रोग-शय्यापर पड़े-पड़े विप्रदास बार-बार केवल यही सोचा करते हैं कि मधुसूदनके इस ऋणके बन्धनसे किस तरह छुटकारा मिले। कलकत्ते आनेकी उनकी इच्छा नहीं थी, इसलिए कि कहीं कुमुदकी ससुरालमें उनका सहज (स्वाभाविक) व्यवहार असम्भव न हो जाय। कुमुदपर उनका जो स्वाभाविक स्नेहका अधिकार है, कहीं वह पद-पदपर लांछित न होने लगे, इसीसे निश्चय किया था कि नूरनगरमें ही रहेंगे। कलकत्ते आनेके लिए मजबूर हुए इसलिए कि किसी महाजनसे कर्ज मिल जाय, तो अच्छा हो। जानते हैं कि यह बड़ा मुश्किल काम है, इसीसे इसकी दुश्चिन्ताका बोझ उनकी छातीपर सवार है।

कुछ देर बाद, कुमुदने विप्रदासकी ओरसे गरदनको जरा दूसरी ओर फेर कर कहा—"अच्छा, भइया, पतिपर किसी भी तरह मनको प्रसन्न नहीं कर पाती,—यह क्या मेरा पाप है?"

"कुमुद, तू तो जानती है, पाप-पुण्यके सम्बन्धमें मेरा मत शास्त्रोंसे नहीं मिलता।"

अन्यमनस्क होकर कुमुद एक सचित्र अंग्रेजी मासिक पत्रके पन्ने उलटने लगी। विप्रदासने कहा—"भिन्न-भिन्न मनुष्योंका जीवन अपनी घटनाओं और अवस्थाओंमें परस्पर इतना अधिक भिन्न हो सकता है कि अच्छे-बुरेके साधारण नियमोंको खूब पक्का करके बाँध देनेपर भी बहुधा वह 'नियम' ही हो जाते हैं—धर्म नहीं।"

कुमुदने मासिक पत्रकी ओर नीचेको निगाह किये हुए ही कहा—"जैसे मीरा बाईका जीवन।"

अपने भीतर कर्तव्य-अकर्तव्यका द्वन्द्व जब कभी भी कठिन हो उठा है, उसी समय कुमुदको मीरा बाईकी बात याद आई है। एकाग्रचित्तसे वह चाहती है कि कोई उसे मीरा बाईके आदर्शको अच्छी तरह समझा दे।

कुमुद जरा कोशिश करके संकोचको दूरकर कहने लगी—"मीराबाई अपने यथार्थ स्वामीको अपने हृदयमें ही पा गई थीं—इसीसे सामाजिक स्वामीको वह इस तरह मनसे छोड़ सकी थीं, लेकिन घर-गिरस्तीको छोड़नेका उतना बड़ा हक क्या मुझे है?"

विप्रदासने कहा—"कुमुद, अपने भगवानको तूने तो सम्पूर्ण मनसे ही पाया है।"

"किसी समय ऐसा भी समझती थी; मगर अब संकटमें पड़ी, तो देखा कि प्राण मेरे कैसे सूख से गये हैं;

इतनी कोशिश की, लेकिन किसी भी तरह अपने आगे उन्हें मैं सत्य रूपमें नहीं ला पाती। मुझे सबसे बड़ा दुःख तो यही है।"

"कुमुद, मनके अन्दर ज्वार-भाटा खेला करता है। कुछ डर मत कर, बीच-बीचमें रात आती है, यह ठीक है, लेकिन इससे दिन थोड़े ही मरता है। जो कुछ पाया है, तेरे प्राणोंके साथ वह एक हो गया है।"

"यही असीस दो, भइया, जिससे उन्हें न भूल जाऊँ। निर्दयी हैं वे, दुःख देते हैं—अपनेको देंगे इसीलिए।"

"भइया, अपने लिए सोच करा-कराकर मैं तुम्हें थकाये देती हूँ।"

"कुमू, तेरे बचपनसे ही तेरे लिए सोचनेका मुझे जो अभ्यास पड़ गया है। आज अगर तेरी बात जानना बन्द हो जाय—तेरे लिए सोच न पाऊँ, तो मुझे सूना मालूम पड़ता है। उस शून्यताको टटोलते-टटोलते ही तो मेरा मन थक गया है।"

कुमुद विप्रदासके पैरोंपर हाथ फेरती हुई कहने लगी—'मेरे लिए तुम कुछ सोच मत करो, भइया। मेरी जो रक्षा करनेवाले हैं, वह मेरे भीतर ही हैं, मुझपर विपद क्यों आने लगी।"

"अच्छा, जाने दे ये सब बातें। तुझे मैं जिस तरह गान सिखाता था, जी चाहता है, उसी तरह आज भी तुझे सिखाऊँ।"

"बड़े भाग्य थे जो तुमने सिखाया था, भइया, वही तो मुझे बचाता है; पर आज नहीं, पहले तुम ज़रा ठीक हो लो। आज बल्कि मैं तुम्हें एक गान सुनाऊँ।"

भइयाके सिरहानेके पास बैठकर कुमुद आहिस्ते-आहिस्ते गाने लगी—

"पिय घर आवे, सोई प्यारी पिय प्यार रे!
मीराके प्रभु गिरधर नागर,
चरण-कमल बलिहार रे!"

विप्रदास आँखें मींचकर सुनने लगे। गाते-गाते कुमुदकी दोनों आँखें भर आईं—एक अपूर्व दर्शनसे। भीतरका आकाश प्रकाशमय हो उठा। प्रियतम घर आये हैं, हृदयमें चरण-कमलोंका स्पर्श पा रही है। अत्यन्त सत्य हो उठा अन्तरलोक, जहाँ मिलन होता है। गान गाती हुई भी वहाँ पहुँच गई है। "चरण-कमल बलिहार रे"—सारे जीवनको भर दिया उन चरण-कमलोंने, अन्त नहीं है उनका—संसारमें दुःख अपमानके लिए जगह रही कहाँ! "पिय घर आये—" इससे ज्यादा और क्या चाहिए! यह गान कभी भी अगर खतम न हो, तब तो हमेशा (चिरकाल) के लिए बच गई कुमुद।

तिपाईपर कुछ रोटी-टोस्ट और एक प्याला बार्ली रखकर गोकुल चला गया। कुमुदने गाना रोककर कहा—"भइया, कुछ दिन पहले मन-ही-मन मैं गुरु ढूँढ़ रही थी, मुझे ज़रूरत क्या है? तुमने तो मुझे गानका मन्त्र दे ही दिया है।"

"कुमू, मुझे शर्मिन्दा न कर। मुझ जैसे गुरु गली-गली मिलते हैं, वे दूसरोंको जो मन्त्र देते हैं, खुद उसके मानी ही नहीं जानते। कुमू, कितने दिन यहाँ रह सकती है, ठीकसे बता तो?"

"जितने दिन बुलावा न आवे।"

"तूने यहाँ आना चाहा था?"

"नहीं, मैंने नहीं चाहा।"

"इसके मानी?"

"मानी की बात सोचनेसे कोई लाभ नहीं, भइया। कोशिश करनेसे भी न समझ सकोगे। तुम्हारे पास आ सकी हूँ, यही बहुत है। जितने दिन रह सकूँ, उतना ही अच्छा है। भइया, तुम्हारा खाना तो हो ही नहीं रहा, खा लो पहले।"

नौकरने आकर खबर दी—मुखर्जी साहब आये हैं। विप्रदासने मानो ज़रा व्यस्त होकर कहा—"बुला लो यहीं।"

[क्रमशः

लंकामें वैशाख-पूर्णिमा

[लेखक :—रेवरेण्ड रामोदार स्वामी]

वैशाख-पूर्णिमाका दिन लंकावासी बौद्ध बन्धुओंके लिए वैसा ही है, जैसा हिन्दुओंके लिए दीवाली और दशहरा। दरिद्रोंकी कुटियोंसे लेकर महलों तकमें इसका प्रभाव एक समान देखनेमें आता है। सिंहल समाचारपत्र इसके उपलक्ष्यमें वैशाख-अंक निकालते हैं। सरकारी दफ्तरोंमें भी दो दिनकी छुट्टी रहती है। सभी लोग अपने-अपने मकानोंको लीप-पोतकर रंग-बिरंगकी झाड़ियोंसे अलंकृत करते हैं। फूसकी झोपड़ियोंके सामने भी उस दिन काग़ज़की लालटेनोंमें मोमबत्तियाँ जलती ज़रूर देख पड़ेंगी। शहरोंमें एक मुहल्ला दूसरे मुहल्लेसे बाज़ी मार ले जाना चाहता है। 'तरुण बौद्ध सभा'ने तो कोलम्बोमें एक पदक भी देनेका प्रबन्ध किया है, जो उस घरके मालिकको दिया जाता है, जिसकी सजावट सबसे उत्तम हो।

प्रात:काल ही शुभ्रवेषधारी स्त्री-पुरुषोंके झुण्डको आप हाथोंमें फूल लिये विहारोंकी ओर जाते देखेंगे। वे वहाँ, भगवान् बुद्धके दर्शन-पूजाके बाद, भिक्षु द्वारा बुद्ध धर्म संघकी शरण ग्रहण करते हैं। 'प्राणातिपात' (हिंसा), 'अदिन्नादान' (चोरी), 'कामेसुमिच्छाचार' (निषिद्ध मैथुन-सेवन), 'मुसावाद' (झूठ) और 'सुरामेरय' (नशीली चीज़ें)—इन पाँच बातोंके छोड़नेका व्रत लेते हैं। स्त्री-पुरुष सभी उस दिन दोपहरके बाद भोजन नहीं करते, सारा दिन स्वाध्याय और सत्संगमें व्यतीत करते हैं।

बड़े-बड़े विहारोंकी चहल-पहलकी तो बात ही क्या कहनी है। कोलम्बोसे पाँच मीलपर केलनिया (कल्याणी) एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। प्रात:काल ही से उस दिन कई हज़ार भक्तजन वहाँ एकत्रित हो गये थे। जगह-जगह दुकानें सज गई थीं। एक अच्छा खासा मेला-सा मालूम होता था। यह स्थान लंकाके उन चन्द स्थानोंमें से है, जिन्हें कहा जाता है कि भगवान् बुद्धके चरण-रज स्पर्श करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी एक धनी सज्जनने मन्दिरमें बिजलीकी रोशनी लगवाई है, जिसका उसी दिन उद्घाटन था। उद्घाटनके लिए अनेक प्रधान स्थविर पधारे थे। जिस समय मैं हज़ारों मनुष्योंके बीचमें खड़ा हुआ उनका उपदेश सुन रहा था, मैंने अपने पासमें खड़े दो बच्चोंको देखा। इनमेंसे छोटा लड़का और बड़ी लड़की थी। रंग बिलकुल गोरा, लेकिन नंगे पैर। वे अत्यन्त भक्ति-भावसे हाथ जोड़े खड़े थे। थोड़ी देर बाद उनकी माता भी वहीं आई। अब मालूम हुआ कि वे एक यूरोपीय महिलाकी सन्तान हैं, जिसने एक सिंहल सज्जनसे विवाह किया है। और दृष्टिसे चाहे कुछ भी हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बौद्धधर्ममें अपनेमें हज़म कर लेनेकी काफ़ीसे ज़्यादा शक्ति है, इसीलिए शायद पाश्चात्य पादरी घबरा रहे हैं। उन्हें डर लग रहा है कि इधर तो करोड़ों रुपया और सब तरहकी शक्ति लगाकर वे पूर्वके काफ़िरोंको विश्वासी बना रहे हैं, और उधर बिना किसी मिशनरी प्रबन्धके घरमें बौद्धधर्मकी पुस्तकोंके पढ़ने-मात्रसे लोग उसमें अनुरक्त होते आ रहे हैं। यह तो सीलोन (लंका) की मर्दुमशुमारीसे भी पता लग जाता है कि बौद्धजन-संख्या ईसाई आदि सभी धर्मोंकी अपेक्षा अधिक बढ़ रही है।

वैशाख-पूर्णिमाका इतना माहात्म्य क्यों है? इसलिए कि दक्षिणात्य बौद्ध ग्रन्थोंके अनुसार भगवान् इसी दिन अवतीर्ण हुए और इसी दिन बुद्धत्व तथा निर्वाणको प्राप्त हुए। इसी दिन बुद्धत्व प्राप्त करना तो सर्वसम्मत है। विशाल भारतके सर्वप्रधान नेता उस लोकोत्तर पुरुषकी स्मृतिमें सारी लंकामें इस तरह आनन्दका समुद्र उमड़ते देखकर मेरे ऐसे आदमीके हृदयमें जो-जो भावनाएँ पैदा हो रही थीं, उन्हें लिखा नहीं जा सकता, किन्तु एक बात अवश्य सूईकी भाँति कलेजेमें चुभ रही थी कि भारतमें 'वैशाख-पूर्णिमाके लिए कोई स्थान नहीं! साधारण लोगोंकी तो बात ही छोड़ दीजिए, जब मैंने ज्ञान-मंडल जैसी संस्थासे प्रकाशित 'सौर रोजनामचा' तकमें उस दिनको कोरा ही पाया, तो मैंने समझ लिया कि हम कहाँ हैं।

फास्ट

[लेखक :—श्री तुर्गनेव]

(गतांकसे आगे)

आठवाँ पत्र

८ सितम्बर, १८५०

प्रिय सेमन निकोलेव,

मेरे पिछले पत्रका तुम्हारे दिलपर बहुत अधिक असर पड़ा है। तुम तो जानते ही हो कि अपनी अनुभूतियोंको बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करनेकी सदासे मेरी आदत रही है। अज्ञातरूपमें ही ऐसा मुझसे हो जाया करता है। यह एक प्रकारकी स्त्रियोंकी-सी प्रकृति है। कुछ समयके बाद यह आप ही आप चली जायगी, किन्तु मैं खेदके साथ यह स्वीकार करता हूँ कि अब तक मैंने अपनी इस कमजोरीको ठीक नहीं कर पाया ; फिर भी अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। वीराका मुझपर जो प्रभाव पड़ा है, उसे मैं अस्वीकार नहीं कर रहा हूँ, किन्तु मैं फिर कहता हूँ कि इन सब बातोंमें कोई विलक्षणता नहीं है। तुम्हारे लिए यहाँ आना, जैसा कि तुम लिख रहे हो, अभी सर्वथा अप्रासंगिक—बिलकुल अनावश्यक—होगा। तुम्हारे स्नेहके इस नये प्रमाणके लिए मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, और विश्वास रखो कि मैं इसे कभी भूलूँगा नहीं। तुम्हारा यहाँ आना इसलिए भी अप्रासंगिक होगा, क्योंकि मैं स्वयं ही शीघ्र पीटर्सबर्ग आना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ तुम्हारे पलंगपर बैठकर मुझे बहुत-कुछ कहना होगा, किन्तु इस समय मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। कहनेकी जरूरत ही क्या है? इस समय तो मैं बिलकुल ऊटपटांग बातें कहूँगा और सब बातोंको गड़बड़ा दूँगा। यहाँसे रवाना होनेके पहले मैं तुम्हें फिर लिखूँगा। अभी कुछ समयके लिए विदा लेता हूँ। खुश रहो और स्वस्थ रहो, और अपने प्रेमी मित्रके भाग्यके सम्बन्धमें विशेष चिन्ता न करो।

तुम्हारा

....

नवाँ पत्र

ग्राम, १० मार्च, १८५३

बहुत दिनोंसे मैंने तुम्हारे पत्रका उत्तर नहीं दिया। इतने दिनोंसे मैं बराबर इस सम्बन्धमें सोचता रहा हूँ। मुझे यह बात मालूम हुई कि तुमने केवल कौतूहलवश नहीं, बल्कि वास्तविक मित्रतासे उत्प्रेरित होकर ही मुझे सलाह दी थी, किन्तु तो भी मैं तुम्हारी सलाहके अनुसार चलने अथवा तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करनेके सम्बन्धमें आगा-पीछा करता रहा। आखिर मैंने अपने मनमें संकल्प कर लिया है कि अब मैं तुमसे सारी बातें कह दूँगा दिल खोलकर सारी बातें स्वीकार कर लेनेसे मेरे मनको चैन मिलेगा या नहीं—जैसा कि तुम समझते हो—यह मैं नहीं जानता, किन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है कि जिस कारणसे मेरे जीवनकी गतिमें सदाके लिए परिवर्तन हो गया है, उस कारणको तुमसे छिपाये रखनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। सचमुच मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि यह मेरी भूल होगी, अपराध होगा—जबरदस्त अपराध होगा उस प्रिय प्राणीके प्रति, जो निरन्तर मेरे ध्यानमें रहता है, यदि मैं अपने शोकयुक्त रहस्यको उस व्यक्तिसे, जिससे मेरा अब भी प्रेम है प्रकट नहीं करूँ। संसारमें शायद एकमात्र तुम्हीं ऐसे व्यक्ति हो, जो वीराको स्मरण करते हो। ऐसी हालतमें तुम उसके सम्बन्धमें हल्केपनके साथ मिथ्या विचार करो, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुम्हें सब-कुछ ज्ञात हो जायगा। आह! सारी बातें दो शब्दोंमें ही तुमसे कही जा सकती हैं। हम दोनोंके बीच जो कुछ हुआ, वह एक क्षणके अन्दर ही बिजली जैसा प्रकाशित हो उठा, और बिजली गिरनेके समान ही मृत्यु एवं सर्वनाश अपने पीछे छोड़ता गया। उसको मरे दो वर्षसे अधिक हो गये। तबसे मैंने—इस सुदूर स्थानको अपना वासस्थान बना लिया है, और इस

स्थानको मैं अपने अन्तिम दिनों तक छोड़ूँगा भी नहीं। उस समयकी सारी घटनाएँ अब तक मेरे स्मृति-पटलपर स्पष्ट-रूपमें अंकित हैं। मेरे घाव अब तक हरे ही बने हैं, और मेरा शोक भी पहले जैसा ही तीव्र बना हुआ है। मैं तुमसे कोई शिकायत भी नहीं करूँगा। शिकायत करना भूले हुए शोकको फिर उखाड़ना है, जिससे शोक भले ही कम हो, किन्तु मेरे दिलको तो चैन नहीं मिलता। अब मैं अपनी रामकहानी शुरू करूँगा।

क्या तुम्हें मेरा वह पत्र याद है, जिसमें मैंने तुम्हारी आशंकाओंको मिटानेका प्रयत्न किया था और तुम्हें पीटर्सबर्ग आनेसे मना किया था? तुमने उस पत्रके कृत्रिम हल्केपनके भावपर सन्देह प्रकट किया था, तुमने हम लोगोंके शीघ्र मिलनपर विश्वास नहीं किया, और तुम्हारा ऐसा करना ठीक ही था। तुम्हें पत्र लिखनेके एक दिन पूर्व मुझे मालूम हुआ कि मुझे वह प्यार करती है। इन शब्दोंको लिखते हुए मैं इस बातका अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे लिए अपनी रामकहानीको शुरूसे आखिर तक बयान करना कितना कठिन है। उसकी मृत्युकी निरन्तर चिन्ता मुझे द्विगुणित शक्तिके साथ उत्पीड़ित करेगी, और वे स्मृतियाँ मुझे जलाकर खाक कर डालेंगी, किन्तु मैं अपने आपको काबूमें रखनेकी कोशिश करूँगा और या तो लेखनीको उठाकर अलग रख दूँगा अथवा आवश्यकतासे अधिक एक शब्द भी नहीं लिखूँगा।

वीरा मुझे प्यार करती है यह बात मुझे इस प्रकार मालूम हुई। सर्वप्रथम मैं तुमसे यह कहूँगा (और तुम मेरे कथनपर विश्वास रखो) कि उस दिन तक मुझे इस सम्बन्धमें बिलकुल ही शक नहीं था। यह सच है कि वह कभी-कभी शोकाकुल हो जाया करती थी, यद्यपि इससे पहले उसे ऐसा होते कभी देखा नहीं गया था, किन्तु उस समय तक मैं नहीं जानता था कि उसमें यह परिवर्तन क्यों कर हो गया है। आखिर एक दिन सातवीं सितम्बरको—जो दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा—एक घटना इस प्रकार घटी। तुम जानते हो कि मैं उसे कितना प्यार करता था और उसके लिए मैं कितना दुःखी था। मैं एक व्याकुल प्राणीकी तरह इधर-उधर मारा फिरता था, और मुझे कहीं चैन नहीं मिलता था। मैंने घरपर ही रहनेकी चेष्टा की, किन्तु मैं अपनेको काबूमें नहीं रख सका और उसके पास चला ही तो गया। मैंने उसे अपनी बैठकके कमरेमें अकेला पाया। प्रेमकबि घरपर नहीं था, वह बाहर शिकार खेलने चला गया था। जब मैं वीराके पास पहुँचा, तो वह टकटकी लगाकर मेरी ओर देखने लगी और उसने मेरे अभिवादनका कुछ उत्तर नहीं दिया। वह खिड़कीके पास बैठी हुई थी। उसके घुटनोंपर एक पुस्तक रखी हुई थी, जिसे मैंने फौरन पहचान लिया। वह मेरी 'फ़ास्ट' पुस्तक थी। उसके चेहरेसे थकावटके चिह्न दिखाई पड़ रहे थे। मैं उसके निकट ही बैठ गया। वीराने मुझसे 'फ़ास्ट' और 'मेबन'का वह दृश्य ज़ोरसे पढ़नेके लिए कहा, जहाँ वह उससे पूछती है कि क्या वह ईश्वरमें विश्वास करता है।

मैंने पुस्तक ले ली और पढ़ना शुरू कर दिया। पढ़ना समाप्त हो जानेपर मैंने वीराकी तरफ देखा। वह अपने मस्तकको आराम-कुर्सीकी पीठके बल रखे हुए और अपनी दोनों बाँहोंको छातीपर रखे हुए पहलेके समान ही मेरी ओर टकटकी बाँधे देख रही थी।

मैं नहीं कह सकता कि क्यों एकाएक मेरा दिल धड़कने लगा।

"तुमने मुझे क्या कर डाला?" वीराने धीमे स्वरमें कहा।

"क्या कहा?" मैं घबराकर बोल उठा।

उसने फिर दुहराते हुए वही बात कही—"हाँ, तुमने मुझे क्या कर डाला?"

मैंने कहना शुरू किया—"तुम्हारे कहनेका मतलब यही है न कि मैंने तुम्हें इस प्रकारकी पुस्तकोंको पढ़नेके लिए क्यों प्रेरित किया?"

वह बिना कुछ बोले ही उठ खड़ी हुई और कमरेसे बाहर चली गई। मैं उसके पीछे देखता रहा। दरवाजेके पास

जाकर वह ठहर गई और मेरी तरफ घूमकर कहने लगी—"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, तुमने मुझे जो कुछ कर डाला है, वह यही है।"

मेरे सरमें खून दौड़ गया।

"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ—तुमपर मरती हूँ।" वीराने दुहराते हुए कहा।

फिर वह अपने पीछे किवाड़को बन्द करती हुई बाहर चली गई। इसके बाद मेरे अन्दर क्या बीता, उसका वर्णन करनेका मैं प्रयत्न नहीं करूँगा। मुझे स्मरण है कि मैं बाहर बग़ीचेमें चला गया और एक झाड़ीके अन्दर जाकर एक वृक्षके सहारे खड़ा हो गया। उस हालतमें मैं कितनी देर तक वहाँ खड़ा रहा, यह मैं नहीं कह सकता। मुझे बेहोशी और सुप्त जैसा मालूम पड़ा। हाँ, एक प्रकारके आनन्दकी भावना मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई, जिसका झोंका कभी-कभी आ जाया करता था। मैं उसका यहाँपर वर्णन नहीं कर सकता। इस प्रकारकी अचेतनावस्थामें मैं पड़ा हुआ था कि इतनेमें प्रेमकविकी आवाज़ने मुझे सचेत कर दिया। घरवालोंने प्रेमकविके पास मेरे आनेकी खबर भेजी थी। वह शिकारसे लौटकर घर आ गया था और मेरी तलाशमें था। वह मुझे बग़ीचेमें अकेले ही बिना टोपी पहने हुए देखकर चकित हो गया और घरके भीतर लिवा ले गया।

उसने कहा—"मेरी स्त्री बैठकमें है। चलो, हम सब उसके पास चलें।"

तुम उस समयकी भावनाओंका ख़याल कर सकते हो, जब कि मैंने बैठकके दरवाज़ेसे होकर भीतर जानेके लिए क़दम आगे बढ़ाया। वीरा मकानके एक कोनेमें कसीदा काढ़नेके फ्रेमके पास बैठी हुई थी। मैंने चुपकेसे उसकी ओर एक बार देखा, फिर बहुत देर बाद मैंने अपनी आँखें ऊपर उठाईं। मुझे यह देखकर आश्चर्य जान पड़ा कि वह बिलकुल शान्त थी। उसके कथनमें या स्वरमें किसी प्रकारका विक्षोभ नहीं जान पड़ता था। आख़िर मैंने साहस करके उसकी ओर देखा। हम दोनोंकी आँखें चार हुईं। वह कुछ लज्जित-सी हो गई और अपने तिरपालके सहारे झुक गई। मैं उसे ध्यानपूर्वक देखने लगा। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो वह घबरा-सी गई हो। कभी-कभी उसके होठोंपर एक निरानन्द-जनक मुसकराहट खेल जाती थी।

प्रेमकवि बाहर चला गया। वीराने एकाएक अपना सर ऊपर उठाया और ऊँची आवाज़में मुझसे पूछा—"बोलो, अब तुम्हारा क्या इरादा है?"

मैं एकबारगी चकित हो गया और शीघ्रता-पूर्वक दबी ज़बानमें उत्तर दिया—"मैं एक ईमानदार मनुष्यकी तरह अपना कर्तव्य पालन करना चाहता हूँ—यहाँसे चला जाना चाहता हूँ।"

मैंने फिर कहा—"क्योंकि वीरा नीकलवना, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, यह बात तो शायद तुम बहुत पहलेसे ही जान गई हो?"

वह फिर अपने तिरपालके सहारे झुक गई और कुछ सोचनेसी लगी।

उसने कहा—"मुझे तुमसे बातें करनी आवश्यक हैं। आज सन्ध्या समय चायके बाद हमारे छोटे घरमें आना। वही घर, जिसे तुम जानते हो और जहाँ तुमने 'फ़ास्ट' पढ़ी थी।"

इस बातको उसने इतने स्पष्टरूपमें कहा कि मैं आज तक यह समझ नहीं सका हूँ कि प्रेमकविने, जिसने उसी समय उस कमरेमें प्रवेश किया था, क्योंकर उसकी बातोंको कुछ भी नहीं सुना। धीरे-धीरे बड़ी मुश्किलसे दिन कटा। वीरा कभी-कभी अपने चारों ओर देखने लगती थी, और उस समय उसके चेहरेका भाव ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह अपने-आपसे पूछ रही हो कि वह स्वप्न तो नहीं देख रही है, किन्तु इसके साथ-साथ उसके चेहरेसे दृढ़ संकल्पका भाव भी टपकता था। इधर मेरी यह दशा हो रही थी कि मैं अब तक अपने-आपको सम्हाल नहीं सका था।

"वीरा मुझे प्यार करती है।" ये शब्द मेरे मस्तिष्कमें बार बार चक्कर लगा रहे थे, किन्तु मैं इन शब्दोंको समझ नहीं सका। मैं न तो खुद अपनेको ही समझ सका और न वीराको ही। मैं इस प्रकारके अप्रत्याशित परम सुखपर विश्वास भी नहीं कर सका। प्रयत्नके साथ मैंने अपने भूतकालका स्मरण किया, और मैं भी स्वप्नदर्शीकी तरह देखने और बातें करने लगा।

शामको चायपानके बाद जब मैं यह सोचने लग गया था कि किस प्रकार मैं चुपकेसे बिना किसीके देखे उस घरसे बाहर निकल जाऊँ, वीराने एकाएक अपनी इच्छासे मुझे यह जताया कि वह टहलना चाहती है, और उसने अपने साथ चलनेके लिए मुझे कहा। मैं उठा, अपनी टोपी ले ली और उसके पीछे हो लिया। मुझे कुछ बोलनेकी हिम्मत न हुई, मैं मुश्किलसे साँस ले सकता था। मैं यह प्रतीक्षा कर रहा था कि देखें प्रथम शब्द वह क्या कहती है और क्या कैफियत पेश करती है, किन्तु वह कुछ नहीं बोली। मौनावस्थामें ही हम दोनों ग्रीष्म गृहके पास पहुँचे, और उसी दशामें चुपचाप उस गृहमें प्रवेश किया, और इसके बाद—मैं आज तक नहीं जान सका हूँ और अब तक नहीं समझ सका हूँ कि यह घटना किस प्रकार संघटित हुई—हमने अचानक अपनेको एक दूसरेके भुजपाशमें आबद्ध पाया। किसी अदृश्य शक्तिने मुझे खींचकर उसके पास और उसे खींचकर मेरे पास पहुँचा दिया। सन्ध्याकालीन ढलते हुए सूर्यके प्रकाशमें उसका चेहरा—जिसके घुँघराले बाल पीठकी ओर पड़े हुए थे—आत्म-समर्पण एवं करुणाकी मुसकराहटसे क्षण-भरके लिए प्रकाशित हो उठा। हम दोनों अधरोष्ठ चुम्बनमें संयुक्त हो गये। वही चुम्बन प्रथम और अन्तिम था।

वीरा एकाएक मेरे भुजपाशसे पृथक् हो गई और अपनी विस्तृत खुली हुई आँखों द्वारा भयका भाव व्यक्त करती हुई पीछेकी ओर खिसक गई।

इसके बाद फिर वह काँपते हुए स्वरमें बोली—"अरे, पीछेकी ओर तो देखो, क्या तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता?"

मैंने फौरन पीछेकी ओर मुड़कर देखा।

"मैं तो कुछ नहीं देख पाता। क्यों, क्या तुम्हें कोई चीज़ दिखाई दे रही है?"

"अभी तो नहीं, पर इससे पहले मुझे दीख पड़ी थी।"

इसके बाद वह ज़ोर-ज़ोरसे साँसें लेने लगी।

"तुमने किसे देखा था, क्या देखा था?"

"अपनी माँको" उसने धीरेसे कहा, और उसका सारा शरीर काँपने लगा। मैं भी इस तरह काँपने लगा, जैसे मुझे सर्दी लग गई हो। फिर मुझे एकाएक लज्जा मालूम हुई, मानो मैंने कोई अपराध किया हो, और क्या सचमुच मैंने उस क्षण अपराध नहीं किया था?

मैं कहने लगा—"यह सब व्यर्थकी बातें हैं, तुम्हारे कथनका क्या अभिप्राय है? मुझसे कहो तो—"

"नहीं, ईश्वरके लिए ऐसा मत कहो।" अपने माथेको ज़ोरसे पकड़ते हुए उसने कहा—"यह पागलपन है, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं रही.........मेरे लिए यह मृत्यु-तुल्य है, मैं इसके साथ अब यों क्रीड़ा नहीं कर सकती, यह मृत्यु है...अच्छा, अब विदा।"

मैंने अपना हाथ उसके हाथकी ओर बढ़ा दिया।

मैं आप ही आप ज़ोरसे चिल्ला उठा—"ठहरो, ईश्वरके लिए, क्षण-भर ठहरो।" मैं नहीं जानता था कि मैं क्या कह रहा था और उस समय मैं मुश्किलसे खड़ा रह सकता था। "ईश्वरके लिए...यह बड़ी ही निष्ठुरता है।"

उसने अपनी निगाहें मेरी ओर फेरीं।

"कल, कल सन्ध्याको", उसने कहा—"मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, आज नहीं, आज चले जाओ। कल सन्ध्याको झीलके पास बगीचेके फाटकपर आओ। मैं वहाँ मौजूद रहूँगी, मैं ज़रूर आऊँगी। मैं तुमसे शपथपूर्वक कहती हूँ, मैं ज़रूर आऊँगी।" उसने आवेशके साथ कहा और उसकी आँखें चमक उठीं—"चाहे कोई मुझे भले ही रोके, मैं सौगंध खाती हूँ, मैं तुमसे सब बातें कहूँगी। आज-भरके लिए मुझे जाने दो।"

मेरे मुखसे एक भी शब्द नहीं निकल पाया कि उससे पहले ही वीरा वहाँसे चल दी। मैं हतबुद्धि-सा होकर जहाँका तहाँ खड़ा रह गया। मेरा सर चकरा रहा था। मेरे सम्पूर्ण शरीरमें आनन्दोन्मादकी जो लहर चल रही थी, उसके अन्दर भयका संचार होने लगा। मैं चारों ओर देखने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वह धुँधला नम कमरा, जिसमें मैं खड़ा था, अपनी नीची झुकी हुई छत और शून्य दीवालोंके साथ मेरे ऊपर गिरा पड़ता हो।

मैं बाहर चला गया और नैराश्ययुक्त पाँवोंसे चलता हुआ घरकी तरफ़ रवाना हुआ। वीरा चबूतरेपर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। ज्यों ही मैं उसके पास पहुंचा वह घरके अन्दर घुस गई और फौरन अपने शयनागारमें विश्राम करने चली गई। मैं भी वहाँसे चला गया।

वह रात कैसे बीती और दूसरे दिन सन्ध्या काल तकका समय मैंने किस प्रकार व्यतीत किया, यह मैं तुम्हें बता नहीं सकता। मुझे सिर्फ इतना ही याद है कि मैं अपने चेहरेको अपने हाथोंसे छुपाये हुए पड़ा रहा और चुम्बनके पूर्व उसकी जैसी मुसकान देखी थी, उसे मैं याद करता रहा। मैं धीरेसे बोल उठा—"आखिर उसने··· ।"

मुझे श्रीमती अल्टसवके वे शब्द भी स्मरण हो आये, जो वीराने मेरे सामने दुहराये थे। उसकी माताने एक बार उससे कहा था—"तुम बर्फकी तरह हो, जब तक तुम पिघलती नहीं, तब तक तो तुम पत्थरकी तरह कठोर रहती हो, किन्तु तुम्हारे पिघलते ही फिर तुममें कुछ भी शेष नहीं रह जाता है।"

एक और बात मुझे याद आ गई। वीरा और मैंने एक दफा प्रतिभा, योग्यता आदिके विषयमें बातचीत की थी। उसने मुझसे कहा था—"एक ही बात है, जो मैं कर सकती हूँ, यानी अन्तिम क्षण तक मौन धारण किये रहना।"

उस समय मैं उसके इस कथनका अभिप्राय कुछ भी नहीं समझा था।

"किन्तु उसके भयभीत होनेका मतलब क्या था?"

मैं आश्चर्य करने लगा। क्या सचमुच वह श्रीमती अल्टसवको देख सकी होगी? या यह निरी कल्पना थी? मैंने विचार किया और फिर मैं आशाके भावावेशमें अपने आपको छोड़ दिया। उसी दिन मैंने उन विचारोंके बीचमें तुमको वह कष्टपूर्ण चिट्ठी लिखी थी, और आज इस बातको याद करके मेरे दिलको चोट पहुँचती है।

संध्याका समय था। सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ था। मैं झीलके किनारे एक लम्बी झाड़ीमें बगीचेके फाटकसे लगभग पचास क़दमकी दूरीपर खड़ा था। मैं घरसे पैदल ही चलकर आया हुआ था। मुझे यह स्वीकार करते हुए लज्जा मालूम हो रही है कि मेरा हृदय उस समय एक प्रकारके भयसे—अत्यन्त कायरतापूर्ण भयसे—भरा हुआ था और मैं क्षण-क्षणपर चौंक रहा था, किन्तु मेरे हृदयके अन्दर पश्चातापकी भावना नहीं थी। शाखाओंके बीच छिपा हुआ मैं लगातार फाटककी तरफ देख रहा था। सूर्य अस्त हो चुका था। सन्ध्या हो गई थी। आकाशमें तारे निकल आये थे। आसमानका रंग बदल चुका था। उस समय तक कोई वहाँ नहीं पहुँचा था। मुझे ज्वर चढ़ आया। रात हो गई। मैं अब अधिक बर्दाश्त नहीं कर सका, और सावधानीके साथ झाड़ीके बाहर आकर चुपकेसे फाटक तक गया। बगीचेमें बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने धीमें स्वरमें वीराको दो-तीन बार पुकारा। मेरी पुकारका कोई जवाब नहीं मिला। आध घंटा और बीत गया, एक घंटा भी बीत चला, बिलकुल अन्धेरा छा गया था। मैं इन्तज़ार करते-करते थक गया था। आखिर मैंने द्वारको अपनी ओर खींचकर खोल दिया और चोरकी तरह चुपकेसे घरकी ओर क़दम बढ़ाया। कुछ दूर चलकर फिर मैं नींबूके एक वृक्षकी छाया-तले ठहर गया।

उस समय घरकी प्रायः सभी खिड़कियोंसे रोशनी आ रही थी। लोग घरमें इधर-उधर फिर रहे थे। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। तारागणके धुँधले प्रकाशमें मैंने अपनी घड़ी देखी, तो मालूम हुआ कि साढ़े ग्यारह बज चुके

थे। अचानक मुझे घरके समीपसे एक आवाज़ सुनाई दी और उस घरके आँगनसे एक गाड़ी बाहर निकली।

मैंने समझा, शायद मिलनेके लिए कोई लोग आये होंगे। आख़िर वीराके दर्शनोंसे सर्वथा निराश होकर मैंने बग़ीचेसे बाहर निकलनेका रास्ता पकड़ा और लम्बे पाँव घरकी तरफ़ चल दिया। उस दिन सितम्बर महीनेकी अँधेरी रात थी, जब कि गर्मी मालूम हो रही थी। हवा एकदम बन्द थी। मेरे हृदयपर क्रोधकी भावनाकी अपेक्षा उदासीकी भावनाने ही अधिक अधिकार जमा लिया था, किन्तु यह भावना भी क्रमशः कम हो रही थी। तेज़ीसे चलनेके कारण मैं थक तो गया था, किन्तु रात्रिकी निस्तब्धताके कारण शान्तिका बोध करते हुए मैं बिना किसी प्रयासके सुखपूर्वक घर पहुँच गया। मैं अपने कमरेमें गया, अपने नौकर टिमीफ़को वहाँसे छुट्टी दे दी और बिना कपड़ा उतारे ही बिछौनेपर लेट गया, और जाग्रत-स्वप्नावस्थामें लीन हो गया।

आरम्भमें तो मुझे मेरे दिवा-स्वप्न मधुर प्रतीत हुए, किन्तु शीघ्र ही मैंने अपने अन्दर एक अद्भुत परिवर्तन देखा। मुझे एक प्रकारकी गुप्त हृदयबेधक चिन्ताका—एक प्रकारकी गम्भीर आन्तरिक बेचैनीका—अनुभव होने लगा। मैं समझ नहीं सका कि इस चिन्ता—इस बेचैनी—का कारण क्या है, किन्तु मुझे दुःख एवं उदासीका अनुभव होने लगा, मानो किसी आनेवाली आपत्तिसे मैं भयभीत हो गया हूँ, अथवा मेरा कोई प्रियपात्र उस क्षण कष्ट-पीड़ित होकर मुझे सहायताके लिए पुकार रहा है। मेरे सोनेके कमरेमें मेज़पर एक मोमबत्ती अपने अल्प, किन्तु निश्चल प्रकाशमें जल रही थी और घड़ीका पेण्डुलम टिक-टिक शब्द करता हुआ झूल रहा था। मैं अपने हाथपर सर रखे हुए उस सुनसान कमरेकी दीवालपर टकटकी बाँधे देख रहा था। मुझे वीराका ख़याल हो आया और मेरा कलेजा धड़क उठा। अब तक जिन सब बातोंसे मैं इतना प्रसन्न हो रहा था, वे ही मुझे दुःख एवं सर्वनाशके रूपमें प्रतीत होने लगीं। मेरे हृदयमें भयकी भावना क्रमशः बढ़ती ही गई। मैं अब अधिक समय तक वहाँ लेटा नहीं रह सका।

मुझे एकाएक फिर ऐसा ख़याल आया, मानो मुझे कोई आर्तस्वरमें पुकार रहा हो। मैंने सर उठाया और सिरसे पाँव तक कँपकपी आ गई। मैंने भूल नहीं की थी। दूरसे करुणापूर्ण स्वरमें रोनेकी आवाज़ उस कमरेकी खिड़कियोंसे गूँजकर आ रही थी। मैं डर गया और बिछौनेसे कूदकर अलग खड़ा हो गया। मैंने खिड़की खोली। मुझे किसीके विलपनेकी आवाज़ साफ़-साफ़ सुनाई दी और ऐसा मालूम हुआ, मानो वह आवाज़ मेरे आसपासमें ही मंडरा रही हो। भयभीत होकर मैंने उस आवाज़की अन्तिम प्रतिध्वनिको सुना। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो कुछ दूरपर कोई मारा जा रहा हो और वह बेचारा दयाके लिए प्रार्थना कर रहा हो। कराहनेकी वह आवाज़ जंगलमें किसी उल्लूकी थी अथवा किसी और जानवरकी, इसपर मैंने उस समय कोई विचार ही नहीं किया, और उस अपशकुन-सूचक शब्दके प्रत्युत्तरमें मैं भी रोने लगा।

"वीरा, वीरा ?" मैं ज़ोरसे चिल्ला उठा—"क्या तुम्हीं मुझे बुला रही हो ?" मेरा नौकर निद्रालस्य-अवस्थामें विस्मित् हुआ-सा वहाँ आ पहुँचा। मुझे होश हुआ और तब मैंने एक गिलास पानी पिया। फिर इसके बाद मैं दूसरे कमरेमें चला गया, किन्तु मुझे नींद नहीं आई। मेरा कलेजा जल्दी-जल्दी नहीं, किन्तु दुःखद-रूपमें धक-धक कर रहा था। फिर मैं सुख-स्वप्न देखनेमें अपनेको तन्मय नहीं कर सका और मुझे इसपर विश्वास करनेका साहस भी नहीं हुआ।

दूसरे दिन रात्रिके भोजनके पूर्व मैं प्रेमकविके घरपर गया। प्रेमकविका चेहरा फ़िक्रके मारे उतरा हुआ दीख पड़ा। उसने कहा—"मेरी स्त्री बीमार है, वह खाटपर लेटी हुई है। मैंने डाक्टरको बुला भेजा है।"

"उसे क्या हो गया है ?"

"यह मैं नहीं बता सकता। कल संध्याको वह बग़ीचेमें

गई थी, और वहाँसे जब वह एकाएक लौटी, तो वह बिलकुल अव्यवस्त और आपेसे बाहर हो रही थी। मैं अन्दर गया, और उससे पूछा कि तुम्हें क्या कष्ट है। उसने मेरे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया। उसी समयसे वह उसी अवस्थामें पड़ी हुई है। रातसे उसे बेहोशी शुरू हो गई और बेहोशीकी हालतमें न मालूम वह क्या-क्या बकती रही। तुम्हारा नाम भी उसने लिया था। नौकरानीने मुझसे एक विलक्षण बात यह कही है कि वीराकी माता बगीचेमें उसके सामने प्रकट हुई थी, और उसे देखकर वीराको ऐसा खयाल हुआ, मानो वह अपनी भुजाएँ फैलाये हुई उससे मिलने आ रही हो।"

तुम खयाल कर सकते हो कि इन शब्दोंको सुनकर मेरे मनमें क्या भाव उत्पन्न हुए!

फिर प्रेमकविने कहा—"इसमें सन्देह नहीं कि ये सब व्यर्थकी बातें हैं। यद्यपि मैं इतना अवश्य मानलूँगा कि मेरी स्त्रीके साथ इस प्रकारकी विलक्षण घटनाएँ घटती रही हैं।"

"तुम कहते हो न कि वीरा बहुत अस्वस्थ है?"

"हाँ, रातमें तो उसकी हालत बहुत ही खराब थी, किन्तु इस समय भी वह अण्ड-बण्ड बक रही है।"

"डाक्टरने क्या कहा?"

"डाक्टरने कहा कि अभी बीमारीका ठीक पता नहीं लगा है।"

× × ×

१२ मार्च

प्रियमित्र, जिस तर्ज़में मैंने पत्र लिखना शुरू किया था, वैसा अब मैं नहीं कर सकता। इसमें मुझे अत्यधिक प्रयास करना पड़ता है और मेरे कलेजेका घाव अत्यन्त निष्ठुरताके साथ फिर ताज़ा हो उठता है। उसकी बीमारीका ठीक पता लग गया और वीरा उस बीमारीसे मृत्युको प्राप्त हुई! जिस दिन हम दोनोंके बीच वह क्षणिक सम्मेलन हुआ था, उस सांघातिक दिनके बाद वह एक पखवारे तक भी जीवित नहीं रह सकी। मृत्युके पूर्व मैंने एक बार और उसे देखा। ऐसी हृदयविदारक स्मृति मेरे लिए दूसरी कोई नहीं है। मुझे डाक्टरसे पहले ही पता लग गया था कि उसके बचनेकी कोई आशा नहीं है। संध्याको कुछ समय बीतनेपर जब घरके सब लोग बिछौनेपर सोने चले गये थे, मैंने उसके कमरेके अन्दर चुपकेसे दरवाज़ेसे होकर प्रवेश किया और उसे देखा। वीरा बिछौनेपर पड़ी हुई अपनी क्षीण तथा छोटी आँखें बन्द किये हुई थी, और उसके कपोलोंपर बुखारकी-सी सुर्खी झलक रही थी। मैं पत्थरकी मूर्ति जैसा बनकर टकटकी बाँधे उसकी ओर देखता रहा। फिर एकबारगी उसने आँखें खोलीं और अपनी दृष्टि मुझपर गड़ाते हुए मुझे अच्छी तरह देखा। फिर अपने क्षीण बाहुओंको फैलाती हुई इस प्रकार भयानक स्वरमें 'फ़ास्ट' कविताकी दो पंक्तियाँ कहीं कि मैं उसी क्षण वहाँसे भाग खड़ा हुआ। अपनी बीमारीकी हालतमें वह बराबर 'फ़ास्ट' और अपनी माँ—जिसे वह कभी मर्था और कभी ग्रेचनकी माँ कहकर सम्बोधन करती थी—के विषयमें बकती रही।

वीराका देहान्त हो गया! मैं उसके दफ़न होते समय उपस्थित था। उस समयसे ही मैंने सब कुछ परित्याग कर दिया है और सदाके लिए यहाँ बस गया हूँ।

मैंने जो कुछ कहा है, उसपर अब तुम विचार करो, वीराके सम्बन्धमें विचार करो, उस प्राणीके सम्बन्धमें, जो इतनी जल्दी सर्वनाशके पथपर लाई गई। उसका यह सर्वनाश किस प्रकार हुआ, जीवित मनुष्योंके व्यवहारमें मरे-हुओंके इस विचित्र हस्तक्षेपको किस तरह समझा जाय, यह मैं नहीं जानता और कभी जानूँगा भी नहीं, किन्तु इतना तुम्हें अवश्य मानना पड़ेगा कि कोरमकोर सनकके कारण अचानक आवेशमें आकर मैंने इस संसारसे पृथक् हो जानेका संकल्प नहीं किया है। मैं अब पहले जैसा नहीं रहा, वैसा, जैसा कि तुम मुझे जानते थे। मैं अब ऐसी बहुतसी बातोंपर विश्वास करने लग गया हूँ, जिनपर पहले मैं विश्वास नहीं करता था। इधर बराबर मैंने उस अभागी स्त्रीके विषयमें, उसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें, उसके भाग्यके रहस्यपूर्ण खेलके

सम्बन्धमें—जिसे हम मूर्ख मनुष्य अपनी मूर्खताके कारण 'संयोग' कहा करते हैं—बहुत अधिक विचार किया है। यह कौन जानता है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी मृत्युके बाद इस-पृथ्वीपर कैसे बीज छोड़ जाता है, जिन बीजोंका अंकुरित होना उस मनुष्यकी मृत्युके बाद ही क्या होता है? यह कौन बता सकता है कि किस रहस्यपूर्ण बन्धन द्वारा एक मनुष्यका भाग्य उसकी सन्तान तथा वंशजोंके भाग्यके साथ आबद्ध रहता है, उसकी आकांक्षाएँ किस प्रकार उनमें प्रतिबिम्बित होती रहती हैं और किस कारणसे उन्हें उसकी भूलोंके लिए दण्डित होना पड़ता है? हम सबको उस 'अज्ञात' अखिलेश्वरके शरणागत होना चाहिए और उसके सामने अपना मस्तक नत करना चाहिए।

हाँ, तो वीरा तो नष्ट हो गई और मैं ज्योंका त्यों ही बना रह गया! मुझे याद है कि जब मैं बालक था, मेरे घरमें एक सुन्दर बर्तन था, जो पारदर्शी श्वेत पत्थरका बना हुआ था। उसकी स्वच्छतापर किंचित भी कहीं धब्बा नहीं लगा था। एक दिन अकेलेमें मैंने जिस चीज़पर वह बर्तन रखा हुआ था, उसे हिलाना शुरू किया। अकस्मात वह बर्तन गिर गया और चूर-चूर हो गया। मैं भयके कारण सुन्न हो गया और उस बर्तनके टुकड़ोंके सामने निश्चल होकर खड़ा रहा। इतनेमें मेरे पिता वहाँ आये, मुझे देखा और मुझसे कहा—"देखो तो, तुमने यह क्या कर डाला है? हमें अब वह सुन्दर बर्तन फिर नहीं मिल सकता, अब उसकी मरम्मत भी नहीं हो सकती!" मैं पश्चात्ताप करने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मैंने कोई घोर अपराध किया हो।

लड़कपन पार करके मैं जवान हुआ और अब मैंने मूर्खतावश उस बर्तनसे हज़ार गुने अधिक कीमती बर्तनको तोड़ डाला!

अब व्यर्थ ही मैं अपने दिलको समझा रहा हूँ कि इस प्रकारकी आकस्मिक विपत्तिकी मैंने स्वप्नमें भी आशंका नहीं की थी। इसकी आकस्मिकताने मुझे भी आहत कर डाला और मैं इस बातका सन्देह भी नहीं कर सका कि वीरा किस प्रकृतिकी स्त्री थी। हाँ, अन्तिम क्षण तक मौन धारण किये रहना वह अवश्य जानती थी। जिस समय मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं उसे प्यार करता हूँ—एक विवाहित स्त्रीको प्यार करता हूँ—उसी क्षण मुझे वहाँसे भाग जाना चाहिए था, किन्तु मैं ठहरा रहा, और वह सुन्दर जीव खण्ड-खण्ड होकर नष्ट हो गया! अब मैं अपनी करनीको हताश होकर देख रहा हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि श्रीमती अल्टसव अपनी लड़कीके विषयमें बहुत सावधान थीं। अन्तिम समय तक उन्होंने अपनी लड़कीकी निगरानी की और उसके भूलके मार्गपर प्रथम पैर रखते ही वह उसे उठाकर अपने साथ क़ब्रमें ले गईं!

अब इस पत्रको समाप्त करनेका समय आ गया है। मुझे जितना कहना चाहिए था, उसका शतांश भी मैंने नहीं कहा, किन्तु जो कुछ मैंने कहा है, वही मेरे लिए पर्याप्त है। मेरे अन्तरमें जो सब भाव प्रोल्लसित हो उठे थे, वे अब फिर हृदयके अन्तःस्तलमें ही विलीन हो जायँगे। उपसंहारमें मैं तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि गत वर्षोंके अनुभवसे मैंने जो विश्वास प्राप्त किया है, वह यह है कि जीवन हँसी-खेल या आमोद-प्रमोदकी वस्तु नहीं है और न जीवन भोगकी ही वस्तु है। जीवन कठोर परिश्रम है। त्याग—अनवरत त्याग—ही इस जीवनका रहस्यपूर्ण अर्थ है, इस समस्याका समाधान है। मनुष्यकी चिर-पोषित महत्त्वाकांक्षाएँ एवं कल्पना-तरंगें कितनी ही महान् क्यों न हों, किन्तु उनकी पूर्ति नहीं, बल्कि कर्तव्यकी पूर्ति ही मनुष्यके जीवनका लक्ष्य होना चाहिए। बिना अपनेको कर्तव्यरूपी लौह-शृंखलासे आबद्ध किये मनुष्य अपने जीवनके अन्त तक बिना किसी पतनके पहुँच नहीं सकता, किन्तु युवावस्थामें हम सोचते हैं कि जितना ही स्वतन्त्र रहा जाय, उतना ही अच्छा है, उतनी ही आगे चलकर हम उन्नति करेंगे। युवावस्थामें इस प्रकारका सोचना क्षन्तव्य हो सकता है, किन्तु आख़िर जब कठोर सत्य आँखोंके सामने प्रकट हो जाता है, उस समय अपने आपको धोखा देना बहुत बुरा है।

× × × ×

प्रणाम! पहले ज़मानेमें मैं इसके साथ-साथ इतना और जोड़ देता था कि ख़ुश रहो, किन्तु अब मैं तुमसे कहता हूँ कि ज़िन्दा रहनेका प्रयत्न करो। जीवन-धारण उतना सहज नहीं है, जितना कि मालूम पड़ता है। मेरे विषयमें शोककी घड़ियोंमें नहीं, वरन् ध्यानकी घड़ियोंमें, विचार करो और अपने हृदय-पटपर वीराकी विशुद्ध निष्कलंक मूर्तिको निरन्तर अंकित रखो। एक बार फिर प्रणाम!

तुम्हारा

....

समाप्त

अनुवादक—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बी० ए०, बी० एल०



गुड़गाँवमें ग्राम-सुधार

[लेखक :—प्रो० जीवनशंकर याज्ञिक, एम० ए०]

गुड़गाँव पंजाब-प्रान्तका एक दक्षिणी ज़िला है, जो दिल्लीकी सीमासे लगा हुआ है। ज़िलेमें लगभग चौदह सौ गाँव हैं, और उसकी आबादी सात लाख है। मेव, अहीर, गूजर, राजपूत, ब्राह्मण आदि वहाँ बसते हैं, और उनकी दशा वैसी ही थी, जैसी उत्तर भारतके अन्य ग्रामवासियोंकी होती है।

ज़िलेके सौभाग्यसे दस वर्ष हुए कि मिस्टर ब्रेन डिप्टी-कमिश्नर होकर वहाँ पहुँचे, और उन्होंने अपनी मेम साहबाके साथ मिलकर ज़िलेकी रियायाकी दशा सुधारनेका बीड़ा उठाया। बड़े ही परिश्रम और लगनसे दोनोंने काम किया, जिसका परिणाम यह हुआ है कि गुड़गाँव ज़िलेके गाँव बहुत बातोंमें आदर्श गाँव बन गये हैं, और सब तरहसे वहाँ कायापलट हो गई है। ब्रेन साहबने अपनी कार्य-प्रणाली बतानेके लिए दो पुस्तकें * लिखी हैं, उन्हींके आधारपर 'विशाल-भारत'के पाठकोंके लिए ग्राम-सुधार-सम्बन्धी कुछ बातोंका उल्लेख किया जाता है। एक पुस्तकका प्राक्कथन सर मालकम हेलीने लिखा है और दूसरीका लार्ड इरविनने।

यह सर्वविदित बात है कि भारतवर्षमें ६६ फ़ी-सदी प्रजा खेती-बारीके आश्रयसे निर्वाह करती है, और बहुत बड़ी जनसंख्या गाँवोंमें रहती है। हमारे देशकी उन्नति ग्राम-वासियोंपर निर्भर है। यदि वे सुखी और सम्पन्न हो जायँ, तो देशकी दशा सुधरी समझिये। इस समय उनकी दशा जैसी है, वह संसारसे छिपी नहीं। कोई देश भूमण्डलपर इतना निर्धन नहीं, कहींकी प्रजा इतनी दुःखी और असहाय नहीं, जैसी यहाँकी है। जो प्रजाके कष्ट हैं, वे भी सबको मालूम हैं, और सुधारके उपाय भी कोई खोज निकालने हों, सो भी बात नहीं। सब अनर्थकी जड़ एक है। जिसके पास सत्ता है, वह कुछ करनेको तैयार नहीं और जो कुछ करना चाहते हैं, उनके पास न तो धन है, न अधिकार।

शिक्षित भारतवासियोंपर प्रायः यह दोष लगाया जाता है कि वे अपने ग़रीब किसानोंका दुःख-दर्द कभी नहीं सोचते। अपने स्वत्वोंकी रक्षाके लिए सरकारसे झगड़ते हैं, परन्तु दीन-दुःखी किसानोंका उनको ध्यान ही नहीं। सरकार ही ग़रीब प्रजाकी रक्षक है। ऐसी बात हम लोग रोज़ ही सुना करते हैं। यह तो मानी हुई बात है कि पढ़े-लिखे भारतवासियोंको वह अधिकार अब तक प्राप्त ही नहीं, जिनके द्वारा वे अपने देश और प्रजाकी उन्नति कर सकें, परन्तु सरकार प्रजाकी हिमायतमें दम भरे, यह भी न्याय-संगत नहीं है। देशोंमें शासकवर्ग प्रजाहितके जो कार्य करते हैं, उनमें से कौन-कौन भारत-सरकारने किये हैं और अब कर रही है? निष्पक्ष होकर यदि देखें, तो सरकारकी उदासीनताके कारण ही आज देशकी दुर्दशा

* 'Village Uplift in India' & 'Socrates in an Indian village', by F.L. Brayne, M.C., I.C.S.

हो रही है। शिक्षित-समुदाय और किसान प्रजामें मनमुटाव उत्पन्न करनेके चाहे जितना प्रयत्न किया जाय, लोग समझ ही लेंगे कि अपने कौन हैं और बेगाने कौन हैं। अब असली बातके जाननेमें अधिक समय न लगेगा।

जो कार्य ब्रेन साहबने गुड़गाँवमें किया, उसी प्रकार अन्य ज़िलोंमें माई-बाप कहलानेवाले हाकिमोंने क्यों नहीं किया? यदि ब्रेन साहबको सफलता हुई, तो औरोंको भी हो सकती थी। एक प्रकारसे देखा जाय, तो गुड़गाँवने सरकारी अन्यत्र अकर्मण्यताको प्रत्यक्ष कर दिखाया है।

ब्रेन साहबने ग्राम-सुधारके किसी एक पहलूपर ही विचार नहीं किया, प्रजाकी उन्नतिके सभी साधनोंपर ध्यान रखकर कार्य आरम्भ किया, इसीलिए उनको आशातीत सफलता हुई, और जैसा कि उनका कहना है कि उन्होंने एक नवीन भारतकी नींव गुड़गाँवमें डाल दी है। सबसे पहला काम उन्होंने यह किया कि साधारण किसानके मनमें यह बात बैठाई कि उसकी दशा अवश्य सुधर सकती है, और रोग, मरी, अकाल आदि जो उसके शत्रु हैं, वे कोई भी अपने बूतेसे बाहर नहीं है। यदि वह कमर कसके तैयार हो जाय, तो बहुतसी विपत्तियाँ वह स्वयं दूर कर सकता है। अतएव किसानोंको उन्नतिकी आशा दिलाना ही कोई छोटी बात नहीं थी, परन्तु उससे कठिन था उन्हें साधन बताना और उनके अनुसार उनके जीवनको बिलकुल बदल देना। ब्रेन साहबने यह भी सफलता-पूर्वक कर दिखाया।

उन्होंने बड़े ज़ोरोंसे गाँवोंमें आन्दोलन कराया। हँसी-मज़ाकसे और ढंगसे बातचीत कर गाँववालोंको यह जता दिया कि सब बातें उनकी भलाईके लिए की जा रही हैं। इस प्रकार उत्साहितकर किसानोंकी मदद हासिल कर ली। गाने बनवाकर किसानोंको सुनाये गये, सिनेमाकी तसवीरें दिखाई गईं और जो शिक्षा देनी थी, वह आनन्दसे दी जाने लगी। ग्राम-जीवनकी कोई भी बात ऐसी नहीं थी, जिसके सम्बन्धमें भले-बुरेका विचार किसानोंके मनमें पैदा न कर दिया गया हो।

जब एक बार उन्नतिकी धुन सवार हो जाती है, तो उपाय सहज मिल जाते हैं, और उत्साहके कारण कार्य भी सरल हो जाता है। मुख्यतः ग्रामवासियोंको बीमारीसे बचनेका उपाय मालूम होना चाहिए। बहुतसी बीमारियाँ—विशेषकर संक्रामक रोग—हमारी अज्ञानतासे फैलते हैं। यदि साधारण सफ़ाईका ध्यान रखा जाय, तो जीवनमें आनन्द आता है और रोगोंसे बचना सहज हो जाता है। सन्तान-रक्षा भी तभी हो सकती है, जब स्वास्थ्य-सम्बन्धी साधारण बातोंका ज्ञान लोगोंको हो। ब्रेन साहबने सबसे अधिक ज़ोर गाँवकी सफ़ाईपर दिया और स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंकी भी शिक्षा दी। सन्तान पालनके नियमोंका ख़ूब प्रचार किया और दाई, डाक्टर आदिकी मददका भी पूरा प्रबन्ध किया। नव-जात शिशुओंके पालनकी शिक्षा माताओंको पूरे तौरसे दी गई। गाँवोंमें से घूरे एकदम दूर कर दिये गये, कूड़ा-करकट जो गाँवमें गन्दगी और बीमारीका कारण होता था, उसकी अच्छी खाद बनानेकी शिक्षा दी गई। गोबरके उपले बनाना बिलकुल रोक दिया गया और गाँवका सब गोबर खादके काममें आने लगा। स्त्रियोंकी सामाजिक दशा सुधारनेमें कोई बात उठा नहीं रखी गई। लड़के और लड़कियोंको समानरूपसे शिक्षा देना कर्तव्य है, यह ग्रामवासियोंको समझाया गया, और जगह-जगह शिक्षाका प्रबन्ध कर दिया गया। लोग स्त्रियोंकी इज़्ज़त करना सीख गये और उन्हें गृहस्थीको सुखी रखनेकी छोटी-बड़ी अनेक बातें सिखाई गईं। दिन-रात कड़ी मेहनत स्त्रियोंसे ली जाय, तो शिशु-पालन और घरको साफ़-सुथरा रखनेका काम कौन करे? मतलब यह कि घरेलू जीवनपर भी ब्रेन साहबकी शिक्षाका पूरा असर पड़ा। स्त्रियाँ सीना, पिरोना आदि सीखकर अपनेको विशेष उपयोगी बना सकीं।

इसी प्रकार बहुतसे रीति-रिवाज जो समाजको हानिकर हैं, उनपर भी आघात किया गया। बच्चोंके लिए चाँदी-सोनेके गहने इतने आवश्यक नहीं, जितनी कि मच्छड़से बचानेके लिए एक मसहरी। विवाह आदिमें बहुतसा रुपया

उधार लेकर ब्याह करनेमें घरकी इतनी शोभा नहीं, जितनी कि साफ़-सुथरा घर रखनेमें और बालक-बालिकाओंको उपयोगी शिक्षा देनेमें। सुधार एकांगी नहीं हो सकता, इसीलिए ब्रेन साहब और उनके साथी कार्यकर्ताओंने सभी ओर ध्यान दिया और यथाशक्ति ग्रामीण जीवनको सुख-शान्तिमय बनानेकी चेष्टा की।

इसका परिणाम यह हुआ है कि गुड़गाँव ज़िलेमें गाँवोंके घर साफ़-सुथरे हैं, जिनमें हवा और रोशनीका पूरा प्रबन्ध है। फूल-पत्ती भी घरोंमें लगी हुई हैं। बच्चे भी अच्छी तरह रखे जाते हैं, मैले-कुचैले या मिट्टीमें सने हुए बालक आपको वहाँ देखनेको भी नहीं मिलेंगे। गाँवमें कहीं बदबूका नाम भी नहीं है। लोगोंको फ़ुरसत भी मिलती है, स्त्रियाँ भी प्रसन्न हैं और घरकी तथा बच्चोंकी सफ़ाईका उन्हें अभिमान है। शिक्षाका प्रबन्ध बालक, बालिकाओं और स्त्रियोंके लिए भी हो गया है, तथा स्त्रियोंको घर-सम्बन्धी सभी बातें सिखाई जाती हैं। स्काउटिंगमें भी लड़के ख़ूब तेज़ हैं और लड़कियोंके लिए खेल इत्यादिका सुभीता कर दिया गया है। सामाजिक जीवन एक तरहसे बिलकुल बदल गया है। हुक्का गुड़गुड़ाते अपने भाग्यको कोसनेवाले आपको वहाँ न दीख पड़ेंगे। सब अपने काममें लगे हुए हैं और कामसे छुट्टी पाकर मनोरंजनके लिए भी कुछ समय उनको मिल जाता है। उन्नतिकी उमंग है। सब उत्साहसे काममें जुटे रहते हैं।

यह तो हुई गाँवमें आबादीकी बात। जब तक खेतोंकी उपज न बढ़ाई जाय, तब तक किसानोंकी आर्थिक दशा सुधारना असम्भव है। मवेशी अच्छे होने चाहिए। उनकी नस्ल अच्छी हो, तभी वे पूरा काम कर सकते हैं। इसके लिए समुचित प्रबन्ध किया गया है। निर्जीव बैल या और मवेशी बड़े महँगे पड़ते हैं। नस्लका सुधारना मुख्य काम है। फिर बीज भी साधारण बोया जायगा, तो उपज भी वैसी ही होगी। अच्छे बीजका भी इन्तज़ाम किया गया, और कबीलोंको बोकर काश्तकारोंने उपज बढ़ाई। वे इस बातको जानते तो थे कि बीज बढ़िया होना चाहिए, परन्तु उसको प्राप्त करनेकी सुविधा उनको नहीं थी। व्यवस्था कर दी गई, तो उसका लाभ किसानोंने अच्छी तरह उठाया। पानीके लिए किसानको बड़ा मोहताज रहना पड़ता है। नई चालके रहट लगाकर यह भी सुविधा कर दी गई। इसका चलाना आसान है और थोड़े मवेशीसे काम निकल आता है। खादके लिए गढ़े बनाये गये हैं। आबादीमें अब कोई गन्दगी नहीं, बदबू नहीं और खेतोंके लिए सहजमें खाद तैयार हो जाता है। गोबर पाथा नहीं जाता, न लीपने-पोतनेके काममें आता है। उसकी पूरी रक्षा की जाती है और खेतोंमें खादका काम देता है। नये कुए बनाये गये हैं और पुरानोंमें नल डालकर पानी बढ़ाया गया है। नई चालका हल किसानोंको दिया गया है, जो अच्छी गहरी जुताई करता है। खेतीको नाश करनेवाले चूहे आदि जानवरोंसे खेतोंकी रक्षाका पूरा उपाय काममें लाया जाता है। इन सब बातोंसे किसानको अब यह कहनेका अवसर नहीं मिलता कि ज़मीन बोदी है, इसलिए उपज अच्छी नहीं होती। किसान और ज़मींदार समझ गये हैं कि उनको यदि हानि होती है, तो क़सूर परमेश्वरका नहीं है, बल्कि उन्हींकी भूल और लापरवाही है। जहाँ जहाँ जगह मिली है, बड़े-बड़े पेड़ लगाकर जंगल बनाया गया है, जिससे कि वर्षा अधिक हो। जहाँ घने जंगल होते हैं, वर्षा अच्छी हुआ करती है।

सहयोग-समितियाँ और बैंक भी बहुतसे खोले गये हैं, जिससे किसानोंको कड़ा ब्याज देकर बनियेसे रुपये न लेना पड़े और वे फ़िज़ूलख़र्चीसे बच सकें। सहयोग ही एक मूल-मन्त्र है, जिसके द्वारा किसान अपनी पूरी भलाई कर सकते हैं और आपसमें मिलकर अपनी आर्थिक दशा सहजमें सुधार सकते हैं। ब्रेन साहबने सहयोग बैंक आदिकी ख़ूब वृद्धि की है। यदि इतना ही काम हो गया होता, तो किसानोंको आत्म-विश्वास हो जाता, उनकी उन्नतिमें कोई बाधा न रह जाती। देश-भरमें सरकार सहकारिता चाहती है,

परन्तु उसको यथेष्ट सफलता नहीं मिल रही है। गुड़गाँवमें जो बात हो सकती है, और शासक तथा प्रजा मिलकर जो काम कर सकते हैं, वह देशमें अन्यत्र भी हो सकती है।

स्त्रियों और बालकोंको उचित शिक्षा दी जाय और किसानोंको अपनी कृषि-सम्बन्धी आवश्यक बातोंकी जानकारी हो, तो फिर गांवमें शहरोंसे भी बढ़कर आनन्दमय जीवन बिताया जा सकता है। जहां सफाई हो, रोगसे बचने और आरोग्यता लाभ करनेके साधन हों, अपनी मेहनतका फल अपने अधीन हो और आत्म-विश्वास एवं दृढ़तासे काम करनेका उत्साह हो, वहां क्या नहीं हो सकता।

ब्रेन साहबने वही कर दिखाया, जो बहुत लोग करना ठीक समझते थे। हाकिमोंको जो काम करनेका अवसर है, उसका उपयोग ब्रेन साहबने कर दिखाया है।

जिस ढंगसे ब्रेन साहब काम करते थे और गांववालोंको उनकी दुर्दशासे उद्धार करनेका उपाय बतलाते थे, वे सब बातें 'देहाती सुक़रात' में लिखी हैं। ब्रेन साहबका तरीक़ा यह था कि गांवमें जाकर लोगोंसे हिल-मिलकर बातें करना। लोगोंसे सवाल करना और उनके जवाब लेना। जो उत्तर गांववाले दें, उन्हींसे दिखा देना कि उनकी राय कितनी निर्मूल हैं, वे कैसी भूलें करते हैं, और ऐसे काम रोज़ करते हैं, जिनसे उनकी दरिद्रता बढ़े और अवनति होती चली जाय। बातों ही बातोंमें उनको क़ायलकर, धीरे-धीरे उनको उन्नतिका मार्ग दिखाकर, सहारा देकर उसपर चलनेके लिए पीछे पड़ जाते थे। जो युक्ति ग्रीक लोगोंको समझाने-बुझानेके लिए सुक़रात काममें लाया था, उसीका अनुकरण ब्रेन साहबने कर दिखाया है। सुक़रात लोगोंसे प्रश्न किया करता था, और फिर जिरहकर उनके विश्वास और आचरणको निर्मूल और नीति-विरुद्ध साबितकर उनकी भूल प्रत्यक्ष दिखाकर क़ायल कर देता था। 'देहाती सुक़रात' में ग्राम-जीवनके हर पहलूपर सवाल-जवाब है। कहा जाता है कि वास्तवमें असली वार्तालाप पुस्तकमें संग्रहीत है। खेती-बारी, गांवके जानवर और मवेशी, रोग, स्त्रियोंके प्रति उचित व्यवहार आदि सभी बातोंपर विचार किया गया है। ब्रेन साहब हुक्केको काहिलीका साक्षात् अवतार समझते हैं, और यह बात ठीक भी जँचती है। उसके धुँऐसे मानो किसानोंकी बुद्धिपर बादल छा जाते हैं और अकर्मण्यताका नशा उन्हें धर दबाता है। ब्रेन साहबकी बातोंका चाबुक असर किये बिना नहीं रहा। लोगोंका जीवन ही बदल गया। जहां भाग्याधीन बैठे रहनेकी आलस्यमय आदत पड़ गई थी, वहां लोगोंको अपना उद्धार अपने ही हाथोंमें मालूम हो गया।

अब नुमायशें होती हैं, हल-दौड़की होड़ बदी जाती हैं और सबसे अच्छे जोतनेवालेको इनाम बांटे जाते हैं। ब्रेन साहबके नामके गीत बनाये हुए हैं, और किसानोंकी मण्डली उनको भजनकी तरह गाकर प्रचार-कार्य करती है।

एक बात निश्चय है कि ब्रेन साहब यदि हाकिम ज़िला न होते, तो यह सब काम होना नामुमकिन था। उन्होंने इस बातको स्वयं माना है कि सरकारी और ग़ैर-सरकारी लोगोंसे जो उन्होंने काम लिया, उसका कारण यही था कि वे ज़िलेके हाकिम थे। उनकी जगह कोई दूसरा आदमी सफलतासे कार्य नहीं कर सकता था। हम तो समझते हैं कि कोई हिन्दुस्तानी ज़िलेका हाकिम होता, तो वह भी ऐसा नहीं कर सकता था। कारण स्पष्ट है। सरकारने जो मदद ब्रेन साहबको दी, वह और किसीको नहीं मिल सकती थी। उनको काम करानेके लिए अपने मातहतोंकी फ़ौज मौजूद थी। किसी ग़ैर-सरकारी आदमीके पास यह सब साधन कहां? फिर रुपयेका बन्दोबस्त भी ब्रेन साहब सहजमें कर सके। हमने सुना है कि गुड़गांवके ज़िला-बोर्डपर ब्रेन साहब आठ-दस लाखका ऋण छोड़ गये हैं। यदि यह बात सही है, तो हम समझ सकते हैं कितने हाकिम ऐसे हैं, जो किसी बोर्डपर इतना ऋण-भार लाद सकते हैं और सरकार चुप बैठी रहे! ऐसी भारी रक़म किसी उत्साही आदमीको एक ज़िलेमें काम करनेके लिए दे दी जाय, तो फिर देशकी दशा सुधरनेमें कुछ देर न लगेगी। ग़ैर-सरकारी ज़िम्मेवार आदमी

भी कितने ही मिल सकते हैं, जो इस कामको अपने-अपने ज़िलोंमें उठा लें, परन्तु यह सब होना तो तभी सम्भव है, जब सरकार या सरकारी हाकिम चाहें। भारत-सरकार प्रजा-हितका दावा करती है, तो फिर गुड़गाँवका-सा काम सभी जगह आरम्भ करा देना चाहिए।

दो-एक बातें और भी खटकती हैं, गुड़गाँव अब इस बातका उदाहरण बना लिया गया है कि सरकार प्रजाकी कैसी सेवा करती है, और आन्दोलनकारी देशवासी कैसे स्वार्थी और प्रजाके प्रति कैसे उदासीन हैं। इस बातका खूब ढोल पीटा जा रहा है। यहाँ तक कि ब्रेन साहबने इंग्लिस्तान और अमेरिकामें जाकर व्याख्यानोंमें बताया है कि उन्होंने कैसा काम किया और सुधारसे पहले गुड़गाँवकी प्रजा कैसी जाहिल थी, स्त्रियां तो केवल उपले थापना जानती थीं। विलायतवासी गणयमान भारतवासियोंको ब्रेन साहबके व्याख्यानोंका प्रतिकार करना पड़ा था। दूसरी बात यह है कि सुधार-कार्य बिना हाकिमोंके हस्तक्षेपके अब चलता रहेगा या नहीं? हमको तो आशा है कि उसमें कोई बाधा न पड़ेगी, किसान अपना हित जानता है। यदि बेबसी नहीं है, तो अपने हितकी बातको क्यों छोड़ने लगा। ब्रेन साहब रोमन लिपिके पक्षपाती हैं। इस बातमें उनसे सहमत होना हमारे लिए असंभव है। और ज़िलोंमें भी इसी प्रकार कार्य करनेकी आवश्यकता है, और साथ-ही-साथ ग़ैर-सरकारी लोगोंको वह सुविधा मिलनी चाहिए, जिससे यह कार्य उनके द्वारा हो, सरकारी अफसरोंका हस्तक्षेप आवश्यकतासे अधिक न हो।

दो बातोंकी कमी ब्रेन साहबकी कार्य-प्रणालीमें हमको मालूम होती है। एक तो है चर्खेका प्रचार। यह काम सहजमें हो सकता है। बेकारीकी कमी होगी और देशी कपड़ा तैयार हो सकेगा। दूसरी बात धर्म-शिक्षाकी है। गांववालोंको अपने धर्मका साधारण ज्ञान अवश्य होना चाहिए। कथा-वार्ता आदिसे यह बात सहजमें हो सकती है। ब्रेन साहबको ये दोनों बातें पसन्द न आवें, तो कोई आश्चर्य नहीं, जब कि देशवासी अपने ग्राम-सुधारके कार्यको ले सकेंगे, तभी यह कमी पूरी होगी।

ब्रेन साहबके हम कृतज्ञ अवश्य हैं, परन्तु यह माननेको तैयार नहीं कि ऐसे सुधारकी चेष्टा कहीं नहीं हुई। पंजाबमें दो-तीन जगह लोक-सेवाके भावसे काम किया गया था। हाकिम ज़िलाका जो प्रभाव होता है, वह और किसीका नहीं हो सकता, इसीलिए ब्रेन साहबको सरकारी मदद भी पूरी मिली। आज श्रीमती गान्धी और मीठु बहिन गुजरातके गांवोंकी सफ़ाई अपने हाथोंसे कर रही हैं और कोई काम ऐसा नीच नहीं समझतीं, जिसको अपने हाथोंसे करनेसे हिचकती हों। स्वराज्य प्राप्त होनेपर ही पूर्ण सुख और शान्ति हमारे असंख्य ग्रामवासियोंको प्राप्त होंगे। तब तक उनके देशवासियोंको सन्तोषजनक कार्य कर दिखाना असम्भव है। दोष परिस्थितिका है, न कि हमारा।

ग्रेट-ब्रिटेनकी सामाजिक सेवाएँ

[लेखक :—श्री विल्फ्रेड वेलाक, एम० पी०]

(विशेषत: 'विशाल-भारत'के लिए)

इससे पहले कुछ लेखोंमें मैं ब्रिटिश लेबर-पार्टी और ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन-आन्दोलनके विकासका वर्णन कर चुका हूँ। उन लेखोंमें यह प्रकट हो चुका है कि आजकल इस देशमें ब्रिटिश मज़दूरोंकी जो दृढ़ आर्थिक स्थिति है, उसे उन्होंने कैसे संघर्ष और लड़ाई-भिड़ाईके बाद प्राप्त किया है। इस उन्नतिके लिए अनेक साहसी आत्माओंको अभूतपूर्व वीरता प्रदर्शित करनी पड़ी है, और जनसाधारणको अकसर कठिन और लम्बी यातनाएँ भुगतनी पड़ी हैं। इन्हीं दोनों गुणोंने संसारमें मज़दूरोंके सबसे शक्तिमान और प्रभावशाली आन्दोलनोंका निर्माण किया है। इन आन्दोलनोंमें एक तो ट्रेड-यूनियन मज़दूर-संघ नामक बलशाली संगठन है—जिसे अब देशकी कोई भी गवर्नमेण्ट उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकती—और दूसरा लेबर-पार्टी है, जो अब इतनी शक्तिशाली हो चुकी है कि देशके शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले सके, और वह दिन भी दूर नहीं है, जब हाउस-आफ्-कामन्सकी अधिकांश सीटें उसीके सदस्योंसे भरी होंगी।

निःसन्देह यह बड़ी भारी सफलता है, मगर इसे प्राप्त करनेके लिए वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा है। सच पूछिये तो यह लड़ाई कई शताब्दियोंकी पुरानी है, हालाँकि ट्रेड-यूनियन और लेबर-पार्टीके आन्दोलनोंने एक शताब्दी पूर्व निश्चित रूप ग्रहण किया था।

परन्तु यह प्रश्न स्वभावत: उठता है कि सैकड़ों वर्षोंके संघर्ष और संगठनके बाद मज़दूरोंको इससे दरअसल क्या लाभ हुआ? उन्होंने उससे क्या फ़ायदा उठाया, और क्या उनकी संघर्ष और यातनाएँ उचित थीं?

साधारणत: इस प्रश्नका जवाब देनेसे सहल और कोई बात नहीं हो सकती, मगर देखा जाय, तो इस प्रश्नका जवाब देना बहुत मुश्किल है; क्योंकि मज़दूरोंको जो लाभ हुए हैं, वे बहुसंख्यक, नाना प्रकारके और सुदूर-व्यापी हैं।

पहली बात तो यह है कि यदि और किसी कारणसे न हो तो सिर्फ़ इसी कारणसे कि इस संघर्षने मज़दूरोंकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है, यह लड़ाई उचित थी। पुराने समयकी समस्त गुलामी, अमीरोंके आगे सिर झुकाना और दाँत निपोरना आदि—जो इस देशके सर्वसाधारणमें बहुत प्रचलित थे और किसी-किसी ज़िलेमें अब तक मौजूद है—एकदम गायब हो गये। साधारणत: आजकलके मज़दूरोंमें आत्म-प्रतिष्ठा है, समाजमें उनका स्थान है और सिर्फ़ कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रोंको—पिछड़े हुएसे मेरा मतलब राजनैतिक प्रगतिमें पिछड़े हुए स्थानोंसे है—छोड़कर वे लोग किसी प्रकार भी अमीरोंसे दबनेके लिए तैयार नहीं होते। यही नहीं बल्कि अमीरोंकी आमदनीके ज़रिये और उनके जीवन-यापनके तरीक़ोंका भंडा-फोड़ होनेसे अब मज़दूरोंके बीचमें उनकी इज़्ज़त बहुत कम रह गई है। इसका फल यह है कि मज़दूर लोग अब देशको निश्चित रूपमें डिमाक्रेटिक (प्रजातन्त्रवादी) देश समझते हैं। वे अब यह समझते हैं कि देशकी समस्त सम्पत्ति और उनके उत्पादनके उपाय—यद्यपि उनका वितरण इस समय चाहे कैसा ही क्यों न हो—सम्पूर्ण राष्ट्रकी भलाईके लिए हैं।

दूसरी बात यह है कि पहलेकी अपेक्षा आजकल मज़दूरोंकी नौकरियाँ बहुत अधिक सुरक्षित हैं। साठ-सत्तर वर्ष पूर्वकी बात तो दूर रही, केवल बीस वर्ष पहलेकी अपेक्षा आजकल ट्रेड-यूनियनके संगठन और फैक्टरी-क़ानूनकी बदौलत मज़दूरोंका वेतन और उनकी अवस्था इतनी अधिक अच्छी है कि उसकी तुलना नहीं हो सकती।

परन्तु वर्तमान लेखमें मैं इस विशेष विषयके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना चाहता। इस लेखमें मेरा विचार उन सामाजिक सुविधाओंके वर्णन करनेका है, जो पार्लामेन्टके 'सामाजिक' क़ानूनोंसे प्राप्त हुई हैं। इन क़ानूनोंका उद्देश्य

प्रत्येक प्रकारसे मज़दूरों और उनकी सन्तानोंके जीवनकी रक्षा करना है। ये सामाजिक सेवाएँ अब इतनी बहुसंख्यक, इतनी विस्तृत और इतनी दूर-व्यापी हो गई हैं कि यदि उन्हें एकत्रित रूपमें देखिये, तो आपको चकित हो जाना पड़ेगा। इनमेंसे बहुत-सी तो उस समयसे ही आरम्भ हुई थीं, जब लेबर-पार्टीको राजनैतिक शक्ति प्राप्त नहीं हुई थी, परन्तु जबसे लेबर-पार्टीने सिर उठाया और उसके एक राष्ट्रीय शक्ति बननेके लक्षण दिखाई देने लगे, तबसे मज़दूरोंकी माँगोंपर गम्भीरता-पूर्वक ध्यान दिया जाने लगा और सामाजिक क़ानूनोंके लिए एकदम नये मार्ग निकाले जाने लगे। जब लेबर पार्टीने हाउस-ऑफ-कामन्समें चौंतीस स्थान प्राप्त किये—जैसे, महायुद्धके ठीक पहले—तब अन्य दलवालोंको यह मालूम हो गया कि आगे क्या होनेवाला है। उन्हें यह प्रत्यक्ष हो गया कि वे लेबरकी माँगोंपर ध्यान नहीं देंगे, तो वे मज़दूर-श्रेणीके अनेकों वोटरोंको खो बैठेंगे, इसलिए वे लोग सामाजिक क़ानूनोंमें अग्रसर होने लगे; मगर लेबर-पार्टीकी माँगें ऐसी तेज़ीसे बढ़ने लगीं कि अन्य दलवालोंकी समस्त चेष्टाओंके होते हुए भी वे उनके साथ न रह सके। फल यह हुआ कि उन लोगोंको एकके बाद दूसरी हार उठानी पड़ी।

किसी भी व्यक्तिको, जिसमें कुछ भी अन्त:दृष्टि है, यह मानना पड़ेगा कि आधुनिक उद्योगवादके कारण आजकल जो परिवर्तित सामाजिक अवस्था उत्पन्न हुई है, उससे मज़दूरोंको आर्थिक नपुंसकता और निकृष्ट श्रेणीकी औद्योगिक गुलामीसे बचानेके लिए हमारे सामाजिक संगठनमें बड़े भारी परिवर्तनकी आवश्यकता है। यह तो सभी मानते हैं कि संसार इस समय परिवर्तनके युगमें से गुज़र रहा है। परिवर्तन जीवनका मूल मन्त्र है, मनुष्य और सामाजिक संगठन कोई भी इस नियमके अपवाद नहीं हैं।

यद्यपि यह ज्ञान हमारे हृदयोंमें है, परन्तु अकसर वह इतनी गहराईपर होता है कि हम उसे भूल जाते हैं। यही नहीं, बल्कि कभी-कभी जीवनके कठिन तथ्योंका सामना करने और परिवर्तित अवस्थाको स्वीकार करनेके बजाय हम उपर्युक्त ज्ञानसे ही इनकार कर जाते हैं।

औद्योगिक संगठनके किसी एक नये नियमसे हमारे सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धोंके नवीन पुनर्संगठनकी ज़रूरत पैदा हो सकती है। औद्योगिक संगठनके नये नियम एक नवीन सामाजिक पद्धति और नूतन सामाजिक नीतिकी आवश्यकता पैदा कर सकते हैं।

भापकी शक्तिका ज्ञान होना आरम्भमें एक साधारण और मामूली घटना ज्ञात हुई होगी, परन्तु एक साधारण कारीगरकी क्षुद्र झोपड़ीमें उत्पन्न होनेवाले इस आविष्कारने शायद संसारमें सबसे अधिक सामाजिक उथल-पुथल कर डाली है। उसने संसारकी सामाजिक रूढ़ियों और धर्म-प्रणालियोंको जितना तोड़ा-फोड़ा है, उतना शायद इतिहासकी किसी भी एक घटनाने नहीं तोड़ा-फोड़ा। उसने उद्योग-क्षेत्रसे छोटे छोटे स्वत्वाधिकारियोंको निकाल बाहर किया है। अभी तक मनुष्य अपने करघेपर या अपने औज़ारोंसे स्वतन्त्र रूपसे काम करता था, परन्तु इस आविष्कारकी बदौलत अब उसे अपने मालिकके लिए काम करना पड़ता है, और किसी हद तक उसे अपने मालिककी दयाका भिखारी रहना पड़ता है। इस प्रकार मज़दूर लोग जनसाधारणसे अलग होकर अधिकाधिक संख्यामें बढ़ने लगे। कारखानेवालोंके ये गिरोह जैसे-जैसे संख्यामें बढ़ते गये—जो बादमें लिमिटेड कम्पनीके रूपमें परिणत हो गये और उसके बादमें आजकल ट्रस्ट और 'Combine' का रूप ग्रहण कर रहे हैं—वैसे-वैसे मज़दूरोंका महत्व भी बढ़ता गया। अब यदि कोई मज़दूर अपने कामसे निकाल दिया जाता था तो वह बिलकुल निस्सहाय हो जाता था। यदि सामूहिक उत्पादनके कारण या खपतसे अधिक उत्पादनके कारण कारखानोंमें कामकी कमी हुई, तो उस बेचारेको सहायता और मददके लिए कोई स्थान न रह जाता था। वह एकदम निरालम्ब हो जाता था और भीख माँगनेके सिवा—जिसे वह कभी गवारा नहीं करता—उसे और कोई चारा नहीं रह

जाता था। औद्योगिक संसारके इसी परिवर्तनकी बदौलत पिछले पचास-साठ वर्षोंमें न मालूम कितनी लड़ाइयाँ, हड़तालें, तालाबन्दी और बगावतें आदि हुईं।

सौभाग्यसे हमारे मज़दूर-संगठन भी ऐसी काफ़ी तेज़ीसे बढ़ते गये कि वे क़ानून आदिकी सहायतासे मज़दूरोंके लिए समुचित सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करनेमें समर्थ हो सके। उन्होंने विधवाओं और बुड्ढोंकी पेंशन, बीमारी और बेकारीका बीमा, निरालम्बोंकी सहायता, स्कूलके बच्चोंको जलपान और उनकी डाक्टरी देख-भाल आदिकी व्यवस्था कराई। उन लोगोंकी ये कृतियाँ किसी तरह भी ओछी नहीं कही जा सकतीं, हालाँ कि उनसे वे सन्तुष्ट नहीं हैं, जैसा कि वर्तमान लेबर-गवर्मेन्टसे प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है।

हमारी हेल्थ-सर्विसकी कुछ सफलताका अन्दाज़ इन आंकड़ोंसे प्राप्त होगा। सन् १८८१ में ग्रेट ब्रिटेनकी आबादी दो करोड़ पंचानबे लाख मनुष्योंसे बढ़कर सन् १६२७ में चार करोड़, चालीस लाख हो गई; परन्तु इसी समयके बीच यहाँकी मृत्यु संख्या १६.५ सहस्रसे घटकर १२.५ प्रति सहस्र रह गई, केवल यही बात हमारी सर्विसके प्रभावशाली होनेका काफ़ी प्रमाण है। आजकल देश-भरमें मातृत्व और शिशु-मंगल (Maternity & child welfare) के केन्द्र खोले जा रहे हैं। वे लोकल गवर्नमेन्टके अधिकारमें हैं और उन्हें सरकारसे सहायताकी 'ग्रांट' मिला करती है। पार्लामेंटके एक नये क़ानूनने प्रत्येक स्थानके लिए इन केन्द्रोंका खोलना अनिवार्य कर दिया है। उसने म्यूनिसिपैलिटियोंका यह कर्तव्य बना दिया है कि वे अपनी सीमाके भीतर मातृत्वके लिए समुचित स्थानका बन्दोबस्त करें। इसके अलावा स्कूलके लड़कोंका डाक्टरी निरीक्षण भी अब बहुत ऊँचे ढंगका होने लगा है। गत वर्ष बीस लाखसे अधिक लड़कोंकी देख-भाल की गई थी।

इसके अतिरिक्त संस्कृतिके प्रसार और मज़दूरोंके जीवनका स्टैन्डर्ड बढ़नेसे वे लोग अब मनुष्योंके जीवनका मूल्य समझने लगे हैं और इसीलिए लोगोंके कुटुम्बोंका आकार घटने लगा है। माता-पिता अब यह समझने लगे हैं कि आठ-सात बच्चोंके बड़े कुटुम्बको अस्तव्यस्त और बुरी दशामें पालन करनेकी अपेक्षा दो-तीन बच्चोंके कुटुम्बका अच्छी तरह पालन-पोषण करना अच्छा है। फल यह है कि सन् १८८१ में हमारे यहाँ पैदाइशकी संख्या ३२.६ प्रति सहस्र थी, परन्तु सन् १६२७ में वह घटकर १७.१ प्रतिसहस्र रह गई। गत वर्ष यहाँके प्रारम्भिक स्कूलोंमें बच्चोंकी हाज़िरीका औसत ५५, ६४,००० बालक प्रति दिन था। यहाँकी आबादीको देखते हुए निःसन्देह यह संख्या बहुत ऊँची है।

अच्छा अब ज़रा हमारी बीमेकी स्कीमोंको देखिये। प्रायः हमारे सब मज़दूरों और कारीगरोंको अनिवार्य रूपसे बीमा कराना पड़ता है। यह बीमा बीमारीका, विधवाओंका, बुढ़ापेकी पेंशनका और बेकारीका होता है। इस बीमेके लिए प्रत्येक मज़दूरकी मज़दूरीसे प्रति सप्ताह एक निश्चित रक़म काट ली जाती है और उतनी ही रक़म मिलके मालिकको अपने पाससे देनी पड़ती है तथा उतना ही धन सरकारसे मिलता है। जब कोई मज़दूर बीमार पड़ता है, तब उसे दस शिलिंग प्रति सप्ताह अपने लिए मिलता है। स्त्री-बच्चोंके लिए भत्ता इससे अलग होता है। बेकारीकी दशामें इससे अधिक मिला करता है। मज़दूरोंको डाक्टरी देख-भाल और दवा आदि मुफ़्त मिलती है। अधिकांश लोगोंके दाँतका इलाजभी मुफ़्त होता है और उन्हें नक़ली दाँत आदि भी मुफ़्त मिल जाते हैं।

इस प्रकारसे आजकल इंग्लैण्ड बेकारीके बीमेके लिए ४०,०००,००० पौंडके लगभग प्रति वर्ष ख़र्च करता है, मगर फिर भी अभी तक हमारे मज़दूरोंकी एक काफ़ी तादादका बेकारीका बीमा नहीं हो सका है। इसके अलावा बेकारीके अतिरिक्त दरिद्रताके और भी कारण हैं, इसलिए प्रति वर्ष लगभग ५५,०००,००० पौंड दरिद्र सहायक-फंडमें ख़र्च होते हैं। सन् १८८१ में इसी मदमें ६,०००,००० पौंड ख़र्च होता था।

यह संख्याएँ बड़ी लम्बी-चौड़ी हैं, पर उनसे यह

बात प्रकट हो जाती है कि यदि ये क़ानून न बनते, तो हमारे मज़दूरोंको आजकलकी औद्योगिक प्रणालीने कितनी तकलीफें और यन्त्रणाएँ पहुँचाई होतीं ? आजकल इस देशमें लगभग १२,०००,००० बीमा कराये हुए मज़दूर हैं, और इनमें से लगभग दस प्रति सैकड़ा बेकार हैं।

इसके साथ ही सरकार सत्तर वर्षसे अधिक आयुवाले व्यक्तियोंकी बुढ़ापेकी पेंशनमें प्रति वर्ष ३०,०००,००० पौंडसे अधिक खर्च करती है। उन्हें १० शिलिंग प्रति सप्ताह मिलता है। इन पेंशनोंके अतिरिक्त,—जिनमें मज़दूरोंको कुछ नहीं देना पड़ता—सरकार समस्त बीमा किये मज़दूरों और उनकी स्त्रियोंको ६५ वर्षकी आयुपर पहुँचनेपर पेंशन देती है। यह एक नई स्कीम है, जिसमें प्रति वर्ष १५,०००,००० पौंड व्यय होता है।

परन्तु इन सब बीमों आदिमें खर्च करनेके लिए किसी न किसीपर तो टैक्स लगाना ही पड़ेगा और वह भी भारी टैक्स, मगर यहाँ इंग्लैण्डमें हम लोग कहते हैं कि जो लोग अति धनाढ्य हैं, उनकी अधिकांश सम्पत्ति ग़रीबोंके पसीने और मेहनतसे उत्पन्न होती है, इसलिए सरकारका यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह इन धनाढ्योंपर टैक्स लगाये, जिससे मेहनत करनेवाले लोग समुचित आराम और सुरक्षासे रह सकें। बहुत समय नहीं हुआ, जब १५० पौंडसे अधिककी आमदनीपर ६ पेंस प्रति पौंडका टैक्स बहुत अधिक समझा जाता था, परन्तु ग्लैडस्टोन और डिज़रेलीकी आत्माओ ! आजकल उस समयका वह टैक्स चींटीके ग्रासके बराबर है। आजकलके टैक्सको सुनकर वे राजनीतिज्ञ क्या कहते ? आजकल अविवाहित पुरुषोंकी १८० पौंडसे अधिक वार्षिक आमदनीपर तथा विवाहित पुरुषोंकी २५० पौंडसे अधिक वार्षिक आमदनीपर ४ शिलिंग प्रति पौंड इनकम-टैक्स लिया जाता है। इसके अतिरिक्त २००० पौंडसे अधिक वार्षिक आयपर एक सुपर-टैक्स अलग लिया जाता है।

फिर हमारे यहाँ मृत्यु-कर है। यह कर बड़े-बड़े अमीरोंकी जायदादपर दाखिल-ख़ारिज कराते समय लगता है। इसका रेट जायदादके आकारके अनुसार भिन्न-भिन्न होता है, जो बहुत अधिक धनाढ्योंके लिए बहुत होता है। कुछ समय पहले एक करोड़पतिकी मृत्यु हुई थी। उसकी जायदादका मूल्य ४६,००,००० पौंड आँका गया था। उसमेंसे उसके उत्तराधिकारियोंको २०,००,००० पौंडसे अधिक मृत्यु-करमें देना पड़ा।

इस प्रकार इन मार्गोंसे चालू वर्षकी आमदनीका जो अनुमान लगाया गया है, उसकी भयावनी संख्याएँ इस प्रकार हैं :—

इनकम-टैक्ससे	··· ···	२३,६५,००,००० पौंड
सुपर-टैक्ससे	··· ···	५,८०,००,००० पौंड
मृत्यु-करसे	·· ···	८,१०,००,००० पौंड

इस लेखको समाप्त करनेके पूर्व मैं सन् १९१४-१५ और सन् १९२९–३० के समाज-सेवाके खर्चोंके तुलनात्मक आंकड़े देता हूँ। इससे आपको समाज-सेवाके कार्योंकी उन्नतिका कुछ आभास मिल जायगा। ये संख्याएँ लाख पौंडोंमें हैं :—

मद	१९१४-१५ लाख पौंड	१९२९-३० लाख पौंड
स्थानीय अधिकारियोंको दिया गया	८०	१४५
स्थानीय अधिकारियोंको नई सहायता	०	१५५
शिक्षा	१६५	४६७½
स्वास्थ्य	५	४१½
मज़दूरोंके मकानोंके लिए सहायता	०	१२७¾
रिफार्मेटरी स्कूल और पागलखाना	५	१२¾
काम लगानेकी स्कीमोंको सहायता	०	२०
बुढ़ापेकी पेंशन	१००	३५५
महायुद्धके आहतोंको पेंशन	०	५४०
विधवा-पेंशनमें सरकारी हिस्सा	०	४०
तन्दुरुस्तीके बीमेमें ,, ,,	५७½	६२½
बेकारीके बीमेमें ,, ,,	२½	१२०
	४१५	२०८७¾

इतना होते हुए भी हम लोगोंने अपने-समाज-सेवक-विभागमें उन्नतिका अभी तो श्रीगणेश ही किया है।

हड़ताल

[लेखक :—श्री कृष्णानन्द गुप्त]

हड़ताल बड़ी भयानक वस्तु है। बिलकुल छूतकी बीमारी और तपेदिककी तरह लाइलाज। इस देशके गोरे हकीमोंका कम-से-कम यही अनुभव है।

हड़ताल एक मानसिक रोग है। विचित्र प्रकारका। कुछ रोग होते हैं, जिनका निरन्तर अध्ययन करते रहनेसे कालान्तरमें विद्यार्थी स्वयं उनका शिकार बन जाता है। हड़ताल ऐसी ही चीज़ है। यदि आपको एक बार अपने आसपास इसके भयंकर कीटाणुओंकी उपस्थितिका सन्देह हो गया, और यदि आप उन आदमियोंमेंसे एक हुए, जिनपर इसका आक्रमण होता है, तो फिर लाख प्रयत्न करनेपर भी आप इसके सर्वग्रासी कवलसे अपनी रक्षा नहीं कर सकते।

अभी कलकी बात है। जी० आई० पी० रेलवेके कर्मचारियोंको हड़ताल हो गई। बीमारी बम्बईसे फैली। फिर क्या था? प्लेगकी चाल तो बहुत धीमी होती है, परन्तु हड़ताल एक ही दिनमें सर्वत्र फैल गई। कृपालु अधिकारी बड़े चिन्तित हुए, मगर बेचारे करते क्या? इस बीमारीके नामसे ही उनके यहाँके अच्छे-से-अच्छे तजुर्बेकार डाक्टरोंके हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं। फिर भी उन्होंने अपने आदमियोंको इस घातक बीमारीके चंगुलसे बचानेकी भर-सक कोशिश की। कर्मचारियोंको अपने आसपास इसके कीटाणुओंकी गन्ध न आने पावे, इस प्रयत्नमें उन्होंने अपना सारा कौशल और शक्ति खर्च कर दी। "अजी, पागल हुए हो! कहाँ है हड़ताल? हाँ, कहनेवाले झूठे। बिलकुल झूठे। कहीं नाम तक नहीं। फिर तुम क्यों हड़ताल-हड़ताल चिल्लाते हो? इसका खयाल करनेसे ही दिमाग खराब हो जायगा। फिर बे-मौत मर जाओगे। और अगर ज़िन्दा भी रहे, तो न घरके रहोगे, न घाटके। इसलिए इसका खयाल छोड़ो और मज़ेसे अपना काम किये जाओ।" फिर भला, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो हड़तालकी इस विभीषिकासे एक बार परिचित हो जानेपर उसका चिन्तन करे और इस प्रकार व्यर्थमें अपने लिए एक असाध्य बीमारी मोल ले।

स······स्टेशनके कर्मचारियोंने अधिकारियोंकी नेक सलाहको माना। इसी वजहसे वे अब तक इस बीमारीसे बचे रहे, परन्तु दुर्भाग्यकी बात, रातको बारह बजे कोई आया—बुरा हो उस शख्सका—और उनसे कह गया कि उनके नज़दीकी स्टेशन प······के कर्मचारियोंमें हड़ताल फैल गई है। बस, एकदम सबके दिमाग फिर गये, वे करते क्या? यह बीमारी ही ऐसी है। कमबख्तोंने अपने कान भी बन्द नहीं किये। घंटे-भरके भीतर सबको हड़ताल लग गई। चार बजे सुबह पैसेंजर आनेका वक्त हुआ। म······स्टेशनसे खबर आई "गाड़ी छोड़ा!" छोटे बाबूने सिगनल-मैनको पुकारा—"करीम! ओ! करीम!!" कोई नहीं बोला। फिर बुलाया—'ओ! ओ हरिदास! ओ खुदाई! ओ! ज्वाला! आ! आ!!!" छोटे बाबूकी इस चिल्लाहटसे स्टेशनके देवता जाग पड़े, परन्तु हड़ताल-रोगग्रस्त व्यक्तियोंकी बेहोशी दूर न हुई। तब तक पैसेंजर ट्रेनने भी सिगनेलके पास रुककर अपनी तेज़ और बारीक चीत्कार द्वारा स्टेशनके कर्मचारियोंको जगानेमें छोटे बाबूकी सहायता की, परन्तु व्यर्थ! क्रोधसे बाबूजीका मुँह लाल हो गया। बड़बड़ाते हुए कमरेसे बाहर निकले। चारों तरफ़ सन्नाटा। प्लेटफार्मके लैम्प बुझे हुए, जैसे कि हमेशा रहते हैं। क्षण-भरमें बाबूजीकी समझमें सब आ गया। "अच्छा, कमबख्तो!" उस समय हड़ताल-ग्रस्त उन कर्मचारियोंके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करनेके लिए इससे अच्छे शब्द उनके पास नहीं थे। ट्रेन चिल्ला-चिल्लाकर अपना गला और साथ-ही निस्तब्धताका हृदय फाड़े डाल रही थी। उस

अचानक सीतमें सी-सी करते हुए बाबूजीने लालटेन हाथमें ली, ओवरकोट पहना, रजाई ओढ़ी और तीन फर्लांगके फ़ासलेपर रुककर खड़ी हुई, पैसेंजर ट्रेनको मनाकर लिवा लाये। रास्ते-भर हड़तालको कोसते और इस रोगके चंगुलमें फँस जानेवाले अभागोंकी कुशल मनाते आये।

सवेरे बड़े बाबूने आश्चर्य और क्रोधसे स्तम्भित होकर सारा क़िस्सा सुना। आश्चर्य इस बातका कि हड़तालके बीज कहाँसे आये। क्रोध इस बातका कि कर्मचारियोंने उनका कहना नहीं माना। वे एक दफ़ उनकी हालत देखने गये भी, परन्तु बीमारीको असाध्य समझकर निराश और दुःखी होकर लौट आये। छोटे बाबूसे कहा—"इन बदमाशोंको मरने दो। कितना समझाया, परन्तु नहीं माना। अब वैसा भुगतेंगे।" और डी० टी० एस० को इस बातकी सूचना देकर कि यहाँके सब कर्मचारी स्ट्राइकके शिकार हो गये हैं, उन्होंने चार नये आदमियोंको बुलानेका प्रबन्ध किया।

उनका एक कहार था। स्टेशनसे एक मील दूर एक छोटे गाँवमें रहता था। सवेरे ही कामपर आ जाता था। बाबूजीने उसे बुलाकर कहा—"हरू, तुम अपने गांवसे चार आदमी ला सकते हो?"

"क्यों नहीं? जितने कहिये उतने। आजकल मजदूरोंका क्या टोटा है।"

"तो लाओ।"

"किसलिए चाहिए, बाबूजी?" हरूआने प्रश्न किया।

"तुझे इससे क्या? तुझसे जो कहा गया है, सो कर। सिर्फ़ चार आदमियोंकी ज़रूरत है। अभी चाहिए।"

"जो हुकुम।"

हरूआ गया और एक घंटेके भीतर अपने साथ चार आदमियोंको लेकर आ गया। एक काछी, दो चमार, एक कोरी। वह उनकी स्थिति जानता था। भूखों मरते थे। *किसी दिन एक जून भी भर पेट भोजन मिल जाय तो ग़नीमत समझो।*

चारोंने आकर बाबूजीको राम-राम किया। दीन-दुर्बल काया, तनपर फटे हुए मलिन वस्त्र; शुष्क और श्रीहीन चेहरे। प्रभात-वेलाके स्निग्ध प्रकाशमें आपको वे मूर्त्तियाँ बड़ी ही करुण और दयनीय जान पड़तीं। बाबूजीने इसका खयाल न करके पूछा—"तुम लोग काम करोगे?"

"हाँ, अन्नदाता।" आगे खड़े हुए वृद्धने हाथ जोड़कर उत्तर दिया। वह चमार था। नाम था नन्हें।

बाबूजीने कहा—"अच्छी बात है। आज ही से करना होगा।"

उसी वृद्धने कहा—"तैयार हैं। क्या काम करना है, अन्नदाता?"

"झंडी दिखाना, लालटेन जलाना, माल उतारना-चढ़ाना—यही काम है और क्या।"

"कितने दिनका काम है?"

"कितने दिनका क्या? हमेशाकी नौकरी है।"

चारोंके नेत्र उत्फुल्ल हो गये, जैसे प्रकाशका संदेश पाकर कमल खिल उठता है। वृद्धने पूछा—"क्या स्टेशनपर और नौकरोंकी ज़रूरत हुई है?"

"हाँ, ज़रूरत क्या! चार आदमी नौकरीसे अलग कर दिये गये हैं। बदमाश, हरामखोर, रात-भर पड़े-पड़े सोते रहते हैं। उनकी जगह दूसरे आदमी रक्खे जायँगे। अगर तुम लोग मुस्तैदीसे काम करोगे, तो सात दिन बाद नौकरीपर बहाल कर दिये जाओगे।"

"अन्नदाता, मिलेगा क्या?"

"सेर-भर आँटा, छटाक-भर दाल, आधी छटाक घी और छै आने पैसे रोज़।"

"फ़ी-आदमी!"

"हाँ, यह सात दिन तक मिलेगा, फिर हिसाबसे माहवारी तनख्वाह मिलेगी।"

यह तो आशासे बहुत अधिक था। सात दिन भरपूर खुराक और नकद पैसे अलग। भूखसे जलते हुए पापी पेटके लिए ऐसी सुन्दर व्यवस्थाका पूर्वाभास पाकर एक बार

कुबेरका हृदय भी आनन्दसे नृत्य करने लगता। फिर यदि बूढ़ेकी आँखें, जिसके घरमें दो दिनसे चूल्हा नहीं जला था, हर्षातिरेकसे उद्दीप्त होकर फटनेपर आ जायँ, तो इसमें आश्चर्यकी बात ही कौन-सी थी? उसने गद्गद होकर कहा—"आपकी जय हो, अन्नदाता। हम तो आपके पैरोंकी जूती हैं। आधी रातको हुक्म दें, तो सिरके बल काम करनेको तैयार हैं।" वृद्धने फिर बाबूजीकी ओर देखकर कहा—"तो बैठ जायँ?"

"हाँ, तुम सबको रातमें भी यहीं रहना पड़ेगा।"

"जो हुक्म। हमें तो जहाँ खानेको मिले, वहीं घर है।"

"अच्छा, यहीं बैठो। कहीं जाना मत।" बाबूजीने फिर कहा—"देखो, तुम लोग किसीकी बातोंमें मत आना। चुपचाप अपना काम करना। कुछ काम नहीं। गाड़ीको झंडी दिखाना, लालटेन जलाना और रात-भर पड़े-पड़े तमाखू पीना। बस, इतना काम है। बदमाशोंसे यह भी नहीं होता। कामचोर कहींके! कहते हैं तनख्वाह बढ़ा दो। अरे, तनख्वाह तो तभी बढ़ेगी न, जब मालिकको खुश रखोगे, अच्छा काम करोगे, और ईमानदारीसे करोगे। या तुम्हें कोई मुफ्तमें ही बीस रुपया माहवार दे देगा? बोलो, भाई, मैं ठीक कहता हूँ या नहीं?"

"हाँ, मालिक आप ठीक कहते हैं।"

चारों आदमी स्टेशन मास्टरकी आज्ञा पाकर आफ़िसके सामने बैठ गये। अब वे स्टेशनपर नौकर हो गये।

[२]

दोपहरको किसी प्रकार डाकगाड़ी निकली। बड़े बाबू एक आदमीको साथ लेकर स्वयं ही सिगनल गिरा आये। लाइन-क्लीयर भी उन्हींको देना पड़ा। इसके बाद मालगाड़ीकी चख-चखसे छुट्टी मिली। इस बीचमें छोटे और बड़े बाबू दोनोंने कामपर आये हुए नये आदमियोंपर कड़ी नज़र रखी। कहीं किसी हड़तालके रोगीसे उनका संस्पर्श न हो जाये! अथवा उन्हें कोई यह समाचार न दे जाये कि स्टेशनपर हड़ताल कैसी है! परन्तु कुशल हुई कि बारह बजेके बाद प्लेटफार्मपर किसीने पैर नहीं रखा। स्टेशनकी यह निर्जनता उन्हें और उनके साथियोंको बहुत उद्विग्न और चिन्तित करने लगी। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि स्टेशनके सब आदमी कहाँ गये? क्या सभी निकाल दिये गये? अथवा यहाँ कुलजमा चार ही आदमी नौकर थे? वे एक ऐसे आदमीकी खोजमें थे, जिससे दो-चार बातें की जायँ, अथवा जिसके साथ एकाध चिलम फूँकी जाय, परन्तु बाबूजीने उन्हें इधर-उधर जानेसे मना कर दिया। इस बन्धनका अर्थ उनकी समझमें नहीं आया। उनके मन शंकित हो उठे। आज दिनमें उनसे एक भी काम ठीक ढंगसे नहीं बना। सभी कुछ बाबूजीको करना पड़ा! ऐसी अवस्थामें उन्हें अपनी स्थिति संकटापन्न जान पड़ी। अभी तक उन्होंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था। स्वातिकी प्रतीक्षामें बैठे हुए तृषित चातककी भाँति वे व्यग्रतापूर्वक सन्ध्याकी बाट जोह रहे थे। उस समय मजूरी मिलेगी या नहीं, इसे भगवान जाने। इससे तो न आते, तो अच्छा था।

परन्तु जब सूर्यास्तके उपरान्त लगभग सात बजे छोटे बाबूने उन्हें आटा, दाल और घी लाकर दिया, तब उनके हर्षका ठिकाना न रहा। उनका समस्त सन्देह और सोच दूर हो गया। पैसोंके सम्बन्धमें छोटे बाबू कह गये कि कल मिलेंगे।

उस समय यह बात किसीके ध्यानमें नहीं आई कि आटा चार सेरसे कम तो नहीं है, अथवा घी आधी छटांक फी-आदमीके हिसाबसे आधा पाव ही है अथवा नहीं। भोजन-सामग्रीको देखते ही उनकी शान्त क्षुधा भूखे शेरकी तरह कुपित हो उठी। अब बात करनेकी ज़रूरत न थी, न विलम्ब करनेका समय था। लाइनके उस पार एक पेड़के नीचे आग सुलगाई गई, जल्दीसे आटा गूँधा गया, और बातकी बातमें रोटियाँ सिंककर तैयार हो गईं। एकने सहसा कहा—"बाबूजीने नमक तो दिया ही नहीं।"

दूसरेने कहा—"किसीने माँगा ही नहीं।"

तीसरा बोला—"मुझे नमक-ग्रमककी ज़रूरत नहीं। खूब कड़ी सिकी है। छः हैं। अभी उड़ाता हूँ।" कहकर उसने अपनी रोटियाँ ठोकीं ?"

परन्तु नमकका अभाव नन्हेंने भी अनुभव किया। वह बोला—"बिना पानीका आदमी और बिना नमककी रोटियाँ भला, कभी अच्छी लगती हैं ?"

"तो फिर लाओ कहींसे।" शेष तीनमेंसे एकने कहा।

नन्हेंने चारों ओर दृष्टिपात किया। थोड़ी दूरपर एक क्वार्टर था, जो बालकोंके रुदन और कोलाहलसे मुखरित हो रहा था। वह बोला—"वहाँ जाकर माँगें ?"

"न जाने किसका घर है !"

"किसीका हो। नमक तो मिल जायगा।"

"माँग देखो।"

"अच्छा।"

वह चक्कर काटकर क्वार्टरके सामने पहुँचा। चार दरवाज़े थे। एकके सामने खड़ा हो गया। भीतरसे ज़ोर-ज़ोरसे किसीके बात करनेकी आवाज़ आ रही थी। वह ठिठक गया। किसीके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा, जिससे नमक माँगा जाय। भीतर जो बातचीत हो रही थी, उसका प्रत्येक शब्द उसके कानमें पड़ रहा था। उसने किसीको बुलाना चाहा, पर सहसा उसका स्वर कुण्ठित हो गया। नमक माँगना भूलकर वह सुनने लगा—"मगर नौकरी चली जायगी, तब ?" यह स्वर निःसन्देह किसी स्त्रीका था।

"नौकरी कैसे चली जायगी ? डेढ़ लाख आदमियोंकी हड़ताल है। सरकार किसे-किसे अलग करेगी ?"

स्त्री सहज रोषयुक्त स्वरमें बोली—"वे नाशमिटे जो आ गये हैं।"

"कौन ?"

"वे जो रोटी बना रहे हैं, और कौन ?"

"इन बेचारोंने क्या किया है ?"

"किया कैसे नहीं है। हत्यारे हैं ससुरे ! आ गये यहाँ काम करने। यह नहीं सोचा कि पराई रोजी मारनेसे नरकमें भी ठिकाना नहीं मिलेगा।"

"अरे, इतना हल्ला क्यों करती हो। आ गये होंगे। पेट ऐसी ही चीज़ है।"

"तो हमारे भी तो पेट है। हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं।"

"होगा, दो दिन न खानेसे भूखों न मर जायँगे।"

"मगर तुम्हारी इस हड़तालमें कुछ लक्षण भी हों !"

"न होने दो।"

स्त्रीने कुपित होकर कहा—"तुम्हारी तो मति मारी गई है। मेरा कहा मानो। बादल देखकर घड़ा न फोड़ो। कामपर जाओ। इन आदमियोंके आ जानेसे कहीं तुम्हें नौकरीसे हाथ न धोना पड़े।"

"क्या ! कामपर जाऊँ ? यह तो मुझसे सात जनममें भी न होगा। नौकरी चाहे जावे या रहे, पर अपने साथियोंको धोखा नहीं दूँगा।"

नन्हेंने चकित और स्तम्भित होकर इस कथोपकथनका एक-एक शब्द सुना। उसकी समझमें कुछ भी नहीं आया, परन्तु यह समझनेके लिए अधिक बुद्धिकी आवश्यकता नहीं हुई कि बातचीत उसीके सम्बन्धमें हो रही है। इतनेमें पीछेसे किसीने बुलाया—

"कौन है ?"

"मैं हूँ।" कहकर नन्हेंने घूमकर पीछे देखा। एक प्वाइन्ट-मैन था। वह बाज़ारसे कुछ सौदा खरीदकर लौट रहा था। नन्हेंका उत्तर पाकर उसने कहा—"तुम कौन ?"

"स्टेशनपर काम करने आये हैं।"

प्वाइन्ट-मैन सहसा खिलखिलाकर हँस पड़ा। उस हँसीका आघात पाकर दुर्बल नन्हेंका हृदय काँप गया। प्वाइन्ट-मैनने फिर कहा—"यहाँ किस लिए आये हो ?"

"थोड़ासा नमक चाहिए।"

"हा ! हा ! हा !!" प्वाइन्ट-मैनने अट्टहास किया। फिर नन्हेंके पास आकर बोला—"तुम्हें शरम नहीं आती, बुढ़ऊ ?"

नन्हेंने अकचकाकर कहा—"कैसी शरम ?"

"वाह कहते हो, कैसी शरम। बाल सफ़ेद होनेको आये। फिर भी तुमने कुछ सोचा नहीं। हम लोगोंने तो हड़ताल की और तुम कामपर आ गये !"

"हड़ताल ! बाबूजीने तो कहा है कि तुम लोग नौकरीसे बर्खास्त कर दिये गये हो।"

"बर्खास्त ! खूब कही ! हम लोगोंने स्वयं ही नौकरी छोड़ दी है। चौबीस घंटे कोल्हूके बैलकी तरह काममें जुते रहते हैं और मिलते हैं दस रुपये ही, जिनसे अकेला हमारा ही पेट नहीं भरता, फिर क्या बाल-बच्चोंको खिलायें, क्या औरतको दें और काहेसे तिथि-त्यौहार मनायें। ऐसी नौकरीसे तो मजूरी करें, सो अच्छा। सरकारको यही बतानेके लिए रेलवेके सब नौकरोंने हड़ताल कर दी है।" मगर तुम्हारे मारे ठिकाना पड़े, तब तो। हम तो अपनी रोटियोंके लिए सरकारसे लड़ाई लड़ रहे हैं और तुम हमारे खिलाफ़ सरकारकी मदद करने आ गये। देखो, है न बुरी बात, मगर तुमसे क्या कहें। ईश्वर तुम्हें समझेगा।"

यह कहकर प्वाइन्ट-मैन पासके घरमें घुस गया।

नन्हें कुछ भी नहीं कह सका। जहाँका तहाँ खड़ा रहा। उस समय यदि उसके ऊपर पहाड़ टूट पड़ता, तो भी शायद वह अपनेको संभाल लेता, परन्तु यह प्वाइन्ट-मैन तो उसे अपनी बातोंसे एक बार ही कुचल कर चलता बना। होश आनेपर वह उस जगहसे उठा और अपने साथियोंके सम्मुख पहुँचा। पहले उसने अपनी रोटियाँ समेटीं।

एकने उसे देखते ही पूछा—"बड़ी जल्दी आये। नमक कहाँ है ?"

बूढ़ेने मानो कुछ नहीं सुना। वह अपनी धुनमें कह रहा था—"राम ! राम ! ऐसी नौकरी ! ला रे हरदेवा, इधर ला सब रोटियाँ। ला रे मंगला इधर ला। ऐसा नमक कौन खायेगा ?"

बूढ़ेके साथियोंने इसे प्रमाद समझा। वे अवाक् और आश्चर्य-चकित होकर उसकी ओर देखने लगे। बूढ़ेने एक साथ सबकी रोटियाँ समेटकर कहा—"चलो, चलो, भगवानने बचा लिया। नहीं तो सचमुच नरकमें भी जगह न मिलती।" कहकर वह लाइन पार करके प्लेटफ़ार्मपर पहुँचा और सीधा बड़े बाबूके आफ़िसमें घुस गया। रोटियाँ उनकी मेजपर फेंककर बोला—"लीजिए बाबूजी ये रोटियाँ, मुझे ऐसा सतायका अन्न नहीं खाना। मैं चला।"

बड़े बाबू उस समय कन्ट्रोलरसे बातचीत कर रहे थे। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो टेलीफोनमें कोई गड़बड़ी आ जानेसे उनके कानके परदेको विद्युतका आघात लगा हो। उन्होंने बूढ़ेकी बात कुछ तो समझी और कुछ नहीं समझी। उसे मेजपर रोटियाँ फेंकते देखकर क्रोधसे प्रज्वलित होकर बोले—"क्या करता है, बदमाश !"

परन्तु बूढ़ा चला गया और बाबूजी अपने स्थानपर इस तरह खड़े रहे, मानो स्टेशनकी सारी इमारत उनको लेकर रसातलमें धसकती जा रही हो।

बौद्धधर्मका संक्षिप्त इतिहास

[लेखक :—आचार्य नरेन्द्रदेव, काशी-विद्यापीठ]

एशियाके इतिहासमें छठी शताब्दी (ई० पू०) एक उज्ज्वल युग है, क्योंकि इस शताब्दीमें एशियाके प्रधान देश चीन और भारतवर्षमें कई महापुरुष उत्पन्न हुए। इस युगमें धार्मिक विचारोंमें क्रान्ति हो रही थी। चीनमें लौत्से (६०४ ई० पू०) और कनफ्यूशियस (५५१-४७८ ई० पू०) हुए और भारतवर्षमें बुद्ध और महावीर। जिस समय बुद्धका जन्म हुआ, उस समय भारतमें अनेक वाद प्रचलित थे। श्रमणोंके अनेक सम्प्रदाय थे, जो प्रायः अक्रियावादी थे। उस समय लोकायतका अधिक प्रचार था। लोकायत नामसे ही उसकी लोक-प्रियता स्पष्ट है। वे नास्तिक थे। वे परलोकमें विश्वास नहीं करते थे, केवल प्रत्यक्षको प्रमाण मानते थे। वे कर्मके फलको नहीं मानते थे। उनके लिए पाप और पुण्यकी व्यवस्था नहीं थी। उनके मतमें जीव या आत्मा नामका कोई पदार्थ नहीं है। इसी प्रकारके विचार बुद्धके समसामयिक आचार्य अजितकेसकम्बलिक रखते थे। उनके विचारोंका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें पाया जाता है। वे कर्मके विपाकको नहीं मानते थे। उनका कहना था कि न शुभ कर्म करनेसे पुण्यका सञ्चय होता है और न अशुभ कर्म करनेसे पाप होता है। इनके अतिरिक्त बुद्धके समकालीन एक और आचार्य थे, जिनका नाम मक्खलिगोसाल था। वे नियतिवादी थे, अर्थात् जीवको स्वतन्त्र नहीं मानते थे। उनके मतमें सब प्राणी 'विधि' 'दैव' या 'नियति'के अधीन हैं। अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए मूर्ख और पण्डित दोनों परमपद प्राप्त करते हैं। भिन्न-भिन्न अवस्थाओंका कारण विधि, परिस्थिति और स्वभाव है। वे पुरुषार्थको नहीं मानते थे। उनके मतमें कोई व्यक्ति पापी या पुण्यात्मा बिना हेतुके ही होता है। कुछ लोग कालको ही सबका मूलकारण मानते थे। कुछ लोगोंके मतमें यह दृश्यमान जगत स्वभाव-सिद्ध था। कुछ यदृच्छावादी थे। श्वेताश्वतरोपनिषदमें इनमेंसे कुछ वादोंका उल्लेख पाया जाता है। 'कालस्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यं। संयोग एषां न तु आत्मभावात् आत्माप्यनीशः सुखदुःख हेतोः। (१,२)' अश्वघोषके बुद्ध-चरितमें भी कुछ वादोंका उल्लेख मिलता है। 'केचित् आत्मैव सम्पाल्यस्तत्पुण्यं मुक्ति-कारणं। केचित् स्वाभाविकं सर्वं केचित् पूर्वकृतंफलं। केचिच्चापीश्वराधीमित्येवं प्रवदन्त्यपि (सर्ग १६, श्लोक १७,१८)। अश्वघोषका सौन्दरनन्द (१६, १७), प्रवृत्तिदुःखस्य च तस्य लोके तृष्णादयो दोषगणानिमित्तं नैवेश्वरो न प्रकृतिर्नकालो नापिस्वभावो न विधिर्यदृच्छा।

बौद्धोंके पवित्र ग्रन्थ त्रिपिटकमें भी कुछ वादोंका वर्णन मिलता है—जैसे शाश्वतवाद, अहेतुवाद, उच्छेदवाद, अक्रियावाद। वैदिक धर्मके अनुयायियोंमें उस समय यज्ञ-यागादि वेदविहित अनुष्ठानोंको बड़ा महत्त्व दिया जाता था। यज्ञमें पशु-वध भी होता था। उनका विश्वास था कि यज्ञों द्वारा वांछित फलकी प्राप्ति होती है। उपनिषद्-कालमें हम ब्रह्मकी जिज्ञासा और ब्रह्म-विद्याकी प्रतिष्ठा देखते हैं। ब्रह्म ही सत् है और सब कुछ नामरूप है, पर इस विचार-धाराका प्रभाव समाजपर उस कालमें विशेषरूपसे नहीं पड़ा था। सांख्य और योगकी विचारधारा भी शुरू हो चुकी थी। ऐसे समयमें, जब समाजमें अक्रियावादी नास्तिकोंका प्राबल्य था, वैदिक धर्मके अनुयायियोंमें क्रियाकलापका ही अधिक आदर था और धर्मके मूल तत्त्वोंपर लोग कम ध्यान देते थे, बुद्धका प्रादुर्भाव हुआ। बुद्धका जन्म ईस्वी सन् पूर्व ५६० के लगभग लुम्बिनी वनमें हुआ था। यह स्थान नैपालकी तराईमें है। इनका नाम सिद्धार्थ था। ये शाक्यवंशीय थे, इसलिए इनको शाक्यमुनि कहते हैं। इनका गोत्र गौतम होनेके कारण ये श्रमण गौतम भी कहलाते हैं। २९ वर्षकी अवस्थामें इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ, और इन्होंने

महाभिनिष्क्रमण किया। आलारकालाम और उद्दकराम पुत्रके पास उपदेशके लिए गये। बुद्धचरितके वर्णनसे मालूम होता है कि आलारकालाम सांख्यवादी थे। उन्होंने सिद्धार्थको अपना सिद्धान्त बतलाया। 'अज्ञान, कर्म और तृष्णा संसारके हेतु हैं। हेतुके अभावसे फलका अभाव होता है।' उन्होंने गौतमको मोक्षका उपाय बतलाया। जब उनके उपदेशसे गौतमको सन्तोष न मिला, तब वे उद्दकके पास गये। उद्दकका भी परित्याग कर गयाके पास नेरंजना नदीके तटपर तपस्या करने लगे। यहाँपर उन्होंने ६ वर्ष तक निवास किया। उपवासकी अनेक विधियोंसे उनका शरीर कृश हो गया तो उनको मालूम हुआ कि तपस्यासे शरीरको क्लेश देना व्यर्थ है, इससे विराग, निर्वाण और मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। तब वे सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अश्वत्थ वृक्षके मूलमें वहीं निवास करने लगे। एक दिन उन्हें सम्यग्-संबोधिकी प्राप्ति हुई, और उस दिनसे वे बुद्ध, सर्वज्ञ और तथागत कहलाने लगे।

पूर्व इसके कि हम बुद्धकी शिक्षापर विचार करें, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि बुद्धके विचारोंके सम्बन्धमें जो एक मिथ्या धारणा आधुनिक हिन्दू-समाजमें प्रचलित है, उसे दूर कर दिया जाय। आजकल हिन्दू जहाँ एक ओर बुद्धको भगवान विष्णुका एक अवतार मानते हैं, वहाँ उनको नास्तिक भी मानते हैं। पर बुद्ध नास्तिक नहीं थे। नास्तिकका अर्थ, जैसा कि साधारणतः आजकल किया जाता है, अनीश्वरवादी नहीं है। नास्तिकका निर्वचन इस प्रकार है—"नास्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स नास्तिकः।" मल्लिनाथने भी 'शिशुपाल वध'की टीकामें यही निर्वचन दिया है, पर आगे चलकर नास्तिकका अर्थ वेद-निन्दक हो गया। "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मोहि निर्बभौ। योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।" (मनुस्मृति, २,११) 'कादम्बरी'में बौद्धोंको 'नास्तिकवाद शूर' कहा है, पर यह यथार्थ नहीं है। बौद्ध-ग्रन्थोंमें ही अक्रियावादके साथ-साथ नास्तिकवादका भी उल्लेख मिलता है और उसको 'मिथ्यादृष्टि' बतलाया है। वास्तवमें नास्तिक वह हैं जो परलोककी सत्ता और कर्मकी मर्यादाको नहीं मानते। बुद्धकी दृष्टि नास्तिक नहीं थी। वे न तो शाश्वतवादी थे और न उच्छेदवादी। यद्यपि वे आत्मा नामके किसी शाश्वत पदार्थको नहीं मानते थे और यह भी नहीं मानते थे कि जीवका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें संक्रमण होता है, तथापि वह पुनर्जन्मको मानते थे। प्राचीन आर्य संकुचित विचारके नहीं थे। ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करने या न करनेकी अपेक्षा वे कर्म-फलमें विश्वास करने या न करनेको अधिक महत्त्व देते थे, क्योंकि यदि पाप और पुण्यकी व्यवस्था न की जाय और यह न माना जाय कि शुभ कर्मका शुभ फल और अशुभ कर्मका अशुभ फल होता है, तो समाज उच्छृंखल हो जायगा और उसकी मर्यादा नष्ट हो जायगी। बौद्ध ग्रन्थोंमें इन दो प्रकारके विचारोंके लिए क्रियावाद और अक्रियावाद इन दो शब्दोंका व्यवहार किया जाता है। बुद्ध क्रियावादी थे। जैनधर्मके प्रवर्तक और बुद्धके समकालीन महावीर भी क्रियावादी थे। इसी प्रकार वैदिक धर्मानुयायी भी क्रियावादी थे। वे कर्मके फलको मानते थे।

हमको यह भी समझ लेना चाहिए कि बुद्धने किन बातोंपर विचार किया है और किनपर नहीं। लोक शाश्वत है अथवा अशाश्वत, मरनेके बाद तथागत रहते हैं अथवा नहीं—इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर बुद्धने नहीं दिया है। मालुंक्यापुत्तसंवादमें बुद्ध कहते हैं—'मैं इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दूँगा, क्योंकि इनमें निर्वाणसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हे मालुंक्यापुत्त! जिस प्रकार कोई पुरुष विषैले बाणसे बेधा जाय और चिकित्सकसे कहे कि मैं तब तक बाण नहीं निकलवाऊँगा, जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि उस आदमीका क्या नाम, गोत्र और वर्ण है, जिसका बाण मुझे लगा और यह न मालूम हो जाय कि वह धनुष किस प्रकारका है—चाप है या कोदण्डादि, उसी प्रकार तुम्हारे प्रश्न हैं।

यदि तुम यह समझते हो कि संसार दुःखमय है और उस दुःखका अन्त चाहते हो तो इन प्रश्नोंके विवेचनसे दुःखका नाश नहीं होगा। मैंने इसीलिए इन प्रश्नोंपर प्रकाश नहीं डाला है। मैंने बतलाया है कि दुःखका हेतु क्या है और उसका निरोध किस मार्गका अनुसरण करनेसे होता है।" धर्मचक्रप्रवर्तन-सूत्रमें कहा है—"यदि जन्म, जरा, मरण आदि दुःख न होते, तो बुद्ध न होते। भवचक्रका अत्यन्त उच्छेद करनेके लिए ही उनका जन्म हुआ है। उनकी शिक्षाका यही उद्देश्य है। दुःखका उपशम ही निर्वाण है।"

बुद्धने 'इतिवुत्तक' में कहा है कि जिस प्रकार जात, भूत, कृत, संस्कृत है उसी प्रकार अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत भी है; अर्थात् यदि संसार है, तो निर्वाण भी है, यदि भव है तो विभव भी है, यदि दुःख है तो दुःखका उपशम भी है; इसीलिए बुद्धने इसपर विचार नहीं किया है कि कोई कर्ता भी है जो समस्त वस्तु जातका आदिकारण और धारक हो; क्योंकि यदि यह समस्या हल भी हो जाय तो इससे दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती।

उपनिषदके मतमें (देखिए 'कौशीतकी उपनिषत्' ३,८) वाणीकी खोज न करो, वक्ताको जानो; रूप, कर्म और चित्तको जाननेका उद्योग न करो, द्रष्टा, कर्ता तथा मनन करनेवालेको जानो। 'न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यात् इत्यादि'। परन्तु बुद्ध संसार-परम्परा पर दृष्टि रखते थे। उन्होंने दुःखकी हेतु-परम्परापर विचार किया है। निरन्तर उदय—व्यय हुआ करता है। प्रत्येक दृश्यमान वस्तु परिवर्तनशील है। प्रत्येक क्षण परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन यदृच्छासे नहीं है अथवा विधि-नियत नहीं है, पर कार्य-कारणवश होता है। जब बुद्धसे किसीने पूछा—"कौन स्पर्श करता है", तो उन्होंने कहा—'यह समुचित प्रश्न नहीं है; पूछना चाहिए कि किस हेतु यह स्पर्श होता है। (संयुत्तनिकाय—२,१२)। अन्वेषण करनेपर हम कोई शाश्वत वस्तु नहीं पाते, पर एकके हेतुवश दूसरेका समुत्पाद पाते हैं। ऐसा नहीं है कि बुद्धको इन गूढ़ प्रश्नोंका उत्तर न मालूम हो, पर वह अपने शिष्योंको इन बातोंमें उलझाना नहीं चाहते थे। उन्होंने स्वयं कहा है—"ये बातें दुर्ज्ञेय हैं और केवल पंडित लोग ही इनका अनुभव कर सकते हैं। ये बातें तर्कसे नहीं जानी जा सकतीं।"

बुद्धकी शिक्षाकी मूल भित्ति चार आर्यसत्य हैं—दुःख, दुःख-समुदय (हेतु), दुःख-निरोध, दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपत्ति (मार्ग)। संसारमें दुःख है। जो सुखवत् प्रतीयमान होता है वह भी दुःख है। अप्रियका दर्शन और प्रियका अदर्शन दुःख है। 'आदित्तसुत्त' में बुद्ध कहते हैं कि सब धर्म रागाग्नि, दोषाग्नि और मोहाग्निसे आदीप्त हैं। यदि प्रज्ञासे देखा जाय, तो सब संस्कार दुःखमय हैं। यह दुःख अकारण नहीं है।" दुःख क्यों होता है, इसपर 'दुःख-समुदय' में विचार किया गया है। इसे द्वादश 'प्रतीत्य-समुत्पाद' या द्वादश 'निदान' कहते हैं। इसका सार यही है कि अविद्या, कर्म और तृष्णासे पुनर्जन्म होता है। चार आर्यसत्योंमें यह प्रधान है, क्योंकि इसमें दुःखका निदान बताया गया है। प्रतीत्यसमुत्पादकी परिभाषा इस प्रकार है—'अस्मिन् सति इदं भवति।' 'इसके होनेपर यह होता है।' इसके उत्पादसे इसका उत्पाद और इसके निरोधसे इसका निरोध होता है, अर्थात् इन-इन प्रत्ययोंसे इन-इन धर्मोंका सम्भव होता है। इसके पूर्व पदसे प्रत्यय—हेतु-सामग्री निर्दिष्ट की गई है, और यह सूचित किया गया है कि सब धर्म हेतु-प्रभव हैं, अर्थात् धर्मोंकी प्रवृत्ति प्रत्यय-सामग्रीके अधीन है। इस प्रकार शाश्वत और अहेतुवादका अभाव प्रदर्शित किया गया है। दूसरे पदसे यह दिखलाया गया है कि हेतु-सामग्रीवश धर्मोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार उच्छेद—नास्तिक—अक्रियावादका विघात दिखलाया गया है। पूर्व पूर्व हेतुवश बारम्बार जो धर्म उत्पद्यमान होते हैं, उनका उच्छेद कहाँ? इस प्रतीत्यसमुत्पादके बारह अंग इस प्रकार हैं—१ अविद्या, २ संस्कार, ३ विज्ञान, ४ नाम-रूप, ५ षडायतन, ६ स्पर्श, ७ वेदना, ८ तृष्णा, ९ उपादान, १० भव, ११ जाति और १२ जरा-मरण।

इसका उपदेश चतुर्विध है—१ अनुलोम देशना—आदिसे अन्त तक, २ मध्यसे पर्यवसान तक, ३ प्रतिलोम—पर्यवसानसे आदि तक, ४ मध्यसे आदि तक।

इनमेंसे अनुलोम-देशना उत्पत्तिक्रम तथा स्वकारणसे धर्मोंकी प्रवृत्ति होती है, यह दिखलानेके लिए है। प्रतिलोम-देशना यह दिखलानेके लिए है कि कृच्छ्रापन्नलोकका जरा-मरणादिक दुःख किस कारणसे है। जो देशना मध्यसे आरम्भ कर आदि तक जाती है, उसका उद्देश्य अतीत अध्व तक जाकर अतीत अध्वसे लेकर हेतु-फल परिपाटीका सन्दर्शन कराना है (तृष्णासे अविद्या) जो देशना मध्यसे आरम्भ कर अन्त तक जाती है (वेदना-जाति), उसका उद्देश्य प्रत्युत्पन्न अध्वमें अनागत अध्वके समुत्थानसे लेकर अनागत अध्वका सन्दर्शन कराना है। इस प्रकार यह दिखलाया गया है कि हेतु प्रत्यय-वश दुःख-समूहका उत्पाद होता है। जरा-मरण तीव्र दुःखका स्वरूप है। यह जन्मसे होता है, यदि जन्म न हो, तो यह दुःख स्कंध न हो। जाति अथवा जन्म क्यों होता है ?

'भव' से जन्म होता है। 'भव' तीन प्रकारके होते हैं—काम-भव, रूप-भव, अरूप-भव। भोगके लिए यत्नवान् होनेसे जो कर्म संचित होता है, वही पुनर्भवका कारण होता है। जो कर्म अनागत-भवका कारण होता है, वह भव है। 'भव' 'उपादान' से होता है। भोगोंके लाभके लिए यत्नवान होनेकी अवस्था ही 'उपादान' है।

यह चार प्रकारका है—काम, दृष्टि, शीलव्रत, आत्मवाद। तृष्णासे ही उपादान होता है। यह तृष्णा वेदनाके कारण होती है। विषयकी अनुभूतिको वेदना कहते हैं। वेदनाके निमित्त ही तृष्णा (अभिलाष) होती है। जिसको सुखमयी वेदना उत्पन्न होती है, वह उससे संयुक्त होनेके लिए बार बार तृषित होता है। दुःखमयी वेदनासे विसंयोग प्राप्त करनेके लिए तृषित होता है। वेदना स्पर्शसे होती है। इन्द्रिय, विषय या आलम्बन और विज्ञान इनके परस्परके संगमसे स्पर्श होता है। स्पर्श षडायतनके कारण होता है। दर्शन, श्रवण, घ्राण, रस, स्पर्श, मन—इन्हें आयतन कहते हैं, क्योंकि ये दुःखोत्पत्तिके आयद्वार हैं। चक्षुसे रूप देखकर अभिनिवेश होता है। 'नामरूप' के रहनेपर षडायतन होता है। चार अरूपी स्कंधोंको 'नाम' कहते हैं—वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। षडायतनोंकी उत्पत्तिके पूर्व यही पंचस्कंध नामरूप कहलाते हैं। विज्ञान प्रत्ययवश नामरूपका प्रादुर्भाव होता है। यह विज्ञान संसारका बीज है। माताकी कुक्षिमें बिम्बप्रतिबिम्बन्यायेन विज्ञान संमूर्छित होता है अर्थात् विज्ञानकी अवक्रान्ति होती है। 'विज्ञान' संस्कारसे होता है। संस्कृतका अभिसंस्कार करनेके कारण 'संस्कार' कहलाता है। इन्द्रियका प्रत्येक विषय संस्कृत है। संस्कृतके तीन लक्षण हैं—उत्पाद, व्यय और स्थितके अन्यथात्वका देखा जाना। संस्कार पूर्वजन्मके कर्मको कहते हैं। अविद्यासे आवृत होकर ही पुद्गल कर्मोंको करता है, और इन कर्मोंके द्वारा अमुक अमुक गतिको प्राप्त होता है। अविद्या क्या है—चार आर्यसत्योंके विषयमें अज्ञान। पूर्वजन्मोंके क्लेशकी जो दशा है, वही अविद्या है। विद्याका अभाव अविद्या नहीं है, किन्तु विद्या-विरोधी अन्य धर्म अविद्या है। प्रज्ञाका उपक्लेश ही अविद्या है। इस प्रकार अविद्या, कर्म और तृष्णा दुःखके कारण हैं। बुद्धघोष टीकाकार प्रतीत्यसमुत्पादको भवचक्र कहते हैं। बुद्धकी शिक्षाका यह सार है। इसकी यथावत भावनासे अविद्याका प्रहाण होता है। इससे तत्त्वकी प्राप्ति होती है और दुःख स्कन्धका निरोध होता है।

दुःख-निरोधके लिये मार्ग बताया गया है। यह अष्टांगिक मार्ग है। इसीका अनुसरण कर अर्हत् अवस्थाकी प्राप्ति होती है। यही जीवन्मुक्तकी अवस्था है।

साधनाके आठ अंग हैं। इनमें प्रज्ञा, शील और समाधिका समावेश है। ये अंग इस प्रकार हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि।

चार आर्यसत्योंका यथार्थ ज्ञान ही सम्यक् दृष्टि है। यह किसी प्रकारका वाद नहीं है, क्योंकि जैसा सुत्तनिपातमें (७८७)

कहा है कि बुद्धने सर्वदृष्टिगत दोषोंका परिहार किया है, वह अनुपम है अर्थात् तृष्णादृष्टि निश्रित नहीं है। उन्होंने किसीका ग्रहण या त्याग नहीं किया है। कुशलके परित्यागके लिए संकल्प, अव्यापाद और अहिंसाका संकल्प सम्यक् संकल्प है। मृषावाद, पिशुन परुष और प्रलापसे विरति ही सम्यक् वाक् है। प्राणातिपातविरमन, अदत्तादानविरमन, मिथ्याचार-विरमन् ही सम्यक् कर्मान्त है। मिथ्या आजीविका परित्याग ही सम्यक् आजीव है। पाप-अकुशल धर्मोंके अनुत्पाद और प्रहाणके लिए तथा कुशल धर्मोंके उत्पाद और स्थितिके लिए उद्योग करना ही सम्यक् व्यायाम है। शरीर और मनकी प्रतिक्षण प्रत्यवेक्षा करना ही स्मृतिमान् होना है। कहा भी है—'चित्तस्य दमनं साधु चित्तं दान्तं सुखा वहम।' और 'आत्मना हि सुदान्तेन स्वर्गं प्राप्नोति पंडितः।' ध्यान ही समाधि है। उसको पूर्वजन्मोंकी अनुस्मृति हो जाती है, तब उसको यह मालूम होता है कि अब उसका पुनर्भव न होगा, और वह निर्वाण-सुखको प्राप्त करता है। संक्षेपमें यह बुद्धकी शिक्षा है।

बुद्धके तीन वचन प्रसिद्ध हैं—सर्वं अनित्यं, सर्वं अनात्म, निर्वाणं शान्तम्।

आत्मा नामका नित्य, ध्रुव और स्वरूपमें अविपरिणाम धर्मवाला कोई पदार्थ नहीं है। पंच स्कन्ध-मात्र है (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान)। अविद्यादि क्लेश और कर्मों द्वारा यह पंच स्कन्ध-मात्र अभि-संस्कृत है। विज्ञान सन्तति मृत शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करनेके लिये मार्गमें अवस्थित रहती है और गर्भमें प्रवेश करती है। यह स्कन्धपंचक क्षण-क्षणमें उत्पद्यमान और विनश्यमान होते हुए भी स्वसन्ततिके कारण एकत्वका बोध कराता है। कर्मके अनुसार यह स्कंधसंतति क्रमशः क्लेशोंके कारण वृद्धिको प्राप्त होती है और एक शरीरको छोड़कर परलोकको जाती है। इस प्रकार यह भवचक्र अनादि है।

शान्तरक्षित तत्त्वसंग्रहमें कहते हैं :—

नवत्र परलोकोऽयं नान्यः कश्चन विद्यते। उपादान-तदादेय भूतज्ञानादि सन्ततेः। काचिन्नियतमर्यादाऽवस्थैव परिकीर्त्यते। तस्याश्चानाद्यवन्तायाः परः पूर्व इहेति च।

जिस प्रकार रथ शब्दमात्र है, केवल अंगोंका संभार है, अन्वेषण करनेपर उसकी पृथक् रूपसे उपलब्धि नहीं होती, उसी प्रकार स्कन्धोंके होनेपर 'सत्व' कहते हैं। आत्मा नामका पदार्थ नहीं है। मज्झिमनिकायमें बुद्ध कहते हैं—"हे भिक्षु! कुछ श्रमण और ब्राह्मण झूठ-मूठ कहते हैं कि मैं सत्वके उच्छेदकी शिक्षा देता हूँ (सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेतीत)। मैं दुःख और दुःख निरोधकी शिक्षा देता हूँ। हे भिक्षु! जो तुम्हारा नहीं है, उसका परित्याग करो। इससे तुम्हारा हित सुख होगा। रूप तुम्हारा नहीं है, इसको छोड़ो। इसी प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान भी तुम्हारे नहीं हैं, इन्हें भी छोड़ो। यदि कोई मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार इस जेतवनका तृण-काष्ठ ले जाय या जला दे, तो तुम क्या यह समझोगे कि मनुष्य हमको लिये जाता है या हमें जलाता है।" भिक्षु बोले—नहीं। इसका हेतु क्या है? इसका हेतु यह है कि यह तृण-काष्ठ न आत्मा है, न आत्मीय है। (अत्ता अत्तानिय) रूप आदि तुम्हारे नहीं हैं, इन्हें छोड़ो। कुछ लोगोंका कहना है कि इससे मालूम होता है कि पंच स्कन्धोंके प्रहाणसे आत्माका प्रहाण नहीं होता। 'नेतं मम, नेसो ऽहमस्मि, न मेसो अत्ता' आदि वाक्य भी इसे सिद्ध करते हैं। निर्वाण दुःख और अनित्य नहीं है, शायद अनात्मा भी न हो, पर प्रायः विद्वान् यह नहीं मानते कि बुद्ध कोई शाश्वत पदार्थ मानते थे। बुद्धका कहना था कि यदि आत्मा हो, तो निर्वाण और अर्हत् अवस्था असम्भव हो जावे, क्योंकि उस हालतमें मनुष्यका स्वभाव बदला नहीं जा सकता। बुद्धका कहना था कि मनुष्य-स्वभाव प्रज्ञा द्वारा संशोधित हो सकता है। बुद्धका कहना था कि जिस प्रकार तृण, काष्ठ आदि उपादानोंके अभावमें अग्नि शान्त हो जाती है, उसी प्रकार रागादि क्लेशोंका नाश होनेसे पंचस्कन्धकी पुनरुत्पत्ति नहीं होती।

अब प्रश्न यह है कि निर्वाणका स्वरूप क्या है। क्यों

सास्रव और अनास्रव होते हैं। सब सास्र धर्म 'दुःख' हैं। संस्कृत धर्मोंमें जो सास्रव अर्थात् समल हैं, उन्हें उपादान स्कन्ध भी कहते हैं, क्योंकि क्लेश-प्रत्ययवश उनकी उत्पत्ति होती है। इन्हें दुःख, समुदय, लोक, दृष्टि-स्थान, सरण और भव कहते हैं। जब निरोधकी ओर प्रवृत्ति होती है, तब धर्मोंको अनास्रव कहते हैं। रागादि क्लेश सन्तानको दूषित करते हैं। निर्वाणके लिए धर्मोंका अवबोध और प्रविचय आवश्यक है। इस दुःखका अन्त करनेमें प्रज्ञाकी प्रधानता है। जब यह प्रज्ञा अमला, अनास्रवा हो जाती है, तब यह सन्तानका नियमन करती है और यह प्रधान होकर कार्य करती है। प्रज्ञा एक चैत्त धर्म है, जो विज्ञानके प्रत्येक क्षणमें रहती है। यह प्रज्ञा अकुशल धर्मोंका प्रहाण करती है और वह निरुद्ध हो जाते हैं। सन्तानमें फिर उनका उत्पाद नहीं होता। पहिले इसका ज्ञान होना चाहिए कि न आत्मा है न आत्मीय ; जिसे पुद्गल या आत्मा कहते हैं, वह १८ धातु है। जब सत्कायदृष्टि दूर हो जाती है, तब मार्गमें प्रवेश होता है। जितने अकुशल धर्म हैं, उनका सन्तानसे प्रविचय होता है, अर्थात वह चुन चुनकर निकाल दिये जाते हैं। जब इन अकुशल धर्मोंका निरोध होता है, तब यह अनुत्पत्ति धर्म हो जाता है। इस निरोधको प्रति-संख्या (ज्ञान) निरोध कहते हैं। इस दृष्टिमार्गसे मार्गकी आरम्भकी भूमियोंमें ही प्रवेश हो सकता है। बाकी भावना अर्थात् समाधि द्वारा हेय हैं। रूपका निरोध समाधि द्वारा होता है। कुछ धर्म दर्शनहेय और कुछ भावनाहेय हैं। सत्कायदृष्टि ज्ञानसे दूर होती है। दस रूपी धर्म (५ इन्द्रिय, पाँच विषय) और पाँच विज्ञान भावनासे ही अपनीत होते हैं। बाकी तीन मन, धर्म, मनोविज्ञान दर्शनहेय भावनाहेय और अहेय हैं।

कामधातुके ऊपर रूपधातु, उसके ऊपर आरूप्यधातु है, जहाँ मनोधातु, धर्मधातु और मनोविज्ञानधातु ही पाये जाते हैं, और अन्य पन्द्रह धातुओंका अभाव रहता है। असंज्ञिसमापत्ति और निरोधसमापत्ति द्वारा ही इनका निरोध होता है। इसके अनन्तर धर्मोंका अत्यन्त निरोध होता है। इसे निर्वाण कहते हैं। संस्कृत धर्मोंके निरोधसे असंस्कृत धर्मोंका लाभ होता है। सर्वास्तिवादी निर्वाणको वस्तु मानते हैं, यह किसीका अभाव-मात्र नहीं है, यह स्वयं भाव है, यह एक पृथक् धर्म है। माध्यमिक इस मतका खंडन करते हैं। वे कहते हैं कि निर्वाण जब केवल तृष्णाका क्षय या निरोध है, तब उसे भाव नहीं कह सकते—जैसे, प्रदीपकी निवृत्तिको भाव नहीं कहते। इसके उत्तरमें सर्वास्तिवादी कहते हैं कि जिस निर्वाणाख्यधर्मके होनेपर तृष्णाका क्षय होता है, क्या उसे तृष्णाक्षय कहेंगे। चित्तका विमोक्ष होनेपर भी वह वस्तु, वह धर्म रहता है। सर्वास्तिवादी धर्मस्वभाव और धर्मलक्षण दोनों मानते हैं : निर्वाणमें धर्मलक्षण सदाके लिए निरुद्ध हो जाते हैं, पर निर्वाण धर्मका स्वभाव रह जाता है, परन्तु इस धर्ममें चेतना नहीं रहती। सौत्रान्तिक निर्वाणको वस्तु, भाव, धर्म नहीं मानते।

सर्वास्तिवादी	संसार (वस्तु)	निर्वाण (वस्तु)
सौत्रान्तिक	संसार (वस्तु)	निर्वाण (अभाव)
माध्यमिक	संसार (अभाव)	निर्वाण (अभाव)
विज्ञानवादी	संसार (अभाव)	निर्वाण (भाव)

बुद्ध निर्वाणकी प्राप्तिमें जातिको बाधक नहीं मानते थे। उनका कहना था कि जन्मसे न कोई ब्राह्मण होता है और न शूद्र। कर्मसे ही लोग ब्राह्मण और शूद्र होते हैं। तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दमसे ब्राह्मण होता है।

"तपेन ब्रह्मचरियेन संयमेन दमेन च।
एतेन ब्राह्मणो होति एतं ब्राह्मणमुत्तमं।
तोहि विज्जाहि सम्पन्नो सन्तो खीणपुनब्भवो ॥

(धम्मपद)

बुद्ध बाह्य क्रिया-कलापके विरुद्ध थे। शीलव्रतकी उन्होंने निन्दा की है। यद्यपि निर्वाण गृहस्थके लिए साध्य नहीं है, तथापि वह पुण्य संचय कर सकता है। बुद्धने गृहस्थोंको भूतदया, मैत्री और पाप-विरतिकी शिक्षा दी है।

बुद्धकी शिक्षाका सार बुद्धकी इस प्रसिद्ध गाथामें पाया जाता है :—

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्।
तेषां च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः ॥

[शेष आगामी अंकमें

प्रेम द्वारा शिक्षा

[लेखक :—स्वर्गीय मि० पियर्सन]

नवयुगके उदयका एक विशेष लक्षण यह है कि शिक्षाके सम्बन्धमें तथा अल्पवयस्क अपराधियोंके साथ किस प्रकारका बर्ताव किया जाय, इस सम्बन्धमें पश्चिमके प्रगतिशील देशोंमें नवीन प्रयोगोंकी परीक्षा की जा रही है।

अभी हालमें मैंने हालैण्डके अपराधी बालकोंके एक सुधारक कारागारका, जो एक आदर्श संस्था कही जाती है, निरीक्षण किया था। यह संस्था एक मनोहर स्थलमें ऊँची जमीनपर देवदारु-वृक्षके जंगलोंसे घिरी हुई अवस्थित है, और इसके मकान देखनेमें बड़े ही प्रभावोत्पादक जान पड़ते हैं। पर इसका दरवाजा कैदखाना जैसा है। एक दरबानने फाटककी ताली खोलकर हम लोगोंको इसके अन्दर दाखिल कराया और उसके सुपरिन्टेन्डेन्टको बुला भेजा। सुपरिन्टेन्डेन्ट एक लम्बी दाढ़ीवाला मनुष्य था, जिसके चेहरेसे तो कठोरताका भाव झलकता था, किन्तु उसके अधरोंपर करुणापूर्ण मुसकुराहट थी। मुझे सबसे बढ़कर आश्चर्य इस बातपर हुआ कि उसकी कमरमें चेनसे लगी हुई तालियोंका एक बड़ा गुच्छा लटक रहा था। इन तालियोंसे वह हरएक फाटकको, जिसके अन्दरसे होकर हम लोग गुजरते थे खोलता था और बन्द करता था। यद्यपि इन मकानोंमें कुल मिलाकर पाँच-सौ लड़के रहते थे, किन्तु उन स्थानमें एक प्रकारका भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। हमें पाठशालाकी विभिन्न कक्षाएं दिखलाई गईं जो बिलकुल अप-टू-डेट सजी हुई थीं। उसमें दस्तकारीकी शिक्षा देनेके लिए एक पृथक् विभाग था और उसके साथ-साथ एक आलीशान व्यायामशाला भी थी, किन्तु जहाँ कहीं हमें बालकोंसे साक्षात होता था, हम उन्हें उदास और नैराश्यपूर्ण पाते थे। एक बार जब हम उसके भीतर चारों ओर घूमकर देख रहे थे, सुपरिन्टेन्डेन्टने दृढ़तापूर्वक दो लोहेके फाटकोंको खोलकर हमें एक एकान्त कोठरी दिखलाई, जिसके अन्दर चौदह वर्षका एक अभागा लड़का खड़ा था। उसके बैठनेके लिए कुर्सी या तिपाई कुछ नहीं थी। उसे पढ़नेके लिए कोई पुस्तक भी नहीं दी गई थी और वह उसकी दोहरी चहारदीवारीके अन्दर इस प्रकार कैद था कि उसकी चिल्लाहट उसकी कोठरीकी दीवालके बाहर पहुँच ही नहीं सकती थी। मुझे बतलाया गया कि कारागारसे भाग जानेके अपराधमें उसे यह दण्ड दिया गया है। शायद उस संस्थाके बालकोंमें स्वतन्त्रताका सबसे अधिक प्रेमी वही बालक था, और उसे ही इस प्रकारका भयानक दण्ड दिया जा रहा था।

मुझे स्नान करनेका फौव्वारा और पर्यवेक्षण मंच दिखलाया गया, जिसपर एक नौकर बैठा हुआ देखता रहता था कि कोई बालक आत्म-हत्याकी कोशिश नहीं करने पावे। फिर मुझे शयनागार दिखलाया गया। यहाँ हरएक लड़का एक छोटी-सी बन्द कोठरीमें—जो उसे उसके अन्य साथियोंसे अलग कर देती थी—सोया करता था। सोनेके वे छोटे-छोटे कमरे इस प्रकार सजाये हुए थे कि उनमें उसमें रहनेवाले व्यक्तिकी आत्म-अभिव्यक्तिकी उत्कट भावना भली-भाँति झलकती थी। कुछ कमरोंकी दीवालोंपर चमकीले रंगके चित्र खींचे गये थे और दूसरोंमें माता-पिता, भाई या बहनकी तसवीरें बनाई गई थीं। बहुतसी दीवालोंपर सिरहानेसे क्रास-चिह्नके साथ ईसाकी तसवीर लटक रही थी। जिस समय मैं बरामदेसे होकर जा रहा था, मैंने एक बालककी ओर हाथसे इशारा किया, जो रसोई घरके बाहर काम कर रहा था। जवाबमें उस बालकने भी इशारा किया, किन्तु मेरे साथ जो मित्र थे, उन्होंने मुझे बतलाया कि अगर वह लड़का किसी दर्शककी ओर हाथका इशारा करता देख लिया गया, तो उसपर आफत आ जायगी।

इस मकानसे बाहर होनेके पूर्व मुझे एक कमरेमें ले जाया गया, जिसमें ताला नहीं लगा था। उस कमरेमें पुराने लड़कोंका एक हँसमुख झुण्ड था, जिसने आकर दर्शकोंको चारों ओरसे घेर लिया। हम लोग भी प्रसन्न होकर उनसे बातें करने लगे। अब तक जितने कमरोंको मैंने देखा था, उनकी तुलनामें इस कमरेके इस बदले हुए वातावरणको देखकर मैं आश्चर्य-चकित हो गया और सुपरिन्टेन्डेन्टसे इस परिवर्तनका कारण पूछा।

उसने इसका कारण बतलाते हुए मुझसे कहा—"ये पुराने लड़के हैं, जो सुधारक कारागारमें ठगोंके साथ रहे थे। इस समय उनमें से बहुतसे पड़ोसके शहरमें काम कर रहे हैं। इन्हें चलने-फिरनेकी पूरी आज़ादी दी गई है, और छोटे लड़कोंकी तरह इन्हें बन्द नहीं किया जाता है। इन्हें धूम्रपान तक करनेकी इजाजत है, जो १६-१७ वर्षसे अधिक उम्रके उन युवकोंका एक विशेष अधिकार समझा जाता है।"

यह सब देखकर मैंने पूछा—"इस प्रकारका प्रत्यक्ष सफल व्यवहार सभी लड़कोंके साथ क्यों नहीं किया जाता, जब कि इसका परिणाम इतना सुखद एवं सन्तोषजनक होता है?" किन्तु मुझसे कहा गया कि छोटे लड़के अभी इस तरहकी आज़ादीके लिए तैयार नहीं थे। इसका स्पष्ट अर्थ यह कि उन्हें सुखी होने देना अभीष्ट नहीं था।

यद्यपि हालैण्डके अन्य सुधारक कारागार शायद इससे अच्छे ढंगपर चलाये जाते हों, परन्तु जैसा कि मुझसे कहा गया है, अमेरिकाके बहुतसे सुधारक कारागारोंकी दशा भी ठीक ऐसी ही है। उनमेंसे एककी हालत मैं जानता हूँ, जहाँ लड़कोंको भोजनालयमें पृथक् पृथक् जाना पड़ता है और भोजनके समय उन्हें एक दूसरेके साथ बोलने नहीं दिया जाता। दूसरे कारागारमें लड़कोंको साधारण अपराधोंके लिए भी पानीके नीचे उनका सिर तब तक दबाकर रखा जाता है, जब तक कि उनका दम न घुटने लगे।

किन्तु अमेरिकाके एक स्थानमें मुझे एक ऐसे आदमीके कामका पता लगा है, जिसने दस वर्ष पहले बालक अपराधियोंके साथ इस विश्वासके आधारपर कि कोई लड़का खराब नहीं होता—बर्ताव करनेका प्रयोग शुरू किया था। मिचीगेन शहरके एलबियन स्थानमें इस प्रकारकी एक संस्था स्थापित है, जो 'Starr Commonwealth' कहलाती है। डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरने इस संस्थाका निरीक्षण किया था, और इस सम्बन्धमें उन्होंने इसके संस्थापक मि० फ्लोइड स्टारको जो पत्र लिखा था, वह यों है :—

"आपकी संस्थाको देखकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ, मानो मरुभूमिमें वह जीवन-प्रदानके लिए जलका स्रोत हो। दूसरी बड़ी चीज़ें विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जायँगी, किन्तु आपकी उस लघु शिक्षणशालाकी स्मृति मेरे जीवनके अन्त तक उसका एक अंग होकर क़ायम रहेगी, क्योंकि सत्यका संस्पर्श मुझे वहाँ मिला और मैं वहाँसे कुछ सीखकर आया। आप जो अपने बालकोंके लिए रचनात्मक :कार्य कर रहे हैं, उसे देखकर मुझे वास्तविक आनन्द प्राप्त हुआ, क्योंकि आप यह सिद्ध कर दिखा रहे हैं—और जैसा कि मेरा दृढ़ विश्वास रहा है—कि सहानुभूतिका बर्ताव करनेसे और विश्वास करनेसे प्रत्येक बालकके अन्दरके गुण विकसित होने लगते हैं।

मि० स्टारने अपने लड़कोंपर पूर्णतः विश्वास करनेके संकल्पको लेकर अपनी संस्थाको प्रतिष्ठित किया था। उनके बालक अपराधियोंमें एक सबसे शुरूका बालक जिस नगरमें रहता था, उस नगरके जजने उसे एक ऐसा लड़का मान रखा था, जिसका सुधार नहीं हो सकता। सेंध देने और डाका डालनेके अपराधमें वह अदालतमें बार-बार अभियुक्तके रूपमें लाया गया था। उसकी अवस्था तेरह वर्षकी थी और जब वह अदालतके सामने लाया गया, तो उसपर आठ अलग-अलग अभियोग लगाये गये थे। जजने अन्तमें यह निर्णय किया कि उसे सुधारक कारागारमें भेज दिया। मि० स्टार उस समय अदालतमें उपस्थित थे, उन्होंने उस लड़केको अपनी संस्थामें ले जानेके लिए अदालतकी अनुमति माँगी। उन्हें इस शर्तपर अनुमति दी गई कि वह लड़केके सदाचरणके लिए

जिम्मेदार होंगे। घर पहुँचकर मि० स्टारने उस लड़केसे कहा—"देखो हेराल्ड, आजसे तुम हमारे परिवारके आदमी हुए। मैं अपना दरवाजा कभी बन्द नहीं करता और अपनी कुछ नकद पूँजी इस दराज़में रखा करता हूँ, जिसकी चाभी मैंने खो दी है। तुम्हें ऊपरके तल्लेमें सोना है, और यदि तुम चाहो, तो रातमें उठकर दराज़में रखे हुए रुपयेसे अपनी जेब भरकर मज़ेमें चुपकेसे इस घरसे निकल भाग सकते हो। इस कामके करनेमें तुम्हें कोई रोक नहीं सकता, *किन्तु मैं जानता हूँ कि तुम कदापि ऐसा नहीं करोगे।"*

मि० स्टारके इस कथनको सुनकर उस लड़केकी आँखोंमें अवर्णनीय आश्चर्यकी जो झलक दिखाई पड़ने लगी, उसका वर्णन उन्होंने मुझसे किया है। वह लड़का कुछ समय तक मौन रहा, फिर एकाएक अपना हाथ निकालकर बोला—"देखिये, यदि आप मेरे साथ इस तरह सरल व्यवहार करने जा रहे हैं, तो मैं समझता हूँ कि मैं भी आपके साथ वैसा ही कर सकता हूँ। आजसे पहले मुझपर कभी किसीने विश्वास नहीं किया था।"

उस दिनसे आज तक हेराल्डने फिर कभी एक क्षणके लिए भी उपद्रव नहीं किया है। एक वर्षके बाद वह एक पब्लिक स्कूलके लड़कोंके कैम्पके साथ गया, जहाँ उसे सब लड़कोंकी सम्मतिसे एक 'कप' प्रदान किया गया। इस घटनाको बीते आजसे सात वर्ष हो गये और इस समय हेराल्ड मि० स्टारके एक अत्यन्त उपयोगी सहायकके रूपमें काम कर रहा है।

मि० स्टारके काम शुरू करनेके कुछ समय बाद एक आगन्तुक उनके पास उनका काम देखनेके लिए आया। वह किसी सुधारक कारागारके सम्बन्धमें—जिसका निरीक्षण उसने किया था—चर्चा करने लगा। उसने उस कारागारके उत्तम प्रबन्धका ज़िक्र करते हुए कहा—'बी० नामक एक न्यायाधीश अपने यहाँके खराबसे खराब मामलेके अभियुक्तोंको, यहाँ तक कि सेंध लगानेवाले और जालसाज़ी करनेवाले अपराधियोंको भी उसी कारागारमें भेजा करता था। जिस समय वह यह बात कह रहा था, उसने कमरेमें एक तेज मुखमण्डल-वाले बालकको देखा, जो कुछ बेचैन-सा दीख पड़ा। आखिर वह उस कमरेसे बाहर चला गया। मि० स्टारने बताया कि वह बालक जज बी० के अपराधियोंमें से ही एक है, जो चोरी और जालसाज़ी करनेके अपराधमें वहाँ भेजा गया था।

इसपर वह आगन्तुक बोल उठा—"किन्तु क्या यह वही लड़का नहीं है, जो आपकी गाड़ीपर आपके साथ था, जब आप मुझसे स्टेशनपर मिले थे?"

मि० स्टारने कहा—"हाँ"।

आगन्तुक—"आपने उसे गाड़ीसे उतरकर शहरमें संगीत सीखनेके लिए जाने दिया था न?"

मि० स्टार—"हाँ।"

—'और वापसी गाड़ी भाड़ाके लिए आपने उसे कुछ रुपये भी दिये थे?"

—"हाँ।"

—"किन्तु क्या यह खतरनाक नहीं है? आप किस प्रकार उसपर विश्वास कर सकते हैं?"

"मैं उसपर विश्वास करता हूँ," मि० स्टारने कहा—"क्योंकि उसने एक क्षणके लिए भी अपने ऊपर शक करनेका मुझे कभी मौका नहीं दिया। उसे यहाँ रहते हुए छै महीने हो गये और इसके अन्दर उसका बर्ताव बहुत ही अच्छा रहा है। वह मेरे सर्वोत्तम लड़कोंमेंसे एक है।"

"उसके सम्बन्धमें सारी बातें कह सुनाइये।" आगन्तुकने कहा।

"इसकी कहानी जैसी और बहुत-सी कहानियाँ मैं आपको सुना सकता हूँ, पर यह कहानी भी रोचक है, क्योंकि इससे मालूम होता है कि विश्वास करनेसे एक बालकपर उसका कैसा प्रभाव पड़ता है।" इसके बाद मि० स्टारने निम्न-लिखित कहानी कह सुनाई—"राल्फके पिताने उसकी माताको परित्याग कर दिया था, और उस माताकी देखभालमें ही बालक राल्फ छोड़ा गया। इस अवस्थामें मजबूर होकर

राल्फकी माताको कहीं बाहर कामपर जाना पड़ता था, अतएव वह अपने पुत्रके लिए बहुत अधिक समय नहीं दे सकती थी। राल्फ आवाराकी तरह इधर-उधर घूमता-फिरता, स्कूल छोड़कर भाग जाता और अपने उन साथियोंके साथ लड़ता-झगड़ता, जिन्हें उसीकी तरह रहनेका कोई ठिकाना नहीं था। अच्छा कपड़ा पहनना वह बहुत पसन्द करता था, और अपनेको भद्दी या मैली हालतमें देखा जाना वह सहन नहीं कर सकता था, किन्तु अच्छी पोशाक पहननेके लिए उसके पास रुपये नहीं थे। एक दिन वह एक जालीचेक बनाकर और उसे भुनाकर गायब हो गया। अदालतके सामने वह कई बार लाया जा चुका था और घरपर रहकर सुधरनेका उसे बहुत बार मौक़ा दिया जा चुका था। इस बार जजने उसे इस तरहका दूसरा मौक़ा देनेसे बिलकुल इनकार कर दिया। उस लड़केके मित्रोंने मि० स्टारसे उसे अपने आश्रममें ले जानेके लिए कहा। मि० स्टारने यह देखकर कि उसे सुधारक कारागारमें भेजनेके सिवा और दूसरा कोई उपाय नहीं है, अपने यहाँ ले जाना क़ुबूल कर लिया। इस ज़िम्मेवारीको अपने ऊपर लेनेके पूर्व उन्होंने उस लड़केकी ओर मुख़ातिब होकर कहा—'राल्फ! मैं तुमपर विश्वास करनेका इरादा रखता हूँ, और मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम मेरे साथ सद्‌व्यवहार करोगे या नहीं।'

इसके उत्तरमें राल्फ कुछ अधिक न कहकर सिर्फ इतना ही बोला—'हाँ, मैं वादा करता हूँ कि मैं ज़रूर करूँगा।'—''

मि० स्टार उस लड़केको अपने यहाँ ले गये, और वह अपने वचनसे कभी पीछे नहीं टला। उन्हें उस लड़केके साथ सिर्फ इतनी ही दिक़्क़त थी कि बहुत दिनों तक उसका ख़याल बना रहा कि मनुष्य बननेके लिए अच्छी पोशाक होना ज़रूरी है। एक दिन जब मि० स्टार अपने खेतमें हल चला रहे थे, एक गाड़ी वहाँ आ पहुँची, जिसे देख राल्फ दौड़ा वहाँ आया और कहने लगा—''फ्लोइड काका, जल्दीसे आइये और अपनी पोशाक बदल डालिये, जब तक कि आपसे मिलनेवाले आगन्तुक यहाँ न आ जायँ।''

इसपर मि० स्टारने जवाब दिया—''मैं तो हरगिज़ ऐसा न करूँगा। यदि मुझसे मिलनेवाले आगन्तुक मेरी अच्छी पोशाक देखना चाहते हैं, तो तुम उन्हें मेरे कमरेमें ले जाओ और मेरे कपड़ेका सन्दूक खोल डालो। मेरे कपड़ेको वे एक कोनेमें लटका हुआ देखेंगे, किन्तु यदि वे मुझे देखना चाहते हैं, तब तो मुझे वे यहाँ बाहरमें ही देख सकते हैं।''

दूसरे सालसे जब राल्फ नित्य तीन मील दूर स्कूल जाने लगा था और शहरके सब बालक-बालिकाएँ उससे परिचित हो गई थीं, वह मि० स्टारके कामनवेल्थके लिए कोयला लानेको घोड़ा गाड़ी बहुधा हाँक कर ले जाया करता था। इस अवस्थामें उसे कोयला भरा हुआ कपड़ा पहने हुए अपने मित्रोंको अभिवादन करनेमें कभी लज्जा नहीं मालूम पड़ती थी। इस समय वह लड़का ख़ूब अच्छी तरह काम कर रहा है, और वह इतना प्रसन्नचित्त और साफ़-सुथरा लड़का मालूम पड़ता है, कि उसे देखना आप पसन्द करेंगे।

वाल्डोकी कहानी भी राल्फके समान ही रोचक है। इस कहानीका आरम्भ बालकोंके प्रति निष्ठुरताका व्यवहार रोकनेवाली समितिके दफ़्तरसे होता है, जिसके सिपुर्द यह बालक बहुत अल्प अवस्थामें किया गया। ''यह एक बालक था, जिसके माँ-बापके नाम अज्ञात थे और अवस्था लगभग चार-पाँच वर्ष की थी।'' यह एक शहरकी गलीमें पड़ा पाया गया। उस समय वह अपना कोई हाल नहीं बता सका, सिवा इसके कि उसकी माँ हाल ही में उसे तथा उसकी एक छोटी बहनको पिताके हवाले छोड़कर मर गई थी। उसकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके पिता उन बच्चोंको घर ले गया। कुछ समयके बाद उसका पिता छोटी लड़कीको साथ लेकर और लड़केको घरपर ही छोड़कर कहीं बाहर चला गया। बहुत दिनोंके बाद वह अपने घर वापस आया, किन्तु उस समय वह अकेला ही था। एक दिन उसका पिता उसे बाजार घुमानेके लिए ले गया, और जिस समय वह लड़का एक रोशनीसे सजी हुई दूकानको

देखनेमें व्यस्त हो रहा था, उसका पिता वहाँसे गायब हो गया, और उस लड़केने अपनेको जनाकीर्ण गलियोंमें अकेला पाया।

उस बालकको अपने पहले घरके सम्बन्धमें जो कुछ याद है, वह इतना ही है। पाँच वर्ष तक उस लड़केकी देख-भाल कई लोगोंने की, किन्तु वह इतना बदज़बान निकला और उसकी आदतें इतनी गन्दी थीं कि कोई भी कुटुम्ब उसे अपने साथ रखनेको राजी नहीं हुआ। इसके सिवा जब कभी मौका मिलता, वह झूठ बोलता और चोरी करता था। आखिर वह बालक अपराधियोंकी अदालतके सामने उपस्थित किया गया, और मि० स्टारसे उसे अपने यहाँ ले आनेके लिए कहा गया। उसका नाम 'बाल्डो मेहम' रखा गया है, किन्तु उसका जन्म कब हुआ, यह कोई नहीं बता सकता।

जिस दिन वह कामनवेल्थमें लाया गया, वह दिन शरद्-ऋतुका एक सर्द और सुनसान दिन था। उसके वहाँ पहुँचनेपर मि० स्टारकी माँने उसे अपने पास सोफापर बैठाया, और उससे पूछा—"बाल्डो! मुझे आश्चर्य होता है कि क्या कोई भी ऐसा आदमी है, जो तुम्हें प्यार करता हो?" उसके इस प्रश्नको सुनकर उत्तर देते हुए उस लड़केके होंठ काँपने लगे और उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आँखोंमें आँसू भर आये—"शायद स्थायी ईश्वरके सिवा और दूसरा कोई नहीं।"

इस घटनाको बीते कई वर्ष हो गये, और उस समयसे अब तक उस लड़केके पूर्वजोंके सम्बन्धमें बहुत-कुछ अनुसन्धान किया गया, किन्तु कोई भी पता नहीं लग सका है। उसे अपने घरके अन्तिम दिनोंकी क्षीण स्मृतिके सिवा और कुछ भी याद नहीं रह गया है। इस समय वह लड़का एक स्वस्थ, सुदृढ़ एवं शक्तिशाली नवयुवक है, जो खेतमें अच्छी तरह काम करता है और जीवनका उपभोग करता है। कामनवेल्थमें दो वर्ष रहनेके बाद, एक दिन वह बड़े दिनके त्योहारके एक रोज़ पहले मि० स्टारके पास आया, और उनसे बोला—"फ्लोइड काका! मेरे पास कुछ भी पैसे नहीं हैं, किन्तु मैं चाहता हूँ कि केट्रोयारके गरीब बालकोंकी कुछ सहायता करूँ और इस प्रकार बड़े दिनका पर्व आनन्दपूर्वक मनाऊँ। क्या आप मुझे इस त्योहारके पहले दो-एक सन्ध्या बिना भोजनके रहकर उससे बचे हुए पैसेको कुछ दीन बालकोंके पास भेजने देंगे? यदि मैं यहाँ नहीं होता, तो आजकी रात किसी दरवाजेकी सीढ़ियोंपर या किसी पुलके नीचे सोकर बिताता। इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाले सैकड़ों लड़के हैं।"

इसपर मि० स्टारने यह सुझाया कि शायद कामनवेल्थके दूसरे लड़के भी इसी तरह करना पसन्द करें, और जब रातमें भोजनके समय बाल्डोने यह प्रस्ताव किया, तो किसीने उसका विरोध नहीं किया और वह सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ। उस समयसे बराबर प्रति वर्ष बड़े दिनके त्योहारके अवसरपर कामनवेल्थके लड़के स्वेच्छापूर्वक एक सन्ध्याके उत्तम भोजनसे स्वयं वंचित रहा करते हैं, ताकि वे गरीब लड़कोंको भोजन दे सकें। गत वर्ष पड़ोसके एक शहरके उन लड़कोंके लिए २५ डालर स्टर्लिंग दूधका प्रबन्ध करनेके लिए दिया गया, जिनके माता-पिता इतने गरीब थे कि वे स्वयं अपने बच्चोंके लिए दूधका प्रबन्ध नहीं कर सकते थे।

स्टार-कामनवेल्थमें किस ढंगसे काम हो रहा है, यह दिखानेके लिए ऊपर दिये गये दृष्टान्त ही काफ़ी हैं। इन दृष्टान्तोंमें प्रत्येक दृष्टान्त अथसे इति तक बिलकुल सत्य है और इसी प्रकारकी दर्जनों घटनाओंका परिचायक है, जो नित्य ही स्कूलमें होती रहती हैं। जो लोग इस संस्थाको देखने आते हैं, वे यहाँके लड़कोंकी प्रसन्नता और वीरोचित भावको देखकर चकित रह जाते हैं। वे लड़के उन आगन्तुकोंके साथ इस सचाईके साथ हाथ मिलाते हैं और उनकी तरफ सीधी आँखें करके देखते हैं, जिससे यह साफ झलकने लगता है कि वे कैसा स्वच्छ एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पड़ोसके अलबियन नामक शहरके एक सौदागरने अभी हालमें कहा था कि स्टार-कामनवेल्थके लड़के अपने शिष्ट एवं विनम्र व्यवहारके कारण दूसरे लड़कोंसे सहजमें ही विभक्त किये जा सकते हैं। और ये वही लड़के हैं, जिनमें अधिकांश सरकार द्वारा

'अपराधी' करार दिये चुके हैं, और उनमें से बहुतोंको तो खुद उनके माता-पिता तक अपने पास रखना नहीं चाहते। जिनके अपने घर हैं, वे भी इस प्रकारकी परिस्थितिमें शुद्ध एवं स्वस्थ मनुष्यत्व अपनेमें विकसित नहीं कर सकते।

इस प्रसंगमें यह प्रश्न हो सकता है कि क्या वे लड़के कभी कोई उत्पात नहीं करते? इस प्रश्नका उत्तर है कि ज़रूर करते हैं और अगर वे करेंगे नहीं, तो फिर वे लड़के ही क्योंकर कहलायेंगे? किन्तु उनका उपद्रव उसी ढंगका होता है, जो बढ़ते हुए लड़कोंके लिए और यौवन कालके लिए—जब कि नवयुवकोंको अपने तईं वृद्ध पुरुषों द्वारा शासित संसारकी आवश्यकताओंके अनुसार बनाना पड़ता है—अवश्यम्भावी है। कभी-कभी लड़के भाग जाते हैं, इसलिए नहीं कि यहाँ उन्हें आनन्द नहीं मिलता, बल्कि उनमें घूमने-फिरनेकी एक लालसा होती है, जो समस्त स्वस्थ बालकोंका एक विशिष्ट लक्षण है। अकसर दो लड़के एक साथ भाग जाते हैं और उन्हें दौड़-धूप करने तथा कोई साहसिक काम करनेका मौक़ा मिल जाता है, जब तक कि वे फिर पुलिसके हाथमें पड़ जाते और फिर क़ानूनी शिकंजोंसे जकड़ दिये जाते हैं। फिर जब वे यहाँ वापस लौटकर आते हैं, तो यहाँ उनकी स्वतंत्रताका अपहरण करके दण्डित नहीं किया जाता, यद्यपि कभी-कभी कौन्सिल उन्हें किसी रूपमें वंचित कर देनेका निश्चय करती है। अभी आखिरी वक़्त जो तीन लड़के भाग गये थे, वे तो फिर कामनवेल्थके जीवनमें इस तरह आकर मिल-जुल गये, मानो वे छुट्टी मनाने गये हों। वे तीनों संध्याकाल उस समय पहुँचे, जब कि स्कूलके मकानमें बायस्कोपका साप्ताहिक तमाशा शुरू होने जा रहा था, और दूसरे लड़कोंके बीच वे इस प्रकार बैठ गये, मानो कुछ हुआ ही नहीं हो।

जो लोग कामनवेल्थमें काम करते हैं, वे इस विषयका कभी ज़िक्र नहीं करते। शिक्षक और मालकिन इस विषयको मि० स्टारपर ही छोड़ देती हैं कि वे खुद उन घुमक्कड़ लड़कोंसे अलग-अलग मिलकर बातें कर लेंगे। उन तीन लड़कोंको जो दण्ड दिये जानेका निश्चय हुआ, वह यही था कि 'उनके क्लासके साथियोंने जो खेल-तमाशा मनाया था, उसमें भाग लेनेसे उन्हें वंचित कर दिया गया, इसलिए वही तीन लड़के ऐसे थे जो खेल-तमाशेके कार्य्य-क्रममें भाग नहीं ले रहे थे। वे दर्शकोंके बीच बैठे हुए बिलकुल लज्जित-से जान पड़ते थे।

एक दिन मेरी उपस्थितिमें एक लड़केकी सौतेली माँ उसे देखने वहाँ पहुँची थी। वह लड़का अपने शहरकी गलियोंमें आवाराकी तरह घूमता-फिरता था, और उसके सुधरनेकी कोई आशा नहीं रह गई थी। उसका पिता एक प्रतिष्ठित पुरुष था। वह लड़का खिड़कियोंके शीशे फोड़ने दुकानोंमें से चीज़ चुरा लेने तथा इसी तरहके और और उत्पात करनेके कारण अपने पड़ोसियोंके लिए एक भारी बला हो रहा था। कामनवेल्थमें आनेके बादसे वह प्रफुल्ल और सुखी जान पड़ रहा है, और उसका व्यवहार बिलकुल भले-आदमी जैसा हो रहा है। उसकी माँने कहा कि इस लड़केमें एक महीनेके अन्दर यहाँ रहते हुए जितना परिवर्तन हुआ है, उतना परिवर्तन उसने कभी किसीमें नहीं देखा था।

अच्छा, तो इस आश्चर्यजनक घटनाका कारण क्या है? जो लोग इनमेंसे अधिकांश लड़कोंके पूर्वके गृह-जीवनसे परिचित थे, उनके लिए तो इन बालकोंमें चरित्रका इस प्रकार परिवर्तन होना जादूकी करामातसे कुछ ही कम जैसी घटना प्रतीत होती है, किन्तु इस रहस्यके दो भेद हैं। पहला तो मि० स्टारका बालकोंके प्रति रुख है। वे उनपर विश्वास रखते हैं और उन्हें इस तरह प्यार करते हैं, मानों व उनके अपने बेटे हों। कामनवेल्थ एक संस्थाके रूपमें नहीं है, बल्कि यह तो घर जैसा है। लड़कोंके जन्म-दिनकी स्मृति मनाई जाती है, समय-समयपर उन्हें भोजन दिया जाता है, जैसा कि किसी भी अच्छे घरमें उन्हें दिया जाता। उन्हें बुद्धिमान बननेके लिए प्रोत्साहित किया जाता है। उन लड़कोंमें एक मधुमक्खी पालता है, दूसरा चिड़ियोंके सम्बन्धमें अध्ययन करता है और तीसरा कलकाँटोंमें

दिलचस्पी होता है। मि० स्टारका विश्वास है कि उन लड़कोंकी पोशाककी विभिन्नतासे उनका व्यक्तित्व जितना परिलक्षित होता है, उतना और किसी दूसरी चीज़से नहीं।

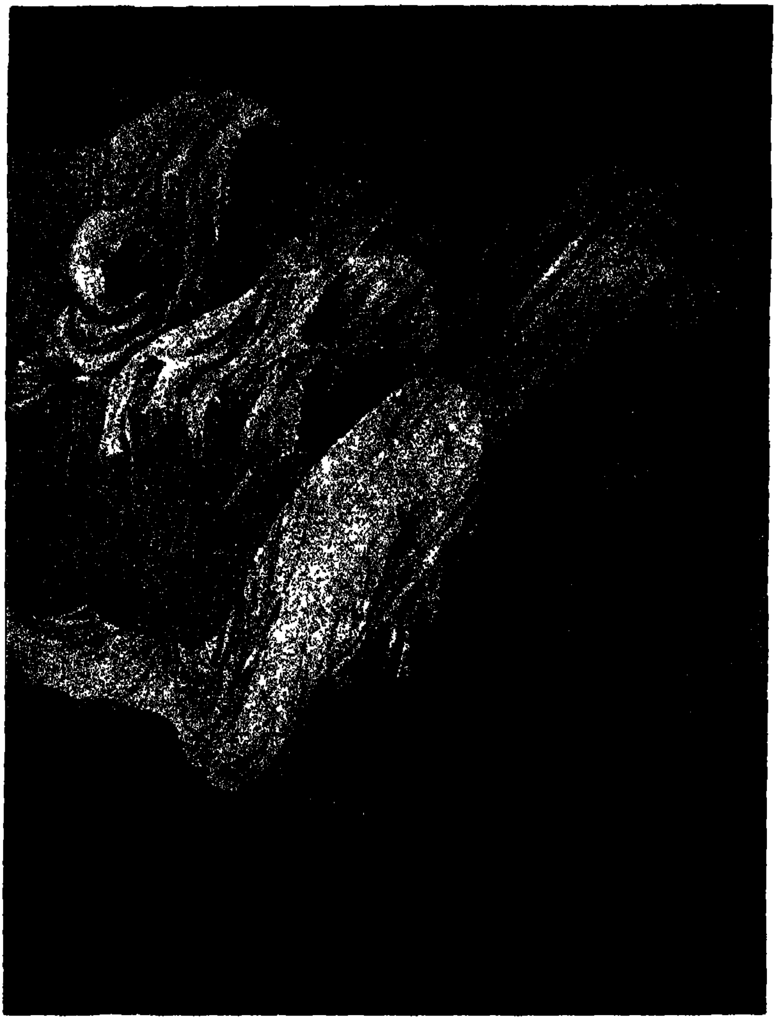
कामनवेल्थके सब लड़के मि० स्टारको 'काका फ्लोइड' कहा करते हैं, यह बात खास तौरपर ध्यान देने-योग्य है। जो कोई कुछ दिनोंके लिये भी कामनवेल्थमें रहा है, वही जान सकता है कि वे लड़के मि० स्टारके प्रति कितने अनुरक्त हैं। जब वे लड़के मि० स्टारको Canpus को आर-पार करते देखते हैं, तो वे उन्हें पुकारते हैं—"हलो! काका फ्लोइड।" एक दिन यहाँकी एक यात्रीने कुछ लड़कोंको आपसमें बातचीत करते सुना। जिनमें एकने दूसरेसे कहा,—मैं समझता हूँ कि काका फ्लोइड अमेरिकाके सबसे धनी मनुष्योंमें से एक हैं। इसपर उस यात्री माँने पूछा—"कैसे?" उस लड़केने उत्तर दिया—"चूँकि हम सब लड़के उन्हें इतना अधिक प्यार करते हैं।"

यह पिछली बात पहली बातका ही अवश्यम्भावी परिणाम है। जहां लड़कोंके प्रति इस प्रकारका भाव प्रदर्शित होता है, वहां आप-से-आप उनमें ऐसा सार्वजनिक मत तैयार हो जाता है कि उनके लिए यह गौरवकी बात होती है कि उनमेंसे कोई भी ऐसा काम नहीं कर डाले, जिससे स्टार कामनवेल्थके सद्नामपर कलंकका टीका लगे। जैसा कि विचारपति होटने अपनी हालकी एक पुस्तक "Quicksands of Youth" में लिखा है—'बहुधा यह बात बड़ी ही विचित्र और सन्तोष-जनक होती है कि लड़के किस प्रकार अपनी दशाओंको सुधार करनेमें मदद पहुँचानेके लिए तत्पर और इच्छुक बन जाते हैं। यदि उन्हें यह बात समझा दी जाय, किस प्रकार क्योंकर उनकी सहायता कामकी हो सकती है। किन्तु इसके लिये उनसे मनुष्योचित ढंगसे पूरी ईमानदारीके साथ अपील की जाय; क्योंकि पागल जैसा उनके साथ बर्ताव करना या कठोर अनुशासन जारी करना उनकी सहानुभूति प्राप्त करने या उनके हृदयमें दिलचस्पी उत्पन्न करनेके लिये समानरूपसे निरर्थक सिद्ध होगा।

बन्द मामलोंमें तो मैंने देखा है कि शान्ति और व्यवस्थाके क़ायम रखनेमें खुद लड़के जैसे कारगर सिद्ध हुए हैं वैसे और दूसरे कोई नहीं, बशर्ते कि उनके साथ उचित ढंगसे बर्ताव किया जाय, और उन्हें उचित मार्ग प्रदर्शित किया जाय।

मि० स्टार लड़केके अन्दर पाये जानेवाले उत्तम गुणोंपर ही ज़ोर देते हैं और उसमें उन्हें कदाचित ही कभी निराश होना पड़ा है। उनका यह प्रयोग इतना सफल हुआ है कि लड़कोंके सुधार करनेमें जितने प्रयत्न किये जायँ, सबमें इसकी परीक्षा होनी चाहिये। सर होरेस प्लंकेटने अभी हालमें स्टार कामनवेल्थका परिदर्शन किया था और इस सम्बन्धमें उन्होंने अपने एक मित्रको जो पत्र लिखा था, उसमें मि० फ्लोइडस्टारके कामकी बड़ी तारीफ़ की गई थी। उन्होंने लिखा था—"इन मानवीय विकासके सिद्धान्तोंकी परीक्षा करना निश्चय ही लाभदायक है, जिसे मि० स्टारने कतिपय व्यक्तियों एवं सुविधा-जनक दशाओंमें इतनी आश्चर्य-जनक सफलताके साथ अपनाया है। मैंने जिस समय उनके लड़कोंके साथ बातचीत की तो मुझे उन भावोंका पता लगा, जो उन लड़कोंके हृदयपर अङ्कित हो गये थे, उस समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि उनमेंसे हरएक लड़का भविष्यमें किसी-न-किसी रूपमें एक मिशनरी सिद्ध होगा।

इस बातको हृदयङ्गम कर लेना आवश्यक है कि किसी लड़केके सुधारकी उतनी जरूरत नहीं है, जितनी उसकी परिस्थितिके सुधारकी। खुद वह लड़का ही अपने सुधार करनेके प्रयत्नमें सहयोग प्रदान करनेके लिए हमेशा तैयार रहता है। जैसा कि मि० एल० ई० मेयर्सने, जो शिकागोंके बालकोंके बीच काम करनेवालोंमें एक अनुभवी कार्यकर्ता गिने जाते हैं कहा है—"जिन लोगोंने बहुत दिनों तक बालकोंके बीच काम करते हुए अनुभव प्राप्त किया है, सब इस बातपर सहमत हैं कि आमतौरसे लड़के मूलतः भले ही हुआ करते हैं और अनुभवसे यह बात निःसन्देह सिद्ध हो चुकी है कि अल्प बुद्धिवाले लड़के भी यदि हम उन्हें सहायता देनेकी चेष्टा करें, तो हृदयसे सुधारकी ओर आगे बढ़नेके लिए तैयार हो जाते हैं।"



बुरे दिन

[चित्रकार—श्री असितकुमार हालदार]

Prabasi Press

शरीरपर क्षय-कीटाणुओंका प्रभाव

(क्षय-संक्रमण, अति चैतन्यता, रोग-क्षमता)

[लेखक —डा० शंकरलाल गुप्त, एम-बी,बी-एस]

पिछले अंकमें 'क्षय-कीटाणु' शीर्षक निबन्धमें क्षय-कीटाणुओंका वर्णन किया गया था, और यह बतलाया गया था कि क्षय-कीटाणु किन-किन मार्गोंसे मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं। इस लेखमें इस बातकी आलोचना की जायगी कि शरीरमें कीटाणुओंका प्रवेश होनेपर क्या प्रभाव होता है।

जिस समय क्षय-कीटाणु किसी मार्गसे उसकी स्वाभाविक रुकावटोंको पारकर शरीरमें प्रवेश करते हैं, तो शरीरके अवयव उनका स्वागत नहीं करते, प्रत्युत उनको नष्ट करनेका पूरा प्रयत्न करते हैं, दूसरी ओर कीटाणु भी अपना अधिकार जमानेकी चेष्टा करते हैं, क्योंकि उनकी आत्म-रक्षा तथा वंश-रक्षाके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें मानव-शरीरमें कहीं-न-कहीं ठहरनेके लिये स्थान मिले। शरीरके बाहर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, परोपजीवी (Parasite) होनेके कारण यह कीटाणु बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकते और न वृद्धि होकर उनका वंश स्थिर रह सकता है, अतएव दोनोंमें घोर जीवन-संग्राम आरम्भ हो जाता है। इस संग्रामके परिणामपर ही क्षय-रोगका होना या न होना निर्भर होता है।

जब मनुष्य संसारमें जन्म लेता है, उस समय क्षय-कीटाणुओंके आक्रमणसे मुक्त होता है, परन्तु जन्म लेनेके अनन्तर धीरे-धीरे अवसरानुसार क्षय-कीटाणुओंसे उसका संपर्क होने लगता है। इनके आक्रमणसे कदाचित ही कोई भाग्यशाली पुरुष प्रौढ़ावस्था तक बचता हो। अधिकांश मनुष्योंका शिशुकाल और बाल्य कालमें ही इनसे संपर्क हो जाता है। यह अनुमान किया गया है कि बीस वर्षकी आयु तक लगभग ६० प्रति-शत जन संख्यापर क्षय-कीटाणुओंका आक्रमण हो जाता है। क्षय-कीटाणुओंकी विश्व-व्यापकताको देखते हुए इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं प्रतीत होती, परन्तु इसको समझनेके लिए यह बतलाना आवश्यक है कि 'क्षय-संक्रमण' और 'क्षय-रोग' में बड़ा अन्तर होता है। क्षय-कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश होकर आक्रमण करनेको 'क्षय-संक्रमण' कहते हैं, और जब हमारा शरीर सफलता-पूर्वक इस आक्रमणको सहन कर लेता है, तो केवल संक्रमण होकर ही रह जाता है; परन्तु जब जीवन-संग्राममें शरीरको हराकर कीटाणु अपना अधिकार जमा लेते हैं, तो 'क्षय-रोग' उत्पन्न हो जाता है।

आक्रमणका विवरण

जिस समय क्षय-कीटाणु फेफड़ेके किसी विभागमें पहुँचते हैं, तो वहाँपर, उनके विषैले होनेके कारण, खलबली मच जाती है। इस खलबलीको वैज्ञानिक भाषामें 'प्रदाह' कहते हैं। इसके अतिरिक्त कीटाणुओंके विष रक्तमें मिलकर उसके संचालनसे समस्त शरीरमें फैल जाते हैं, इसलिए संपूर्ण शरीरपर उनका कुछ-न-कुछ प्रभाव हो जाता है। कीटाणुओंके पहुँचते ही, उनके उत्पातसे कुपित होकर स्थानीय सेलों (Cells)से एक विशेष प्रकारकी सेलें उत्पन्न हो जाती हैं, जो कीटाणुओंके प्रतिरोधके लिए आकर चारों ओरसे उनको घेर लेती हैं। उनकी (सेलोंकी) सहायताके लिए लसिकासे लसिका-कण और रक्तके श्वेत रक्त-कण उस स्थानपर पहुँच जाते हैं। इनका मुख्य कार्य शरीरकी रक्षा करना है, इस कारण हम इनको शरीरके सिपाही कह सकते हैं। बहुतसी सेलोंके एक स्थानपर एकत्रित होनेसे उस स्थानपर एक गुठली-सी प्रकट होने लगती है। क्षय-कीटाणुओंकी उत्तेजनासे उत्पन्न होनेके कारण उसको 'क्षयार्बुद' (Tubercle) कहते हैं। चूँकि इस प्रदाहमें स्थानीय सेलोंकी वृद्धि होती है, इसलिए इसको 'वृद्धि-युक्त प्रदाह' (Productive

inflamation) कहते हैं। यदि क्षय-कीटाणुओंकी संख्या और उनकी रोगोत्पादक शक्ति (Virulence) कम होती है, तो शरीरकी रक्षक सेल उनको नष्ट कर देती हैं और क्षयर्बुद विलीन होकर फेफड़ेका भाग फिर ज्यों-का-त्यों हो जाता है।

कीटाणुओंको मारनेके अतिरिक्त लसिकाणु उनको पकड़कर उस भागसे सम्बन्ध रखनेवाली लसिका-ग्रन्थियोंमें ले जाते हैं, जहाँपर वे वर्षों तक सजीव बन्द पड़े रहते हैं, और आगे चलकर भविष्यमें यही बन्दी कीटाणु अवसर पाकर कभी-कभी उत्तेजित हो जाते हैं और रोग उत्पन्न कर देते हैं। जब कीटाणुओंकी संख्या अधिक होती है या उनकी रोगोत्पादक शक्ति प्रबल होती है, तो वे शरीरकी रक्षक सेलोंको मारकर शरीरके उस भागको नष्ट कर देते हैं। शरीरके नाश होनेका प्रकट रूप क्षयार्बुद (गिल्टी) का पकना होता है। प्रथम स्थानपर विजय-प्राप्तकर क्षय-कीटाणु क्रमशः आगे बढ़ते हैं, और इस प्रकार नये-नये क्षयार्बुद बनते जाते हैं। क्षयार्बुदके पककर फूटनेपर कीटाणु लसिका और रक्तमें मिलकर उनके साथ-साथ अन्य स्थानोंमें पहुँच जाते हैं और वहाँपर भी रोग उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार कीटाणुओंका आक्रमण-क्षेत्र बढ़ता जाता है। अंतमें तीव्र क्षयसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकारका तीव्र क्षय बहुधा शिशु-कालके प्रथम दो वर्षोंमें पाया जाता है।

जब कीटाणुओं और शरीरकी शक्ति लगभग बराबर होती है, तो दोनोंमें से कोई भी एक दूसरेको नष्ट नहीं कर सकते। ऐसी दशामें शरीरकी रक्षक सेलें कीटाणुओंको आगे नहीं बढ़ने देतीं और उसी स्थानपर बन्द करनेकी चेष्टा करती हैं, इसलिए कीटाणुओंके चारों ओर तंतुका घेरा-सा बना देतीं हैं और उसमें खटिक पदार्थ जमा होने लगता हैं। इस प्रकार कीटाणुओंके चारों ओर एक प्रकारकी व्यूह-रचना-सी हो जाती है, ताकि क्षय-कीटाणु उस स्थानसे बाहर न निकल सकें। खटिक पदार्थ जमा होनेसे क्षयार्बुद पथरीला और कठोर हो जाता है। इन खटिकपूर्ण क्षयार्बुदोंमें क्षय-कीटाणु वर्षों तक जीवित बन्द पड़े रहते हैं और अवसर पाकर फिर उत्तेजित हो उत्पात करते हैं।

उपर्युक्त बातोंसे स्पष्ट है कि क्षय-कीटाणु कई प्रकारसे शरीरमें गुप्तरूपसे बन्द पड़े रहते हैं, इसलिए इस दशाको 'गुप्त-क्षय (Latent Tuberculosis) कहते हैं। इस प्रकारका गुप्त क्षय आगे चलकर फिर कभी-कभी प्रकट क्षयका रूप धारण कर लेता है।

क्षय-कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश कर आक्रमण करनेको 'क्षय-संक्रमण' कहते हैं। क्षय-संक्रमणके प्रकट लक्षण कुछ नहीं होते, इसलिए मनुष्यको यह पता नहीं चलता कि कब क्षय-संक्रमण हुआ। यद्यपि क्षय-संक्रमणमें प्रकटरूपके कोई लक्षण नहीं होते, तथापि शारीरिक अवस्थामें कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है, जो विशेष परीक्षा द्वारा जाना जा सकता है। इस शारीरिक परिवर्तनसे भावीक्षय-रोगका घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

क्षय-संक्रमणमें शारीरिक परिवर्त्तन

क्षय संक्रमणसे मनुष्य-शरीरमें दो प्रकारकी विशेषता उत्पन्न हो जाती है। (१) पहलेकी अपेक्षा कीटाणुओंके प्रति शरीर अधिक सजग हो जाता है और (२) कुछ रोग-क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

अति चैतन्यता (Hypersensitiveness)

जब किसी देशमें शत्रुके आक्रमणका भय नहीं होता, तो समस्त देश अचेत होता है और युद्धके लिए तैयार नहीं रहता, इसलिए जब प्रथम बार शत्रुका आक्रमण होता है, तो देश तुरत तत्परतासे शत्रुका भलीभांति प्रतिरोध नहीं कर सकता ; परन्तु जब एक बार शत्रु सेना देशके किसी भागमें पहुँच जाती है, तो पहलेकी अपेक्षा सब देश अधिक चैतन्य और सजग हो जाता है, इसलिए शत्रुका आक्रमण आरम्भ होते ही तुरंत उसका घोर प्रतिरोध होने लगता है। ठीक यही हाल मनुष्य-शरीरका है। जब तक क्षय-कीटाणु

शरीरमें प्रवेश नहीं करते, तब तक मनुष्य-शरीर अचेत रहता है; परन्तु जहाँ एक बार क्षय-कीटाणुओंने शरीरमें प्रवेश किया कि वह भी पहलेकी अपेक्षा अधिक चैतन्य और सजग हो जाता है, इसलिए फिर दुबारा जब कभी कीटाणुओंका आक्रमण होता है, तो पहले ही से चैतन्य और सजग होनेके कारण शरीरमें उनके आक्रमणका तुरत घोर प्रतिरोध होने लगता है।

सबसे पहले डाक्टर राबर्ट काकने इस परिवर्तित दशाका पता लगाया था। प्रयोग करते समय उन्होंने देखा कि जब किसी पशुको क्षय-कीटाणुओंकी सर्वप्रथम पिचकारी लगाई जाती है, तो लगभग दो सप्ताह तक कुछ भी प्रतीत नहीं होता। इसके पश्चात् पिचकारीके स्थानसे सम्बन्ध रखनेवाली लसिका-ग्रंथियाँ फूलकर बड़ी हो जाती हैं। यदि उसी पशुकी पहली पिचकारीके दो-तीन सप्ताह बाद दूसरी पिचकारी लगाई जाय, तो पहली पिचकारीसे कहीं भिन्न प्रभाव होता है। जहाँ पहली पिचकारीसे लगभग दो सप्ताह तक कुछ भी प्रतीत नहीं होता, वहां दूसरी पिचकारीके बाद चौबीस घंटेके अन्दर पिचकारीके स्थानपर तीव्र प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त उस पशुमें शीत, ज्वर, हड़फूटन और अरुचि इत्यादि लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसका भेद यों है। पहली पिचकारी लगानेके समय वह पशु क्षय-कीटाणुओंसे अपरिचित होनेके कारण अचेत था, इसलिए जब पहली पिचकारी लगाई गई, तो वह पिचकारी द्वारा प्रविष्ट कीटाणुओंका इतना शीघ्र और तीव्र प्रतिरोध न कर सका, जितना कि दूसरी पिचकारी लगानेपर, क्योंकि दूसरी पिचकारी लगानेके समय वह (शरीर) पहली पिचकारीसे सचेत हो चुका था। इसी प्रकार जब मनुष्य-शरीरमें पहली बार क्षय-कीटाणुओंका प्रवेश होता है, तो उनका इतना शीघ्र और तीव्र प्रतिरोध नहीं होता, परन्तु एक बार कीटाणुओंके प्रवेश होनेसे मनुष्य-शरीर अत्यन्त चैतन्य और सजग हो जाता है, इसलिए जब कभी फिर क्षय-कीटाणुओंका आक्रमण होता है, तो पहलेकी अपेक्षा बहुत शीघ्र और तीव्र प्रतिरोध होता है।

अति चैतन्यताकी पहचान

अति चैतन्यताकी परीक्षा यक्ष्मिनकी (Tuberculine) पिचकारी लगाकर की जाती है। यदि ऐसे मनुष्योंमें जिन्हें क्षय-संक्रमण नहीं है, यक्ष्मिनकी पिचकारी लगाई जाती है, तो कुछ भी असर नहीं होता क्योंकि उनमें अभी तक क्षय-कीटाणुओंके प्रति चैतन्यता उत्पन्न नहीं हुई है। परन्तु जब यक्ष्मिनकी पिचकारी ऐसे मनुष्योंमें लगाई जाती हैं जिनमें पहलेसे क्षय-संक्रमण होनेके कारण अति चैतन्यता उत्पन्न हो चुकी है, तो पिचकारीके स्थानपर तीव्र प्रदाह उत्पन्न हो जाता है और इसके अतिरिक्त ज्वरादि लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं।

युद्ध तीव्र होनेके कारण क्षय-कीटाणु और शरीरके अवयव दोनोंका अधिक मात्रामें नाश होता है। कीटाणुओंके मरनेसे—उनके शरीरके छिन्न-भिन्न होनेपर उनके विष बाहर निकलते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्यके कुछ शरीरांश भी जो युद्धमें नष्ट हो जाते हैं, विषैले हो जाते हैं। ये विषैले पदार्थ रक्तमें मिलकर सारे शरीरमें फैल जाते हैं, इसलिये ज्वरादि लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। यदि दूसरे संक्रमणमें कीटाणुओंकी संख्या कम होती है, उसकी प्रतिक्रिया (प्रदाह, ज्वर इत्यादि) भी कम होती है। और यदि कीटाणुओंकी संख्या अधिक होती हैं, तो प्रतिक्रिया भी बड़ी तीव्र होती हैं और अत्यन्त तीव्र होनेके कारण कभी-कभी प्राणघातक भी हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि ज्वरादि लक्षण कीटाणुओं और शरीरके परस्पर युद्धकी तीव्रताको सूचित करते हैं और किसी सीमा तक लाभदायक भी होते हैं, क्योंकि उनसे यह प्रकट होता है कि शरीर क्षय-कीटाणुओंका भली प्रकार प्रतिरोध कर रहा है। इसके साथ ही साथ ज्वर इत्यादिका वेग अधिक होनेसे शरीरको हानि भी पहुँचती है। दूसरे संक्रमणके लिए या तो पुनः बाहरसे नये क्षय-कीटाणु शरीरमें प्रवेश करते हैं या पहलेके ही कीटाणु—जो शरीरके अन्दर बन्द पड़े रहते हैं, जैसा कि पहले कहा जा चुका है—फिर उत्तेजित होकर शक्ति-पूर्ण

क्षयार्बुदोंसे बाहर निकल किसी दूसरे स्थानपर पहुँचकर आक्रमण करने लगते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि प्रथम संक्रमणसे विपरीत पुनर्संक्रमणमें एक प्रदाह और होता है, जो नये संक्रमणके होते ही आरम्भ हो जाता है। यह प्रदाह उस समय तक बराबर जारी रहता है, जब तक या तो पुनर्संक्रमणपर शरीर विजय प्राप्त कर ले या अति तीव्र प्रदाहसे शरीरका नाश हो जाय। प्रायः देखा गया है कि पुनर्संक्रमणका संग्राम बहुत समय तक जारी रहता है, क्योंकि क्षय-कीटाणुओंका नाश करना अत्यन्त कठिन काम है। इस प्रदाहमें सेलोंकी वृद्धि होकर क्षयार्बुद प्रकट नहीं होते हैं, परन्तु स्थानीय रक्त-शिराओंसे रक्तका अधिक प्रवाह होकर उनसे रक्त-कण और रक्त-तरलका स्राव होता है, इसलिये इस प्रकारके प्रदाहको 'स्रावयुक्त प्रदाह' (Exndative Inflamation) कहते हैं।

क्षय संक्रमणसे जो शरीरमें दूसरा परिवर्तन होता है, वह रोग-क्षमता (Immunity) की उत्पत्ति है। रोग-क्षमताको समझानेके लिए एक उदाहरणकी आवश्यकता प्रतीत होती है। गत यूरोपीय महासमरसे पूर्व युद्धोंमें विषैले वाष्पका प्रयोग नहीं होता था, इसलिए लोग उसके गुणोंसे अपरिचित थे। अपरिचित होनेके कारण उन्हें उससे बचनेका उपाय भी ज्ञात नहीं था इसलिए जब पहली बार इसका युद्धमें प्रयोग हुआ, तो सैनिक धड़ाधड़ मरने लगे, परन्तु उससे परिचित होते ही बचनेका उपाय भी शीघ्र निकाल लिया गया। ठीक यही हाल हमारे शरीरका है। जब कोई संक्रामक रोग होता है, तो उसके संक्रमणसे बचनेकी सामग्री भी उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण फिर वह संक्रामक रोग या तो दुबारा होता ही नहीं और यदि होता भी है, तो बहुत हलका। इसका सर्वोत्तम उदाहरण चेचक रोगमें मिलता है। जब बाल्य कालमें प्रथम बार चेचकका संक्रमण होता है, तो चेचक रोग उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि शरीरमें चेचकसे पूर्व परिचय न होनेके कारण उससे बचनेके साधन नहीं होते, परन्तु एक बार चेचक रोग हो जानेसे शरीर उससे भलीभाँति परिचित हो जाता है और उससे बचनेका पर्याप्त सामान इकट्ठा कर लेता है, इसलिए दुबारा फिर कभी चेचक रोग नहीं होता। वैज्ञानिक भाषामें इस प्रकार प्रथम संक्रमणसे शरीरमें रोग नाशक शक्ति की उत्पत्ति रोग-क्षमताका उत्पन्न होना कहते हैं। ठीक इसी प्रकार क्षय-संक्रमणसे भी शरीरमें कुछ रोग-क्षमता उत्पन्न हो जाती है, परन्तु क्षय-रोग-नाशक-शक्ति इतनी नहीं उत्पन्न होती कि दुबारा कभी चेचककी भाँति क्षय भी न हो सके। यदि ऐसा होता, तो आज इतना क्षय-रोग न दिखाई देता। इस (रोग-क्षमता) से केवल क्षय-कीटाणुओंके आक्रमण सहनेकी और उनका कुछ प्रतिरोध करनेकी शक्ति बढ़ जाती है, इसलिए क्षय-रोग जब होता है, तो इतना तीव्र नहीं होता, जितना कि शिशु कालके प्रथम दो वर्षोंमें शरीरके क्षय-कीटाणुओंसे सर्वथा अपरिचित होनेकी दशामें होता है। अथवा यह कहना चाहिए कि 'क्षय-कीटाणुओंके आक्रमणसे शरीरकी सहनशक्ति कुछ बढ़ जाती है, क्योंकि प्रकृतिका नियम है कि जैसे-जैसे आपत्ति पड़ती है, वैसे-वैसे उसके सहनेकी शक्ति भी उत्पन्न होती जाती है।

क्षय-रोग-क्षमताके प्रादुर्भावके प्रमाण

प्रयोग-सिद्ध प्रमाण—यह देखा गया है कि जब किसी स्वस्थ गिनीपिग (एक पशु, जिस पर साधारणतया प्रयोग किया जाता है) के मृत क्षय-कीटाणुओंकी पिचकारी लगाई जाती है, तो पिचकारीका आघात थोड़े दिनोंमें भर जाता है और प्रकट रूपसे सर्वथा अच्छा हो जाता है, परन्तु दस-पन्द्रह दिनके अनन्तर पिचकारीके स्थानपर एक गिल्टी पड़ जाती है। इस गिल्टीके पककर फूटनेसे जो व्रण बनता है, वह पशुके जीवन पर्यन्त बना रहता है। ऐसी ही पिचकारी जब किसी क्षय-पशुको लगाई जाती है, तो गिल्टी नहीं बनती, पर पिचकारीका स्थान पककर एक व्रण बन जाता है और यह व्रण शीघ्र अच्छा हो जाता है। स्वस्थ पशुमें उस स्थानसे सम्बन्ध रखनेवाली लसिका-ग्रन्थियाँ भी फूल

जाती है, परन्तु क्षयी पशुकी लसिका ग्रन्थियोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

रोमर और हेम्बर्गर इत्यादि वैज्ञानिकोंने इसी प्रकारके अनेक प्रयोग किये हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि क्षयी पशुके शरीरमें क्षय-कीटाणुओंके प्रतिरोध करनेकी शक्ति होती है, जिसके कारण कीटाणु पहलेके बराबर हानि नहीं कर सकते।

अनुभव-सिद्ध प्रमाण

चेचक इत्यादि अन्य संक्रामक रोगोंके अनुभवसे यह ज्ञात होता है कि एक मनुष्यको उसके जीवन कालमें दो बार संक्रामक रोग नहीं होता। क्षय-रोगके सम्बन्धमें भी यह देखा गया है कि जिनको बचपनमें ग्रंथि-माला रोग (एक प्रकारका ग्रन्थियोंका क्षय) हो जाता है, उनको आगे चलकर फेफड़ोंका क्षय बहुत कम होता है। शिशुकालमें क्षय-संक्रमण न होनेके कारण रोग-क्षमताका अभाव होता है, इसलिए जब क्षय-रोग होता है, तो बड़ा तीव्र होता है और शीघ्र बच्चोंका प्राणघातक होता है। जो शिशु प्रथम संक्रमणपर विजय प्राप्त कर लेते हैं, उनमें रोग-क्षमताका प्रादुर्भाव होनेसे फिर इतना तीव्र क्षय नहीं होता। ठीक यही हाल असभ्य जातियोंका है। स्वाभाविक दशामें जंगलोंमें रहनेसे इन जातियोंमें क्षय बहुत कम होता था, परन्तु ज्यों ही सभ्य जातियोंसे इनका संपर्क होने लगा, क्षय-रोगका आक्रमण भी आरम्भ हो गया। रोग-क्षमताके अभावसे अति तीव्र क्षयसे यह लोग धड़ाधड़ मरने लगे। इस बातके अनेक उदाहरण भिन्न-भिन्न जातियोंके भिन्न-भिन्न देशोंमें पाये जाते हैं। शहरोंकी अपेक्षा देहातमें क्षय कम होता है, पर जब देहातके लोग शहरोंमें बसना शुरू करते हैं, तो उनमें क्षय-रोग अधिक होने लगता है। जैसे अकृष्ट भूमिमें पहले-पहल फसल बहुत अच्छी होती है, ठीक इसी प्रकार असभ्य जातियोंमें जो क्षयसे पहले अपरिचित होती हैं, क्षय-रोग बहुत होता है, परन्तु जैसे-जैसे क्षय-संक्रमण होता जाता है, रोग-क्षमताका भी प्रादुर्भाव होता जाता है, और इसीलिए क्षय रोगका वेग भी कम होता जाता है।

क्षय-संक्रमणका विस्तार

अन्वेषणसे यह ज्ञात हुआ है कि क्षय-संक्रमण और आधुनिक सभ्यताका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जैसे-जैसे अर्वाचीन सभ्यताका प्रचार होता जाता है, वैसे-वैसे क्षय-संक्रमण भी फैलता जाता है। बड़े-बड़े शहरोंमें कदाचित ही कोई प्रौढ़ावस्था तक क्षय-संक्रमणसे बच सकता हो। इस बातका पता लगानेके लिए जिन मृतक शरीरोंकी परीक्षा की गई है, उनसे यह प्रकट होता है कि संसारकी सभ्य जातियोंमें प्रौढ़ावस्था तक ८० प्रति-शत जनसंख्याको क्षय-संक्रमण हो जाता है, परन्तु असभ्य जातियोंके मृतक शरीरोंमें क्षय-संक्रमणके चिह्न नहीं मिलते। सन् १९०० में न्यूयार्क नगरके डाक्टर नगोलीने एक ऐसी ही परीक्षा की थी। पांच सौ मृत शरीरकी जाँच करने पर ७१ प्रति-शतमें क्षयके चिह्न मिले थे। अठारह वर्षसे अधिक आयु वालोंका हिसाब लगानेपर ९८ प्रति-शतमें क्षयके चिह्न पाये गये थे। इनमेंसे केवल २८ प्रति-शतकी मृत्यु क्षय-रोगसे हुई थी। अन्य पुरुषोंने भी इसी प्रकारकी खोज की हैं, जो उपर्युक्त कथनकी समर्थक हैं।

इन परीक्षाओंसे एक और महत्वपूर्ण बात ज्ञात हुई है। नवजात शिशुमें हमेशा क्षय-चिह्नोंका अभाव पाया है। इससे यह स्पष्ट है कि क्षय-संक्रमण जन्मके बाद ही होता है। जिन बालकोंकी मृत्यु प्रथम वर्षमें हो जाती है, उनके शरीरमें क्षय-चिह्न बहुत कम पाये जाते हैं, परन्तु दूसरे वर्षसे क्षय-चिह्नोंकी संख्या बढ़ने लगती है। न्यूयार्क नगरमें पांच वर्षसे कम आयुवाली १३२० लाशोंकी परीक्षा करनेपर केवल १३½ प्रति-शतमें क्षय-चिह्न पाये गये थे।

इंग्लैण्डमें जो परीक्षा हुई थी, उससे निम्नांकित परिणाम निकला था—

आयु	क्षय-संक्रमणकी संख्या
०—२ वर्ष	३५ p.c.
२—४ ”	५२ ”
४—६ ”	५८ ”
६—१० ”	७७ ”

..... देशमें भी इसी प्रकारकी एक परीक्षा की गई थी, जिसका परिणाम निम्न-लिखित है :—

आयु	क्षय-चिह्नकी संख्या	परीक्षित संख्या
०—१ वर्ष	२० फीसदी	२०१
१—२ ”	२६·२ ”	६५
३—४ ”	३१·८ ”	४४
५—६ ”	६७·६ ”	२८
७—१० ”	६२·२ ”	५३
११—१४ ”	८१·१ ”	५३
१५ वर्ष	८० ”	४०
औसत	४०·०८	४८४

डाक्टर राबर्ट काकने ४६० मृत शरीरोंकी परीक्षा की थी, उनमें २८ नवजात शिशु थे, जिनमेंसे किसीमें भी क्षय-चिह्न नहीं पाये गये। एक वर्षसे कम आयुवाले बच्चोंमें ७·१४ प्रतिशत क्षय-चिह्न मिले थे। ३६० प्रौढ़ शरीरोंमें ६६·३८ प्रति-शतमें क्षय-चिह्न मिले थे। इनमें ६३·६ प्रति-शतमें क्षय-रोग होकर आरोग्य होनेके चिह्न थे। अन्य लोगोंका भी यही अनुभव है कि प्रौढ़ावस्थामें जो क्षय-चिह्न मिलते हैं, वे प्राय: रोग-निवृत्तिके चिह्न होते हैं, परन्तु बच्चोंमें जो क्षय-चिह्न मिलते हैं, वे बहुधा विद्यमान क्षयके चिह्न होते हैं। यह देखा गया है कि ऐसे पुरे हुए क्षयाघातोंमें क्षय कीटाणु प्राय: जीवित अवस्थामें उपस्थित रहते हैं और उनमें रोगोत्पादक शक्ति भी होती है, परन्तु खेद है कि भारतवर्षमें अभी तक ऐसी कोई खोज नहीं की गई है, जिससे क्षय-संक्रमणका पूर्णत: पता चल सके।

जीवित मनुष्योंमें भी क्षय-संक्रमणके विस्तारकी परीक्षा की गई है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि क्षय-संक्रामित मनुष्योंमें यक्ष्मिन् (Tuberculine) की पिच-कारी लगानेसे एक विशेष प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जो स्वस्थ मनुष्योंमें नहीं होती। इस प्रतिक्रियाकी खोजसे भी यही परिणाम निकलता है कि प्रौढ़ावस्था तक बहुत कम मनुष्य बच पाते हैं। फ्रान्स देशके पेरिस नगरमें जो यक्ष्मिन् परीक्षा (Tuberculine Test) की गई थी, उसका निम्न-लिखित परिणाम निकला था :—

आयु	परीक्षित संख्या	प्रति-शत संख्या, जिसमें यक्ष्मिन् प्रतिक्रिया पाई गई
०—३ मास	३६८	३·७ फीसदी
३—६ ”	४५६	७·२ ”
६ मास—१ वर्ष	५८३	१६·८ ”
१ वर्षसे कम सब मिलाकर	१३४०	१०·६ ”
१—२ वर्ष	२४७	२४·३ ”
२—५ ”	४६७	५६·८ ”
५—१० ”	५२५	६७·४ ”
१०—१५ ”	३०२	८२·७ ”

इसी प्रकारकी अन्य स्थानोंमें भी परीक्षाएँ की गई हैं। उन सबसे लगभग एक-सा ही परिणाम निकलता है, जैसा कि पीछे दिया गया है।

क्षय-संक्रमणसे केवल वही देश बचे हैं, जहाँ असभ्य जातियाँ रहती हैं, और जिनका अभी तक आधुनिक सभ्यतासे सम्पर्क नहीं हुआ है। अमेरिकाकी रंगीन जातियोंमें गोरोंके पहुँचनेसे पूर्व क्षय-रोग नहीं होता था। मध्य-अफ्रिका और एशियाकी असभ्य जातियोंमें भी गोरोंके सम्पर्क होनेसे पूर्व क्षय-रोग नहीं होता था, परन्तु जैसे-जैसे इन जातियोंका सम्पर्क गोरोंसे होने लगा, वैसे-वैसे क्षय-रोगने भी इनपर अपना अधिकार जमना आरम्भ कर दिया। इन जातियोंमें गोरे मनुष्योंके आनेसे पूर्व जो क्षयका अभाव था, वह किसी स्वाभाविक रोग-क्षमता अथवा जल-वायुके कारण न था, बल्कि उस समय तक क्षय-कीटाणुओंसे इन जातियोंका सम्पर्क नहीं हुआ था, इसलिए जैसे ही गोरोंके साथ-साथ क्षय-कीटाणुओंका इस देशमें आगमन हुआ, क्षय-रोग फैलने लगा।

इस बातके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं कि जब असभ्य जातियोंके मनुष्य प्रथम बार ऐसे देशोंमें आते हैं, जहाँ क्षय-संक्रमण अधिक होता है, तो शीघ्र ही क्षय-रोगसे पीड़ित होकर मर जाते हैं। गत यूरोपीय महाभारतमें यह देखा गया था कि सन् १९१७-१८ ई० में फ्रान्सके मैदानमें अफ्रिकाकी पल्टनोंमें जितनी क्षय-रोगसे मृत्यु हुई थी, उतनी सम्पूर्ण अंग्रेज़ी सेनामें नहीं हुई। सन् १९१९ में फ्रान्समें हिन्दुस्तानी सेनामें २७.४ प्रति सहस्रको क्षय रोग हुआ था, इसके प्रतिकूल अंगरेज़ी सेनामें केवल १-१ प्रति-सहस्र क्षय-रोग हुआ था। ऐसे ही और अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

हज़रत मुहम्मद और उनकी शिक्षाएँ

[लेखक :—श्री मंगलसरूप शर्मा]

किसी राष्ट्रके संगठन-सम्बर्द्धनके लिए उसके अन्तर्गत सभी सम्प्रदायोंकी एकता, राजनीतिक स्वार्थकी दृष्टिसे जितनी आवश्यक है, नैतिक और धार्मिक मर्यादाओंकी एक प्राणता भी क़ौमके जाहोजलालके लिए उतनी ही ज़रूरी है। अनेकतामें एकताका आभास जब तक सर्वाङ्गीन जातिके हृदय-दर्पणमें स्पष्ट भासित न होने लगे, तब तक वह क़ौम संगठित और सभ्य नहीं कही जा सकती। भारतमें यद्यपि अनेक जातियाँ रहती हैं, लेकिन उनमें मुसलमानोंको उनकी ऐतिहासिक सांस्कृतिक और सामाजिक विशेषताओंके कारण विभिन्नता प्राप्त है। एक विशेषता और भी है, और उसका उल्लेख करते दुःख होता है कि इस जातिने आज सात सौ से ऊपर वर्षों तक इसी सर-ज़मीनका दाना-पानी खा-पीकर भी अपने पुरुषाओंसे इसके दुख-दर्दको कभी महसूस करना नहीं सीखा—इसकी परवाह तक न की। इस जातिकी इस उपेक्षाने उसके सहवर्गी हिन्दुओंको भी उसकी ओरसे भ्रान्त कर दिया, और इसका प्रतिफल यह हुआ कि, जिन जातियोंको एक होकर विशाल राष्ट्रका निर्माण करना था, वे भिन्न-भिन्न हो गईं। ग़ैरोंको मौक़ा मिला, उन्होंने अवसरसे पूरा-पूरा लाभ उठाया, क़ौमका सारा वैभव नष्ट हो गया और जाहोजलाल जाता रहा। सामयिक धर्माचार्योंका कर्त्तव्य होता है कि वे समानताका सन्मार्ग प्रदर्शन करते रहें, लेकिन उभय जातियोंके धर्माचार्योंने कभी इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत वे पारस्परिक भेद-भावके संकुचित विचारोंको हमेशा हरा-भरा करते रहे। यद्यपि समय-समयपर कुछ सन्तों, औलियों और पीरोंने अपनी मनोहारी वाणीमें दोनों जातियोंको एकेश्वरवाद (वहदानियत), एक धार्मिकता और मानवताकी शिक्षा दी, लेकिन उन साधु-सन्तोंके सदैव ही समाजमें समावेष्टित न रहनेसे उनकी सदाशयता-पूर्ण शिक्षाओंका, निरन्तर व्यवहारमें आनेवाली मुल्ला—पुरोहितोंकी शिक्षाओंके आगे सुफल न फल सका।

आधुनिक युगमें पुरातन कालकी अपेक्षा अनेक दोष हैं; लेकिन इस युगकी धार्मिक सहिष्णुताका क़ायल होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यताका आज लगभग सारे संसारमें बोलबाला है। हमारा देश भी उसके मोहक रंगमें अपनी फटी गुदड़ीको धीरे-धीरे रँगता जा रहा है। यह पश्चिमी सभ्यता वर्तमान मानव-जातिके लिए एक अभिशापकी भाँति दुःखदायिनी हो रही है, :पर इसकी वर्तमान धार्मिक और सामाजिक सहिष्णुताको मानना पड़ता है। पश्चिमके देश तेल, रूई और कोयलेके लिए भले ही एक दूसरेका गला तराशते रहें, लेकिन धार्मिक विग्रहका नामोनिशान तक उनमें न पाइयेगा। इसके विपरीत पूर्वीय सभ्यताके देश पार्थिव

स्वार्थोंको एक दूसरेके हितमें कभी नज़र-अन्दाज़ भी कर जायँ, लेकिन धार्मिक असहिष्णुताकी ये जातियाँ अवतार ही हैं। भारतमें दिन-रात हिन्दू-मुसलमानोंमें ठनी रहनेवाली जङ्ग और अभी पिछले अगस्तमें हुआ फ़िलीस्तीनका अरब—यहूदी ख़ूनख़्वार रोंगटे खड़े कर देनेवाली घटनाएँ हैं।

एशियाका जागरण, भारतका उत्थान, सब, तब तक हवाई क़िलेकी भाँति व्यर्थ है, जब तक इन राष्ट्रोंमें जातीय एकता स्थापित नहीं हो जाती। अब वह समय आ गया है कि इन जातियोंके उद्धारकी चिन्ता करनेवाले नेता लोग पहले इनके अन्दर एक धार्मिक अनुभूति, एक सामूहिक सहिष्णुताका बीज वपन करें, तभी राजनीतिक सफलता भी प्राप्त हो सकेगी। वास्तवमें हम लोगोंने कभी एक दूसरेके धर्म तत्त्वको समझनेकी चेष्टा ही नहीं की, बल्कि एक दूसरेको दुरदुराते रहे। हमको चाहिए कि हम एक दूसरेके धार्मिक नेताओं, पैग़म्बरों, अवतारों और उनकी शिक्षाओंको पढ़ें, उनपर मनन करें और उन्हें एकदिलीकी तराज़ूपर, समदर्शिताकी दृष्टिसे तौलें। संसारमें कोई भी सम्प्रदाय या पन्थ घृणास्पद नहीं है। जंगली जातियोंको भी हम उनके विश्वासके अनुकूल आचरण करते देख इसलिए असभ्य नहीं कह सकते, क्योंकि उनमें मनुष्य-जातिकी सामूहिक दैनिक उन्नतिके अनेक सुलक्षण और गुण हमारी अपेक्षा अधिक विद्यमान हैं। अधिकांश हिन्दुओंने इसलामको नगण्य पन्थ समझ रखा है, लेकिन बात ऐसी नहीं है। भारतके मुट्ठी-भर उजड्ड और जाहिल मुसलमानोंसे तंग आकर हम आज उस महान् सभ्यता और उसके आचार्यको तुच्छ नहीं कह सकते, जिनके अनुयायियोंमें इस भूतलवासिनी मनुष्य-जातिका एक चौथाई भाग इस समय मौजूद है। इस संस्कृति और उसके संस्थापककी कौनसी विशेषताएँ हैं, यही प्रदर्शित करना इस लेखका उद्देश है।

हज़रत मुहम्मद

इसलामके प्रवर्तक मुहम्मद साहबका जन्म अरबी महीने *रबी-उल-औवलकी १२ वीं तारीख़को—ईस्वी सन् ५७१* की २२ अप्रैलको—प्रातःकाल ६ बजकर २५ मिनटपर मक्कामें अरबके सत्तावादी फ़िरके कुरैशमें हुआ था। आपके पिता अब्दुल्लाका इस समयसे कुछ मास पूर्व देहान्त हो चुका था। अभी आप छै वर्षके ही थे कि आपकी माताका भी देहान्त हो गया। बालक मुहम्मद अनाथ रह गये। संसारके भावी शिक्षकको साक्षर और शिक्षित बनानेकी चिन्ता करनेवाला रही कौन गया था, अतएव मुहम्मद यों ही रहकर बड़े हुए। वे बचपनसे ही बड़े सरल थे। कभी चंचलता, चालाकी और चरित्रहीनता उनमें आई ही नहीं। उनके स्वभावके सम्बन्धमें उनके चचा अबूतालिबका कहना है कि "उन्होंने मुहम्मदको कभी झूठ बोलते, दूसरोंको कष्ट पहुँचाते, उच्छृंखल होते और लड़कोंके साथ व्यर्थ घूमते नहीं देखा"। वे एक कुमारिकाकी भाँति लज्जालु थे। वे बचपनसे ही बड़े कष्ट-सहिष्णु और परिश्रमी थे। जब ये लड़के ही थे, तब काबेका पुनर्निर्माण हो रहा था। आपने उसमें ख़ूब सहायता पहुँचाई। अपने कन्धोंपर ख़ूब पत्थर ढोये। एक दिन उनके चचा अब्बासने उन्हें नंगे कन्धेपर भारी बोझ ढोते देख अपना तहबन्द दे दिया, ताकि बालक मुहम्मद उसको अपने कन्धेपर रख लें। उन्होंने यही किया और पत्थर ढोने लगे। ढोते-ढोते उन्हें ग़श आया। थोड़ी देर बाद जब होशमें आये, तो फिर वही क्रम जारी कर दिया।

सांसारिक जीवन

पचीस वर्षकी अवस्थामें आपने बीबी ख़दीजा नामक चालीस वर्षकी एक विधवासे शादी की। आपने बादमें यके-बाद-दीगरे उम्महबीबा, बीबीसफ़िया और (बीबी) आयशासे भी शादियाँ कीं, लेकिन इनमें बीबी आयशाको छोड़कर बाक़ी दोनों प्रौढ़ा विधवायें थीं। मुहम्मद साहब एक विश्वासी ईश्वरभक्त थे। इसीमें उनका जीवन बीता, यों रोज़मर्रा भी ज़्यादातर उनका वक़्त इसीमें व्यतीत होता। वे दिन रातमें आठबार नमाज़ पढ़ा करते थे। *रातों ख़ुदाकी इबादतमें खड़े रहते। कभी-कभी उनके पैर इसी कारण, सुज*

पढ़ जाते। उनका शेष समय समाज-सेवामें व्यतीत होता। घरका छोटे-से-छोटा काम—पशुओंको चारा डालना, बकरियोंको दुहना, कपड़ोंको धोना और उन्हें सीना, जूतोंकी मरम्मत करना, झाड़ू देना, अपने हाथसे किया करते थे। आवश्यकताके अतिरिक्त वे बहुत कम बोला करते थे, लेकिन जो कुछ बोलते थे—सारगर्भित, स्पष्ट, स्वल्प और हृदयग्राही। अक्षर भी व्यर्थ मुँहसे न निकालते थे। श्रोताके हृदयमें उनका एक-एक शब्द पैठता चला जाता था। अपने छोटेसे छोटे कामके लिए भी दूसरोंको धन्यवाद दिये बग़ैर न रहते। एक जिज्ञासुने पूछा—"हज़रत, मनुष्य-प्राणीके लिए सबसे खतरनाक चीज़ कौनसी है?" उन्होंने अपनी जीभ पकड़ ली, कहा—"प्रातःकाल जब मनुष्य सोकर उठता है, तो उसके सब अंग जीभसे प्रार्थना करते हैं कि देखो, दिन-भर संयत व्यवहार रखना, अन्यथा हमारी आफ़त आ जायगी।"

सामाजिक व्यवहार

मुहम्मद साहबको ग़रीब-गुरबोंसे मिलने-जुलने, उन्हें प्रसन्न करने, बच्चोंको खिलाने, उनके साथ खेलनेमें बड़ा आनन्द आता था। उनके दोनों दौहित्र हसन और हुसेन—जो धार्मिक शहीद होनेके कारण इसलामके विशेष अंग हैं—उनके ऊपर चढ़े रहते थे, वे हर वक़्त उनके कन्धोंपर दिखाई देते थे। वे अपने नानाको खिझानेके लिए कभी-कभी उनकी दाढ़ी भी खींच लिया करते थे। मुहम्मद साहब बच्चोंको मज़ेदार कहानियाँ सुनाया करते थे, इसीलिए हज़रत अक्सर फ़र्शपर पड़े हुए बच्चोंसे घिरे दिखाई पड़ा करते थे। वे स्वयं उनके खेलमें शरीक होते। हज़रत रास्ता जाते हुए बच्चोंको लल्ला, भय्या कहकर रोक लेते और उनमें उन्हींकी भाँति घुल-मिल जाते।

आपका हृदय बालकोंके प्रति ऐसा कोमल था कि एक बार एक ग़रीब सुहागिनका बच्चा सख्त बीमार पड़ा। वह मर रहा था, जब हज़रतको इसकी खबर लगी। वे खुद दौड़े हुए उसके झोंपड़ेमें गये, बच्चेकी कई घंटों तक तीमारदारी की और अन्तमें उस बच्चेका प्राणान्त हज़रतकी छातीपर हुआ। हर किसीके आड़े वक्तमें खड़े रहते। नम्र इतने थे कि दस-पाँचमें बैठते समय कभी पैर पसारकर नहीं बैठे, हमेशा घुटने मोड़कर बैठते थे; कितनी भी थोड़ी चीज़ होती, सबको बाँटकर तब स्वयं ग्रहण करते। कैसी भी छोटी परिस्थितिका आदमी क्यों न हो, हज़रतको उसका निमन्त्रण स्वीकार करनेमें कभी उज़्र नहीं हुआ। और स्वयं भी अव्वल दर्जेके अतिथि-सत्कारक थे। यहूदियों और ईसाइयोंसे उनकी खूब राह-रस्म थी। नौकरोंके काममें मदद करनेका आपको बड़ा शौक़ था। घरका और पास-पड़ोसियोंका सौदा-सुलफ़ स्वयं खरीदकर कन्धेपर लाद लाते। एक दिन एक आदमीके साथ जंगलमें जा निकले। वहाँ दो दतौनें आपने तोड़ीं। आपने अपने लिए टेढ़ी दतौन रखकर सीधी उस आदमीको दे दी। हज़रतकी इस फ़राख़-दिलीपर उस आदमीको संकोच हुआ। हज़रतने कहा—"अपने साथीके प्रति कर्तव्यपालन करना मेरा धर्म है। मैं क़यामतके दिन इसका क्या जवाब देता। तुमने मेरे साथ आनेकी कृपा की है; मेरा धर्म है कि मैं तुम्हें सन्तुष्ट करूँ।" एक आदमी रोज़ मसजिदमें झाड़ू दिया करता था। वह बीमार पड़ गया। हज़रत रोज़ उसको जाकर देखा करते। एक रातको वह मर गया और प्रातःकाल उसकी लाश दफ़ना दी गई। जब हज़रतको यह हाल हुआ, तो उस मनुष्यकी मौतके समाचारसे अवगत न करानेके कारण वे अपने साथियोंपर रुष्ट हुए। वे उसकी क़ब्रपर गये, और वहाँ उसकी आत्माकी शान्तिके लिए नमाज़ अदा की। अनास इब्न मलिक नामक उनके एक नौकरका कहना है कि वह दस साल तक हज़रतकी खिदमतमें रहा, लेकिन उन्होंने उससे कभी उफ़् तक नहीं की।

गार्हस्थिक आचरण

मुहम्मद साहबकी गार्हस्थिक ज़िम्मेदारियाँ खूब थीं। यद्यपि जीवन अत्यन्त सरल और ग़रीबीका था, लेकिन अपनी चारों पत्नियोंकी आवश्यक माँगोंको वे हमेशा पूरा किये रहते थे। उनका व्यवहार न्याय और समता-भावसे पूरित होता था। वह कहते थे कि उत्तम व्यक्ति वह है, जो

अपने परिवारके प्रति उच्चताका व्यवहार रखता है। एक दिन उनकी बीबी उम्मेहबीबा अपने छोटे भाई मुआवियाको खिला रही थीं। हज़रतने दर्याफ्त किया कि 'तुमको मुआविया बहुत प्यारा है?' बी साहिबाके 'हाँ' कहते ही हज़रतने भी दुहराया—'मुझे भी वह बहुत प्रिय है।' स्त्री-जातिके प्रति हज़रतके हृदयमें बड़ी श्रद्धा थी। अपनी बीबी सफ़ियाको ऊँटपर सवार कराते वक्त हज़रत घुटनोंके बल बैठ जाते और वे उन घुटनोंपर पैर देकर ऊँटपर चढ़ जातीं। एक दिन ऊँट फिसल गया और हज़रत तथा बी सफ़िया दोनों ज़मीनपर गिर पड़े। अबू तलहा यह देखकर हज़रतको उठानेको लपका। आप फ़ौरन बोले—"पहले सफ़ियाको सँभालो।" एक दिन घरमें बीबियोंमें झगड़ा हो गया। हज़रत इसी वक्त मकानके अन्दर दाखिल हुए। उन्होंने झगड़ेमें कोई दखल नहीं दिया। एक कोनेमें निष्पक्ष होकर चुप बैठ गये। झगड़ेमें बीबी आयशा न्याय-पक्षपर थीं। वे खामोश थीं, लेकिन दूसरी बीबियोंने जब रारको ज्यादा बढ़ाया, तो फिर बीबी आयशाने भी उत्तर देना शुरू किया। जब झगड़ा शान्त हो गया, तो हज़रत आयशाके निवास-स्थानपर गये, और बोले—"आयशा, जब तुम सन्तोष और शान्तिपूर्वक चुप खड़ी थीं, तब खुदाके फ़रिश्ते तुम्हारी ओरसे उत्तर दे रहे थे, लेकिन जैसे ही तुमने स्वयं बोलना शुरू किया, वे तुम्हें छोड़कर चले गये।" उनकी शिक्षाका यह प्रकार था। बड़े मीठे ढंगसे अपनी शिक्षात्मक बात कहा करते थे।

पैग़म्बर मुहम्मद क्रमानुसार अपनी बीबियोंके यहाँ जाया करते थे। इसमें वे बड़ी नियमितताका पालन करते। जब बाहर सफ़र करते होते या बीमार पड़ जाते, तब भी वे इस क्रमको जारी रखते। अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें, बहुत बीमार हो जानेकी हालतमें, जब उन्हें केवल एक जगहपर ही रहनेकी सम्मति दी गई थी, तब मजबूर होकर, उन्हें अपने इस नियमको तोड़ना पड़ा। इसलाममें इसी कारण चार बीबियाँ तक जायज़ हैं, लेकिन पतिको हज़रतके जैसा समदर्शी और समरस व्यवहारी होना चाहिए। इससे पता चलता है कि वे अपनी स्त्रियोंका कितना आदर करते थे। खदीजाके साथ उन्होंने अपने वैवाहिक जीवनके सबसे अधिक दिन—पचीस वर्ष—बिताये। इनके देहान्तके बाद महीनेमें कभी-कभी खदीजाका ज़िक्र करते हुए उनका गला भर आता और आँखें मानस-मुक्तावलिसे छलछला पड़तीं। एक दिन खदीजाकी बहिन आपसे भेंट करने आईं, आपने उनका खूब आदर-सत्कार किया। खदीजाके लिए उनके हृदयमें बहुत स्थान था। मरते दम तक वे उनके हृदयोपवनमें सदा बहारकी तरह हरा-भरा रहा।

वे अपनी कन्या बीबी फ़ातिमाको बहुत प्यार करते थे। उनके बच्चे तो हर वक्त उनके कन्धेपर ही दिखाई पड़ते। एक बार उनकी एक दौहित्री मर रही थी। हज़रतने उसे गोदमें उठा लिया और उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। हज़रतके इस मोहको देखकर उनके साथी सआदने कहा—"ऐ खुदाके पैग़म्बर, आपकी यह अवस्था क्यों?" हज़रतने उत्तर दिया—"यह वह कोमलता है, जिसे खुदाने अपने बन्दोंके हृदयमें पैदा किया है। जो दयालु हैं, अल्ला-तआला भी उन्हींपर दया दर्शाता है।"

मुहम्मद साहबकी दृढ़ता

हज़रत मुहम्मद बहुत सुन्दर व्यक्ति थे। सादगी और सफ़ाईसे उन्होंने अपने शारीरिक जौहरको आखीर तक क़ायम रखा। अन्तिम समय तक उनके शरीरकी आभा अपरिवर्तित रही। वे ६३ वर्ष तक जिये, लेकिन कानके नज़दीकके बालोंको छोड़कर उनका एक भी बाल सफ़ेद न हुआ था। व्यर्थवादके पीछे वे कभी नहीं पड़ते थे। उनके शत्रु उन्हें कवि, चमत्कारी पुरुष, जादूगर और पागल कहा करते थे, लेकिन उनके नैतिक आचारके सम्बन्धमें आज तक किसीने उँगली नहीं उठाई। उनके चाचा अबूतालिब हज़रतके निर्मल आचरणकी साक्षी देते हैं। कुरैश जातिके सरदारोंने उन्हें बुतपरस्तीका विरोध न करनेके बदलेमें धन, ज़मीन—कामिनी और कांचन—के प्रलोभन दिखाये, लेकिन वे अपने सिद्धान्तसे तिल-भर न डिगे।

हज़रतकी सादगी

मुहम्मद साहबका आहार-विहार उनकी साधु-वृत्तिका परिचायक है। वे जौकी रोटी खाया करते थे। घरमें सूप तक नहीं था, दाना हाथसे मींजकर फूँकसे साफ़ किया जाता था। कभी-कभी कई-कई दिन तक चूल्हा न जलता, परिवारका परिवार खजूर खाकर और पानी पीकर रह जाता। बीबी आयशाने कहा है कि उनके घरमें, जब वह मदीनामें रहते थे, कभी तीन दिनके लायक़ खानेका सामान नहीं जुटा। हज़रतके साथियोंने उन्हें हमेशा भूखा पाया। भोजनमें मुहम्मद साहबने कभी मीन-मेख नहीं निकाली, जो सामने आ गया, उसे माथे चढ़ाकर प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया। इसी प्रकार उनकी पोशाकमें भी कोई बनावट-चुनावट न थी—सीधी-सादी और कामके लायक़। उन्होंने कहा भी है कि पवित्रता ही मनुष्यका सर्वोत्तम परिधान है। बालोंवाले चमड़ेकी छोटीसी चटाई ही उनका बिस्तर था। कभी-कभी बोरेको भी दुहराकर बिछा लेते। यही हाल घरका था—मिट्टीकी दीवारोंपर खुहारेकी पत्तियोंसे छाया हुआ। एक बार उमर हज़रतके यहाँ जा पहुँचे। देखा कि मुहम्मद साहब एक मोटी-झोटी चारपाईपर पड़े हैं। खाटकी खुरदरी रस्सी उनके शरीरमें गड़ गई है; एक कोनेमें थोड़ेसे जौ पड़े हैं, और एक कीलपर मशक लटकी हुई है। यही सब 'रसूले-ख़ुदा'के घरका साज़ो-सामान था। इस दीन-दशाको देखकर उमरकी आँखोंसे आँसू निकल पड़े। हज़रतने फ़रमाया—"उमर, क्या तुम्हें इस जीवनसे सन्तोष नहीं है? सांसारिक जीवन तो खुसरो और क़ैसरके लिए है, हमें तो आध्यात्मिक जीवन धारण करना चाहिए।"

उदारता

हज़रतकी सुपुत्री, बीबी फ़ातिमा घरमें चक्की पीसतीं और कुएँसे पानी भर लातीं। इससे एक दिन अकुलाकर वे अपने पिताके पास मसजिदमें पहुँचीं और कहा—"अब्बाजान, एक लौंडी घरमें रहे, तो ठीक हो।" 'रसूलिल्लाह'ने फ़रमाया—"प्यारी बेटी, बद्र (फ़िरके) के अनाथ भूखों मर रहे हैं, फिर मसजिदमें भी कई बे-घर-बारके परिवार रहते हैं। मुझे इन लोगोंकी रोटी-रोज़ी जुटानेसे अवकाश कहाँ है।" एक दिन एक भिखारी आया, उन्होंने उसे घर भेज दिया, लेकिन वहाँ उसको देनेके लिए कुछ भी नहीं था। एक दिन एक मुसलमान सहायता माँगने आया। 'नबी'के कहनेसे बीबी आयशाने उसे एक टोकराभर आटा दिया था। उस वक़्त घरमें केवल इतना ही आटा था। उस दिन सारे कुटुम्बको एकादशी मनानी पड़ी। एक बार बीबी आयशाने एक जोड़ी चूड़ियाँ पहनीं। हज़रत बोले—"आयशा, मुहम्मदकी बीबीको यह चूड़ियाँ शोभा नहीं देतीं।" चूड़ियाँ उतार डाली गईं और वे दी गईं। एक दिन आपने अपनी लड़कीको सोनेकी ज़ंजीर पहने देखा। हज़रतको यह दुनयवी शान पसन्द न आई। ज़ंजीर बेच दी गई, और मूल्यसे एक गुलामका उद्धार किया गया।

मक्कासे मदीना हिजरत (प्रवास) कर जानेके नौ वर्ष बाद हज़रतके परिवारके लोगोंको ज़रा सुविधा हुई। थोड़े सुपाससे रहने लगे, लेकिन मुहम्मद साहबको यह न रुचा। आप सबसे असहयोग कर बाहर आ पड़े। उसी समय उनपर यह आयत नाज़िल हुई—"ऐ पैग़म्बर, तू अपनी बीबियोंसे दर्याफ़्त कर, 'अगर तुम संसारके जीवन और उसके ज़ेवरातसे मुहब्बत करती हो, तो मैं इसका प्रबन्ध करूँगा, लेकिन अगर तुम अल्लाह और उसके रसूल तथा उसके घरको चाहती हो, तो निश्चय रखो, ख़ुदा तुम्हें पवित्रात्माओंकी भाँति बहुमूल्य भेंट देगा।" जब यह आयत बीबियोंको सुनाई गई, तो उन्होंने पिछली बात—ईश्वरीय-जीवनको पसन्द किया।

मुहम्मद साहब बड़े उदार थे। उन्होंने इसीलिए इसलाममें प्रत्येक मुसलमानको अपनी आयका ४० वाँ भाग दान-पुण्य—ज़कात—में दे डालनेकी व्यवस्था दी है। उनका अपना तो सब कुछ प्रभुके नामपर अर्पित था। उन्होंने किसीके सवालको नहीं टाला। उन्होंने यह मुनादी करा

दी थी कि यदि कोई मुसलमान ऋणी मर जायगा, तो उसका क़र्ज़ मुहम्मद साहब चुकायँगे। उदार तो थे ही, लेकिन सन्तोषी भी ग़ज़बके थे। जो कुछ उनके पास आता, उसे मसजिदमें जमा करा देते, हब्बा-हब्बा-भर तक़सीम कर दिया जाता। उसे अधिक दिन तक जमा भी न रखते थे। वह उन्हें एक बोझ-सा महसूस होता। एक बार फ़िदकसे चार ऊँट अनाज आया। वह किसी तरह शाम तक पड़ा रह गया। हज़रतने कहा—"जब तक यह बँट न जायगा, मैं घर न जाऊँगा।" रात-भर मसजिदमें बिताई, एक-एक दाना ठिकाने लगाकर उस जगहसे उठे। एक दिन अस्र (४ बजे शाम) की नमाज़के बाद हज़रत अपने कोठेमें चले गये। लोगोंको इस असामान्य बातपर आश्चर्य हुआ, लेकिन वह फ़ौरन ही घरसे निकलकर बोले—"यह लो, कुछ रुपये-पैसे घरमें पड़े थे, इन्हें लोगोंमें बांट दो, शामसे पेश्तर यह काम हो जाना चाहिए।" उनके अन्तिम समयकी एक ऐसी घटना और भी महत्त्वपूर्ण है। मृत्यु-शय्यापर आप पड़े थे कि यकायक आपको याद आई कि सोनेके कुछ टुकड़े घरमें पड़े हैं। आपने कहा—'इनको ज़कातमें दे डाला जाय, क्योंकि मुहम्मदके लिए यह उचित नहीं है कि वह अपने घरमें सोना पड़ा छोड़कर अपने प्रभुके पास जाय।" एक दिन एक भिखारी याचना करने आया। मुहम्मद साहबने फ़रमाया—"भई, मेरे पास तो कुछ है नहीं, तुम मेरे नामपर किसीसे ऋण ले सकते हो।"

व्यवहार-पटुता

मुहम्मद साहब साधारण व्यवहारमें भी बड़े बेलौस थे। उमर एक यहूदी महाजनके क़र्ज़दार थे। यहूदी निश्चित अवधिसे तीन दिन पूर्व अपना ऋण माँगने आया। वह बातों ही बातोंमें महाजनपनपर उतर आया। उसकी इस अभद्रतापर उमरको भी तैश आ गया, लेकिन हज़रतने उमरको झिड़ककर कहा—"क्या कर रहे हो, मुझसे क्यों नहीं कहा था; मैं तुम्हारा रुपया अदा कर देता। इससे कहो कि सज्जनतासे बात करे।" आपने क़र्ज़को ही नहीं चुका दिया, बल्कि उमरके क्रोध करनेके दण्ड-स्वरूप उस यहूदीको डेढ़ मन अनाज और दिलाया। एक दूसरा उदाहरण इससे भी महत्त्वका है। क़ुरैश (फ़िरक़े) के सरदार जब हज़रतकी जानके गाहक हो रहे थे, और उनके षड्यन्त्रोंका कोई ठिकाना न था, यहाँ तक कि उन लोगोंने आकर इनके घरको भी घेर लिया, तो मुहम्मद साहब अबू-बक्र सिद्दीक़के घर इसलिए गये कि भागनेका कुछ प्रबन्ध करें। अबू बक्रने दो साँडनियाँ पेश कीं और कहा कि एकपर हज़रत सवार होंगे। यह बहुत ख़तरेका मौक़ा था, लेकिन मुहम्मद साहबने तब तक रकाबमें पैर न दिया, जब तक ऊँटकी क़ीमत तय न कर ली।

उनकी सरलताकी बीसियों कहानियाँ हैं। हज़रत एक शादीमें गये हुए थे। एक जगह छोटी-छोटी लड़कियाँ गीत गा रही थीं। हज़रतको देखकर वे ऐतिहासिक और धार्मिक गीतोंको छोड़कर उनकी प्रशंसाके गीत गाने लगीं। मुहम्मद साहबने तत्काल कहा—"नहीं, नहीं, तुम वही गीत गाओ।" इसी तरह एक और भी सुन्दर दन्त-कथा है। एक दिन एक आदमी उनके सामने पड़ गया, और झिझकने सहमने लगा। हज़रत बोले—"मुझसे क्यों इतना डरते हो, भाई। मैं हूँ तो ग़रीब माँका ही लड़का न, जो सूखा मांस खाया करती थी।'

साम्यवादी मुहम्मद

हज़रत मुहम्मद साम्यके प्रचारक थे। बरैरा उनकी नौकरानी थी। उसके पतिसे उसकी हमेशा खटपट रहा करती। हज़रतने समझाया कि तू अपने शौहरसे समुचित व्यवहार किया कर। इसपर बरैराने पूछा—"क्या हज़रत मुझे ऐसा हुक्म देते हैं?" आपने फ़ौरन् कहा—"नहीं, मैं तो सिर्फ़ हिदायत करता हूँ।" बरैरा बोली—"मैं उसे नहीं चाहती।" आप ख़ामोश हो रहे। फ़ातिमा नामक एक स्त्रीने चोरी की। हज़रतका एक मित्र उसामा उसकी सिफ़ारिश लेकर आया। मुहम्मद साहबने कहा—"उसामा,

तुम यह क्या कह रहे हो, अगर मुहम्मदकी बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती, तो सज़ासे न बचती।"

मुहम्मद साहब अन्ध-विश्वासोंके विरोधी थे, उनके पुत्र इब्राहीमकी मृत्युके दिन सूर्यग्रहण पड़ा। लोग कहने लगे, हज़रतके दुःखमें सूर्य भी शोकार्त हो रहा है। हज़रतको जब पता लगा, तो कहा—"किसीके मरने-जीनेसे सूर्य-चाँदको क्या मतलब?" वे बड़े जीव-दयावादी थे। अन्धोंपर सदैव कृपा करते। किसीका जनाज़ा जाते देखते, तो झट उसके साथ हो लेते। उन्होंने कभी अकेले भोजन नहीं किया; अकसर दस्तरख्वानपर किसी-न-किसीको बुला लेते। स्पष्ट-वादिताका उनमें भारी गुण था; साफ़ कहते, साफ़ सुनते। अपनी स्त्रियों तकसे उन्होंने कह रखा था कि वे उनमें यदि कोई अवगुण देखा करें, तो तत्काल बता दिया करें। उमरका बेटा अब्दुल्ला, जो कुछ मुहम्मद साहबके मुँहसे निकलता था, उसे लिख लिया करता था। 'हदीसें' इसी तरह तैयार हुईं। किसीने इसपर ऐतराज़ किया 'खुदाका रसूल है तो आदमी ही, वह समय-समयपर भिन्न-भिन्न उक्तियाँ करता है।' लेकिन हज़रतने कहा—"अब्दुल्ला, तुम लिखते जाओ, क्योंकि मेरी वाणी हमेशा सत्य है।" यहाँ उनका कुछ अहंभाव प्रकट होता है, लेकिन उसी प्रकार, जिस प्रकार संसारके अन्य मत-प्रवर्तकोंमें यह भी पाया जाता है। हदीसोंमें उनके सम्बन्धमें उनके भक्त सहकारियोंकी अनेक स्मृतियाँ और सूचनाएँ संग्रहीत हैं। जैसे एक सज्जन कहते हैं कि मुहम्मद साहबके पास 'हलीफ़' नामक एक घोड़ा था, जो बागमें चरा करता था। दूसरे साहब कहते हैं कि, उनके जूतेमें दो तस्मे थे। तीसरेका बयान है कि हज़रत बाईं करवट लेटा करते थे। सम्भव है, हदीसोंमें कुछ बातें व्यर्थ और असत्य भी लिख दी गई हों, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इनसे मुहम्मद साहबके जीवनका मूर्तिमान चित्र सामने खिंच जाता है।

इसलामका सत्य

यह तो है मुसलिम मतके प्रवर्तक मुहम्मद साहबका वैयक्तिक जीवन, लेकिन जैसा कि कहा है कि 'महाजनो येन गतः स पन्थाः'—इसलामपर उनकी शिक्षाओंकी गहरी छाप तो है ही, उनके जीवनका भी भारी प्रभाव उसपर पड़ा है। इसलाम-धर्मके विचारकोंका मत है कि एक पन्थ-प्रवर्तकके नाते मुहम्मद साहबकी जीवन-घटनाओं और उनके चरित्रका जैसा स्पष्ट और सुविस्तृत इतिहास मिलता है, वैसा किसी मत-प्रवर्तकका नहीं मिलता। यही कारण है कि इसलामको केवल १३०० वर्षके अल्प जीवन कालमें ऐसी व्यापक सफलता मिली। उनके जीवनकी एक-एक घटनाने लोगोंको समुन्नत किया। मुसलमान विचारकोंका कहना है कि हिन्दुओंके ऋषिगण, यहूदी मतके संस्थापक हज़रत मूसा, पारसी पन्थके प्रवर्तक ज़रदुश्त और ईसाई मतके प्रचारक हज़रत ईसा, किसीके सम्बन्धमें भी इतनी अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। कितने ही यूरोपियनोंने ईसा मसीहके जीवन-चरित्रको लिखना चाहा, लेकिन अन्तमें वे यही कहकर रह गये कि मसीह तो स्वयं एक पहेली है, उसकी जीवनी लिखना सम्भव और सहज काम नहीं।

इसलाममें कई बहुत हृदयग्राही और आकर्षक विशेषताएँ हैं। सबसे महत्वपूर्ण उसकी विशेषताएँ हैं, इसलामी भ्रातृभाव, व्यक्तिके अधिकारकी मान्यता और राजनीतिमें धर्म-नीतिका सामञ्जस्य। इसलामके भाई-चारेकी परिभाषा बड़ी सुन्दर है। कोई किसी भी फ़िरक़े, रंग और देशका क्यों न हो—इसलामके झण्डेके नीचे आते ही उसकी संज्ञा बदल जाती है। यूरोपके चार अलग-अलग देशवासियोंसे पूछिये—"आप कौन हैं?" कोई कहेगा अंग्रेज़, कोई जर्मन, कोई फ़्रान्सीसी और कोई बेलजियन; लेकिन रूस, फ़ारस, भारत, अफ़रीका, मिश्र, चीन आदिके किसी भी मुसलमानसे यही सवाल कीजिए, सबके पास एक ही जवाब होगा—'मुसलमान।" अवश्य ही इसका अर्थ यह नहीं है कि यह सबके सब 'दीन'के नामपर जिस क़दर मिल सकते हैं, उतने देशके नामपर भी इकट्ठे हो सकते हैं।

अगर इस दीनी जोशमें देशभक्तिका रंग भी इतना ही

गहरा होता, तो फिर इसलामका कहना ही क्या था। पिछले इतिहासमें इसलामने जो विजयें प्राप्त कीं, केवल इसलामी जोशके कारण। अलबत्ता इसलाममें रंग-भेदके कारण घरमें बहुत कम विग्रह हुए। यूरोप सदैव इन भावलियोंका भड़ा रहा, और आज तो यूरोपियनोंका रंग-भेद मानवताकी सीमासे बहुत परे चला गया है, लेकिन इसलाम धर्मके दायरेमें रंग-भेदका नाम नहीं है। यूरोपमें इसका वर्तमान कालका जैसा हेय रूप कभी देखनेको नहीं मिला। इसको यूरोपके वर्तमान महान् विचारक और समाजवादी जार्ज बर्नार्डशा महोदयके शब्दोंमें सुनिये—"Wherever the black, the brown or the yellow comes in contact with the white, the latter dominates the former and secures for itself the fruit of the former's endeavours. Race superiority suppresses religion, × × × × But in Islam all those who are of the faith are equal without reference to colour or race."—अर्थात्—'जिस देशमें भी गोरे लोग काली, भूरी और पीली जातियोंके सम्पर्कमें आये, वहीं उन्होंने उन जातियोंपर प्राधान्य स्थापित करके उनकी गाढ़ी कमाईको हड़प लिया। रंगकी विशेषताके आगे मज़हबको खूँटीपर टाँग दिया जाता है। ×××× लेकिन इसलाममें रंग और जातिका कोई भेद-भाव नहीं है; सब दीनी भाई हैं, सब एक हैं।'

इसलाममें वैयक्तिक चरित्रपर अधिक ज़ोर दिया गया है। धर्मके राजनीतिसे पृथक् न होनेके कारण इसलामके प्रवर्तकका यह विचार बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्तिसे बना हुआ समाज, और समाजकी समष्टिके व्यापक रूप राष्ट्रकी शिला यदि धार्मिकताके सीमेन्टके साथ सुदृढ़ आधारपर रखी होगी, तो विशाल जातीय भवनको क्षति पहुँचनेकी सम्भावना मिट जाती है। इसी भावको एस० एम० लीवर नामक एक लेखक इस तरह व्यक्त करता है:—"The state is a mass of individual and to raise the state to the highest point of development sought for, you must raise the individual. Spiritual progress lies at the root of all material progress. They both react, the one on the other; sometimes one may be ahead, sometimes the other. But progress spiritually is the main spring of the total machinery of the state, and is the real measuring-rod of progress and civilisation. अर्थात्—'व्यक्तियोंके समूहका नाम ही राष्ट्र है। उस राष्ट्रका सर्वोच्च सम्वर्द्धन तभी सम्भव है, जब उसका प्रत्येक सदस्य उन्नत हो। आध्यात्मिक उन्नतिके बिना हम किसी प्रकारकी भी पार्थिव उन्नति कर नहीं सकते। प्रतिक्रिया दोनोंमें है, चढ़ा-ऊपरी दोनोंमें चलती है; कभी किसीकी चढ़ती कला दिखाई पड़ती है, तो कभी किसीकी। लेकिन राष्ट्रकी सर्वांगीण समुन्नतिका आदि-स्रोत आध्यात्मिक उन्नति ही है; यह वह माप-दण्ड है, जिससे हम किसी देशके विकास और उसकी सभ्यताको ज्ञात कर सकते हैं।" हमारे देशकी राजनीतिमें आजकल ऐसे नेताओंको प्रधानता प्राप्त होती चली जा रही है, जो भारतका एकदम ही उद्धार कर डालनेकी धुनमें यहाँकी राजनीतिसे धर्मको दूधकी मक्खीकी भाँति निकाल फेंकना चाहते हैं। वे पश्चिमके साम्राज्यवादके घोर शत्रु हैं, लेकिन अपनाते पश्चिमके उन आदर्शोंको जाते हैं, जिनका परिवर्द्धित रूप आजके मानव-समाजके लिए एक भीषण पाप हो रहा है। पूर्वीय देशोंकी यह एक विशेषता है कि वे धर्म और राजनीतिको दो अलग-अलग वस्तुएँ नहीं मानते रहे हैं। यदि भौतिक नहीं, तो उनकी आध्यात्मिक महत्ताका सबसे ज़बरदस्त कारण यही विशेषता रही है। भारत अगर अपनी युग-युगान्तरकी प्राचीनताको त्यागकर पार्थिव उन्नतिको प्राप्त होता है, तो वह अपना भला कुछ समय तक भले ही कर ले, विश्व-प्रेम और मनुष्य-मनुष्यके भाई-चारेके पौरस्त्य सिद्धान्तसे वह कोसों दूर जा पड़ेगा।

इसलामकी शिक्षाएँ

इसलामकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें वर्तमान कालमें हमारे

देशमें बड़ा भ्रम फैल रहा है, और यह अकारण ही नहीं है। वर्तमान परिस्थितियोंमें भारतवासी—विशेषकर हिन्दुओं—को वैसा सोचने और तदनुकूल अपना विश्वास बनानेका एक आधार है, लेकिन इसलाम, बहैसियत एक पन्थके, दरअसल उतना ही पवित्र और महदुद्देश्य-पूर्ण है, जितने अन्य धार्मिकविश्वास। मुहम्मद साहब एक जगह फ़रमाते हैं—''मोमिन हो, यहूदी हो, ईसाई हो या अरबी, जो ईश्वर और क़यामतमें विश्वास करता है, और जो सत्कर्म-पूर्वक जीवित रहता है, अपने कर्मोंका सुफल पायगा; वह भय और शोकसे परे है।'' यह बात भी नहीं है कि इसलाम कर्म-प्रधान पन्थ नहीं है। 'ईमान लानेवाला बख्शा जायगा' लेकिन 'जो जस करै सो तस फल चाखा'—"His salvation depends on his labours, on his acts & thoughts." मनसा, वाचा, कर्मणा त्रिविधा कर्मगति उसके पीछे लगी हुई है।

इसलामका भाई-चारा केवल सहभोजिता और सह-विवाह तक ही सीमित नहीं है। व्यक्तिको समाजमें तो पूरा स्वातन्त्र्य है ही, उससे बहुत दूर राज-शासनमें भी उसकी पूछ है। इसलाममें व्यक्ति और राजसूत्रके लिए दो मर्यादाएँ नहीं हैं। मुसलमान इस सिद्धान्तके हमेशा खिलाफ़ रहे हैं कि उनके समाजमें व्यक्तिके लिए आचरणकी मर्यादा और हो एवं शासन-सूत्रके लिए और। कोई भी खलीफ़ा, सुलतान, बादशाह या अमीर व्यक्तिगत रूपसे समाजमें बड़ा नहीं रहा। शाहंशाह और फ़क़ीर एक ही सफ़में खड़े होकर नमाज़ अदा करेंगे, और क़ाज़ी (न्यायाधीश) के सामने भी दोनों एक रूपमें खड़े होंगे। एक रास्ता जाता हुआ मुसलमान भी एक सुलतानकी वैयक्तिक अनीतिके लिए उसे क़ाज़ीके कठघरेमें खड़ा कर सकता है। यही इसलामका राजनीतिकरूप है। यही उसकी प्रजा-सत्तात्मक विशेषता है। धार्मिक भाई-चारेका यह रूप और भी आगे जाता है। इसलामके इतिहासमें कई क्षमता-सम्पन्न गुलाम बादशाह तक रह चुके हैं। अयासबाका उदाहरण अभी बिलकुल ताज़ा है।

राजनीतिमें धर्मका पुट होनेका बड़ा अच्छा प्रभाव इसलामकी शासन-नीतिपर पड़ा था। राजतन्त्रमें बिलकुल साम्यवाद था। जार्ज बर्नार्ड शा का कथन है—''साम्यवादके जिस सिद्धान्तको पश्चिमवाले अभी समझ भी नहीं पाये हैं, वह आजसे तेरह सौ वर्ष पूर्व इसलाममें व्यवहृत होता था। भूमि राज-सम्पत्ति थी और वह लोगोंको थोड़ी मालगुज़ारीपर मिला करती थी। इसलामने वास्तवमें केवल अधिकांश मनुष्योंकी सुख-समृद्धि ही नहीं, बल्कि सार्वजनिक सुख-शान्तिके सिद्धान्तपर अमल किया था।''

शा महाशय धर्मकी परिभाषा करते हैं:—

"The greatest & most important function of religion is that it should be helpful to humanity in leading a better and fuller life."

अर्थात्—''किसी मत या पन्थका सबसे आवश्यक व्यवहार यह है कि वह मानव-जातिका उत्तम और परिपूर्ण जीवन वहन करनेमें सहायक सिद्ध हो।''

सो इसलामने, जहाँ तक उसके अपने दायरेका सम्बन्ध है, अनुकरणीय उदारता दिखाई है। वृहत् मानव-जातिका नहीं, तो मुसलिम-संसारका वह अवश्य हितू रहा है। मुसलमानने मुसलमानको कभी पीस डालने या चूस लेनेकी कोशिश नहीं की। इसलामकी एक बड़ी विशेषता यह भी रही है कि वह अन्य पन्थोंके गुणोंको आत्मसात् करता रहा है। इस मामलेमें उसका हाज़मा बड़ा तेज़ रहा है। एक लेखक कहता है—''इसलाममें किसी भी फ़िलासफ़ी और विज्ञानके गुणोंको आत्मभूत कर लेनेका ज़बर्दस्त माद्दा है। ×××× उसने दूसरे धर्मों और नीति-शास्त्रके सारभागको अपनेमें प्रविष्टकर उसे अपना बना लिया है। अपने प्रारम्भिक कालमें इसलामको यूनानसे पाला पड़ा, लेकिन उसने यूनानी सभ्यताको अपना एक अंग बना लिया। इसी प्रकार जब इसलामका हिन्दू-धर्मसे मुक़ाबला हुआ, तो उसने हिन्दू-धर्ममें से वेदान्तको ग्रहण कर लिया। सच तो यह है कि संसारमें कोई प्रमुख विचार-प्रणाली, धार्मिक वा अन्य,

ऐसी नहीं है, जिससे इसलामने कुछ-न-कुछ लिया न हो।" लेकिन फिर भी अपनी मौलिक पवित्रताको बरकरार रखा है। यह इसलामकी ऐसी विशिष्टता है, जो दूसरे धर्मोंमें नहीं पाई जाती। और यही कारण प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्धके बाद हज़रत मुहम्मदके पन्थ को इतनी सफलता मिली। जे० पारकिन्सन नामक एक लेखकका कहना है —"भगवान् बुद्धको छोड़कर—जिन्होंने धार्मिक क्षेत्रसे भी बहुत ऊँचे सिद्धान्तोंका प्रचार किया, जिनके सिद्धान्तने सार्वजनिक आत्म-शान्तिकी ध्वजाको फहराया, जिनका यह आदर्श वाक्य था कि 'धर्ममें हिंसाका कोई स्थान नहीं है'—शेष सब मत-पन्थोंके इतिहासमें इसलामके आचरण और विस्तारने एक नया पन्ना जोड़ा है।"

इन महती विशेषताओंके अतिरिक्त छोटी-मोटी कई उत्तम विशेषताएँ इसलाममें और भी रही हैं। सूदखोरी इसलाममें हराम है। इसी भाँति किसी चीज़के व्यापारी उस वस्तुको अपनी बपौती बनाकर नहीं बैठ सकते थे; विशेषकर खाद्यपदार्थोंके सम्बन्धमें यह नियम खूब लागू था। इस तरह जनसाधारणका रक्त-शोषण इसलाममें असम्भव था। लाखोंको भूखा-नंगा रखकर मुट्ठीभर पूँजीपतियोंके ऐश-इशरतकी इन्तहापर धार्मिक कानून द्वारा रोक लगी हुई थी। आजका संसार जिस पापसे जला जा रहा है, वह मुसलमानी देशोंमें नाम-मात्रको भी न था। पूँजीवादका पता नहीं था, राजकोष तकमें मुहरों और अशर्फ़ियोंका ढेर न लगने पाता था। महात्मा जी० बी० शाके शब्दोंमें—"Capitalism, that terrible curse of the modern age was made impossible by Islam."—"वर्तमान युगके अभिशाप, पूँजीवादको इसलाममें असम्भव बना दिया गया था।"—इस साम्यवादकी झोपड़ियोंसे लेकर राजमहलों तक गूँज थी। *ख़लीफ़ा उमर अपने राजकोषमें आवश्यकतासे एक पाई अधिक न रखते थे। फ़ालतू रकम प्रति शुक्रवारको जनसाधारणमें, उनकी आवश्यकताओंके अनुकूल, बाँट दी जाया करती थी।*

मुसलमानोंमें मुफ़्तख़ोरी न फैले, इसलिए श्रमजीवनको महत्त्व दिया गया था। मुहम्मद साहब ख़ुद बड़े परिश्रमी थे। उनकी इन शिक्षाओंका असर यह पड़ा था कि, मध्य एशियाकी रियासतोंके कई ख़लीफ़ा ऐसे गुज़रे हैं, जो अपनी जीविका अपने हाथसे कमाते थे, शाही ख़ज़ानेकी एक कौड़ी भी उनके लिए हराम थी। भारतमें भी नासिरुद्दीन किताबें लिखकर अपनी गुज़र करनेवाला हो गुज़रा है। उसके सम्बन्धमें एक किम्वदन्ती है। उसकी मलका स्वयं रोटी पकाया करती थी। पतिकी इतनी आमदनी ही न थी कि, कोई लौंडी रखी जा सकती। एक दिन बेगमका हाथ रोटी बनाते समय जल गया। नासीरुद्दीन जब भोजन करने पहुँचे, तो बेगमसे हाथपर पट्टी बाँधनेका कारण पूछा। बेगमने अपने दुःखको बयान करते-हुए कहीं यह कह दिया कि 'जहाँपनाह बावर्चीख़ानेमें एक लौंडी रख दी जाय।' कहते हैं कि बादशाहने कहा—"रियायाकी कमाई हमारे चौकेके लिए नहीं है। वह अल्लाहकी अमानत है, अपने लिए ख़र्च करनेका मुझे क्या हक़?" औरंगजेब जैसा द्वेषी सम्राट भी इसलामका ऐसा पक्का अनुयायी था कि भारत-कोषमें से अपने गुज़ारेके लिए कुछ न लेकर टोपियाँ बनाकर अपनी रोज़ी कमाता था।

हज़रत मुहम्मदने जुआ और शराबकी बहुत निन्दा की है। इसके मुक़ाबलेमें पाश्चात्य समाजमें फैले हुए अनेक प्रकारके जुएको पारकिन्सन One of the curses of present day Christiondom" (वर्तमानकालीन ईसाइयतका एक अभिशाप) कहता है। इसमें सन्देह ही क्या है। भारतके भी बड़े-बड़े शहरोंके होटल, शराबख़ाने, नाचघर, क्लब, थियेटर, केफ़, रेस्टोरेंट और कार्निवाल पश्चिमके इस 'पुरस्कार' के प्रधान अड्डे हैं। बल्कि कार्निवालों और फ़ेन्सीफ़ेयरोंमें तो जुआ ही होता है।

गोरे, अधगोरे, मनचले हिन्दुस्तानी ख़ूब इस सभ्य जुएमें पानीकी तरह रुपया बहाते हैं। पता नहीं पुलिस इन सभ्य जुआरियोंको क्यों गिरफ़्तार नहीं किया करती; क्यों

सरकार भी जुएके ऐसे खुलेआम अड्डे खोलनेकी आज्ञा दे देती है।

इसलाममें शराब हराम है। संसारके सभी मतोंने इस पापकी निन्दा की है। ईसाइयतने भी इसे निन्दनीय ठहराया है, लेकिन आजके पश्चिमी देशोंमें शराब पानीकी तरह हो गई है। अमेरिकाने तो अब तोबा कर ली है। शराबका कैसा विनाशकारी प्रभाव यूरोपके समाजपर पड़ा है, इसे पारकिंसन बड़े दुःखके साथ बयान करता है—"पश्चिमकी इस अतिशय पतनकारी और नाशक लतने समाजमें वे दूषण उत्पन्न कर दिये हैं जो आज पीढ़ी-दर-पीढ़ी यूरोपके स्त्री-पुरुषोंको पतित और व्यभिचारी बनाते चले जा रहे हैं।"

यह है इसलाम और उसके प्रवर्तक मुहम्मद साहबकी शिक्षाओं और उनके जीवनके ६३ वर्षोंमें से पिछले ४० वर्षोंके परिश्रमका प्रतिफल। मुहम्मद साहब इस संसारमें ६३ वर्ष=२२३३० दिन ६ घंटे ज़िन्दा रहकर सन् ६३२ ई० की ८ वीं जूनको मदीनेमें स्वर्गवासी हुए। वह शुरूसे ही पैग़म्बर नहीं पैदा हुए थे। कहा जाता है, सन् ६१० की २२ फ़रवरीको उन्हें यह महान् पद प्राप्त हुआ। हदीसें उनके जीवनकी घटनाओंसे भरी पड़ी हैं।

संसारके इतिहासका निर्माण और विनाश क़लम और तलवार दो ही साधनोंसे होता आया है, लेकिन कैसे आश्चर्यकी बात है कि स्वयं निरक्षर होते हुए भी हज़रत मुहम्मद साहबने क़लमके मैदानमें अद्वितीय सफलता प्राप्त की। यह उनकी शिक्षाओंका ही प्रभाव था कि इसलाम अपने मध्यकालमें तो भरपूर और उपरान्हमें भी संसारका एक प्रमुख धर्म रहा है।

इसलामकी तलवार

ईसाई इतिहासकारोंने अपने दूषित दृष्टिबिन्दुके कारण इसलामकी तलवारको खूब रंग कर दिखलाया है। इसमें [illegible] नहीं कि इसलामकी तलवार, जो मुहम्मद साहबके [illegible] चमक निकली थी, बड़े तेज़ पानीकी निकली। इसी तलवारके बलसे इसलाम एशियाके हृदयसे उठकर यूरोपमें स्पेन और फ्रान्स तक फैल गया था। इसलामकी तात्कालिक समृद्धि-सम्बर्द्धनके सम्बन्धमें जे० पारकिंसन कहता है—

"जहाँ एक ओर क़ौमके बच्चे-बच्चेकी, इसलामको व्यापक बनानेकी परम्परागत भावना सिपाहियाना शान और फ़तहकी हौससे उन्हें अग्रसर करती हुई पश्चिममें फ्रान्सके परनिज़-प्रान्त तक और पूर्वमें इण्डस और अक्सस नदियों तक ले पहुँची थी, वहाँ दूसरी ओर इसलामी व्यवस्थाकी शक्ति और उसके साम्यवादी तत्वने शर्क़ियानी (पौरस्त्य) सभ्यताका निर्माण करते हुए उसकी बलिष्ठ शालीनताको बरक़रार रखा था। इन गुणोंके कारण यह सभ्यता तत्कालीन और प्राचीन साम्राज्योंकी मुकुट-मणि बन गई थी। इस शर्क़ियानी साम्राज्यके ज़मानेमें उसके चारों ओरके शहरोंको भी प्रधानता प्राप्त थी। अनाबाकी वह शान थी कि पश्चिम दिशामें वह 'बेगम-शहर' कहलाता था। इसी तरह बग़दाद 'पूर्वका गौरव', दमिश्क 'रेगिस्तान मोती' और क़रतुबा 'दुनियाकी महान् शान'के नामसे मशहूर थे।"

सो, किसी दिन भूमण्डलपर इसलामकी वह धाक जमी थी कि उसकी सभ्यता पौरस्त्य (शर्क़ी—Saracenic) सभ्यताका पर्यायवाची शब्द बन गई थी। इसलामके प्रादुर्भावसे बहुत पूर्व कम-से-कम बौद्ध सभ्यता भारतके बाहर हिमालयको लाँघती और अरब-सागरको पार करती हुई पूर्वीय देशों—एशियाके मध्य तक पहुँची थी, लेकिन इसलामकी चढ़ती कलाके आगे इतिहासकारोंको उसका प्रकाश भी मन्द दिखाई पड़ा। यह मानना पड़ेगा कि इसलामकी तलवार सर्वथा दूधकी धुली कभी नहीं रही, जैसा कि भारतमें तैमूर, और औरंगज़ेबके कारनामोंसे प्रकट है, लेकिन इस सत्यको भी निष्पक्ष-भावसे मानना चाहिए कि इसलामकी तलवार सर्वथा सर्वदा डाकू और 'हलाकू'की तलवार नहीं रही। वह एक साम्राज्यवादी बहादुर सिपाहीकी तलवार थी, जो एक हाथमें क़ुरान और दूसरेमें तलवार लिए विजयश्र

विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा था। यद्यपि वर्तमान युगमें साम्राज्यवाद एक अत्यन्त निकृष्ट कोटिकी सभ्यता मानी जाती है, लेकिन जिस युगमें इसलाम उठा, पनपा और फला-फूला—सार्वजनिक भ्रातृभाव और विश्व-बन्धुत्वकी परिभाषा एक संकुचित परिधि तक ही सीमित थी; केवल 'मुसलमान' ही उसके भीतर समा सकता था, संकुचित धार्मिक—'दीनी'—दृष्टि उसके मूलमें काम कर रही थी। एक बात और भी है, उस समय उन क्षेत्रोंमें जहाँ इसलाम हावी आया, कोई ऐसी विशेष प्रभावशालिनी सभ्यता वर्तमान न थी, जो इसलामसे अधिक चमत्कारपूर्ण, व्यापक और व्यवहार्य एवं जनसमुदायके हृदयोंको खींचने वाली होती।

इसलाम और आधुनिक युग

लेकिन आज धर्मकी संकुचित परिभाषाओंको तिलांजलि दी जा रही है। आजका मानव-समुदाय एक बृहत् परिवारके अनेकानेक सदस्योंकी भाँति एकस्वरता और मधुरताके वायुमण्डलमें रहना चाहता है। इसलाम कितना ही जनतन्त्र (Democracy) पर आधारित हो, लेकिन वर्तमान कालीन मनोवृत्तियोंके अनुकूल उसमें गुँजायश तब तक हरगिज़ नहीं हो सकती, जब तक वह अन्य धर्मोंके प्रति अपेक्षित रूपसे सहिष्णुता धारण न करले। इसलामकी प्रशंसामें, उसके भाई-चारे और इसलामी विश्व-बन्धुत्वकी तारीफ़में, अनेक विधर्मी विचारकों—जार्ज बरनार्ड शा तक—ने अनुकूल विचार प्रकट किये हैं। वे सभी ईसाइयतके वर्तमान विनाशकारी रूपसे ऊबे-से दीखते हैं। वे यहाँ तक कह रहे हैं कि मौजूदा ईसाइयतको ताक़पर रखकर यूरोपको क़ुरानका कलमा पढ़ना पड़ेगा। हम नहीं कह सकते कि उनका यह कथन किस सीमा तक क्या अर्थ रखता है, लेकिन जहाँ तक इसलामकी जन्मभूमि एशियाके उत्कर्ष, यहाँकी पददलित जातियोंके उत्थान और भारतके पुनर्निर्माणका प्रश्न सम्बन्धित है, इसलामके नामपर प्रचलित रवय्ये—'धार्मिक'-कट्टरता, रूढ़िवाद और हार्दिक संकुचितता—को छोड़ना पड़ेगा; विशेषकर भारतवर्षके सम्बन्धमें तो यह शर्त सोलह आने सत्य है। मुसलमान नेताओंसे हम निवेदन करेंगे कि वे कृपाकर ऐसे ही प्रचारको अब अपनावें, ताकि इसलामके माथेसे कलंकका यह टीका मिटे, और संसारमें दो महान् क़ौमोंकी जो लोक-हँसाई हो रही है, वह बन्द हो। भारत धर्म-प्रधान देश है। धर्मके बिना वह एक क्षण जीवित रहना पसन्द न करेगा—न हिन्दू, न मुसलमान। लेकिन उस 'धर्म'का रूप अब अतिशय व्यापक और ज्ञापक होना चाहिए। मज़हब और मिल्लत—धर्म और सम्प्रदाय—की परिभाषा आज असीमित हो गई है। इसलाम ही मज़हब, बाक़ी सब कुफ़्र तथा मुसलमान ही दीनीभाई, बाक़ी सब 'मुरतिद'—यह भेद-भाव न तो आजकी दुनियाँमें और न भारतमें चल सकेगा। आजका ज़माना तो सम्प्रदायवादका कट्टर शत्रु है। आजका मनुष्यप्राणी धार्मिक रहना चाहता है, धर्मान्ध नहीं। विश्व-हित ही उसका मज़हब है और मनुष्य-मात्र उसकी मिल्लत। यह विशाल हृदयता और 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की भावना आजके युगकी ही खोज नहीं है। आजसे शताब्दियों पूर्व इसलामके अनेक औलियों, फ़क़ीरों और साधु सन्तोंने बड़े सुमधुर रूपमें तलवारके समानान्तार इसलामका दूर देशोंमें प्रचार किया है। एक ओर तलवारवाले अपनी तामस-प्रधान राजसत्ताका आश्रय ले रहे थे, तो दूसरी ओर मानव-हितकी प्रेरणासे प्रेरित होकर मज़हबके फ़रिश्ते यह फ़क़ीर मध्य एशियाकी खजूरोंकी झुरमुटोंसे निकल कर दूर-दूर तक अलख जगाते, वहदानियत (एकेश्वरवादिता) और मुहब्बतके गीत गाते इसलामका प्रचार कर रहे थे, लेकिन उनका इसलाम आजके इसलामकी भाँति सीमित और संकुचित न था। अनेक मुसलमान कवियोंने भी समय समय पर धार्मिक-संकीर्णताकी निन्दा की है। मिर्ज़ा असदुल्लाख़ाँ 'ग़ालिब'का एक शेर है :—

हम मवाहिद (१) हैं, हमारा केश (२) है तर्के-रसूम (३)
मिल्लतें (४) जब मिट गईं, अजज़ा (५) ए-ईमाँ होगईं।

१—एकेश्वरवादी ; २—धर्म, मज़हब ; ३—परिपाटी-परिग्रह ; ४—सम्प्रदाय ; ५—अंश, बहुवचन।

सो, सचमुच हम मिल्लतोंके इस तंग कूएको कमसे कम इस भूमिमें जब तक न फोड़ देंगे, संसारकी दो खास क़ौमोंका आज और आजसे सदियों तक ज़िल्लतोंसे पीछा न छुटेगा।

हिन्दू और इसलाम

हिन्दुओंको भी यह बात अब गाँठ बाँध लेनी पड़ेगी कि भारतमें मुसलमान रहेंगे, और आप उन्हें म्लेच्छ कहकर दुरदुराते रहें, यह हो नहीं सकता। हम दिखला चुके हैं कि इसलाम बहैसियत एक संस्कृतिके उतना ही महान् और उच्च है, जितना कि कोई भी अन्य धर्म। यह दोष इसलामका नहीं, जो आजके अधिकांश भारतीय मुसलमान जाहिल और उजड्ड हैं। उनको ऐसा बनानेका बहुत कुछ पाप हमारे सर भी है।

हाँ, एक बात यह भी है कि मनुष्य जातिने कभी भी किसी धर्माचार्यकी शिक्षाओंपर व्यावहारिक आचरण नहीं किया, वह इसकी अभ्यस्त नहीं रही। इसके विपरीत धर्मके नामपर वह सदैव कुछ बाहरी रूढ़ियोंको पकड़े रही, उन्हींकी लीक पीटती रही। इस बातको सभी विचारशील मानेंगे कि आजके मुसलमान और इतिहासके मुसलमानमें भारी अन्तर है। इसलाममें सूदखोरी हराम हैं। इससे समाजमें मुफ्तखोरीका पाप न बढ़े, इसीलिए इसलामके महान् प्रवर्तकने इसकी व्यवस्था की थी, लेकिन आजके भारतीय मुसलमान सिर्फ़ हिन्दुओंको छकानेकी ग़रज़से 'सूदमन्द' कान्फ़रेन्स करके यह तय करते हैं कि ब्याज खाना पाप नहीं। भारतमें आज हज़ारों काबुली इसी 'पाप'की रोटी खा रहे हैं। आजका मुसलमान धर्मान्ध, क्रूर और हठधर्मी है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार आजका हिन्दू धर्मके नामपर पाखण्डी, पतित ; अहिंसाके नामपर प्राणोंका मोही, कापुरुष; 'उदार चरित'के नामपर संकीर्ण-हृदय, मूर्ख और 'असार' (!) संसारमें जल-कीटकी भाँति मग्न रहनेवाला एक प्राणी है। अस्तु, आजके युगमें दोनोंको एक साथ रहनेके लिए संस्कृति-संशोधन करना होगा, सामाजिक रूढ़ियोंको दफ़नाना होगा, अपने-अपने धर्मोंके वास्तविकतत्त्वको पहिचानना पड़ेगा और दोनोंमें एक पड़ोसी, एक हितैषी, एक मित्रके नाते ऐसा सामंजस्य स्थापित करना पड़ेगा, जो मुक्तिका दाता हो। यह होगा तभी, जब हम संकीर्ण भेद-भावको भस्म कर देंगे। चन्द गुण्डोंकी काली करतूतोंके कारण हम एक विशाल सभ्यताको नहीं कोस सकते। अंग्रेज़ोंके साम्राज्यवाद और निकृष्ट स्वार्थवादसे तंग आकर महान् ईसाकी शिक्षाको बुराभला कहना अक्लमन्दी नहीं है। तीखे काँटोंकी वजहसे गुलाबका सौन्दर्य तो नष्ट नहीं हो जाता।

ऐक्य स्थापनके लिए एकको दूसरेके अधिक नज़दीक जाना पड़ेगा। अलग बैठे-बैठे अपनी खिचड़ी पकाते रहनेसे काम बननेके स्थानपर बिगड़ता अधिक जा रहा है। यह ठीक है कि आजका हिन्दू विदग्ध बैठा है, लेकिन यह भी सत्य है कि उसकी वर्तमान ज़िल्लतोंका कारण वह स्वयं भी है। वह इस क़दर लोचपोच और गुड़की भेली क्यों बन गया है, जो चारों ओरके चींटे उसीसे चिपट जाना चाहते हैं ? क्या इस तरहका बनकर वह अपने धर्मसे पतित नहीं हो रहा है ? मुसलमानोंको कोसते रहनेसे कदापि भला न होगा। ज़रूर उसपर ज़्यादतियाँ हुई हैं, सो उन्हें इस समय अखिल राष्ट्रके हितके नामपर भुला देते हुए ऐसे सुसंस्कृत समाजकी सृष्टि करनी होगी, जो वर्तमान युगके बिलकुल अनुकूल हो, जिसमें धार्मिकता तो नष्ट न हो, लेकिन धर्म-मूढ़ताका मुँह यहाँसे सदैवके लिए काला हो जाय। हमें चाहिए कि हम इसलामका अध्ययन करें— आखिर हम रोज़ाना अपने बच्चोंको ईसाइयतका पाठ भी तो स्कूलोंमें पढ़ने दे ही देते हैं—उसकी विशेषताओंको समझें और उनको सराहें ! मैं तो यह निःसंकोच कहनेको तय्यार हूँ कि हिन्दू चाहे तो आजके degenerated (पतित) मुसलमानोंसे भी कई बातें सीख सकते हैं। इसलामकी कई बातें ग्रहण की जा सकती हैं। यह जीवनका चिह्न है, कोई बुराईकी बात नहीं। हममें इतना माद्दा तो हो कि

हम किसीको अपनेमें खपा सकें। जिन अंग्रेज़ोंके साथ हमें सदैव नहीं रहना है, उनके अनेक दोषोंको जब हम ख़ुशी-ख़ुशी गलेके नीचे उतारते जा रहे हैं, तो जिस सम्प्रदायका हमारा चोली-दामनका साथ है और रहेगा, उसकी विशेषताओंकी ओर भी नज़र न डालना परलेसिरेकी बुद्धिहीनताकी निशानी है।

एक शब्द देशके नेताओंसे

आपको स्वराज्यकी बेहद चिन्ता है। ठीक भी है, लेकिन इतना स्पष्ट है कि जब तक दोनों जातियोंमें तहज़ीबी एकता न होगी, तब तक राष्ट्रीय एकता क़ायम हो नहीं सकती। और इस तहज़ीबी एकताके स्थापनके लिए काफ़ी समय और शक्ति चाहिए। आपका कर्तव्य है कि स्वराज्यकी स्थापनाके साथ-साथ आप इन दो सभ्यताओंके सामंजस्यके भी कुछ साधन सोचें। गत वर्ष १८ अगस्तको पैग़म्बर मुहम्मद साहबका जन्म-दिवस था। भारतमें अधिकांश स्थानोंपर मुसलमानोंने विविध रूपोंमें इसे मनाया। कहीं-कहीं हिन्दुओंने भी उसमें पूर्ण सहयोग दिया। यह लक्षण अच्छे हैं। अगर ऐसे मौक़ोंपर दोनों जातियाँ मिल बैठा करें, तो इस दिशामें बहुत काम हो सकता है। हमारे नेताओंको चाहिए कि इस प्रकारके सार्वजनिक सम्मेलनोंको समय-समयपर संगठित करनेकी आवश्यकतापर ध्यान दें और इस ओर भी कुछ समय लगावें, क्योंकि भारतको क्षणिक नहीं, स्थायी राष्ट्रीय ऐक्यकी आवश्यकता है, और वह ऐक्य, हमारी नम्र सम्मतिमें, बिना संस्कृति-सामंजस्यके स्थापित नहीं हो सकता।

शान्ति

शान्तिके समान शक्ति दूसरी कहीं है नहीं,
'नूतन' बुरी है छेड़ शान्तिके पुजारीसे।
शान्ति ही से सत्यव्रतधारी प्रह्लाद वीर,
बाज़ी ले गया था दानवेन्द्र बलधारीसे॥
भस्म हुए क्षणमें सगरके हज़ारों पुत्र,
मुनि नैन-पावककी एक चिनगारीसे।
प्रान्तकी, प्रदेशकी, हक़ीक़त क्या राष्ट्रकी है,
काँप उठता है विश्व शान्त क्रान्तिकारीसे॥

—'नूतन'

रोड्सकी छात्रवृत्तियाँ

[लेखक :—बनारसीदास चतुर्वेदी]

ब्रिटिश साम्राज्यके विस्तारमें जिन-जिन लोगोंने सहायता दी है, उनमें सेसिल जान रोड्सका नाम खास तौरसे उल्लेख-योग्य है। हम साम्राज्यवादी नहीं, इसलिए जो कुछ रोड्सने किया, और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जिन उपायोंका अवलम्बन किया, उन सबका समर्थन नहीं कर सकते। पर जिस बातकी हमें प्रशंसा करनी चाहिए, वह थी उनकी दूरदर्शिता। आज अफ्रिकाका रोडेसिया नामक प्रदेश—जिसका क्षेत्रफल चार लाख पचास हजार वर्गमील है—ब्रिटेनके अधीन है, और वहाँ बारह या तेरह हजार गोरे रहते हैं। इन थोड़ेसे गोरोंका इतने बड़े भूभागपर कब्जा कर बैठना कहाँ तक उचित है, इस प्रश्नको यहाँ छेड़नेकी आवश्यकता नहीं। रोड्सके चरित्रकी जिस खूबीकी ओर हम 'विशाल-भारत' के पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, वह थी उनकी धुन। सेसिल रोड्सने एक बार लार्ड रोज़बरीसे कहा था—"जब मैं ऐसे आदमियोंके बीचमें फँस जाता हूँ, जिनकी प्रकृति मुझसे बिलकुल भिन्न होती है, जब वे लोग कोई खेल खेलते हैं, अथवा जब कभी मैं किसी रेलके डिब्बेमें अपनेको बिलकुल अकेला पाता हूँ, तब मैं आँख बन्द करके अपने उद्देश्यका विचार किया करता हूँ। मेरा यह उद्देश्य ही मेरा सर्वोत्तम मित्र है।"

सर सेसिल रोड्सका उद्देश्य यह था कि एक खासी रकम दान की जावे, जिसके ब्याजसे ब्रिटिश साम्राज्य, अमेरिका तथा जर्मनीके चुने हुए विद्यार्थी तीन वर्ष तक आक्सफोर्डमें शिक्षा प्राप्त कर सकें। उन्हें अपने उद्देश्यमें सफलता मिली, और इस समय तीन-तीन सौ पौण्ड प्रति वर्षकी १७५ छात्रवृत्तियाँ आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालयमें तीन वर्षके लिए दी जाती हैं। इन छात्रवृत्तियोंको इस प्रकार बाँटा गया है :—

(१) कनाडाके प्रत्येक प्रान्तसे प्रति वर्ष एक विद्यार्थी।

(२) आस्ट्रेलियाके प्रत्येक राज्यसे प्रतिवर्ष एक विद्यार्थी।

(३) केपकालोनीके चार कालेजोंमेंसे प्रत्येकसे प्रतिवर्ष एक विद्यार्थी।

(४) न्यूज़ीलैण्ड, नेटाल, जमेका, बरमूडा और न्यू फ़ाउण्डलैंडसे प्रतिवर्ष एक विद्यार्थी।

(५) रोडेसियाके तीन विद्यार्थी प्रतिवर्ष।

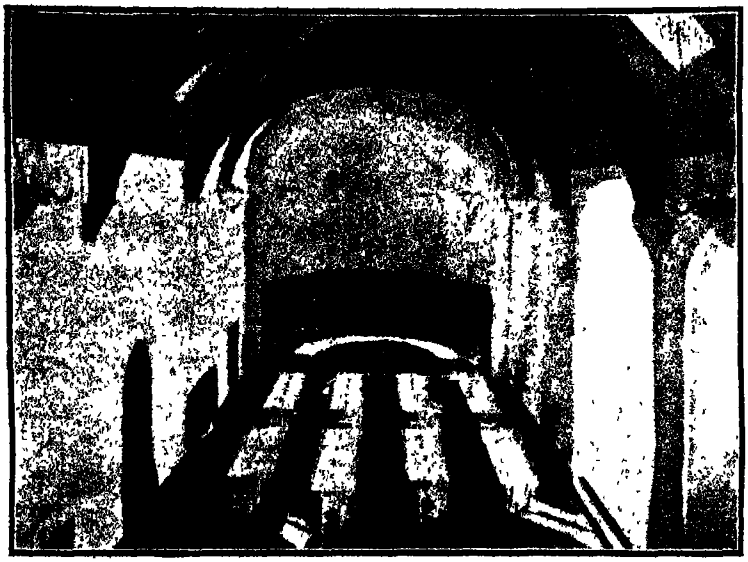
(६) संयुक्त-राज्य अमेरिकाके प्रत्येक राज्यके दो विद्यार्थी आक्सफ़ोर्डमें बराबर रहें, इस लिए तीन वर्षमें दो बार विद्यार्थियोंका चुनाव होता है।

(७) जर्मनीके पाँच विद्यार्थी प्रतिवर्ष।

इन छात्रवृत्तियोंकी स्थापनाका उद्देश्य वर्णन करते हुए सेसिल रोड्सने अपने विलमें लिखा था :—

"(१) ब्रिटिश उपनिवेश—मेरा यह खयाल है कि यदि ब्रिटिश उपनिवेशोंके नवयुवक इंग्लैण्डके किसी विश्व-विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करेंगे, तो उनके विचारोंमें व्यापकता आजावेगी, उन्हें व्यवहार और आचरणका ज्ञान प्राप्त होगा, और उनके दिमाग़में यह बात जमकर बैठ जावेगी कि उपनिवेशोंसे ब्रिटेनको और ब्रिटेनसे उपनिवेशोंको क्या-क्या लाभ हैं और इस प्रकार साम्राज्यकी एकताके विचारकी नींव पक्की होगी।"

"(२) अमेरिकन :—मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि संसारके अंग्रेजी-भाषा बोलनेवाले आदमियोंमें मेल पैदा किया जाय। इस मेलसे बड़े लाभ होंगे। यदि उत्तरी अमेरिकाके विद्यार्थी इन छात्रवृत्तियोंसे लाभ उठाकर आक्सफ़ोर्डमें पढ़ने आवेंगे तो उनके हृदयमें उस देशके प्रति जहाँसे उनके पूर्वज गये थे स्नेह उत्पन्न होगा और मुझे आशा है कि इसके कारण उनका अपनी जन्म-भूमिसे प्रेम भी नहीं घटेगा।"



आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयमें रोड्स-भवनका हाल

"(३) जर्मन :—जर्मन-सम्राट्ने जर्मन-स्कूलोंमें अंग्रेज़ी भाषाका पढ़ना अनिवार्य कर दिया है। आक्सफोर्डमें २५० पौंड प्रति वर्षके ५ वज़ीफ़े जर्मन लोगोंको हरसाल मिला करेंगे। छात्रोंका चुनाव अभी जर्मन-सम्राट्के अधीन रहेगा। इस प्रकार ब्रिटेन अमेरिका तथा जर्मनीका सम्बन्ध दृढ़ होगा और युद्ध असम्भव हो जावेगा।"

किस प्रकारके छात्र चुने जावें, इस विषयमें भी रोड्सने अपने विलमें लिखा था :—

"मेरी समझमें केवल ऐसे विद्यार्थियोंको चुनना जो किताबी कीड़े हैं, ठीक नहीं होगा। चुनाव करते समय इन बातोंका ख़याल रखा जाना चाहिए।"

(१) विद्यार्थीकी साहित्यिक योग्यता और ज्ञान।

(२) क्रिकेट, फुटबाल इत्यादि पौरुषमय खेलोंकी ओर उसकी रुचि है या नहीं ?

(३) मनुष्यता, सचाई, साहस, कर्तव्य परायणता दुर्बलोंके प्रति सहानुभूति, दया-भाव, निःस्वार्थता, मिलनसारी इत्यादि गुण उसमें कितनी मात्रामें पाये जाते हैं ?

(४) अपने स्कूलमें उसने नैतिक बल प्रदर्शित किया है या नहीं ? साथी छात्रोंके हितके लिए कुछ कार्य किया अथवा नहीं ? नेतृत्वके गुण उसमें कहां तक विद्यमान हैं ? इन गुणोंके कारण ही वह अपने भावी जीवनमें सार्वजनिक सेवाको अपना उच्चतम उद्देश्य बना सकेगा।"

रोड्सने लार्ड रोज़बरी, लार्ड ग्रे, लार्ड मिलनर इत्यादि सात सज्जनोंको स्थायीकोषका ट्रस्टी बनाया था।

गत वर्ष आक्सफोर्डमें रोड्स-होम नामक एक सुन्दर भवनका उद्घाटन-संस्कार हुआ था। इस भवनके एक भागमें रोड्स-ट्रस्टके सेक्रेटरी रहेंगे, दूसरे भागमें अंग्रेज़ी भाषा बोलनेवाली जातियोंके इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ होंगे। विशाल हाल व्याख्यान इत्यादिके लिए काम आ सकेगा।

वाइकाउण्ट ग्रेने अपने भाषणमें कहा था—"यहांके पुस्तकालयमें उन लोगोंको, जो ब्रिटिश राष्ट्र-समूह अथवा अमेरिकन संयुक्तराज्यकी सेवा करना चाहते हैं, प्रेरणा तथा उत्साहके लिये काफ़ी मसाला मिलेगा।"

छतके गुम्बदमें स्थान-स्थानपर ब्रिटिश साम्राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंके तथा संयुक्तराज्य अमेरिकाके चिह्न अंकित किये गये हैं। दीवालोंपर उन छात्रोंके जिन्होंने रोड्स-छात्रवृत्ति पाई थी और जिन्होंने स्वदेशकी उल्लेखयोग्य सेवा की, नाम खुदे रहेंगे। रोड्सकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि वज़ीफ़े पानेवाले लड़के ख़ास तौरसे पब्लिककी भलाईमें अपनी ज़िन्दगी बितावें। भवनके प्रवेश-द्वारपर ही उन छात्रोंके नाम खुदे हुए हैं, जिन्होंने महायुद्धमें अपने प्राण गँवाये थे। जिन दस जर्मन छात्रोंने जर्मनीके लिये अपने

प्राणोंका बलिदान दिया था, उनके नाम भी आक्सफोर्डके इस भवनमें खुदे रहेंगे।

रोड्स-छात्रवृत्तिकी बीसवीं वर्षगांठ मनानेके लिये जो भोज दिया गया था, उसमें जर्मनीके भी रोड्स-छात्रवृत्ति पानेवाले विद्यार्थी उपस्थित थे और उनमेंसे कितने ही 'Iron cross' (असाधारण वीरतासूचक पदक) पहने हुए हुए थे।

रोड्स-छात्रवृत्तियों और रोड्स-भवनका यह वृत्तान्त पढ़कर हमें अपने यहांके धनी-मानी सज्जनोंकी दान-प्रणालीका ख़्याल आता है। प्रथम तो हमारे यहांके धनाढ्य दान देना जानते ही नहीं, हां, ब्याह, बरातों तथा भोजोंमें लाखों रुपये बरबाद करना उन्हें ख़ूब आता है; पर जो दान देते भी हैं, वे पूरी दूरदर्शितासे काम नहीं लेते। दान भी ऐसे आदमियोंको और ऐसी संस्थाओंको दिया जाता है, जिनसे अपना कुछ मतलब निकलता है। कोई चुनावके काममें सहूलियत पैदा करनेके लिए दान देता है, तो कोई जातिमें अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिये। यदि किसीने छात्रवृत्तियां दी हैं तो उन्हें प्रान्तीयता अथवा दकियानूसी ख़यालातोंसे इतना बांध दिया है कि उनका उपयोग स्वतन्त्र प्रकृतिके छात्रों द्वारा नहीं होता। हमारे यहां कितने धनी आदमी ऐसे हैं, जिन्होंने दान देते समय रोड्सकी-सी दूरदर्शितासे काम लिया हो?

इस समय विदेशोंमें लगभग पचीस लाख भारतीय रहते हैं। क्या एक भी छात्रवृत्ति किसी दानवीरने इसलिए दी है, जिससे फिजी, ब्रिटिश-गायना, ट्रिनीडाड या मारीशसका कोई विद्यार्थी यहां आकर भारतके किसी विश्वविद्यालयमें शिक्षा ग्रहण कर सके?

हम लोग ऐसे काम करना चाहते हैं, जिनका फल तुरत ही मिल जावे। आज हिन्दू-सभाको पाँच-सात हज़ार रुपये दे दिये और कल उसके कार्यकर्ताओंकी मददसे एम० एल० सी० या एम० एल० ए० बन गये। ज़्यादा इन्तज़ार करनेके लिए न उनमें धैर्य है और न वे उसकी आवश्यकताको ही अनुभव करते हैं। यदि आप प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंका अध्ययन करना चाहें, तो एक भी स्थान आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जहाँ आपको आवश्यक रिपोर्ट अथवा पुस्तक इत्यादि देखनेका सुभीता हो!

रोड्सने तीन सौ पौण्ड प्रति वर्षकी १७५ छात्रवृत्तियां दी थीं, क्या हमारे दानवीर भारतीय सज्जन प्रवासी छात्रोंके लिए दो-चार छात्रवृत्तियां भी क़ायम कर सकेंगे?

पोस्ट मास्टर*

(कहानी)

भला ऐसा भी कोई है, जिसने पोस्ट मास्टरोंको न कोसा हो, जिसने उन्हें गालियां न दी हों? भला, ऐसा कौन है, जिसने उन बेचारोंकी गुस्ताखी, देरी या ग़लतीकी शिकायत लिखनेके लिए बिगड़कर घातक मुआइना-बुक न मांगी हो? ऐसा कौन है जो इन बेचारोंको समस्त मानव-जातिका कूड़ा-करकट या कमसे कम बदमाश लुटेरा न समझता हो? मगर ज़रा आप उन्हें न्यायकी दृष्टिसे देखिये, उनकी स्थितिपर ग़ौर कीजिये, तब शायद आप उनका विचार कुछ उदारतापूर्वक कर सकेंगे। पहले तो यही विचार कीजिए कि पोस्ट मास्टर है क्या? पोस्ट मास्टर सचमुचमें चौदहवें दर्जेका शहीद है। उसका पद ही उसे मार-पीटसे बचाता है, मगर वह भी हमेशा नहीं। इनकी ड्यूटी क्या है? क्या उनका काम सचमुचमें हाड़तोड़

* रूस बहुत बड़ा देश है, परन्तु वहाँ रेलोंका प्रचार अधिक नहीं है। फलतः लोगोंको घोड़ा-गाड़ियों आदिपर ख़ुशकीसे सफ़र करना पड़ता है। ज़ारशाहीके समयमें वहाँ स्थान-स्थानपर पोस्ट आफिस बने हुए थे। जहाँ घोड़ोंकी डाकका इन्तज़ाम रहता था। पोस्ट मास्टरका काम यह था कि वह यात्रियोंके लिए घोड़ों और सवारियोंका प्रबन्ध करता था, परन्तु प्रत्येक पोस्ट आफिसमें घोड़े और सवारियोंकी एक परिमित संख्या ही रहती थी, इसलिए कभी-कभी यात्रियोंको सवारीके लिए इन्तज़ार करना पड़ता था। पोस्ट मास्टर ही उनके ठहरने और खाने-पीनेका इन्तज़ाम करता था।

मेहनत नहीं है ? इन लोगोंको दिन-रात किसी समय भी आराम नहीं है। यात्रीगण अपनी लम्बी थकावट वाली यात्राकी समस्त एकत्रित परेशानी, और गुस्सेका बुखार बेचारे पोस्ट-मास्टर पर निकाला करते हैं। क्या मौसम खराब है ?—पोस्ट-मास्टरका क़सूर है। सड़कें बहुत बुरी दशामें हैं ?—पोस्ट-मास्टरका अपराध है। कोचवान बड़ा मट्टर है, या घोड़े आगे बढ़नेसे इनकार करते हैं—हर हालतमें क़सूरवार बेचारा पोस्टमास्टर ही है। उसके दीन हीन घरमें पैर रखनेके बाद राहगीर उसे दुश्मनकी भांति देखते हैं। अगर पोस्टमास्टर बेचारा अपने इन बिना बुलाये मेहमानोंसे शीघ्र ही छुटकारा पा जाय तो समझिये कि बड़ा क़िस्मतवर है। मगर यदि घोड़े न मौजूद हुए तो ? तब तो ख़ुदाकी पनाह ! उस बेचारेको कैसी कैसी गालियां, कैसी-कैसी धमकियां नसीब होती हैं ! पानी बरस रहा है, ओले पड़ रहे हैं, आंधी चल रही है, पर बेचारा पोस्ट-मास्टर बाहर घूमता है। वह बेचारा क्रुद्ध यात्रीकी मारपीट और गाली गलौजसे बचनेके लिए क्षण-भरके लिये बरामदेमें शरण लेता है। लीजिये एक फ़ौजी आता है। कांपता हुआ पोस्ट-मास्टर अपने अन्तिम दोनों, टट्टू, जिनमें हरकारेका घोड़ा भी शामिल है, उसे दे देता है। जनरल बिना एकबार 'धन्यवाद' कहे ही चल देता है। पांच मिनट बाद ही फिर घंटी सुनाई देती है। एक शाही सन्देशवाहक आकर मेज़पर घोड़ोंके लिये हुक्म पटक देता है ! अगर हम लोग इन सब बातोंपर ग़ौर करें तो हमारे हृदयोंमें इन पोस्ट-मास्टरोंके प्रति क्रोधके स्थानमें दया उत्पन्न होगी। इन लोगोंके सम्बन्धमें मैं दो-चार शब्द और कहूँगा। बीस वर्षके अर्सेमें मैंने प्रत्येक दिशामें—रूसके इस छोरसे उस छोर तककी यात्रा की है। डाककी सभी सड़कें मेरी देखी हुई हैं। मैं कोचवानोंकी कई पीढ़ियोंसे परिचित हूँ। ऐसे पोस्टमास्टर बहुत ही कम होंगे जिन्हें मैं शक्लसे न पहचानता हूँ या जिनसे मुझे काम न पड़ चुका हो। मेरा विचार है कि जल्द ही मैं अपनी यात्राओंके कुछ मनोरंजक वृत्तान्त प्रकाशित करूँ। यहाँ पर मैं इतना ही कहूँगा कि इन बेचारोंके सम्बन्धमें बड़ा भ्रम फैला है। साधारणत: ये बदनाम पोस्ट-मास्टर बड़े शान्त और स्वभावत: कृतज्ञता प्रकट करने वाले व्यक्ति होते हैं। उनमें सामाजिक प्रवृत्ति होती है और वे दम्भहीन होते हैं, साथ ही वे पैसेके बहुत लालची नहीं होते। कुछ यात्री मूर्खतावश इन लोगोंसे बातचीत करनेमें घृणा करते हैं ; वरना इनकी बातचीत बड़ी मनोरंजक और शिक्षाप्रद होती है। अपने सम्बन्धमें मैं यह स्वीकार करूँगा कि किसी उच्च सरकारी अफ़सरकी जो किसी शाही कामसे यात्रा कर रहा हो—लम्बी चौड़ी बात-चीतकी अपेक्षा मैं इन पोस्ट मास्टरोंसे बातचीत करना अधिक पसन्द करूँगा।

यह तो आप आसानीसे समझ सकते हैं कि इस सम्भ्रान्त श्रेणीके कुछ व्यक्तियोंसे मेरी मित्रता होगी ही। निस्सन्देह उनमेंसे एककी स्मृति मेरे लिए बड़ी मूल्यवान है। परिस्थितियोंने एक बार हम लोगोंको एकत्रित कर दिया था और इस समय मैं उसीका वृत्तान्त अपने मेहरबान पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करूँगा।

सन् १८१६ ई०के मई मासमें मैं······प्रान्तमें यात्रा कर रहा था। मैं जिस मार्गसे सफ़र कर रहा था, अब वह इस्तेमालमें कम आता है। उस समय मेरा पद बहुत मामूली था। मैं प्रत्येक मंज़िल पर गाड़ी बदलता था और दो घोड़ोंका किराया चुकाता था। नतीजा यह था कि पोस्ट-मास्टर लोग मेरी कुछ परवा नहीं करते थे और जो कुछ मुझे न्यायसे मिलना चाहिये था, उसे पानेके लिए मुझे अकसर ज़बर्दस्ती करनी पड़ती थी। मैं उस समय नौजवान और तेज़ तर्रार था। अत: मैं अकसर पोस्ट-मास्टरोंकी नीचता और दब्बूपन पर अपना गुस्सा निकाला करता था, खास कर उस समय जब वह शिकरम जो मुझे मिलनी चाहिये थी, किसी और बड़े अफ़सरको दे दी जाती थी। इसी प्रकार किसी गवर्नरकी भोजनकी मेज़पर बैठकर परोसने वालोंकी उपेक्षाका आदी होनेमें भी मुझे बहुत समय लगा था। आज वे दोनों

बातें ही मुझे उचित-सी जान पड़ती है। एक पुरानी कहावत है कि 'ओहदा ओहदेकी इज्ज़त करता है।' यदि इस कहावतके स्थानमें यह कह दिया जाय कि 'बुद्धिमान बुद्धिमानका आदर करता है' तो क्या दशा हो ? तब कैसे-कैसे अन्तर उठ खड़े होंगे और नौकर-चाकर पहले किसकी फ़िक्र करेंगे ? ख़ैर, मेरा क़िस्सा सुनिये।

उस दिन बड़ी गर्मी थी। मंज़िलसे तीन मील इधर ही मेहकी कुछ बूँदें पड़ीं, मगर शीघ्र ही मूसलधार बारिश शुरू हो गई, और मैं तरबतर हो गया। मंज़िलपर पहुँच कर मैंने सबसे पहले, जितनी जल्दी सम्भव था, कपड़े बदले और फिर चाय तय्यार करनेका हुक्म दिया।

"अरे दुन्नी !" पोस्ट-मास्टरने पुकारकर कहा— "केतली तय्यार करो और दौड़कर थोड़ी मलाई तो ले आओ।"

पोस्ट-मास्टरके इस कथनपर एक चौदह वर्षकी लड़की परदेके पीछेसे निकली और बरामदेकी तरफ़ दौड़ गई। मैं उसके सौन्दर्यपर चकित हो गया।

"यह तुम्हारी लड़की है ?" मैंने पोस्ट-मास्टरसे पूछा।

उसने सन्तोषजनक गर्वसे उत्तर दिया—"जी हाँ, यह मेरी लड़की है। यह बड़ी होशियार, बड़ी तेज़ है। बिलकुल अपनी माँके समान है।"

पोस्ट-मास्टर मेरे घोड़ोंके हुक्मकी नक़ल करने लगा। मैं भी उसकी छोटी परन्तु साफ़-सुथरी झोंपड़ीकी दीवारोंपर लगी हुई तसवीरोंको देखकर मन बहलाने लगा। इन चित्रोंमें एक उड़ाऊ उड़ाऊ पूतकी कहानी अंकित की गई थी। पहले चित्रमें एक पूजनीय वृद्ध पुरुष ड्रेसिंगगौन और नाइटकैप पहने हुए एक युवकसे जिसके चेहरेसे बेचैनी टपक रही थी, विदा हो रहा था। युवक आतुरतासे वृद्धका आशीर्वाद और रुपयोंकी थैली ग्रहण कर रहा था। दूसरे चित्रमें उस नवयुवकका सत्यानाशी चरित्र बड़े तेज़ रंगोंमें दिखाया गया था। वह एक मेज़पर बैठा था। बहुतसे झूठे मित्र और लज्जाहीन स्त्रियाँ उसे घेरे हुए थीं। उसके बादवाले चित्रमें वह बरबाद युवक फटी-पुरानी क़मीज़ और टूटा-फूटा टोप पहने, सुअर चराता और उनका खाना खाता हुआ दिखाया गया था। उसके चेहरेसे गम्भीर विषाद और पश्चात्ताप झलक रहा था। सबसे अन्तिम चित्रमें बेटेका घर लौटना दिखाया गया था। वृद्ध सज्जन वही ड्रेसिंगगौन और वही नाइटकैप पहने उससे मिलनेके लिए दौड़ रहा था। उड़ाऊ पूत घुटनोंके बल बैठा था। पीछेकी ओर नौकर सबसे मोटे बछड़ेको ज़िबह कर रहा था और बड़ा भाई नौकरसे इस आनन्दोत्सवका कारण पूछ रहा था। प्रत्येक तसवीरके नीचे उसके भावोंके उपयुक्त एक-एक जर्मन कविता लिखी हुई थी। यह सब बातें मेरे स्मृति-पटलपर अंकित हो गईं और साथ ही गेंदेके गुलदस्ते, रंगीन पर्दोंकी मसहरी तथा अन्य चीज़ें, जो उस समय मेरे चारों ओर मौजूद थीं, मेरी स्मृतिपर गड़ गईं। अब भी जब मैं ध्यान करता हूँ, तो ऐसा मालूम होता है, मानो मेरा मेज़बान—एक भले स्वभावका लगभग पचास वर्षकी आयुवाला व्यक्ति लम्बा हरा कोट, जिसमें रंग उड़े हुए फ़ीतेमें तीन तमग़े लटक रहे थे, पहने—मेरे सामने खड़ा है।

मैंने बूढ़े कोचवानसे मुश्किलसे छुट्टी पाई थी कि इतनेमें दुन्नी चायकी केतली लिए हुए आ गई। उस मुग्धाने अपनी दूसरी दृष्टिमें यह देख लिया कि उसका मुझपर क्या प्रभाव पड़ा। उसने अपनी बड़ी-बड़ी नीली आँखें नीची कर लीं। मैंने उससे बातचीत आरम्भ की। उसने भी बिना शर्माये इस प्रकार जवाब देने शुरू किये, जैसे कोई दुनियाँके तरीक़ोंसे वाक़िफ़ औरत हो। मैंने उसके पिताको पंच शराबका एक ग्लास नज़र किया, दुन्नीको चायका प्याला दिया और हम तीनों ऐसे घुल-मिलकर बातें करने लगे, जैसे हमेशासे एक दूसरेको जानते हों।

घोड़े बहुत देर पहलेसे ही तैयार थे, मगर मेरा मन पोस्ट-मास्टर और उसकी छोटी लड़कीको छोड़नेको न चाहता था। अन्तमें मैंने विदा ली। पोस्ट-मास्टरने कहा—तुम्हारी यात्रा सफल हो। लड़की मुझे गाड़ी तक पहुँचाने आई। मैं बरामदेमें खड़ा और उसे [illegible] दुन्नी ग़ायब हो गई। मुझे याद है कि [illegible]

व्यापारको आरम्भ किया है, तबसे अब तक अनेक चुम्बनोंका आदान-प्रदान किया है, परन्तु इस चुम्बनके समान स्थायी और सुखद स्मृति किसी और चुम्बनकी नहीं है।

कई वर्ष बीत गये। एक बार फिर घटनाचक्रसे मैं पुनः उसी सड़कसे और उसी स्थानसे गुज़रा। मुझे बूढ़े पोस्ट-मास्टर और उसकी लड़कीकी याद बनी थी, अतः मैं उनसे मिलनेकी आशामें मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था, "परन्तु" मैंने सोचा—"सम्भव है कि पोस्ट-मास्टर कहीं दूसरी जगह हटा दिया गया हो, शायद दुन्नीका विवाह हो गया हो।" उनमें से किसी एककी मृत्युकी सम्भावना भी मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई, अतः मैं सशंकित चित्तसे पोस्ट-आफिसकी ओर बढ़ रहा था। घोड़े उस क्षुद्र डाकघरके दरवाज़ेपर आकर रुक गये। कमरेमें घुसते ही मैंने खाऊ-उड़ाऊ पूतकी तसवीरोंको फौरन पहचान लिया। मेज़ और पलंग ठीक अपने पुराने स्थानपर मौजूद थे, परन्तु इस बार खिड़कियोंकी देहलियोंपर फूल नहीं थे, तथा प्रत्येक वस्तुसे अवनति और बेपरवाही टपक रही थी। पोस्ट-मास्टर दुम्बेकी खालका कोट पहने सो रहा था। मेरे आगमनसे उसकी नींद टूट गई और वह उठ बैठा। बेशक वही पुराना सेम्पसन विरीन ही था, परन्तु वह कितना अधिक बूढ़ा हो गया था। जब वह मेरे घोड़ेके लिए हुक्मकी नक़ल करनेके लिए काग़ज़ ठीक करने लगा, तब मैं उसे ग़ौरसे देखने लगा। उसके बाल सफेद हो गये थे, उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, चेहरेपर गहरी झुर्रियाँ पड़ी थीं और कमर झुक गई थी। मैं आश्चर्य करने लगा कि यह कैसे सम्भव है कि केवल तीन-चार वर्षके छोटे अर्सेने इस स्वस्थ मनुष्यको इतना कमज़ोर और बूढ़ा बना दिया।

"क्या तुम मुझे पहचानते हो?" मैंने पूछा—"हम लोग पुराने मित्र हैं।"

"हो सकता है," उसने रुखाईसे जवाब दिया—"यह तो शाही सड़क है, अनेकों यात्री यहाँ ठहर चुके हैं।"

"तुम्हारी दुन्नी तो अच्छी है?" मैंने कहा।

बूढ़ेकी भौंहें तन गईं। उसने कहा—"ईश्वर जाने।"

मैंने कहा—"मैं समझता हूँ कि उसकी शादी हो गई होगी।"

बूढ़ा धीरे-धीरे गुनगुनाकर मेरे सरकारी काग़ज़ पढ़ने लगा, और उसने ऐसा रूप बनाया, मानो उसने मेरी बात सुनी ही न हो। मैंने प्रश्न करना बन्द कर दिया और चाय लानेका हुक्म दिया, परन्तु रह-रहकर एक प्रकारका कौतूहल मेरे मनको बेचैन करने लगा। मैंने सोचा कि सम्भव है कि शराबके एक गिलाससे हमारे मित्र महाशयकी ज़बान खुल जाय।

मेरा विचार ग़लत नहीं था। बूढ़े पोस्ट-मास्टरने मेरा दिया हुआ गिलास ग्रहण कर लिया। मैंने देखा कि शराबसे धीरे-धीरे उसकी रंजीदगी मिटने लगी। दूसरा गिलास पीनेके बाद वह बातूनी हो उठा और उसने मुझे पहचाना या पहचाननेका बहाना किया, और उसीसे मुझे यह क़िस्सा मालूम हुआ, जो मुझे हृदयवेधक बोध हुआ और जिसने मेरे मनपर गहरा प्रभाव डाला।

"तो तुम मेरी दुन्नीको जानते हो?" उसने कहा—"उसे जानता कौन नहीं? आह! दुन्नी, दुन्नी! क्या लड़की थी! जो कोई भी यहाँ आता था, वही उसकी प्रशंसा करता था। कभी किसीने उसकी शिकायतका एक शब्द मुँहसे नहीं निकाला। कभी-कभी महिलाएँ उसे रूमाल या कानके झुमके दे जाया करती थीं। यात्रीगण यहाँ जान-बूझकर भोजन या ब्यालूके लिए रुक जाया करते थे, परन्तु उनका असली मन्शा यही होता था कि वे अधिक देर तक मेरी दुन्नीको देख सकें। कोई भी यात्री, चाहे कितना ही ख़फ़ा क्यों न हो, उसके सामने आते ही शान्त हो जाता था और मुझसे नम्रतासे बात करता था। महाशय, क्या आप इसपर विश्वास करेंगे कि दरबारी और शाही सन्देशवाहक लगातार आध-आध घंटे तक उससे बातें किया करते थे? वही गृहस्थी चलाती थी, घरकी सफाई करती थी, सब चीज़ें तैयार करती थी, और मज़ा तो यह था कि इन सब बातोंके लिए उसे समय मिल जाता था। और मैं बूढ़ा

मूर्ख हूँ कि मैंने उसकी काफ़ी क़द्र न की, उसकी पर्याप्त प्रशंसा न की! क्या मैं अपनी दुन्नीको प्यार न करता था? क्या मैं अपनी बच्चीका दुलार न करता था? क्या उसका जीवन आनन्दमय न था? मगर नहीं, कोई भी व्यक्ति संसारमें मुसीबतसे नहीं बच सकता। जो कुछ बदा है, वह भुगतना ही पड़ता है।"

अब बूढ़ेने अपनी विपत्तियोंका विस्तृत वृत्तान्त बताया। तीन वर्ष हुए, एक दिन जब पोस्ट-मास्टर एक नये रजिस्टरमें लकीरें खींच रहा था और उसकी लड़की पर्देके पीछे एक नया कपड़ा सी रही थी, उस समय दरवाज़ेपर एक शिकरम आकर रुकी। उसमें से एक यात्री सरकेशियन टोपी लगाये, फौजी चोगा पहने और शाल ओढ़े हुए उतरा और कमरेमें दाख़िल होकर उसने घोड़ोंके लिए हुक्म दिया। उस समय सभी घोड़े बाहर थे। यह खबर सुनते ही यात्री अपनी आवाज़ और छड़ी उठानेवाला ही था कि इतने ही में दुन्नी—जो इस प्रकारके दृश्योंकी आदी थी—बाहर निकल आई। उसने आगन्तुकसे नम्रतापूर्वक पूछा कि क्या आप कुछ जलपान करेंगे? दुन्नीकी उपस्थितिका स्वाभाविक प्रभाव पड़ा। यात्रीका क्रोध शान्त हो गया। वह घोड़ोंका इन्तज़ार करनेके लिए राज़ी हो गया, और उसने ब्यालू तैयार करनेके लिए हुक्म दिया। उसने अपनी गीली टोपी उतार डाली, शाल अलग कर दिया, चोगा खोल डाला और उसके भीतरसे इकहरे बदन और छोटी-छोटी काली मूँछोंवाला एक नौजवान हुसार-फौजका अफ़सर निकल आया। वह बेतकल्लुफ़ीके साथ बैठ गया और हँस-हँसकर पोस्ट-मास्टर और उसकी लड़कीसे बातें करने लगा। ब्यालू परोसा गया। इसी बीचमें घोड़े लौट आये। पोस्ट-मास्टरने उन्हें बिना खिलाये-पिलाये ही तैयार करनेका हुक्म दिया, परन्तु जब वह फिर लौटकर कमरेमें आया, तो उसने देखा कि वह नवयुवक एक बेंचपर प्रायः अचेत-सा पड़ा था। उसे एकाएक ग़श आ गया था, उसके सिरमें बड़ा दर्द था और उस समय उसका आगे जाना असम्भव था। अब क्या किया जाय? पोस्ट-मास्टरने उसे अपना पलंग दे दिया, और यह निश्चय किया गया कि यदि सबेरे तक रोगीकी तबीयत न सम्हले तो स—स्थानसे डाक्टर बुलाकर दिखलाया जाय।

दूसरे दिन हुसारकी हालत और भी ख़राब हो गई। उसका नौकर घोड़ेपर शहरमें डाक्टरको बुलाने गया। दुन्नीने उसके सिरमें सिरकेमें तर करके पट्टी बाँधी और उसके पलंगके पास बैठकर काम करने लगी। पोस्ट-मास्टरके सामने रोगी कराहता था और मुश्किलसे बोलता था, मगर फिर भी उसने क़ाफ़ीके दो प्याले ख़ाली कर दिये और कराहते ही कराहते भोजन तैयार करनेका हुक्म दिया। दुन्नी एक क्षणके लिए भी उससे अलग न हुई। वह बराबर कुछ न कुछ पीनेके लिए माँगता था, और दुन्नी अपने हाथसे बनाये हुए लेमोनेडका गिलास उसके मुँहसे लगा देती थी। रोगी उससे अपने ओंठ तर करता था, और जब कभी वह गिलास वापस करता, तो कृतज्ञता प्रकाशित करनेके लिए अपने कमज़ोर हाथोंसे दुन्नीका हाथ धीरेसे दबा देता था। दोपहरके बाद डाक्टर आया। उसने रोगीकी नब्ज़ देखी और जर्मन भाषामें उससे कुछ बातचीत की, फिर रूसी भाषामें कहा—"रोगीको केवल आरामकी ज़रूरत है। दो दिन आराम करनेके बाद वह यात्रा करनेके योग्य हो जायगा।" हुसारने डाक्टरको पचीस रूबल फीसके दिये और उसे भोजनके लिए निमन्त्रित किया। डाक्टरने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन दोनोंने भर-पेट भोजन किया, शराबकी एक बोतल पी डाली और पूरी तरह सन्तुष्ट होकर एक दूसरेसे पृथक् हुए।

एक दिन बीत गया। अब हुसार बिलकुल चंगा हो गया। वह अत्यधिक प्रसन्न था। कभी वह दुन्नीसे हँसता था और कभी पोस्ट-मास्टरसे। वह तरह-तरहकी तानें छेड़ता था और पोस्ट-मास्टरके रजिस्टरमें घोड़ोंके हुक्मोंकी नक़ल करता था। सचमुचमें उसने एक ही दिनमें उस सरल स्वभाव पोस्ट-मास्टरके हृदयमें इतना घर कर लिया कि तीसरे दिन सबेरे जब वह चलने लगा, तब उसे ऐसे भले मेहमानसे पृथक् होनेका दुःख हुआ। उस दिन रविवार था। दुन्नी

गिरजाघर जानेके लिए तैयार हो रही थी। हुसारकी गाड़ी आकर दरवाजेपर लगी। उसने पोस्ट-मास्टरके यहाँ ठहरने और उसके आतिथ्यके लिए उदारतापूर्वक इनाम दिया और पोस्ट-मास्टरसे विदा ली। उसने दुन्नीसे भी विदा ली और कहा कि वह दुन्नीको अपनी गाड़ीपर गिरजाघर तक—जो गाँवके दूसरे सिरेपर स्थित था—पहुँचा देगा। दुनी सकपका गई। पोस्ट-मास्टरने कहा—"क्या तू डरती है? हुज़ूर, भेड़िया थोड़े हैं, जो तुझे खा जायँगे। जा, गाड़ीपर गिरजे तक चली जा।" दुनी गाड़ीपर हुसारके बगलमें बैठ गई। नौकर कूदकर पायदानपर खड़ा हो गया। कोचवानने सिटकारी दी और घोड़े चल पड़े।

बेचारा पोस्ट-मास्टर समझ न सका कि क्यों स्वयं उसने अपनी इच्छासे दुनीको हुसारके साथ चला जाने दिया? वह इतना अन्धा क्यों हो गया था? उसे हो क्या गया था? आध घंटा भी न बीता था कि उसके हृदयमें वेदना होने लगी। वह इतना अधिक चिन्तित हो गया कि वह चुपचाप न बैठ सका, अतः वह गिरजाघरकी ओर लपका। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि लोग बाहर निकल रहे हैं, मगर दुनी न तो गिरजेके भीतर ही थी और न बाहरबरामदे ही में। पादरी प्रार्थना-स्थानके पीछेसे निकल रहा था, एक दूसरा पादरी मोम-बत्तियाँ बुझा रहा था, दो बुढ़ियाँ एक कोनेमें प्रार्थना कर रही थीं, मगर दुनीका कहीं पता न था। बेचारे पोस्ट-मास्टरने बड़ी हिचकिचाहटके बाद पादरीसे पूछा कि दुनी प्रार्थनामें उपस्थित हुई थी या नहीं। पादरीने जवाब दिया कि वह प्रार्थनामें नहीं आई। पोस्ट-मास्टर घर लौट आया, मगर उस समय वह न तो मुर्दा ही था और न ज़िन्दा। उसे एक आशा थी। सम्भव है कि दुनी—जो अभी कम उम्र और नासमझ थी—अगले स्टेशनको, जहाँ उसकी धर्ममाता रहती थी, चली गई हो। पोस्ट-मास्टर बड़ी परेशानी और उद्विग्नतासे शिकरमके—जो उन लोगोंको लेकर गई थी—लौटनेकी राह देखने लगा, परन्तु कोचवान लौटकर नहीं आया। अन्तमें सन्ध्या समय अकेला नशेमें चूर कोचवान लौटा और उसने यह सत्यानाशी खबर दी कि दुनी उस हुसारके साथ भाग गई।

यह विपत्ति बूढ़ेके लिए बहुत थी। वह फौरन ही चारपाईपर पड़ गया—जिस चारपाईपर एक ही दिन पहले वह धोखेबाज़ युवक लेटा था। उसने समस्त परिस्थितिपर ग़ौरसे विचार किया, तो उसे मालूम हुआ कि उस हुसारकी समस्त बीमारी बनावटी थी। बेचारे पोस्ट-मास्टरको डेंगू बुखार हो गया। वह स—शहरको इलाजके लिए ले जाया गया, और उसकी जगह काम करनेके लिए एक दूसरा अस्थायी पोस्ट-मास्टर भेज दिया गया। जिस डाक्टरने उस हुसारको देखा था, उसीने पोस्ट-मास्टरकी दवा की। उसने पोस्ट-मास्टरको विश्वास दिलाया कि हुसार बिलकुल भला-चंगा था। उसे उसके बुरे इरादेका शक हो गया था, मगर उसने डरके मारे नहीं कहा। डाक्टरने जो कुछ कहा, वह सच था या उसने केवल अपनी दूरदर्शी बुद्धिमत्ता दिखानेके लिए ही ऐसा कहा—चाहे जो हो, उससे रोगीको किसी प्रकारकी सान्त्वना नहीं मिली। पोस्ट-मास्टर मुश्किलसे बीमारीसे अच्छा ही हुआ था कि उसने दो मासकी छुट्टीकी दरख्वास्त दे दी, और किसीसे अपना इरादा ज़ाहिर किये बिना ही वह पैदल अपनी लड़कीकी तलाशमें चल पड़ा। उसे अपने कागज़-पत्रोंसे मालूम था कि घुड़सवारोंका कप्तान मिन्स्की स्मोलेंस्कसे सेंट-पीटर्सबर्गको जा रहा है। जो आदमी उनकी गाड़ी हाँककर ले गया था, उसने बताया कि यद्यपि दुनी अपनी खुशीसे गई थी, मगर फिर भी वह रास्ते-भर रोती गई थी। पोस्ट-मास्टरने सोचा—'बहुत सम्भव है कि मैं अपनी खोई हुई लड़कीको पुनः वापस लानेमें समर्थ हो सकूँ।' बस, इसी विचारको लेकर वह सेंट-पीटर्सबर्ग आया। वहाँ वह अपने एक पुराने साथीके यहाँ ठहरा थी और वहाँसे उसने खोज शुरू की। उसे शीघ्र ही पता लग गया कि मिन्स्की पीटर्सबर्ग ही में है और डीमथकी सरायमें ठहरा है। पोस्ट-मास्टरने उसके पास जानेका निश्चय किया।

दूसरे दिन तड़के वह उसके दरवाज़ेपर हाज़िर हुआ और

नौकरसे कहा कि वह हुज़ूरको इत्तिला कर दे कि एक पुराना सैनिक हुज़ूरसे मिलना चाहता है। फौजी नौकरने बूट साफ करते हुए कहा कि उसका मालिक सो रहा है और वह ग्यारह बजेसे पहले किसीसे नहीं मिलता। पोस्ट-मास्टर लौट गया और नियत समयपर फिर आकर उपस्थित हुआ। मिन्स्की एक ड्रेसिंग गौन और लाल टोपी पहने हुए स्वयं उससे मिलने आया।

"कहो, क्या चाहते हो ?" उसने पूछा।

बूढ़ेका हृदय ज़ोरसे धक-धक करने लगा। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह काँपती हुई आवाज़में केवल इतना ही कह सका—"हुज़ूर, ईश्वरके लिए मुझपर रहम करें।"

मिन्सकीने तेज़ीसे उसपर एक निगाह डाली, सिर हिलाया और उसका हाथ पकड़कर अपने पढ़नेके कमरेमें ले जाकर उसका दरवाज़ा बन्द कर लिया।

"हुज़ूर !" बूढ़ेने फिर कहा—"जिसका पतन हुआ, वह गया। मेरी दुनीको मुझे लौटा दीजिए। आप उसके साथ काफ़ी खेल कर चुके। अब उसे बेकार बरबाद न कीजिए।"

नवयुवकने बड़ी गड़बड़ीमें जवाब दिया—"जो हो चुका, वह लौट नहीं सकता। मैं तुम्हारा अपराधी हूँ और तुमसे क्षमा माँगनेको तैयार हूँ, मगर यह न समझो कि मैं दुनीको छोड़ दूँगा। मैं इस बातका वचन देता हूँ कि वह सुखसे रहेगी। तुम उसे किस लिए चाहते हो ? वह मुझे प्यार करती है, और वह पुराने ढंगसे रहनेकी आदी नहीं रही। तुम दोनों ही भूतकालकी बातें न भूल सकोगे।"

यह कहकर उसने बूढ़ेकी आस्तीनमें कोई चीज़ खिसका दी, दरवाज़ा खोला और पोस्ट-मास्टरने अपने आपको सड़कपर खड़ा पाया। उसे यह भी न मालूम हुआ कि वह सड़कपर कैसे आ पहुँचा।

बहुत देर तक वह अचल खड़ा रहा। अन्तमें उसने देखा कि उसकी आस्तीनके कफ़में कागज़का एक लपेटा हुआ पुलिन्दा खुसा है। उसने उसे बाहर निकालकर खोला, तो देखा कि दस-दस और पाँच-पाँच रूबलके कई बैंकनोट हैं। उसकी आँखोंमें पुनः आँसू—क्रोधके आँसू भर आये। उसने उन नोटोंको मसल डाला, फेंक दिया, पैरोंसे कुचला और फिर आगे चल दिया। कई क़दम आगे जानेके बाद वह रुका, कुछ सोचा और फिर लौटा, मगर वहाँसे नोट नदारद थे। बढ़िया कपड़े पहने एक नवयुवक उसे देखते ही दौड़कर एक गाड़ीमें चढ़ गया और गाड़ीवालेसे चिल्लाकर कहा—"जल्दी चलो।" पोस्ट-मास्टरने उसका पीछा नहीं किया। उसने घर लौटनेका निश्चय किया, पर वह शहर छोड़नेके पूर्व एक बार अपनी दुनीको देखना चाहता था। इस इरादेको लेकर वह दो दिन बाद फिर मिन्स्कीके पास गया। उसके फौजी नौकरने रुखाईसे कहा कि उसका मालिक किसीसे नहीं मिल सकता। यह कहकर उसने पोस्ट-मास्टरको बाहर निकालकर दरवाज़ा बन्द कर लिया। बेचारा पोस्ट-मास्टर बाहर खड़ा-खड़ा कुछ देर तक इन्तज़ार करता रहा, पर अन्तमें चला आया।

उसी दिन सन्ध्या समय वह एक गिरजेमें भजन सुनकर लौटा और 'लेटेनाया' नामक सड़कपर जा रहा था। एकाएक एक बहुत शानदार गाड़ी उसके बगलसे होकर निकली। उसने गाड़ीमें मिन्स्कीको पहचान लिया। गाड़ी एक तिमंज़िले मकानके सामने ठेक गई और मिनस्की सपाटेसे सीढ़ियाँ चढ़कर उसमें घुस गया। एकाएक पोस्ट-मास्टरके मनमें एक विचार उठा। वह लौटकर कोचवानके पास आया और उससे पूछा—"क्यों दोस्त, यह घोड़ा-गाड़ी किसकी है ? मिन्स्कीकी तो नहीं है ?"

"हाँ, मिनस्कीकी है।" उसने जवाब दिया—"कहो तुम्हें क्या काम है ?"

"बात यह है कि तुम्हारे मालिकने मुझे एक चिट्ठी अपनी दुनीको देनेके लिए दी थी, मगर मैं भूल गया कि दुनी रहती कहाँ है ?" पोस्ट-मास्टरने कहा।

"यहीं तो रहती है—इसी मकानके दोतल्लेपर, मगर

तुम्हारी चिट्ठी अब बेकार है, क्योंकि मिन्स्की खुद ही अब उसके पास पहुँच गया।''

''खैर, कोई हर्ज नहीं है। तुम्हारे बतानेके लिए धन्यवाद। मैं जानता हूँ कि अपना काम कैसे करूँगा।'' पोस्ट-मास्टरने धड़कते हुए हृदयसे उत्तर दिया।

दरवाज़ा बन्द था। उसने घंटी बजाई। कई सेकंड तक वह बेचैनीसे टकटकी लगाये खड़ा रहा। चाबी खनकी, दरवाज़ा खुला।

''क्या अोदेशिया सामसेनोवना यहीं रहती है?'' उसने पूछा।

''हाँ,'' एक नौजवान नौकरानीने जवाब दिया—''तुम्हें उससे क्या काम है?''

पोस्ट-मास्टरने बिना एक शब्द कहे बरोठेमें प्रवेश किया। नौकरानी चिल्लाती ही रही—''तुम वहाँ नहीं जा सकते, अोदेशिया सामसोनोवनाके पास मेहमान आये हैं।'' मगर पोस्ट-मास्टर उसकी परवाह किये बिना घुसा ही चला गया। पहले दो कमरे अंधेरे थे, पर तीसरेसे रौशनी आ रही थी। वह खुले हुए दरवाज़ेके सामने पहुँचकर ठिठक गया। कमरा खूब सजा हुआ था। भीतर मिनस्की ध्यान-मग्न बैठा था। दुनी बढ़िया-से-बढ़िया फ़ैशनकी पोशाकमें चकमक उसकी आराम-कुर्सीके हत्थेपर इस तरहसे बैठी थी, जैसे कोई घुड़सवार औरत किसी अंग्रेज़ी ज़ीनकी काठीपर बैठी हो। वह मिन्स्कीको प्रेम-भरी दृष्टिसे देख रही थी और अपनी रत्नाभूषित उंगलियोंसे उसके लम्बे बालोंको मरोड़ रही थी। बेचारा पोस्ट-मास्टर! उसने कभी अपनी लड़कीको इतना सुन्दर नहीं देखा था! वह मन-ही-मन उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा किये बिना न रह सका। दुनीने बिना अपना सिर उठाये, पूछा—''यहाँ कौन है?'' पोस्ट-मास्टर चुपचाप रहा। कुछ उत्तर न पानेपर दुनीने सिर उठाकर देखा और चीखकर फ़र्शपर गिर पड़ी। मिन्स्की घबराकर उसे उठानेके लिए दौड़ा, पर पोस्ट मास्टरको देखकर उसने दुनीको छोड़ दिया और गुस्सेसे काँपता हुआ उसकी ओर बढ़ा। उसने दाँत पीसकर कहा—''तू क्या चाहता है? मेरा पीछा क्यों कर रहा है? क्या मैं डाकू हूँ? क्या तू मेरा खून करना चाहता है? निकल यहाँसे!'' उसने अपने बलिष्ठ हाथसे बूढ़ेका कालर पकड़कर सीढ़ीके नीचे ढकेल दिया!

बूढ़ा अपने स्थानको लौट आया। उसके मित्रने सलाह दी कि वह रिपोर्ट कर दे, परन्तु पोस्ट-मास्टरने कुछ देर सोचनेके बाद अपना सिर हिलाया और इस मामलेको योंही छोड़ देनेका निश्चय किया। दो दिन बाद उसने सेंट-पीटर्सबर्ग त्याग दिया और वहाँसे वह सीधा अपने स्टेशनको चला आया, जहाँ उसने पुन: अपना कार्य-भार ग्रहण कर लिया।

''अब यह तीसरा वर्ष है कि मैं बिना दुनीके रहता हूँ। तबसे न तो मैंने उसे देखा और न उसके सम्बन्धमें कुछ सुना। ईश्वर जाने वह ज़िन्दा है, या मर गई। उसे चाहे जो कुछ हो सकता है। दुनी पहली या अन्तिम लड़की नहीं है, जिसे दुष्ट राहगीर बहकाकर ले गये हैं और जिनकी पहले तो खातिर होती है, फिर वे निकाल बाहर की जाती हैं। सेंट-पीटर्सबर्गमें इस प्रकारकी मूर्ख नवयुवतियाँ बहुत हैं, जो आज साटन और मखमल पहने घूमती हैं, परन्तु कल ही दरिद्रता और कष्टमें सड़कोंपर झाड़ू लगाती दिखाई देंगी। जब मेरे मनमें यह विचार आता है कि दुनी भी इसी प्रकार अपनेको बरबाद कर रही है, तब मनमें अनिच्छा-पूर्वक ही पाप उत्पन्न होता है, और मैं चाहता हूँ कि वह क़ब्रमें हो।''

मेरे मित्र पोस्ट-मास्टरकी यह कहानी है। इस कहानीके कहनेमें कई बार उसके आँसुओंने व्याघात पहुँचाया, परन्तु उसने उन आँसुओंको अपने कोटके दामनसे पोंछा। इन आँसुओंमें कुछ तो शराबके कारण थे, जिसके उसने पाँच गिलास खाली किये थे, मगर जो कुछ भी हो, उसकी कहानीने मुझपर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। उससे विदा होनेके बाद भी मैं बहुत दिनों तक पोस्ट-मास्टरको न भूल सका और बहुत दिनों तक मैं उसकी दुनीको याद करता रहा।

हालमें जब मैं······स्थानसे गुजरा, तब मुझे फिर अपने मित्रकी याद आई। मुझे मालूम हुआ कि वह पोस्ट-आफ़िस, जिसमें वह था, तोड़ दिया गया है। मेरे यह पूछनेपर कि क्या बूढ़ा पोस्ट-मास्टर ज़िन्दा है? मुझे कोई सन्तोष-जनक उत्तर न मिल सका, अतः मैंने उस सुपरिचित स्थानकी पुनः यात्रा करना निश्चित किया और एक प्राइवेट सवारी लेकर मैं—ग्रामको रवाना हुआ।

पतझड़का मौसम था। चौड़े-चौड़े बादल आस्मानपर छाये हुए थे। कटे हुए खेतोंमें ठंडी हवा बह रही थी। लाल-पीली पत्तियाँ हवामें उड़ रही थीं। मैंने सूर्यास्तके समय गाँवमें प्रवेश किया और पोस्ट-आफ़िसके दरवाज़ेपर जाकर रुका। एक मोटी बूढ़ी औरत बरामदेमें (जहाँ एक बार बेचारी दुनीने मेरा चुम्बन कर लिया था) आई। मेरे प्रश्नपर उसने बताया कि बूढ़े पोस्ट-मास्टरको मरे एक वर्ष हो गया, उस मकानमें एक शराबवाला रहता है और वह उस शराबवालेकी स्त्री है। मैं अपनी व्यर्थ यात्रापर और सात रूबलपर, जो मैंने वहाँ जानेमें बेकार खर्च किये थे, अफ़सोस करने लगा।

"उसकी मृत्यु कैसे हुई?" मैंने शराबवालेकी स्त्रीसे पूछा।

"बहुत शराब पीनेसे।" उसने जवाब दिया।

"वह गाड़ा कहाँ गया है?"

"क़ब्रिस्तानमें अपनी स्त्रीकी समाधिके बगलमें?"

"क्या कोई ऐसा है, जो मुझे उसकी क़ब्र दिखला सके?"

"क्यों नहीं? इधर आ ए वंका, बिल्लियोंको मारना छोड़। देख, इन सज्जनको गिरजाघरके क़ब्रिस्तानमें ले जा और वहाँ पोस्ट-मास्टरकी क़ब्र दिखा दे।"

इन शब्दोंपर फटे-पुराने कपड़े पहने, लाल बाल और कानी आँखवाला एक लड़का दौड़कर मेरे पास आया और मेरा पथ-प्रदर्शक बनकर चला।

"क्या तू मृत व्यक्तिको जानता था?" मैंने यों ही पूछा।

"मैं उसे न जानूँगा? उसीने तो मुझे नरकुलकी सीटी बनाना सिखाया था। जब वह शराबखानेसे लौटता था, (ईश्वर उसकी आत्माको शान्ति दे) तब मैं न मालूम कितनी बार चिल्लाया हूँगा—'बाबा, बाबा, बादाम दो।' इसपर वह हम लोगोंपर बादाम फेंकता था। वह हमेशा हम लोगोंके साथ खेलता था।"

"अच्छा, कभी यात्रीगण भी उसकी बात करते हैं?"

"अब यात्री ही बहुत कम आते हैं, मगर वे मुर्दोंको नहीं पूछते। हाँ, गर्मीमें एक महिला ज़रूर यहाँ आई थी। उसने पोस्ट-मास्टरको पूछा था और उसकी क़ब्र देखने भी गई थी।"

"कौन महिला थी?" मैंने कौतूहलसे पूछा।

"बड़ी सुन्दरी महिला थी," लड़केने जवाब दिया—"वह एक गाड़ीमें चढ़कर आई थी, जिसमें छै घोड़े जुते थे। उसके साथ तीन छोटे लड़के, एक धाय और एक काला चीनी कुत्ता था। जब उससे कहा गया कि बूढ़ा पोस्ट-मास्टर मर गया, तब वह रोने लगी और लड़कोंसे कहा—'तुम लोग यहाँ चुपचाप बैठो, तब तक मैं क़ब्रिस्तान हो आऊँ।' मैं उसे सड़क दिखानेको तय्यार हुआ, परन्तु उस महिलाने कहा—'मैं सड़क अच्छी तरह जानती हूँ।' फिर उसने मुझे पाँच चाँदीकी चवन्नियाँ इनाम दीं।—ऐसी महिला थी।"

हम लोग समाधि-स्थानमें पहुँचे। समाधि-स्थान एकदम खुली हुई जगहमें था। उसकी सीमा निर्धारित करनेके लिए किसी प्रकारका कोई चिह्न नहीं था। वहाँ अनेकों लकड़ीके क्रास भरे हुए थे, परन्तु छायाके लिए एक भी पेड़का नाम-निशान भी नहीं था। मैंने अपने जीवनमें ऐसा बियाबान क़ब्रिस्तान कभी नहीं देखा।

"यह पोस्ट-मास्टरकी समाधि है।" लड़केने एक मिट्टीके टीलेपर कूदकर कहा, जिसपर एक काला क्रास और एक ताँबेकी मूर्ति खड़ी थी।

"यहींपर वह महिला आई थी?" मैंने पूछा।

"हाँ", वंकाने जवाब दिया,—"मैं उसे दूरसे देखता था, वह यहाँ आकर गिर पड़ी और बड़ी देर तक पड़ी रही। फिर वह गाँवमें गई और पादरीको ढूँढ़कर उसने उसे कुछ रुपया दिया और गाड़ीमें बैठकर चली गई। उसने मुझे पाँच चाँदीकी चवन्नियाँ दी थीं, वह ज़रूर कोई बड़ी भारी महिला थी।"

मैंने भी उस लड़केको पाँच चवन्नियाँ दीं। अब मुझे न तो यहाँकी यात्राका और न सात रूबलका—जो मैंने खर्च किये हैं—अफ़सोस है।

[पुश्किन-कृत एक रूसी कहानीका अनुवाद]

बोधी कवि कृत 'रामसागर'

[लेखक :—श्री विश्वनाथसिंह शर्मा]

यह सौभाग्यकी बात है कि हिन्दी-साहित्यकी उन्नति बड़ी शीघ्रताके साथ हो रही है। जितने ग्रन्थ प्रति वर्ष हिन्दीमें निकलते हैं, उतने भारतकी किसी अन्य देशी भाषामें शायद ही निकलते होंगे। यद्यपि उच्चकोटिके ग्रन्थोंकी संख्या कम ही रहती है, पर प्रारम्भमें ऐसा होना स्वाभाविक ही है। हिन्दी-पाठकोंकी रुचि भी अभी परिष्कृत नहीं हो पाई है, इसलिए थर्ड-क्लास किताबें बिक जाती हैं और उत्तम पुस्तकोंकी अच्छी बिक्री नहीं होने पाती। जहाँ तक विस्तारकी बात है, हिन्दी-साहित्य काफी विस्तृत होता जाता है, पर हिन्दी-साहित्यका एक विभाग ऐसा है, जिस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है, और वह है अनुसन्धान—खोजका। काशीकी नागरी प्रचारिणी-सभाको छोड़कर अन्य किसी संस्थाने इस ओर विशेष कार्य नहीं किया। इससे भी अधिक कलंककी बात हमारे लिए क्या हो सकती है कि हमारे यहाँ हिन्दी-साहित्याकाशके सूर्य सूरदासजीके पदोंका कोई अच्छा संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया? व्रज-भाषाके सुकवि नन्ददासके ग्रन्थोंका भी संग्रह अभी नहीं छपा! और भी अनेक कवि ऐसे हैं, जिनके जीवन-भरके परिश्रमके फलस्वरूप ग्रन्थ अभी तक अन्धकारमें ही पड़े हुए हैं, उन्हें प्रकाशमें लानेकी ओर किसीने भी ध्यान नहीं दिया! ऐसा ही एक ग्रन्थ बोधी कवि कृत 'रामसागर' है।

'रामसागर'की रचना विक्रमी संवत् १७८७ में की गई थी। ग्रन्थमें एक जगह लिखा है—

"संवत सत्रह से संतासी। अगहन मास कथा परकासी।"

यहाँ 'रामसागर'का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

'रामसागर'में चौबीसों अवतारकी कथा वर्णित है। इसके अतिरिक्त कविने दर्शनशास्त्रके तत्त्वोंको बड़ी सरलताके साथ समझानेकी चेष्टा की है, बल्कि यों कहना चाहिए कि इसमें दर्शनशास्त्रका ही विस्तृत रूपसे विवेचन किया गया है। हाँ, पुस्तकको मनोरंजक बनानेके लिए आधार-स्वरूप चौबीसों अवतारोंकी कथाका भी वर्णन है। इसके प्रत्येक अध्यायमें वेदान्तके तत्त्व सरलताके साथ कूट-कूटकर भर दिये गये हैं।

भोला नामक शिष्यके आग्रहसे बोधी कविने यह पुस्तक लिखी थी। इसकी रचना दोहा, चौपाई, सोरठा तथा अन्य छन्दोंमें की गई है। पुस्तक पाँच खंडोंमें विभक्त है, और प्रत्येक खंडमें पन्द्रह-बीस अध्याय हैं। प्रथम खण्डके द्वितीय अध्यायमें कवि 'रामसागर' के समय आदिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखता है—

"भोला तुम प्रश्न सुखदाई;
पूछहु कथा रसिककी नाई।
बूझि परा तुम प्रश्न बिभागा;
हरि-चरित्र तोहि अति प्रिय लागा।
कथा पुरातन पूर्वहिं भाखा;
मुनिन्ह सकल निज कृति करि राखा।
तेहि प्रश्न मैं करौं बखाना;
यथा हृदय मम मति अनुमाना।
मोसों प्रश्न किंयेहु तुम जैसे;
लछुमन प्रश्न रामसों तैसे।
संवत सत्रह से संतासी;
अगहन मास कथा परकासी।
सो संवाद मैं करौं निरूपा;
सुनहु श्रवन दे रसिक अनूपा।
हरि-चरित्र हरि-पद-रति देनी;
गति कामादि (?) हरिलोक निसेनी।

दोहा

अपर कथाको अपर फल, पढ़ै सुनै जो कोय।
हरि सम्बन्धी कथा यह, हरि सम्बन्धी होय॥"

'रामसागर'को आद्योपान्त पढ़ जानेपर यह पता लगता है कि कवि वैष्णव-सम्प्रदायका था। ग्रन्थके प्रारम्भमें कविने गुरुकी वन्दना की है। इसके बाद वह पुस्तकके विषयका विस्तृत वर्णन करता है। मोलाने अनेक प्रकारके प्रश्न बोधीसे पूछे। नमूना सुन लीजिए—

"इमि कृपालु करुणा करि मोही ;
  हरि-यश कहहु जो पूछौं तोही।
प्रथमहि आदि भेद कहु देवा ;
  आदि पुरुष अब एक अमेवा।
अद्वै ब्रह्म अखंड अपारा ;
  पुनि किमि अमित भये त्रि विकारा।
किमि माया गुन तीन निरूपा ;
  तत्त्वमय कामी कृत सरूपा।
किमि यह ब्रह्मते जीव कहावा ;
  किमि नर-नारी देह बनावा।
किमि भे जग योनी चौरासी ;
  पूरन ब्रह्म सकल किमि बासी।
सिद्ध सुरासुर नाग किनर नर ;
  एक अंश सौ जीव चराचर।
पृथक्-पृथक् किमि भये सुभाऊ ;
  सो मोहि संजुत भक्ति सुनाऊ।
पुनि किमि किन्हों यह विस्तारा ;
  किमि माया गुण त्रिविध पसारा।
किमि यह पाँच तत्त्व निरमाया';
  किमि यह किन्ह जीव अरु काया।

दोहा

विधि निषेध विष सुधारस, राग-द्वेष अनुसार।
पाप-पुन्य सत-असतमे, किमि कीन्हा संसार॥

चौपाई

के अवतार धरहु जग माहीं ;
  कहा रूप कहा नाम कहाहीं।
किमि जुग कौन धर्म अधिकारा ;
  कौन नाम बरनैं संसारा।
केहि जुग कौन वर्ण प्रभु धरहू ;
  कौन आचरण तह पुनि करहू।
कहिये जहँ लौं सगुन माथा ;
  कहिये राजनीति रघुनाथा।
के प्रकार पूजा जग देवा;
  के प्रकार प्रभु भक्त अमेवा।
के प्रकार प्रभु योग समझावा ;
  के प्रकार प्रभु ज्ञान अराधा।
के प्रकार प्रभु वरण तुम्हारा ;
  कहहु सकल श्रुति सार विचारा।"

ऊपरकी चौपाइयोंको पढ़कर पाठकोंको रामसागरके विषयकी कुछ जानकारी हो गई होगी। इन प्रश्नोंके अतिरिक्त और भी कई प्रकारके प्रश्नोंकी इस ग्रन्थमें विशद रूपसे मीमांसा की गई है। पुस्तकके विषयके साथ-साथ कविके स्थान आदिका पता जाननेकी उत्सुकता पाठकोंको होती होगी, पर इस सम्बन्धमें निश्चयके साथ कुछ कहना बहुत कठिन है। बोधीने अपने विषयमें कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। हाँ, रामसागरको पढ़नेसे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि वे वैष्णव-सम्प्रदायके माननेवाले एक अद्वैतवादी थे। सम्पूर्ण पुस्तकमें उन्होंने अहिंसाका महत्त्व बतलाया है तथा स्थान-स्थानपर वैष्णव-सम्प्रदायके मुख्य-मुख्य तत्त्वोंकी व्याख्या करनेका भी उन्होंने यथेष्ट प्रयत्न किया है। वे इतने बड़े भगवद्भक्त थे कि पुस्तकके अन्तिम भागमें उन्होंने बीस-पचीस पृष्ठोंमें केवल रामनामकी महिमा बतलाई है।

बोधी संस्कृत-साहित्यके प्रकाण्ड पंडित और वेदान्त तथा वेदके अच्छे ज्ञाता मालूम पड़ते हैं, क्योंकि वेदान्तके प्रत्येक तत्त्वको उन्होंने बड़ी सरलताके साथ कूट-कूटकर 'रामसागर'में भर दिया है। वेदान्तके संस्कृतमें रहनेके कारण साधारण जनता उसके लाभसे सर्वथा अपरिचित थी, सम्भवतः इसी अभावकी पूर्तिके लिए बोधीने रामसागरका निर्माण किया है। रामसागरकी शैली रामायणकी शैलीसे

बहुत-कुछ मिलती-जुलती है, पर रामायणके विषयसे इसका विषय सर्वथा भिन्न है।

'रामसागर'की पहली प्रति मुझे दरभंगा ज़िलेमें मिली थी। इसी ज़िलेके नयानगर ग्राममें पचीस-तीस वर्ष पहले इसकी एक और प्रति मिली थी, पर दुर्भाग्यवश वह प्रति किसी प्रकार नष्ट हो गई। अब यह तीसरी प्रति भी दरभंगा ज़िलेमें ही मिली है। एक ही ज़िलेमें तीन प्रतियोंके मिलनेसे बोधीका उस स्थानसे सम्बन्ध बतलाया जा सकता है, पर रामसागरकी भाषापर मैथिली भाषाका कोई प्रभाव नहीं मालूम पड़ता, अतएव उन्हें मिथिला-निवासी मानना उचित नहीं जान पड़ता। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, बोधी वैष्णव-सम्प्रदायके साधु थे। सम्भव है कि वे कहींसे घूमते-घामते मिथिला-प्रान्तमें आकर रह गये हों और वहींपर इन्होंने रामसागरकी रचना की हो। यदि ऐसा न होता, तो रामसागरकी सभी प्रतियाँ केवल मिथिलामें ही नहीं मिलतीं।

रामसागरकी भाषा अवधी तथा ब्रजभाषा मिश्रित जान पड़ती है, अतएव अन्य प्रमाणोंके अभावमें उन्हें अवध-प्रान्तका ही मानना युक्ति-युक्त होगा।

रामसागरके कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं। मनुष्य-शरीर पानेपर जीव सांसारिक बन्धनोंमें फँसकर, कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाता है। उसीको लक्ष्य कर कवि कहता है—

''इन्द्री-स्वाद हेतु दुखरासी ;
सुर ते नर, नर ते चौरासी।
जलचर, थलचर, नभचर देहा;
सहत फिरत दुख काल सदेहा।
जबहीं ईश भये अनुकूला ;
नर-तन दियो सकल सुख मूला।
दुर्लभ सम सुलभ भौ तेही ;
रहत सँयोग प्राप्ति नर देही।
उपजत-बिनसत जोनि अनेका ;
बंचित होत बिना विवेका।
नर-तन कठिन प्रबल सो पावा ;
करि विवेक मनमों ठहरावा।
को हम रहे कहाँ ते आये ;
कौन हेतु यह नर-तन पाये।
पुनि तहँ गमन होय परिनामा ;
जग सम्बन्ध भये केहि कामा।

दोहा

को संगी यह जीवको, प्राण संग जो जाय।
सुत दारा संग भ्रम है, मित्र्युक देहि जराय॥
मातु-पिता सब बन्धुता, सुहृदे कुटुमिन्ह संग॥
नष्ट जानि करै त्याग सब, यहै ज्ञानका अंग॥''
(खण्ड १, अध्याय १२)

भगवान्‌के प्रति प्रह्लादकी असीम भक्तिका वर्णन सुनकर, रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणमें इस प्रकार संवाद होता है—

''सुनि रघुपतिके बचन अमोला ;
लछुमन प्रश्न कियो सुठु भोला।
सुनु प्रभु यह अचरज मोहिं लागा ;
बिनु सत्संग भक्ति किमि जागा।
वेद-गिरा औ श्रीमुख बानी ;
बिनु सत्संग न भक्ति उपानी।
पूर्व हेतुको पुन्य प्रभाऊ ;
की तप-फल हरि शम्भु पसाऊ।
अथवा निज अनुभौ ते होई ;
कौने भाँति भक्ति लहै कोई।
सो विवेक पारसकी नाँई ;
परसत लोह कनक हो जाई।
जिमि सुगन्ध मलयागिरि रहई ;
चन्दन करै पवन जब बहई।
जिमि पावक रह दारुहि माही ;
बिनु मथनि सो प्रगटत नाही।
जन्म-जन्म इमि भक्ति कमाई ;
सतसंगति परसत प्रगटाई।
(खण्ड २, अध्याय ११)

बोधीने रामसागरमें बौद्ध अवतारका भी वर्णन किया है। आजकल बौद्ध, जैन, सिख, सनातनी तथा अन्य सम्प्रदायके हिन्दू परस्पर संगठित होकर आपसमें भ्रातृ-भाव दिखला रहे हैं। ऐसे समय बुद्धदेवके प्रति समुचित आदर प्रदर्शित करना प्रत्येक मतके हिन्दूका प्रधान कर्तव्य है, पर आजसे दो सौ वर्ष पूर्व एक कट्टर सनातनी कविके द्वारा बुद्ध भगवानका गुण गाया जाना वास्तवमें एक मार्केकी बात है। पाठकोंके विनोदार्थ वह अंश नीचे उद्धृत किया जाता है —

"बोला सुनहु राम मुख बानी ;
पुनि लछुमन सन कहत बखानी।
नौमे रूप सुनहु मम भाई ;
जब होइ है द्विजकुल अन्यायी।
धर्म-अधर्म विचार न करिहैं ;
हिंसा भोजन पर-धन हरिहैं।
सिश्नोदर पोषक दिन-राती ;
पर-दारा पर-आतमघाती।
कहत बने नहीं द्विज अघ कर्मा ;
सदगुण नष्ट करिहि निज धर्मा।
और करै तब देव सहाई,
द्विजके दुख करौ नहिं भाई।
ताते धरिहौं बौध सरूपा ;
निज कृत भोग करहि महि भूपा।
कर्म दंड सबके है ऊपर ;
सुर नर मुनि द्विज असुर चराचर।
पुरुषोत्तमपुर बास हमारा ;
सन्त सखा संग तहाँ बिराजा।"

(खण्ड ३, अध्याय १०)

यहाँपर यह बतला देना भी आवश्यक है कि 'रामसागर' की दोनों प्रतियाँ बहुत ही अशुद्ध हैं। लिपिकर्ताओंने अज्ञानवश मात्राओंकी बड़ी दुर्गति कर दी है। इस कारण अनेक स्थानोंमें मात्राओंकी न्यूनाधिकता हो गई है। कहीं-कहीं अर्थ भी स्पष्ट नहीं। इस लेखमें उद्धृत चौपाइयों तथा दोहोंमें मैंने यत्र-तत्र संशोधन कर दिया है, पर शब्दोंको बदला नहीं। 'रामसागर' का यदि कोई सुन्दर संस्करण निकाला जाय, तो वास्तवमें हिन्दीका इससे बहुत-कुछ उपकार हो सकता है। मैं आशा करता हूँ कि विद्वत्समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

स्वदेशी रेल

(एक स्वप्न)

[लेखक :— मौलाना शौकत थानवी]

[अदूरदर्शिता-पूर्ण मज़ाक़—यहाँ हम मौलाना शौकत थानवीके 'एक स्वप्न'का, जो उन्होंने 'स्वदेशी रेल' के नामसे 'नैरंगेख़याल' में छपवाया है—अनुवाद छापते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मौलाना साहब अच्छा हास्य लिखते हैं, पर 'स्वदेशी रेल' में उन्होंने स्वराज्य तथा स्वराज्यवादियोंका जो मज़ाक़ उड़ाया है, वह वास्तवमें निर्दयतापूर्ण और अनुचित है। इस मज़ाक़का सीधा-सादा मतलब यही है कि हिन्दुस्तानियोंमें न तो प्रबन्धशक्ति है और न ईमानदारी। मौलाना साहबको जानना चाहिए कि अंग्रेज़ोंके भारतमें आनेसे पहले भी हम लोग व्यवस्थित ढंगसे शासन करते थे और उनके चले जानेके बाद भी उसी तरह करते रहेंगे। हमारी समझमें इस तरहकी कहानियाँ स्वराज्यके ख़िलाफ़ ज़बरदस्त प्रोपेगैण्डाका काम देंगी। किसी एंग्लो इण्डियनकी क़लमसे इस तरहका मज़ाक़ हम समझ सकते थे, पर एक भारतीयकी क़लमसे इस तरहका हास्य शोभा नहीं देता। —सम्पादक]

हमारे ऐसे आदमीके लिए सफ़र शुरू करनेका यक़ीन लोगोंको उस समय होता है, जब हम टिकट ख़रीद लें। इसलिए हमने भी यह आदत डाल रखी है कि सफ़रके पहले रुपया ज़रूर कटा लेते हैं। इस अग्नि-परीक्षाका सबसे पहला योग है स्टेशन पहुँचकर टिकट-घरकी खिड़कीमें झाँककर टिकट काटनेकी प्रार्थना करना, अतएव आज भी हमने इस प्रोग्रामका पूरी तरह पालन किया, और बुकिंग-आफिसकी खिड़कीमें हाथ डालकर कहा—"बाबूजी, कानपुरका सेकेण्ड क्लास टिकट दीजिए।"

बाबूजीने टिकट देनेके बदले हमें सिरसे पैर तक घूरा और बड़े सन्तोषके साथ कहा—"एक बात कह दें या मोल-तोल?"

मैं समझा बाबूजी दिल्लगी कर रहे हैं और हँस पड़ा। मेरे हँसनेपर बाबूजीने कहा—"जनाब, सुनिये, तीन रुपये हुए। लाइये रुपये और टिकट लीजिए।"

जैसे मैं आस्मानसे गिर पड़ा, बोला,—"क्यों जनाब, तीन रुपये कैसे हुए? एक रुपया तेरह आना तो किराया है और आप कहते हैं तीन रुपये! अजी मुझे कानपुरका टिकट चाहिए, कानपुरका सेकेण्ड क्लास।"

बाबूजीने कुछ बिगड़कर कहा—"जनाब, मैं बहरा नहीं हूँ। सुन लिया कि आपको कानपुर सेकेण्ड क्लासका टिकट चाहिए, मगर उसके ही तीन रुपये हुए। कौड़ी कम न लूँगा, चाहे लीजिए, चाहे न लीजिए।"

मैं—"मगर बाबू साहब, परसों तक तो १॥।-) किराया था, आज क्या हुआ कि एकदम बढ़ गया?"

बाबू—"कलकी बात कलके साथ। आज देश हमारा है। हमें 'स्वराज' मिल गया है।"

मैं—"यह कहिये कि स्वराज रेलको भी मिल गया। अच्छा, ख़ैर, टिकट दीजिए नहीं तो रेल छूट जायगी।"

बाबू—"लाइये रुपये; अच्छा, न आपकी बात, न मेरी बात—अढ़ाई रुपये दीजिए और टिकट ले लीजिए।

बाबूकी इन बातोंपर कुछ हँसी आ रही थी और कुछ गुस्सा भी कि व्यर्थ समय नष्ट हो रहा है। अगर गाड़ी छूट गई, तो और भी मुसीबत होगी, टिकट-विकट सब धरा रह जायगा। आख़िर मैंने सोचा कि बिना टिकट ही रेलपर चढ़ जाऊँगा। यह विचारकर मैं बुकिंग-आफ़िससे चलने लगा। मुझको जाता देखकर बाबू साहबने फिर आवाज़ दी—"सुनिये तो जनाब, अजी देखिये तो साहब, दो रुपया दे दीजिए,………अच्छा, वही १॥।-) दीजिए—अब यह भी न दीजियेगा? अच्छा, आप भी क्या याद करेंगे, लाइये डेढ़ रुपये। इससे कम नहीं हो सकता, हमें घाटा हो रहा है।"

जब हमने टिकटके कागज़का भाव इस प्रकार गिरते देखा, तो और सकड़ गये और नाक-भौं चढ़ाकर ज़रा गर्दन तिरछी करके बाबूसे ललकारा—"एक रुपया देंगे, एक रुपया। देना हो तो दे दो।" हम समझे थे कि बाबूजी इसपर तैयार न होंगे, पर वह भी एक ही 'घेघु' निकले। मुँह लटकाकर धीमी आवाज़में कहने लगे—"लाओ भाई, लाओ, बोहनीका समय है, आप ही के हाथों बोहनी करना है।"

टिकट तो हमने ले लिया, पर वह रेलका टिकट नहीं जान पड़ता था। न उसपर तारीख पड़ी हुई थी और न उसपर कुछ छपा हुआ ही था। बाबूजीने एक कागज़के टुकड़ेपर 'दूसरा दर्जा कानपुर' लिखकर एक टेढ़ी लकीर खींच दी, जो सम्भवतः उनका दस्तखत था। हमने टिकटको इधरसे देखा, उधरसे देखा, और दो-तीन बार गौरसे उलट-पुलटकर देखनेके बाद बाबूका मुँह देखने लगे। बाबू साहब भी एक ही ताड़बाज़ थे। वे झट हमारा अभिप्राय समझ गये और कुछ मुसकराकर कहने लगे—"आज रातको ही स्वराज मिला है। अभी टिकट नहीं छपे हैं, दो-तीन दिनमें छप जायेंगे। आपको टिकटसे क्या मतलब? आप तो सफ़र कीजिए, आपसे कोई कुछ न पूछेगा, बिलकुल बेफ़िक्र रहिये।"

बाबूने ढाँढ़स तो बँधाई, पर हम देख रहे थे कि टिकटपर न तारीख है न किराया, न फ़ासला। उन्होंने यह भी न लिखा कि हम सफ़र कहाँसे कर रहे हैं। अन्तमें यह समझकर कि या तो रुपया गया, या हम तेरह आनाके नफ़ेमें रहे, हम स्टेशनमें घुस पड़े।

हालाँकि स्टेशनमें सब कुछ वही था, जो आजसे पहले हम देख चुके थे, पर यह होते हुए भी जान पड़ता था कि किसीने स्टेशनको झुलाटी खिला दी है, या उल्टा खींचकर लटका दिया है। वही घड़ी थी और वही घड़ियाल, मगर दस बजनेमें अब भी २५ मिनट बाकी थे, यद्यपि अब ११ बज चुके थे। प्लेटफ़ार्मके ठेलेपर पानवालेका दूकान लगाये बैठा था। कुलियोंका कहीं पता न था। हमारी समझमें न आता था कि रेल तक सामान कैसे पहुँचायें। बड़ी दौड़-धूपके बाद एक कुली मिला, लेकिन जैसे ही उससे हमने सामान चढ़ानेको कहा, वह आगबबूला होकर बोला—"अन्धे हो गये हो, दिखाई नहीं देता कि हम कुली हैं या असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर?" "माफ़ कीजिए, ग़लती हुई।" कहकर मैं पूरे-पूरे एक गज़ पीछे हट गया और असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर साहबको सिरसे पैर तक देख-भालकर सोचने लगा, "या अल्लाह, क्या उल्टा ज़माना है! अब अगर इस सूरतके असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर होने लगे हैं, तो कुली किस सूरतके होंगे?" मरता क्या न करता। हमने भी कुछ अपना असबाब उठाया और दो बार करके दूसरे दर्जेके एक डब्बेमें रखा, जहाँ पहलेसे एक जेन्टिलमेन बैठे 'चिलम' पी रहे थे! सामान ठीक-ठाक करके जब कुछ निश्चिन्त हुआ, तो मैंने सोचा कि यह पूछ-ताछ कर लेनी चाहिए कि यही गाड़ी कानपुरको जायगी या कोई और? सबसे पहले तो मैंने अपने सहयात्री महाशयसे पूछा, पर उनसे जवाब मिला—"का जानी भय्या, हमका नाहीं मालुम!" आप शायद स्वदेशी रेलके दूसरे दर्जेके नव यात्री थे! उनसे भला क्या पता चल सकता था! लाचार होकर हम प्लेट-फ़ार्मपर आये और दो-चार आदमियोंसे जिज्ञासा करनेपर पता चला कि "यदि कानपुरके यात्री अधिक हुए, तो वहाँ जायगी, नहीं तो जहाँके मुसाफ़िरोंकी संख्या अधिक होगी, वहीं चली जायगी, इसीलिए अब तक इंजिन नहीं लगाया गया है कि राम जानें, गाड़ीको पूरब जाना पड़े या पच्छिम।"

हमने घबराकर पूछा—"भाई, यह फ़ैसला कब होगा?"

जवाब मिला—"जब रेल भर जायगी। क्या खाली गाड़ी ही छोड़ दी जाय?" अब बिलकुल ही लाचार होकर हमने अपने आपको अपने भाग्यके हवाले कर दिया। इस प्रबन्धको बुरा इसलिए नहीं कह सकते थे कि वह हमारी प्रार्थनाका ही फल था। अच्छा इसलिए नहीं कह सकते थे कि आज ही कानपुर पहुँचना था, जिसकी अब कोई आशा

कहीं दीख पड़ती थी। अब हम कभी अपने डब्बेमें बैठकर, कभी लोटेमें पानी लाकर, कभी प्लेट-फ़ार्मपर टहलकर, कभी इंजिनको पूर्व और पश्चिमकी ओर दृष्टिपरिधिमें ढूँढ़कर और कभी यात्रियोंकी तादादका अन्दाज़ा लगाकर, वक्त काटने लगे। ग्यारहसे बारह, बारहसे एक, एकसे दो भी बज गये, पर न घड़ीकी सूई टली और न गाड़ी ही टससे मस हुई! मालूम नहीं कितने बजे एक आदमीने ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाना आरम्भ किया—"बैठनेवाले यात्रियो! बैठो, गाड़ी छूटती है।"

हमने जल्दीसे पहले पूरबकी ओर इंजिनको ढूँढ़ा, फिर पश्चिमकी ओर; मगर दोनों तरफ़ इंजिनका पता न था। हम बिलकुल न समझ सके कि बिना इंजिनके गाड़ी किस प्रकार छूट सकती है, पर उस घोषणाको झूठ समझना भी ठीक न था, क्योंकि उसका कहनेवाला कोई ग़ैरज़िम्मेदार आदमी नहीं, बल्कि वही असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर साहब थे, जिन्हें हम कुली समझ बैठे थे, इसलिए बिना कुछ सोचे-समझे हम डब्बेमें बैठ गये। हमारे बैठते ही दो-तीन दर्जन बदतमीज़ गँवार हमारे डब्बेमें घुस आये। उनसे हमने लाख लाख कहा—"भाइयो, यह सेकण्ड क्लास है। यारो, यह सेकेण्ड क्लास है; मगर उन्होंने एक न सुनी, यही कहते रहे, 'हम हू आनत है, बेकहा है, हम हू टिकस लिया है।' ख़ैर साहब, हम चुप हो रहे और प्लेट-फ़ार्मपर उतर आये कि गार्डसे कह दें कि ये लोग सेकेण्ड क्लासमें बैठ गये हैं; मगर हमको कोई गार्ड-वार्ड दिखाई न पड़ा। लाचार होकर उन्हीं असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर साहबसे फ़रियाद की, जिसका जवाब उन्होंने अपनी 'स्वदेशी' शानसे दिया—"बैठिये जनाब, सब हिन्दुस्तानी बराबर हैं, सब भाई-भाई हैं, सब भारतमाताकी सन्तान हैं। कोई किसीसे बड़ा-छोटा नहीं है। अब दूसरे और तीसरे दर्जेके अन्तरको भूल जाइये, सबको बराबर समझिये। जाइये, ठँसे-ठँसे बैठ जाइये, नहीं तो थर्ड क्लासमें भी जगह न मिलेगी।" यह टका-सा जवाब पाकर हम मुँह लटकाये हुए अपने डब्बेमें आ गये, वहाँ हमारी सीटपर भी क़ब्ज़ा हो चुका था! अब हमको यह निश्चय कर लेना पड़ा कि खड़े-खड़े सफ़र तै करना होगा। अपना सन्दूक़ खींचकर उसपर बैठ गये और गाड़ी छूटनेकी अपेक्षा करने लगे।

हमको बैठे-बैठे भी लगभग एक घंटा हो गया, किन्तु गाड़ी एक इंच भी न हिली। घबराकर हम प्लेटफ़ार्मपर आये, तो देखा कि इंजिन गाड़ीमें लगाया जा रहा है और ईश्वरको कोटिशः धन्यवाद कि कानपुरकी ओर ही लगाया जा रहा है। इंजिन लगनेके बाद भी जब गाड़ी देर तक न चली, तो हमने इस देरीका कारण पूछा। मालूम हुआ कि अभी नगर-कांग्रेस-कमेटीके मन्त्री महोदयकी बाट जोही जा रही है। वे कानपुर जायँगे और उन्होंने कहला भेजा था कि ठीक १२ बजे आयँगे, लेकिन अभी तक नहीं आये। बुलानेके लिए आदमी भेजा गया है।

पहली बार हमारे दिमाग़में यह सवाल उठा कि कानपुर जायँ अथवा एक रुपयेसे हाथ धोकर यात्राका विचार स्थगित कर दें। काम बहुत ज़रूरी था, इसलिए जाना भी अटल था, और गाड़ी छूटती न थी, इसलिए घर लौट जानेका ख़याल आ जाता था। जान बड़ी खींचातानीमें पड़ गई थी। मालूम नहीं, किस मुहूर्तमें यह प्रार्थना हमारे मुँहसे निकली थी। अब तो उसको वापस करना भी असम्भव था, क्योंकि कृतघ्नताका अपराध हमपर लगा दिया जाता। हम इसी चिन्तासागरमें गोते लगा रहे थे कि 'वन्देमातरम्' के गगनभेदी नारोंसे चौंक पड़े। मालूम हुआ कि नगर-कांग्रेसके सेक्रेटरी साहब तशरीफ़ ले आये हैं। उनके पधारते ही हर आदमी अपने-अपने स्थानपर बैठ गया और इंजिन भी 'सन-सन' करने लगा। एक खद्दरधारी चपल-पादशोभित महाशय लाल और हरे गाढ़ेकी झंडियाँ लिये हुए प्रकट हुए और हमने फ़ौरन समझ लिया कि यही गार्ड साहब हैं। गार्डने कुरतेकी जेबसे एक सीटी निकालकर बजाई और पहले हरी और बादमें लाल झंडी इस तेज़ीसे हिलाने लगे, जैसे पहले चलतीसे लाल झंडी हिला दी थी। दो-तीन बार

सीटी बजाकर और झंडी हिलाकर आखिर आप गुस्सेसे लाल-भभूका हो गये और इंजिनकी ओर भपटकर ड्राइवरको डाँटना शुरू किया—"घंटे-भरसे सीटी बजा रहा हूँ, मगर तुम्हारे कानमें आवाज़ ही नहीं आती और आँखें भी फूट गई हैं, जो झंडी भी नहीं दिखाई देती।

ड्राइवरने भी तुर्कीबतुर्की जवाब दिया। कड़ककर कहा—"जनाब, आप आँखें मुझपर क्यों निकाल रहे हैं? मेरा क्या अपराध है? दो घंटेसे लल्लू फ़ायरमैन कोयला लेने गया है, कह दिया था कि जल्दीसे लपक कर ले आओ; मगर कम्बख्त अब तक ग़ायब है। पता भी बता दिया था कि रकाबगंजके चौराहेसे या ऐशबागके फाटकसे ले आना। दो-चार पैसे कम ज्यादाका ख़याल मत करना, मगर वह जाकर मर रहा। अब बताइये, इसका क्या इलाज है?" गार्ड साहब भी ड्राइवरको निर्दोष समझकर चुप हो गये और कोयलेके अभावसे गाड़ी रोकनेके लिए बाध्य हो गये। इंजिनमें यह बड़ी बुरी बात है कि कोयले बिना चल ही नहीं सकता। जैसे घोड़ेके लिए दाना-घास आवश्यक है, वैसे ही जब तक कोयला भर न दिया जाय, इंजिन चलनेका नाम ही नहीं लेता। घोड़ा बेचारा तो थोड़ी दूर भूखा भी चल सकता है, पर इंजिन इतना भी काम नहीं दे सकता। अब बताइये कि रेल भी थी और इंजिन भी, यात्री भी थे और गार्ड भी, नगर-कांग्रेस-कमिटीके मन्त्री महोदय भी आ गये थे और ड्राइवर भी मौजूद था, लेकिन एक कोयलेके न होनेसे, सबका होना न होना बराबर था। पूरे डेढ़ घंटे बाद लल्लू फायरमैन कोयलेका गट्ठर लिये यह कहता आ पहुँचा—"आधी रातको कोयला मंगाने चले हैं। तमाम दूकान बन्द हो चुकी थीं, एक दूकानमें इतनासा कोयला था। वह भी बड़ी कठिनाईसे एक रुपया नौ आनेमें मिला है। भागता हुआ आ रहा हूँ, रास्तेमें गिर भी पड़ा था। तमाम घुटने छिल गये है। कोयला आदि दिनसे मंगा लिया कीजिए।"

ड्राइवरने जल्दीसे कोयला डाला और सीटी बजाकर गाड़ी छोड़ दी। गाड़ी चली ही थी कि हल्ला हुआ—'रोको, रोको, गार्ड साहब रह गये।' गाड़ी फिर रुकी और गार्ड साहबको सवार कराके चली। अभी दो फ़र्लांग भी न चले होंगे कि गाड़ी फिर रुकी और गार्ड साहबने ड्राइवरसे चिल्ला-चिल्लाकर पूछना आरम्भ किया—"अरे लाइन क्लीयर भी ले लिया था—लाइन क्लीयर।" ड्राइवरने भी चिल्लाकर उत्तर दिया—"ले लिया था—लिया था।" जब गार्ड साहब इधरसे भी सन्तुष्ट हो गये, तो बोले—"अच्छा, लो गाड़ी छोड़ो, मैं सीटी बजाता हूँ।" गाड़ी फिर रवाना हुई। अब गाड़ीकी गतिके विषयमें हमने विचारा कि यह मेल है अथवा एक्सप्रेस, क्योंकि उससे शायद हम खुद ही तेज़ चल सकते थे, और अगर अब भी शर्त लगाकर दौड़े, तो उससे पहले कानपुर पहुँचनेका वादा करते हैं। हमसे न रहा गया और अपने एक सहयात्रीसे पूछा—"क्यों महाशय, यह मेल है या एक्सप्रेस?" सम्भवत: आप गाड़ीसे भरे बैठे थे, गुस्सा हमपर उतारा, भिड़ककर कहा—"भय्या, भाग्यको सराहो कि यह गाड़ी ही है, तुम तो मेल-एक्सप्रेस लिए फिरते हो।" उनका उत्तर सुनकर हमने खिड़कीमें गर्दन डालकर जंगलकी सैर करनी शुरू की, मगर इससे भी दिलचस्प बात यह थी कि रास्तेके नये मुसाफिर गाड़ीपर चढ़ते थे, लोग गाड़ीसे उतरते थे, पेशाब करते थे और फिर दौड़कर सवार हो जाते थे और गाड़ी छक-छक चल रही थी। इसी कच्छप-गतिसे गाड़ी 'अमौसी' स्टेशन पहुँची। अब वहाँ एक नया तमाशा यह हुआ कि 'अमौसी' के स्टेशन-मास्टरने ड्राइवरपर बिगड़ना शुरू किया—"जब तक मैंने सिगनल नहीं दिया, तुमको स्टेशनपर गाड़ी लानेका कौन-सा अधिकार था?"

ड्राइवर—"जब आपने गाड़ी आते देख ली, तो सिगनल क्यों नहीं दिया?"

स्टेशन-मास्टर—"एक तो गाड़ी ले आया और ऊपरसे गुर्राता है। अभी निकलवा दूँगा और जो मुझसे गुस्ताखी की, तो दूसरा ड्राइवर रख लूँगा। अरे गाड़ी लड़ जाती, तो तुम्हारा क्या जाता। सब मेरी ही गर्दन दबोचते।"

ड्राइवर—"देखिये, ज़बान सँभालकर किसी भलेमानससे बातें कीजिए। नौकरी की है, पर अपमान सहनेके लिए नहीं। बड़े आये निकालनेवाले, जैसे हम इन्हींके नौकर हैं। अच्छा किया गाड़ी लाये और इस हठपर तो हज़ार बार लायेंगे, देखें, कोई हमारा क्या बिगाड़ता है!"

स्टेशन-मास्टर—"देखिये, गार्ड साहब, मना कीजिए इसको। कैसी कमीनेपनकी बातें कर रहा है। अफ़सरी मातहतीका कुछ भेद ही नहीं, मैं छातीपर चढ़कर ख़ून पी लूँगा।"

गार्ड—"जाने भी दो, अरे भई, जाने भी दो।······ हैं, हैं, यह क्या करते हो? यार, तुम्हीं हट जाओ, भाई, तुम्हीं हट जाओ। अरे, छोड़ो भी, हटो भी, ज़रा सुनो तो सही······।"

स्टेशन-मास्टरने ड्राइवरको और ड्राइवरने स्टेशन-मास्टरको घूँसे, लात, चपत और जूते रसीद करना शुरू किया, और सब यात्री यह तमाशा देखने खड़े हो गये। बड़ी कठिनाईसे गार्डने बीच-बचाव किया और समझा-बुझाकर दोनोंको ठंडा किया। अभी बेचारा समझा ही रहा था कि किसीने आकर बड़ी घबराई हुई आवाज़में कहा—"गार्ड साहब, अरे गार्ड साहब, अभी वह मालगाड़ी सामनेसे आ रही है और इसी पटरीपर आ रही है, ग़ज़ब हो गया।"

यह सुनते ही गार्डके होशके तोते उड़ गये, चीख़ना शुरू किया—"यात्रियों, जल्दी उतरो, जल्दी उतरो, गाड़ी लड़ती है, गाड़ी लड़ती है।"

सब मुसाफ़िर गड़बड़ाकर अपना कुछ सामान लेकर और कुछ छोड़कर गाड़ीसे निकल आये और देखते ही देखते मालगाड़ी—जिसका ड्राइवर सो गया था—हमारी गाड़ीसे इतने ज़ोरोंसे टकराई कि खिड़कीका एक शीशा टूटकर मेरे मुँहपर गिरा······और आँखें खुल गईं!!!

('नैरंगे ख़याल'से अनूदित)

लंकाको भारतीय सांस्कृतिक मिशन*

[लेखक :—*श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह*]

हिन्द-महासागरकी जो लहरें भारतके किनारेसे लंकाकी ओर जाती हैं, वही संस्कृतिको वहाँ नहीं पहुँचातीं, बल्कि जान-बूझकर कोशिश करके भारतीय संस्कृति मातृभूमिसे इस द्वीपको लाई गई है। हमारे देशमें यह बात बहुत कम लोग जानते हैं और लंकामें भी उसका सच्चा दाम नहीं कूता जाता।

वास्तविक परिस्थिति यह है—

मातृभूमिसे प्रवास करके भारतीयोंके जितने भी छोटे-बड़े दल लंका गये, वे अपने साथ-साथ सांसारिक और धार्मिक ज्ञान, कला एवं शिल्पके परम्परागत संस्कार भी लेते गये। युद्धप्रिय राजकुमारोंके साथ या अपनी तबीयतसे, पुजारी, कारीगर और कलाविदोंके झुंडके झुंड भी आ पहुँचे। यहाँ तक कि लेन-देन जैसे साधारण उद्देश्यसे भी जो लोग लंका आये, उन्होंने भी अप्रत्यक्ष-रूपसे भारतीय भावोंके प्रचारमें सहायता पहुँचाई।

जब मानव-जाति घटनाओंको लिपिबद्ध करना जानती भी न थी, उसके बहुत पहलेसे ही लोग भारतसे लंका आने लगे थे। राक्षसोंके अत्याचारसे द्वीपको त्राण दिलानेके लिए श्री रामचन्द्रजीके आगमनके समय भी वहाँ अवश्य ही भारतीय उपनिवेश होंगे। कहा जाता है कि कोणेश्वरम् (पूर्वतटस्थित त्रिकोमालीमें), मुन्नेश्वरम् (पश्चिमी तटसे थोड़ी दूरपर माधम्पके चिलावके निकट) और तिरुकेतीश्वरम् (उत्तरी पश्चिमी तटपर मन्नारके पास मातुलीक मन्ताईमें)—

---

* लेखककी लिखित अनुमतिके बिना भारतमें या भारतके बाहर कोई इस लेखको उद्धृत अथवा अनुवादित नहीं कर सकता। —लेखक

जहाँ लंकाके मुक्तिदाताने पूजा की थी—जैसे नामी-नामी शैव मन्दिर उस समय भी विद्यमान थे।



मिहिन्तेलके निम्नभागमें काल-उदयका चट्टानपर बना हुआ मंदिर। कुछ समय पहिले तक यह भग्नावस्थामें पड़ा था क्योंकि अंजीरके एक पेड़की जड़ पत्थरों तक फैलती चली गई जिससे मन्दिर टूट गया। अब पुरातत्त्व विभागने इसका पुनर्निर्माण कर दिया है।

उन आदमियोंमें भी जिन्होंने दक्षिण भारतसे लंकापर आक्रमण किया था और जो वहाँ लालच, प्रतिहिंसा अथवा किसी महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित होकर आये थे, ऐसे बहुत कम थे, जो लंकामें बढ़ते हुए भारतीय संस्कृतिके कोषमें अपनी ओरसे कुछ भी अर्पित न कर सके। 'दामिलों' (दक्षिणी भारतके तामिल) ने उस धर्मकी यादगारोंको मिटानेमें कोई पसोपेश नहीं किया, जिसे वे विदेशी समझते थे, पर उनके स्थानपर शिव, विष्णु आदि देवताओंके मन्दिर स्थापित किये और उनकी देख-रेखके लिए ज्ञानवान पुजारी भी नियत किये। इनमें से कुछ मन्दिर कलाके नमूने थे। जिन लोगोंने उन्हें बनवाया, सँवारा और निखारा, उनमें से कितने ही इसी द्वीपमें दफ़न हो गये। उनकी लंका-प्रवासी सन्तानको उनके अनुभव और ज्ञान बपौतीमें मिले।

इन सांस्कृतिक भेटोंको अप्रत्यक्ष और आकस्मिक समझना चाहिए। भारतने केवल लड़ाकों और आक्रमणकारियोंकी ही नहीं, बल्कि संस्कृति-प्रचारकोंकी भी टोलियाँ लंका भेजीं। इनके अतिरिक्त द्वीपकी प्रमुख जाति सिंहाली लेखकोंके लिखे हुए बयान इसकी सचाईके गवाह हैं। हमारे देशमें पाये जानेवाले कितने ही प्रमाणोंसे भी उनका समर्थन होता है।

(२)

सबसे बड़ी या कमसे कम सबसे प्रसिद्ध संस्कृति-प्रचारक टोली सम्राट् अशोकके पुत्र महीन्द्र* (जिसे पालीका अनुसरण करते हुए 'र' लुप्त करके सिंहली महीन्द कहते हैं) की अध्यक्षतामें सन् ईस्वीके तीन सदी पहले भेजी गई थी। आगे चलकर मैं बतलाऊँगा कि कुछ सिंहली तो अवश्य ही इससे पहले भी गौतमबुद्धके विचारोंसे परिचित थे। शाही उपदेशकने अपने संगियोंके साथ एक चट्टानपर बौद्धधर्मकी वह मशाल रौशन की, जिसने समूचे द्वीपको जगमगा दिया। तबसे वह चट्टान 'मिहिन्तेल' कहलाती है। हालाँ कि द्वीपमें कई कष्टकर युगान्तर हुए हैं, फिर भी 'महीन्द्र'का वह प्रदीप अब तक दमक रहा है।

अशोकके राज्यकालमें अशोकारामके भिक्षु-संघमें एक विशाल परिषद् हुई थी। यह भिक्षुसंघ राजधानीमें था, जो पटलीपुत्र, पुष्पपुर, कुसुमपुर अर्थात् 'फूलोंके शहर'के नामसे पुकारी जाती थी—जहाँ आजकल पटना बसा हुआ है। पंडितप्रवर फ्लीटके कथनानुसार यह परिषद् सन् ईस्वीके पूर्व २४७ वें वर्षमें जनवरीसे शुरू हुई और अक्टूबरमें जाकर खतम हुई। अपने पांडित्य और दयाके लिए विख्यात भिक्षु मोग्गालिपुत्तातिस्साने उसके सभापतिका

* कोई-कोई महीन्द्रको अशोकका बेटा नहीं, भाई बतलाते हैं।

आसन ग्रहण किया। इसी परिषद्में निश्चय हुआ कि विदेशोंमें बौद्धधर्मके प्रचारके लिए उपदेशक भेजे जायँ। लंकाको गौरव प्रदान करनेके लिए लंका-मिशनका अध्यक्ष बना सम्राट्का सगा बेटा महीन्द्र, जिसने बारह वर्ष पूर्व ही दीक्षा ली थी।



जिस चट्टानपर महीन्द्र उतरे थे, अब वह घमासान जंगलोंसे घिरी हुई है। यह फ़ोटो मिहिन्तेलकी राजगिरि—लेना गुफाके सामनेसे लिया गया था।

महीन्द्रकी उम्र लगभग बत्तीस वर्ष होगी। कहा जाता है उसकी मां मालवाके किसी व्यापारीकी लड़की थी। अपने पिताके राज्यकालमें 'अशोक' मालवाके सूबेदार बनाकर भेजे गये थे। उस समय अशोक नवयुवक थे और अवन्तीमें रहते थे। एक बार वे उज्जैन जा रहे थे। रास्तेमें वे ग्वालियर-रियासतके वेदिसा—आधुनिक भेलसा नामक स्थानमें ठहरे। भेलसा भोपाल शहरसे छब्बीस मील उत्तर-पूर्व और सांचीसे छै मीलकी दूरीपर बसा हुआ है। सांची अपने स्तूप एवं अन्य बौद्ध इमारतोंके लिए प्रसिद्ध है। 'महावंश'में लिखा है कि अशोक देवी नामक सुन्दरी कुमारीपर मोहित हो गये और उससे विवाह कर लिया। ईसाके २७६ वर्ष पूर्व उसने महीन्द्र नामक पुत्रको जन्म दिया और दो साल बाद संघमित्ता नामक पुत्रीको। मैं किसी दूसरे लेखमें दिखाऊँगा कि संघमित्ताका नाम भी लंकाके साथ अविच्छिन्न-रूपसे सम्बद्ध है।

इत्थिया, उत्तिया, संबल और बायसाल नामक चार महात्मा महीन्द्रके साथ लंका गये थे। इस दलमें उसका भानजा यानी संघमित्ताका पुत्र सुमन और उसकी ममेरी बहनका पुत्र भंडूक भी शामिल थे।

कुछ विद्वानोंका विचार है कि तृतीय बौद्ध परिषद्के कुछ पहले ही महीन्द्र लंका रवाना हो चुके थे। इस विषयमें हमारा ज्ञान परिमित है, अतएव इस तरहकी छोटी-मोटी बातोंका ठीक-ठीक निश्चय करना हमारे लिए असम्भव है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ईसाके पूर्व तीसरी सदीके मध्यकालके लगभग प्रचारकोंका एक दल तीन राजकुमारोंके साथ लंकामें ज्ञानका ज्योति प्रदीप्त करनेके लिए रवाना हुआ था।

(३)

उस समय अनुरुद्धपुरमें जो राजा राज करता था, उसका नाम सिंहली 'देवानांप्रिय तिस्सा' बतलाते हैं अर्थात् देवताओंका प्रिय तिस्सा। कुछ समयसे अशोकसे उसका राजनीतिक सम्बन्ध था। महावंशमें लिखा है कि अपने भाइयोंमें बुद्धि और ज्ञानमें वह सबसे बढ़ा-चढ़ा था। अपने पिता मुतासिवके मरणोपरान्त ईसाके २४७ वर्ष पहले वह 'महाराज'की गद्दीपर बैठा था।

कहा जाता है कि तिस्साके राज्याभिषेकके समय कई अद्भुत घटनाएँ घटीं। ज़मीनके तले गड़े हुए खज़ाने ऊपर उभर आये। जलयानोंके साथ जो रत्नादि समुद्रगर्भस्थ हो गये थे, वे भी किनारेपर तैरने लगे। उनमें 'अष्ट-मुक्ताओं'के भी ढेर थे, यथा—अश्वमुक्ता, हस्तिमुक्ता, शकटमुक्ता,



मिहिन्तेलकी पहाड़ियोंपर तीर्थयात्री सुगमतासे चढ़ सकें, इसलिए पत्थरकी सीढ़ियां बना दी गई हैं।

हालांकि इन दोनोंमें कभी भेंट न हुई थी, फिर भी मुद्दतोंसे मित्रता चली आती थी। तिस्साने सोचा कि ऐसे सुन्दर पदार्थोंका हक़दार सिर्फ़ अशोक ही हो सकता है। इस बातका ज़िक्र कहीं मौजूद नहीं है कि दोनोंमें जान-पहचान कब और कैसे हुई ; किन्तु लंकामें किम्वदन्ती प्रसिद्ध है, कि किसी पूर्व-जन्ममें दोनों भाई-भाई थे। इस कहानीको महावंशमें बड़े कवित्व-पूर्ण ढंगसे लिखा गया है।

एक बार 'पच्चेक बुद्ध' नामक साधुको किसी बीमार भिक्षुके लिए शहदकी ज़रूरत हुई और उसकी तलाशमें वह किसी गाँवमें पहुँचा। एक औरतने उसे शहदकी दुकानका पता दिया, और वह जाकर उसके सामने खड़ा हो गया। दुकानदारने उदारता-पूर्वक साधुके भिक्षापात्रको शहदसे लबालब भर दिया, यहाँ तक कि वह नीचे टपकने लगा। शहद देते समय उसने वरदान माँगा कि जम्बूद्वीपके राजाके घर उसका जन्म हो।

कुछ दिनोंके बाद दुकानके लिए शहद जमा करके दुकानदारके दोनों भाई लौट आये। भिक्षुके आगमन और दानका हाल सुनकर उन्हें बड़ी जलन हुई, और उन्होंने कहा कि पीतांबरधारी भिक्षु अवश्य ही चांडाल होगा, क्योंकि चाण्डाल भी पीले कपड़े पहनते हैं। दूसरे भाईने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—"अपने भिक्षुके साथ समुद्रके उस पार चला जा।"

दुकानदारने अपने भाइयोंको उक्त वरदानकी बात बताई और वादा किया कि सफलमनोरथ होनेपर उन्हें भी सुख-भोगमें शरीक करेगा। यह बात कहीं उस युवतीने सुन

हरीतकीमुक्ता, कंकणमुक्ता, अंगुरीमुक्ता, ककुधफलमुक्ता और मामूली मोती।

इन करिश्मोंके साथ ही उक्त मिहिन्तेल चट्टानके नीचेसे बांसके तीन बड़े-बड़े तने निकल पड़े जो गाड़ीके धुरेसे कम मोटे न होंगे। उनमें से एक था लतिका-स्कंध, जो चाँदीकी तरह चमकता था और उसमें सुनहरे रंगकी मनभावन बेलें चमकती थीं। दूसरा था 'कुसुम-स्कन्ध' जिसमें रंग-बिरंगे भाँति भाँतिके फूल खिले हुए थे। तीसरा था 'विहंग-स्कन्ध', जिसपर तरह-तरहके पशु-पक्षी बैठे हुए थे और जीवित-से मालूम पड़ते थे।

जब 'तिस्सा' ने इन अजीब मोतियों और बाँसके पेड़ोंको देखा, तो उसने सोचा कि इन्हें अशोकको भेजना चाहिए।



राजगिरि-लेना-कांडमें चटानसे बनाए गये सन्यासाश्रम । मिहिंतेल पर्वतश्रेणीकी—जहां प्राचीनकालमें भिक्षु रहते थे—चार चोटियोंमेंसे एक यह भी है।

ली, जिसने भिक्षुको दूकान तक पहुँचाया था। उसने वर माँगा कि अतिसुन्दर रूप लेकर मैं पुनर्जन्म ग्रहण करूँ, और बड़े भाईकी महारानी बनूँ।''

बहुत दिनोंके बाद चार भिन्न-भिन्न कुटुम्बोंमें चार आदमी पैदा हुए। दुकानदार तो ''अशोक'' के नामसे जम्बूद्वीपका एकछत्र नरेश बना। उसकी पत्नी 'असंधिमित्ता' वही लड़की थी, जिसने भिक्षुको शहदकी दुकानका पता बताया था। उसे बौद्धधर्मकी दीक्षा भिक्षु निग्रोधने दी। निग्रोध उस भाईका अवतार था, जिसने शहद लेनेवाले भिक्षुके प्रति कटु वचनोंका प्रयोग किया था। राजकुटुम्बमें से होनेपर भी निग्रोधका जन्म एक चांडाल-ग्राममें हुआ था, जहाँ उसकी माता प्राण-रक्षाके लिए भाग आई थी। तीसरा भाई जिसने शहद ढूँढ़नेवाले भिक्षुको ''समुद्रके उस पार'' भेजनेकी इच्छा प्रकट की थी, लंकाका राजा तिस्सा था।

इस कहानीको हम जो कुछ भी समझें, पर इतना ज़रूर जान पड़ता है कि तत्कालीन लंकाका भारतसे दृढ़ सम्बन्ध अवश्य ही था। भारत-भूमि लंका-निवासियोंके लिए मातृ-भूमिका पद रखती थी।

इसलिए अगर तिस्साने अशोकको वह अनमोल खज़ाना भेजना चाहा, जो उसके अभिषेकके समय बड़ी कौतूहलोत्पादक रीतिसे उत्पन्न हुआ था, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। साथ ही उसने एक शंख भी भेजा जो दाहिनी ओर घूमता था, जिसे हमारे देशवासी अब तक बहुत पवित्र समझते हैं। 'महावंश' का कथन है कि तिस्सा राजाने इस अवसरपर एक राजदूत-मंडली भी भेजी; जो उसके गौरवके

बिलकुल अनुरूप थी। उसका प्रधान था स्वयं तिस्सका भतीजा महारित्ता। उसके साथ प्रधान मंत्री तालिपब्बत, राजगुरु 'तेला' (ब्राह्मण) और तिस्सा-कुटुम्बका एक व्यक्ति था, जो कोषाध्यक्ष भी था। उत्तरी-लंकामें जहाजपर सवार होकर वे लोग सात दिनके सफ़रके बाद 'तामिलित्ती' बंदरगाहको पहुँचे। संभवतः यह स्थान हुगली नदीके किनारे कहीं था। वहाँसे पाटलिपुत्र पहुंचनेमें उन्हें एक सप्ताह लगा।

(४)

तिस्साकी भेंट और उसके प्रेम-भावका सम्राट् अशोकपर बहुत असर पड़ा। महारित्ताको उसने अपनी फ़ौजमें सेनापतिका पद दिया और उसके संगियोंको भी पुरस्कारसे माला-माल कर दिया।

पाँच महीने अशोकका मेहमान रहनेके बाद राजदूत-मण्डली उसकी ओरसे तिस्साके लिए प्रेमोपहार लेकर लौट गई, जिसे उसने अपने मंत्रियोंसे परामर्श करके चुना था। एक तिब्बती बैलकी पूँछ, एक ताज, एक तलवार, एक छत्र, जूतियाँ, एक पगड़ी, कानके बाले, ज़ंजीरें, पीले चन्दनकी सुराही, ऐसे कपड़ोंका जोड़ा, जिन्हें कभी धुलानेकी ज़रूरत न होती थी, एक क़ीमती तौलिया, नागों द्वारा लाया गया मलहम, लाल मिट्टी, गंगा और अनोताता झीलका जल, एक सुन्दर युवती, सोनेके बर्तन, एक क़ीमती डोली, पीतवर्णकी हरीतकी, अमृत-तुल्य जड़ी-बूटियाँ, तोतोंके ज़रियेसे लाया गया १६० गाड़ी पहाड़ी चावल—यही नहीं, बल्कि एक राजाके अनुरूप अन्य सभी वस्तुएँ इस उपहारमें थीं।

इस भेंटके साथ अशोकने अपने दूतोंके हाथ देवनांपिय तिस्साके नाम यह सन्देश भेजा था—"मैंने बुद्ध और उनके धर्म और संघमें शरण ली है। मैंने अपने आपको शाक्यपुत्रके धर्ममें दीक्षित घोषित कर दिया है। हे मानव श्रेष्ठ! तू भी अपने हृदयको इस सर्वश्रेष्ठ रत्नका शरणागत बना।" और अपने दूतोंको आज्ञा दी कि मेरे मित्रका दोबारा अभिषेक करो।

अनुरुद्धपुर पहुंचकर दूतोंने अशोककी आज्ञानुसार तिस्साको फिरसे राजगद्दीपर बिठाया। दूसरा अभिषेक पहलेके सात-आठ महीना बाद बैशाखकी पूर्णिमाके दिन किया गया।

(५)

एक महीनेके बाद पोष (अथवा पूसों, जैसा कि सिंहली कहते हैं) की पूर्णमासीके अवसरपर तिस्साने अनुरुद्धपुरकी जनताके लिए एक 'जलोत्सव' का प्रबन्ध किया। उनके आमोद-प्रमोदका प्रबन्ध करके वह चालीस हज़ार दरबारियोंके साथ शिकारके लिए मिसिका पर्वतकी तराईमें गया। पुरानी राजधानीसे आठ मील पूर्व छोटी-छोटी पहाड़ियोंका जो सिलसिला चला गया है और जो अब मिहिन्तेल-कांद या सिर्फ़ मिहिन्तेल कहलाता है, वही उक्त मिसिका पर्वत बताया जाता है।

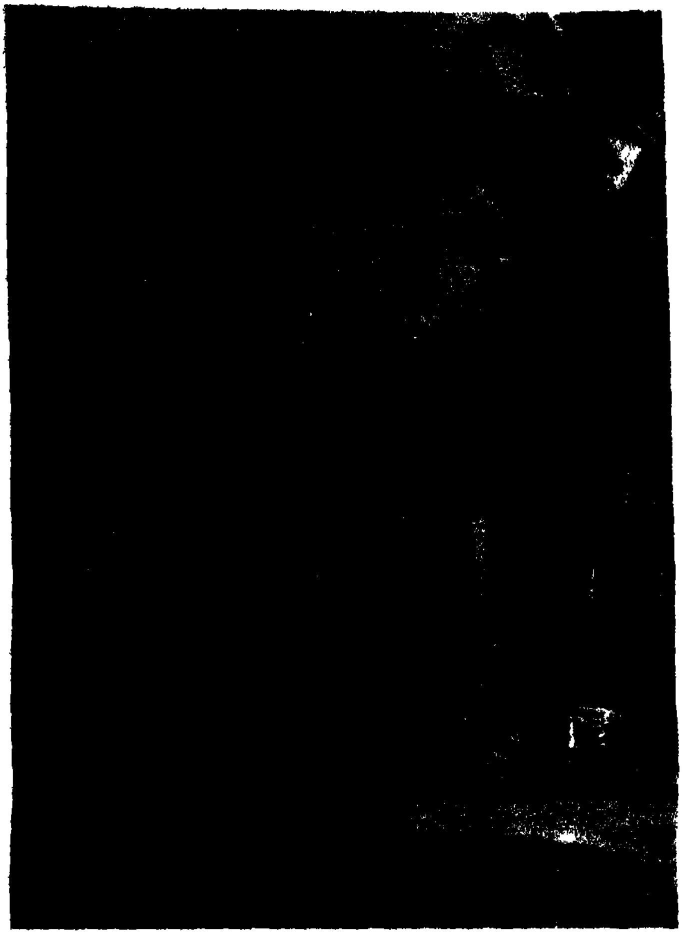
शिकार करते-करते तिस्साको किसी झाड़ीमें एक हरिण दिखाई पड़ा। तिस्सा इतना वीर था कि शिकारको होशियार किये बिना कभी न मारता था, इसलिए धनुषकी प्रत्यंचाको उसने टंकारा। भयभीत हरिणने पहाड़की ओर चौकड़ियाँ भरीं और राजाने उसका पीछा किया।

एकाएक हरिण गायब हो गया। राजाने किसीकी आवाज़ सुनी,—"तिस्सा, यहाँ आओ।"

इस आज्ञासूचक स्वर और सम्मानहीन वाक्यको सुनकर राजाको खयाल हुआ कि किसी 'यक्कू' (एक आदिम जाति, जो अपनी गँवारू चाल-ढाल और बातचीतके लिए प्रसिद्ध है) ने उसे पहचानकर यह आवाज़ कसी है, किन्तु ऊपर जो नज़र फेरी, तो एक पीताम्बरधारी भिक्षुको देखा, जिसने कहा—"मैं और मेरे साथी सत्यके राजाके शिष्य हैं और तुमपर दया करके जम्बूद्वीप (भारत) से यहाँ आये हैं।

प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है कि पर्वतके देवताने तिस्साको महीन्द्र तक पहुँचानेके लिए हरिणका रूप धारण किया और उसे धोखेसे इस जगह तक ला पहुँचाया।

राजाको फ़ौरन उस सन्देशका खयाल आया, जो दूतोंके हाथसे अशोकने भेजा था, और विचारा कि मुझे मुक्तिमार्ग



मिहिन्तेलके शिखरकी अधित्यकापर अम्बस्थल-विहारके भग्नावशेष । कहा जाता है कि लङ्कामें बौद्धधर्मके प्रचारके लिये आनेपर महीन्द्र सर्व प्रथम यहीं ठहरे थे ।

दिखानेके लिए भिक्षु भेजा गया है। तीर-कमानको फेंककर वह झट उस भिक्षुके निकट गया और अभिवादन करके उसके पास बैठ गया। अनुरुद्धपुरसे जो चालीस हज़ार दरबारी उसके साथ आये थे, वे भी उसे घेरकर बैठ गये।

तब महीन्द्रने अन्य भिक्षुओंको भी बुला लिया, जिन्होंने अपनेको इस कारण अन्तर्द्धान कर लिया था कि 'तिस्सा' कहीं डर न जाय। विस्मयान्वित राजाने पूछा—"तुम कौन हो, और कब और कैसे बिना पता चले हुए मेरे राज्यके बीचोंबीच इस जंगलमें आ गये हो ?" उसे जवाब मिला—"हम न जलमार्गसे आये हैं, न खुश्कीसे।" तबसे आज तक इस वाक्यका यह अर्थ लगाया जाता है कि वे हवामें उड़कर आये थे।

राजाके अध्यात्म ज्ञान और विद्याकी थाह लेनेके लिए कुछ बातचीत करनेके बाद, महीन्द्रने पहाड़की तराईमें बैठे हुए श्रोताओंके आगे पहला उपदेश दिया, जो हाथीके पदचिह्नकी उपमापर साधारण कथोप-कथनके नामसे मशहूर है। राजाने तत्काल घोषित किया कि उसने बुद्ध, उनके धर्म और उनके संघकी शरण ले ली, जिसका ज़िक्र अशोकने किया था। उसके दरबारी और चाकरोंने भी दीक्षा ग्रहण की।

(६)

पहले-पहल महीन्द्रने जिस चट्टानपर क़दम रखा था, उसके आसपास आम आदिके पेड़ोंके बीच राजा तिस्साने धर्म-परिवर्तन किया था। अब इस जगहका नाम है 'अम्बस्थल', अर्थात् आमका 'स्थान'। उस पहाड़ीसे क़रीब आधी दूर तिस्सा उतर आया। बौद्धधर्मने उसके चित्तको जो शान्ति प्रदान की थी, उससे प्रभावित होकर उसने उसी सुन-सान जगहमें रात बितानेका विचार प्रकट किया।

तिस्साने जिस स्थानपर विश्राम किया था, अब वह 'नागपोकुना' कहलाता है। चट्टानमें एक गढ़ा खोदा गया है, जिसमें एक प्राकृतिक झरनेसे बराबर पानी पहुँचा करता है। चट्टानकी पिछली दीवालपर एक पाँच फनवाले

नागका चित्र खींचा गया है, जिसकी उँचाई पूरे पाँच फ़ीट है।

यहाँपर रातको जब तिस्सा भोजन कर रहा था, तो उसे एक कर्णभेदी भयंकर शब्द सुनाई दिया। घबराकर उसने महीन्द्रके पास एक दूत भेजा और यह पुछवाया कि संसारपर कोई आपत्ति तो नहीं गिरी है। महीन्द्रने जवाबमें कहला भेजा कि मेरे आज्ञानुसार 'सुमन'ने 'ताम्बपर्ण-वासियों'में घोषणा कर दी है कि 'धम्म' का प्रचार आरम्भ होनेवाला ही है। ताम्बपर्णका मतलब है ताँबेके रंगकी ज़मीन, जैसा कि ईसाके पाँच-छै सदी पहले 'विजय'की लंका-विजयके समयमें लंकाका नाम पड़ गया था।

संसारमें रहनेवाले देवताओंने भी इस शब्दके सुरमें सुर मिलाया, यहाँ तक कि यह आवाज़ ब्रह्मलोकमें पहुँची। आध्यात्मिक शान्तिके उपदेशको सुननेके लिए बहुतसे देवता जमा हुए। और उन नागों (१) और गरुणों (२) को इससे बहुत शान्ति मिली।

(७)

बहुत संभव है कि इस कहानीका अर्थ एक कल्पित रूपमें यह बताना है कि बौद्धधर्म लंकाका राजधर्म कैसे बन गया। मुझे तो कोई शक नहीं है कि इसके पहले ही बुद्धके विचारोंकी दुन्दुभी लंकामें बज चुकी थी, और संभवतः अपने आदमी उस भारतीय महात्माके बताये हुए 'मध्य-पथ' पर चल रहे थे। दोनों देशोंकी समीपता और परस्पर घनिष्ठताको देखते हुए यह कैसे समझा जा सकता है कि जिस धर्मका प्रचार ढाई सौ वर्षसे भारतवर्षमें किया जा रहा था, उसका लंकापर कोई असर न पड़ा होगा।

साथ ही यह भी न भूल जाना चाहिए कि आम तौरपर यक़ीन किया जाता है कि गौतम स्वयं अपने जीवनकालमें तीन बार लंका गये और हर बार बहुतोंको अपना शिष्य बनाया। जिस धर्मकी पताका स्वयं उस महान् शिक्षकने फहराई थी, वह तीन सौसे भी कम वर्षोंमें निर्मूल नहीं हो सकता था।

ऐसी हालतमें महीन्द्र-मिशन एक ऐसे धर्मका सर्वप्रथम परिचय करानेके लिए नहीं भेजा गया था, जिससे द्वीपवासी सर्वथा अनभिज्ञ थे, बल्कि राष्ट्र-भरमें उसका व्यापक रूपसे प्रचार करनेके लिए भेजा गया था। भारतके राजकीय भिक्षुसे तिस्साकी मुलाक़ात जिस तौरसे दिखाई गई है, उसका अभिप्राय सीधे-सादे आदमियोंपर असर डालनेके सिवा और क्या हो सकता है? यदि लेखकको यह माननेके लिए लाचार न होना पड़ता कि सिंहली-नरेश बहुत दिनोंसे महीन्द्रके पिता अशोकसे परिचित था, और उससे मिहिन्तेलमें भेंट होनेके एक-दो मास पूर्व ही अशोककी आज्ञासे उसका दोबारा अभिषेक हुआ था और अशोकसे ही उसे विचार-परिवर्त्तन करके विश्वासपूर्ण हृदयसे 'सर्वश्रेष्ठ रत्न'की शरण लेनेका आदेश मिला था, तो इस कहानीका नाटकीय प्रभाव और भी अधिक होता।

(आगामी अङ्कमें समाप्य)

---

(१) साधारणतः 'नाग' मानी हैं एक प्रकारका सर्प। एक अर्धमानव-जातिको भी नाग कहते थे, जो धरती अथवा समुद्रके नीचे रहनेवाली मानी जाती है। पिछले मानीमें इस शब्दके निरंतर उपयोगके कारण अब कुछ विद्वानोंकी धारणा हो चली है कि 'नाग' सचमुचमें समुद्रवासी जीव थे और शायद वे समुद्री डाकू भी थे। पानीमें भी वे उतने ही आरामसे रह सकते थे, जितने ज़मीनपर। (२) पुराणोंके अनुसार 'गरुण' नागोंके कट्टर दुश्मन होते थे।



स्वास्थ्य-विभाग

चीनका व्यायाम-सम्मेलन

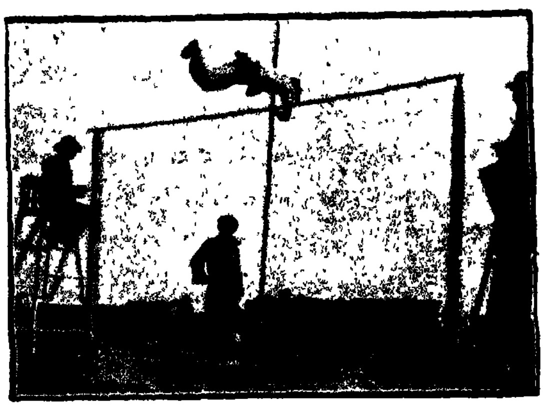
[लेखिका :—श्रीमती एग्नेस स्मेडले]

आजकल चीनमें छोटे-छोटे पैरों और संकुचित विचारों-वाली चीनी स्त्रियों तथा लम्बे गौन पहननेवाले शौक़ीन पुरुषोंका ज़माना बड़ी तेज़ीसे उड़ रहा है। यह तभी स्पष्ट हो गया, जब 'हाँगचाऊ' में १ से १० अप्रेल तक राष्ट्रीय व्यायाम-सम्मेलन हुआ और चीनके कोने-कोनेसे पन्द्रह सौ स्त्री और पुरुष खिलाड़ियोंने उसमें भाग लिया। सम्मेलनमें २६ अखाड़े शामिल हुए थे, जो भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके अलावा कई विश्वविद्यालयों और कालेजोंसे आये हुए थे। इस प्रदर्शनमें हज़ारों दर्शक भी उपस्थित थे। टोकियोमें ३० मईको सुदूर पूर्व ओलम्पिक खेल-कूदका नौवाँ सम्मेलन होनेवाला था। उसमें चीनकी ओरसे शामिल होनेके लिए राष्ट्रीय चेम्पियन-पद प्राप्त करनेके लिए बहुतसे खिलाड़ियोंने हांगचाऊकी प्रतियोगितामें हिस्सा लिया।

इस प्रतियोगिताके लिए खिलाड़ी गत छै महीनोंसे बड़े ज़ोर-शोरसे तैयारी कर रहे थे। इसके पहले नागरिक और प्रान्तीय प्रतियोगिता हो चुकी थी। एक मास पूर्व, नानकिंगमें एक मध्यचीनी दंगल हुआ था, जिसमें मध्य-यांगत्सी-घाटीके पहलवान आये थे। एक मज़ेदार बात यह हुई कि एक कुलीने दस हज़ार मीटरकी दौड़में भाग लिया और सबसे बाज़ी मार ली। उसके अतिरिक्त किसी भी दंगलमें अन्य किसी मजूरने भाग न लिया था। उत्तरी चीनका प्रतियोगिता-केन्द्र 'मुकदन'में था। शंघाईने अपने पहलवानोंकी ज़ोर-आज़माई अलग कराई। केन्टन और हांगकांगका केन्द्र एक ही जगह था। नानकिंग सरकारने इस अवसरपर व्ययके लिए एक लाख डालरकी मंज़ूरी दी थी।

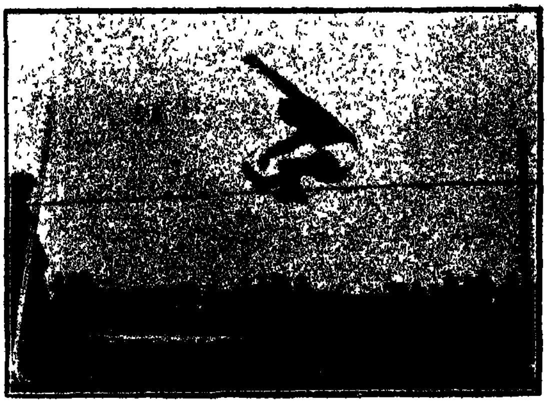


खेलमें एक चीनी लड़की



बांसके सहारे कूदनेवाला सर्वोत्तम खिलाड़ी। रिकर्ड-३-२८ मीटर (११ फीटके लगभग)

अन्तिम राष्ट्रीय सम्मेलनमें सबसे अधिक प्रभावोत्पादक बात थी नवीन चीनी औरतोंकी उपस्थिति। जिन



हांगचाऊके दंगलमें हाई जम्प

पदबद्ध स्त्रियोंका कर्त्तव्य केवल बच्चे जनना और घरका प्रबन्ध करना समझा जाता था, उनकी ही कन्याएँ उनसे दो सदी आगे निकल गई हैं। वे रूपरंगमें सुन्दर, चलनेमें तेज़ और शारीरिक गठनमें मज़बूत हैं। वे मेहनती होती हैं। राष्ट्रीय सम्मेलनमें जब सैकड़ों स्त्री-मल्ल जाँघिया पहनकर आईं, तो दकियानूसी बूढ़ों और बुढ़ियोंके आश्चर्यका पारावार न रहा। ईसाई पादरियोंने लम्बे-चौड़े, ढील ढाले लबादे पहननेकी रीति चीनमें चलाई थी। नवीन चीनकी युवतीने उन्हें भी उतार फेंका है, उनके मज़बूत पैर जाँघसे



लड़कियोंकी सौ मीटर लम्बी दौड़की समाप्ति। मिस सुंग क्विंग सबसे आगे आ रही हैं और उनके पीछे दूसरे नम्बर पर कैन्टनकी एक लड़की है।

लेकर एड़ी तक खुले हुए थे। यह साफ़ तौरपर जान पड़ता था कि नौजवानों—मर्द और औरत दोनों ही—ने इस पहनावेको स्वीकार कर लिया है, और इस ओर वे तनिक भी ध्यान न दे रहे थे। केवल बूढ़ों और अनुदारोंकी भौंहें तिरछी होती जाती थीं। चीनका युवक प्रत्येक वस्तुका दाम एक बिलकुल ही नये दृष्टिकोणसे कूतता है।

टोकियोके ओलम्पिक-सम्मेलनमें चीनके जो प्रतिनिधि जायँगे, उनमें मुकदनका ल्यू चांगत्सांग भी है। आज तक चीनमें इतना तेज़ दौड़नेवाला पैदा नहीं हुआ। हांगचाऊमें उसका रिकर्ड निम्न-प्रकार था—

मीटर	मिनट	सेकंड
१००	—११	४ १/५
२००	—२२	४ १/५
४००	—५२	३ १/५

इसमें शक नहीं कि यह अन्तर्राष्ट्रीय रिकर्डसे कम है, पर 'ल्यू' को अभी पेशेवर (Professional) की हैसियतसे शिक्षा नहीं मिली है। फिर भी उक्त रिकर्डके बलपर टोकियोमें जापानी और फिलीपाइनके प्रतिद्वन्द्वियोंसे सफलतापूर्वक मुक़ाबला करके 'चैम्पियन' बननेकी उसे आशा है।

स्त्रियोंकी दौड़में चीनकी प्रतिनिधि होंगी हारबिनकी मिस सुंग क्वीथिंग, जिनका रिकर्ड है—

मीटर	मिनट	सेकंड
५०	७	२ ६/१०
१००	१२	४ १/१०

पुरुषोंकी अपेक्षा यह तालिका बहुत निम्न है, किन्तु मिस सुंगकी अवस्था केवल १६ वर्ष है, और सावधानीसे शिक्षा मिलनेपर वे बहुत उन्नति कर सकती हैं। एक कैन्टनकी लड़कीसे उनका खूब मुक़ाबला हुआ, जो दूसरे नम्बरपर आई।

एक विचार-योग्य बात यह है कि सभी तेज़ दौड़नेवाले—पुरुष और स्त्री दोनों ही—मंचूरिया (उत्तरी चीन) के हैं। ऊँचा कूदनेका चैम्पियन भी हारबिनवासी है। हांगचाऊ-सम्मेलनमें चीनके सभी श्रेणियोंके लोगोंको भाग लेते देखना



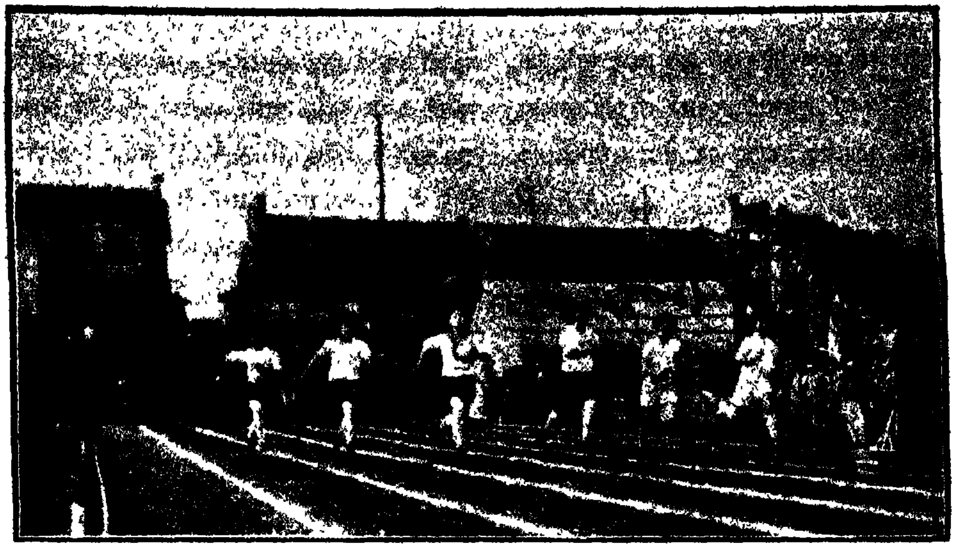
राष्ट्रीय दंगलकी तय्यारीके लिए शंघाईमें एक दंगल हुआ था। उस दंगलमें दर्शकोंका झुंड

दिलचस्पीसे खाली न था। उत्तरी चीनवासी पाँवकी लम्बाई या खुद अपनी लम्बाईमें किसी यूरोपियनसे कम नहीं हैं। दक्षिणवासी कुछ नाटे होते हैं। जब दौड़-धूप या ऊँचाईका मौक़ा आया, तो उत्तरवासी सरलतापूर्वक जीत गये, पर जहाँ सहनशीलता और श्रमकी आवश्यकता हुई, वहाँ दक्षिणवासियोंके सिर ही सेहरा बँधा।

यह याद रखना चाहिए कि इस सम्मेलनमें चीनके केवल उच्च और मध्य श्रेणियोंके मल्ल ही शामिल थे। यह दंगल कालेज और यूनिवर्सिटीके व्यायाम-प्रदर्शनसे ही सम्बन्ध रखता था। उसे चीनका सच्चा प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वहाँकी आबादीका ८५ प्रति-शत मजूर और किसान हैं। यदि सोवियट रूस, जर्मनी और स्केन्डिनेवियन देशोंके समान मजूर



खिलाड़ियोंके परेडमें भाग लेनेवाली छात्राओंका एक अंश



लड़कियोंकी दौड़का आरम्भ।

और किसान अपनेको सम्हालकर खेल-कूदमें भाग लेने लगें, केवल तभी हम जान सकते हैं कि चीन क्या कर सकता है। सुदूर पूर्वी ओलम्पिक अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिकके लिए भी खिलाड़ियोंको तय्यार करता है, किन्तु मजूरोंके खेल-कूदका अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रति वर्ष लेनिनग्रेड या मास्कोमें होता है। पहलेमें संसार-भरके पूँजीपति खिलाड़ी शरीक होते हैं और पिछलेमें दुनियाँ-भरके क्रान्तिकारी मजूर पहलवान अपने-अपने जौहर दिखाते हैं।

होलकर राज्यमें हिन्दी

[लेखक :—साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा]

हिन्दी राष्ट्र-भाषा बनती जा रही है। 'राष्ट्र-भाषा' तो यह पहले भी थी, पर प्रान्तीय बोलियोंने और खासकर 'उर्दू बेगम' ने उसका वह अधिकार छीन रखा था। अबसे कुछ समय पहले इधर मध्य-भारतमें और राजपूतानेकी रियासतोंमें भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओंका सम्मान जिस हिसाबसे होता था, उसका परिचय इस पुराने दोहेसे मिलता है—

''अगर मगरके सोलह आने, इकडम् तिकडम् बार।
अठे कठेके आठ ही आने 'शूं शाँ' पइसा चार।''

अर्थात् 'अगर मगर' वाली उर्दू बेगम पूरे सोलह आनेकी हक़दार समझी जाती थी। नीचेसे लेकर ऊपर तक सब महकमोंमें उसीकी हुकूमत थी। उसके 'क़लमरौ' में बेचारी आफ़तकी मारी प्रान्तीय बोलियोंकी बोलती बन्द थी। सब काम 'निख़ालिस' उर्दू ही में होते थे। जिन प्रान्तोंमें या राज्योंमें मराठी-भाषा-भाषियोंकी अधिकता थी, वहाँ 'इकडम् तिकडम्' मराठी भी बारह आनेकी मालिक बनी हुई थी। मराठे अपनी धुनके धनी होते हैं। 'चौथ' से चूकते नहीं, ले ही मरते हैं। जब मदान्ध मुग़लोंका कचूमर निकाल दिया, तो उर्दू बेगमसे अपना हिस्सा वसूल कर लेना उनके लिए कौन बड़ी बात थी। मतलब यह कि मुठमर्दीसे मराठी बारह

आनेकी हिस्सेदार हो ही गई। 'छठे छठे' करनेवाले राजपूतोंकी टोलीने भी अपनी बोलीके लिए आठ आने बँटा लिये। रह गई 'मूँजी' गुजराती। उसने भी लड़-झगड़कर या 'अहिंसात्मक सत्याग्रह' करके चार पैसा—रुपयेमें एक आना—पा लिया।

भाषाओंका यह अधिकार-विभाग राजस्थानीय और मध्य-भारतीय प्रान्तोंके सम्बन्धमें ही बतलाया गया है। बंगाल और सुदूर दक्षिणके द्रविड़ प्रान्तोंकी बात इससे जुदा थी और अब भी कुछ वैसी ही है। हिन्दी-संस्थाओंसे—काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभा, प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और इधर इन्दौरकी मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समितिके उद्योगसे—राष्ट्र-भाषाका प्रचार और प्रसार संयुक्त-प्रान्तसे बाहर भी हुआ है और बराबर हो रहा है। महामना मालवीयजीके प्रभाव और प्रयत्नसे देशी रियासतोंके दफ्तरोंमें भी भाषाकी दृष्टिसे तो नहीं, हाँ, देवनागरी लिपिके रूपमें हिन्दीको जगह मिली है, क्योंकि देशी रियासतोंके दफ्तरोंकी भाषा तो अब भी वही पचास साल पहली दकियानूसी ढंगकी दुर्बोध उर्दू है। क्रियापदोंको छोड़कर इस्तलाहें (परिभाषाएँ) और मुहावरे वही ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीकी सरकारी बोलीके हैं। वही घिसे-पिसे पुराने सिक्के आज भी चालू हैं, देशी रियासतोंके गजट, समन और इत्तलानामोंकी इबारतको समझना अपठित प्रजाके लिए तो क्या नवशिक्षितोंके लिए भी कठिन है। फिर भी यह कम गौरवकी बात नहीं है कि किसी प्रकार दफ्तरोंमें हिन्दीकी पहुँच तो हुई! जिन देशी राज्योंने हिन्दीको अपने यहाँ आश्रय दिया है, उनमें सर्वशिरोमणि इन्दौर राज्य है। इन्दौर राज्यने इस थोड़ेसे समयमें राष्ट्र-भाषा हिन्दीके लिए जितना कुछ कर दिखाया है, दूसरे बड़े-बड़े राज्योंमें इससे आधा-चौथाई काम भी नहीं हुआ। यहाँ होलकर राज्यमें भी पहले राजभाषा मराठी और उर्दू थी।

इन्दौरकी अदालती हिन्दीमें दूसरी रियासतोंकी तरह सिर्फ लिपिका ही परिवर्तन नहीं हुआ है, भाषा भी अपेक्षाकृत सुधरी हुई है। इसका कारण यह भी है कि हिन्दीसे पहले यहाँकी दफ्तरी भाषा मराठी थी। सर्वसाधारणमें भी हिन्दीका अधिक प्रचार था। यद्यपि यहाँकी हिन्दीमें मराठीपनकी छाप स्पष्ट है, अनेक परिभाषाएँ और बहुतसे मुहावरे मराठी ढंगके हैं, पर वह अरबी-फारसी या पुरानी उर्दूकी तरह दुर्बोध या जटिल नहीं है। रियासतके स्कूलोंमें और पाठशालाओंमें भी हिन्दीकी प्रधानता है। हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका अष्टम अधिवेशन महात्मा गान्धीजीके सभापतित्वमें (संवत् १९७४ वि०में) यहीं हुआ था। सबसे अधिक सफल सम्मेलन वही कहा जा सकता है। उसी अवसरपर मद्रास प्रान्तमें—जो हिन्दीकी गन्धसे भी शून्य था—हिन्दी-प्रचारकी स्कीम बनी थी। वर्तमान इन्दौर-नरेशने, जो उस समय छोटी अवस्थाके राजकुमार थे, अपने पूज्य पिता महाराज श्री तुकोजी रावकी अनुपस्थितिमें उनके प्रतिनिधि स्वरूप सम्मेलनका उद्घाटन किया था और राज्यकी ओरसे अच्छी रकम देकर सम्मेलनके साथ क्रियात्मक सहानुभूतिका उत्साहजनक परिचय दिया था। उसी समयसे आपको राष्ट्र-भाषाके साथ सच्ची सहानुभूति है। उस दिन राज्याधिकार-प्राप्तिके महोत्सवमें प्रजापक्षके अभिनन्दनोंका उत्तर आपने विशुद्ध हिन्दीमें दिया था। आपको हिन्दी-भाषासे अनुराग ही नहीं, अच्छा परिचय भी है। सौभाग्यसे आपके कई उच्च अधिकारी भी हिन्दीके परम हितैषी और सहायक हैं। प्रधान मन्त्री श्रीयुत बापना साहब, श्रीमान् सरदार कीबे साहब, श्रीमान् डाक्टर सरजूप्रसादजी, श्रीमान् लाला भाटूलालजी प्रभृतिके शुभ उद्योग और राज्यकी सहायतासे मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समितिका भव्य भवन (जो पचास हज़ारकी लागतसे अभी बनकर तय्यार हुआ है और जिसका उद्घाटन-समारोह धूम-धामसे जुलाईमें श्रीमन्त होलकर नरेशके कर-कमलोंसे होनेवाला है) इन सज्जनोंकी हिन्दी-हितैषिताका पक्का प्रमाण है।

समितिकी ओरसे इन्दौर राज्यमें हिन्दी-प्रचारका प्रयत्न हो रहा है। समितिके प्रकाशन-विभागको राज्यसे अच्छी

सहायता मिलती है। समितिका अपना प्रेस है, मासिक पत्रिका (वीणा), पुस्तकालय और वाचनालय है। एक अच्छी संस्थाके पास जितने साधन होने चाहिए, प्राय: सब हैं। फिर भी सत्साहित्यके निर्माण और प्रचारकी आवश्यकताको अनुभव करते हुए अभी दिल्ली दूर ही दीखती है। काम बहुत है और लगनसे काम करनेवालोंकी बहुत कमी है। मध्य-भारत हिन्दी-प्रचारके लिए अत्यन्त विस्तृत, उत्तम और उपजाऊ क्षेत्र है। मध्य-भारतमें बड़ी-छोटी पचास रियासतें और ठिकाने हैं, जिनमें हिन्दीका प्रवेश और प्रचार है। इन्दौरको केन्द्र बनाकर यदि अच्छे ढंगसे, सच्ची लगनसे काम किया जाय, तो आशातीत सफलता मिल सकती है। इन्दौर राज्य हिन्दीके लिए ऐसा ही उपयोगी और सहायक सिद्ध हो सकता है, जैसा उर्दूके लिए निज़ाम राज्य है। उर्दू-साहित्यकी वृद्धिके लिए जितना ठोस काम अकेले निज़ाम राज्यने किया है, उतना भारत-भरके समस्त हिन्दू-राज्यों और सारी हिन्दी-संस्थाओंने नहीं किया, बल्कि सच कहा जाय, तो इसके मुक़ाबलेमें कुछ भी नहीं किया।

इसमें हिन्दू-राज्योंका इतना दोष नहीं, जितना हिन्दी-वालोंका है। उर्दूवाले चुपचाप और संगठनके साथ अपना काम करते हैं, अपने अधिकारसे बाहरकी फालतू बातोंमें टाँग नहीं अड़ाते फिरते। इधर हमारे हिन्दी-हितैषी सज्जन,—सब नहीं तो अधिकांश—और प्रभावशाली नेता, हिन्दीके साथ ही बल्कि उससे भी पहले, साम्यवादका स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं, और देशी राज्योंमें हिन्दी-प्रचारके मार्गमें सबसे प्रबल बाधा यही है। यदि साहित्यिक संस्थाएँ अपने अधिकारकी सीमाके अन्दर ही काम करें, हिन्दीके साथ ही साम्यवादका झंडा गाड़ना न चाहें, तो देशी हिन्दू राज्योंमें हिन्दीको वही स्थान प्राप्त हो जाय, जो निज़ाम राज्यमें या भूपाल और रामपुर आदि मुसलिम रियासतोंमें उर्दूको प्राप्त है। उर्दू-भाषाकी इतनी उन्नति मुसलमान शासकोंकी बदौलत ही हो सकी है। हिन्दीकी उन्नति भी कभी होगी, तो इसी प्रकार हिन्दू राज्योंकी सहायतासे ही होगी। महात्मा गान्धीने इन्दौर-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर अपने भाषणमें यही बात सुझाई थी। उन्होंने कहा था—

"भाषाकी सेवा जैसी हमारे राजा-महाराजा लोग कर सकते हैं, वैसी अंग्रेज़ सरकार नहीं कर सकती। महाराजा होलकरकी कौन्सिलमें, कचहरीमें और हरएक कामोंमें हिन्दीका तथा प्रान्तीय बोलीका ही प्रयोग होना चाहिए। उनके उत्तेजनसे भाषा बहुत ही बढ़ सकती है। इस राज्यकी पाठशालाओंमें शुरूसे आखिर तक सब तालीम मादरी ज़बानमें देनेका प्रयोग होना चाहिए। हमारे राजा-महाराजाओंसे भाषाकी बड़ी भारी सेवा हो सकती है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि होलकर महाराज और उनके अधिकारीवर्ग इस महान् कार्यको उत्साहसे उठा लेंगे।

"ऐसे सम्मेलनसे ही हमारा सब कार्य सफल होगा, ऐसी समझ भ्रम ही है। जब हम प्रतिदिन इसी कार्यकी धुनमें लगे रहेंगे, तब ही इस कार्यकी सिद्धि हो सकेगी। सैकड़ों स्वार्थत्यागी विद्वान् जब इस कार्यको अपनावेंगे, तब ही सिद्धि सम्भव है।"

यह देखकर हर्ष होता है कि महात्माजीने महाराज होलकरसे जो आशा की थी, वह अधिकांशमें सफल हुई है। होलकर राज्यमें हिन्दीका यथेष्ट प्रचार हुआ है और उल्लेखनीय प्रोत्साहन मिला है। यहाँ दफ्तरोंके अलावा स्कूलों और कालेजोंमें भी हिन्दीको स्थान मिला है। बी० ए० में हिन्दी है और अब एम० ए० में भी हिन्दी दाखिल हो जायगी, पर इतने ही से काम न चलेगा। महात्माजीके शब्दोंमें "सैकड़ों स्वार्थत्यागी विद्वान् जब इस कार्यको अपनावेंगे, तब ही सिद्धि सम्भव है।"

'वीणा'

ढाकेका उपद्रव

[लेखक :—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय]

ब्रिटेनकी शान्ति

भारत प्रवासी और ब्रिटेनवासी अंग्रेज़ तथा उनके पाश्चात्य मित्रगण कहा करते हैं कि ब्रिटेनने भारतमें शान्ति स्थापित की है। यह इस अर्थमें सत्य हो सकता है कि गदरके बाद भारतमें फिर कोई वैसा बड़ा युद्ध नहीं हुआ; परन्तु इस ब्रिटिश शान्तिका अर्थ यह नहीं है कि देशमें दंगा-हंगामें, लूट-खसोट और रक्तपात नहीं होता। यह सब तो बराबर हुआ ही करता है। क्रमश: ऐसी घटनाओंकी संख्या, व्यापकता और भीषणता बढ़ती ही जाती है। गान्धीजीका अहिंसात्मक सत्याग्रह इसका कारण नहीं है। असहयोग-आन्दोलनके पहले भी ऐसी घटनाएँ हुआ करती थीं। अब हो रही हैं खासकर लाठी तथा अन्य अस्त्रों द्वारा स्वराज्य-आन्दोलनको रोकनेमें।

जो ब्रिटेनकी शान्तिकी प्रशंसा करते है, वे आधुनिक दंगा-हंगामे, लूट-खसोट और रक्तपात आदिका उल्लेख करके कहा करते हैं कि अंग्रेज़ोंके चले जानेसे भारतकी जैसी अवस्था होगी, यह उसीका नमूना है। परन्तु यहीं युक्तिमें भूल है। घटनाएँ हो रहीं हैं अंग्रेज़ी राज्यमें, अंग्रेज़ोंके पूर्णप्रतापशाली रहते हुए। अतएव अंग्रेज़ोंके चले जानेपर क्या होगा, उसके नमूने इन सब घटनाओंसे नहीं मिल सकते। अंग्रेज़ी राज्यमें क्या होता और हो सकता है, ब्रिटिश शान्तिकी सीमा कहाँ तक है, शान्ति-रक्षाकी शक्ति या इच्छा ब्रिटिश साम्राज्यमें कितनी है, इन सब बातोंसे उसीका परिचय मिलता है। पहले अंग्रेज बिलकुल अलग हो जायँ, उसके बाद जो कुछ होगा, उससे अंग्रेज़ोंके बिना भारतकी अवस्थाकी ठीक-ठीक धारणा हो सकती है। अंग्रेज-हीन भारतवर्षकी अवस्था अबसे अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी, अथवा ऐसी ही बनी रह सकती है; मगर वर्तमान अवस्थासे उसके सम्बन्धमें ऐसा अनुमान नहीं किया जा सकता कि अंग्रेज़ोंके चले जानेके बाद अवस्था और भी खराब हो ही जायगी।

ब्रिटिश शान्तिके भक्तोंका कहना है कि अंग्रेज़ोंके चले जानेसे हिन्दुस्तानकी हालत कैसी होगी, इस बातका अन्दाज़ा हिन्दू-मुसलमानोंके दंगे-हंगामेसे लगाया जा सकता है। यह अनुमान भी ठीक नहीं है। अंग्रेज़ोंके रहते हुए जो हो रहा है, वह, अंग्रेज़ोंकी अनुपस्थितिमें क्या होगा, इस बातका नमूना नहीं हो सकता।

ढाकेमें मुसलमान

जो लोग शताब्दियोंसे पड़ोसीके तौरपर बसते आये हैं और भविष्यमें भी बसते रहेंगे, जिनमें अकपट मित्रताके दृष्टान्तोंका अभाव नहीं है, जो परस्पर एक दूसरेसे उपकृत हुए हैं और होंगे, एक शताब्दी पहले जिनके सम्बन्धमें डा० टेलरने अपनी 'टॉपग्राफी-आफ्-ढाका' नामक पुस्तकमें लिखा है—

"Raligious quarrels between the Hindus and Mahomedans are of rare occurrence. These two classes live in perfect peace and con cord, and a majority of the individnals belonging to them have even overcome their prejudices so for as to smoke from the same *hookah*."—(Dr. Taylor's The Topography of Dacca, ch. ix, p. 257.)

उनमें अन्तर्युद्धकी कल्पना करना भी अफ़सोस और शर्मकी बात है। परन्तु इस वर्ष कुछ ही महीनोंके अन्दर जो बात बार-बार हो रही है, उससे मजबूर होकर इस सम्बन्धमें आलोचना करनी पड़ती है। अप्रीतिकर होनेके कारण किसी भी विषयका सामना करनेसे विमुख होना उचित नहीं है।

पूर्व बंगालके सभी ज़िलोंमें हिन्दुओंकी अपेक्षा

मुसलमानोंकी संख्या अधिक है, परन्तु ढाका शहरमें मुसलमानोंकी अपेक्षा हिन्दुओंकी संख्या ज़्यादा है। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार ढाकेकी कुल जनसंख्या १,१९,४५० है। जिनमें ६९,१४५ हिन्दू हैं और ४९,३२५ मुसलमान। अख़बारोंमें ऐसा समाचार निकला था कि कुछ थोड़ीसी मुसलमान स्त्रियाँ भी पिछले महीनेकी इस शोचनीय लूटमें शामिल हुई थीं; परन्तु साधारणतः पुरुष ही मार-पीट और लूट-खसोट आदि करते हैं। इसलिए यहाँ उल्लेख करना ज़रूरी है कि ढाकेमें पुरुष हिन्दुओंकी सख्या ४०,३२६ और पुरुष मुसलमानोंकी सख्या २६,५१० है। इसलिए यदि ढाकेका मामला वास्तविक हिन्दू-समष्टिके साथ मुसलमान-समष्टिका युद्ध होता (वास्तवमें यह बात नहीं है) तो मुख्यतः हिन्दू ही मारे-पीटे और लूटे न जाते। इसका सबब बतलाते हैं। युद्धमें पराजय अनेक कारणोंसे होती है। अल्प सख्यावालोंकी हार हो सकती है। अर्थबल और शिक्षामें जो हीन हैं, उनकी हार हो सकती है। जिनमें एकता और संगठन कम है, उनकी हार हो सकती है। जिनमें साहस कम है, उनकी हार हो सकती है। जो अस्त्र व्यवहारमें कम अभ्यस्त हैं, उनकी हार हो सकती है। जो प्राणी-हिंसामें कम अभ्यस्त हैं, उनकी पराजय हो सकती है। ऐसे नाना कारणोंके अस्तित्व-नास्तित्व और न्यूनता-अधिकतासे जय-पराजय हो सकती है।

ढाका शहरमें मुसलमानोंकी अपेक्षा हिन्दू अधिक हैं, इसलिए संख्याके लिहाज़से हिन्दू पराजित नहीं हो सकते। हाँ, यह हो सकता है कि वास्तविक युद्ध होनेपर शहरके बाहरसे मुसलमान आकर मुसलमानोंकी संख्या बढ़ा सकते थे, अथवा पश्चिम-बंगाल या बंगालके बाहरसे हिन्दू आकर हिन्दुओंकी और भी संख्या बढ़ा सकते थे; परन्तु हिन्दू-मुसलमानोंका युद्ध नहीं हुआ—कभी भी ऐसा न हो—और हम यहाँ केवल ढाका शहरकी ही बात कर रहे हैं। हिन्दू अर्थबल और शिक्षामें मुसलमानोंकी अपेक्षा अच्छे हैं, इसलिए इस हिसाबसे भी उनकी हारकी कोई वजह नहीं। एकता और संगठन हिन्दुओंमें कम है। जाति-भेद इसका एक कारण है। हिन्दुओंकी एकता और संगठन कम होनेसे वे सताये जाते हैं। पूर्व-बंगालके हिन्दुओंमें—ढाकेके हिन्दुओंमें—साहस नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। राजनैतिक कारणोंसे हिन्दुओंको सज़ा ज़्यादा मिलती है; इससे हिन्दुओंको और दोष जो जितना देना चाहें, दे सकते हैं, लेकिन उससे उनके साहसके अभाव या कमी साबित नहीं हो सकती; बल्कि इससे विपरीत ही प्रमाण मिलता है। ढाकेके दंगेमें किसी-किसी मुहल्लेमें (सर्वत्र नहीं) हिन्दुओं-द्वारा साहसके साथ आत्म-रक्षा की जानेसे और उनकी आत्म-रक्षाकी कोशिशमें पुलिसकी किसी कार्रवाईसे व्याघात न आनेसे, वे मुहल्ले मुसलमानों-द्वारा नहीं लूटे गये,—कम-से-कम कुछ समयके लिए तो नहीं लुटे, ऐसे समाचार अख़बारोंमें पढ़े हैं। एक ख़ाली आवाज़के होते ही मुसलमान भाग गये हैं, कम-से-कम उस समय तो भाग ही गये हैं, ऐसे समाचार भी अख़बारोंमें छपे हैं। ऐसी घटना भी हुई है कि आक्रान्त केवल एक ही हिन्दूके जूता खोलकर जोशके साथ खड़े हो जानेपर आततायी मुसलमान आक्रमण करनेसे रुक गये हैं। हिन्दू बालिका और हिन्दू युवकोंके साहसके बहुतसे प्रमाण भी हैं।

शिक्षित हिन्दू-युवक अस्त्र-व्यवहारमें शिक्षित मुसलमानोंकी अपेक्षा कम दक्ष नहीं हैं, शायद ज़्यादा ही होंगे; इस विषयमें दोनों सम्प्रदायोंकी अशिक्षित श्रेणीके प्रभेदकी बात नहीं कह सकते।

जीव-हिंसामें कम अभ्यस्त होनेसे आदमीको मारनेमें कम हाथ उठता है, परन्तु किसी महान् लक्ष्यको सामने रखकर काम करनेसे जीव-हिंसामें अनभ्यस्त लोगोंका भी साहस ख़ूब बढ़ जाता है। गुजरातके जो लोग महात्माजी द्वारा उत्साहित होकर अहिंसात्मक विद्रोह कर रहे हैं, वे मुख्यतः लिखने-पढ़नेवाले मसिजीवी और व्यापारी श्रेणीके आदमी हैं और प्राणी-हिंसामें अभ्यस्त नहीं हैं। फिर भी



नवाबगंज-ढाकाके एक मोदीकी दुकान

सरदारोंमें राजमिस्त्री, दरजी, मिस्त्री, आढ़तिये, चमड़ेवाले, कसाई इत्यादि भी हैं। ये सब ढाकेके नवाबके अधीन और अनुगत होकर काम करते हैं और इनका हुक्म मुहल्लेके सब लोग माननेके लिए बाध्य हैं। जो नहीं मानेगा, उसका हुक्का बन्द, गलेमें जूतेकी माला इत्यादि सज़ा हो सकती है। हिन्दुओंमें ऐसा कोई संगठन नहीं। होनेमें एक बाधा है—जाति-भेद। किस मुहल्लेमें किसे सरदार बनायेंगे? शिक्षा या धन-शालिताके अनुसार या जातिपर विचार करके?

वे जैसे साहसके साथ घातक चोटोंका सामना कर रहे हैं और चोट सह रहे हैं, वह असाधारण और संसारके इतिहासमें अद्भुत है। प्राणी-हिंसामें अभ्यस्त बिना हुए ख़ून देखनेका अभ्यास नहीं होता, यह सच है, परन्तु भारतीय सेनामें निरामिष-भोजी जातियोंके सैनिक भी बहुत अच्छे योद्धा होते हैं और आधुनिक युद्ध तो अधिकतर दूरसे आग्नेय अस्त्र द्वारा होता है, उसमें हाल-की-हाल ख़ून नहीं दिखाई देता, अतएव प्राणी-हिंसामें अनभ्यास युद्धमें पराजयका एक कारण नहीं भी हो सकता है।

हमारे विचारसे हिन्दुओंके निग्रहका एक प्रधान कारण है उनका अनैक्य और अ-संगठन। जाति-भेद और उसका सबसे बुरा फल अस्पृश्यता और रोटी-बेटीका सम्बन्ध न होना भी इसका एक कारण है।

ढाकेके हिन्दू और मुसलमानोंके अन्दर ही एक प्रभेद देखिये। ढाकेके मुसलमानोंका एक संगठन (Organization) है, जिसका नाम है 'बाईस पंचायत'। ढाका शहर बाईस मुहल्लोंमें विभक्त है, प्रत्येक मुहल्लेका धनाढ्य और प्रभावशाली मुसलमान उस मुहल्लेका सरदार या पंच है। उन सब मुहल्लोंका

इन सब बाधाओंकी पर्वाह न करके भी भारतके सब प्रदेशोंमें राजनैतिक कर्मठताके अनुसार दलोंके सरदार हिन्दुओंमेंसे नाना जातिके लोग बनाये जाते हैं, यह माना, मगर उसमें भी प्रत्येक शहर और ग्रामको ढाकेके मुसलमानोंकी तरह संगठित रखनेकी कोशिशमें सम्भवतः पुलिस बाधा देगी। कारण, मुसलमानोंका ऐसा संगठन देशमें स्वराज-स्थापनाके उद्योगमें साक्षात् वा परोक्ष-भावसे प्रयुक्त नहीं होता, हिन्दुओंका हो सकता है। फिर भी, आत्म-रक्षा और आत्मोन्नतिके लिए हिन्दुओंको संगठित होना होगा।

हिन्दुओंके निगृहीत होनेका एक गूढ़ कारण उनका अपनी हीनतापर विश्वास भी है, जिसको कि 'Inferiority complex' कहना चाहिए।

पहले तो सभी जातिके बहुतसे हिन्दू समझते हैं कि वे राजनैतिक दृष्टिसे बार-बार पराजित एकमात्र हीनजाति हैं। अगर यह सत्य भी होता, तो भी जीवित हिन्दुओंके लिए गर्दन झुकाकर रहनेकी इसमें कोई बात न थी। इटालीपर चौदह सौ वर्ष तक बार-बार आक्रमण हुआ और वह पराधीन बना था, अब वह स्वाधीन और प्रतापशाली है।



नन्दी-परिवार। इनके मकानके १०० गजके भीतर पुलिसके डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० कादिरीका मकान है

'हमारे यहाँ तो इसकी मनाई है, उसकी मनाई है' आदि दकियानूसी बातें लगी हुई हैं। इसलिए हिन्दू तेजस्वी भी कैसे हो सकते हैं ? इन सब बाधाओंके रहते हुए भी जो बहुतसे हिन्दू तेजस्वी होते हैं, वह इस वजहसे कि मनुष्यका मनुष्यत्व और उसकी तेजस्विता इतनी अधिक प्रकृतिगत है कि वह बिलकुल नष्ट नहीं हो सकती।

ढाकेका दानवीय काण्ड

कुछ भी हो, हमारे कहनेका यह उद्देश्य नहीं है कि ढाकेके दानवीय कायडमें सब या अधिकांश हिन्दुओंने साहस दिखाया है। और यह भी सत्य नहीं कि सबोंने भीरुता दिखलाई है। बहुतोंने बड़े साहसके साथ काम किया है। जो लोग साहसका परिचय नहीं दे सके हैं, वे स्वभावत: भीरु हैं, ऐसा कहना दो कारणोंसे उचित नहीं है। पहले

इंग्लैंड भी बहुत बार आक्रान्त, पराजित और पराधीन हुआ है। और भी बहुतसे दृष्टान्त मौजूद हैं। अंग्रेज़ोंके लिखे हुए इतिहासोंने यह भ्रान्त धारणा पैदा कर दी है कि भारतीय हिन्दू ही सबसे ज़्यादा डरपोक और बार-बार पराजित जाति है। यह सत्य नहीं है।

पूर्व बंगालके मुसलमान भी अधिकांश हिन्दुओंके वंशधर हैं, जेता आगन्तुक मुसलमानोंके वंशधर नहीं। हमारे निर्जीव और सदा संकुचित होनेका एक कारण कोई कोई पारिवारिक और सामाजिक प्रथा भी है। जिनको भद्रश्रेणीके हिन्दू कहा जाता है, वे संख्यामें कितने हैं ? संख्यामें तो और हिन्दू ही अधिक हैं। फिर भी, रूपक भाषामें कहा जाय तो, कहना होगा कि ब्राह्मण या अन्य उच्च जातिके लोग औरोंकी गरदन या सिरपर पैर रखे बैठे हैं। उसपर भीतर परिवारमें हमेशा



कायथटोलीके "सुशीला-निवास" का जला हुआ विध्वस्त भाग। इसके मालिक हैं बरीसालके पुलिस-सब-इन्सपेक्टर। इस मकानके सामने डा० शम्सुद्दीन अहमद और पास ही डिप्टी मजिस्ट्रेट मि० गियासुद्दीन सफदर रहते हैं।



"सुशीला-निवास" का अपेक्षाकृत कम क्षतिग्रस्त भाग

तो विपत्तिके क्षेत्रसे दूर रहकर किसीको भी भीरु कहना एक तरहकी कायरता है। दूसरे, साहसी कहलानेवाले स्वाधीन जातिके लोग भी बहुधा ढाका-निवासी हिन्दुओंकी हालतमें पड़कर आतंकग्रस्त और भीरुके समान काम कर बैठते हैं। भगवान् करें ढाकेमें जैसी आपत्ति आई है, फिर ऐसी न आवे; परन्तु यदि फिर आवे, तो ढाकेके हिन्दू उसके लिए तैयार रहें और अधिकतर मनुष्यत्व दिखानेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हों। लुट जाना, लांछित होना, मारे जाना या घायल होना पराजय नहीं है, अपनेको असहाय समझकर भयसे मनुष्यत्वको तिलांजलि देना ही पराजय है।

ढाकेमें जिन-जिन हिन्दुओंने मुसलमानोंके थोड़ेसे घर-द्वार जला दिये हैं, या मुसलमानोंपर कंकड़-पत्थर फेंके हैं, अथवा असावधान अवस्थामें किसी मुसलमानको छुरा मारा है, हम उनके ऐसे गर्हित कार्यकी तीव्र निन्दा करते हैं। यद्यपि हमें यह नहीं मालूम कि ऐसे दोष कितनी तादादमें हुए हैं। अखबारोंमें बहुत कम ही प्रकाशित हुए हैं। आत्म-रक्षाके लिए ऐसे कार्योंकी जरूरत नहीं होती। आत्म-रक्षाके सिवा अन्य किसी कारणसे बल-प्रयोग अवैध है। बड़ा गुस्सा आया था, बड़ी उत्तेजना हुई थी, प्रतिहिंसाका भाव पैदा हो गया था—ऐसे कोई भी उज्र नहीं सुने जाने चाहिए।

ढाकेके मुसलमानोंके सम्बन्धमें हमें जो कहना है, कहते हैं। ढाकेके सभी मुसलमान खून खराबी, लूट और घर जलानेमें शामिल नहीं हुए इसलिए सबको दोष नहीं दिया जा सकता। अखबारोंमें देखा है कि कोई एक उच्च पदाधिकारी मुसलमान सज्जन इस उपद्रवमें बाधा पहुँचा सके थे। ऐसी कोशिश और भी किसी-किसी मुसलमानने की होगी तो वे प्रशंसाके पात्र हैं। सम्भव है, ऐसी सदिच्छा औरोंकी भी रही हो, परन्तु उन्होंने कार्यतः कुछ नहीं किया या नहीं कर सके। जितने भी घर-द्वार और दूकानें लूटी और जलाई गई हैं, उनमेंसे बहुतोंके आसपास कई एक पदाधिकारी और प्रतिष्ठित मुसलमान रहते हैं, वे उपद्रवको रोक नहीं सके या रोका नहीं। कायथटोली मुहल्लेको बहुत हानि पहुँची है। वहाँ भी ऐसे मुसलमान रहते थे। इन सब भद्रश्रेणीके मुसलमानोंका यदि कोई पक्ष समर्थन करना चाहे, तो बस इतना ही कह सकते हैं कि निम्नश्रेणीके मुसलमानोंपर उनका कुछ प्रभाव न होनेके कारण वे अच्छी कुछ भी कोशिश नहीं कर सके। हिन्दू-समाजमें निम्नश्रेणीके लोगोंपर शिक्षित और भद्रश्रेणीके लोगोंका जितना प्रभाव है, मुसलमान-समाजमें निम्नश्रेणीके लोगोंपर भद्र और शिक्षित मुसलमानोंका उतना प्रभाव है या नहीं, मालूम नहीं; शायद नहीं है। हमारे पास आये हुए पत्रांशोंमें लिखा है कि बहुतसे हिन्दू मुसलमानोंको रिश्वत देकर ढाकेमें रहने या भागनेमें समर्थ हुए हैं। एक हिन्दूने, जिनसे गुण्डोंने इस तरहकी रिश्वत माँगी थी, बहुत उच्च पदाधिकारी एक सरकारी मुसलमान कर्मचारीसे सहायता माँगी थी, जिसपर उस कर्मचारीने कहा था—"जो माँगते हों, दे दीजिए।" इन हिन्दू और



कायथटोलीका "माधवानन्द-धाम"। बाहरका चित्र। मालिक हैं श्रीयुक्त राधाकृष्ण गोस्वामी, सीनियर डिप्टी मजिस्ट्रेट ढाका।

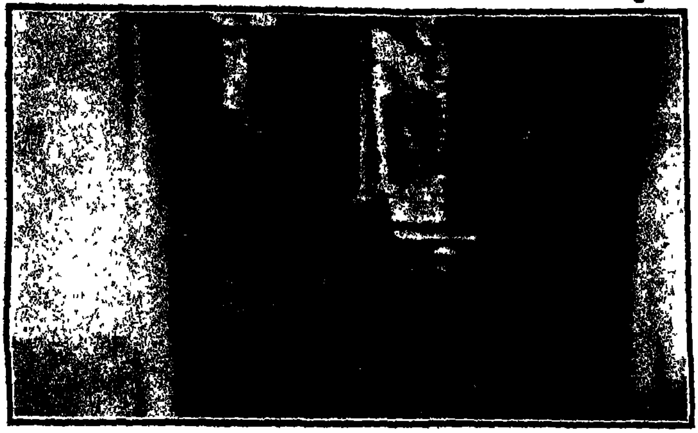
मुसलमानकी न होगी। यह उत्तेजक गुप्तचरों या लूट-खसोट चाहनेवाले गुंडोंका काम हो सकता है—जिनका कोई धर्म नहीं। दो-चार हिन्दुओंके ढेले फेंकनेपर ऐसी कल्पना कर लेनेकी कोई वजह नहीं कि सारे शहरके हिन्दू उसमें शामिल थे; लिहाज़ा बिना सोचे-समझे चाहे जिसको हत्या करने और चाहे जिसका घर-द्वार लूटने-जलानेकी कोई वजह नहीं थी। सभ्य समाजकी रीति और नियम यह है कि केवल-मात्र एक दोषीको दण्ड मिले; इसके अलावा दूसरी रीति बर्बरताका लक्षण है। लूट-खसोट, घर-द्वार जलाना और खूनखराबी इन सब बातोंका किसी प्रकार भी समर्थन नहीं हो सकता कभी सफाई नहीं हो सकती। जो गुंडे ये सब काम करते हैं, बाहरसे चाहे वे किसी भी धर्म-सम्प्रदायके क्यों न हों—हिन्दू-मुसलमान, ईसाई या अन्य किसी भी नामसे परिचित हों—पर उनका कोई धर्म नहीं।

मुसलमानके तथा रिश्वत देनेवाले और भी कितनों ही के नाम हमारे पास भेजे गये हैं, परन्तु यह न मालूम होनेके कारण कि सबूत है या नहीं, नाम नहीं छापे गये।

सम्भवत: मुसलमानोंकी तरफ़से सफ़ाई देनेके लिए मुसलिम अख़बारमें लिखा गया था कि एक मुसलमान हिन्दू द्वारा मारा गया था और जब उसकी लाशका जुलूस निकाला गया तो हिन्दुओंने उसपर ढेले मारे। इसपर मुसलमान उत्तेजित हो गये जिससे ढाकेमें दंगा वगैरह हो गया। इस विषयमें विचार करना चाहिए। वह मुसलमान किसी हिन्दू ही के द्वारा मारा गया था, इस बातका कोई प्रमाण नहीं, मुसलमान मुसलमानको नहीं मारता, ऐसा भी नहीं; और ऐसा हुआ भी हो, तो ढाकेके सब हिन्दू, या लुटे हुए मुहल्लोंके आबाल-वृद्ध-बनिता सब हिन्दुओंने उस मृत मुसलमानको मारा था या मारनेके षड्यन्त्रमें सब शामिल थे, ऐसी धारणा, आशा है कि शायद किसी भी



इन्दुप्रभा केबिनेट वर्क्स, दीवान-बाजार, ढाका
इस मकानके २०० गजके भीतर ढाका-यूनिवर्सिटीके मुसलमान रजिस्ट्रार, इस्लामिया ईन्टरमीडियेट-कालेजके मुसलमान प्रिन्सिपल, दो मुसलमान मजिस्ट्रेट और एक मुसलमान सब-जज रहते हैं



कायथटोलीका एक मकान
इसके मालिक पुलिसमें काम करते हैं

यदि बहुत विचार और छानबीनके बाद अदालतमें दण्ड न दिया जाकर उच्छृंखल जनता-द्वारा दण्ड दिया जाय, तो दोषी और निर्दोष अविचारित रूपसे दण्डित होते हैं, और दण्डकी कोई मात्रा नहीं रहती—वह बहुत अधिक ही होती है। मनुष्य-हत्या, कंकड़ फेंकना आदि वास्तविक दोष, अथवा पिकेटिंग तथा अन्यान्य ऐसे ही अपराध हिन्दुओंके ही मान लें, तो भी दंड देनेका भार उच्छृंखल जनताके हाथ न जाकर पुलिसके हाथमें रहता तो अंग्रेज़ी शासनके यशके लिए अधिकतर सुविधा होती। कारण, हिन्दुओंको दंड देनेका भार गुंडोंके हाथमें सौंपा जाना अभी तक कोई हस्तान्तरित विषय (transferred subject) नहीं हुआ है, और न उसका कोई भारप्राप्त मंत्री ही नियुक्त हुआ है।

× × ×

ढाकेके शान्तिरक्षक

गत महीनेमें लगभग एक पक्ष तक ढाकेकी जैसी अवस्था रही और जिसका फल अभी तक दिखाई दे रहा है, उस अवस्थाको कोई-कोई अराजकता बतलाते हैं। अराजकता शब्दका ठीक प्रयोग नहीं हुआ है। कारण, ढाकेमें गत महीनेमें अंग्रेज़ी राज्य मौजूद था और अब भी है, तथा उस समय भी राजशक्तिके परिचालक वहाँ मौजूद थे और अब भी हैं। अतएव ढाका अराजक नहीं हुआ था, बल्कि उससे भी अधम अवस्थामें पहुँच गया था। दुष्टोंका दमन, शिष्टोंका पालन और शान्तिकी रक्षा करना जिन सब सरकारी कर्मचारियोंका काम है, उनके द्वारा ही वह कर्तव्य पूरा नहीं किया गया है; राजकर्मचारी मौजूद थे, उनके द्वारा राजधर्मका पालन नहीं किया गया है। क्यों नहीं किया गया, इस बातका उत्तर प्राप्त करनेका हम देश-वासियोंको कोई अधिकार नहीं—क्षमता नहीं। राजधर्म क्यों नहीं पाला गया, यह बात सरकार नहीं जानती हो और जाननेकी ज़रूरत महसूस करे, तो सरकार अपने मंगलके लिए ढाकेका शासन और पुलिस-विभागके उच्चतम उच्चतर और उच्च-कर्मचारियोंसे जवाब तलब कर सकती है; ढाकेके हिन्दुओंने सरकारके सामने प्रतिकार-प्रार्थी होनेसे खुली सभामें अस्वीकार किया है; शायद वे ऐसा कुछ पूछना भी आवश्यक नहीं समझते।

अराजक अवस्था ज़रा भी वांछनीय नहीं, मगर वास्तविक अराजकतामें बुराईके साथ ग़नीमत यह होती है कि जिन-जिन स्थानोंमें अराजकता होती है, वहाँ-वहाँ लड़ते हुए दोनों पक्षोंमें अत्याचार पीड़ितोंमेंसे जिसमें जितनी आत्म-रक्षा करनेकी सामर्थ्य रहती है, वह उसके अनुसार कोशिश कर सकता है, तीसरा कोई पक्ष उसमें बाधा नहीं डालता; कमसे कम उन्हें सर्वस्वान्त होकर मौतका ग्रास बनते समय इतना तो सन्तोष होता है कि वे मनुष्यकी तरह मरनेकी कोशिश कर सके हैं। परन्तु ढाकेमें बहुत जगह हिन्दुओंको इस बातका अफ़सोस रह गया है कि वे आत्म-रक्षा कर सकते थे, कमसे कम उसकी कोशिश तो कर सकते थे, परन्तु तीसरे पक्ष पुलिसके द्वारा उनसे अस्त्र छिन जाने तथा कहीं-कहीं उन्हें गिरफ़्तार



"माधवानन्द-धाम"के भीतरका चित्र

किये जानेके कारण वे ऐसा नहीं कर सके। इसलिए ढाकेकी अवस्था अराजकताकी अपेक्षा भी निकृष्ट हो गई थी।

मुसलमानोंमें जो वीरधर्मी हैं, वे इस मामलेमें अपना कुछ गौरव अनुभव न करेंगे। कारण, शक्तिकी परीक्षा तो ऐसे नहीं होती। जो सिर्फ़ धनाढ्य बनना चाहते हैं, उनके लिए भी लूट-खसोट सबसे अच्छा तरीका नहीं है। इस तरहकी लूटसे सामाजिक आर्थिक अवस्थाकी उन्नति नहीं होती।

हिन्दुओंकी रक्षा करनेके लिए हमने राजधर्मका उल्लेख किया हो, सो बात नहीं। कारण, जो समाज अपनी रक्षा आप नहीं कर सकती, उसकी रक्षा कोई भी नहीं कर सकता। जिस देशमें जन-शक्ति प्रबल नहीं है, उस देशमें राष्ट्र-शक्ति या राज-शक्ति द्वारा नियमितरूपसे शान्ति-रक्षाका कार्य नहीं हो सकता, इसलिए इस देशमें भी ऐसा नहीं हो रहा है।

ढाकेमें राजधर्म पालन करनेकी आवश्यकता हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंको अधिक थी। जिनकी सम्पत्ति और प्राण गये हैं, जो घायल हुए हैं, उनमें हिन्दुओंकी संख्या बहुत अधिक है। हिन्दुओंकी लुटी हुई और जलाई गई सम्पत्ति हज़ारों गुनी ज्यादा है; परन्तु हिन्दुओंकी अपेक्षा बहुत अधिकसंख्यक मुसलमानोंकी असली क्षति यह हुई है कि उन्होंने कायरता, निष्ठुरता और दस्युताका मौका पाकर मनुष्यत्वको खो दिया है, धर्मच्युत और बर्बर-से हो गये हैं। अतएव जिनकी प्रेरणा, बढ़ावा और लापर्वाहीसे ढाकेमें यह दानवीय कांड हुआ है, उन्होंने हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंसे ही अधिक शत्रुता निभाई है, उन्हींका ज्यादा नुकसान किया है। हिन्दुओंका बल्कि यह उपकार हुआ है कि वे समझना चाहें तो अपनी अवस्था समझ सकते हैं और वास्तविक प्रतिकारका उपाय कर सकते हैं और उनमेंसे बहुतोंको प्रकृतिगत वीरता और मानव-प्रेमका परिचय



श्रीमती अनिन्द्यबाला नन्दी। ये आक्रमणकारी मुसलमानोंके हाथसे आत्मरक्षा करते हुए घायल हुई हैं।

देनेका मौक़ा मिला है। यह ठीक है कि शारीरिक और आर्थिक क्षतिको छोड़कर, जिन हिन्दुओंका साहस घटा और कायरता बढ़ी है, उनकी बड़ी ज़बर्दस्त हानि हुई है।

लूट-खसोट, ख़ूनखराबी और गृहदाहकी लहरें शहरको छोड़कर गाँवों तक पहुँच रही हैं, यह बहुत ही बुरे लक्षण हैं। हिन्दू-मुसलमान सभीको इस बातकी भरसक ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि जिससे यह लहर किसी भी तरह फैलने न पावे।

ढाकेके मामलेमें जाँच-कमेटी

ढाकेके मामलेकी जाँचके लिए एक कमेटी बननेका ज़िक्र हो रहा है। सफ़ाईके लिए की गई जाँचमें कुफल ही अधिक लगते हैं, परन्तु वास्तविक तथ्यका निर्णय करके भविष्यमें ऐसी दुर्घटना न हो—ऐसी इच्छासे जाँच हो, तो उसका अच्छा नतीजा निकल सकता है। ऐसी जाँचके फल-स्वरूप किसी-किसी दुष्टको सज़ा मिल सकती है, परन्तु मरे हुए लोग जी नहीं उठेंगे, आर्थिक क्षति-पूर्ति भी सम्भवत: सामान्य ही होगी। फिर भी सच्ची जाँच होनी चाहिए। सरकार क्या करेगी, मालूम नहीं, परन्तु ग़ैरसरकारी कोई जाँच-कमेटी नियुक्त हो तो उसे बदस्तूर प्रकाश्यमें गवाहियाँ लेकर उनपर ज़िरह करके सब गवाहियाँ और उसपर अपनी रिपोर्ट छापनी चाहिए। दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रोंमें जो-कुछ प्रकाशित हो रहा है, उससे इस मामलेकी एक स्थूल धारणा हो जाती है, परन्तु समस्त विषयोंका ठीक धारावाहिक तथ्य नहीं मालूम होता।

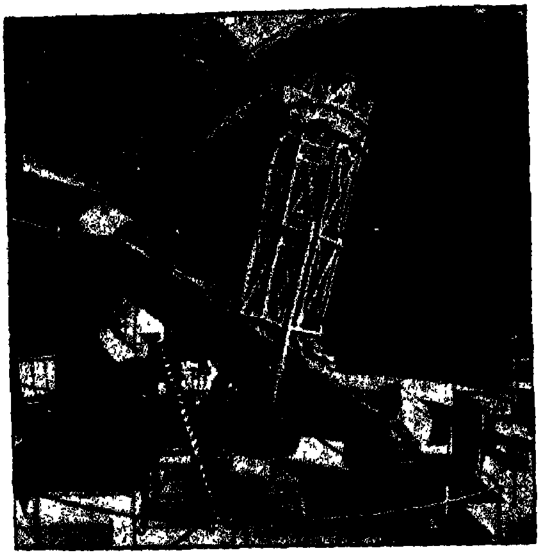
चित्र-संग्रह

ग्रह-तारागणकी खोजमें दूरबीनकी सहायता

गैलिलिओके समयसे लेकर आज तक हम दुनियाकी रचनाके विषयमें जो कुछ जान रहे हैं, उसमें मुख्य सहायता है दूरबीनकी। गैलिलिओकी दुरबीन ऐसी थी, जिसे हाथमें

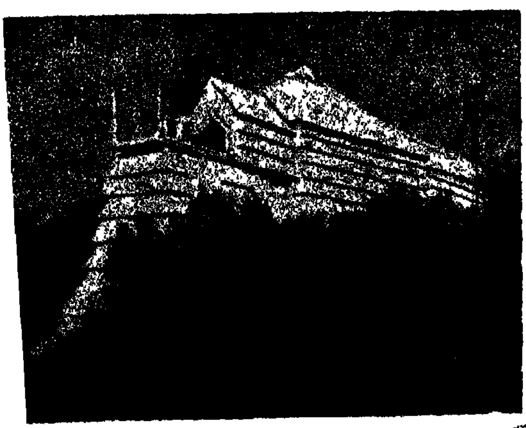


अमेरिकाके आरिजोना स्टेटके अन्तर्गत ग्रैण्ड-कैनियन (एक बड़ी नदी) के किनारे एक विराट मानमन्दिर बनानेका निश्चय हुआ है। इस चित्रमें उसकी कल्पना दिखाई गई है। इसमें जो दुरबीन होगी, उसकी नलीका व्यास होगा २०० इंच, जब कि वर्तमान युगकी बड़ीसे बड़ी दुरबीनकी नलीका व्यास १०० इंच है।



दुनियाकी बड़ीसे बड़ी माउन्ट-विलसन मानमन्दिरकी १०० इंच व्यासकी दुरबीन। इससे तारे और नीहारिकाकी तसवीर खींची जाती है।

उठाकर आसानीसे हिलाया-डुलाया जा सकता था, मगर अब तो दुरबीनको चलानेके लिए एलेक्ट्रिक मोटरकी ज़रूरत पड़ती है। इस ज़मानेकी बड़ीसे बड़ी दुरबीन अमेरिकाके माउन्ट-विलसन-मानमन्दिरमें है, जिसकी नलीका व्यास सौ इंच है। इसकी सहायतासे ही अब नीहारिका (आकाशमें फैला हुआ चोला प्रकाशपुंज) के विषयमें खोज करना आसान हो गया है। अमेरिकामें एक इससे भी बड़ी दुरबीन और मान-मन्दिर बनानेका विचार हो रहा है। अगर यह कोशिश कामयाब हो गई, तो मालूम होता है कि ब्रह्माकी इस दुनियाके और भी बहुत तरहके गुल खिल सकते हैं।



माउन्ट-विलसन मानमन्दिरका एक दृश्य

कृत्रिम उपायसे घंटोंमें फल पका लीजिए !



कृत्रिम उपायसे पकाई हुई नाशपातियां

अमेरिकाके कृषि-विभागके अनुसन्धान विभागने कृत्रिम उपायसे कुछ ही घंटोंमें फल पकानेकी नई तरकीब निकाली है। फलोंको 'एथेलिन' गैस-भरे बक्समें रख दिया जाता है। पेड़ोंपर जिन फलोंके पकनेमें कई सप्ताह लग जाते, इसमें वे घंटोंमें पक जाते हैं। इस गैससे फलोंका रंग उजला किया जा सकता है और मिठास भी बढ़ाई जा सकती है। ऊपरके चित्रमें कृत्रिम उपायसे पकी हुई कुछ नाशपातियां दिखाई गई हैं।

लन्दनकी निरस्त्रीकरण-सभा



[सामुद्रिकबलसे कौन-कौन देश किस-किस देशपर प्रभुत्व जमाना चाहता है, यह बात लन्दनकी सामुद्रिक-निरस्त्रीकरण-सभामें मालूम पड़ गई। इस कार्टूनमें यही दिखाया गया है।]

Izvestia, Moscow

लन्दन कानफ्रेन्सका फल



"यह तो पकड़ाई ही नहीं देता !"

[लन्दनकी निरस्त्रीकरण कानफ्रन्स टाँय-टाँय-फिस होकर रह गई। नतीजा कुछ भी न निकल सका]

Philadelphia Inquirer

सँपेरा



[ब्रिटिश अजगरने भारतवर्षको अपनी लपेटमें दबोच रखा है। क्या गांधीजी वंशी बजाकर इस अजगरको फुसला सकेंगे ? मास्कोका 'प्रावदा' पत्र यह शंका प्रकट करता है।] *Pravda*, Moscow

भारतवर्षका गोलमाल



जानबुल

"ऐसा होगा, यह मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था !"

[बारसीलोनाके एक पत्रके अनुसार भारतीय गोलमालने जानबुलकी क्या शक्ल बना दी है।]

Campana de Gracia, Barcelona

सम्पादकीय विचार

भारतकी भिन्न-भिन्न जातियोंमें सांस्कृतिक मेल

भारतमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि अनेक जातियाँ रहती हैं और भविष्यमें भी रहेंगी। शुद्धि संगठन तथा तबलीग-तञ्ज़ीमके चिरकाल तक जारी रहनेपर भी इस बातकी कोई सम्भावना नहीं है कि इनमें से कोई जाति बिलकुल नष्ट हो जावे। इन जातियोंके पारस्परिक वैमनस्यका प्रश्न भारतीय राजनीतिकी एक अत्यन्त कठिन पहेली है। जिन लोगोंका स्वार्थ हिन्दू-मुसलमानोंके लड़ानेमें ही है, वे कभी अपनी ओरसे ऐसा प्रयत्न करेंगे ही क्यों, जिससे इन दोनों जातियोंमें स्थायी एकता हो। इसके लिए तो हम लोगोंको ही उपाय सोचने होंगे। राजनैतिक दृष्टिसे किये हुए समझौते थोड़े दिनों तकके लिए इस मामलेको दबा सकते हैं, पर उनसे चिरस्थायी मेल नहीं हो सकता। इसके लिए दोनों जातियोंको अपने संकुचित दायरेसे आगे बढ़ना होगा। हम उन आदमियोंमें से नहीं हैं, जो साम्प्रदायिक दृष्टिसे विचार करते हैं। 'विशाल-भारत' ने आरम्भसे ही साम्प्रदायिकताका विरोध किया है, फिर भी हमें यह बात खेद-पूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि मुसलमानोंकी साधारण जनतामें अभी तक राष्ट्रीयताका भाव जाग्रत नहीं होने पाया। जब हम मुसलमानोंके बड़े-बड़े नेताओंकी यह मनोवृत्ति देखते हैं कि जो कुछ हिन्दुओंसे मिले सो हिन्दुओंसे लो और जो अंग्रेज़ोंसे मिले सो अंग्रेज़ोंसे, तब हमें निराश होना पड़ता है। सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुस्तानमें रहनेके बाद भी मुसलमानोंने भारतको मातृभूमिकी तरह प्रेम करना नहीं सीखा, और उनकी दृष्टि अब भी शस्यश्यामला भूमिसे दूर अरबके रेगिस्तानकी ओर ही लगी रही है। न तो उन्हें भारतके प्राचीन ऐतिहासिक गौरवका अभिमान है और न यहाँके तीर्थ स्थानोंसे प्रेम। यहाँके नदी, पर्वत उनके हृदयमें कोई भाव उत्पन्न नहीं करते, और भगवान राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर इत्यादिके प्रति उनके मनमें कोई श्रद्धा नहीं। इस देशमें रहते हुए भी उन्होंने अपनेको विदेशी ही बना रखा है। अनेक मुसलमान इस बातको कहते-कहते नहीं थकते कि कुछ दिनों पहले हम यहाँके शासक थे और इसी बूतेपर वे अपने लिए अन्यायपूर्वक अधिक अधिकार भी माँगते हैं। यदि इसी दृष्टिसे हिन्दू भी विचार करने लगें, तो जावा, सुमात्रा, बाली, लम्बक इत्यादि अनेको द्वीपोंपर वे अपना अधिकार बतला सकते हैं। यही नहीं, वे उन राज्योंपर भी जिनपर आज मुसलमान कब्ज़ा किये बैठे हैं, अपना स्वत्व प्रमाणित कर सकते हैं, पर गुज़रे हुए ज़मानेके स्वप्न देखना व्यर्थ है। यह बात किसी एक सम्प्रदायके लिए नहीं, बल्कि सभी सम्प्रदायोंके लिए कही जा सकती है।

मुसलमानोंके विषयमें जो कुछ हम लिख रहे हैं, वह वर्तमान मुसलमानोंको ही ध्यानमें रखकर लिख रहे हैं, क्योंकि इन्हींके साथ हमें रहना है। ऐतिहासिक मुसलमान सम्भवत: इनकी अपेक्षा कहीं अच्छे आदमी रहे होंगे, और शायद हिन्दुस्तानके आजकलके मुसलमान मुसलिम संस्कृतिके अयोग्य प्रतिनिधि हैं। हाँ, हम यह मानते हैं कि किसी सम्पूर्ण जातिको हम भला या बुरा नहीं कह सकते। पर इतनी बात निर्विवाद है कि मुसलमानोंमें जाहिल आदमियोंकी संख्या बहुत काफी है, जिनके लिए लूट-मार, खूनखराबी स्वाभाविक है, जिनमें सच्चरित्रता तथा सिद्धान्त-प्रेमका नामो-निशान नहीं और जिनकी भक्ति बाज़ारमें नोन-तेल-लकड़ीकी तरह मूल्य देकर खरीदी जा सकती है। जब मुसलमानोंके बड़े-बड़े नेता यह कहते हैं कि न तो हम हिन्दुओंके हैं और न अंग्रेज़ोंके, हमें तो दोनोंसे अपने लिए अधिकार लेने हैं, तो फिर जाहिल मुसलमानोंके दोषी होनेमें आश्चर्य ही क्या है? ढाका इत्यादि नगरोंकी दुर्घटनाओंके वृत्तान्त पढ़कर इस प्रकारके विचार मनमें आना स्वाभाविक है।

इस हिन्दुओंका भी दोष है। मुसलमानोंको अछूत समझकर उन्हें दुरदुरानेकी नीति भी कम निन्दनीय नहीं है। ऐसे कितने ही राष्ट्रवादी हिन्दू आपको मिलेंगे, जो मुसलमानोंको सिद्धान्ततः अछूत नहीं मानते, पर जो स्वास्थ्य तथा सफाईकी दृष्टिसे मुसलमानोंसे परहेज़ करते हैं। कुछ तो इनमें अवश्य ही बहाना करते हैं, क्योंकि सभी मुसलमान आचार-विचारकी दृष्टिसे 'गन्दे' नहीं कहे जा सकते। न सब हिन्दू ही स्वच्छता-प्रेमी हैं। इसके सिवा हिन्दुओंने मुसलिम संस्कृतिके अध्ययनके लिए गम्भीरता-पूर्वक प्रयत्न नहीं किया। प्राचीन तथा अर्वाचीन कालकी बात हम नहीं कहते, आजकलके ज़मानेमें जो कुछ हुआ है, बिलकुल उल्टी दिशामें हुआ है। साधारण हिन्दू हज़रत मुहम्मदको 'रंगीला रसूल' के रूपमें ही जानता है और मुसलिम संस्कृतिको भी वह उसी निम्नकोटिकी समझता है जिसके कि अधिकांश वर्तमान मुसलमान हैं। हम लोगोंने एक दूसरेकी बुराइयों तथा आपसके भेदोंकी ओर ही अधिक ध्यान दिया है, पर यदि हमें भविष्यमें शान्तिपूर्वक रहना है, तो इस नीतिको तिलांजलि देनी होगी। आपसमें मेल जोल पैदा करनेका कोई मौक़ा न छोड़ना चाहिए। यहाँ पर कुछ प्रस्ताव किये जाते हैं—

(१) हिन्दू-विश्वविद्यालय तथा मुसलिम यूनिवर्सिटीमें कुछ छात्रवृत्तियाँ तुलनात्मक धार्मिक अध्ययनके लिए रखी जायँ, और पहली संस्थामें मुसलिम छात्रोंको और दूसरी संस्थामें हिन्दू छात्रोंको इसके लिए अवसर प्रदान किये जायँ। जो अध्यापक इन विषयोंके पढ़ानेके लिए नियुक्त हों उनकी दृष्टि उदार होनी चाहिए।

(२) हिन्दुओंके प्राचीन गौरवसे परिचित मुसलमान लेखकोंसे और मुसलिम संस्कृतिको जाननेवाले हिन्दू लेखकोंसे अनुरोध किया जावे कि वे इन विषयोंपर निबन्ध तथा लेख लिखें।

(३) हिन्दी तथा उर्दू समाचार-पत्रोंके संचालकों तथा सम्पादकोंसे अनुरोध किया जावे कि वे मेल-जोलके पक्षमें लिखें और साम्प्रदायिक विद्वेषको बढ़नेसे रोकें।

(४) एक दूसरेके त्यौहारों तथा उत्सवोंमें सम्मिलित हों।

(५) साहित्यिक कार्योंमें—उदाहरणार्थ कवि-सम्मेलनों मुशायरोंमें सहयोग करें। साहित्यिक आदमी इस विषयमें जितना कार्य कर सकते हैं, उतना कोई राजनैतिक नेता नहीं कर सकता। मौलाना मुहम्मद अलीकी अपेक्षा सय्यद अमीर अली 'मीर' हिन्दू-मुसलमानोंकी सांस्कृतिक एकताके लिए अधिक उपयोगी हैं।

अभी कुछ दिन पहले हमने 'विश्वभारती' (शान्ति-निकेतन) में इस्लामिक संस्कृतिके अध्यापक* मि॰ जर्मेनससे, जो एक प्रतिष्ठित आस्ट्रियन विद्वान है, इस विषयमें पत्र व्यवहार किया था। उन्होंने अपने पत्रमें लिखा था—

"जो आशाएँ आप मेरे कार्यसे रखते हैं उनसे मैं अपनेको सम्मानित मानता हूँ, और उन ग़लतफ़हमियोंको जो आजकल फैली हुई हैं, दूर करनेके लिए मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। इन ग़लतफ़हमियोंने ही मनुष्य समाजको भिन्न-भिन्न जातियों, वर्णों तथा मतोंमें बाँट रखा है, वैसे समान ऐतिहासिक विकास, समान सीमा और समान जलवायुसे वे एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं। भारत सदासे ही एक देश माना जाता रहा है, पर आज वह परस्पर विरोधी आदर्शोंसे विभाजित एक महादेश प्रतीत होता है। यहाँ तक कि आदर्शोंकी इतनी भिन्नता यूरोपमें भी नहीं दीख पड़ती, जितनी भारतमें दीख पड़ती है। भारतको यह फ़ैसला करना है कि वह किस मार्गपर चलेगा, किस पथका पथिक होगा। एक मार्ग तो यह है कि भारत 'भारतके संयुक्त राज्य' का रूप धारण करे, जिसमें सब जातियोंको पूर्ण-स्वाधीनता हो अथवा अन्धविश्वास, घृणा तथा अज्ञानके वशीभूत होकर फूट द्वारा विभाजित तथा पराधीन दशामें रहे। पारस्परिक सदिच्छा तथा उदारता-पूर्ण विचारों द्वारा आश्चर्यजनक कार्य किये जा सकते हैं। आज भारतवर्ष ज़ंजीरोंसे बँधा हुआ है, पर इन ज़ंजीरोंको भारतीयोंने स्वयं

* निज़ाम हैदराबादकी उदारतासे शान्ति-निकेतनमें यह प्रबन्ध किया गया है।

ही मजाक उनसे बाँध लिया है। मैं असीम उत्साहके साथ उस भारतभूमिको आया हूँ, जहाँसे इतने अधिक उन्नत विचार मानव-समाजको प्राप्त हुए थे और जहाँकि ज्ञानसूर्यकी किरणें सम्पूर्ण संसारमें फैली थीं। मैं शान्ति-निकेतनमें इस्लामका इतिहास पढ़नेके लिए आया हूँ, और अपने उन्नतम रूपमें इस्लाम भी अन्य धर्मोंके इतिहासकी तरह शान्तिका मत है। अज्ञानता और पारस्परिक मनमुटाव ये हमारे सबसे भयंकर शत्रु हैं, और जो शक्ति आपसमें लड़नेमें खर्च की जाती है, वह इनके दूर करनेमें खर्च की जानी चाहिए।"

अध्यापक श्री जर्मेनसके विचार वास्तवमें ध्यान देने योग्य हैं। यह पारस्परिक मनमुटाव तभी मिट सकता है, जब हम एक दूसरेके गुणोंकी कद्र करें और दोष-दर्शन और छिद्रान्वेषणकी नीतिसे बाज़ आवें।

—

स्वर्गीय श्री राखालदास बन्दोपाध्याय

अभी उस दिन बाज़ारमें हमने दो पैसेका दैनिक 'बंगाली' पत्र समाचार जाननेके लिए खरीदा, तो उसमें अकस्मात सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान श्री राखालदास बनर्जीकी मृत्युकी खबर दीख पड़ी। वैसे तो वे बहुत दिनोंसे अस्वस्थ रहते थे, पर यह आशंका किसीको भी नहीं थी कि उनकी मृत्यु इतनी निकट है। पिछली बार जब वे हमारे कार्यालयमें आये थे, तो पं० पद्मसिंहजी शर्मासे उनसे परिचय करानेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। उनके मुख्य विषय इतिहास तथा पुरातत्त्वके बारेमें हमारा ज्ञान न-कुछके बराबर है, इसलिए उस विषयमें तो हम कुछ भी नहीं लिख सकते। हाँ, उनके व्यक्तित्वके विषयमें दो-एक बात अवश्य कह सकते हैं। श्री राखाल बाबूसे बातचीत करनेका सौभाग्य हमें कितनी ही बार प्राप्त हुआ था, और हम यह कह सकते हैं कि इतने मनोरंजक ढंगसे बातचीत करनेवाले विद्वान हमने बहुत कम देखे हैं। उन्हें कितने ही किस्से-कहानी याद थे और उनका उपयोग वे अपनी बातचीतमें बड़ी खूबीके साथ करते थे। वे बहुमूत्रकी बीमारीसे पीड़ित थे, पर अपनी बातचीतमें वे इतने हँसते और हँसाते थे कि उनसे बातचीत करनेवाला इस बातको भूल जाता था कि वह किसी बीमार आदमीसे वार्तालाप कर रहा है। चूँकि वे उत्तरी भारतमें खूब घूमे हुए थे और हिन्दुस्तानी भाषा बड़े अच्छे ढंगसे बोल सकते थे—हमने कोई दूसरा बंगाली इतनी साफ हिन्दुस्तानी भाषा बोलते नहीं सुना—इसलिए उनसे वार्तालाप करनेमें और आनन्द आता था। जब कभी हम उनसे मिलते, तब उनका सबसे प्रथम मजाक यही होता था—

"यह सारी बुराई आप लोगोंके निरामिष भोजी होनेसे है। बिना मांस खाये तरक्की हो ही नहीं सकती।" काशीसे भेजी हुई चिट्ठियोंमें भी वे यह मजाक लिखना न भूलते थे। जब एक बार हमने शिकायत की कि आपने लेख अब तक नहीं भेजा, तो उसके उत्तरमें आपने लिखा—"क्या करूँ? निरामिष-भोजियोंके साथ रहते-रहते अक्ल खराब हो गई है।" संयुक्त-प्रान्तके निवासियोंके चौके-चूल्हेके आडम्बरोंका भी वे अच्छा मजाक उड़ाते थे। 'सरयूपारी' ब्राह्मण और सारस्वत ब्राह्मण भी एक दूसरेके हाथकी रोटी क्यों नहीं खा सकते, यह बात खास प्रयत्न करनेपर भी उनकी समझमें न आती थी।

मजाक छोड़कर जब वे कभी गम्भीरता-पूर्वक बात करने लगते, तो प्रायः इस बातकी शिकायत करते थे कि भारतीय विद्यार्थी पुरातत्त्वकी ओर ध्यान नहीं देते। "मैं चाहता हूँ कि कुछ विद्यार्थियोंको थोड़ा-बहुत, जो कुछ मैं जानता हूँ, सिखा दूँ। नहीं तो, फिर यह पछतावा रह जायगा कि किसीको कुछ सिखा न सका।" यह बात कई बार उन्होंने कही थी। शायद यह पछतावा उनके हृदयमें अपने अन्तिम दिनोंमें भी रहा होगा। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीमान् पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाके प्रति उनके हृदयमें बड़ी श्रद्धा थी, और उन्होंने कई बार कहा भी था कि ओझाजीसे हम 'विशाल-भारत' के लिए पाँच-सात लेख लिखा देंगे। श्री राखाल बाबूको इस बातकी भी शिकायत रहती थी कि कोई ऐसा हिन्दी-भाषा-भाषी छात्र हमें नहीं मिलता, जिसे हम बोलकर हिन्दीमें लेख

लिखा सकें। बीमारीके कारण उनके हाथोंमें इतनी शक्ति नहीं रही थी कि वे स्वयं कुछ लिख सकते। ज़रूरत इस बातकी थी कि कोई श्रद्धालु हिन्दी-भाषा भाषी छात्र बराबर उनके साथ रहकर उनकी सेवा करते हुए उनके अनुभवों तथा ऐतिहासिक लेखोंको लिखता, पर अब ऐसे शिष्योंका प्रायः अभाव ही हो गया है, जो प्राचीन ढंगसे गुरुकी सेवा करते हुए कुछ सीखें। हाँ, कालेजके लेक्चरोंको 'एटेण्ड' करके गुरुके भी गुरु बननेकी चेष्टा करनेवाले विद्यार्थी बहुतसे पाये जाते हैं। अपने विषयके वे कितने बड़े आचार्य थे, इसका अन्दाज़ सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवालके निम्न-लिखित नोटसे लग सकता है :—

"खेद है कि भारतीय इतिहासका सबसे महान विद्वान् गत २३ मई सन् १९३० को एक लम्बी बीमारीके बाद संसारसे चल बसा। प्रोफेसर राखालदास बनर्जी बनारस-हिन्दू-यूनिवर्सिटीके नन्दी-प्रोफेसर थे। उन्होंने सिन्धकी घाटीकी सुप्राचीन सभ्यताका पता लगाकर आगामी सौ वर्षोंके लिए ऐतिहासिक खोजका एक नया मार्ग प्रकट कर दिया है। वे भारतीय मुद्राओं और भारतीय शिला तथा अन्य लेखोंके सबसे बड़े ज्ञाता थे। मेरी जानमें वे भारतीय इतिहासके सबसे बड़े भक्त थे। उन्हें मालूम हो गया था कि उनकी मृत्यु शीघ्र ही हो जायगी, अतः वे दुगनी शक्तिसे काम करते रहे। उन्हें इस बातकी आशा नहीं थी कि वे ४८ वर्षकी आयु तक पहुँचेंगे। ऐसा काम करनेवाला व्यक्ति शायद बहुत दिन तक न पैदा होगा। फ़र्स्ट क्लास योग्यता रखनेवाले दस व्यक्ति मिलकर शायद उतना काम कर सकें, या न भी कर सकें, जितना बनर्जी महोदय अकेले किया करते थे। वे बड़े प्रतिभाशाली और एक अलौकिक व्यक्ति थे।

उनकी मृत्युसे देशका सबसे बड़ा विद्वान और सबसे बड़ा पुरातत्त्ववेत्ता उठ गया। साथ ही उनके मित्रोंकी जो हानि हुई, वह भी किसी प्रकार कम नहीं है। स्वर्गीय बनर्जीका हृदय बड़ा प्रेमपूर्ण था।

हिन्दू यूनिवर्सिटीके वाइस-चान्सलर अत्यन्त धन्यवादके पात्र हैं कि उन्होंने ऐसे महान विद्वानको अपने यहाँ रखकर उन्हें अपने अन्तिम दिन तक सब प्रकारकी सुविधाएँ दीं।

एक बातका पछतावा हमें रह गया। अन्तिम बार जब हमने पं० पद्मसिंहजीके साथ उनके दर्शन किये थे, तो उस समय वे अत्यन्त निर्बल प्रतीत होते थे। उनसे बातचीत करनेके बाद जब हम चले, तो पं० पद्मसिंहजीने कहा—"इनके ऐतिहासिक अनुभव, संक्षेपमें ही सही, आप लिख डालिये, फिर मौक़ा मिले, न मिले।"

हम यह सोचते ही रहे कि राखाल बाबू तो यहाँ हैं ही, चाहे जब चलकर यह काम कर लेंगे। उनसे पाँच-सात बार दो-दो घंटेकी 'इंटरव्यू' लेकर यह काम संक्षेपमें हो सकता था। अपने नये मकानका पता भी उन्होंने हमें बतला दिया था, पर हम आजकलके विचारमें पड़े रहे और जब हमने ता० २३ मईके बंगालीमें उनके स्वर्गवासका दुःखद समाचार पढ़ा, तब हमें निम्नलिखित दोहेका अर्थ ठीक तरह समझमें आया—

काल्हि करै सो आज करि, आज करै सो अब।
पलमें परलै होइगी, बहुरि करैगो कब॥

कुल ४३ वर्षकी आयुमें राखाल बाबूकी मृत्यु भारतीय इतिहास-क्षेत्रके लिए सचमुच 'प्रलय' जैसी दुर्घटना है।

भारतीय स्त्रियोंमें जागृति

सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलनसे वर्तमान संग्रामकी तुलना करनेपर एक बात बड़े मार्केकी प्रतीत होती है, वह यह कि सन् १९२१ की अपेक्षा कहीं अधिक भारतीय महिलाएँ देशके कार्यमें भाग ले रही हैं। वर्तमान संग्रामकी नीतिसे चाहे कोई सहमत हो या न हो, पर इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि भारतीय स्त्री-समाजका देशके कार्योंमें इस प्रकार आगे बढ़कर भाग लेना वास्तवमें एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है। अभी उनका मुख्य कार्य शराबबन्दी तथा विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारके क्षेत्रोंमें ही हुआ है। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि विदेशी वस्त्रोंका जितना

प्रयोग स्त्रियों द्वारा नहीं होता है, उतना पुरुषों द्वारा नहीं होता; और जब वे ही विदेशी कपड़ा लेना बन्द कर देंगी, तो उसकी खपत आधेसे कम रह जायगी। आन्ध्र-विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर श्रीयुत सी० आर० रेड्डीने प्रोफेसर कर्वेकी महिला-विद्यापीठके दीक्षान्त-संस्कारोंके लिए जो भाषण * तैयार किया था, उसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

"भारतीय इतिहासमें और भारतीय महिलाओंके जीवनमें एक नवीन युगका प्रादुर्भाव हो रहा है। आजसे कुछ वर्षों पहले यदि कोई यह भविष्यवाणी कहता कि वर्तमान आन्दोलनमें भारतीय स्त्रियाँ वैसा वीरतापूर्ण भाग लेंगी जैसा कि वे आज ले रही हैं, तो लोग उसे पागल कहते। पुराने इतिहाससे जो परिणाम निकाले जा सकते हैं, उनके विपरीत महात्माजीने उस शक्तिको एकदम जाग्रत कर दिया है, जो भारतीय स्त्री-समाजमें सुप्तावस्थामें पड़ी हुई थी। सचमुच महात्माजीने एक आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया है। प्रतिभाशाली व्यक्ति इतिहासकी परम्पराका उल्लंघन करके अद्भुत कार्य कर दिखाते हैं और उनके किये हुए कार्य ऐतिहासिक परिणामोंको चकनाचूर करके नवीनता उपस्थित कर देते हैं। (महात्माजीके आन्दोलनने भारतीय स्त्री-समाजमें जो जागृति उत्पन्न की है, वह भी ऐसी ही नवीनता है।)………स्त्रियाँ समाजकी संरक्षिका हैं। यह हो ही नहीं सकता कि जो लोग भारतीय अधिकारोंके लिए युद्धमें सम्मिलित हों, उनके साथ आपकी सहानुभूति न हो। कोई भी सच्ची औरत सिपाहीके मुकाबलेमें राजनीतिज्ञको पसन्द नहीं कर सकती, इसलिए आप जो मदद गान्धीजीके संग्राममें दे रही हैं, उससे मुझे आश्चर्य नहीं होता। आपसे इस बातके लिए अपील करनेकी कि आप वीरतापूर्ण कार्य करें, कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आपके स्त्री-समाजने आँखोंके सम्मुख दृष्टान्त उपस्थित कर दिये हैं, जो कोरमकोर उपदेशपूर्ण व्याख्यानोंसे कहीं अधिक प्रभावशाली हैं। श्रीमती वासन्ती देवी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मिसेज कमला देवी चट्टोपाध्याय, श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति, बड़ौदा तथा रंगूनके तैयबजीके घरानेकी स्त्रियाँ, लाहौरकी बेगम आलम, अहमदाबादकी अनुसूया बहन, डाक्टर मुथुलक्ष्मी रेड्डी, मिसेज के० एम० मुंशी, मिस विकिन्सन आदि महिलाओंने जो कार्य किया है, वह पुरुषोंको लज्जित करके अथवा उत्साहित करके कामें लगावेगा। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई पुस्तक-प्रकाशक इन शूर-वीर स्त्रियोंके चित्रोंका एक अलबम उनके संक्षिप्त चरितके साथ प्रकाशित करे।"

श्री० सी० आर० रेड्डीका प्रस्ताव सचमुच बहुत अच्छा है। भारतीय स्त्रियाँ इस आन्दोलनमें जो कार्य कर रही हैं, उसका विस्तृत वृत्तान्त भी पुस्तकाकार छपना चाहिए।

—

आचार्य कृपलानीजीका बयान

गुजरात विद्यापीठके भूतपूर्व आचार्य कृपलानीजीके संसर्गमें जो कोई भी आया है, वह उनके आनन्दप्रद अक्खड़पन और हास्यमय स्वभावसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। कृपलानीजीका व्यक्तित्व एक निराली ही चीज़ है। आप बड़े मुँहफट हैं, अपनी स्पष्ट सम्मति बड़ेसे बड़े आदमीके सम्मुख कहनेमें ज़रा भी संकोच नहीं करते और मज़ाक करना तो मानो आप ही के हिस्सेमें आया है। कृपलानीजी बड़ी स्वच्छन्द प्रकृतिके मनुष्य हैं, फिर भी उन्होंने खादी-प्रचारके लिए जैसा नियमित कार्य किया है, वैसा बहुत कम लोगोंने किया होगा। अंग्रेज़ीके आप बड़े ज़बरदस्त वक्ता हैं। पहले आप बिहारके एक कालेजमें प्रोफेसर थे, फिर हिन्दू-विश्वविद्यालयमें राजनीति विज्ञानाध्यापक रहे। जब महात्माजीने बिहारप्रान्तमें चम्पारनके लिए कार्य किया था, उन्हीं दिनोंसे वे गान्धीजीके संसर्गमें आये और असहयोगके दिनोंमें आपने हिन्दू-विश्वविद्यालय छोड़ दिया। गुजरात-विद्यापीठमें आपके अधीन रहकर बहुत दिनों तक काम करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। पिछले दिनोंमें आपने मेरठमें एक

* बम्बई प्रान्तमें राजनीतिक आन्दोलनकी तीव्रताके कारण यह उत्सव नहीं हो सकता।

आश्रमकी स्थापना की थी। घूम-घूमकर आपने अनेक भाषण भी दिये थे। अभी आपको एक वर्षकी सख्त सज़ाका हुक्म मिला है। 'हिन्दी-नवजीवन' के १२ जूनके अंकमें लिखा है :—

"वर्धा जेलमें ही उनकी तबीयत बहुत सुस्त और बीमार हो गई थी। वह मुश्किलसे बोल सकते थे। वह प्रायः एकान्त क़ैदीकी तरह रखे गये थे और शामको ७॥ बजेसे ही उनकी कोठरीके दरवाजे बन्द कर दिये जाते थे। इन सब कारणोंसे उन्हें खूब बुखार चढ़ा था। दो दिन तक तो वह प्रायः आधी बेहोशीकी हालतमें रहे। अदालतमें भी उन्हें कुर्सीमें बैठाकर लाना पड़ा था।"

कृपलानीजीका स्वास्थ्य तो वैसे ही अच्छा नहीं था, इसलिए यदि वह और भी अधिक खराब हो गया हो, तो इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। मालूम नहीं कि भारत-सरकार ऐसे सुसंस्कृत आदमियोंके साथ मामूली चोर और डाकुओं जैसा बर्ताव क्यों करती है! ऐसी बातोंसे तो सरकारके शत्रुओंकी संख्या और भी बढ़ेगी। आखिर कभी-न-कभी तो भारतीय जनताके साथ सरकारको समझौता करना ही पड़ेगा, और उस समय यह आवश्यक होगा कि भारतीयों तथा अंग्रेजोंके बीचमें कोई मनोमालिन्य न रहे। यदि सरकार आज अपनी अदूरदर्शिताके इस प्रकारके बेसमझीके कार्य करेगी अथवा अपने अधिकारियों द्वारा होने देगी, तो जातीय विद्वेषकी नींव और भी पक्की हो जावेगी। हिन्दोस्तान जैसे देशके लिये, जहाँ भिन्न-भिन्न जातियों तथा धर्मोंके लोग रहते हैं, इससे अधिक दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है?

आचार्य कृपलानीजीका बयान यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

मैं अपनेको दोषी नहीं मानता। असन्तोष और घृणा फैलानेका सौभाग्य मुझे नहीं मिला है। इन्हें फैलानेका काम तो सरकार ही भलीभाँति कर रही है। हिन्दोस्तानको चूस-चूसकर ग़रीब पूरी तरह बना देनेकी सरकारकी आर्थिक नीति तथा क़ानून और अमनके नामपर लोगोंको डराने धमकाने और उन्हें सतानेकी अन्धेरपूर्ण राजनीति ही लोगोंमें उसके खिलाफ असन्तोष और घृणाके भाव फैला रही है। मेरा पेशा ही जुदा है। मैं तो शिक्षाशास्त्रियोंके भ्रातृसंघमें से एक हूँ। अपने सार्वजनिक जीवनका बड़ा हिस्सा मैंने अध्यापकके रूपमें बिताया है। लोग मुझे आचार्य कहते हैं। व्यक्तियों तथा राष्ट्रोंको सावधान करनेके लिए पुकार मचाना ही हमारे संघका गौरवपूर्ण अधिकार है, पवित्र धर्म है। मैंने अपने तथा आपके—दोनों ही लोगोंको चेतावनी दी है। आपके लोगोंकी टीका करनेकी अपेक्षा अपने लोगोंकी टीका करनेमें मैंने विशेष कठोरतासे काम लिया है, क्योंकि उनके प्रति वैसा करनेका मुझे हक़ है। उनके प्रति मेरे विशेष कर्तव्य हैं। आखिर ज़मींदोस्त होनेवाले साम्राज्यकी आहट मैंने सुनी है, इसलिए आपके दीर्घदर्शी देशबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज़ और दूसरे जिस तरह आज काम कर रहे हैं और जो काम बर्क तथा फाक्सने अपने ज़मानेमें किया था, उसी तरह मैंने भी उचित समझा कि मैं आपको ख़तरेकी लाल बत्ती बताऊँ। मैंने अपने देश-भाइयोंको लम्बे अर्सेकी गुलामीके घोर परिणामोंसे सावधान किया है, और वे जिसे सुख तथा आराम मानते हैं, उस क्षुद्र तन्द्राके खिलाफ भी मैंने उन्हें चेताया है। इन सब कार्योंमें मैंने नीतिका, क़ानूनका अथवा दूसरा कोई गुनाह किया हो, इसे मैं नहीं मानता।

मैं मानता हूँ कि जैसे इंग्लैण्ड अंग्रेज़ोंका है, जर्मनी जर्मनोंका है, वैसे ही यह देश हम हिन्दोस्तानियोंका है। मैं मानता हूँ कि मनुष्य-मात्रके चेहरेसे ही स्वभावतः उसके वतनका पता चल सकता है। अंग्रेज़ोंका रंग-रूप और सूरत-शक्ल उन्हें इंग्लिस्तानका ठहराता है और मेरा मुझे हिन्दोस्तानका साबित करता है। जापानीके मुँहपर कुदरत ही ने ऐसी छाप लगा दी है कि वह साफ ही जापानका मालूम पड़ता है। मनुष्यकी ताक़त नहीं कि वह ईश्वर और कुदरतने जो किया है, उसे बिना नुकसान किये मिटा

...। इसलिए मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जैसे इंग्लैण्ड हिन्दोस्तानियोंका नहीं हो सकता, अंग्रेजी फ्रांसीसियोंका नहीं हो सकता, वैसे ही हिन्दोस्तान भी विदेशियोंका कदापि नहीं हो सकता। यह चीज़ ही खतरनाक है और कुदरत ऐसे सत्तोंको हमेशा मिटाती रहती है।

इस समय हम जो कर रहे हैं, उसीको ऐसी परिस्थितिमें एक क्षुद्र-से-क्षुद्र अंग्रेज भी अपना कर्तव्य समझेगा। अरे, हम तो वही करना चाहते हैं, जो आपके श्रेष्ठ वीरोंने अपने समयमें किया था—हेम्पडन, मिल्टन और क्रामवेलने अपने ज़मानेमें जो कुछ किया था, वही हम आज किया चाहते हैं; वाशिंगटनने अमेरिकाके लिए जो किया था, मेजिनीने इटलीके लिए जो किया था और दूसरे अनेक देशभक्तोंने अपने देशके कंधेपर रखे विदेशी जूएके विरोधमें जो किया था वही हम किया चाहते हैं, अजी नहीं, हम तो गांधीजीके नीचे तले इतिहासके वृत्तान्तोंको परिशुद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने अपने-अपने समूहोंके खिलाफ मूसाके 'शठं प्रति शाठ्यं' के नियमका पालन किया था, पर हम तो बुद्ध और ईसाके आदेशोंका अनुसरण किया चाहते हैं। हम बुराईको भलाईसे जीतना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि वैरसे वैर कभी नहीं मिटता। अन्तराष्ट्रीय मामलोंमें भी प्रेमसे वैरका नाश होता है। हमारा धर्मयुद्ध विशुद्ध है, पाक है। यही पाक और निरपवाद हमारे सत्य और अहिंसाके साधन हैं।

यदि अंग्रेजोंने क्रामवेल, हेम्पडन और मिल्टनके नाम इतिहासमें सोनेके अक्षरोंसे लिखे हों और वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी हानिसे डरकर हमारे स्वातंत्र्य प्राप्तिके उत्साहको कुचलना चाहते हों, तो वे भूलते हैं, निरर्थक प्रयत्न करते हैं। वे जानते हैं, नहीं, तो उन्हें जानना चाहिए कि लोहेकी सलाखें और पत्थरोंकी दीवालें हमारे लक्ष्यकी सिद्धिके मार्गमें इतनी ही या इतनी कम रुकावट डाल सकती हैं, जितनी रुकावट कि जीर्णशीर्ण अंग वाले हुए जुल्मके इन पुराने हथियारोंने भूतकालमें डाली थी। पर इससे तो हमारे विश्वकी आग और भी भड़क उठती है। हमारे धर्मयुद्धकी न्याय्यता और उसकी स्वाभाविकता ही हमारी श्रद्धाका आधार है, हमारे बलका सहारा है। इसी तरह दूसरे देशको गुलाम बनाके रखनेकी अस्वाभाविकतामें ही अंग्रेजोंकी कमज़ोरी समाई हुई है।

आज मैं अपनेको सुखी-सा समझता हूँ कि जेलमें ही क्यों न हो, मुझे न्योता तो मिला। मुझे यह सोचकर भी सुख हुआ कि अपने अंग्रेजोंकी तरह कष्ट सहन द्वारा अपनी श्रद्धाको परखनेका मुझे अवसर मिला है। मगर दुःख है तो यही कि मेरे हिस्से जेलका सुरक्षित जीवन आया है, जब कि मेरे साथियोंके हिस्से लाठीकी चोटें और बन्दूककी गोलियाँ भी आवेंगी। मैं तो सुखी हूँ ही, तो भी मैं जानता हूँ कि आप इंग्लैण्डके एक स्वातंत्र्य-प्रेमी अंग्रेज हैं और इस कारण यहाँ आपकी हालत अटपटी और बेढंगी है। निश्चय मानिये कि इसके लिए मुझे आपके साथ पूरी-पूरी सहानुभूति है।"

—

हज़रत मुहम्मदका जन्म-दिवस

एक मुसलमान लेखक अपने पत्रमें लिखते हैं :—

"सुप्रसिद्ध अराजकवादी बेकुनिन धर्म-बहिष्कारके लिए सबसे बड़ी दलील यह पेश करता था कि धर्मका उद्देश्य तो संसारमें शान्तिका राज्य स्थापित करना है, लेकिन उसके सबबसे जितनी अशान्ति हुई है, उतनी और किसी सबबसे नहीं। इतिहास इस दावेकी सचाईका साक्षी है। लेकिन हम पूछेंगे कि क्या यह चीज़ धर्म थी? यदि शान्तिके पुजारी हज़रत ईसाके नामलेवाके अनुयायी ईसाइयतकी आड़ लेकर गरीब आदमियों तथा निर्बल जातियोंपर अत्याचार करें, तो क्या इससे ईसाई धर्मपर धब्बा लग सकता है? दर-असल बात यह है कि रूढ़ियों, कुरीतियों, कट्टरता तथा संकीर्णताने धर्मके नामपर बहुत जुल्म ढाये हैं।

इसी प्रकार हम पूछ सकते हैं कि वह कौनसी चीज़ थी,

जिसने मानवप्रेमके अवतार हजरत मुहम्मदके अनुयायियोंको इतना संकीर्ण हृदय बना दिया कि वे तमाम गैर-मुसलमानोंको वध्य समझने लगे? और किस वस्तुने भगवान राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीरके वंशजोंको इतना अनुदार बना दिया कि वे अपने ही भाइयोंको अछूत और पशुतुल्य मानने लगे? फिर भी यही कहना पड़ता है कि हर असल गलती यह हुई कि लोग धर्म और रूढ़िवादको एक ही चीज़ मानने लगे, और इसी कारण उनका धर्माधर्मका ज्ञान जाता रहा।

कितने अफ़सोसकी बात है कि एक हज़ार वर्षसे साथ-साथ रहनेपर भी हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेकी संस्कृतियोंके विषयमें बिलकुल अनभिज्ञ हैं। हिन्दू मुसलमानोंको महमूद गज़नवी तथा तैमूरके अनुयायी मानते रहे और उधर मुसलिम उन्हें फ़िरऊनके वंशज कहते रहे। नानक और कबीरने अवश्य हिन्दू-मुसलमानोंको मिलानेका प्रयत्न किया, पर उनके उच्च सिद्धान्तोंकी नदी पन्थवादके रेगिस्तानमें आकर विलीन हो गई। अबुल फज़ल और फ़ैज़ीने 'दीने इलाही' मज़हब इसी भावसे प्रेरित होकर प्रचारित किया, पर वह भी पनपने न पाया। सरमद और दाराशिकोहकी उदारता मुल्लाओंकी कोपाग्निमें भस्म हो गई।

इस कहानीको दो-सौ वर्ष बीत गये, पर आज तक सांस्कृतिक एकताके महत्वको हम लोगोंने न पहचाना। कांग्रेस आदि संस्थाएँ राजनीतिक एकताके लिए जी-तोड़ कोशिश करती रहीं, पर साम्प्रदायिकताकी जड़पर कुठाराघात करनेवाली सांस्कृतिक एकताके लिए उन्होंने भी प्रयत्न नहीं किया।

साम्प्रदायिकताको दूर करनेका एक उत्तम उपाय यह है कि हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेके धर्मका ध्यानपूर्वक और सहानुभूतिके साथ अध्ययन करें, और एक दूसरेके महात्माओंके चरितोंको पढ़ें। मुसलमानोंको भगवान श्रीकृष्णके जन्मोत्सवमें भाग लेना चाहिए और हिन्दुओंको हज़रत मुहम्मदके जन्म-दिवसके जलसेमें शरीक होना चाहिए। जिस तरह गीताका सन्देश केवल हिन्दुओंके लिए ही नहीं वरन् समस्त संसारके मनुष्योंके लिए है, इसी प्रकार हज़रत मुहम्मद सिर्फ़ मुसलमानोंको ही नहीं, बल्कि समस्त मानव-जातिको अपनी वाणी सुनाने आये थे। आगामी सात या आठ अगस्त (६ रबी उल अव्वल) को संसारके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उनका जन्मोत्सव मनाया जावेगा। क्या ही अच्छा हो यदि हिन्दू भाई उस अवसरपर सम्मिलित होकर उस महात्माके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें और इस प्रकार उस सांस्कृतिक एकताकी नींव डालें, जिसके आधारपर सुखी और समृद्ध स्वाधीन राष्ट्रीय-भवन तैयार किया जा सके।"

लेखकके प्रस्तावका हम हृदयसे समर्थन करते हैं। इस विषयपर हम अपने विचार अन्यत्र प्रकाशित कर चुके हैं इसलिए अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

———:०:———

सूचना ग्राहकोंको पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, अन्यथा उसकी कार्रवाईमें देर हो सकती है।

EDITED, PRINTED & PUBLISHED BY BENARSI DAS CHATURVEDI, AT THE PRAVASI PRESS, 120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.